# सूचना

अनेक प्रकार की पुस्तकें इस यंत्रालय में मुद्रितहुई हैं
से जितने पुराण हैं उनसे चुनकर कुछ पुस्तकें नीचे लिखी।
जिनमहाशयों को इसमें से किसी पुस्तककी आवश्यकता हो
प्रेसकेमैनेजरको पत्रलिखकर मँगालें तथा पुस्तकों का जो सू
छपाहै वह भी मँगाकर देखलें ॥

## देवी भागवत भाषा ॥

इसका उल्था पंडित महेशदत्त सुकुलने कियाहै-इसमें मुख्य क
देवीजीके पाठ आदिक का विस्तार और सर्व प्रकार की शक्तियों का
और उनके अवतार, मंत्र, तंत्र, यंत्र, कवच, कीलक, अर्गला, पूजा,
माहात्म्य, सदाचार, प्रातकृत्य, रुद्राक्ष महिमा, गायत्री और देवियों
स्वरण का वर्णन, सन्ध्योपासन, ब्रह्मयज्ञादि असंख्य तंत्र मंत्र रूप
भाषा ऐसी स्पष्ट है कि साधारण लोग भी समझ सक्ते हैं ॥

## लिंगपुराण ॥

इसका उल्था छापेखाने के बहुत खर्च से जैपुर निवासि पंडि
सादजी ने भाषा में किया है-जिसमें अनेक प्रकार के इतिहास,
चन्द्रवंश का वर्णन, ग्रह नक्षत्र, भूगोल और खगोलका कथन, दे
गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नागादिकी उत्पत्ति इत्यादि बहुतसी क

## विष्णुपुराणभाषा वार्त्तिक ॥

इसका पंडित महेशदत्त सुकुलने भाषान्तर कियाहै जिसमें ज
स्थिति, पालन, ध्रुव, पृथु आदि राजाओं की कथा, भूगोल, खगो
धर्मशास्त्र, मन्वन्तर कथा, सूर्य और सोमवंशी राजाओं का कथन
बहुतसी कथायें संयुक्त हैं ॥

## विष्णुपुराण भाषा श्रीराजा अजीतसिंह बैकुण्ठवासीकृत ।

जिसको श्रीराजा प्रतापबहादुरसिंह तालुकदार व आनरेरी ...
प्रेसीडेंट प्रतापगढ़ने छपवाया है इसमें सम्पूर्ण विष्णुपुराण दोहा चौप
इत्यादि अनेक प्रकार के ललित छन्दों में वर्णितहै कागज़ सफ़ेद है ॥

# महाभारत भाषा शान्तिपर्व का सूचीपत्र ॥

# शान्तिपर्व भाषा का सूचीपत्र ।

## आपद्धर्म्म ॥

# शान्तिपर्व भाषा का सूचीपत्र ।

## शान्तिपर्व मोक्षधर्म पूर्वार्द्ध का सूचीपत्र प्रारम्भः ॥

इति महाभारत शान्तिपर्व्व का सूचीपत्र समाप्तम् ॥

# अथ महाभारत भाषा ॥

## शान्तिपर्व्व ॥

### राजधर्म्म ॥

सो० गणपति इष्टमनाय सुमिरि भवानी शंकरहिं ।
भाषा कहौं बनाय शांतिपर्वकी वार्त्तिकहि ॥

## पहिला अध्याय ॥

वैशम्पायन मुनिबोले कि हे राजा श्रीगङ्गाजी के तटपर अपने सुहृदों को जल दानादि क्रियाकरके सब पाण्डव बिदुर धृतराष्ट्र और सब गतरूपास्त्रियों समेत पुरके बाहर एकमासतक निवास करतेभये वहां ब्यासदेव, नारद, देवल देवस्थान, कण्व इत्यादि बड़े २ मुनीश्वर और वेदके जाननेवाले बुद्धिमान् महात्मा अनेक ब्राह्मण लोगभी अपने २ शिष्यों समेत युधिष्ठिरके देखनेको आये और देशकालके सदृश राजा युधिष्ठिरने उनका पूजनकिया राजाकी पूजाको स्वीकारकरके उसको मध्यमें कर चारोंओर वृत्ताकार बिराजमानहुये और शोकग्रस्तकुरुपति राजायुधिष्ठिरका आश्वासन किया उससमय कृष्ण द्वैपायन आदि मुनियों समेत नारदजी बोले कि हे राजाधर्म तुम बड़े भाग्य शालीहो तुमने केशवजीकी सहायता और अपने सुधर्म्म बलसे प्रबल शत्रुओंको मार सम्पूर्ण पृथ्वीको विजयकिया और प्रारब्धसे महाभयकारी घोर युद्ध से निश्चिन्त्यहो आनन्द प्राप्तकिया अब ऐसी बिजयको पाकर क्योंशोचमें पड़ेहो शास्त्र में लिखा है कि क्षत्रीधर्म्मके जाननेवाले को विजयपाकर शोक करना उचित नहीं और तुमने तो बहुतसमयतक धर्म्महीका पालन किया परन्तु उन्होंने सदैव तुम्हारे साथ हठधर्म्मीही करी अर्थात् तुमने सब

प्रकारसे उनको समझाया परन्तु वह न माने अन्तको लाचार होकर युद्धही करना पड़ा और क्षात्रधर्म्म करके भूमिधन राज्यप्राप्तकिया अबतुम्हारा खेद करना क्षत्रीधर्म्म के विपरीत और अन्याय है तुमको अपना अहोभाग्य समझकर आनन्दकरना उचितहै यह नारदजी के बचन सुनकर राजायुधिष्ठिर बड़ेविचार के साथबोले और नारदजी से कहनेलगे हे नारदजी आपके बचन सब यथार्थ और योग्य हैं और यह निश्चय है कि श्रीकृष्णकी कृपासे और ब्राह्मणों के आशीर्बाद और भीमार्जुनके भुजबल से मैंने विजय पाकर समस्त पृथ्वी को पाया और प्रबलशत्रुओं को भी दलसमेत परास्त किया परन्तु हे मुनिवर ज्ञातिबन्धु और गुरुजनोंका जो क्षयहुआ वह इससब दुःख मेरेअन्तष्करणको बहुतपीड़ा करता है हाय इसयुद्ध में अभिमन्यु और द्रौपदी के अज्ञानी प्यारेबालकों का नाश और गुरुजनों में भीष्मपितामह द्रोणाचार्य्य कृपाचार्य्य आदि बड़े २ अतुलपराक्रमी औरतेजस्वीसर्दार और महाबली अतिरथी अतुलपराक्रमी मेरासहोदर भाईकर्ण जिसकागुण पराक्रम बर्णन नहीं कियाजाता इनसबको बधकर के बिजयप्राप्तकी सोमहादुःखदायी मालूमहोती है यह बिजय अजय के तुल्य है यह कठोर बिजय मेरे हृदयको यमकी स्त्रीके सदृश पीड़ित करती है जिन के पतिपुत्र बिचारे संग्राम में मरे वे स्त्रियां कैसे धीरज रक्खेंगी और श्रीद्वारकानाथ द्वारका को जायँगे तब बधू सुभद्रा अपने प्यारे भैयाकृष्णसे क्या कहैगी और जिसके बेटे औरप्यारे भाई दोनों मारेगये वह द्रौपदी मेरेहृदय को बारम्बार पीड़ित करती है ॥

दो॰ सुमुखि सुभद्रा द्रुपदजा कैसे धरि हैं धीर।
मरेपरमप्रियजालुसुत बन्धुबिदितरणधीर ॥

हे नारदजी मैं अपने दुःखोंको कहांतक कहूं कि मेरा कर्णसरीखा भाई जो युद्ध में अद्वितीय दशसहस्र हाथियों का बल रखनेवाला महारथी था उसके मरनेका महादुःख मेरेहृदयको बड़ीही पीड़ा देता है प्रथम हमनहीं जानते थे कि कर्ण हमारा सहोदर भाई है माताने प्रथम नहीं कहा यह बार्ता मैं यथार्थही आप से कहता हूं जो कदाचित् पहिले से हम जानतेहोते तो उससे स्नेह प्रीति बढ़ाकर आपत्तियोंको मिटादेते वह कर्ण महाबुद्धिमान्, सत्यबादी, दानी, दयावान्, महाबली और पराक्रमीथा और धृतराष्ट्रके पुत्रदुर्योधनका महाप्यारा प्राणरक्षकथा और अपनी हस्तलाघवता से हरएक युद्धमें हमसब का अपमान करनेवालाथा उसको जन्मतेही हमारी माता कुन्ती ने एक पिटारीमें बंदकरके श्रीगंगाजीमें बहादियाथा जिसको यहांके लोगों ने सूतका और राधाका पुत्रमाना वास्तवमें वह कुंतीकाज्येष्ठ पुत्रहमारा बड़ा भाई था वह मुझराज्यके लोभी अज्ञानी के कारण मारागया मैं और मेरे

भाई भीमसेन अर्जुन नकुलसहदेव कोई भी इसभेदको नहीं जानते थे परंतु वहसुंदर ब्रतरखनेवाला कर्णहमकोजानताथा क्योंकि हमने सुनाहै कि हमारी शुभचिन्तक कुंतीमाता हमारी रक्षाके लिये उसके पासगई और, कहा कि तू मेरापुत्रहै सूर्य ने कृपाकरके तुझको दियाथा तबभी उस महात्माने कुंतीका मनोरथ पूरानहीं किया परंतु यहभी सुना कि उसने पीछेसे मातासे कहदिया कि मैं राजा दुर्योधन का साथनहीं छोड़सक्ता जो कदाचित् मैं तेरेकहने से युधिष्ठिरसे मिलापकरलूं तो मुझे सब लोग नीच और बिश्वासघाती आदि अनेक दोषलगाकर यह कहेंगे कि यह अर्जुन से भयभीत होकर युधिष्ठिरसे जामिला इसकारण हे देवि मैं श्री कृष्ण समेत अर्जुन को बिजयकरके युधिष्ठिर से मिलाप करूंगा यह सुनकर कुंतीने कर्ण से कहा कि जो तुझेयहीहठ है तो अर्जुन के सिवाय चारों को अभय करके अर्जुन से इच्छापूर्वक युद्ध करियो तब उसबुद्धिमान् कर्णने हाथजोड़हुये कुंतीसेकहा कि मैं अपने बसाते तेरेचारों पुत्रोंको नहीं मारूंगा और हे माता तू काहे को अधीर होतीहै तेरेतो पांचहीपुत्र चिरंजीवि रहेंगे कैतो युद्ध में अर्जुन मुझे मारेगा या मैं अर्जुनको दोनोंमेंसे एकरहैगा पुत्रोंपर दयाकरनेवाली माताफिर बोली कि हे पुत्र जो तू इनका कल्याण चाहताहै तोरक्षाही करियो ऐसा कर्णसे सत्य २ कहकर कुंतीघरको गई ऐसा मेरासहोदर भाई अर्जुन केहाथसे मारागया हे मुनियोंमें श्रेष्ठ नारदजी मैंने अपने सहोदर भाई कर्णको पीछेसे माताके बचनोंसे जाना इसी से मुझभाईके मारनेवाले का हृदय बहुत खेदपारहा है क्योंकि जो मेराभाई कर्ण भी जीतारहता तो मैं कर्ण और अर्जुनकी सहायतासे इन्द्रको भी जीतलेता और सभामें धृतराष्ट्र के बिचारे निर्बुद्धी पुत्रों से मुझदुखियाको क्रोध अकस्मात् उत्पन्नहोगया कि द्यूतसभामें दुर्योधनका शुभ चाहनेवाला कर्ण जब मुझसे कटुबचनोंको बोलता उससमय मेरा क्रोध उसकर्ण के चरणों को देख २ कर दूरहोजाताथा क्योंकि कर्ण के दोनों चरण कुन्तीके चरणोंके सदृशथे मैं अपनी बुद्धिसे जब कुन्तीकी और उसकी तुल्यता का कारण शोचता तो किसी प्रकारका हेतु नहीं समझ में आताथा युद्धमें उसके रथके पहिये को जो पृथ्वीने पकड़ा और दबाया हे नारदजी इसका हेतु आपमुझसे कहिये उसमेरे भाई को किसने किस अपराध के कारण शापदिया सो समझाकर कहिये क्योंकि आपत्रिकालज्ञ हैं संसारके कार्य्य कारण को जानते हैं और ब्रह्मज्ञानी हो इसी से आप के मुख से ठीक २ बृत्तांत सुना चाहता हूं ४४॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेयुधिष्ठिरनारदसम्बादेकर्णाभिज्ञानोनामप्रथमोऽध्यायः॥ १॥

# दूसरा अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि जब नारदसे युधिष्ठिरने ऐसा प्रश्न किया तब महा वक्ता श्रीनारदजी बोले कि भरतवंशियोंमें उत्तम महाबाहु युधिष्ठिर तुम्हारे भाई कर्णको परशुरामजीका जैसे शापहुआ वह मैं कहताहूं तुम चित्तलगाकर सुनो कि जो तुम कहतेहो कि युद्धमें कर्ण और अर्जुनकी कोई शत्रुता न थी यह केवल देवताओंकी गुप्त बातहै सो ठीकहीजानो वह वृत्तांत मैं कहता हूं तुम अच्छे प्रकारसे समझो हे युधिष्ठिर पूर्वकाल में देवताओं में यह विचार गुप्तहुआ कि यह क्षत्रियोंका समूह अधिक होगयाहै वह शस्त्रोंसे पवित्रहोकर कैसेस्वर्गकोपावे इसनिमित्त शत्रुताकीअग्निकाउत्पन्न औरप्रकाशकरनेवाला यह कन्याका पुत्र कर्ण उत्पन्नकियागया और वह महा तेजस्वी बालक सूतका पुत्र कहाया और तरुण होकर द्रोणाचार्य्य गुरूसे धनुर्वेदपढ़ा उससमयभीमसेनकी सबलता और अर्जुन की युद्ध में हस्तलाघवता और हेराजेन्द्र तुम्हारी बुद्धिमत्ता और नकुल सहदेवकी पाण्डित्यता और नम्रता और श्रीकृष्ण अर्जुन से बाल्यअवस्था की मित्रता और प्रजाका अनुराग इत्यादि अनेक बातोंको देखदेखकर हृदय में जलताथा इसीहेतु से इसने बाल्य अवस्थासेही राजा दुर्योधनसे मित्रता अंगीकारकरी और प्रारब्धाधीन अकारणदैवइच्छा से तुमसे ईर्षाभाव रखता था अर्जुनको धनुर्वेद में अधिक पराक्रमी जानके अपनेगुरू द्रोणाचार्य्य से एकांत में जाकर विनय पूर्वक बोलाकि हेगुरुदेव मेरा यहविचार है किमैं अर्जुन से युद्धकरने को आपसे ब्रह्मास्त्रविद्या रहस्य प्रयोग संहार समेत सीखूं इसमेरे मनोरथ को आप पूर्ण करें आप महात्मा हैं आपकी प्रीति पुत्र और शिष्यों में समानहै आपकी कृपासे मुझे कोई पण्डित अकृतास्त्र अर्थात् वे शस्त्रवाला नकहै द्रोणाचार्य्य जी ने जाना कि यह अर्जुन से शत्रुता रखताहै इसकारण कर्णसे क्रोध में आकर कहा कि तू अल्प बुद्धीहै और बुद्धिके तुल्य व्रती ब्राह्मणही ब्रह्मास्त्रपासक्ताहै अथवा तपस्वी क्षत्रीकोभी प्रयोग करना योग्य है और शूद्रको तो उसका अधिकारभी नहीं है तुमअपने योग्यही वस्तुओं को मांगो जबकर्ण ने अंगिराकुल भूषण द्रोणाचार्य का यह वचनसुना और सिद्धांत को जाना तो उसीसमय द्रोणाचार्य्य को दण्डवत् करके बड़े अहंकार से महेंद्रगिरि पर्वतपरगया वहां परशुरामजीको साष्टांग दण्डवत्करके बोला कि हे महाराजमैं भार्गव ब्राह्मण हूं आपकी प्रशंसा सुनकर शरण में आयाहूं फिर परशुराम जीने नामगोत्र प्रवर वेदइत्यादि सबबातें पूछकर अपनी शिष्यता में अंगीकार किया और बड़ी प्रीति से कहा कि किसकारण आपका आनाहुआ

तब वह बोला कि महाराज धनुर्वेद पढ़नेको आया हूं तब प्रसन्नहोकर कहा कि हमतुमको पढ़ावेंगे और सिखावेंगे और आज्ञाकी कि आनन्दसे रहो यहआज्ञापाकर कर्ण उस स्वर्गके तुल्य महेंद्र गिरिपर रहने लगा और वहां रहते हुये गन्धर्व राक्षस और यक्षों से मेलहुआ और परशुरामजीसे बुद्धिके अनुसार शस्त्रसीखे और देवता, दानव, दैत्योंसे प्रीतिहुई तिसपीछे वह सूर्य्य का पुत्र कर्ण आकामके समीप समुद्रके तटपर हाथमें कभी खड्ग कभी धनुष लिये बनमें अकेला घूमाकरताथा एकदिवस फिरते फिरते दैवयोग से उसने धोखेसे मृग जानकर किसी अग्निहोत्री ब्राह्मणकी होमधेनुको बाणसे मार डाला और धेनुके समीपजाकर मनहीमन में पछिताकर और उसके स्वामी उस अग्निहोत्री मुनिको क्रोधित जानउनके चरणपकड़ प्रार्थना करनेलगा कि स्वामी मृगकी भ्रांतिसे यहगौ हमारे बाणसे मारीगई इससे आपबड़े हैं क्षमाकीजिये क्योंकि बड़ेलोग छोटे उत्पाती बालकोंपर सदैव कृपाकरते हैं और पण्डित लोग धोखेसे हुये पापका दोषनहीं मानते यह सिद्धांत समझ के मेरीबिनयको अंगीकारकर क्षमाकरिये कर्णके ऐसेवचन सुन के वहक्रोध युक्त होकर बोला औ शापदिया कि हे मूढ़ शठ अबोध तू अवश्य बधनेके योग्यहै और मूर्ख तू जिसके जीतनेकेलिये धनुष बिद्या सीखकर अभ्यास करता है अथवा जयकी आशा करता है जब उसके साथ अथवा किसीदेवतासे युद्धकरेगा उसीदिन तेरायहपाप शिर घुमाकर प्रकट होगा और तेरे सुन्दर रथके चक्र को पकड़कर भूमि ग्रसलेगी और चक्रके ग्रसतेही तुझ व्यग्रचित्तकाशिर तेराशत्रु अपने पराक्रमसे काटडालेगा हेनराधम तूचला जा तब उसशापित कर्णने बहुतसेरत्न और गौदेने कहकर चाहा कि शाप शान्तहो परन्तु न माना और कहा कि मेरे बचनोंको कोईभी मिथ्या नहीं करसक्ता तुमजाओ या ठहरो अथवा अपना कार्य्यकरो जबइसप्रकार ब्राह्मण के बचन सुने तब भावीप्रबल जानकर शापके दुःखसे शिरनीचाकर के भय भीतहो शापको शोचता हुआ कर्ण चलाआया २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेनारदयुधिष्ठिरसंवादेकर्णशापोद्वितीयोऽध्यायः२ ॥

## तीसरा अध्याय ॥

नारदजी बोले कि हे युधिष्ठिर कर्ण परशुरामजीके निकट आकर पहिले क अनुसार रहनेलगा और भार्गवजीकी सेवा समय समयपर जैसीकि उचित है रात्रिदिन करनेलगा तब परशुरामजी ने उसका विक्रमबुद्धिगुण और श्रेष्ठकर्मजानकर उसको शुभअंगों सहित ब्रह्मास्त्रदिया और अच्छे प्रकारसे धनुर्वेद पढ़ाकर बड़ा चतुर किया और ऐसा बिश्वास उसपरबढ़ाया कि तपसे

और ब्रतोंसे जब निर्बलहोतेथे तो परशुरामजी जो कि बड़े बुद्धिमान्थे कर्ण केसाथ कभी कभी आश्रम के सन्मुख घूमाकरतेथे और शान्त होकर इसके सहारे से आरामभी कियाकरतेथे एकदिन अधिकथकित होकर कर्णकीबगल में अपना शिरधरके सोगये थे कि दैवयोगसे हेयुधिष्ठिर अकस्मात् मांस मज्जा, कफ, रुधिर आदि का खानेवाला एक महा भयानक कीड़ा जिसका स्पर्शभी अत्यन्त कठोर था कर्णके समीप आया और उसकी जंघाको अपने तीक्ष्ण दांतोंसे काटा परन्तु उस महावीर कर्णने गुरूके भयसे कि मतकभीमेरे देहके हिलाने चलाने से गुरूकी निद्राजातीरहै इसलिये उसके हटाने और मारनेका कोई उद्योग नहींकिया और उसीप्रकार कीड़ेसे काटीहुई जंघा समेत वहसूर्य का पुत्रकर्ण जराभी न हटा धैर्य्यसे उस महाक्लेशको सहाकिया और गुरूके शिरको धारण कियेरहा जब उसके रुधिरसे उसका सबदेह भीजगया तबतो तपोमूर्त्ति परशुरामजी निद्रासे जगकर महापीड़ितहुये और शीघ्रही बोलउठे कि बड़े आश्चर्य्यकी बातहै कि मेरा देह अपवित्र कैसे होगया और कर्णतुझसे यहपूछताहूं कि यह तैंने क्याकिया भयको त्याग सत्यसत्य कहो तबतो कर्णने उसकीड़ेका काटनाउनसे वर्णनकिया और परशुरामजी ने भी उस शूकरसमान कीड़ेकोदेखा कि जिसके आठपावँ तीक्ष्णदाढ़ सुई के सदृश सिमटाहुआ और घनेबालोंसे ढकाहुआ अंग जिसका बड़ा भयानक रूपअल्लूकनाम कीट था उसने तपोमूर्त्ति परशुरामजीका जैसेही दर्शन किया तो उसीक्षण प्राणोंको त्यागकर ऐसा आश्चर्य्यकारी भयानक रूप धारण करलिया कि जिसकी लाल गर्द्दन मेघपर सवार राक्षसदेह आकाश में निराधार खड़ाहुआ दीखा और परशुरामजीको हाथ जोड़ेहुये आनन्द चित्त होकर बोला कि हे भृगुबंशियों में मृगेन्द्ररूप परशुरामजी महाराज आपका कल्याणहो मैं आपके दर्शनोंके प्रभाव से इसमहाघोर नरकसे छूटकर उद्धार हुआ और हे मुनिश्रेष्ठ आपकी कृपासे मैं अपने स्थानको जाऊंगा और आपने जो मेरा अभीष्ट सिद्धकिया इससे आपके चरणोंको प्रणामकरके प्रसन्नता पूर्वक आपको चाहताहूं कि आपका ईश्वरभलाकरै यहसुनकर प्रतापी श्रीपरशुरामजी बोले कि तुमकौनहो और कैसे नरकमें पड़े इसका सब वृत्तांत हमसे वर्णनकरो वह बोला कि हे महात्मामैं प्रथम सतयुग में दंशनाम महाअसुर था और भृगुजीके समान मेरी अवस्था थी उससमय मैंने अपने पराक्रमसे भृगुजीकी प्यारी स्त्रीको हरलिया था तब वह आपके पितामह भृगु जी महाक्रोधित होकरबोले कि अरे मूत्र,कफ, रुधिर, मज्जाके खानेवाले दुष्ट पापी तूनरकके योग्यहै उनकाशाप होतेही हेमहर्षि मैं ऐसी सूरतका कीड़ा बन पृथ्वीपर गिरपड़ा तब मैंने प्रार्थना करके पूछा कि हे ब्रह्मन्मुझ अपराधी

का शाप कब छूटेगा तब उन्होंने कहा कि जब भृगुवंशी परशुरामजीकादर्शन पावेगा तब तू शापसे मोचनहोगा सो अब मैं उन्हींके वचनों के अनुसार आपके चरणों का दर्शन पाकर इस कल्याणरूपी गतिको प्राप्तहुआ ऐसा कहकर वह परशुरामजी को प्रणामकर चला गया फिर परशुरामजी ने क्रोध में आकर कर्णसे कहा कि अरे मूर्ख यह महादुःख है ब्राह्मण इसकष्ट को कभी नहीं सहसक्ता तू छलकरके ब्राह्मण बनाहै तेरा धैर्य्यक्षत्री के तुल्यहै इससे तुम छल त्यागकर सत्यसत्य यथार्थ कहो तब शापसे भयभीत होकर उनकी प्रसन्नता के अनुकूल कर्ण ने उत्तर दिया कि हे भार्गव मुझे ब्राह्मण क्षत्री से भिन्न सूत जानो और इसलोक में लोग मुझको राधाका बेटा कर्ण कहते हैं और हे महात्मा आप दया करके मुझअस्त्रों के लोभी पर अनुग्रहकरो आप वेद और धनुर्वेदके देनेवाले गुरूपिताके तुल्यहैं मैं निःसन्देह सूतहूं मैंने अस्त्रोंके लोभसे आपसे अपना भार्गवगोत्र कहातब तोमहा क्रोधाग्नि में जलते हुये परशुरामजीने उस हाथबांधे आधीनखड़ेहुये कर्णसे कहा कि जिसप्रकार से तैंने अस्त्रोंके लोभ से अपना भेदछुपाया अरे मूर्ख इसी अपराध से यहब्रह्मास्त्र सीखाहुआ तुझको समय पर याद न आवेगा और अपने बराबरवाले के साथ युद्धकरने के समय स्मरण रहेगा कि वेद कभी ब्राह्मणसे भिन्न किसी अन्यजाति में अचल और दृढ़ नहीं होगा अब तुमजाओ तुम सरीखे मिथ्याबादियों के लिये यहांकोईस्थान नियतनहीं है पृथ्वीपर युद्ध में तेरेसमान कोई क्षत्री नहींहोगा जबपरशुरामजीने ऐसेबचन कहे तबवह नम्रतापूर्वक न्याय और धर्म्मकी रीति से दण्डवत्कर चलाआया और दुर्योधनकेपास आकर कहा कि मैं अस्त्रका जाननेवाला अद्वितीयहूं ॥

इतिश्री महाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेनारदयुधिष्ठिरसंवादेभार्गवोक्तकर्णशापवरप्रदानयोर्नामतृतीयोऽध्यायः ३ ॥

## चौथा अध्याय ॥

नारदजी बोले कि भरतवंशियों में उत्तम युधिष्ठिर वह कर्ण उनभार्गवनन्दन परशुरामजी से शाप और अस्त्र पाकर दुर्योधन के साथ में रहने को प्रसन्नहुआ और बड़े अहंकार से कुरुपति के साथ रहनेलगा तब हे राजा कर्णने जो जो पराक्रम किये उनको सुनो कि प्रथमतौ कलिंगदेश के श्रीमान् राजपुर नगर में राजा चित्रांगद के यहां उसकी कन्याके स्वयम्वर में देश देश के बहुत से शूर राजा इकट्ठेहुये यहवृत्तांतसुनकर दुर्योधनभी अपने कंचन के रथपरसवारहो कर्णको साथलिये वहांगया उसस्वयम्वर में शिशुपाल, जरासन्ध, भीष्मक, वक्त्र, कपोत, रोमानील और दृढ़पराक्रमी रुक्मी और राजासृगाल और स्त्रीराज्याधिपति अशोकशतधन्वा वीरभोज इत्यादि

तो यह और अन्य बहुतसे दक्षिणदेश के राजा और म्लेच्छों के आचार्य्य राजालोग और इसी प्रकार पूर्व्वोत्तरके अनेक भूपति सबसुबर्ण के बाजूबन्द आदि अनेक रत्न जटित भूषणोंसे अलंकृत तेजस्वी शुद्ध सुबर्ण के से बर्ण उन्नतदेह सिंहसमान पराक्रमी से मदोन्मत्त इकट्ठे हुये हे भरतर्षभ उस स्वयम्बर में जब सब राजालोग यथायोग्य आसनोंपर बैठाये गये तब वह राजकन्या हाथ में जयमाललिये अपनी धात्री और क्लीवलोगों के साथ रंगभूमि में आई और राजाओं के नामगुण पराक्रम सुनाये गये तब वह कन्या हरएक राजा को देखती हुई चली और जो दुर्योधन को उल्लंघन करके दूसरेके समीप जानेलगी तो राजादुर्योधन उस अपमान को नहीं सहसका और सब राजाओंको तुच्छसमझ तुरन्तही कन्या को रोंक हाथ पकड़ रथपर बैठाय कर्ण के साथ अहंकार और बलबढ़ाकर चल दिया तिस पीछे द्रोण भीष्म आदिसेरक्षित उसकी सेनाभी चलदीराजा दुर्योधनका रथ सबशस्त्रोंसे भराहुआ था ऐसा कन्याकाहरण देखकर सबराजालोग अपने अपने रथोंपर चढ़चढ़ अपने शूरबीरों समेत बढ़बढ़कर पुकारते हुये और कन्याभिलाषी राजालोगोंने दौड़ दौड़कर कर्ण समेत दुर्योधन के रथको जाघेरा और क्रोध से भरकर कर्ण और दुर्योधन दोनोंके ऊपर शस्त्रोंकी बर्षा ऐसे करनेलगे जैसे कि दोपहाड़ोंके ऊपर बादल बर्षाकरें ऐसा देखकर कर्णसमेत राजा दुर्योधन भी बाणोंकी बर्षा करतेहुये सन्मुखहुये और महाघोर संग्रामहोनेलगा उस समय कर्णने ऐसा घोर युद्धकिया कि गदा शक्ति धनुषधारी ध्वजा समेत रथोंपरचढ़ेहुये बाणोंकी वृष्टिकरते हुये अगणित राजाओंके सबशस्त्रों को काट२ पृथ्वीपरडालदिया और अनेक घोड़े हाथी रथोंके सारथियोंको मार २ अगणित योधाओं को गर्द मर्द्दकर मारे शस्त्र और बाणों से दिनकी रात्रि कर महाघोर संग्राम किया और सब राजाओंको जीत बिजयी बाजोंको बजाताहुआ तब वह भयभीत राजालोग युद्धको त्याग अपना २ जीवले रथों को भी त्याग घोड़ोंको हांकतेहुये अपने २ देशों को गये और राजादुर्योधन कर्णआदि सब साथियों समेत कन्याको लेबिजयका शब्द करतेहुये हस्तिनापुरको आये ऐसा रणकर्क्स और महाभटकर्णथा ॥ २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेकर्णवीरताबर्णनोनामचतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

## पांचवां अध्याय ॥

नारदजी बोले कि कर्णकी और भी बीरता सुनाताहूं तुम चित्तसे सुनो यह सत्य २ कहताहूं कि एक दिवस कर्णकी बीरता और पराक्रम सुनके चक्रवर्ती मगध देशके राजा जरासन्धने दोरथोंसमेत युद्ध में बुलवाया दोनों एक २ रथपर सवारहुये और शस्त्र लेकर दोनोंबड़े शस्त्रवेत्ता द्वन्द्वयुद्ध करने

लगे प्रथम तो धनुषबाणसे अनेकप्रकार से युद्धकिया फिर शस्त्रोंसे ठहरा २ कर पुकार पुकार के कि भागोमत भागोमत कहकर घोरसंग्रामकिया फिर खड्ग धनुष औ डाल २ बिरथहो बाहु कराटक युद्धकिया तब कर्णने ऐसा पराक्रम किया कि जरासन्धकी सन्धिको उखाड़नेलगा तबजरासंधने अपनी देहकी बिपरीति दशादेखकर दूरसेही शत्रुताको त्यागकेकहा कि हे कर्ण मैं तुझसे प्रसन्नहूं और सराहकर कहा कि तू बड़ावीरहै और अपनीप्रसन्नतासे अंगदेश समेत मालिनी नगरी दीनी तभीसे कर्णभी भूमिपतिहो दुर्योधन के साथ शोभितहुआ और हे युधिष्ठिर वह कर्ण अंगदेशोंकाराजा कहलाया और शत्रुओं की सेना का मर्दन करनेवाला कर्ण ने चम्पानगरीकी रक्षाकी वह तुमभी जानतेहो इसप्रकार वहकर्णशस्त्रों के प्रतापसे इसभूमिपरप्रधान शस्त्रवेत्ताहुआ॥

चौ० कर्ण सकल जगजीतनलायक। जो नहिं शापदेत भृगुनायक॥

और हे राजा तेरी जयके लिये देवेन्द्र इन्द्रने उसके दोनों कुराडल और कवच अर्थात् बख़्तर उससे मांगे और देवमाया से मोहित उसदानी कर्णने देहके साथ उत्पन्न अपने कवच और दोनोंपूजित कुराडलोंको उतार इन्द्रको देदिये तबकर्णदोनों कुराडलों और कवचों से रहित होगया इसीहेतु वह बिजयी कर्ण श्रीबासुदेवजीके सन्मुख युद्धमें अर्जुनके हाथ से मारागया॥

दो० बिप्र न देतो शाप जो कवच न लेत सुरेश।
तोको करिके करणसों लहत बिजयको लेश॥

अर्थात् ब्राह्मण और महात्मा परशुरामजीकेशाप और कुन्तीको बचनदेने और इन्द्रकी मायाकरके भूलसे कवच कुराडलों के देने से और संख्या में अधिरथी कहनेसे और भीष्मजी के कियेहुये अपमानसे और राजा शल्यकी ओरसे तेजबल और बुद्धिकी न्यूनता और बासुदेवजीकी इच्छा से वह कर्ण रुद्र इन्द्र यमराज बरुण कुबेर देवयक्ष राक्षसों से बरपाने वाले और महात्मा द्रोणाचार्य्य कृपाचार्य के दियेहुये दिव्यअस्त्रवाले गांडीवधनुषधारी अर्जुनके हाथ से वह सूर्य्यके सदृश तेजस्वी सूर्य्यका पुत्रहोके भी मारागया इससे हे युधिष्ठिर वह तेराभाई कर्ण इसप्रकारसे शापित होकर बहुतों से ठगागया हे नरोत्तम वह शोचके योग्यनहीं है जो क्षात्रधर्म्मको पालनकर संग्राम भूमिमें महायुद्ध कर साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्णजीके सन्मुख मारागया॥ १५॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेनारदयुधिष्ठिरसंवादेमृतककर्णवीरतावर्णनोनामपंचमोऽध्यायः ५॥

# छठा अध्याय॥

वैशम्पायनजी बोले कि नारद तो इतना वर्णन युधिष्ठिरसे कहकर चुप-होगये और युधिष्ठिर फिर भी शोकसे पीड़ित हो दीन आतुरमन सर्पके तुल्य श्वासले २ अश्रुपात डालताहुआ तब दुःखसे हतचित्तकुंती माताने देशका-लके सदृश मधुर बाणीसे युधिष्ठिर से कहा कि हे युधिष्ठिर तुम ऐसे धर्म्मज्ञ ज्ञानी होकर कर्णका शोक क्यों करतेहो हे महाबाहु तुमशोकको दूरकर मेरे इनबचनों को सुनो कि मैंने उसकर्ण को पहिलेही भाइयों से प्रीतिकरने को प्रेरणा कियाथा और उसके पिता सूर्य ने भी बहुतसमुझाया और अनेक बार शिक्षा कीगई परंतु वह हठी कर्ण नहीं माना इससे तुम शोक को त्यागो भावीबड़ी प्रबलहोती है जो होनहार है सो अवश्य होता है उसका मेटनेवाला कोई नहीं यह माताके बचन सुनतेही अश्रुपात डालता युधिष्ठिर बोला कि हे माता तुमने जो इसबृत्तांत को गुप्त रक्खा इसीसे हम इस महा शोक में पड़े इस से मैं अब शापदेताहूं कि कोई स्त्री मंत्र और गुप्तभेद को अंतरण में न छिपावे ऐसा स्त्रियोंको शाप दे राजायुधिष्ठिर फिर सधूम अग्नि के सदृशहोकर शांतहोगये १३॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेकुंतीयुधिष्ठिरसम्वादेयुधिष्ठिर दत्तस्त्रीशापवर्णनोनामषष्ठोऽध्यायः ६॥

# सातवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि शांत होकर भी दुःखार्णव में डूबेहुये व्यग्रचित्त उस धर्मात्मा युधिष्ठिरने उस महारथी कर्णका स्मरणकरके रुदन किया और दुः खदशा में उष्णश्वास लेकर अर्जुनको देखकर यहबचनकहा कि जो हमलोग बृष्णि अन्धकक्षत्रियों के पुरमेंही भिक्षामांगतेरहते तो काहेकोजातिकेमनुष्यों का नाशकरके इसशोक दशाको पहुंचते हमलोग निश्चयकरके प्रारब्धहीन हैं और हमारे शत्रुबड़े प्रारब्धीथे हमनेबड़ा आत्मघात किया कि इसकाफल अवश्य पावेंगे क्षत्रियोंके बल पराक्रम क्रोध आदिको धिकारहै जिसकेकारण इस महाशोक में हमलोग पड़े हमसे तो अच्छे बनचारी ही लोगहैं जो इन्द्रि-यों को जीत क्रोध हिंसा आदिसे रहितहोके बैराग्यको धारणाकिये पवित्रा-त्मा हो साधुरूप होते हैं और हम सबतो लोभ औरभूलसे दंभी और मानी होकर ऐश्वर्य्य पूर्वक राज्य भोगनेकी इच्छा करके इस महाघोर दुःखदायी अवस्था को प्राप्तहुये पृथ्वी के बिजय के हेतु अपने भाइयों को मराहुआ दे-खकर त्रिलोकी के राज्यको भी हम धिक्कार मानते हैं सो हम पृथ्वी के लोभ से मारने के अयोग्य गुरुजन आदि भाइयों और अन्य बहुत से राजाओंको

बधकरके इच्छा रहित बांधव मारनेवाले पृथ्वीपर प्रसिद्धहुये और अपने पुत्र पौत्र सखाओं को जिसके लिये बधकराया ऐसी पृथ्वीके पाने से कौन सुखहै हमारी ऐसी दशाहै कि जैसे श्वान अस्थिको चबाकर प्रसन्न होता है वैसेही हमने अस्थिरूपी राज्यको पाकर प्रसन्नता पाई ऐसा राज्य मुझको नहीं भावता यह क्षत्रियों के बंशका नाश दुर्योधन की मतिके बिपरीत होनेसे हुआ और तुम लोगोंने भी इसी राज्य के लिये बड़ाभारी पराक्रम किया हम को राज्य भूमि घोड़े हाथी गौ और सुवर्ण रत्नोंका ढेर तो मिलजायगा परन्तु वे मरेहुये भाईबन्धु न मिलेंगे जो राज्यकी इच्छा करके अभिमान और क्रोध में भरेहुये कालवश हो यमलोक को गये देखो पिता माता भी बड़े २ जप पूजन पाठ आदि अनेक तपस्या ब्रह्मचर्य्यादि शुभकर्म करके ऐसे पुत्रों को चाहते हैं जो शुभकर्म करनेवालेहों और माता गौरी गणेश महादेव आदि देवताओंका व्रत यज्ञ मंगलगानकरके ऐसे गर्भोंको दशमास पर्य्यन्त धारण करतीहै जो जीवनेपर ऐश्वर्य्यवान्हो अच्छी२सन्तानोंको उत्पन्नकरें औरइस लोक में अपने माता पिता को अनेक सुख देकर अन्तको पुन्नामादि अनेक नरकों से उद्धार करें जब उनके उत्तम कुण्डलधारी तरुणपुत्र पृथ्वी सम्बन्धी भोगों को न भोगकर और देव पितृ ऋषि इनतीनों ऋणोंको न चुकाकर काल बश हुये तो निश्चयहै कि वे यमलोक को गये इससे निश्चय होताहै कि उनके माता पिता दोनों धन रत्नोंकी आकांक्षावाले थे तभी वह राजा लोग मारेगये जो राजालोग अपने वांछितके प्राप्तकी इच्छा और उसके न मिलने से दुःख और क्रोध में प्रवृत्तहोंगे वह कभी कहीं अर्थात् इसलोक परलोक दोनों में कभी सुख न पावेंगे पांचाल और कौरवों में जो मारेगये वे तो सत्यही मारेगये क्योंकि तृष्णा संयुक्त मरने से स्वर्गको नहीं गये जो लोग तृष्णा से रहित हैं वह ऐसी दशा में इसलोक परलोक दोनों में सुख भोगेंगे हम सब इस संसारकी अनित्यता में अर्थात् संसार के नाश में कारणरूप समझेगये परंतु हमारा राज्य हरने से वह सब कारण मिथ्या निश्चय होता है क्योंकि वह शत्रुता रखनेवाला और कपट के द्यूत आदिसे अपनी जीविका करनेवाला दुर्योधन हम शुभचिंतक लोगों के साथ मिथ्याबादी हुआ इसी से हमने न उन्होंने बिजय पाकर अभीष्ट सिद्धकिया अर्थात् उन्होंने नतो इस पृथ्वीको भोगा और नस्त्रियों के गीतबाद्य सुने और न अपने इष्टमित्र और मंत्रियोंके वचनोंको सुना और वह मूल्यरत्न और भूमिकी आमदनीके धन को भोगा इसका यहहेतुहै कि हमारी शत्रुतासे पीड़ित होके इसलोकका सुख न पाया उसधनको हमारेपास देखकर उसकामुख बिगड़कर पीलाहोगया और राजा धृतराष्ट्रभीअनेक बातोंसे बिदितकिया गया तबभी अन्यायकी बुद्धि में

प्रवृत्त हो पुत्रोंकी इच्छाको स्वीकार करके अपने पिताके तुल्यभीष्मजी और विदुरजीके कहनेकोभी न मानकर उनकीअवज्ञाकेकारण निश्चयकरके मेरेही सदृश ऐसी महाघोर कुलक्षयरूपी दशाको प्राप्तहुआ कि जो महाभ्रष्ट अन्तः-करणवाले और हमसे ईर्षारखनेवाले दुराचारी लोभी अपने दुर्योधनआदि पुत्रों को न समझाकरअपने सगेभतीजोंकोराज्यसे हतकरके अपयशका भागीहुआ और हमारे महाशत्रु पापात्मा दुर्बुद्धी सुयोधन आदि वृद्धोंको शोककी अग्नि में डालकर गया हमारे घरानेका कौनसा भाई सुहृदजनोंके मध्यमें श्रीकृष्ण से ऐसे वचन कहसक्ताथा जैसे कि उस दुराचारी महालोभी अभिमानी दुर्यो-धनने कहे और हमलोग अपने तेज प्रतापसे सब दिशाओंको बिजय करके अपने भाइयोंसे बरसोंतक शत्रुता त्याग करतेरहे तो भी उस दुर्बुद्धीने दुर्योधन की सलाहसे पराजय पाई जिससे कि यह हमारा सब कुटुम्ब नाशहुआ हमने मारनेके अयोग्य भीष्मपितामह आदिको मारकर इस संसारमें अपयशपाया इस घरानेके नाशकरनेवाले दुर्बुद्धी पापात्मा दुर्योधनको राजाधृतराष्ट्र राज्य देकर अब पछताताहै कि बड़े २ शूरबीर मारेगये और बहुतसे पापकरके देशका नाश किया उनको मारकर सबका क्रोध दूरहुआ यह शोक मुझको दबाताहै हे अर्जुन क्याहुआ पाप तो पुण्यश्लोकों के द्वारा अथवा पापका प्रायश्चि-त्तादि दान तपकरके और राज्यको त्याग स्मृतियोंके जपकरनेसे नाशहोता है त्यागीलोग फिर पापकभी नहीं करसक्के यह स्मृतिहै त्यागी मनुष्य जन्म मरणसे भी छूटजाताहै अर्थात् मुक्त होजाताहै यह भी श्रुति है कि तब वह योगमार्ग का पानेवाला ब्रह्मको पाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप होजाताहै ऐसा समझकर निर्द्वंद गृहस्थाश्रमको त्याग ध्याननिष्ठ मननशील ब्रह्ममें मिला हुआ मैं तुम सबको पूछकर बनको जाऊंगा और हेशत्रुहंता अर्जुन गृहस्था-श्रम में धर्म्मकुल योग आदि से आत्मदर्शन नहीं होसक्ता यह भी श्रुति है सो हे शत्रुसूदन मुझ गृहस्थाश्रम में फँसेहुये के सन्मुख वह पाप वर्त्तमान है जो मैंने कियाहै उसी पापसे जन्म और मरणका करनेवाला मोह मुझे प्राप्त होनेवाला है इससे मैं सम्पूर्ण राज्य और राजसम्बन्धी सुखों को त्यागकर सब से अलगहो शोक और ममताको दूरकर कहींको अकेला चलाजाऊंगा और तुम इस निर्विघ्न अकंटक राज्य और भूमिको निस्सन्देह भोगो और हेकौरव नन्दन राज्य और भोगों से मेरा प्रयोजन नहीं ऐसे वचन कहकर राजा यु-धिष्ठिर चुपकाहुआ तब छोटा भाई अर्जुनबोला ४४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मेयुधिष्ठिरअर्जुनसम्वादेयुधिष्ठिर
परिवेदनोनामसप्तमोऽध्यायः ७॥

# आठवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर ऐसे बचन कहकर चुपहोगया तब दृढ़ पराक्रमी तेजस्वी युद्धमें हस्त लाघवता आदि अनेक बातों से उग्रस्वरूप इन्द्र से सम्बन्ध रखनेवाला अर्जुन बड़ी नम्रता और सुशीलता पूर्वक पृथ्वी की ओर शिर झुकाकर यह बचन बोला कि हे धर्म्मराज आप नीति में निपुण और अशेष धर्म्मों के जाननेवाले होकर ऐसे क्लीवों के समान बचन कहते हुये शोभित नहीं होते धर्मका पालन करके और क्षात्र धर्म्म से विजय करी हुई भूमिको प्राप्त किया इसमें कौन पाप हुआ जो इसको त्यागके आप ब्राह्मणों के समान बनमें घूमना चाहते हैं यह आपकी बुद्धिकी न्यूनता है जो अपने शत्रुओंके मरने से बिकल होतेहो काल पाकर तो सब संसार नष्टहोता है और जिसका जिसके हाथ घात लिखा है वह अवश्य होगा और होताहै वही हुआ इस में आपको क्यादोष है नाहक आप पश्चात्ताप करते हैं ऐसे प्रबल शत्रुओं से बिजय पाकर खेद करना अत्यन्त अन्याय है इसप्रकार से राज्यपाकर कोई भाग्यशाली त्यागनहीं करता इसराज्य के त्यागने से आपको लोग क्याकहैंगे कि जिस के लिये ऐसे २ कर्म किये उसको त्यागकरना कौन धर्म है और जो राजा कि कुटिल पापात्माहोते हैं वह भिक्षा मांगते फिरते हैं प्रतिदिन जिसके ऐश्वर्य्यकी बृद्धिहोती है वही महा भाग्यमान् कहाता है और सब राजालोग अपने धनराज्यकी ऋद्धिबृद्धि के लिये अहर्निशि नीतिको शोचा करते हैं और दरिद्रताका होना महापाप का मूलहै दरिद्रको आप रौरव नरकका किनारा समझो जैसे कि पापीलोग रात्रिदिन शोच में रहतेहैं इसीप्रकार दरिद्रीकोभी कभी आनन्द नहींमिलता और जो राजाहोकर दरिद्रीहुआ उसकीतोदशा कौन कहसके अपने सुन्दर धनको त्याग दरिद्रीहोना कौनसी नीति है॥

दो० सकैन कलुकरि दारिदी दोऊ दिशा नशात।<br>
होत सधनमति मानको दोऊ दिशि अवदात॥<br>
सधन पुरुष के सधत हैं अर्थ धर्म्म अरु काम।<br>
होत काज धन हीन को ग्रीषम सरसमछाम॥<br>
धन ते धनहै होत अरु धन ते होत सुकर्म्म।<br>
धनते प्रकटत धर्म्म जिमि गिरिते सरिता पर्म्म॥<br>
काम क्रोध अरु हर्ष मद धीरज बड़ो बिचार।<br>
धनते प्रकटत भूप अरु सधत सकलउपचार॥<br>
सो पंडित गुणवान अरु दाता शूर सुजान।

दासबन्धुहित तासु सब जो जग में धनवान ॥
गो हय सेवकबन्धु हित बिनु है जो कृश तौन।
नहिं शरीरकृश तौनकृश धनबिनुकृश सबभौन ॥
मुनिनसंगमहि अजिनधरि दर्भ कमण्डलु पानि।
होनोंभूपहि उचित नहिं राज्यकरो हित मानि ॥

अर्थात् हेराजा आप न्यायसे बिचारकरो कि जैसे देवता और दानवों से युद्धहुआ उससमय देवताओं ने अपने जातवालोंको मारनेके सिवाय कोई और भी बिचार किया देवदानव परस्पर में एकही पुरखेकी संतति होने से सजाती कहलातेहैं और देखो किसी राजाको दूसरे का धन न लेनाचाहिये तो वह धर्म कहांसे करै इस विषयको पंडितलोगोंने वेदोंमेंभी निश्चयकिया तो यही निश्चयहुआ कि राजाको पण्डितहोकर वेदत्रयीपढ़ना औरसबदशा में धनकाहरना और धनसे रीतिके अनुसार यज्ञकरना योग्य है और देवताओंने द्रोहकरकेही स्वर्गआदि स्थानोंको पाया जैसे कि देवताओंने जाति वालोंसे शत्रुता के सिवाय कोई उपाय दूसरा न किया देवतालोगसदैव इसी वेद वाक्य को कहतेहैं और पढ़ातेहैं यज्ञ करते वा कराते हैं वहभी धर्म्म और कल्याण कारी हैं राजा लेताहै और फिर दे देताहै हम राजाओं के किसी धनको भी निंदारहित नहीं देखते हैं इसीप्रकार से सबराजालोग इसपृथ्वी को बिजयकर के यहकहते हैं कि यहहमारी है जैसे कि पिताके धनको पुत्र कहते हैं कि यहहमाराहै वह राजर्षि भी स्वर्ग के योग्य हैं जिनका कि धर्म्म कथन होताहै जैसेकि पूर्णसमुद्र के अम्बुकण चारोंओर को जाते हैं इसी प्रकार राजकुलोंसे भी धन पृथ्वीपर ठहरताहै जैसा कि यहपृथ्वी दिलीपनृग नहुष अम्बरीष मांधाता आदि अनेक राजाओंकीथी वह तुम्हारी होगई यह सर्व दक्षिणावाला धनरूपीयज्ञ तुमको प्राप्तहुआहै जो तुम इसयज्ञको न करोगे तो तुम राजसंबंधी पापभागी होगे जहां का राजा सर्व दक्षिणावाले अश्वमेधको करता है उसके यज्ञान्त के अवभृथनाम स्नानमें सब देवता आकर पवित्रहोते हैं और देखो बिश्वरूप श्रीमहादेव जीने सर्वमेध नाम महायज्ञ में सर्व जीवों समेत अपनेको होमकिया हमने श्रवण कियाहै कि यह जीव धारियोंका दाशरथ× नाम सनातन महामार्ग है सो हेराजा आप कुमार्गीमतहो॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वराजधर्म्मेयुधिष्ठिरप्रतिअर्जुनराजधर्म्मवर्णनअष्टमोऽध्यायः ८ ॥

×एकपशु दो स्त्रीपुरुष यजमान तीनवेद चार ऋत्विज यह दशरथ जिसयज्ञ में चलते हैं उसका नाम दाशरथ है ॥

# नवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे अर्जुन तू एकाग्र चित्तहो एक मुहूर्त्ततक दोनों कानों को हृदय कमल में धारणकर पीछेसे मेरेबचनको सुन तब तू समझेगा मैं संसारी सुखों को त्यागकर साधुओं के चलेहुये मार्गों में चलूंगा और तेरेकहने से कभी उस राज्यको स्वीकार न करूंगा जो तुम मुझसे पूछो कि आनन्दों से भराहुआ एकाकी के चलनेका निर्विघ्न मार्ग कौनसा है अथवा नहीं पूछता है तो भी सुन घरके सुखों को त्याग जहां बड़े २ तपस्वीलोग तपस्या करते हैं उस जंगल में फल मूलों को भोजनकरके मृगों के साथ बिहारकरूंगा समयपर हवन करूंगा दोनों समय स्नानकरके स्वल्पाहारीहो मृगचर्म्म ओढ़ जटा धारण करूंगा और शरदी गरमी बर्षा धूप आदि भूख प्यास के दुःखको सहता अपने देहको सुखाकर बनमें रहनेवाले प्रसन्नचित्त पशु पक्षियों के नानाप्रकार के क्रीड़ित शब्द जो मनको और कानों को आनन्द देनेवाले हैं उनको सदैव सुनूंगा और प्रफुल्लित वृक्षों की और लताओंकी आनंदकारी सुगन्धिको सूंघता और अनेक प्रकार के रूप धारण कियेहुये बन बासियोंको देखूंगा और बानप्रस्थ मनुष्यों का और कुल बासियों के बिपरीत दर्शन न करूंगा तो फिर ग्राम बासियों का क्यों करूंगा एकान्त में निवास करने का अभ्यास करके विचारवान्हो पक्के कच्चे फलों से अपना निर्वाहकर बन के फल बचन और जलों से देवता और पितरों को तृप्त करूंगा ॥

इसप्रकार से बनके शास्त्रों की बड़ी २ उग्र बिधिओं को करता इस देहकी परिणाम दशाको देखूंगा फिर मुनिमुण्ड होकर एक एक वृक्षसे प्रति दिन भिक्षा मांगता देहको पोषण करूंगा फिर शरीर में धूललगा उजड़ेहुये मकान में या वृक्षों की जड़ों में निवास करके सबरोचक वा अरोचक बस्तुओं को त्याग शोच और आनन्दसे रहित स्तुति निन्दा को समानकर इच्छा और ममता को दूरकर गृहस्थाश्रमसे निर्द्वन्दहो आत्माराम प्रसन्न चित्त जड़ अन्ध और बधिरों कीसी दशा में योगसे आत्मा में रमण करनेवाला शुद्ध अन्तष्करणवान् अन्य किसी से विवाद रहितहो सब स्थावर जंगम और चार खानिके सब जीवों में अहिंसावान् अपने स्वधर्म्म में प्रवृत्त होकर इंद्रियों का पोषण करनेवाले जीवोंके समान कभी किसी से हँसतानभृकुटी हिलातासदैव प्रसन्नसुख जितेंद्री होकर किसीसे मार्गको नपूछता चाहेजिस मार्गहोकर अनियतदेशकी ओर अनिच्छावान् पीछे को न देखताकाम क्रोध लोभ से रहित निरभिमानी होकर दैवइच्छा पर चलूंगा और स्वभाव जोहै देहका पूर्वसंस्कार और भोजन वह आपसे आप पैदा होजाते हैं जैसे कि बालक

कोदूध इसलिये भोजन आदिकी चिन्ता न करना चाहै कभी पहले घर में न मिलै अथवा दूसरेमेंभी स्वादु अस्वादु थोड़ाही मिलै उसेही भक्षणकरना बल्कि न मिलनेसेभी तृप्तरहना जिसघर में धुवांनहो रसोई अलगकरदी हो अग्नि प्रज्वलितनहो मनुष्य भोजन करचुकेहों पात्रोंका मांजनाआदिभी होचुकाहो भोजन सबखागये हों ऐसे समय में दोतीन अथवा पांच घर में भिक्षाकरता संसारी प्रीतिकी फांसी को अलग करके इसपृथ्वीपर बिचरूंगा समदर्शी महातपी लाभमें व अलाभमें व जीवन मरणमें न किसीकी अ-स्तुति न निन्दाकरके एकभुजाको ऊंचाकर दूसरीमें चन्दनलगाके उनदोनों भुजाओं के कल्याण और अकल्याणों को न शोचे धनआदि की वृद्धि के लिये जो काम कि जीवधारियोंको करनेके योग्य हैं उनसबको त्यागकर के-वल देहके निर्बाह होनेके योग्यकरे उनकामोंमें भी सदैव चित्त न देकर इ-न्द्रियों की सब क्रियाओं को छोड़कर चित्तके संकल्पको अपने बशमें रखने वाला बुद्धिके दोषोंको दूरकरे सबसंगोंसे छूट मोहसे जुदेहुयेके सदृश किसी के बशीभूत न होगा इसप्रकार से संसारकी प्रीति को त्यागूंगा मैंने अपनी मूर्खता ते बड़ा पाप किया है कोई मूर्ख मनुष्य भी बुरे भले कामों को करके ऐसी स्त्री आदि का पोषण करता है जोकि केवल अपने स्वार्थही के लिये मिलेहुये हैं और अन्तावस्थामें इस अनित्य शरीर को त्यागकर उस पाप का भागीहोताहै क्योंकि वह करनेवालेके कामका फलहै इसप्रकार रथके पहियेके सदृश घूमनेवाले इससंसार चक्रमें इसकामका न करनेवाला संसारके जीवों में मिलजाताहै जन्म मरण वृद्धावस्थाके दुःख और रोगोंसे भरेहुये आत्माके जुदा भ्रांतीसे रस्सी में सर्प के सदृश मिथ्या संसारको त्याग करके सुख को प्राप्तहोताहै स्वर्गसे देवताओं के गिरजाने और महर्षियों को अपने अपने स्थानोंसे नीचाहोनेका कारण अविद्याहै और तत्त्वका जाननेवाला कौनपुरुष स्वर्गके सुखोंको चाहताहै अर्थात् स्वर्गके सुखभी नाशवान्हैं औरअनेक प्रकार केलक्षणोंसे भरेहुये बड़े२राजालोग अनेक प्रकारके कर्म्मोंको करतेहुये तुच्छ वार्त्ताओं के कारण छोटे छोटे राजाओं के हाथसे मारे जाते हैं इसी हेतु से यह ज्ञानरूपी अमृत बहुतकाल पीछे मेरे सन्मुख अर्थात् मुझको प्राप्तहुआ है उसको पाकर मैं उस स्थानको चाहताहूं जोकि अनादि और अव्यय और सदैव एक स्वरूप में रहताहै मैं धैर्य्यवान् और निर्भयहोकर ऐसे निष्कंटक और भयरहित मार्ग में बिचरताहुआ जरारोग आदिसे ग्रसित इस अपने शरीरको त्यागूंगा ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेयुधिष्ठिरज्ञानवर्णनोनामनवमोऽध्यायः ९ ॥

# दशवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर के ऐसे वैराग्ययुक्त बचन सुनके छोटे भाई भीमसेन बोले कि हे राजा आप अर्थ न जानके अपंडित वेदपाठी के सदृश ऐसे बचन कहते हो जिनको बुद्धिमान् कभी न कहैं अगर आपकी ऐसीही बुद्धिथी तो प्रथमही कहते कि हम काहेको शस्त्रों को ग्रहण करते और काहेको यह उत्पात होता और मोक्षके लिये भीखही मांगते रहते इस दारुण युद्धको नहीं करते जो हम जानते कि बिजय करना बुरा होताहै तो छली धूर्त्त अधर्म्मी धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर कौनसा फल प्राप्तकरें जो आप इसराज्य और भूमिका धर्म्म बिचारकर त्याग करते हैं जैसे प्यासा मनुष्य सरके समीप पहुंचकर जल को नहीं पीता और वृक्षपर चढ़के मधुपाकर भयके मारे उसको नहीं पीता और जैसे हजारों कोस चलकर अभीष्ट नगर के समीप जाकर मारे भ्रम और संदेह के प्रवेश न करके फिरजाय और क्षुधितहोके प्राप्त भोजन को दुःख मान कर नहींखाता और जैसे कि कामी पुरुष तरुणी को पाकर बिना भोग किये जाय तैसेही आपकी बुद्धि मालूम होती है कि ऐसे बिजय कियेहुये राज्यको अपनी निर्बुद्धिता से त्याग करते हैं हमको अपनी हारही अच्छी थी विजय लेनेसे कौन प्रयोजन निकला कि ऐसे बिजयरूपी यशको पाकर फिर अयश लेना चाहते हो हे युधिष्ठिर यहां हमहीं निन्दा के योग्यहैं कि आपको अपना बड़ाभाई समझकर अपनी निर्बुद्धिता से आपके पीछे पीछे काम करतेहैं कि भुजों से बली और विद्यायुक्त पराक्रमी बुद्धिमान् होके इस प्रकारके नपुंसक की आज्ञा में चलते हैं जैसे कि निर्बल मनुष्य किसी बलवान्के साथचलै मेरे इन बचनों को ध्यानकरके बिचारो कि हम सामर्थ्यवानों को राज्य प्राप्त करने के लिये उद्योग करना उचित है व अनुचित और शत्रुओं से घिरेहुये और पराजय पानेवाले राजालोग आपत्तिकालमें संन्यास लेतेहैं इसी कारण ज्ञानी लोग क्षत्रियों के संन्यासकी प्रशंसा नहीं करते और सूक्ष्म देखनेवाले धर्म्म के विपरीत मानते हैं अर्थात् स्मृतियों के अनुसार क्षत्रियों का मुंडन निषेध और अयोग्य समझते हैं कदाचित् कहो कि क्षत्रीधर्म्म हिंसासे भराहै इसका उत्तर यहहै कि जो जिस धर्म्म में जिस जीविका में जिस जातिमें जिस घराने में पैदाहोते हैं वह उसी उसी धर्म्म में चलते हैं और कोई अपनी जाति व सनातनी धर्म्म की निन्दा नहीं करता क्योंकि सब क्षत्रियों का अक्षयधन तीनों वेदहैं इसके विपरीत क्षत्रियों का जो झूठा धर्म्म है वह नास्तिकों का बनायाहुआ है उसको धर्म्मज्ञ लोग नहीं मानते हैं शरीर को अनाशवान् जाननेवाले आप सरीखे मनुष्यको मौनहोकर धर्म्म कपट में प्रवृत्तहोकर म-

रना संभव है और पुत्र पौत्र देवऋषि पितृ इनको पालन किये बिना बन में अकेले अपने देहसे सुखपूर्वक जीना भी आपही में घटितहै तात्पर्य्य यहहै कि जब पूर्वोक्त मनुष्यों का पालन न हुआ तो पशुके तुल्यहुये क्योंकि यह मृग शूकर पक्षी जो जंगल में अकेले रहतेहैं वह स्वर्ग को नहीं प्राप्त करसक्ते न कोई दूसरे प्रकारसे वह पुण्यभागी हैं जो कोई राजा संन्यास धर्म्म से सिद्धता को प्राप्त होताहो तो हे राजा पर्वत वृक्ष भी सिद्धीको प्राप्त करनेवालेहैं क्योंकि यहसदैव निरुपाधि संन्यासीहो गृहस्थ धर्म्मसे बाहर ब्रह्मचर्य्य धारण किये रहतेहैं तात्पर्य्य यह है कि पशु पक्षी आदि कोई कर्म्म नहीं करसक्ते हैं अपने पूर्व्व कर्म्म फलको भोगतेहैं और हमलोग कर्म्म करने के अधिकारी हैं इससे बिना कर्म्म किये हमारी मोक्ष नहीं होगी जलके जीव जो अपनेही उदरको भरना जानते हैं वह भी सिद्धिको पाते हैं बिचारकरो कि जैसे यह संसार अपने २ कर्म्मों में प्रवृत्तहै वैसेही हम सबको भी कर्म्महीं करना योग्य है बिना कर्म्म करनेवाले क्षत्री की गति अर्थात् मोक्ष नहीं होती २८॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मेदशमोऽध्यायः १०॥

# गेरहवां अध्याय॥

अर्जुन बोले कि इस स्थान में हम उस प्राचीन कथा को कहते हैं जिस में तपस्वियों से इन्द्रने बर्णन किया है कि डाढ़ी मूछ कटाकर कोई बड़े घराने के निर्बुद्धी ब्राह्मण घरको त्यागकर इस बिचारसे बनको गये कि फिर घरको न आना चाहिये यह धर्म्म है ऐसा मानके वह धनाढ्य ब्राह्मणलोग अपने पिता माता भाई बन्धुओं को त्याग ब्रह्मचारी होकर जंगल में रहनेलगे यह देखकर इन्द्र देवता प्रसन्नहुये और सुवर्ण का पक्षीरूप धारणकर उनसे कहा कि जो यज्ञके शेष अन्नके खानेवाले मनुष्यों ने जो कर्म्म किया वह कठिनहै यह कर्म्म धर्म्म की वृद्धिका हेतु होताहै और इससे जन्म भी सफल होता है और अंतको धर्म्म परायण होकर अपने अभीष्ट को पाके मुख्य गतिको प्राप्त होताहै यह सुनकर वे ब्राह्मण बोले कि हे पक्षी बड़े आश्चर्य्य की बात है कि तुम यज्ञाशियों की अर्थात् यज्ञके शेष भोजन करनेवालों की अर्थात् भीख मांगनेवालों की प्रशंसा करतेहो तो हमको भी सत्य निश्चय होताहै और हमलोग भी भिक्षाशी हैं फिर पक्षी बोला कि मैं तुम सरीखे पापी और उच्छिष्टभोजी रजोगुणी अज्ञानियों की प्रशंसा नहीं करताहूं प्रशंसा के योग्य वे दूसरेही भिक्षा मांगनेवालेहैं जो वृक्षोंके पत्ते तृणफल जो कीड़ोंके उच्छिष्ट होतेहैं उनको शुद्ध करके खाते हैं तब ब्राह्मण बोले कि यह हमारा बड़ा कल्याण है जो तुमने वर्णन किया है पक्षी हम सब वर्त्तमानहैं आप हमारे क-

ल्याणकी बातें कहिये आपके बचनों में हमारी बड़ी श्रद्धा होती है पक्षीरूप इन्द्र बोले कि जो तुम आत्मा से आत्माको जुदा करके द्वैत न मानो तो तुम से यथातथ्य बचन कहूं फिर ब्राह्मण बोले कि हे भाई हम तुम्हारे बचनों को सुनेंगे तुम मोक्ष मार्ग के जाननेवालेहो हे धर्म्मात्मा हम तेरी आज्ञामें वर्त्तमान हैं तुम हमको धर्म्म की शिक्षाकरो पक्षी बोला कि सुनो चार पैरवालों में गौ बड़ी और धातुओं में सुवर्ण और शब्दों में मन्त्र और द्विपदों में ब्राह्मण श्रेष्ठतमहै यह मन्त्र ब्राह्मणही को उचितहै जो जीवनसे मरणकालके श्मशान पर्य्यन्त समयके अनुसार जीवते ब्राह्मण का कहाजाता है इस ब्राह्मणका वेद के अनुसार स्वर्गमार्ग सर्वोत्तम है तात्पर्य्य यह है कि ऐसा न हो तो प्राचीन समयके पुरुषों ने मन्त्रोंसे प्रकट होनेवाले सब कर्म्मोंको मेरेनिमित्त कैसे किया मुख्य बात यह है कि वे कर्म्म स्वर्ग को देते हैं जो कोई मनुष्य निश्चयलाके जिस २ रूपसे ईश्वर की उपासना करताहै उसीप्रकार से इसलोक में सिद्धीको पाता है जैसे कि माघ महीने के शुक्लपक्ष आदि में जो उपासना करते हैं उन को सूर्य्यके द्वारा मोक्षरूपी सिद्धी प्राप्तहोतीहै और श्रावण आदि मासमें करने से चन्द्रमार्ग्ग से सिद्धी होतीहै अर्थात् स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै फिर वह स्वर्ग से गिरकर अपने कर्म्मोंको भोगतेहैं और जो कोई कर्म्मकी निन्दाकरके कुपंथ में चलतेहैं वह अर्थहीन मूढ़ पापके भागीहोतेहैं और देवबंश पितृबंश ब्रह्मबंशों को त्यागकर वे मूढ़ वेद विहीन मार्गको प्राप्त होतेहैं अर्थात् राक्षस रूप होतेहैं मैं तुमको यह बरदान देताहूं कि तुम्हारी सगुण और निर्गुण उपासना सिद्ध हो और गोधन और पुत्रदेताहूं इससे हेऋषियो उसउस मार्गमें नेष्ठायुक्तहोना यही तपस्वियोंका तप कहाजाता है कुछ देह को सुखानाही तप नहींहोता अपने सनातन देवपितृ मार्ग से ही गुरुभक्ति करके ब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै वही निश्चय करके कठिन कहीजाती है इसी कठिन कर्मको करके देवताओं ने बड़े ऐश्वर्य्य को पाया इसी कारणमैं तुमसे कहताहूं और निश्चय जानो कि गृहस्थाश्रम धर्म धारण करना कठिन है यही प्रतिष्ठा पूर्वक कुटुम्ब पोषण करना प्रजाओंका श्रेष्ठ और मुख्यतप है इसीसे ब्राह्मणों ने द्वन्द्व मत्सरता आदि उपाधियों को छोड़ इसीको महातपजाना इसी आश्रममें ब्रह्मचर्य्य धारण कर वेदपाठकरना यही गृहस्थाश्रमका तप कठिन है ऐसी बुद्धिसे प्रातःकाल सायङ्काल के समय को विभाग करके यज्ञ करने से शेषअन्न को कुटुम्बसमेत भोजन करने वाले पुरुष अचल पदवी को पाते हैं इसीकारण देव अतिथि पितृ और अपने स्वजनों को देकर जो शेष अन्न भोजन करतेहैं वही बिघसासी हैं इसी से धर्म्मको आश्रयकर जो ब्राह्मण सुब्रती और सत्य बादी हैं वह लोकमें गुरुकी पदवी पाकर निस्संदेह होजातेहैं अर्थात स्वर्ग में

जाकर बिमत्सर हो इन्द्रलोक में असंख्य बर्षों तक निवास करते हैं अर्जुन बोले कि इसके अनंतर वह ब्राह्मण उसके धर्म्म अर्थसे भरे बचनोंको सुनकर अपने हितकारी जान और यह समझकर कि दूसरेआश्रम में सिद्धी नहींहै बनबास को त्यागकर गृहस्थाश्रममें प्रवृत्तहुये इससे हे सर्वज्ञ युधिष्ठिर तुमभी उसीधैर्य्यको धारण करके इसशत्रु रहिता पृथ्वीको अपनीकरके राज्यकरो॥ २८॥

इतिश्रीमहाभारते शांतिपर्वणिराजधर्मेअर्जुनवाक्यो ऋषिशकुनिसंवाद कथनोनामएकादशोऽध्यायः ११ ॥

# बारहवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि ऐसे अर्जुन के बाक्यसुनकर नकुल बोले कि हे धर्म्मधारियों में उत्तम महाप्राज्ञ बड़ी छाती और प्रलम्बभुज वाले युधिष्ठिर बैशाख यूपनाम क्षेत्रमें सब देवताओंकी वेदियांहैं इससे जानोकि वह देवता भी यज्ञकरतेहैं और अपने कर्म्मोंसे देवभावको पहुंचे हे राजा जो पितृ आस्तिकता से रहित केवल जीव धारियों को बर्षा आदिसे प्राणदान करते हैं वहभी बुद्धिसे कर्महीको करतेहैं और जोलोग वेदके मार्ग को त्यागतेहैं उनको बड़ा नास्तिक जानो वह कभी स्वर्ग को नहीं पाते वेद के जानने वालोंका बचनहै कि यहगृहस्थाश्रम सब आश्रमों से श्रेष्ठहै और उन्हींको वेदपाठी जानो जिन्होंने धर्म से प्राप्तहुये अपने धनको उत्तम २ यज्ञों में खर्चकिया उसीकोजितेन्द्रिय और त्यागी भीजानो हेराजा जो पुरुष गृहस्थके सुखोंको न भोगकर बनमें जाकर देहको त्यागताहै वह तामसी त्यागी कहाताहै हे युधिष्ठिर जो ब्राह्मण संन्यासी हो घरको त्यागवृक्षोंकी जड़ों में निवासकरके किसीसे कोई बस्तु बिना मांगे भिक्षाकेलिये घूमता बिचरता है वह संन्यासी त्यागी है और जो ब्राह्मण कामक्रोध और तृष्णाको दूरकरके वेदोंको पढ़ता है वह त्यागी कहाजाता है ऋषियोंने अपनी बुद्धिरूपी तराजू में एक ओर तीनों आश्रम और दूसरी ओर गृहस्थाश्रम रक्खा तो तीनों गृहस्थसे कम हुये हे राजा जो पुरुष इसपर चलताहै वही त्यागी है और वह पुरुषत्यागी नहीं कहाताहै जो मूर्खोंकी सदृश घरको छोड़ बनकोजाय जो ऐसा धर्मध्वजी मनुष्य वनमें जाकर अभीष्ट बस्तु को चाहताहै उसको धर्मराज मृत्युकी फांसी में बांधता है और अभिमान युक्तकर्म्म करना सफल नहीं होता इससे त्यागयुक्त निरभिमानी होकर करनाही महाफलदायक है और शम, दम, दया, धैर्य्य, शौच, सत्यता, सुहृद भावपने से जो यज्ञधर्म होता है वह ऋषियज्ञ कहाताहै औ पितृदेव अतिथियों को संतोषकरने वाले मनुष्य इसी लोक में प्रशंसा पाकर अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारोंफलों को भोगते हैं हे धर्मात्मा ब्रह्माजीने भी यही शोच बिचारकर जीवोंको उत्पन्न किया है कि यह अनेक

प्रकारके दक्षिणा युक्त यज्ञोंसे मेरा पूजनकरेंगे और पशु वृक्ष औषधियों को भी हव्य बस्तुओं सहित उत्पन्न किया इसीसे वह यज्ञ कर्म्म गृहस्थाश्रमको दृढ़ करता है इसी हेतुसे गृहस्थाश्रम कठिन और दुर्लभहै उसको प्राप्तहो गृहस्थी लोग पशु धान्यधनको पाकर जो यज्ञादिक कर्म्म न करेंगे वह सदैव पापके भागीहोंगे जैसे ऋषिलोग स्वाध्याय अर्थात् वेदपाठ जप यज्ञ करते हैं वैसेही दूसरेलोग ज्ञान यज्ञादिकोंको और अन्यऋषिलोग चित्तही में मानसी पूजनादिसे यज्ञोंको करते हैं हे राजा देवता लोग भी ऐसे ब्राह्मणकी इच्छा करते हैं जो चित्तको एकाग्र करके ब्रह्मरूपको देखताहै इसीसे वह भी ब्रह्मरूपही हैं सो आप इधर उधरसे प्राप्त कियेहुये बिचित्र रत्नोंको यज्ञोंमें खर्च न करके नास्तिकपना करते हो हे राजा गृहस्थाश्रमी होके मैं किसी को राजसूय अश्वमेध और सब यज्ञोंका तर्ककरनेवाला नहीं देखताहूं इससे आप उन ब्राह्मणोंके द्वारा पूजनकरो जो दूसरेयज्ञ ब्राह्मणोंसे पूजितहैं जैसे कि देवताओंके स्वामी इन्द्रने किया जो प्रजाका धन राजाकी भूलसे चोर उठाले जायँ और उसकी रक्षा राजा न करै तो वह राजा कलि कहाताहै और भूषणोंसे अलंकृत घोड़े हाथी दासदासी गौ और देशग्राम छत्र स्थान आदि ब्राह्मणोंको न देकर ईर्षाद्रोह में भरेहुये हमलोग कलियुगके पापी राजा होंगे और हे राजा प्रजाकी रक्षा और ब्राह्मणोंको दान ने देनेवाले प्रजाके पापके भागी होकर अपने कियेको भोगेंगे अर्थात् कभी सुखोंको न भोगेंगे इससे हे स्वामी जो तुम अच्छे २ यज्ञोंसे पूजन और पितरोंको स्वधादानदिये बिना और तीर्थोंमें बिना स्नान किये बनको जाओगे तो ऐसी दशामें आप बायुसे पृथक् टूटेहुये बादलके सदृश नाशको प्राप्त होगे और दोनों लोकों से गिरकर पिशाचयोनिको पाओगे जो बाहर भीतरकी प्रीतिको त्याग घरको छोड़ बनको जाता है वह त्यागी नहीं है हे महाराज ऐसे अयोग्य कर्म ब्राह्मणको करनेमें हानिकारी नहीं हैं जैसे कि इन्द्रने देवताओंकी सेनाको मारा उसीप्रकार युद्धमें वेगसे वृद्धिपानेवाले शत्रुओंको मारकर कौनसा राजा शोचकरताहै सो आप क्षत्री धर्म्म पराक्रमसे पृथ्वीको विजय करके मन्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको दान करके स्वर्ग के भी ऊपर अर्थात् ब्रह्मलोकको जाओगे सो अब तुमको शोच न करना चाहिये ३८॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेद्वादशोऽध्यायः १२॥

## तेरहवां अध्याय॥

यह नकुलके बचन सुनकर सहदेव बोले कि हे युधिष्ठिर बाहर की द्रव्यों को त्यागकर सिद्धिनहीं प्राप्त होती जो मनुष्य अपने शरीर की द्रव्योंको त्या-

गदेता है वही सिद्ध होजाताहै देहकी द्रव्योंको त्याग पृथ्वीपर राज्य करने वालोंको जो धर्म्म और सुख होताहै वैसाही हमारे मित्रोंका भी हो दो अक्षर वालेको मृत्यु और तीन अक्षरवालेको ब्रह्मकी प्राप्ति होती है अर्थात् मेरा कहनेवालोंकी मृत्यु और न मेरा कहनेवालेकी मोक्ष होतीहै और हे राजा इसीसे ब्रह्म और मृत्यु दोनों बुद्धिसे मालूम होते हैं यह दोनों अदृश्य शास्त्र निस्सं- देह जीवोंको लड़ातेहैं हेराजा निश्चयजानो कि इस जीवात्माका नाशनहीं है ऐसी दशामें धर्म युद्ध में जीवों को मारकर हत्या नहीं मालूम होती फिर भी ऐसे नाशवान् शरीरके साथ जीवकी उत्पत्ति और नाश वृथा मानना है इससे इस एकांत पनेको त्यागकर पहिले पुरुषोंने जो पथ प्राप्त किया उसी पथमें चलना योग्यहै अर्थात् स्थावर जंगम सहित इस सम्पूर्ण पृथ्वीको प्राप्त करके जो राजा भोग नहीं करता उसका जीवन निष्फलहै हे राजा वनमें रहनेवाले और फल फूलोंके खानेवाले जिस पुरुषकी ममता द्रव्योंमें होती है वह मृत्युके मुखमें है अर्थात् उसको सदेवता नहीं है तुम जीवोंके भीतर बाहरको देखो जो भीतर की द्रव्य हैं उनको परमात्माकी सत्ता जानो जो पुरुष उस नित्य शुद्ध परमात्माको देखते हैं वह इस महा भयानक संसार से मुक्त होते हैं आप मेरे पिता माता भाई गुरू हो मुझदुःखसे पीड़ावान् के अपराध के क्षमाकरने को योग्यहो हेभरतर्षभ मैंने जो आपके साम्हने सत्य झूठकहा उसको भक्तिसे कहाहुआ जानो १३ ॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मेसहदेव वाक्य वर्णनो नाम त्रयोदशोऽध्यायः १३ ॥

## चौदहवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इस प्रकार नाना शास्त्र और वेदोंके ज्ञाता भाइयोंने ऐसे २ वाक्य कहे तब कुन्तीकेपुत्र धर्म्मस्वरूप युधिष्ठिर फिर चुपहोगये तो बड़ेघराने की पुत्री स्त्रियों में उत्तम बड़े नेत्रवाली श्रीमती द्रौपदीजी गज रूप भाइयोंके मध्यवर्ती गजेन्द्ररूप युधिष्ठिरको सन्मुख करके आनंद चित्तहो बड़ी सावधानीसे बोलीं कि हे राजा यह सब तुम्हारे भाई चातक पक्षी के सदृश मुखको कुम्हलारहेहैं और बराबर पुकार रहेहैं इनको क्यों प्रसन्न नहीं करते तुमको उचितहै कि इन मतवाले हाथियोंके सदृश महा भुजवाले पराक्रमियोंको जो महादुःखपारहे हैं युक्तिपूर्वक वचनोंसे सुखीकरो और हे राजा तुमने पहले द्वैतवनके मध्यमें बातशीत उष्णतासे पीड़ावान् अपने भाइयोंसे यह वचन क्यों कहाथा कि हमयुद्धमें दुर्योधनको मारकर संपूर्ण पदार्थों से भरीहुई इस पृथ्वी को भोगेंगे और युद्ध में बिजयीहो संपूर्णमनोरथों को पूरा

करेंगे सो तुमनेंमहा बलवान् रथी महारथी भाइयों को बिरथ करके बड़े २ हाथियोंको मार घोड़ोंके सवारों समेत रथोंसे पृथ्वी को आच्छादित किया अब नाना प्रकारके दक्षिणा युक्त यज्ञोंसे जो पूजन करोगेतो बनबासमें जो दुःख पाये हैं वह सुखदायी होंगे हे धर्म्मध्वज आपने प्रथम उनसे ऐसा कहाथा अब क्यों उनके चित्तों को उदास करते हो नपुंसकलोग पृथ्वी और धनको नहीं भोगते और न उनके पुत्र उत्पन्नहोतेहैं और क्षत्री दण्डके बिना तेजवान् नहींहोता और दण्डबिना पृथ्वी को नहींभोगसक्ता हे राजा सब जीवोंमें दयाकरना और बेद पढ़ना और तप करना ब्राह्मणका धर्म्महै क्षत्री का नहीं दुराचारियों को दण्ड देना या देशसे निकाल देना सत्पुरुषों का पालन करना युद्धसे न हटना यह क्षत्रियोंका उत्तम धर्म्महै जिसमें क्षमा क्रोध दान और भेज आदि लेना और भयवा निर्भयता और कृपा होती है वही धर्म्मका जानने वाला कहा जाताहै तुमने बेदविहित दानसेयायज्ञसे अथवायाचनाके द्वारा यह पृथ्वी नहीं पाई शत्रुओंकी युद्धकर्त्ता सेना और ऐसे २ युद्धबेत्ता पराक्रमी घोड़े हाथी रथों से भरेहुए प्रभुशक्ति मन्त्रशक्ति उत्साहशक्ति इन तीनों अंगों से युक्त और द्रोणाचार्य्य कर्ण अश्वत्थामा कृपाचार्य्य आदि महाप्रतापियों से रक्षित अपने शत्रुको मारा इससे अवश्य इस पृथ्वी को भोगो हे राजा यह जंबूद्वीप अनेक उत्तम देशों से शोभितहै इसको आपने दण्डसे मर्दन किया और हे महाराज इसीप्रकार सुमेरुपर्वत के पश्चिम की ओर जो क्रौंचद्वीपहै उसको भी आपने उक्त प्रकारसे आधीन किया और हे कुरुनन्दन उसी महा मेरुके पूर्वमें क्रौंच द्वीपके सदृश शाकद्वीप को भी दण्ड से स्वबश किया और शाकद्वीपके तुल्य सुमेरु के उत्तर और भद्राश्व द्वीप को दण्डसे बिजय किया और हे बीर तुमने सागरके पारहोके अनेक देशों से सुशोभित द्वीप और उप द्वीपों को दण्डसे परास्त किया ऐसे अनेक अप्रतिमेय कर्म्म आपने किये और ब्राह्मणों से प्रशंसा पाकर भी आप प्रसन्न नहीं होते सो हे भारत तुम इन अपने भाइयों को देखकर प्रसन्न करो जो बृषभों के सदृशमत्त और गजेंद्रों के समान बली देवताओं के से स्वरूप शत्रुहन्ता महातपी एक २ पृथ्वी के जीतने योग्य हैं यह मेरी राय है कि ऐसे भाइयों को आनन्द दो नहीं तो फिर मेरे यह सब नरोत्तम पति कैसे समर्थ न होंगे जैसे कि देह के पृथक्होने से इन्द्रियां समर्थहीन हों और सब देशकाल की जानने वाली हमारी सासने मुझसे यह बात मिथ्या नहीं कही कि हे पांचाली यह शीघ्र पराक्रमी युधिष्ठिर अनेक राजाओं को मारकर तुम को उत्तम सुख होगा सो हे राजा उस बचन को आपकी अज्ञानता से मैं निष्फल होतासा जानती हूं जिनके बड़े भाई बुद्धिमान् और वह

सब आज्ञाकारी ऐसे चारों पाण्डुनंदन आपके मोहसे और चित्त की भ्रान्ति से दुःखित हैं सोहे राजा आप के भाई जो सावधान चित्त हों तो तुमको नास्तिकों के साथ बांधकर आप पृथ्वी को भोगें इसप्रकार के कर्म्म अज्ञानी करते हैं वह कभी आनन्द को नहीं पाते वह औषधियों से चिकित्सा के योग्यहैं जो उन्मत्तोंके मार्गमें चलतेहैं वह इस लोकमें सबसे स्त्रियोंसेभी निकृष्टहैं मैंभी इसी प्रकार पुत्रोंसे रहित होजाऊंगी जो इन उद्योग करने वालों को त्यागकर जीवना चाहतीहूं मेरा बचन मिथ्या नहीं है तुम सब पृथ्वीको त्यागकर अपनी आपत्ति को बुलातेहो सो हे राजाओं में उत्तम जैसे कि तुम सब राजाओं में शोभित हो वैसेही मान्धाता और राजा अम्बरीष थे इसी प्रकार तुमभीधर्म्म से प्रजाका पोषण करके पृथ्वी देवीका पालन करो और पर्वत बन द्वीप आदिसे शोभित इस पृथ्वी पर राज्य करो हे राजा चित्त से उदासीन मतहो तुम अनेकप्रकार के यज्ञपूजनोंसे परमेश्वरको प्रसन्न करो और युद्ध में शत्रुओं को पराजयकर ब्राह्मणों को वस्त्र धन भोजन इत्यादिभोगोंका दान करो ३६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेद्रौपदीवाक्यकथनोनामचतुर्दशोऽध्यायः १४ ॥

# पंद्रहवां अध्याय ॥

वैशंपायनबोले कि इसप्रकार द्रौपदी के बचन सुनकर बड़ेभाई का बड़ा मानकरके फिर अर्जुनबोले कि दण्ड देनेवाले सब प्रजापर आज्ञा कर्त्ता हैं और दण्डीही रक्षाकर सब सोनेवालों के बीचमें जगता है यह दण्डीके धर्म्म बुद्धिमान् लोग कहतेहैं कि दण्डही से धन धान्य धर्म्म आदि होतेहैं और दण्डसे अर्थ धर्म्म काम मोक्ष चारों पदार्थप्राप्तहोतेहैं इसीसे इसको त्रिवर्गकहतेहैं सो हे बुद्धिमान् इसको लोकब्यवहार मानो और अंतरदृष्टिसे आत्म भावको देखो कि कोई भी पापी राज दण्डके भयसे पाप नहीं करता और कोई यमदण्डके भयसे कोई पर लोकके डरसे पाप नहीं करते और कोई पापी आपसके भयसेभी नहींकरते लोकमें इस प्रकारके ब्यवाहर करने वाले सबजीवदण्डके अधिकारीहैं कोई दण्डक भयसे परस्पर में भोजनभीनहींकरते इससे जो राजा दण्डसे प्रजाकी रक्षा न करेगा वह अन्धतामिश्र नरकको जायगा जैसे कि अजितेन्द्रियपुरुष अन्यउत्तमपुरुषों को दुःख देताहै और दण्डलेने वाला कर्म्म करता होताहै तो उसीकारण से उसको दण्डकहते हैं ब्राह्मणों का बचन दण्ड है क्षत्रियोंका दण्ड मासिक देनाहै बैश्यकादान दण्डहै और शूद्र निर्दण्ड कहाजाता है सो हे राजा लोकमें धनकी रक्षा के लिये अज्ञानताही दण्डनाम मर्य्यादाहै जहां राजा दण्डलिये उद्युक्त रहताहै

वहा की प्रजा अज्ञान नहीं होती इसीसे वहां अच्छेप्रकार से निर्णय होता है ब्रह्मचारी गृहस्थ बानप्रस्थ भिक्षुक यह सब लोगभी दण्डही के भयसे अपने अपने मार्ग में वर्त्तमान रहते हैं भयभीत मनुष्य नतो यज्ञकरसक्ता न दान देनेकी इच्छाकरता नकहीं ठहरकर नियमधर्म्म करसक्ता न क्षत्री दूसरे मनुष्यों के मर्म्मों को छेदकर कठिनकर्म्म करसक्ता केवल एकमत्स्यघाती के समान जीवों को मारकर बड़ीलक्ष्मीको प्राप्तकरताहै इसलोकमें नहींमारनेवाले क्षत्री की नतो कीर्त्ति है न धन है तो प्रजाभीनहीं है इन्द्रने वृत्रासुर के मारनेसेही महेन्द्र पदवीपाई और देखिये जो मारनेवाले देवता हैं उन्हींकी पूजा अधिक लोगकरते हैं रुद्र, इन्द्र, स्वामिकार्तिक, अग्नि, वरुण, यम यह मारनेवाले हैं इसीप्रकार काल, बायु, मृत्यु, कुबेर, सूर्य्य, अष्टवसु, मरुद्गण, विश्वेदेवा यह भी मारने वाले हैं इनके प्रतापोंको जानके सबलोग पूजन करके प्रतिदिन नमस्कार करते हैं और ब्रह्माजी और पूषा देवता आदि को कोई नहीं पूजता और न किसी दशा में नमस्कार करते तात्पर्य्य यह है कि यह उत्पत्ति पालन करनेवाले हैं मनुष्योंमें कोई मनुष्यशांतस्वभाव और जितेन्द्रिय सब कर्मों से शांत देवता को पूजताहोगा इसलोक में हिंसारहित जीव तामें किसी को नहीं देखता बड़े बलवान् थोड़े बलवालों को मारखाकर जीते हैं जैसे नौला चूहों को मारकर खाताहै उसीप्रकार बिलार नौले को खाता है और कुत्ता बिलार को और चित्र व्याघ्र कुत्तेको खाताहै और काल सब को ग्रास करलेता है देखो यह सब स्थावर जंगम जीवों का भोजनहै कर्म्म ईश्वर का बनायाहुआ है उसमें बुद्धिमान् अचेत नहींहोता जैसे उत्पन्न किया है वैसेही भोगना भी योग्य है क्रोध हर्षको त्यागकर निर्बुद्धी बनमें बसते हैं तपस्वीलोग भी वनमें विना धंधा किये अपने प्राणों की रक्षा नहीं करसक्ते पृथ्वी जल फूल आदि वस्तुओं में अनेक जीव होतेहैं उनको कौन नहीं मारता ऐसे २ सूक्ष्म जीव होते हैं जो पलक मारने से मरजाते हैं काम क्रोध से रहित मुनिलोग ग्रामोंसे निकल बनमें जाकर गृहस्थी लोगोंको धर्म्मात्मा कर्म्म करनेवाले दृष्टि पड़ते हैं मनुष्य पृथ्वी को खोदकर अथवा जड़ीबूटी को काटकर औषधी से और पशु पक्षियों के मांससे यज्ञोंको रचते हैं वह स्वर्गको जाते हैं हे युधिष्ठिर दण्डसे मिलीहुई इच्छासे सब जीवों के कर्म्म सिद्धहोतेहैं यह निस्सन्देह बात है जो लोकमें दण्ड न होय तो प्रजा नाश होजाय और निर्बलों को सबल खाजायँ जैसे कि जल में बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है यह सत्य बचन पहले समय में ब्रह्माजी ने कहा है कि दण्डसे प्रजाकी रक्षा करना उत्तम नीति है देखो शांतहुई अग्नियां फिर भयकारी दण्डरूप फूंकने से प्रज्वलित होती हैं जो संसार में दण्ड न हो तो अच्छे बुरेका ज्ञान न हो

जो कुमार्गी नास्तिक लोग वेद की निन्दा करते हैं वह भी दण्डके भयसे मर्य्यादा पालन करने के लिये अत्यन्त समर्थ होते हैं सब लोग दण्ड सेही जीते जाते हैं दण्डसे रहित लोग बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं भयकारी दंड से ही मर्य्यादा पालन होती है ईश्वर ने चारोंवर्ण के आनन्द और नेक नियत होकर अर्थ धर्म की रक्षा के निमित्त पृथ्वीपर दण्ड निर्मित किया जो पक्षी और भेड़िया आदि दुष्ट जीव दण्डसे भयभीत नहीं तो यज्ञ की हव्य कव्यकी सामग्री समेत संसार को खाजायँ जो दण्डका भय न हो तो ब्रह्मचारी वेद को न पढ़ें और सन्तानवाला गौको दुहे न कन्या बिवाहको प्राप्त हो सर्व नाश होकर सम्पूर्ण मर्य्यादा टूटजायँ और दण्डके बिना कोई सम्वत्सर यज्ञों में मंत्रयुक्त कर्म्मभी न करे सब आदमी वेदोक्त आश्रम धर्म को छोड़ दें जो दंड रक्षा न करे और हाथी घोड़े ऊंट खच्चर गधे आदि सवारी या बोझेको न लेचलें नौकर लड़के दास दासी कोई आज्ञाको न मानें और स्त्रियांभी अपने धर्म्म में दृढ़ न रहें अर्थात् सब देव मनुष्य इसलोक परलोक में दण्डही से अपने अपने कर्म्मको सावधानी से करते हैं जहां शत्रुओं का नाशक दण्ड अच्छे प्रकार से जारी होकर घूमता है वहां कोई मिथ्या पाप छल आदि बुराकर्म्म दिखाई नहीं देता जो यह राज्यधर्म्म से वा अधर्म्म से विजय किया इसमें शोक न करना चाहिये राज्य के भोगों को भोगो और यज्ञादिककरो धनवान् अथवा पवित्र बस्त्रालंकार धारणकरनेवाले फल आदि के दानदेने से सुशोभित अनेक प्रकारके उत्तम अन्नादि भोजनों को करके सुखपूर्वक धर्म्म को करते हैं सब कर्म्मों का प्रारम्भ धन के आधीन है और वह धन दण्डके स्वाधीन है कोई अत्यन्त न तो गुणवान् है न निर्गुण दोनों सब कर्म्मोंमें अच्छे और बड़ेदृष्टिमें आते हैं देखिये पशुओं के वृषणोंको काटकर फिर उनके मस्तकोंको तोड़ते हैं फिरवहबड़ेबोझोंको लेचलते हैं और पीठेभी जातेहैं ऐसेअनेकबिषयों से लोकभराहुआहै इससे हे धर्म्मतुम अपने धर्म्मका आचरणकरो शत्रुओंको निकालो और मित्रोंका पालनकरो हे शत्रुओं के मारनेवाले तुमको कोई दुःख मतहो और हे भाई कर्त्ताको उसके मारने में कोई पापनहीं होता जोसन्मुख शस्त्र लिये घातकी इच्छा करके आवे और मारने वाला भ्रूणहत्या से भी बचता है सबभूतों में अन्तरात्मा अवध्य है जब कि आत्मा अवध्य अर्थात् कभी नहीं मरता तो बधकरने में क्या दोषहै जैसे कि मनुष्य दूसरे नवीन स्थानमें प्रवेशकरताहै वैसेही जीवात्माभी कर्माधीन नवीन देहको पाताहै अर्थात् पुराने देहको त्यागनवीन शरीरमें जाताहै यह तत्त्ववेत्ता कहते हैं ५८॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेअर्जुनवाक्यंनामपंचदशोऽध्यायः १५॥

# सोलहवां अध्याय॥

वैशम्पायनजी बोले कि ऐसे बचन जब अर्जुन ने कहे तब अतिअमर्षी भीमसेन धैर्य्यतासे अपने बड़े भाई से बोले कि हेराजा तुम धर्म्म के जानने वाले हो ऐसी कोई बात नहीं जिसको आप न जानतेहो आपको हम शिक्षानहीं देसक्ते हमारे मनमें यही रहताहै कि न कहूं न बोलूं परन्तु दुःख से बोले बिन रहा नहींजाता इसको आपसमझिये आपके बड़े मोहसे सबको संदेहहोताहै और बिकल होकर निर्बलताहोती है सब शास्त्रों के ज्ञाताहोकर लोकों के राजा कैसे होतेहैं ऐसी दशामें राज्यके बिषयमें एकयुक्तिको कहूंगा तुम चित्त से सुनो दो प्रकारकी व्याधिहोती हैं एक दैहिक दूसरी मानसिक उनदोनों की उत्पत्ति परस्परमें होती है अर्थात जो पुरुष निर्द्वन्दहै वह देह और मनको आत्मासे जुदामानता है वह उन व्याधियों से बचारहता है देहके रोगसे मनके रोग उत्पन्न होते हैं और यह भी निश्चय है कि मन के रोगोंसे भी देह में व्याधि उत्पन्न होती है और जो आदमी देह और मन के गतदुःखोंको शोचताहै वह दुःखसे दुःखको पाताहै और दोनों दुःखअनर्थक हैं शरीर से तीन प्रकारके गुण होते हैं अर्थात् शीतता उष्णता और बायुत्त्व और तीनों गुणों की जो ऐक्यता है उसी को स्वस्थता कहते हैं अर्थात् बात पित्त कफ यह तीनों देह से उत्पन्न होनेवाले गुण हैं उन तीनों की जो समता है वही नीरोगताका लक्षण है उन्हों में जब एक अधिक होता है तब चिकित्साकरी जाती है गरम औषधि से शीत दूरहोते हैं और शीत औषधिसे गरमी जाती है और सत्त्व, रज, तम यह तीनों गुण मानसी हैं उन तीनोंकी जो साम्यावस्थाहै उसी को स्वस्थता कहतेहैं उनमें भी एककी आधिक्यता होने में उपाय कियाजाता है जैसे कि शोककी शांति प्रसन्नतासे और प्रसन्न शोक से जाती रहती है कोई भी अज्ञानी सुख में वर्त्तमान होकर व्यतीत दुःख को स्मरण करना चाहता है अर्थात् शोक से आनन्द को पीड़ित करता है यह दोनों देहादि के अभिमान से सम्बन्ध रखतेहैं परन्तु तुम तीनों काल में मन देह के दुःख सुखों से पृथक् हो इसकारण उन दोनोंको भूलकर सुख दुख के समय और दुःख सुख के समय स्मरण करने के योग्य नहीं हैं कौरव जो तुम याद करना चाहते हो तो कैतौ यह आपका स्वभाव है या दैवकी प्रबलता है जिससे कि दुखी होतेहो आप सब पाण्डवों के देखते हुए एकवस्त्रा रजस्वला द्रौपदी को देखकर उसकी क्यों नहीं याद करते नगर से निकाल देना और मृगचर्म्मों का धारण करना और बड़े बड़े बनों में रहना आप क्यों नहीं याद करते जटासुर से दुःखपाना और चित्रसेनसे युद्धकरना औरराजा

जयद्रथ से कष्टपाने की यादको कैसे भूलगये हो फिर गुप्तबास में कीचक से राजपुत्री द्रौपदी को जो दुख हुए उनकाभी बिस्मरण होगया है शत्रु नाशन जो तुम्हारे युद्ध द्रोणाचार्य्य और भीष्मजी के साथ हुए वह सब घोर आन्तरीय शत्रुता से हुए जिस युद्ध में दोनों हाथों में बाण और भाइयों से प्रयोजन नहीं केवल अकेले चित्त के साथ लड़ना है वह आपका युद्ध सन्मुख बर्त्तमान है इस युद्ध में बिजय न पाकर जो आप प्राणों को त्यागोगे तो दूसरी देहमें आकर उनके साथभी युद्ध करोगे तात्पर्य्य यह है कि उस बासना रूप चित्तके न जीतनेपर दूसरे जन्ममेंभी पहले संस्कारसे आपको वह युद्ध प्राप्त होगा इससे हे भरतर्षभ अबभी अपने कर्म्म से इस अपवित्र देहको त्यागकर जो चित्त का बिरोधी एकाकी भाव होनेके लायक है इसकारण चित्त के जीतने के लिये युद्धकरो उस चित्तके जीतनेपर उस दशा को प्राप्तहोगे कि चित्त से आत्मा पृथक् है इस स्वरूप की बुद्धिको और जीवोंकी उत्पत्ति और प्रीति को आत्मारूप चित्त से उत्पन्न होनेवाली बिचारके उसको त्यागकर पूरे त्यागी हो बाप दादों की रीतिपर संसार में जैसा कि उचित है वैसा राज्य कर और पापात्मा दुर्योधन अपने साथियों समेत दैवइच्छासे युद्ध में मारागया और प्रारब्धहीसे तुमने द्रौपदीके शिरकेबाल पकड़नेका बदला पाया हे राजा बुद्धिके अनुसार तुम दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञकरके ईश्वरका पूजनकरो और हम सबलोग और महाप्रतापी बासुदेवजी आप के आज्ञाकारी हैं २९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषोड़शोऽध्यायः १६ ॥

## सत्रहवां अध्याय ॥

राजायुधिष्ठिर बोले कि बातोंसे त्यागनहींहोता किन्तु चित्तकेरोकने से होता है और वह चित्तकी रुकावट संतोष पूर्वक चित्तकी एकाग्रता नम्रता बैराग्य शान्ति धैर्य्य रूपान्तरहोना निरहंकारहोने से होती है और राज्य असन्तोषी मनुष्य के करने योग्य होता है इसकारण राज्य के चाहनेवाले तुम छोटे होकर हमसे पण्डिताई मत छांटो और राज्य को त्यागकर संतोषीहो इसबात को सिद्ध करते हुए युधिष्ठिर बोले कि असंतोषता प्रमादता मत्तता रागता अशान्तता बलवत्ता मोहता और सबप्रकारसे ब्यग्रचित्तता आदि अनेक प्रकारके पापों से भरे हुए तुम राज्यको चाहतेहो जो अकेला राजा इससंपूर्ण पृथ्वी पर राज्यकरे तो निश्चय है कि उसका भी एकही पेटहै तुम उसकी क्या प्रशंसा करतेहो मास दिन आदिमें असंपूर्णहोनेके योग्य चित्त की इच्छाका पूरण करना उमर भरमें भी नहीं होसक्ता क्योंकि प्रतिदिन लाभ होने में भी इच्छाबढ़तीही जाती है ज्ञानी लोगभी अपने पेटकेही लिये बहुत

भक्षवाले अमृत यज्ञको करतेहैं पहले पेटको जीतो फिर परलोकके जीतने से पृथ्वी भी जीतीजाती है वही बिजय तुमको भी हुईहै तुम नरलोकके भोग और ऐश्वर्य्योंकी प्रशंसा करतेहो भोग न करनेवाले और तपसे देहकोदुर्बल करनेवाले उत्तम स्थानको पाते हैं निष्फल राज्यका मिलना और फलकी रक्षा यह दोनों धर्म्म और अधर्म्मरूप तुममें बर्त्तमानहै इससे बड़े बोझे से खाली होकर त्यागकेभी रक्षा करनेवालेहो देखो व्याघ्र एकपेटके लिये शिकार करताहै उससे औरभी निर्बुद्धी मृगलोभमें बंधकर जीविका करतेहैं जो राजा बाहरकी बिषय बासनाको अपने बशीभूत करके संन्यास धारण करतेहैं वह चित्तसे प्रसन्न नहीं होते यह बुद्धिकीविपरीतता जानों पत्तों के भोजन वा पाषाण पर कूटकर खानेवाले और इसीप्रकार दांतोंको ऊखल बनानेवाले जलका भोजन करनेवाले और बायु भक्षणवाले जो ऋषिलोगहैं वह इस नरकसे उद्धार होतेहैं जो राजा इस संपूर्ण पृथ्वीपर राज्यकरे उससे वह संन्यासी अच्छा है जिसकी बुद्धिमें पत्थर और सुवर्ण समान है पहले कहे हुए संस्कार और संकल्पोंका प्रारंभ कर्म्म न करनेवाला ममताको छोड़ निराश हो इसलोक परलोकदोनोंमें ऐसे अशोकस्थानको पाताहै जिसका नाश नहीं राज्यके त्याग करनेवाले शोचनहीं करतेहैं तुम राज्यको क्या शोचतेहो जब सब राज्यको त्यागदोगे तब मिथ्याबादसे रहितहोगे पितृयान या देव यान यही दोमार्ग प्रसिद्धहैं यज्ञ करनेवाले तो पितृयानसे और मोक्ष चाहने वाले देवयानसे अपने २ मार्गको जातेहैं और वह महर्षी जो तप और ब्रह्मचर्य्य और वेदके पाठसे देहोंको त्यागकर तत्त्वोंको प्राप्तहोते हैं वही जीवनमुक्तहैं इस लोकमें आमिषही बन्धनहै तो उसी आमिष अर्थात् मांसादिकों को कर्म्ममें हवन करके उन पापों से छूटकर उत्तम पदको प्राप्त होतेहैं और जो लोग निर्द्वन्द मोक्षके जाननेवालेहैं वह इस पुरानी कथाओंको कल्पना कहते हैं महासुंदर शोभायमान मिथलापुरी में मेरा असंख्य धनहै उसकी मुझको कुछभी ममता नहीं है ज्ञानके रथपर चढ़कर शोचनेके अयोग्य स्वर्गवासी मनुष्योंको शोचनेवाला निर्बुद्धी नहीं मालूमहोता अर्थात वह उनकी दुखिया स्त्रियों आदिको नहीं शोचताहै जैसे कि पहाड़पर बैठा मनुष्य पृथ्वीपरबैठेहुये मनुष्यको देखे जो पुरुष देखनेके योग्य बातों को देखताहै वही बुद्धिमान् और नेत्र रखनेवालाहै इसकारण कि ज्ञात अज्ञात और करने वा अकरने के योग्य बातोंके जतलानेको बुद्धि कहतेहैं और ब्रह्मभावको जाननेवाला शुद्ध अन्तष्करण जो पुरुषहै वह विद्यावानोंके वचनोंको अच्छे प्रकारसे जानता है अर्थात् उनके बचनोंके आशयको समझताहै वही बड़ी प्रतिष्ठा पाताहै अब तत्वज्ञानका वर्णन करतेहैं कि जिससमय आकाशादि पंच महाभूतोंके अनेक

भेदों को एक आत्मामें देखताहै और उसी आत्मासे उनकी उत्पत्तियोंको भी देखताहै तब तत्त्वकी प्राप्ति होती है जो मनुष्य अज्ञानी निर्बुद्धी और तपस्या से रहितहै वह तत्त्वदर्शियों की गतिको नहीं पाते ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेसप्तदशोध्यायः १७ ॥

# अठारहवां अध्याय ॥

इतना कहकर राजा फिर चुपका होगया तब भाईके बचनों से महाशोक युक्तहो फिर अर्जुन बोले कि हे राजा इस बिषयमें हम एक पूर्व्व बृत्तांत कहते हैं कि जिसमें राजा जनक और उनकीस्त्री का सम्बादहै कि किसीसमय राजा जनकने भिक्षा के निमित्त राज्य त्याग करने की इच्छाकी कि धन पुत्र स्त्री और अनेक प्रकार के रत्नों को और यज्ञादिक करने से शुद्ध सनातन मार्गों को त्याग मूर्खतामें पड़ कमंडल हाथमें ले मुट्ठी२ अन्नमांगते उदासीन वृत्ति हो विचरेंगे यह राजाका दृढ़बिचारजान उसकी पतिव्रता स्त्रीने क्रोधित होकर कहा कि आपको यह क्या मूर्खता आईहै कि ऐसे धनधान्य युक्त अपने उत्तम राज्य को त्यागकर खप्पर हाथ में धारण करके घर२ भीखमांगोगे यह एक२ मुट्ठी जौका मांगना तुमको योग्य नहीं हे राजा यह तुम्हारी प्रतिज्ञा मिथ्याहै कि तुम ऐसे बड़े राज्य को त्यागकर थोड़े सामान कमंडल आदि से तृप्तहोतेहो हे स्वामी इस थोड़ेसे सामान और मुट्ठी २ अन्नसे तुम देव ऋषि पितृआदिकोतृप्त नहीं करसक्ते इससे यह आपका परिश्रम निष्फल है हे राजा तुम देव ऋषि अतिथि और पितरोंको त्यागकर निष्कर्म्म संन्यासी होते हो जो तुम तीनों वेदों के पढ़ने से प्रतिष्ठित और हजारों ब्राह्मण और संसार का पोषण करनेवाले होकर शोभायमान थे सो तुम उन ब्राह्मण आदिके द्वारा अपना पेटभरनाचाहतेहो अत्यन्त प्रकाशवान् लक्ष्मीको छोड़कर कुत्तेके सदृश दीखतेहो अब आपकी माता पुत्रसे रहितहै और तुम्हारे कारण मैं भी पति रहितहूं जो बड़े २ धनी भाग्यमान क्षत्री राजा हजारों आपकी सेवाकरते हैं हे राजा लोकके बिगड़ने और देह ईश्वर के आधीन होनेसे तुम उन राजाओंको निष्फल करके किसलोक में जाओगे तुम पापकर्म्मी का यह लोक परलोक दोनों नहीं है जो तुम धर्म्म से प्राप्त हुई स्त्रियोंको त्यागकर जीते रहना चाहते हो गन्धमाल और आभूषण और नानाप्रकारके वस्त्रों को भी त्यागकर बिनाकर्म्म तुम कैसे त्यागी होतेहो और सब जीवों के पोषक रक्षक होकर और पक्षियोंके निमित्त फलवान् बृक्ष होकर दूसरोंकी सेवाकिया चाहते हो बहुतसे मांसभक्षी और कीड़े निरपराधी हाथी को भी खाते हैं फिर सब पुरुषार्थ से रहित तुमको क्यों नहीं खायँगे जो इस कुंडल को तोड़ आपके

वस्त्रों को भी छीनले तो ऐसी दशामें आपका चित्तकैसाहोगा जो तुम इन सबको त्यागकर एकमुट्ठी भुनेहुये जौ का धारण करनेवाले हुये जब उसमुट्ठी जौ के सदृश सब संसार है तो फिर तुमकैसे निश्चय करतेहो जो यहांएक मुट्ठी जौ से प्रयोजनहै तब आपकी प्रतिज्ञा अत्यन्त नाश को प्राप्त होगी तो त्यागी नहीं होसक्के मैं कौनहूं और तुममेरे कौनहो और मुझपर तुम्हारी क्या कृपा है हे राजा इस पृथ्वीपर राज्य करके महल पलंग सवारी बस्त्र आभूषणोंको भोगो इसी में तुम्हारा कल्याण है ऋग यजु सामवेदरूपी यज्ञ लक्ष्मी से रहित निर्धन अमित्रवान परमसुख चाहनेवाले संन्यासियों को कुंडल धारण किये हुये देखकर राजाभी उसीप्रकार धारण करता है वह राज्य को क्या त्याग करता है अर्थात् त्यागकरना कठिन है आप उनदोनों मनुष्यों का अन्तरदेखो जो बहुतदेता या बहुत लेताहै और उनदोनोंमें कौनसा श्रेष्ठहै पाखंडसे भरेहुये याचक मनुष्यों को दक्षिणाका देना ऐसाहै जैसा कि निर्बुद्धितासे दावानल अग्नि में हवन करना हे राजा जैसे कि अग्निभस्म करके शांतहोजाती है उसीप्रकार याचनाकरनेवाला ब्राह्मण भी शांतिको प्राप्त होताहै इसलोकमें संन्यासियों को भोजन देना मानों जीविकाहै जो राजा होके दान करनेवाला न होय तो मोक्षचाहनेवाले कहां से होयँ इस संसार में कुटुम्बी लोग अन्नसे जीवते हैं उसी से संन्यासी भी जीवते हैं अन्न से प्राण बना रहताहै अन्नका दाता प्राणका दाता जानो जितेन्द्रीपुरुष कुटुम्बी लोगों से जुदेभीहोकर कुटुम्बवालों के हो ऐश्वर्य से प्रतिष्ठापाते रहते हैं त्यागनेसे और मूर्खतापूर्वकयाचनाके करनेवाले संन्यासीसे वह पुरुषउत्तमहै जो अपने शुद्धभावसे धनआदिको त्यागताहै हे राजा जो निस्संगहो बन्धनको त्यागशत्रुमित्र में समान बुद्धि और दृश्यपदार्थों से चित्तको नलगाकर बैराग्यवान्हे वही मुक्तहै और शिरमुड़ाकर गेरुये बस्त्रपहिन बहुतसे जंजालों में फँसेहुये धनके खोजने में फिरते हैं जो अल्पबुद्धी वेदके सनातन मार्गको और अपने स्त्री पुत्रादिकों को त्याग करजाते हैं वहकभी मुक्तिनहीं पाते हे महाराजजितेन्द्रियपुरुष मूंड़मुड़ाये गेरुआ कपड़े जटाधारी मृगचर्म ओढ़नेवाले धनकांक्षी साधुओं से उत्तमहैं जो मनुष्य प्रतिदिन अपने प्रथमगुरू के निमित्त अग्निहोत्रोंकी दक्षिणाको देताहै और बड़े २ यज्ञोंको भी करता है उससे अधिक धर्मात्मा कौनहै अर्जुन बोले कि इसलोक में राजा जनक बड़ा तत्त्ववेत्ता प्रसिद्ध है वहभी अज्ञानके वशीभूतहुआ इस से आप भी मोहमें मतफँसो और धर्ममें प्रवृत्तहो सदैव दान तपमें तत्पर दया आदि गुणों से सम्पन्न काम क्रोध से वर्जित प्रजापालनरूपी महादान में स्थित अपने गुरू वृद्ध इष्टमित्र और याचकों को संतुष्टकर अपनी बुद्धि के अनुसार

देवता अतिथि और अनेक जीवों को यजन पूजन भोजन आदि से प्रसन्न करके वेदके अनुसार उत्तम ब्राह्मणोंका सत्कारकर सत्यवक्ताहो हमसब समेत आप उत्तमपदको पावोगे ४० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेअष्टादशोऽध्यायः १८ ॥

# उन्नीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भाई मैं वेदांत शास्त्र और अन्य शास्त्र को जानकर यहभी जानताहूं कि क्या त्यागना और क्यानहीं त्यागना चाहिये और उनशास्त्रोंको भी जानताहूं जोधरानोंसे सम्बन्ध रखतेहैं और मन्त्रोंमेंभी मुझे बुद्धिके अनुसार निश्चयहै परन्तु तुमलोग केवल अस्त्र विद्याओं के जाननेवाले और वीरोंके व्रतसे भरेहुये हो इससे किसी दशामेंभी शास्त्रके यथार्थ आशय के जानने को समर्थ नहींहो और जो शास्त्रके सूक्ष्म आशयों का देखनेवालाहै और धर्मके निश्चय करनेमें पंडित है वहभी ऐसानहीं कहसक्ता और तुमने भाईकी सुहृदता में प्राप्त होकर बचनों को कहा इससे हे अर्जुन मैं तुमसे प्रसन्नहूं युद्धधर्ममें और क्रियाओंकी चतुरता में तीनों लोकों में कोई भी तेरेसमान नहीं है धर्म्म बड़ा सूक्ष्म है उसमें वार्त्तालाप करना तुमको बड़ा कठिनहै इससे हे बीर सन्देह करनेकेयोग्य तेरी बुद्धि नहीं है तुमतो केवल जनककेही शास्त्रको जानतेहो तुमने बृद्ध पुरुषों का संग नहीं किया इससे तुमने उन तत्त्वदर्शियों के निश्चय भावको नहींजाना बुद्धिमान् लोग निश्चय पूर्वक कहतेहैं कि तपस्या का त्यागकरना बुद्धिकी विपरीतता है और जो तुम कहतेहो कि धन से उत्तम तपनहीं है इसविषयमें मैं तुमसे वर्णन करूंगा जैसे कि यह उत्तमहै कि धर्म्मवान् पुरुष तप वेद को पठन पाठन और जपआदि के अभ्यास करनेवाले देखने में आते हैं ऐसे ऋषिलोगभी तपस्याही में प्रवृत्त रहतेहैं जिनके सनातन लोकहैं इसीप्रकारके अन्य बनबासी भी जो सब संसार से मित्रभाव करनेवाले वेदपाठ और जप तपके करने से स्वर्गको गये उत्तम पुरुष बिषयों को त्याग अज्ञान रूपी अन्धकार से पारहोकर उत्तम मार्ग से कर्म्मत्यागियों के लोकों को गये और जो दक्षिण मार्ग हैं जिनको कि प्रकाशवान् कहतेहैं वह कर्म्मवालोंके लोक हैं जो इन मार्गों से जातेहैं वह जन्म मरण के फंदेसे नहींछूटते वहमोक्ष वर्णननहींकीजातीहै जिसको कि मोक्षमार्ग में चलनेवाले देखते हैं इसकारण उसके प्राप्तहोने के लिये योगाभ्यास करना उत्तम है परन्तु जानना उसका महाकठिन है पंडित लोग भी शास्त्रों में सारासार बिचारतेहुये उसकेसत्यासत्य जानने में भूलेहुये हैं उन्हों ने वेदके बचनों को और वेदांत शास्त्रों को उल्लंघन करके केले के

खम्भेको चीरकर सारवस्तुको नहीं देखा और अब दूसरेकी मतिको त्यागकर-
के सिद्धान्त कहते हैं कि वह आत्मा मन बुद्धिवाणी से परेनेत्रों से अदृश्य
कर्म्म साक्षी प्रकाशवान्हो प्राणियों में वर्त्तमानहै चित्तको आत्मा की ओर
लगाकर इच्छा और लोभको वशीभूत करके और नित्य कर्म्मों को त्यागके
अहंकार रहित होजाता है हे अर्जुन इस सूक्ष्म बुद्धिसे प्राप्तहोने के योग्य
सत्पुरुषों से सेवित मार्ग में तुम किसप्रकार से अनर्थ नाम अर्थकी प्रशंसा
करतेहो हे अर्जुन कर्मकाण्ड के जाननेवाले दान यज्ञ कर्म्म और क्रियाओं
के व्रत रखनेवाले मनुष्यभी इसीप्रकार देखते हैं तो फिर ज्ञानीलोग क्यों न
देखेंगे कारणों के जाननेवाले पण्डित लोग सिद्धांत बातों को कष्टसे भी
नहीं समझासक्के कारण यहहै कि वह पहिले जन्म के दृढ़ संस्कारको रखने
वाले ऐसा नहीं कहनेवाले हैं और मिथ्याको निर्मूल करनेके लिये सभाओं
में शास्त्रार्थ के करने में अति प्रगल्भ बुद्धि रखनेवाले और अनेक शास्त्रों के
वेत्तालोग सम्पूर्ण पृथ्वीपर घूमते हैं इसप्रकार शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता ज्ञानी
और महापुरुष भी सुनेगये उनको हम नहीं जानते तो दूसरा कौन उनको
जानसक्का है हे अर्जुन तपसेही वैराग्यको पाता है और बुद्धिसे परब्रह्मको
भी जानता है इसप्रकार के तत्त्वका जाननेवाला त्यागही से सदैव आनन्द
को पाता है ॥ २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेयुधिष्ठिरवाक्येएकोन-
विंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## बीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इस बचन के कहने के समय सामयिक वक्ता देव
स्थान नाम महा तपस्वी ऋषिने बड़ी युक्तिके सहित युधिष्ठिर से यह वचन
कहा कि हे युधिष्ठिर अर्जुन ने जो कहा कि तप धन से बड़ा नहीं है इस वि-
षय में तुझ से मैं कहताहूं तू एकाग्र चित्त होकर सुन हे अजातशत्रु युधिष्ठिर
तुमने धर्म से सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय किया उस जीतीहुई को अयोग्य रीति
पर त्यागदेना उचित नहीं क्योंकि चारों आश्रमों से सम्बन्ध रखनेवाली श्रेणी
ब्रह्महीं में नियत है इससे हे महाबाहु युधिष्ठिर तुमभी उसको बुद्धिकी परम्परा
से विजय करो अर्थात् बड़ी दक्षिणावाले महायज्ञों से पूजनकरो वेदका पठन
पाठन ये रूप यज्ञ तो ऋषियों का और ज्ञानरूपी यज्ञ औरोंका अर्थात् ब्रह्म-
चारी और संन्यासी का और कर्म्मनिष्ठा गृहस्थियों का और तपोनिष्ठ होना
बानप्रस्थों का जानो हे राजा इसीप्रकार बैखानस नाम ऋषियों का सुना
जाता है जो पुरुष धनके लिये इच्छाको करे उसकी इच्छा न करनाही उत्तम

है और जो उस धर्म्म को कोई क्षत्री करे वह बड़ा दोषी होता है और यज्ञही के कारण धन संचय करते हैं जो देहको या उसी के समान धनको अयोग्य कर्म्म में खोताहै और योग्य कर्म्म में नहीं लगाता है वह आत्मा से शत्रुता करनेवाली भ्रूणहत्याको नहीं जानता है योग्यायोग्य कर्मोंका ज्ञान न होने से शुद्ध धर्म्म भी कठिनता से होताहै ईश्वर ने यज्ञ करनेके लिये धनुषधारियों को उत्पन्न किया इससे यज्ञके निमित्त आज्ञापायाहुआ मनुष्य उस यज्ञ का रक्षक है इस कारण सब धन यज्ञही में खर्च करनेके योग्य है उसीसे चित्त की इच्छा भी पूर्ण होती है बड़े तेजस्वी देवेश इन्द्रने निरीच्छा होकर ईश्वरार्पण यज्ञकेही द्वारा सब देवताओं को अपना आज्ञाकारी किया और उसी यज्ञके कारण वह अमरावती पुरीको पाकर अबतक शोभायमानहै इससे निश्चय करके यज्ञमेंही सब धन खर्चना उचितहै और महादेवजी भी सर्वयज्ञमें अपनी आत्माको हवन करके सब देवताओं के देवताहुये और महा तेजस्वीहो अपने तेजको इस ब्रह्मांड के सब लोकों में व्याप्त करके अपनी सुन्दर कीर्त्तिसे पूर्ण कर दिगम्बर रूप धारण किये बिराजमानहैं और एक आविक्षत मरुतहुआहै जिसने देवराज इन्द्रको बिजय किया उसके यज्ञ में आप श्रीलक्ष्मीजी ने आकर दर्शन दिया उस यज्ञ में सब सुवर्णकेही पात्र थे और हरिश्चन्द्र राजाको भी सुनाहोगा कि उसने भी बड़े २ यज्ञों से पूजन किया और इन्द्रको भी विजय किया इसी से सब धनको यज्ञही में लगाना चाहिये ॥ १४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

# इक्कीसवां अध्याय ॥

देवस्थान ऋषि बोले कि हम इसस्थान में एक प्राचीन इतिहासको कहते हैं जिसको समय पर पूछने से वृहस्पति जीने इन्द्रसे कहा कि निश्चयकरके संतोष करनाही बड़ा स्वर्गहै संतोषी को महासुखहोताहै जब वह संतोषी इसप्रकार अपनी इच्छाको आत्मामें छिपाता है जैसे कि कछुआ अपने अंगों को तब थोड़ेही काल में ज्योतिरूप आत्मा अपनी आत्मामेंही प्रसन्न होता है तब यह भय नहीं करता और न इससे दूसरेको भयहोता है और किसी बातकी इच्छानहींकरता तब ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै हेराजाइस प्रकार अधिकारीजीव जिस समय जिस२ रीतिसे जिस २ कर्म्मको करता है उस २ कर्म्मको अपने अनुभवसे देखता है इसकारण तुमभी ज्ञाताहो लिये तू प्रजा के पालनसे निर्भयता प्राप्तकरो कोई शस्त्रको कोई उद्योग को लोग भी इन को अच्छा कहते हैं और कोई २ दोनों कोही श्रेष्ठ समझते हैं हैं उन्हों ने कोई यज्ञकी कोईसंन्यासकी कोई दानकी प्रशंसाकरते हैं और कोई

दानलेने को भी अच्छा कहतेहैं कोई सब त्यागकर मौन हो बैठतेहैं और कितनेही राज्य और प्रजा पालनको श्रेष्ठ बतलातेहैं और कोई मारकर भेदकर बिदीर्ण कर एकान्त बासकरते हैं इनसब बातोंको देखकर कहताहूं कि निश्चय अपने कर्म्म में प्रवृत्तहो अब सिद्धान्त बात कहताहूं कि जीवोंमें जो शत्रुता न करने से धर्म्म होताहै वह सत्पुरुषोंका स्वीकृतहै जैसे कि द्रोह न करना सत्यबोलना बिभागकरने में दया पाखंड न करना भयभीतनहोना अपनी स्त्रियों में सन्ततिउत्पन्नकरना नम्रता लज्जा स्थिर स्वभाव इसप्रकारसे उत्तम धर्मों में प्रवृत्तरहना स्वायम्भुवमनुने कहाहै इससे हे कौन्तेय बड़ी युक्तिसे इस धर्म को पालनकरो यज्ञके शेष अमृत अन्न का खानेवाला और शास्त्रके अर्थ को यथार्थ जाननेवाला अपराधियों को दण्ड देनेवाला साधुओं की पालना में अतिशय प्रीतिमान्हो प्रजाको सुमार्ग में स्थित करके आपभी धर्म पूर्वक कर्म्म करै फिर अपने पुत्र को राज्य का अधिकारी कर बनके कन्द मूल फलों से अपना निर्वाह कर बन में रह शास्त्र श्रवण करनेवाली सुबुद्धि से कर्म्मों को करै हे राजा आलस्य को त्याग ये धर्मनिष्ठ होकर जो राजा ऐसे कर्म करता है उसका यह लोक और परलोक सफल होता है और इसी कर्म्म से काम क्रोध लोभ भी नष्ट होजाते हैं प्रजापालन में तत्पर और दान तप में प्रवृत्त दयायुक्त क्रोध इच्छासे रहित उत्तम धर्मवान् गो ब्राह्मणों के अर्थ युद्ध करनेवाले क्षत्रियों ने उत्तम गतिको पाया है और एकादश रुद्र और अष्टवसु और द्वादश सूर्य्य साधुबर्ग्ग और ऋषियों के अंशों से बना राजा का देह होता है इससे तुम इस धर्मपर निश्चय नियत हो ॥ २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकविंशतिनमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## बाईसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इतनी बातें सुननेवाले युधिष्ठिर से फिर अर्जुनने वचन कहाकि हे महाबुद्धिमान् धर्मज्ञयुधिष्ठिर क्षत्रीधर्मसे बड़ी कठिनता पूर्वक शत्रुओंको बिजयकर राज्यपाकर क्योंदुःखी होतेहो हे महाराज क्षत्रीधर्म्म को ध्यान करते महा पुरुषों ने क्षत्रियों का युद्ध में मरना बहुत से यज्ञों से भी उत्तम कहा है और ब्राह्मणों का संन्यास धर्म्म देह के त्यागने के समय पर कहागया है और क्षत्रियों का युद्ध में मरना ही संन्यास से उत्तम मानाहै और हे राजा क्षत्रीधर्म्म महा रुद्र और महेश्वर शास्त्रों से संयुक्त है और समय पाकर युद्ध में शस्त्रों से मरना होताहै इससे हे राजा जो ब्राह्मण भी क्षत्रीधर्म्ममें प्रवृत्त होता है उसका जन्म सुफल होता है और योग्य इस कारण है कि लोक में क्षत्री का वंश ब्राह्मण से उत्पन्न होनेवाला है और स्वामी क्षत्री को न तप

न संन्यास न ब्रह्मयज्ञ न दूसरे धन से जीविका करना योग्य है इससे हे बुद्धिमान् धर्म्मात्मा आप प्रजापालन में तत्परहो और दुःख से प्राप्त हुये शोक को त्यागकर कर्म्म करने में प्रवृत्त हो जाओ मुख्य करके क्षत्री का हृदय वज्र के तुल्यहोता है सो ऐसे क्षत्री धर्म्मसे राज्य को पाकर जितेन्द्रियहो यज्ञदान आदिकर्म्मोंमें ध्यानदो निश्चयहैकि इन्द्रभी ब्राह्मणका पुत्रहो कर्म्मसेक्षत्रीहुआ उसने पापात्माजातिके आठसौदश प्रकारोंको मारा हे राजा उसका वह कर्म्म प्रशंसा के योग्य है उसी कारण देवताओं के स्वामी हुये यह हमने सुना है हे नरेन्द्र आप तप के सिवाय बड़े बड़े दक्षिणावाले यज्ञों को करके इन्द्र के समान पूजनकरो और हे भाई आप ऐसी दशामें कुछ शोच न करो उन-शस्त्रों से पवित्र क्षत्री लोग अपने क्षत्री धर्म्म से परमपद को प्राप्तहुये हे राज-शिरोमणि जो भवितव्यथा सो हुआ उसके मिटाने को कोई समर्थ नहीं इससे तुमभी उल्लंघन करने के योग्य नहीं हो ॥

इतिश्रीमहाभारते शांतिपर्वणिराजधर्मे द्वाविन्शोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## तेईसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि अर्जुन के इतने कहनेपर भी युधिष्ठिर ने कुछ नहीं कहा तब व्यास जी बोले कि हे स्वामी युधिष्ठिर यह अर्जुन का बचन सत्यहै यह गृहस्थधर्म्म शास्त्र की दृष्टि से उत्तम है इस धर्म्म के रक्षक होकर धर्म्म में बर्त्तमान शास्त्रबुद्धी से अपनाकर्म्म करो हे धर्म्मज्ञ गृहस्थाश्रम को छोड़ तुम्हारा वन में बास करना धर्म्म नहीं है गृहस्थ से देवता अतिथि पितर और नौकर चाकर सब अपना निर्बाह करते हैं इसमें उनका पोषण करो और पशु पक्षी आदि जीवधारी भी गृहस्थ ही से पलतेहैं इसहेतु से गृहस्थाश्रमही सब आश्रमोंमें श्रेष्ठहै चारों आश्रमोंमें यह आश्रम दुःखसे कटने योग्यहै हे राजा अब उस विधिको करो जोकि निर्बल असाहसी लोगोंसे कष्टसे होनेके योग्य है तुम सब वेदोंके जाननेवाले और महातपस्या करनेवाले हो सो आप बाप दादे के राज्य के धुर धारण करने के योग्य हो हे राजा तपसमाधी ब्रह्मविद्या भिक्षामांगना दृढ़ विश्वास ध्यान और एकान्त बैठना सन्तोष और सामर्थ्य के समान दानदेना यह ब्राह्मणों का कर्म्म मोक्ष का देनेवालाहै और क्षत्रियों के कर्म्म को कहता हूं वह सब तेरा जानाहुआ है यज्ञ करना विद्या पढ़ना लक्ष्मीके लिये उत्तम उद्योग सन्तोष करना दानदेना उग्ररूप होना और प्रजा का पोषण और सब वेदों का ज्ञान और ऐसे ही अच्छे प्रकार से कियाहुआ तप बड़े धन का संचय करना और पात्र को दान देना ये राजाओं के श्रेष्ठ कर्म्म हैं हे राजा वह इस लोक परलोक दोनोंको सिद्ध करतेहैं यह हमने सुना

है हे कुन्ती के पुत्र इन सबमें दण्ड का धारण करना उत्तम कहाजाता है क्षत्री में सदैव पराक्रम है और पराक्रम में सदैव दण्ड नियत है यह क्षत्रियों की विद्या मोक्ष की देनेवाली है और बृहस्पतिजी ने भी इस कथा को गाया है पृथ्वी इन पूर्वोक्त दोनों को निगलजाती है जिस प्रकार बिल में रहनेवाले चूहों को सर्प और शत्रुता न करनेवाला राजा और बनबास न करनेवाला ब्राह्मण निकृष्ट सुनाजाता है सुद्युम्न राजऋषि ने दण्ड के धारण करने से ही ऐसी परमगति को पाया जैसी कि प्राचेतसदक्ष ने पाई युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन् राजा सुद्युम्न ने किस कर्म्म से ऐसी सिद्धिको पाया मैं उसका वृत्तान्त सुना चाहता हूं व्यास जी बोले कि मैं इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास कहताहूं कि शंख और लिखित नाम ब्राह्मण दोनोंभाई थे वे बड़े तेजस्वी और व्रत करनेवाले हुये उनदोनों के पृथक् पृथक् आश्रम बाहुदा नदी के सामने सुपुष्पित सफल वृक्षों से शोभित अति सुन्दर वर्त्तमान थे किसी समय दैव इच्छा से लिखित शंख के आश्रम को गया तो उसे देख शंख भी अपने आश्रम से निकला तब उस लिखित ने शंख के उस आश्रम में जो सुन्दर फल फूलों से युक्त था जाकर झुकेहुये फलों को गिराया और फलोंका भोजनकरने लगा उसके भोजनकरने के समय शंखभी अपने आश्रम में आया और उस फलखानेवाले अपने भाई से कहा कि यह फल तैंने कहां से पाये और काहे को खाता है तब हँसकर लिखित ने उसकेपास जाकर कहा कि मैं ने यह फल यहां से लिये हैं तब महा क्रोधित हो शंख ने उससे कहा कि आप से तुमने जो इन फलों को लिया यह तुमने चोरी की तुम राजा के पासजाकर अपना कियाहुआ चोर कर्म्म कहो कि हे राजाओं में उत्तम मैंने बिना दीहुई वस्तु को लेलिया तुम मुझको चोर जानकर अपने धर्म्म का पालनकरो और मुझ चोरको शीघ्र दण्डदो हे महाबाहु इसप्रकारके अपने भाई के बचन सुनकर वह राजा के पास गया और अपना सब वृत्तान्त राजा से कहा तब राजा सुद्युम्न द्वारपालों के मुख से आयेहुये लिखितको सुनकर मन्त्रियों समेत पैदल उसके पास गया और उससे मिलकर राजा ने धर्म्म युक्त बचन कहे कि हे भगवन् आपका आना कैसेहुआ आपका जो मनोरथ हो वह मैं तत्कालही करूंगा इसप्रकार के राजा के बचनों को सुन वह ब्रह्मर्षी बोला कि हे नरोत्तम महाराज मैंने बड़े भाई से बिना आज्ञा लिये फलों को भोजन करलिया उसमें मुझको जो उचित दंडहो वह शीघ्रदो बिलम्ब न करो राजा सुद्युम्न बोला कि हे ब्राह्मणों में उत्तम जैसे आपने दंडदेने में राजाको प्रमाण माना है उसी प्रकार आज्ञा देने में भी प्रमाण जानिये इसकारण शुद्धकर्मी और महाव्रतधारी आप मुझ से आज्ञा पानेवाले हो इसके बिशेष जो तुम

दूसरी कोई अन्यवार्त्ता अपने प्रसन्नताकी कहौ उसे मैं अवश्य करूंगा यह सुन उसमहर्षी ने अपने दण्ड के सिवाय दूसरा कोई बर राजा से न मांगा तब तो राजा ने उस लिखित नाम ब्रह्मर्षी के हाथों को कटवाया और दंड पाकर वह ऋषि चलेगये और पीड़ित स्वरूप से अपने भाई शंखसे जाकर यह बोले कि मुझ निर्बुद्धी दंड पानेवाले का वह अपराध क्षमाकीजियेगा शंख बोला कि हे धर्म्म के जाननेवाले मैं तुझपर क्रोध नहीं करता क्योंकि तुम मुझको दोष का भागी नहीं करते तेरा धर्म्म बेमर्य्यादा हुआ था इसकारण तेरा प्रायश्चित्त हुआ तुम शीघ्रही बाहुदानदी पर जाकर बुद्धिके अनुसार देवता और पितरों को तर्पण करो और अधर्म्म में चित्त न लगाओ लिखित ने शंखके उस वचनको सुनकर उस पवित्र नदी पर जा आचमन आदि करना प्रारम्भ किया तब उसके दोनों हाथ कमल के सदृश प्रकट हुये तब उसने वह हाथ अपने भाई को दिखाये फिर शंख ने उससे कहा कि मैंने यह हाथ तपस्या से किये इसमें तुम कुछ संदेह मतकरो इसमें दैवही कारण कहा जाता है लिखित बोले कि हे महातपस्वी तुमने पहिलेही मुझको पवित्र क्यों न किया जो आप सरीके ब्राह्मणोत्तमों में तपका ऐसा प्रभाव है शंख बोले कि मैंने इसकारण ऐसा किया कि मैं तेरा दंडदेनेवाला नहीं वह राजा पवित्रहुआ और तुमभी पितरों समेत पवित्रहुये व्यासजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर उस सुद्युम्न राजा ने उसी कर्म्म के द्वारा परमानन्दरूपी पवित्रताको ऐसा पाया जैसा कि प्राचेतस दक्षजी ने पाई थी इससे हे महात्मा प्रजाका पालनही क्षत्रियों का धर्म्म है और दूसरा कुमार्ग है शोकसे चित्तको हटाकर भाई के हितकारी वचनों को सुनो कि राजाओं को दंडही धारण करना योग्य है मुंडन धर्म्म नहीं है ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेत्रयोविंशतमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## चौबीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि इतना सुनाकर फिर उस अजातशत्रु युधिष्ठिर से व्यासजी ने यह बचन कहा कि हे तात तेरेमनस्वी भाइयों से वन में बसनेके समय जो मनोरथ हुयेथे हे महारथी उनको बताओ और तुम पृथ्वीपर राज्य करो जैसेकि नहुष के पुत्र ययाति ने किया है नरोत्तम इन विचारे तपस्वी वीरों ने वन में अनेक प्रकारसे दुःखोंको सहा और दुखके अन्त में सुखको सब भोगते हैं इससे हे कौन्तेय तुम अपने भाइयों के साथ धर्म्म अर्थ काम मोक्ष इनको प्राप्त करके पीछे से इन उपाधियों को त्यागोगे और देवता पितर जो आपका आश्रय किये रहते हैं उनके ऋणसे भी छूटोगे और तुम सर्वमेध और

अश्वमेधयज्ञों के द्वारा पूजनकरो उसके पीछे परमगतिको पावोगे और बहुत बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों के फलों से भाई और स्त्री पुत्र आदि सहित बड़ी कीर्त्ति को पाओगे और हे कौरवोत्तम हम तेरेवचनको जानते हैं इसप्रकार से कर्म्म करनेवाला धर्म्म से नहीं गिरता हे युधिष्ठिर जो राजा समान धर्म्ममें प्रवृत्त हैं और बुद्धिमान् हैं वह दूसरे के धन हरनेवाले राजा का युद्ध और विजय करना आवश्यक मानते हैं जो राजा देशकाल को समझकर शास्त्रकी बुद्धि से अपराधियों को क्षमाकरके नहीं मारता वह उसी चोरी आदि पापोंके फलों को पाता है और जो राजा छठेभाग को लेकर अपनी प्रजाकी रक्षा नहीं करता वह उस रक्षा न करने के चतुर्थांश पापको भोगता है और यह समझो कि जो राजा अपने धर्म्मको करताहै वह कभी धर्म्म से भ्रष्ट नहीं होता सदैव राजाधर्म्मशास्त्रके विरुद्धकर्म्म करनेसेही भ्रष्टहोताहै जो पिताके समान सब प्रजापर शास्त्रबुद्धीसे समदृष्टिहोकर राज्यकरताहै वह कभी पापकाभागी नहीं होता और जो राजा दैवयोगसे समयपर अपनाकर्म्म नहींकरता वह अधर्म्म नहीं है बुद्धिके द्वारा बहुत शीघ्रही शत्रु को दण्डदेना योग्य है और पापात्मा लोगोंसे स्नेह न रक्खे अपनेदेशमें धर्म्मकी वृद्धिकरे और शूरबीर श्रेष्ठ पुरुषोंका सत्कार करे और कर्म्मकांडके जानने वाले ब्राह्मण और धनवान् बैश्यादिकों की अधिक प्रतिष्ठाकरे और अनेक शास्त्रों के जाननेवाले पुरुष ब्यवहारों में सम्मति करने के योग्य हैं और बुद्धिमान् राजा को उचित है कि कैसा भी कोई बुद्धिमान्हो किसी पर पूर्णविश्वास न करे रक्षा न करनेवाला राजा पाप को भोगता है हे राजा ईश्वर के कोप से जो दुर्भिक्ष आदि कष्ट प्रजापर होते हैं उन से और चोरी आदि से प्रजाका नाश होता है वहसब राजाकाही पाप है और हे राजा जो विचार पूर्वक न्याय और धर्म्मशास्त्र के अनुसार पालन करनेपर भी जो प्रजाकी हानि हो वह अधर्म्म नहीं है बहुधा होन-हार बातें भी होजाती हैं परन्तु उनके दूर करने के उद्योग करने से राजाको पाप नहीं होता इस स्थान पर एक कथा तुमसे कहताहूं कि प्राचीन समय में एक हयग्रीवनाम राजर्षिथा वह शत्रुओं के दंडदेने में और मनुष्यों के पोषण करने में जो उत्तम कर्म्म और श्रेष्ठ उद्योग थे वहसब करके युद्ध में कीर्त्तिमान् हो स्वर्ग में आनन्द करता है वह स्नेह को त्याग युद्धों में शस्त्र-धारियों के शस्त्रों से घायल दिव्य अस्त्र शस्त्र धारण किये चोरोंसे माराहुआ कर्म्मकर्त्ता साहसी और मनोरथों का पाने वाला था और अपने युद्ध रूप यज्ञकी अग्नि में शत्रुओं को हवनकर पापों से छूट प्राणों को त्याग देव लोक में बिहार करता है॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेचतुर्विन्शोऽध्यायः २४॥

# पच्चीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इस प्रकार के अनेक वचन व्यासजी से सुन कर अर्जुन को क्रोधित जान व्यासजी को सन्मुखकर युधिष्ठिर बोले कि यह पृथ्वी का राज्य और अनेक प्रकारके भोग मेरे चित्त को प्रसन्न नहीं करते अब यह दुःख मुझको सताता है हे मुनि अपने वीर पुरुषपति और पुत्रों के शोक से पीड़ित स्त्रियों के रोदन को सुनकर शांत नहीं होता यह वचन सुनकर वेद और धर्म्म के ज्ञाता योगियों में श्रेष्ठ श्रीव्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा कि वह पति पुत्र स्त्रियों को कर्म्म करके वा यज्ञों से भी प्राप्त नहीं होसक्ते और न कोई उन पुरुषों का देनेवाला है ईश्वरने सबका समय नियत किया है इससे अपने अपने समय मनुष्य यथेच्छ वस्तु पाता है इन स्त्रियों का सौभाग्य जाना था इससे विधवा हुईं इनका शोच करना व्यर्थ है विना समय के आये चाहे जितने ज्ञानशास्त्र धर्म्मशास्त्र पढ़ने से भी पुत्र नहीं होते कभी मूर्ख भी अर्थों को पाताहै सब कामों में समयही मूल कारण है विनाश काल में शल्यविद्या मन्त्रविद्या और औषधी सफल नहीं होती हैं वह सब कालसेही नियत और प्राप्त होते हैं जिसको विधाता ने उत्पन्नकिया है वह सबकाल पाकर नष्ट होते हैं विना समय आये कोई किसीका नाश नहीं करसक्ता समय पाके गुणी धनी निर्धनहोते हैं और उसी प्रकार निर्धन निर्गुणी धनवान् होते हैं कालही में तीक्ष्णहवा बादल मेह और वनके वृक्ष फूलते हैं समयही से अँधेरी उजेली रात्रि और विना समय के नदी वेग से नहीं वहतीं और पक्षी सर्प मृग हाथी पहाड़ी पशु उन्मत्त नहीं होते समय परही स्त्रियां गर्भ धारण करतीं विना समय फाल्गुनचैत्र में वर्षा नहीं होती समय परही मरना जीना पैदा धर्म्म अधर्म्म होताहै समय परही बालक बोलता और तरुण होताहै समय परही बोयाहुआ उगता है और समय परही सूर्य्य का उदय अस्त आदि सम्पूर्ण बातें होती हैं इस स्थानपर हम राजा सेनजितका इतिहास वर्णन करतेहैं कि यह काल की गति दुःख से सहने के योग्य है और सब नरलोकवासियों को स्पर्श करती है कालसेही पृथ्वीके सबजीव मरते हैं और कालही से एक दूसरे को मारता है सो हे राजा यह मरना जीना कहनेही मात्रहै न कोई मरताहै न जीताहै न मारताहै तर्कशास्त्रवाले यह मानतेहैं कि मारता है और दूसरा सांख्यशास्त्रवाला कहता है कि नहीं मारता है यह जीवों का जन्म मरण केवल आत्मा की सत्तासे है कि अपने आप होते हैं अर्थात् धनस्त्रीके नाशसे दुःख और बेटे अथवा पिताके मरने में महा दुःख है इसप्रकार ध्यानकरता हुआ उसदुःखका उपायकरे मूर्खहोकर

शोच नकरे और शोकमें डूबकर मूर्ख स्त्रियोंको क्यों शोचताहै जिनके दुःखोंमें दुःख और भयमें भय भीहै अर्थात् दुःख और भयको दूनाकरना महाअज्ञानताहै यहआत्माभी मेरानहींहै और न यह पृथ्वी मेरी है अर्थात् मुझ आत्मारूपसे जुदे हैं और जैसे कि यह सबप्रपञ्च मेरारूपहै उसीप्रकार दूसरोंकाभीहै अर्थात् सब रूपों में एकही आत्माहै जो इसप्रकारसे देखताहै वह अज्ञानतामें नहींफँसता है शोकके हजारोंस्थान और आनन्दके सैकड़ोंस्थान प्रतिदिन अज्ञानियोंमें आतेहैं पण्डितोंमें नहींआते इसप्रकार कालके प्रेरित सुख दुःख जीवोंमें घूमा करते हैं जैसा समय पाते हैं वैसे ही सुखरूप दुःखरूप होजाते हैं यह सब मोह के लक्षण हैं ऐसा बिचार करे कि यहां जितने सुख हैं वहभी दुःखरूप ही हैं क्योंकि लोभसे जो चित्त में आकुलता होती है उससे दुःख उत्पन्न होताहै और दुःख के नाशहोने को सुख कहते हैं सुख के अन्त में दुःख और दुःख के अन्त में सुख अवश्य होता है न सदैव दुःख रहता है और न सुख बना रहता है कभी दुःख से सुख और कभी सुख से दुःख होजाता है इस कारण इनदोनों को त्यागकर मोक्षरूपी अक्षय सुख को प्राप्त करे और उन्हीं दोनों सुख दुःखों से शोक की भी वृद्धिहोती है इससे उन दोनों को एक अंग के सदृश समझकर त्याग करे सुख दुःख को हृदय से अलग करने के निमित्त मनुष्य उपासना करे तो इस शोक से निवृत्त होगा देह स्त्री पुत्रों में स्नेह करनेवाला पीछे से समझेगा कि किसप्रकार से किसकारण कौन किसका सम्बन्धी है अर्थात् कोई किसी का न बेटा है न स्त्री है इस संसार में जो अ-त्यन्त अज्ञान हैं और जो बड़े ब्रह्मज्ञानी हैं वह ही सुखों को भोगते हैं और मध्य के मनुष्य दुःख ही पाते हैं हे युधिष्ठिर उस महा ज्ञानी दानी दुःख सुख के ज्ञाता राजा शेनजितने यह कहा कि उस लोभआदि के कारण जो दुःखों से दुःखी है वह कभी सुखी न होगा दुःखोंका नाश नहीं है एक से एक दुःख पैदाहोता जाता है सुख दुःख राज्य नाश हानि मृत्यु जीवन इन सब को क्रम पूर्वक पाते हैं उन सबों से पण्डित लोग न खुश होते हैं न शोच करतेहैं युद्ध भूमि में जो युद्ध करना है वही राजा का दीक्षा यज्ञहै और राज्य में जो अच्छे प्रकार से दण्ड और नीति का जारी होना है उसी को योग जानो और यज्ञ के बीच जो दक्षिणा का देनाहै अथवा धन खर्चकर अच्छे प्रकार दानकरना है वह सब राजाओं को शुद्ध करता है देह के स्नेह को त्याग यज्ञ करनेवाला महात्मा राजा बुद्धि और नीति पूर्वक राज्य की रक्षा करनेवाला और धर्म्म की दृष्टि से सब मनुष्यों में घूमनेवाला जब समय पाकर देह को त्यागता है वह देवलोक में आनन्द करता है युद्ध में विजय कर देशों का पा-लनकर यज्ञों के अमृत को भोजन करके युक्ति दण्ड से प्रजाकी वृद्धिकर जो

राजा संग्राम में मरता है वह भी स्वर्ग में निवास करता है और वेद शास्त्रों को पढ़ अच्छे प्रकार से प्रजा पालनकर चारों बर्णों को अपने अपने धर्म्म में प्रवृत्त करके जो राजा शुद्ध अन्तःकरण होता है वह परमधाम को पाता है और उसके पुरबासी मन्त्री प्रजा आदि के मनुष्य उस स्वर्गवासी राजाकी कीर्त्तिको गाते हैं और नमस्कार करतेहैं वह राजा सर्वोत्तम है ३६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

# छब्बीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि इसी बिषय में राजा युधिष्ठिर बड़ी बुद्धिमानी के साथ अर्जुन से यह बचन बोला कि हे अर्जुन तुम जो यह मानते हो कि धन से कोई बड़ानहीं है बिना धनके न स्वर्ग है न सुख है न राज्य आदि है सो यह सब तुम्हारा कहना मिथ्याहै वेदपाठ यज्ञ जप आदि से सिद्धहोने वाले बहुत से मनुष्य और तप में प्रीति करनेवाले मुनि ऐसे देखने में आतेहैं जिन को सनातन लोक प्राप्तहोते हैं हे अर्जुन जो ब्रह्मचारी और सबधर्म्मों के जाननेवाले पुरुषऋषियों के प्राचीन आचरणों की रक्षाकरते हैं उनको देवतालोग ब्राह्मण जानते हैं तुमभी वेदपाठ में प्रवृत्तहो इस से उनज्ञान निष्ठों को जानते हो हे युधिष्ठिर तेजोमय पुरुष ज्ञानी और निष्ठावानहो के हज़ारों स्वर्गलोक को गये हैं और वेद में कहेहुये कर्मों को प्राप्तहोकर यज्ञ वेदपाठ दान कठिनतासे प्राप्तहोते हैं जो पुरुष अर्य्यमा देवता के दक्षिण मार्ग होकर परलोक को गयेहैं उनकर्म करनेवालों के लोकों को मैंने प्रथमही कहा और उत्तरायण मार्ग है उसको जो नियम से देखेगा वह यज्ञ करने वालों के सनातन लोक में प्रकाशितहोगा हे अर्जुन उसस्थानपर ब्रह्मज्ञानी पुरुष उत्तरायण गतिकी प्रशंसाकरतेहैं संतोषसे स्वर्ग को पाता है और संतोषही से मोक्षभीमिलती है क्रोध और आनन्द को समान समझ कर जो जीतलेते हैं वह ज्ञानीलोग संतोष भी करसक्तेहैं और इन से अन्यलोग संतोषी नहींहोते क्योंकि यहवैराग्य बड़ीउत्तमसिद्धिहै इस स्थानपर राजाययातिकी कहीहुई उस कथाको कहते हैं जिससे कि ज्ञानीलोग त्यागीहो अपनी सब इच्छाओं को आत्मा में अन्तर्गत करते हैं जैसे कि अपने अंगोंको कछुआ लयकरताहै जब यहभय नहीं करता और न इससे कोई भयकरता औरइच्छा और शत्रुता को भी नहीं करताहै तब ब्रह्मभावको पाताहै जब अहंकार और अज्ञानको जीतने वाला स्नेहको दूरकरताहै तोभी मोक्षको पाता है हे जितेन्द्री अर्जुन तुम मेरेकहेहुये वचनोंको सुनो कि कोईतो धर्मको चाहताहै और कोई संसारी आनन्दको और कोई धनको सो जो पुरुष धनकी इच्छा करता

है उसकी अनीच्छाही उत्तमहै क्योंकि धनमें बड़े२ दोषहैं और उसधनसे जो कर्महोते हैं उन में भी अधिकदोष आजाताहै मैं प्रत्यक्ष देखरहाहूं और तुमभी देखसक्तेहो धनकी लिप्सावालों से त्यागकेयोग्यबातोंका त्यागकरना कठिन है जो धनको प्राप्तकरतेहैं उनमें सहनशीलता होना कठिनहै और धनहत्या करनेवालों को मिलताहै और वह प्राप्तहुआ धनभी शत्रुताका मूलहै अर्थात् भयका कारणहै फिर जो पुरुष उस बेशीलता शोक भयआदि से जुदाहोना चाहे वह थोड़े धनके लिये लोभ से हत्या करता हुआ ब्रह्महत्याको नहीं जानताहै अर्थात् लोभी थोड़ेधनमें भी भ्रूणहत्याको प्राप्तहोता है २१ कष्ट से प्राप्तहोनेवाले धनको पाकर अपने आज्ञाकारी नौकरों आदिकोभी देकर सदैव दुःखको पाताहै जैसे कि चोरों से इसलिये कि धनलेनेवाले नौकरभी विपरीत होजाते हैं बिनाधन और सबप्रकारकी उपाधियों से रहित जो पुरुष है वह सबप्रकार से स्तुति के योग्यहै वह लोक देवताओं के पंचयज्ञआदि करने के निमित्त भी जो संचित धनहै उससेभी प्रसन्न नहींहोते अर्थात् देवयज्ञादिकों के लिये भी न देकर उससे प्रसन्न नहीं होते क्योंकि लोभकी वृद्धिहोनेसे महा दुःख होताहै इसस्थान में प्राचीन वृत्तांतों के जाननेवाले तीनों वेदोंके ज्ञाता ज्ञानियों के यज्ञोंकी प्रतिष्ठा करनेवाले लोकमें यज्ञकी गाईहुई कहावतको कहते हैं कि ईश्वरने यज्ञके लिये धनको और यज्ञकरने के लिये पुरुषों कोरक्षक पैदाकिया इसकारण सबधनको यज्ञ और ईश्वर के पूजन में लगाना चाहिये वह धनदेहके प्रयोजन के लिये हितकारी नहींहै हे धनवानों में उत्तम अर्जुन ईश्वर इसधनको अपने और यज्ञके अर्थ नरलोकके बासियों को देता है इससे वहधन किसीका नहीं है इसीहेतु श्रद्धावान् पुरुषदान और यज्ञकरेक्यों कि प्राप्त होनेवाले धनका त्यागही उत्तम है उसके भोगऔर नाश को कोई अच्छा नहींकहता है जब कि भोगमें न आसका तोउसके इकट्ठे करने से क्या प्रयोजनहै जो निर्बुद्धीलोग अपने धर्मके विपरीत अन्य मनुष्यों को देते हैं वह मरकर सैकड़ों बर्षतक विष्ठाको खाते हैं और जो अपात्रको देताहै और सुपात्रको नहींदेताहै तो पात्र अपात्रका ज्ञान न होनेसे दानधर्मका भी करना कठिन है प्राप्तहोनेवालेधन और धनसे पैदाहोने वाली बस्तुओं की अमर्यादा जाननी चाहिये जब कि पात्र और अपात्रका ज्ञाननहीं है॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेषड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

## सत्ताईसवां अध्याय॥

युधिष्ठिरबोले कि द्रौपदीके पुत्र अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, विराट,द्रुपद धर्म्मज्ञ वृषसेन, धृष्टकेतु तथा अन्य बहुत से देशों के राजालोग जो संग्राममेंमरे

निमित्त मारेगये इससे मुझज्ञातिघाती स्ववंश छेदक राज्यकी कामना करने वालेका शोकमनसे नहीं जाता जिसकी गोदी में हमलोग खेले वह गंगा जीके पुत्र हमारे पितामह भीष्मजी मुझराज्यके लोभी के कारण युद्ध में गिरायेगये वह बज्रके तुल्यथे शिखंडीको सन्मुख देखते अर्जुनके बाणों से कांपते हुये मैंने देखे उनवृद्धसिंहके समान अर्जुनके बाणोंसे विदीर्ण देहनरों में उत्तम अपने पितामह को देखकर मेरा चित्त अत्यंत पीड़ामान हुआ यहां तक कि उस पर्व्वत समान शत्रुहन्ता पितामह को घूमता देखके मुझको मूर्च्छा आगई उन भीष्मजीने कुरुक्षेत्र के मैदानमें बहुत दिवस तक भार्गव परशुरामजीसे महाप्रबल युद्धकिया और काशी में काशीराज की कन्या के निमित्त एक रथके द्वारा उन महाबीर गांगेयजीने स्वयंबर में आये हुये सब राजाओं को युद्धमें बुलाकर बड़े २ अस्त्रोंको धारण किये महापराक्रमी चक्रवर्ती राजाशाल्वको बड़ी बीरतासे परास्त किया और जिनकी स्वेच्छाचारी मृत्यु ऐसे महाबली पितामहने पांचाल देशवाले शिखण्डीको बाणोंसे नहीं गिराया परन्तु आप अर्जुनके हाथ से गिरे हे मुनीश्वर जब मैंने उनको पृथ्वीपर रुधिरसे ब्याप्त देखा तभी भयदायक तपमेरे चित्तमें उत्पन्नहुआ बाल्य अवस्था में जिसने हमारी रक्षा और पालन किया वह मुझ राज्य के लोभी पापी गुरुहन्ता महामूर्खके कारण नाशवान् राज्यके हेतु मारेगये सब राजाओं के पूज्य महाअस्त्रज्ञ गुरूजी को युद्धमें मिलकर पुत्रके निमित्त मुझपापी से मिथ्यावचन कहलाये गये वह बात मेरेअंगों को भेदतीहै कि जो गुरूने कहा था कि हे अर्जुन तुम सत्य२कहो कि मेरा पुत्र जीवता है सत्य को निश्चयकरने वाले ब्राह्मणने उसबात को मुझसे पूछा मैंने हाथी का बहाना करके मिथ्या वचनकहा युद्धमें सत्यताके कंचुकको त्यागकर मुझराज्य लोभी पापी गुरुघ्नी के कहनेसे वह गुरूजी हाथीके छलमें छलेगये और कहागया कि अश्वत्थामा मारागया हे मुनि मैं ऐसे महा पापों को करके किसलोकमें जाऊंगा और जो मैंने युद्धमें दृढ़महाबीर अद्वितीय शस्त्रों के जानने वाले अपने बड़ेभाई कर्णको मरवाया मुझसे अधिक पापी कौनहै जैसे कि पहाड़ों में सिंहहोता है उसीप्रकार उत्पन्नहोने वाला अभिमन्यु बालक को मुझ राज्यलोभी ने द्रोणाचार्य्य की रक्षित सेना में भेजा तबसे अर्जुन की ओर और कमल लोचन श्रीकृष्णजी और पुत्रों से रहित दुःखोंसे पीड़ामान द्रौपदीकी ओर देखनेको ऐसे समर्थ नहीं होताहूं जैसे कि बालकोंका मारनेवाला महापापी पहाड़ों के समान पांचोंपुत्रों से रहितहो पृथ्वीको शोधताहूंकि तुझ परमुझसा कुटुम्बघाती पापात्मा वर्त्तमानहै ऐसा अपने को धिक्कार कर अपनी देहको सुखाऊंगा तदनन्तर मैं गुरुघाती महापापमूर्ति अपनी देह

के त्यागने का उद्योग करूंगा अर्थात् अन्न जल छोड़कर बैठूंगा तब हे तपोधन ऋषियो यहांपर अपने प्यारेप्राण को त्यागूं गा तुम सबको प्रसन्न करके कहताहूं कि इच्छाके अनुसार अपने अपने अभीष्ट स्थानको जाओ और मुझको सब महाशय आज्ञादो कि इसशरीरको त्यागूं वैशम्पायन कहते हैंकि इसप्रकार शोक सन्ताप करनेवाले युधिष्ठिरसे श्री व्यासदेव जी बोले कि ऐसानहीं करना योग्य है तुम इतना शोक मतकरो यही समझो कि ऐसाही होनहारथा सो हुआ जीवों के योग और बियोग होनेको ऐसा निश्चयजानो जैसे कि पानीके बबूले पानी से बनकर पानीमेंही मिलजाते हैं अर्थात् उत्पन्नहोते हैं और नाशहोते हैं सबधन समूह अन्तमें नाश होते हैं और सब बृद्धि पानेवाले परिणाम में नाशको पाते हैं इससे सुख और दुःख का अन्त देखकर दुःख को सुख का प्रकाश करने वाला जानो और लक्ष्मी, ऐश्वर्य, लज्जा, धैर्य, नेकनामी यह सब बातें बुद्धिमान् चतुर पुरुषों में निवास करती हैं दीर्घ सूत्रियों में नहीं होतीं मित्र सुख देने को और शत्रु दुःख देने को समर्थ नहीं है धनके प्राप्त करने के लिये बुद्धि समर्थ नहीं है और धनसे भी सुख नहीं मिल सक्ता हे राजा युधिष्ठिर जैसा ईश्वर ने कर्म्म बतादिया वैसाही करो इसी से तुम्हारी शुद्धी है तुम कर्मोंको नहीं त्याग सक्के ३४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेसप्तविंशतिमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

# अट्ठाईसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि ज्ञाति बन्धुओं के मरनेसे शोकमें मग्न प्राणत्यागने की इच्छा करने वाले युधिष्ठिर का शोक व्यासजी ने पूर्व्वोक्त अनेक बातों के कहने से दूर किया और कहा कि हे युधिष्ठिर इस स्थानपर तुम अश्मगीत अर्थात् अश्मनाम ब्राह्मण ने जो गाया उसको समझो कि राजा जनक ने दुःख और शोकमें मग्न होकर अश्मनाम ब्राह्मण से अपना सन्देहपूछा कि हे महाज्ञानी महात्मा धनके प्राप्त करने और नाश में इच्छा रखने वाले पुरुष कैसे कल्याण को पावें अश्मऋषि बोले कि उत्पन्न होनेवाले देह मनुष्यों को दुःख और सुख देने के निमित्त विनाशोंसे समझे सन्मुख आजातेहैं तब उन सुख दुःखों का बर्ताव होता है अर्थात् आमने सामने वाले दोनोंमें एक की आपत्ति में जो २ सन्मुख आता है वह उसकी बुद्धि को जल्दी से हरलेता है जैसे कि बादल को हवा हरलेती है मैं श्रेष्ठघराने में उत्पन्न हुआहूं और सिद्धहूं केवल मनुष्यही नहींहूं इन तीनों बातों के हेतु से उसकाचित्त निर्बल होताहै संसारी सुखों में चित्त का लगाने वाला पुरुष पिताके संचित धन

आदिको उड़ाकर खाली हाथ अर्थात् निर्द्धन होजाता है तब दूसरे के धन लेने को अच्छा समझता है उस अमर्य्याद और अयोग्य लेनेवालेका राजा लोग निषेध करते हैं हे राजा जो चोर पुरुष हैं वह बीस व तीस वर्षतक जीते हैं और दूसरे सौवर्ष से अधिक नहीं रहते राजा को चाहियेकि उन बड़े दुःखियाओं का इलाज बुद्धिमानी से करे सब जीवों के आचार को जहां तहां देखताहुआ अपने प्रबंधकोकरे फिर मनुष्योंके पुनर्जन्मसे जो दुःख होते हैं उनसे चित्त में भ्रांति होती है और भ्रान्तिसे अनिच्छा होती है तीसरी कोईबात सिद्ध नहींहोती जो इसलोकमें यह और वह अनेकप्रकारके दुःखहैं उसीप्रकार विषयों के सुखभी प्राप्तहोते हैं वृद्धावस्थापा मृत्यु उन महाबली और निर्बल व अहंकारी व महात्माजीवोंकी भी भक्षण करने वालीहै इसलोकमें कोई मनुष्य समुद्रके अंततक सम्पूर्ण पृथ्वीको बिजय करकेभी मृत्यु और वृद्धावस्थाको उल्लंघननहीं करसक्ता जीवोंके सन्मुख नियतहोनेवाला सुख और दुःख मनुष्योंको लाचारी से भोगनेके योग्यहै उसकात्यागहोही नहींसक्ता हे राजा बाल्यावस्था तरुणता अथवा वृद्धावस्थामें वृद्धपनेकी दशा रुकनेवाली नहीं है जो कि उससेबिपरीत मनुष्योंको अभीष्टहैं अनिच्छाओंके साथ मिले संबंधियोंसे जुदा होना अथवा धनी वा निर्द्धनी होना और बिना जाने हुये सुख और दुःख सामने आते हैं जीवोंका जन्म मरण हानि लाभ या परिश्रम इन सब का मिलना दृष्टिसे अगोचर बर्त्तमान है रूप, रस, गन्ध, स्पर्श यह सब जैसे स्वाभाविक बर्त्तमान होते हैं इसीप्रकार सुख दुःख भी बिना जाने सन्मुख आतेहैं निश्चय करकेसब जीवोंका आसन शयन सवारी उद्योग और खानेपीनेवाली बस्तु सब कालही से पैदा होते हैं वैद्य और रोगी पराक्रमी निर्बल और धनीऔर नपुंसकता यह समयकी बिपरीतिता अनेकप्रकारकी हैं सुन्दर घरानेमें जन्म और निरोगता, सुन्दर स्वरूप होना, प्रारब्धीहोना, संसारी सुखकी प्राप्ती यह सब होतव्यतासे ही पाताहै बहुधा निर्द्धन और इच्छा न करनेवालोंके बहुतसे पुत्र होतेहैं और इच्छा करनेवाले औरधनी और कर्म्म करनेवाले पुरुषों के नहीं होते रोग, अग्नि, जल, शस्त्र गृहस्थी आदिकी आपात्ति विष तप मृत्युनीचेऊपरका गिरना यह सब जीवों की दशाहैं जिसके जन्म में जो होनहार होताहै उसको उस कर्म्मकी मर्य्यादासे वहप्राप्तकरताहै उसको उल्लंघनकरता दृष्टनहींआता किंतु उसमेंप्रवृत्त दृष्टआताहै इस संसारमें धनवान् मनुष्यबहुधा तरुणहीअवस्था में मरता दीखता है और दुःखी निर्द्धनलोग वृद्धहोकर सौ बर्षके भी देखने में आतेहैं और कुछ भी पास न रखनेवाले पुरुष चिरजीवी बहुत कालतक जीवतेहुये दृष्ट आतेहैं और अच्छे ऐश्वर्य्यवान् घराने में उत्पन्न होनेवाले पतंगके समान नाश होतेहैं इसलोक में धनके भोगने की बहुधा लोगोंको

सामर्थ्य नहींहै सब दरिद्री लोगोंको काष्ठभी हजमहोजातेहैं कालसे बँधाहुआ यह मानताहै कि मैं यहकरूं तो वह निर्बुद्धी असन्तोषता से जोजो चाहताहै उसको करताहुआ पाप करताहै ज्ञानियों ने शिकार खेलना, पांसा, स्त्री, मद्य, और युद्धमें बितंडावाद आदिको निन्दित कियाहै पर बहुतसे शास्त्रके जानने वाले पुरुष इन बातों में बड़े प्रवृत्त देखने में आतेहैं इससे निश्चयहै कि इस लोक में ईप्सित और वे ईप्सित सब अर्थ सब प्राणियों को समयके आधीन प्राप्त होतेहैं इसका हेतु नहीं जानाजाता है अर्थात् अज्ञात बातें सन्मुख आती हैं प्रलय होनेपर पृथ्वी आकाश वायु जल तेज चन्द्रमा सूर्य्य दिन रात नक्षत्र नदी पर्वत इत्यादि असंख्य पदार्थों को कौन उत्पन्न करता है इसीप्रकार शर्दी गरमी वर्षा भी कालही से इरते फिरते रहते हैं इसीप्रकार मनुष्यों के सुख दुःख भी हैं मृत्यु और वृद्धापनसे संयुक्त मनुष्यको औषधी मंत्रहोम जपआदि कोई नहीं बचासक्ता है जैसे कि महासमुद्र में परस्पर काष्ठ मिलजाय और मिलकर पृथक् होजाय उसीप्रकार जीवोंका संयोग बियोगहै जो पुरुष स्त्रियों के गीतबाद्योंसे सेवितहैं और जो अनाथहो दूसरेके अन्नके भोजन करनेवाले हैं उनमें मृत्यु समानही कर्म्म करनेवाली है हजारों पिता माता और सैकड़ों पुत्र स्त्री संसार चक्र ने उत्पन्न किये वे किसके और हम किसके हैं न इसका कोई है और न वह किसीका है स्त्री भाई पति इनके साथ यह संयोग इस प्रकार है जैसेकि मार्ग्ग में एक दूसरेसे मिलै यह कहांजायगा और मैं कहां जाऊंगा और मैं कौनहूं और यहां किस निमित्त वर्त्तमान हूं किस कारण से किस बातको शोचूं इसप्रकार चित्तमें बिचारांश करे जिसमें कि अपने संबं-धियों के साथ सदैव रहना नहीं है और जिसकी चालगाड़ी के पहिये के सदृश घूमनेवाली है ऐसे संसार में माता पिता भाई आदि यह सब मार्ग्ग के से मिलाप हैं ज्ञानियों ने परलोक को ऐसा कहाहै कि वह ज्ञानरूप से नहीं देखागया अर्थात् ब्रह्मज्ञान से और धर्म्म युद्धमें मोक्ष होनेसे वह परलोक भी नाशको प्राप्त होता है इस निमित्त शास्त्रोंको उल्लंघन न करके इच्छावान् ऐश्वर्य्यकी श्रद्धा करनी चाहिये पितृ और देवताओं का तर्पण और कर्म्मों को करे फिर ज्ञानीहो यज्ञों को बुद्धिके अनुसार करे और त्रिवर्ग्ग अर्थात् अर्थ धर्म्म कामका सेवन करे यह जगत् कालरूप लहरों से भरेहुये समुद्रके समान जिस में मृत्यु और वृद्धावस्था यह दो बड़े ग्राहहैं उसमें डूबते हैं परन्तु कोई बचा नहीं सक्ता केवल आयुर्वेद वैद्य विद्याको पढ़नेवाले बहुतसे वैद्यलोग अपने कुटुम्ब समेत रोगों में बड़े दृष्ट आते हैं वह क्वाथ और अनेक प्रकारके रसों को खाकर मृत्युको उल्लंघनकर ऐसे वर्त्तमानही रहते हैं जैसे कि महा समुद्र अपनी मर्य्यादाको उल्लंघन नहीं करता रसों के बनानेवाले और धनभी

खर्चनेवाले आदमी वृद्धावस्था से निर्बल और कांपते दृष्ट आते हैं जैसे कि पराक्रमी हाथियों से वृक्ष कांपता है इसीप्रकार तपसे संयुक्त वेदपाठ और जपके अभ्यास में प्रीति रखनेवाले दानी और यज्ञ करनेवाले वृद्धावस्था और मृत्युसे नहीं बचते हैं उत्पन्न होनेवाले जीवों के न दिन न मास न वर्ष न पक्ष न रात फिरते हैं सो नाशवान् असमर्थ मनुष्य इस कालसे उस नाशवान् बड़े संसार मार्गको पाता है जिसमें कि सब जीव रहते हैं जो आत्माको अविनाशी समझें उस पक्षमें जीवात्मा से देहकी उत्पत्तिहै और जो आत्माको नाशवान् समझें उसपक्षमें देहसेजीवकी उत्पत्तिहोचाहे जो कुछहोय परंतुसब दशाओंमें स्त्री और अन्यबांधवोंकेसाथ मिलनामिलाना मार्गके मिलापहोने के समानहै यह कभी किसीके साथबहुतबड़े रहनेवाले साथीको नहींपाता है और न अपनी देहकेसाथ बड़े रहनेवाले साथीको पाता फिर अन्य किसका साथ पावेगा हे राजा अब तेरा पिता और पितामह कहां है हे पवित्रात्मा अब न तुम उनको देखते हो न वे तुमको देखते हैं स्वर्ग नरक का देखनेवाला पुरुष नहीं है सब पुरुषों का नेत्र रूप शास्त्र है सो हे राजा इस स्थानपर उसको प्राप्त करो दूसरे के गुण में दोष न निकालनेवाला ब्रह्मचारी पुरुष पितृ देवता आदि के ऋण से दूरहोने के लिये सन्तान को उत्पन्न करे वह यज्ञाभ्यासी सन्तान पैदाकरनेवाला पहिला ब्रह्मचारी विवेकयुक्त हृदय के अन्धकार और शोक और मिथ्या को दूरकर इसलोक और परलोक की इच्छाको दूरकर परमात्मा को आराधन करे राग द्वेष रहित धर्म्म को करताहुआ बुद्धि के अनुसार धनों को इकट्ठा करके धर्म्म पूर्वक राज्य करनेवाले का यश लोकपर लोक में बढ़ताहै इसप्रकार कारणों से भरेहुये सम्पूर्ण बचनों को जानकर अत्यन्त शुद्धबुद्धि और शोक से पृथक् राजा जनक अश्मऋषि से पूछकर अपने घरको गये हे राजा इसी प्रकार तुमभी शोक को त्यागो हे इन्द्र के समान उठो और आनन्द करो तुमने क्षत्रीधर्म्म से पृथ्वी को बिजयकिया उस को भोगो और उसका अनुमान कभी मतकरो ॥ ५९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणि राजधर्मे अष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## उन्तीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि राजेन्द्र पांडुपुत्र युधिष्ठिर जब मौनहुये तब पांडुनन्दन अर्जुन ने श्री कृष्ण जी से कहा कि हेमाधवजी शत्रुहन्ता धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर सम्बन्धियों के शोक से महा दुःखी हैं इस शोक समुद्र में मग्नको आप समाश्वासन करें इसी के शोकसे हम सब भी शोकवान् हैं इससे हे जनार्दन इसका यह महाशोक दूर करने को आपही समर्थ हैं ऐसे महात्मा

अर्जुन ने जब श्रीकृष्णजी से बचन कहे तब अविनाशी कमल लोचन गोविन्दजी राजाकी ओर दृष्टिकरके सन्मुख हुये केशव गोविन्दजी बाल्य अवस्था से राजा युधिष्ठिर को अर्जुनसे भी अधिक प्राणों से प्यारेथे और उनके बचनों को भी धर्म्मराज कभी उल्लंघन नहीं करते थे बातों से प्रसन्नकर महाबाहु श्रीबासुदेवजी चन्दन से चर्चित पर्वतकी कुक्षि समान युधिष्ठिर की भुजा को पकड़कर सुन्दर नेत्र दन्तों से शोभायमान कमल से प्रफुल्लित मुखारविन्द से बोले कि हे पुरुषोत्तम युधिष्ठिर तुम शोक से अपने मुख को मत सुखाओ जो इस युद्ध में मारेगये वह अब सुगमता से मिलने कठिन हैं हे राजा जैसे कि स्वप्न में प्राप्त होनेवाली बस्तु जाग्रत् अवस्था में मिथ्या हैं इसीप्रकार वह क्षत्री भी हैं जो महारण में मारेगये युद्ध को शोभित करने-वाले सब शूरबीर सन्मुख युद्ध करके परलोकको गये उनमें कोई न भगा और न किसी ने पीठि फेरी सब वीर भारी संग्राममें महा युद्ध कर शस्त्रों से अपने देहों को पवित्रकर प्राणों को त्याग त्याग स्वर्गलोक को गये उनका शोक करना वृथा है क्षत्रीधर्म्म के जाननेवाले वेद और वेदांगों के जाननेवाले शूरों ने वीरों की पवित्र गतिको पाया यह शोच योग्य नहीं है इसस्थल में इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसको कि पुत्रों के शोक में डूबेहुये राजा संजय से नारदजी ने कहा कि हे राजा संजय हम तुम और सब संसार सुख दुःखों से संयुक्त मरेंगे इसमें कौन संयोग है पहिले समय के राजाओं का माहात्म्य मेरेमुख से सुनो हे राजा सावधान हो फिर दुःख को त्यागोगे तुम इन महा-नुभाव राजाओं को सुनकर अपने दुःख को दूर करो यह वृत्तान्त कठिन ग्रह का शान्त कर्त्ता आयु बर्द्धक राजाओं के श्रवण करने योग्य चित्तरोचक है इसको यथावत् सुनो हे राजा संजय हम अविक्षित और मरुत राजा को मृतक हुआ सुनते हैं जिस महात्मा राजा के यज्ञ में इन्द्र बरुण के साथ वह देवता जो विश्व को रचतेहैं और जिनके आगे चलनेवाले बृहस्पति जी हैं आके बर्त्तमान हुये जिसने ईर्षा से देवराज इन्द्र को भी बिजय किया और इन्द्र के शुभ चाहनेवाले बृहस्पति जी ने उससे कहा था कि यज्ञ मतकरो उस की आज्ञा पाने से बृहस्पति जी के छोटे भाई सम्बर्त्त ने उसको पृथ्वी पर यज्ञ कराया तब यज्ञसीमा के वृक्षों से घिरीहुई पृथ्वी बिना परिश्रम अपने आप फल संयुक्तहुई और आविक्षत के यज्ञमें विश्वेदेवा सभासद हुये और महात्मा राजा मरुत के यज्ञमें भोजन परोसनेवाले साध्यगण और मरुत्गण नाम देवता हुये जिन्हों ने यज्ञमें अमृत पान किया और यज्ञ में इतनी दक्षिणा दीगई कि देवता मनुष्य और गन्धर्वों से लेचलना कठिन हुआ हे संजय जो वह धर्म्मज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य्य नाम चारों कल्याणमय

तुझ से और तेरेपुत्र से भी अधिक पवित्र होकर मरगया तो ऐसी दशा में अपने पुत्रके विषय में तुम शोक न करो और सुहोत्र अतिथिको भी सुनते हैं कि कालबश हुआ जिसके देशमें इन्द्रने एक वर्ष पर्य्यन्त सुवर्णकी वर्षा करी इस पृथ्वी का नाम वसुमती तभी से हुआ उसी राजाके समयमें नदियों ने भी सुवर्ण धारण किया और लोक पूजित इन्द्र ने नदियों में कूर्म्म कर्कट नक्र मकर शिंशुक आदि जीवों को गिराया उसके पीछे राजा अतिथि ने हजारों लाखों सुनहरी मछली मगर कछुओं को गिराहुआ देखकर आश्चर्य्य किया फिर यज्ञकर्त्ता उस राजाने कुरुजांगल देशों में जाकर यज्ञों के बीच में ब्राह्मणों को बहुतसा सुवर्ण दान किया जबकि वह महादानी प्रतापी इसलोक को त्यागगये तो तुम शोकको किस निमित्त करते हो दक्षिणा पूर्वक यज्ञ न करनेवाले पुत्रका शोच त्याग शांत होकर चैतन्य होजाओ और सुनते हैं कि राजा अंगबृहद्रथभी मृत्यु बशहुये जिसने दशलाख श्वेत अश्व और सुवर्ण भूषणों से भूषित दशलाख कन्याओं को यज्ञमें पूजन करके ब्राह्मणों को दिया और वस्त्र भूषणों से अलंकृत उत्तम वर्ण के दशलाख हाथी और बैल उनके दक्षिणारूपी यौतुक में दिये जिनके साथ एकहजार गोपाल भी थे विष्णुपदनाम पर्वतपर यज्ञकरनेवाले राजा अंग के अमृत से इन्द्र देवता और दक्षिणाओं से ब्राह्मण महा तृप्त हुये हे राजेन्द्र प्राचीन समय में इस राजा के हजारों यज्ञों में देव ब्राह्मण गन्धर्व दक्षिणा के भारको न लेजासके ऐसादूसरा पुरुष उत्पन्न नहीं हुआ न होगा राजा अंग ने इसधनको सातसोम संस्थाओं में दान किया वह भी तुझ से और तेरेपुत्रसे अत्यन्त अधिक धर्म्मात्मा दान-धर्म्म यज्ञोंको कर मरगया तो तुम क्यों अपने पुत्र के शोक में डूबरहेहो और औशीनरके पुत्र शिविको भी मृतकहुआ सुनाहै जिस राजाने अपने शब्दा-यमान रथसे पृथ्वी को शब्दमय करके चर्म्म के सदृश लये अर्थात् बिजय किया और एक रथसे पृथ्वी को एक क्षत्र किया और उसके जहांतक नौघोड़े आदि पशुथे सबको उस औशीनरके पुत्र शिवी ने दान किया ब्रह्माजीने उस के धनको ले चलनेवाला किसी को नहीं समझा उस शिवि राजा के समान पृथ्वी में न है और न होगा तुम दक्षिणायुक्त यज्ञ के न करनेवाले अपने पुत्र को न शोचो और भरतबंशी राजा दुष्यन्त और शकुंतला के पुत्र महात्मा और धनी भरतको भी मराहुआ हमने सुना जिसने यमुनाजी के पास देव-ताओं के लिये तीनसौ घोड़े और सरस्वती के पास बीस सहस्र घोड़े और गंगाजी के पास चौदह सहस्र घोड़ों को बाँधकर प्राचीन समयमें सहस्र अश्व-मेध और राजसूय यज्ञ से देवताओं का पूजन किया उसके समान दूसरे राजा लोगों में कर्मका करनेवाला कोई न हुआ उसने हजारों वेदियां बनवाकर

यज्ञमें सहस्र बिधि उत्तम २ घोड़ोंका हवन किया उसीयज्ञमें भरतने कण्वऋषि को हजार पद्मधन दक्षिणा में दिया वह भी महात्मा तुझ से और तेरेपुत्र से अधिक पुण्यात्मा होकर मरगया इससे तुमभी पुत्र शोक करने के योग्य नहीं हो और हे संजय दशरथजी के पुत्र रामचन्द्रजीको भी देह छोड़नेवाला सुनते हैं उन्होंने प्रजाको और ऋषिलोगों को अपने पुत्र पिताके सदृश पालनकिया जिनके देश में कोई स्त्री बिधवा और अनाथ नहीं हुई पिताके समान राज्य किया समय २ पर बर्षा होतीथी खेतियां अच्छे प्रकारसे होतीथीं उनरामचन्द्र जी के राज्यकरने में सदैव सुकालहुआ और कोई जीव उनके राज्यमें जलमें नहीं डूबा और अग्निमें कोई बिपरीत दशा से नहीं भस्म हुआ और रोगोंसे कभी किसी को भयभी नहीं हुआ श्रीरामचन्द्रजी के राजाधिराज होने में स्त्री और पुरुष हजार बर्षकी अवस्था प्राप्त करनेपर भी किसी रोगसे पीड़ित नहीं हुये और उनके समयमें कभीस्त्रियोंका शास्त्रार्थ अर्थात्बितंडाबाद नहींहुआ तोपुरुषों का कैसे होता प्रजाके मनुष्य सदैव धर्म्मनिष्ठ होतेरहे और सब छोटे बड़े उनके राज्य में सन्तोषी निर्भय और सफल मनोरथ स्वतन्त्र और सत्य ब्रत होते हुये और वृक्षभी सदैव फलफूल युक्त निरुपाधि हुये और सबगौवें एकएक द्रोण प्रमाण दूध देतीथीं इस महात्मा ने चौदहबर्ष बनमें तपस्वियों का भेष धारण कर बड़े भारी दशअश्वमेधयज्ञों को किया और आजानुबाहु तरुणश्याम अरुणाक्षयूथप मातंग समान शोभायमान मुखारबिन्द सिंहके स्कन्ध महा भुजवाले रामचन्द्रजी ने श्री अयोध्याजी में ग्यारह हजारबर्ष पर्यन्त राज्य किया वहभी तुझ पिता पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा दानी प्रतापी होकर इस अनित्य शरीर को त्याग गये फिरतू पुत्रशोक व्यर्थकरता है और राजा भगीरथजीको भी मृतकहुआ सुनते हैं कि जिसके रचे हुये यज्ञ में इन्द्र अमृत पानकरके मदोन्मत्तहुये और उसी के बलसे देवोत्तम देवेन्द्र ने हजारों असुरों को बिजय किया और अपने विस्तृत यज्ञ में उस राजा ने पूजन के पश्चात् सुबर्ण के आभूषणों से भूषित दश लाख कन्या दक्षिणा में पुण्यकरी वह सब कन्या चार चार घोड़ों के रथपर सवार थीं और हरएक रथ के साथ सुवर्ण भूषित बस्त्रों से अलंकृत सौ सौ हाथी थे और एक एक हाथी के पीछे एक एक सहस्र घोड़े और प्रत्येक घोड़ेके पीछे एकएक सहस्र गौ और प्रत्येक गौ के पीछे हजारों भेड़ बकरियां थीं तब उससमीपवर्ती राजा भगीरथ की गोदी में श्रीगंगाजी बैठगईं इसी कारण उनका भगीरथ की पुत्री उर्बशीनाम प्रसिद्ध हुआ उस इक्ष्वाकुबंशी राजा भगीरथ की पुत्री त्रिपथगामी श्रीगङ्गाजीने जिसके पुत्रीभावकोपाया ऐसे महातेजस्वीप्रतापी त्रिवर्गी भी जबमृत्युने ग्रासकिये तोतू अपने पुत्रहीको क्या शोचताहै और

इसीप्रकार राजा दिलीपका भी मरना सुना जिसमें अनेक कर्म्मों की प्रशंसा ब्राह्मण लोग करतेहैं ऐसे सावधान संपूर्ण संसारके राजाने अटूट धन से भरीहुई पृथ्वीको उस बड़े यज्ञमें ब्राह्मणोंको दानमें देदिया उस यजमानकी यज्ञमें पुरोहितजीने हिमालयदेशके हजारों हाथियोंको दक्षिणामेंपाया और शोभायमान सुवर्णके स्तंभवाले हरएक यज्ञ कर्म्मके करनेवाले इन्द्र आदि देवता उसके समीप वर्त्तमानहुये उसके उस स्वर्णमय यज्ञमें स्वर्ण निर्मित वस्त्रोंको धारण कर हजारों देवता और गन्धर्वों ने नृत्य किया और सप्तस्वरोंके अनुसार बाजा बजाया और विश्वावसु गन्धर्व ने वीणा को ऐसा बजाया कि जिस को सबलोगों ने यही समझा कि यह हमारेही आगे बजाता है अन्य राजाओं में कोई ऐसा नहुआ जो दिलीप कैसे कर्म्म करे जिसके मार्ग में सुवर्ण वस्त्रभूषित हजारों हाथी सोते थे जिन पुण्यात्मा पुरुषों ने इस राजा दिलीप को देखा वह भी स्वर्ग्ग के विजय करने वाले हुये दिलीप के महल में तीन शब्द सदैव होते थे वेदपाठ का धनुष का और दान देने का ऐसा होकर जो मृत्यु वशहुआ तो तू भी शोक मतकर और युवनाश्व के पुत्र मांधाता को भी मरा सुनते हैं जिस बालक को मृत्यु देवता ने उसके पिताकी जंघा से निकाला जोकि दही मिले घृत से उत्पन्न पिता के उदर में वर्द्धमान श्रीमान् तीनों लोकों का विजय करने वाला प्रतापी राजा हुआ पिता की गोद में सोने वाले उस देवस्वरूप को देखकर देवता लोगों ने परस्पर में यह कहा कि यह किसको भक्षण करेगा और इंद्रनेही भयभीत होकर कहा कि मुझेही यह खाजायगा इसी कारण उसका नाम इन्द्रने मांधाता रक्खा तदनन्तर उसके पोषण के लिये इन्द्रनेही अपने हाथ से दुग्धकी धार उसके मुख में गेरी तो वह इन्द्रके हाथही को भोजन करके बहुत शीघ्र एकही दिन में बड़ाहुआ और बारह दिन में बारह बर्ष की अवस्था का होगया यह सब पृथ्वी उस महात्मा मान्धाता को एकही दिन में प्राप्तहुई समरभूमि में वह धर्म्मात्मा इन्द्रके समान शूरहुआ इसीसे इसने अंगार, मरुत, असित, गय, अंग, बृहद्रथ आदि राजाओं को युद्ध में विजय किया जब युवनाश्वका बेटा मांधाता रणभूमि में अंगार के साथ में लड़ा तब देवताओं ने धनुष की टंकारोंसे जाना कि स्वर्गका चूर्ण हुआ सूर्य्योदयसे सूर्य्यास्त पर्य्यन्त मांधाताका क्षत्र कहा जाता है हे राजन् उसने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञों से पूजन करके ब्राह्मणों को लालमछलियोंका दानकिया उनसे एक योजनऊंची सुवर्णकी मछली और दशयोजनऊंची चांदीकी बड़ी मछलियोंको ब्राह्मणोंकेअर्थ दान किया और दूसरे मनुष्योंने उनको बिभाग किया वहभी तुमसे उत्तमथाइस कारण तुम पुत्रका शोक मतकरो और नहुषकेबेटे ययाति को भी मराहुआ

सुनते हैं जो इस पृथ्वीको सप्तसमुद्रों समेत बिजयकरके धर्म्म शास्त्रकी विधि से परिमित पृथ्वी में वेदियां बनाकर पूजन करता वेदियोंसे पृथ्वीको सुशोभित करता चारोंओर को गया अर्थात् समुद्र के किनारे तक पहुंचा क्रतु नाम हजार यज्ञ और सौ अश्वमेधसे यज्ञोंसे पूजनकर तीन सुवर्ण के पर्व्वत दानकरके ऋत्विज अर्थात् यज्ञ करानेवालेको प्रसन्न किया नहुषकेबेटे ययातिने आसुरी बुद्धिके अनुसार दैत्य और दानवोंको मारकर सम्पूर्णपृथ्वीको अपने सबपुत्रों को बिभाग करदी यदुद्रुह्य अणुतुर्वस इनचारों बेटोंको दूसरे राज्य और देशोंमें छोड़कर और मुख्यराज्य परपुरुको अभिषेककराके स्त्रीके साथ बनको गया हे संजय वह तुझसे और तेरेपुत्रसे अधिकतर होकर मृत्यु बश हुआ तो तू अपने पुत्रका शोक मतकर हमने अम्बरीषऔर नाभागको मरा हुआ सुनाहै प्रजाने राजाओं में उत्तम जिस पालन करनेवालेकोचाहा जिस बड़े महात्मा राजाने अपने महायज्ञ में दशलाखयज्ञकरने वाले राजा लोग अपने यज्ञके ब्राह्मण और अतिथियोंकी सेवा करनेके निमित्त नियत किये इस बातको नपहिले किसीने कियाऔर नआगे करेंगे बुद्धिमान्लोग राजा अम्बरीष की इसप्रकार प्रशंसाकरतेहैं कि उस राजाके यज्ञमें एकलाख दशहजार राजालोगों ने ब्राह्मणों की सेवा करने के कारण हिरण्यगर्भलोक पाया ऐसा भी प्रतापी तेजस्वी जब मरगया तो तू किसकारण पुत्रकाशोक करताहै इसके बिशेष हमने चैत्ररथके पुत्र शशिबिंदुको भी हमने मृतकहुआ सुनाहै जिसमहात्माकी एकलाख स्त्रियां थीं और एकलाख पुत्रसबकेसब महाधनुषधारी थे और प्रत्येक राजपुत्र के पीछे सौसौ राजकन्या चलीं और हरएक कन्याके साथ सौसौ हाथी और प्रतिहाथी सौसौ रथ और प्रत्येकरथ के साथ सौसौ घोड़े और घोड़े घोड़े के साथ सौसौगौ और गौओं के पीछे अनेक भेड़ बकरियांथीं ऐसे असंख्य धनको शशिबिंदुने बड़े अश्वमेधमें ब्राह्मणोंको बांटदिया उसकोभी तू महाउत्तम समझकर अपने शोककोदूरकर गये और अमूर्तयको भी हमने मृतक सुनाहै यह राजा सौबर्ष पर्य्यन्त यज्ञ के शेष अमृत अन्नका भोजन करनेवाला हुआ अग्निने उसको बरदानादिया और गयनेभी बहुतसे बरमांगे जिनमें एकयह बरदानहै कि मेरा धनदानकरते करते न निबटे और धर्ममें पूरीश्रद्धा बनीरहै और मेरेचित्तमें सदैव सत्यता बनीरहै यहसब बरदान अग्निने उसको दिये अमापूर्णिमा चातुर्मासमें पूरे सहस्रबर्ष पर्य्यंत अश्वमेधयज्ञ से परमेश्वरका पूजन किया सहस्रवर्षपर्य्यन्त उठउठकर एकलक्ष गौ और इतनेही खच्चर दान किये और धनसे ब्राह्मणों को और अमृतसे देवताओंको और स्वधासे पितरोंको और कामशक्ति से स्त्रियों को प्रसन्न किया और महा अश्वमेधयज्ञमें उसराजाने पचास हाथचौड़ी और

सौहाथ लम्बी सुवर्णकी पृथ्वी बनवाकर ब्राह्मणोंको यज्ञ दक्षिणादी और जितने बालूके कण गंगामें हैं उतनेही राजागय अमूर्त्तरयने गोदानकिये हे संजय जब ऐसाभी धर्म्मात्माकाल ने न छोड़ा तो तू क्या अपने पुत्रकाशोक करता है रन्तिदेव और सांत्यकोभी हमने स्वर्गवासी हुआ सुनाहै जिस महात्मा तपोधनने आराधना उत्तमकरके इन्द्रसे बरप्रदान पायाकि हमारेबहुत अन्न उत्पन्नहो और अतिथियों के भोजनों में हमारी श्रद्धा न घटै और किसी से कोई बस्तु न मांगे आपसे आप उसमहात्मा रन्तिदेवके पास सबपशु आये और कहा कि पितृकार्य्यमें हमको लगाओ इसीकारण उनपशुओं के चर्म्मों से जो रुधिर निकला उसी से चर्म्मण्वतीनदी प्रसिद्धहुई सभा नियतहोजाने पर वहराजा एक ब्राह्मण को सौसौ निष्कदेनेको पुकारताथा परन्तुवह नहीं लेतेथे जब हजार निष्कदेताथा तब ब्राह्मणों को पाताथा पितरों के मालिक श्राद्धकाजो सामानहै उसमें जो पीतलके पात्रहोतेहैं वह यहहैं कि कलश थाली यज्ञपात्र कराह पिठर आदि वह सबसामान सुवर्णरचितथा और जबबीस सहस्र राजा उसके घरमें रात्रिको बर्त्तमानहुये तब उन्होंने सौ२ गौ दक्षिणामेंपाई वह उत्तम कुण्डल धारी रसोईदार पुकारतेथे कि अब अनेक व्यञ्जनोंको भोजन करो पहला मांस अब नहीं है वहभी तुम से और तुम्हारे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा पुरुष मरगया तो तू क्यों पुत्रशोक करता है और इक्ष्वाकुवंशी महाबली महात्मा राजा सगर को भी मराहुआ सुनतेहैं जिसके पीछे पीछे उसके साठ हजार पुत्र चलते थे जैसे कि बर्षा के अन्त में निर्मल आकाश में चंद्रमा को हजारों नक्षत्र घेरेहुये चलते हैं प्राचीन समय में उसके प्रतापसे पृथ्वी एक छत्रवाली हुई और हजार अश्वमेधों से उसने देवताओंको प्रसन्न किया और अनेकसुबर्ण भूषित बरांगनाओंसे शोभित सब वस्तुसम्पन्न महलोंको बहुतसे धनसे पूर्ण करके ब्राह्मणोंको दान किया और क्रोधकरके समुद्रों से अंकित पृथ्वी को खुदवाया इसीकारण समुद्रका सागरनाम हुआ वहभी महा तेजस्वी जब काल बलीने दबालियातो तू क्या अपने पुत्रका शोक करताहै और वेणु के पुत्र राजा पृथुकोभी मृतक सुनतेहैं जिसको बड़े २ ऋषियोंने बनमें अभिषेक कराया और लोकोंमें प्रसिद्धहुआ इसीसे उसका नाम पृथुरक्खा और यह निश्चयहै कि जो क्षत अर्थात घावसे रक्षाकरे वह क्षत्री कहलाता है इसकारण वेणुकेपुत्र राजा पृथुकी प्रजाने देखकरकहा कि हम अनुरक्तहैं अर्थात् प्रवृत्त हैं इससे राजा यह नामहुआ राजापृथुके राज्यमें वृक्षबिना परिश्रमकिये फलकोदेतेथे और पत्रमें मिष्टरसहोताथा और सबगौ एक २ द्रोण परमित दूध देतीथीं क्षेत्र और स्थानोंमें सब प्रकारके मनुष्य निर्भयहुये समुद्रकाजल इसके देखतेहीस्थिर होताथा और नदियां हटकर मार्गकरदेतीथीं कहीं इसकी ध्वजाकी रोकनहींहुई

इस राजा ने चारसौ हाथ ऊंचे इक्कीस सुवर्णके पर्वतों को महायज्ञ अश्वमेधमें ब्राह्मणों को दान किया ऐसा महादानी धर्म्मात्मा जब मरगया तो निरर्थक पुत्रशोक तू क्यों करताहै हे संजय तुम मौन होकर क्या बिचाररहेहो मेरे इन बचनों को नहीं सुनते हो मैंने जो इतने इतिहास कहे वह मिथ्या नहीं हैं जैसे आसन्नमृत्यु मनुष्यको हितकारी बचन असह्य होतेहैं तैसे ही तूभी मेरेबचनों को सत्य नहीं समझता संजय बोला कि हे नारदजी मैं चित्त से आप के वचनोंको सुनताहूं यह राज ऋषियोंकी कीर्त्तियोंसे भरेहुये अनेक शोकोंके दूर करनेवाले बचनहैं हे महर्षी आप ने निष्फलबार्त्ता कोई नहीं कही मैं आप के देखने से ही शोक रहित हूं और हे ब्रह्मवादी मैं आप के अमृतरूपी बचनों से तृप्त नहीं होता हेनारद जी आपका दर्शन सफल होता है इससे अनुग्रहकरके इस पुत्रको फिर जिलाओ जिससे कि मैं उससे मिलकर अपने शोक को मिटाऊं नारदजी बोले कि जो यह तेरा स्वर्णष्ठीवी नामपुत्र जिसको पर्व्वत ऋषि ने तुझको दिया था उसको मैं फिर तुझे देता हूं जिसकी हिरण्यनाभि होकर सहस्र बर्ष की अवस्था होगी १५० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतपर्वणिराजधर्म्मेएकोनत्रिन्शत्तमोऽध्यायः २९।

# तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि संजयका वह पुत्र हिरण्यगर्भ कैसे हुआ उसको पर्व्वत ऋषि ने कैसे दिया और किस कारण से मरगया उस समय सब मनुष्यहजार बर्ष की अवस्था रखते थे तो संजय का पुत्र कौमार अवस्थाही में कैसे मरगया आश्चर्य है कि वह नाममात्र को सुवर्णष्ठीवहुआ अथवाकैसे सुवर्णका उगलनेवाला हुआ इस बातको जानना चाहताहूं श्रीकृष्णजी बोले कि इस स्थानपर मैं यह वृत्तान्त तुझ से कहता हूं कि यह नारदऋषि और पर्व्वत ऋषि दोनों मामा भानजे थे लोकों के हितके लिये स्वर्ग से पृथ्वी में आये और पूर्व्व समय में वह दोनों नरलोक में बड़ी प्रीति पूर्व्वक बिहार करते फिरते थे पवित्रान्न हव्यचावल और घृतसंयुक्त देवताओंके भोजनों को करके मामा नारदजी और उनके भानजे पर्व्वत ऋषि पर्यटन करने को पृथ्वीपर घूमाकरते थे और दोनों तपोमूर्त्ति नरलोक बासियों के पदार्थों को भोजन करके स्वेच्छाचारी हो इस पृथ्वी के चारों ओर को घूमे और बड़ी प्रीतिपूर्वक परस्पर में दोनोंने यह प्रणकिया कि हृदय में जो अच्छा बुरा कोई संकल्पउठे उसे आपसमें कहना योग्य है और जो कोई मिथ्या कहै उसके बदले शाप होवे इस प्रकारकी शर्त्तें करके वह लोकपूजित दोनों ऋषि संजयनाम राजर्षिके समीप पहुंचे और बोले कि हम दोनों तेरे शुभ के

लिये कुछ समय तक तेरे पास रहेंगे हेराजा तुम भी बुद्धिके अनुसार हम दो-
नों के समान होओ राजाने तथास्तु कहकर दोनोंका सत्कार किया तदन-
न्तर किसी समय उन दोनों तपोमूर्त्तियोंको प्रसन्न जानकर राजाने यह कहा
कि यह सुन्दर वर्ण स्वरूपवान् मेरी अकेली पुत्री आपकी सेवा करेगी यह
कन्या अति सुशील नम्र देखने योग्य निर्दोष गुरु सेवा परायण चतुर कुमारी
कमल नेत्र प्रकाशमान वर्त्तमान है उन दोनों ने कहा कि बहुत अच्छीबात
है तब राजाने उस कन्याको शिक्षाकरी कि हे पुत्री तू इन दोनों ऋषियोंकी
पिताके समान सेवाकर वह सुशील कन्या राजाकी आज्ञा पा उन दोनों म-
हर्षियोंकी श्रद्धा पूर्व्वक सेवा करने लगी उसकी सेवा और अपूर्व्व लावण्यता
से नारदजीको कामदेवने सताया तब उस वृत्तान्तको नारदजीने अपने भा-
नजे पर्वत ऋषिसे नहीं कहा परन्तु पर्वतऋषिने अपने तपके बलसे नारदकी
अंगचेष्टाओं से उस वृत्तान्त को जाना और अत्यन्त क्रोध युक्तहो काम पी-
ड़ित नारदजीको शापदिया कि सावधानहो आपने मुझसे शर्त्तकरके कहा
था कि हृदयमें जो बुरा भला संकल्पहो उसको परस्परमें कहना योग्यहै उ-
सको आपने छिपाया हे ब्रह्मन् आपने उस प्रतिज्ञा किये हुये वचनको मि-
थ्या किया इससे मैं शापदेताहूं कि यही कुमारी आपकी निश्चय करके भार्या
होगी हे स्वामी बिबाह समयमें यह कन्या और अन्य मनुष्य तुमको बानर
रूप देखेंगे जो कि आपके असली रूपको नाशकरेगा यह सुनकर नारदने
भी क्रोधितहोकर उस अपने भानजे पर्व्वत ऋषिको शापदिया कि तू भीतप
ब्रह्मचर्य सत्यता आदि धर्मोंको सदैव करताहुआ भी स्वर्गलोक न पावेगा
ऐसे प्रकारसे वह दोनों क्रोधाग्निमें भरेहुये शापाशापीकरके इधरउधर चले
गये और बुद्धिमान् पर्वतऋषि सम्पूर्ण पृथ्वी परघूमे और अपने तेज बलसे
न्यायकीरीति से पूजन पानेवाले हुये इसके पीछे नारदजीने उस संजय की
पुत्रीको धर्मसेपाया अर्थात् पाणिग्रहणके मंत्रपढ़ने वालोंकी आज्ञासे नारद
जी को बानररूपमें देखकर अपमान नहींकिया और प्रसन्नहुये अपने स्वामी
के समीप प्राप्तहुई उस पतिब्रता ने दूसरे देवता मुनि यक्ष गन्धर्व आदि को
भी पति नहीं बनाया तदनन्तर किसीसमय तपोमूर्त्ति पर्वतऋषिने कहीं वनमें
घूमतेहुये नारदजीको देखा और नमस्कारकरके नारदजीसे कहा कि हे स्वामी
आप मेरे स्वर्गजाने के बिषयमें शाप अनुग्रह करके कृपाकरो तब नारदजीने
पर्वतऋषिसे कहा कि मुझे आपने प्रथम शापदियाथा कि तुम बानररूप
होगे इसीकारण पीछेसे ईर्षा युक्त मैंने भी तुमको शापदिया कि अबसे लेकर
अन्त तक स्वर्ग में नहीं रहसकेगा यह बात कहने योग्य नहीं है क्योंकि तुम
हमारे पुत्रके समानहो तब उन दोनों मुनियोंने परस्परमें शापको मोचनकिया

तब वह सुकुमारी संजय कुमारी उस शोभायमान नारदके स्वरूपको देखकर दूसरे पुरुषकी शंकासे भागी तब उस पर्वतऋषिने उस निर्दोष भागनेवाली कुमारीसे समझाकर कहा कि यह तेरा पतिहै इसमें बिचार न करना चाहिये यह परमधर्म्मात्मा नारदजी तेरेही पति हैं इसमें तू सन्देह मतकर तब उस कन्या ने पर्व्वत ऋषि से शाप दोष को समझकर चित्त में बिश्वास किया कि नारदजी ने अपने मुख्य स्वरूप को पाया तब पर्व्वत ऋषिभी स्वर्ग को गये और नारदजी अपने स्थान को आये वासुदेवजी बोले कि यह भगवान् नारदऋषि जो सबको प्रत्येक वार्त्ता प्रकट करते हैं उनसे जब तुम पूछोगे तब वह इसके यथार्थ वृत्तान्त को कहेंगे ४४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्व्वणिराजधर्मेत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३० ॥

# इकतीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि श्री कृष्णजीके कहनेसे राजा युधिष्ठिर ने नारदजीसे कहा कि हे ब्रह्मन् मैं आपके मुखारविन्द से सुवर्णष्ठीव के जन्म को सुना चाहताहूं यह सुनकर नारदमुनिने धर्मराज से कहा कि सुवर्णष्ठीवका जैसा वृत्तान्त है कि वह सब केशवजीने आपसे कहा उसमें जो कुछ शेष रहगयाहै वह मैं तुझसे कहताहूं कि मैं और मेरा भानजा महा मुनि पर्वत निवास करनेकी इच्छा करके महाप्रतापी राजा संजयके पास गये वहां हम दोनोंने शास्त्रोक्तकर्म के द्वारा पूजितहो सब इच्छाओंसे पूर्ण उसके स्थान में निवास किया बहुत बर्षों के पीछे यात्रा करनेके समय पर्वतने मुझसे यह सार्त्थक वचन कहा कि हे ब्रह्मन् हम दोनों इस महाराजके घरमें बड़े पूजित होकर रहे हमको उचितहै कि इसका कल्याण बिचारें तब मैंने उस शुभदर्शन पर्वतऋषिसे कहा कि हे भानजे पर्व्वत यह सब सामर्थ्य तुझमेंहै राजाको बरोंसे लुभाना चाहिये जो २ वह बरमांगे वह उसको दो और वह हम दोनों के तपसे सिद्धीको पावे तदनन्तर पर्व्वतऋषिने उस प्रतापी संजयको बुलाकर कहा कि हे संजय आपके सत्यता पूर्व्वक होनेवाले कामोंसे हम बहुत प्रसन्नहैं सो हे नरोत्तम तुम हम दोनोंसे कोई बरमांगो देवताओंके पीड़ा न होनेसे मनुष्योंका भी कल्याण होताहै हे राजा आप उस बरको लीजिये तुम हम दोनोंकी ओर से पूजनके योग्यहो संजय बोला जो आप मुझसे प्रसन्न हैं इतनेही से मेरा बड़ा लाभहुआ फिर पर्व्वतऋषिने उत्तरदिया कि हे राजा उस चित्तकी इच्छाको मांगो जो बहुत कालसे आपके हृदयमें है संजय बोला कि मैं ऐसा पुत्र चाहताहूं जो महा पराक्रमी वीर दृढ़ ब्रतधारी विद्यावान् महा प्रारब्धी इन्द्रके समान तेजस्वी आयुष्मान् हो पर्वत बोले कि यह सब इच्छा

तेरी पूर्ण होगी परन्तु वह अवस्थामें पूर्ण न होगा तेरे हृदयमें यह संकल्प इंद्रके ऐश्वर्य्य के निमित्त है तेरा पुत्र सुवर्णष्ठीवके नामसे प्रसिद्ध होगा वह देवेन्द्र के समान तेजस्वी होगा परन्तु इंद्रसे रक्षा होनी चाहिये तब संजयने महात्मा पर्वतऋषिको प्रसन्न करके कहा कि आप ऐसी कृपाकरें कि इंद्रसे भय न होवे हे मुनीश्वर मेरापुत्र आपके महातपसे आयुर्दावान् होवे पर्वत जीने इंद्रकेहेतुसे उसको कुछ उत्तर नहीं दिया फिर नारदजी कहतेहैं कि मैंने राजा संजयसे कहा कि हे महाराज आपमुझको यादकरना मैं तुम्हारे पुत्रको यमराजके फन्देसे छुटाकर फिर उसी स्वरूपका करके दूंगा इससे हे पृथ्वीपति संजय शोच मतकरो ऐसा कहकर हम दोनों अपनी इच्छापूर्वक चले आये और राजा संजय इच्छानुसार अपने महल में पहुंचा तदनन्तर कुछ समय व्यतीत होनेपर राजऋषि संजयके पुत्र उत्पन्नहुआ वह बड़ा पराक्रमी और तेजसे देदीप्यमानथा और समयपाकर ऐसे बड़ाहुआ जैसे कि सरोवरमें कमल बड़ा होताहै वह नामके अर्थके अनुसार यथा नाम तथा गुणवान् होकर लोकमें बड़ा आश्चर्यकारी हुआ और इन्द्र उस पर्वतऋषिके बरदानको जानकर बृहस्पतिजीकी सलाह से अपने पराजयसे भयभीतहो उस कुमार के मारनेका मौका देखनेलगा और अपने दिव्य अस्त्र बज्रको आज्ञादी कि तुम ब्याघ्र रूपहोकर इस कुमारको मारो नहीं तो हे बज्र यह कुमार बड़ाहोकर मुझको मारेगा या पराजय करेगा जैसा कि पर्वतऋषिने राजासे कहा है जब इन्द्रने बज्रको यह आज्ञादी तब वह शत्रु हन्ता दिव्य अस्त्र कुमारके मारनेको ब्याघ्ररूप होकर सदैव सन्मुख आया करताथा और संजय भी अपने ऐसे पराक्रमी पुत्रके होनेसे निर्भयहोकर बनमें बासकरनेलगा फिर एकसमय वह बालक निर्जन बनमें गंगाजीके तटपर अपनी धात्रीको साथलिये क्रीड़ाकरने के निमित्त चारोंओरको दौड़ा उससमय उस महाबली गजेन्द्रके समान पराक्रमी पांचबर्षके बालकनेअकस्मात् उछलतेहुये उस प्रबलसिंहको देखा तो भयभीत हो कांपनेलगा और उसी समय उस ब्याघ्रने मारडाला तब वह धात्री पुकारी और वह शार्दूल उसको मारकर उसी स्थानपर अन्तर्द्धान होगया और देवराजकी माया से गुप्तहोगया तब उस धात्रीके रोनेका महा ब्याकुल शब्द सुनकर वह राजा संजय बनसे दौड़ा और वहां आकर अपने पुत्रको मराहुआ पृथ्वीपर पड़ा देख व्याकुल हो उसने मृतक पुत्रको छातीमें लगाकर महा बिलापकिया तदनन्तर उसकी सब माता भी महा घोर बिलाप औररोदन करती हुई वहां आई जहां राजा संजय शोक कररहाथा उससमय राजा ने मुझको स्मरण किया तब मैंने जाकर उसको, दर्शन दिया उस समय उस शोक ग्रस्त ने मुझ से वह बचन कहे जो श्रीकृष्णजी ने तुमको सुनाये फिर

इन्द्रकी सलाह और नारदजी की कृपा से उसका सुवर्णष्ठीवी पुत्र जीउठा वह ऐसाही होना था उस होनहार से बिपरीत करना असम्भव है तब उस पुत्रको देख कर उसके माता पिता प्रसन्न हुये और राज्य देकर तप के द्वारा स्वर्गबासी हुये उस सुवर्णष्ठीवी ने अपने माता पिता के मरने के अनन्तर ग्यारहसौ बर्ष पर्य्यन्त पृथ्वी पर राज्य किया और बड़े २ यज्ञोंके द्वारा देवता और पित्रों को सन्तुष्ट कर वंशकी वृद्धि करनेवाले बहुत से पुत्रों को उत्पन्न करके समयानुसार मोक्षरूप मृत्यु पाई सो तुमभी इस शोक को दूर करो जैसे कि केशवजी और महात्मा व्यासजी ने तुमसे कहा है अपने बापदादेके राज्य में प्रवृत्त होकर धर्म्म करो अर्थात् संसारका पोषण करो और महान् यज्ञों से पूजन करके अभीष्ट पद को पाओगे ४७॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकात्रिंशत्तमोऽध्यायः ३१॥

## बत्तीसवां अध्याय॥

बैशम्पायन बोले कि महातपस्वी तत्त्वज्ञ व्यासजी ने युधिष्ठिरसे कहा कि हे कमल लोचन राजाओं का परमधर्म्म प्रजा का पालन है सदैव धर्म्म पर चलनेवाले पुरुषों का धर्म्मलोक को प्रमाण होता है सो हे राजा तुम बापदादे के राज्यपर नियत होजाओ ब्राह्मणों में तप का होना जो धर्म्म है वह सदैव वेद से निश्चयहोता है कि हे भरतर्षभ वह ब्राह्मणों का प्राचीन कर्म धर्म्म की मर्य्यादा है उस सब धर्म का रक्षा करनेवाला क्षत्रिय है जिस देशबासी मनुष्य ने आज्ञा को न माना वह मर्यादा भंग करनेवाला पुरुष पकड़ने के योग्य है और जो अज्ञान होकर नौकर या पुत्र अथवा तपस्वीभी मर्यादाको बिगाड़े उस पापी को राजा दण्ड दे या मारडाले और जो राजा ऐसा न करे तो वह भी पाप का भागी होता है और जो राजा नाशहोनेवाले धर्मकी रक्षा न करे वह धर्म का नाश करनेवाला है तुमने धर्मनाशक दुर्योधन आदि को उनके सहायकों और साथियों समेत मारा इससे हे पाण्डव तुमने धर्म्म से मारा अब तुम क्यों शोच करते हो राजा को उचितहै कि शत्रुओं को मारे और दान धर्म कर प्रेमसे प्रजाका रक्षा पूर्वक पोषणकरे युधिष्ठिर बोले हे तपोमूर्त्ति पितामह व्यासजी मैं आप के बचनों में सन्देह नहीं करताहूं जो आप कहते हो वह सब धर्म आपके दृष्टिगोचर है अर्थात् आप उन सबके ज्ञाता हैं हे ब्रह्मन् मैं ने राज्य के लिये मारने के अयोग्य बहुत से मनुष्यों को मारा वही कर्म मुझको भस्मकर रहा है तब व्यासजी बोले कि हे नरोत्तम ईश्वर में मिले पुरुष बुरा भला कैसा ही कर्म करें उन सब कर्मोंका फल ईश्वर ही में वर्त्तमान होता है जैसे कोई पुरुष बन में जाकर फरसे से वृक्ष को काटे तो

काटनेवाले को पाप नहीं होता अर्थात् फरसे को पाप नहीं होता कदाचित् ऐसा कहो कि फरसे के लेने और चलाने से कर्म के फल को भोगे तहां कहते हैं कि फरसे की लकड़ी और शस्त्र बनाने का पाप बनानेवाले मनुष्य में भी होना चाहिये सो नहीं होता है जब पहिले कर्त्ता में कर्मका फल नहीं हुआ तो दूसरे कर्त्ता में कहां से होगा इस कारण ऐसे सब कर्म ईश्वर की इच्छासे होते हैं जो यहबात अभीष्टनहीं है कि शस्त्रप्रहार करनेवालेका किया हुआ अकर्म फल शस्त्रबनानेवाला पाये ऐसी दशा में तुझमें पाप न होने से उसको ईश्वरही में जानो और जो यहीकहो कि अच्छे बुरे कर्मका कर्त्ता पुरुषही है ईश्वर नहीं है इस हेतु से भी यह कर्म अच्छा किया है राजा अदृष्ट होनहारके विरुद्धको कोई पुरुष अवश्य होनेवाले कर्म को नहीं त्यागता है जो यह समझते हो कि प्रारब्धभी अपने दूसरे जन्म का पुण्य पाप है उसके उत्तर में कहते हैं कि दण्ड और शस्त्र बनाने का पाप पुरुष में नहीं है तो पिछले कर्त्ता में क्यों मिलना चाहिये अब तीसरे पक्षको दोष लगाते हैं हे राजा जो तुम मारने के कर्म करने का कारण पुरुष को मानते हो तो इस प्रकार से भी तुझ हठबादी का कर्म बुरा नहीं हुआ है न होगा फिर लोकके पुण्य पाप अर्थात् सुखदुःखका कर्म मिलाने के योग्य है इससेयही जानो कि यह राजाओंका दण्ड धारण करना लोकको प्रमाण है अर्थात् लोक और शास्त्र दोनोंमें देखा जाता है इसमें सन्देहकरते हैं हेभरतर्षभ लोक में भीतो अच्छे और बुरे कर्म अवश्य प्राप्तहोते हैं और नेक अशुभ फलको पाते हैं यह मेरामत है इसकारण मुझको देहके त्यागनेके लिये नियमकरना उत्तम है इसका उत्तर यह है कि हे नरोत्तम ऐसाभीहो परन्तु तुमपापोंकी जड़ हो इससे उसकर्म को त्यागो जिसका फल दुःखन्तखाता है इसप्रकार चित्त में शोकमत करो हेभरतवंशी अपने निन्दित धर्ममें तुझको देहका त्यागकरना उचितनहीं है ऐसेनिन्दित कर्म सेभी महापाप होता है हेकुन्तीपुत्र सबकर्मों के प्रायश्चित्त शास्त्रों में लिखेहैं देहधारी उनको करे और देहका त्याग करने वाला नाशको प्राप्तहोता है हेराजा जो तुम देहधारी होकर प्रायश्चित्तको न करोगे तो मरकर पश्चात्ताप करोगे॥ २५॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेद्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ३२

## तैंतीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिरबोले हे पितामह मुझ राज्यकेलोभी अकेले नेपुत्र, स्त्री, भाई, पिता श्वशुर, गुरू, मामा, पितामह, महात्मा, क्षत्रिय, सम्बंधी, सुहृज्जन समानबय भानजे, जातवाले और नानाप्रकार के उद्योग करनेवाले राजालोग मरवाये

सो हेतपोधन ऐसे ऐसे बीर राजाओंको मारकर मैं क्याफल पाऊंगा इससेउन श्रीमान् राजाओंसे खाली पृथ्वीको देखदेख मैं सदैव चिन्ता करता हूं और ज्ञातिवालोंके घोर नाशको और सैकड़ों शत्रु और करोड़ों अन्य मनुष्यों को मराहुआ देखकर महादुःखी होताहूं उनकी श्रेष्ठ श्रेष्ठ स्त्रियोंकी क्यादशाहोगी जोपति पुत्र और अपने भाइयोंसे रहित होगईं वे तो दुर्ब्बल शोक से पीड़ित हम सब पाण्डवों को दुर्बचन कहती हुईं वे स्त्रियां पृथ्वीपर गिरेंगी या अपने पिता माता पतिभाई पुत्रआदिको न देख देहको त्यागत्याग यमलोक को जायँगी इसका निश्चय यह फलहोगा कि हमलोग धर्मकी सूक्ष्मतासे स्त्री बध कर्म्मके फलको पावेंगे और जो अपने सुहृज्जनोंको मार प्रायश्चित्तों से पापसे निवृत्तहोकर हमलोग मरेंगे तो अवश्य नरकमें पापोंको भोगेंगे इससे हे पितामह हम तप करके अपने देहोंको त्यागेंगे अब आप आश्रमों में जो उत्तम आश्रमहो उसको कहो वैशम्पायनबोले कि जबयुधिष्ठिरके ऐसे बचनोंको ब्यासजीने सुनातब बड़े विचारपूर्वक ब्यासजीबोले कि हे क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर क्षत्रिय धर्म्मको जानकर तुमब्याकुल मतहो यह सब क्षत्रियलोग अपने क्षात्रधर्महीसे मारेगये पृथ्वी के सबधन और बड़े यश के चाहने वाले कालके प्रेरित दूसरोंके मारने में प्रवृत्तथे इन सबने कालही से मृत्युपाई तुम न भीम न अर्जुन न नकुल न सहदेव कोई मारनेवाले नहीं हो कालने सबको बटोरलिया यह सब बातें कालके लिये हेतु रूपहोगईं कि जीव जीवके हाथों से मरते हैं इसकारण यह तुमकर्म रूप बन्धनको प्रधान रखने वाला अच्छे बुरे कर्म्मोंका साक्षी सुख दुःखादि गुणोंका समय पर फल देने वाला कालरूप ईश्वरहीजानो और हे युधिष्ठिर तुम उनके नाशहोनेके कर्म्मरूप कारणको भी समझो जिससे कि वह कालकी फांसीमें बांधेगये हे सावधान तुम अपने कर्म्मकी प्रवृत्तिताको जानो कि जब तुम ईश्वरेच्छासे प्रारब्धाधीन ऐसेकर्म्ममें प्रवृत्तकियेगये जैसे त्वष्टाका बनायाहुआ यंत्र अंगके हिलाने वालेके आधीन होता है उसीप्रकारयह जगत्कालसे संयुक्त कर्म्मों के द्वारा चेष्टा करताहै पुरुषोंके जन्म और नाशको दैव इच्छासे होना जानकर सुख दुःखकरना बृथा है जो यहां मिथ्याभी तेरेचित्तका बन्धनहै उसके लिये प्रायश्चित्त करना होताहै उसको तुमकरो और पहिले समयमें देवासुरों के युद्धमें यह सुनाजाता है कि असुर बड़े भाई और देवता छोटेभाई थे उनका भी युद्धधनही के निमित्त बत्तीसहजार वर्षतक हुआ देवताओंने पृथ्वी को एक समुद्र वाली और रुधिरसे करते हुये दैत्यों को मारा और स्वर्ग भी प्राप्त किया उसीप्रकार बेदके पारंगत होनेवाले अहंकार में भूले हुये ब्राह्मण पृथ्वीको पाकर दैत्योंकी सहायताके लिये तय्यारहुये वह तीनोंलोक

में प्रसिद्ध शालावृक नाम से अट्ठासी सहस्रथे वहभी देवताओं के हाथमें मारेगये इससे यहबात सिद्धहुई कि जो अधर्म्मकेजारी करनेवाले और धर्म्म का नाशहोना चाहते हैं वे मूढ़ बुद्धी मारनेकेही योग्य हैं जैसे कि दैत्य देवताओं के हाथसे मारेगये जो एक पुरुषके मरनेसे घरानाबचै और एक घराने के मारनेसे एक ग्राम बचे और एकग्राम के मारनेसे एकदेश भरबचे तोवह धर्म्मकानाश करने वाला नहींहै हेराजा कोई तो अधर्म्मरूप धर्म्म है और कोई धर्म्मरूप अधर्म्म है वह पंडितही के जाननेके योग्य है इस कारण तुम चित्तको स्वस्थकरो क्योंकि तुम शास्त्रों के ज्ञाताहो और पूर्व्व चरित मार्ग्गों पर चलतेहो ऐसेपुरुष कभी नरक को नहींजाते इससे तुम अपने इन शूरवीर छोटे भाइयों को आनन्ददो जो पुरुष पाप संयुक्तकर्म्म में न्यायही में स्नेह रखता है वह पाप करता हुआ भी उसी दशावाला होजाय कर्म्म करके निर्लज्ज होजाय तो उसीमें वह पाप पूराहोगा यह कहते हैं कि उसके पापका नाश प्रायश्चित्त कर्म्मसे नहींहै परन्तु तुम पवित्र कुल और दुर्योधनके दोष से कर्म्म करनेवाले होकर इस कर्म्म की अनिच्छा करके पश्चात्ताप करतेहो सो सबका प्रायश्चित्त बड़ा अश्वमेध यज्ञ कहाहै उसको करो तो पापसेछूटोगे इन्द्रदेवता मरुद्गणों के साथ शत्रुओंको बिजय करके सौसौबार एकएक यज्ञको करके शतक्रतु अर्थात् सौ यज्ञका करने वाला हुआ जो लोकों के आनन्द का प्रकट करने वाला मरुद्गणों समेत लोकोंको प्राप्तकरके चारों दिशाओंको प्रकाश करता शोभायमान है और स्वर्गलोकमें अप्सराओं से सेवित देवताओं के ईश्वर शचीपति इन्द्रकी ऋषि और देवता चारों ओर से उपासना करते हैं हे निष्पाप यह पृथ्वी तुझको पराक्रम से प्राप्त हुई औरतेरे पराक्रम से राजा लोग बिजय हुये सो हे नरोत्तम तुम अपने सुहृज्जनोंसमेत उनकेपुर और देशोंको जाकर अपने भाई बेटेपोतों को यथायोग्य राज्यों पर अभिषेक कराओ और श्रेष्ठ आचरण युक्त सबनौकर चाकरोंको मीठेवचनोंसे प्रसन्नकर गर्भस्थ बालकोंकी और पृथ्वीकी रक्षाकरो और जिनके कि पुत्रकुमार नहींहैं वहांउनकी कन्याओंको अभिषेक कराओ स्त्रियोंका समूह इसप्रकार अपनेवांछितको प्राप्तहोकर शोकोंको तजेगा इसप्रकारसे सबदेशों को स्वस्थ और आनन्दकरके अश्वमेध यज्ञसे पूजनकरो जैसे पूर्वकाल में बिजयी इन्द्रने कियाथा हेक्षत्रियोत्तम वह महात्माक्षत्रिय लोग शोच के योग्य नहीं हैं जिन्होंने अपने अपने कर्म्मकेद्वारा मृत्यु को पाया हेभरतबंशी युधिष्ठिर क्षत्रियधर्म तुमको प्राप्तहै और निष्कंटक राज्यभी तुमको प्राप्तहुआ इससे अपने उस धर्म्मकी रक्षाकरो जो कि परलोक में कल्याण करने वाला है ४८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

# चौंतीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि इसलोक के मनुष्य कौनसे कर्म्मोंको करके प्रायश्चित्त के योग्य होताहै और किस कर्म्मके करनेसे उद्धारहोताहै व्यासजी बोले कि छलसे भरीहुई बातोंको करके अपने नित्य कर्म्मको त्यागताहै वह निषेधित कर्म्मोंको छोड़कर प्रायश्चित्त के योग्यहोताहै और जो ब्रह्मचारीहोके सूर्य्योदय और सूर्य्यास्त में सोताहै उसको सुवर्णस्तेयी और मद्य बेंचनेवाले के समान समझो उसको भी प्रायश्चित्त करना योग्यहै और जिसके छोटेभाई का बिवाह उससे पहिले होगयाहो अथवा बड़े भाईसे पहिले छोटेभाईने अपना बिवाह करलियाहो वहछोटाभाई ब्रह्मघाती होकर निंदितहै और जिसकी बड़ी बहिनका बिवाह न हुआहो और छोटीबहिन बिवाह करले अथवाछोटी बहिनका बिवाह होजानेके पीछे उसकी बड़ी बहिन का बिवाह करले वह मनुष्य अथवा जिसका व्रतनष्ट होगयाहो वा ब्राह्मण क्षत्रिय बैश्यका मारनेवाला और सुपात्र को छोड़कर अपात्रको वेदकादान देनेवाला और मनुष्योंके समूहोंको बिष आदिसे मारनेवाला और अग्नियोंको त्यागकर मासिकलेकर वेद पढ़ाने वाला और गुरू स्त्री का मारनेवाला इनसब में पहिले पहिले मनुष्य निन्दितहैं और पशुओं का निरर्थक मारनेवाला गृहको अग्निसेजलानेवाला मिथ्या कर्म्म करनेवाला और गुरू का तिरस्कार करनेवाला अपने विहितनियमोंका उल्लंघन करनेवाला यह सब पापरूपहैं और जोजो कर्म्म करने के योग्य नहीं हैं वह हम कहतेहैं तुम चित्तलगा कर सुनो और लोक वेदसे विपरीत चलने वालोंको भी एकाग्र होकर समझो अपने धर्मों को त्यागकर दूसरेके धर्मोंका आचरणकरे अथवा यज्ञके अनधिकारी को यज्ञ करावे इसीप्रकार लहसनादि अभक्ष्य बस्तुओंका खाना और शरणागतका त्याग और अपने दासोंका पोषणनकरना और गुड़ आदि रसोंका बेचना अथवा तिर्यग्योनिके जीवोंका मारना और जो सामर्थ्यवान्होके गर्भाधानादि कर्म नहीं करता और नित्यदान गोग्रासादिको नहीं देता और प्रतिज्ञा करके दक्षिणा किसीको न देना ब्राह्मण के धनको छीन लेना धर्म्मज्ञ पुरुषों ने इन सब कर्म्मों को निन्दित जानकर करना निषेध कियाहै और पुत्रका पितासे विवाद करना और गुरुकी स्त्रीसे सम्भोग करना और अपनी धर्म्मपत्नी से समय पर सम्भोग न करना यह सब कर्म्म बिस्तारपूर्वक कहे इनमें जो मनुष्य करनेके योग्योंको नहीं करता और नहीं करनेके योग्योंको करताहै वह प्रायश्चित्त के योग्य होताहै और जिनजिन कर्म्मोंको करके मनुष्य अपवित्र नहीं होता उनको सुनो कि चाहे वेदोंका पारगामी भी ब्राह्मणहो

और किसीके मारनेकी इच्छासे शस्त्रको धारण किये सन्मुख आवे ऐसे आत-
तायी के मारनेसे ब्रह्महत्या नहीं होती है हे कुन्तीके पुत्र ऐसे स्थानमें वेदों
में भी पढ़ा जाताहै वेदके प्रमाण की योग्यताको तुमसे कहतेहैं किजो पुरुष
गुरूकी सेवा आदि से भिन्न मारने की इच्छाकिये शस्त्रधारी ब्राह्मणकोमारे
उसके मारने से ब्रह्महत्या नहींहोगी क्रोध क्रोधमें प्रवृत्तहोकर उसकर्मकाफल
क्रोधहीमें जाता है प्राणों के नाश में अथवा अज्ञानता में मद्य पीनाभी ध-
र्मात्मा पुरुषोंकी आज्ञासे निषेध नहीं है अर्थात् शुद्धिके योग्यहै हे युधिष्ठिर
मैंने यह सब अभक्ष्य भोजनों का वर्णन किया इनसबसे प्रायश्चित्तके द्वारा
शुद्ध होसक्ताहै और गुरूकी आज्ञासे उनकी स्त्रीसे सम्भोग करना मनुष्यको
पापका भागी नहीं करता है जैसे कि उद्दालकऋषि ने श्वेतकेतु को शिष्य
के द्वारा उत्पन्न किया गुरूके निमित्त अथवा आपत्ति में चोरी करना निषेध
नहीं होता और ब्राह्मण के सिवाय दूसरे वर्णोंका धनलेना दोषभागी नहीं
करता है और अपने या दूसरेके प्राणोंकी रक्षामें गुरूके निमित्त स्त्रियोंमें अ-
थवा बिवाहोंके करनेमें मिथ्याबोलना अयोग्य नहीं गिनाजाताहै और स्वप्ना-
वस्थामें वीर्य के गिरनेसे प्रातःकाल दूसरायज्ञोपवीत धारण करना योग्यनहीं
है अच्छी प्रज्वलित अग्निमें घृतसे हवन करना प्रायश्चित्त है बड़े भाई के
बेधर्महोने या संन्यासी होजानेपर छोटे को बिवाह करना पापनहीं है और
शास्त्रकीरीतिसे बिषयकी प्रार्थनाकरने वाली दूसरेकी स्त्री से सम्भोगकरना
दूषणनहीं है पशुओं का वध निरर्थक करना वा दूसरे से कराना महानिषेध
है पशुओंपर दया करनाही संसारमें योग्यहै अज्ञानता से अयोग्य ब्राह्मण
को दानदेना औरइसीप्रकार पात्रके सत्कारोंका न करना भी दोषभागीनहीं
करता इसीप्रकार कुपात्र स्त्री को दासी के समान त्याग देना और भोजन
वस्त्रदेकर पृथक्करदेना भी अयोग्य नहींहै वह स्त्री भी उससे निर्दोष होकर
पतिको दूषित नहीं करसक्ती सोमनाम वस्तुका तत्त्वजान करजो उसको बेचता
है वह अदोषीहै और असमर्थनों करके त्यागने में भी अदोषहै और गौओं
के निमित्त जंगल कटवानाभी दोष नहीं है इतनेकर्म्मोंका करनेवाला दोषका
भागी नहींहोताहै और जो २ प्रायश्चित्तहैं उनको ब्यौरेसमेतकहूंगा ३२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३४॥

# पैंतीसवां अध्याय॥

ब्यासजीने युधिष्ठिर से कहा कि जो मनुष्य अपने किये हुये पापों को
फिर कभी न करे तो दान तपस्या आदि कर्म्मों से भी पापों से छूटजाता है
जो ब्रह्मचारी कपाल और खड्गको धारण करके अपने नित्य कर्म्म को

करताहुआ भिक्षावृत्ति से एकही समय भोजनकरे और दूसरों के गुणों में कोई दोष न लगाकर लोकमें अपना किया हुआ कर्म्म प्रकाश करता हुआ पृथ्वीपर शयन करे तो बारह वर्ष में ब्रह्महत्या दूरहोजाती है अथवा उपदेश कर्त्ता पण्डितोंकी आज्ञा से व अपनी इच्छासे शस्त्रधारियों का लक्ष्य अर्थात् निशाना होजाय चाहे अग्नि में नीचा शिर करके अपनी देह को डालदे या किसी वेद मन्त्र को जपता तीनसौ योजन चलाजाय अथवा अपने सम्पूर्ण धन को किसी वेद जाननेवाले ब्राह्मण के अर्पण करे वा जीवन पर्य्यन्त के उपयोगी धन को या वस्तुओं से भरेहुये घरको उस ब्राह्मणके अर्थ दानकरै वह गौ ब्राह्मण की रक्षा करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्या से छूटताहै ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य कृच्छ्रभोजी होकर छः वर्षमें पवित्र होताहै और प्रतिमास के चतुर्थांशका कृच्छ्र भोजी तीन वर्ष में शुद्धहोता है और मास मासका कृच्छ्र भोगी एकही वर्ष में शुद्धहोता है और केवल जलमात्र ही से जीवन करनेवाला पुरुष थोड़ेही समय में पवित्र होताहै और अश्वमेध यज्ञ सेभी निस्सन्देह पवित्र होता है जो कोई राजा इस प्रकार के यज्ञों के अन्त में अवभृत स्नान करनेवाले होते हैं वह सब पापों से छूटजाते हैं यह श्रुतिहै कि युद्ध में ब्राह्मण के निमित्त माराहुआ पुरुष ब्रह्महत्या से छूटता है अथवा ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष एक लाख गोदान पात्र ब्राह्मणों को दे तो सब पापों से छूटजाता है जो राजा पचीस हजार कपिला गौओं का दान करे वह सब पापों से रहित होता है जीवन के सन्देह होने में राजा सवत्सा दूधदेनेवाली एक सहस्र गौ साधू और ब्राह्मणों को दान दे तो निस्सन्देह पापों से छूटकर नीरोग होता है और हे युधिष्ठिर जो राजा काम्बोज देश के सौ घोड़े जितेन्द्री ब्राह्मणों को दानकरता है वह निष्पाप होता है और जो पुरुष एक ब्राह्मण को ब्राह्मण की यथेच्छ वस्तुओं को देवे और देकर नहींकहे वह पाप से अत्यन्त रहित होताहै जो पुरुष बारम्बार मदिरा पान करके अग्नि वरण की मद्यको पिये तो वह इस लोक और परलोक दोनों में अपने को पवित्र करता है निर्जल देश में पहाड़ के शिखर से गिरे या अग्निमें पड़े या केदार हिमालयपर्व्वतपर चढ़े तो सब पापों से छूटजाता है और मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण वृहस्पति सवनाम यज्ञ से पूजनकरने के पीछे सभा में जाने के योग्य है यह ब्राह्मण की श्रुति है कि जो पुरुष मद्यको पीकर ईर्षा रहित हो पृथ्वी का दानकरे और फिर मदिरा को न पिये वह संस्कार करनेवाला शुद्ध होता है गुरुकी स्त्री से सम्भोग करनेवाला लोहे की गरम शिला से चिपटजाय अथवा अपना लिंग काटकर ऊंची दृष्टिवाला संन्यासीहोजाय वह नरक भोगने से देह को शुद्धकरता है एक वर्ष तक जितेन्द्री होकर जो स्त्री रहती है वह सब

कुकर्म्मों से पवित्र होती है जो पुरुष महाव्रत को करे अर्थात् एक महीनेतक जल को भी त्याग करे और सब धन को दान करदे अथवा युद्ध में गुरू के निमित्त मरे वह पाप कर्म्म से शुद्ध होता है और जो गुरूसे मिथ्या बोले या सत्कार गुरूका न करे तो वह उस गुरूकी इच्छाको पूर्णकरके पाप से शुद्ध होता है और जिस पुरुष का व्रत नष्ट होगया हो वह व्रत नष्टहोने के छः महीनेतक गो चर्म्म को धारण कर ब्रह्महत्याके व्रतको करेतो निर्दोष हो पापसे छूटे इसीप्रकार दूसरेकी स्त्री या धनको हरे वह एक वर्षतक व्रतीरहे तो पाप से छूटजाताहै अथवा जिसके धनकोले उसके धनकेसमान अनेक प्रकारसे धन देदेतो पापसे छूटे बड़े भाईसे पहिले अपना बिवाह करनेवाला छोटा भाई और छोटे भाईसे पीछे विवाह करनेवाला बड़ा भाई यह दोनों जितेन्द्री और व्रतमें नियत होकर बारह दिन के कृच्छ्र व्रतसे पवित्र होतेहैं सदैव पित्रों के उद्धार करनेवाले उस छोटे भाईको फिर अपना दूसरा बिवाह करना उचित है और स्त्री को दोष नहीं होता क्योंकि वह उससे कोई देह सम्बन्ध नहीं रखती चातुर्मास में व्रत का धारण और पारणहोता है स्त्रियां उससे शुद्ध होती हैं यह धर्मज्ञ लोग कहतेहैं सन्देहों से भरीहुई पापात्मा स्त्री बुद्धिमान् मनुष्यके सम्भोग करनेकेयोग्य नहींहोती और जिन स्त्रियोंकापाप केवल मानसी है वह मासिक धर्मसे शुद्धहोजाती हैं जैसे कि भस्मसे पात्र और जो शूद्रका झूठा कांसेकापात्र या मुखके बहुतसे जलसे झूठाहै वहभी दशवस्तुओंसे पवित्रहोता है गौकी पांचवस्तु और मिट्टी जल, भस्म, खटाई, अग्नि चारचरण रखने वाले सब धर्म्म ब्राह्मण के कहेजाते हैं और तीन चरणवाले क्षत्रियोंके और दो चरणवाले वैश्यों के और एकचरण वाले शूद्रके कर्म कहेजातेहैं इसरीति से उनकी उच्चता और नीचता को जानो तिर्य्यग् चलनेवाले जीवोंको मारने वाला वा वृक्षों का काटनेवाला तीन रात्रि हवाका भक्षण करेसे और अपने पाप को कहदे तो पापदूरहोय और अयोग्यास्त्रीसे संभोग करने में भी प्रायश्चित्त होताहै कि भस्मपर गीलेवस्त्रोंसे छः महीनेतक सोकर बिहार करना चाहिये इसस्थान में भस्मशब्द के आनेसे साबित्रीका जप भी करना योग्यहै क्योंकि वह स्मृतियों से सिद्धहै इससे थोड़ा भोजनकर हिंसा राग द्वेष मान अपमान से रहित निर्बिबाद होकर पवित्रस्थान में गायत्री को जपै वह मनुष्य सबपापों से मुक्तहोता है जो द्विजन्मा अज्ञानतासे पापों को करै वह दिनरात जंगलमें नियत होकर वस्त्रोंसमेत तीन दिनरात जलमें रहै और व्रतीहोकर स्त्री शूद्र और पतितसे बार्तालाप न करे तो पापोंसे रहित होजाय इस निमित्त दान तप और शुभकर्म्मों से पापों को दूरकरके श्रेष्ठफल की वृद्धिकरे जैसे पुण्यसे पापको जीते और सदैव उत्तमकर्म्मकर निकृष्ट

कर्म्मों को त्यागे और धनसे दानकरे तौ पाप नष्टहोजाय यह सब प्रायश्चित्त पापोंके अनुरूपही मैंने कहे अब महापातकों के दूरकरने वाले प्रायश्चित्त कहताहूं हे राजा ज्ञानीपुरुष ओरसे कियाहुआ पाप बड़ाहोता है और अज्ञानी से थोड़ाहोता है इसी से प्रायश्चित्त होसक्ताहै शास्त्रोक्त विधि से पापका दूर करना संभव है परन्तु यह विधि आस्तिक और श्रद्धावान् के निमित्त कहीजातीहै और नास्तिक अश्रद्धावान् द्वेषी पाखण्डीपुरुषोंमे यहविधि कभी नहीं देखने में आती है हेनरोत्तम ज्ञानी लोगोंका धर्म और आचरण सर्वोत्तम है वह इसलोक और परलोक में सुखकी इच्छा करनेवालोंको करनेके योग्य है राजा तुम इसहेतुसे अपने पापोंको दूरकरके उनको भी नरकोंसे उद्धार करोगे यह सुन युधिष्ठिर ने क्षणमात्र ध्यानावस्थित होकर व्यासजीको उत्तर दिया ५१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेपंचत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३५ ॥

## छत्तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हेपितामह कौनवस्तु भक्ष्यहै और कौन अभक्ष्य है और कौनपदार्थ प्रशंसाके योग्य होताहै और कौन पात्र और कौन अपात्र है यहभी आप कहिये व्यासजी बोले कि इस स्थानमें एक इतिहास कहता हूं जिसमें सिद्धों का और प्रजापति मनुका संवादहै पूर्वकालमें ब्रतकरने वाले ऋषियों ने प्रातःकाल के समय सामर्थवान् मनुजीसे पूछा कि हेप्रजापतिजी भोजन किसरीति करनाचाहिये और किसप्रकारसे पाक सिद्ध होताहै और कौनसा करना योग्यहै और कौनसा नहीं करना योग्यहै यह सब वर्णन कीजिये यहसुनकर ब्रह्माके पुत्र स्वायम्भूमनुने कहा कि जिस देशकी शुद्धी नहीं हुई उस में भी जप होम व्रत और आत्मज्ञान होता है और मनुष्य इन जपआदि कर्म्मों में प्रवृत्त करते हैं वहभी गंगाआदितीर्थ के समान पवित्र करनेवालाहै इसीप्रकार जप आदिके समान यह पर्वतभी पवित्र करने वाले हैं उनमें सुवर्णप्राशन औररत्नों से स्नान करना दोष है देवालय में दर्शन करना वा घृत का स्पर्श करना यह बहुत शीघ्र मनुष्यों को पवित्र करते हैं ज्ञानीपुरुष कभी अहंकार न करे और जो कदाचित् करे भी तो दीर्घआयुकी इच्छा रखताहुआ तप्तकृच्छ्र व्रतको करे और बिना दीहुई वस्तुका न लेना दानकरना बेदपढ़ना जप तप करना हिंसा न करना सत्यबोलना क्रोधन करना यज्ञकरना यह धर्म्म के लक्षण हैं वही धर्म देश काल पाकर अधर्म होताहै अर्थात् प्राणके जाने में धर्म्म अधर्म्म और अधर्म्म धर्म्म होजाता है इसीकारणसे दूसरेके धनको लेना मिथ्या बोलना

हिंसा करना यहअवस्था के धर्म्म हैं ज्ञानियों के यह दोनों धर्म्म और अधर्म्म दो २ प्रकारके हैं लोक और वेदकी दो बिधि हैं एक प्रवृत्ति दूसरी अप्रवृत्ति कर्म्मके फलकोतो प्रवृत्ति और देवत्व होनेको अप्रवृत्ति जानो इसी प्रकार बुरे कर्म्मका बुरा और अच्छे का अच्छा फल होताहै दैवदैवकरके युक्त अर्थात् होनहार शास्त्रोक्त कर्म्म से संयुक्त और शक्ति और ईश्वर इनचारोंके सम्बन्धसे जो कर्म्मकिया जाताहै उसके करनेसे नीच पुरुषोंका भी कर्म्मफल उत्तम होता है पंचहत्याके संदेह से अथवा इसलोक में परम्परा से प्रचलित रीति को जानकर कियाहुआ सन्ध्या बन्दनादि कर्म्म उत्तम होताहै और दैव आदिके सम्बन्ध से कर्म्मका करना प्रायश्चित्त कहा जाता है अर्थात् काम क्रोध मोहसे उत्पन्न जो मनकी प्रिय और अप्रिय इच्छा वहभी दूर होजातीहै और देहोंके जो रोगादि दुःखहैं वह औषध मंत्र प्रायश्चित्त और तीर्थयात्रा से दूरहोते हैं राजाको जो दण्डत्यागका पापहोताहै वह एक रात्रिके व्रतसे दूर होताहै और पुरोहित की पवित्रता तीनदिनके व्रतसे होतीहै जब पुत्रादिके मरने से शोकयुक्त मनुष्य शस्त्रादिके अपघात करने में न मरे तो तीनदिन व्रतकरे और जोपुरुष अपनी ज्ञाति वा जन्मभूमि वा अपने कुलके धर्म्मोंको सबप्रकारसे छुपाते हैं वहभी अधर्म्मी हैं और धर्म्माधर्म्म का जब सन्देह होजाय तौ दश वेदशास्त्र के ज्ञाता और तीन धर्म्म के ज्ञाता मिलकर जो कहें वही धर्म्महै बैल, मृत्तिका, चेंटी और श्लेष्मा तक नामवृक्ष और विषवाली बस्तु यह सब ब्राह्मणोंको अभक्ष्य हैं अर्थात् खानेके योग्य नहीं हैं जो ब्राह्मण शक नाम जाति से अलग रहतेहैं उनको मछली और चारपैरवाला कछुआ और जो जल में उत्पन्न होनेवाले मेंढक, भासा हंस, सुपर्ण, चक्रवाक, प्लवक कौआ, गोह, गिद्ध, बाज, उल्लू और जितने चीड़ फाड़ करनेवाले और पैनी डाढ़वाले पशुपक्षी हैं और जिनके दोनों ओर दांत हैं और चारडाढ़ रखने वाले सबजीव अभक्ष्य हैं भेड़ बकरी घोड़ी गधी ऊंटनी और सूतकीगौका और मांसी पशुओंकाभी दूध ब्राह्मण नहीं पिये और प्रेतान्न, सूतकान्न और जो कुछ कि सूतकसे सम्बन्ध रखनेवाला है और जिसका बछड़ा दशदिनका न हुआहो उसगौकादूध अभक्ष्यहै राजाकाअन्न तेजको घटाताहै शूद्रकाअन्न ब्रह्मतेजको सुनारका अन्न और पतिपुत्ररहित स्त्री का धन आयुको क्षीण करता है ब्याज लेनेवाले का अन्न विष्ठाके समान होताहै वेश्याका और स्त्री-जितकाअन्न वीर्य्य के तुल्य है और दीक्षितका, कादरका और यज्ञ बेचने वालेका बढ़ई, चमार, धोबी और कुचालिनी स्त्री का अन्न, वैद्यकाअन्न सीमाके रक्षकका अन्न, भोजन के योग्य नहीं है सब ग्रामबासियोंने जिसको यह दोष लगायाहो कि यह दूसरेकी स्त्रीसे कुकर्म्म करताहै उसकाअन्न, स्त्रियोंके अन्न

से अपना जीवन करनेवालेका अन्न और जिसपुरुष के छोटेभाईका विवाह उसके विवाहसे पहिले होगयाहो उसकाअन्न रायभाट और जुआंखेलनेवालों काअन्न, बामहस्त से लायाहुआअन्न, भोजन कियाहुआ अन्न बासी अन्न मदिराके समीप रक्खाहुआ अन्न, खाने से बचाहुआ अन्न लड़के बालों को बिनाखिलायाअन्न, यहसबअन्न भोजनके योग्यनहीं है पेठेकी तरकारी उसी प्रकार दूधका विकार मट्ठा दही जो बहुत दिनी होजाय तो भोजनके अयोग्यहैं और मुख्यकरके गृहस्थी ब्राह्मणों को यह सब वस्तुखानी और पीनी अयोग्य हैं गृहस्थी को देवता, ऋषि, मनुष्य पितर और कुलके देवताओं का पूजनकरने के पीछे भोजन करना योग्य है जैसे संन्यासी भिक्षुक होय वैसे अपने घरमें निवास करे अर्थात् घरके मनुष्य देवताआदिको देकर जो बचै वहभी संन्यासियों की भिक्षाके समान है ऐसी रीतिपर चलनेवाला अपनी धर्मपत्नीके साथ विहारकरता धर्मात्माहै और अपनी नेकनामीकेलिये दान करे और भयसे दान न करे और अपने मित्रआदि को दान न करे अर्थात् मित्रों के शिष्टाचार आदि से दान अलगहै और जो नाचने गानेका अभ्यास रखतेहैं और जो हास्य और कुतूहलमें प्रवृत्तहैं और नसापीते हैं और जो ग्रह भूतआदिसे पीड़ितहैं और जो चोरहैं या निन्दितहैं उनको कभी दान न देना चाहिये औरजो बात चीत नहींकरसक्के और कुरूप हैं और जो किसी अंगसे रहित दुर्जन वा निकृष्टकुलहैं और व्रतोंसे संस्कारनहीं कियागयाहै उनको दान न देवे वेदपाठी के विशेष वेद हीन ब्राह्मणको दान न दे क्योंकि जो अच्छे प्रकारसे दाननहीं किया और न अच्छे प्रकारसे लियागया वह दोनों देने और लेनेवाले महा अज्ञान हैं जैसे कि कोई खदिर या पाषाणकोलेकर समुद्रको तरताडूबे उसीप्रकार दानदेनेवाला और लेनेवाला दोनोंडूबते हैं और जैसे गीले ईंधनसे अग्निप्रज्वलितनहीं होतीहै तप और वेदपाठ और आचारों से खाली दानलेनेवाला ऐसाहै जैसे त्रिकुश में जलहोना और जैसे लकड़ी का हाथी और चमड़े का हिरनहोताहै वैसेही बिनापढ़ा ब्राह्मणहै वह तीनों नामहीमात्र हैं जैसे कि स्त्रियोंमें नपुंसक निष्फल है और जैसे बिना पक्षके पच्छी है उसीप्रकार मंत्रहीन ब्राह्मणहै और जैसे अन्नोंसे खालीग्रामहोय और पानी के बिना कूपहोय और जैसे राखमें हवन वैसेही मूर्ख ब्राह्मण में दान होता है देवता और पितरों के हव्य और कव्य का नाश करनेवाला और शत्रुरूप होकर धनका हरनेवाला लोकों को नहीं पासक्ता हे युधिष्ठिर जैसा कि वृत्तान्त था सब हमने वर्णन किया परन्तु यह बड़ा इतिहास आपके सुनने के योग्य है॥ ५१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३६ ॥

# सैंतीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिरबोले कि हे भगवन् महामुनि व्यासजी मैं आपके मुख से सम्पूर्ण राजधर्म्म और चारोंवर्ण के सबधर्म्मोंको सुनना चाहताहूं हे ब्राह्मणोत्तम जिसप्रकार आपत्तिकालके नियत समयों में जैसी नीति से चलना योग्य है मैं धर्म्मरूप मार्गसे कैसे पृथ्वीको विजय करूं प्रायश्चित्त व्रत शपथ आदि प्रसंगसे भरीहुई यहकथा मेरेचित्त को बड़ा आनन्ददेतीहै धर्म्माचार और राज्य सदैव विरुद्ध हैं इसी प्रकार मुझ चिन्ता करनेवाले का चित्त सदैव मोहको प्राप्तहोता है वैशम्पायन बोले कि वेद के महाज्ञाता व्यासजीने बड़ेप्राचीन सर्वज्ञ महामुनि नारदजी को देख कर युधिष्ठिर से कहा हे राजा जो तुम सम्पूर्ण धर्म्मको यथार्थ सुना चाहते हो तो कौरवोंके पितामह वृद्ध भीष्मजी के पास जाओ वह श्रीगंगाजीके पुत्र सब धर्म्मों के जाननेवाले तेरे उन सन्देहों को जोकि धर्म्म की गुप्तवार्त्ता तेरेचित्तमें नियतहैं दूरकरेगा तीनमार्गोंमें चलनेवाली दिव्यनदी श्रीगंगाजी ने उसको उत्पन्न किया और जिसने सब देवताओं को इन्द्रसमेत साक्षात् होकर देखा और अपनी [illegible]पा से बृहस्पति आदि देवऋषियों को बराबर प्रसन्नकरके राजनीतिको [illegible]शुक्रजी जिसशास्त्रको जानते हैं और देवगुरु बृहस्पतिजी जिस शास्त्र [illegible]तेहैं और जो धर्म्म धर्मशास्त्रसे संयुक्तहै वहसब कौरवोंमें श्रेष्ठ भीष्मपितामहने प्राप्तकिया उस व्रतकरनेवाले भीष्मजी ने अंगोंसहित वेदोंकोभी बड़े महात्मा ज्ञानी च्यवनऋषि से पढ़ा जिसने पूर्व्वकाल में ब्रह्माजी के बड़े ब्रह्मज्ञानियों की गतिके जानने वाले कुमारजी के पास शिक्षा पाई और मार्कण्डेयजी के मुखसे सम्पूर्ण संन्यास धर्मको जाना और उस पुरुषसिंहने परशुरामजी से और इन्द्रदेवतासे अस्त्रोंको पाया वह मनुष्यदेहसे जितेन्द्रिय अपुत्रवान् मृत्युका वशकरनेवाला सतपुरुष स्वर्गमें प्रसिद्धहै और जिसकी [illegible]में बड़े २ पवित्र ब्रह्मऋषि सभासदहुये और ज्ञान यज्ञों में जिसको कोई अज्ञात नहीं है वह धर्म्मका ज्ञाता सूक्ष्म धर्म्म अर्थके तत्त्वोंका तुझसे कहेगा उसके पासजा वह धर्म्मज्ञ बहुत शीघ्र प्राणों को त्यागना चाहताहै इसप्रकार की बातेंसुनकर धर्म्मज्ञ महाबाहु युधिष्ठिरने सत्यवती के पुत्र वेद व्यासजीसे कहा कि मैं लोकोंका अपराधी और सम्पूर्ण संसारका नाशक और जातिवालोंके उसनाशको जिससे कि रोम २ कांपउठे करवाके ऐसेधर्मसेयुद्धकरनेवाले पुरुषको छलसे मरवाकेमैं किसमुखसे उनके पास जाकर अच्छे प्रकारसे प्रश्नकरने के योग्यहूं वैशम्पायनबोले कि जब युधिष्ठिरने व्यासजीसे इसप्रकार वचनकहा तब यादवोंमें श्रेष्ठ महाबाहु श्रीकृष्ण

चारों वर्णके उपकारके लिये राजायुधिष्ठिरसे कहा कि हे राजेन्द्र अब तुम शोक त्यागो जो भगवान् व्यासजीने कहाहै उसको करो और इस प्रार्थनाके करने वाले ब्राह्मण और महातेजस्वी तेरे भाई सन्मुख वर्त्तमानहैं और युद्धमें मरने से शेषरहे हुये राजालोग और कौरव जांगल देशवाले सबके सब तुम्हारे पास प्राप्तहुये सोहे समर्थ युधिष्ठिर उन महात्मा ब्राह्मणों के और द्रौपदी के प्रियकारी और लोकको हितकारी बातों को बड़े तेजस्वी गुरू व्यासजी की आज्ञासे करो श्रीकृष्णजीके यह बचन सुनकर महाप्राज्ञ साहसी राजा युधिष्ठिर सबके आनन्द के निमित्त उठ खड़ाहुआ और शोकको दूरकिया और जैसे नक्षत्रों से चन्द्रमा घिरा होताहै उसी प्रकार उनसब देव ब्राह्मण भाई बन्धु आदिसे घिरे हुये राजा युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को आगे करके अपने पुर में प्रवेश किया और वहांजाकर बड़ी श्रद्धाभक्तिसे देवब्राह्मण अतिथी आदिको दान दक्षिणा देकर पूजनकिया तदनन्तर नवीन उज्ज्वल शालदुशालों से सुशोभित और कल्याणकारी चिह्न वाले श्वेत सोलह बैलों से जुतेहुये मंत्रोंसेपूजित रथपर सवारहुये उससमय महाबली भीमसेन ने तो रथकी बागडोर पकड़ी और अर्जुन ने प्रकाशित श्वेत छत्रको धारणकिया उस समय की शोभा छत्र सहित युधिष्ठिर की ऐसे थी जैसे नक्षत्रों से घिरा हुआ श्वेत बादल हो तब नकुल और सहदेवने उसके व्यजन और चमरको हाथोंमें लिया इसप्रकार सुन्दरता से आच्छादित पांचों भाइयों ने रथपर बैठ कर सब छोटेबड़ोंको दर्शन दिया और शीघ्रगामी श्वेतअश्वों से सुशोभित रथपर सवार होकर युयुत्सुभी राजा युधिष्ठिरके रथके पीछे २ चलदिया और श्रीकृष्णजीभी सात्यकिके साथ उज्ज्वल सुबर्णनिर्मित शैब्यसुग्रीवनामघोड़ों से जुतेहुये रथमें सवारहोकर कौरवोंके पीछे चले और पाण्डवोंके ताऊ धृतराष्ट्र भी गान्धारी समेत नरयानमें अर्थात् पीनस आदि में चढ़कर धर्म्मराज के आगेचले और कौरवों की वहसब स्त्रियां कुन्ती द्रौपदी आदि जिनके आगे बिदुरजी थे नाना प्रकार की सवारियोंपर चढ़कर चलीं और बहुत से हाथीघोड़े पैदल बनठनकर पीछे से चले इसप्रकार से शोभित होकर सब इष्ट मित्र भाइयों सहित सुन्दर बचन बोलनेवाले बैतालक, सूत, मागधोंसे कीर्त्तिमान् होते राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर नगरको गये उस महाबाहु युधिष्ठिर की वह सवारी बड़ी भीड़भाड़केसाथ अच्छे २ छोटेबड़े शूरोंसमेत अद्वितीयदीखतीथी राजाकी सवारीको नगर बासी मनुष्यों ने आते सुनकर नगरको और राजमार्ग को बुद्धिके अनुसार अच्छे प्रकार सुशोभित किया पृथ्वीको श्वेत माला और पताकाओं से और राजमार्ग को अगर चन्दन अतर आदि से सुगन्धित किया और नगरके द्वारपर नवीन दृढ़ सुवर्णके कलश जलसे पू-

रित किये और जहा तहां पुरकी कन्याओंने श्वेत फूल इकट्ठे किये फिर शुभ बचनोंसे स्तुतिमान और सुहृदजनोंसे संयुक्त पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने सुन्दर अलंकृत नगरके द्वारमें सुशोभितहोकर प्रवेशकिया ४९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेसप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३७ ॥

# अरतीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि नगरमें पाण्डवोंके पहुंचतेही हजारों पुरवासी राजा के दर्शन करने को आये तब वह राजमार्ग जो अत्यन्त विस्तृत था वहऐसा शोभायमान हुआ जैसाकि चन्द्रमाके उदयमें बढ़ाहुआ महासमुद्र हो और राजमार्गमें जो रत्न जटितगृहथे वह स्त्री पुरुषों के बोझसे कम्पायमान हुये और उन कुलांगनाओंने बड़ी नम्रतासे पांचों भाइयोंको शोभितकियाऔर द्रौपदी से कहने लगीं कि हे कल्याणी तुम धन्यहो जो पुरुषोत्तम पाण्डवों में वर्त्तमानहो जैसे कि महर्षियोंके पास गौतमी वर्त्तमानहो हे भामिनी तेरेकर्म और आचरण सफलहैं ऐसी २ बातोंसे अन्तःपुरमें आनन्द कुतूहल होनेलगा और युधिष्ठिरभी उस राजमार्गको योग्यरीतिसे शोभित करताहुआ राजमहल के समीप पहुंचे तदनन्तर सूत्र अधिकारी लोग जहां तहांसे पुरवासियों समे- [illegible] वचनों को कहने लगे कि हे शत्रुओं के मारनेवाले राजाशिरोमणि आपने प्रारब्धसे शत्रुओं को बिजय करके फिर अपने राज्य को पायाआप हजारों वर्षतकहमारे राजाहोकर धर्म्मसे प्रजाकी ऐसीरक्षाकरो जैसे कि स्वर्गकी रक्षा इन्द्रकरतेहैं इसप्रकार मंगल शब्दों से पूरित चारों ओरसे ब्राह्मणों के आशीर्बादोंको लेताहुआ इन्द्रभवनके समान घरमें प्रवेश करके विजयके बचनों को सुन रथसे उतर गृहके सब देवताओं को रत्नादि द्रव्य और फलोंसे पूजन किया तिसपीछे मंगल द्रव्यलिये ब्राह्मणों के देखने को फिर स्थानसे निकला तो उन आशीर्बाद देनेवाले ब्राह्मणोंके मध्य में वह राजा ऐसा शोभायमानहुआ जैसे कि नक्षत्रोंके मध्यमें निर्मल चन्द्रमा विराजमानहो फिर युधिष्ठिरने धौम्यगुरू और ताऊ धृतराष्ट्रको आगे करके विधिपूर्वक उन ब्राह्मणोंका पूजन किया और अपने नौकरों को मोदकरत्न सुवर्ण गौ वस्त्रआदि अनेक बांछित द्रव्योंसे प्रसन्न किया तदनन्तर मित्रोंका और श्रवणों का आनन्ददायी पुण्याहबाचन शब्द होनेलगा और आनन्द दायक बिजयके द्योतकशंख और भेरीशब्दहुये तब ब्राह्मणों के शान्त होने पर कपटसे ब्राह्मणरूप बनाय चार्वाकराक्षस जो दुर्योधनका मित्र संन्यासी रूपसे ढकाहुआ शिखाधारी त्रिदंडी रुद्राक्ष धारणकिये निर्लज्ज आशीर्बाद देनेवाले हजारों ब्राह्मणोंमें मिलाहुआआया वह महादुष्ट महात्मा पाण्डवोंके

दोषोंके कहनेकी इच्छासे उनसब ब्राह्मणों से बिना पूछे राजासे बोला कि मैं इन सबकी ओरसे कहताहूं कि हे राजा तुम जातिवालोंके मारनेवाले निन्दित होकर धिक्कारके योग्यहो हे कुन्तीपुत्र तू जाति वालों और गुरुओंको मारकर अपने को क्या उत्तमजानताहै तुझ धिक्कारवान्का मरनाहीयोग्य है उस दुष्ट राक्षसके यहबचन सुनकर ब्राह्मण उसके बचनों को तिरस्कारकर महाक्रोधितहुये और राजाभी उनब्राह्मणों समेत व्याकुलहोकर बोला कि आपलोग कृपाकरके मुझ नम्रीभूत प्रार्थना करनेवालेके ऊपर प्रसन्नहो क्योंकि मेरेभाई बहुतकालसे दुःखी हैं इससे मुझ राज्य चाहनेवाले को धिक्कार करना उचित नहीं है तदनन्तर वह सब ब्राह्मण बोले कि हे राजा यह हम लोगोंका बचन नहीं है आपका धन निर्विघ्नहो फिर उनमहात्मा वेदज्ञज्ञानी ब्राह्मणों ने अपनी दिव्य दृष्टी से उसको जानलिया और कहा कि यह दुर्योधनका मित्र संन्यास धारणकिये चार्वाक राक्षस उसका प्रिय करना चाहताहै हे राजा हम नहीं कहतेहैं तेरा ऐश्वर्यअचलहो ऐसा राजाको कहकर क्रोधित मूर्च्छावान् महातेजस्वी ब्राह्मणोंने हुंकार करके उस पापी राक्षसको मारडाला और राजा को आशीर्वाददे वह सब ब्राह्मण अपने २ स्थानों को चलेगये और राजाने सुहृदजनों समेत आनन्दको पाया ३७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेअष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

# उन्तालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायनबोले कि इतनी बातोंके उपरान्त देवकीनन्दन सर्वदर्शी जनार्दन श्रीकृष्णजीने सब भाइयों सहित विराजमान राजा युधिष्ठिरसे कहा कि हेतात इसलोकमें ब्राह्मणलोग हमलोगोंको सदैव पूजने योग्य हैं क्योंकि यह पृथ्वीपर घूमनेवाले देवताहैं इनके वचनोंमें विष और अमृत दोनोंहैं हे राजा पहिले सतयुग में चार्वाकनाम राक्षस ने बहुत समयतक बदरिकाश्रम में तपस्याकी और यहांतक हुआ कि बारम्बार ब्रह्माजी से वरमांगने को लुभायागया तो उसने यही मांगा कि मुझे किसीप्रकारके जीवधारीसे भय नहो तब ब्रह्माजीने अमान ब्राह्मणके सिवाय किसीजीवधारी से भय नहोगा यह वरदानादिया फिर बड़ेपराक्रमी शीघ्रकर्म्मी वरपानेवाले पापी राक्षसने देवताओं को दुःख दिया और उसके पराक्रमसे हारेहुये देवताओंने उसके मारने की प्रार्थना ब्रह्माजीसे करी तब ब्रह्माजीने कहा कि मैंने वही युक्ति करी है जिससे कि उसकी मृत्यु शीघ्र होगी लोक के मनुष्यों में राजा दुर्योधनसे इसकी मित्रताहोगी उसके स्नेहमें बँधाहुआ यह राक्षस ब्राह्मणों का अपमान करैगा वहांपर अपमानसे तिरस्कृत क्रोधाग्नि बचन रूप पराक्रमरखने-

वाले ब्राह्मण इस पापीको भस्म करेंगे तब इसका नाशहोगा सो हेराजा वह चार्वाक नाम राक्षस ब्रह्मदण्डसे मृतकसोताहै तुमकिसी बातका शोच मत करो और जो आपके जातिवाले क्षत्री मारेगये वह धर्म्म से मारे गये स्वर्ग को गये इससे हे बिजयी तुम अपने कर्म्म में सावधान होकर ग्लानि त्याग कर शत्रुओं को मारो और प्रजाकी रक्षापूर्वक ब्राह्मणोंका पूजनकरो॥ १३॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मैकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३९॥

# चालीसवां अध्याय॥

वैशम्पायन जी बोले कि ऐसे श्रीकृष्ण जी के समझाने से राजा युधिष्ठिर प्रसन्नचित्त हो शोकरूपी दुःख को त्याग पूर्वाभिमुखहो सुवर्ण निर्मित आसनपर बिराजमान हुये और उसी आसन के समान आसनपर महा तेजस्वी प्रतापी श्रीवासुदेव और सात्यकीभी बैठे और महात्मा भीमसेन और अर्जुन राजा को मध्य में करके शुद्ध रत्नजटित आसनोंपर [illegible] और कुंती माता भी नकुल और सहदेव के साथ [illegible] से चिह्नित महा दीप्यमान हाथीदांत के सिंहासन पर [illegible] और सुधर्म्मा बिदुर धौम्य धृतराष्ट्र यह सब पृथक् [illegible] आसनोंपर बैठगये जिधर राजा धृतराष्ट्र बैठेथे उधर युयुत्सु संजय और यशस्विनी गान्धारी आदि सब बैठगये ऐसी सभामें बैठेहुये धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ने अगस्त आदि श्वेत पुष्प पृथ्वी सुवर्णरजतमणि आदि से चित्रविचित्र सर्वतोभद्रसे चिह्नित देवताओं के आसनों को स्पर्शकिया उसके पीछे सब नौकर चाकर आदि अधिकारियों ने पुरोहितजी को साथले बहुत सी मंगली बस्तुओं समेत राजा धर्म्मराज को देखा पृथ्वी सुवर्ण और नानाप्रकार के रत्न और सब सामानों से पूर्ण अभिषेक के पात्र और मृत्तिका सुवर्ण चांदी तांबे के जलपूरित कलश फूल फल अक्षत यह सब ब्राह्मणों के हाथों में लिये अग्नि गोरस शमी पीपल ढाक आदिकी लकड़ी शहत घृत उदुम्बरस्तवा और इसीप्रकार सुवर्ण वेष्टित शंखआदि सब सामान लाये और श्रीकृष्णजी की आज्ञा पाय धौम्य पुरोहित ने ईशान दिशा में लक्षण समेत वेदी रचकर व्याघ्रचर्म्म से संयुक्त श्वेतरूप अग्नि समान देदीप्यमान सर्वतोभद्र नाम आसनपर कृष्णा द्रौपदी समेत महात्मा युधिष्ठिर को बैठाकर मंत्र की विधि से सन्मुख स्थापित अग्नि में हवन किया फिर श्रीकृष्णजीने उठकर पूजित शंख को हाथ में लेके कुन्तीपुत्र पृथ्वी के स्वामी युधिष्ठिरको पर [illegible]षेक किया इसीप्रकार राजऋषि धृतराष्ट्र और सब अधिकारियों ने श्रीरूपसे [illegible]गांचजन्यशंखसे अभिषेक कियाहुआ भाइयों समेत राजा युधिष्ठिरका देनेवाले ह[illegible]नन्तर आनक दुन्दुभी नाम पणवको बजाया तब युधिष्ठिर नेभी

इन सब पूजनों को स्वीकार करके और बिधिपूर्वक सबका पूजन किया फिर स्वस्तिवाचन करनेवाले वेदपाठी की जो क्षमा शील आदि गुणों से सम्पन्न थे उनको हजार निष्कस्वर्णमयी दक्षिणा देकर प्रसन्न किया फिर उन प्रसन्न हुये ब्राह्मणों ने स्वस्ति पूर्व्वक जयशब्द का उच्चारण किया और हंसों के समान शब्दों से युधिष्ठिर की प्रशंसाकोकिया कि हे पाण्डव युधिष्ठिर आपने अपने प्रारब्ध और पराक्रमसे अपने धर्म्म राज्य को पाया और प्रारब्धही से अर्जुन भीमसेन नकुल सहदेव समेत आप कुशलहैं अब सब बातोंसे निवृत्त होकर जो आगे करने के योग्य कर्म्म हैं उनको शीघ्र करो यह सुनकर धर्म्मराज सब सुहृदों समेत प्रसन्न हुये और राज्यासन को सुशोभितकिया २४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मेचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

# इकतालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायनजी बोले कि अधिकारी आदिके इन बचनोंको सुनकर राजा युधिष्ठिर ने देशकाल के सदृश यह उत्तर दिया कि निश्चय पाण्डव धन्य हैं जिनकी सच्ची या झूठी प्रशंसा को बड़े बड़े महात्मा ब्राह्मणों ने किया निश्चय है कि हम आप लोगों की कृपाके योग्य हैं जो ईर्षा रहित होकर आप इसप्रकार हमलोगों के गुणों की प्रशंसा करते हो मेरा पिता महाराजा धृतराष्ट्र उत्तम है मेरेप्रियबादी तुमलोगों को इसकी आज्ञा और अभीष्ट बातोंमें प्रवृत्तहोनाचाहिये मैं जातिकानाशकरके इसीनिमित्त जीताहूं इसकीसेवा मुझको सावधानीसे सदैवकरनी योग्यहै जो मैं आपलोगों की और सुहृदजनोंकी कृपाकेयोग्यहूं तो तुम पहिलेके समान धृतराष्ट्रकी सेवाकरने में प्रवृत्त होनेको योग्यहो मेरेसाथीलोगोंका और जगत्कायहस्वामी है और सम्पूर्णपृथ्वी और हमसब पाण्डव इसीके हैं आपलोगोंको यह मेरा वचन चित्तमें दृढ़ रखना चाहिये यह कह सबको आज्ञादी कि अपनी इच्छाके अनुसार जाओ इस प्रकारसे सब पुरबासियोंको बिदाकरके युधिष्ठिरने भीमसेन अपने भाईको युवराज पदवीपर नियतकिया और सर्वगुणसम्पन्न महाबुद्धिमान् संजय को सब कामोंके परिणाम आदि के जानने और आपन्वव अर्थात् आमदखर्चके बिचारनेमें नियत किया और महाधर्म्मज्ञ बुद्धिमान् बिदुरजीको मन्त्र अर्थात् सलाहके और छःगुणोंके बिचारांशमें नियत किया और सेना की संख्या और मासिकोंके विभागकरने और प्रतिदिनके हिसाब आदि देखनेमें नकुल को स्थापितकिया और शत्रुओंकी सेनाके रोकने और दण्ड देनेमें अर्जुन को नियत किया पुरोहितों में श्रेष्ठ धौम्यको ब्राह्मण और देवताओंके कामों में और अन्यकार्य्योंमें भी प्रवृत्त किया और अपने सन्मुख रहनेको जिससे कि

सदैव राजाकी रचारहै सहदेवको नियत किया तात्पर्य यहहै कि जिस जिस को जिसजिस कार्य्यमें कुशल समझा उस उसको उसी अधिकार पर नियत किया फिर धर्म्मात्मा युधिष्ठिरने महाबुद्धिमान् विदुर संजय युयुत्सुसेकहा कि आपलोग सावधानी से युक्ति बल और पराक्रमकेधरा इसमेरेपिता राजाधृतराष्ट्रका सबकार्य ठीक२ करनेको योग्यहो और पुरबासी और देशबासियों के जो कार्य्य हैं उनसबको राजासे पूछकर विभागादि कार्य करो ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेएकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## बयालीसवां अध्याय ॥

इन सब प्रबन्धों के पीछे राजा युधिष्ठिरने उन२ जातिवालों के श्राद्धों को पृथक्२ करवाया जो कि युद्धमें मारेगयेथे और पुत्रोंके श्राद्धोंको राजाधृतराष्ट्र ने अपने हाथसे करके सब कामना आदिगुण संयुक्त धन और गोदान भी किये और बड़े मोलके रत्न उन महात्मा द्रोणाचार्य्य और कर्ण और धृष्टद्युम्न अभिमन्यु घटोत्कचराक्षस और सहायक बिराट सुहृदजन द्रुपद और द्रौपदी के पुत्रोंके निमित्त ब्राह्मणोंको दिये और हजारों ब्राह्मणोंमें प्रत्येक ब्राह्मणको पृथक्२ समझाते हुये धन, रत्न, गो और वस्त्रोंसे अच्छेप्रकार तृप्त किया और जो ऐसे राजालोग मारेगये जिन्होंके कोई सुहृदजन नहीं हैं उनके नामसे संकल्प करके क्रियाकर्म्मकिया और सब सुहृदजनों के नामसे पांडवोंने धर्म्मशाला बावड़ी तालाब और अनेकप्रकार धर्म्मालय बनवाये और उनसब के ऋणसे उद्धार लोकनिन्दासे रहितहोकर धर्म्मसे प्रजापालन आदि कर्त्ता कर्म्मोंसे निवृत्त हुआ और पहिलेके ही समान धृतराष्ट्र गान्धारी विदुर आदि सब कौरवोंको और मान सत्कारके योग्य प्राचीन अधिकारियोंको भी अच्छे प्रकारसे प्रसन्नकिया और जो स्त्रियां मृतकहोगई अथवा जिनके पति नहींरहे उनके निमित्त भी बहुतप्रकारसे दान पोषण आदि कर्म्मकिये अर्थात् उनके निमित्त घर वस्त्र और भोजनकी बस्तु इत्यादि से अच्छेप्रकार पूजन किया और दुखी अंधे गरीब व पुरुषोंपर कृपाकरी इनबातोंसे राजा युधिष्ठिर सम्पूर्ण पृथ्वीको बिजयकर शत्रुओंसे अऋणहो निरशत्रुहो सुख पूर्व्वक विहार करने लगा १२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणि राजधर्मेद्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

## तेंतालीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायनबोले कि इसप्रकारसे अभिषेकादि से शुद्धहो बुद्धिमान् युधिष्ठिरने हाथजोड़ नम्रहो श्रीकृष्णजीसे यह कहा कि हे यादवोत्तम श्रीकृष्णजी

आपकी कृपासे नाति पराक्रम बुद्धिके योगसे मैंने बापदादेके इसराज्य को फिर पाया इससे हे कमललोचन शत्रुओं के पराजय करनेवाले आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार करताहूं आप सम्पूर्ण संसारमें अकेले निवास करनेवाले हैं औ उपासना करनेवालोंकी गति भी आपही को कहते हैं जितेन्द्री ब्राह्मण बहुतप्रकारके नामों से आपकी स्तुति करते हैं हे विश्वकर्त्ता विश्वात्मा तुमको नमस्कार है हे सर्व्वव्यापी सर्व बिजयी हरि श्रीकृष्ण बैकुंठ पुरुषोत्तम आपको नमस्कार है और तुझे आप अकेले प्राचीनपुरुषने सात प्रकारसे अदितीके पुत्रहोकर परशुराम रामचन्द्र कृष्ण बलदेव आदिके रूपको धारण किया तुमको तीनों यज्ञोंमें प्रकटहोनेवाला और धर्म्मज्ञान वैराग्यका स्वामी या ऐश्वर्य लक्ष्मी यश आदिका स्वामीभी कहते हैं तुम पवित्रकीर्त्ति वाली इन्द्रियोंके और यज्ञों के ईश्वर होकर ब्रह्माजी के भी गुरू कहेजातेहो और तुमहीं पिनाकधारी त्रिनेत्र शिवजीहौ तुम्हीं समर्थ और दामोदर हौ और तुम्हीं अग्नि सूर्य्य बराह धर्म्म गरुड़ध्वज शत्रु सेना पराजय करनेवाले सबदेहोंमें प्रवेश होनेवाले बड़े पराक्रमी पुरुषहौ तुम्हीं उत्तम तुम्हीं सेनापति सत्य अन्नदाता और देवताओंके सेनापति स्वामिकार्त्तिकभी तुम्हींहो तुम्हीं अजेय और शत्रुओं के विजयकर्त्ताहौ और तुम्हीं ब्राह्मणआदिके रूप अनुलोम विलोम से उत्पन्न होनेवाले जीवों के रूप श्रेष्ठहौ और तुम्हीं ऊर्ध्ववर्त्मा अग्निहौ और तुम्हीं इन्द्रके अभिमानध्वंसक शिव विष्णुरूपहौ तुम्हीं सगुण निर्गुणहौ और क्रमसे पूर्व्व उत्तर ईशानआदि दिशा रूपहौ त्रिधामा और स्वर्गसे अवतार लेनेवालेहौ तुम्हीं संसार के राजकुलहौ और विराटरूप हौ तुम्हीं देवेन्द्रहो तुम्हीं संसार के कारणहौ तुम्हीं सतरूप देहरहित श्रीकृष्णहौ तुम्हीं अश्विनीकुमार और उनके पिता सूर्य और कपिल, वामन, यज्ञ, ध्रुव गरुड़ यज्ञसेनहौ तुम्हीं शिखंडी,नहुष, महीश्वर और तुम्हीं पुनर्वसुनाम नक्षत्रहो और तुम्हींपिंगलवर्ण रुक्मयज्ञ सुवभ्रु और दुंदुभीहौ तुम्हींकालचक्ररूपहौ श्रीकृष्ण पद्म पुष्कर पुष्पधारी हौ तुम्हीं समर्त्थ और देवतारूप समुद्र ब्रह्मा पवित्र धाम और धामकेज्ञाताहौ तुमकोही हिरण्यगर्भ श्रद्धा स्वधा केशव कहतेहैं तुम्हीं इस संसारके उत्पत्ति स्थान और प्रलयस्थानहौ और तुम्हीं आदिमें इसविश्वको उत्पन्न करतेहौ हे संसार के उत्पत्तिस्थानरूप यह संसार आपके आधीन है हे शार्ङ्गधन्वाचक्र हाथमें रखनेवाले सभामें जब युधिष्ठिर ने बड़ी प्रीतिपूर्व्वक श्रीकृष्णजीकी प्रशंसा सहित स्तुतिकी तब यादवेन्द्र कमललोचन श्रीकृष्णजी ने उस भरतबंशी युधिष्ठिरको उत्तम २ वचनों से प्रसन्न किया १७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रयश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

# चवालीसवां अध्याय॥

वैशम्पायनबोले कि यह सबस्तुति श्रीकृष्णजीकी करके राजा युधिष्ठिर ने अधिकारी आदि सेवकों को विदाकिया और वह सब राजाकी आज्ञा पाकर अपने २ स्थानोंमेंगये तदनन्तर भयंकर पराक्रमी भीमसेन अर्जुन नकुल सहदेव चारों अपने भाइयोंसे यह कहा कि तुमलोग महाभारी युद्धमें शत्रुओंके नानाप्रकार के शस्त्रों से विदीर्ण और घायलदेह क्रोध और शोकसे दुखीहो अत्यन्त थकगयेहो और हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ आपलोगोंने मेरे हेतुसे वनमें दुःखके निवासोंको ऐसा पाया जैसे कि पापीपुरुष पावें इससे सुख पूर्वक इस विजयके आनन्दको भोगो और सावधान होकर विश्राम के पीछे कल फिर तुमलोगोंसे मिलूंगा इसके पीछे महाबाहु भीमसेनने धृतराष्ट्र से स्वीकाराकिये हुये और भाईके दियेहुये दुर्योधन के इस महलको जोकि नाना आनन्द के स्थानोंसे व्याप्त अनेक रत्नों से जटित दासदासियों से पूर्णथा ऐसे प्राप्तकिया जैसे कि इन्द्रने महेन्द्रपर्वतको पाया और उसीप्रकार दुश्शासनकेघरको जोकि बड़े २ महलोंकी पंक्तिसे घिराहुआ सुवर्णकी बन्दनवारोंसे शोभित दास दासियों से व्याप्त बहुत धन धान्य से पूर्णथा उसको अर्जुन ने राजा की आज्ञासे पाया और वनमें महापीड़ा पानेवाले नकुलको युधिष्ठिरने दुर्मर्षणका वह महलदिया जोकि दुश्शासन के महलसे उत्तम बीरभवनके रूपमणि और सुवर्णसे खचितथा और दुर्मुखका श्रेष्ठ महल जोकि सुवर्णसे अलंकृतशोभायमानथा और सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियोंसे देदीप्यमान था वह महल सहदेवको दिया और सहदेव उसेपाकर ऐसाप्रसन्नहुआ जैसे कि कैलाशको पाकर कुबेर प्रसन्न हुआ और युयुत्सु, विदुर, संजय, सुधर्म्मा, धौम्य यह सब अपने२ महलोंको गये और पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी सात्यकीके साथ अर्जुन के महल में जाकर ऐसे बिराजमानहुये जैसे कि पर्वतकी गुफा में व्याघ्र बैठे फिर अपने२ स्थानों में अच्छे २ पदार्थ भोजनकर सुख पूर्वक निद्रा लेकर आनन्द के सहित राजा युधिष्ठिर के पास सब मिलकर प्राप्तहुये १६॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेचतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४४॥

# पैंतालीसवां अध्याय॥

जनमेजयबोले कि हे वैशम्पायनजी धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर ने राज्यको पाकर जो २ कर्म्मकिये वह सब आप मुझसे वर्णन कीजिये हे जितेन्द्री महाऋषि तीनों लोकों के नाथ महायशस्वी पराक्रमी श्रीकृष्णजीने जो २ कर्म्म किये वहभी कहने के योग्यहो वैशम्पायन बोले हेराजाजनमेजय मेरेकहे हुयेसत्य२

वचनों को सुनो कि जो पाण्डवों ने वासुदेवजी को अग्रगामीकरके जो २ कर्म्मकिये वह एकाग्रहो सुनो कि युधिष्ठिरने राज्य पाकर चारोंवर्णोंको यथा-योग्य अपने २ स्थानों पर नियत किया प्रथम तो पाण्डवोंने स्नातक ब्राह्मणोंको एकएक सहस्र निष्क दानदिया दास और पोषणके योग्य, रक्षितऔर अभ्यागतों को भी सब कामनाओंसे पूर्णकिया और इच्छाकरनेवाले दुखियों को भी आनन्द देकर उसने धौम्य पुरोहितको हजारों गौ और सुवर्णरचित स्थानरत्नआदि धन और अनेक प्रकारके वस्त्रादिकदिये और कृपाचार्य्यजी के निमित्त गुरुवृत्ती केसमान सेवाकी अर्थात् गुरुके समान पूजन कियाऔर विदुरजीकी भी पूजाकरी और सब रक्षित लोगोंको नानाप्रकार सुस्वादुभोजन और वस्त्र धनआदि से संतुष्टकिया और प्राप्तधनसे राजाने धृतराष्ट्रके पुत्र युयुत्सुकी भी पूजाकरी इनसबबातोंको करके उसराज्यको धृतराष्ट्र विदुर और गांधारीके स्वाधीनकरके सुखपूर्वक रहनेलगा इसप्रकार सबनगरको प्रसन्न करके राजा हाथ जोड़ेहुये वासुदेवजीके पासगये वहां श्रीकृष्णजीको श्याम सजल मेघके समानवर्ण शोभायमान मणिऔर सुवर्णसे भूषित पलंगपर बैठा हुआ देखा उससमय दिव्य अग्निके समान प्रज्वलित पीताम्बरधारणकिये दिव्यभूषणों से अलंकृत सुवर्ण मणि युक्त कौस्तुभमणिको छाती में धारण किये ऐसे शोभायमान थे जैसे सूर्य्योदय में उदयाचल की शोभाहोतीहै ऐसे अलौकिक शोभायमान श्रीकृष्णजी को देखकर बड़ी नम्रता और मृदुहास्य पूर्वक मीठे २ बचनोंसे राजायुधिष्ठिरने श्रीकृष्णजीसे कहा कि महाबुद्धिमान् प्रतापीपुरुष आपकी रात्रि क्या सुख पूर्वक व्यतीतहुई हे अविनाशी जैसेआप के सब बिचार शुद्धहैं इसीप्रकार दैवी बुद्धिभी आपमें है हे भगवन् त्रिलोकीनाथ हमने राज्य आपकी कृपासे पाया और पृथ्वी हमारे आधीन हुई और हमारी उत्तम बिजय जिसको हमने प्राप्तकी वह नाशमान नहीं है श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के इस बचनको सुनकर कुछ उत्तरनहीं दिया और ध्यानही में बैठेरहे २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेपंचचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

# छियालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरने कहा कि हे महापराक्रमी बड़ा आश्चर्य्य है कि तुम भी ध्यान करतेहो हेत्रिलोकी के उत्पन्न करने वाले क्या इस त्रिलोकीमें कुशलहै क्योंकि आप सरीके पुरुष देवोंके देव होके तीनों अवस्थाओंसे हटकर जो चौथी अवस्थामें प्राप्त हुये इससे मेरे चित्त को आश्चर्य्यहुआ प्राणायामादिकों का करने वाला और देहमें फिरने वाला आपका प्राण निश्चल हुआ और शुद्ध

ज्ञान आपके चित्तमें नियतहुये हे गोबिन्द आपकी वाणी और मनने बुद्धि में प्रवेशकिया और सबगुण आप सरीके क्षेत्रज्ञ में प्राप्तहुये आपके रोमांचभी नहीं हिलते तुम्हारी बुद्धि और मन स्थिर है इससे हे माधव तुम काष्ठ वा पाषाणके समान निश्चलहो जैसे वायु से रहित स्थान में दीपक निश्चल और प्रकाशित रहता है उसी प्रकार आपभी निश्चेष्ट निश्चल वर्त्तमान हो जो आप इसको गुप्त नहीं रखना चाहते हैं और मुझे समझने का अधिकारी समझते हैं तो ऐसी दशामें मुझ सन्देही के सन्देह को निवृत्तकरो हे पुरुषोत्तम आपही कर्त्ता अकर्त्ता मायाके प्रवर्त्तक अविनाशी आदि अन्त रहित सबके आदि होकर तुम इस कारण मुझ नीचे शिरवाले से कहने के योग्यहो तदनन्तर इन्द्रियों को यथास्थानों में नियत करके मन्दमुसक्यानसे श्रीकृष्णजी युधिष्ठिर से बोले कि शरशय्यापर वर्त्तमान अग्नि के समान शान्त होने वाला पुरुषोत्तम भीष्म मुझको ध्यानकरताहै इस से मेरा चित्त उसमें गया वज्र के समान जिसकी प्रत्यंचा के शब्द को देवराज इन्द्र भी सुनने को असमर्थ होताहै उसको मैं प्राप्त हुआहूं जिसने बड़े पराक्रम से सम्पूर्ण राजाओं की विजय करके वह तीनोंकन्या बिवाहीं और जो तेईस दिनतक परशुराम जीसे युद्ध करता हुआ रोमांच से भी खण्डित न हुआ वह सब इन्द्रियों को इकट्ठा करके और चित्त को ज्ञान के द्वारा आधीन करके मेरी शरण में प्राप्त हुआ और श्रीगंगाजी ने जिसको गर्भ में धारण किया और वशिष्ठजी का शिष्य होकर बड़ा तेजस्वी बुद्धिमान् दिब्यअस्त्रों का और अंगों के साथ चारों वेदों का जानने वाला है और हे पाण्डव जमदग्निजी के पुत्र परशुराम जीके शिष्य सब विद्याओं के मूलस्थान उस भीष्मको मैं चित्त से प्राप्त हुआ हूं सो हे युधिष्ठिर वह तीनों काल का जानने वाला धर्म्मज्ञों में उत्तम है उस पुरुषोत्तम के स्वर्ग्गवासी होजाने में पृथ्वी ऐसी होजाय गी जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि होती है सो हे युधिष्ठिर तुम गंगाजी के पुत्र महापराक्रमी तेजस्वी सत्यवक्ता भीष्मजीके पास बैठ कर उन सब प्रश्नों को करो जो तेरे चित्त में वर्त्तमानहैं और अर्थ धर्म्म काम मोक्ष और चारों विद्या चारों आश्रमों के धर्म्म और सब राजधर्म्मों को उससे पूछो कौरवोंके धुरन्धर उस भीष्मपितामह के अस्त होने पर सब धर्म्म भी अस्तंगत होजायँगे इससे मैं तुमको सलाह करताहूं अश्रुपात डालनेवाले युधिष्ठिर ने वासुदेव जी के उन उत्तम बचनों को सुनकर उत्तरदिया कि हे मथुरावासी वह ऐसेही हैं मैं निस्सन्देह जानताहूं क्योंकि मैंने बड़े २ महात्मा ब्राह्मणों के मुख से भीष्मजी का प्रभाव और माहात्म्य अच्छे प्रकारसे सुना वहभी यादवेन्द्र जैसा आप कहते हैं वह ठीकहीहै हे माधव जो आपकी मेरे

ऊपर कृपा है ऐसी दशा में हम आपको मुख्य करके भीष्मजी के पास जावें-
गे और सूर्य भगवान् के लौटनेपर वह परम धाम को जायँगे इससे हे महा-
बाहु वह कौरवोत्तम भीष्म आप के दर्शन पाने के योग्य है तुमहीं ब्रह्मरूप
देवताओं के देवता सगुण निर्गुण रूपमय होकर भीष्मजी को दर्शन दो यह
बचन युधिष्ठिर के सुनकर श्रीमधुसूदन ने सात्यकी से कहा कि मेरा रथ
जोड़ो सात्यकी ने शीघ्रही दारुक सारथी को हुक्म दिया कि बहुत जल्द
श्रीकृष्णजीका रथ जोतकर लाओ उसने आज्ञा पातेही कृष्णके स्वर्णमयीरथ
को जोतकर तैयारकिया और हाथजोड़कर श्रीकृष्णजीसे निवेदनाकिया ३५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेषट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

# सैंतालीसवां अध्याय ॥

जनमेजयने कहा कि हे वैशम्पायनजी शरशय्यापर सोने वाले भरतबं-
शियों के पितामह भीष्मजीने किस प्रकार से कौनसे योग को धारण करके
देहको त्याग किया। बैशम्पायन बोले कि हे महाराज आप सावधानहो पवि-
त्र चित्त और नियमको दृढ़करके महात्मा भीष्मजीके देह त्याग के वर्णन
को सुनो उत्तरायण सूर्य्य होनेपर भीष्मजी ने समाधि में स्थित होकर जी-
वात्माको परमात्मा में लगाया और सैकड़ों बाणोंसे छिदेहुये सूर्य्यके समान
तेजस्वी भीष्मजी बड़े२ महात्मा ब्राह्मणोंसे घिरेहुये महा शोभावान् हुये उन-
के चारों ओर वेदव्यास, नारद, देवस्थान, वात्स्यायन, अस्मक, सुमन्त, जै-
मिनि, पैल, शांडिल्य, देवल, मैत्रेय, असित, वशिष्ठ, कौशिक, हारीत, लो-
मश, अत्रि, बृहस्पति, शुक्र, च्यवन, सनत्कुमार, कपिल, बाल्मीकि, तुम्बुरु
कुरु, मौद्गल्य, परशुराम, मुनि, पिप्पल, पुलह, संबर्त्त, कच, कश्यप
पुलस्ति, चक्रत, दक्ष, पराशर, मरीचि, अंगिरस, गौतम, गालव, धौम्य, वि-
भाण्डव, माण्डव, धौम्य, कृष्णानुभौतिक, उलूक, मार्कण्डेय, भास्कर, पूरण
कृष्णसूत इत्यादि महात्मा अपने२ अधिकारयुक्त सुन्दर आसनोंपर बिराज-
मानथे ऐसी दशामें बर्त्तमान शरशय्यापर शोभित भीष्मपितामहने श्रीकृष्ण-
चन्द्र आनन्दकन्दको स्मरण किया तदनन्तर बड़े महात्मा धर्म्मज्ञभीष्मजीने
उस योगेश्वर कमलनाभ सर्वव्यापी जगत्केस्वामी श्रीवासुदेव श्रीकृष्णजीकी
स्तुतिकरी और कहा कि मैं श्रीकृष्णजी के आराधनकरनेकी इच्छाकरके जिस
बचनको कहना चाहताहूं उसबचनसे वह आदिपुरुष मेरेऊपर प्रसन्नहो अब
आशिष कहतेहैं कि मैं सर्वात्मासे आत्माको त्यागकरके उनदोषोंसेरहित पवि-
त्रमार्गी सबसेउत्तम जो तत्त्वमसि महावाक्यहै उसकेतत्पदका अर्थरूप हिरण्य-
गर्भ प्रजाके स्वामी ईश्वरको प्राप्तहोताहूं देवता और ऋषियोंनेभी उसअनादि

परब्रह्मको नजाना यह धाता नारायण भगवान् हरि अकेला आपको जानता है सिद्धऋषिमुनियोंके समूह और देवता यक्ष गन्धर्व राक्षस पन्नग दैत्य दानव आदि जिसको नहींजानतेहैं कि यह ईश्वर कौनहै और कहांसे कबआयाहै जिस जीवों के ईश्वर में तीनों गुणसे उत्पन्न होनेवाले संसारी जीव ऐसे ठहरते और प्रवेश करते हैं जैसे कि सूत्र में मणियों के समूह नियतहोते हैं ऐसे परमात्मा हरिको सहस्र शिर और सहस्र चरण सहस्र भुजा मुकुटसुखवाला नारायण विश्व परायण सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्थूल से स्थूल गुरुसे गुरु श्रेष्ठों से श्रेष्ठ तमकहा और जिसको वेद और उपनिषद्आदि साममंत्रोंमें ध्यानकरतेहैं और वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चारों नामोंसे और अन्य गुप्त उत्तम नामोंसे ब्रह्मजीव मन अहंकार रखनेवाली बुद्धिसे प्रकटहोनेवाले जिन भक्तों के स्वामी को पूजते हैं वहतप जो उसकी प्रीतिके निमित्त किया गया और जिसकेद्वारा वह हरसमय चित्तमें नियतहोताहै और सबका आत्मा और पैदा करनेवाला और जाननेवाला सर्वरूपहै मैं उसको प्राप्तहोता हूं और जिसको श्रीदेवकीजीने वेदब्राह्मण और यज्ञोंकी रक्षाकेनिमित्त वसुदेवजीकेद्वारा उत्पन्न किया जैसे कि अरणी काष्ठअग्निको उत्पन्नकरताहैजो द्वैतभावको त्यागकर अनिच्छायुक्तपुरुष मोक्षकेलिये उपाधि और पापोंसे जुदा सबके ईश्वरगोविन्द जीकोसूक्ष्म बुद्धिमे हृदयकेआकाशमें देखताहै और जो प्राण इन्द्रियोंको उल्लं-घनकर कर्मकरनेवाला सूर्यादिसेभी अधिक प्रकाशवान मनबुद्धि चित्तसे परे हैं उस संसार के स्वामीको प्राप्त होताहूं और पुराणोंमें पुरुष और यज्ञादिकोंमें जिसको ब्रह्म कहा और संसारके नाशमें संकर्षण कहा उस उपासनाके योग्य की उपासनाकरते हैं द्वैतसे भिन्न क्रियावान् भक्त पुरुष जिस एक और अनेक रूपसे प्रकट होने वाले की पूजा करते हैं उसीको जगत का आश्रयरूप भंडार कहा जिस में कि सब संसार वर्त्तमान है और जिसमें सब जीव ऐसे चेष्टाकरते हैं जैसे कि जल में पक्षी क्रीड़ाकरें जिस के आदि अन्त को देवता ऋषि गंधर्व यक्ष राक्षस सर्प आदि कोई नहीं जान सक्ताहै और सब जितेन्द्री लोग उस अविनाशी और महा दुःखकी औषधि को पूजते हैं और जो आदि अन्त रहित सनातन आत्मयोनि अदृष्ट जाना नहीं जाता हरिनारायण प्रभु और जिसको सब स्थावर जंगमजीवोंका स्वामी अविनाशी परम्पद रूप कहते हैं और जिस दैत्यों के नाश करनेवाले सुवर्ण वर्ण एक गर्भ को अदिति ने बारह प्रकार से उत्पन्न किया उस सूर्य्य रूप आत्मा को नमस्कार है और जो शुक्लपक्ष में देवताओं को और कृष्णपक्ष में पितरों को अमृतसे तृप्तकरता है वह ब्राह्मणोंका राजाहै और अमावसके चन्द्रमा रूपको नमस्कार है जो बड़े अंधकार के अन्त में जिस महा तेजस्वी पुरुषको जानके मृत्युको

उल्लंघन करता है उसउपासना योग्य आत्मा को नमस्कार और जिस ब्रह्म को बड़ी२ ऋचाओं से अग्निस्थापनादि बड़े२ यज्ञों में ब्राह्मणों के समूह गाते हैं उस वेद आत्मा को नमस्कार और ऋग् यजु साम यह तीनों वेद जिस के धाम हैं और पंच हव्य जिसका रूप है और जिस को साततार गायत्री आदि विस्तार करतेहैं उस यज्ञात्माको नमस्कार और जो २ नानामंत्रों से होमा जाताहै उस होमात्माको नमस्कार उस यज्ञरूप सरूप आत्माको नमस्कार जिसको वचनरूपअंग और संधिरूप अंगुष्ठ आदि रखनेवाला सुरंजनरूप भूषणोंसे भूषित दिव्य और अक्षरकहा उसवागात्माके अर्थ नमस्कार और जिस यज्ञोंके अंगरूपने वराहहोकर तीनों लोकों का हितकरने के हेतु पृथ्वी को ऊपर उठाया उस यज्ञरूप वीरात्माको नमस्कार जो पुरुष वेदमें कहीहुई मोक्षकी देनेवाली युक्तियों से और धर्म्म अर्थ व्यवहार और उसके अंगोंसे सत्पुरुषोंके पुल अर्थात् योगधर्म्म को तैयार करताहै उससत्यात्माके अर्थ नमस्कार पृथक् २ धर्म्मकरनेवाले और पृथक् कर्म्मफलके जाननेवाले पुरुष जुदेजुदे धर्मोंसे जिसको अच्छीतरहपूजते हैं उसधर्मात्माको नमस्कार जिस कामदेवके अंगोंसे सब देहधारी उत्पन्नहोतेहैं वह शरीरके उन्मादरूप कामात्माको नमस्कार महर्षिलोग देह में वर्त्तमान अर्थात् देहरूपी क्षेत्र में बिराजमान दृष्टिमें न आनेवाले क्षेत्रज्ञको निश्चयकरके खोजते हैं उसक्षेत्रज्ञ आत्माके अर्थ नमस्कार है सांख्यशास्त्र वालोंने जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थावान सोलहगुण सम्पन्न चैतन्यको सत्रहवां कहा उस सांख्य आत्मा को नमस्कार आत्माको परम आत्मा में मिलानेवाले और निन्दा से रहित श्वासाजीतनेवाले बुद्धी में वर्त्तमान अच्छेजितेन्द्रीपुरुष जिसको ज्योतिरूप देखतेहैं उस योगात्माके अर्थ नमस्कारहै पाप पुण्य के दूरहोनेपर संसार से निर्भय शान्तरूप संन्यासी जिसको प्राप्तकरतेहैं उसमोक्ष आत्माको नमस्कार हजारयुगके अन्त में जो देदीप्यमान अग्नि सम्पूर्ण संसारको अच्छे प्रकारसे भक्षणकरतीहै उस घोरात्मारूप के अर्थ नमस्कार जो महापुरुष सब जीवोंको अपने आत्मामें लयकरके जगत्को एक रसकर बालकरूप होता है उस मायात्माको नमस्कार और जिस अजन्मा कमललोचन की नाभि में कमल उत्पन्नहुआ और जिस कमल में यहसब विश्वस्थितहै उस परमात्माको नमस्कार हजार शिर रखनेवाले अनन्तपुरुष के अर्थ नमस्कार जिसके शिरके बालोंमें बादल और सबदेह के जोड़ों में नदियां और कोखमें चारों समुद्रहैं उसजल आत्माको नमस्कार जिससे महाप्रलय की सब विपरीत सूरत पैदा होतीहैं और जिसमें लयहोतेहैं उस हेत्वात्माको नमस्कार जो रात्रिमें अर्थात सुषुप्ती में साक्षीहोजाय और जाग्रतमें निष्फल निष्कामहोताहै और प्रिय

और अप्रियका कर्त्ता नहीं है उस दृष्टात्माको नमस्कारहै जो बिना रोक सब कर्म्मों में और धर्म्म कार्य्यों में तैयार वैकुण्ठका रूपहै उस कार्य्यात्मा के अर्थ नमस्कार जिस क्रोधाग्नि ने धर्म्म त्याग पशुवत् क्षत्रियों को इक्कीसवारयुद्ध में मारा उस कर्म्मात्मा के अर्थ नमस्कार है जो अपने को पञ्चप्राणरूप होकर देह में वर्त्तमान वायुरूप होकर जीवों को चेष्टावान करता है उस वायुआत्माके अर्थ नमस्कार जो योगमाया के बलसे सतयुग आदि युगों में अवतार लेता है और मास ऋतु दक्षिणायन उत्तरायण वर्ष इनसब के हिसाव से उत्पत्ति और प्रलय का कर्त्ता है उस कालात्मा के अर्थ नमस्कार जिसका मुख ब्राह्मण और दोनों भुजा क्षत्री और सब जंघा और पेट वैश्य हैं और शूद्र जिसके चरणों में रक्षावान हैं उस वरण आत्मा को नमस्कार जिसका मुख अग्नि मस्तक स्वर्ग नाभि आकाश चरण पृथ्वी नेत्र सूर्य्य कान दिशाहैं उसलोकात्माको नमस्कार जो काल से और युगसे परे परजन्य हिरण्यगर्भ है उससे परे जो मायोपहित अर्थात् मायासे ढका जो ईश्वर है उससे भी परे है अर्थात् शुद्ध ब्रह्म है जिस की आदि नहीं और वह विश्वका आदि है उस विश्वात्माको नमस्कार विषयों में कर्म्म करनेवालों को अनादर करके वैशेषिक गुणों अर्थात् राग द्वेष से जिसको विषयों का रक्षक कहा उस गुप्तार आत्मा को नमस्कारखाने पीने की वस्तुओं को इन्धन और रस के द्वारा वृद्धिपाने वाला प्राणरूप अग्निहोकर जीवों को धारण करता है उस प्राणात्मा को नमस्कार जो अग्नि देहके भीतर के प्राणों की रक्षा के निमित्त अन्नको चारप्रकार से भोजन कराती है और परिपक्वकरती है उस पावक रूप आत्मा को नमस्कार जो पिंगलवरण दृष्टि स्थूलकण्ठ बड़ी दाढ़ नख रूप आयुधधारी रूप दानवेन्द्र का नाशक है उस हंस आत्मा को नमस्कार अर्थात् नृसिंह जी को नमस्कार है जिसको देवता गन्धर्व दैत्य और दानव मुख्यता से नहीं जानते उस सूक्ष्मात्मा को नमस्कार जो समर्थ भगवान् शेषजी रसातल में स्थितहोकर सम्पूर्ण संसार को धारण करते हैं उस वीर्य्यात्मा को नमस्कार जो संसार की रक्षा के लिये मोहपाशों से जीवों को मोहता है उस मोहात्मा को नमस्कार इस उत्तम ज्ञान को पञ्चविषयों में लगा जानकर जिस पुरुष को ज्ञान से प्राप्त करते हैं उस ज्ञानात्मा को नमस्कार जिसका स्वरूप ध्यानचक्र से बाहर और सब ओर से ज्ञानरूप नेत्र रखनेवाला है और जिसमें अत्यन्त विषय पैदा होता है उस दिव्य आत्मा को नमस्कार सदैव जटा दण्ड धारण किये पेट और देह लम्बा रखनेवाला और कमण्डलरूप धनुषधारी है उस ब्रह्मात्मा को नमस्कार है जो शूलधारी देवताओं के ईश्वर त्रिनेत्र रखनेवाले महात्मा भस्म से लिप्त देह से अर्द्धांग हैं उस रुद्रात्मा को नमस्कार जो अर्द्धचन्द्रको शिरपै और सर्पों का

यज्ञोपवीत किये पिनाक धनुष और शूल हाथ में लिये हैं ऐसे उग्रात्मा को नमस्कार जो सब प्राणियोंका आत्मारूप आदि भूति अर्थात् अहंकार का नाश करनेवाला और काम क्रोध मोह से रहित है उस शान्तात्मा को नमस्कार जिससे सब स्थित हैं और जिससे सबकी उत्पत्तिहै और सर्वरूप है और सर्व ओर है उस सर्वात्मा को नमस्कार हे विश्वकर्म्मा विश्वकी आत्मा विश्व के उत्पन्न कर्त्ता आप पञ्चभूत से पृथक् मोक्षरूप हो ऐसे तीनों लोक में वर्त्तमान को नमस्कार है तीनोंलोकों से परे सब दिशाओं में व्याप्त होकर सब के आश्रयस्थान हो हे लोकोत्पादक अविनाशी विष्णु तुमको नमस्कार, हे इन्द्रियों के स्वामी दुर्धर्ष तुमहीं उत्पत्तिकरनेवाले और नाशकर्त्ता हो तीनों मार्ग में आपके दिव्य भाव को नहीं देखता किन्तु आपके सनातनरूपको देखता हूं आपके शिर में स्वर्ग चरणों में देवी पृथ्वी और पराक्रम में तीनों लोक व्याप्त हैं इससे आपही सनातन पुरुषहो आप की भुजा दिशानेत्र सूर्य्य और वीर्य्य प्रजापति हैं और तेजस्वी वायुके सातमार्ग आप ही से रुके हुये हैं जो पुरुष आतसी पुष्प के सदृश पीताम्बरधारी अविनाशी श्रीगोबिन्द जी को नमस्कार करते हैं वह निर्भय होते हैं श्रीकृष्ण जी को एकबार भी प्रणाम करना दश अश्वमेध के अमृत स्नान के तुल्य है दश अश्वमेध करनेवाला तो जन्म पाता है परंतु श्री कृष्ण को नमस्कार करनेवाला फिर जन्म को नहीं पाता जो अहर्निशि श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुये कृष्णही का व्रत करते हैं वह ऐसे श्रीकृष्णही में प्रवेश होते हैं जैसे कि मंत्र से होम हुआ घृत अग्निमें लय होता है हे नरकासुर का भय उत्पन्न करनेवालों की रक्षा करनेवाले संसार सागरके पार उतारनेवाले वेद ब्राह्मणों की रक्षा करनेवाले और गौ ब्राह्मण के और जगत् के हितकारी श्रीकृष्ण गोविन्द तुमको नमस्कार हरि यह दोनों अक्षर प्राणों के मार्ग में पाथेय हैं और संसार रूप रोग की औषधि दुःख शोक के नाशक जैसे सब जगत् कृष्णमय है और सत्य विष्णुरूप है उसी प्रकार जगत् विष्णुरूप है जैसे सब विष्णुरूप है उसी प्रकार मेरेपापभी नाशहोयँ हे देवोत्तम कमललोचन आप के शरणागत और इच्छासदृश गतिचाहनेवाले भक्त के लिये जो कल्याणहै उसको ध्यान करो विद्यातपआदिके आलय अजन्मा सर्वव्यापी दुष्टोंका त्रास का बंचनरूप यज्ञोंसे पूजित स्तुतिके योग्य मुझपर प्रसन्नहो नारायणही परब्रह्मनारायणही बड़े देवताआदि पुरुषहैं जब भीष्मजीने इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रजीको स्तुति करके नमस्कारें करीं तब माधवजी ने योगसे भीष्मजी की भक्तिको जानकर त्रिलोकी दर्शन दिव्यज्ञानदेकर अपनी देहमें फिर आगये फिर भीष्मजी के उस शब्द के बन्दहोनेपर प्रीतिसे भरे गद्गद कण्ठहो उन ब्रह्मवादियोंने उस

बड़ेज्ञानी महात्मा भीष्मजी को बचनों से पूजन किया और श्रीकृष्णजीकी ऐसी स्तुतिकरने से भीष्मजी की बड़ी प्रशंसाकी और श्रीपुरुषोत्तम जी भी योगबल से भीष्मजी की दृढ़भक्तिको जानकर अकस्मात् आनन्दयुक्त उठ कर रथपर सवारहुये और सात्यकी को साथलेकर चलने को उपस्थित हुये और महात्मा युधिष्ठिर अर्जुनसमेत दूसरे रथपरसवारहुये भीमसेन और नकुल सहदेव तीनों एक रथपर सवारहुये परमतपस्वी कृपाचार्य्य सूत संजय सुयुत्सु भी रथोंपर सवारहुये वह सब पुरुषोत्तम रथोंके बड़ेशब्दों से पृथ्वीको कंपायमान करते नगरकेस्वरूप रथोंपर बैठे चलखेड़हुये तदनन्तर उस प्रसन्न चित्तमार्ग में पुरुषोत्तमकी प्रशंसामें प्रवृत्त ब्राह्मणोंके कहेहुये वचनों को सुनकर उस केशी दैत्यके मारनेवाले आनन्दकन्द श्रीकृष्णजीने शिरझुकाये हाथजोड़े हुये दूसरे मनुष्योंको प्रसन्नकिया १०८॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेसप्तचत्वारिन्शत्तमोऽध्यायः॥ ४७॥

# अड़तालीसवां अध्याय॥

वैशम्पायनजी बोले कि वहांसे वहसब युधिष्ठिरआदि पांचोभाई और श्रीकृष्णजी समेत सबलोग रथोंपर सवार उस कुरुक्षेत्रको गये जहां कि उनक्षत्रियोंने युद्ध में शरीरों को त्याग किया था वहां रथोंसे उतर पर्व्वताकार हाथी और घोड़ोंकेहाड़ और देहोंके समूहोंसे और शंखोंके समान मनुष्योंके कपालोंसे व्याप्त हजारों चिताओंसे चितेहुये अस्त्रोंके खण्डोंसे पूर्ण उस कुरुक्षेत्र को देखतेहुये वह महारथी बड़ीशीघ्रतासे चले और चलतेहीमें श्रीकृष्णजीने परशुराम जीके महापराक्रमको युधिष्ठिरसे कहा कि हे राजा यह पांच परशुरमाजीके ह्रद दिखाई देतेहैं परशुरामजीने इनह्रदों में क्षत्रियों के रुधिरसे उन अपने पितरोंको तृप्तकिया परशुरामजीने इक्कीस बार पृथ्वीको निक्षत्रकरके यहां युद्धसे निवृत्तहुये युधिष्ठिरबोले कि पहलेसमयमें परशुरामजीने जापृथ्वीको इक्कीसवार निक्षत्रकिया इस आपके कथन में मुझे बड़ासन्देह है कि जब परशुरामजीने क्षत्रियों को निर्वंश किया फिर क्षत्रियों के बंशकी उत्पत्ति कैसेहुई सो आप कृपाकरके समझाइये कि कैसे तो परशुरामने पृथ्वीको निक्षत्रकिया और कैसे इसकी वृद्धिहुई हे महावक्ता जब कि करोड़ों क्षत्रियों का नाश हुआ और फिर उसी प्रकार पृथ्वी क्षत्रियों से पूर्णहोगई और महात्मापरशुरामने किसकारण से कुरुक्षेत्र में क्षत्रियों का नाश किया इस मेरे सन्देहको आप निवृत्त कीजिये और हे इन्द्रावर यह वेद आपके वचनों से है आपसे अधिक नहीं है वैशम्पायन बोले कि जब युधिष्ठिर ने ऐसा सन्देह किया तब

पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी ने ब्योरेवार सब वृत्तान्त क्षत्रियोंके नाश और उत्पन्न होनेका कहा॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेअष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४८॥

# उनचासवां अध्याय॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे युधिष्ठिर उन परशुरामजीका प्रभाव और पराक्रम और जन्म जैसा कि मैंने महर्षियों से सुनाहै वह सब तुम मुझसेसुनो और जैसे परशुरामजीके हाथसे सबक्षत्री मारेगये और पैदा होकर इस महाभारत के युद्धमें संहार कियेगये उनमें जह्नु का पुत्र अज और अजका पुत्र बलाकाश्व उसका बेटा धर्म का जाननेवाला कुशिकनाम पृथ्वीपर इन्द्रके समान महातपीहुआ और उसने चाहा कि मैं तीनोंलोकोंसे अजेय पुत्रको उत्पन्न करूं उस उग्र तपस्यावान् को पुत्रके उत्पन्न करनेमें समर्थ जानकर उस के घर में आप इन्द्रने आकर अवतारलिया और लोकेश्वरोंके ईश्वर इन्द्र उसकी पुत्रतामें प्राप्तहुये अर्थात् कुशिकका पुत्र गाधि नामहुआ और उसकीकन्या सत्यवती हुई कुशिकने उसकन्याकी भृगुजी के पुत्र ऋचीकको बिवाहकरदी ऋचीकमुनिने उस कन्याकी पवित्रता से प्रसन्न होकर उसके बेटेके निमित्त और उसीप्रकार गाधीके बेटेके लिये दो स्थानोंमें चरुकोबनाया अर्थात् दो स्थानोंपर तस्मैबनवाई और उस अपनी स्त्री सत्यवतीको बुलाकर कहा कि यहचरु तुमखाओ और दूसरा अपनी माता गाधी को खानेको दो उसका बेटा क्षत्रियों में उत्तम होकर उत्तम २ क्षत्रियोंका मारनेवाला लोकमें अन्य क्षत्रियों से अजेय उत्पन्न होगा और हे कल्याणी यह तुम्हारा चरु तुम्हारेभी पुत्रको उत्पन्नकरेगा जो धीर्य्यवान् इन्द्रियोंका जीतने वाला तपस्वी ब्राह्मणों में श्रेष्ठ होगा ऐसा अपनी भार्य्या को समझाकर वह तपस्वी महात्माऋचीक ऋषि बनको चलेगये और उसी समय तीर्थयात्रामें तत्पर वह राजा गाधिभी अपनीस्त्री समेत ऋचीकऋषिके आश्रम में आया तो सत्यवतीने उनदोनों चरुओंकोलाकर अपनी माताको भर्त्ताकी आज्ञानुसार बड़ीप्रसन्नतासे दिया और भर्त्ताकी आज्ञाको मातासे कहदिया सो हेयुधिष्ठिर उसकी माताने अपना चरु तो बेटीकोदिया और सत्यवतीने अज्ञानतासे उसके चरुको खालिया तब सत्यवतीने प्रसन्नानन होकर क्षत्रियोंके नाश करनेवाले उग्ररूप दर्शनको गर्भमें धारण किया तब ब्राह्मणों में उत्तम ऋचीक उसके गर्भमें वर्त्तमान ब्राह्मण को जानकर अपनी देवीरूप भार्य्यासे बोले हे कल्याणी चरु के विपरीत होने से तू माता से ठगी गई तेरापुत्र महा क्रोधी और कठिन कर्म करनेवाला होगा और तेरा भाई ब्रह्मरूप और तप में प्रीति रखनेवाला उत्पन्न होगा मैंने

तेरेचरु में बिराट्रूप पुरुषका बड़ा ब्रह्मतेज नियत कियाथा और तेरीमाता के चरु में सम्पूर्ण क्षत्रियों का तेज नियत कियाथा सो हे कल्याणी तेरे इस बिपरीत चरुहोने से ऐसा नहोगा तेरी माता का बेटा ब्राह्मण होगा और तेरा पुत्र क्षत्रियों का कर्म्म करनेवाला होगा जब पतिने ऐसा कहा तो सत्यवती गिरपड़ी औ कांपती हुई अपने पति से यह बचन बोली कि हे भगवन्अब आप मुझसे ऐसे बचन न कहिये कि ब्राह्मणों में नीच बेटेको उत्पन्न करेगी ऋचीक बोले कि हे कल्याणी मैंने तुझमें ऐसे पुत्रकी इच्छा नहींकी परन्तु चरुके बिपरीत होने से निर्दय कर्म करने वाला पुत्रहोगा सत्यवती बोली कि हे समर्थ मुनि तुम इच्छाकरके लोकोंको भी पैदा करसक्तेहो फिर पुत्रका पैदा करना कितनी बातहै तुम मुझको बिजयी ज्ञानवान् भीतरसे सच्चा शूर बुद्धिमान् पुत्र देनेको योग्यहो ऋचीक बोले कि हेकल्याणी मैंने कभी स्वप्नमें भी मिथ्या नहींकहा फिर मंत्रों सहित चरु साधनमें अग्निके समक्ष कैसेकहूंगा हेकल्याणी मैं ने पहले समय में तपके द्वारा इस बातको देखाथा और जाना था कितेरे पिता का सब कुल ब्राह्मण होवे सत्यवती बोली कि हे समर्थ चाहो मेरा और आपका निबेड़ा किसी प्रकार से होवे परन्तु मैं बुद्धिमान् बिजयी धर्मात्मा पुत्र को प्राप्त करूं ऋचीक बोले कि हे प्यारी पुत्र और पौत्र में मेरी सामर्थ नहीं है परन्तु हे कल्याणी जैसा तुम चाहती हो वैसाही होगा इतनी कथा सुनाय वासुदेव जी बोले कि इस के पीछे सत्यवती ने पुत्रको उत्पन्न किया वह तप में प्रीति रखनेवाले सावधान ब्रत शान्त रूप भार्गव जमदग्नि नाम से प्रसिद्ध हुये और कुशिकनन्दन गाधिने ब्रह्मरूप बिश्वके संपूर्ण ब्रह्मगुणों से संयुक्त बिश्वामित्र नाम पुत्र को उत्पन्न किया और ऋचीकने तपका भण्डार जमदग्निजी को उत्पन्न किया फिर उन जमदग्निजीने भी ऐसे पुत्रको उत्पन्नकिया जो बड़े भयके हेतु और धनुर्वेद आदि सब बिद्याओं के पारंगत होनेवाला उत्तम प्रकाशमान अग्निके समान तेजस्वी क्षत्रियों के नाशकरने वाले परशुराम नामथे इन परशुरामजीने गन्धमादन पर्वतपर श्रीमहादेवजी को प्रसन्नकरके उनसे अस्त्रोंको और बड़ेतेजस्वी फरसेको पाया उस अकुंठधार महातेजस्वी अग्नि समान प्रकाशित अनन्य फरसेकेद्वारा परशुरामजी लोकोंमें अद्वितीय प्रसिद्धहुये उसीसमय प्रकृतिवीर्यकेबेटे पराक्रमी तेजस्वीअर्जुन नाम क्षत्री दत्तात्रेयी ऋषि की कृपासे सहस्रभुजा पानेवाले चक्रवर्त्ती महा तेजस्वी राजाने अश्वमेधयज्ञमें पहाड़ और सातों द्वीपों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को वेदपाठी ब्राह्मणों को दान किया हे युधिष्ठिर वह सहस्रभुजा रखनेवाला पराक्रमी अर्जुन पिपासित अग्निदेवतासे भिक्षाके निमित्त प्रार्थित कियागया तब उसराजाने अग्निको भिक्षादी उसके बाणोंकी नोकोंसे प्रकट होनेवाले

पराक्रमी अग्नि देवताने भस्मकरनेकी इच्छासे गांव पुर देश घोसोंको पहाड़ बनस्पति समेत उस सहस्राबाहु की सहायता से भस्म करदिया हवासे बढ़ी हुई उस अग्निने सहस्राबाहु के साथ होकर महात्मा बशिष्ठजी के केवल आश्रम को भस्मकिया तदनन्तर आश्रम भस्म होनेके कारण बशिष्ठजी ने महाक्रोधसे सहस्रार्जुनको शापदिया कि जैसे तैंने मेरे इसबनको त्यागनहीं किया और जलादिया इस कारण परशुरामजी युद्धमें तेरी भुजाओंको काटेंगे उस समय इस शापको उस महातेजस्वी पराक्रमी सदैव बिजयी सहस्राबाहु ने सन्देह नकिया इसीशापके कारण इसके पराक्रमीपुत्र अपने पिताके मारनेमें कारणरूप और अहंकारी और निर्दयहुये और जमदग्निजी की गौकेबछड़ों को उस हयदेशके बुद्धिमान् राजा सहस्राबाहु के बिना जनाये अपने देशमें लेआये इस कारण महात्मा परशुरामजी से युद्ध हुआ तदनन्तर क्रोधमें भरकर परशुरामजीने सहस्राबाहु की उनभुजाओं को काटकर घूमतेहुये अपने बछड़ोंको आश्रममें लेआये तब सहस्राबाहुके उन अज्ञानी बेटोंने एकताकरके गुप्तआश्रममें जाकर भालोंसे महात्मा जमदग्निजीके शिरको काटडाला उस समय परशुरामजी लकड़ी और कुशाओंके लेनेको बनको चलेगयेथे तदनन्तर आश्रम में पिताको मृतकदेख महाक्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो शस्त्र धारणकरके यह प्रतिज्ञाकी कि पृथ्वी को निक्षत्र करूंगा यह कहकर सहस्राबाहु को पुत्र पौत्रादि कुटुम्ब सहित मारकर हय देशी हजारों उसके भाई बन्धुओं के रुधिर से पृथ्वी पर कीच करदी और क्षत्रियोंको बिध्वन्सकरके उसी समय क्रिया में युक्त हो बन को चले गये फिर कितने ही हजार वर्ष पीछे स्वाभाविक क्रोध रखनेवाले प्रभु परशुरामजी की महानिंदा हुई अर्थात् बिश्वामित्र के पोते ऋभुके पुत्र महातपस्वी पराबसुने उनसे सभा में निन्दाकरके यह कहा कि हे परशुराम ययाति के गिरने पै स्वर्ग नाम यज्ञ में जो प्रतर्दननाम भृगुवंशी आदि सन्तपुरुष आये वह क्या क्षत्रिय नहीं हैं हे परशुराम जी तुम मिथ्या प्रतिज्ञा करनेवालेहो सभामें अपनी प्रशंसाकरते हो और बीर क्षत्रियोंके भय से तुम पर्वतों में आश्रयीभूतहो अब यह पृथ्वी सबओर से क्षत्रियों से व्याप्त हुई यह पराबसु के बचनको सुनकर भार्गवजी ने फिर शस्त्रको हाथ में लिया इसके पीछे जो सैकड़ों क्षत्री परशुरामजी ने छोड़दिये वह वृद्धिपाकर पृथ्वी के स्वामी हुये हे राजा फिर परशुरामजी ने उन बालकों को भी मारा तब फिर भी गर्भों में बर्त्तमान बालकों के उत्पन्न होने से पृथ्वी व्याप्त हुई फिर उसने उनको भी मारा तब क्षत्रियों की स्त्रियों ने कितनेही पुत्रों की रक्षाकी इसी प्रकार इक्कीसबार परशुरामजी ने पृथ्वीको निक्षत्रकर अन्त को अश्वमेध यज्ञ में कश्यपजी को यज्ञ दक्षिणा में दान

करदी तब कश्यपजी ने क्षत्रियों के शेष रहने के निमित्त यज्ञका श्रुवारखने वाले हाथ से बुलाकर परशुरामजी से यह वचन कहा कि हे मुनि तुम दक्षिण समुद्र के किनारे जाओ और यहां मेरेदेश में तुमको कभी न रहना चाहिये तदनन्तर उस समुद्र ने अकस्मात् उन परशुराम जी के शूर्पारकनाम देशको उत्पन्न किया जो कि पृथ्वी से जुदागिनाजाता है और कश्यपजी इस पृथ्वी कोले ब्राह्मणोंको स्वाधीन करके महावनमें चलेगये फिर वैश्य और शूद्र स्वेच्छाचारी होकर ब्राह्मणोंकी स्त्रियों से कुकर्म्म करनेलगे इस जीवलोक के वे राजा होने से निर्बल मनुष्य सबलों से अधिकतर पीड़ावान् होनेलगे और ब्राह्मणों में किसी की प्रतिष्ठा नहीं रही इसके पीछे पृथ्वी समय के विपर्य्यय से नष्टबुद्धियों के हाथ से पीड़ितहुई और वे मर्य्यादा होने से रसातलको चलीगई जोकि धर्म्म की रक्षा करनेवाले क्षत्रियों से बुद्धि के अनुसार रक्षा नहीं कीगई इसकारण भयभीत होकर भागजानेवाली उस पृथ्वीको देखकर बड़े साहसी कश्यपजी ने उसको जंघा से धारण किया इसी कारण उसका नाम उर्व्वी हुआ और उस देवी पृथ्वी ने कश्यपजी को प्रसन्न करके अपनी रक्षाके लिये प्रार्थनाकरी कि कोई राजा हमारी रक्षा करे और कहा कि हे ब्रह्मन् हैहयकुलकी स्त्रियोंमें मुझ से रक्षित क्षत्रिय लोग उत्तमहैं वही मेरी रक्षा करें उनमें वेदपाठी पौरवबंशी विदूरथका पुत्र वर्त्तमान है वह ऋक्षवत् पर्व्वत में वहां के ऋक्षों से रक्षित किया गयाहै उसीप्रकार यज्ञ करनेवाले बड़े दयावान् तेजस्वी पराशरजी ने राजा सुदास के बेटेकी रक्षा करी है वह क्षत्रीभी शूद्रभृत्यके समान उनके सबकामोंको करताहै इसकारण शूद्रकर्म नाम प्रसिद्धहुआ वह मेरीरक्षाकरे, शिवीका महातेजस्वी गोपतिनाम पुत्र वनमें गौओंके दूधसे पोषणकियागयाहै वह मेरी रक्षाकरे और प्रतर्द्दनका पुत्र बड़ा पराक्रमी वत्सनाम गौशालामें बछड़ोंके संगमें रक्षा कियागया वह राजा मेरी रक्षाकरे दधिवाहनका पौत्र दिविरथकाबेटा गंगाजीके किनारेपर गौतमऋषिसे रक्षित होकर महातेजस्वी महाभाग वृहद्रथनाम गिरिधरकोटिनाम पर्व्वतमें गोलांगलनाम वानरों से रक्षित कियागया है मरुतके वंश में जो क्षत्रियों के लड़के रक्षा कियेगये वह इन्द्रके समान पराक्रमी समुद्र से पोषण कियेगये हैं वह क्षत्रियों के पुत्र जहां तहां सैमार सुनार आदिकी जाति में रक्षाकिये गयेहैं वह मेरी रक्षाकरतेही अचलहोंगे उनके बाप दादे मेरेही निमित्त युद्धमें परशुरामजीके हाथसे मारेगये इस कारण उनसे अऋणहोनेके लिये मुझे उन का पूजन करना चाहिये मैं धर्म्महीन पुरुषसे अपनी रक्षा कभी नहीं चाहती धर्म्मात्मा राजाके कारण ठहर सक्ती हूं इससे शीघ्र विचारकीजिये तब कश्यपजीने पृथ्वी के बताये हुये उन पराक्रमी क्षत्री राजाओं को बुलाकर अ-

भिषेक कराया उनके बेटेपोते होकर वंशानियतहुये इसप्रकारका यहप्राचीन इतिहासहै यह सब इतिहास कहतेहुये महातेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्र जी रथ में चढ़ेहुये बड़ी शीघ्रतासे गये ६० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ४९ ॥

# पच्चासवां अध्याय ॥

वैशम्पायनबोले कि श्रीकृष्ण से यह इतिहास सुनकर राजायुधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजीसे कहा कि हेमहाराज परशुरामजी का पराक्रम इन्द्रके समान है जिसने कि क्रोधसे पृथ्वीको निःक्षत्र किया और उनके भयसे क्षत्रियोंके बालक व्याकुलहोकर गोसमुद्र गोलांगु रीछवानरोंसे रक्षाकियेगये इससे आश्चर्य है और यहनरलोक भी धन्यहै और पृथ्वीपर सब मनुष्य प्रारब्धी हैं जहां पर ब्राह्मणोंने ऐसा धर्म्मरूप कर्म्म किया अर्थात् क्षत्रियोंको पापोंसे मोक्षकरके स्वर्गवासी किया हेराजा श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर यह संवाद कहतेहुये वहां पहुंचे जहां शरशय्या पर पड़ेहुये श्रीगंगाजीके पुत्र भीष्मजी वर्त्तमानथे वहां जाके सूर्य्यके समान तेजसे भरेहुये महाप्रतापी भीष्मजीका दर्शन किया वह भीष्मजी बड़े धर्मिष्ठदेशमें ओघवतीनदीके तटपर देवताओं से सेवित इन्द्रके समान मुनि ऋषियोंसे घिरेहुयेथे उनको दूरसे देखकर श्रीकृष्णजी युधिष्ठिर आदि पांचोभाई और कृपाचार्य्यआदि सबसाथियों समेत सवारियों से उतर चंचलमनको स्थिरकरके उन महामुनियोंमें जाकर विराजमानहुये फिर गोविन्दजी सात्विकी और सब पाण्डव आदि व्यासजी को दण्डवत् करके भीष्मजीके आगे जाकर खड़े हुये और उनको उसदशामें देख प्रणामादिक करके और उनके चारों ओर परिधि समानहो बैठगये तदनन्तर श्रीकेशवजीने चित्त को म्लानकरके भीष्मजीसे कहा कि हे महावक्ता आपके सर्वज्ञान पूर्वके समान शुद्ध हैं और आपकी बुद्धि व्याकुल तो नहीं है और बाणों की चोटोंके दुःख से आपकादेह पीड़ित तो नहीं है चित्तके दुःख से देहका दुःख महाप्रबलहै हे समर्थ आपसदैव धर्मकरने वाले शन्तनु पिताके वरदानसे इच्छापूर्वक मृत्यु चाहनेवाले हो यह पिताका आनन्द मुझको भी प्राप्तनहीं है यह अत्यंत सूक्ष्मभाले भी देहमें पीड़ाकरतीहैं सो हे महात्मा आपसरीखे इतनेबाणोंसे छिदेहुयेको क्यों न पीड़ाहोगी जीवोंकी यह मुख्यता और नाश आपके सामने कहने के योग्य नहींहै अर्थात् आपसर्वज्ञहो और ऐसे प्रतापीहो कि देवताओं के भी उपदेश करनेको समर्थ हो हे भीष्मजी जो भूत भविष्य वर्त्तमानहै वह सब तुम्हारी वृद्धिबुद्धिमें वर्त्तमानहै और जीवोंका नाश और धर्म्मके फलका प्रकाश आपका जानाहुआ है तुमहीं धर्म्मरूप नदीहो आप निरोगदेह राज्य

में वर्त्तमान हजारों स्त्रियों से व्याप्तहोकर भी मुझको ऊर्ध्वरेता दीखतेहो हे महाराज तीनों लोकमें सच्चेधर्म्मवाले महा पराक्रमी शूरअकेले धर्म्ममें प्रवृत्त उसमृत्युको रोकेहुये तपके द्वारा शरशय्यापर सोनेवाले सिवायभीष्मजी के किसीनामी पुरुषको संसारमें नहीं सुनते हैं सत्य तप दान और यज्ञके अधिकरण धनुर्वेद और वेदों की विज्ञता और सदैव संसार की रक्षाकरनेवाला आप के सिवाय किसी को नहीं देखता हूं और आप के समान किसी महारथी को दयावान् पवित्र जितेन्द्री और सबों का उपकारी किसी को नहीं सुनते हैं तुमहीं एक रथ के द्वारा देवता यक्ष गन्धर्व दैत्य राक्षसों के विजय करने को समर्थ हो हे महाभुज भीष्म तुम ब्राह्मणों के और वसुओं के अंश से मिले हुये नवम वसु हो परन्तु गुणों में उनके नवम नहीं हो हे पुरुषोत्तम जो तुमहो उसे मैं अच्छे प्रकार से जानता हूं तुम पराक्रम के द्वारा देवताओं में भी प्रसिद्ध हो हे श्रेष्ठ मैंने आपके समान संसार में कोई गुणी न देखाहै न सुनाहै इससे हे भीष्मतुम सब गुणोंमें देवताओं से भी अधिकहो आप अपने तपके बलसे सब स्थावर जंगमजीवोंके उत्पन्न करनेको भी समर्थ हो ऐसे होकर अपने शुद्धप्रकाशवान् लोकोंको क्योंनहीं प्राप्तकरोगे हे भीष्म आप इसजातिवालों के नाशसे दुःखी राजा युधिष्ठिर के शोकको दूरकरने को योग्यहो हे भरत वंशीचारोंवर्णके धर्म्म जो चारों आश्रमोंके धर्म्मोंसे मिले हुयेहैं वह सब आपके जानेहुयेहैं चारों विद्या और चातुर्होत्र में जो धर्म्मकहे और सांख्ययोगमें जो सनातन धर्म्मवर्त्तमान है और चारोंवर्णोंका जोधर्म एक दूसरे से विरुद्धनहींहै वह सेवन कियाहुआ धर्म्म क्रम पूर्वक आप का जानाहुआ है और प्रतिलोमसे उत्पन्नों के धर्म्मों को भी आप जानते हैं और देशजातिकुलके धर्म्म और लक्षणोंको भी जानतेहो वेदोंमें कहाहुआ और श्रेष्ठलोगोंका उपदेश कियाहुआ धर्म्म अच्छे प्रकारसे आपका जाना हुआहै और इतिहास पुराणोंका भी अभिप्राय अच्छेप्रकारसे आपका जाना हुआहै और आपके चित्तमें सम्पूर्ण धर्म्मशास्त्र वर्त्तमानहैं हे पुरुषोत्तम इस लोकमें जो कोई अर्थ संशयमें पड़ेहुये हैं उनशोकों का दूरकरनेवाला आप के समान कोईनहीं है हे नरेन्द्र वह पाण्डवों के चित्तका शोक अपनी बुद्धि से आप निवृत्त करिये आप सरीखे महान् बुद्धिमान्पुरुष मोहित जीवकी शान्तिके अर्थहोतेहैं २६॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपंचाशत्तमोऽध्यायः ५०॥

## इक्यावनवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी श्रीकृष्णजीके इनवचनोंको सुनकर कुछ

मुखको उठाकर हाथ जोड़कर बोले हे भगवन् श्रीकृष्णजी तुमको नमस्कार और हे जीवों के उत्पत्तिनाशक आपही इंद्रियों के स्वामी और संसार के ईश्वर नाशकर्त्ता अजेयहो और हे बिश्वात्मा विश्वकर्म्मा बिश्व के उत्पत्ति स्थान आपको नमस्कार पंचतत्त्वोंसे परे मोक्षरूप तीनों लोकों में बर्त्तमान और तीनोंसेपरे आपको नमस्कार है योगेश्वर तुमहीं सबके मुख्य आश्रयहो सो हे माधव आपने मुझसे सम्बंध रखनेवाले जैसे बचन कहे उसीसे आपके दिब्य भावोंको देखताहूं जो कि तीनों मार्गोंमें बर्त्तमान हैं और गोविन्दजी मैं आपके सनातन रूपको देखताहूं महातेजवान् बायुके सातोंमार्ग्ग तुमही से रुकेहुयेहैं आपके शिरसे स्वर्ग्ग और चरणोंसे देवी पृथ्वी ब्याप्तहै दिशा भुजा और सूर्य्य नेत्रहैं और पराक्रमसे वीर्य्य नियतहै अतसी पुष्पके समान पीत पीताम्बर धारी अजेय और बिद्युत वाले बादलके समान आपके रूपको बिचारताहूं हे देवताओंमें उत्तम कमल लोचन तुम अपनी प्यारी गति प्राप्त करने के इच्छावान् होके अपने शरणागत भक्तके लिये जो कल्याणहै उस को ध्यानकरो बासुदेवजी बोले हे पुरुषोत्तम राजा भीष्म निश्चय करकेजिस हेतुसे तुझमें मेरी परमभक्ति है उसी कारण मैंने अपना दिब्यरूप तुमको दिखाया और हे भीष्म जो पुरुष कि भक्तनहींहै और भक्तहोकरभी सत्यबक्ता और शान्त नहींहै उसकोमैं अपने रूपका दर्शननहीं देता आप मेरेभक्त सदैवसत्य आचरणोंमें वर्त्तमान शान्त चित्त तपदानमें प्रीतिमान पवित्रहो इससे हे राजा भीष्म अपने तपके प्रतापसे मेरे दर्शनके योग्यहो वह सब लोक आपके साम्हने वर्त्तमानहैं जिनमें जाकर फिर नहीं लौटताहै हे कौरवेन्द्र तेरेजीनेके तीस दिवस बाक़ी हैं वह सौदिनके समानहैं तब तुम इस देहको त्यागकर अच्छे कर्म्मों के उदय से प्रकाशित होगे अग्निके समान तेजस्वी अग्नि बर्ण गुप्त रूप वसुदेवता बिमानों पर सवार होकर तुम्हारी और उत्तरायण होने वाले सूर्य्यकी बाट देखरहेहैं हे पुरुषोत्तम उत्तरायण भगवान् सूर्य्य के होनेमें और जगत् काल के आधीन होनेपर उनलोकों को जाओगे जहां जाकर वह ज्ञानी फिर लौटकर नहीं आता है हे वीर भीष्मजी आपको परलोक जाने परसब ज्ञान नष्टताको प्राप्तहोंगे इस कारणहम सब धर्म्मके निश्चय करने के निमित्त आप के पास आये हैं इससे आपइस सत्य प्रतिज्ञ और जाति वालोंके शोक से ज्ञान नष्ट युधिष्ठिर के निमित्त धर्म्म अर्थ समाधि संयुक्त सीधे और सत्य २ बचनों को कहौ और इसके संतापको दूरकरो १८॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मेएकपंचाशत्तमोऽध्यायः ५१॥

# बावनवां अध्याय॥

बैशंपायन बोले कि श्रीकृष्ण जीके उस बचन को सुनकर जो धर्म्म अर्थ से संयुक्त सबका हितकारीथा भीष्मजी हाथ जोड़कर यह बोले हे लोकनाथ शिवनारायण महाबाहु अबिनाशी श्रीकृष्ण जी मैं आपके बचनों को सुन कर बड़ाही प्रसन्नहूं हे स्वामी मैं आपके सम्मुख क्या बचन कहूंगा जब सब संसारके बचन आपके दिव्य बचनों में अन्तर्गतहैं हे देव इसलोक में जो कुछ करनेके योग्य है और जो कियाजाता है वह दोनों लोकों के उपकारी कर्म्म तुझ बुद्धिमान् से उत्पन्न हुयेहैं जैसे पुरुष देवराजके सन्मुख देवलोक का बर्णन करे वैसेही आपके सन्मुख धर्म्म अर्थ काम मोक्षका बृत्तांत कहना है हे मधुसूदनजी मेरा चित्त बाणोंकी पीड़ासे पीड़ित है और अंगों में क्लेश हैं और बुद्धिमें शुद्धी नहीं होती और कोई बात कहनेकी मुझमें सामर्थ्यवान् बुद्धि नहींहै हे गोबिन्दजी जोकि मैं बाणोंसे बिष अग्निके समान पीड़ावान् हूं पराक्रम मुझको छोड़ताहै और प्राण भी शीघ्रता कर रहेहैं मर्म्म स्थान में बड़ी पीड़ाहै इससे मैं भ्रान्ति में डूबाहुआहूं निर्बलतासे मेरा बचन रुकताहै सो मैं किस प्रकारसे कहने को समर्थहूं सो हे दाशार्ह आपमुझसे प्रसन्नहैं इसीसे सब अच्छाहै हे महाबाहु अजेय मुझको क्षमाकीजिये मैं आपके साम्हने क्या कहसक्ताहूं आपके साम्हने बृहस्पति जीकी भी बोलनेकी सामर्थ्य नहीं मैं इस समय दिशा आकाश और पृथ्वीको नहीं पहिंचानताहूं हे मधुसूदन जी मैं केवल आपकी सामर्थ्यसे बर्त्तमानहूं इससे आप शीघ्रही कहिये जो धर्म्मराजको अभीष्ट है तुम सब शास्त्रोंके भी शास्त्रहो तुम्हारे साक्षात्कार में मुझसा कौन पुरुष किसप्रकार शास्त्रको बर्णन करे जैसे कि गुरुके बर्त्त-मान होने पर कोई शिष्य शास्त्र कहै फिर बासुदेवजी बोले कि हे कौरवोंके धुरन्धर महाबली बुद्धिमान् सब अर्थों के दर्शी शान्त स्वभाव भीष्म जी यह बचन आपही में बर्त्त मान और योग्यहै हे गांगेयजी जो आपनेबाणों की पीड़ाके बिषय में मुझसे कहा सो हे समर्थ भीष्मजी यहां मेरी प्रसन्नता से प्राप्त होने वाले बरदानको लो कि तुमको ग्लानि मूर्च्छा दाह पीड़ाआदि कोई व्यथा न होगी और क्षुधा पिपासा भी न होगी और हे निष्पाप तुम्हारे सबज्ञान प्रकाशित होंगे और कहीं भी आपकी बुद्धि नहीं रुकैगी और स-देव आपका चित्त सतोगुण में बर्त्तमान रजोगुण तमोगुणसे पृथक् रहैगा जैसे कि चंद्रमा बादलोंसे जुदाहो तुम धर्म्मसे संयुक्त या अर्थसे संयुक्त जिस २ बात को बिचारोगे उसमें आपकी बुद्धिश्रेष्ठ रहैगी और तुम दिव्यदृष्टिको पाकर इसचारप्रकारके जीवोंके समूहोंको देखोगे फिर ज्ञान रूप अक्षको पाकर तुम

इस घूमने वाले प्रजाके जालको मुख्यतासे देखोगे जैसे कि जलकी बस्तुको मछली देख लेतीहै बैशम्पायन बोले कि इन बातोंके पीछे ब्यास समेत उन सब महर्षियोंने ऋग् यजुः सामवेदोंकी ऋचाओं के साथ वचनोंसे श्रीकृष्ण जीका पूजन किया फिर वहां आकाशसे सब ऋतुओंके पुष्पोंकी दिव्यबर्षा हुई जहां कि श्रीकृष्ण जी उन पाण्डव और भीष्मजीके साथ बिराजमानथे और सब प्रकारके बाजे बजे और अप्सरा नाचीं और गंधर्वों ने गाया और शीतल मंद सुगंध लिये पवित्र कल्याणरूप हवा चली और दिशाओं के शान्त होने से शान्तरूप पशु पक्षीभी क्रीड़ाकरने लगे तदनन्तर एकमुहूर्त्त मेंहीं सूर्य्य भगवान् पश्चिम में ऐसे दिखाई दिये जैसेकि बनको भस्म करती हुई अग्नि होतीहै फिर सब महर्षियोंने उठकर श्रीकृष्णजी और भीष्मजी से कहा कि अब हमलोग जाते हैं फिर कलआवेंगे उनके पीछे पाण्डवके साथ केशवजी और सात्यकी संजय और कृपाचार्य्य जी ने प्रणाम किया फिर वह सब ऋषि कल मिलेंगे ऐसा बचन कहकर चलेगये उसी प्रकार केशवजी और पाण्डव भीष्मजीको पूछकरपरिक्रमाकरके शुभ रथोंपर सवारहुये फिर वह सुवर्णमयरथ और पर्ब्बताकार मतंग हाथी और गरुड़ के समान शीघ्रगामी घोड़ों और धनुष आदि रखने वाले पदातियों के साथ रथों की वह सेना आगे पीछे से अत्यन्त चपलता करने वाली ऐसी चली जैसे महानदी नर्मदा आगे पीछे से रक्षावन्त पहाड़ को प्राप्त करके चले तदनन्तर चन्द्रमा जी उस सेना को प्रसन्न करते और उन औषधियों को जिनके रसों को सूर्य्य देवताने शुष्क किया उनको फिर अपनी किरणोंसे और गुणों से संयुक्त करते पूर्व्व दिशा से ऊपरको उठे फिर वह यादव और पाण्डव देवराज की पुरी के समान तेजोमय पुर में प्रवेश कर के अपने महलों में ऐसे घुसे जैसे कि थके हुये सिंह गुफा में प्रवेश करते हैं ३४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेद्विपंचाशत्तमोध्यायः ५२ ॥

## तिरपनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि वहां जाकर मधुसूदन जी शयन स्थान में जाकर सोगये और प्रातःकाल की अमृतबेला में जगे उस समय ध्यान मार्ग में प्रवृत्त होकर सब ज्ञानियों को देखकर फिर सनातन ब्रह्मका ध्यान किया तिसके पीछे स्तुति और पुराणों के जानने वाले रक्तकण्ठ और सुशिक्षित पुरुषोंने उस प्रजाके स्वामी और सब जीवों में निवास करने वाले संसार के भर्त्ता श्रीकृष्ण जी की स्तुति की उसके पीछे पाठवाले पढ़ने और गान वाले गाने और हजारों शंख मृदंगों के शब्द होने लगे और उस महलके

बीणा पणव बेणुके शब्द अति मनोरम और हास्यरस से संयुक्त चारोंओर फैले हुये सुने गये उसके पीछे राजा युधिष्ठिर के गीत और बाजों के शब्द जोकि मङ्गल रूप मधुर बचन वाले थे होने लगे फिर उठकर स्नान कर हाथ जोड़ निरहंकार हो महाबाहु श्रीकृष्ण जी मन्त्र जपकर अग्निययोंको प्रकाशित करके बर्त्तमान हुये फिर माधवजीने चारों वेदोंके जानने वाले ब्राह्मणों से एक सहस्रगौओं के द्वारा स्वस्तिबाचन कराया फिर श्रीकृष्ण जी गौओं को स्पर्श करके निर्मल आदर्श में अपना मुख देखकर सात्यकी से बोले कि हे सात्यकी तुम जाकर देखो कि युधिष्ठिर भी भीष्मजी के देखने को तय्यारहुये यह सुनतेही सात्विकी ने शीघ्रही युधिष्ठिर से जाकर कहा कि हे राजा बासुदेवजी का रथ तय्यार हुआ वह भीष्मजी के पास जायँगे और आपकी बाट देखते हैं यहां जो काम शीघ्र करने के योग्य है उसको करिये यह सुनकर धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर ने हुक्म दिया कि हे अर्जुन मेरा भी उत्तम रथ तय्यार हो और सेना को छोड़ हमही लोग केवल वहां जांयगे धर्म्मात्मा भीष्मजी को हम पीड़ा नहीं देसक्ते हे अर्जुन इसकारण आगे चलनेवाले मनुष्यों को भी लौटा दो अब वहां भीष्मजी बड़े गुप्त धर्म्मों को कहेंगे इससे साधारण मनुष्यों [illegible] चाहता हूं तदनन्तर राजा की आज्ञा [illegible] अर्जुन ने रथतय्यार करने को आज्ञा दी फिर राजा युधिष्ठिर नकुल, सहदेव, भीमसेन और अर्जुन समेत सब मनुष्यों को ले श्रीकृष्णजी के महल में गये तब श्रीकृष्ण जी सात्यकी को साथले पांडवों समेत रथोंपर चढ़२ तय्यार हुये और परस्पर में दण्डप्रणाम करके उन शीघ्रगामी रथों में बैठहुये चलदिये दारुक ने श्रीकृष्ण के उसरथ को जिस में कि बलाहकमेघ पुष्पशैव सुग्रीव नाम घोड़े जुते थे तेज किया और बड़ी शीघ्रता से चलदिये और धर्मस्थल कुरुक्षेत्र में जाकर ठहरे और वहां से रथों से उतर२ कर भीष्म जी के पास गये वहां सब पाण्डव आदि ने उन महर्षियों को जो भीष्मजी के पास बैठेथे दण्डप्रणाम किया फिर भीष्मजी का दर्शन किया २८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रिपंचाशत्तमोऽध्याय. ५३ ॥

# चौवनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि वह सब पाण्डव और श्रीकृष्ण जी महातेजस्वी भीष्म जी के ओर पास बिराजमान हुये इस कथा को सुनकर जनमेजय बोले कि पांडव आदि करके चारों ओर से घिरे हुये महा पराक्रमी सत्यव्रत जितेन्द्री भीष्मजीसे युधिष्ठिरने कौन२कथा पूंछी उसको आपमुझसे कृपाकरके वर्णन कीजिये वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय कौरवों के धुरन्धर भीष्म

जीके शरशय्यापर वर्त्तमान होनेपर नारदआदि ऋषि और सिद्धलोग आये और मरनेसे शेषबचेहुये राजाजिनके अग्रवर्त्ती युधिष्ठिरथे उन्होंने और धृतराष्ट्र श्रीकृष्णजी भीमसेन अर्जुन नकुलसहदेवआदि बहुतसेमहात्माओंने उनभरत बंशियोंकेपितामह गंगाजीकेपुत्र श्रीभीष्मजीके पासजाकर उनकाशोचकिया फिर थोड़ेसमयतक ध्यानावस्थितहोकर देवदर्शन नारदजी पाण्डवआदिसब राजाओंसेबोलेकि हेभरतबंशियोंमें श्रेष्ठ मैंसमयकेअनुसार कहताहूं कि यहगांगेय भीष्मजी अब सूर्यकेतुल्य अस्तहुआ चाहतेहैं इससेतुमसब प्रश्नकरो यह महात्मा चारों बर्णोंके नाना प्रकारके धर्म्मों को जानते हैं यह बृद्ध देहको त्यागकर उत्तमलोक को पावेंगे तुम अपने चित्तके सन्देहोंको इनसे पूछो नारदजीके ऐसे बचन सुनकर राजालोग भीष्मजीके पासगये और प्रश्नकरनेको समर्थ न होकर परस्पर में प्रश्नकरनेको उपस्थितहुये तदनन्तर युधिष्ठिर श्रीकृष्णजी से बोले कि आपके सिवाय दूसरा मनुष्य पितामहजी से प्रश्नकरनेको समर्थ नहीं है इससे हे यादवेन्द्र श्रीकृष्णजी आपही पहिले बार्त्तालाप भीष्मजीसे करिये और हे महात्मा हमसब में आपही धर्म्म जाननेवालों में श्रेष्ठहो यह पाण्डव युधिष्ठिर के बचन सुनकर श्रीकृष्णजीने भीष्मजीके पास जाकर यह बचन कहा कि हे राजाओंमें श्रेष्ठ क्या आपकी रात्रि सुखसे व्यतीत हुई और शुद्ध लक्षण वाली बुद्धि क्याआपमें वर्त्तमानहै और हे जितेन्द्री क्या सम्पूर्णज्ञान आपमें प्रकाशितहैं और हृदयमें कोई ग्लानि तो नहीं है आपकाचित्त सावधानहै यह सुनकर भीष्मजी बोले कि हे कृष्ण आपकी कृपासे मेराचित्त सबप्रकारसे आनन्दमेंहै अर्थात् अंगोंकी वेदनाभूल परिश्रम और थकावट ग्लानि आदि सब दैहिक व्यथा दूरहोगई और भूत भविष्यत वर्त्तमान सब बातों को देखताहूं हे अबिनाशी वेदमें कहेहुये जो धर्म्महैं और जो वेदान्तसे प्राप्त होनेवाले शम दम संन्यास आदिधर्म्महैं उनसबको देखता हुआ यथार्थ जानताहूं और श्रेष्ठपुरुषोंके कहेहुये धर्मभी मेरेचित्तमें वर्त्तमान हैं सो हे जनार्द्दनमैं देशकाल जातिकुल आदिके धर्म्मोंका जानने वालाहूं और चारों आश्रमोंके धर्मोंके अर्थको भी जानताहूं वहसब मेरे हृदयमें बर्त्तमान हैं और सब राजधर्म्मोंकोभी जानताहूं और जहां जो कहनेके योग्यहै उसको भी कहूंगा और हे जनार्दनजी आपकीकृपासे मेरेचित्तमें शुभबुद्धि उत्पन्नहुई आप के अनुग्रहसे मैं तरुणके समान सब बातों में होगयाहूं अब हेमाधव जी मैं कल्याणकारी धर्म्म के रखनेको समर्थ हूं हे माधव आपनेही पाण्डवों से कल्याणकारी धर्म्म श्रीमुखसे क्योंनहीं कहा और यहां आपको क्या अभीष्टहै उसे बर्णन कीजिये बासुदेवजी बोले कि हे कौरवेन्द्र तुम मुझको संसार का हितकर्त्ता मोक्षरूपजानो सत्य असत्य व दृश्यमान् पदार्थ मुझहीसे हुये

चन्द्रमा शीतल प्रकाशवान्है ऐसा कहनेसे कौनपुरुष सन्देह करेगा उसी
प्रकार मेरे यशवान् होने में भी कौन आश्चर्य करेगा हे महातेजस्वी मुझको
तेरा यश प्रसिद्ध करना अभीष्ट है इससे हे भीष्म मैंने तुझ में बड़ीबुद्धि को
प्रवेश किया सो हे पृथ्वीपाल जबतक यहपृथ्वी वर्तमान रहैगी तबतक तेरी
अविनाशी कीर्ति लोकों में प्रसिद्ध रहैगी हे भीष्मजी आप प्रश्न करनेवाले
पाण्डव युधिष्ठिर से जो कहोगे वह आपका वचनवेदवचनों के समान पृथ्वी
पर अचलहोगा जो पुरुष आपके इस प्रमाणसे आत्माको आत्मामें मिलावेगा
वह देह त्याग करके सब प्रश्नोंके फलको पावेगा इसीकारण हे भीष्मजी मैंने
आपको दिव्यबुद्धिदी जबतक इस भूलोकमें पुरुषका यश वर्त्तमान रहताहै तब
तक उसकी कीर्त्तिका नाश नहीं होता हे भरतबंशी राजाभीष्म यह मरनेसेबचे
हुये धर्म्मके पूछने की इच्छा करने वाले राजा लोग आपके चारोंओर बैठेहैं
उनसे धर्मोंको कहो आप अवस्थामें वृद्ध शास्त्र और आचारोंसे पूर्ण राजधर्म
आदि सबधर्मोंमें विख्यातहो जन्मसे लेकर आजतक आपका कोई पाप कि-
सीने नहीं देखा सब राजा लोग आपकोही धर्मका जाननेवाला समझते हैं
जिसप्रकार पिता पुत्रको उपदेश करता है उसीप्रकार आप नीतिका वर्णन की-
जिये हे गंगापुत्र ऋषि देवता आदिकी सदैव उपासनाकरी इस कारण स-
त्पुरुषसे पूछेहुये तुम्हारे धर्मोंके सुननेकी इच्छा सब राजा लोगों को है इससे
आप इस धर्म को अवश्य कहिये ज्ञानियों ने धर्म को पण्डितों के करनेयो-
ग्य कहा है हे समर्थ जो आप धर्म्म को न कहोगे तो बड़ा दोष होगा इससे
आप इन राजाओं को अपना पुत्र पौत्र समझकर इनके प्रश्नों को सुन्दर
रीति से बर्णन करो ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेचतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ५४ ॥

# पचपनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय इन बातों को सुनकर भीष्मजी
बोले कि बड़े आनन्दकी बात है कि अब मेरा चित्त और बाणी दृढ़ है इससे
मैं धर्मों को वर्णन करूंगा हे गोविन्द माधव आपकी कृपासे मैं सब कहने को
समर्थहूं आप सनातनरूप होकर सब जीवोंके आत्माहो और हे धर्मात्मा युधि-
ष्ठिर तुम सब धर्मों को मुझ से पूछो मैं बड़ी प्रसन्नता से तुम्हारे पूछेहुये धर्मों
का वर्णन करूंगा जिस राजऋषि धर्मात्माके उत्पन्न होने से सब ऋषि मुनि
प्रसन्न हुये वह पाण्डव मुझसे प्रश्न करनेको योग्य है धर्म्मका प्रकाश करने
वाला कौरवबंश में जिसके समान कोई नहीं है वह पाण्डव मुझसे प्रश्नकरे
जिसमें धैर्य्यता, शान्तता, ब्रह्मचर्य्य, क्षमा, धर्म, पराक्रम और तेज सदैव

वर्त्तमान है और जो भाई बन्धु अतिथि सेवक शरणागतों को अच्छे प्रकार से सत्कार करके श्रेष्ठ आचरणों से मानता है और सत्यता, दान, तप, शूरता शान्ति, चातुर्य्यता, असंभ्रमता आदि गुण जिसमें हैं वह पाण्डव मुझसे प्रश्न करो जो धर्मात्मा इच्छा क्रोध भय और प्रयोजन के लिये अधर्म्म को नहीं करे अथवा जो सदैव सत्यवक्ता सहनशील और ज्ञानी अतिथियोंका प्यारा सदैव दान सत्पुरुषों को देता है और प्रतिदिन यज्ञ वेद पाठ करता श्राद्धों में प्रीति करनेवाला है वह पाण्डव मुझसे धर्म पूछनेको योग्यहै और जो शान्त ब्रह्मज्ञान का उपदेश पाने वाला है वह पांडव मुझ से इच्छापूर्वक प्रश्न करे यह सुनकर वासुदेवजी बोले कि बड़ी लज्जामें डूबेलोक की निंदासे भयभीत धर्मराज युधिष्ठिर आपके पास नहीं आते हैं हे राजन् इस लोक का स्वामी युधिष्ठिर लोकके नाश करने की निन्दा से आप के समीप नहीं आता है जो गुरुभक्त सम्बन्धी बान्धव अर्घ के योग्य थे उनको बाणों से छेदकर आप-के पास नहीं आता है भीष्मजी बोले कि हे श्रीकृष्ण जी जैसे ब्राह्मणों का धर्म दान तप वेदपाठहै उसीप्रकार क्षत्रियोंका धर्म युद्धमें देहका त्यागना है जो राजा मिथ्याकर्म करनेवाले पिता पितामह गुरू सम्बन्धी और बांधवोंको युद्ध में मारे वहभी धर्म्म है हेकेशव जो क्षत्री प्रणका त्यागनेवाला लोभी पापीभी होके युद्धमें गुरुओं को मारताहै वह धर्मका ज्ञाताहै जोपुरुष लोभसे धर्म्मकी सनातन मर्य्यादाको नहीं विचारताहै और जो क्षत्री उस लोभी को युद्ध में मारता है वह भी निश्चय करके धर्म्म का जाननेवाला है और जो क्षत्री युद्ध में पृथ्वी को रुधिर के स्वरूप जल और कटेहुये शिर के समान तृण और हाथियों के तुल्य पहाड़ और ध्वजाओं के समान वृक्ष धारण क-रनेवाली करता है वह धर्म का ज्ञाता है युद्ध में बुलायेहुये क्षत्री को सदैव लड़ना चाहिये क्योंकि मनुजी ने युद्ध को धर्म और स्वर्ग और इस लोक का देनेवाला कहा है वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी से इस प्रकार कहेहुये धर्म-पुत्र युधिष्ठिर नम्रतापूर्व्वक पास जाकर उनके नेत्रों के सामने उपस्थितहुये और दोनों चरणों को पकड़लिया फिर उन भीष्मजीनेभी उनको प्रसन्न किया और उसकामस्तक सूंघकरकहा कि बैठो फिर सब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ श्री गंगा जीके पुत्र भीष्मजीने उनसे कहा कि हे तात तुम विश्वासकरके मुझ से प्रश्नकरो और किसी बातका भयमतकरो २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेपंचपंचाशत्तमोऽध्यायः५५ ॥

## छप्पनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी को प्रणाम और पितामह

को दण्डवत् और सब गुरुओं की प्रतिष्ठा करके पूछा कि निश्चय राजा-ओंका धर्मउत्तमहै क्योंकि जब ऐसे धर्मज्ञों ने इसको माना है तो मैं भी इसको सत्यही जानताहूं सो हे पितामह सम्पूर्ण राजधर्मोंको कहो क्योंकि राजधर्महो इससम्पूर्ण जीवलोककी रक्षाका मुख्य स्थानहै हे कौरव धर्म अर्थ काम यह तीनों राजधर्मों में रक्षा करने वाले हैं और इसी राजधर्म्म में मोक्ष धर्म्म भी अच्छे प्रकार से वर्त्तमान है जैसे कि घोड़ेकी बागडोर और हाथी का अंकुश होता है इसीप्रकार राजशासन भी लोकका धर्म्मरूप कहाजाताहै राजऋषियों से सेवित उसधर्म्म में जो अधिक अज्ञानहोजायँ तो ऐसी दशा में लोककी मर्य्यादा न रहैगी और सबलोग व्याकुल होजायँगे जैसे कि अँधेरेको सूर्यका उदय नाश करताहै वैसेही राजधर्म्म भी गुप्त अशुभगति को दूरकरते हैं अर्थात् राजासे दण्डपाने वाले अपराधी पवित्र होकर स्वर्ग को जाते हैं इसहेतुसे हे पितामह आप पहले राजधर्मों को वर्णन कीजिये आप धर्म धारियों में श्रेष्ठहो हेपरन्तप हम सबका उत्तमज्ञान आपके द्वारा प्राप्तहो क्यों कि बासुदेवजीभी आपको बुद्धि में महान् जानते हैं भीष्मजी बोले कि मैं श्रेष्ठधर्मको नमस्कार करताहूं और संसारके स्वामी श्रीकृष्णजी को भी नमस्कारहै अब ब्राह्मणोंको नमस्कार करके वेदोंसे जाननेके योग्य सनातन धर्म्मको कहताहूं हे युधिष्ठिर आप सावधान होकर अपने पूछे हुये सब राजधर्मों को मुझसे सुनो और जो २ दूसरी भी बात सुनना चाहते हो उसे भी सुनो हे कौरव युधिष्ठिर उत्तम राजा को प्रजाकी प्रसन्नता के निमित्त पहिले बुद्धिके अनुसार देवता और ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये क्योंकि देवता और ब्राह्मणोंके पूजनेसे धर्मके ऋणसे उद्धारको पाताहै और लोकमें अच्छेप्रकारसे पूजितहोताहै हे बेटा युधिष्ठिर तुम सदैव उद्योगके साथ कर्मकरो विना उद्योगके दैव अर्त्थात् प्रारब्ध राजा लोगोंके अभीष्टोंको सिद्ध नहींकरता यह दोनों प्रारब्ध और उद्योग साधारणहैं मैं उद्योगकोही उत्तम मानताहूं फल के द्वारा प्रारब्ध को निश्चय करके कर्म्म न करने के दोष से सिद्धी में दुःख से निवृत्तहोताहै तुम प्रारम्भ कर्म्मके निष्फल होजाने का शोकमतकरो और इसी प्रकार से सदैव उद्योगकरो यहीराजाओं की बड़ीनीतिहै निश्चयहै कि राजाओंकी सिद्धीका करने वाला सिवाय सत्यताके और कोई कर्म नहीं है सत्यमें प्रवृत्तराजा इसलोक परलोक दोनोंमें प्रसन्न रहताहै हेराजेन्द्र सत्यता-ही ऋषियोंकी उत्तम द्रव्यहै उसीप्रकार सत्यता के सिवाय राजाओं का विश्वास उत्पन्न करनेवाला दूसरा कर्म्म नहींहै गुणवान् सदाचारी स्थिरस्वभाव दयावान् धर्म्मपरायण जितेन्द्रिय सावधान बहुतदानी प्रसन्न मुख सत्पुरुषों की शरणलेनेवाला राजाकभी नाशको नहीं प्राप्तहोताहै सो हेकौरवनन्दन

तुम सब कर्म्मों में तीन कर्म्मोंके गुप्त करने वाले नीतिबिचारके साथ सत्यबो-
लने में सावधानहो वह तीनिकर्म्म यह हैं कि अपने दोषको छिपाना और
शत्रुके दोषको निश्चय करना तीसरे जो उद्योग प्रारम्भ करना हो उसको
गुप्तकरना और जो सलाह कीजाय वह भी गुप्त करना बराबर मृदुलता करने
वाला राजा सबदशामें आज्ञाभंगहोने के योग्य होताहै और तीव्रप्रकृतिहोने
से सब प्रजाव्याकुल रहतीहै इसहेतुसे दोनों कर्म्मों को करो हे महावक्ता बेटा
युधिष्ठिर ब्राह्मण तुझसे दण्डके योग्य नहीं हैं हे पाण्डव इस लोकमें यह ब्रा-
ह्मण सब मनुष्यों में उत्तमहैं इस में महात्मा मनुजी ने दोश्लोककहे हैं उन
दोनों श्लोकों में धर्म्मोंको तुम अपने चित्तमें धरने के योग्यहो कि जलसे
अग्नि ब्राह्मणसे क्षत्री और पाषाणसे लोहा उत्पन्न हुआ उन्होंका सर्वव्यापी
तेज अपनीही योनीमें शान्त होता है जब लोहा पत्थरको मारताहै और अ-
ग्निसे जल माराजाताहै और क्षत्री ब्राह्मणसे शत्रुता करताहै तब वह तीनों
पीड़ाको पाते हैं इससे हे महाराज ब्राह्मण प्रतिष्ठा और पूजने के योग्यहैं हे
पुरुषोत्तम इस प्रकार जो तीनोंलोकों को दुःख देनेवाले ऐसे पुरुष हों
वह बराबर भुजाओं से दंडदेने के योग्य हैं हे राजा प्राचीन समय में महर्षि
शुक्रजीने दो श्लोककहे हैं तुमएकाग्र चित्तसे उनको सुनो धर्म्म सम्बन्ध
रखने वाला राजा संसार में शस्त्र उठाकर युद्ध में आनेवाले बेदपाठी
ब्राह्मण को भी अपने धर्म्म से पकड़े वह धर्म्म का जानने वालाहै और उस
कर्म्म से धर्म्म का नाश करने वाला नहीं होसक्ता क्योंकि क्रोध क्रोध को
पाता है हे राजा यद्यपि ऐसा भी है तौ भी ब्राह्मण रक्षा के योग्य है और
अपराधी ब्राह्मण को भी देश से बाहर निकाल दे हेराजन् जिस ब्राह्मण
को दूसरेकी स्त्रीसे कुकर्म्म करने का दोष लगाहो उसपरभी दयाकरे ब्राह्मण
का मारने वाला गुरूकी स्त्रीसे कुकर्म्म करने वाला इसी प्रकार बालबध करने
वाला और राजासे शत्रुताकरनेवाला होनेपरभी देशसे बाहरनिकाल देनाही
वेदपाठी ब्राह्मण का बिचार कियागयाहै उनको किसी दशामें देह दण्डनहीं
होसक्ता और जो ब्राह्मणों में भक्ति रखने वाले हैं वह राजा के संबंधी प्यारे
होवें ब्राह्मणों के भक्त मनुष्यों के समूहों से बढ़कर कोई उत्तम खजाना नहीं
है हे राजा जो शास्त्रके निश्चय करने वाले हैं वह सब छःकिलों में से मनु-
ष्यों के किले को दुर्गम और अजेय मानते हैं वह छःकिले यह हैं मरुदेश
जल, पृथ्वी, बन, पहाड़, मनुष्य, इसी कारण बुद्धिमान् राजा को चारोंवर्णों
पर कृपा करनी चाहिये जो राजा धर्मात्मा और सत्यवक्ताहै वह प्रजाकोप्रसन्न
करता है हे पुत्र युधिष्ठिर तुझ क्षमावान् को सब जातों में दण्डकी क्षमा न
करनी चाहिये क्योंकि हाथी के समानभी क्षमाशील राजा नीच और धर्म्म

का बिरोधी होता है हे महाराज प्राचीन समय में बृहस्पतिजी के धर्म्मशास्त्र में इसी आशयका एक श्लोक कहा है उस को मुझ से सुनोकि क्षमापराधी राजा की नीच मनुष्य सदैव अप्रतिष्ठा करते हैं जैसे क्षमावान् हाथीपर हाथीवान् सवार होजाता है इससे श्रीमान् राजा बसन्त ऋतु के सूर्य्य के समान न शीतल हो न अधिक ऊष्मका देने वाला हो हे राजा तुमको अपने और दूसरे मनुष्यों की परीक्षा प्रत्यक्ष अनुमान से करनी योग्य है इस से तुम सब व्यसनों को त्याग करो राजा सदैव बिजय के हेतु शत्रुओं पर अपने शूर पुरुषों को चढ़ावे साम नीति के स्थानापन्न दण्ड को त्यागे वह व्यसन यह हैं शिकार करना, पांसा खेलना, दिनका सोना, निंदा, स्त्रीसंग, नसापीना बाजाबजाना, सरोदव्यर्थ मद्यपान इनकर्मों से उत्पन्न होने वाले सब व्यसन हैं इनमें कठोर बचन धनको व्यर्थलेना दण्डलेना यह क्रोध से उत्पन्न होने वाले तीन व्यसन कठिन हैं कठिन व्यसनों का रखने वाला सदैव अप्रतिष्ठित होताहै और लोक को व्याकुल करता है और प्रजासे शत्रुता रखने वाला होताहै और राजा को बिवाहिता रानी से सदैव प्रीति रखनी चाहिये इस का यह कारण है जैसे कि गर्भवती [illegible] इच्छाको करती है उसी प्रकार राजा को भी निश्चय त्यागकरके [illegible] चाहिये धर्मात्मा राजा को अपने चित्त की प्रियबातों को त्याग उन बातों में ध्यान लगाना चाहिये जिनसे संसार का उपकार हो हे युधिष्ठिर तुझ को किसी समय भी धैर्य्य त्यागना उचित नहीं है धैर्य्यवान् चतुरंगिणी सेना रखने वाले राजा को किसी स्थान में भय नहीं है इस से तुमको नौकरों के साथ कभी हँसी न करना चाहिये इसमें यह दोष हैं कि सेवक लोग बहुत हँसी आदि करनेसे स्वामीका अपमान करतेहैं और अपने अधिकार परभी स्थित नहीं होते हैं और आज्ञाभंग करते हैं और करने के योग्य कामों के करने में भी सन्देह उत्पन्न कराते हैं और गुप्त बिचारको भी प्रकट करते हैं और मांगने के अयोग्य बस्तुओं को मांगते हैं और राजा के भोजन योग्य बस्तुओंको भोजन करतेहैं क्रोधकरके भड़कतेहैं और राजा की छाती पर चढ़ते हैं और छलयुक्त बातों से संसार के कामों को बिगाड़ते हैं और जालसाजी के आज्ञापत्रों से उसके देशको निर्बलकरते हैं और स्त्रियोंके रक्षकों से मिलजाते हैं और एकसी पोशाक पहिनने लगते हैं और राजा के सन्मुख मेंही थूकाथाकी किया करतेहैं और वह निर्लज्ज होकर उसके बचनको संसार में प्रकट करते हैं राजा के मृदुस्वभाव होने से और दयावान्‌होने से नौकर लोग उसका अपमान करके उसके घोड़े हाथी की शरणसवारियों पर सवारहोते हैं और सभामें बैठकर सुहृज्जन ऐसे वचनों

को कहतेहैं कि हे राजा यह आपका कठिन कामहै अथवा बुराकाम है और काम बिगड़ने से हँसते हैं और इनाम आदिसे प्रसन्ननहीं होते फिर परस्परमें ठट्ठाकरतेहैं गुप्तमंत्रको प्रकट करते हैंऔर बुरेकामको अधिक प्रसिद्ध करते हैं और उसकी आज्ञाको खेल और अपमानसे करतेहैं इसीप्रकार भूषण भोजन और स्नानकी वस्तु चन्दन आदि के निकट जानेपर उसकी आज्ञा भंगकरते हुये निडर और ढीठहोजातेहैं और अपने अधिकारको तुच्छकहकर त्यागकरते हैं और नियत मासिक पर सन्तोष नहीं करतेहैं और राज्यके धनको चुराते हैं और राजा के साथक्रीड़ा व्यवहार किया चाहतेहैं और लोगोंमें कहतेहैं कि यह राजा हमारा गुलामहै हे युधिष्ठिर राजाके मृदुल चित्तहोनेमें यहदोष और अन्यभी बहुत से दोष उत्पन्न होतेहैं ६० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ५६ ॥

# सत्तावनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि राजाको सदैव उद्योग और विचार करना चाहिये स्त्री के समान अविचारी राजा की प्रशंसानहीं होती इसस्थान में शुक्रजीने एक श्लोक कहाहै कि जैसे सर्प्प बिलके रहनेवाले जीवोंको निगलजाताहै उसी प्रकार पृथ्वी भी दण्ड के योग्य पुरुषोंको दण्ड न देनेवाले राजाको और वेदाध्ययनके निमित्त परदेश न जाने वाले ब्राह्मणको और पर्यटन न करनेवाले संन्यासीको निगल जाती है इससे तुमहृदय में शोचकर इसबातको ठानकर सलाह के योग्य पुरुषोंसे सलाहकरो और दण्डके योग्य पुरुषोंको दण्डदो जो पुरुष सातअंगवाले राज्यके विपरीत कामकरे वह चाहे गुरुहो या मित्र हो मारने के योग्यहो हे राजा प्राचीन समयमें मरुतनाम राजाने बृहस्पतिजी के कहनेसे यहश्लोक कहा कि कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यके योग्यकर्मको न जानने वाले कुमार्गगामी गुरुकोभी दंड होताहै बाहुकेबेटे राजा सगरने पुरवासियों की वृद्धिके निमित्त असमंजसनाम बड़े पुत्रको त्यागकिया हे राजा उस असमंजस लड़के ने पुरवासियों के बालकोंको सरयूनदी में डुबाया इसकारण पिताने उस को क्रोधकरके देशसे निकाला और उद्दालकऋषिने भी अपना प्याराबेटा महातपस्वी श्वेतकेतुनाम जोकि ब्राह्मणोंसे मिथ्या व्यवहार करता था उसको त्यागकिया इसलोकमें राजाओंका सनातनधर्म्म यहहै कि संसार की प्रसन्नता रक्षा सत्यबोलना व्यवहार का यथार्थ वर्त्ताव करना दूसरेके धन का नाश करना और समयपर देने के योग्य पुरुषोंको देवे और पराक्रमी क्षमावान् सत्यवक्ताहोवे वह राजा सुमार्ग से नष्टनहीं होताहै चित्तके क्रोधका रोकनेवाला शास्त्रार्थमें निश्चयबोधवाला और धर्म्म अर्थ मोक्षमें सदैव प्रवृत्त

अर्थात् दिवसके पूर्वभाग में धर्मको और मध्याह्नकाल में अर्थको अन्त में कामको और रात्रि के अंत में योगका करनेवाला और विचारको गुप्तरखने वाला राज्य के योग्यहै क्योंकि गुप्त रक्षा और सलाह के बिना राजाको और कोई नाश कारक नहीं है राजाको चारों वर्णके धर्म्मोंकीरक्षा करनी योग्य है और धर्म्मोंके अस्तव्यस्त होने से प्रजाकी रक्षा करना राजाओं का सनातन धर्म्म है अच्छे पुरुषोंपर बिश्वासकरे परन्तु अधिकतर बिश्वास न करे और सदैव बुद्धिसे छःगुणोंके गुणदोषोंको देखे शत्रुके दोषोंका देखनेवाला राजा सदैव प्रशंसनीयहै और जो धर्म्म अर्थ कामके मूलको जानताहै वह दूतों से कामकरानेवाला और गुप्त धन देकर शत्रुके मंत्रियोंको मिलानेवालाहै वह भी प्रशंसाके योग्य है बिनाजीविका वाले पुरुषोंकी रक्षा करनेवाला और नौकरोंका प्रबन्धक होकर मन्दमुसुकान के साथ बोलनेवाला सुन्दर मुख वृद्धोंका सेवक निरालस्य निर्लोभ सबपुरुषों के चलनपर बुद्धिको स्थिर करने वाला दृढ़स्वभाव सुन्दर दर्शनहोवे और कभी सत्पुरुषोंसे धनका दंड न लेवे नीचोंसे लेकर सत्पुरुषोंको देवे आप लेनेवाला और दानकरनेवाला शान्त चित्त और सुन्दर साधन करनेवालासमयपर दानकरनेवाला भोगोंका भोक्ता औरशुद्धआचारवान् शूरभक्तहो और धनलेकर शत्रुओंमेंन मिलनेवालेउत्तम कुलवालेदूसरेका अपमान न करनेवालेविद्यावान् संसारकेजाननेवाले परलोक काबिचारकरनेवाले धर्ममेंप्रवृत्तसाधुवृत्ति और पर्वतोंके समानदृढ़चित्तपुरुषोंको सदैव अपना सहाय बनावे जोराजा ऐश्वर्यवान् होकर उनसहायकों के साथ भोगों में समान होवे केवल छत्र और आज्ञामें अधिक हो ऐसे राजाका चलन शूरपुरुषोंके साथ आगे पीछे एकसाहोवे इसप्रकारसे करताहुआ भी राजादुःखको नहीं प्राप्तहोता जो राजा कि सबके ऊपर सन्देह करनेवाला होवे वहकुटिललोभी राजा अपनेही मनुष्योंके हाथसे माराजाताहै पवित्र और संसार के चित्तको आधीन करनेकी इच्छा रखनेवाला राजा शत्रुओंसे दबकर नाशको नहीं पाताहै और चारोंओरसे दृढ़होताहै क्रोध औरव्यसनों से जुदा थोड़ा दण्डदेनेवाला जितेन्द्रिय राजा हिमाचलके सदृश जीवों का विश्वास पात्र होताहै उसीप्रकार ज्ञानी त्यागी और शत्रुओंके छिद्रोंके देखनेमें प्रवृत्त सुन्दर दर्शन सबवर्णोंकी नीति और अनीतिका जाननेवाला शीघ्रकर्मी क्रोधका जीतनेवाला सुगमता से प्रसन्न होनेवाला महासाहसी निरहंकारी और राजान अपनी प्रशंसा न करनेवाला राजाभी संसार का प्यारा होता है उसके बचनके कर्म प्रारम्भही से अच्छे और नीतियुक्तहोते हैं वह राजा राजा-दयावान्‌लेहोने जैसे कि पिताके घरमें पुत्र स्वच्छन्द आनन्दमें रहते हैं उसी की शरणसवारियों प देशमें मनुष्य निर्भय बिचरते हैं वहराजा सब राजाओंमें

उत्तम है जिसराजा के पुरवासी और देशवासी धनको प्रकट रखनेवाले और नीति अनीति के जाननेवाले हैं वह राजाभी श्रेष्ठतम है जिसके देशवासी अपने कर्म्मोंमें प्रीति रखनेवाले देहके निरहंकारी धर्म्म में प्रवृत्त जितेन्द्रिय और बुद्धिके अनुसार पोषण करनेवाले होतेहैं और जिसके देशमें मनुष्य विजयी सावधान और सेवाके योग्य दूसरेकी अप्रतिष्ठा करनेकी इच्छानरखने वाले और दानदेनेमें प्रीति रखनेवालेहोतेहैं वह राजाहै जिसराजाके देश में सत्य २ विषयको मिथ्यासे प्रगट करना नहींहै और मिथ्याछल ईर्षाआदि कोई नहीं है उसराजाका धर्म्मसनातन है जो राजाज्ञानी पण्डितोंका सत्कार करताहै और शास्त्रार्थमें दूसरे का भला करनेवालाहै और सत्पुरुषोंकेमार्गमेंचलने वाला और दानीहै वह राजाराज्यके योग्यहै जिसराजाके दूतको और करने नकरनेकी सलाहको कभीशत्रुलोग नहींजानसक्ते वहराजाभी राज्यकेयोग्यहै प्राचीन समयमें किसी राजाके आगे परशुरामजीके चरित्र कहनेमें यहश्लोक कहागया कि प्रथमराजा अपनी उत्तमताको प्राप्तकरे तदनन्तर भार्य्या को फिर धनको और नीचराजाके होने में लोगोंको कहांभार्या और कहांधन है जोकि राज्यके चाहनेवाले राजाओंका सनातन धर्म राज्यमें संसारकी रक्षाके विशेष और कुछनहींहै इसीसे यहरक्षाधर्म संसारको धारण कियेहुये है हे राजेन्द्र प्राचेतस मनुने राजधर्ममें यह दोश्लोक कहे वह तुम चित्तसे सुनो कि पुरुष इन छःबातोंको ऐसे त्यागदे जैसे कि टूटी नौकाको समुद्र में त्यागतेहैं उनके नामयहहैं--उपदेश न करनेवाला आचार्य १ वेद विद्यासे रहित ऋत्विज २ रक्षा न करनेवाला राजा ३ अप्रियबादिनी भार्य्या४गांवका चाहनेवाला गोपाल ५ वनका चाहनेवालानाई ६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७ ॥

## अट्ठावनवां अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि हे युधिष्ठिर यह राजधर्म्मोंकी रक्षाका आशय तुमसे कहा इसधर्म्मका बर्णन श्रीबृहस्पतिजीने न्यायके अनुसारकहा है इसीप्रकार महातपस्वी भरद्वाज और महातप भगवान् शुक्रजी और सहस्राक्षइन्द्र और प्रचेतसमनु गौरशिरामुनि यहसब राजशास्त्रके जारीकरनेवाले वेदब्राह्मणोंके रक्षकब्रह्मबादी संसारकी रक्षा करनेवाले राजाओं के धर्म्मकी प्रशंसा करते हैं हे धर्म्मात्मा युधिष्ठिर इसधर्म्ममय युक्तिको मुझसे सुनो चार अर्थात् दूतोंको नियतकरना समयपरप्रसन्नहोकर मासिकदेना और युक्तिबलसे राजभागलेना बिनायुक्तिके महसूलनलेना सत्पुरुषोंका संग्रह करना शूरता चतुराई सत्यता और प्रजाका अभीष्टकरना छलबलसे शत्रुओंकेपक्षवालोंको तोड़ना पुराने

टूटे फूटे स्थानोंको देखना और समयकेमाफिक दोप्रकारके दण्डोंका जारीकरना साधुओंका त्यागनकरना कुलीन लोगोंकापोषण और अन्नआदिको इकट्ठा करना ज्ञानियोंकी सेवाकरना और सदैव सेनाको प्रसन्नकरना प्रजाका देखना संसारी कामोंमें खेद न मानना और खजाने कीभी अधिक वृद्धि करना शत्रु से रक्षा और विश्वास न करना और जो शत्रुओंने पुरवासियोंको व्योपारआदिके छलसे स्वाधीन करलियाहो उनको अपने आधीन करना और शत्रुओं में वर्त्तमान अपने मित्रों को बुद्धिके अनुसार देखना और जो नौकरों को शत्रुलोग अपने आधीन करते हैं उनको देखना कभी नौकरों पर पूर्ण विश्वास न करना अपने देश को देखना उसी प्रकार आपभी दूसरे को दृढ़ता कराना सब कर्म्म नीति धर्म्मके अनुसारकरना सदैव उद्योग करना शत्रुओंका अपमान न करना और निकृष्टकर्म्मकभी न करना जो बृहस्पति जीने राजाओंके उद्योगको कहाहै वह राजधर्म्मकी जड़ है इसके श्लोकोंको मुझसे सुनो कि इंद्रने उद्योगहीसे अमृतको पाया और असुरोंको मारा और नरलोक और सुरलोक दोनों में प्रतिष्ठावान हुआ जो पुरुष उद्योग करने में निपुणहैं वह बचनके वीर पण्डितोंसे भी उत्तम समझे जावे हैं उद्योगी पण्डित लोग वीरोंको प्रसन्न करके उनकी उपासना करतेहैं उद्योग रहितराजा सदैव शत्रुओंसे पराजय होनेके योग्यहै जैसे कि विना विषवाला सर्प विनाउद्योग सबलभी निर्बल शत्रुको नहीं मारसक्ता थोड़ी अग्निभी भस्म करसक्ती है और थोड़ा विषभी मारडालताहै सेनाके एक अंगसे भी युक्त शत्रुके गढ़पर वर्त्तमान होकर राजा धन और सेनासे वर्द्धमान सब देशको तपाता है अपने शत्रुराजाकी गुप्तसलाह और उसका बचन और विजय के लिये मनुष्यों का इकट्ठा करना और उसके हृदयका जो कपटहो और विजय आदि के हेतु जो छलहो और जो उसके राज्य के कामों में बिगाड़हो उन सबबातों का अपनी बुद्धिमत्तासे जानकर विजय करे और देशको स्वाधीन करनेके लिये धर्म्मिष्ठ बातेंकरे यह राज करना बड़ा भारीतन्त्रहै यह तन्त्र निर्दय राजाओं से धारणनहीं किया जासक्ता और मायाका यह उत्तम स्थान राज्यमृदुस्वभाव वाले राजासे धारण करने के योग्यनहीं है इसलोकमें यह राजधर्म्म विषय रूपहै वह सत्यतासेही धारण कियाजाताहै इससे मृदुता और कठोरतासे संयुक्त बुद्धिसे कर्म्मकरना चाहिये यद्यपि संसारकी रक्षाकरनेवाले राजाको हानि भी होजाय वह भी उसका धर्म्महीहै राजालोग ऐसे प्रकारके चलनको किया करतेहैं तुझ अच्छे प्रकार से कर्म्म करनेवालेके सन्मुख राजधर्मोंका यह थोड़ासा वर्णन किया फिर जिसमें तुझे सन्देह है उसे कहौ वैशम्पायन बोले कि इतनी बात के पीछे भगवान व्यासजी, देवस्थान, अश्म, वासुदेवजी, कृपाचा-

र्य्य,सात्विकी और संजय यह सब अत्यंत प्रसन्न चित्तहोकरबोले कि हे भीष्म तुमको धन्यबादहै तदनन्तर भीष्मजीके चरणोंको स्पर्शकरके युधिष्ठिरने कहा कि हे पितामह इससमय अपने सन्देहों को आपसे नहीं पूछूंगा क्योंकि सूर्य्यास्त हुआ फिर युधिष्ठिर, केशवजी, कृपाचार्य्य आदि ब्राह्मणोंको दण्डवत् और श्रीगांगेयजीकीपरिक्रमाकरकेरथोंपर सवारहुये और दृशद्धतीनामनदीमें स्नान आचमन सन्ध्याबन्दनादिकर्म्म करके फिर हस्तिनापुरमें पहुँचे ३० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेअष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ५८ ॥

## उनसठवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि फिर वह पाण्डव और यादव प्रातःकाल उठकर सन्ध्या बन्दनादि से निवृत्त होकर रथों पर चढ़ भीष्मजी के पास आये और व्यास आदि ऋषियों को प्रणामकर चारोंओर को बैठगये और श्री भीष्म जीको बड़ी नम्रतासे प्रणामकरके हाथ जोड़के यह कहा कि हे भरतवंशी महाराज भीष्मजी इसपृथ्वीपर जो यह राजा शब्द प्रचलितहोरहाहै इसका हेतुक्याहै और काहेसे उत्पन्नहुआ यह आपमुझसे कहिये सब पुरुषोंकेसमान भुजा, ग्रीवा, बुद्धि, प्राण, आत्मा, दुःख सुख पीठ मुख उदर आदि रखने वाला और एकसाही बीर्य्य, अस्थि, मस्तक, मांस, रुधिर रखनेवाला और श्वास का भी बराबर आनाजाना और एकसादेह और जन्म मरणवाला और मनुष्यों के समानही गुण रखनेवाला एक पुरुष किसकारण से सब मनुष्यों पर आज्ञा करनेवाला होताहै और अकेला किस प्रकारसे शूरवीर और उत्तमपुरुषोंसे व्याप्तकैसे सब पृथ्वीकी रक्षाकरताहै और संसार की प्रसन्नताको भी चाहता है उसी अकेले की प्रसन्नता से सब संसारप्रसन्नहोता है और उसके व्याकुल होने में सब महाव्याकुल होते हैं सो वक्ताओं में श्रेष्ठ आप इस बातको मुझको समझाके कहिये मेरीबुद्धिमें यह छोटानहींहै जो सब पुरुषों में देवताओंके समान पूजितहोता है भीष्मजीबोले कि हे नरोत्तमतुम सावधानहोकर सब वृत्तांत सुनो जैसे कि सतयुग के प्रारम्भ में राजशब्द हुआ उससमय नतो कोई राजा और न राज्यथा न दण्ड और दण्डदेनेवाला था सब संसारी लोगोंने परस्पर में धर्म्महीसे रक्षाकरी तब धर्म से परस्पर रक्षाकरनेवालों ने बड़ा खेदपाया इसकारण उनमें अज्ञानता प्रकटहुई और अज्ञान के बशीभूत होकर ज्ञानके लोपसे उनका धर्म नाश हुआ फिर उत्तम ज्ञानके नष्टहोनेसे मोह के वशीभूतहो सब मनुष्य लोभ में प्रवृत्तहुये उसके पीछे मनुष्य असम्भवबातों के बिचार करने वाले हुये और फिर वहां कामनाम दूसरी इच्छा भी आकर वर्त्तमानहुई फिर काम के

बशीभूत मनुष्योंको रागने आकर दबाया और रागमें प्रवृत्तहोकर मनुष्यों ने करने और न करनेके योग्यकर्म्म को नहींजाना फिर हे राजा उन्होंने भोगकरनेके अयोग्य स्त्रीके भोगको और इसीप्रकार कहने और न कहने योग्य बचनको और भोज्य और अभोज्य बस्तुको और दोषों का भीत्याग न किया अर्थात् सबबातें करनेलगे ऐसी दशामें इस नरलोकको वे मर्यादा होनेसे वेदभी लोपहुआ फिर वेदके लुप्तहोने से धर्म्मका नाशहुआ फिर वेद और धर्म्मके लोपहोनेपर देवताओं में भयउत्पन्नहुआ तब वह भयभीत देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये और महादुःखीहो हाथजोड़कर ब्रह्माजीको प्रसन्नकरके कहा कि हे भगवन् लोभ मोह आदिके होनेसे नरलोकमें सनातन वेद और धर्म्मका लोपहुआ इसकारण हम सबमें भय उत्पन्नहुआ इसी हेतु से हमलोगभी नरलोक बासियोंके समान होगये अर्थात् स्वाहा आदिके न होनेसे भूखे मरतेहैं हमारी वर्षानीचेको होती है और मनुष्यही वर्षा करनेवालेहैं उनकी क्रियानष्टहोनेसे हमको संशय प्राप्तहुआ इससे हेपितामह यहां जो कल्याणकारी कर्म्म है उसको ध्यानकरो आपही के प्रभावसे यह नवीन उत्पन्न होनेवाला भय नाशको प्राप्तहोगा तब ब्रह्माजीने उत्तरदिया कि मैं तुम्हारे कल्याणको बिचारूंगा जिससे कि तुम्हारा भय दूरहो फिर ब्रह्माजी ने अपनी बुद्धिसे एकलाख अध्याय बनाये जिनमें कि धर्म्म अर्थ कामका वर्णनहै और ब्रह्माजीसेही यह त्रिवर्गगुण प्रसिद्ध हुआ फिर चौथामोक्षहै जो कि इस त्रिबर्गके फल और साधन से अपनाफल और साधन पृथक् रखता है अर्थात् मोक्षका त्रिबर्ग दूसराहै तात्पर्य्य यह है कि इच्छाफलसे रहित है वह भी उसीमें कहाहै और धर्म आदिके विपरीत होनेका कारण सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण और धनुपसे व्यापारियोंका मार्गमें निवास तपस्वियोंकी वृद्धि चोरोंका नाश, दण्डसे उत्पन्नहोनेवाला यह त्रिवर्गभी बर्णन किया चित्त, देश, काल, साधन कर्म्म, सुहृद आदि जिनके सुधारनेका कारणनीतिसे उत्पन्न होनेवाला षट्वर्गभी वर्णन किया अर्थात् नीतिके बलसे प्रजाकी व्याकुलताभी मिटतीहै और कुदेशभी सुदेशहोजाताहै और कलियुगभी सतयुगहोजाताहै हेभरतवंशी कर्म्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड,वार्त्ता अर्थात् खेतीजीविका व्यापार आदिकाकाण्ड दंडनीति अर्थात् प्रजाके पोषण करनेकीविद्या और बड़ी विद्या उनलाख अध्यायोंमें दिखाई मंत्रीलोगों की रक्षा और उनपर ऐसा गुप्तदूतका नियतकरना जो कि नानाप्रकारकी युक्तियोंका जाननेवाला हो जैसे कि ब्रह्मचारी आदिके रूपरखनेवाले और हरएकस्थानमें भिन्न २ पोशाकवाले तीनतीन नियतहों यह सब बातें और राजकुमारका लक्षण उनमें बर्णन किया हेराजा इसमें साम दाम दंडभेद और पांचवां उदासीनताभी

सम्पूर्णता के साथ वर्णनकी सब गुप्तविचार उसी प्रकार भेदके निमित्त सलाहका मिथ्याकरना और मंत्रकी सिद्धी और असिद्धीका जो फलहै उसको भी वर्णन किया और तीन प्रकार की सन्धियां जो भय और लेख और धन से सम्बन्ध रखती हैं अधम मध्यम उत्तम नामसे वर्णनकीं भयसे होनेवाली सन्धिलघु और सत्कारसे होनेवाली सन्धि मध्यमहै और लेनदेन से होने वाली सन्धि उत्तमहै*यात्राके चारों समय धर्म और त्रिवर्गका विस्तार और धर्म्म युक्त विजय और अर्थकी विजय और ० आसुरी विजय सम्पूर्णता के साथ वर्णनकी + और उस से पंचवर्ग के लक्षण भी तीन प्रकारके वर्णन किये और प्रकाशित वा अप्रकाशित दोनों प्रकारकी सेना भी कही उनमें प्रकाशित सेना आठ प्रकारकीहै और अप्रकाशित सेना बड़े विस्तारकी हैं॥

हे पाण्डव रथ, हाथी, घोड़े, पैदल, भारवाहक, नौका, दूत, उपदेशक गुरू यह सेना के आठअंग हैं और जंगम बिष बिच्छू आदिसे पैदा होने वाले और स्थावर बिष और चूर्ण में मिलनेवाले कहे और वस्त्र आदिके स्पर्श में और खाने पीने की बस्तुओं में विष मिलाना और मारण आदि प्रयोग यह तीन प्रकारके बिषकामेल करना दण्ड रूप कहा और शत्रुमित्र उदासीन यह भी वर्णन किये ग्रह नक्षत्र आदि मार्गों के गुण इसी प्रकार पृथ्वीके गुण मंत्र यंत्र आदिसे अपनी भयभीत रक्षाकी रक्षा करना रथ आदिके कारखाने को देखना मनुष्य हाथी घोड़े रथ आदि को नीरोग और पराक्रमी करनेवाली अनेक प्रकार की युक्तियां और बहुत प्रकारके व्यूह और बिचित्र युद्ध में जानकारी यहभी उसमें वर्णन किये और उत्पात निपात अर्थात् ग्रहोंका बिरोध और पृथ्वीका कम्पन और उल्कापात होना उत्तम युद्ध और भागना और शस्त्रोंका तीव्रकरना और उनका ज्ञान भी वर्णन किया सेनाका दुःख और उसी प्रकार सेनाका प्रसन्न करना पीड़ा और आपत्ति के समय का ज्ञान भी वर्णन किया इसीप्रकार बाजों के शब्दों से चढ़ाई आदिके इंगित को समझकर काम करना योग संचार, पताका और मंत्र आदि के सुनने और देखने से मोहित करना और चोर उग्ररूप बनबासी मनुष्यों की सेनासे शत्रु के देशको पीड़ा देना यह सब उसमें वर्णन किया और अग्नि लगाने वाले विष देनेवाले मूर्त्तिबनानेवाले और सेना के प्रधानों को अपनी ओर मिलाने और खेती आदि के काटने और हाथियोंके बधकरने और सन्देह पैदाकरने रोजीना देने और बिश्वास उत्पन्न करने से शत्रु के देश को पीड़ा

---

* अपने मित्रोंकी ज़ववृद्धि हो—अपने खजानेका इकट्ठा होना—शत्रुके मित्रों का नाश-शत्रुके खजानेका नाश--यहचार यात्राके समयहैं ०. रात्रिको मारपीट करना + मंत्री देश-गढ़ सेना-खजाना--यहपंचवर्ग हैं और अत्यन्त-साधारण-न्यून यह तीन प्रकार हैं॥

देना वर्णन किया सातअंग रखने वाले राज्य के नाश बृद्धि और समानता और दूत के उद्योग के फल से अपने देशकी बृद्धिका वर्णन किया और शत्रु मित्र और मध्यस्थों की फूटका वर्णन किया इसी प्रकार पराक्रमियों को पीड़ा देना और मारना वर्णन किया अत्यन्त सूक्ष्म व्यवहार उसीप्रकार कांटेका उखाड़ना अर्थात् दुष्टोंको मारना मल्लक्रीड़ा व्यायाम आदि शस्त्रों के चलाने का अभ्यास धनका संचय--यह सब वर्णन किये बिना जीविका के पुरुषों का पालना और सेवकों का देखना समयपर धन का दान करना व्यसनों में प्रवृत्त न होना यह सब वर्णन किया इसीप्रकार राजगुण अर्थात् चढ़ाई आदि सेनापति के गुण त्रिवर्गका हेतु और गुणदोष वर्णन किये नौकरोंके अनेक प्रकार के बद चलन और नेकचलन सबमें संदेह करनाभूल का त्यागना अप्राप्त को प्राप्तकरना और प्राप्त बस्तुकी बहुतवृद्धि करना फिर अच्छीबृद्धि पानेवाली बस्तुको अच्छे सुपात्रोंका दानकरना यहसब वर्णन किया धनका खर्चकरना धर्मअर्थ काम मोक्षके लिये कहाजाताहै इसीप्रकार आपत्तिके दूर करनेकेलिये चौथा दान इसमें वर्णन किया हे राजा इसीप्रकार इस लाख अध्यायमें क्रोध और कामसे उत्पन्न होनेवाले दशव्यसन वर्णन किये और आचार्योंने शिकार बाजी, पांसा, मद्यपीना,स्त्री यह चार व्यसन कामसे उत्पन्न होनेवाले कहे ब्रह्माजीने उनको भी इसमें वर्णन किया और वैसेही क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले,कठोर वचन, उग्रता,दण्डपारुश्य, देहको घायल करना त्यागकरना, धनको निरर्थक खर्चकरना, यह छः व्यसनबर्णन किये नानाप्रकारके यंत्र और उनकी क्रिया वर्णनकीं शत्रुकी सेना से देशआदिकी पीड़ा और घायलहोना स्थानोंका तोड़ना यहसब वर्णन किया सीमाके वृक्षोंका तोड़ना और राज्यकी आमदनीका रोकना शस्त्र आदि सामानके बनानेकी रीतोंकावर्णन किया और पणवानक शंख भेरी बाजोंका बजाना और द्रव्योंका संग्रहकरना वर्णन किया जो कि संख्यामें छःहैं मणि, पशु, पृथ्वी, वस्त्र, दासी, दास और स्वाधीनहोनेवाले को शान्तकरना तत्पुरुषोंका पूजन करना पण्डितोंके यज्ञांगत दान और होमकी बिधिको जानना वर्णनकिया मंगली बस्तु सुवर्णादिका स्पर्शकरना देहको शृंगार करना भोजन करना सदैव ईश्वरकोमानना यहसब बर्णन किया अकेलेकी चढ़ाईकी रीति सत्यता मीठाबोल उत्सव समाजोंकी क्रिया इसीप्रकारध्वजा धन आदि का वर्णन किया हे युधिष्ठिर इसीप्रकार चौतरा आदि बैठनेका स्थान मनुष्यों के गुप्तप्रकट वृत्तान्तोंको और व्यवहारोंको सदैव देखना वर्णन किया ब्राह्मणों को अदण्डहोना और युक्तिसे दंड देना और विजातिवालों और गुणोंसे उत्पन्न होनेवाली प्रतिष्ठा पुरवासियोंकीरक्षा देशकी अच्छीवृद्धि करना और बा-

रह राजाओं से सम्बन्ध रखनेवाले मण्डलमें जो स्थिरचिन्ता है उसका भी वर्णन किया अर्थात् विजयके चाहनेवाले चारोंओर चारशत्रु और उनसे आगे चारमित्र फिर उनसेआगे चारउदासीन यहीमण्डलके बारह राजाहोते हैं और बहत्तर प्रकारके संस्कार देह, देश, जाति और कुलके धर्म अच्छेप्रकार वर्णनकीजिये और धर्म्म अर्थ काम मोक्ष युक्तियां और अनेकप्रकारकी इच्छा धन आदि इसमेंकहे मूलकर्म्म अर्थात् मालकी प्रबन्धकी रीति माया, योग, नदी और नियत प्रदेशोंके दोषी करनेकाभी वर्णनकिया औरजिन २ रीतों से यहसंसार बिरुद्ध न होवे वह सबरीतें नीतिशास्त्र में वर्णनकीं वहब्रह्माजी इस उत्तम शास्त्रको बनाकर उन देवताओंसे जिनमें मुख्य इन्द्रदेवताथेप्रसन्न होकर यह बोले कि संसारकी बृद्धि और धर्म्म अर्थ कामके नियत होने के वास्ते सरस्वती की यह सारबुद्धि प्रकट है लोककी रक्षा करनेवाला दंडपारितोषिकसे संयुक्त यह नीतिशास्त्र दंड युक्तहोकर लोगोंमें बिचरेगा यह संसार दंडहीसे आधीन होताहै और दंडहीको पाताहै यह दंडनीतिनामसे प्रसिद्ध तीनोंलोकमें बर्त्तमान होगी छः गुणोंसेभरी यह दंडनीतिमहात्माओंकेआगे नियतहोगी इसमें धर्म अर्थ काम मोक्ष आदि सबका वर्णन कियातदनन्तर भवरूप विशालाक्ष स्थाणु उमापति शंकर भगवान्ने इसनीतिकोलियाफिर शिवजीने संसारीजीवों की थोड़ी अवस्था जानकर उस ब्रह्माजीके बनाये हुये महा अस्त्रनाम शास्त्रकासार निकाला उसमें दशहजारही रहगया कि उस विशालाक्ष नाम सारको इन्द्रनेपाया इन्द्रनेभी उसका पांचहजारही में आशय निकाला उसका नाम बाहुदन्तक रक्खा उसको बृहस्पतिजीने तीन् ही हजारमें संक्षेप किया वहबार्हस्पती नामसे प्रसिद्ध हुआ फिर योगाचार्य शुक्रजीने एकही हजार में संक्षिप्त करके वर्णन किया इसक्रमसे महर्षियों ने अवस्थाकी न्यूनता देखकर संक्षेप किया इसपीछे देवताओंने प्रजापति विष्णुजीसे कहा कि संसारी पुरुषोंमें से एकयोग्य पुरुष जो राज्य शासन करने के योग्यहो उसको आज्ञा दीजिये तब नारायणजी ने बिचारकर रजोगुण से रहित तेजसनाम मानसीपुत्र उत्पन्न किया वह निरंजन महाभागने पृथ्वी पर राज्य करना न चाहा और संन्यास धारण करनेकी इच्छाकरी उसकापुत्र कीर्त्तिमान्हुआ वहभी जीवन् मुक्त हुआ उसके पुत्र कर्दमजी हुये वह भी बड़े तपस्वी हुये और कर्दमजीका पुत्र अनंग नाम साधुरक्षक और दंडनीतिमें प्रवीण हुआ अनंग के पुत्र महानीतिज्ञ पराक्रमी ने जाकर बड़ेभारी राज्य को प्राप्त किया और इन्द्रियों के बशीभूत हुआ उसमृत्यु को पुत्रमानसी सुनेथा नाम तीनों लोकमें प्रसिद्धहुआ उसका पुत्र बेणुहुआ वह राग द्वेष में वशीभूत हो प्रजापर अधर्म करने वाला हुआ उसको ब्रह्मबादी ऋ-

षियों ने मंत्रों से अभिमंत्रित कुशाओं से मारा और उसकी दाहिनी जं-
घाको मंत्रों से मथा तब उसजंघा से एक पुरुष ऐसा उत्पन्न हुआ जो कि
छोटा देह कुरूप और कोयले के समानवर्ण रक्तनेत्र कालेकेश वालाथा
उसको देखकर ऋषियों ने कहा कि बैठजाओ उसीसे सैकड़ों निषाद उत्पन्न
हुये जो कि बनमें और पर्वतोंमें निर्दय चित्तहोकर रहतेहैं और विन्ध्याचल
बासी दूसरे प्रकारके म्लेच्छहैं वह भी उसीसे पैदाहुये फिर उन महर्षियोंने उस
की दाहिनी जंघाको मथा उससे ये एक ऐसा पुरुष उत्पन्नहुआ जो रूप में
द्वितीय इन्द्र सुवर्ण निर्मितवस्त्र और खड्ग धनुष बाण धारणकरे वेदवेदांगों
का जाननेवाला धनुर्वेद में पंडितथा उसके आधीन सब दंडनीति हुई तब
वह बेणु पुत्र ऋषियोंसे हाथ जोड़कर बोला कि धर्म अर्थकी देखनेवाली बड़ी
सूक्ष्मबुद्धि मुझमें उत्पन्नहुई इसबुद्धिके अनुसार मुझको क्या करनायोग्य है
यह समझाकर आप मुझसे कहिये आप अर्थसंयुक्त जिस कामको कहोगे
उसको मैं करूंगा इसमें कोई विचार न करियेगा तब देवता और महर्षिलोग
बोले कि जिसमें ठीक२ निश्चयपूर्वक धर्म है उसको निस्सन्देह करो और
सब जीवोंमें समान दृष्टिहो प्रियअप्रियको त्यागकर कामक्रोध लोभको दूर
से त्याग ऐसा कामकरो कि लोक में जो कोई मनुष्य धर्म से हटजाय वह
सदैव आपसे दंडके योग्यहै चित्तसे कर्म्म से वार्त्तासे बराबर शपथकरो कि मैं
ब्राह्मणोंका पालन करूंगा और इस शास्त्रमें दंडनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाला
जो नीतिधर्म कहा उसको निस्सन्देह मैं करूंगा और कभी इन्द्रियोंके बशी-
भूत न हूंगा और यह भी प्रतिज्ञाकरो कि मुझसे ब्राह्मण अदंडहैं और यह
भी प्रणकरो कि सबसंसारकी रक्षाकरूंगा फिर उस बेणुपुत्र ने देवताओं से
कहा कि महाभाग पुरुषोत्तम ब्राह्मण मुझसे नमस्कार के योग्यहैं फिर ब्रह्म-
बादी ऋषियोंने कहा कि ऐसाहीहो वेदरूप भंडार रखनेवाले शुक्रजी उसके
पुरोहितहुये बालखिल्यऋषियों के समूह और सारस्वत ब्राह्मण उनके मंत्री
हुये और गर्गमुनिजी उसके ज्योतिषी हुये यह अपने कुल में आठवांहुआ
अर्थात् पहिला बिष्णु दूसरा विरज,तीसरा कीर्तिमान, चौथा कर्दम, पांचवां
अंग,छठाअवतल, सातवांबेणु, आठवां पृथुहुआ मनुष्योंमें यहश्रेष्ठ श्रुतिप्र-
सिद्धहै प्रथम इसके पुत्र सूत्र और मागधनाम उत्पन्नहुये वेणुकापुत्र पृथु इन
दोनोंपर प्रसन्नहुआ तब सूतको अनूपदेश और मागध को मगधदेश दिये
उसके समयमें जो असमभूमि थी उसको उसने समकरवाया यह भी सुना
है कि सब मन्वन्तरोंमें पृथ्वी असम होजाती है फिर पृथुने चारों ओर से शि-
ला के जालोंको धनुषकी कोटी से उठाया उससे पहाड़बड़ेहुये तबपृथु देवता-
ओं के ईन्द्रदेवता और विष्णुजी और प्रजापालक ऋषिमुनि ब्राह्मण आदि

से अभिषेक करायागया उसको पृथ्वीने साक्षात् रत्नोंको लेकर सेवन किया और नदियों के स्वामी समुद्रने और पर्वतोंके अधिपति हिमाचल ने और इंद्रदेवता ने उसको असंख्य धनदिया और स्वर्णमयी पर्वतोंने सुवर्ण दिया यक्ष राक्षसों के अधिपति कुवेरने भी अक्षयधन दिया उससे धर्म्म अर्थ काम सिद्ध हुये हे पाण्डव घोड़े रथ हाथी और करोड़ों मनुष्य पृथुके ध्यानसेही उत्पन्न होगये उस समय किसीको वृद्धापन देह रोग और न दुर्भिक्ष आदि कोई प्रकारकी व्याधि नथीं उसकी उत्तम रक्षा से कभी सर्प चोर आदि से भयनहीं होताथा उसकी यात्रा के समय समुद्रके जल स्थिरहुये और पर्वतों ने मार्ग दिये और कभी ध्वजा पतन नहींहुआ उसने यक्ष राक्षस नाग आदि समेत पृथ्वीको दुहा और सत्रह प्रकारकी खेतियां प्रकटकीं औरजिसजिस का जो अभीष्ट था वह भी उस महात्मा ने लोक धर्म्मको उत्तम रखने वाला किया और सबप्रजा को प्रसन्न किया इसीसे राजा शब्द कहाजाता है ब्राह्मणोंके घावोंकी रक्षा से क्षत्रीशब्द हुआ और बहुत धर्म से यह भूमि प्रसिद्ध हुई और पृथ्वी नामहुआ और आप सनातन विष्णुजीने मर्यादा नियत की कि हे राजा कोई पुरुष तेरे विरुद्ध काम नहीं करेगा और योगके द्वारा आप विष्णु ने उसकी देह में प्रवेश किया इसीसे यह नर देवतोंके समान है इसीसे जगत् राजाको प्रणाम करता है इससे राज्य दण्डनीति से सदैव रक्षा के योग्यहै इसीप्रकार दोनों के होने से और देशकी दशाओं के देखने और पोषण करने से राजाको कोई पराजय नहीं करसक्ता है इस लोक में समदर्शी राजाके चित्त और कर्मसे कियाहुआ उत्तमकर्म और उत्तम फलके वास्ते कल्पना किया जाताहै इसका क्या हेतुहै जो देवगण के सिवाय सबलोगराजा के स्वाधीन होते हैं इसका हेतु यह है कि प्रथम विष्णुके मस्तक में सुवर्णका कमल उत्पन्न हुआ उससे बुद्धिमान् धर्म्मकी रक्षा करनेवाली देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई और लक्ष्मी से धर्म्म के द्वारा अर्थ उत्पन्न हुआ इसीप्रकार अर्थसे धर्म्मार्थ उत्पन्न हुये और लक्ष्मीजी राज्य में नियत होती हैं तबस्वर्ग से आकर दण्डनीति में कुशल बुद्धिराजा उत्पन्न होता है वहमनुष्य विष्णुके माहात्म्यका जानने वाला बुद्धिमान् होकर प्रतिष्ठाको पाता है इसकारण देवताओंके अभिषेक कियेहुये राजाको कोई उल्लंघन करके कर्मकर्ता नहीं होसक्ता है और यह संसार एक राजाके आधीन होता है उसके बिना यहजगत् कर्म करने को समर्थ नहीं होसक्ता हे राजा शुभकर्म शुभफल के निमित्त कियाजाता और लोक उस समानअंगी एक के आज्ञावर्ती नियत होता है जिसने उसके सौम्य मुखको देखा वही उसका आज्ञाकारीहुआ और वही उस सुन्दर ऐश्वर्यवान् अर्थवान् और रूपवान् को भी देखता है उसेब्रह्मांडकी प्र-

तिष्ठासे शुद्ध लक्षण वाली नीति और उसमें बर्त्तमान जो उत्तम धर्म सो दृष्टि पड़ता है इसी से यहसब क्रमपूर्वक कियागया और इसशास्त्र में शास्त्रपुराण महर्षियों की उत्पत्ति तीर्थों का और नक्षत्रोंका बंश कहागया और इसी प्रकार चारों आश्रमों का धर्म्म चातुर्होत्र आदि चारोंबर्णों का धर्म्म और चारों बिद्या इसमें बर्णन हुई इतिहास वेद सम्पूर्ण न्याय, तप, ज्ञान, अहिंसा सत्य, मिथ्या और उत्तम नीति इस में बर्णनकरी वृद्धोंकी सेवा दान, शौच, युक्ति, चढ़ाई आदि सबजीवों पर कृपाका करना और सबयंत्र इसमें कहे गये और उस ब्रह्माजी के शास्त्र में पृथ्वी और पाताल का सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन कियागया इसी हेतु से ज्ञानियों ने राजा शब्द को सदैव जगत् में कहा है राजा देवता और नरदेव यह दोनों समानहैं यह सब राजाओं का माहात्म्य हमने पूर्णतासे कहा अब अन्य क्या बार्त्ता आपको पूछनाहै१४५॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्म्मेएकोनषष्टितमोऽध्यायः ५९॥

# साठवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि इसके पीछे युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर भीष्मजी से यह प्रश्न किया कि सबवर्णों के कौनकौन धर्म हैं वह सबपृथक् २ कहिये चारों वर्ण और आश्रम औरधर्मों को कौन मानता है और देश किसरीति से वृद्धि को पाता है और राजा किस राजा से बड़ाई पाता है और पुरवासी और अधिकारी लोग कैसे आनन्द पूर्बक वृद्धिपाते हैं और कैसे खजाने दण्डगढ़ सहायक मंत्री सेना पुरोहित आचार्यों को त्यागकरे राजा को कैसी आपत्ति में कैसे २ मनुष्यों पर बिश्वास करना योग्यहै और आत्मा की रक्षा दृढ़ता पूर्बक कहांकरनी योग्य है यह सबबातें आप कृपाकरके वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि महाधर्मको और जगत् के स्वामी श्रीकृष्णजी को प्रणाम करके मैं सनातन धर्म्मों को कहता हूं क्रोध न करना सत्यबोलना क्षमाकरना अपनी स्त्रियों में सन्तति पैदाकरना पवित्रता और प्रत्यक्ष औरअप्रत्यक्ष किसीसे शत्रुता न करनाशुद्धभावहोना पोषण आदि यह तो सब वर्णोंके धर्म हैं अब जो केवल ब्राह्मणों का धर्म है उसको कहताहूं कि शान्त स्वभावही को प्राचीन धर्म कहा और उसी में वेदपाठ का अभ्यास यहभी नित्यकर्म होताहै उसअपने कर्म में सावधान शांत वृत्ति और बिपरीत धर्म न करने वाले ब्राह्मणको जो धनप्राप्त होय तो बिवाह करके सन्तानको उत्पन्नकरे और दान और यज्ञकर धनको बिभागकर भोगना चाहिये ब्राह्मणवेदपाठहीसे आनन्दित रहताहै दूसरा कर्म्म करे या नकरे क्योंकि मैत्रकहाजाता है अर्थात् सबकामित्र होता है और क्षत्रीकाभी धर्म मैं कहता हूं कि दानकर

किसी से प्रार्थना न करे यज्ञकरे परन्तु दूसरे को यज्ञ न करावे वेदपढ़े परंतु किसीको पढ़ावे नहीं प्रजाको पोषण करे चोरों के मारने में तत्पररहे और युद्ध में पराक्रम करे जो राजा लोग शास्त्रज्ञ और यज्ञों से पूजन करने वाले हैं और युद्ध में बिजयी हैं वह क्षत्रियों में उत्तम और लोकों के बिजय करनेवाले हैं जो क्षत्री बिना घायल युद्ध से पीठ फेरता है उसकी प्राचीन लोग प्रशंसा नहीं करते हैं यह क्षत्रियों की उत्तम रीति कही चोरोंके मारने के सिवाय इसका कोई बड़ाकर्म नहीं है दान वेदपाठ जप यज्ञ राजाओंका कल्याण कहा जाताहै इस कारण से धर्म्म की इच्छा रखने वाले राजाको अधिक युद्ध करना चाहिये राजा अपनी सबप्रजा को अपने धर्म्मोंमें नियतकरके वह सब कर्म्म जिसमें अन्तःकरणमें शान्तचित्तहो धर्म्म से करावे राजा प्रजाके पोषण करने से महा आनन्द में प्राप्त होताहै दूसरा कर्म्मकरे या न करे राजाइन्द्र का पुत्र कहा जाताहै अब वैश्यके धर्म्म कहताहूं वेदपाठ पवित्र यज्ञसे धनको संचय करने में प्रवृत्त चित्त होकर वैश्य पिताके समान पशुओं का पोषण करे इसके बिशेष दूसरा कर्म्म बिपरीत है पशुओंकी रक्षा से बड़े सुखको पाता है ब्रह्माजी ने पशुओं को उत्पन्न करके वैश्यको दी और ब्राह्मण और राजाको सब प्रजादी है इनकी जीविका भी कहताहूं छः गौओंमें से एकगऊ के दूधको पिये और सौमेंसे एक गऊ और बैलको ले और ब्यापार के नफेमें सातवां भाग ले इसी प्रकार उनके सींगखुर आदिको ले और सब बीजके ब्यापार और खेतीके सातवें भागको ले यही बर्षौंड़ी जीविका है वैश्यको ऐसी बुद्धि कभी न करनी चाहिये कि मैं पशुओं का पोषण नकरूं वैश्यके राजी होनेमें दूसरे किसी की रक्षा पशुओं में योग्य नहीं अब शूद्रका भी धर्म कहताहूं ब्रह्माजी ने शूद्रको सब वर्णोंका दास नियतकिया इसहेतु से तीनों बर्णोंकी सेवाही शूद्रका कर्म कहाजाता है उनकी सेवासे वह बहुत सुख पाताहै शूद्र क्रमपूर्व्वक तीनों वर्णों की सेवाकरे और किसी दशामें धनको इकट्ठा न करे क्योंकि वह छोटा होकर धनके हेतुसे उत्तम बर्ण को अपने आधीन न करेगा चाहे राजाकी आज्ञा से धर्म्मज्ञ शूद्र धन को संचयकरे उसकी जीविकाको कहताहूं शूद्र तीनोंवर्णों की ओरसे अवश्य पोषणके योग्य कहाजाता है छत्र सितार पलँग आदि जूतेका जोड़ा बानका काढ़ना यह सब पुरानी बस्तु सेवा करनेवाले शूद्रको देना चाहिये पुरानेवस्त्र द्विजों के धारण करने के योग्यनहीं होते वह शूद्रही को देने योग्यहैं वही उसका धर्मरूपधनहै द्विजोंमें जिसाकिसी की सेवा करनेकी इच्छासे शूद्रआवे उसकी जीविका उसाद्विजसेही धर्म्मज्ञोंने कही है वहीद्विज असन्तान् शूद्रको भोजन देने के योग्यहै और वृद्धअश-

वा निर्बलभी पोषणके योग्य हैं शूद्रको किसी आपत्तिमेंभी स्वामीका त्याग-ना उचित नहीं है और धनके नाश होजाने पर वह स्वामी अपने बालब-च्चों से भी अधिक पोषणके योग्य है शूद्रका धन नहीं है वह धर्म स्वामी के लेने के योग्य है और तीनोंवर्णों की सेवा करनाही उसका यज्ञहै स्वाहा-कार वषट्कार मंत्र शूद्रमें नहीं होसक्ते इस कारण यह वेदोक्त ब्रत बुद्धि से रहित शूद्र आपग्रह शान्ति और वैश्वदेव यज्ञोंसे पूजन करे उसपापकी दक्षिणाको पूरण पात्ररूप कहा पै जवन नाम शूद्रने ऐन्द्राग्नी के बिधानसे एकलाख दक्षिणादी हे राजा सब वर्णोंका जो यज्ञहै वह उसका भी होताहै क्योंकि उनका वह सेवक है और सब यज्ञोंमें पहिला श्रद्धायज्ञ कहाजाताहै पवित्र यज्ञ करने वालोंका वसुदेवता है वेदपाठी ब्राह्मण अपने २ कर्मसे परस्परमें देवता हैं यहां उन्होंने अच्छे प्रकारसे दृढ़ता से सकल यज्ञोंसे पूज-न किया तीनों वर्णोंमें ब्राह्मणों सेही सन्तान उत्पन्न कीगई इसी कारण से यज्ञमें शूद्रका अधिकार है ब्राह्मण यद्यपि देवताओंके भी देवता हैं इस से जो वह कहैं वही यथार्थ है इस हेतु सब यज्ञ स्वभाव से भी चारोंवर्णोंसे किये जाते हैं ऋग् यजु सामवेदों का जानने वाला ब्राह्मण सदैव देवताके समा-न पूजनके योग्य है और ऋग् यजु सामवेदोंका अनधिकारी और तीन बर्णों के पास रहनेवाला शूद्रप्राजापत्यहै हे राजा युधिष्ठिर मानसी यज्ञ सब बर्णों में होताहै इस मानसी यज्ञ करने वाले की इच्छा देवता और दूसरे मनुष्य नहीं करते हैं यह बात नहीं है अर्थात् श्रद्धा की पवित्र-ता से सब लोग इसके यज्ञमें भागको चाहते हैं इसीहेतु से सब वर्णों में श्रद्धायज्ञ कहाजाता है अग्निके बिना शूद्रका अधिकार पवित्रता यज्ञों में किस प्रकार से है यह शंकाकरके कहते हैं ब्राह्मण तीनों वर्णों का अ-साधारण देवताहै इसहेतु से कि उन ब्राह्मणोंने अपने यजमान दूसरे वर्णोंको यज्ञ न करायाहो वह भी बात नहींहै अर्थात् ब्राह्मणोंने यह कह-कर कि हम असुक इच्छासे असुक शर्म्मा आदिजे बिगड़े हुये यज्ञका पूजन करवाते हैं यज्ञतो क्या वेदोक्त बिवाहके सिवाय अग्नियोंका बिस्तार वेदोक्त बुद्धि के अनुसार बैश्य से संबंध रखनेवाला है इस निमित्त ब्राह्मणोंने तीनों वर्णोंमें यज्ञउत्पन्नकिया इसकारण सबबर्ण साधुहैं और जातिवर्ण अर्थात् क्षत्री वैश्य शूद्र उसब्राह्मणकी बिपरीत दशामें उत्पन्नहोतेहैं जिनको अनुलोम वि-लोम कहतेहैं जैसे कि एकअकार सबअक्षरोंसे मिलकर बहुतरूपवाला होता है अर्थात् साम यजु ऋग्वेदोंके रूपोंको धारण करता है उसी प्रकार अकेला ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म उन वर्णोंमें उत्पन्न हुआ हे राजा इस स्थानपर प्राचीन वृत्तांतोंके जाननेवाले पुरुष और यज्ञकी इच्छाकरनेवाले बानप्रस्थ ब्राह्मणोंकी

कही हुई स्तुतिरूप कहावतको कहते हैं कि श्रद्धावान् जितेन्द्रिय पुरुष प्रातःकाल सायंकाल पर अग्नि में धर्मपूर्वकआहुतिदेता है इससे निश्चय श्रद्धाही बड़ा कारण है इसमें जो यज्ञ वायु देवताका है वह उत्तम है और जो बुद्धिके अनुसार कियागया वह सबसे श्रेष्ठहै इसके बिशेष अनेक प्रकारके कर्म्म फल देनेवाले रुद्रनाम सोलह अग्निहोत्र हैं अच्छे ज्ञानसे जो पुरुष उनको जानता है वह श्रद्धावान् द्विजन्मायज्ञ करनेके योग्य है जो चोर या पापी या महापापी यज्ञसे पूजन किया चाहता है उसको साध्वी कहते हैं और ऋषि लोग उसकी प्रशंसा करके कहते हैं कि यह निस्संदेह साधू है सदैव सब दशामें प्रत्येक वर्णको पूजन करनाचाहिये यह सिद्धान्तहै तीनोंलोकमें यज्ञके समान कोई बातनहीं है इसहेतुसे पवित्र श्रद्धामें नियत बल इच्छाके अनुसार दूसरे के गुणमें दोषनलगानेवाले पुरुषके द्वारा पूजन करानाचाहिये ५४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिषष्टितमोऽध्यायः ६० ॥

# इकसठवां अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि हे सत्यपराक्रमी युधिष्ठिर अब तुम चारों आश्रमों के नाम और कर्म्मोंको सुनो ब्रह्मचर्य्य,गृहस्थ,बानप्रस्थ,संन्यास,यहचार आश्रम हैं इनमेंजटा धारण संस्कार और द्विजभाव को पाकर वेदाध्ययन कर आधान आदिकर्म्मोंको करके आत्मदानी जितेन्द्रिय और गृहस्थाश्रमसे पूर्णकामस्त्रीके साथ अथवा अकेलाही बानप्रस्थ नाम आश्रम को प्राप्तकरे फिर वह धर्म्म का जाननेवाला ऊर्ध्वरेता हो बानप्रस्थोंके शास्त्र को पढ़कर अर्थात् कर्म्म के ज्ञानद्वारा प्राप्तकर संन्यासी होकर केवल मोक्षको पाता है हे राजा इसलोकमें पण्डित ब्राह्मणको प्रारम्भ में ऊर्ध्वरेता मुनियों के कर्म्म करने चाहिये और ब्रह्मचारी ब्राह्मण को मोक्ष धर्म्म में प्रवृत्तहोकर भिक्षा मांगना उत्तमहै जिस आश्रम में मिताहारी,अनाहारी,स्थानरहित यथालाभ सन्तोष,मुनिरूप शान्तस्वभाव,जितेन्द्रिय,निर्लोभी,समदर्शी,भोग काम संकल्प आदिसे पृथक्ब्राह्मण होताहै वह कैवल्य मोक्षको पाताहै जो पुरुष वेदोंको पढ़कर मृत्युके समान कर्मका करने वाला सन्तानको उत्पन्न करके सुखों को भोग योग में प्रवृत्त उन कठिनधर्म्मों को जोकि मुनियों से सेवितहैं करे और अपनीही स्त्री में तृप्त ऋतुकालमें उसकेपास जानेवाला शास्त्रके अनुसार कर्मकरे धूर्त्तता कुटिलतारहित मिताहारी देवता में प्रीतिमान् स्वरूप का जाननेवाला सत्यवक्ता मृदु स्वभावदयावान् क्षमावान् सावधान गुरु और शास्त्रके बचनोंकामाननेवाला और ब्राह्मणों को अन्न का देनेवाला ईर्षारहित सब आश्रमियोंका दाता सदैव वेदोक्तकर्म्म करनेवाला गृहस्थ आश्रमीहो ऐसे स्थानमें महानुभाव ऋषियोंने नारायण

गीतको कहाहै जो कि बड़े २ अर्थ और तपसेभरा है उसको सुनो कि अप-
नी स्त्रियों के साथ सत्यता और शुद्धभाव और अतिथिपूजन धर्म्म अर्थ और
प्रीति यह सुखरूप कर्म्म इसलोक और परलोक में सेवन करने के योग्य हैं
महर्षीलोग इसउत्तम आश्रममें निवासकरनेवाले पुरुषोंका कर्म्म पुत्र स्त्रियों
का पोषण और वेदोंकापढ़ना कहते हैं जो यज्ञकरनेका अभ्यास रखनेवाला
ब्राह्मण इसप्रकार बुद्धिके अनुसार गृहस्थ आश्रममें निवास करता है वह
गृहस्थोंकी जीविका को अच्छी तरह शुद्धकरके स्वर्गमें अत्यन्त पवित्रफल
को पाताहै अब ब्रह्मचारीकी कैवल्य मोक्षको वर्णन करते हैं कि अकेला सब
देवताओंको स्मरण करता और सब देवमंत्रों को जपता और एकगुरू में वि-
श्वास करने वाला मैलेवस्त्र धारण करने वाला ब्रह्मचारी सदैव व्रत करनेवाला
दीक्षावान् जितेन्द्रिय वेदान्तशास्त्र के विचारकरनेके योग्य ध्यान को करता
गुरू के कुलमें निवासकरे गुरुसेवा परायण होकर छः कर्मों से निवृत्तहोजाय
उन में प्रवृत्त न होजावे और दण्ड क्रिया से युक्त आचरण नहींकरे शत्रुओं
को न सेवे यह ब्रह्मचारी का आश्रमपद इच्छाकिया जाता है २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणि राजधर्मेएकषष्टितमोऽध्यायः ६१ ॥

# बासठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हे पितामह आप मुझसे वह सब धर्म्म वर्णन कीजिये
जो कल्याणरूप सुखद उत्तमफल के दाता हिंसारहित सब के प्रिय सुगम
रीतिवाले मुझ सरीके राजाको सुख के देनेवाले हों भीष्मजीबोले कि ब्राह्म-
ण के चार आश्रमकहे उनको तीनवर्ण नहीं करसक्ते हे राजा बहुत से कर्म्म
ऐसे कहे जो राजासेही सम्बन्ध रखते हैं वह स्वर्ग के दाता हैं तेरेप्रश्न के
अनुसार यह धर्म्म हिंसा युक्तनहीं है वह सब बुद्धि के अनुसार क्षत्रीधर्म में
नियत हैं जो निर्बुद्धी पुरुष ब्राह्मणहोकर क्षत्री वैश्य शूद्रोंके कर्म करता है
वह इससंसार में निन्दितहोकर परलोक में नरक भोगकरता है और हेराजा
इस लोकमें दास, कुत्ता, भेड़ियाआदि जो पशुओं के नामनियत हैं वही
नाम उस ब्राह्मण के होते हैं जो अपनेकर्मों को त्यागकरदेता है चारों आ-
श्रमों में चपलतासे रहित सबधर्मों में प्रवृत्त चित्तके जीतनेवाले ब्राह्मण के
छःकर्म हैं उनकर्मों के करनेवाले ब्राह्मण ब्रह्मरूप हैं ब्राह्मण अपने कर्मों
को छोड़कर छोटेधर्म्मों में क्यों प्रीति करता है यह संस्कार का हेतु
कहते हैं जो पुरुष जिसनिजदशा में जिसदेश और काल में जिसफल की
इच्छासे जो बुराभला कर्म्म करता है वह लोभ कर्म्मके फलसे और बहुतादिन
के अभ्यास से सगुणब्रह्मको पाताहै अर्थात् यहभी निन्दित नहीं है हे राजा

सुम ब्याजलेना खेती करना व्यापार शिकार से जीविका करना और इन सब से बढ़ा बेदपाठ को जानने के योग्यहो अभ्यास से कर्म्म स्वीकारहोते हैं फिर उत्तमकर्म्म का अभ्यासनहीं करते हैं और यह शंकाकरके कहते हैं कि कालसे प्रकट होनेवाला पुरुष पिछले संस्कार और काल की गति से चलायमान होता है इसीसे स्वाधीन होकर उत्तम मध्यम निकृष्ट कर्म्मोंको करता है पिछले पुण्यपापदेह की उत्पत्ति में प्रधान और यहलोक अपने प्रिय कर्म्म में श्रद्धा प्रीति रखनेवाला है और जीवात्मा प्रवृत्तहै वा स्वतन्त्रहै इसी कारण शास्त्र में आज्ञानहीं कियेगये ११ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मे द्विषष्टितमोऽध्यायः ६२ ॥

# तिरसठवां अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि धनुष का खैंचना शत्रुकामारना खेती व्यापार पशुपालना धन इत्यादिके लिये दूसरेकी सेवाकरना यह कर्म्म ब्राह्मणों के करने के योग्यनहीं हैं ज्ञानी गृहस्थी ब्राह्मण को छःब्रह्मकर्म अर्थात् प्राणायाम आदि सेवनकरनेके योग्य हैं सबकर्मों से निवृत्त ब्राह्मण का कर्म्म बनवास उत्तम कहाजाता है राजाकी नौकरी खेती करना व्यापार से जीवन करना कुटिलता परस्त्रीगमन और ब्याज की जीविका करना इनसबबातों को अत्यन्त त्यागकरे जो ब्राह्मण दुराचारी धर्म्मोंसे पृथक् वृषलीपति अर्थात् बिना बिवाही स्त्री का पति निर्दय मनुष्यकी देहकानौकर अपने कर्म्म का त्यागने वाला है वह शूद्रहोता है वेदोंको पढ़े वा न पढ़े तौभी शूद्रोंके समान है वह भी दासोंके समान भोजन करानेके योग्य है यहसब शूद्रके समान होते हैं इनको देवकार्य्य में त्यागकरे उस ब्राह्मण में दियेहुये हव्य कव्य और सब दान न देने के बराबर हैं जोकि बिनामर्य्याद अपवित्र निर्दय चलन और हिंसा करनेवाला अपने धर्म्म कर्म्म का त्यागनेवाला हो इसकारण ब्राह्मण का शान्त स्वभाव पवित्रता और शुद्धापन भी नियतकिया इसी प्रकार पहले समय में ब्रह्माजी ने ब्राह्मण के सब आश्रम पैदाकिये जो जितेन्द्रिय यज्ञमें अमृत का भोजन करने वाला सबका प्रिय दयावान् क्षमायुक्त निर्लोभ सरल मृदुचित्त हिंसारहित संतोषी और सहनशील हो वही ब्राह्मण है दूसरा पापकर्म्म करनेवाला नहीं हेराजा इच्छायुक्त धर्म्म सब जीव और क्षत्री वैश्य शूद्र में रक्षित रहतेहैं इसकारण विष्णुजी वर्णों को शान्ति धर्म्म में अप्रवृत्त मानकर उनको नहीं चाहते तब उनमें जो हानिहोतीहै वह कहते हैं लोकमें सबजीवों को सुख आदि न होवे और चारों वर्णका धर्म्म और वेदवचन भी नहींहोयँ सब यज्ञ कर्मादि क्रियानष्टहोजायँ और सब आश्रमी न होंय

क्योंकि यह सब विष्णुही की कृपा से होतेहैं जो राजा तीनों वर्णों के आश्रम का सेवन किया चाहो तो हे राजा चारों आश्रम में देखे हुये उनधर्म्मों को सुनो कि वेदान्तमें अधिकार न होने से पुराणों के द्वारा आत्माको सुनने की इच्छासे देह के बलके अनुसार तीनोंवर्णोंकी सेवाकरनेवाले संततिवान् राजाकी आज्ञापाके और आचारनिष्ठा में तीनों वर्णोंके समान दश धर्मोंके प्राप्त करने वाले अर्थात् योगधर्मों के जाननेवाले शूद्रके सब आश्रम नियत हैं एकशान्तिदान्ति कल्याण गुणको त्यागकर उसधर्मचारी शूद्रका अन्तमें भिक्षाधर्म्म कहा इसीप्रकार वैश्य और क्षत्रीका भी भिक्षाकर्म्म कहा है कर्म्मसे निवृत्त वृद्धराजा के कामोंमें परिश्रम करने वाला राजाकी आज्ञा से वैश्य संन्यास आश्रम को धारणकरे इससे हे युधिष्ठिर राजा भी धर्मसे वेदोंको और राजशास्त्रोंको पढ़कर सन्तति को उत्पन्न करके यज्ञमें अमृतको भोजन करके धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन कर राजसूय अश्वमेध आदि अनेकयज्ञों को बुद्धिके अनुसार करके ब्राह्मणोंको दक्षिणादे के युद्धमें थोड़ी या बहुत बिजय को पाकर प्रजापोषण करने वाले पुत्रको या दूसरे गोत्रके उत्तम क्षत्री के पुत्रको राज्यपर नियत करके बिचारयुक्त बुद्धिके अनुसार पितृयज्ञों के द्वारा पित्रों को अच्छेप्रकार से पूजकर यज्ञोंसे देवताओं को और वेदों से ऋषियों को प्रसन्नकर अन्तावस्था में जो दूसरे आश्रम को चाहे वह क्रम से एक आश्रम से दूसरे आश्रमों को प्राप्त करके सिद्धी को पाता है वह राजर्षिभाव से भिक्षाकरे और सेवासे न करे तो वह गृहस्थधर्म्म से जुदाभी आनन्दपूर्व्वक भिक्षा करे यहतीनों का सदैव कर्म नहीं है यही बृत्तान्त चारों आश्रमियोंकाहै अपने धर्म्म पर चलने वाले मनुष्यों का जो धर्म लोकमें उत्तमहै वह क्षत्रियों की भुजा से संबंध रखताहै तीनोंवर्ण और आश्रमियोंके सब धर्म्म उपधर्म्मों समेत राजा के धर्म्म से प्रकटहोते हैं इसको वेद में कहाहुआ जानताहूं जैसे कि सब जीवों के चरण हाथी के पैरमें छिप जाते हैं इसीप्रकार सब धर्म्मों को राजधर्मों में अन्तर्गत जानो धर्म के जानन वाले दूसरे धर्मों को अल्प फल देनेवाला कहते हैं उत्तम पुरुषों ने क्षत्रीधर्मको बड़ा रक्षाका स्थान और महाकल्याण रूप है राजधर्मको श्रेष्ठ मानने वाले सब धर्म और वर्ण पोषणकर्त्ता जानते हैं राजाको धर्मरक्षा करनेसे सब धर्म्मों का छठाभाग मिलताहै दण्डनीतिके नष्टहोनेपर तीनोंवेद डूबजाते हैं और सब बड़ेबड़े धर्म्म भी नष्टहोजाते हैं और आश्रमों के सब धर्म्मजाते रहतेहैं सबत्यागों के छठेभागको लेताहै इससे राजा भी त्यागी होता है सबदीक्षा राजधर्म्मोंमें कहीं और सब बिद्या भी राजधर्म्मों में संयुक्त हैं और सबलोक भी राजधर्म्महीं में हैं जैसे कि नीचों के हाथों से मारेहुये मृग आदि

जीव उनघातकों के शास्त्रोक्त धर्म्म के नाशकारकहोते हैं इसी प्रकार राजध-
र्म्मों से जुदे सब धर्म्म हैं चणक बुद्धिलोग अपने धर्म्म का आदर नहीं करते
हैं इसकारण राजधर्म्महीं उत्तम है ॥ ३० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३ ॥

# चौंसठवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि चारों आश्रमोंके और संन्यासियों के लौकिक वैदिक
धर्म क्षत्री धर्ममें वर्त्तमान हैं क्षत्री धर्मके अच्छे प्रकार नियत न होनेसे सब
संसारी जीव निराशहोजाते हैं आश्रमवासियों का गुप्तधर्म्म बहुत द्वारवाला
है उस सनातन धर्म्मके स्वरूपको दूसरे मनुष्य शास्त्रसे विपरीत क्रोधयुक्त
करते हैं वह मनुष्य पवित्र वचनों से लोकके निश्चय के कहनेवाले हैं
और धर्मों के निश्चय और सिद्धान्तों को न जानकर निर्बुद्धीलोग उस-
कर्म को क्रोधमें भरेहुये करते हैं प्रत्यक्ष में बहुतसुखों का करने वाला
आत्माकासाक्षी छल रहित सबका उपकार करनेवाला धर्म्म क्षत्रियों में
वर्त्तमानहै हेयुधिष्ठिर जैसेकि पूर्व्व समयमें गृहस्थाश्रम नैष्ठिक प्रस्थवीती नाम
ब्राह्मणोंका और तीनों वर्णोंका अन्तर्भाव प्रसिद्धहुआ उसीप्रकार राजधर्म्मों
में सब संसार को आचरणोंकेद्वारा नियतमाना है हे राजा जिसप्रकार कि
पहले समय में बहुत से शूरवीर राजा दण्डनीति के लिये उन विष्णुजी के
पासगये जो कि महातेजस्वी सब जीवों के ईश्वर देवता प्रभु नारायण हैं
उससमय में राजालोग अपने हरएक कर्म्म को ध्यान करके कि इन में कौ-
नसा उत्तम है यहसंदेह करके सिद्धान्तके सुनने को विष्णुजी के पासपहुँचे
उसकाल में प्रथम देवतासेमिलहुये साधुगण देवता और अष्टवसु अश्विनी-
कुमार रुद्र विश्वेदेवा मरुद्गण और सिद्धलोग क्षत्रीधर्म्म में प्रवृत्तथे इस
स्थान में धर्म्म अर्थ के निश्चय को तुमसे कहूंगा हेराजा प्राचीन समय में
दानवों से व्याप्त बेमर्याद लोक के होनेपर मान्धाता नाम पराक्रमी राजा
हुआ उस समय उस मान्धाता ने प्रभु के दर्शन करने की इच्छा से यज्ञकि-
या और उसने महात्मा विष्णुजी के चरणों में शिर रखकर प्रार्थना करी
तब विष्णुने इन्द्रके रूपमें उसको दर्शनदिया तब अन्य सत्पुरुष राजाओं स-
मेत उसने उनका पूजनकिया तब इन्द्ररूप प्रभुने कहा कि हे धर्म्मधारियों
में उत्तम तू क्याचाहता है जो ऐसे ध्यानसे उस परब्रह्म विष्णुकादर्शनकिया
चाहता है यह विश्वरूपदेवता मुझसे और साक्षात् ब्रह्माजी केभी दर्शन के
योग्यनहीं है और दूसरी इच्छाजो तेरे हृदय में वर्त्तमान है उसकोदूंगा तुम
हीं नरलोकों में राजाहो तुम सत्यता में नियत धर्म्म को श्रेष्ठमाननेवाले जि-

तेन्द्रिय सूर्य्य देवताके उपासक बुद्धिभक्ति और श्रद्धा से उत्तमहो इसमें मैं तुझको तेरे चित्त के प्रिय वरदानको देताहूं मान्धाता बोले कि मैं निस्सन्देह आपको प्रणामोंसे प्रसन्नकरके आदिदेव भगवान्का दर्शन करूंगा धर्म्म की इच्छाकरनेवाला मैं सब अन्य इच्छाओं को त्यागकरके बनजाने की और सत्पुरुषों के देखेहुये सन्मार्ग की इच्छारखताहूं मैंने इस अप्रमेय चत्री धर्मसे लोकोंको प्राप्तकिया और अपनेयशको दृढ़किया और जोयह धर्म आदि देवतासे जारी कियागयाहै इससे उत्तमधर्म करना नहींजानताहूं इन्द्र बोले कि जो क्षत्री राजानहीं हैं और धर्म्ममें प्रवृत्तहैं वह धर्म्मके अंशसे परमगति को नहीं प्राप्तहोते वहकर्म्म निश्चय प्रकट करने के योग्यनहीं है कि जो चत्री धर्म्मआदि देवता से जारी कियागया फिर दूसरे धर्म्म उसके अंग रूप जारी किये बाकी के असंख्य धर्म्म संन्यास धर्म्म के साथ चत्री धर्म्म से पृथक् हैं वह बिनाशी फलवाले उत्पन्न किये अर्थात् उनकाफल करनेही वाले को होता है दूसरे को नहीं होता इसराजधर्म्म में सब धर्म्म बर्त्तमानहैं इसकारण इसधर्मको उत्तम कहते हैं पहले समयमें चत्री धर्मरखने वाले बिष्णुजी ने शत्रुओं [illegible] अपने [illegible] सब देवता और [illegible]स्वी ऋषि मुनियोंकी रक्षाकी जो ध्यानचक्र से बाहर भगवान् सब त्रुओं को न मारते उसदशा में न ब्राह्मणहोते और न लोकआदि के नानेवाले प्रजापतिहोते और न यह धर्म्म न पहला धर्म्महोता जो वह वोत्तम आदिदेव इसपृथ्वीको और सबअसुरों को बिजय न करते उसदशा ब्राह्मणों के नाशहोने से सबवर्ण धर्म और आश्रमों के धर्म्मनहीं होते ह सनातन धर्म सैकड़ों प्रकार से नाशहोकर फिर क्षत्रीधर्म्मके द्वारा बड़ी द्धिको पहुंचा और हरएक यज्ञआदि में धर्म्मजारी हुये इसहेतुसे संसार में त्रीधर्म्म को उत्तम कहते हैं युद्ध में देहकात्याग सब जीवों में दया लोक ज्ञान और ब्याकुल संसार का पोषण और पीड़ित पुरुषों को दुःखसे टाना यह सब राजाओंके चत्रीधर्म में वर्त्तमान हैं राजासे भयभीत होकर ह पुरुष पापको नहीं करते हैं जो कि बे मर्य्याद और काम क्रोधसे भरे ये हैं दूसरे उत्तम लोग सब धर्म्मों में प्रवृत्त श्रेष्ठ आचरणवान् साधुधर्म्म T उपदेश करते हैं राजाओं के राजधर्म्म से पुत्रके समान पोषण कियेहुये व जीव निस्सन्देह लोकमें बिचरते हैं इससे यह चत्री धर्म्म सब धर्म्मोंमें ष्ठ लोकमें उत्तम सनातन अबिनाशी प्राचीन सब स्थानों में जारी और ोक्षकी सीमा है ॥ ३० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मेचतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

# पैंसठवां अध्याय ॥

इन्द्ररूप भगवान् बोले कि ऐसा पराक्रमी सब धर्म्मोंमें प्रवृत्त और सब धर्मों में उत्तम क्षत्री धर्म्म है यह संसार की बृद्धि करने वाला धर्म तुमसरी-खे अधिकारी राजाओं से रक्षाके योग्य है उसके बिपरीति कर्म करने से सं-सार की हानि होती है सब जीवोंपर दया करने वाला राजा खेतीके प्रबन्ध और राजसूय यज्ञ आदिमें अनृत स्नान करना भिक्षा न मांगना अर्थात् संन्यास न लेना सबका पोषण करना इत्यादि बातों को जाने और युद्धमें देहत्यागही को श्रेष्ठ धर्म्ममाने इस निमित्त कि मुनिलोग देहत्यागही को उत्तम कहते हैं जैसे कि आपके नेत्रोंके सामने सदैव राजधर्म्मों में प्रवृत्त राजा लोगोंने देहको त्याग किया परस्परमें दृढ़ता पूर्वक कहते हैं कि आ-श्रम धर्म्मका चाहने वाला ब्रह्मचारी अकेलाक्षत्री बहुतसे शास्त्र और गुरु सेवा समेत प्राचीन धर्म को करे और एकसे अर्थवाले व्यवहार को जारी होने पर युक्तिसे प्रिय अप्रिय बार्त्ताओं को त्यागकरके उसको करे और चा-रों वर्णका धर्म्म नियत करके और उद्योग नियम और परिश्रमसे वर्ण धर्म्मों को पालन करे इसीसे सब धर्म्मों में प्रवृत्त क्षत्री धर्म्मको सब आश्रम धर्म्मों से श्रेष्ठ धर्म्म कहा जो वर्ण अपने २ धर्म्मको नहीं करते हैं और उनधर्म्मों को बिपरीत अर्थवाला कहते हैं उन मनुष्यों को वे मर्याद और सदैवधन के संचयमें प्रवृत्त पशुओं के समान जानो जो कि धनके व्ययसे नीति को जारी करनाहै इस हेतुसे भी क्षत्रीधर्म्म अन्य आश्रम धर्म्मों से अधिक क-ल्याणकारी है त्रिवेदी ब्राह्मणों के यज्ञ आदिधर्म्म और अन्य ब्राह्मणों के जो आश्रम धर्म हैं यही ब्राह्मणके उत्तम धर्म कहेजाते हैं दूसरा कर्मकर्त्ता शूद्रके समान शस्त्रसे मारनेके योग्य है हे राजा चारों आश्रमोंके धर्म ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणसे प्राप्त करने के योग्यहैं दूसरा कभी नहीं जानता बिपरीत कर्म कर-ने वाले की यह वृत्ती कल्पनाही गिनीजाती है अर्थात् कर्मसे धर्मकी वृद्धि होती है जैसा धर्म है वैसाही वह भी है जो वेदपाठी ब्राह्मण बिपरीत कर्म्म करता है वह प्रतिष्ठा करने के योग्य नहीं है अपने कर्म को न करने से वह ब्राह्मण बिश्वासके योग्य नहीं होता यह धर्म सब धर्मोंमें करने के योग्य है और क्षत्रियोंसे इसकी वृद्धिहोनी योग्यहै इस कारण राजधर्म उत्तमहै न दूसरे धर्म कि जिनमें बीरबड़ा है वहवीर धर्म मुझको भी स्वीकृत है मान्धाता बोला कि किरात, गांधार, चीना, शबर, बर्बर शक, तुषार, कंक, पल्हव, अन्ध्र मद्रक पौंड्र, पुलिन्द, रमठ, काम्बोज और ब्राह्मण क्षत्रीसे उत्पन्न होने वाले और वैश्यशूद्र मनुष्य आदि सब देशके वासी कैसे धर्मोंको करेंगे और मुझ

से चोर राजासे सब मनुष्य कैसे धर्मपर नियत करने के योग्यहैं सो हे भगवन् मैं यह सुना चाहता हूं उसको मुझसे कहिये हे देवेश्वर तुम क्षत्रियोंके बान्धव रूपहो इन्द्र बोले कि सब चोर जातोंको पितामाता की सेवा करना योग्य है उसी प्रकार आचार्य गुरू और आश्रमबासियोंकी सेवा करनी चाहिये सब चोरजातों से राजाकी भी सेवा करनी योग्यहै वेदधर्म यज्ञक्रिया आदि भी उनका धर्म कहाजाता है इसी प्रकार पितृ यज्ञ कूप प्रपा और समयके अनुसार सदैव ब्राह्मणों को दानदेना अहिंसा, सत्यता, क्रोधत्याग, आजीविका और बिभाग की रक्षा पुत्र और स्त्रियोंका पोषण पाकर शत्रुता न करना और ऐश्वर्य चाहने वालों को सब यज्ञोंकी दक्षिणा देना चाहिये सब चोरजातों की ओरसे धनरूप पवित्र यज्ञदेने के योग्यहै हे निष्पाप मान्धाता प्राचीन समयमें इस प्रकारसे ऐसे २ कर्म नियत किये वह यहां सब लोक को करने के योग्य हैं मान्धाता बोले कि नरलोक में सबवर्णोंमें चोर दृष्टिआते हैं चारोंआश्रमों में आश्रम के [illegible] हैं इसमें[illegible]कि दण्ड नीति के नाशहोने और राजधर्म के दूरकरने से राजाकी निर्बुद्धिता और [illegible] से जीव अचेत होजाते हैं इस सतयुग के समाप्त होनेपर भिक्षा मांगने वाले उसी प्रकार ब्रह्मचर्य आदिका चिह्न रखने वाले और आश्रमों के कल्पना करने वाले असंख्य होंगे और पुराण और धर्मोंकी परमगतिको न सुनने वाले काम क्रोधसे चलायमान पुरुष कुमार्ग को पावेंगे जब महात्माओं की दण्डनीति से पापदूर होता है तब उत्तमसनातन सद्धर्म चलायमान नहीं होता है जो पुरुषलोकके गुरू राजाका अपमान करता है उसको दान होमश्राद्ध आदिका कभीफल नहींहोता मनुष्यों के स्वामीसनातन देवता रूप धर्म्मनिष्ठ राजाका देवता भी अपमान नहीं करते हैं भगवान् प्रजापति जीने सब जगत् को उत्पन्नकिया और धर्म्मोंकी प्रवृत्ति निवृत्ति के लिये क्षत्रीकुल को पैदा किया है जो बुद्धिसे जारी होनेवाले धर्म्मके फल को स्मरण करता है वह मेरा माननीय और पूज्य है उसमें क्षत्री धर्म्म वर्तमान है भीष्मजी बोले कि वह भगवान् प्रभु मरुद्गणों से घिरेहुये ऐसाकह कर अपने भवन को गये हे निष्पाप प्राचीन समय में इस श्रेष्ठ प्रकार से किये हुये धर्मके जारीहोने से बुद्धिमान् और बहुत शास्त्रों का जानने वाला कौनपुरुष क्षत्रीधर्म का अपमान करसक्ताथा अन्याय से प्रवृत्त और निवृत्त होनेवाले बीचही में ऐसे नाशको प्राप्तहोते हैं जैसे कि मार्ग में अन्धेपुरुष दुःखकोपाते हैं हेपुरुषोत्तम आदि में जारीहोने वाले पिछले पुरुषोंका रक्षास्थान धर्म्मरूप कर्म्मकरो और मैं तुमको अच्छेप्रकार जानताहूं कि तुम सबप्रकारसे समर्थ हो ३५॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ६५॥

# छासठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि आपने जो मनुके पुत्रोंके चारों आश्रम कहे इनआश्रमों के आशय को मुझसे वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर यहां साधुओं के प्रिय सबधर्म्म तुमको मालूमहैं और जोतुम हृदय आकाश में वर्त्तमान ब्राह्मणोंसे सम्बन्ध रखने वाले धर्मको पूछते हो उसको समझो कि साधु आचारसे संयुक्त चारों आश्रमियों के सब धर्म राजधर्मों में वर्त्तमानहोते हैं, दण्डनीति के साथइच्छा और शत्रुतासे रहित सब जीवों में समदर्शी राजाको वह ब्रह्मलोक प्राप्तहोता है जो कि संन्यास आदि के द्वारा प्राप्त होताहै जो ब्रह्मज्ञान दानयुद्ध पोषणआदिको जानताहै उसशास्त्रवृत्ती पण्डित राजा का गृहस्थ आश्रमही उत्तम होता है और सदैव विभागके द्वारा सब ओर से पूजनके योग्य पुरुषों को पूजतेहुये राजाको वह लोक प्राप्त होताहै जो ब्रह्मचारियों को ब्रह्मज्ञान से मिलताहै और शरणागत संबन्धी मित्रऔर जातवालों का पोषण करने वाला राजा वहलोक पाता है जो दीक्षासेलोगोंको प्राप्तहोताहै और जो उत्तमपुरुष आश्रमियों में श्रेष्ठ हैं उनका सत्कार करने वाले राजाको वानप्रस्थ के प्राप्त योग्य स्थानकी प्राप्ति होती है और नित्यकर्म्म पितृयज्ञ भूतयज्ञ नरयज्ञ इन उत्तम यज्ञों के करनेवाले राजा को भी वानप्रस्थवाला ही स्थान मिलता है और जीवों को भाग और अतिथियोंका पूजन और देवयज्ञों से भी पूर्व्वोक्त स्थानकी प्राप्तिहोती है और अच्छे पुरुषों की रक्षा के लिये शत्रुके देशों के मर्दन करने वाले राजाको भी वही वानप्रस्थ वाला लोक मिलता है और सब जीव और अपने देश की पूरी रक्षा करने से दीक्षासे ब्रह्मलोकका प्राप्त करनेवाला संन्यास आश्रमधर्म प्राप्तहोता है और सदैव वेदपढ़ना शान्त और श्रेष्ठपुरुषोंका पूजन उपाध्यायकी सेवा यहभी ब्रह्म आश्रमको देते हैं और सर्व्वदा दिनको धर्मपूर्व्वक जप करनेवाले और देवपूजन न करनेवाले राजाको धर्म्म आश्रमपद मिलताहै और सबजीवोंपर दया करने वाले मृदुचित्तवाले राजा को सर्व्वावस्थ पद मिलताहै और सबदशामें बालक और वृद्धोंपर दयाकरने से भी सर्व्वावस्थ पद प्राप्तहोता है और हठसे कर्म्म करनेवाले जीवोंमेंसे शरणागतोंकी रक्षा और बुद्धिके अनुसार पूजन भी करता गृहस्थ आश्रम में निवासकरे और सब जड़ चैतन्य जीवोंकीरक्षा और बुद्धिके अनुसार पूजक होकर भी गृहस्थाश्रममें निवासकरे और भाई बेटेपोतों की स्त्रियोंपर अवस्था के विचारसे शासना और कृपा करना गृहस्थाश्रमका तपहै और ज्ञानी और पूजन के योग्यसाधुओंकी सेवा और पालन से भी गृहस्थाश्रम पद होताहै

और जो राजा अपने आश्रम में वर्त्तमान और घरमें रहनेवाले जीवों को भोजनकेद्वारा अपने वशीभूत करता है वहभी गृहस्थाश्रम पदहोता है जो पुरुष ईश्वरके रचेहुये धर्म्ममें बुद्धिके अनुसार वर्त्तमान है वह सब आश्रमोंके शुद्धफलको पाता है और जिसपुरुष में सदैवगुण नाशको नहीं पातेहैं उस आश्रमीको भी नरोंमें श्रेष्ठ कहते हैं और जो राजा स्थान कुल अवस्था आदिके विचारसे सबकी प्रतिष्ठा करता है वह सब आश्रमों में निवास करता है और जो राजा राज्य देशकुल धर्म्मोंकी रक्षाकरता है वह सर्वाश्रमी होता है और समय पर जीवोंके ऐश्वर्य और भेंटोंको करता है वह साधुआश्रममें निवास करता है और जो दशधर्म को भी न जाननेवाला राजा सब लोकों के धर्म को विचारताहै वह भी आश्रमी होताहै और जो धर्म्मज्ञ पुरुष लोकमें धर्मको करते हैं वह जिस राजाके राज्य में रक्षाकिये हुये हैं वह राजाभी धर्मकाभाग पाता है और जो राजा धर्मको उत्तम माननेवाले धर्मज्ञ पुरुषों की रक्षा नहीं करते हैं वह उनके पापको भोगते हैं जो पुरुषइसलोक में राजाओं के सहायक होयँ वह सबभी दूसरेके कियेहुये धर्म्म में भागलेने वाले हैं हे पुरुषोत्तम सब आश्रमों में गृहस्थाश्रम को प्रकाशवान् और निर्णयवाला और पवित्र कहा और जो मनुष्य सब जीवोंको आत्मा के समान रखनेवाला दण्ड और क्रोधको त्याग करताहै वह इसलोक और परलोकमें सुख पाताहै और धर्म्मरूप समुद्रमें वर्त्तमान सतोगुणरूप पराक्रम-और धर्मरूप रस्सी बांधने वाली और त्यागरूप हवासे चलनेवाली शीघ्रगामी नौका उसको अच्छेप्रकार से तारती है जब सबसे निवृत्त होता है और जो इसके हृदयमें कामनावर्त्तमान है उसको भी त्यागकरताहै तब ज्ञानी होकर ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है हे राजा तुम शुद्धचित्त हो इससे धर्म को पावोगे वेदपाठका अभ्यास करने वाले शुभकर्मी ब्राह्मण आदि सब लोगों के पोषणका उद्योगकरो और हे राजा जो पुरुष आश्रमों में वर्तमान वनमें धर्म करते हैं उनसे सौगुणापुण्य राजाको प्रजाके पोषणसे होता है हे पाण्डवों में श्रेष्ठ यह अनेक प्रकार से धर्म मैंने तुमसे कहे इससे तुम इस सनातन धर्ममें वर्त्तमान होकर प्रजापालनसेही चारों आश्रम और वर्णोंके धर्मोंको जो कि ब्रह्मके प्राप्त होनेकी सामग्री है उसको प्राप्तहोगे ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेषट्षष्टितमोऽध्यायः ६६ ॥

## अरसठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हे पितामह आपने चारों आश्रम और चारों वर्णोंका धर्मकहा अबदेशके बड़ेधर्मोंको कहो भीष्मजी बोले कि जो राजाका अभि-

षेकहै वही देशका बड़ाकर्म है क्योंकि राजा और सेनाकेबिनाचोर देशको नष्ट करते हैं राजाके बिना देशोंमें धर्म नियत नहीं रहता परस्परमें एक एकको खाजाते हैं राजाके बिना देशको सदैव धिक्कारहै जो राजाको चाहता है वह इन्द्रको चाहता है यहश्रुति है कि ( यथाइन्द्रस्तथानृपः ) अर्थात् जैसा इन्द्रहै वैसाही राजाहै इससे वह पूजनके योग्यहै राजासे रहित देशों में कभी निवास न करना चाहिये क्योंकि राजासे रहित देशमें अग्नि देवता हव्यको नहीं ग्रहण करताहै जो ऐसे देशमें कोई दूसरा राजा इच्छाकरके आवे तो वह पूजा के योग्य कहां से होसक्ता है तात्पर्य यह है कि बिना राजा के देश में पाप के सिवाय कोई धर्म्म नहीं है जो राजा अच्छे प्रकार से विचार करे तो सर्वानन्दहो क्योंकि क्रोधयुक्त पराक्रमी राजा सबनाशकरता है हे राजा जो गौ दुःखसे दूधदेनेवाली होती है वहमहादुःख पाती है और जो सुखसे दूध देती है उसकोपीड़ा नहींदेते हैं जो बिना तपाये लकड़ी अच्छीतरह नव जाती है उसको तपानेकी कोई आवश्यकता नहीं होती और जो लकड़ी आप झुकती है उसको भी नहीं झुकाते इससे हे राजा पराक्रमी को अच्छे प्रकार नमस्कार करै जो बलवान् को नमस्कार करता है वहइन्द्रको नमस्कार करता है इससे ऐश्वर्य चाहनेवाली प्रजाको सदैव राजाकरना अवश्य है जिन्होंकाराजा नहीं है उनका धन और स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई प्रयोजननहीं सिद्ध होता राजासे रहित देशमें पापी पुरुष दूसरेके धन को चुराता है और प्रसन्नरहताहै जब दूसरे मनुष्य उसके धनको हरते हैं तब राजा को चाहताहै तब पापीभी कभी आनन्दको नहीं पाते हैं एकके धनको दो हरतेहैं और दोके धनको दूसरे अन्य लोग हरते हैं और जो दास नहीं है वहदास कियाजाता है और बलसे स्त्रियां हरण की जाती हैं इसी हेतु से देवताओं ने राजाको नियत किया है जो लोकमें पृथ्वीका दण्ड धारण करनेवाला राजा न होय तो अधिक बलवान् निर्बलोंको भक्षण करजायँ जैसे कि जल में मछली मछलियों को खातीहैं पूर्व समय में राजा न रखनेवाले परस्पर भक्षण करने वाले जीव नाशको प्राप्तहुये जैसे कि जलमें बलवान् मछली निर्बल मछली को खाकर नाश करदेती है यह हमने सुना तदनन्तर उन्होंने परस्परमें मिलकर नियम किया यह भी हमने सुना कि जो वचनकी कठोरता और दूसरे की स्त्रीसे भोगकरने का उग्रदण्डहो और जो दूसरे के धनको चुरावे ऐसे प्रकारके मनुष्य हमको त्यागने के योग्य हैं वह सब वर्णोंके बिश्वास के लिये उस प्रकारके परस्पर नियमोंको करके नियमोंमें दृढ़ नहीं हुये तब दुःखसे पीड़ितहो वह जब प्रजाके लोग ब्रह्माजी के पास गये कि हे ईश्वर हमबिना राजाके नाश होजायँगे इससे हमको राजादो

हम ऐश्वर्यवान् होकर उसीकी प्रतिष्ठा करेंगे जो हमारी रक्षाकरेगा तब ब्रह्माजीने मनुजीको आज्ञाकरी मनुजीने उन प्रजाओं को स्वीकार नहीं किया और कहा कि मैं पापकर्म से बहुत डरताहूं राज्यमें बड़े २ दुःख हैं इस से पारहोना कठिन है मुख्यकर बिनलाभ चलने वाले मेरी सन्तानों में वर्त्तमानहैं भीष्मजी बोले कि यह सुनकर प्रजाने मनुजीसे कहाकि भयमतकरो पापकर्त्ता कोही होगा हम पशुओंका और सुवर्णका पचासवांभाग और अनाजका दशवांभाग खजानेकी वृद्धिके लिये तुमकोदेंगे और कन्याओंके विवाहोंमें कर लगने पर सुन्दर रूपवती कन्याओं को देंगे जो आपकीउत्तम सन्तान हैं वह उत्तमशस्त्र और सवारियों समेत आपके पीछे ऐसे चलेंगे जैसे देवतालोग महेन्द्रके पीछे चलते हैं सो तुम पराक्रमी प्रतापी बिजयीराजा हम सब को ऐसे प्रसन्न करोगे जैसे कि राक्षसों को कुबेर प्रसन्नकरताहै राजासे रक्षित होकर प्रजा जिसधर्मको करेगी उसधर्मका चौथाभाग तुमको मिलेगा सो हे राजा उसबड़े धर्म्म से बर्द्धमान सुखसे प्राप्त होनेवाले आप हमसबकी रक्षा उसीप्रकार करो जैसे कि देवताओंकी रक्षा इन्द्रकरता है आप सूर्य के समान तपानेवाले हैं इससे बिजयके निमित्तचलो और शत्रुओं के अहंकारों को नाशकरो और सदैव तुम्हारी विजय होगी तब बड़ीभारी सेनासमेत महाप्रतापी सूर्यसमान तेजस्वी मनुजी वहां से चले और जैसे देवता महेन्द्र की प्रतिष्ठा को देखते हैं उसीतरह उसकी उसप्रतिष्ठाको देखकर सब भयभीत हुये और अपने२ धर्ममें चित्त लगानेलगे फिर वर्षा करनेवाले बादल के समान मनुजी सबओर से पापियों को बिजयकरते और अपने कर्ममें लगाते हुये पृथ्वीपर भ्रमण करनेलगे इसीप्रकार जो मनुष्य पृथ्वीपर ऐश्वर्यको चाहैं वह अवश्य राजाको बनावें और उसकेपास वर्त्तमान होकर जैसे कि शिष्यलोग गुरूको और देवता देवराजको मानते हैं उसीप्रकार वह भी भक्तिपूर्वक उसको नमस्कारकरें अपने मनुष्यों में प्रतिष्ठित मनुष्यको अन्यलोग भी प्रतिष्ठा देतेहैं और अपनेलोगों में अपमान पानेवालोंको दूसरे भी अपमान करते हैं शत्रुओंसे राजाकी पराजयहोना सबका दुःखदायी है इसकारण छत्र सवारी वस्त्र आभूषण और खाने पीनेकी वस्तु और मकानात आसन शय्या आदि राजाको निवेदनकरें जिससे कि वहराजा शुद्धचित्त से आनन्दपूर्वक मन्द मुसक्यान से प्रजा से मीठे वचनकहे और उपकार करनेवाला दृढ़ भक्त विभाग करके भोजन करनेवाला जितेन्द्रिय समानदृष्टा सुन्दर दृष्टि से देखे ३९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेसप्तषष्टितमोऽध्यायः ६७ ॥

---

# अरसठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने मनुष्यों के स्वामी देवतारूप राजाको क्याकहा उसे आप कहिये भीष्मजी बोले हे राजा इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसको कौशिकी राजा बसुमनाने बृहस्पतिजी से पूछाथा कि हे महाज्ञानी बृहस्पतिजी जीव कैसे बढ़ते और कैसे नाशहोते हैं और किसके पूजन से अविनाशी सुखको पावें यह सुनकर बृहस्पतिजी ने कहा कि हे महाज्ञानी लोककाधर्म राजाको मूलरखनेवाला दृष्टिपड़ता है प्रजालोग राजाके भयसे परस्पर में भक्षण नहीं करते हैं राजा सबसंसार के कुकर्मी लोगों को पवित्र करता है और पवित्र करके शोभायमान होता है जैसे कि चन्द्रमा और सूर्य्य के उदय न होनेपर परस्पर में न देखने वाले जीव अन्धतामिश्र नाम नरक में गोतेखाते हैं और जैसे थोड़ेजलमें मछलियां और बधिक से स्वच्छन्द बिहार करनेवाले पत्ती भयभीत रहते हैं उसीप्रकार श्रेष्ठ दण्ड से प्रजाभी भयभीत होकर अधर्म्मों से बचीरहती हैं इससे बिनाराजा के प्रजा नाशहोजातीहै जैसे कि ग्वालसे रहित पशुहोते हैं और पराक्रमी अल्प पराक्रमीकी स्त्री को हरण करते हैं और धनकी रक्षाकरने वालों को मारते हैं जोराजा रक्षा नहींकरे तो इस लोकमें यह न होगा कि यह मेरास्थान या स्त्री या पुत्र है अर्थात् धनस्त्री पुत्र अपने नहीं कहसक्ता और सबओर से धन कानाशहोता है जब कि राजा रक्षा नहीं करता है तो पापीलोग अकस्मात सवारी बस्त्रभूषण और अनेक प्रकारके रत्नोंको हरण करते हैं जब रक्षाराजा की न हो तो बहुधा धर्म करनेवालों पर बहुतसे शस्त्रचलाये जाते हैं और अधर्म मचजाता है और जो राजाकी श्रेष्ठ रक्षा न होय तो वृद्ध मातापिता आचार्य अतिथि और गुरू इत्यादि को कष्टदेकर मारते हैं और सदैव धनवानोंको दुःख और बन्धन और मरणहोताहै और इसबातको कोई प्रश्नकर सके कि यह धनस्थानआदि पदार्थ हमारा है बिना काल मरते हैं और संसार चोरोंके ही आधीन होकर घोर नरक में गिरता है और योनीका दोष वर्तमान न होवे खेती और व्यापार का मार्ग भी नचले धर्म्म डूबजाय तीनों वेदों का अभाव होजाय और पूरी दक्षिणा वाले यज्ञविधि के अनुसार न हों न बिवाह समाज आदि हो बैल गौओंमें भोग न करें और मनुष्य दही को न बिलोवें और अहीरों की गाय नाश होजायँ भयभीत व्याकुल हृदय और हाहाकाररूप अचेतहो संसारका शीघ्रही नाशहोजाय और मारेभयके कोई राजा स्वयम्बर भी न करे तपस्वी और विद्या ब्रतधारी ब्राह्मण वेदोंको न पढ़ें

और अत्यन्त दुःखी होकर मनुष्य धर्म के स्नानादिकों को भी न करसकें और चोरोंको निर्भयता होजाय और हाथोंहाथ चोरीकरें और सबमर्यादा टूटजायँ और भयसे पीड़ित होकर सबदेश भागजाय अनीति जारी हों और संसार वर्ण-संकर होजाय और सब देशों में दुर्भिक्ष पड़े और जब मनुष्य राजासे रक्षितहोकर चारों ओरसे निर्भयहोते हैं तब इच्छा पूर्वक अपने द्वारोंको खोल २ सोते हैं जो धार्मिक राजा पृथ्वी की रक्षा अच्छे प्रकार से नहीं करता है तब कोई किसी की घुड़की को नहींसहताहै तो तमाचा कब सहैगा जब कि राजाकी अच्छीरक्षा होती है तब सबस्त्रियां भूषणों से भूषित पुरुषों से अरक्षितभी निर्भयमार्ग में चलती हैं और मनुष्य धर्म्म को करते हिंसा नहीं करते और एक दूसरेपर कृपा करताहै तीनों वर्ण पृथक् २ बुद्धिके अनुसार महायज्ञों से पूजन करते हैं और परिश्रम करके विद्याको पढ़ते हैं यह लोक जीविका रूप जड़रखताहै और वेदके लिखे हुये कर्म जोकि वर्षाआदिकें कारण हैं धारण किये जाते हैं जब राजा बड़े बलसे प्रजा के श्रेष्ठभार को लेकर उसकी रक्षा करताहै तब संसार प्रसन्न होताहै और उसके नाशसे चारोंओर जीवोंका भी नाशहोताहै और ऐश्वर्य में ऐश्वर्य होवे तो कौन उसकी प्रतिष्ठा न करे जो पुरुष राजाके प्यारे हित में नियत होता है तो संसारमें भय उत्पन्न करने वाला राजाभी उसपुरुषका बोझा धारणकरता है और दोनों लोकों को विजयकरने वाला है जो पुरुष चित्तसेभी उसके पापको विचारे वह निस्सन्देह इसलोक में दुःखभोगकर अन्तमें नरकपाता है राजाकभी अपमान के योग्यनहीं है क्योंकि वह मनुष्योंका बड़ा देवता नररूप में वर्त्तमान है कि सदैव समय के अनुसार पांचरूपको धारण करता है अर्थात् सूर्य, अग्नि, मृत्यु, कुबेर और यमराजभी होताहै जब छलाहुआराजा पापियों को सबकेसन्मुख उग्रतेज से भस्मकरता है तब अग्निरूप होताहै और जब दूतकेद्वारा राजासबजीवों को देखता है और मंगलमनाकर चलता है तब सूर्यरूपहोता है जबक्रोध युक्तहोकर सैकड़ों अपवित्र मनुष्योंको पुत्रपौत्र मंत्रियों समेत मारता है तब मृत्युरूप होता है जब सब अधर्म्मियों को कठिन दण्ड देता है और धर्म्म करने वालोंपर कृपा करता है तब यमराज रूप होताहै जब राजा सहायता करने वालोंको धन की धाराओं से तृप्त करता है और शत्रुता करनेवालों के अनेक प्रकारके रत्नोंको छीनलेता है किसी से लेताहै और किसी को देताहै तब वह कुबेररूप होता है बुद्धिमान् सुगमकर्मी धर्म रूप लोकके चाहने वाले और दूसरेके गुण में दोष न लगाने वाले मनुष्य को इस ईश्वर स्वरूप राजाकी निन्दा न करनी चाहिये पुत्र भाई अथवा समान अवस्था वाला यद्यपि आत्माकी बराबर हैं वे भी राजा की निन्दा करके सुखको नहीं पाते हैं वायुको सारथी रखने

वाला अग्नि चाहे कुछ भस्म करने से बाकीभी छोड़े परन्तु राजासे विरोधी का चिह्नभी नहीं रहता उसराजा की रक्षाके योग्य वस्तुओं को मनुष्य दूरसे-ही त्यागकरे और राज्य धन हरणसे ऐसा डरे जैसे कि मृत्युसे डरते हैं क्यों कि राज्य धन के छूने से ऐसे नाश होजाता है जैसे कि फन्दे के छूतेही मृग मरजाता है इसलोक में बुद्धिमान् मनुष्य राजधन को अपने धनके समान रक्षा में रक्खे राजधनके चुराने वाले महाघोर नरकमें पड़ते हैं भोज, विराट्, सम्राट्, क्षत्री, पृथ्वीनाथ, मनुष्य रक्षक जो राजा इनशब्दों से विशेषण अर्थात् प्रशंसा किया जाताहै उसके पूजनको कौन योग्य नहींहै इससे ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् मनुष्य राजाकी शरणमें रहै राजा ऐसे मंत्रीको पारितोषिक आदि देकर प्रसन्न करे जोकि उपकारी ज्ञानीकुलीन दृढ़भक्ति रखनेवाला जितेन्द्रिय धर्म्मात्मा और स्थिर स्वभावहो राजा मनुष्यकी बुद्धिसे प्रशंसा करता है और दुर्बल भी करदेता है इससे राजाके अपराधी को कहां सुखहै और अपने आज्ञाकारी को राजासुखी करता है प्रजालोगों की हृदयसे प्रतिष्ठा उत्तम और सुखरूपहोतीहै मनुष्य राजाकेपास शरणागत होकर इसलोक परलोक दोनों में सुखीहोते हैं और बड़ा यशस्वी राजाभी समदर्शी भाव सत्यता प्रसन्नता आदिसे पृथ्वीपर आज्ञाओं को और बड़े २ यज्ञोंको करके स्वर्ग में सनातन स्थान को पाताहै ऐसे बृहस्पतिजी के समझाने से राजावीर कौशली ने बड़ी धर्म्मनीति से प्रजाका पालन किया ६१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेअष्टषष्टितमोऽध्यायः ६८ ॥

## उनहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले राजासे कौन कर्म्म करना रहजाता है और कैसे देशकी रक्षाके योग्य है और कैसे शत्रुओंको बिजय करे और कैसे दूतोंको नियत करे और कैसे वर्णोंको विश्वास दिलावे और नौकर पुत्र स्त्री आदिको कैसे शिक्षाकरे भीष्मजी बोले कि तुम सावधान होकर राज्यके सम्पूर्ण प्रबन्ध और रीतोंको सुनो पृथुवंशी यादूसरे वंशके राजाको भी प्रारम्भ में जो करने के योग्य है वह कहता हूं कि प्रथम तो राजा अपने चित्तको वशकरे फिर शत्रु बिजय करने के योग्य है चित्तको बिना वशकिये राजा कभी शत्रुओं को बिजयनहीं करसक्ताहै पांचों इन्द्रियोंको स्वाधीन करना यही चित्तका बिजय करनाहै इन्द्रियोंका जीतने वाला राजा सदैव शत्रुओं को पीड़ादे सक्ता है गुल्म अर्थात् रक्षा करनेवाली सेना को गढ़देश नगर वन उपवन आदि स्थानों में नियतकरे और कोष्टपालोंको सबस्थान पुर नगर राज-

महल आदिसब स्थानोंमें जंगीपहरा बनाकर नियतकरे फिर मनुष्योंके ज्ञाता बुद्धिमान् भूखप्यास परिश्रम के सहनशीलों को अज्ञान अन्धे बहरेके रूपमें गूढ़चारी अर्थात् जासूसोंको नियत करे और सावधान राजाको उचित है कि सबमंत्री और नानाप्रकार के मित्र और पुत्रों से भी गुप्त दूतोंको नियत करे ऐसे ही नगर देश और सामन्तनाम राजाओंपर भी गुप्त दूत नियत करने योग्य हैं जिनको कि वह परस्पर में भी न जाने और शत्रुओं के भेजे हुये दूतों को जाने हुये ब्यापारियों की दूकान बिहारस्थान संन्यासियों के समाजों में वन उपवन और पंडितों की सभा में अथवा देशकी कचहरी राजसभा और बड़े घरोंपर नियत करे ऐसी सावधानी से राजा शत्रु के दूत को निश्चय करे प्रथम तो दूतके निश्चय होने पर प्रयोजन सिद्ध होता है जब राजा अपनेको बुद्धिमें कमसमझे तब मन्त्रियों से सलाह करके पराक्रमी राजासे सन्धिकरे जोराजा बड़ेउत्साह युक्त धर्म्मज्ञ और साधुहैं उनकेसाथ धर्म्मात्माराजाको सदैव सन्धिकरनी चाहिये बुद्धिमान् राजा अपनी पराजयहोती जानकर अपराधसे छूटकर कृपासे पोषणहोने वाले और प्रजाके शत्रुरूप सब अपराधियों को मारे जो राजा उपकार और अनुपकार करनेको समर्थ नहीं है और पराजय करनेकी भी सामर्थ्य नहीं है उसप्रकार [illegible] बुद्धिमान् राजा उससमय युद्धके लिये चढ़ाई करके जब कि शत्रु निर्बल और मित्रासरा [illegible] पृथक् दूसरसेयुद्धकरनेवाला और अचेतहो ऐसे और चढ़ाई की जाय कि मालूम न हो और जब कोई वीरपराक्रमी राजासमर्थ और पराक्रमी सेना सहित सुखीहो तब चढ़ाईके समय पहिले नगरमें रक्षाकरने वाली सेनाको सामान सहित नियत करके अपनी चढ़ाईको प्रकट करे और जो वह भी पराक्रमीहै और इसके आधीन नहो उस दशामें सेना और बलपराक्रमसे हीनराजा बलीराजाको बलसेहीन करताहुआ उसकर्ममें प्रवृत्तहोकि बिषके शस्त्र और अग्नि आदिसे उसके देशको व्याकुल करे और उसके मन्त्री वा भाई बंधुओंमें परस्पर कलह मचवावे राज्यके चाहनेवाले बुद्धिमान् राजाको सदैव युद्धत्यागकरना योग्य है बृहस्पतिजीने तीनयुक्तियोंसे राजाके प्रयोजन सिद्धहोनेको कहाहै पंडित राजायुद्ध निवृत्तकर्त्ता कुछ देकर संधिकरना शत्रु और शत्रुओंके मित्रों से विरोधकरवाना इनतीनों युक्तियों के द्वारा जिसप्रयोजनके सिद्धकरने को चाहै वही प्राप्तकरे और ज्ञानीराजा अपनी प्रजासे भी छठाभाग उपजे का उनकीही रक्षाके निमित्त लेवे और दशधर्म्म में प्रवृत्तलोगोंसे जो थोड़ा बहुत राजअंश लेना उचितहै उसको पुरबासियों की रक्षाके लिये बिना बिचारके लेवे जैसे पुत्रदेखने योग्य हैं वैसेही पौत्रभी निस्संदेह देखनेचाहिये

मुकद्दमेके दृष्टिगोचर होनेपर उसमें परिश्रम न करनाचाहिये किन्तु राजा मुकद्दमे के सुनने और योग्यायोग्य जानने के लिये सब अर्थोंके जानने वाले ज्ञानी पुरुषोंको नियतकरे क्योंकि उनमें राज्यनियतहै उन बुद्धिमान् आज्ञाकारी पुरुषों और मंत्रियोंको सुवर्णकी खान निमकका स्थान अनाजकी मण्डी और रुईधान नदीकेपुल आदिस्थानोंपर उनकी आमदखर्च विचारनेके वास्ते नियत करे सदैव अच्छेप्रकार दण्डका धारण करने वाला राजाधर्म्मको प्राप्त होता है राजाका सदैव दण्डजारी होना पूराधर्म्म कहलाता है और जो राजा वेदवेदांगका जानने वाला पंडित तपस्वी दानयज्ञका अभ्यासीभीहो और व्यवहारलोपकरने वालाहो अर्थात् मुकद्दमे को अस्तव्यस्त करे ऐसे राजाको यश और सुखकी प्राप्ति कैसे होगी जब राजा दूसरे पराक्रमी राजासे पीड़ा मानहोय तब वह बुद्धिमानीसे गढ़मेंरक्षाले मित्रोंको संयुक्तकरके युद्धके व्यवहारोंमें रीतें जारीकरे और सामवेदके विपरीत अर्थोंको विचार करे मार्गमें अहीरोंके गाँवोंको नियतकरे और अन्य गाँवों को उठादे और उनसबकोभी बड़े नगरों के उपनगरोंमें बसावे और जो रक्षाके योग्य दुर्गमस्थान हैं उनमें देशवालोंको बसावे और धनीलोगोंको और सेना के प्रधानोंको बराबर धैर्य्य बँधवावे और शत्रुके खेतोंको आप राजाछीनले और दखलहोने के असंभव होनेपर अग्निसे भस्मकरे खेतोंमें अनाजबोने पर शत्रुके मनुष्योंको अपनी ओर करके उनकेद्वारा खेतोंको छीनले या अपनी सेनाकेद्वारा उनसबका विध्वंसकरे इसी प्रकार नदीकेमार्गपुल आदिको तोड़ डाले सब जलको हटा दे और हटनेके अयोग्य जलको विषयगर्दसे बिगाड़े वर्त्तमान और भविष्यत कालमें सदैव मित्रका कार्य वर्त्तमान होनेपरभी उसको त्याग करके मैदानमें शत्रुके मारनेवाले और विवशशत्रुके पास रहनेवाले राजासे मिलकर निवास करे अर्थात् उससे सांधिकरके उसकी सेना के द्वारा शत्रुओंको अपने देश से दूरकरे राजा सब ओरसे गढ़ोंकेओर पासवृक्षोंको लगावे और सब छोटेवृक्षोंको कटवावे परन्तु चैतनाम बृक्षोंको त्यागकरे उसीप्रकार बहुत बड़े वृक्षों की शाखाओंको कटवावे सबदशामें चैतनामवृक्षोंकी पत्तीको अवश्यगिराना चाहिये तब अच्छे प्रकार से प्रगंजी अर्थात् धुसआदि और आकाश जननी अर्थात् गोलेकेबाहर आनेके छिद्रों को बनवावे और खाईको जलपूरितकर मगर मच्छों से पूरित करे पुर के श्वासलेने के लिये छोटे २ द्वारहों और सब प्रकार से उनकी रक्षाकरे द्वारपर सदैव भारीयंत्र तोप इत्यादि को नियतकरे और शतघ्नियों को अपने आधीन करके आरोपणकरे और काष्ठ इकट्ठाकराने के योग्य है इसीप्रकार कूपों को खुदवावे और पहले बनेहुये कूपोंको साफकरावे और फूस आदि से बननेवाले स्थानों को मृत्तिका से

लिपवावे इसीप्रकार अग्नि के भयसे चैत के महीने में घासआदि को खुदवावे और इकट्ठीकरे और सेना के खाने की वस्तु को रात्रि में पकवावे और अग्निहोत्र के सिवाय दिन में अग्नि न जलावे और कर्म्मारिष्ट शालाओं में अर्थात् लोहार आदिकी दूकानों में आग्नि बड़ीरक्षापूर्वकरहे और घरोंमेंभी दबीहुईअग्नि रहै दिन में जिसकेघर में अग्निबलाईजाय उसको बड़ादण्डहो और पुरकी रक्षाके लिये भी इसीप्रकार प्रघोष अर्थात् मनादी करादे और भिक्षुक, कुम्हार, क्लीव, प्रमत्त, कुशील आदि पुरुषों को देशसे बाहर करदे क्योंकि वह दूसरीदशा में हानिकारकहोंगे और चौतरे आदि अठारह नाम से प्रसिद्ध तीर्थ सभा और बड़े २ मकानों में वर्णों के अनुसार सब के गुप्त देवताओं को नियतकरे और बड़े २ राजमार्ग्गों को बनवावे और जलकीप्याऊ आदि बाजारों में शास्त्र के अनुसार नियतकरे और पात्रस्थान शस्त्रस्थान और सब लड़नेवालों के मकानात् अश्वशाला गजशाला आदि सड़ककीखाई और बाग महल इत्यादिबनवावे और इनस्थानों को ऐसागुप्तरक्खे कि दूसरा मनुष्य कोई न जानसके तेल, चरबी, शहत, घृत, और सब औषधी,कोयले, कुश मूंज, ढाक, जौ, ईंधन और बिषसेभरेहुये बाणोंका ढेरकरावे और सब धनुषआदि शस्त्र, शक्ती, दुधारा, खड्ग, वर्म्म, औषधमूल, फलऔर अच्छे ज्ञाता चारप्रकार के वैद्यों को नौकर रक्खे अर्त्थात् विषका दूरकरने वाला व्रणका अच्छा करनेवाला औररोगोंको जान कर चिकित्सा करनेवाला और कृत्तिआ अर्त्थात् घात आदि से बचाने वाला यह चारप्रकार के वैद्यकहलाते हैं और नट, नर्त्तक, मल्ल और मायावी आदि पुरुषों को बसावे वहसब पुरके उत्तम लोगों को प्रसन्न करें और राजा उनको धनसे मानसे पूजनसे और अनेकप्रकार से प्रसन्न रक्खे और उनको नौकर चाकर पुरवासी अथवा दूसरे राजासेभी शंका होय तौ अपने आधीन करे और दान मान से और अनेक प्रकार के विश्वास से उनका सत्कार करे और शत्रुको ताड़ना करके अथवा मारकर उन से उऋणहोवे यह शास्त्र में कहा है और राजा को सात वस्तु रक्षाके योग्य हैं अपनादेह, मन्त्री, खजाना, मित्र, दण्ड,देश, पुरयह सातोंराजा के अंग हैं इनकी सदैव रक्षा उचित है और जो षाड्गुण्य और त्रिवर्ग को जानता है वह इसपृथ्वी को भोगता है वह छःगुणयह हैं कि सन्धिकरना चढ़ाईकरना शत्रुताकरके वर्त्तमानहोना शत्रुको भयभीत करने के लिये चढ़ाई दिखाकर अपने स्थानहीपर वर्त्तमानरहना दोनोंओर से सन्धि करना इसीप्रकार गढ़ आदि में वर्त्तमान होना अथवा दूसरे किसी महाराज की शरण लेना और त्रिवर्ग कोभी स्वस्थचित्तसे सुनिये आमदनी और खर्च और खज़ाने की वृद्धि इसीप्रकार

धर्म अर्थ काम यह भी श्रेष्ठ त्रिवर्ग समयपर सेवनकरने के योग्य है इसरीति से धर्म्मपूर्व्वक राज्यकरने वाला राजा बहुतकालतक पृथ्वी को भोगता है इसविषय में बृहस्पतिजी ने दोश्लोककहेहैं सो हे श्रीकृष्णजी आपकीजयहो उनकोभी सुनिये कि सबकरने के योग्य कर्म्मों को करके और सुंदररीति से पृथ्वीकापालन और पुरवासियों का पोषणकर परलोक में आनन्द से वर्त्तमानहोता है उस राजाको तप यज्ञादिसे क्या प्रयोजन है जो राजा धर्म्म से प्रजापालन करता है वही सब धर्म्मोंका ज्ञाता है युधिष्ठिरबोले कि दण्डनीति और राजा दोनोंसमान हैं इन में कौन कर्म्मकरता है और किस को सिद्धिप्राप्तहोती है इसको मुझे समझाइये भीष्मजी ने कहा कि दण्डनीति चारोंवर्णोंको अपने धर्म्म में प्रवृत्त करती है और राजासे अच्छेप्रकार जारी होनेसे वह अधर्म्मों से भी रक्षाकरती है चारों वर्णोंकोअपने२कर्म्मोंमें नियतहोने और मर्य्यादा ठीक रहने में औरदण्डनीति के कुशलरहने औरप्रजाके निर्भयरहने से तीनोंवर्ण बुद्धि के अनुसार अपनीदृढ़ बुद्धिमें बड़े २ उद्योग करतेहैं उसीसे मनुष्योंके सुख बने रहते हैं और कालका हेतु राजा या राजाका हेतु कालहै इस में सन्देह मतकरो कि राजाही कालका कारण है क्योंकि जब राजा दण्डनीति में अत्यन्त कर्मकर्ता होताहै तब सतयुगनाम काल उत्पन्नहोताहै उसमें धर्म जारी होताहै और अधर्म नष्टहोता है और किसी वर्णका चित्त अधर्म्म में नहीं जाता है और सबगुणबुद्धि के अनुसार होते हैं सब सुख और ऋतु निर्विघ्न होतीहैं और मनुष्यों के स्वर वर्ण और चित्त शुद्धहोते हैं उसयुग में रोग और अल्पावस्था नहीं होती और स्त्रियों में कुपात्रता नहींदृष्टिआती कोई कृपणनहीं होता और विना परिश्रमपृथ्वी में अन्न बहुत उत्पन्नहोताहै और औषधीफल फूल त्वचा मूल महापराक्रमी होते हैं और अधर्मकालोप होताहै धर्मही व्याप्त होजाताहै इन धर्मों को यज्ञसंबंधी जानों जब राजा दण्डनीति में चौथाभाग दूरकरके तीन भागों को लेताहै तब तृतीय वर्त्तमान होता है और दण्डनीति के उन तीनों भागोंके सम्मुख अधर्म्म का चौथाभाग आकर वर्त्तमान होताहै और खेतीसफल होती है और औषधियां भी उत्पन्न होती हैं और जब राजा दण्डनीति के आधेभाग को छोड़ देता है तब द्वापरनाम युग आजाता है उस समय अधर्म्म का आधाभाग दण्डनीति के आधेभाग के सन्मुख आजाता है तब पृथ्वी में आधा फल अन्न औषधि आदि उत्पन्नहोतेहैं जब राजा दण्डनीति को अत्यन्तही त्याग कर विना विचारे प्रजा को दुःख देताहै तब कलियुग वर्त्तमान होजाताहै कलियुग में बहुत अधर्मियोंके उत्पन्नहोने से कभी धर्म नहीं होताहै सब वर्णोंका चित्त अपने धर्मसे पृथक् होजाताहै और शूद्रलोग भिक्षा से जीव-

न करतेहैं ब्राह्मण सेवासे अपना पोषण करतेहैं धनकी प्राप्ति और उसकी रक्षा दोनों का नाशहोताहै और वैदिककर्म निष्फल होजाते हैं सब ऋतु सुखरहित और रोगों से व्याप्तहोतीहैं मनुष्यों के स्वर देह चित्त म्लानहोजाते हैं और रोगों के कारण मनुष्योंकी अकाल मृत्युहोतीहै और स्त्रियां पापात्मा कुचालिनी होजाती हैं और प्रजा के लोग निर्दय उत्पन्नहोते हैं खंड वृष्टि और खेती कभी फलती कभी नहीं फलतीहै जब राजा दण्डनीति से सावधानहोकर प्रजाको अच्छे प्रकारसे पोषण नहींकिया चाहता है तब सब रसों का नाश होताहै राजाही सतयुग त्रेता द्वापर और कलियुग चारों युगोंका कारणहै सतयुगका जारी करनेवाला राजा अक्षय स्वर्ग भोगता है और त्रेतायुग उत्पन्न करनेवाला स्वर्गको अल्पकाल भोगताहै और द्वापर को पैदाकरनेवाला भागके अनुसार स्वर्ग भोगताहै और कलियुगको जारी करनेवाला महापापोंको भोगताहै अर्थात् बहुत समयतक नरक भोगताहै और प्रजाके पापों में डूबाहुआ महा अपयशको प्राप्तहोता है इससे क्षत्री लोग दण्डनीति को आगे करके अप्राप्तको प्राप्तकरे और प्राप्तकी चारों ओरसे रक्षाकरे अच्छे प्रकारसे जारीकीहुई दण्डनीति माता पिताके समान संसारकी स्थिति और वृद्धिकरनेवाली मर्य्यादारूप होतीहै सो हेराजा यही धर्म्म उत्तमहै और इसीसे सब जीव ऐश्वर्यवान्होते हैं इस कारण हे कुन्तीनन्दन तुम नीतिपूर्व्वक प्रजापालन करो ऐसे आचरणोंसे प्रजाका पालन करनेवाला दुर्गम स्वर्ग को पाता है ६६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्म्मेएकोनसप्ततितमोऽध्यायः ६६ ॥

# सत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे क्षत्री व्यवहारके जानने वाले पितामह किस रीति से कर्म्म करनेवाला सुखपूर्वक दोनों लोकों में उनसुखोंको पावे जोकि भविष्यत काल में आनन्ददायक हों भीष्मजी बोले कि यह छत्तीसगुण छत्तीसही विशेषणों से संयुक्त हैं इन सविशेषणगुणों से युक्त राजा जो २ कार्य करताहै वह सब कल्याणकारी होतेहैं रागद्वेषवर्जित आस्तिक बुद्धिराजा सब धर्मों को प्रीति से करे और परलोक का चिन्तवनकरे लोभ न करे और दयायुक्तहोकर धनको इकट्ठाकरे और धर्म अर्थ संयुक्त इन्द्रियोंको प्रसन्नकरे और उदारता पूर्वक प्यारे वचनकहे और आत्मस्तुतिरहित पात्रापात्रविचार कर पात्रको दानदे नीचोंसे स्नेह न करे और बुद्धिमान्होकर बांधवों से द्वेष न करे थोड़ी जीविका के दूतोंको भ्रमण न करावे और न कभी कष्टदे और नीचपुरुषोंसेन तो अपने गुणकहै और न अपना प्रयोज न वर्णन करे साधुसे

लैनहीं नीचोंकी रक्षा न करे बिना परीक्षा किये दण्ड न दे मंत्र गुप्तरक्खे लोभियों को धन न दे कृतघ्नी लोगोंपर विश्वास न करे अनीर्षु और स्त्रियों का रक्षक शुद्ध दयावान् बहुतसी स्त्रियोंका सेवन न करनेवाला शुद्ध भोजन करे और क्रियावान् पुरुषोंका पूजन और गौओंका पूजन निश्छल होकर करे इसीप्रकार देवताओं को यज्ञादि धर्म्मोंसे प्रसन्न करे और उत्तम लक्ष्मी को चाहै नम्रतापूर्वक ईश्वरकी सेवाकरे बुद्धिमान् और कालका जाननेवाला शत्रुको भी अपराध जाने बिना दण्ड न दे और अपराधी शत्रुओं के मारने में शोच न करे बिना कारण क्रोध न करे कृतघ्नियों पर नम्रता न प्रकट करे जो इसलोकमें कल्याण को चाहतेहो इससे तुम राज्यमें प्रवृत्त होकर इस प्रकारसे कर्म्म करो इसके विपरीत कर्म्म करनेवाला राजा बड़ी बिपत्ति में पड़ता है जो राजा इन सब गुणों से सम्पन्न कर्म्मोंको करता है वह इसलोकमें अनेक ऐश्वर्यों को भोग स्वर्ग में बड़ी प्रतिष्ठा पाताहै यह सबबातें सुनकर राजा युधिष्ठिरने भीष्म जीको प्रणाम करिकै वैसाही किया १४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेसप्ततितमोऽध्यायः ७० ॥

## इकहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह किसप्रकार से प्रजाकी रक्षा करता हुआ राजा चिन्ता से रहित होता है और कैसे धर्म में बिपरीत कर्म्म नहीं करता भीष्मजीने कहा कि हे राजा मैं मिलेहुये सनातन धर्म्म तुमसे कहताहूं क्योंकि धर्म्मोंको ब्योरेवार कहने में अन्त नहीं है तुम धर्म्मनिष्ठ वेदपाठी देव व्रत परायणहो गुणवान् ब्राह्मणों को पूज घरहीमें यज्ञोंको करो और अपने पुरोहितादिको दानदक्षिणा देकर राज्यके कामों को करो और शुद्धभाव से धैर्यभाव में प्रवृत्त बुद्धिके अनुसार राज्य अंश को ले और काम क्रोधको त्याग दे क्योंकि जो राजा काम क्रोधमें प्रवृत्त होकर राज्य के प्रबन्धको करता है वह निर्बुद्धी अपने अर्थ धर्म्मको भी खो बैठता है लोभी और मूर्खोंको काम और अर्थ में नियत मतकरो निर्लोभी बुद्धिमान् पुरुषोंको सब अधिकारों पर नियत करो राज्य के कामों में बिना कुशल काम क्रोधमें भरेहुये मालके महकमे आदिमें अधिकारी होनेवाले मूर्ख बिना बिचार युक्तिके कारण प्रजा को दुखदाई होते हैं खेतीके पवित्र षष्ठांश से और अपराधियों के जुर्माने से और परमठ आदिके महसूल को शास्त्रकी रीतिपर लेनेसे धनका आगमचाहो और जब छठाभाग अन्नादिका लेनेसे प्रजाका बार्षिक ब्यय पूरा न होसके तब आलस्य को त्याग राजनीतिके द्वारा राजा प्रजाके महसूल आदि लेने को माफकरे और इसीप्रकार बुद्धिके अनुसार उनकी जीविका और रक्षाका

भी बिचार करे उसकी प्रजाभी उस धर्मात्मा दानीको अनेक प्रकारसे आनन्द देती है इससे तुम अधर्म और लोभसे धनको मतचाहो जो राजा शास्त्र के अनुसार न चले उसके धर्म्म अर्थका नाश होता है जो धनकी इच्छा रखनेवाला राजा शास्त्रपर दृष्टिनहीं रखता और भूलाहुआ प्रजाको क्लेश देताहै वह अपना मरण आप करता है जैसे कि दूधका चाहने वाला गौके थनको काटे उसको दूध कहांसे मिलसक्ता है उसीप्रकार बिना बिचार के पीड़ा दियाहुआ देशभी अच्छी वृद्धिको नहींपाताहै और जो दूध देनेवाली गौकी उपासना करता है वह सदैव दूध पाता है इसीप्रकार बिचारपूर्वक देश का भोगनेवाला राजाभी फलको पाताहै और बिचार से भोगेहुये सुरक्षित देशकी भी वृद्धि करता है तब खजानेमें धनकी वृद्धि होती है राजासे अच्छे प्रकार सुरक्षित भूमिभी अन्न सुवर्ण रत्न आदि राजाको और प्रजा दोनोंको ऐसे देतीहै जैसे कि तृप्तमाता दूधको देती है इससे हे राजा तुम मालीके समानहो जैसे कि माली उत्तम बृक्षोंकी रक्षा करता है और हानिकारी बृक्षो को निकालता है वैसेही अपनी प्रजाका पालन करो तो सदैव आनन्दपूर्वक रहोगे जो शत्रु पर सेनाकी चढ़ाई करने से तेरे धनका व्यय हो उस दशामें सामनीति के द्वारा ऐसे धनको इकट्ठा करो जो कि ब्राह्मणों के बिशेष दूसरे वर्णोंकाहो ब्राह्मणको धनाढ्य जानकर तू अपने चित्तसे कभी लोभमें प्रवृत्त नहो किन्तु सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मणों को यथायोग्य धन को दो इस प्रकारसे ब्राह्मणों को दानसे प्रसन्न करोगे तो सदैव आनन्द से राज्य भोगोगे और अन्तमें स्वर्गकी भी प्राप्ति होगी ऐसे संपूर्ण धर्माचरणसे प्रजा पालनकरो जिससे कि तुम कभी शोकमें नहीं प्रवृत्त होगे यही प्रजापालन सब धर्मोंमें उत्तम गिना जाताहै प्रजाको भयसे रक्षा नहीं करने वाला राजा एक दिन में जो पाप करता है वह हजार बर्षमें भी उसके पाप से नहीं छूटता और जो राजा धर्मपूर्वक प्रजापालन करता है उसका एक दिनका पुण्य स्वर्ग में दशहजार बर्षतक आनन्द देताहै ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ धर्मोंके करने में जो धर्म्म प्राप्त होताहै वह धर्मपूर्वक प्रजापालन करने वाला राजा एक क्षणमें पाताहै इससे हे युधिष्ठिर तुम बड़ी सावधानी से युक्ति पूर्वक प्रजाका पालन करोगे तो पवित्र फलको पाकर कभी शोक को प्राप्त न होगे और सब लोकोंमें महालक्ष्मी को पाओगे जो राजा नहीं हैं उनके पास ऐसे धर्मोंका प्रकाश नहीं होता इस कारण जो ऐसे धर्म के फलको पावे वही राजा है सो तुम धैर्यवान् होकर देवोंको अमृतसे और सुहृदजनोंको कामनाओं से तृप्तकरो ३३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकसप्ततितमोऽध्यायः ७१ ॥

# बहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजा जो ब्राह्मण सत्पुरुषोंकी रक्षा और असत्पुरुषों को राज्यसे निकलवादे वही राजाको पुरोहित करने के योग्य है इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें पुरूरवा ऐल और वायु का संवाद है पुरूरवा बोले कि ब्राह्मण कहांसे उत्पन्न हुआ और तीनोंवर्ण कहां से पैदाहुये और कौन २ कर्म्मोंसे उत्तमता प्राप्ति होती है वह सब मुझ से वर्णन कीजिये वायु देवता बोले कि हे राजा ब्रह्माजी के मुखसे ब्राह्मण भुजासे क्षत्री जंघासे वैश्य चरणसे शूद्र उत्पन्न हुये सो ब्राह्मण तो संस्कार के द्वारा धर्मोंके समूहोंका रक्षक सबका ईश्वर पृथ्वीपर जन्मलेने वाला है और दण्ड धारण के लिये क्षत्री पृथ्वीकास्वामी और रक्षक उत्पन्न हुआ और धनधान्य की रक्षाके लिये वैश्य और इन तीनों वर्णोंकी सेवाके निमित्त शूद्र उत्पन्न हुआ ऐलबोला कि ब्राह्मण और क्षत्री इन दोनोंमें से यह वसुन्धरा पृथ्वी किसकी होनी चाहिये इसको हे वायु देवता मुझसे कहिये तब वायु बोले कि इसलोक में यह पृथ्वी वेदपाठी ब्राह्मण की है यह धर्मज्ञ पुरुषकहते हैं ब्राह्मण अपने धनको भोगताहै और अपनेही वस्त्रादि को धारण करता है और दान भी अपने ही धनका करता है इससे निश्चय है कि द्विजन्मा ब्राह्मणही सब वर्णोंका गुरू और वृद्ध और उत्तम समझा जाताहै जैसे कि स्त्री पतिके न होने में सन्तातिके लिये देवरको पति करती है यह प्रथमकल्प तुम से कहा और आपत्ति काल में इससे भिन्न होताहै इससे जो कोई स्वर्गको चाहे वह इस धन समेत पृथ्वीको तपस्वी ब्राह्मणको अर्पण करे जो कुलवान् बुद्धिमान् नीतिज्ञ ब्राह्मण अपनी उत्तम बुद्धिसे सब प्रकारकी बातोंकी शिक्षा राजा को करे वह कल्याणकारी है उसके उपदेश कियेहुये धर्म्मोंको जो राजा करता है वह सेवा परायण निरहंकारी क्षत्री धर्म्ममें प्रवृत्त ज्ञानी शुभकर्मी राजा उसी धर्म्मसे बहुत कालतक कीर्त्तिमान् होता है और उससब धर्म्मका भागी राजपुरोहित है और इसी प्रकार सब प्रजाभी राजाकी रक्षा में हैं वह सुन्दर वृत्ति करने वाली प्रजा जिसराजा के राज्यमें धर्म्मोंको करती है उसके पुण्य के चौथेभाग को राजा प्राप्तकरताहै और देवता मनुष्य पितृ गंधर्व उरग राक्षस यह सब यज्ञसेही जीवन करते हैं और बिना राजा के देशमें यज्ञनहीं है इससे इन सब धर्म्म यज्ञोंका मूल राजाही है इसीसे सबकी तृप्ति होतीहै वह राजा गरमी में वायु, जल, छाया आदि से प्रसन्न रहताहै और शीतकाल में अग्नि, वस्त्र और सूर्य्य इनसे सुखपाताहै और चित्त शब्द स्पर्श रस रूप गन्धादि बिषयोंमें रमताहै और भयभीत मनुष्य इन सब

भोगों में आनन्द नहीं प्राप्त करता है इससे जो निर्भयता करने वाला है उस का बड़ा फल है तीनों लोकों में प्राण दान के समान कोई वस्तु नहीं है जैसे इन्द्र और यम राजा हैं वैसे ही धर्म्म भी राजा है राजा बहुत से रूप धारण करता है और राजा ही से यह सब धारण किये हुये हैं २६ ॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिराजधर्मे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ७२ ॥

# तिहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्म जी बोले कि बहुश्रुत और महा प्रभाववान् धर्म्म अर्थ के जानने वाले ब्राह्मण राजा को पुरोहित करने के योग्य हैं जो राजाओं का पुरोहित धर्म्मात्मा और मंत्र का जानने वाला हो और उन का राजा भी उसी प्रकार के गुणों का जाननेवाला हो वहां सब प्रकार से कल्याण होता है वह राजा और पुरोहित दोनों प्रजा को और सब देव पितरोंको और पुत्रादिकोंको वृद्धि करनेवाले हैं वह श्रद्धा पूर्वक अच्छे वेदोक्त धर्म्मों में प्रवृत्त चित्त सुहृद् जनों के सुखदाई और हितकारी हैं प्रजा में ब्राह्मण लोग क्षत्री की प्रतिष्ठा करने से सुख को पाते हैं और जो प्रजा उन दोनों का अपमान करती है तो नष्ट हो जाती है क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्री सब बर्णों के मूल कहे जाते हैं इस स्थान में इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिस में ऐल और कश्यप ऋषि के उत्तर प्रत्युत्तर हैं उसको सुनिये ऐल बोला कि जब ब्रह्मकुल क्षत्री कुल को त्याग करता है ऐसी दशामें सबवर्ण कैसे होजाते हैं और कैसे पोषण कियेजाते और जीवन किसके द्वारा होता है कश्यपजी बोले कि इसलोक में जहां ब्राह्मण और क्षत्री परस्परमें बिरोध रखते हैं वहां क्षत्री का देश नष्टताको प्राप्त होता है फिर जैसे पराक्रम प्रकट होता है वैसेही उसदेशको चोर सेवन करते हैं और उसीप्रकार सन्तलोग भी उनमें रूपधारण करते हैं अर्थात् यह जानते हैं कि यह ब्राह्मणों का अपमान करने वाला म्लेच्छराजा है उन्होंके वेदकी वृद्धिनहीं होती और संतान भी वेद नहींपढ़ते और घरों में कभी लक्ष्मीकी वृद्धिनहींहोती और सबसन्तान मूर्ख होती है और यज्ञादि से रहित म्लेच्छरूप होजाते हैं इससे यहदोनों परस्परमें स्नेह और पोषणके योग्य हैं क्योंकि क्षत्रीकुल ब्रह्मकुलका रक्षास्थानहै इसीप्रकार ब्रह्मकुल क्षत्रियोंका रक्षास्थानहै यह दोनोंकुल सदैवसे प्रतिष्ठवान् हैं जब इनदोनों में स्नेह नहीं होता उसदशामें सब संसार नष्ट होजाताहै और अज्ञानकी फांसीमें फँसताहै औरइस संसाररूपी अथाह समुद्रसे ऐसेपार नहीं उतरसक्ता जैसे कि अथाह समुद्रमें उत्पातमें पड़ीहुई नौकाके चारोंवर्ण महाभयभीत होतेहैं फिरप्रजा नष्टसीहोजाती है रक्षा कियाहुआ ब्राह्मण देशमें सुबर्णकी बर्षाको करता है और

अरक्षित ब्राह्मण अश्रुपात से पापकी बर्षा करताहै जब ब्रह्मचारी ब्राह्मण पढ़ी हुई वेदशाखाओं से रहित चोरोंसे घिराहुआ होताहै और क्षत्री उसकीरक्षा नहींकरता है वहां देवतावृष्टिको संदेहपूर्वक करते हैं अर्थात् बर्षाकाहोना कठिनहोताहै और देशमें मरी और दुर्भिक्षभी प्रवेश करतेहैं और जहांपर पापात्मालोग स्त्री या ब्राह्मण को मारकर प्रशंसा पाते हैं और राजा के सन्मुख भी भयनहींकरते तबक्षात्रियोंको भयप्राप्तहोताहै सो हे ऐल पापियोंके पापकरने से यह राजारूप देवता रुद्ररूप अर्थात् कलिरूप होजाताहै क्योंकि पापीलोग ही पापों से कलियुगको उत्पन्नकरते हैं वह कलि साधु असाधु सबको मारता है ऐल बोला कि राजाका रुद्ररूप कहांसे होता है यह मुझसे कहिये कश्यपजी बोले कि मनुष्यों के हृदय में जो आत्मा अर्थात् जीवात्मा है वही नाशकर्त्ता होता है तब अपने और दूसरेके देहोंको घातकरता है रुद्र उत्पात की बायुके समान है और उसदेवता रूप बादल के तुल्य है अर्थात् जैसेबायु बादलोंको पृथक् २ करदेती है उसीप्रकार काम क्रोध आदि आत्मा को विपरीतदशा में करतेहैं ऐलबोले कि पवन किसीको अलग नहीं करती है और देवता इन्द्र बादलरूप होकर भी बृष्टिनहीं करता परंतु नरलोकों में संयुक्त होकर ऐसागर्भित दृष्टिपड़ता है और कामद्वेषके कारण मरना और विस्मरण होना होता है कश्यपजी बोले कि जैसे एकस्थानकी देदीप्त अग्नि सम्पूर्ण ग्रामको भस्मकरती है उसीप्रकार यह देवता भी बड़ामोह प्रकट करता है इसीसे सबजीव पुण्य पापों में प्रवृत्त होते हैं ऐलबोला कि मुख्यकर पापियों के पाप करने से पुण्य पाप से पृथक् आत्मा को अज्ञानता से दण्डस्पर्श करता है ऐसी दशा में किसकारण से पुण्यकरता है और किसहेतुसे पापनहीं करता अर्थात् शास्त्रोक्तकर्म्म निष्फल नहीं होता कश्यपजी बोले कि अहंकार के साथ आत्माका योग न होने से अहंकारका कियाहुआ पाप नहीं होता और अहंकार में प्रवृत्त होने से पापके समान दण्डस्पर्श करता है जैसे कि सूखे काष्ठके साथ गीलाकाष्ठभी जल जाताहै इससे पापियों से कभी मेल मिलाप न करे ऐल बोला कि पृथ्वी इस लोक में साधु असाधु सब को धारण करती है और सूर्य्य भी साधु असाधुकोई हो सबको तपातेहैं और बायुभी इसी प्रकार सबपर चलती है इसी प्रकार जलभी साधु असाधु सबको पवित्र करता है तात्पर्य्य यह है कि पृथ्वी आदिके समान आत्मा सबसे असंग है फिर अहंकार युक्त रुद्रभाव से आत्माको क्या सम्बन्ध है इससे आत्मा रुद्ररूपहै यह कहनायोग्य नहीं कश्यप जी बोले कि हे राजकुमार इसी प्रकार से वह शुद्धआत्मा रूप दृष्टि गोचर होता है परन्तु परलोक के विषय में ऐसे प्रकारका दर्शन वर्त्तमान नहीं है

उसदशामें जो पुण्य पापको करता है तब देह त्यागने पीछे उन दोनों के रूपमें अन्तर होताहै अर्थात् पुण्यका लोक मधुमान और दिव्य प्रकाशवान सुवर्णरूप ज्योति रखनेवाला और अमृत की नाभिहै उसीमें ब्रह्मचारी लोग देह त्याग करके आनन्द को करतेहैं उसमें जरामृत्युआदि कोई दुःख नहीं है और पाप का लोक कुचाली सदैव दुःख रूप अत्यन्त शोक का कर्त्ता है उस में भूले हुये पापात्मा लोग गिरते हैं और बहुत समय तक अपने को शोचा करतेहैं ब्राह्मण क्षत्रियों के परस्पर बिरोध होने से प्रजाअसह्य दुःखको सहती है ऐसा जानकर राजाको इस लोक में सदैव बिद्यावान् वेदज्ञ ब्राह्मण पुरोहित करना चाहिये उस पुरोहितको नियत करके राज्याभिषेक करे इसलोक में ब्राह्मण धर्म्म से सबसे मुख्य और धर्म्म का मार्ग दिखाने वाला कहा है ब्राह्मण की उत्पत्ति सबसे प्रथम है इससे इनको प्रथम पदकी प्राप्ति है और सब प्रकार पूजन के योग्यहै सब उत्तम पदार्थ उसकी भेंटके योग्यहैं यहबात पराक्रमी राजाभी सदैव करे क्योंकि ब्राह्मण क्षत्री की वृद्धि करता है और क्षत्री से ब्राह्मणभी वृद्धि पाताहै इसी हेतुसे ब्राह्मण क्षत्रियों से सदैव पूजने के योग्यहैं ॥ ३२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मेत्रयस्सप्ततितमोऽध्यायः ७३ ॥

## चौहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि देशका अभीष्ट और रक्षा राजा के आधीन है और राजाका जो अभीष्ट और रक्षाहै वह पुरोहितके आधीन कही जातीहै जिस में प्रजाओं का जो गुप्त भय है उसको ब्राह्मणही दूर करताहै और दृष्टिगोचर भयको राजा अपने भुजबल से दूर करताहै इस कारण संपूर्ण राज्य के लोग आनन्द को प्राप्तहोते हैं इसस्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें राजा मुचुकुन्द और कुबेरजीके प्रश्नोत्तरहैं राजा मुचुकुन्द इस सम्पूर्ण पृथ्वीको विजय करके कुछ इच्छा पूर्वक सेना समेत कुबेरजी के पास गया तब कुबेरने राक्षसों को आज्ञादी कि इस सेनाको मारो तब मुचुकुन्दकी सेनाको राक्षसों ने मारा उस समय अपनी सेना के नष्टहोने पर बिद्यावान मुकुकुन्दने अपने वेदपाठी पुरोहित की निन्दाकी तबतो पुरोहित वशिष्ठजीने अपने तप के प्रभावसे सब राक्षसों को मारडाला और उस राजाके मार्गको भी जाना फिर कुबेरजीने अपनी सेना के मरने पर मुचुकुन्द को दर्शन दिया और यह बचन कहा कि तुमसे पहले राजालोग पुरोहितों के कारण महापराक्रमी थे ऐसा किसीने कर्म नहीं किया जैसा कि तुमने यहां किया निश्चयकरके वह अस्त्रज्ञ पराक्रमी राजालोग आकर मुझ सुखदुःखके स्वामी

की उपासना करतेहैं इससे जो तू पराक्रमी है तो अपने पराक्रमको दिखातुम ब्राह्मणों के पराक्रमसे क्या अधिक कर्म करतेहो तबतो क्रोधयुक्तहोकर मुचुकुन्दने धनके स्वामी कुबेरजीको उत्तर दिया कि ब्रह्माजीने एकस्थान में उत्पन्नहोने वाले ब्रह्मकुल और क्षत्री कुलको उत्पन्न किया वह बिद्या और पराक्रम से भराहुआ संसारकी क्या रक्षा नहींकरे क्योंकि तप और मंत्र बल तो सदैव ब्राह्मणों में बर्त्तमानहै और क्षत्रियोंमें अस्त्र और भुजाबल सदैव बर्त्तमान है दोनों मिलकर प्रजाका पालन करनायोग्य है इससे हे अलिका पुरीके राजा कुबेरजी क्यों मेरीनिन्दा करते हो फिर कुबेरजी ने राजा से और उनके पुरोहित जी से कहा कि मैं ईश्वर के बिना दिये हुये किसी को राज्य नहीं देताहूं और ईश्वरकी इच्छा बिना किसी का राज्य हरता भी नहीं हूं तब मुचुकुन्द ने उत्तर दिया कि हे कुबेर जी मैं भी आप के दियेहुये राज्य को भोगना नहीं चाहता हूं मेरी यहीइच्छाहै कि मैं अपनी भुजाबलसे जीते हुये राज्य को भोगूं भीष्मजी बोले कि ऐसे मुचुकुन्द के निर्भय बचनों को सुनकर कुबेरने बड़ा आश्चर्य किया तदनन्तर क्षत्रीधर्म्मके ज्ञाता उसराजा मुचुकुन्द ने भुजबलसे प्राप्त होनेवाली पृथ्वीपर बड़े आनन्दसे राज्य किया इसप्रकार से जो उत्तम ब्राह्मण को अग्रगण्नीय करके धर्म्मज्ञ राजा राज्य को करता है वह कठिन भूमिको भी बिजय करके सुख और आनन्द भोगताहै और सदैव यशस्वी रहता है ब्राह्मण सदैव जल रखने वाला और क्षत्री शस्त्ररखने वाला हो तो उन दोनों के आधीन सब बिश्वके पदार्थ हैं २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मेचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ७४ ॥

# पचहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि राजा जिसरीतिसे मनुष्यों की वृद्धि करता है और पबित्र लोकोंको बिजय करताहै वह सब आपमुझसे कहिये भीष्मजी बोले कि दान, यज्ञ, ब्रत, तप का अभ्यास रखनेवाला प्रजा पालन में प्रीतिकर्त्ता राजा सदैव धर्म्म से प्रजाका पालन करे और दानमान प्रीतिसे धार्मिक पुरुषों का सन्मान न करे क्योंकि राजा से पूजितधर्म सब स्थानोंपर पूजाजाताहै राजा जो २ कर्मकरता है वही प्रजाओंको सुखदायी जानपड़ता है राजा सदैव शत्रुओंपर मृत्युके समान दण्डधारण करने वाला होवै और सब चोर आदि को मारे और अपनी इच्छा से किसीको क्षमा न करे इसलोक में राजा से रक्षित प्रजा जिस धर्म्म को करती है उसके चौथे अंशको राजा प्राप्तहोता है और प्रजाके लोगजो दान, यज्ञ, ब्रत, और बेदपाठ आदिकर्म्म करतेहैं प्रजापालन करनेवाला राजा उसके चौथेभागको भोगता है और जो रक्षा

नहींकरता उसकी प्रजा जो पापकरती है उसका चौथाई पाप राजा भोगता है और निर्दय मिथ्यावादी मनुष्य जो कर्म्म करते हैं उस कर्मके सम्पूर्ण या आधेभागको राजापाता है और जिस कर्मसेराजा जैसे पापसे छूटता है उस को सुनो जो चोरोंसे हराहुआ धन उनसे फेरलेनेको असमर्थहो ऐसी दशामें असमर्थ और व्यापारियोंके साथ जीविका करनेवाले राजाको अपने भण्डारसे देना चाहिये सदैव ब्राह्मणका धर्म रक्षाकरनेके योग्य है जो कि ब्राह्मण रक्षाके योग्य हैं और जो पुरुष ब्राह्मणोंके साथ निकृष्ट कर्म्मकरे वह देशमें रखनेके योग्य नहीं है ब्राह्मण के धनकी रक्षासे सबकी रक्षा होती है इसीसे राजा ब्राह्मणकी कृपा से अभीष्ट सिद्धकरे जैसे जीवोंकी रक्षा मेघ और पक्षियोंकी रक्षा वृक्ष करते हैं उसी प्रकार मनुष्यों का अभीष्ट राजासे सिद्ध होता है अपनी इच्छा के अनुसार चित्त और बुद्धि रखने वाले निर्दयी लोभी राजा से प्रजा की रक्षा का होना सम्भव नहीं युधिष्ठिर बोले कि मैं राजसुख का चाहने वाला एक क्षणमात्र को भी राज्य नहीं चाहताहूं केवल धर्म्म के निमित्त राज्यको अच्छा समझताहूं और इस में धर्म्म वर्त्तमान नहीं है इससे राज्य से मुझको अलग कीजिये और धर्म्म करने के लिये बनही को जाऊंगा वहां पवित्र बनमें तारक दण्ड जितेन्द्रिय फलमूल भोजन करनेवाला मुनिरूप धारणकर धर्म्मका साधन करूंगा भीष्मजी बोले कि मैं तेरीउसबुद्धिको जानताहूं जो कि दूसरेके दुःखकी हरने वालीहै परन्तु वह निर्गुणहै शुद्धदयावानसे राज्य का भोगना असम्भव है यह लोकतुझ मृदुस्वभाव बड़े धार्मिक उत्तम और नपुंसक धर्म्म रखने वाले दयावान को भी बहुत मानता है पिता पिता-मह का चाल चलन देखो इस प्रकार का राजाओं का चलन नहीं होता है जैसा कि तुमकर्म किया चाहतेहो इसलोकमें व्याकुलतामें प्रवृत्त दयावान तुम प्रजापालन से उत्पन्नहोने वाले धर्म्मफलको नहींप्राप्तहोगे पांडु और कुन्तीने ऐसाआशीर्वाद नहींमांगा जैसे कि शास्त्रज्ञहोकर अपनीबुद्धिसे तुम कर्मकरतेहो पितानेतेरी शूरता पराक्रम सत्यता आदिको सदैवकहाहै अर्थात आशीर्वाद दिया और कुन्तीने आपके माहात्म्य और उदारताको चाहा और पितृ देवता पुत्रोंमें स्वधा और स्वाहाको नरयज्ञ देवयज्ञके द्वारा चाहाकरतेहैं दानयज्ञ और वेदपाठ करना और चारोंओरसे प्रजाका पालन करना यह धर्म्महो या अधर्म्महो तुमजन्मसेही उनकेकरनेकेलिये उत्पन्नहुये हो हे कुन्ती-पुत्र समयपर धुरमें जुड़नेवाले और रक्खेहुये भारको उठानेवाले पीड़ामान पुरुषोंकीभी कीर्तिनाश नहींहोती है और शिक्षाकियाहुआ मार्गमें वर्त्तमान घोड़ा भी भारको लेचलता है कर्म्म बचनसे जो निरपराधताहै वही कर्म्मकी सिद्धीहै इसलोकमें किसी धर्म्मवान गृहस्थी, राजा और ब्रह्मचारीने एकान्तमें

बैठकर धर्मको नहीं किया छोटाभी कर्म्म बहुत मनुष्योंका सुखदायी होने से बड़ासारवान है इससे न करने से करनाही उत्तम है बिना जाने का अधिक पापनहीं है जब कुलवानधर्म्मज्ञ पुरुष उत्तम ऐश्वर्य्यको पाताहै तब राजा का सिद्धप्रयोजन और उसकी रक्षा उसके कल्याणके निमित्त कल्पनाकीजातीहै इसलोकमें धर्म्मकरनेवाला राजाराज्यकोपाकर सब और किसीको दानसे किसीको पराक्रमसे किसीको सत्यवचनोंसे अपने स्वाधीनकरे विद्यावान कुलवान निर्जीविका से भयभीत पुरुष जिसको प्राप्तहो तृसितासे आनन्दपाते हैं उससे अधिक कौनधर्म्महै युधिष्ठिरबोले हेपितामह उत्तमस्वर्गका देनेवाला कौनकर्म्म है और उत्तम प्रीतिक्याहै और इसका फलबड़ा ऐश्वर्य्य कौनहै यह मुझे समझाइये भीष्मजी बोले कि जिसराजाके पास भयसे पीड़ामानपुरुष एकक्षण मात्रभी अच्छेप्रकारसे कुशलतापूर्वक आनन्दकोपाताहै वह हमलोगोंमेंस्वर्ग का जीतनेवाला है इससे हे कौरवोंमें उत्तम कौरवोंमें प्रीति करनेवाले तुमहीं राजाहोकर स्वर्गको विजयकरो सत्पुरुषोंकी रक्षाकरो और दुष्टोंको मारो हे तात जैसे बड़े२ पुण्यात्मा उपकारी जीवोंकी रक्षाकरते हैं वैसेही तुम अपने सुहृदजन और प्रजाका पालनकरो ३७॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मे पंचसप्ततितमोऽध्यायः ७५॥

# छिहत्तरवां अध्याय॥

युधिष्ठिरबोले कि हे पितामह कोई ब्राह्मण अपने कर्म्म में प्रवृत्त है और कोई उसके विपरीत कर्म्म में डूबेहुये हैं उनकी न्यूनाधिकता कहिये भीष्मजी बोले कि जो ब्राह्मण ब्रह्मविद्या और शम दमआदि लक्षणों से संयुक्त समदर्शी हैं वह ब्रह्मरूप कहेजाते हैं और ब्राह्मणों में जो ब्राह्मण ऋग्, यजु, साम, आदि वेदयुक्त अपने कर्म्म में अत्यन्त प्रवृत्त हैं वह देवताओं के समान हैं और जो जन्म के योग्य कर्मोंसेरहित और सब बालबच्चे स्त्रीआदि के दुःखदेनेवाले हैं और लोभसे धन इकट्ठा करलेवाले नाममात्रको ब्राह्मण कहलाते हैं वह शूद्रके तुल्य हैं और जो वेदपाठी अग्निहोत्री नहीं हैं उन सबसे धर्म्मात्मा राजा करले और बिनामासिक के राजसेवा करावे धर्म्माधिकारी और मासिकलेकर देवताकी पूजाकरनेवाला नाक्षत्रक, ग्रामयाजक मनुष्योंके समूहको यज्ञकरानेवाला और मार्गका करलेनेवाला यह पांचों ब्राह्मण चांडाल के सदृश हैं और ब्राह्मणों में जो ब्राह्मण ऋत्विज पुरोहित मन्त्री दूत और सन्देशहर हैं वह क्षत्री के समान होते हैं और जो ब्राह्मण अश्वयानी या हस्तियानी, रथयानी और पदाती होते हैं वह वैश्य के समान होते हैं जिस राजाका कोशागार धनसे खालीहो वह ब्रह्मरूप और

देवरूप ब्राह्मणों के सिवाय इनसब ब्राह्मणों से पृथ्वीकी भेजले और जो ब्राह्मण नहीं हैं उनके धनका स्वामी राजा है और ब्राह्मणहोके अपने धर्म्म के विपरीत चलनेवाले ब्राह्मण के धनका भी राजाही स्वामी होता है यह वेद वाक्य है अपने धर्म्म के विपरीत धर्म्मवाला ब्राह्मण किसी प्रकार से भी राजा से अदण्ड नहीं होसक्ता अर्थात् धर्म्मपर अनुग्रह करने के कारण वह लोग समझाने और भाग देने के योग्य हैं और जिस राजा के देश में ब्राह्मण चोर होता है उसके आन्तर्य्य के जानने वाले मनुष्य उसको राजा ही का अपराध जानते हैं जो वेदज्ञ और स्नातक ब्राह्मण आजीविका के न होने से चोर हो जाय वह राजा से पोषण के योग्य है यह वेदज्ञों का बचन है और जिस ब्राह्मण की आजीविका नियत की गई है और अपराधी हो जाय तो वह अपनी जीविका को त्याग दे और जो न त्यागे तो राजा उसको सकुटुम्ब देश से बाहर निकाल दे १५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेषष्ठसप्ततितमोऽध्यायः ७६ ॥

## सतहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह राजा किस २ के धनका स्वामी होता है और किस वृत्तीसे रहे यह कृपाकरके मुझसे कहिये भीष्मजी बोले कि ब्राह्मणके सिवाय राजा सबके धनका स्वामी होताहै और ब्राह्मणों में भी जो अपने धर्म्म के बिपरीतहैं उनकेभी धनका स्वामी गिनाजाता है यह वेदकीश्रुतिहै बिपरीतधर्म करनेवाले ब्राह्मण किसी दशामेंभी राजासे अदण्ड नहींहोसक्ते श्रेष्ठलोग राजाओंका यह प्राचीन व्यवहार कहतेहैं जिसराजाके देशमें ब्राह्मण चोरहोताहै उस अपराध को राजाही का पापमानते हैं उसकर्म्म से आत्माको जब लगाने के योग्यमानते हैं इसीसे सब राजऋषियोंने ब्राह्मण को पोषण किया इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसको राक्षससे हरेहुये राजाकेकयने वर्णन कियाहै वह यह है कि एक भयानक रूप राक्षसने वेदपाठी ब्रतनिष्ठ केकय देशके राजाको बनमें पकड़लिया तब राजाने उससे कहा कि मेरे देशमें चोर कृपण मद्यपी आदि कोई नहीं है और सब मनुष्य अग्निहोत्रीहैं और सदैव यज्ञधर्म्म करनेवाले हैं और मेरा ब्राह्मणभी मूर्ख नहीं है किन्तु ब्रतनिष्ठ अमृत पानकरनेवाला अग्निहोत्री यज्ञकरनेवाला है और मेरे देशमें कोईभी बिना दक्षिणावाले यज्ञसे पूजननहीं करते और कोई वेद पाठ और यज्ञसे खाली नहीं है पठन पाठन यज्ञ करते कराते दान देते और लेते हैं इन छः कर्म्मों में प्रवृत्त हैं मृदु स्वभाव सत्यवादी स्वकर्म्मनिष्ठ ब्राह्मण मुझ से पूजित और अच्छे प्रकार से भोगों के पानेवाले हैं सत्य धर्म्म में कु-

शल अयाचक दान लेते हैं वेतन लेकर नहीं पढ़ाते हैं आप पढ़ते हैं यज्ञ करते हैं परंतु दूसरे को नहीं कराते और दान लेने को भी निषेध करते हैं अपने कर्म्म में सावधान और युद्ध में न मुड़ने वाले ऐसे मेरे क्षत्री ब्राह्मणों की चारों ओर से रक्षा करते हैं निश्छल होकर खेती गौओं का पालन और ब्यापार आदि से अपना निर्वाह करते हैं सावधान क्रियावान् सुन्दर ब्रत वाले सत्यवादी हैं और भागों का विभाग शान्त चित्त बाहर भीतर से पवित्र और सब से प्रीति रखने आदि में प्रवृत्त हैं ऐसे मेरेदेश के वैश्यलोग भी अपने अपने कर्म्म में प्रवृत्त हैं और अपने कर्म्म में सावधान दूसरे के गुण में दोष न लगाने वाले मेरे देश के शूद्रभी तीनों वर्णों की सेवा करते हैं दुखिया अनाथ वृद्ध अल्प प्राण रोगी स्त्री इन सब को भाग देने वालाहूं और कुल देश आदि के सब नियत धर्म्मों को बुद्धि के अनुसार दृढ़ करने वाला हूं और मेरे देश में तपस्वी लोग सत्कार पूर्वक पूजित सब ओर से रक्षित अच्छे प्रकार सेभागपाने वाले हैं और मैंभी सब भागों के दियेबिना भोजन नहीं करताहूं और अन्यकी स्त्रीसे सम्भोग नहीं करता और न कभी स्वतन्त्रतासे क्रीड़ाकरताहूं मेरेदेशमें ब्रह्मचारी लोगोंके सिवाय और कोई भिक्षा मांगनेवाला नहीं है और सब भिक्षुकभी ब्रह्मचर्य्यसे रहित नहीं हैं बिना ऋत्विज के होम नहीं होता और मैं कभी वेदपाठी या वृद्ध या तपस्वियोंका अपमान नहीं करता और अपने देशके सो जाने पर जागा करताहूं मेरा पुरोहित ब्रह्मज्ञानमें प्रवृत्त तपस्वी सब धर्म्मोंका जानने वाला सब देश भरका स्वामी और बुद्धिमान है मैं दानसे विद्याको चाहता हूं और ब्राह्मणों की रक्षाके लिये सत्यता पूर्व्वक धनको चाहताहूं और सेवा के लियेगुरू लोगोंके पास जाया करता हूं और मैं राक्षसोंसे कभी भय नहीं करतामेरेदेश में विधवास्त्री नहीं है और अपने कर्म्मका त्यागकरने वाला कोई नामको भी ब्राह्मण मेरेदेशमें नहीं है और न कोई छली चोर ब्राह्मण है और अनधिकारियोंका यज्ञ करानेवाला भी कोई नहीं है और न कोई पापकर्म्मी है इसहेतु से मुझ को राक्षसों से किंचित् भी भयनहीं है और मुझ युद्धकर्त्ता की देह में शस्त्रों से बिनाव्रण दोअंगुल भी देहनहीं है और मेरे देशवाले सदैव गौ ब्राह्मण और अन्यमनुष्य यज्ञोंसे मेरे कल्याण को चाहते हैं इससेतुम मेरेदेह में प्रवेश मतकरो राक्षसबोला कि हे केकय जिसकारण से तुम सबदशा में धर्म्म को ही विचारते हो इस से तुम कुशल पूर्व्वक घरकोजाओ मैं आपको छोड़ करजाताहूं और सुनो कि जो गोब्राह्मणों और प्रजा की रक्षा करते हैं उन को राक्षसों से कभीभय नहींहोता फिर पापसेभय कैसे होगा जिन के अग्रगणनीय ब्राह्मण हैं और पुरबासी वा अ

तिथियोंका सत्कारकरते हैं वह राजा निश्चय करके स्वर्गपाने वाले हैं भीष्म जीबोले कि इसकारण ब्राह्मणोंकी रक्षाकरे क्योंकि वह रक्षाको निर्बिघ्नकरते हैं और उनकाआशीर्व्वाद राजाओं को सफल होता है इस हेतु से बिपरीत कर्म्मी ब्राह्मणों को भी राजा सुधर्म्म में प्रवृत्त करे और उनपर ऐसा अनुग्रहकरै कि वह भाग पानेकेयोग्य होजायँ जो राजा इसप्रकार से अपने देश और पुरबासियोंके साथ बर्त्ताव करताहै वह इसलोक में कीर्त्तिमानहोकर अन्तमें इन्द्रकी समताको प्राप्त होताहै ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ७७ ॥

# अठहत्तरवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि आपत्ति कालमें ब्राह्मणों की जीविका राज धर्म्मों से कहीहै तो किसी दशामें ब्राह्मण वैश्यधर्म्मसे भी अपनी जीविका कर सक्ताहै या नहीं भीष्मजी बोले कि आजीविका के नष्ट होजाने से और दुःखहोने के कारण क्षत्री धर्म्ममें प्रवृत्तहोने को असमर्थ ब्राह्मण खेती और गौ के पालन आदि में प्रवृत्त होकर वैश्यके धर्मसे निर्बाह करसक्ता है युधिष्ठिर बोले कि ब्राह्मण बैश्य धर्म्ममें प्रवृत्त होकर किस२ वस्तुके बेचनेसे स्वर्गसेच्युत नहींहोताहै भीष्मजीने कहा कि मद्य नोन, तिल, घोड़े, गौ, बकरी, बैल, मधु, मांस, सिद्धान्न इतनी बस्तुओं को ब्राह्मण सबदशामें नहींबेचे क्योंकि इन में से कोई भी बस्तु बेचे तो अवश्य नरकभोगे बकरा अग्निरूप और भैंसा बरुणरूप, घोड़ा सूर्य्यरूप, पृथ्वी बिराटरूप, गौ यज्ञ अमृत रूप हैं वह किसी दशा में भी बेंचने के योग्य नहीं हैं साधु लोग पक्के अन्न से कच्चे अन्न को बदलने की प्रशंसा नहीं करते हैं इस से कच्चे अन्न से पक्के अन्नको भोजन के लिये अदला बदलीकरे यह कहकर बदला करे कि हम पक्के अन्न को भोजन करेंगे आप इसको तैयार करो इसप्रकार बिगार कर बदला करने से कोई दोष नहीं है इस स्थान पर व्यवहार अच्छे लोगों के सनातन धर्म्म को समझो मैं यह आपको देता हूं आप इसको लीजिये धर्म्म मनकी इच्छा से वर्त्तमान होता है पराक्रम से जारीनहीं होता इसप्रकार से ऋषि लोग और अन्यपुरुषों के सनातन व्यवहार जारी होते हैं यही श्रेष्ठ है इस में कुछ संदेह नहीं है युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह जबसब प्रजाशास्त्रों को धारण करती है और सब अपने धर्म्मों से हट जाते हैं तब क्षत्री धर्म्म नष्ट होजाता है तब लोकका राजा कैसे रक्षा करने को योग्य होय इसमेरे संदेहको ब्यवरेवार कहकर दूरकरो भीष्मजी बोले कि जिन बर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठहै वह बर्ण दान तप यज्ञ अशत्रुता और शान्त स्वभावसे अपना कल्याण

चाहें उनमें जो वेदपाठके पराक्रम रखनेवाले ब्राह्मण हैं वहचारों ओर उद्योग करके राजाके पराक्रमको बढ़ावें जैसे कि देवतालोग अपने इंद्रके पराक्रमको बढ़ाते हैं हतराज्य राजाकाभी ब्राह्मणही रक्षकहै इससे ज्ञानी राजाको ब्राह्मण के पराक्रमसे उद्योग करना चाहिये जब पृथ्वीका विजय करनेवाला राजा देशमें मंगलकरे तबवर्ण अपने २ धर्म्ममें कैसे नहीं चलेंगे अर्थात् अवश्य चलेंगे हे युधिष्ठिर बे मर्य्यादा जारीहोनेमें और चोरोंसे वर्णसंकर करने में शस्त्रधारी सबवर्ण दृष्टिनपड़े अर्थात् वर्णोंकी पृथक्२ पहिचाननहो औरक्षत्री अज्ञानतासे ब्राह्मणके साथ सबप्रकारसे शत्रुताकरे उसब्रह्मकुलका कौनरक्षक है औरकौनधर्म्म औरक्या उनकीरक्षाका स्थानहै भीष्मजीबोले कि जपतपब्रह्म-चर्य्य शस्त्र पराक्रम छल और बिना छलसे शासन करना उचित होय तो ब्राह्मणों के ऊपर अधिकतर बे मर्य्यादगी करने वाले क्षत्रीका दण्ड देने-वाला ब्राह्मण ही होगा क्योंकि क्षत्री ब्राह्मणही से प्रकट हुआ है जलसे अग्नि ब्राह्मणसे क्षत्री पत्थर से लोहा उत्पन्न हुआ उनका सर्व व्यापी तेज अपने उत्पत्ति स्थानमें शान्तिताको पाता है जब लोहा पत्थरको काटता है और अग्नि जलको स्पर्श करती है और क्षत्री ब्राह्मण से शत्रुता करता है तब वह तीनों नाशको पाते हैं इससे हे युधिष्ठिर क्षत्रियों से अजय और बहुत बड़े तेज और बल ब्राह्मण में शान्ती को पाते हैं ब्राह्मण का पराक्रम न्यून होने और क्षत्रीका पराक्रम कठिन होने में और सब ब्राह्मणों के ऊपर सब वर्णोंके शत्रुहोने में ब्राह्मणों को और धर्मोंको और अपनेको रक्षा करने वाले जो पुरुष अपने जीवको त्याग करके यहां युद्धको करतेहैं वह साहसी और क्रोधजित पवित्र लोक गामी होते हैं ब्राह्मणों के लिये सब वर्णों को शस्त्र धारण करना अभीष्ट समझा जाताहै वह शूर भोजन रहित अग्नि प्र-वेश करने वालोंके सदृश ऐसे उत्तम लोकों को प्राप्त होतेहैं जो कि यज्ञवेद पाठ तपस्या आदिसे संयुक्त तपस्वियोंके भी लोकोंसे बड़े हैं और मोक्षरूप परम गतिको भी पाते हैं ब्राह्मण तीनों वर्णोंके ऊपर शस्त्र धारण करता दोषको नहीं प्राप्त होताहै इसी प्रकार मनुष्योंने भी अपने देहके त्याग से दूसरे धर्म्मको नहीं जाना उनको नमस्कार है और उनका कल्याणहो जो ब्राह्मणों के शत्रुओं के मारने में अपनी देहको अर्पण करते हैं हमको भी उन्हीं की सी योग्यताहो मनुजीने उनवीरोंको स्वर्गवासी और ब्रह्मलोक का विजय करने वाला कहा जैसे कि अश्वमेध यज्ञके अभ्रतस्नान सेमनुष्य पवित्र होतेहैं और जैसे युद्धमें पापके नाशकर्त्ता अस्त्रोंसे मरने वाले पवित्र होते हैं उसी प्रकार देश कालके कारण से दोनों धर्म्म और अधर्म्म पर-स्परमें लौटपौट होते हैं अर्थात अधर्म्म धर्म्मरूप होजाताहै क्योंकि वह देश

काल इसी प्रकारका है सबके मित्र निर्दय कर्म्मको करते उत्तम स्वर्गको पाते हैं और धर्म्ममें प्रवृत्त क्षत्री पाप कर्म्मको करते परमगति को पातेहैं क्षत्री आदि वर्णके बिपरीत कर्म्म होने से ब्राह्मण अपनी रक्षाके निमित्त तीनों कालमें दुःखसे विजय होने वाले नीचोंके विजय करने के लिये शस्त्र को धारण करता दोषको नहीं प्राप्त होताहै युधिष्ठिर बोले कि हे महाराज चोर और वर्ण संकरोंका समूह उठने और क्षत्रियोंके असावधान होनेपर जो दूसरा वर्ण पराक्रमी प्रजापालन के लिये चोरोंको विजय करे वह ब्राह्मण या वैश्य या शूद्र चोरोंसे प्रजाकी रक्षाकरे और धर्म्म से दण्डको धारणकरे दूसरे के योग्य कर्म्मको करे या नकरे और चाहे निषेध करने के योग्यहो या नहो मेरी बुद्धिमें इस कारणसे क्षत्रीके सिवाय दूसरे वर्णको भी शस्त्र धारण करना उचित है भीष्मजी बोले कि जो शूद्र या दूसरा कोई अपारमें पारहो और बिनानौका के नदीकी नौकाहो वह सब प्रकार प्रतिष्ठाके योग्य है हे राजा जिसकी रक्षामें मनुष्य अपना सुख पूर्व्वक काम करें और चोरोंसे अनाथोंकी रक्षा होय वह प्रीति पूर्व्वक उसी राजाको ऐसे पूजें जैसे कि अपने बान्धव को पूजते हैं हे कौरव निर्भयदान करने वाला सदैव मानने के योग्यहै जो बैलसवारी के योग्य नहीं होता उससे क्या प्रयोजन है और दूधन देनेवाली गौसे भी क्या प्रयोजनहै बांझस्त्री भी निःप्रयोजन है इसी प्रकार रक्षा न करनेवाले राजा से भी कौन अर्थहै हे राजा जैसे लकड़ी काहाथी और चर्मका मृग और नपुंसक और ऊषर खेत निष्प्रयोजन हैं इसी प्रकार जो ब्राह्मण वेदपाठी नहींहै और राजा रक्षक नहीं है और मेघवर्षा रहित है वह सब निरर्थकहैं जो पुरुष सदैव सत्पुरुषोंकी रक्षाकरे और नीचपुरुषों को मार्ग में चलावे वही राजा करने के योग्यहै उससेही यह सब राज्यभार धारणकिया जासक्ता है ४४॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्व्वणिराजधर्म्मेअष्टसप्ततितमोऽध्यायः ७८॥

## उन्नासीवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महावक्ता ऋत्विज किस निमित्त नियत किये जातेहैं और उनका स्वभाव कैसा होना योग्य है और कैसे प्रकार के होंय इसका वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि साम आदि वेद और शास्त्रों को जानकर प्रति दिन कर्म में प्रवृत्त ऋत्विज ब्राह्मणों का प्रति कर्म जो कि अच्छे प्रकार प्रवृत्त होकर कियाजाय वह कहाजाता है जो ऋत्विज सदैव एकही राजा के समीप रहने वाला और शत्रुओंके प्रश्नोंका उत्तर देनेवाला सबका मित्र और समदर्शी होय वह दयावान् सत्य-

बादी ब्याज न लेनेवाला शुद्ध अन्तःकरण शत्रुता और अहंकार से रहित लज्जायुक्त शान्त चित्त भीतर बाहरकी बातोंका जाननेवाला बुद्धिमान् सत्य धैर्य्यवान् तपयुक्त जीवोंकी हिंसा न करने वाला रागद्वेष से भिन्न निर्दोष तीन गुणोंमें प्रवृत्त ज्ञानसे तृप्त होय वह ब्रह्म आसन के योग्य है वही महाऋत्विज प्रतिष्ठा के योग्य हैं युधिष्ठिर बोले कि जो यह वेदका बचन दक्षिणाओं के विषय में कहाजाता है कि यह देना चाहिये यह देनाचाहिये वह कहीं व्यवस्था को नहीं पाता है यह शास्त्र धनकी संख्या का निश्चय करने वाला नहीं है किन्तु आपधर्म्म से संबंध रखने वाला है क्योंकि शास्त्र की यह बड़ी आज्ञा सामर्थ्य को नहींदेखती हैं श्रद्धादान से यज्ञकरना चाहिये यह वेदकी श्रुति है निष्फल कर्म्म वाले यज्ञ को श्रद्धा क्या पूर्णकरेगी अर्थात् जितनी गौ उतनेही वस्त्र या उनकेबदले चरुदेवे यह निर्धनके लिये निधिहै जो सामर्थ्यवान् पुरुष गौके स्थान में चरुदेवे तो वह मिथ्या यज्ञ है भीष्मजी बोले कि कोई मनुष्य वेदोंके अपमान दुष्टता और छल आदि से बड़ेपदको नहीं पाता है तेरीबुद्धिऐसी नहो हे तात दक्षिणा यज्ञों का अंग है यह वेदका बचन है दक्षिणा रहित यज्ञ किसी दशा में भी सफल नहीं होता इससे तीनोंवर्णोंको सदक्षिणा यज्ञ करनाचाहिये ब्राह्मणोंका राजा सोम है यह वेदकी मर्य्याद है उसको बिक्रय किया चाहते हैं परन्तु बिनायज्ञ के उसका बेचना अभीष्ट नहीं है क्योंकि उसधनके द्वारा प्राप्तहुये सोमसे फिर यज्ञ होसक्ता है यह धर्म्मज्ञ ऋषियोंका बिचार है परन्तु उससमय जब कि पुरुषयज्ञ और सोमयज्ञ न्यायके अनुसारहो न्याय के बिपरीत पुरुषदूसरेका है न अपनाहै अपमानसे संयुक्त महात्मा ब्राह्मणोंके किये हुये यज्ञ आदि शुभ नहींहोते यहभी वेदकी श्रुतिहै तपयज्ञसे भी उत्तम है यह बिशेष श्रुति है वह तप मैं तुझसे कहताहूं उसको सुन हिंसारहित सत्य बोलना दया और शान्तचित्तहोना इसीको पंडितों ने तपकहा है देहका सुखाना तपनहीं है वेदों का प्रमाण न मानना शास्त्रोंको उल्लंघन करना सबधर्म्मों में प्रवृत्त न होना यहबात अपना नाश करनेवाली है कर्म्मभी ज्ञानही से सम्बन्धरखते हैं इस को समझो कि दशहोमकरनेवालोंकी बुद्धीको साकल्य और चित्तरूप स्रुक और ज्ञानरूप घृत यही ज्ञानकरना उत्तम है केवलयज्ञ नहीं उचित है और सब प्रकारकी कुटिलता मृत्युका स्थान है और सीधापन ब्रह्मपद है ज्ञानका विषय इतनाही है और सबवृथाहै २१॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिराजधर्म्मेएकोनाशीतितमोऽध्यायः ७९॥

# अस्सीवां अध्याय॥

युधिष्ठिरबोले कि हे पितामह जो कर्म्म न्यूनतम भी हैं वहभी विनास-हायताके अकेले मनुष्य से करना कठिन है फिर राजासे करना कैसे सुगम होगा राजा का मंत्री कैसे स्वभाव और आचरणवाला होवे और कैसे मंत्री पर विश्वास करे और कैसे पर न करे भीष्मजी बोले कि हे राजा राजालोगों के मंत्री चारप्रकारके होते हैं एक तो समान प्रयोजनवाला, दूसरा प्राचीन, तीसरा सम्बन्धी, चौथाबनाहुआ, पांचवां धर्म्मात्मा मित्रभी मंत्री है जो कि पक्षपात रहित और दोनोंओरसे गुप्तधनपानेके कारणछली नहो जिधर धर्म्म होय उधरही संयुक्त हो अथवा उसके उदासीन पनेमें भी जो धर्म्म में आ-रूढ़हो उसीमें संयुक्तहो जो प्रयोजन उसकी बुद्धिमें निकृष्टहो उसको उससे न कहे विजयकी इच्छाकरनेवाले राजालोग धर्म और अधर्म दोनों से कर्म को करते हैं इनचारों मंत्रियों में मध्य के दोमंत्री श्रेष्ठ हैं पहला और चौथा सदैव सन्दिग्धहैं और जितनेहैं सब शंकाके योग्यहैं अपनाकाम अपने नेत्रों के सन्मुखकरना योग्यहैइससे निश्चयकरके राजाको अपने मित्रोंकी रक्षामें ढील न करनी चाहिये क्योंकि असावधानराजाका सबलोग अपमानकरतेहैं असाधुसाधुरूप और साधूभय उत्पन्नकरनेवालेहोजातेहैं शत्रुमित्रहोताहै और मित्रभी शत्रुताकरताहै जो कि मनुष्यकीबुद्धि सदैवएकसी नहीं रहती इससे कौनउसपर बिश्वासकरे इससेजो उत्तमकर्म्महैं उनको अपनेसन्मुखही करेवा करावेजो अत्यंतविश्वास करता है वह सबधर्मार्थों को नाशकरताहै परन्तु सब स्थानों में अविश्वासही करना मृत्युसे भी अधिक है विश्वास अकालमृत्यु है विश्वास का करनेवाला आपत्ति में पड़ताहै जिसपर विश्वास करता है उसी की इच्छासे जीवता है इस कारण कितनेही पुरुषोंपर तो विश्वास कर-ना योग्यहै और कितनेही पर ससन्दिग्ध विश्वास योग्यहै हेतात यह सना तन नीति की गति देखने के योग्यहै अविश्वास के स्थान यह हैं कि जिस को जानें कि मेरे मरने के पीछे इसीको राज्य होगा उससे सदैव शंका क-रनी योग्यहै ज्ञानी लोग इसको शत्रु कहतेहैं जिसके क्षेत्र से दूसरे के क्षेत्र में जलजाताहै वहां उसके न चाहते सब पुलक्या नष्टनहोवें अर्थात् वह अधिक जल छोड़ने से देशको भी बरबाद करसक्ताहै इसीप्रकार अपने देश की सीमाके समीपी जो राजाहैं जबतक वह सीमापर प्रबंध न रक्खें तबतक व्योपारादि अच्छे प्रकार से होते हैं और जब वह बिपरीतताको करे तब देश की हानिहोतीहै इससे वह राजा भी विश्वास योग्य नहींहै वैसेही वह राजा जलकी आधिक्यता से भयभीत उस बन्दको तोड़ना चाहता है जिसको

कि उसप्रकार का हानिकारक जानें उस शत्रुको अच्छे प्रकार से धमकावे जो मित्रवृद्धि से सन्तुष्ट न होवे और हानि में बड़ा दुःखी होवे यह मित्रका बड़ा लक्षणहै ऐसे महान्लोग कहतेहैं और जो यहमानें कि मेरे नाशसे उसका नाश होगा उसपर निश्चयपूर्वक ऐसा बिश्वासकरे जैसा कि पिता पर बिश्वास होताहै वह सदैव धर्म कर्मोंमें भी घावों से बचाता है अपनी सामर्थ्य से वृद्धिमान्होकर उसकी सब ओरसे वृद्धिकरे और घावोंसे भयभीत मित्रको अच्छा मित्रजाने और जो घावों के चाहनेवाले हैं वही शत्रुहैं जो सदैव व्यसनों से भयभीत रहताहै और जो राज्यकी वृद्धिके कारण शत्रुता नहीं करता है जो ऐसे प्रकारका राजा मित्रहोय वह आत्माके समानकहा जाता है जो रूपवर्ण और स्वरसे संयुक्त क्षमावान् गुण में दोष न लगाने वाला कुलीन अपने श्रेष्ठकुल से संपन्न है वह प्रधानहै और शास्त्रों का स्मरण रखनेवाला बुद्धि का स्वामी हरएक बातको यादरखनेवाला चतुर और स्वभावसे दयावान् है और जो प्रतिष्ठावान् व अप्रतिष्ठावान् होकरभी कभी शत्रुता न करे ऋत्विजया आचार्य्य या प्रशंसनीय मित्रहो ऐसामंत्री तेरेघरमें पूजितहोकर वर्त्तमानहो वही तेरे बड़े मंत्रको जाने और अर्थ धर्म्म की प्रकृति को जाने उसपै तेरा बिश्वास पिताके समानहो एक कामपर दो या तीन अधिकारी नहीं नियतकरने चाहिये अर्थात् एक कामपर एकही अधिकारी कियाजाय क्योंकि जीवोंमें सदैव विपरीतता होती है इससे वह भी कभी परस्पर में क्षमा न करेंगे जो नेकनामीको उत्तम माननेवाला और मर्य्याद पर चलनेवाला समर्थ मनुष्यों से शत्रुता नहीं करता है और अनर्थों को नहीं करता और इच्छा,भय,लोभ, क्रोध इत्यादि के कारण धर्म्म को नहीं छोड़ता चतुराई से सबका प्रिय बोलनेवालाहै वह तेरा प्रधानमंत्री होके कुलीन श्रेष्ठस्वभाव क्षमावान् अपनी प्रशंसा न करनेवाला,शूर, श्रेष्ठ, चतुर, बुद्धिमान्, करने न करनेके काममें बिचारवान्,सत्संगी,सुकर्म्मी, सब कर्म्मों में प्रवृत्त ऐसे मंत्री करनेके योग्यहैं और जो पूजित अच्छेभाग को पानेवालेहों वा अपनी योग्यतासे बड़े अधिकारोंपर नियत होनेवाले बड़े कार्यों में प्रवृत्त ऐसे लोग कल्याणों को करतेहैं और परस्पर में ईर्षा करने वाले लोग सदैव पापों को करतेहैं और आपस में एक एकको कहकर राज्य के करके लेने पर अधिकारी होतेहैं इनलोगों से और जातिवालोंसे मृत्युके समान भयभीत जानो ज्ञातिवाले समानताके बिचारसे सदैव धनकी वृद्धिको नहीं सहते हे महाबाहु जातिवालोंके सिवाय कोई उसके नाशको नहीं चाहता है जो सीधा मृदुस्वभाव दानी लज्जावान् सत्यवक्ता और सुचाली हो और जो अन्य बिरादरी हैं वह भी सुखदायी नहीं हैं इस कारण वह भी अपमान के

योग्यनहीं हैं क्योंकि जातिवालों से बाहरहुये मनुष्यको दूसरे भी अपमान करते हैं दूसरे मनुष्यों के दबाये हुये अप्रतिष्ठित मनुष्य का जातिही रक्षाका स्थान है जातिवाला अन्य जातिवालों से होनेवाली जाति वालोंकी अप्रतिष्ठाको किसी दशामें भी नहीं सहता है सम्बन्धियों से किसी बान्धव का अपमान करनेपर सम्पूर्ण जाति भर अपना अपमान मानती है उनमें गुण और अगुणभी दृष्ट आते हैं अन्य जातिवाला न तो कृपा करता है और न किसी अन्य जातिको झुकता है यह दोनों बातें और उत्तम अनुत्तमता जातिवालों में दृष्ट पड़ती हैं इससे जातिवालोंकी अपने शुष्ट वचन और देहके अभ्युत्थान से प्रतिष्ठा करे और यथायोग्य पूजन सत्कार भी करे जहां तक बने वहांतक इनके अभीष्ट को करे विश्वासरहित और विश्वास के समान सदैव उनके साथ बर्त्ताव करे दोष या गुण उनसे नहीं कहना योग्य है इसप्रकार अधिकारी और चतुर मनुष्य के शत्रु अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और मित्र होजाते हैं जो इसप्रकार से जाति वा सम्बन्धियों के मण्डल में और मित्र शत्रु और उदासीनों में सदैव बर्त्तावको करता है वह बहुत काल पर्य्यन्त कीर्त्तिमान् रहता है ॥ ४१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेअशीतितमोऽध्यायः ८० ॥

## इक्यासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि इसप्रकार जाति और सम्बन्धियों का मण्डल और शत्रु मित्रके आधीन भी न होने पर किसप्रकार से उनका चित्त स्वाधीन कियाजाता है भीष्मजी बोले कि मैं इस स्थानपर इस भूत वृत्तान्तको कहता हूं जिसमें वासुदेव और नारदजी का संवाद है वासुदेवजी बोले कि हे नारदजी सुहृद्जन परममंत्र के जानने योग्य नहीं हैं चाहे पण्डित या मूर्ख हो या अजितहो ऐसा जानकर आपको सुहृद मित्र जानकर कुछ कहूंगा कि हे स्वर्गगामी आपकी सम्पूर्ण बुद्धि और पराक्रमको देखकर पूछताहूं कि मैं सब भागोंके आधे अंशको भोगताहूं और कठोर वचनोंको सहताहूं यह जो आपकी सेवा है उसको जातिवालों के ऐश्वर्य्य भाव से नहीं करताहूं जैसे अग्निका चाहनेवाला अरनी काठको सहता है उसीप्रकार कठोर वचन मेरेहृदयको सुखाता है बलदेवजी में सदैव पराक्रम गदमें सुकुमारता और प्रद्युम्न में रूपकी अहंकारता है इससे हे नारदजी मैं असहायहूं और बड़े महाभाग पराक्रमी अजित सदैव दूसरे पर चढ़ाई करने में सन्नद्ध अन्धक और वृष्णी क्षत्रीहैं वह जिसके सहायक न हों उसका नाश होजाय और जिसके साथी होजायँ उसका कुलभर वृद्धिको पावे अक्रूर और उग्रसेन इन

दोनों से सदैव निषेध कियाहुआ मैं केवल एककोही नहीं चाहताहूं जिससे कि एकके चाहने से दूसरे का क्रोध न हो परस्पर में विरोधी उग्रसेन और अक्रूर जिसके दोनोंओर होयँ और वह उनका मध्यस्थहो इससे अधिक उसको क्या दुःख होगा और वह दोनों जिसके मित्र नहों उस दशामें इससे अधिक दुःख क्या है सो हे महाज्ञानी मैं एककी बिजय दूसरे का अपमान ऐसे चाहता हूं जैसे जुआ खेलनेवालों की माता दोनों पुत्रोंके मध्यमें दुःख पाती है इससे हे नारदजी ऐसी दशामें मुझ दुःख पानेवालेका कल्याण और जातिवालों की बृद्धिके कहने को आप योग्य हैं नारदजी बोले हे श्रीकृष्णजी दो प्रकारकी आपत्तिहैं एक आन्तरीय दूसरी बाह्य वह दोनों आपत्तियां अपने स्वभाव और जातिवालों की ओर से उत्पन्न होती हैं सो यह आपकी आन्तरीय सम्पूर्ण आपत्ति अपने कर्म्म से उत्पन्न होकर अक्रूर और उग्रसेन के द्वारा प्रकट होनेवाली है क्योंकि यह सब उनके बंशमें हैं और वही आपत्ति धन इच्छा या निन्दा युक्त वचनों से उत्पन्न होनेवाली है अपनी जाति से उत्पन्न होनेवाला ऐश्वर्य्य दूसरे में नियत किया है और अब उसमें मूल उत्पन्न हुआहै क्योंकि जातिका शब्द उसका सहायक है अर्थात् जातिका नाश न करना चाहिये तुमको उस ऐश्वर्य्य का फेरलेना ऐसे उचित नहीं है जैसे कि बमन कियेहुये अन्नको हे श्रीकृष्ण तुमको भी जातिके बिरोधके भय से किसी दशामें भी बभ्रु और उग्रसेनका राज्य लेलेना योग्य नहीं है और जो बड़े उद्योगसे कठिन कर्म्म से प्राप्त भी होगा तो ऐसी दशामें बड़ी हानि और ब्यय भी होगा और अन्त में नाश भी होगा बराबर सफाकर उस मृदुचित्तके छेदनेवाले निर्लोह अस्त्र से सबकी बाणीको बन्दकरो बासुदेवजी बोले कि हे नारदजी मैं मृदुआदि लोहके अस्त्र को कैसे जानूं जिससे कि सफा और तेजकरके उनकी जिह्वाओं को बन्दकरूं नारदजी बोले कि सामर्थ्य के अनुसार अन्नदान करना क्षमा शीलता मृदुत्व और जो जिसके योग्य हो उसकी उसी प्रकार पूजाकरना यही निर्लोह अस्त्रहै तुम अपनी बाणी से उन कठोर मिथ्याबचनों को कहने वाले जातिवालों के हृदय और बचन दोनों को शान्तकरो जो महापुरुष चित्तका जीतनेवाला सत्संगी भी नहीं है उसप्रकारका कोई पुरुष बड़ेधुरको धारण नहीं करता है तो तुम उसको हृदय से स्वीकार करके धारण करो बैल बड़े भारी बोझेको समभूमि में बराबर खेचलता है और प्रत्येक सौगद नाम कठिन स्थानमें दुःखसे धारण करने योग्य बोझे को लेजाता है बिरोध से समूहोंका नाश होताहै और आपसमूहों के स्वामीहो इससे यह समूह आपको आश्रय लेकर नाश को प्राप्त न हो वही करिये बुद्धि क्षमा शान्त

चित्त और दान धन के सिवाय ज्ञानी पुरुषमें गुण नियत नहीं होता है सदैव अपने पक्षकी वृद्धिकरना धनकीर्ति वृद्धि और आयुका पूर्ण करनेवाला है इससे हे कृष्ण जैसे जातिवालों का कल्याणहो वही करिये हे प्रभो वर्तमान और भविष्यत्कालमें छः गुणकी वृद्धि से सेनाका इकट्ठा करना चढ़ाई करना उसीप्रकार इसकीरीतें जिनको कि आपजानते हैं अर्थात् सर्वज्ञ हो हे महाबाहो सब यादव कुरुभोज अन्धक वृष्णी कुलवालेक्षत्री आपके आधीन हैं वह सब लोकालोक पर्य्यन्त के स्वामी हैं हे माधव ऋषिलोग भी आपकी बुद्धिकी उपासना करतेहैं तुम सबजीवों के गुरुहोकर भूत भविष्यत् को जानतेहो यादवलोग आपसरीखे ईश्वरको पाकर सुख को पातेहैं ॥ ३० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्म्मेएकाशीतितमोऽध्याय. ८१ ॥

## ब्यासीवांअध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि हेभरतबंशी यह पहिला आचरण है अबदूसरा आचरण सुनो जो कोई पुरुष धनकी रक्षा आदिको करे वह राजासे रक्षाके योग्य है हे युधिष्ठिर जो दास या नौकर मंत्रीकरके जब्त और नष्टकियेहुये खजाने को राजासे कहदे उसकी बातें एकान्त में सुनने के योग्यहैं और उसकी मंत्री से रक्षा की जाय चोरी करने वाले मंत्री बहुतोंको मारते हैं राज्यके खजाने के गुप्त चुरानेवाले सब नौकर मिलकर खजाने के रक्षकको पीड़ा देतेहैं वह अरक्षित होकर नाशको पाताहै इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसको कालकवृक्षीय नाममुनि ने कौशल राजासे कहा वहमुनि कौशलदेशोंके क्षेमदर्शन नाम राजासे मिलने को गये और एक काकको किसी पिंजरे में बन्दकरके अपने विचारको प्रचलित करने की इच्छासे उसक्षेमदर्शी के सब देशोंमें घूमतेहुये यह कहते फिरतेथे कि काक की विद्याको पढ़ो मेरेकाक भूत वर्त्तमान भविष्यत् कालको वर्णन करते हैं इसप्रकार बहुतसे मनुष्योंके साथ देशमें चारोंओर घूमते घूमते राजाके सब नौकरों के अन्यायों को देखा और सबदेशकी यथार्थ बातोंको जानकर जहांतहां राज्यके धनके चुराने वाले राजाके नौकरों को पहिचानकर काक को लिये ब्रतपरायण मुनि यह वचन कहते हुये कि मैं सर्वज्ञहूं राजा से मिलनेको गये और राजासे मिलकर काकके वचनसे बस्त्रालंकार से अलंकृत राजाके प्रधानों से कहा कि तुमने अमुक स्थान पर यह चोरीकी है और इसबातको यह सब मनुष्य जानते हैं कि तुमने राज्यके खजाने को चुराया ऐसा यह काककहता है इस को जल्दी से देखो तब उसकाकने राज्य के धनके चुरानेवाले दूसरे नौकरों को भी कहा और यह भी कहा कि मेरा

इसका कोई वचन मिथ्यानहीं हैतात्पर्य्य यह है कि उसने सबनौकर दोषी किये उनलोगों ने रात्रि के समय निद्रा में निश्चेष्ट मुनि के उस काक को तीरों से घायल किया प्रातःकाल होतेही पिंजरे में उसकाकको बाणसे छिदाहुआ देखकर वहमुनि राजासे बोले हे राजा मैं तुझसे निर्भयता चाहता हूं तुम्हारी आज्ञासे तुम्हारे हितकारी बचनों को कहताहूं राजाने उत्तर दिया कि अपने अभीष्टको चाहनेवाला मैं आपके हितकारी बचनोंको कैसे न सुनूंगा और हे मुनि मैं आपसे प्रतिज्ञा करताहूं आप जोचाहैं सो कहिये मैं आपके बचनोंको सुनूंगा और करूंगा मुनिबोले कि हे राजा मैं तुम्हारे अपराधी नौकरों के किये कर्म्मको और नौकरोंसे तेरेभयोंको जानकर भक्तिसे सब वृत्तान्त कहनेको तुम्हारेपास आयाहूं प्रथमही आचार्य्योंसे राजाकी सेवा करनेवाले नौकरोंका यहदोष कहागया कि राजाकी सेवा करनेवाले पुरुषोंकी यहपापरूप आजीविका बहुत थोड़ी है जिसका स्नेह राजासेहै उसकीमानो सर्पसे प्रीतिहै राजा लोग बहुतसे मित्र और शत्रु रखनेवाले होते हैं राजाकी सेवा करने वालोंको उन सबसे भय करना कहाहै उसी प्रकार इननौकरों को भी एकमुहूर्त्त तो राजासे भयहोय अस्वस्थ चित्तपने से राजाको भुलावा देनेको समर्त्थ होतेहैं परन्तु इच्छावान् राजा को किसीदशामें भी भूलकरना योग्य नहीं राजानौकरोंकी चूकसे हानिको पाताहै और हानि पानेवाले राजा में जीवननहीं होसक्ता राजाको शिक्षा करनेवाला नाशको पाता है जैसे देदीप्य अग्नि में जीव भस्म होते हैं अप्रिय बचन और निष्फल उठाबैठी और यात्रा आदि इंगित और देह के अंगीय कर्मों से शंकाकरनेवाला मनुष्य जीवने की आशा को त्याग करके सदैव युक्तिपूर्वक राजा की सेवाकरे जो कि समर्त्थ और प्राण धन का स्वामी सर्प के समान क्रोधवान् होता है प्रसन्न राजा देवताओं के समान सब अभीष्टोंको प्राप्तकरता है और क्रोधयुक्त भी बैश्वानर अग्नि के समान मूलसमेत भस्म करताहै हे राजा यह मैंने जैसा कहा है वसाहा वतमान है और मैं बराबर तेरेबड़े २ प्रयोजनों को करूंगा मुझसामंत्री आपत्ति में बुद्धि को ऐसी सहायता देता है जैसे कि मेरे काम को पूरा करनेवाला काक परन्तु मुझ को यह सन्देह है कि जैसे मेरा काक मारागया उसीप्रकार तेरे मंत्री मुझ को भी मारेंगे यहां आपकी मैं निन्दा नहीं करसक्ता और आप जिनके प्यारेहो वह भी निन्दाके योग्य नहीं राज्यके कार्य करनेवाले और बिगाड़ करनेवाले नौकरही हैं नौकरोंपर बिश्वास मतकरो जो जीवोंकी निर्द्धनता चाहने वाले खजानेके नौकर आपके दर्बारमें वर्तमान हैं उन्होंने मुझसे शत्रुता की हे राजा जो पुरुष आपकी हानिसे निस्सन्देह राज्यको चाहते हैं रसोइये लोगों से मिलकर उन

के मनका विचार सिद्ध होता है और नहींभी होता है इससे हे राजा मैं उनके भयसे दूसरे आश्रम को जाऊंगा हे समर्थ उनका चलायाहुआ बाण मेरे काकपर गिरा छली पुरुषों के कारण मुझ अनिच्छावान्का काक यमलोकको गया मैंने तप और सूक्ष्मदृष्टी के द्वारा इसराज्य नदीको देखा जो बहुत से नौकर रूपी नक्रझषग्राह और छोटी २ मछलियों से संयुक्त है उसनदीको अपनी मृत्यु उत्पन्न करने वाले अपने काक के द्वारा जो तरातो वह नदी बिनाशाखा के वृक्ष और पत्थर कांटोंसे भरी सिंह व्याघ्रों से व्याप्त अगम असह्य हिमालय की कन्दरा के समान पड़ी दीपक के द्वारा अन्यायगढ़ और नौका के द्वारा जलगढ़ प्राप्त कियाजाता है पण्डितों ने भी राज्यरूपी गढ़ में प्रवेश होने की युक्तिको नहीं जाना ऐसा आपका राज्य कपट और अंधकारयुक्त तमोगुण से व्याप्त है यहां कोई आप से भी बिश्वास करने को योग्य नहीं है फिर मुझ को कहाँ से होगा इस हेतु से यह अच्छास्थान नहीं है यहां सत्य और मिथ्या एकसीही हैं अच्छे कर्म्म में मृत्यु है तब बुरेकर्म्म में तो कुछ सन्देहही नहीं बुरे कर्म में भी न्याय से घात होता है और अच्छे कर्म्म में कभी नहीं होता यहां ज्ञानी पुरुष बहुत न ठहरे शीघ्रही चलाजाय हे राजा एक सीता नाम नदी है जिस में नौका डूबजाती है सब जीवों का नाशक फांसीरूप उसी नदी के समान मानता हूं आप तो मधु प्रपातहो और भोजन बिष से युक्त हैं और तेरा चित्त सत्पुरुषों से बिपरीत नीचों के समान है और सर्प्पों से भरेहुये कूपसदृश शीतल जल की नदीसमान आपहो कुत्ता गीदड़ गिद्धआदि से घिरेहुये राजहंस के समान हो जैसे कि बड़े वृक्ष को पाकर लताकी बड़ी वृद्धि होती है फिर अग्नि उसलताको घेरती है और उस वृक्षको भी उल्लंघन कर वृद्धिको पाती है उसकठोर इन्धनसे भय उत्पन्न करनेवाली दावानल नाम अग्नि उसको भस्मकरतीहै ऐसे प्रकारके तेरेमंत्री हैं उनको दण्डदो और हे राजा तुम्हारी ओरसे अधिकारों पर नियत कियेहुये और आपहीसे पोषितहुये और आपसे मिलकर आपके प्यारेको मारा चाहते हैं अन्यायीकी रक्षा करनेवाले और शंका करनेवाले मैंने तेरेदेशमें इसप्रकारसे निवास किया जैसे कि कोई पुरुष वीरपत्नियोंके घरमें अथवा सर्पवाले घरमें निवासकरे नौकरोंके साथ राजाके स्वभाव जाननेकी इच्छा से मैंने इसदेशमें निवास किया कि राजा जितेन्द्रियहै या इसने कामक्रोध आदिको विजय कियाहै राजा इन मुनिशियोंका प्याराहै या प्रजालोगही राजाके प्यारेहैं इन सब तेरीबातों के जाननेकी इच्छासे यहांआया आप मुझे ऐसे अच्छे बिदित होतेहो जैसेकि भूखेकोभोजन और मन्त्री लोग ऐसे बुरे मालूम होते हैं जैसे बिना पिपासा के जल मैं उनसे

शत्रुता करने वाला नहींहूं उनका वह दोष दिखलानाही शत्रुताप्रकट करता है शत्रुकी भीतरी विपरीततासे ऐसे डरना चाहिये जैसे चोरियल सर्प से राजा बोला कि हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ आप बड़े दानमान से पूजित मेरेघरमें निवास करो और जो तुमको नहीं चाहते हैं वह मेरेयहां नहींरहेंगे और जो उनका अपराध हैवह आपहीसे जाननेके योग्य है हे मुनि जैसे कि दण्डधारण अच्छे प्रकार से होय और शुभकर्म्महोय वह आप विचार कर मेरा कल्याण करो मुनिबोले कि पहले आप काकके मारनेके अपराधको विचारकर हरएकको अधिकार से अलग करो फिर मारने के हेतुको जानकर प्रत्येकको मारो एकसे अपराध वाले बहुत मनुष्य भेद खुल जानेके भयसे कांटोंसे भी मार डालतेहैं इससे यह तुमको कहताहूं हम मृदुदण्डवाले दयावान् ब्राह्मण हैं आपकी अपनी और दूसरोंकी कुशलको चाहते हैं इससे तुमको कहताहूं कि मैं कालकवृक्षीय नाम मुनि आपका सम्बन्धीहूं आपके पिताका प्यारा मित्र सत्य संकल्प हूं आपके पिताके स्वर्गवासी होनेमें आपको राज्यासन पर वर्त्तमान होनेपर मैंने सब इच्छाओंको त्यागकर तप किया मैं प्रीतिपूर्वक तुमसे कहताहूं कि फिरअचेत मतहोना तुम दैवइच्छासे राज्यको पाकर और दुःखसुखको देखकर मन्त्री के आधीन होनेवाले राज्यसे क्यों भूलेहुयेहो तिसपीछे उत्तम ब्राह्मण के प्राप्त होनेपर राजकुल और पुरोहित कुलमें बड़ा मंगल हुआ कालक वृक्षीय मुनिने पृथ्वीको एकछत्रा करके यशस्वी राजा कौशल से उत्तम यज्ञों से पूजन कराया और कौशल राजाने भी उस हितकारी बचन को सुनकर पृथ्वी को विजय किया और जैसा मुनिने कहा वैसाही किया ६८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेद्व्यशीतितमोऽध्यायः ८२ ॥

# तिरासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह सभासद और युद्धके सहायक व सुहृदजन और सेना के अधिकारी और मंत्री लोग कैसे होने चाहिये भीष्मजी बोले कि जो पुरुष लज्जावान् जितेन्द्रिय सत्यवक्ता सन्मार्ग्गी आदिसे संयुक्त और न्याय अन्यायके कहने को समर्थ हों वह तेरे सभासद होयँ जो मंत्री बड़ेशूर और शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण जातपुरोहित इत्यादि संतोषी और श्रेष्ठकर्मी होयँ ऐसे सहायकों को सब आपत्तियों में पूछो क्योंकि सदैव पूजित कुलीन मनुष्य अपनी सामर्थ्य को नहीं छुपाता है वही पूजित और पोषित मंत्री प्रसन्न अप्रसन्न पीड़ित और घायल बहुत से मनुष्योंके समूहों कोराज्यके कर्म्मोंमें प्रवृत्त करताहै कुलीन देशी रूपवान् ज्ञानी बहुत शास्त्र के जानने वाले बुद्धिमान् स्वामिभक्त ऐसे पुरुषतेरे नौकरहोयँ और जो अ-

कुलीन लोभी निर्दयी और निर्लज्जहैं वह तेरी तब तक सेवाकरें जब तक कि गीलेहाथहों राजा ऐसे मंत्रियोंको सदैव मालके अधिकारों पर नियतकरे जोकि कुलीन और आनन्द चित्त नेत्र आदिके इंगित अर्थात् इशारेकोजाननेवाले मृदुस्वभाव देशकाल रीतोंके ज्ञाता और स्वामीके कामकी वृद्धिचाहनेवालेहों उनको राजा पारितोषिक और पोषणके योग्यमाने वह धन और बड़े२ अधिकारोंपर नियतता और दिव्यवस्त्रादिकोंका देना और आदर मानपूर्वक छोटे बड़े प्यारेभोगोंसे सुखभागी होयँ वह ज्ञानी और गुरुपूजन आदिसे संयुक्त नेकचलन व्रतकरनेवाले साधु सत्यवक्ता सदैव चाहनेवाले मंत्री आपत्तिकाल में भी त्यागनहीं करें जो नीच निर्बुद्धी धर्माधर्मकी मर्यादाको नहीं जानते हैं और उस मर्यादा के त्यागनेवाले हैं उनसे अपनेको बचाओ समूहको छोड़कर एकको न चाहै और जो समूहमें एक स्वीकार करने के योग्यहो ऐसी दशामें बहुत से मंत्रियों से एकही मंत्री कल्याण करनेवाला है उसको स्वीकारकरके इच्छासे समूहको त्यागकरे जिसका पराक्रम दृष्टिआता है और नेकनामी को उत्तममाने और मर्यादा को दृढ़करे वह साधूहै और जो समर्थों को पूज ईर्षारहित व मनुष्योंमें ईर्षा नहीं करता है और इच्छा भय क्रोध लोभसे धर्मको नहीं छोड़े और निरहंकारी सुचाली क्षमावान् सावधान चित्त और मानयुक्त होय वह सब दशामें परीक्षा लियाहुआ तेरी सलाह आदिमें सहायक होय हे कुलीन और कुलसंयुक्त क्षमावान् चतुर ज्ञानी शूर कृतज्ञसुचाली मंत्री कल्याण का लक्षण हैं ऐसे कर्म करने वाले ज्ञानी पुरुष के शत्रुलोग प्रसन्न होते हैं और मित्र बनजाते हैं इस पीछे चित्तका जीतने वाला बुद्धिमान् ऐश्वर्य का चाहनेवाला राजा मंत्रियोंके गुण अवगुणोंकी परीक्षा करे जिन मंत्रियोंकासंबंध उनपुरुषोंसे है जोकुलीनस्वदेशी कामकरनेमें कुशल और धन आदिके द्वारा किसीके स्वाधीन न होनेवाले स्वामीसे अप्रतिकूल और सबप्रकारसे परीक्षित उत्तमयोनि बेदमार्गी निरहंकारी हों ऐश्वर्य्य और राज्य की इच्छा रखनेवाले पुरुषको ऐसे मंत्री करनेचाहिये न्यायके अनुसार यह बुद्धि और पिछले कर्म्मों से पैदाहोने वाला संस्कार और सत्यता आदि से संयुक्त बुद्धि दूसरे को विजय करनेकी सामर्थ्य महा आपत्ति में भी स्थिर चित्त बड़ी कृतघ्नता में भी पवित्र क्षमा, बाहर भीतर से स्वामी से प्रीति करना स्थिर चित्तता धारण करनेकी सामर्थ्य यह अनेकगुण हैं राजा इनगुणों की परीक्षा लेकर सदैव शुभचिन्तक कार्य्य कर्त्ता और पांचों छलोंसे जुदेपुरुषों को मालके अधिकारों पर नियतकरे श्रेष्ठवक्ता वीर और कर्त्तव्य अकर्त्तव्य कामों में कुशल कुलवान्,धनाढ्य,और नेत्रोंके इंगित अर्थात् इशारे आदिके पहिचाननेवाले मृदु स्वभाव देशकालकी बिधिके जाननेवाले औरभर्त्ता

के काममें हित करने वाले मन्त्रियों को मालके सब अधिकारों पर नियतकरे जो मित्र तेजस्वी नहींहै उससे एकमत होकर कभी करने न करने के योग्य कर्म्म को निश्चय नहीं करना योग्य है क्योंकि वह सब कर्म्मों में सन्देहों को उत्पन्न करते हैं इससे थोड़े शास्त्र का जाननेवाला मंत्री यद्यपि उत्तम कुलवान और धर्म अर्थ कामसे संयुक्तभीहो तौभी मंत्रके बिचारने को समर्थ नहींहै इसी प्रकार अन्य कुलका पुरुष चाहे वह बहुत से शास्त्रका जानने वालाभीहो तौभी छोटे कामों में ऐसे अचेत होजाता है जैसेकि अन्धा और अनायक मनुष्य होताहै और जिसका संकल्प नियत नहींहै वह बिधिज्ञ शास्त्रज्ञ उपायज्ञभी हो परन्तु सदैवके लिये कामपूरा करनेको समर्थ नहीं होता और शास्त्र से रहित दुर्बुद्धी मनुष्य के केवल कर्म्म के प्रारम्भसे उसके मुख्य कर्म्म के फलोंका बिचार साबित नहीं होता है जो मन्त्री स्वामी से प्रीति करनेवाला नहीं है उसपर बिश्वास नहीं आता है इस कारण प्रीति न करने वाले मन्त्रीसे गुप्त बिचारों को प्रकट न करे वह कुचाली पुरुष मन्त्रियों समेत राजाको ऐसेपीड़ित करता है जैसे अग्नि और हवा छिद्रों में प्रवेश करके बृक्षको पीड़ा देती है कभी स्वामी नौकर को क्रोधित होकर छुड़ा देता है और मारे क्रोधके बचनों से निन्दा करता है फिरि प्रसन्नभी होजाता है वह बातें स्वामी में प्रीति रखने वाले पुरुषको क्षमा करने के योग्य हैं और मन्त्रियोंकाभी क्रोध बज्रपातकेसमान होता है जो नौकर अपने स्वामी की भलाई के कारण इनबातों को क्षमा करता है ऐसे मनुष्य को सुख दुःख आदि कामों में सदैव पूछे जो प्रीति न करनेवाला कुटिल मनुष्य दूसरे अवगुणों से भरा हुआ महाज्ञानी भी हो तौ भी राजा का मन्त्र सुनने के योग्य नहीं है जो शत्रुओं के साथ मिला हुआ है और पुरवासियों को बहुतनहीं मानता है वह शत्रु जानने के योग्य है परन्तु मन्त्र के सुनने के योग्य नहीं है अज्ञानी अपवित्र कुटिल शत्रुकी सेवा करनेवाला और अपनी प्रशंसा करने में प्रवृत्त अशुभ चिन्तकतामें लगा क्रोधी लोभी हो और नवीन नौकर चाहे स्वामीसे प्रीति करनेवाला बहुत शास्त्रों का ज्ञाता प्रतिष्ठितबड़ा भाग पानेवाला भी हो और जिसका पिता पहले समय में अन्याय से अपमान किया गयाहो वह अहंकारी फिर अधिकार पर नियत कियाहुआ भी मंत्रके सुनने के योग्य नहीं है, जो पुरुष मित्रकी ओर से छोटे कामों सेभी अलग कियागया हो फिर अन्य अवगुणों से युक्तहो वह भी मंत्रसुनने के योग्य नहीं है ज्ञानी शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् पवित्र सब कामों में कुशल और देशीही वह मन्त्र के योग्य है और जो ज्ञान बिज्ञान में पूर्ण अपने शत्रु के मन्त्री आदि के बृत्तांतका जाननेवाला शुभ चिन्तक और राजाकी आत्मा

के समानहो वह भी मंत्रके सुनने योग्य है जो सत्यवक्ता प्रसन्नचित्त और मंत्रके गुप्तरखनेमें समर्थ लज्जावान् मृदुस्वभाव बाप दादे से नौकर चलाआयाहो वह मंत्रके सुननेके योग्यहै सन्तोषी कृतज्ञ सत्यवक्ता बुद्धिमान् पापको अपना शत्रु समझनेवाला मंत्र और समयका ज्ञाता वहभी मंत्रसुनने के योग्य है हे राजा दण्डधारण करनेवाले राजा को उस के साथ सलाह करनी चाहिये और समर्थ होकर अपने मीठे वचनों से लोकको स्वाधीन करता है और पुरवासी और देशबासियों ने जिसमेंधर्म्म का बिश्वास किया वह लड़नेवाला और नीतिज्ञ है वह भी मंत्रके सुनने के योग्य है इस कारण इन सबगुणों से संयुक्त और अच्छे पूजित और बड़े २ कर्म्मों के चाहनेवाले तीन मंत्री प्रकृति के ऊपर आरूढ़होयँ वह अपनी और शत्रु की प्रकृतियों में दोष को देखे, वह राजा का देश जिसका मूल मंत्रियोंका मंत्र है अच्छी बृद्धिको पाता है शत्रु इसकेअवगुणको नहीं देखे और अवगुणों में शत्रु के सन्मुख कच्छप के सदृशजाय, और अंगों को छिपायेहुये अपने दोषको ढके राजाके जो बुद्धिमान् मंत्री अपने मंत्रके छिपानेवाले हैं वहराजा और मंत्रीलोग मंत्ररूप कवचरखने वालेहैं, राज्यको कहतेहैं कि दूतहीइसकीजड़ है और सार इसमेंमंत्र है ऐसे राज्य में जो स्वामी और मंत्री जीविका के कारण अहंकार क्रोध ईर्षा रहित अपनेको माननेवाले सब को अपने आधीन करके कर्म्म करते हैं तब सुखी होते हैं जो मंत्री पांचोंप्रकार के छलोंसे जुदे हैं उन के साथ सदैव सलाह को बिचारे इनतीनों बिचारों में नाना प्रकार के विचार करके चित्तको लगाकर सलाह के अन्त समयपर उस को उत्तर के लिये उसगुरूसे पूछे जो कि उस के असली मूल को जानता हो और उस धर्म अर्थ कामके जाननेवाले गुरू ब्राह्मण से मिलकर तात्पर्य को पूछे जब तीनोंकी रायकी ऐक्यताहोय तब असक्तराजा उसमंत्र को भी अपने काम में संयुक्तकरे जोमंत्र और तत्व अर्थके निश्चय को जानने वाले हैं उन्होंने इसप्रकार सदैव मंत्र करना कहाहै इसहेतुसे प्रजा को आज्ञावर्ती करनेमें समर्थ तेरा मंत्र इसप्रकार सदाजारी होय इस मंत्रशाला के मध्य किसीदशामें भी बौना, कुबड़ा दुर्बल, खंजा, अन्धा अज्ञान, स्त्री, नपुंसक यह सब लोग तिरछे होकर आगे पीछे ऊपर नीचे नहींघूमे उसी प्रकार नौका पर चढ़ कर बन आकाश और कुश और काश से रहित मकानपर बर्त्तमान होकर राजके बड़े अंगोंके सबदोषोंको दूरकरके उचित समयतक करने के योग्य कर्म्मका विचार करे ॥ ५७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्म्मेत्र्यशीतितमोऽध्यायः ८३ ॥

---

# चौरासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हेयुधिष्ठिर इसस्थानपर इसप्राचीन इतिहासको कहतेहैं जिसमें बृहस्पतिजी और इन्द्रका सम्बादहै इन्द्र बोले कि हे बृहस्पतिजी और वह एकपद कौनसाहै जिसको पुरुष अच्छेप्रकार से करता हुआ सबजीवोंका प्याराहोके बड़ी कीर्तिकोपावे बृहस्पतिजी बोले कि हेइन्द्र कपटसे रहित पुरुष मीठेबचनोंके बोलनेसे सब जीवोंका प्याराहोकर महान् कीर्तिको पाता है यही एक पद सबलोकका सुखदाई है इसको सबजीवोंमें करनेसे सदैव प्याराहोताहै सदैव भौंह चढ़ानेवाला जो पुरुष किसीसेबात नहीं करताहै वहमीठे बचन न बोलनेसे सबजीवोंका शत्रुहोजाता है मन्द मुसुकान सहित बार्त्तालाप करने वाला जो पुरुष सबको देखकर प्रथमही बोलता है उसपर संसारी जीव प्रसन्न होते हैं, सब स्थानों में मीठेबचन रहित दान भी मनुष्यों को प्रसन्ननहीं कर-ताहै जैसे कि ब्यंजनसे रहितभोजन और हे इन्द्र जीवों के सब धनको भी लेकर जो पुरुषमीठे बचनों को कहता है वह उन बचनों से इस सब लोक को आधीन करता है इस कारण दण्डधारी राजाको भी मीठा बचन बोलना योग्यहै इसका फल राज्य की वृद्धि करता है और उसके मनुष्य भयभीतनहीं होते हैं श्रेष्ठकर्म्म के साथ मीठेबचन बोलनेके सिवाय दूसरी कोईबात उत्तम नहींहै भीष्मजी बोले कि हे कुन्ती नन्दन बृहस्पतिजी के ऐसे बचनसुनकर जैसे इन्द्रने सब कर्म किये उसीप्रकार तुम भी सब कर्म्मों को करो ११ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेचतुरशीतितमोऽध्यायः ८४ ॥

# पचासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे राजेन्द्र संसारके धर्म्म के प्रजापालन करने वाला राजा इसलोक में किसप्रकार कीर्ति और आनन्दको पाता है भीष्मजीबोले कि प्रजापालन में संयुक्त पवित्र और शुद्धन्यायका करने वाला राजा धर्म कीर्तिको पाकर दोनोंलोकों को प्राप्त करता है युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह किसप्रकार के व्यवहारों और कैसे अदालत के हाकिमोंके साथ मुक़द्दमा फ़ैसलकरे इसको आप कहने के योग्यहो आपने जो पहले पुरुषके बिषय में गुणकहे वह एकपुरुष में वर्त्तमाननहीं है यह मेरा कथन है भीष्मजी बोले कि हेमहाज्ञानी यह ऐसेही है जैसे कि तुम कहते हो इनसब गुणोंसे संयुक्त कोई पुरुषकठिनतासे प्राप्तहोता है इसलोक में बड़ीयुक्तिसे मिश्रित स्वभाव भी कठिनतासे मिलताहै इसको फिर कहूंगा जैसे कि तुम उक्तप्रकार के मंत्रियोंको नियत करोगे वहां उसअदालत में चार ब्राह्मण भी ऐसे नियत

करो जो कि बेदोंके जानने वाले बुद्धिमान् और ब्रह्मचर्यब्रती और पवित्रहों और वैसेही पराक्रमी शस्त्रधारी आठक्षत्रियों को भी नियत करो और इक्कीस धनाढ्य बैश्यों को स्थापित करो और अच्छे शिक्षित प्रतिदिन के कर्मकरने में पवित्र देह तीन शूद्रभी अवश्य नियतकरो और ऐसे सूत पौराणिकों कोभी नियतकरो जो कि आठगुणों से संयुक्त पचासवर्षकी अवस्थाके हों और जो दूसरे के गुणोंमें दोष न लगानेवाला श्रुतिस्मृति संयुक्त नम्रसमदर्शी बिवाद कर्त्ताओंके कार्य में प्रसक्तधनका निर्लोभी महाघोर सातव्यसन शिकार, पाँशा, स्त्री, मद्यपान, दूसरे पर घातकरना, कठोर बचन अर्थ दूषण आदिसे रहितहो ऐसेपुरुष को आठो मंत्रियों के मध्य में मंत्रियों का प्रधान नियतकरो फिर उनको देशोंमें भेजो अर्थात् राजा दौरा करावे और देशके लोगों को उनसे विदित करे सो हे युधिष्ठिर तुमको इसब्यवहारसे प्रजालोग देखनेके योग्य हैं दावेकी वस्तुपर मुद्दई और मुद्दाअलह के परस्पर में बेदावा होनेपर उसधरोहररूप बस्तुको न लेनाचाहिये क्यों कि वहमुकद्दमे का नाश करने वालीहै मुकद्दमेके निश्चय बिगड़नेपर वहअधर्म तुझको और उनको पीड़ामान् करेगा और तेरादेश ऐसे भागजायगा जैसे बाजके भयसे पक्षियोंका समूह इसलोक में अच्छेप्रकार प्रजापालन करनेवाले राजा के अधर्म से सब देशभर दूसरे देशोंको ऐसे चलाजाता है जैसे कि समुद्रमें टूटीनौका उसअधर्म्म से हृदय को भय उत्पन्न होताहै और अस्वर्ग होताहै, जब कि राजाकामंत्री या उसका पुत्रधर्मासन अर्थात् न्यायाधीश वर्त्तमान होकरधर्म्ममूल राज्यमें अधर्म्म से रक्षाकरता है, अधिकारोंपर नियत होनेवाले और उचितकर्म्मको न करनेवाले राज्यके नौकर आपको आगे करके राजाकेसाथ अधोगतिकोपातेहैं, संसारका रक्षकराजा पराक्रमियोंके बलसेघायल औरदुःख से सब्द करनेवाले अनाथोंका सदैव नाथहोय इस हेतुसे मुद्दई और मुद्दाअलहकी दोनों ओर के बाद प्रतिबाद से साक्षीकी आवश्यकता होगी साक्षी और नाथ अर्थात् मुखतार वकील से रहित मुकद्दमा अधिकध्यान करने के योग्य है और अपराधों के अनुसार अपराधियों को दण्डदे धनवानों से जुर्म्मानाले और निर्द्धनियोंको कैद आदि से दण्ड देवे और दुराचारी राजाओं को भी चढ़ाई आदि से भयभीत करे और शासना करे और श्रेष्ठ पुरुषों को मीठे वचन और इनाम आदि से पालनकरे जो पुरुष राजा को मारनाचाहै या कहीं अग्नि लगानेवाला चोर और वर्णसंकर करनेवाला है उनका घात अनेक प्रकारसेहो हे राजन् अच्छेप्रकार दण्ड देनेवाले और शास्त्रानुसार कर्म्मकरनेवाले राजा को अधर्म्म नहींहोता किन्तु सनातन धर्महीं है जो अज्ञानी राजा इच्छा के अनुसार दण्डदेता है

वह इसलोक में अपकीर्तिमान होकर अन्त को नरकपाता है अन्य के अपराध से अन्य को दण्ड न दे अर्थात् पिता के अपराध में पुत्र को दण्ड न दे किन्तु पुत्र के द्वारा पिता को बुलवाकर कैदकरे और पुत्र को छोड़दे राजा कैसीही आपत्ति में किसी दूत को न मारे दूत का मारने वाला राजा मन्त्रियों समेत नरकको भोगता है क्षत्री धर्म्म में प्रीति रखनेवाला जो राजा सत्य बोलनेवाले दूत को मारे उसके पितर भ्रूणहत्या को प्राप्तहोते हैं कुलीन और कुलसंयुक्त प्रियवक्ता चतुर और अपने मालिक के कहने के अनुसार वार्त्तालाप करनेवाला स्मरण रखनेवाला सातों गुणों से संयुक्त हो, इनगुणों से भरा और रक्षक इसका दरवानहो वह इनगुणोंसे व्याप्त किलश्च नगर आदि का रक्षक होता है, संधि विग्रहका विचार करनेवाला मन्त्री धर्म्मशास्त्र के अर्थाशका जाननेवाला बुद्धिमान् धैर्य्यवान् लज्जायुक्त गुप्त मन्त्रों को छुपाने वाला होता है, कुलीन सतोगुणी पवित्र मन्त्री की प्रशंसाहोती है इसी प्रकार सेनापति भी इनगुणों से संयुक्त होना चाहिये व्यूह यन्त्र आयुध तत्वज्ञ पराक्रमी शीतोष्ण वर्षा वायु का सहनेवाला शत्रु के दोष का ज्ञाता हो शत्रु को विश्वासदे और आप किसी पर विश्वास न करे यहां तक कि पुत्रपर भी विश्वास नहीं करे हे निष्पाप मैंने यह शास्त्र का तत्वार्थ तुम से कहा राजाओंका विश्वास न करनाही गुप्तकर्म्म कहाजाता है ३३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेपंचाशीतितमोऽध्यायः ८५ ॥

## छियासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि राजा कैसेबनेहुये पुर में रहने के योग्य है अथवा कैसे पुर को बसाकर उस में निवास करे हे पितामह यह सब मुझ से कहिये भीष्म जी बोले कि हे युधिष्ठिर राजाको पुत्र और बांधव और जातिवालों समेत जहां पर निवास करना चाहिये वहां वृत्ति अर्थात् जीविका और रक्षा पूर्व्वक पूछना न्यायके अनुसारहै इसकारण क़िलश्चकी तैयारी और रक्षाकी रीति सब ब्योरेवार तुझ से कहूंगा सुनकर उसीप्रकार करना चाहिये और युक्ति से कर्म्म करना चाहिये छःप्रकार के क़िलश्च में वर्तमान होकर फिर पुरों को बसावे जो क़िलश्च सब प्रकार के धन से भी पूर्ण और चारों ओर से पांच योजन विस्तृत एक मनुष्य ऊंची पृथ्वी से घिराहुआ है वह मुख्य क़िलश्च है दूसरा महीदुर्ग अर्थात् कोट तीसरा गिरिदुर्ग जिस के चारों ओर पहाड़ हो चौथानरदुर्ग अर्थात् मनुष्योंका क़िलश्च पांचवां मृत्तिका का क़िलश्च छठा बनदुर्ग जिस के चारों ओर बनहो यह छःकिले हैं,जो पुर अर्थात् प्रधान नगर क़िले से संयुक्त धान्य और आयुधों से पूर्ण दृढ़ प्राकार और

परिखा अर्थात् परकोटा और खाई से दृढ़ हाथी घोड़े रथ आदि से संयुक्त हो और जिस में चतुर कारीगर और अनाज आदि का संचय अच्छे प्रकार वर्त्तमानहो और महाचतुर धर्म्मात्मा मनुष्यों से व्याप्त पराक्रमी मनुष्य हाथी घोड़े रखनेवाला चबूतरा और दुकान आदि से शोभायमान और प्रसिद्ध व्यापारवान उपाधि रहित निर्भय श्रेष्ठ प्रकाशवान् गीतवाद्यों से शब्दायमान उत्तम स्थानों से शोभित शूर और धनीलोगों से भराहुआ वेदध्वनि और समाज उत्सव आदि आनन्दों से संयुक्तहोकर जिस में सदैव देवपूजन होताहो उस में मंत्री और सेना को स्वाधीन रखनेवाला राजा आप निवास करे उसीपुर में खजाना सेना मित्र और व्यवहार आदि की वृद्धि करके पुर और देशों के सब दोषों को दूरकरे, तोषेखाने और अस्त्रालय की बड़ी युक्ति से वृद्धिकरे अर्थात् अन्न आदि के सबढेर और मन्त्रालय आदि की वृद्धि करे काठ लोहा भूसा कोयला लकड़ी सींग हाड़ बांस कपाल चरबी शहद आदि औषधियों का समूह सनशालवृक्ष का रस, धान धनुष बाण चमड़े की नसें, देह, बेत, मूंझ, बल्वज, तृण, धन्वावाण, पीनेकी वस्तु, कूप, बहुत जलवाले तड़ाग, हौज़, और दूधके बड़ेवृक्ष यह सब राजासे रक्षाकरने के योग्य हैं और बड़ीयुक्तिसे सत्कार कियेहुये आचार्य्य ऋत्विज, पुरोहित और बड़े तीरंदाज शिल्पी, ज्योतिषी, वैद्य ज्ञानी, शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान् लोग और अच्छी शिक्षापाये हुये चतुर शूर और बहुत शास्त्रों के जाननेवाले कुलीन सतोगुणी सब अधिकारों पर नियत और प्रवृत्त धार्मिक पुरुषों को उपदेश का राजा पूजन करे अर्थात् उनका पोषण करे और धर्म्म के त्यागी पुरुषोंको दण्डदे और सब वर्णोंको बड़ीयुक्तिसे अपने कर्म्मों में प्रवृत्त करे इसप्रकार दूतोंकेद्वारा पुरवासी और देशवासियों को भीतर बाहर से अच्छे प्रकार निश्चयकरके फिर कर्म्ममें प्रवृत्त करे राजा आपदूतों को और मंत्र खजाना आदि दण्ड को अधिकतर देखे क्योंकि सब प्रबन्ध के मूलयही हैं दूतोंके नेत्रोंसे पुर और देशमें उदासीन शत्रु मित्रोंके सब इच्छा कर्म्मोंको जाने फिर सावधानी से उनका सब प्रबन्ध करना योग्यहै जो राजा सदैव भक्तोंको पूजनेवाला और शत्रुओं का दण्ड देनेवाला है उसको सदैव यज्ञों से पूजन करना योग्यहै और पीड़ा रहित दान भी करना चाहिये प्रजाकी रक्षाकरना चाहिये धर्म्मको पीड़ादेनेवाला कर्म्म न करना चाहिये दुखी अनाथ वृद्धा विधवा स्त्रियों की इच्छा पूरीकरके उनकी रक्षा और जीविका को सदैव विचार करे राजा आश्रमों में तपस्वियों का सत्कार पूर्वक पूजन और प्रतिष्ठा करके सदैव कालके अनुसार वस्त्र भोजन पात्र आदिको देवे राज्य और देशके सब कार्य्योंको अपने देहसमेत तपस्वियों को निवेदनकरे

और सदैव बड़ीयुक्ति के साथ नम्रता पूर्व्वक वर्तमान हो राजा उस प्रकार के कुलीन और बहुत शास्त्रों के जाननेवाले सर्वत्यागी तपस्वीको देखकर वस्तु आसन भोजन आदिसे सदैव पूजन करता रहै राजा आपत्ति में तपस्वीपर विश्वासकरे क्योंकि चोर भी तपस्वियोंपर विश्वास करतेहैं परंतु तपस्वी के पास खजानों को नहीं रक्खे क्योंकि धनके कारण चोरोंसे उसके मारे जानेका भयहै, सदैव प्रतिदिन सेवन और पूजन न करे और अपने देशोंमें दूसराभी तपस्वी मित्र करना चाहिये और शत्रुके देशों में बनों में और सांवन्त नगरों में भी दूसरा तपस्वी मित्रकरना चाहिये शत्रुके देश और बनमें वर्त्तमान उनतपास्वियों के भागोंको सत्कार और प्रतिष्ठासे भेट करावे जिससे कि अपने देश में वह तीव्र व्रतवाले तपस्वी किसी आपत्तिमें शरणागत राजाको उसकी इच्छानुसार शरणदें यह लक्षण देशमिश्रित तुझने कहा इस प्रकार को नगर में राजा आप बास करनेको योग्य है ३३॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मे षडशीतितमोऽध्यायः ८६ ॥

# सत्तासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह देशके पालन और स्वाधीन करने में जो विचार हैं उन्हें आप वर्णन कीजिये क्योंकि मैं चित्तसे जानना चाहता हूं, भीष्मजी बोले कि मैं देशकी रक्षा और स्वाधीन करने की सबरीतें तुझ से कहता हूं तुम चित्तलगाकर सुनो गांवका जैसा प्रधान होता है वैसाही दश गांवका दूसरा प्रधान करना चाहिये इसीप्रकार बीससौ हज़ार आदि ग्राम का प्रधान करना चाहिये वह प्रधान ग्राम और देशके बासियों के दोषोंको निश्चयकरे और उन सबबातोंको दशग्राम के प्रधान से कहे वह बीसवाले से इसीप्रकार क्रम से बीसवाला सौवाले से और सौवाला हज़ार गांव के प्रधान से कहे और वह सबप्रधान लोग उन वस्तुओं को भोजन करें जो कि ग्राम वा देशमें उत्पन्नहों एक गांववाला दशगांववाले को और दशगांव वाला बीसगांव वाले को इसी प्रकार एक से एक ऊपरवाले को भेजदे वह सौ ग्रामका स्वामी सत्कार कियाहुआ एक ग्राम के भोगने को समर्थ है और जो बड़ा और श्रेष्ठ वृद्धि पायाहुआ मनुष्यों से भरादेश हो उसमें हज़ार गांव का स्वामी राजाका नायब होता है वह हज़ार गांवका स्वामी नगर की उत्तम शाखाओं के भोगने के योग्य है वही देशी मनुष्यों से संयुक्त उस नगर की शाखा अनाज धन आदि के भोग से प्रजाके पोषणकरने को भी योग्य है उन का काम जो युद्ध है और ग्राम से संबंध रखता हो धर्म का जाननेवाला और सावधान कोई मंत्री उन उन कामों

को देखे अथवा प्रत्येक नगर में हर एक बात का बिचारने वाला एक पुरुष नियत होय और नगर का स्वामी भयानक रूप होकर ऊंचे स्थान पर बिराजमान होके अपने प्रताप से उन सब सभासदों को आच्छादित करे जैसे कि चंद्रमा नक्षत्रों के तेज को दबा लेता है उस देश में घूमने वाला कोई दूत उनके वृत्तान्तों को पहुँचावे और जो अधिकारी रूप राक्षस मारने की इच्छा करने वाले पापात्मा दूसरे के धन को हरने वाले मूर्ख हैं उन सब से जीवों की रक्षा करे, मोल बेच मार्ग और अनाज वा अपने लड़के स्त्री समेत प्राप्त किये हुये धन और माल को अच्छे प्रकार से ध्यान करके व्यापारियों पर महसूल नियत करे और पैदाइश धन और खर्च और कारखाने को सदैव बारबार देखकर शिल्प के कारखाने के विषय में शिल्प विद्यावानों पर महसूल नियत करे प्रथम राजा के छोटे बड़े महसूलों को नियतकरे जिससे कि प्रजा पीड़ावान् नहीं होवे पृथ्वी का स्वामी वैसाही करे अनाज आदि फल और परिश्रम आदि कर्म्म को अच्छे प्रकार से विचारकर सब महसूलों को बिचार करे फल और कर्म्म इन दोनों में कोई बिना हेतु के वर्त्तमान नहीं होता है जैसे कि राजा और कर्म्मकर्त्ता दोनों कर्म्मों के भोगनेवाले होयँ उसी प्रकार ठीक बिचार कर राजा की ओर से महसूल नियत करना चाहिये और अपनी जड़ देश को नहीं काटे और लोभ से दूसरोंकी जड़ खेती आदि को नहीं काटे और राजा इच्छारूपी द्वारों को बन्द करके अत्यन्त प्रसन्न होता है और जो बहुत खानेवाले प्रसिद्ध हैं वह उस राजा के साथ शत्रुता करते हैं जब प्रजा शत्रु है तब राजा का कल्याण कहाँ है और वह शत्रु होकर फल को नहीं पाता है सावधान बुद्धिवाले राजा को बछड़े के समान होकर देश को दुहना योग्य है और हे युधिष्ठिर नौकर और बछड़ा पराक्रमी होने पर पीड़ा को सहता है और माता के दूध से रहित किया हुआ बछड़ा कर्म्मको नहीं करता इसीप्रकार अत्यन्त दुहा हुआ देश भी बड़े कर्म्मको नहीं करता है जो राजा आप देशकी रक्षा करताहै वह श्रेष्ठ महसूल योग्य पृथ्वी की भेंज ले आनन्द पूर्वक निर्वाह करता है और उत्तम फल को पाता है उस देश में आपत्ति के लिये दिये हुये धन की अधिक वृद्धि करे देश खजानारूप है और जैसे कि खजाने की रक्षा महल में होती है उसी प्रकार पुरवासी देशवासी सब शरणागत और अल्प पराक्रमियों पर भी सामर्थ्य के अनुसार राजा कृपाकरे बाह्यजन चोर बनबासी आदि को दूसरे के सुपुर्दकर के उससे बहुत धन लेकर [illegible] का देश सुख पूर्वक भोगने के योग्य है इस प्रकार से सुखी दुःखी कोई मनुष्य भी राजा पर अप्रसन्न नहीं होते पहले ही भेंजकी तहसील को प्रकट करके अपने देश में भय दिखलावे और कहे कि

यह शत्रु की सेना का भय महा आपत्तिरूप है उसको भी हम देश के नष्ट होने का कारण जानते हैं जैसे कि बांस के वृक्ष में फल की उत्पत्तिका होना मेरे शत्रु चोरों के साथ बड़े उद्योग करके अपने नाश होने के लिये इस देश को पीड़ा देना चाहते हैं इस घोर आपत्ति में असह्य भय होने से आप लोगों की रक्षा के लिये तुमसे धन को चाहता हूं और भय दूर होने पर तुम्हारा सब धन फेर दूंगा और शत्रु लोग जो यहां से धन हरले जायँगे वह फेर न देंगे और स्त्री आदि तुम्हारे सब नष्ट होजायँगे और यह भी बात ठीक है कि पुत्र स्त्री के लिये धन के इकट्ठे करने की इच्छा कीजाती है मैं तुम्हारे प्रभाव से प्रसन्न होताहूं जैसे कि पुत्र के उदय में पिता प्रसन्न होता है मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार देश के साथ तुम्हारी सुख पूर्वक रक्षाका प्रबन्ध करता हूं और आप लोगों को आपत्तियों में बोझका सहनेवाला होना चाहिये जैसे कि श्रेष्ठ बैल भार को सहते हैं किसी आपत्ति में धनको अत्यन्त प्यारा न समझना चाहिये समय का जानने वाला राजा इन मीठी और सफा बातों को आज्ञापत्र के द्वारा अपने नौकरों को विदित करे और धन के लेनेवाली युक्तियों को प्रजा पर जारी करके धन को ले पर कोटा और नौकरों के पोषण आदि का खर्च और युद्ध सम्बन्धी भय वा मनोरथका सिद्धकरना और उसकी रक्षाको अच्छेप्रकारसे विचार कर वैश्यों को भेजदेनेवालाकरे बनबासी वैश्य प्रबन्धसे रहितहोकर नाशको पाते हैं इस कारण उन वैश्यों में बड़ी मृदुतासे कामकरे हे राजा वैश्योंकी रक्षा और मीठेवचनोंसे आश्वासन दान मान और बराबरभाग उनकी इच्छाके अनुसार करना योग्यहै और उनमें बराबर फलको भोगना चाहिये जिससे कि वह देशके सब ब्यवहार और खेती आदिकी वृद्धिकरें इस कारण युक्तिपूर्ब्बक वैश्योंपर साधारण महसूल लगावे और सबस्थानों में मंगल करना यह बात वैश्योंमें ही सुगमता पूर्वक है इनके समान कोई उत्तमनहीं है ३९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मे सप्ताशीतितमोऽध्याय: ८७ ॥

# अट्ठासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हे पितामह जब समर्थ राजा भी खजानेकी इच्छाकरें तब कैसा कर्म्मकरे वह कृपाकरके कहिये भीष्मजी बोले कि धर्म्मका चाहने वाला प्रजाकी वृद्धिमें प्रवृत्त राजा देशकाल और बुद्धिके पराक्रमके अनुसार प्रजाको उपदेश करे राजा जैसे उनके और अपने कल्याण को माने उसी प्रकारके कर्मोंको सबदेशमें जारी करे देशकोश हद निकालने के समान दुहै जैसे कि मधुमक्खी वृक्षको और बछड़ागौको दुहताहै और थनोंको पी-

ड़ित करके नहीं काटता है इसी प्रकार राजा जोंकके समान देशको मृदुतासे पिये और जैसे व्याघ्री बेटों को हरणकरे उसी प्रकार काटे और पीड़ा न दे जैसे तीतर चोचवाला चूहा और सदैव पैरोंको मृदुता पूर्व्वक काटता है उसी प्रकार देशको पानकरे अर्थात् उससे मालगुजारीले थोड़ी थोड़ी मालगुजारी से बृद्धिपानेवाली प्रजापर पहले थोड़ी भेज बढ़ावै फिर क्रम २ से अधिक कर के खजाने की वृद्धिकरे बोझा लेजाने के योग्य बैलों को सिखाता हुआ बस्तुओं की वृद्धि करे और बड़ी युक्तिपूर्व्वक सुगमता से पाशों को धारण करावे अर्थात् इसप्रकार से प्रजाको बशीभूत करे पाशों से जुदेहोतेही शीघ्र मरजांयगे क्योंकि कठिनता से स्वाधीन होनेवालेहैं इससे उचित युक्तियोंसे भोगने के योग्यहैं इसी हेतु सब आरम्भ कर्म्म हरएक आदमी में कठिनतासे होतेहैं उत्तम पुरुषों को मीठे वचनों के द्वारा बिश्वास कराके दूसरे भारवाहकताके योग्य मनुष्य भोगने के योग्यहैं तदनन्तर उनउत्तम पुरुषोंके द्वाराउन वारकसीके योग्य आदमियोंको परस्परमें पृथक् करके मीठे बचनोंसे बिश्वास कराके बिना उद्योग सुखपूर्वक भोगे हरस्थान में बेसमय पर महसूल उनपर नहीं जारी करे समय और बुद्धिके अनुसार क्रमपूर्व्वक मीठेबचनोंसे नियत करे मैं माया रहित उनयुक्तियोंको कहताहूं कि बिनायुक्तिके स्वाधीन करना घोड़ोंको क्रोध युक्त करताहै शराबखाने के लोग और वेश्याओं के मिलाने वाले और नीच स्वभाव से धर्म्म नष्टकरने वाले कुटिनी स्त्री ज्वारी अथवा जो कोई इसप्रकार के पुरुषहैं और देशको नष्ट करनेवाले हैं वह सब दंडके योग्यहैं देशमें बर्तमान ऐसे लोग कल्याण रूप प्रजाको पीड़ा देनेवालेहैं बिना आपत्ति के किसीसे कुछकोई मांगने के योग्य नहीं हैं मनुजीने पहलेही यह जीवोंकी मर्य्याद कही उसके अनुसार कर्म्म करें जो इसलोक में कर्म्म नहीं करतेहैं वह निस्सन्देह नाशको पावेंगे समर्थ राजा जो इनको सुमार्गमें नियत नहीं करता वह उस पाप के चौथेभाग को भोगता है यह श्रुति है उसपापको ऐसे भोगता है जैसे कि पुण्यको जो पापी हैं वह सदैव राजा से दण्डके योग्यहैं जो इनको दण्ड नहींदेता है वह राजा पापात्माहै जैसे कि राजा धर्म्म के चौथे भागको भोगताहै उसी प्रकार पापके चौथे भागको भी भोगता है शराबखाने आदि स्थानों में प्रसंग करना ऐश्वर्य्यको नाशकरता है काममें प्रवृत्त पुरुष सब नष्टकर्मोंको त्यागकरे प्रीति में फँसा हुआ पुरुष मद्यमांस वा दूसरे का धन और स्त्रियोंको हरण करता है और वैसीहीआज्ञा जारी करताहै या वैसेही शास्त्रको दिखलाता है जिन में कि गृहस्थाश्रम के समान नहीं हैं वह उसको आपत्ति के लिये चाहतेहैं उनको क्रोधरहित हो धर्म और दयापूर्व्वक देना योग्यहै तेरेदेशमें ठग और चोर न होंय यह लोग

इन प्रजाओंके मारनेवालेहैंइनसे ऐश्वर्य नहीं होसक्ता जो जीवों पर दयाकरते हैं और प्रजाकी बृद्धि करतेहैं वहलोग तेरेदेशमें बृद्धिपावें जीवोंके नाशकारी बृद्धिमतपाओ और नियत महसूलसे अधिक लेनेवाले अधिकारी दण्ड के योग्य हैं दूसरे अधिकारी उन भेजदेनेवालोंको इत्तिलादेकर भेजका धन दाखिलकरावें खेतीरक्षा गौ व्यापार और जो दूसरा इसी प्रकारका कोई कर्म्म है उनको बहुत मनुष्योंसे करावे दूसरी दशा में कर्म्मका नाशहो जो खेती गोपालन व्यापारमेंभी कर्म्मकरनेवाला मनुष्य कुछसंशयको पाताहै उससेराजाकी निन्दाहोतीहै धनीलोगोंको खानेपीनेकी वस्तु और बस्त्रादिसे प्रसन्नकरे और यहकहे कि तुममेरी प्रजापर अनुग्रहकरो हे युधिष्ठिर यह धनवान्नाम राज्यका बड़ाअंगहै और सबजीवोंमें प्रधानहै जोज्ञानी शूर धनीस्वामी धर्म्मकरनेवाला तपस्वी सत्यवक्ता बुद्धिमान् है वहप्रजाकी रक्षाकरताहै इससे सबजीवोंमें प्रीतिमान्हो और सुहृदता दया अक्रोधताको पालनकरो इसप्रकार सुहृदता सत्य कथनमें प्रवृत्त मित्र खजाने पराक्रमी सेनासे संयुक्त पृथ्वीको पाओगे ३२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेअष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८ ॥

## नवासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि तेरेदेश में बनस्पति और खानेकेयोग्य फलोंको कोई न काटे क्योंकि ज्ञानियों ने यहधर्म्म कहा है कि मूल और फल ब्राह्मणोंका धन है ब्राह्मणों से जो शेषरहै उसको दूसरे लोग खांय अन्य मनुष्य किसी दशा में भी ब्राह्मणोंको बिनादियेहुये न लें हे राजा जो वेदपाठी ब्राह्मण अपनी जीविकासे पीड़ित होकर देश त्यागनेकी इच्छाकरे तब उसकी और उसकीस्त्रीकी जीविकाविचार करे और जो वह ब्राह्मण नहींलौटे उसदशा में ब्राह्मणों की सभामें कहै कि अब यह संसार किसमर्य्याद में कामकरेगा तो निस्सन्देह लौटेगा जो इसपर भी उत्तर नहीं दे तो उसके पीछे कहना चाहिये कि पिछला अपराध क्षमाकरना योग्य है यह सनातन धर्म्म है यह मनुष्यों का कथन समझकर मैं श्रद्धा नहींकरूं यहबात ठीकनहीं अवश्य करताहूं जो आजीविका नियत करनेपर भी देशको त्यागकरे तो भोगपदार्थों से निमंत्रणकरे और जो आजीविकाकेही कारण देशको त्यागे तब उसको नियत करे यहां जीवोंकी जीविका खेती गोपालन व्यापार और स्वर्ग और तीनों वेद हैं वह जीवोंको ऐश्वर्यवान् करते हैं उसके क्षीणहोने से उसके शत्रुरूप जो चोरहैं उनके मारने के वास्ते ब्रह्माजी ने क्षत्रीकुलको उत्पन्नकिया इससे हे राजा तुम शत्रुओं को बिजयकरो और प्रजाकी रक्षाकर यज्ञों से देवताओं का पूजन करके युद्ध में बीरतापूर्वक लड़ो जो राजा रक्षाके योग्य पुरुषों के

रक्षा करता है वह राजाओं में उत्तम है हे युधिष्ठिर राजाको सदैव सवप्रजा से ज्ञात होनाचाहिये आदमी आदमीको कैसेभोगे अपने आदमियों से दूसरोंको और दूसरोंसे अपने आदमियों को रक्षाकरना अथवा अपने आदमियों की अपनेही आदमियों से सदैव रक्षाकरो हे राजा अपनेको सब ओर से रक्षित करके पृथ्वीकी रक्षाकरो ज्ञानियोंने इससबको आत्मारूप मूल रखने वाला कहा मेरा प्रतिबन्धक कौन है और व्यसनवालों से मेरास्नेह क्यों है और विना गिरायाहुआ शत्रुकौन है और मुझको कहां से दोषलगता है यह सदैव विचारकरे दूतलोग दिनके अन्त में वृत्तान्तको कहते हैं या नहीं कहते हैं प्यारे और गुप्त दूतोंसे पृथ्वीको संयुक्त करे और जो मेरे वृत्तांत को जाने उस दशा में कहते हैं या नहीं कहते हैं मेरेदेश और राज्य में यश अच्छा मालूमहोता है या नहीं और जो पुरुष धर्म्मज्ञ धैर्य्यवान् और युद्ध में पीठ न फेरनेवाले क्षत्रियों के देशमें गुज़ारा करते हैं और जो राजा के पास नौकर हैं सबमन्त्री और मध्यस्थ पुरुषों में जो तेरी प्रशंसाकरे या पीछे से निन्दाकरे उनसबका सत्कार कराओ और अच्छे प्रकार से सबका प्रसन्न करना असम्भव है क्योंकि सब जीवों में शत्रु मित्र और उदासीन होते हैं युधिष्ठिर ने कहा कि भुजाओं के जोर में और गुणों में समान पुरुषों के बीच कौन कैसे अधिकहोय और फिर वह सबमनुष्यों को आज्ञावर्ती कैसेकरे भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर जो चेष्टाकरने वाले जीव स्थिर जीवों को भक्षण करते हैं इसी प्रकार डाढ़रखने वाले विना डाढ़वालों को खाते हैं और डाढ़में विषरखनेवाले क्रोधयुक्त सर्प अन्यसर्पोंको खाते हैं इनसे और शत्रुओंसे राजा सदैव सावधानरहे यह सब गिद्धके समान अचेत होकर गिरते हैं तेरेदेशमें कर लगने के कारण पीड़ामान व्यापारी भयभीत तो नहीं होतेहैं और बनवासी मनुष्य थोड़े से धनके बदले बहुत सी वस्तुओं को मोल तो नहीं लेते अत्यन्त पीड़ामान रोने वाले क्या देशको तो नहीं त्यागते जो राज्यके धुर को उठाते हैं वह दूसरों काभी पोषणकरते हैं यहांकेदान से देवता पितरगण मनुष्य सर्प राक्षस पक्षी पशुआदि सबका जीवनहोता है हे भरतवंशी यह देशकी रीति और राजाओं की रक्षा तुमसे वर्णनकी इस प्रयोजन में वर्त्तमान होकर फिर कहूंगा ३० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकोननवतितमोऽध्यायः ८९ ॥

## नब्बेवां अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि बड़े ब्रह्मर्षि अंगिरावंशी प्रसन्नचित्त उतथ्यऋषिने जिन वचनोंको युवनाश्व के पुत्र मांधाताकेलिये वर्णन किया उसबड़े ब्रह्मज्ञानी

उतथ्यऋषिने जिस प्रकारसे उसको उपदेश किया वह सब मैं तुझसे कहता हूं उतथ्यजी बोले कि राजा धर्म्म के लिये होता है न कि इच्छापूर्वक कर्म्म करनेको हे मांधाता तुम इसको जानो कि राजा लोकका रक्षकहै जो राजा धर्म्मको करता है वह देवभाव के लिये कल्पना कियाजाता है जो अधर्म्म को करताहै वह नरकको जाताहै जीवधर्म्म में नियतहोते हैं और धर्म्म राजा में वर्त्तमान होता है जो साधू राजा उसको उपदेश करता है वह पृथ्वी का स्वामी है बड़ा धर्म्मात्मा धनी राजा धर्म्मरूप कहाजाताहै राजा धर्म्मरूपनहीं है जहांऐसाकहाजाताहै वहाँ देवता निन्दाकोपातेहैं अपने धर्म्ममें वर्त्तमान पुरुषोंके मनोरथ सिद्धहुये मालूम होतेहैं सबसंसार उसीमंगलमें वर्त्तमान होता है जब धर्म्मरूप रीतिका नाशहोता है तब बड़ा अधर्म्म वर्त्तमान होता है जब पाप नहीं हटाया जाताहै तब अहर्निश भय उत्पन्नहोता है हे तात जब पाप नहीं रोकाजाता है तब धर्म्मसे साधुओंकी मर्य्याद भी घटती है कि यह धन मेरा है अथवा यह मेरानहीं और जब पापकी प्रबलता होती है तब मनुष्यों की स्त्री गौ क्षेत्र स्थान दृष्ट नहीं आते तब देवता पूजाको और पितर स्वधा को नहीं जानतेहैं और अतिथि भी नहीं पूजेजाते और व्रतकरनेवाले ब्राह्मण भी वेदोंको नहीं प्राप्तकरते और वेदपाठी ब्राह्मण यज्ञोंको विस्तृत नहीं करते शस्त्रोंसे घायलहुये के समान जीवोंका चित्त भय आदि से व्याकुलहोता है ऋषियोंने आप दोनों लोकोंको देखकर राजाको उत्पन्नकिया कि यह संसारी जीवों का अच्छा पालन करेगा जिसमें पालनशक्ति विराजमान होती है उसको राजा कहते हैं और जिसमें धर्म लुप्तहोताहै उसको देवताओंने वृषिल कहा भगवान्‌का धर्म्म वृषनाम है जो उसको बन्दकरता है उसको देवताओंने वृषिल जानाइसकारण धर्म्मकी अधिकवृद्धिकरे धर्म्मकी वृद्धि होनेपर सब जीव सदैव बृद्धिको पाते हैं और जिसके नाशवान् होनेपर सब नाश को पाते हैं इसहेतु धर्म्मका लोप नहीं करना योग्य है हे राजाधर्म्म धनसे या धारणसे जारी होता है यह निश्चय है उस धर्म को निषिद्ध कर्म्मोंका नाशकरनेवाला कहा ब्रह्माजी ने जीवों की बृद्धि के लिये धर्मको उत्पन्न किया इसकारण प्रजाके उपकारार्थ धर्म्मको करे इसीसे धर्म्मको महाउत्तम कहा, हे पुरुषोत्तम, राजावही उत्तमहै जो प्रजाको धर्म्मका उपदेश करता है और काम क्रोधको त्यागकर धर्म्मको पालन करे धर्म्म राजाओं का बड़ा कल्याण करने वाला है हे मांधाता ब्राह्मण धर्म्म का उत्पत्ति स्थान है इस हेतु उनको सदैव पूजे मित्रता से पृथक् राजा ब्राह्मणों की इच्छाआदिको पूर्णकरे उन्हों की इच्छापूर्ण न करने से राजाको भय उत्पन्नहोता है मित्र वृद्धिको नहीं पाते और शत्रुओं की भी वृद्धि होजाती है विरोचन के पुत्र

राजा बलिने अज्ञानता से सदैव ब्राह्मणों में दोषलगाया इसकारण उससे वहलक्ष्मी जुदीहुई जो उसकेपास प्रतापवालीथी फिरवहलक्ष्मी उससे पृथक् होकर इन्द्रके पासगई जब उसने इन्द्रके पास लक्ष्मी को देखा तो बड़ा शोच कर पश्चात्ताप करने लगा हे समर्थ दूसरे के गुण में दोप लगाने का और अहंकार करने का यहफल है सो हे मांधाता सावधान रहो कि यह प्रताप वाली लक्ष्मी तुमको त्यागनहींकरे लक्ष्मी का पुत्र दर्प अहंकार नाम अधर्म से उत्पन्न हुआ है यह श्रुति है हे राजा उससे बहुत से देवता और असुर नाश कियेगये और बहुत से राजऋषि भी नाश किये गये हे भरतवंशी उस अहंकार को बिजय करके राजा होता है ऐसा निश्चय जानो और उस से हाराहुआ दास होता है सो तुम अहंकार के साथ अधर्म्म का सेवन मतकरो वही बात करो जो सत्य है हे मान्धाता जो बहुतकाल पर्य्यन्त वर्त्तमान रहा चाहते हो तो मद्यसे प्रमत्त पाखण्डी लोगों का संग और उन से मिले हुये के सेवन को त्याग करो पकड़े हुये मंत्री से और स्त्री पहाड़ कुटिल मार्ग और अगम्य स्थान हाथी घोड़ा सर्प आदि से सदैव चैतन्य रहना चाहिये रात्रि के फिरने को त्यागकरो अदानता अहंकार कपट क्रोध इत्यादि का त्यागकरो हे राजा बिनाजाने नपुंसक और स्वतन्त्र अन्य की स्त्री और कन्याओंके साथ विषय को न करो वर्णोंके मेल होने से कुलोंमें पापी राक्षस नपुंसक अंगहीन विक्षिप्त उत्पन्न होते हैं और अन्य प्रकार के भी मनुष्य उत्पन्न होते हैं जब राजा असावधानी करता है तब राजाको प्रजाकी वृद्धि में अधिक कर्म करना उचित है अचेत क्षत्री को महादोष उत्पन्न होता है और प्रजाको वर्णसंकर करनेवाले अधर्म्म की बड़ी वृद्धिहोती है गरमी में सर्दी वर्त्तमान होती है और शरदऋतु में सर्दी वर्त्तमान नहीं होती वर्षा का न होना या अधिक होना औररोग प्रजा में वर्त्तमान होते हैं उसदशामें धूम्रकेतु और घोर ग्रहआदि साम्हने प्रकट होते हैं और राज्यके नष्ट करनेवाले बहुत उत्पात दृष्टि आतेहैं जो आत्मा की रक्षा किये बिना राजा प्रजा की भी रक्षा नहीं करता है उसकी प्रजा नाशको पाती है तबवह भी नाश को पाता है एकके धनको दो लेते हैं और दोके धनको दूसरे अन्य बहुत से लोग लेते हैं और कुमारियां बहुत गुप्त करलीजाती हैं तब राजाका दोष कहा जाता है जब राजा धर्म्म को त्यागकर असावधानी से कर्म करता है तब मनुष्यों में एककीभी मर्य्याद नियत नहींहोती है कि यह मेराहै ४० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेनवतितमोऽध्यायः ९० ॥

# इक्यानबेवां अध्याय ॥

उतथ्य बोले कि समयपर वर्षा करने वाला पर्जन्य और धर्म्म करनेवाला राजा जो यह सम्पत्तिहोतीहै वह सुखसे प्रजाको पोषण करती है जो धोबी बस्त्र या दुशाले आदिके मैल दूरकरने को नहीं जानताहै वह उत्पन्नभी अनुत्पन्न साहै इसीप्रकार ब्राह्मण चत्री बैश्यों के मध्य में भी यही बातहै और वर्णों में चौथा शूद्र जो नाना प्रकार के कर्म्मों में बर्त्तमान है उसमें भी यही बातहै अर्थात् अपने धर्म्मों के बिपरीत धोबी के समानहै सेवा करना शूद्र में खेती करना वैश्य में और दण्डनीति राजा में और ब्रह्मचर्य्य, तप, मन्त्र और सत्यता ब्राह्मणों में वर्त्तमान है उनके बीचमें जो क्षत्री पवित्र वस्त्र के समान प्रजाकी नेक प्रकृति को जानता है वह पिता के समान प्रजापति है हे भरतबंशी राजा के सब चलन सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग रूप है राजाही युग कहाजाता है चारों बर्ण और चारों आश्रमों का धर्म्म इसी प्रकार चारों वेद यह सब अज्ञानताको प्राप्त होते हैं जब कि राजा अचेत होता है तीनों वेद तीनों अग्नि और दक्षिणा सहित सब यज्ञ मोह को प्राप्त होते हैं राजा ही जीवों की बृद्धि का करनेवाला है जो धर्म्मात्मा है वह बृद्धि करने वालाहै और जो अधर्म्मीहै वह नाशकर्त्ताहोताहै राजाकीभार्य्या पुत्र भाई बंधु और सुहृद्जन सब मिलकर शोच करते हैं जबराजा अचेतहोताहै, राजा को अधर्म्म रूपहोनेसे हाथी, घोड़े, ऊंट, खच्चर, गधे और सबजीव पीड़ा पातेहैं हे मान्धाता ईश्वरने पराक्रमको निर्बल के लिये उत्पन्नकिया क्योंकि निर्बलही बड़ाजीव है जिसमें सबवर्त्तमानहै हेराजा यश निर्बलजीवको सेवन करता है और जो जीव उसके कुलमें हैं वहसब राजाको अधर्म्म में प्रवृत्त होने से शोच करते हैं निर्बल और मुनि, सर्पकी जोआंख है उसको चमा के अयोग्य मानताहूं इस से निर्बल को पीड़ामतदो हेतात तुम सदैव जिनका अपमानहुआ हो उनको निर्बलजानो निर्बलों के नेत्र तुमको बन्धुओं समेत नाश न करेंगे निर्बल से नष्टहुये राजा के कुलमें कुछ भी नहीं रहता मूलतक भस्मकर देता है इससे निर्बलको पीड़ामतदो निश्चयकरके निर्बल सबलसे उत्तमहै क्योंकि पराक्रमी को निर्बल से नष्टताके विशेष कुछ प्राप्त नहीं होता अपमान कियाहुआ वा घायलहुआ अथवा पुकारनेवाला मनुष्य जोरक्षकको नहींपाता है वहां दैवका रचाहुआ दण्ड राजाको मारता है हेपुत्रतुम पराक्रमीहोकर निर्बल मनुष्यों को मतभोगो अर्थात् बलसे उनसे भेंज मतलो और तुझको निर्बलके नेत्रऐसे भस्म न करें जैसे कि मकानको अग्नि जिनको मिथ्यादोष लगाया गया उन रोनेवालेआदमियों के जोअश्रुपात गिरतेहैं वह उनके मिथ्याबोलने

से उनके बेटेऔर पशुओंको मारतेहैं जोवह पाप आपको न होगा तो बेटोंको
प्राप्त होगा वा पोतोंमें फलहोगा कियाहुआ पापपृथ्वीके कर्म के समान शीघ्र
नहीं फैलता जिस स्थानपर निर्बल घायलहोताहै वहां दैवकारचाहुआ महा
भयानकबज्रपात आकरटूटताहै जब देशवासी योगीब्राह्मणोंके समानबराबर
भिक्षुक रूपहोकर भिक्षाको मांगतेहैं उसप्रकारके मनुष्य राजाकानाशकरतेहैं
जब राजाके देशमें बहुत से नौकर लोग अन्यायसे कर्मकर्त्ता होते हैं वह
राजा का बड़ा पाप है जब विपरीत युक्ति राजा इच्छा धनके आधीन हो-
कर दुःखसे प्रार्थना करनेवाले पुरुषों का धन आदिछीनले वह राजाकामहा
नाश करनेवाला है वृक्षबड़ा उत्पन्न होताहै और वृद्धिको पाताहै तब जीवोंका
आश्रयहोता है और जब वृक्षकाटाजाताहै और जलाया जाताहै तब आश्र-
यी जीव महादुःख पाते हैं जब राज्य में राजगुणों के कहने वाले मनुष्य
उत्तम धर्म्म और संस्कारको करते हैं तब राजाकी वृद्धि होतीहै और धर्म
में असावधानी होनेसे उनका किया हुआ अधर्म्म राजाके पुण्यको नाश
करता है और पापका भागी कर देताहै जिस स्थान पर सत्पुरुषों के जानेहुये
पापात्मा लोग फिरते हैं वहां कलियुग राजालोगोंको अपने आधीन करता
है जब राजा नीचमनुष्योंको दण्डदेताहै या सच्चेमार्ग में चलताहै तब उसका
राज्यवृद्धि पाताहै जो राजा मन्त्रियोंको यथायोग्य सत्कारकरके दूरदर्शक-
ताकी सलाहसे युद्धमें प्रवृत्ति करता है उस राजाका देश वृद्धि पाता है और
सम्पूर्ण पृथ्वीको बहुत काल तक भोगता है जो कर्म श्रेष्ठ है और अच्छे
प्रकार कहाहुआ बचन है उसको भी राजा अच्छेप्रकारसे बिचार कर पूजता
हुआ उत्तम धर्म्म को पाता है जब भागों का बिभाग करके भोगता है
और मंत्रियों का अपमान नहीं करता है और अहंकारी और पराक्रमी
को मारता है तब राजाका धर्म्म कहाजाता है जब देह चित्त और बचनों
से सबकी रक्षाकरताहै और पुत्रके भी अपराधको क्षमा नहीं करता वह
राजाका धर्म कहा जाता है जब पराक्रमी राजा अच्छेप्रकारसे भागोंको बि-
भागकरके मनुष्योंको भोगताहै अर्थात् उनपर आज्ञाकरताहै तब वह बलवा-
न् होते हैं यहभी राजाका धर्मकहाता है जिसस्थानमें कर्म बचनसे पापात्मा
प्यारेकी भी क्षमा न करे वह राजाका धर्म्म कहाजाताहै जबराजा प्रधानब्यव-
पारियों को पुत्रके समान चारोंओर से रक्षाको करता है और मर्य्यादा को
नहीं तोड़ता वह राजाका धर्म कहाता है जबश्रद्धायुक्त राजा इच्छा द्वेषको
त्यागकर दक्षिणाके योग्ययज्ञोंको करताहै वहराजाकाधर्म कहाजाता है जब
राजामनुष्योंकी प्रसन्नताको उत्पन्न करता दुःखी अनाथ और बूढ़ोंके नेत्रोंके
अश्रुपातको साफ़करताहै वह राजाका धर्म्म कहाजाताहै मित्रों की वृद्धि और

शत्रुओं को पीड़ादेता है और साधुओंको अच्छेप्रकारसे पूजता है वहराजा का धर्म्म कहाजाताहै प्रीति से सत्यताकी रक्षाको करता और सदैव धर्मको जारीकरता अतिथि और पोषणके योग्य मनुष्योंको तृप्त करताहै वहराजाका धर्म्मकहाजाताहै दंड और पारतोषिकयहदोनों जिसराजामें वर्त्तमानहोय वह इसलोक और परलोकमें फलकोपाताहै हे मान्धाता यह यमराजरूप धर्मात्मा राजा पुरुषोंका बड़ास्वामीहै इन्द्रियोंकोस्वाधीन करता ऐश्वर्य्यकोपाताहै और अजितेन्द्री नष्ट होताहै जब ऋत्विज पुरोहित और आचार्य्यकोअपमानरहित सत्कारकरके अच्छे प्रकार से पोषण करताहै वहराजा का धर्म्म कहा जाता है यमराज सब जीवों को अधिक दण्ड देता है उसी प्रकार राजा को भी कर्म्म करना चाहिये और प्रजा भी बिधि पूर्व्वक सतमार्गमें लाने के योग्यहै हे पुरु-षोत्तम राजा सब प्रकार से इंद्र के समान गिनाजाता है वह जिस धर्म्म को देखता है वही धर्म्म है क्षमा बुद्धि धैर्य्य ज्ञान और सदैव सावधानी से जीवों को शिक्षा करो सब जीवों को स्वाधीन करना और दानमान मीठे वचन आदि की भी शिक्षाकरो तुमको सुख पूर्वक पुरबासी और देशबासी रक्षाक-रने के योग्य हैं असावधान राजा प्रजा की रक्षा में कभी समर्थ नहीं होता हे बेटा यह राज्य नाम बड़ा कठिन भार है इसकारण दण्ड का जाननेवाला ज्ञानी और शूरबीर राजा रक्षा करने को समर्थ होता है दण्ड न जानने वाले नपुंसक व अज्ञान राजा से भी रक्षा करना असम्भव है पण्डित कुलीन साव-धान भक्त और बहुत शास्त्र के जाननेवाले मन्त्रियों के साथ तपस्वी और आश्रमियों के सब ज्ञानियों की परीक्षा करो इन बातों के पीछे तुम सब जीवों के उत्तम धर्म्मों को जानोगे अपने देश में और परदेश में तेरा धर्म्म नाशको नहीं पावेगा क्योंकि अर्थ और काम से धर्म्महीं उत्तम है इससे धर्म्मात्मा इस लोक और परलोक में सुख से वृद्धिको पाता है अच्छे प्रकारसे पूजित मनुष्य स्त्री और पुत्रों का भी त्याग करते हैं जीवोंको स्वाधीनता में करना दानमीठे बचन भ्रान्तिकात्याग और पवित्रता यह सबगुण राजा के ऐश्वर्य्य करनेवाले हैं हे मान्धाता तुम इन गुणों को कभी मत भूलो अपना और शत्रु का दोष देखनेवाला राजा सावधान होता है शत्रु के दोष को नहीं देखै और शत्रु के समान दोषों को करे यह कर्म्म इन्द्र यमराज और बरुण देवता का है और सब राज ऋषियों का भी है इससे तुमभी इसको करो और राजऋषियों से वित कर्म्म में सावधान होकर मोक्ष के लिये दिव्य मार्ग में प्रवृत्त हो और ऋषि पितृ गन्धर्व आदि दोनों लोकों में धर्म्म पर आरूढ़ राजा की करते हैं भीष्म जी बोले कि हे भरतबंशी उस उतथ्यऋषि से उसप्रकार गे उस मान्धाता ने शंका रहित होकर उन सब कर्मों को किया और

सम्पूर्ण पृथ्वी को वे अकेले ने बिजय किया हे राजा इसी प्रकार आप भी मान्धाता के समान अच्छे प्रकार धर्म्म करके पृथ्वीको रक्षाकरो इससे स्वर्ग में स्थान पाओगे ६० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेएकनवतितमोऽध्यायः ९१ ॥

# बानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि धर्म्म में प्रवृत्तहोनेवाला धर्मात्माराजा किस प्रकार से कर्मकरे यह आपबर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर एकप्राचीन इतिहास कहताहूं जिसको तत्त्वार्थ ज्ञाता बामदेव ऋषिने गाया ज्ञानी पवित्र धैर्य्यवान् राजा बसुमताने ब्रह्मर्षिबामदेवजी से पूछा कि हे भगवन् धर्म अर्थ से संयुक्त बचनों के द्वारा मुझे आप उपदेश करिये जिससे कि मैं उस कर्म्मको करके धर्मसे च्युत न होऊं यह सुनकर तप करनेवालोंमें उत्तम तपस्वी बामदेवजीने उस सुवर्ण वर्ण ययातिके पुत्रनहुषके समान सुख पूर्वक बिराजमान राजासे यह कहा कि धर्म पूर्व्वक कर्म्मकरो धर्म्म से उत्तम कोई कर्म्म नहीं धर्म्म में बर्त्तमान राजाही इस पृथ्वी को बिजय करते हैं जो राजा धर्म्मको प्राप्त किये हुये धनसे उत्तम मानकर धर्म्मकी वृद्धिमें प्रवृत्त होता है वह धर्म से शोभायमान होता है जो अधर्म्मका देखनेवाला राजा पराक्रम में प्रवृत्त होता है उससे धर्म्म और अर्थ शीघ्रही हट जाते हैं और जिसके मन्त्री दुष्ट और पापी हैं वह धर्म्मका नाश करनेवाला लोकमें मरा हुआ है अर्थात् अपने बालबच्चों समेत शीघ्र नाशको पाताहै धनको सुमार्ग में न लगानेवाला इच्छाचारी अपनी प्रशंसा करनेवाला राजा सब पृथ्वी को भी पाकर शीघ्र नष्टहोता है और कल्याण का प्राप्त करने वाला और अन्यके गुण में दोष न लगानेवाला जितेन्द्रिय ज्ञानी राजा ऐसे बृद्धिको पाता है जैसे कि नदियों से समुद्रकी बृद्धिहोती है हे राजा वह पृथ्वीका स्वामी अपने को सदैव ऐसामाने कि मैं धर्म्म अर्थ काम बुद्धि और मित्रों से भी पूर्ण नहीं हूं इन सब में लोकयात्रा बर्त्तमान है अर्थात् इनसे संसार का प्रबन्ध होताहै इन धर्म्म आदि में प्रवृत्त राजा यश कीर्ति लक्ष्मी सहित प्रजाको पाताहै इसप्रकार जो धर्म्ममें संयुक्तहो धर्मार्थका बिचारनेवाला राजा अर्थोंको बिचारकर सेवनकरताहै वह निश्चयकरके बड़े ऐश्वर्य्यको पाता है २०दान न करनेवाला प्रजापर प्रीति न रखनेवाला बिनाबिचार कर्म्म का अत्यागदास रखनेवाला प्रजा को दण्ड देता शीघ्र नाश को पाता है जो अज्ञानी राजामन्दबुद्धिसे पाप करनेवाले को नहीं देखता है वह अपमान युक्त हो नरक अश्रुपातकाता है और जो राजासत्कार करनेवाला दानी शुद्धप्रजाके आधीन

रहनेवाला है उसके व्यसनों को मनुष्य ऐसे दूरकरते हैं जैसे कि अपने दुर्व्यसन को धर्म्ममें जिसका गुरूनहीं है और दूसरोंसे भी नहीं पूछता वह स्वतन्त्रतासे सिद्धहोनेवाले लाभमें बहुतकालतक सुखको नहीं भोगता है और जो आप अर्थोंका देखनेवाला और धर्म्मों में गुरूको और लाभमें धर्म को उत्तम माननेवाला है वह राजा बहुत कालतक सुखको भोगता है १६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेद्विनवतितमोऽध्यायः ९२ ॥

## तिरानबेवां अध्याय ॥

वामदेवजी बोले कि जिसस्थानपर बड़ापराक्रमी राजा निर्बलपर अधर्म करताहै उसके कुलके लोगभी उसीकर्म्मको करते हैं उसपापी और पाप के जारी करनेवाले राजाके समान कर्म्मकर्त्ताहोते हैं जिसदेशके मनुष्य शिचित नहीं होते हैं वहदेश शीघ्रही नष्टहोता है मनुष्य स्वकर्मी राजाके कर्म्म से से निर्वाहकरते हैं उस राजाके भाई बन्धु उस गोमार्ग में वर्त्तमान राजाकी क्षमा नहीं करते जिस स्थानपर बिनाविचार कर्म्म करनेवाला कुछ निकृष्ट कर्म्म करे वह शास्त्र के बिपरीत लक्षण रखनेवाला राजा शीघ्रही नाशको पाता है जो क्षत्री दूसरेके स्वाधीन होनेवाले और स्वतंत्र क्षत्रियों के अच्छे आचरण की हुई वृत्तीपर बर्तमान नहींहोताहै वह क्षत्री धर्म्म से जुदा होताहै जो राजा पहले समयमें उपकार करनेवाले और वर्त्तमान में शत्रुता करने वाले राजाको क़ैदकरके शत्रुतासे सत्कार नहीं करता है वह क्षत्री धर्म से नष्ट होता है और जो समर्थ राजा अच्छेप्रकार सुख को प्राप्तकरे और आपत्तिकालमें उस आपत्ति को दूरकरने का उपायकरे वह जीवोंका प्यारा होकर लक्ष्मीसे रहित नहीं होताहै और वह मनुष्य जिस से कि कोई बिरुद्धभाव रखता हो और फिर उससे सुहृद भावकरे वह थोड़ेही समयमें उसका प्यारा होजाता है और जो शत्रुभीहो वहभी भलाईकरे और निरर्थक विवाद का त्यागकरना और बिनामांगे भलाईको करना इच्छा क्रोध शत्रुता आदि से धर्म्मको न छोड़ना प्रश्नों में न्याय के विपरीत उत्तर का न देना और अकथनीय बातको मुखसे न कहना शीघ्रता न करना गुणों में दोष न लगाना आदि बातें शत्रुको स्वाधीन करती हैं मित्रके साथ अतिप्रसन्न शत्रु के साथ क्रोधयुक्त प्रजाकीवृद्धि चाहनेवाला आपत्ति में दुःखी नहीं होता है जो राजा नौकर आदि अपने मनुष्यों की भलाई को अपने गुण से करताहै उसके सबकाम सिद्ध होते हैं और लक्ष्मीवान् रहता है बिपरीत कर्मोंका न करनेवालाभलाई में प्रवृत्त भक्त और सावधान नौकरको राजा सदैव सेवनकरे और बुद्धिमान् आज्ञाकारी पवित्र समर्थ और प्रीति करनेवाले मनुष्य को

बड़े अधिकार पर नियत करे इन गुणों से संयुक्त जो नौकर राजा को प्रसन्नकरे उस स्वामी के कार्यों में सावधान पुरुष को माल के अधिकार पर नियत करे और जो राजा कि अस्वस्थ चित्त लोभी दुराचारी मूर्ख छली दुखदायी दुर्बुद्धी अल्पशास्त्रज्ञ बड़ेकर्मोंका त्यागनेवालामद्यपी द्यूत स्त्री और शिकार में प्रवृत्त पुरुषको बड़े अधिकारपर नियतकरता है वह लक्ष्मीसे रहित होता है जो राजा रक्षित होकर रक्षाके योग्य मनुष्योंकी रक्षा करता है उसकी प्रजा वृद्धिपाती है और निश्चय बड़ेपदको भोगता है और जो राजा कि दूसरे राजाओं को शुभचिन्तक गुप्तदूतोंके द्वारा देखता है वहराजा वृद्धिको प्राप्त होताहै पराक्रमी के साथ बुराई करके यह विश्वास न करे कि मैं दूरहूं क्योंकि बाज के समान अचेत मनुष्यों पर गिरते हैं जिसकी जड़ पक्की है और बुद्धि निर्दोष है वह अपने पराक्रमको जानकर निर्बलों को अधिकारों पर नियत करता है नकि अधिक पराक्रमियों को पराक्रमसे पृथ्वी को पाकर धर्म्म से प्रजापालन करे और धर्म्म में स्थित राजा युद्धमें शत्रुओं को मारे यह सब मरण पर्य्यंत होना चाहिये इस में कुछ हानि नहीं है इस कारण धर्म्म में वर्त्तमान राजा धर्म्म से प्रजापालन करे क़िलेआदि का बनाना युद्ध करना और धर्म्म का उपदेश करना सलाह करना समयपर सुख देना इन पांचों बातोंसे पृथ्वी की वृद्धिहोती है यह गुण जिसके रक्षितहैं वह राजा राजाओं में उत्तम है इस धर्म्म में सदैव वर्त्तमान राजा इस पृथ्वी को आधीन करता है यह पांचों अकेले राजा से देखने के योग्य नहीं राजा उनपांचों में सबको नियत करके बहुत समयतक पृथ्वी को भोगताहै देशके मनुष्य उसदानी न्यायी मृदुता युक्त पवित्र पुरुषको जोकि मनुष्योंका त्याग नहीं करता है राजा करतेहैं जो पुरुष अपनी रायको त्यागकरके अपने कल्याणकारी ज्ञानको सुनकर उसको प्राप्त करता है उसको लोकराजा करता है जो राजा मित्र के वचनको विरुद्धतासे नहीं मानताहै और सदैव बेमनसे उसके शत्रुओं से बिपरीत वचनों को सुनताहै और जो सदैव दूसरे राजाके बिजय किये हुये या न बिजय किये हुये राजाओं और बुद्धिमानोंकी सेवन की हुई लाभकी युक्तिको सेवननहीं करे वह क्षत्री धर्म्मसे हीनहोता है कर्म्म में प्रवृत्त राजा क़ैद किये हुये मंत्री स्त्री पहाड़ और टेढ़े और कठिन स्थान हाथी घोड़ा सर्पआदि से सदैव अपनी रक्षाकरे जो राजा प्रधान मंत्रियों को त्यागकरके नीच पुरुषों को प्यारकरताहै वह पीड़ामान दुःखको पाकर अन्त में कुशलता को नहीं प्राप्त होताहै और जो राजा कल्याण गुणों में संयुक्त अपने सजातियों की शत्रुतासे वृद्धि नहीं करता वह अदृढ़ात्मा और दृढ़ क्रोधी मृत्युके समीपही वर्त्तमान होताहै और जो राजा गुणों से युक्त हृदय

से प्यारे पुरुषोंको भी उनका अभीष्टकरने से आज्ञाकारी करता है वह बहुत कालतक कीर्तिमान होता है और जो बेसमय धनका व्ययनहीं करे और शत्रुके ऊपर कभी क्रोधयुक्त न होवे और मित्रके साथभी बहुत प्रसन्न न होवे और देहके सुखदायी कर्म में प्रवृत्तहोवे और सदैव यह बिचारकरे कि इन राजाओं में कौन राजा तो प्रीति करनेवालेहैं और कौनभयसे शरणागत हुये और कौनसे उदासीनहोकर दोषरखनेवाले हैं और पराक्रमी होकर कभी किसीभी स्थानपर निर्बलका बिश्वास न करे यह राजा गिद्ध के समान अचेत राजा के ऊपर गिरतेहैं जो पापात्मा मनुष्य सबगुणोंसे भराहुआ प्यारे वचन बोलनेवाले स्वामीसे भी शत्रुता करता है उस मनुष्यपर बिश्वासनहीं करे इसप्रकार नहुष के पुत्र राजाययातिने राजाओं की यह गुप्त विद्या कही यह विद्या मनुष्योंके देशमें जारी होकर बड़े बड़े शत्रुओं को मारतीहै ३९॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिराजधर्मेत्रिनवतितमोऽध्यायः ९३ ॥

# चौरानबेवां अध्याय॥

बामदेवजी बोले कि राजा बिनाही युद्धके बिजयको बढ़ावे क्योंकि युद्धसे बिजय करना मध्यम कहाजाताहै राज्यके मूलदृढ़ न होने से अप्राप्तको कभी न चाहै निर्बल मूल राजाको लाभहोना नहीं कहाजाताहै जिसका देश धनाढ्य और राजाको प्यारा माननेवाला प्रसन्न मंत्रियों से संयुक्त है उस राजाका मूल दृढ़होताहै जिसके योद्धा संतुष्टहों और उसके प्यारे मीठेवचनों से प्रसन्नहों वह राजा थोड़ेही दण्डसे पृथ्वीको बिजय करता है जिसके पुरबासी देशबासी धनी और अनाज आदि रखनेवाले जीवोंपर दयाकरने वालेहैं वह राजा दृढ़मूल रखनेवालाहै जब राजा अपने प्रताप के समयतक अधिकमाने उससमय वह बुद्धिमान् शत्रुके देश और धनके बिजय करने की इच्छाकरे और जो राजा भोगों में उदयमान जीवोंपर दयावान् शीघ्रकर्मी रक्षितात्मा होताहै उसकी बिजय अत्यन्त होतीहै जो राजा अच्छेप्रकार बर्ताव करनेवाले अपने मनुष्योंसे मिथ्या बोलताहै वह अपनेको ऐसे मारना चाहताहै जैसे कि फरसेसे बनकाटा जाताहै सदैव न मारनेवाले राजा के शत्रु नाश नहीं होते परन्तु जो राजा क्रोधके मारने को जानता है उसका कोई शत्रु नहीं होता जो काम अच्छे लोगों के विरुद्ध है उसको ज्ञानी पुरुष नहीं करे और जिस भलाई को बिचारे उसी में अपने को प्रवृत्त करे जो राजा दूसरों की इच्छा पूर्णता के साथ अपने सुखों को प्राप्त करता है और दूसरे लोग उसका अपमान नहीं करते और आपभी कभी दुःखी नहींहोता ऐसी वृत्तिवाले मनुष्यों में जो राजा बर्त्तमान रहै वह दोनों लोकों का बिजय करके

पूरी बिजय में प्रवृत्त होता है भीष्मजी बोले कि वामदेव जीके ऐसे समझाये हुये राजा ने उन सब बातों को किया इसी प्रकार तुम भी कर्म्म करके दोनों लोकोंको निस्सन्देह बिजय करोगे १३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्म्मेचतुर्नवतितमोऽध्यायः ९४ ॥

# पंचानबेवांअध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि जो क्षत्री युद्ध में किसी अन्य क्षत्री को विजय करना चाहै उसको बिजय करने में क्या धर्म करना चाहिये यह आप कृपा करके वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि सहाय रखनेवाला वा असहाय राजा देश में आकर कहे कि मैं तुम्हारा राजाहूं तुम्हारी सदैव रक्षा करूंगा मेरा धर्म्मरूप राज अंश दो अथवा क्या कहतेहो वह प्रजा उस आये हुये राजा को स्वी॰ कारकरे तो कुशल है और जो वह क्षत्री न होयँ और किसी प्रकार का बिरु॰ द्ध करें तो वह विपरीत कर्म्मी सबप्रकार से दण्ड और सासना के योग्य हैं दूसरा मनुष्य उसक्षत्री को रक्षा करने में भी अत्यन्त असमर्थ और अशस्त्री जानकर शस्त्र को हाथ में लेता है यह भी बहुधा होताहै युधिष्ठिर ने कहा कि जो क्षत्री राजा क्षत्री के सन्मुख जाय उस को किस प्रकार से युद्ध कर॰ ना चाहिये भीष्मजी बोले कि जो क्षत्री युद्ध में कवचआदि नहीं धारण कि॰ ये हैं उससे युद्ध नहीं करना चाहिये एक को एकही से युद्ध करना योग्य है जो वह शत्रु कवच धारण किये हुयेही आवे तो इसको भी कवच धारण करना योग्य है और जो वह सेना समेत आवे उसदशा में उस को सेना समेत बुलावे और जो वह छल से युद्ध करे तो उस से आप भी छलकरे और धर्म्म से युद्ध करे तो धर्म्मही से उसेहटावे घोड़े की सवारी से रथी के सन्मुख न जाय रथीरथ के सन्मुख जाय किसीप्रकार की आपत्ति में शस्त्रघात न करना चाहिये और भयभीत वा विजय किये हुये परघात न करना चाहिये बड़ा बाण और करणी नामबाण बिष का भराहुआ न हो यह शस्त्र नीच लोगों के हैं बुद्धि के अनुसार युद्धकरना श्रेष्ठ है मारने की इच्छा करनेवाले शत्रु की रक्षा न करे जब साधुओं के विरोधसे साधुलोग व्यसनी होगये तब निर्बल और असन्तान किसीदशा में भी मारने के योग्य नहीं है शस्त्र और कवच जिस के खण्डित हों और मृतकरूप सवारी में सवार आपत्ति में पड़ा हो और अपने देश में चिकित्सा के योग्य होय और घरमें पहुँचने के योग्य हो वह बिना घायल छोड़ने के योग्यहै यह सनातनधर्महै इसकारण धर्मही से युद्ध करना चाहिये यह स्वायम्भुव मुनि ने कहा है जो धर्म्म सत्पुरुषों के मध्य में सत्पुरुष करते हैं उस में नियत होकर उसका नाश न करे जो

रूप प्रण करनेवाला क्षत्री अधर्म्म से बिजय करता है वह छली पापात्मा आप अपना घात करता है यह कर्म्म नीचोंका है असाधु को शुभ कर्म्म से बिजय करे क्योंकि धर्म्म सेही मरना उत्तम है और पापकर्म्म से बिजय करना अच्छानहीं है राजा किया हुआ अधर्म पृथ्वी के समान शीघ्रफल नहीं देता वह अधर्म्म जड़ों को और बड़ी २ शाखाओं को नष्ट करता हुआ प्राप्त होता है पापी पापकर्म्म सेही धनको पाकर प्रसन्न होता है चोरी से वृद्धिपाने वाला और अधर्म्म को नहीं माननेवाला पवित्र मनुष्योंकोहँसता है पापात्मा पापही में सना रहता है और श्रद्धा रहित होने से भी नष्टहोता है वरुणके पाशों से बँधाहुआ अपने को सदैव जीवतासा मानता है हवा से पूर्ण मसक चर्म्म के समान मोटा देह शुभ कर्म्म में प्रवृत्त नहीं होता है वह मूलसहित ऐसे नष्टहोता है जैसे नदी के तटके वृक्ष इसकी पीछेसे सब निन्दा करते हैं इससे राजा धर्म्मसेही विजय और धनको चाहे २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेपंचनवतितमोऽध्यायः ९५ ॥

# छानबेवां अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि राजा अधर्म्मसे पृथ्वीको बिजय न करना चाहिये कौन सा राजा अधर्म्म से जीतको पाकर संतुष्टहोता है अधर्म से संयुक्त बिजय और स्वर्ग दोनों नाशवान् हैं हे राजा यह बिजय राजा को और पृथ्वी भरको पीड़ा देती है टूटे कवचवाले और तेरे आधीन हूं ऐसे वचन कहने वाले हाथ जोड़े हुये शस्त्रत्याग कियेहुये शत्रुको पकड़कर नहीं मारे और जो पराक्रमसे विजय कियाहुआ है उस राजा से युद्ध नहीं करे औ वर्ष पर्यन्त उसको समझावे तदनन्तर उसका बेटा राजाहोवे और पराक्रमसे लाई हुई कन्या एकसे पहिले पूछने के योग्य नहीं कि तू हमको बरैगी या दूसरे को बरैगी अर्थात् बिपरीत कहनेवाली कन्याको अपने घरमें न रहने दे इसीप्रकार सब धनके विषयमें भी कर्म्मकरना चाहिये जो दूसरेका धनछल से हरण कियागया और चोरका भी न गिनाजाय तो वह खर्चके योग्य है उस धनसे ब्राह्मणलोग दूधकोपियें और बैलोंको भी जोड़े अर्थात् सवारी करें जब घातकरने के योग्य पुरुष चोर न ठहरे तो क्षमाके योग्य होता है अर्थात् वह धनके फेर देने के योग्य है राजा राजासे युद्ध करने के योग्य है ऐसा धर्म्म कहाजाता है राजाके सिवाय दूसरा वर्ण किसी दशामें भी राजा के सम्मुख शस्त्र न चलावे जब दोनों ओरकी संधिका चाहनेवाला ब्राह्मण दोनों सेनाओंके मध्य में होय तब उचित युद्ध न होना चाहिये उनदोनों में से जो ब्राह्मण को उल्लंघन करता है वह सनातन मर्याद को तोड़ता है

और जो क्षत्रियों में बिजयी पुरुष मर्य्यादाका उल्लंघनकरे वह क्षत्री क्षत्रियों में अयोग्य अर्थात् जातिसे निकालने के योग्य और सभामें प्रवेश करनेके अयोग्य होता है जो बिजयकी इच्छा करनेवाला राजा धर्म्मलोप और मर्य्याद के तोड़ने से उसीरीतिपर कर्म्म न करे उस समय धर्म्म से प्राप्त हुई बिजय से अधिक कौनलाभ होगा वह बिना बिचारे बिजय आदिको करके शीघ्रही अपने बिजय कियेहुयेको मीठे बचन और भोगदानसे प्रसन्नकरे यह राजाओं कीनीति उत्तम है कटुवचनों से आज्ञा में वर्त्तमान कियेहुये अपने देश से अप्रसन्न और ब्यसनोंके समूहों की आपत्तिके चाहनेवाले शत्रु उसके समीप वर्त्तमान हों वह शीघ्रही आपत्तिकालमें उन शत्रुओं के आज्ञाकारी होते हैं हे राजन् जो राजके ब्यसनों के चाहनेवाले यद्यपि सब ओरसे तृप्त भी होंय तो भी शत्रुछल से ठगने के योग्य नहीं होते और किसीदशामें वार्त्तालाप से भी विरुद्ध करने के योग्य नहीं कभी अत्यन्त घायल वा शत्रु अपने जीवन को भी त्यागकरे इसीप्रकार राजा थोड़े धनयुक्त देशसे भी तृप्तहोता है और उस प्रकार का होकर पवित्र जीवन को भी बहुत मानता है जिस राजा का देश बृद्धि युक्त धनी और राजा का आज्ञाकारी है और जिस के मंत्री नौकर आदि प्रसन्न हैं वहराजा दृढ़मूल रखनेवाला है ऋत्विज पुरोहित आचार्य और अन्यशास्त्रज्ञ पूजने के योग्य जिस राजा के पूजेजाते हैं वही राजा लोक का जानने वाला कहा जाता है इन्द्रने इसीरीतिसे पृथ्वीको प्राप्त किया इसीरीति से राजा लोग इन्द्रलोक को बिजय किया चाहते हैं हे युधिष्ठिर राजा प्रतर्दन ने भारी युद्ध में विजय करके पृथ्वी के सिवाय अन्न धन औषधियों को भी सदैव हरण किया राजा दिवोदासने अग्निहोत्र के शेष बचे हुये हव्य और भोजन को खाया इस कारण से अप्रतिष्ठित हुआ तात्पर्य्य यह है कि इनवस्तुओं को नहीं हरना चाहिये और राजानाभागने वेदपाठी और तपस्वियों के धनके सिवाय राजाओं के समूह सहित सबदेशों को दक्षिणा में दिया हे युधिष्ठिर धर्म्मज्ञप्राचीन राजाओं के जो नानाप्रकारा के धनहुये वह सब मुझको प्रिय हैं ऐश्वर्य्य का चाहनेवाला पृथ्वीका राजा विद्याओं के प्रताप से बिजयको प्राप्त करे छल और कपटसे न चाहे २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मे षणनवतितमोऽध्यायः ९६ ॥

# सत्तानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह निश्चय करके क्षत्री धर्म्म से अधिक कोई पापयुक्त कर्म्म नहीं है क्योंकि राजा युद्धकरने में बैश्य आदि लोगों को मारता है और पृथ्वीका स्वामी राजा किसकर्म्म से अपने लोको को विजय

करता है यह आप मुझ से कहिये भीष्मजी बोले कि राजा लोग पापियों को दण्ड देने और साधुओं का पोषण करने से और यज्ञ दानादि से पवित्र निर्म्मल होते हैं विजयकी इच्छा करने वाले राजा लोग जीवों को पीड़ा देते हैं फिर विजय को पाकर प्रजा की वृद्धि करते हैं और दान, यज्ञ, तपआदि के बलसे पापों को दूर करते हैं उनका पुण्य जीवों के कल्याण के लिये वृद्धि पाता है जैसे कि खेतका निराव करनेवाला निरायेहुये खेतको काटकर अनाज भूसा आदि को जुदा करता है परन्तु अनाज नष्टनहीं होता इसीप्रकार शस्त्रों के मारनेवाले राजा लोग मारने के योग्य शत्रुओं को बहुत प्रकार से मारते हैं उनका यही महा प्रायश्चित्त है जो फिर जीवों की रक्षा को करते हैं जो राजा धनखर्चने के द्वारा जीवों को मारने आदि दुःखसे और चोरों से रक्षा करता है वह प्राणदान से धनका देनेवाला सुखदायी पोषक निर्भयरूप दक्षिणायुक्त सब यज्ञों से पूजन करनेवाला है वह राजा इसलोक के कल्याणों को भोगकर इन्द्र की समानता को पाता है जो राजा ब्राह्मणों के प्रयोजन के लिये अपने देह रूपी यज्ञस्तम्भ को ऊंचा करके शत्रुओं से युद्धकरताहै वही महादक्षिणावाला यज्ञहै उससे श्रेष्ठ कोई पुरुष नहीं है युद्ध में जितने शस्त्र उसकी देहके चर्म्मको छेदते हैं वह उतनेही लोगोंको जो कि अविनाशी और सबइच्छाफलको पूर्णकरनेवाले हैं भोगता है युद्धमें उसकी देह से जो रुधिर आदि निकलता है उसदुःखसे वह सबपापोंसे छूटता है युद्ध में सन्तप्त क्षत्री जिनकष्टों को सहता है उसीदुःखसे उस के बड़े तपकाफल प्राप्तहोता है यहधर्म्मज्ञों का कहाहुआ है युद्ध में भयानक रूप धर्म्मात्मा पुरुष शूरवीरसे रक्षा को चाहते हुये ऐसे पीछे को वर्त्तमान होते हैं जैसे पर्जन्यनाम मेघके पीछे वर्षासे जीविका चाहनेवाले वर्त्तमान होते हैं शूरवीर होकर उसी प्रकार रक्षाकरे जिस से कि भय जातारहै और अपने मनुष्यों को शत्रुओं के सन्मुख न करे किन्तु आप संमुख होके उन को पीछे की ओरकरे वह भी महापुण्य है और वह लोग उस उपकार के कारण सदैव उस को नमस्कारकरें अथवा संसार के समान युद्ध करें वह पहिले के समान नहीं हैं युद्ध में सेनाकी चढ़ाइयां होनेपर समान पुरुषोंमें भी बड़ाअन्तर देखने में आता है अर्थात् कोई सन्मुख होता है कोई नहीं शूर पुरुष स्वर्गमार्ग में वर्त्तमान होकर शत्रुओं के सामने गिरता है और जो भयभीत है वह भागता है इस कारण प्राणसंकट में साथियों को त्यागकरे हे तात ऐसे नीच मनुष्यों को आगे मतकरो जो युद्ध में साथियोंको छोड़कर कुशलता पूर्व्वक घरको जायँ जिन के प्रधान इन्द्रदेवता हैं वहदेवता उनके कल्याणको करते हैं जो पुरुष साथियों के त्याग से अपने प्राणोंकी रक्षाचाहता है उसको काष्ठ

वा पाषाण आदिसेमारे अथवा तृणकी अग्नि से भस्मकरे और ऐसे क्षत्रियों को पशुओं के समान मारे जो कफ मूत्र छोड़ता दुःख विलाप करता शय्या परमरै वह क्षत्रियों का अधर्म्म रूप बिनाघायल देहके साथ नाशको पाता है इसके इस कर्म्म को प्राचीनलोग बुरा कहते हैं हे तात शूरवीर अभिमान रखने वाले क्षत्रियों का घर में मरना प्रशंसा के योग्य नहीं होता वह अचेतताडुःख रूपी अधर्म्म है यह दुःख और महाकष्ट हैं जो पापी पुरुष विपरीत स्वस्त दुर्गन्धित देहयुक्त पुत्र आदि का शोच करता और पुकारता नीरोगों की इच्छा करता है और मृत्युको भी चाहताहै परन्तु वीर अहंकारी लोग ऐसीमृत्यु के योग्य नहीं हैं क्षत्री युद्धों में शत्रुओं का नाश करके जातिवालों से घिरा हुआ तीक्ष्ण शस्त्रोंसे पीड़ित मृत्यु के योग्य है इच्छा क्रोध से भराहुआ शूर ही कठिनयुद्ध को करता है और शत्रुओंसे घायलहुये अंगों को नहीं जानता है वह युद्ध में मरण को पाकर संसार में कीर्तिमान् अपने उत्तमधर्म्मको प्राप्त करके इन्द्रकी समानता को पाता है जीवनका त्यागी शूर पुरुष सब युक्तियों से युद्ध में वर्त्तमान पीठको नहीं फेरताहै वह इन्द्रकी समानता को पहुंचता है और शत्रुओं से घिराहुआ जहां तहां घायल शूरवीर जो कष्टको नहीं मानता है वह अविनाशी लोकों को प्राप्त होता है ३२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्म्मेसप्तनवतितमोऽध्यायः ९७ ॥

# अट्ठानबेवांअध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हे पितामह मरणको पाके युद्धकरनेवाले मुख न मोड़ने वाले शूरों के कौन लोक होतेहैं यह आप वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर मैं इस स्थान पर एक प्राचीन इतिहास कहताहूं जिसमें राजा अम्बरीष और इन्द्रके प्रश्नोत्तरहैं नाभागके पुत्र राजा अम्बरीषने बड़ीकठिनतासे प्राप्तहोनेवाले स्वर्ग में जाकर इन्द्रके साथ बैठेहुये अपने मंत्री को और दिव्य प्रकाशवान् ऊपर २ चलनेवाले उत्तम बिमानमें बैठेहुये अपनेसेनापति उस सुदेवकी ऋद्धिको दृष्टिगोचरकरके आश्चर्य्ययुक्त होकर इन्द्रसेकहा कि मैं सागरान्त सम्पूर्ण पृथ्वीको रीतिके अनुसार शिक्षा करके और धर्म की इच्छा से चारों वर्णों के धर्म्मों में शास्त्रके अनुसार कर्म्मकर्त्ता घोर ब्रह्मचर्य्य गुरु सेवाआदि आचारसे वेदोंको और धर्म्मसे शुद्ध राजशास्त्रको पढ़कर खाने पीनेकी वस्तुओंसे अतिथियोंको और इसीप्रकारश्रद्धापूर्वक पितरों को वेद पाठकी दीक्षासे ऋषियों को और उत्तम यज्ञों से देवताओं को तृप्तकरके शास्त्रकी बिधिसे क्षत्री धर्ममें वर्त्तमान होकर देवको देखता युद्धमें बिजयकरता था हे देवराज इन्द्र प्राचीन समयमें यह बड़ा शान्तात्मा सुदेवनाम मेरासे-

नापति युद्धमें प्रवीण था यह किसकारणसे मुझ से अधिकारका पानेवाला है इसने न तो मुख्ययज्ञों से पूजन किया और न विधिके अनुसार ब्राह्मण तृप्तकिये वह अब मुझसे किस कारणसे अधिकहै इन्द्रबोले कि हे तात इस सुदेव का युद्धरूप एकयज्ञ बड़ा हुआ और जो दूसरा क्षत्रिय युद्ध करता है उसका भी यही यज्ञ है अर्थात् जो कवच पहिने शस्त्रधारी सब युद्धकर्ता दीक्षितहोकर सेनामुखकोपाकर युद्ध रूप यज्ञके अधिकार में वर्तमान होतेहैं अम्बरीषने कहा कि यज्ञ में कौनहविष्य और क्याघृतहै कौनदक्षिणाहै कौन ऋत्विजकहाहै हे इन्द्र यह आप मुझसे कहिये इन्द्रबोले कि इस युद्धयज्ञ में हाथी ऋत्विज घोड़े अध्वर्यु शत्रुओं का मांस हविष्य और रुधिर घृत कहा जाताहै उसमें शृगाल गिद्ध काकोल पक्षी सदस्य हैं यहीयज्ञके शेषबचे घृत को और हविष्य को भोजन करते हैं और प्रास तोमरोंके समूह खड्ग,शक्ति, फरसा जोकि प्रकाशित तीक्ष्ण बिषों में बुझाये हुये होते हैं वह उस यज्ञके शुचनाम पात्रहैं वेगयुक्त लम्बे चौड़े तीक्ष्ण परकायाके भेदन करनेवाले सीधे पैने बिषमें बुझायेहुये जो बाणहैं वही बड़ाश्रुवाहै युद्ध में हाथी के चमड़े से मढ़ाहुआ हाथी दांतकी मूठवाला हाथीकी सूंड़का काटनेवाला खड्ग उसयज्ञका स्फिगहै प्रकाशवान् निशित लोहमयी तीक्ष्ण परासशक्ति दुधारा खड्ग और फरसों से मारना उसयज्ञकी द्रव्यहै युद्ध में बिनासमय फैलनेवाला कुलीनों की देह से उत्पन्न होनेवाला जो बहुतसा रुधिर शीघ्रतासे पृथ्वी पर गिरताहै वह वृद्धिकर्त्ता सब मनोरथोंकी पूर्ण करनेवाली पूर्णाहुती होती है सेना मुखमें काटो छेदो यह जो शब्द सुनेजातेहैं उसको सामग ब्राह्मण यज्ञ के साममंत्रोंसे यमलोकमें गातेहैं और शत्रुओं का सेनामुख उसयज्ञका हविर्धान अर्थात् साकल्य रखने का पात्र होताहै और कवचधारी हाथी घोड़े आदि का जो समूहहै वहयज्ञमें श्येनचित्तनाम अग्नि होती है और युद्धमें हजारों को मारकर जो कबन्ध उठता है वही खदिरका अष्टकोण वाला यज्ञस्तम्भ कहाजाताहै और उस युद्धमें वचन से बुलाये हुये अंकुश से चलाये हुये हाथी वषट्कार रूप तलनाद से पुकारेजाते हैं और उस युद्धमें ब्राह्मण का धन चोरी जाने पर प्यारे देहको त्याग कर जाताहै यह शब्द जो गाया जाता है वही त्रिसामानाम दुन्दुभीहै और देहरूप स्तम्भको छोड़कर वह यज्ञ अत्यन्त दक्षिणावाला है जो शूरस्वामी के निमित्त सेना मुखपर पराक्रमकरे और भय से मुख न फेरे उसकोलोक ऐसेहैं जैसे कि मेरे हैं नीले चर्म्मसे मढ़ेहुये खड्ग परिघनाम अस्त्रों के समान भुजाओंसे जिसकी वेदी रचीगई है उसके भी लोक मेरेही सदृश हैं जिसको कि किसी सहायक की इच्छानहीं और सेना के मध्य बिजय में वर्तमान है उसके लोक ऐसे हैं जैसे मेरे जिस युद्ध कर्ता

की रुधिर समूह रखने वाली नदी भेरी स्वरूप मेढ़क और कछुआ रखने वाली और वीरों के हाड़रूप कंकड़ वाली अगम्या रुधिर मांसरूपी कीचड़ से भरी खड्ग ढालरूपी प्लव नाम नौकावाली भयानक मरे शिररूप शैवल शाड्वल रखनेवाली और मरेहुये घोड़े हाथी रथ रूप संग्रामवाली पताका और ध्वजारूप वृक्ष वेत रखनेवाली और हाथियों की बहानेवाली रुधिररूप जल से पूर्ण तीरके मनुष्यों को अगम्य मृतक हाथी रूप नक्रवाली परलोक की ओर बहनें वाली कल्याणरूप दुधारा खड्ग रूप बड़ी नौका रखनेवाली गिद्ध कंक समूहरूपी बल प्लवावाली मृतक भक्षियों से सेवित भयभीतों को मूर्च्छा देनेवाली भूमि में जो युद्ध जारी होता है वही उस यज्ञका अवभृथस्नानहै जिसकी वेदी शत्रुओंके शिरकी बनाईहुई होती है और घोड़े हाथियों के कन्धों से भी संयुक्त होती है उसके लोक ऐसे हैं जैसे कि मेरे शत्रुओं का सेनामुख जिसका कि स्त्रियों से भरा हुआ महलहै ज्ञानियों ने अपनी सेनाको उसका हविर्धान अर्थात् साकल्यपात्र कहा और युद्ध कर्त्ता सदस्यों की दक्षिणाहै और उत्तर दिशा उसका आग्नेध्र है उस शत्रुरूप स्त्री रखने वाली सेना में सबलोक वर्त्तमान हैं जब व्यूहमें दोनों ओर से आकाश आगे होताहै वही उसकी वेदी इस प्रकार के यज्ञों समेत है और तीनों वेद तीनों अग्नि हैं जो भयभीत मुखमुड़ा युद्धकर्त्ता शत्रुके हाथ से मारा जाताहै वह प्रतिष्ठासे खाली होकर निस्सन्देह नरकको जाताहै जिसके रुधिरकी आधिक्यता से वेदी डूबजाय और मरे शिर मांस हाड़ से पूर्ण होय वह परमगति को पाता है जो युद्धकर्त्ता सेनापति को मारकर उसकी सवारी पर सवार होता है वह विष्णु के समान चरण उठानेवाला समर्थ युद्धकर्त्ता बृहस्पतिजी के समानहै जो युद्धकर्त्ता सेनापति या उसके पुत्रको अथवा जो उससेना में पूजितहोय इनमें से किसी को जीता पकड़ लाता है उसकेलोक ऐसे हैं जैसे कि मेरे युद्धमें मरने वाले शूरको किसी दशामें भी शोचनहीं वह मृतक शोचसे रहित शूर होकर सबलोकों में प्रतिष्ठाको पाताहै उसमृतक के अन्नजल स्नान सूतक आदि करना नहीं चाहते हैं उसके लोकोंको मुझ से सुनो शीघ्रता करनेवाली हजारों श्रेष्ठ अप्सरा उसयुद्ध में मृतकहुये शूरवीर के सन्मुख दौड़तीहैं और कहतीहैं कि यहहमारा स्वामी होय यही तपका पुण्य और सनातन धर्म्महै और जो युद्धको रीतिके अनुसार करे उसके चारों आश्रमहैं वृद्ध, बालक, स्त्री और मुखमोड़नेवाला मारने के योग्य नहीं है जो पा[illegible]लमें तृण रखनेवालाहो और कहे कि मैं तेरा हूं उसको भी मारना नहीं [illegible]ग्य है मैं जम्भ वृत्र बल पाक शतमायावी विरोचन दुःखसे हटाने के योग्य नमुचि बहुमायावी सम्बर विप्रचित्तिदैत्य आदि सब दानव और प्रह्लादको

युद्धमें मारने के पीछे देवताओं का स्वामी हुआ भीष्मजी बोले कि इन्द्र के इस वचनको सुनके राजा अम्बरीष ने युद्धकर्त्ताओं की ओर अपनी सिद्धियों को नेत्रों से देखा ५१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेअष्टनवतितमोऽध्यायः ९८ ॥

# निन्नानबेवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर इसप्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिसमें राजा प्रतर्दन और मिथिलापुरी के राजा ने युद्धकिया हे युधिष्ठिर जैसे युद्धमें यज्ञोपवीत धारी मैथिली राजा जनक ने युद्ध कर्त्ताओं को विजय किया उसको समझो सब तत्त्वों के ज्ञाता मैथिली राजा जनक ने अपना योग बलसे युद्धकर्त्ताओं को स्वर्ग और नरक दिखलाये कि युद्ध में निर्भयशूरों को प्रकाशवान् गन्धर्वों की कन्याओं से पूर्ण सब मनोरथों के पूरकरनेवाले अविनाशीलोक हैं उनको देखो और युद्धमें मुख मोड़ने वाले मनुष्यों के यहलोक सन्मुख हैं और सदैव के लिये अपकीर्ति है इससे निस्सन्देह उद्योग करना योग्य है इनको देखकर तर्क से असंयुक्त बुद्धिहोकर शत्रुओं को बिजयकरो और प्रतिष्ठा रहित होकर नरक में मतपड़ो शूरों को स्वर्ग द्वारमें जानेके लिये देहके स्नेह का त्यागनाही मूल कारणहै हे शत्रुहन्ता उस राजासे इसप्रकार कहेहुये उनयुद्ध कर्त्ताओं ने राजाकोप्रसन्न करके युद्ध में शत्रुओं को बिजय किया इससे ज्ञानी पुरुषको सदैव युद्ध में आगे होना चाहिये हाथियों में रथोंको और रथोंमें अश्वारूढ़ोंको और अश्वारूढ़ों के मध्यमें कवचधारी और शस्त्रधारी पदातियोंको वर्त्तमान करना चाहिये जो राजा इसप्रकार व्यूह रचता है वह सदैव शत्रुओं को बिजय करता है हे युधिष्ठिर इससे ऐसा कर्म्म सदैव करना चाहिये अत्यन्त क्रोधयुक्त सब युद्धकर्त्ता युद्धमें शुभकर्म्म को चाहते हैं वह सेनाओं को क्षोभयुक्त करे जैसे कि सागर को मगर दोलायमान करता है और परस्पर में नियत करके व्याकुल युद्धकर्त्ताओं को प्रसन्न करें और बिजयकीहुई पृथ्वी की रक्षाकरें परास्त होने वालोंका पीछा नहीं करे हे राजन् फिर लौटआने वाले और जीवन से निराश होनेवाले युद्ध कर्त्ताओं की चढ़ाई असह्य है इस कारण बहुत पीछा न करे शूरवीर भागे हुओं के ऊपर घात नहीं करते इससे उनका पीछा न करे चलने वाले जीवों का भोजन स्थिरजीव हैं और दाढ़ रखने वालोंका भोजन बिन दाढ़ रखने वालेहैं प्यासोंका अन्नजल है और शूरका अन्न नपुंसक है समान पीठ वा पेट और हाथपैर रखनेवाले भयभीत युद्ध करनेवाले पराजय को पातेहैं इस कारण भयसे पीड़ामान युद्धकर्त्ता दण्डवत करके फिर हाथ

जोड़के शूरोंके सन्मुख वर्त्तमान होतेहैं यहलोक सदैव पुत्रके समान शूरोंकी भुजाओं में रक्षा किया गयाहै इस हेतुसे शूरवीर सब दशाओंमें प्रतिष्ठा के योग्यहै तीनों लोकोंमें शूरतासे उत्तम कोई बात वर्त्तमान नहींहै शूर सबकी रक्षाकरताहै और सब शूरहीमें वर्त्तमान है १८॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेनवनवतितमोऽध्यायः ९९॥

# सौवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हेपितामह विजयकी इच्छा करनेवाले राजा लोग धर्म्म को कुछ पीड़ा देकर भी सेनाकी चढ़ाई करतेहैं वह आप मुझसे कहिये भीष्म जी बोले कि क्षत्रियोंका कर्म्म धर्म्महीसे वर्त्तमान है इसीप्रकार दूसरे कहते हैं कि मरणके निश्चय से वर्त्तमानहै और कोई कहते हैं कि अच्छेलोगों के आचार से वर्त्तमान है इसीप्रकार राजाके भय दिखलाने से भी वर्त्तमान है अर्थ धर्म्म में शुद्ध अर्थवाले उपाय धर्म्मोंको कहूंगा क्योंकि चोर जातवाले बेमर्य्याद और नष्ट करनेवाले होते हैं उनचोरोंका नाश और सब कर्म्मों के सुधारने के लिये वेदमें कहीहुई युक्तिको कहूंगा उनयुक्तियोंको मुझसे सुनो हे भरतबंशी दोनों बुद्धि सीधी और टेढ़ी जानने के योग्यहैं ज्ञाता होकर कुटिलों का संग न करे और आने वालोंको जानले शत्रु भेद के द्वारा राजा के पास घूमते हैं राजा उसछलको जानकर शत्रुओं के समान उनको पीड़ा देताहै हे कुन्तीनन्दन हाथी बैल और अजगरों के चमड़े और सिल्लीबाण तोमर आदि कंटकनाम वस्तु और सबधातु और कवच और चमड़ा और श्वेत पीतरंगके वस्त्र और पीतरक्तवर्म और पताका ध्वजा नानाप्रकार के रंगोंसे रँगीहुई दुधारा खड्ग तेजधार फरसा ढाल यहसब सामान बहुत प्रकार के विचार करने चाहिये युद्ध के योग्य शस्त्र और युद्धके निश्चय करनेवाले युद्धकर्त्ता विचार किये जायँ चैत्र वा मार्गशिर के महीने में सेनाकी चढ़ाई उत्तम गिनीजाती है तब पृथ्वीपकी खेतीवाली और जलसे पूर्ण होती है उस समय नतो अधिक शरदी और न गरमी होती है इसकारण उस समय में अथवा शत्रुओं के व्यसनमें सेना की चढ़ाई करे शत्रु के पीड़ादेने में यह सेना योग उत्तमहै जल तृणसे संयुक्त सीधाचलनेके योग्य वह मार्ग प्रशंसा कियाजाताहै जिसके इधर उधरके स्थान बुद्धिमान् और वनवासी दूतों के द्वारा अच्छे प्रकारसे मालूमहोगये हों वनमें जानेका ऐसे विचार न करे जैसे कि हिंसक जीवों के भयसे मृगगण नहीं जाते इसहेतु विजयकी इच्छाकरने वाले राजालोग उन वनवासियों को सेना में भरती करते हैं कुलीन समर्थ पदाती सेनाको भी आगे करे सेना का निवासस्थान जलसंयुक्त अगम्य

एकही मार्गवाला श्रेष्ठ कहाजाता है इससे सन्मुख आनेवाले शत्रुकी रोक होती है आकाश अर्थात् मैदान से बनमें निवासकरना अधिक लाभकारी है जहां युद्धमें कुशल बहुतसे गुणीपुरुषहोयँ वहां समीपही सेनाका निवास-स्थान होना चाहिये बनके निवास स्थानके सन्मुखसे सेनाका उतरना पदा-तियों को गुप्त नियत करना फिर समीप आनेवाले शत्रुके ऊपर आघात करना योग्यहै जोकि आपत्तिके लिये रक्षाकास्थानहो सप्तर्षियों की ओर पीठकरके पर्वतोंके समान निश्चल होकर युद्धकरें इस रीतिसे शत्रुओं को बिजयकरे चाहैं वेशत्रु कठिनतासे भी बिजयके योग्य हों जिसओर की हवाहो और सूर्य इन्द्र जिसदिशामेंहों उधरही बिजयहै हे युधिष्ठिर युद्धमें इनतीनों में से एकसे एक उत्तम है जो युद्धमें कुशल मनुष्य हैं वह कीचजल ढेले पुलआ-दिसे रहित सम पृथ्वीको घोड़ों के युद्धमें अच्छा कहतेहैं कीच और गर्त्त से रहित पृथ्वीरथोंके लिये भी उत्तम कही जातीहै छोटेबृक्ष और जल सहित पृथ्वी हाथीकी सवारीके युद्ध में श्रेष्ठसमझी जातीहै बहुत से गढ़ और घने जंगलवाली बांस और बेतोंसेपूर्ण पहाड़वाली सजल पृथ्वी पदातियों के योग्य होतीहै हे भरतबंशी बहुत पदाती रखनेवाली सेना दृढ़होती है और बहुतरथ घोड़े रखनेवाली सेना बर्षाके बिना सूखे दिनों में उत्तम समझी जातीहै बहुतपदाती और हाथी रखनेवालीसेना बर्षाऋतुमें प्रशंसा के योग्य होतीहै इन गुणोंको अच्छेप्रकार बिचारकर देशकालको संयुक्त कर न क्षत्री आशीर्वाद पाने वाला राजा अच्छे प्रकार बिचारकर चलता है वह उत्तम चढ़ाई करके सदैव बिजय को पाता है सोतेहुये पिपासा युक्त शान्तचित्त और युद्ध से पृथक् होनेवालों को नहींमारे अशस्त्री रोते हुये भागेहुये भो-जन करनेवाले युद्धकर्त्ताओं कोभी नमारे इसीप्रकार ब्याकुल अचेत घायल टूटेअंग शान्ततासे पृथक्हुये कर्म्मका प्रारम्भ करने वाले गुप्तसुरंग या अन्य युक्तियों से तपेहुये और घासआदिके लिये घूमनेवाले डेरों के रक्षक और पहरादेनेवाले सदैव से घरपै रहनेवाले जोकि द्वारोंपर वर्त्तमान हों अथवा मंत्रीके द्वारपर जो कोई समूहके स्वामी हैं इनसबको भी कभी न मारे जो युद्ध कर्त्ता शत्रुकीसेना को परास्त करते हैं और अपनीसेना को नियतकर तेहैं वहसमान भोजनपानवाले दूनेमासिक करने के योग्य हैं दश दश यो-द्धाओं में एक २ स्वामी नियत करना योग्य है इसीप्रकार सौसौ युद्धकर्त्ता ओंके ऊपर अधिपति नियतकरना चाहिये तदनन्तर आलस्यको दूरकरके शूरपुरुषको हजारयोद्धाओंका नियन्ताबनावे सब बड़ेबड़े अधिकारियों को इकट्ठा होकर यह कहना योग्य है कि हमलोग प्रतिज्ञापूर्वक शपथखाते हैं कि हमबिजयके लिये परस्परमें पृथक्होकर युद्धकात्याग नहींकरेंगे और जे

कोई भयभीत हैं वह यहींसे लौटो जो लोग अपने नियत किये हुये अधि-
पतिको युद्धमें मारडालें ऐसे लोग युद्धमें भागे हुये अपने मनुष्यों को नहीं
मारें क्योंकि युद्ध में अपनी रक्षाको करता अपनेही पक्षको मारता है भाग
जाने में धनकानाश और अपने मरण के साथ अपकीर्ति और अयश है
पुरुषके भागनेमें चित्त के बिरोधी दुःखदायी वचनसुनने में आते हैं हमारे
शत्रुओं में जो बिपरीत दशावाला होठ दन्त रखने वाला सबशस्त्रों को
त्यागेहुये शत्रुओंसे घिराहुआ है उसको सदैव धनकीहानि और मरण आ-
दि प्राप्तहो जो युद्ध में मुखफेरते हैं वह नीच मनुष्य हैं वह केवल भीड़ब-
ढ़ानेही मात्रको हैं अर्थात् उनका जन्म निरर्थक है वह इसलोक परलोक
दोनोंलोकोंसे गये हैं प्रसन्न चित्त शत्रु भागनेवाले के सन्मुख दौड़ते हैं हे
तात बिजयी मनुष्य नमस्कार और प्रशंसाओं से प्रसन्नचित्त भागने वाले
शत्रुकापीछा करते हैं युद्धमें बर्त्तमान शत्रु जिसकी नेकनामी का बिध्वंस
करते हैं उस दुःखको मारनेसेभी अधिक असह्य जानताहूं बिजयको सब
धर्म्म और सुखकामूल जानो भयभीतोंकी मृत्युघात है उसके सन्मुख शूरपु-
रुषही जाता है युद्धमें जीवनसे निराश स्वर्ग को चाहनेवाले बिजयकरते या
मरते सिद्ध गतिको पाते हैं इसप्रकार से शपथ खानेवाले और जीवनसे
निराश निर्भय बीरपुरुष शत्रुकी सेनाको मझाते हैं ढालतलवार रखनेवाले
पुरुषोंकी सेना आगेहोय और पीठकीओर शकटोंकीभीड़ और स्त्रियांमध्य
में होयँ उसपुर में भी जो वृद्ध मनुष्य आगेबढ़ेहुये हों वहशत्रुओं के मारने
के निमित्त पदातियोंकी रक्षाकरें जो प्रथमही पराक्रमी और साहसी समझे
गये हैं वह आगेको बर्त्तमानहोयँ अन्य मनुष्य उनके पीछेहोयँ और युक्ति
भयभीतोंकोभी प्रसन्नकरना चाहिये चाहै वह केवल भीड़बढ़ानेहीके लिये
सन्मुख बर्त्तमानहों थोड़े युद्धकार्त्ताओं को इकट्ठाकरके लड़वावे और बहुत
से युद्धकर्त्ताओंको इच्छानुसार फहलावे थोड़े योद्धाओंकी सेना बहुतसे युद्ध
कर्त्ताओं के साथ शूचीमुखहोय बेमर्य्याद चढ़ाई या दौड़होनेपर बीच अ-
र्थात् मिलाप हो या मिथ्या होतो दोनों भुजाओं को पकड़ कर पुकारे कि
शत्रुने पराजय पाई पराजय पाई मेरेमित्रों की सेनाआई निर्भय होकर आ-
घात करो भयानक शब्दोंको करते हुये पराक्रमी शत्रुओं को पीड़ादें और
आगे चलनेवाले मनुष्य सिंहनाद और कलकलाककच गोविषाण भेरी
मृदंग पणव आनक इत्यादि बाजोंका शब्द करें ५० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मे सेना.नीतिनामशततमोऽध्यायः१०० ॥

# एकसौएकका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतबंशी पितामह कैसो स्वभाव आचरण रूप कवच शस्त्र रखनेवाले मनुष्य युद्धके योग्य हैं भीष्मजी बोले कि यहां कुल देश आचार आदि से प्राप्त होनेवाले शस्त्र और सवारी कही जाती हैं उसी प्रकार बीर पुरुष आचरण कर्त्ता कर्म्मों में प्रवृत्त होता है गंधारी सिन्धी सौवीर देशी नखरुप्रास से युद्ध करने वाले निर्भय और महापराक्रमी होते हैं उनवीरों की सेना सबके पारहोनेवाली है उन्हीं नरजातों के क्षत्री सब शस्त्रों में कुशल और पराक्रमी होते हैं और पूर्वदेशीय हाथियों के युद्ध में प्रवीण माया से लड़नेवाले हैं इसी प्रकार यवन कांबोज और मथुरा देश वासी हैं यह भुजाओं के युद्धमें महाप्रबल हैं और दक्षिणात्य लोग तलवार चलाने में प्रवीण हैं सब स्थानों में बहुधा शूर पराक्रमी प्रसिद्ध उत्पन्न होते हैं उनके लक्षण मुझसे सुनो कि जिनके वचन सिंह शार्दूल समान इसी प्रकार चाल भी इन्हींके तुल्य कबूतर सर्पके समान नेत्र रखनेवाले सब शूर और शत्रुओं के मथने वाले होते हैं मृगके समान स्वर हाथी के समान उत्तम नेत्रधारी निरहंकारी प्रमादी मुखपर क्रोध रखनेवाले अल्प बुद्धि किंकिणी और मेघके समान स्वर कोई २ ऊंटके समान टेढ़ीनोक नाक और जिह्वा रखनेवाले दूरतक पीछा करनेवाले बिड़ाल के समान कुबड़ा देह रखनेवाले मृतकों को खानेवाले सूक्ष्म केश और त्वचा रखनेवाले शीघ्रगामी चपलता युक्त होते हैं वह कठिनता से जीते जाते हैं कितनेही गोह के समान नीची आंखवाले और मृदुप्रकृती घोड़ेके समानगति और शब्दवाले हैं वह बिजयी होते हैं जो अतिदृढ़ देह उन्नत स्कन्ध चौड़ीछाती स्थिर स्वभाव होते हैं वह मनुष्य बाजोंके बजने से क्रोधयुक्त होतेहैं और प्रसन्न चित्त होकर युद्धकरतेहैं गंभीर और निकले हुये पीतवर्ण नकुल के समान नेत्र भृकुटी संयुक्त मुख देहकी प्रीति रहित शूर ऊंचाललाट मांसरहित ठोढ़ी रखनेवाले भुजा पर वज्र और उंगलियोंपर चक्र रखनेवाले दुर्बल हाड़ों की मालारूप पुरुष युद्ध के होने में तीव्रता से सेनामें प्रवेश करते हैं वह हाथी के समान मतवाले कठिनतासे विजय कियेजाते हैं और पिंगल वर्ण दीप्त के शान्त मोटेगाल ठोढ़ीमुख ऊंचे कन्धे मोटीगर्द्दन विकटरूप स्थूलदेह ऊंचेसुन्दर सुग्रीवनाम घोड़े और गरुड़ की समान उछलने वाले देह शिर टेढ़ा वृषभके समान मुख और दांत उग्रस्वर क्रोधयुक्त युद्ध में शब्दकर्त्ता अधर्म्मी घोर भयंकर रूपहोतेहैं यहभी देहकी प्रीति रहित सेना के आगे करने के योग्य हैं वहअपनी इच्छा से विरुद्ध जब देखते हैं तब शत्रुओं को

मारते हैं वह अधर्मी दुराचारी हैं इनको जीतना मीठे वचनों से होताहै यह राजा के ऊपर भी इसीप्रकार क्रोध करते हैं २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेएकशततमोऽध्यायः १०१ ॥

# एकसौदोका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में उत्तम विजयी सेना की कौनसी सूरत उत्तम होती है भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर विजयी सेना की जो उत्तम सूरत है वह मैं कहता हूं कि प्रथम दैवके क्रोधहोने और समय की लौट पौट से उसके जाननेवाले पुरुष ज्ञानरूप दिव्य नेत्रोंसे उसको देखते हैं उसके ज्ञाता पुरोहित आदिपुरुष इसस्थानपर प्रायश्चित्त बुद्धी को और जप होम मंगलों को करते हैं और शत्रुओं को मारते हैं हे युधिष्ठिर जिस सेना में युद्धकर्त्ता और सवारियां बहुत साहसी होती हैं निश्चय करके उससेनाको विजयप्राप्तहोती है जिसके पीछेकी ओर वायुबहतीहै इसीप्रकार इन्द्रधनुष सूर्य्य की किरणें और बादल पीछेकी ओरहोते हैं और गीदड़ कागगिद्ध सबअनुकूल होकर सेना का पूजन करतेहैं तब उत्तमसिद्धी होती है और जिससमय ऊपरकी ओर प्रकाशवान् ज्वाला रखनेवाली प्रदक्षिणावर्त्त शिखा रखनेवाली निर्धूम अग्नि जिसमें आहुतियोंकी पवित्र सुगन्धिहोती है वह होनहार विजय का लक्षण है और जहां गंभीर शब्द और बड़े शब्दवाले शंख भेरी आदि बाजे बजते हैं और युद्धकांक्षी लोग अनुकूल होते हैं यहभी होनेवाली विजय का रूप है यात्राकी इच्छासंयुक्त युद्धाभिलाषी लोगोंके चलने के समय उनके पीछे और बायें मंगली पशुहोतेहैं और वह दाहिनी ओर आते दृष्टपड़े तो अवश्य युद्धकर्त्ताओंकी सिद्धीहोती है और जो आगेआते दृष्टपड़े तो युद्ध से निषेध करना सूचन करते हैं और जब हंस कौंच शतपत्र चावनामपक्षी मंगलीक शब्दों को करतेहैं और युद्धकर्त्तालोग प्रसन्न और बलवान् होते हैं तब होनेवाली विजयका लक्षणजानो और जिनकी सेनाके योद्धाओं के प्रकाशवान् अस्त्रशस्त्र यन्त्र कवच ध्वजा और मुख ऐसे प्रकाशित और प्रफुल्लितहों जिनको कठिनतासे कोई देखसके वहभी अवश्यशत्रुओंको विजय करतेहैं और जिनके युद्धकर्त्ता वृद्धों की सेवाकरनेवाले निरहंकारी परस्परमें मित्रभीतर बाहरसे एकसाभाव रखनेवालेहैं यहभी विजयहोने का लक्षण है और जहां चित्तरोचक शब्दस्पर्श गन्धघूमतेहैं और युद्धकर्त्ताओं में धैर्य्यता वर्त्तमान होतीहै वह विजयका मुखहै प्रवेशकरनेवाले युद्धकर्त्ता के बायें ओर का काग शुभदायीहोताहै और प्रवेशकरनेकी इच्छाकरनेवालेको दक्षिणकाग फलदायीहै और पीछेसे मनोरथको सिद्धकरताहै और आगेहोनेसे निषेध कर-

ताहै हे युधिष्ठिर चतुरंगिणी सेनाको पारतोषिक आदिसे प्रसन्नकरके प्रथम तो सामनाम नीतिसेही कामकरो फिर युद्धका उद्योगकरो यह साधारण विजयहै जिसका कि नामयुद्ध है और युद्धमें जो व्यूहकी इच्छासे बिजय है उसके सिद्धांतको ईश्वर जानताहै पराजय होनेवाली बड़ी सेना कठिनतासे रोकने योग्य है जैसे कि जलका महावेग और भयभीत मृगरोकने योग्य नहींहोता बाजेपराक्रमी रुरुनाम मृगसमूह के समानबड़ीसेना परास्त हुई सुनकर बुद्धिमान् युद्धकर्त्ताभी पृथक् होजातेहैं एकएकको जाननेवाले अति प्रसन्न चित्त प्राणके त्यागी युद्धमें श्रेष्ठनिश्चय करनेवाले पचासशूरभी शत्रुकी सेनाकोमारतेहैं इसपृथ्वीपर निश्चययुक्त पूजित कुलीनमिलेहुये अठारह युद्धकर्ताभी अच्छे प्रकार शत्रुको बिजय करते हैं समर्थ होनेपर किसी दशामें भी युद्धको स्वीकार नकरना चाहिये जो पुरुष सामदामभेद नीतिको करतेहैं उनका युद्ध उत्तम कहाजाताहै सेनाके देखने सेही भयभीतोंको महादुःखहोताहै समीप आनेवाले युद्धको जानकर जो सन्मुखताको जातेहैं उन युद्धकर्ताओं के बिजयके अंगफड़कतेहैं उससमय स्थावर जंगम जीवोंसमेत देश भर पीड़ामानहोता है और अस्त्रोंकी उष्णतासे मनुष्यों के देहकी मज्जापीड़ा पाती है वारबार उनशत्रुओं के पास युद्धसंयुक्त सामका पैगाम पहुंचाना चाहिये शत्रुओंसे अत्यन्त पीड़ामान होकर वह लोग सब ओरसे संधिको चाहते हैं और शत्रुओं के जो मित्रहैं उनके भेदके लिये दूतलोगों को भेजे और जो राजा अपने से बड़ा है उसकेसाथ संधिही करना योग्य कहाजाता है उसकी इसप्रकारकी पीड़ा दूसरी रीति से करनी असम्भवहै जैसे कि शत्रु को सब ओरसे पीड़ादीजाती है निश्चय है कि साधु पुरुषोंको क्षमा और धैर्यता प्राप्तहोती है और असाधु पुरुषोंको कभी नहीं होती इससे हे राजा तुम धैर्य्य और अधीर्य्यता के प्रयोजनको समझो कि बिजय करके धैर्य्यता करनेवाले राजा का यश बड़ीवृद्धिको पाताहै और महाअपराध में भी शत्रुलोग बिश्वास करतेहैं सम्बरनाम असुर शत्रुको पीड़ादेकर क्षमाको अच्छाजानता था क्योंकि जो लकड़ी नहीं तपाई गई है वह फिर मुख्यदशाको प्राप्तहोतीहै आचार्य्य लोग इसकी प्रशंसा नहीं करतेहैं और यह साधुपुरुषों का उपदेश भी नहीं है बल्कि बिना क्रोध औरनाश के शत्रु अपने पुत्रके समान शिक्षा के योग्यहै हे युधिष्ठिर उग्ररूपराजा सबका शत्रु होताहै और मृदुस्वभावको भी अपमान करते हैं इसकारण दोनोंको काम में लावे और घातकी इच्छा करनेवाला घात करता हुआ भी चित्तरोचक बचन कहे और घात करके शोचता और रोताहुआ कृपा करके कहै कि यह मेरा अभीष्ट नहीं है जो तुम युद्ध में मेरे मनुष्यों से मारे गये और बारम्बार समझायेहुये यह मेरेलोग मेरे

कहनेको नहीं करते हैं बड़े कष्टकी बात है क्योंकि जीवन की इच्छा करने वाला ऐसा योद्धा मारने के अयोग्यहै युद्ध में मुख न मोड़ने वाले श्रेष्ठ पुरुष बहुत कम होते हैं और जिसके हाथसे यह युद्ध में मारागया है उसने मेरी इच्छा के विरुद्ध किया इन बचनों को कहकर मारनेवालोंको एकान्त में पूजन करे मारनेवाले और मृतक पुरुषों का अपराधी जो अप्रिय करे उस दशा में मनुष्यों को स्वाधीन करना चाहता हुआ भुजा को पकड़कर रोदन करे इसप्रकार सब दशाओं में मीठे बचन बोले धर्म्मज्ञ और निर्भय राजा मनुष्योंका प्यारा होता है उसी में सब जीव विश्वास को करते हैं वह बिश्वासी और राजसिंहासन पर बर्त्तमान राजा नियत समय तक पृथ्वी के भोगने को समर्थ होता है इससे पृथ्वी के भोगने की इच्छा करनेवाला राजा छल रहित होकर सब जीवोंको अपना विश्वास दिलावे और सब ओर से अच्छी रक्षा करे ४१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेशतोपरिद्वितीयोऽध्यायः १०२ ॥

# एकसौतीनका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह पृथ्वीका राजा प्रारम्भ में मृदु कठिन और महापक्ष वाले राजा के साथ कैसे बर्त्ताव करे उसको मुझ से कहो भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिस में बृहस्पति जी और इंद्रका प्रश्नोत्तर है शत्रुके वीरोंको मारने वाले देवताओं के इन्द्रने हाथ जोड़कर बृहस्पतिजी से कहा कि हे ब्रह्मन् सावधान राजा शत्रुओं के साथ किसप्रकार से बर्त्ताव करे मैं उनको बिना पीड़ादिये कैसे स्वाधीन करूं दोनों सेनाओं के परस्पर युद्ध होने से साधारण बिजय होती है प्रतापवान् प्रकाशरूपालक्ष्मी मुझको किस कर्म्म के करने से त्याग नहीं करे यह सुनकर धर्म्म अर्थ कामके जाननेवाले बृहस्पतिजी ने उत्तर दिया कि शत्रुको भी युद्ध से स्वाधीन न करना चाहिये यह वह अज्ञानी लोग करते हैं जो क्रोधी और अधैर्य्यवान् हैं मारनेवाले राजाको शत्रु को सावधान करना अयोग्य है क्रोधके भय प्रसन्नता को आत्मा के बीच में अन्तर्गत करके विश्वासरहित बिश्वासी के समान शत्रुका सेवन करे सदैव प्यारे वचन कहै और कोई अप्रिय बात न करे निरर्थक शत्रुता से अलग रहै और अप्रिय वचनों को ऐसे त्यागकरे जैसे कि बहेलिया पक्षियोंकीसी बोलीबोलकर पक्षियों को आधीन करता है हे इन्द्र इसीप्रकार कर्म्मकर्त्ता राजा शत्रुओंको आधीन करके मारे क्योंकि शत्रुओं को परास्त करके सुखसे कोई नहीं सोता है दुष्टात्मा शत्रु ऐसे जागता रहता है जैसे उठीहुई संकर नाम

अग्निथोड़ी बिजय के लिये युद्ध न करना चाहिये विश्वास देकर मनोरथसिद्ध करनेवालाराजा शत्रुको आधीन करके औरमन्त्र जानने वाले महात्मा मन्त्रियोंसे सलाह करके अपमान युक्त हृदय से अजय फिर समय पाकर राज्य के चलायमान होनेपर इस पर घातकरे और काम पूरे करनेवाले मनुष्यों के द्वारा सेनाको रक्षक बनावे आदि अन्त मध्य का जानने वाला शत्रुता को गुप्तरक्खे और सेनाकी संख्या का जानने वाला उसकी सेनाओं को बिरुद्ध करे इसी प्रकार भेददान और विष आदि औषधियों से प्रयोजन को सिद्धकरे और शत्रुओं से सन्धिकरना न चाहै और बहुत काल तक मौके मौकेको देखे फिर शत्रुओं को मारे और कालकी इच्छा करनेवाला समय व्यतीत करे जिससे कि शत्रु बिश्वासयुक्त हों शत्रुओंको शीघ्र न मारे विजय में सुहृद देखने के योग्य है वह चित्तके काँटेको नहीं उखाड़ता है और बचनों से घावनहीं उत्पन्न करता वह समय पर बर्त्तमान होनेसे घात करता है हे देवेन्द्र मारने की इच्छा करने वाले पुरुषको शत्रुओं के विषय में फिर समय नहीं मिलता है जो समय के इच्छावान् पुरुषको समयही उल्लंघन करे फिर वह समय उस कर्म्म करने के इच्छावान् पुरुषको कठिनता से मिलता है साधुओं के किये हुये कर्म्म को अंगीकार करता पराक्रमको प्राप्त करे और वे समय मित्र को प्राप्त करे और प्राप्त होने पर पीड़ा न दे कर्म्मकर्त्ता राजा काम क्रोध और अहंकार को त्याग करे बारम्बार शत्रुओंके दोषों की इच्छाकरे और हेइन्द्र दण्डमें मृदुता सुस्तीभूल और अच्छेप्रकारसे नियत की हुई माया मूर्ख अज्ञानी को पीड़ा देती है इन चारों को दूर करके छलसे रहित बिचार न करता शत्रुओं के ऊपर घात करने को समर्थ होता है जो एक मंत्री गुप्त करनेके योग्य हो उसी से मन्त्र कहना योग्य है मंत्री लोग गुप्त बात को चित्त में रखते हैं और परस्पर में सुनाते भी हैं पहिला मंत्री राज्य के गुप्त बिचार में असमर्थ है यह बिचारकर फिर दूसरे मंत्रियों के साथ सलाह करे जो शत्रु दूर हैं उनपर पुरोहित के द्वारा ब्रह्मदण्ड का प्रयोग करावे और जो सन्मुख आवे उसपर चतुरंगिणी सेना चढ़ावे राजा जब तब समयपर उस उस शत्रुके ऊपर सामआदि युक्तियोंको बर्त्ते प्रथम भेद को फिर इसीप्रकार शांतता को भी संयुक्त करे समय पर बलवान् शत्रु का आज्ञावर्त्ती हो जाय सावधान कर्म्म में प्रवृत्त आपही उस असावधान के घात को करे प्रणाम दानमान समेत मीठे बचनों से बार्त्तालाप करता हुआ शत्रु का सेवन करे और उसको कभी शंकायुक्त न करे राजा शंकावान् शत्रुओं के स्थानों को सदैव त्याग करे अर्थात् उनपर विश्वास न करे वह अप्रतिष्ठित शत्रु इस संसार में सावधान रहते हैं हे देवताओं में श्रेष्ठ इससे अधिक उत्तम कोई

कठिन कर्म्म नहीं है जैसे कि व्याकुल चित्त पुरुषों का ऐश्वर्य्य होताहै इसी प्रकार नाना प्रकार के स्वभाव रखनेवालों का भी ऐश्वर्य्य कहाजाता है इस से युक्ति में प्रवृत्त होकर उद्योग करता है परंतु वह मित्र और शत्रु को विचार ले मनुष्य मृदु चित्त राजा का भी अपमान करते हैं और कठोर प्रकृतिवाले से व्याकुल और भयभीत होते हैं तुम कठोर प्रकृति मत हो और अत्यन्त मृदु भी हो अर्थात् कठोर मृदु दोनों समय समय पर होना योग्य है जैसे सब प्रकार से पूर्ण अमोघ जल के किनारे पर नगर को छिद्र के द्वारा सदैव पीड़ा है उसी प्रकार असावधान राजा को भी पीड़ा होती है हे इन्द्र एक साथ बहुत से शत्रुओं के सन्मुख युद्ध न करे साम दाम दण्ड भेद के द्वारा उनमें से हरएक को आधीन करके शेष बचे हुये शत्रुओं के साथ उत्तम युक्तिकरे और जो वह बुद्धिमान् राजा समर्थ नहीं होता है उस दशा में सब युक्तियों को प्रकट करे जब कि बड़ी सेना घोड़े हाथी रथ पैदलों से व्याप्त बहुत से यंत्रों की रखनेवाली प्रीतियुक्त छः अंग रखने वाली होय और जब शत्रु से अधिक अपनी बहुत प्रकार की वृद्धि माने तब प्रकट होकर वे विचारे चोरोंपर घात करे क्योंकि पराक्रमी शत्रुओंके ऊपर सदैव सामकरना प्रशंसा के योग्य नहीं है न मृदुता न सेना की चढ़ाई न खेती का नाश न विपस जल आदि को दूषित करना और फिर स्वभाव से विचारना भी नहीं अर्थात् कपट रूप दण्ड ही उत्तम है नाना प्रकार की माया और उस माया से परस्पर में दूसरे शत्रुओं की चढ़ाई कराना और छल को करे और सेना की चढ़ाई से अपनी बदनामी न करे कार्यकर्त्ता मनुष्यों के द्वारा कार्य में प्रसक्त चित्त पुरुषों को पुर और देशों में भ्रमण करावे उन पुरों में बुद्धि के अनुसार नियत की हुई नीतिको संयुक्त करते हुये राजा लोग उनमें जाकर वहां के सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों को विजय करते हैं हे इन्द्र राजा लोग अपने मन्त्रियोंको गुप्त धन देकर और प्रत्यक्ष भोगों को छीन कर और यह बात प्रसिद्ध करके कि मेरे दुष्ट मंत्री मुझ को छोड़ कर अपने दोषोंसे दूसरे राजाओं में संयुक्त हुये फिर उनको पुर और देशों में नियत करते हैं उसीप्रकार दूसरे शास्त्रज्ञ गुणी सुन्दर शिक्षित भाषा और प्रबन्ध रचना में प्रवीण पण्डितों के द्वारा शास्त्रकी रीतों के अनुसार मारनेवाले देवता को पुरों में स्थापन करे इन्द्र बोले कि हे ब्राह्मणों में उत्तम दुष्ट के कौन कौन चिह्न होते हैं और कैसे दुष्ट को जाने यह आप मुझसे वर्णन कीजिये बृहस्पतिजी बोले कि जो मनुष्य पीछे दोषों को कहता है और अच्छे शत्रुओं में दोष लगाता है और दूसरेकी प्रशंसा में मौनहोकर मुख फेरता है मौन नहीं सोतेभी उसको दुष्ट जाननाचाहिये जो उस मौनहोने में कोई कारण भी नहीं बारम्बार श्वास लेना होठों का काटना शिरका हलाना और बारबार

मिलाप को करता है और शत्रु के समान बातें करता है और स्वीकार कियेहुये कर्मकोपीछे नहीं करता है और देखीहुईबात को नाहीं करता है और अलगहोकर कहता है तब जानना चाहिये कि अब यह अनुकूल नहीं है अधिकतर आसन शयन और सवारी में उस के भाव देखने के योग्य हैं मित्र के पीड़ामान् होने में पीड़ित होना और प्रीति करना यही मित्रका लक्षण है उस के बिपरीत शत्रु जानने के योग्य है क्योंकि वह शत्रु के चिह्न हैं हे देवेन्द्र इन कहेहुये दुष्टपुरुषों का स्वभाव बड़ाबलवान् है इसे तुम जानो यह दुष्टों का बिज्ञान तुम से कहा इससे तुम शास्त्र के तत्त्वार्थको समझकर बुद्धि के अनुसार कर्म करो भीष्मजी बोले कि शत्रु के नाश करने में प्रीति चित्त उस इन्द्र ने बृहस्पति जीके इस सत्य बचन को वैसेही किया और समय पर बिजय के निमित्त जाकर शत्रुओंको परास्तकिया ५३॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरितृतीयोऽध्यायः १०३ ॥

# एकसौचार का अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि मन्त्रियों के हाथ से पीड़ामान् खजाने और सेना से रहित धार्मिक राजा अर्थों को न पाकर सुख को चाहता कैसे कर्मकरे भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर राजा क्षेमदर्शी का इतिहास तुझ से कहताहूं उस को समझो प्राचीन समय में सेना से रहित राजकुमार राजा क्षेमदर्शी कालकबृक्षीय मुनि के पास गया और कष्टरूप होकर राजाने उस से पूछा हे ब्रह्मदेव अर्थ में भागपाने योग्य बारम्बार उद्योग करनेवाला मुझसा पुरुष राज्य को [illegible] पाकर क्या करने के योग्य है चोरी दूसरे की शरण नीच आचार और [illegible]रण के सिवाय क्याकरे इस को आप मुझ से कहिये तुम से धर्मज्ञ और [illegible]ज्ञ पुरुषोंकी शरण में जाकर मनुष्य प्रीति और शोक को त्याग ज्ञानरूप धन को पाकर इच्छा से वैराग्य को पाता है और वैराग्यवान् होकर सुख[illegible]क वृद्धिकोपाता है जिनका सुख धन आदि के आधीनहै मैं उनको शोचता [illegible]प्न के समान मेरे बहुत से अर्थ नष्ट होगये जो बड़े अर्थों को त्याग[illegible] हैं वह बड़े कर्मकर्ता हैं हमसरीके भी असत्पुरुष उन के करने को स[illegible]हीं होते सो हे ब्राह्मण मुझ सरीके दुःखी पीड़ामान् लक्ष्मीरहित पुरु[illegible]को जो यहां दूसरासुख है उसको वर्णन करो इस बात को सुनकर कालक[illegible]क्षीय मुनि ने राजा क्षेमदर्शी को उत्तर दिया कि तुम बिज्ञानी को प्रथम[illegible] [illegible] बुद्धि करनीचाहिये कि यह और मैं और जोकुछ मेरा है वह सब नाश[illegible] है तुम जो मानतेहो कि यह कुछ है सो कुछभी नहीं है इसको जानो कष्ट[illegible]प आपत्तिको प्राप्तहोकर ज्ञानीपुरुषइसप्रकार पीड़ामान् नहींहोता

है जो भूत है वहसब भविष्यत्काल में नहींहै इसप्रकार जाननेके योग्य बातों को जाननेवाले तुम अधर्मोंसे बचोगे प्राचीन राजाओंके समूहमें जो कुछ सम्पत्तिथी और जो पहलेही पहले राजाके पासहुई वह सब तेरी नहीं है उसको जानकर कौन दुःखीहोगा यह होकर नहीं होता न होकर होगा शोक में धन के लाने की सामर्थ्य नहीं है इस से कभी शोक न करे हे राजा अब तेरापिता और पितामहकहां है अब तुम उनको नहीं देखते न वह तुमको देखतेहैं तुमअपनी नष्टताको देखके उनको क्या शोचतेहो बुद्धिसे जानलो कि अवश्यमरेंगे और मैंतुम औरतुम्हारे मित्र और शत्रुसब अवश्यमरेंगे और सबका नाशहोगा जो बीस या तीस बर्ष की अवस्था के हैं वह सौ बर्षसे पहलेही मरजांयगे जो पुरुष बहुत से धनसे भी पृथक् न होसके ऐसीदशा में मेरा वहधन नहीं है इसप्रकार उस को मानकर अपने अभीष्टको करे और जो प्राप्त नहीं हुआ है उसको भी जाने कि यह मेरानहीं है और जो हाथ से जातारहा हो उसको भी अपना न जानो और जो प्रारब्ध को बलवान् मानते हैं उन को पण्डितसमझो वही सत्पुरुषों के आश्रयस्थान हैं वहअन्न रहित भी जीते हैं और जो राज्य पर शासन करता है वह भी जीता है बुद्धि और उद्योग संयुक्त मनुष्य तेरे समान और तुझसे अधिक भी हैं वहतेरे समान शोच नहींकरतेहैं इसहेतु भी शोचकोत्यागो क्योंतुमबुद्धि और [illegible] रूप के द्वारा इन मनुष्यों से उत्तम अथवा समानहो राजा बोले हे ब्राह्मण[illegible]र में दूसरे राज्य बिना उद्योगके प्राप्तहुआ महाकालसे हरण कियाजाता है [illegible] से अपनी ताहूं हेतपोधन जीविकाका हेतु प्राप्तहोनेसे मैं जीवन करता हुआ [illegible] पुरुषों को से हरेहुये उस राज्यके इसशोकरूपी फलको देखताहूं मुनिबोले [illegible]यत की हुई श्री तुम उसीप्रकारके होजाओ जो भूत और भविष्यकेयथार्थ[illegible] ऐश्वर्यों प्राप्तहोनेवाले अर्थोंको चाहते हैं और अप्राप्त अर्थोंको कभी [illegible] देकर और और प्रत्यक्षको अनुभव करते तुम अप्राप्तअर्थोंको मतशोचो हे राज[illegible] मंत्री मुझ जिसप्रकार प्राप्तहोनेवाले योग्य अर्थों से लोग प्रसन्न होते हैं [illegible]को पुर और भी आनन्दित होतेहो क्या लक्ष्मी से रहित तुम अपने शुभ[illegible] [illegible]शाक्षित भाषा नहींकरतेहो पूर्व्व कर्म्मों से अभागा दुर्बुद्धी सदैव ईश्वर[illegible] करते [illegible] अनुसार और मनोरथ पूर्ण करनेवाले पुरुषोंसे ईर्षा करता है और [illegible] नहीं में उत्त[illegible] ष्योंकोभी नीच और नालायक मानता है इसीहेतुसे यह [illegible] मुझसे वर्णन होता है हेक्षेमदर्शी आयेको पुरुष माननेवाले मनुष्य ईर्षा [illegible] है और अ[illegible] डूबते हैं सो तुम उनकेसमान ईर्षावान् मतहो जो लक्ष्मी [illegible] फरता है मौन तेरेपास नहीं है उसको तुम क्षमा करो बुद्धिमान् पुरुष सदैव [illegible] कारणभी नहीं पर अर्थात् शत्रुओं के पास भी सत्यलक्ष्मीको भोगते हैं सच्चे और बारबार

शत्रुओं के ही पास से प्राप्त होती है योग धर्म्म के जानने वाले धर्म्मचारी पण्डित मनुष्य लक्ष्मी और पुत्रपौत्र आदि को दूर करते हैं दूसरी प्रकृति के मनुष्य कर्म और साधनकी इच्छा से नवीन कर्म्म के प्रारम्भ करनेवाले पुरुषको देखकर और उसको महाकष्टसे प्राप्तहोनेवाला मानकर त्यागकरते हैं सो तुम ज्ञानीरूप होके इच्छाकरने के अयोग्य दूसरे के आधीन वर्त्तमान नाशवान् अर्थोंको चाहतेहुये दुःखसे विलाप करतेहो ऐसी बुद्धि के चाहनेवाले तुम उनका त्यागकरो क्योंकि अनर्थ वस्तु अर्थरूपसे और अर्थ अनर्थरूप से देखनेमें आनेवाली हैं धनका नाश कितनेही मनुष्यके मनोरथ सिद्ध होनेके लिये होताहै दूसरा पुरुष उसको अत्यन्त आनन्द मानकर लक्ष्मीको चाहता है कोई लक्ष्मीसे क्रीड़ा करताहुआ दूसरे कल्याण को नहीं मानताहै इस प्रकार से उस इच्छावान्का प्रारम्भकर्म्म नष्टहोताहै और जो कष्टसाध्य प्रयोजन चित्तसे नाशको प्राप्तहोताहै तब अर्थसे रहित होकर प्रारम्भ करनेवालामनुष्य वैराग्य को पाता है कल्याणरूप कुलवान् कोई पुरुषधर्म्मको प्राप्तहोकर परलोकके सुखकोचाहते हैं वह लौकिक धर्म्म से वैराग्यपाते हैं और कोई मनुष्य धनकेलोभ में भरेहुये जीवन को त्यागकरतेहैं वह पुरुष धनके प्रयोजनके सिवाय जीवनको नहीं मानतेहैं उन्होंकी कृपणता और निर्बुद्धिताको देखो कि जीवनको नाशवान् भी जानकर मोहसे अर्थदृष्टी में पड़ेहुयेहैं नाशहोनेवाले धनसमूहके रखनेवाले मृत्युपानेवाले और अन्तमें वियोगहोने वाले संयोगके होनेपर कौनचित्तको लगावे हे राजा पुरुषधनको अथवा धनपुरुषको अवश्य त्यागकरता है इससेकौन बुद्धिमान् दुःखीहोगा दूसरों के भी सुहृद्जन और सबधन नष्टहोजातेहैं हेराजा बुद्धिसे मनुष्योंकी और अपनी आपत्तिकोजानो इन्द्रियोंको रोको चित्तको थांभो वचनोंको स्वाधीनकरो इन निर्बल शत्रुरूपकेवल देखने ही मात्रको उत्पन्न होनेवाले अर्थोंमें निषेध करनेवाला वर्त्तमान नहीं है देशकाल से पृथक् अर्थोंके जानने से बड़ेज्ञान से तृप्त तुझसा शूर पुरुष पीछेशोच नहीं करता है चपलता रहित मृदुस्वभाव जितेन्द्री और श्रेष्ठ निश्चय पूर्वक ब्रह्मचर्य्य में प्रवृत्त थोड़ेधन को चाहता हुआ शोचनहीं करता तुम निर्विवेक और पापरूप निर्दयवृत्ती दोषों से भरेहुये नपुंसकों के योग्य कापाली वृत्ति के प्राप्तकरनेको योग्य नहींहो तू वाकजित् चित्तको जीतने वाला सब जीवोंपर दयावान् महाबन में मूलफलों को भोजन करके अकेलाहोकर क्रीड़ाकर पंडित का यह कर्म्म ईषादण्ड अर्थात् हलकी लकड़ी के समान एकाकीवन में क्रीड़ाकरनेवाले दन्तीहाथीकेसमानहै वह वनमें ऐसे तृप्त नहींहोता जैसे कल्लोलवान् महाह्रदआपही स्थिरहोताहै मैं इसी दशावाले पुरुषके जीवनको सुखरूप देखताहूं हे राजा धनकी प्राप्ति न होने और दैव

के आधीनहोनेपरमंत्री से रहित राजा का आप क्या कल्याण मानतेहो ५३॥
इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मे शतोपरिचतुर्थोऽध्यायः १०४॥

# एकसौपांचका अध्याय ॥

मुनिबोले कि हे क्षत्री तुम जो अपनी जाति में कुछ वीरता देखते हो उस नीतिको राज मिलने के लिये तुमसे कहताहूं तुम उसके करनेमें समर्थहोकर कर्म्मभी करोगे उसको आद्योपान्त सुनो मैं कारण समेत कहूंगा जो इसकर्म्म को करोगे तो बड़े अर्थवाले राज्य और राजमंत्रों सहितमहालक्ष्मीको पाओगे जो आपको अभीष्ट होयतोकहूं राजा बोला कि हे भगवन् आपनीतिको कहिये मैं वीरतामें प्रवृत्तहूं अब आपके साथ यह मेराभिलाप सफलहो मुनि बोले कि कपट,काम,क्रोध,भयको त्याग हाथजोड़कर शत्रुओंकोभी सेवनकरो उनको बड़ी सावधानी और पवित्र कर्म्मों से आधीन करो सत्यप्रतिज्ञ राजा मासिकके द्वाराधन तुझको देनेके योग्य हैं तुम सबजीवों में विश्वासपात्र और उसकी भुजारूपहोगे तदनन्तर तुमबड़े उत्साह युक्त व्यसनों से रहित पवित्र सहायकों को पाओगे अपने शास्त्रका जानने वाला चित्तका जीत-नेवाला जितेन्द्री राजा अपने को दुःखसे रहित करता है और प्रजा को प्र-सन्न करता है उस धैर्यमान् श्रीमान् राजा से सत्कार पानेवाले तुम सबजी-वों में विश्वासपात्र और उस राजा की बड़ी भुजारूप होकर सुहृद्गणों को प्राप्त होकर श्रेष्ठ मंत्रियों से सलाह करके बीच के राजाओं को शत्रुओं से प्रतिकूल करके बेलपत्र से बेलपत्र भेदनकरो अथवा दूसरोंसे सलाह कर-के इस राजा जनक की सेना को घात कराओ और जो सुन्दर स्वभाववा-ली अलभ्य स्त्री वस्त्र शय्या आसन सवारी और बड़ेमोल के स्थान पशुपक्षी रस गंधफल आदि हैं उन में उसको प्रवृत्तकरो जिससे कि शत्रु की नष्टता होय और जो निषेधित और अननिषेधितवस्तु हैं उनको नीतिज्ञ पुरुष शत्रु कोकभी न जनावे हे राजा तुम शत्रु के देश में क्रीड़ाकरो कातामृग और कागकी युक्तियों से शत्रुओं में मित्रभावको करो और पराक्रमियों के सा-थ उसका विरोधकरवाओ उद्यान और बड़ेमोल के शयन आसन आदि कोतैयारकराओ और भोगों के आनन्द के द्वारा इसके खजानों को खाली कराओ एक गोदानकरने की शिक्षाकरो और यज्ञके करने के लिये ब्राह्म-णोंकापूजनकरो वह ब्राह्मण स्वस्तिवाचन आदि से तेरा उपकार करेंगे और उस शत्रुको भेड़ियेके समान भोगेंगे निस्सन्देह पुण्यशील मनुष्य परमगति कोपाताहै और स्वर्गमें पवित्रतमस्थानको पाताहै हे राजा कौशिल खजाने केखालीहोनेसे मनुष्य शत्रुके आधीन होताहै धर्मअधर्म दोनोंमें प्रवृत्त पुरुष

का खजाना जोंकि फल और अर्थका मूलहै नाशको पाताहै शत्रुके सन्मुख श्रेष्ठ मनुष्य के कर्मको न कहो किन्तु इसके समक्ष में दैवकी प्रशंसाकरो निस्सन्देह दैवका माननेवाला अर्थात् उद्योग न करनेवाला शीघ्र नष्ट होताहै और शत्रुको विश्वजित यज्ञकराके धनसे खाली कराओ फिर पीड़ामानहोकर उसके महाबन को जानेपर तुम मनोरथ को सिद्ध करोगे योगधर्म्म जाननेवाले पवित्र किसी आचार्य्य को इसके सन्मुख करो जो वह त्यागकर संन्यास धर्म्म को प्राप्तकरे तो सबशत्रुओंकी मारनेवाली सिद्ध औषधियोंके योगसे उसके हाथी घोड़े और मनुष्यों को मारो यह बात महा कपटी छली बुद्धिमान् किसीदूसरे मनुष्य से करानी योग्य है २४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिपंचमोऽध्यायः १०५ ॥

# एकसौछः का अध्याय ॥

राजा बोला कि हे ब्राह्मण मैं छलकपट से जीवननहीं चाहताहूं मैं अधर्म्मयुक्त बड़ेअर्थों कोभी नहीं चाहता हे भगवन् मैंने पहिलेही इसको त्याग किया है जिसकर्म्म से मुझमें कोई संदेह न करे और सबकीबुद्धिहोय उसी वृत्तिसे जीवनेकी इच्छाकरताहूं इसके विपरीत आपकोभी कहना अयोग्यहै मुनि बोले कि हे राजा तुम इसगुण से संयुक्तहो जैसा कि तुमकहतेहो हे सर्वदर्शी तुम स्वभाव और बुद्धिसे संयुक्तहो मैं तुमदोनों शत्रु मित्रोंके प्रयोजन में उद्योग करूंगा तेरे और उसके मिलापको ऐसाकरूंगा जोकि सदैव वर्त्तमान और अविनाशी होगा इसप्रकार के दयावान् कुलवान् बहुत शास्त्रोंके जाननेवाले राजनीति के ज्ञाता को कौन राजा मन्त्री न करे और जोकि तुम राज्य से भ्रष्ट कियेगये और बड़े २ व्यसनों में प्रवृत्तहुये हे क्षत्री दयावान् तुम श्रेष्ठचलन से जीवन करना चाहतेहो हे तात वह सत्यवादी राजा जनक मेरेघर में आवैगा तब मैं उसको आज्ञा दूंगा वह निस्सन्देह उस को करेगा फिर मुनि ने राजा जनक को बुलाकर यह वचन कहा कि यहक्षत्री राजकुल में उत्पन्नहुआहै और इस के अन्तःकरण की बात मैं जानताहूंयह शरदऋतु के चन्द्रमा और आदर्श के समान शुद्धचित्तहै मैं इस में कोई पापनहीं देखताहूं सब प्रकार से मेरा परीक्षा कियाहुआ है इस के साथ तू सन्धिकर इसपर ऐसा बिश्वासकर जैसा कि मुझमें करता है मन्त्री के बिना राज्य में तीनदिन भी शासन करना या आज्ञादेना योग्य नहीं है हे राजा शूर या बुद्धिमान् मन्त्रीहोना चाहिये उन दोनों शूरता और बुद्धिसे दोनों लोकोंको देखो और राज्यके प्रयोजन को भी देखो लोकमें किसी स्थानपर धर्मात्माओंकी ऐसी अन्यगति नहीं है यह राजपुत्र महात्मा और सत्पुरुषों

के कर्म्मों को करता है तू इसको अपने साथ रखने को स्वीकारकर यह धर्म को सन्मुखकरनेवाला राजा तेरे शत्रुओं के बड़े समूहों को पकड़ेगा और जो यह तुम्हारे सन्मुख होकर युद्ध करे तो वह क्षत्री का मुख्यधर्म है बाप दादों के स्थानपर युद्ध में वर्त्तमान होकर तेरे विजयकरने की इच्छाकरे तो विजयरूपी व्रत के चाहने वाले तुमभी इससे युद्धकरो अपनी बुद्धि में प्रवृत्त होकर तुम मेरी आज्ञा से युद्ध के बिनाही उसको अपने आधीनकरो इस से तुम अयोग्य लोभको त्यागकरके धर्म्मको देखोगे शत्रुताकी इच्छा से अपना धर्म्म त्यागकरना योग्य नहीं है, हेतात सदैव जय और अजय नहींहोती इस कारण शत्रुलोग भोजन आदि के द्वारा आधीनकरनेके योग्य हैं अपनीजात में भी जय और अजयदृष्टि में आनेवाली है हे तात नाश करनेवाले पुरुषों को नाशकरनेवाले अन्य पुरुषोंसे भयहोता है यह सब बातें सुनकर राजा जनक ने उन क्षेमदर्शी ऋषि से विधिपूर्वक पूजन सत्कारकरके प्रतिष्ठापूर्वक यहवचन कहा कि बड़ाज्ञानी जैसा कहे औरबड़ा शास्त्री जैसा वर्णनकरे, और वृद्धि चाहनेवाला जो कहे, वही दोनोंलोकों का देनेवाला बचन है मुझको जो २ आपकी आज्ञा हुई हैं वह सब मैं करूंगा इसी में कल्याण है इसमें बिचारना मेरा अयोग्य है तदनन्तर राजा जनक ने कौशिल राजा को बुलाकर यह वचन कहा कि मैंने धर्म्म और नीति से संसार को विजय किया परन्तु हे राजाओं में उत्तम मैं तेरेनिजगुणों से पराजयहुआ आप अपना अपमान न करके विजय कियेहुये के समान विराजमानरहो मैं तुम्हारी बुद्धिका अपमान नहींकरताहूं और न तुम्हारे पराक्रमका अपमान करताहूं और यहभी नहीं मानताहूं कि मैं विजयकरता हूं आपविजयी होनेवालों के समान कामकरो हे राजा बुद्धि के अनुसार अच्छे प्रकार पूजेहुये तुम मेरेघरको भी चलो तब वह परस्पर में विश्वासी दोनोंराजा ऋषिका पूजन करके घर को गये तदनन्तर राजाजनक ने कौशलराजा को शीघ्रता से अपनी राजधानी में लाके उसपूजन योग्य को पाद्य, अर्घ, मधुपर्कसे पूजा और इसकी प्रसन्नता के लिये अपनी पुत्री से विवाहकर के उस के यौतुक में अनेक रत्नआदि दासीदासदिये यह राजाओं का उत्तम धर्म्म है और जय पराजय सदैव नहींहोती २८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्म्मेपुनःकालकवृक्षीयनाम शतोपरिषष्ठोऽध्यायः १०६ ॥

# एकसौसातका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे परमतप तुमने ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रों के

धर्म्म चलन और धन उद्योग, जीविका के हेतु और फलोंको कहा और राजाओं के धन खजाने और खजानेकी वृद्धि विजयमंत्रियों के गुणवृत्ति और नौकरोंकी वृद्धिको कहा छःगुणों कागुण इसी प्रकार सेनावृत्ति दुष्टका ज्ञान और सत्पुरुषोंका लक्षण कहा और समान न्यून अधिक पुरुषोंका जो ठीक लक्षणहै और अच्छी वृद्धिपानेवाले राजाको मध्यम पुरुषकी प्रसन्नताके लिये जैसे वर्त्तना चाहिये वह भी वर्णन किया और शास्त्रके अनुसार उपदेशरूप साधारण युक्तिसे राज्यसेभ्रष्टहुयेका पोषण और अजीविकाको धर्मपूर्वक वर्णन किया और विजय की इच्छा करनेवाले राजा के चलन को भी वर्णन किया हे ज्ञानियों में उत्तम इसीप्रकार समूहों की आजीविका को सुना चाहताहूं और हे पितामह जैसे गण समूह अच्छीवृद्धि पाते हैं और बिरुद्धनहींकरते और शत्रुको विजयकरना चाहते हैं और मित्रोंको प्राप्त किया चाहते हैं मैं उन समूहों की नष्टता को देखताहूं जो बिरोधताका मूल रखनेवाली है और बहुत मनुष्यों से मंत्रका छिपाना कठिन है उसको मैं पूर्णताकेसाथ सुना चाहताहूं जिसरीतिसे वह बिरोधी न हों वह आप कहनेको योग्य हैं भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर यह दोनों लोभ और क्रोध उनसमूह व घराने और राजाओंकी शत्रुताको बढ़ानेवाले हैं अकेलाराजा लोभकोकरताहै तदनन्तर समूह क्रोधको करताहै वह दोनों भ्रष्टता से नाशको प्राप्तहोते हैं वह दूतों के द्वारा अथवा मंत्रबलसे पृथ्वीका भेजदेनेसे और साममंत्रके तोड़ने से भ्रष्टता और नाशसे और भयकारी युक्तियों से परस्पर पीड़ा देते हैं मिलकर जीविकाका निमित्त प्राप्त करनेवाले धनके लेने से शत्रुहोजाते हैं बिमन और शत्रुहोकर वह सब भयसे शत्रुके आधीन होते हैं और शत्रुओंके समूहों में नाशपाते हैं और बिरोधी शत्रुओं से सुगमतासे बिजय होते हैं इस कारण समूहवाले लोग सदैव एकतासे उद्योगकरें क्योंकि मिलेहुये समूह के पराक्रम और उद्योगों से सबमनोरथ सिद्ध होते हैं और उनमिलकर जीविका करनेवालों से दूसरेदेश के मनुष्य मित्रता करते हैं ज्ञानीपुरुष परस्पर में प्रीतिरखनेवालों की प्रशंसाकरते हैं और ब्यवहार आदिमें एकमतवाला समूह आनन्दपूर्वक वृद्धिको पाता है शास्त्र के अनुसार धर्म्मिष्ठ ब्यवहारों को नियत करके बुद्धिके अनुकूल उनको देखने से सब समूहबड़ी उत्तम वृद्धिपाते हैं बेटे और भाइयोंको सासना और शिक्षा करते और शिक्षापानेवालों को पोषण आदि करतेहुये सदैव उत्तम वृद्धिको प्राप्तकरते हैं हे महाबाहो दूत और सलाह के बिषयका बिचार करते खजानेकी वृद्धिमें सदैव प्रवृत्तहोनेवाले समूहको सब ओरसे वृद्धिहोती है हे राजाकार्य्य में सदैव प्रसक्त समूह की बड़े उत्साहवाले स्वकर्म्मनिष्ठ उद्योगी बुद्धिमान् लोग प्रशंसा करते हैं और

शास्त्रमें प्रवीण शस्त्रविद्याके ज्ञाता महाधनी भी बड़ाई करते हैं और क्रोध, विरोध, भय, दण्ड, पीड़ा, घात इत्यादि बातें समूहको शीघ्रही शत्रुके आधीन करती हैं इस निमित्त उक्तबातों से रहित समूह प्रशंसा पूर्वक मानने के योग्य है और संसार के बड़े २ प्रबन्ध और कार्य्य इनसमूहों के आधीन हैं सो हे युधिष्ठिर जो गुप्त बिचार में श्रेष्ठहैं उनपर दूतोंकोनियत करना चाहिये सब समूहमंत्र के सुनने के योग्यनहीं हैं इन उत्तम समूहों से मिलकर परस्परमें समूहका अभीष्ट करना चाहिये पृथक् वा बिरोधी वा भिन्न २ होनेवाले समूहकाउनके बिपरीत करना चाहिये और परस्परमें बिरोधी केवल अपनीही सामर्थ्यसे कर्म्म करनेवाले समूहों के धनआदि अर्थ नाशहोजातेहैं और अनर्थ प्राप्तहोजाते हैं पण्डितलोग उनको शीघ्रही धमकाकर आज्ञा करने के योग्य हैं कुलोंमें उत्पन्न होनेवाले उपद्रव कुलों के बृद्धों से दूर नहीं किये जायँ तो गोत्रभरेका नाशकरते हैं वह दोष समूहमें बिरोधका कारण है जो समूहके सबलोग परस्परमें एकसीबातचीत नहींकरते यहभी हानिका कारण है फिर वह समूह जो धन बुद्धि और युक्तिबलसे कर्म्मकरें उसदशा में बिरोध के कारण या अपनी अज्ञानतासे वह समूह शत्रुओं के हाथसे मारेजाते हैं इस हेतुसे समूहों के मिलापको रक्षाका बड़ाआश्रय कहते हैं ३२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिसप्तमोऽध्यायः १०७ ॥

# एकसौ आठका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतबंशी यह धर्म्ममार्ग्ग बड़ा और बड़ी २ शाखाओंका रखनेवाला है इस देश में धर्म्मों के मध्य कौनकर्म बड़ी धैर्यता से मानने के योग्य है और आपने कौनसा कर्म्म बड़ा माना है उसी को मैं भी कर के इस लोक परलोक दोनों में धर्म्म प्राप्त करूं भीष्मजी बोले कि माता पिता और गुरुओंका पूजन मेरेचित्तसे बड़ा प्रिय है इस में प्रवृत्तहोकर मनुष्य इसलोकमें यशी प्रतापीहोकर उत्तमलोकों को प्राप्तकरता है हे तात युधिष्ठिर अच्छे पूजित महात्मालोग जिसबात की आज्ञादें वहचाहै धर्म्म अधर्म्म या बिपरीतभीहो करना योग्यहै उनकी आज्ञाबिना कोई धर्म्म न करे वहलोग जिसबातकी आज्ञा करें वही निश्चयधर्म्महै यह माता पिता गुरुतीनों लोकरूप आश्रमरूप वेदरूप और तीनों अग्निरूपहैं निश्चयकर के पितातो गार्हस्पत्य अग्निहैं और माता दक्षिण अग्नि और आहवनीनाम अग्निगुरुहैं यह तीनों अग्नियोंका समूह बड़ाहै इन तीनों में भ्रान्ति न करता पुरुषतीनोंलोकों को तरता है अर्थात् पिताके पूजनसे इस लोक को और माताके पूजनसे परलोकको और नियम पूर्वक गुरुके पूजनसे ब्रह्म-

लोकको प्राप्तहोताहै सो हे युधिष्ठिर इन तीनों के साथ अच्छे प्रकार बर्त्ताव करइससे तीनों लोकमें यशपावेगा और महाफलवाले धर्म्मको भोगेगा इससे भोजन और कर्म्मों में अधिकता न करेगा और न दोष लगावेगा तो तेरा बड़ा कल्याण होगा सदैव सेवा करनाही बड़ा उत्तम कर्म्महै हे ताततुम कीर्त्तिवान् पुण्यवान् और यशीहोकर उत्तम लोकों को पाओगे जिसके यह तीनों पूजितहोंगे उसका तीनों लोकोंमें आदरहोगा और जिसके यह तीनों पूजितनहीं हैं उसके सब कर्म्म निष्फलहैं हे परमतप जिसके यह तीनोंगुरू सदैव नहीं पूजेजातेहैं उसका न यह लोकहै न परलोकहै और इस लोक परलोक दोनों में इसका यशनहीं प्रकाशपावेगा और न परलोकमें इसको दूसरा कल्याणहै मैंने अन्य सब कर्म्म करके इन तीनों को अधिककिया तब मेरा सौगुने से हजारगुना होगया इसी कारण हे युधिष्ठिर मुझे तीनों तीनों लोक प्रकाशितहैं उत्तम आचार्य्य दश वेदपाठियों से श्रेष्ठहै और उपाध्याय दश आचार्य्योंसे अधिकहै और पितादशउपाध्यायों से अधिकहै और माता दश पिता और पृथ्वी और मुझसे भी वृद्धतामें वा बड़ाई में अधिक होती है माताके समान गुरूनहींहै परन्तु पिता से गुरू बड़ाहै यह मेरा मतहै क्योंकि माता पिता जन्म दिलाते और देहको उत्पन्न करते हैं और आचार्य्यसे होने वाला जो उत्तम जन्म है वह दिव्य और अजरअमर है उपकार करनेवाले माता पिता गुरू यह तीनों सदैव अबध्यहैं अर्थात् मारने योग्य नहींहैं उस को करके वह दोषी नहीं होता और न वह इसको दोष लगातेहैं देवताओं ने धर्म्मके निमित्त महर्षियों के साथ उद्योग करनेवाले उन पुरुषोंको जाना है जो आचार्य्य वेदोंको कहता अमृतको देता सत्कर्म्म से कृपाकरता है उसी को माता पिता अपने और उसके लोकको जानते हैं इस हेतुसे शत्रुतासे रहित जो विद्यावान् होकर कर्म्म और मनसे गुरूकी प्रतिष्ठा नहीं करते हैं वह बिरोधतासे नाशको प्राप्तहोते हैं उनका पापभ्रूणहत्यासे भी अधिक है संसारमें उनसे बिशेष दूसरा पापकर्त्ता नहींहै क्योंकि जैसे वह गुरूसे बृद्धि पाने के योग्य है उसीप्रकार गुरूभी उनकी ओर से पूजन के योग्य है इस हेतुसे वह गुरू उस प्राचीन धर्म्म चाहनेवाले पुरुषको युक्तिसे पूजन अर्चन और भागदेनेयोग्य हैं जिसकर्म्मसे पिताको प्रसन्न करता है उससे पृथ्वी पूजितहोती है और जिसकर्म्म से उपाध्यायको प्रसन्न करताहै उससे वेदपूजित होते हैं इसीकारण गुरू माता पिता से भी अधिक पूजनीय है गुरुओं के पूजित होनेसे पितर समेत ऋषि और देवताभी प्रसन्न होते हैं इससे सर्वथा गुरू पूजनीय हैं किसी चलनसे भी गुरू अपमान के योग्य नहीं है जैसा गुरू मोक्षके पदपर पहुंचानेवाला है वैसा माता पिता से नहीं होसक्ता यह

ज्ञानियों का मत है वह सब अपमान के योग्य नहीं है उनके कर्म्मों में दोष नहीं लगावे महर्षियों समेत देवताओंने गुरुओंके सत्कारको उत्तमकहाहै जो पुरुषमन और कर्म्म से उपाध्याय पिता और माता से शत्रुताकरते हैं उनका पाप भ्रूणहत्या से अधिकहै लोकमें इससे अधिक कोई पाप कर्त्ता नहीं है जो पालाहुआ बड़ा होनेवाला अपनी योनिसे उत्पन्न हुआ पुत्र माता पिता का पोषण नहीं करता है वह पाप निश्चय करके भ्रूणहत्या से भी अधिक है संसार में इससे भी अधिक पाप करनेवाला दूसरा नहीं है मित्रसे शत्रुता करनेवाला उपकारका भूलनेवाला स्त्री को मारनेवाला गुरुहन्ता इनचारों के प्रायश्चित्तों को हम नहीं सुनते हैं जो इस संसार में पुरुष से करने योग्य है वह सब विधिपूर्वक कहा यह सब धर्म्मों का सार तुमसे कहा इससे अधिक कल्याणकारी दूसरा नहीं है ३३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिअष्टमोऽध्याय: १०८ ॥

# एकसौनवका अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हेपितामह धर्म्म में प्रवृत्त होनेको इच्छावान् पुरुष किस प्रकार से कर्म्म करे यह आप मुझ से वर्णन कीजिये हे राजन् सत्य और मिथ्या यह दोनों संसारको वृतरूपघेरेहुये हैं धर्म्मको निश्चय करनेवाला पुरुष दोनों में से किसको करे सत्य क्या है और मिथ्याक्या है और प्राचीनधर्म क्या है किससमय सत्य बोले और किससमय मिथ्याबोलना चाहिये भीष्मजी बोले कि सत्य वचन उत्तम है सत्य से अधिक कुछनहीं है हे युधिष्ठिर लोकों की जो बुद्धि है उस को कहताहूं जहां मिथ्यासत्य के समानहो और सत्यमिथ्या के समान हो वहां सत्य बोलना उचित नहीं किन्तु मिथ्याही बोलना योग्य है ऐसा अज्ञानी बालक जो सत्य और असत्य के मूलको नहीं जानता वह नष्टताको प्राप्तहोता है जहां सत्यता नष्टपने से मिली हुई है वहां सत्य और मिथ्या को अच्छे प्रकार निश्चयकर के धर्म्म का जाननेवाला होता है और नीचअज्ञानी व हिंसाकरनेवाला पुरुषभी बहुतबड़े पुण्य को प्राप्तकरता है जैसे बहेलिये ने पक्षियों की प्यारी बोली बोलकर पक्षियों के घातसे स्वर्ग कोपाया क्या आश्चर्य्य है कि जो अज्ञानी धर्म्म का न जाननेवाला धर्म्म की इच्छा करनेवाला भी बड़े पुण्यका भागीहोजाय जैसे कि श्रीगंगाजी पर कौशिक ने मोक्षप्राप्तकी थी अर्थात् कौशिक उल्लूने गङ्गाजीपै सर्पों के हजारों अंडों को तोड़कर पुण्य प्राप्त कियाथा यह तुम्हारा प्रश्न उस प्रकार का है जिस में धर्म्म बड़ा और तर्कनाहै जिसकी संख्या करनी कठिन है सो इस धर्म्म लक्षण में निश्चय करतेहैं

कि वह किसरीति से होता है जीवों की वृद्धिके लिये धर्म्म का वर्णनकिया जो कर्मजीवोंकी वृद्धि से संयुक्त है वह निश्चय धर्म्महीं है प्रजाकी रक्षा से धर्म्म कियागया और धर्मसे प्रजारक्षित है जो प्रजाकी रक्षा में प्रवृत्तहोय वह भी निश्चय करके धर्म्म है किसी ने कहा कि सब धर्म्म वेदोक्त हैं दूसरे मनुष्यों ने कहा कि नहीं हम इसकी निन्दा नहीं करते क्योंकि सब नहीं किया जाता है अर्थात् देशकाल के अनुसार कर्म्म कियाजाता है अन्याय की रीति से हरलेने के इच्छा रखनेवाले जो पुरुष किसी के धनको चाहते हैं उस धनको उन्हीं से न कहना चाहिये यह भी निस्सन्देह धर्म्म है जहां मौनतासे जानबचे वहां किसी प्रकार से भी वार्त्तालाप न करे बोलनेके स्थानपर न बोलने से भी अवश्य शंकाकरते हैं वहां मिथ्याबोलना सत्यसे भी अच्छा है जहां शपथ के खाने से पापों के सम्बन्ध से छूटता है यही निर्धार कियागया वहां सम्भवहोय तो किसी दशामेंभी उनपापियोंको धन न देनाचाहिये क्योंकि पापियोंको दियाहुआ धन दाताको भी पीड़ामान करता है मुद्दाअलेह के पकड़नेसे अपना रुपया लेनेकी इच्छाकरनेवाले मुद्दईका मुकद्दमह झूठाहोनेके लिये गवाहलोग ऐसे स्थानपर जो वार्त्तालापकरैं वहां कहने के योग्य बचन को न कहने से वह सब मिथ्या वादी हैं प्राण त्याग और विवाह में मिथ्याबोलना योग्य है अधर्म्म के कारण दूसरोंकी सिद्धी को चाहता दूसरोंकेधनकी रक्षाकेलिये नीचधर्म्म भक्षकहोता है प्रतिज्ञाकरके देना चाहिये जो न देतो धनका पचानेवाला दासहो जो कोई धर्म्मका साधनकरनेवाला धर्म्यरूप नियमसे भ्रष्ट होजाय उसमार्ग में वह शरणागत पुरुषभी दण्ड केद्वारा मारने के योग्य है वह दिव्यधर्म्म से भ्रष्ट आसुरीधर्म्म में वर्त्तमानहुआ वह छली अपने धर्म्म को छोड़कर उस आसुरी धर्म्म से जीतारहना चाहता है वह छल से जीवनेवाला पापी सब रीतोंसे मारने के योग्य है सब पापियोंको धनही अच्छा लगता है निश्चय कर के धर्म्मजश अच्छा नहीं लगता है वह क्षमा के अयोग्य अधर्म्मी मनुष्य देवता और मनुष्यों से पृथक् कियेहुये प्रेतके समानहैं यज्ञ और तपसेरहित पुरुषों से तेरी मित्रता मतहो क्यों कि उनके संगसे धनके नाश के द्वारा बड़ा दुःख होताहै और जीवन में सन्देह होता है यह धर्म्म तुझको मानना चाहिये इसप्रकार बड़ी युक्तिसे उसछली को समझाना चाहिये परंतु पापियोंका किसी धर्म्म में निश्चय नहीं है यह जानो जो पुरुष उसदशावाले पुरुषको मारे वह पापमें संयुक्त नहीं होता है क्योंकि अपनेही कर्म्मसे वह मृतक माराजाताहै जोकोई मनुष्य उनघातबुद्धी मनुष्योंके बिषय में इसनियम को करे कि मैं उनकोमारूंगा वहश्रेष्ठ है जैसे कि काग और गिद्धहैं वैसेही वहलोग हैं जोकि कपटसे

अपने दिनपूरे करतेहैं वह देहत्यागने के पीछे इनकाग आदिकी योनियों में उत्पन्नहोतेहैं जो मनुष्य जिसमें जैसा वर्त्तावकरताहै उसमें उसीप्रकार वर्त्ताव करना चाहिये वहीधर्म्म है छलीछलसे ही पीड़ा देनेयोग्य है और नेकचलन नेकचलनसे पीड़ादियाजाताहै २९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिनवमोऽध्यायः ९ ॥

# एकसौ दशवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह जहां तहां उन २ कारणों से जीवोंके दुःखी होने पर जिस प्रकार से उन आपत्तियों से पारहोय उसको आपकृपाकरके कहिये भीष्मजी बोले कि जो जितेन्द्रिय ब्राह्मण शास्त्रोक्त आश्रमों में बुद्धि के अनुसार निवास करते हैं वह आपत्तियोंसे पारहोते हैं कपटयुक्त कर्म्मनहीं करते हैं और जिन की बुद्धि की वृत्ति नियमों में लगीहै और इंद्रियों को स्वाधीन करते हैं वह आपत्तियों को तरते हैं और जिननिन्दा पानेवालों ने निन्दानहीं की और जिन दुःख पाने वालोंने किसी को दुःख नहीं दिया और दानकरते हैं और किसी से दान नहीं लिया वह आपत्तियों से पार होते हैं और जो सदैव अतिथियों को घरमें निवासकराते हैं और दूसरे के गुणों में दोष नहीं लगाते हैं और सदैव वेदके पाठका अभ्यासकरते हैं वह आपत्तियोंसे पारहोते हैं और जो धर्म्म में कुशल अपने माता पिताके पूजन में प्रवृत्त रहते हैं और दिवसका सोना त्यागकरते हैं वह आपत्तियों से पार होतेहैं और जो पुरुष मनवचन कर्मसे पापको नहीं करते हैं और जीवोंको नहीं सताते हैं वह बिपत्तिसे पारहोते हैं और जो राजारजोगुण से संयुक्त हो लोभसे किसीके धनको नहीं हरते हैं और इंद्रियों की चारों ओरसे रक्षा करतेहैं वह आपत्तियों से निवृत्त होते हैं और जो पुरुष अग्निहोत्र में प्रवृत्त होकर केवल ऋतुकाल मेंही अपनी धर्म्मपत्नी में बिषयादि करते हैं वह आपत्तियोंसे पारहोते हैं और जो शूर मृत्युके भयको त्यागकर युद्धमें धर्म पूर्वक बिजय चाहते हैं वह आपत्तियों से पार होतेहैं और जो पुरुष प्राणत्यागहोने पर भी सत्यवचनों को कहते हैं और जीवों के प्राणरूप हैं वह आपत्तियोंको तरते हैं और जिनके कर्म्म सत्यप्रयोजन वाले हैं और सत्यवक्ताहैं और जिन के धनआदि अच्छेप्रकार सुरक्षितहैं वह आपत्तियों को तरते हैं इसलोकमें जो वेदपाठी ब्राह्मण अनध्यायों में वेद के पाठों को नहीं करते हैं और तपोनिष्ठहैं वह महातपाने वाली आपत्तियोंसे पारहोतेहैं और जो ब्रह्मज्ञान विद्या और वेद व्रतमें परायण कौमार ब्रह्मचर्य्य व्रतको तपते हैं वह विपत्तियों से छूटते हैं और जो शान्त रजोगुण और शान्त तमोगुण और महात्मा सतो:

गुण में प्रवृत्त हैं वह आपत्तियों को तरते हैं और जिनसे कोई भयनहीं करता और न वह किसीका भयकरते हैं और यहलोक जिनका आत्मारूप है वह बिपत्तियोंसे पारहोते हैं और जो पुरुषोत्तम सन्त दूसरेकी लक्ष्मीसे दुःखीनहीं होते हैं और बिषयादि भोगोंको त्यागेहुये हैं वह आपत्तियोंसे पारहोतेहैं और जो श्रद्धावान् शान्तपुरुष सब देवताओंको नमस्कार करते हैं और सबधर्म्मों को सुनते हैं वह कष्टसे तरनेके योग्य स्थानों को तरते हैं जो अपनीप्रतिष्ठाको नहींचाहते हैं और दूसरोंकी प्रतिष्ठा करते हैं और प्रतिष्ठाके योग्य पुरुषोंको नमस्कार करतेहैं वह कष्ट साध्यस्थानों से तरते हैं जो सन्तानके चाहनेवाले पुरुष अत्यन्त पवित्र चित्तसे तिथि तिथि में श्राद्धोंको करते हैं वहदुस्तर स्थानों को तरते हैं और जो क्रोधको रोंकते हैं और क्रोधयुक्त पुरुषोंको शान्त करते हैं और जीवोंपर क्रोधनहीं करते हैं वह दुस्तर स्थानोंसे पारहोते हैं और इस लोकमें जो मनुष्य जन्मसे लेकर मरणपर्य्यन्त मांस और मदिरा को त्यागकरते हैं वह कठिन स्थानोंको तरते हैं और जिन्होंका भोजन शरीर की यात्राके लिये और विषय सन्तानके लिये और वचन सत्य कहने के निमित्तहै वह दुस्तर स्थानों से पारहोते हैं और जो भक्तजन सब जीवोंके ईश्वर जगत्के उत्पत्ति स्थान अविनाशी नारायणदेव का ध्यान करते हैं वह दुस्तरस्थानों से पारहोतेहैं और यह कमलरूप रक्तनेत्र पीताम्बरधारी महाबाहु भाईबन्धुसम्बन्धियों का शुभचिन्तक ऐसा अविनाशी है वह प्रभु अचिन्त्य आत्मा पुरुषोत्तम गोविन्दजी इच्छाकरके इनसब लोकोंको चर्मके समान लपेटे वही वैकुण्ठरूप दुर्द्धर्ष पुरुषोत्तम आपके और अर्जुनके प्यारे हितमें वर्त्तमान हैंजो भक्त इस लोकमें इसनारायण हरिकी शरण होतेहैं वह इसलोकमें दुस्तर स्थानों को निस्संदेह तरतेहैं इसमें विचारना नहीं और जो पुरुष इस दुर्गाति तरणको वेदपाठों से पढ़ते पढ़ाते सुनते सुनातेहैं वह दुस्तरस्थानों से पारहोते हैं हे अनघ मैंने करने के योग्य कर्म्मोंका आशय तुमसे कहा जिसके द्वारा मनुष्य इस लोकमें महादुस्तर स्थानोंसे पारहोते हैं २९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिदशमोऽध्यायः ११० ॥

# एकसौग्यारहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह असौम्य पुरुष अर्थात् अज्ञानी पुरुष सौम्यरूप और सौम्यपुरुष असौम्यरूप दृष्टआने वाले हैं हम इसप्रकार के पुरुषोंको कैसे जानें भीष्मजी बोले कि यहां मैं इसप्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें व्याघ्र और शृगाल का प्रश्नोत्तर है उसको सुनो प्राचीन समयमें पूरिकानामपुरी में श्रीमान् पौरकनाम राजाहुआ जोकि दूसरे की हिंसामें

कठोर चित्त निर्दयी नीच पुरुष था उसने मरनेके पीछेमनके विरुद्ध गतिको पाया अर्थात् पूर्व जन्मके दोषसे उसने शृगाल अर्थात् स्यारकी योनि को पाया फिर उसने पिछले जन्म के ऐश्वर्य्य को स्मरण करके बड़े वैराग्यको पाया दूसरे जीवोंके लायेहुये मांसको भी नहीं खाताथा सबजीवोंमें हिंसा-रहित सत्यवक्ता महादृढ़ व्रतरखनेवालाथा उसने समय के अनुसार पृथ्वी पर गिरेपड़े हुये फलोंसे निर्वाह किया श्मशान भूमि में उसस्यारको रहना स्वीकार हुआ उसने जन्मभूमि की प्रीतिसे दूसरे निवासस्थान को पसन्द नहीं किया उसकी पवित्रताको न सहने वाले उसकी जातिवालों ने प्यारे वचन कहकहकर उसकी बुद्धिको विपरीत करना चाहा और कहाकि रौद्रपि-तृबन में निवास करके तू पवित्रता को चाहता है यह तेरी विपरीत बुद्धिहै जब कि तुम मांसभक्षी होतो हमारे समान होजाओ हम तुमको भोजनदेंगे पवित्रताको दूरकरके जो तेरा भोजन है वही खा उससावधानने उनके वचन को सुनकर मीठे और ब्यौरेवार कारणों समेत मृदुता पूर्वक उत्तरदिया कि मेरी उत्पत्तियां अप्रमाण हैं अर्थात् इन्द्रियों की मर्याद से रहित हैं और कुल कानाम स्वभावसे प्रसिद्ध होताहै इससे मैं उनकर्म्मोंको चाहता हूं जिनसे कि यशकी प्रसिद्धी होती है जो मेरा निवास श्मशान में है मेरीसमाधि को सुनो कि आत्मा कर्म्मको सफल करता है और आश्रम धर्मका कारण नहीं है जो पुरुष आश्रम में द्विजको मारे वह क्या पातक नहीं है अथवा अन्य आ-श्रमी को गोदानकरे वह दियाहुआ क्या निरर्थक होता है आपअपने अर्थलोभ से केवल मांसखाने में मन लगाये हुये हैं परिणाम में तीनदोष हैं अज्ञानीजीव उसको नहीं देखते हैं इसकारण असंतोषतासे निन्दित कीहुई और धर्म्म के नाशसे दूषित इसलोक और परलोकमें वे मर्याद आजीवि-काको स्वीकार नहीं करताहूं प्रसिद्ध पराक्रमी शार्दूलने उसे पवित्र और पंडितजान के अपने योग्य पूजितकराके आप उसको प्रधानता में नियत करना चाहा और बोला हे ज्ञानी तुम प्रसिद्ध चलनहो मेरेसाथ राज्यको पाओ इच्छा भोजन और बड़े सामानोंको भोगो हमक्रोध प्रकृति प्रसिद्धहैं आपको जतलाते हैं तुम मृदुता के साथ अपने हित और कल्याणों को चाहोगे यह सुनकर स्यार ने बड़ी नम्रता से शार्दूल के वचन की प्र-शंसा करके यह वचन कहा कि मेरेविषय में जो आपका वचन है वह आपसरीके मृगराज के योग्यहै जो आप धर्म्म अर्थ में कुशल पवित्र सहा-यकों को तलाश करते हो हे वीर मन्त्री न रखने वाले अथवा देहके शत्रुदुष्ट मन्त्रीवाले राजासे राज्यकरना असंभव है प्रीति रखनेवाले नीतिज्ञपरस्पर शुभचिन्तक सहायता करनेवाले विजयकी इच्छा रखने वाले चपलचित्त

नम्रज्ञानी और मनका अभीष्ट करने में प्रवृत्त साहसी सहायकों का ऐसा पूजनकरो जैसे कि आचार्य्योंका और वृद्धोंका होताहै इससे हे मृगेंद्र सन्तोष के सिवाय मुझे दूसरीबात स्वीकार नहींहै मैं सुख भोग और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले ऐश्वर्य्यको नहीं चाहताहूं जो मेरास्वभाव तेरेनौकरों से मेल न खायगा वह मेरे विषयमें बुराई करनेवाले होंगे और तुमको मेरा शत्रुबना देंगे दूसरे तेजस्वियोंका भी मिलाप प्रशंसाके योग्य नहींहै मैं आत्मावान् श्रेष्ठ महाभाग पापकर्ममें भी सहनशील दूरदर्शी उन्नताकांक्षी बड़ादानी महाबली कर्मकर्त्ता और प्रारब्धवान् सफल कर्म का करनेवाला हूं मैं थोड़े सामानसेभी संतोष करसक्ताहूं और दुःख रूप जीविका मैंने प्राप्तनहीं की और सेवामेंभी अज्ञानीहूं अपनी इच्छा से वनचारीहूं राजाके सन्मुख निन्दा से उत्पन्न होनेवाले सब दोष उसके शरणवालोंको प्राप्त होतेहैं और बनवा-सियों की व्रतचर्य्या संग और क्रोधसे पृथक्है राजाके बुलायेहुये नौकर के हृदय में जो भय उत्पन्न होताहै वहभय बनमें मूलफल खानेवाले सन्तोषी पुरुषोंके हृदयमें उत्पन्न नहीं होताहै बिना परिश्रम के मिलनेवाला जल और सुस्वादु भोजन अथवा अन्तमें भयकारी दोनों बस्तुओं को बिचारकर देखताहूं कि वही सुखहै जिसमें निस्सन्देहताहै इतने नौकर अपराधके कारण राजाओंसे दण्ड नहीं दिये गये जितने कि नौकर दूसरों की बुराईसे अपराधी होकर नष्टहुये हे मृगेन्द्र जो यह मेरे करनेके योग्यहै और जो तुम मानते हो तो मैंप्रतिज्ञा कियाचाहताहूं जैसेकिमेरेसाथ करनाचाहिये मेरेबालबच्चे आप पालनेको योग्यहैं और हितकारी वचन आपके सुननेके योग्यहैं और जो मेरी आजीविका विचारकीगई है वह तुम्हारे पास अच्छेप्रकारसे वर्त्तमान होय मैं कभी तेरेदूसरे मंत्रियोंके साथ सलाह नहीं करूंगा नीतिज्ञ इच्छावान् शत्रु मेरे विषयमें विपरीत कहेंगे और अकेला एकान्तमें केवल आपहीसे मिलकर हित-कारी वचन कहूंगा तेरीजातके कामों में हित और अनहित पूछने के योग्य नहीं होऊं मेरेसाथ सलाह करके मंत्री आपके हाथसे मारनेके योग्य नहीं और क्रोध युक्त होकर तुम मेरेसमीपी लोगोंको दण्ड मतदो व्याघ्र ने उसकी सबबातोंको स्वीकार किया और स्यारने प्रधानताका अधिकार पाया प्राचीन नौकर एकमत होकर इसप्रकारसे बड़े अधिकार के पाने वाले अपने काममें पूजित उस स्यारको देखकर अकस्मात् विरोधी हुये इन दुर्बुद्धियों ने मित्रता की बुद्धिसे उस स्यारको विश्वास पूर्व्वक प्रसन्न करके दोष लगाना चाहा दूसरेके धनोंके हरने वाले वह सब पूर्व्व समय में विरुद्ध कर्म्मी थे अब स्यारके स्वाधीन रहने वाले वह किसीप्रकार की द्रव्य के लेनेको समर्थ नहींहुये वह स्यार विरोध चाहने वालों से कथाओंके द्वारा लुभाया जाताथा

और बड़े धनसे उसकी बुद्धि लुभाई जाती थी परन्तु वह बड़ाज्ञानी अपने धैर्य्यसे चलायमान नहींहुआ इसी प्रकार दूसरोंने उसके नष्ट करनेकी सलाह करके वहां मृगराजका अभीष्ट जो मांस तय्यार कियाथा उन्होंने आप जाकर उसके घरमें रखदिया इस निमित्त कि वह चोर ठहराया जाय और जिसने वह सलाह की वह उसको विदित होगया परन्तु किसी हेतुसे उसने क्षमा किया और प्रधानता प्राप्तकरनेवाले स्यारने यह बिचार किया कि यहां मित्रता करने वाले तुझको नाश न करने चाहिये भीष्मजी बोले कि भूखे और खानेके वास्ते उठेहुये मृगराज को भोजनके निमित्त जो मांस भेंट करना चाहियेथा वह दृष्टि न पड़ा मृगराजने हुक्म दिया कि चोरको ढूँढ़ना चाहिये छलियों ने उसका वर्णन मृगराज के सन्मुख किया कि आपका मंत्री जो कि अपने को पण्डित और ज्ञानी मानता है उसने छिपाया शार्दूल स्यार की चपलता को सुनकर क्रोधित हुआ और उसके मारनेको स्वीकार किया तब पहले मंत्री उस अपने शत्रु को देखकर बोले कि यह हम सबकी जीविका खोनेमें लगा हुआहै फिर उन्हों ने निश्चय करके उसके कर्म्म को भी वर्णन किया कि उसका जब यहकाम है वह क्या काम नहीं करसक्ता स्वामी ने पहले जैसा सुनाथा वैसा नहीं है यहकेवल बातों से धर्म्मिष्ठ है परन्तु स्वभाव से निर्दयी है यहपापी कपटरूप धर्म्म रखने वाला और मिथ्या आचार परिग्रह रखनेवाला है इसने अपने कार्य के लिये भोजन के अर्थ व्रतआदिमें परिश्रमकिया यह अविश्वासी है यह हम आपको दिखाते हैं यह कहतेही शीघ्र उस स्यार के घरमें से मांसको लाकर व्याघ्र को दिखाया तब व्याघ्रने उसमांसका चुराना जानकर और उनके बचनों को सुनकर आज्ञादी कि स्यारको मारो तब व्याघ्र की माता अपने पुत्रकी बातोंको सुनकर मृगराज को हितकीबात समझानेको उसके पास आई और कहा कि हे पुत्र कपट और छलसे संयुक्त यह बुराई तुमको स्वीकार न करनी चाहिये क्योंकि पवित्रराजा भी पापात्मा और ईर्षा करने वालों के दोष दोषी होता है कोई ऊंचे अधिकार वालेको चित्तसे नहीं चाहताहै अधिकारही शत्रुता उत्पन्न करनेवाला है पवित्र और स्वकर्म्मनिष्ठ नौकर में और स्वकर्मी बनवासी पवित्र मुनि में भी दोष लगायाजाता है मित्र उदासीन और शत्रुनाम तीनपक्ष उत्पन्न होते हैं पवित्रमनुष्य लोभोंके शत्रु औरपराक्रमीपुरुष नपुंसकों के शत्रुकहे जाते हैं और पण्डितमूर्खोंके और बड़े धनी निर्द्धन लोगों के और धर्म्मिष्ठ पुरुष अधर्म्मियों के स्वरूपवान् कुरूपों के शत्रु समझे जाते हैं बृहस्पतिजीकेमतसे मूर्ख लोभी और कपटसे जीवनकरनेवाले अपने को पण्डित माननेवाले ऐसे बहुत से मनुष्य निर्दोषी को दोष

लगातेहैं जो कि तेरे खाली मकानसे उसमांस को चुरालिया और दिया हुआ नहींचाहता है अच्छा है तबतक बिचारकरो सभासद जो अयोग्य हैं वहयोग्य रूप और जो योग्य हैं वह अयोग्यरूप दीखते हैं और नाना प्रकार के चित्तवाले दीखते हैं इन्हों में परीक्षाकरनी योग्य है आकाश पृथ्वी के समान और पटवीजना अग्नि के समान दृष्टि पड़ता है वास्तव में आकाश पृथ्वीनहीं है और न पटवीजने में अग्नि है इसकारण नेत्रों से भी देखाहुआ प्रयोजन परीक्षा लेने के योग्य है परीक्षा करके मुक़द्दमोंका प्रकट करने वाला पीछे पश्चात्ताप नहीं करताहै हे बेटा यह कठिन बात नहीं है जो स्वामी दूसरेको मरवावे लोकमें समर्थ पुरुषोंकीक्षमा प्रशंसाके योग्य शुभ कीर्तिको का बिख्यात करनेवाली है हे पुत्र तुमने इसको इसअधिकार पर नियत किया और सामन्तों में भी प्रसिद्धहुआ पात्र मनुष्य कठिनतासे मिलता है यहतेरा शुभ चिन्तक जीतारहै जो राजादूसरे के दोषोंसे मित्र या पवित्रनौकर को दण्डदेता है वह दोषसे संयुक्त मंत्रीवाला आपसेआप शीघ्रनाशहोजाता है स्यार के उसशत्रु समूहमें से कोई धर्म्मात्मा आया और उसने सब छलकरने का भेद वर्णनकिया तब वह स्यार मृगराजसे प्रीतिमान् और पूजित होकर बड़ेस्नेह और मिलाप के साथ शुद्ध जानकर दण्डपाने से छूटाफिर नीति शास्त्रज्ञ और क्रोधसे दुःखित स्यारने मृगराज को पूजकर देहके त्याग के लिये नियम करना चाहा पूजा से पूजन करते और प्रीति से प्रफुल्लित नेत्रवाले उस शार्दूल ने उसधार्म्मिष्ठ स्यार को निषेध किया तब स्यारने नम्रता पूर्वक भ्रान्त चित्त उस शार्दूल को देखकर अश्रुपात युक्त गद्गद वचनों से कहा कि मैं पहले आप से पूजित हुआ और पीछे से भी सत्कार किया गया दूसरों के अधिकार पर नियत होनेवाला मैं आपके पास निबास करने के योग्य नहींहूं ब्याकुल अधिकारहीन प्रतिष्ठा रहित नौकर और जो अधिकारी कि शत्रुओंसे दुःखी किये गये और लोभी, क्रोधी भयभीत और जिसको निकृष्टकर्म्मों का दोष लगाया गया और जो अहंकारी होकर ऐश्वर्य्यकाचाहनेवाला है और जो जीविका त्यागकरनेवाला है और जो बहुत व्यसनों के मिलने से दुःखी है और जो कोई धनधान्य सहित गुप्तहुआ है वह सब अप्रीति कारी और निर्द्धन हैं फिर तुम अप्रतिष्ठित अधिकार रहित नौकर के विश्वास को कैसे पाओगे और मैं कैसे रहसकूंगा तुमने मुझको समर्थजान के परीक्षा लेके लिखपढ़ अधिकार पै नियत किया फिर प्रतिज्ञाओं को तोड़कर मेरा अपमान किया, पहिले सभामें जो श्रेष्ठप्रकृति वाला प्रसिद्ध हुआ उसकी प्रतिज्ञा पालन करने वाले राजा को अप्रशंसा न करनी चाहिये यहां इसप्रकार मुझ अपमान पानेवालेमें विश्वासको नहीं

पाओगे और तुझ अविश्वासीसे मेरेचित्तकी व्याकुलता प्रकट होगी मैं शंकायुक्त और भयभीतहुआ और मेरेशत्रु म्लानचित्त असंतोषी मेरेदोषको देखने वाले हैं और यहकाम बहुत कपट छलवाला है,शत्रु दुःखसे मिलाप करने वाला होताहै और मिलापकरनेवाला दुःखसे शत्रुहोताहै जो प्रीति कि मिलाप और विरोध नाम दोनों विशेषण रखनेवाली है वह उसके साथ वर्त्तमान नहीं होतीहै अर्थात् वह प्रीति स्वामी के अभीष्ट को नहीं करती है कोई स्वामीके प्रिय करने में दृष्टनहीं आता है अपने और दूसरेके प्रयोजन के कारण गर्भित होते हैं शुद्धचित्त नौकर बड़ी कठिनतासे प्राप्तहोते हैं मनुष्यका जानना कठिन है क्योंकि राजाओंका चित्त स्थिर नहीं है समर्थ और शंकासे रहित मनुष्य सौमेंसे एक मिलता है एकाएकी मनुष्योंका नियतकरना और अकस्मात् अधिकारसे छुड़ादेना प्रतिष्ठादेना और बुराभला कर्म्म करना बुद्धिकी न्यूनता है इसप्रकार से वह स्यार धर्म अर्थ से सम्बन्ध रखनेवाले मीठेवचनों को कहकर राजाको प्रसन्नकरके बन को चलागया फिर वह बुद्धिमान् स्यार उसमृगराजकी शिक्षाको स्वीकार न करके देह त्याग के नियम में नियतहोकर देहको त्याग स्वर्गको गया ८८॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिएकादशोऽध्यायः १११॥

# एकसौबारहका अध्याय॥

युधिष्ठिरबोले कि हे सर्वधर्म भृताम्बर राजाको क्याकरना चाहिये और किस कार्य्य को करके सुखीहोता है इसको बिस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले अच्छा श्रवण करो मैं कार्य्य के एक निश्चय को कहताहूं जैसे कि इसलोक में राजाको करनाचाहिये और वह करके सुखीहोताहै इस प्रकारसे न करना चाहिये जैसे कि हम ऊंटके बड़े वृत्तान्तको सुनाते हैं हे युधिष्ठिर उसको समझो प्रजापति यज्ञ में एकजातिस्मर नाम बड़ाऊंट हुआ वह महाव्रतवाला ऊंट बनके बीच बड़ीतपस्या करनेलगा उसके तपसे समर्थ ब्रह्माजी प्रसन्नहुये और बरमांगने को इच्छाकरवाई तब ऊँटबोला कि हे भगवन् जो आप प्रसन्न हैं तोमेरीगर्दन लम्बीहोजाय क्योंकि मैं सौयोजन से अधिक चरनेकोजाताहूं बरदायी ब्रह्माजीने कहाकि ऐसाहीहोय यहउत्तमवरपाकर ऊंट अपने बनकोगया तब उस निर्बुद्धी ने बरके पाने से आलस्य किया और कालके मारे उसदुरात्माने चरनेके निमित्त जाना भी छोड़दिया किसी समय परिश्रम से शान्त होकर अपनी सौयोजन की गर्दन को फैला कर चरनेलगा दैवयोग से उससमय बड़ी बायुचली तब वह पशु अपनी लम्बी गर्दन को गुफामें रखकर बैठगया फिर सब संसार कोव्याप्त करती हुई महावृष्टि

हुई तब तो शीत में डूबाहुआ भूख और थकावटसे दुःखी जल से पीड़ामान एक शृगाल अपने बालबच्चों समेत उस गुफामें आनबैठा तो हे भरत बंशी युधिष्ठिर भूखसे महा व्याकुल थकेहुये मांसाहारी शृगालने इधर उधर देखकर उसऊंट की गर्दनको भक्षणकिया जब ऊंटने अपनेको भक्षणहुआ जाना तब महादुखीहो गर्दनको सिकोड़नेका विचार किया जबतक उसपशुने गर्दनको ऊपर नीचेकी ओर सकोड़ा तब तक उस स्त्री संयुक्त शृगाल ने गर्दन को भक्षण करडाला तब वह शृगाल ऊंटकोमार भक्षण करके आंधी और बरषाके बन्दहोने पर गुफाके मुखसे बाहर निकला इसप्रकार उस निर्बुद्धी ऊंटने अपना जीवगँवाया आलस्यके करनेसे इसप्रकारके दोषहोते हैं इससेतुमाजितेन्द्रिय होकर इसप्रकारके आलस्यको चित्तसे दूरकर के उद्योग पूर्व्वककर्मकरो मनुजीने बिजयको बुद्धिरूपीमूल रखनेवाली कहा है इससे बुद्धिसे होनेवाले काम उत्तमहैं और शूरतासे होनेवाले मध्यम और बड़ीभारीजमातसे होनेवाले काम निकृष्ट गिनेजाते हैं बुद्धिमान् जितेन्द्रिय राजाकाराज्यदृढ़ होताहै मनुजीने अत्यन्त इच्छावान्की पूर्ण बिजयको भी बुद्धिरूपी मूलरखनेवाली कहा है हे युधिष्ठिर इसलोक में शास्त्रज्ञ सभासद् रखनेवाले राजा का गुप्त मंत्र और परीक्षा लेकर कर्म्म करने वाले के सब मनोरथ पूर्णहोते हैं यह सम्पूर्ण पृथ्वी बुद्धिरखनेवाले राजा से राज्य करने के योग्य है हे युधिष्ठिर प्राचीन समय में यह बचनबुद्धि के ज्ञाता सत्पुरुषों का कहा गया है और मैंने भी शास्त्र कीदृष्टि से तुमको कहा कि तुम बुद्धिके अनुसार कर्म्म करो २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेशतोपरिद्वादशोऽध्यायः ११२ ॥

## एकसौ तेराका अध्याय ॥

हे पितामह कठिनता से प्राप्त होनेवाले राज्यको पाकर फिर साधन न करनेवाला होकर अत्यन्त वृद्धिपानेवाले शत्रुके पास कैसे निवासकरे भीष्मजीबोले कि हे भरतबंशी यहां एक प्राचीन इतिहास कहताहूं जिसमें नदियोंके और समुद्र के प्रश्नोत्तर हैं कि असुरोंके आश्रय स्थान नदियोंके स्वामी समुद्र ने अपने उत्पन्न होनेवाले सन्देहको नदियोंसे पूछा कि हे नदियो तुम जलसे पूर्ण अपनी तरलधार के वेगसे जड़समेत बड़े २ भारी बृक्षों को उखाड़कर यहां लातीहो उनमें छोटीदेह और जड़ रखनेवाला तुम्हारे तटोंपर होनेवाला बेतका बृक्ष कभी नहीं देखागया उसको तुम अनादर से नहीं लातीहो अथवा तुम्हारा कोई उपकार किया है जिससे तुम उसको नहीं उखाड़ती हो इसका कारण तुम सबसे मैं सुना चाहताहूं कि क्यों नहीं बेतका बृक्ष तुम्हारे किनारोंको छोड़कर यहां आता है वहां नदियों में से

श्रीगंगाजी ने समुद्रको ऐसा उत्तर दिया जोकि सार्थक और श्रेष्ठ और स हेतुथा कि जो यह स्थावरवृक्ष अपने २ स्थानों में नियत हैं वह सब हमा- री शत्रुता से स्थानको त्यागकरते हैं परन्तु वेत हमारी शत्रुता से नहीं स्थान त्यागता इसका कारण यहहै कि यह वेतकावृक्ष हमारे वेगको आते हुये देख कर झुकजाता है और वहवृक्ष नहींझुकते फिर वह वेतकावृक्ष नदी का वेग हटजाने पर स्थानपाकर जम जाता है और नियम पूर्वक सदैव जितेन्द्रिय और अनुकूलहोकर झुकता है कभी उपद्रव नहीं करता इस कारण वह नहीं आताहै जो औषधी वा वृक्ष वा गुल्म हवा और जलके वेग से हिलतेझुलते रहतेहैं वह नष्ट नहीं होते हैं भीष्मजी बोले कि जो मनुष्य अत्यन्त वृद्धि युक्त और पकड़ने या मारने में समर्थ शत्रु के वेगको पहिले नहीं सम्भालता है वह शीघ्र नष्ट होता है जो ज्ञानी शत्रु के और अपने सारअसार पराक्रम को जानता हुआ विचरता है वह नाशको नहीं पाता है इसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य जब शत्रु को महा बलवान् जानता है तो वेत वृक्ष के समान नम्रहो कर रहता है यहीबुद्धिमत्ता के चिह्न हैं १४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरित्रयोदशोऽध्यायः ११३ ॥

## एकसौचौदहका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह सभा के मध्य में परिडत, मूर्ख, बुद्धिमान्, मृदु, कठोर मनुष्य जो असभ्य वचन कहें उसको सुनकर राजा क्या करे भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर सुनो जिस प्रकार यह प्रयोजन सिद्ध कियाजाता है वह यह बात है कि इस लोक में शुद्ध चित्त मनुष्य सदैव अज्ञानी के कठो र बचनों को सहता है कठोर वचन कहनेवाले मनुष्यपर क्षमा करने से उसके पुण्यका भागी होता है और वह क्षमावान् मनुष्य अपने पापको क्रोध युक्त मनुष्य पर छोड़ता है रोगी और टिटीरी के समान अयोग्य वचन कहनेवाले को क्षमा करे सबसे शत्रुतारखने वाला पुरुष फलको नहीं पाता है वह मनुष्य उस पापकर्म्मके साथसदैव अपनी प्रशंसा करता है कि अमुकयोग्य पुरुष से मैंने सभामें यह कहा कि और उसने सुनकर मृतकसमान लज्जायुक्त होकर शिरको नीचाकरलिया प्रशंसाके अयोग्य कर्म्म से प्रशंसाकरनेवाला निर्लज्ज होताहै ऐसानीचपुरुष युक्तिसे क्षमाकरनेकेयोग्यहै सदैव निर्बुद्धी जो जो कहैं वह ज्ञानीको क्षमा करनेकेही योग्य है प्राकृतमनुष्य की निन्दा और स्तुति से क्या प्रयोजन सिद्धहोता है जैसे कि बनमें निर्बुद्धी कागके अयोग्यशब्दकरनेसे जोपाप कर्म्मके प्रकटकरनेपर बचनोंही से दूसरेके दोषको साबितकरताहै उससमय उसका प्रयोजन बचनोंही से होजायगा अर्था त् उस मिथ्या दोष लगानेवाले को शापदे वहां मारनेका व्यापार नहीं होता है

वह मनुष्य मोरकेसमान गुप्त अंगोंको दिखाताहुआ कर्म्म और बचन आदिके व्यापारसे प्रत्यक्ष कहताहै किमेरी माता के पेटमें अन्य मनुष्य ने बीर्य डाला है, लोकमें जिसके कहने और करने के योग्य कुछभी नहींहै बुद्धिमान् पवित्र मनुष्य उस निर्बुद्धिता में फँसेहुये केसाथ वार्त्तालाप कभी न करे जो मनुष्य नेत्रोंके सामने गुणोंका कहनेवाला है और परोक्षमें निन्दा करताहै वह लोक में ज्ञान धर्म्मसेनष्ट होकर कुत्तेके समानहै ऐसा मनुष्य जो परोक्षमें निन्दा करता है वह सौ मनुष्योंको भी जो दानदेता है और होमकरताहै उसके फलको क्षणमात्र में नष्ट करताहै इसकारण ज्ञानी मनुष्य शीघ्रही उस प्रकारके पापात्मा और असाधु पुरुषोंको त्याग करे शिष्टलोगोंके मध्यमें दुर्बचनोंको कहता दुरात्मा पुरुषदोषोंको ऐसे प्रकट करता है जैसे कि सर्प अपने फनको जो अज्ञानी उसदुष्टकर्मों को बदला देनेकी इच्छा करता है वह महा दुःख में डूबता है शान्त चित्त मनुष्योंकी निन्दाकरनेवाले को कुत्ते और गरजनेवाले मतवाले हाथीके समान त्यागकरे, अज्ञानियों के मार्ग में बर्त्तमान इन्द्रियों के बशीभूत नम्रता रहित शत्रुभाव रखनेवाले सदैव ऐश्वर्य्यके चाहनेवाले पापबुद्धी मनुष्योंको धिक्कारहै ऐसे लोगोंके कठोर बचन सुनकर तुम उनको उत्तरमतदो और क्रोधयुक्त मतहो जो स्थिरबुद्धी मनुष्य हैं वह नीच संगी उत्तमपुरुष की निन्दा करते हैं वह क्रोध युक्त थप्पड़ मारे या धूल और भूसेसे ढकदे और दांत निकालकर भय भीतभी करताहै यह सब बातें अज्ञानी क्रोधी निर्दयी मनुष्य में होती हैं जो मनुष्य सभामें दुष्टात्मा दुर्जन मनुष्य की करीहुई निन्दाको क्षमाकरे और सदैव इसदृष्टांत को भी पढ़े वह बचनरूप अप्रियताको नहीं प्राप्तहोताहै २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिचतुर्दशोऽध्यायः ११४ ॥

# एकसौ पंद्रहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाज्ञानी पितामह मेरा यह बड़ा संशयहै वह आप मिटाने के योग्यहैं आपहमारे कुलके उत्पन्न करनेवाले हो हेतात दुरात्मा पुरुषोंकी यह बातें आपने वर्णनकीं इसकारण तुमको बतलाताहूं कि जो राजतंत्र का हितकारी है कुलका उदय कारी है वह बर्त्तमान या भविष्यत काल में मंगल और बृद्धिका करनेवाला पुत्र पौत्रादि को पराक्रमी करनेवाला देशकी बृद्धिकरने वाला है और जो खानेपीनेकी बस्तुओं में देहकी हितकारी हैं वह सब आप कहिये और जो राजा राज्याभिषेक युक्त अपने देशमें मित्र और सुहृदजनों से संयुक्त है वह प्रजाको कैसे प्रसन्नकरे और जो राजा इन्द्रियों को आधीन न करने से उनकी प्रीतिके आनंद में मग्न

हठीहोकर नीचोंके ऐश्वर्य्यका चाहनेवाला है उसके घरानेवाले नौकर विरुद्धता को प्राप्तहोते हैं वह राजा नौकरों के उद्योगों से प्राप्त होनेवाले धन आदिसे संयोग नहीं पाताहै हे बुद्धिमें वृहस्पति समान आपमेरे इस संशय के दूर करनेके निमित्त बड़ी कठिनता से जाननेके योग्य राजधर्म्मको कहिये हे पुरुषोत्तम तुम हमारे कुलकी वृद्धिके चाहनेवाले हो और एकबड़े ज्ञानी विदुरजी जो सदैव हमको उपदेश करते हैं मैं तुमसे कुलका हितकारी और राज्य की वृद्धिका उदय करनेवाला बचन सुनकर सुखपूर्वक अमृत से तृप्त हुये के समान आपको उत्तर दूंगा, सब गुणों से सम्पन्न समीप रहनेवाले नौकर कैसे होने चाहिये, कैसे कुलीन और किसप्रकार के नौकरों के साथ राज्य काम कियाजाता है, नौकरों से रहित अकेला राजा रक्षित नहीं होता है और यहराज और सब प्रजाभी रक्षित नहीं होती है कुलीन राजा उनको चाहता है, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशी अकेले राजा से राज्यकरना असम्भव है हे तात साथी न रखनेवाले राजा से कोई अर्थ सिद्धहोना असम्भवहै और अर्थप्राप्त करने परभी सदैव रक्षाकरना असम्भव है जिसके सब नौकर ज्ञान और विज्ञान में पण्डित शुभचिंतक कुलीन और प्रीति रखनेवाले हैं वही राज्यके फलको पाता है जिसराजाके मंत्री कुलीन और गुप्तधन लेकर शत्रुसे मिलनेवाले नहीं हैं और साथरखने वाले राजाको सलाहदेने वाले शान्तस्वभाव और समय के जानने में पण्डित हैं, व्यर्थकर्म्मोंके न करनेवाले कालज्ञानमें बिशारद गतबातोंका शोच नहीं करनेवाले हैं वह राजा राजफल को भोगता है जिस के नौकर सुख दुःख में एकभाव होकर सहायक और प्रियकारी हैं और राज्य के बिचार में तत्पर होकर सत्यवक्ताहैं वह राजा राज्य के फलको भोगताहै, जिसके पासके रहनेवाले मनुष्य सदैवपीड़ामाननहींहोतेहैं और शिष्टऔर कुलीनोंकाशरण्य है वह राजा राज्य फलको भोगताहै जिसराजाके खजाने का संचय उनमनुष्योंसे वृद्धिकियाजाता है जोकि खजानेकी वृद्धि करने वाले बिश्वासित और सदैव संतोषीहैं वह राजाओं में उत्तम है जिसके नौकर गुप्तधन लेनेसे शत्रुता न करनेवाले बिश्वासित खजाने की वृद्धि में लगे हुये पात्ररूपनिर लोभी अन्न आदिके गोदाम में गुणयुक्तहों और नगर में जिसका कारोबार श्रेष्ठ और अदालतोंमें शंखकी स्मृतिकेअनुसार जिसका निर्णयकरना देखने में आताहो वहराजा अपने धर्म फलको भोगनेवाला है जो राजा मनुष्योंको पारलौकिक आदि के द्वारा स्वाधीन करनेवाला राजधर्म्मों का ज्ञाताषड्वर्ग कोकाम में लाता है वह धर्म्म के फलको भोगता है ३३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मे शतोपरिपंचदशोऽध्यायः ११५ ॥

# एकसौ सोलहवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि इस बिषयमें एक प्राचीन इतिहासको कहता हूं जो कि लोक में बड़ा दृष्टांतरूप और सदैव सत्पुरुषोंको करनेके योग्य है वहइ-सी प्रयोजन के समान तपोबन में मैंने सुनाहै और उत्तम ऋषियोंने परशु रामजीसे कहा है वह यहहै कि हिंसकआदि जीवोंसे व्याप्तकिसी महावनमें मूलफल के आहार करनेवाले सावधान जितेंद्री दीक्षावान शांत चित्तबेद पाठी पवित्र ब्रतोंसे बिशुप आत्मा सदैव सतोगुण वृत्ती एकऋषिथे उनबुद्धि मान् आसन रद्धबिराजमान ऋषिकेशुद्ध चित्तको जानकर सबवनचारीजीव उनके सन्मुख बर्त्तमानहुये उनमें सिंह और व्याघ्रों का समूह और निर्दयी मदोन्मत्त बड़े २ हाथी और नानाप्रकार के व्याघ्र गेंड़रीछ और अन्यबहुत से भयानक पशुथे वह सबरुधिर मांसकेखानेवाले उसके सखाहुये और शिष्यों की समान उसऋषि के दासरूपहोकर प्रियकारीहुये और सबउनको सखामान कर अपने २ स्थानोंको चले गये वहां गांव का रहने वाला एककुत्ता भी था वह नहीं गया वहीं उनकी रक्षामें रहा वह पशुभक्त प्रीतिमान् सदैवब्रत कर नेसे बलहीन फलफूल जलका आहारकरनेवाला शान्त रूप अच्छे जीवोंकी सूरत था वह वृक्षकी जड़ में बैठेहुये ऋषिकी प्रीति में बँधाहुआ मनुष्यके से भावको पहुंचा तदनन्तर रुधिरभक्षी मृत्युकालके समान पराक्रमी निर्दयी और कुत्ते के निमित्त अत्यन्तप्रसन्न द्वीपीनाम व्याघ्र सन्मुखआया और जिह्वासे होठों को चाटता पिपासायुक्त पूछको हिलाता क्षुधायुक्त हो उसने उसकुत्तेके मांसकोचाहा और हे युधिष्ठिर वहां जीवन की इच्छाकरने वाले कुत्तेने उस निर्दयीको आताहुआ देखकर मुनिसे कहा कि हे महाराज यह कुत्तोंकाशत्रु द्वीपीनाम व्याघ्र मेरेमारने को आताहै इससेआप मेरी रक्षाकरिये यहसुनकर मुनिने कहा कि तुझकोइसद्वीपी व्याघ्रसे कभीभय न करनाचाहिये हे पुत्रयह द्वीपी अपने स्वरूप वाले हसिजुदाहोता है यहकहकर उसकुत्ते को द्वीपी के स्वरूप में प्रविष्टकिया जिसकारंग सुनहरी चित्रबिचित्र अंगचज्ञायमानदाढ़ होकर निर्भयवन में रहनेलगा जबद्वीपीने उसपशुको अपनेसमान सन्मुख देखातो क्षणभरमेंही उसका मित्रहुआ उसके पीछे महाभयानक बड़े दांत और मुखको चाटताहुआ एकव्याघ्र उसद्वीपी व्याघ्रके मांसकीइच्छा से उसकेस-न्मुखआया द्वीपीने उस क्षुधातुर बनचारी हिंसक व्याघ्रको देखकर मुनिकी शरणली तब मुनिने उसको व्याघ्र बनादिया तब उसशार्दूलने उसको देख कर नहींमारा फिरतो उसकुत्तेने व्याघ्ररूप पराक्रमी मांसाहारी होकर मूल फूलों के खानेकी इच्छानहींकी २२॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मे शतोपरिषोड़सोऽध्यायः ११६॥

# एकसौ सत्रहका अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि मारेहुये मृगोंसे तृप्तहोकर पर्णशाला के समीपी वृक्ष की जड़पर वह व्याघ्र निर्भय होकर बैठाथा दैवयोग से बादलके समान काला मतवाला मेघ समान गर्जना करनेवाला एक हाथी आया तब वह व्याघ्र उसहाथी के भयानक शब्द से भयभीत होकर ऋषिजी के पास जाकर शरणागत हुआ फिर उस महामुनिने व्याघ्रको हाथी के रूपमें समाधिस्थ किया और वहहाथी उसपर्वताकार हाथी को देखकर भयभीत हुआ फिर वह हाथी रूप आनन्द युक्तहो कमल खण्डोंसे अलंकृत पद्मरेणुसे भूषित गेड़ोंके समूहों में बिचरने लगा इस आनन्द में इसको बहुत दिवस व्यतीत हुयेथे कि पर्वत की कन्दरा में उत्पन्न होनेवाला हाथियोंका नाशक मृगेन्द्रों का राजा महाभयानक केशरीसिंह उसदेशमें आया उस आते महामृगेन्द्रको देख भयभीत कम्पित देह उस हाथीने फिर मुनिकी शरणली तबउस गजेन्द्रको मुनिने सिंहरूप बनाया तब बनवासी सिंह उसको देखकर भयभीत हुआ और वह बनाहुआ सिंह मुनिके आश्रममें ही रहा तब अन्य बनवासी जीव मारे भयके तपोवन के सन्मुख दृष्टि नहीं पड़े दैवयोगसे सब जीवोंका मारनेवाला महाबली रुधिरभक्षी सबजीवों का भयकारी आठ पैर ऊंचेनेत्र वाला बनवासी शरभ उस सिंहके मारने के लिये उसमुनिके आश्रम में आया तब फिर मुनिने उससिंहको मतवाला शरभ बनाया उसको देखकर वह बनवासी शरभभी भयभीत होकर तपोबनसे भागा फिर वह कुत्ताशरभरूपसे आश्रममें रहनेलगा और सदैव मुनिकी शरणमें आनन्द करनेलगा तब उस शरभको देख सबवन के जीव जिधर तिधरभागे और यह शरभ भी फल मूलोंका भोजन त्याग के मांसाहारी होगया और कुत्ते की योनिसे उत्पन्न उसशरभ ने सब उपकारों को भूलकर उस मुनिको मारना चाहा फिर मुनिने ज्ञानचक्षु से जानकर उस शरभ से कहा कि हे कुत्ते तैंने कुत्तेसे द्वीपीरूप और द्वीपीसे व्याघ्ररूप और व्याघ्रसे मतवाला हाथीहुआ और हाथीहोकर सिंहरूप और सिंहरूपसे शरभरूप को पाया मैंने बड़ीप्रीति से तुझको नाना रूपों में बदला और हे पापी तू मुझसे निरपराधी को मारना चाहता है इस कारण तू उसीअपने कुत्तेकी योनि में प्राप्तहोजाने के योग्य है तदनंतर वह मुनियोंकाशत्रु दुष्टात्मा अज्ञानी शरभ फिर कुत्ताहोगया २३॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेशततोपरिसप्तदशोऽध्यायः ११७॥

---

# एकसौ अठारहका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि पूर्वरूप को प्राप्त होनेवाले उस कुत्ते ने बड़ाकष्टपाया और ऋषिका फटकाराहुआ पापीबनसे भी निकाला गया इसप्रकार बुद्धिमान् राजा सत्यता, पवित्रता, स्वरूपता, शास्त्रज्ञता, चलन, रीति, कुलीनता, शान्तता, दया, पराक्रम,प्रभाव,प्रीति,क्षमा आदि सबगुणोंको जानकर जो नौकर जिसअधिकार के योग्य होय उसपर नियतकरे और उनकी अच्छेप्रकारसे रचाकरे, बिना परीक्षालिये मंत्री भी राजाको नियत नहींकरना चाहिये अन्य कुलवाले मनुष्योंसे राजा सुखपूर्वक आनन्द और वृद्धि नहींपाताहै निरपराध होनेपर कुलीन नौकर को दण्डदेना राजा को पापयुक्त करता है, अच्छेलोगोंकी प्रीति से कठिनअधिकारका पानेवाला अन्य घराने का प्राकृति मनुष्य धमकाने से शत्रु होजाता है सुशिक्षित कुलीन बुद्धिमान् ज्ञानविज्ञानमें पूर्ण सबशास्त्रोंका ज्ञाता, चमावान् देशी, कृतज्ञ, बलिष्ठ, शान्तचित्त, नम्र, सुशील, निर्लोभी, मासिकपर सन्तोषी, स्वामीके मित्रोंका ऐश्वर्य्यको चाहनेवाला, देशकालकाज्ञाता, जीवोंकी प्रसन्नता करनेवाला सदैव अपने काममें प्रवृत्त शुभचिन्तक निरालस्य आचारवान् अपनेदेशकी सन्धिविग्रहके बिषयों में प्रबीण राजाके त्रिबर्गका जाननेवाला, पुरबासी और देशवासियों का प्यारामंत्री होना चाहिये ॥

शत्रुकी सेना का छिन्न भिन्न करनेवाला ब्यूहों की मुख्यता का जाननेवाला, सेना के प्रसन्न करने में चतुर, देह और अंगों की चेष्टाकी मुख्यता का जाननेवाला यात्रा के कुशल हाथियों की शिचाकी मुख्यता का ज्ञाता अनुत्तरज्ञानी वेदके अनुसार कर्म्मकर्त्ता जितेन्द्रिय पराक्रमी उचित कर्म्मी, शुद्ध मनुष्यों से संयुत सुमुख, सुनेत्र नीतिज्ञ गुण चेष्टायुक्त सेनाका अधिपति नियत करना चाहिये ॥

शीघ्रकर्म्मी, सूक्ष्म आशय का जाननेवाला शुद्ध और मृदुभाषी पण्डित शूर धनी देशकालका जाननेवाला ऐसे मंत्रीको जो राजा नियत करताहै और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाता है उसका राज्य ऐसा वृद्धि पाता है जैसे कि चन्द्रमा की किरणें, ऐसे गुणों से संयुक्त शास्त्रज्ञ धर्म्मात्मा और प्रजा पालन में प्रवृत्त राजा वृद्धिपाने के योग्य है, पण्डित, क्षमावान पवित्र देशकालका जाननेवाला सेवाकरनेवाला शास्त्रज्ञशास्त्रोंका सुननेवाला उत्तर प्रत्युत्तर और खण्डन मण्डनमें कुशल और शास्त्रका स्मरण रखनेवाला धारण बुद्धिवाला न्यायके अनुसार वार्त्तालाप करनेवाला जितेन्द्रियसदैव प्रियभाषी और शत्रुओं परभी चमावान् दानविषय में आपकर्म्म करनेवाला श्रद्धामान सुख-

दर्शन पीड़ामान के हाथ में देनेवाला स्वामीके हितमें प्रीतिवान अमात्य कर्म्म में सावधान निरहंकारी ससंगी राज्यके कामोंका देखनेवाला कार सर्कारी करनेपर मंत्रियोंको पारितोषिक देनेवाला भक्तोंका प्यारा मनुष्यों की शिष्टाचारी करनेवाला स्थिर चित्त प्रसन्न मुख सदैव नौकरों की इच्छा रखनेवाला क्रोध रहित महा साहसी योग्य दण्ड देनेवाला न कि दण्ड से रहित धर्मके कामोंकी शिक्षा करने वाला दूत रूपनेत्र रखनेवाला प्रजा के वृत्तान्तों का जाननेवाला सदैव धर्मअर्थमें कुशल सैकड़ों गुणोंसे भराहुआ जो राजा है वह चाहनेके योग्य है और हे युधिष्ठिर युद्धकर्त्ता लोग भी सब गुणों से व्याप्त श्रेष्ठ मनुष्य राज्य के पोषण में सहायक खोजने के योग्य हैं और ऐसेही मनुष्योंकी वृद्धि चाहनेवाला राजा कभी अपमान न करे और जिसके युद्धकर्त्ता युद्ध में अहंकारी कृतज्ञ शस्त्रविद्या में प्रवीण धर्म्मज्ञ निर्भय हाथी और रथकी सवारी में कुशलबाण और अस्त्रविद्या में पूरे हैं उसीराजा की यह पृथ्वी है, जो राजा सबके प्रसन्न और आधीन करने में प्रवृत्त युद्ध और उद्योग आदिका अभ्यास रखनेवाला और मित्रों से संयुक्त होता है और वह राजा राजाओं में उत्तम है, हे भरतबंशी जिसके मनुष्य स्वाधीन हों उन एकहजार अश्वारूढ़ों से यह सम्पूर्ण पृथ्वी बिजय के योग्यहै २८॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिअष्टादशोऽध्यायः ११८ ॥

# एकसौ उन्नीसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जो राजा इसप्रकार कुत्ते के समान नौकरों को अपने२ स्थान और अधिकारोंपर नियत करता है वहराजफलको भोगता है,सत्कार कियाहुआ कुत्ता अपने योग्य स्थानों को उल्लंघन करके बड़े अधिकारपर नियत करना न चाहिये क्योंकि वह अपने स्थान से ऊंचे अधिकार पर पहुंचकर दूसरी भूलकरता है, अपने स्वाभाविक गुणोंसे संयुक्त अपने कामों में अच्छा प्रवृत्त मन्त्री नियतकरने के योग्य है अन्यस्थानपर राज्यके कार्य्य पूरे होने के योग्य नहींहैं जो राजा नौकरों के लिये उनके योग्य अधिकारों को देताहै वह राजा नौकरों के गुणोंसे संयुक्त राज्यके फलको पाता है शरभ शरभ के स्थानमें बड़ा सिंह सिंह के स्थानपर और व्याघ्र व्याघ्र के स्थानपर और द्वीपी द्वीपीके स्थानमें बुद्धिके अनुसार योग्य अधिकारोंपर नियत करके फिर उननौकरों का बिपरीति रीति से नियत करना अयोग्य है जो निर्बुद्धीराजा प्रमाणसे बाहर नौकरोंको बिपरीत अधिकारोंपर नियत करता है वह प्रजाको प्रसन्न नहींकरता है सबगुणोंकाचाहने वाला उनमनुष्योंको नियत न करे जो अज्ञानीनीच अल्पबुद्धी अजितेंद्रिय और अकुलीन हैं जो

आदमी साधूकुलीन—शूरज्ञानी दूसरेके गुण में दोषनहीं लगाने वाले पवित्र चतुरहों और नीच न हों वह सदैव करने के योग्य हैं जो दासरूप प्रीतिमान हैं शांत शुद्ध और स्वाभाविक उपकारीहैं और अपने स्थानसे अलग नहीं कियेगये हों वहराजाओंके प्राणरूपहोने चाहियें, सिंहही सदैवहो और सिंहही पीछेकी ओरहो जो सिंहनहींहै वह सिंहकेसाथ सिंहके समान फलको पाताहै जो सिंह कुत्तोंसे घिराहुआ सिंहके कर्म्म फलमें चित्तलगा रहा है वह कुत्तोंसे सेवाकिया हुआ सिंहकाफल भोगनेको समर्थ नहीं होता हेराजा इसप्रकार ज्ञानी शूर बहुत शास्त्रका जाननेवाला राजा कुलीन पुरुषोंकेसाथ सम्पूर्ण पृथ्वीके विजयकरने को समर्थ होताहै हे युधिष्ठिर जो निर्बुद्धी विद्यारहित मिथ्यावादी और निर्बलहों ऐसे नौकर राजा लोगोंको फलोंमें नियत करने के योग्य नहीं हैं राजा ऐसे नौकरोंको दिलासा और भरोसादे जोकि स्वामीके कामोंमें प्रवृत्त और राजाके हितकारी बाणके समान विनाशोक के चलते हैं उद्योग में प्रवृत्त होकर राजाओं की ओरसे खजाना सदैव रक्षा के योग्य है राजा लोग खजाने को मूल समझने वालेहैं और खजानाही वृद्धि करने वाला होता है तेरा गोदाम अनाज आदि से भराहुआ सदैव सत्पुरुषों को सुपुर्द हो और तुमधन धान्यको उत्तममानने वाले हो और युद्धमें कुशल तेरेनौकर सदैवकाम में प्रवृत्त रहें यहां हाथियोंके चलाने आदि में कुशलता इच्छाकी जाती है हे कौरवनन्दन तुमजाति और बांधवोंकी ओर दृष्टिकरने वाले मित्र सम्बन्धियों से संयुक्त और पुरबासियों के मनोरथों की सिद्धि चाहने वालेहो, हे तात तेरी यह दृढ़बुद्धि प्रजालोगों में हितकारी है मैंने कुत्ते के दृष्टांतको वर्णन किया अब क्यासुनना चाहतेहो २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिएकोनविंशतितमोऽध्यायः ११९ ॥

# एकसौ बीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह तुमने बहुतसे राजाओंके वह चलन व्यवहार वर्णन किये जो कि प्राचीन समयमें राजधर्म्म के जानने वाले प्राचीन आचार्य्योंने कहे वही वेदोक्त सनातनधर्म्म ब्योरेवार वर्णनकिया हे पितामह राजधर्म्मोंके विशेष उनधर्म्मोंको भी कहिये जिनको अच्छेप्रकार से धारण करसकें भीष्मजी बोले कि सब जीवों की रक्षाही को क्षत्रियोंका धर्म्ममाना है उसको जिस प्रकार से करना योग्य है वह मैं कहताहूं कि जैसे मोरचित्रविचित्र परोंको धारण करता है उसीप्रकार धर्म्मज्ञ राजाभी बहुत प्रकार के रूपोंको प्रकटकरे जैसे तीव्रता कुटिलता सत्यता और सीधेपने को धारण करताहै वैसेही न्याय और बुद्धिबल में प्रवृत्त होकर सुखको पाताहै जिस

प्रयोजनमें जैसे रूपसे मनोरथ सिद्धहोताजाने उसीवर्ण और रूपको दिखा-
वे बहुरूप राजाका सूक्ष्मअर्थ भी पीड़ाको नहीं पाताहै, सदैव गुप्तवार्त्ता का
रक्षा करनेवाला ऐसाहो जैसे कि शरद ऋतुका मौनहुआ मोरहोताहै शास्त्रमें
प्रवीण श्रीमान्‌राजा शुद्ध वचन और शुद्ध देहवाला हो और आपत्ति के
द्वारों पर सावधानीसे ऐसे वर्त्तमानहो जैसे कि वर्षासे उत्पन्न होनेवाले पर्वतों
के जलझरनोंपर वर्त्तमान होते हैं और सिद्ध ब्राह्मणोंका शरणागतहो, अर्थ
की इच्छा करने वाला राजा शिखाको धर्म्मध्वजा रूपकरे और दण्डमें सदैव
सन्नद्धहोवे और उसको बड़ी सावधानी से करे लोककी आमद और खर्चको
देखके बड़े वृक्षवाले बनको निचोड़े अर्थात् धनरूप रसको लेवे, अपने स-
मूहमें शुद्ध चित्तहोवे और शत्रुके खेतोंको घोड़े आदिके पैरोंसे सत्यानाश
करे और अपने पक्षको खूबदेखे शत्रुके मित्रोंकोचाहै और शिकार बाजीके
बहानेसे खूब भ्रमण करताहुआ शत्रुओंके पक्षवालोंको ऐसा कम्पायमान
करे जैसे कि वनोंमें फूलोंको ऊंचे और वृद्धि पानेवाले पहाड़ों की समानता
रखने वाले राजाओंको नष्टकरे और अविज्ञात स्थानमें प्रवेश करके गुप्तयुद्ध
को करे, और जैसे वर्षाऋतुमें सायंकालके समय मोर निर्जन स्थानमें गुप्त
होताहै इसीप्रकार मोरकेसमान स्त्रियोंकेसाथ महलमेंनिवासकरे परंतु कवचको
नहीं त्यागे आप अपनी रक्षाकरे, दूतोंके बतायेहुये स्थानोंपर शत्रुके लाये
हुये वर्णरूप पाशोंको अपनी देहसे जुदाकरे कठिनतासे निश्चय होनेवाले
पाशज्ञान होनेपर उसकपट भूमिको पाकर अपनेको उससे मिलावे तब नष्ट-
ताको प्राप्त होताहै उनबड़े विषभरे क्रोधी मनुष्योंको मारे जो कि कुटिलता
किया करते हैं शत्रुकी सेनाके पक्षोंका नाशकरे और दृढ़मूल रखने वाले
मन्त्री और शूरोंकोनियतकरे और सदैव मोरकेसमान इच्छाके अनुकूल उत्तम
कर्म्मों को करे और सब ओरसे बुद्धिको ऐसे प्राप्तकरे जैसे कि घनेबनों में
टीड़ियोंका समूह वृक्षोंको वेपत्ते करता है इसप्रकार से राजा मोर के समान
अपने राज्यकी रक्षाकरे और वह चतुर मनुष्य नीति उत्पन्न करनेवाली बु-
द्धिको धारणकरे और अपनी बुद्धिसे चित्तको स्वाधीन करना और दूसरे
की बुद्धिसे दृढ़ निश्चय करना और शास्त्रसे उत्पन्न होनेवाली बुद्धिके द्वारा
अपने गुणोंका प्राप्त होना यह शास्त्र का प्रयोजन है शत्रुको मीठे बचनोंसे
बिश्वास दिलावे और अपनी सामर्थ्य को देखे,अपने बिचार से अपनीबुद्धि
को भ्रमावे जो कि सामनीति से संयुक्त बुद्धि रखने वाला हो और कर्त्तव्य
अकर्त्तव्य कर्म्मों का जारी करनेवाला हो उस गंभीर बुद्धि पंडित को योग्य
उपदेश होनेपर उपदेश का करना वृथा है अर्थात् उपदेश की आवश्यक-
तानहीं है चाहे वहज्ञानी बुद्धिमें वृहस्पतिजी के भी समान हो और निर्बुद्धि

ताके बादको करे वह शीघ्रही ऐसे विश्वास को प्राप्तहोताहै जैसे कि जलमें डाला हुआ गरमलोहा शरदीको प्राप्तहोता है राजा अपने और दूसरेके सब कामोंको जो कि शास्त्रों से उपदेश हुयेहों जारीकरे प्रबन्धकी रीतोंकाजानने वाला राजा मृदुस्वभाव ज्ञानी और शूरको और जो दूसरे महाबलवान् हैं उनको अपने राज्यके कामोंपर नियतकरे फिर अपने योग्य अधिकारों पर नियत होनेवाले पुरुषोंको देखकर उनसबका ऐसाद्दष्टाहो जैसे कि बीणाके बड़े स्वरको देखता है धर्म्मोंकी अविरोधता से सबका हितकरे जो राजा यह मानता है कि यह मेराहै वह पर्व्वत के समान अचल है प्रिय अप्रियको समानकर निर्णय को बुद्धि में दृढ़ नियत कर के धर्म्म की ऐसे रक्षाकरे जैसे कि सूर्य्य बड़ी किरणों को धारण करके प्रजाका पोषण करता है प्रकृतिदेश और घराने के जानने वाले नम्र भाषी तरुणावस्था में निर्दोषी हितसंयुक्त व्याकुलता रहित निर्लोभी शिक्षावान शान्तचित्त धर्मों में कुशल,धर्म, अर्थ के रक्षक पुरुषों को राजा सब अधिकारों पर नियतकरे कर्म में प्रवृत्त राजा इसप्रकारसे राज्य के कामोंकी प्राप्त होनेवाली यात्रामें कुशल हो और प्रसन्न चित्त दूतोंसे संयुक्तहो उससफल क्रोध हर्षवाले और राज्यकार्य्य के देखनेवाले खजाने पर अपना विश्वास रखनेवाले राजाको यहधनसे पूर्ण पृथ्वीमहाधन ऐश्वर्य्य की देनेवाली है जिसकी कृपालुता प्रकट है और दण्ड उचितहै और जिसका देश और देहरक्षित है वह राजा राजधर्म्मोंका जानने वालाहै और जैसे उदय होनेवाला सूर्य्य अपनी किरणोंसे संसारको देखता है उसीप्रकार सदैव अपने देश को देखे और दूतोंसमेत अपनी प्रजाके सब वृत्तान्तों को जाने उसीप्रकार अपनीबुद्धिसे कर्म्म करे, राजा अपने वर्त्तमान समयकोजानकर अपने धनको नहींखखाने वह बुद्धिमान गौ भैंसकेसमान देशको प्रतिदिन दुहै, जैसे क्रमपूर्वक भौंरा रसको पीता है उसी प्रकार राजा धनको लेकर संचयकरे, जो धन रक्षित धनसे अधिक होय उसको धर्म्म के कामों में खर्चकरे जो राजा कि शास्त्रज्ञ और बुद्धिमान है वह खजाने से धनकोकभी न दे,थोड़ेधन का और शत्रुके मनुष्योंका अपमान नहीं करे, बुद्धिसेआत्मा को जाने और निर्बुद्धियोंपर विश्वास न करे धैर्य्यता चातुर्य्यता जितेन्द्रिय होना, बुद्धि,देह, पृथ्वी,शूरता और देशकालमें असावधान न होना यह आठ बातें थोड़े या बहुतधनमें वृद्धिकारकहैं, घृतसे सींचीहुई थोड़ी अग्निभी वृद्धि पातीहै और एकबीज हज़ार रूपसे उत्पन्न होताहै इसकारण बड़ी आमद और खर्चकोसुनकर थोड़ेधनका अपमान न करे,बालक,तरुण,वृद्ध कैसाही जो शत्रु है वह असावधान रहनेवाले पुरुषको सदैव मारताहै दूसरा राज्य का चाहने वाला काल के द्वारा उसकी जड़को काटता है, जो कालज्ञ है वह राजाओंमें

श्रेष्ठ इसकी कीर्त्तिको हरण करके धर्म्मका नाशकर अर्थमें इसके बड़े पराक्रम को नष्ट करता है, बिरोधी शत्रु निर्बल अथवा बलवान् कैसाही हो उससे राजा असावधान न रहे संचित धनकी नष्टता वा वृद्धि वा रक्षा वा ऐश्वर्य और विजय आदि को जानकर शत्रुसे सन्धिकरे या युद्धकरे इसहेतुसे बुद्धिमानराजा अपनी बुद्धिसे रक्षा कियाजाता है, प्रकाशित बुद्धि पराक्रमी को मारती है और बुद्धिसे बृद्धिपानेवाली सेना रक्षित रहतीहै और वृद्धिपाने वाला शत्रुभी बुद्धि से पीड़ाकोपाता है जो काम बुद्धि के अनुसार होता है वही उत्तमहै पंडित निर्दोष और सब मनोरथों का चाहनेवाला राजा थोड़े पराक्रम से भी उनको प्राप्तकरताहै अपने को इच्छाओं से संयुक्त चाहता है अर्थात् लोभी और अहंकारी होता है वह कल्याण के पात्रको थोड़ाभीनहीं भरता है इसकारण प्रजाका प्यारा राजा सब से राज्य की भेजलेव प्रजापर बिजली के समान गिर कर देरतक पीड़ादेनेसेभी पराक्रमी नहीं[illegible], तप और बहुतसा धन यहसब उद्योगसे मिल[illegible]हैं और बुद्धि के आधीनमें हैं इस कारण से उद्योग को [illegible] जिसदेहमें इन्द्र, विष्णु, सरस्वती, आदि देवता और [illegible] सदैव निवासकरतेहैं इसहेतु से ज्ञानी मनुष्य देहका [illegible] नहींकरे लोभी पुरुष को सदैव दान के द्वारामारे लोभी दूसरे के धन से शान्त नहीं होताहै जो निर्द्धन हैं वह सबकर्म्मके फल सिद्धकरनेमें लोभी हैं वह सुख के लोभसे धर्म्मभोग, पुत्र और स्त्री की इच्छाकरते हैं इसलोकमें लोभी पुरुष के भीतर सब दोषही होते हैं इसकारण राजा लोभीको अधिकारोंपर नियत नहींकरे पूरी बुद्धिसे नीचपुरुष को चेतावैहै इसलिये ज्ञानी राजा शत्रुओं के प्रारंभ कर्म्म और सब अर्थोंको भी नष्टकरे हे युधिष्ठिर ब्रह्ममंडली में मुख्य बृत्तान्त का जाननेवाला मंत्रियों से रक्षित कुलीन राजा सामन्तों को अपने आधीनकरने को समर्थ है बुद्धिसंयुक्त निश्चितकहेहुये राजधर्म्मों को बुद्धिसे समझो, जो राजा गुरूकेपास जाकर इनधर्म्मों को हृदय में धारणकरे वह संसारकी रक्षाकरने को समर्थ है जिसराजाका सुख अनीति उत्पन्न दैवसे मिलनेवाला बुद्धिके अनुसार हठसे वर्त्तमान दीखता है उसको उत्तमगति और राज्यके सुख प्राप्तनहीं होते धनों से उत्तमबुद्धि और संसार से पूजित शूरता आदि गुणों से सम्पन्न युद्धके बीच पराक्रम में देखेहुये पुरुषों का समूहों में देखकर सावधान राजा चढ़ाईकरनेवाले शत्रुओं को निशान कर के थोड़ेदिनों मेंही मारता है नानाप्रकार के मार्ग और कामोंसे युक्तियों को देखे और बिनायुक्तिके रायको संयुक्तनहींकरे, निर्दोषी मनुष्योंमेंभी दोषों ता[illegible] देखनेवाला राजा उत्तमधन और सुन्दर कीर्त्ति और धनको अच्छे प्रकार [illegible]हीं भोगता ज्ञानी राजा मित्रों की अच्छी परीक्षा लेकर जिनदोमित्रों

को विचार करके एकही अधिकार पर नियत करे उन दोनोंके मध्य में जो भारीबोझकोउठावे उसकी प्रशंसाकरे मेरेकहेहुये उन राजधर्मों के ऊपर ध्यान करो और मनुष्योंकी रक्षाकरने में बुद्धि को प्रवृत्तकरो तुम सुख से पुण्य के फलको पाओगे हे राजा सबलोक धर्म्महीको मूल जानता है ५६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्म्मेशतोपरिविंशतितमोऽध्यायः १२० ॥

# एकसौइक्कीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह आपने यह सनातन राजधर्म्म कहा और दण्ड बड़ासमर्थ है सब दण्डों में वर्त्तमान है देवता ऋषि महात्मा, पितृ, यक्ष, राक्षस, पिशाच, साधुगण और अधिककरके लोकमें सबजीव और पशुपक्षियोंके मध्य बड़ातेजस्वी सर्वव्यापी दण्डही उत्तम है आपने इसप्रकार कहा है कि देवता असुर, मनुष्य, जड़, चैतन्य जीवोंकेसाथ सम्पूर्ण संसारको दण्ड में वर्त्तमान देखो सो हे पितामह मैं इसको मूल समेत जीतना चाहताहूं कि दण्डकौनहै, कैसाहै कैसा रूपहै और उसका मुख्यस्थान कौनसा है और किसका आत्माहै कैसे उत्पन्नहुआ और क्या आकृतिहै और प्रजाकेमध्य किस प्रकार जागता है आदिअन्त में रक्षाकरता हुआ जागता है पहले कौनरूप से जानाजाता है और दण्डका कौनसानाम उत्तम है, दण्डकिसमें नियत करनेवाला है और इसकी कौनगति कहीजातीहै इनग्यारहप्रश्नोंमें दण्डकौनहै इसका उत्तर भीष्मजीदेतेहैं कि हेयुधिष्ठिर सुनो जोदण्डहै और जैसे व्यवहाररूपहै और जिसके आधीनहै केवल वही दण्डहै और हेतात अच्छीतरह धर्म्मका प्रकट करनेवाला व्यवहार इच्छाकियाजाताहै, लोकों में सावधान बुद्धिराजा के धर्मकालोप कैसे नहींहोता, जैसे कि इसप्रकार के व्यवहारका वह कर्म्म इच्छाकिया जाताहै जिसमें कुमार्ग के द्वारा दूसरेका धनका लेना नहींहोताहै हेराजाप्राचीनसमयमें मनुजीनेभी आदिमेंइसको कहा, प्रियअप्रिय जिसमें समान हैं उस जारी किये हुये दण्डसे जो राजा अच्छे प्रकारसे प्रजा की रक्षाकरता है केवल वही धर्म्म है और प्राचीन समय में जिस प्रकार मनुजीने यह वचन कहा है और जो मैंने कहा वह ब्रह्माजी का महा वचन है यह वचन प्रथम कहागया इस हेतुसे इसको पहला वचन जानो, इसलोक में वह दण्ड व्यवहार के प्रकट करनेसे व्यवहार नाम कहा जाताहै अच्छे प्रकार जारी होनेवाले दण्ड में तीनवर्ग अर्थात् धर्म्म, अर्थ, काम बराबर जारी होतेहैं रूपसे अग्नि के समान प्रकट होनेवाला अर्थात् रुद्ररूप दण्ड परम देवहै वह दण्ड नीले कमल की समान श्याम चारदाढ़ चारभुजा आठ चरण बहुतसे नेत्र तीक्ष्णकर्ण खड़ेरोम देहवाला जटाधारी दो जिह्वा रखने

वाला रक्तमुख मृगराज के चर्म्मका धारण करनेवाला है वह अजय दण्ड सदैव इस उग्ररूप को धारण करता है अर्थात् खड्ग, धनुष, गदा, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर, बाण, मूशल, फरसा, चक्र, पाश, दण्ड, दुधारा, खड्ग, लोष्टू और इसलोक में जो कोई शस्त्रहैं उनकारूप मूर्तिमान् दण्डही भेदता, छेदता, पीड़ादेता, घातकरता, चीरता, गिराता, मारता, चारोंओर दौड़ता घूमता है खड्ग से घात करने वाला और तीक्ष्ण कवच रखनेवाला दुःखसे धारण होनेवाला लक्ष्मी से उत्पन्न हुआ विजयरूप धर्म्मरूप हाकिम और सनातन व्यवहार रूपहै शास्त्र ब्राह्मण और मंत्ररूप प्राचीन धारणा बुद्धि वाले आचार्यांमें उत्तमधर्म्म रक्षक अविनाशी देवता सीधा चलने वाला सदैव गमन करनेवाला सबसे पहले उत्पन्न होनेवाला असङ्ग रुद्रका पुत्र मनु बड़ा कल्याण करने वालाहै हे युधिष्ठिर दण्डके यह सब नाम कहे अब दण्डके मुख्यरूपको कहते हैं कि दण्डही भगवान् विष्णुहै और दण्डही प्रभु नारायण है सदैव महारूप को धारण करता महापुरुष कहाजाताहै अब दण्ड को शक्तिरूप वर्णन करतेहैं जिसप्रकार ब्रह्मकन्याओंको लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती, दण्ड नीति और जगद्धात्री कहतेहैं यह सब दण्डही बहुत से रूप धारण करनेवाला है अर्थ, अनर्थ, सुख, दुःख, धर्म्म, अधर्म्म, बल, निर्बल, प्रारब्धहीन, प्रारब्धी पुण्य, पाप, गुण, अवगुण, इच्छा, अनिच्छा, ऋतु, मास, रात्रि, दिवस, क्षण, सावधानी, असावधानी, प्रसन्नता, क्रोध, शान्तचित्त, बाहर, भीतर, प्रारब्ध, उद्योग, मोक्ष, बन्धन, भय, निर्भय, हिंसा, अहिंसा, तप, यज्ञ, संयम, विष, निर्विष, अन्त, आदि, मध्यकी क्रियाओंका प्रपंच, अहंकार, भूल, एकता, कपट, धीर्य, न्याय, अन्याय, बल, अबल, बिरुद्धता, व्यय, अव्यय, नम्रता दान, काल, अकाल, मिथ्या, बुद्धिमानी, सत्य, श्रद्धा, अश्रद्धा, नपुंसकता, निश्चय, लाभ, हानि, बिजय, पराजय, कठोरता, नम्रता, मृत्यु, शास्त्र अशास्त्र, शत्रु, अशत्रु, कार्य्य, अकार्य्य, निंदा, स्तुनिंदा, लज्जा, निर्लज्ज, धनी, निर्धनी, तेज, कर्म्म, पण्डिताई, सामर्थ्य, वचन, बुद्धिमानी, सिद्धांत इत्यादि इसदण्डके बहुतरूपहैं जो इसलोकमें दण्ड नहींहोय तो परस्पर में एकएक को मारडालें हे युधिष्ठिर दण्डके ही भयसे परस्पर नहींमारते हैं इसलोकमें दण्डसे प्रतिदिन रक्षित प्रजा राजा की सदैव वृद्धि करती है इसहेतुसे दण्डका स्थान बड़ाहै यह दूसरे प्रश्न का उत्तर है किसका आत्मा है किसप्रकार उत्पन्नहुआ और किस रूपका है इनतीनों प्रश्नों का उत्तर देतेहैं हे राजेन्द्र इसलोक को दण्ड शीघ्र वर्त्तमान करता है ऐसे निश्चयवाला धर्म्म है और वह ब्राह्मणों में वर्त्तमान होताहै किसप्रकार जागताहै इसका उत्तरदेते हैं कि धर्म्म संयुक्त ब्राह्मण देवताओं से संयुक्त होते

हैं यज्ञवेदोंसे उत्पन्नहुआ और देवताओं को प्रसन्न करताहै और प्रसन्न होकर देवता सदैव इन्द्रसे वार्त्तालाप करते हैं इन्द्र प्रजा पर कृपाकरके अन्न को देताहै सब जीवोंके सदैव अन्नमय प्राण हैं इसीके बल से प्रजानियत रहती है इनकेबीच में दण्ड जागता है ऐसे प्रयोजन वाले दंडने क्षत्रीरूपकोपाया सदैव सावधान अविनाशी दंडप्रजाकी रक्षा करताहुआ जागताहै ईश्वर, पुरुष, प्राण, पराक्रम, धन, प्रजापति, भूत, आत्मा, जीव, इन आठनामोंसे भी कहनेमें आताहै ईश्वरने इसराजामें वह दंडनीति और ऐश्वर्य्य धारण कियाहै जो कि पराक्रम से संयुक्तहै और सदैव पांचरूप रखनेवालाहै वहपांच रूपयहहैं धर्म्म, व्यवहार, धर्म्मेश्वर, जीव, रूप, कुल, महाधनी, मंत्री, बुद्धि और सबप्रकार के जो पराक्रम कहेगयेसो हेयुधिष्ठिर इनआठ दिव्य पदार्थोंके द्वारा दूसराबल अर्थात् खजानेकी वृद्धि प्राप्त करनी चाहिये हाथी, घोड़े, रथ, पदाती, नौका उसीप्रकार नौकर या बेगारी देशीवस्तु कम्बलआदि यह आठ अंग रखनेवाला पराक्रम कहा अथवा सेना और राजका दण्डही अंगहै इसके विशेष शेषवार्त्ता युक्त दण्ड के अंग रथके सवार हाथीके सवार, अश्वसवार मंत्री, वैद्य भिक्षुक अदालत के हाकिम, मुहूर्त्त रखनेवाले दैवचिन्तक खजाने के मित्रयह सबसामानहैं सात प्रकृति और आठअंगों समेत इसका देहकहा-गया है जो लोक में दण्डका ज्ञाता है वह राजका अंगहै और दण्डही उत्प-त्ति स्थानहै ईश्वरने किसी कारणसे बड़ीयुक्तिकेसाथ क्षत्रीको दण्डसुपुर्द किया यह समदर्शी दण्ड सनातन है संसारकी रक्षा और अपने धर्म्म के नियतरखनेके निमित्त ब्रह्माजीका दिखायाहुआ धर्म राजाओंको महा पूज-नीयहै इसीप्रकार मुद्दई और मुद्दाअलहके कारण पैदाहुआ दूसरा व्यवहारहै इसी निमित्त जो व्यवहार मनोरथों से भराहुआ देखागया उसका नाम भ-र्तृ प्रत्यय लक्षणहै फिर व्यवहार वेदोक्त और वेदमूलकहा जाता है इसीप्र-कार दूसरा व्यवहार कुलाचारसे संयुक्त और शास्त्रोक्त है जो यह पहिलाभर्तृ प्रत्यय लक्षण नाम दण्ड कहा वह हमराजा लोगों में जानना चाहिये इस हेतुसे दृष्टआने वाला दण्ड भी व्यवहाररूप कहा गयाहै और जो व्यवहार कहागयाहै वह वेदोक्तहै जो वेदसे प्रकट होनेवाला है वह गुणदर्शन नाम धर्म्म है जो कि कर्म्म के कारण से ज्ञानियोंने धर्म्मके लिये उपदेशकिया हे राजा ब्रह्माजीका दिखाया हुआ दण्ड प्रजाका रक्षक है वह सत्यबुद्धि और ऐश्वर्य्यका बढ़ाने वाला दण्ड तीनों लोकोंको धारणकरताहै जो दण्डहै वह देखाहुआ हमारा सनातन व्यवहारहै जो व्यवहार देखागया वह वेदहै यह निश्चयपूर्वक निर्णय कियागया है जो वेदहै वही धर्म्महै जो धर्म्महै वही सत्यमार्गहै पितामह ब्रह्माजी पहिले प्रजापतिहुये तबसंसार के स्वामी देवता

असुरराक्षस मनुष्य और सर्पोंसमेत सब लोकोंके ईश्वरहुये इस कारण यह भर्तृप्रत्यय लक्षणनाम हमारा व्यवहार जारीहुआ इसी कारण उनब्रह्माजीने इस व्यवहार दर्शी बचनको कहा माता, पिता, स्त्री पुरोहित, यह सब उसराजा की ओरसे दण्डके योग्यहैं जो राजा अपने धर्म्मसे राज्यपै नियतहै ६० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेशतोपरिएकाविंशतितमोऽध्याय: १२१ ॥

# एकसौबाईसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हम यहां इसप्राचीन इतिहासको भी कहतेहैं कि अंग देशोंमें महातेजस्वी बसुहोमनाम राजा प्रसिद्धहुआ सदैव धर्म्मकाज्ञाता महा तपस्वी वह राजाअपनी रानीसमेत उसमुंजपृष्ठपर्वतपर गया जो पितृ और देव ऋषियों से पूजितथा वहां हिमालयके शिखरपर सुवर्ण पर्वतके समान मुंजाबटमें जहां श्रीरामचंद्रजीने जटाहरण उपदेशकियाथा हे राजेंद्र तभीसे वह तेजब्रतवाले ऋषियों ने उस रुरु सेवित देश का नाम मुंजपृष्ट रक्खा तब वहां वेदोक्त बहुत गुणोंसे संयुक्त और ब्राह्मणोंका प्यारा वह राजा देव ऋषियोंके समान होताहुआ दैवयोगसे इन्द्रका प्रतिष्ठितमित्र शत्रुहन्तामहा प्रतापी राजामान्धाता उसके पास आया वह मान्धाता उसबसुहोम राजाके पासजाकर नम्रता पूर्व्वक दण्डप्रणाम करके उसकेआगे वर्त्तमानहुआ बसु- होमने भी पाद्यअर्घ दिया और सप्तांग रखनेवाले राज्य की कुशल को पूछकर उस राजामान्धाता से जो कि प्राचीन समयमें सत्पुरुषोंसे सेवित और बुद्धि के अनुसार धर्म्म में प्रवृत्तथा कहा कि हे राजन् आपका क्या शिष्टाचार करूं तब मान्धाता उस महाज्ञानी बसुहोमसे कहा कि हे राजा तुमने वृहस्पति जी के सब मतको पढ़ा और इसीप्रकार शुक्रजी के भी शास्त्रकाजाना सो मैं यह जानना चाहताहूं कि दण्ड किसप्रकार उत्पन्न होता है क्या वह पहले जागताहै या उत्तम कहाजाताहै वह दण्ड क्षत्रि योंमें कैसे नियतहुआ यह आप मुझसे कहिये मैं आपको गुरुदक्षिणा दूंगा बसुहोमने कहा कि हेराजा जिसप्रकारसे संसारका बशकरनेवाला धर्मका आत्मासनातन नीतिदण्ड प्रजाकीरक्षाके लिये उत्पन्न हुआ उसको सुनो कि यज्ञकी इच्छा करने वाले ब्रह्माजीने जब अपने योग्य ऋत्विजकोनहीं पाया तब उसने अपने गर्भको बहुत बर्षोंतक शिरमें धारण किया और हजार वर्षके पीछे वह गर्भ छान लेतेही गिरपड़ा वह क्षुपनामप्रजापतिहुआ और वहउसके यज्ञ में ऋत्विज हुआ उस ब्रह्मयज्ञके जारी होने पर प्रधान रूपके देखनेसे वह दण्ड अन्तरध्यान हुआ अर्थात् दीक्षा रूपमें नियतहुआ उसदेण्डक अन्तरध्यान होनेपर प्रजाओंकी मिलावटहुई तब योग्य अयोग्य

कर्म और भक्ष्य अभक्ष्य वस्तुओं का विवेक नहीं रहा और भोजन करने न करने के योग्य बस्तुभी बर्त्तमान नहीं हुई तो सिद्धकहांसे होय एक दूसरे को मारताथा उस समय भोग्य अभोग्य स्त्रीका बिचार नहींहोताथा अपना और दूसरे का धनसमान गिनतेथे परस्परमें ऐसे घात करतेथे जैसे कि कुत्ते मांसको टुकड़े टुकड़े करते हैं पराक्रमी निर्बलोंको मारतेथे ऐसी सब मर्यादा वर्त्तमान हुई तब ब्रह्माजी ने सनातन बरदायी भगवान् विष्णु देवता और महादेव जीको अच्छे प्रकारसे पूजन करके यह कहा कि हे केशवजी आप यहां कृपाकरिये यहां बर्णोंका मिलाप जैसे नहो वही आप कीजिये तदनन्तर देवताओंमें उत्तम त्रिशूलधारी भगवान् शिवजी ने देरतक ध्यान करके अपने आत्मारूप दण्ड को अपनी देहसे उत्पन्न किया उस धर्म्म चरणसे नीतिनामदेवी सरस्वती उत्पन्नहुई उसने तीनों लोकों में दण्ड नीतिको प्रसिद्ध किया फिर भगवान् शिवजीने देरतक ध्यानकरके समूहोंका एक २ स्वामी नियत किया अर्थात् इंद्रको देवताओंका स्वामी और सूर्य्यके पुत्र यमराजको पितरोंका स्वामी और कुबेरजी को धनका और राक्षसोंका स्वामी किया और सुमेरु को पर्ब्बतोंका और महासमुद्र को नदियोंका स्वामी बनाया जल और असुरोंके समूहका वरुणजीको स्वामी नियतकिया फिर मृत्युको प्राणका ईश्वर और अग्निको तेजोंका स्वामी किया प्रभु ईशान महात्मा महादेव बिशालाक्ष सनातनदेवको भी रुद्रों का स्वामी नियत किया बशिष्ठ जीको ब्राह्मणों का अग्नि को बसुओंका सूर्य्यको तेजों का, चन्द्रमा को नक्षत्रों का, स्वामी किया अंशुमन्त को बीरुधोंका और द्वादशभुजधारी षण्मुख कुमार स्कन्द को देवता आदि सब जीवोंका राजा किया उत्पत्ति नाश कारक कालको चारप्रकार वाली मृत्यु और दुःखसुखका स्वामी बनाया कुबेरजी राजाओं के राजाहुये और शूलधारी शिवजी सबरुद्रों के स्वामी हुये और सभीपही उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मपुत्र क्षुपनामको प्रजाओंके सब धर्म्म धारियोंका बड़ा स्वामी किया उसके पीछे महादेवजी ने बुद्धि के अनुसार उसयज्ञके जारीहोने पर धर्म्मके रक्षक दण्डको विष्णुजी के सुपुर्द किया और विष्णुने अंगिरा ऋषिको दिया अंगिराने इन्द्र और मरीचि को दिया मरीचिने भृगुजीको दिया भृगुजीने उस सावधान दण्ड धर्म्मको ऋषियोंको दिया ऋषियों ने लोकपालों को दिया और लोकपालों ने क्षुपको दिया क्षुपने सूर्य्यके पुत्र मनुजीको दिया उन्होंने अपने पुत्रोंको दिया और कहा कि न्यायके अनुसार विचारकर धर्मसे दण्ड जारीकरना चाहिये अपने आप स्वतंत्रतासे दुष्टोंका दण्डदेना दण्ड नहीं है जुर्माना लेना बाहरी कर्म है अर्थात् केवल भयभीत करने के निमित्त है खजाने की वृद्धिके लिये

नहीं है अंगों से रहितकरना देहघात और देहकी अनेक पीड़ादेना देहको गिराना और देशसे निकालना छोटेकारणों से नहीं होताहै सूर्य्य के पुत्र मनुने उनसे वर्णन किया कि यहदण्ड क्रमसे प्रजाकी रक्षापूर्वक सदैव जागता रहताहै और इन्द्रभी जागते हैं और इन्द्रसे अग्नि देवता जागते हैं प्रथम वरुण देवता जागते हैं वरुणसे प्रजापति प्रजापतिसे नीतिरूप धर्मजागताहै धर्म्मसे ब्रह्माजीका पुत्र सनातन व्यवसाय नाम जागताहै व्यवसाय से चारों ओर रक्षा करता हुआ तेज जागता है उस तेजसे औषधियां और औषधियोंसे पहाड़जागते हैं पहाड़ोंसेरस और रसोंसे गुण और निर्ऋतिदेवी जागती है निर्ऋतिसे सब ज्योतियां जागती हैं ज्योतियोंसे वेद की प्रतिष्ठा और उससे हयग्रीवप्रभुजागते हैं उसहयग्रीव से प्रभु पितामह ब्रह्माजीजागते हैं ब्रह्माजीसे भगवान् महादेव शिवजी जागते हैं शिवजी से विश्वेदेवा और विश्वेदेवाओं से ऋषि ऋषियों से चन्द्रमा चन्द्रमासे सबसनातन देवता और देवताओं से लोक में ब्राह्मणजागते हैं और ब्राह्मणों से राजालोग जागतेहैं वही धर्म्म से संसार की रक्षा करते हैं और राजाओंसे स्थावरजीव और प्रजा के लोग जागते हैं उन्होंमें दण्डजागताहै ब्रह्माजी के समान तेजस्वी दण्ड सब को धर्षण करताहै और काल आदि मध्य अंत तीनों समय जागता है सबलोकों के ईश्वर महादेव शिवजी महाराज सदैव जागाकरते हैं यह दण्ड आदि मध्य अंत इन तीनों समयों में प्रसिद्धहुआ धर्मका जाननेवाला राजा न्याय के अनुसार इसको करे भीष्म जी बोले कि जो मनुष्य वसुहोम के इसमतको सुने और सुनकर अच्छेप्रकारसे काम में लावे वह सब मनोरथों को सिद्धकरे हे भरतबंशी युधिष्ठिर यह दंडधर्म्म से विरुद्ध होनेवालेसब लोगोंको बदला देनेवाला मैंने तुझ से कहा ५६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिराजधर्मेशतोपरिद्वाविंशोऽध्यायः १२२ ॥

## एकसौ तेईसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे तात मैं धर्म्म अर्थ काम के निश्चय को सुना चाहता हूं संसारका सब कार्य्य किन २ वस्तुओं में नियत होता है धर्म्म अर्थ काम का मूल क्या है तीनों का उत्पत्तिस्थान क्या है वह परस्पर में संयुक्त होते हैं और किसप्रकार से जुदे २ होजाते हैं भीष्म जी बोले कि जब मनुष्य शुद्ध चित्त होते हैं तब पृथ्वी पर धर्म्म को आगे करने वाले अर्थ धर्म्म काम यह तीनों ऋतुकालमें बुद्धि के अनुसार स्त्रीके गर्भाधान में निश्चय आकर संयुक्त होते हैं देव से मिलाहुआ अर्थ धर्म्मका और कामअर्थ का मूल कहा जाता है और सबका मूलसंकल्प कहाजाता है अर्थात् धर्म अर्थ काम तीनों

संकल्प से उत्पन्न होते हैं और संकल्प बिश्वरूप है और सब बिषय आहार सिद्धी के निमित्त हैं और निवृत्ती मोक्ष इस त्रिवर्ग का मूल कहाजाता है अर्थात् आदि में मोक्षके लिये इन तीनोंका बर्णन है धर्म्म से देहकी रक्षाहै और अर्थ धर्म्मके निमित्त होताहै और काम ऋतु फलवालाहै ऐसी दशा में वह सब रजोगुण प्रधान हैं धर्म्म नीरोगताके निमित्त है और अर्थ धर्म की इच्छा के लिये है काम इन्द्रियों की तृप्तिके लियेहै इनतीनों में जो श्रेष्ठ होय उसको सेवनकरे अर्थात् धर्म्म चित्त की शुद्धी के निमित्त और अर्थ निष्काम कर्म के लिये और काम केवल देहके ठहरने के निमित्तहै इसप्रकार से करना चाहिये इन धर्म्म अर्थ काम तीनोंको चित्त से भी त्याग न करे फिर स्वरूप को क्यों त्यागेगा तपसे बिमुक्त होकर इन सब धर्म्म आदिसे पृथक् होना चाहिये अर्थात् फलकी इच्छा से इनको न करे किन्तु अकाम करे मोक्ष में त्रिबर्ग की यह श्रेष्ठ बुद्धी है अर्थात् निष्ठा है जब कि मनुष्य उसको प्राप्त कर सके इसप्रयोजन से कि धर्म से अर्थ है और अर्थ से धर्म्म है अज्ञान नीच बुद्धी से दृष्ट आनेवाला अज्ञानी धर्म अर्थ के फलको नहीं पाता है अब धर्म आदिके रजोगुण को दिखलाते हैं धर्म्म की प्रवृत्ति फलकी इच्छा है और दान भोगका प्राप्त न करना अर्थ की प्रवृत्ति है और कामप्रीति रूप प्रवृत्ति का रखनेवाला है फिर अपने गुणोंसे पृथक् वह त्रिबर्ग चित्तशुद्धीआदिके द्वारा ब्रह्मानन्द रूप फलको देता है तीनोंप्रश्नों को कहकर चौथेप्रश्न को इतिहास के द्वारा कहताहूं उसप्राचीन इतिहास में कामन्दक ऋषि और आग रिष्ट राजा का प्रश्नोत्तर है आगरिष्ट राजाने मर्य्याद भंग करके कामन्दक ऋषिसे पूछा कि हे ऋषि जो काम मोह से युक्त राजा पाप को करता है उसके पाप दूर होनेका कौन सा उपाय है जो मनुष्य अज्ञानता से अधर्म को धर्म्म जानकर सेवन करे उसप्रसिद्ध मनुष्यको किसप्रकारसे राजा सुमार्गमें लावे कामन्दक ने उत्तरदिया कि जो पुरुष धर्म अर्थको त्यागकरके कर्म में ही प्रवृत्त रहता है वह इसलोक में धर्म्म अर्थके त्यागने से ज्ञान भ्रष्ट होता है और ज्ञानभ्रष्ट होनेसे मोहको प्राप्त होकर धर्म अर्थ को नाश करता है जब राजा उनदुराचारी दुष्टमनुष्यों को दण्ड नहीं देता है तब लोक ऐसा व्याकुल होता है जैसे कि घर में बैठेहुये सर्प से व्याकुल हो प्रजा ब्राह्मण और साधु उसकी इच्छा के अनुसार कर्म नहीं करते हैं इस कारण से संशय को प्राप्त होकर इसी प्रकार से घातको प्राप्त होता है वह अपमान और निन्दायुक्त होकर दुःखरूप जीवन को पाता है निन्दित जीवनेसे मनुष्य का मरना उत्तम होता है उसनिंदित के करने योग्य कामोंको कहते हैं इस स्थानमें आचार्य्यों ने उसपापी को तीनों वेद और

ब्राह्मणोंका सत्कार करना कहा है वह धर्ममें बड़ा चित्तलगावे और बड़ेघराने में बिवाह करे शान्त क्षमावान् ब्राह्मणों का भी सेवन करे इस लोक में सुख से बैठाहुआ जपकरे और सदैव जलसे देहकी शुद्धी रक्खे पापियों को त्याग करके धर्म्मात्माओं को साथ बैठावे और मीठे बचनों से उनको प्रसन्न करे और दूसरे की प्रशंसा करके सदैव कहे कि मैं तेरा हूं इस प्रकार से पाप से निबृत्त होकर शीघ्र सबका प्रिय होता है और गुरू जिस परम धर्मको कहैं उसके करने से भी निश्चय परम कल्याण को पाता है १४॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरि त्रयोविंशतितमोऽध्यायः १२३॥

# एकसौ चौबीसका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे नरोत्तम पृथ्वीपर मनुष्य यह कहते हैं कि धर्म्म का आदिकारण सुशीलता है इस कारण मुझको बड़ा सन्देह है जो वह हमारे जानने के योग्यहोय तो आप कृपाकरके कहिये कि वह सुशीलता किस प्रकार से प्राप्त होती है और उसका क्यालक्षण है भीष्मजी बोले कि हे महाराज युधिष्ठिर प्रारब्ध और पराक्रम से प्राप्त होनेवाली तुम्हारी लक्ष्मी को और इंद्रप्रस्थ में सभाके मध्य भाइयों समेत तुम्हारे ऐश्वर्य को देखकर महादुःखी हो ईर्षासे भरेहुये दुर्य्योधन ने अपने पिता धृतराष्ट्र से प्रार्थना पूर्व्वक जो वचन कहा उसको सुनो कि अपने स्थानमें बैठेहुये धृतराष्ट्र को अकेला देखकर ईर्षायुत दुर्योधन ने सभाका सबवृत्तान्त जब सुनाया उसको सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा कि हे बेटा क्यों दुःखी होता है अपना मनोरथ कह फिर मैं उसका योग्य उत्तरदूंगा हे शत्रुओं के बिजय करनेवाले तुमने बड़े ऐश्वर्य्य को पाया सबभाई मित्र सम्बन्धी तुम्हारे आज्ञाकारी हैं और तुम बहुमूल्य वस्त्रों को देह में धारण करते हो और मांस ओदनों का भोजन करते हौ नानाप्रकार के घोड़ोंपर सवार होतेहौ तुम्हारा देह क्यों पाण्डु वर्ण और दुर्बल है दुर्योधन ने कहा कि वह दश हजार महात्मा स्नातक ब्राह्मण युधिष्ठिर के घर सुवर्ण के पात्रों में नित्य भोजन करते हैं हे तात शत्रु पाण्डवों को दिव्यफूल फलों से संयुक्त उस उत्तम सभा को और तीतर के समान चित्रित घोड़ों को और नाना प्रकार के वस्त्रालंकारों को और कुबेरके समान अमोघ धनको देखकर शोचकरता हूं धृतराष्ट्र बोले कि हे नरोत्तम बेटा जो तुम उस लक्ष्मी को चाहतेहौ या उससे अधिक चाहते हो तो तुम शीलवान् होजाओ क्योंकि शीलसे तीनोंलोक निस्सन्देह बिजयहोने के योग्य हैं लोकमें शीलवानोंको कोईवस्तु अप्राप्त नहीं होती देखो मान्धाता ने एकदिनमें जनमेजयने तीनदिनमें नाभागने सातदिन में सम्पू-

णी पृथ्वीको बिजय किया यह सब राजा शीलवान् और दयायुक्त थे इस हेतु से उनके गुणसे मोललीहुई के समान आपसे आप पृथ्वी प्राप्त हुई दुर्य्योधन ने कहा कि हे पिता मैं सुनाचाहताहूं कि वह शील किसप्रकारसे प्राप्तहोताहै जिसकेद्वारा उनराजालोगोंको शीघ्रतासे पृथ्वी प्राप्तहुई धृतराष्ट्रबोले कि हे दुर्योधनपुत्र मैं इस स्थानपर एकप्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसको प्राचीन समयमें शीलयुक्तहोकर नारदजीने वर्णनकिया और प्रह्लाददैत्य ने शीलवान्होकर महात्मा इन्द्रकाराज्य छीनलिया और तीनोंलोकोंको स्वाधीन किया तब इन्द्रने हाथ जोड़कर बृहस्पतिजीसे कहाकि मैं कल्याणको जानना चाहताहूं तब बृहस्पतिजीने मोक्ष सम्बन्धी महाउत्तम ज्ञानउस देवराजइन्द्र को सुनाया और कहाकि इतनाही कल्याण है इंद्रने फिरपूछा कि इससे अधिकभी कोई ज्ञानहोताहै बृहस्पतिजीबोले कि हेतात महात्माभार्गव शुक्रजी काज्ञान अधिकहै तू वहांज्ञानको प्राप्तकर तेराभला होगा तदनन्तर उसतपस्वी इंद्रने वह महाज्ञान श्रीभार्गवशुक्रजीसे प्राप्तकिया और प्रार्थना पूर्वक पूछाकि महाराज इससेअधिकभी कोई कल्याणहै तब सर्वज्ञ शुक्रजीने कहा किमहात्मा प्रह्लादकाज्ञान अधिकहै यह सुनकर इंद्रप्रसन्नहुआ और ब्राह्मणकारूप बन करप्रह्लाद से जाकर कहा कि मैं कल्याण को जानना चाहताहूं प्रह्लादने उत्तर दिया कि हेब्राह्मण मुझ तीनों लोक के राज्यवाले को अवकाश नहीं है इसहेतु से तुमको उपदेश नहीं करसक्ता फिर ब्राह्मण ने कहा कि जब आप को अवकाश हो तब सुना चाहताहूं फिर वह प्रह्लाद उस ब्रह्मवादी के ऊपर प्रसन्न हुआ और स्वीकार कर के उसने शुभकाल में ज्ञानतत्त्व को दिया ब्राह्मण ने भी अपने चित्तकी इच्छानुसार उस गुरुवृत्ती को न्यायपूर्वक प्रीति से किया उस प्रह्लाद से बहुधा इसने पूछा कि आपने तीनों लोकों का राज्य कैसेपाया वह सब मुझ से कहिये तब प्रह्लाद ने यह बचन कहा कि मैं राजाहूं इस अहंकार से वचन कभी नहीं कहताहूं नीतिशास्त्र के वक्ता ब्राह्मणोंको दानदेकर उन से वार्त्तालाप करताहूं वह बिश्वासयुक्त होकर सदैव वे मुझसे बार्त्तालाप करते हैं और शास्त्र को देते हैं और मुझ शुक्रनीतिके मार्गमें प्रवृत्त सेवा करनेवालेऔर दूसरेके गुणोंमें दोष न लगानेवाले धर्म्मात्मा क्रोधजित के चित्तको शास्त्रों से ऐसे सींचते हैं जैसे कि मक्खियां शहदको सो मैं जिह्वाग्रवर्ती विद्यावान् ब्राह्मणों के वचन रूपी रसोंका आस्वादन करनेवाला अपने सजातियों पर ऐसे आज्ञा करताहूं जैसे कि चन्द्रमा नक्षत्रोंपर करता है पृथ्वीपर यही शीलादि गुण अमृत रूप हैं यही कल्याण है और कहा कि हे ब्राह्मण मैं तेरी गुरुभक्ति से प्रसन्नहूं तेराभलाहो तू अपने अभीष्ट को मांग मैं तुझ को दूंगा तब उस ब्राह्मण ने कहा कि आपने

मेरा सब कार्य्य किया तब प्रसन्न होकर प्रह्लादने कहा कि बरको लो तब ब्राह्मण ने कहा कि हे राजा जो आप मुझसे प्रसन्न हैं और जो मेराअभीष्ट चाहतेहो तो आपका सा शील मुझमें होय यहीमेरी प्रार्थना है यह सुनकर दैत्येंद्र प्रसन्नतोहुआ परन्तु बरके देने में उसको बड़ा भयहुआ और जाना कि यह थोड़े तेजवाला नहीं है तब बिस्मित प्रह्लाद ने कहा कि ऐसाही हो और वरदेकर दुःखीहुआ और वरलेकर उस ब्राह्मण के चलेजाने पर प्रह्लादको बड़ी चिन्ताहुई और उस को निश्चय नहीं हुआ फिर उस के चिन्ता करने से छायारूप महा तेजस्वी देहधारी तेजरूपशील ने उसकी देह को त्याग किया तब प्रह्लाद ने उसमहारूप और देहधारी से पूछा कि आप कौन हैं उस ने उत्तर दिया कि मैं शीलहूं तुम से अलग होकर जाताहूं और हे राजा मैं उस उत्तम ब्राह्मण की देहमें प्रवेश करूंगा जो शिष्यता में होकर बहुत कालतक तेरेपास वर्त्तमान रहा ऐसा कहकर वहशील अन्तर्द्धान हुआ और इन्द्रकी देहमें प्रविष्टहुआ उस तेज के चले जाने के पीछे दैत्येन्द्र की देहसे वैसाही दूसरारूप और बाहर निकला उससे भी पूछा कि आप कौन हैं उसने कहा कि मैं धर्म्म हूं जहां वह उत्तम ब्राह्मण है वहांही मैं भी जाता हूं क्योंकि जहां शील है वहां मैं हूं तदनन्तर तीसरारूप उस महात्मा प्रह्लाद की देह से निकला जब उससे भी पूछा कि आप कौन हैं तब उसनेकहा कि हेअसुरेन्द्र मैं सत्यहूं मैं अब धर्म्मके पासजाताहूं इसके अनन्तर चौथा पुरुष निकला उसने भी पूछने पर कहा कि मैं ब्रतहूं जहां सत्य है वहीं मैंभी रहताहूं इसके जाने केपीछे उसकी देह से एक बड़ाशब्द प्रकटहुआ उसने भी पूछने से कहा कि मैं पराक्रमहूं जहां ब्रत है वहीं मैं भी हूं यह कहकर वहां गया जहां ब्रतथा उसके पीछे उसके देह से प्रकाश रूप देवी निकली उसने भी पूछने से कहा कि मैं लक्ष्मीहूं हे सच्चे बीर मैं आप तेरे पास आई हूं तुझसे त्याग कीहुई जातीहूं पराक्रम के पीछे चलने वाली हूं फिर तो महात्मा प्रह्लाद को महाभयहुआ और पूछा कि हे लक्ष्मी कहां जाओगी हे देवी तुम सत्यब्रती और लोक की माता हो यह ब्राह्मण कौन है मैं इसको अच्छे प्रकारसे जानना चाहताहूं लक्ष्मी बोली वह इन्द्र है उसीने आप से शिक्षा पाई है हे समर्थ तेरा तीनों लोकों का ऐश्वर्य्य उसने लेलिया और हे महाराज तुमने शीलही से तीनों लोक विजय किये थे देवराज ने उसको मूल कारण जानकर तुझ से लेलिया और हे महाज्ञानी धर्म्म, सत्य, ब्रत, पराक्रम और मैं सब शीलही को मूल कारण कहते हैं भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर लक्ष्मी समेत वह सब ऐसा कहकर चलेगये यह इतिहास सुनकर दुर्योधनने फिर अपने पितासे पूछाकि हे कौरवनन्दन मैं शील

की मुख्यताको जानना चाहताहूं और जैसे शील प्राप्त होताहै उस युक्तिको भी मुझसे कहो धृतराष्ट्र बोले कि महात्मा प्रह्लाद ने प्रथमही उसको युक्ति के साथ कहाहै उसके मिलने का ब्योरेवार वृत्तांतसुनो कि देहमन और बचनोंसे सबजीवोंकेसाथ शत्रुताकाकरना अनुग्रह और दानकरना यही सदैव शील कहाजाताहै जो युक्तिकर्म दूसरों का और अपना हितकारी न हो अथवा जिसकर्म्म से लज्जा युक्तहोनोपड़े उसको कभी न करे सब काम ऐसे करे जिससे सभामें प्रशंसापावे हेकौरवोत्तम यह शील ब्योरेवार तुझसेकहा हेराजा कदाचित् कोईमनुष्य शीलरहित होकर लक्ष्मीको पातेहैं वहबहुतकाल तक उसको नहीं भोगसक्के अर्थात् निर्मूल होती है धृतराष्ट्र बोले कि हे पुत्र जो तुम युधिष्ठिर की लक्ष्मीसेभी उत्तम लक्ष्मीको चाहतेहोतो इसकोमूलसमेत जानकर शीलवानहो भीष्मजी बोले कि इसप्रकार धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र से कहा इससे तुमभीइसको करो तदनन्तर इसके फलको पाओगे ७१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिचतुर्विंशोऽध्यायः १२४ ॥

# एकसौ पच्चीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह तुमने पुरुषकी देह में शीलको प्रधान कहा आशा और अनाशा यह दोनों कैसे हुईं इसको भी आप कहिये क्यों कि इसमहासंशय का दूर करनेवाला आपके समान कोई दूसरा नहीं है हे समर्थ तात दुर्योधनसे मुझे बड़ी आशा थी कि युद्ध वर्त्तमान होने पर बिनाही युद्धकरने के आधाराज्य देगा सब मनुष्योंको बड़ी २ आशा उत्पन्न होती हैं उनके निष्फल होने से निस्संदेह मृत्युहै सो हे राजेन्द्र उस दुरात्मा दुर्योधन ने मुझ निर्बुद्धी को निराशाकिया इसमेरी निर्बुद्धिता को देखो मैं आशाको वृक्ष युक्त पहाड़ से अथवा आकाश से भी बहुत बड़ी मा..ताहूं यद्यपि वह आशा साधारण भी है तो भी चिंता के योग्य कठिनता से विजय होनेवाली है और दुर्लभ होनेसे बिचार करताहूं कि उससे अधिक दुर्लभ क्या है ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर इसस्थानमें सुमित्र और ऋषभ के सम्पूर्ण इतिहासको तुमसे कहताहूं हय हय देशका सुमित्र नाम राजऋषि जब शिकारको गया और तीक्ष्ण बाण से किसी मृगको बेधकर उसके पीछे चला तब वह महा पराक्रमी मृग उस बाणको लेकर चलागया और राजा भी बड़े वेगसे उस मृगराज के पीछेदौड़ा तदनन्तर वह शीघ्रगामी मृगपृथ्वी के नीचे गया और एक मुहूर्तमात्र मेंही वह सममार्ग में वर्त्तमान हुआ तब वह तरुणवय कवचधारी पराक्रमी राजा नदनदी पल्वल आदि बनों को उल्लंघन करता हुआ उसके पीछेचला तब वह मृग इच्छावान राजाको बारम्बार मिल

कर फिर बड़ेवेगसे सम्मुखआताथा और बहुतसे बाणों से भिदाहुआ भी वह बनचारी मृगक्रीड़ा करताहुआ सन्मुखही आताथा इसीप्रकार वह मृगराज बारम्बार वेगवान् होकर दूरजाजाकर फिर सन्मुख आताथा तब उसशत्रुहन्ता राजाने उसके मर्मों के छेदनेवाले महाघोर तीक्ष्णधारवाले बाणोंको धनुष में लगाकर छोड़ा तदनन्तर वह मृगराज कुछ दूरपर जाकर उसके बाणमार्गको छोड़कर हँसताहुआ ठहरगया उसतीक्ष्ण प्रकाश बाणके पृथ्वीमें गिरनेसे मृग महावनमें घुसगया और राजाभी शीघ्रतासे चला १९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिपंचविंशोऽध्यायः १२५॥

# एकसौ छब्बीसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इस दौड़धूप के पीछे राजा महावनमें प्रवेश करके तपस्वियोंके आश्रमोंको प्राप्त होकर परिश्रमके कारण बैठगया तब ऋषियोंने इस क्षुधापिपासा युक्त धनुषधारी राजाको देखकर बुद्धिके अनुसार मिलकर उसका पूजनकिया तबराजाने उनके आतिथ्य पूजनको स्वीकारकरके तपकी उत्तम वृद्धिको सब तपस्वियोंसे पूछा तब उन तपोधन ऋषियोंने उसके वचन का उत्तर देकर उसके प्रयोजनकोपूछा कि हे कल्याण रूप राजा किस सुखके लिये खड्ग धनुष बाणधारणकिये पदातीहोकर इसवनमें आयेहो इसकाकारण कहो कि तुम कहांसेआये और किसकुलमें उत्पन्नहुये और क्या तुम्हारा नामहै यह सब हमसे कहो तब उसने अपनी दौड़धूपका कारण उन सबब्राह्मणोंसे वर्णनकिया कि मैं मित्रोंका प्रसन्नकरनेवाला हयहय देशियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ बाणोंसे हजारों मृगयूथों को मारता घूमताहूं मन्त्री और रानी समेत मैं बड़ीसेना समेत था मेरेबाणसे भिदाहुआ भालसंयुक्त देहवालामृग जाता है मैं दैव इच्छासे उस भागनेवाले मृगके पीछे इसबनमें आगयाहूं इसी से शोभा और आशासे रहित परिश्रमसे पीड़ित आपके सन्मुख वर्त्तमानहूं इस से कठिन दूसराकौन दुःखहोगा जो परिश्रमसे पीड़ामान आशारहित राज्य चिह्नों के बिना मैं आपलोगों के आश्रम में आया हेतपोधन ऋषियो राज्यके चिह्न और पुरकात्याग उसकाठिन दुःखको ऐसानहीं उत्पन्न करता है जैसे कि मेरी नष्ट हुई आशा इतनी बड़ीहै कि बड़ापहाड़ हिमालय वा महासमुद्र और आकाश भी उसके एक भाग को नहीं पासक्ता इसीप्रकार हे महाऋ-षियो मैंने भी आशाके अंतको नहींपाया आपसरीखे तपोधन ऋषि सब जानते हैं आपबड़े महाभाग हैं इसकारण अपने सन्देहको पूछताहूं कि जो मनुष्य आशावान् होकर संतुष्टताको प्राप्तहुआ होय ऐसा लोक में प्रतिष्ठा के साथ कौनबड़ाहै उसको मूल समेत सुना चाहताहूं इस संसारमें दुर्लभ

पदार्थ क्याहै जो यह बातें सदैव गुप्तरखने के योग्य नहीं हैं तो शीघ्रकहिये बिलम्ब न करिये और उत्तम ऋषियों में गुप्तरखनेकेयोग्य वचनोंको तुमसे नहीं सुना चाहताहूं और जो इसमें किसीप्रकारका आपके तपमें विघ्नहोतो मौनता प्राप्तकरो या कहना है तो कहो क्योंकि मैं समर्थको भी मूलसमेत सुना चाहताहूं उसको भी आप वर्णन करें १६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिषड्विंशोऽध्यायः १२६ ॥

# एकसौ सत्ताईसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उन ऋषियोंमें से मन्दमुसक्यानकरते महाब्रह्मर्षि ऋषभ-देवजी बोले कि हे नृपोत्तम मैं तीर्थाटन करताहुआ श्रीनारायणके दिव्यआ-श्रम में पहुंचा जहां क्रीड़ाके योग्य बद्री और वैहायस नामहृद है वहांहीं अस्वशिरा सनातन वेदोंको पढ़ते हैं वहां मैं प्रथमही हृदमें जाकर देवपितृ तर्पणकरके पीछे आश्रमको गया और नरनारायणके पासही एक स्थानमें निवास किया वहां चीर मृगचर्मको धारणकिये महादुर्बल तनु नाम ऋषिको आतेहुये देखा तो हे राजा वह दूसरे मनुष्योंकी देहका अष्टमांशथा मैंने ऐसा दुर्बल देहवाला भी कोई नहींदेखा कि जिसका देहकनिष्ट उँगली के समान पतलाथा वैसेही हाथ पैर मुख भुजा और शिरके बाल अपूर्व देखनेके योग्य थे और उसी देहके सदृश शिर आंख कानभी थे और उसके सब अंग और वचनभी देहकेही अनुरूपथे मैं उस दुर्बलदेहको देखकर भयभीत होकर दुःखी हुआ और उसके दोनों चरणों में प्रणामकरके हाथजोड़के सन्मुख हुआ और अपनेनाम गोत्र पिताको कहकर उसके बतायेहुये एक आसनपर बैठग-या फिर उस धर्म्मध्वज तनुने ऋषियोंके मध्यमें उन कथाओंको कहा जोकि धर्म्मअर्थ से संयुक्तथीं उसकी कथाही के समय में एक कमललोचन नाम राजा सेना और स्त्रीसमेत शीघ्रगामी घोड़ोंकी सवारी से आनपहुंचा वह अति दुःखी यशस्वी श्रीमान्वीर देवमणिका पुत्रवनमें गुप्तहोनेवाले अपने बेटे भूरिदेवमणि को स्मरणकरता हुआ कि उस पुत्र को यहां देखूंगा वहां देखूंगा इस प्रकार आशामें बँधाहुआ यह वचन कहताहुआ इसवनमें घूमताथा कि निश्चय इसी महावन में मेराधार्मिक बड़ा वेद्य अकेला गुप्तहुआ मुझको दृष्ट आना कठिन है यही बारम्बार कहताथा कि उसका देखना मुझको कठिन है औरमेरी आशा बड़ीहै उससे जुदाहोकर मैंमरनेकी इच्छा करताहूं यह कहता हुआ आपहुंचा और इसबातको सुन कर मुनियों में श्रेष्ठतनुमुनि एकमुहूर्त्त मात्रध्यान में मग्नहुये उन ध्यानकरनेवाले ऋषिको देखकर महा दुःखीमन से धीरे २ बारंवार इस बचन को राजाने कहा कि हे देवऋषि कठिनतासे

विजयहोनेवाला कौन है और आशासे वड़ाकौन है यह सब आप प्रकटकर के मुझसे कहिये मुनिबोले कि पहिले समय में उसतेरे पुत्रभूरिदेव मुनि ने वाल्यवुद्धिमें नियतहोकर अपनी अभाग्यतासे किसीसमर्थ ऋषिका अपमान कियाथा अर्थात् सुवर्ण के कलश और वल्कलके वस्त्रोंको देना कहकर उस राजकुमारने अपमान करके फिर उनको लाकर नहींदिये और हे राजा जैसे तुम थकगये हो उसीप्रकार थकाहुआ वीरदेवमणि भी पीड़ामानहुआथा यह वचन सुनकर वह राजा उसलोक पूजित ऋषिको दण्डवत् करके दुःखी और निराशाहुआ तदनन्तर उस महर्षिने अर्घ्यपाद्य को लेकर वनसे सम्बंध रखने वाली वुद्धिके अनुसार उससवको राजाकी भेट किया तिसपीछे वह सवमुनि उसराजा को घेरकर ऐसे वैठगये जैसे कि सप्तऋषि ध्रुवजीको घेरते हैं और राजासे सववृत्तांत पूछा २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मे शतोपरिसप्तविंशतितमोऽध्यायः १२७ ॥

# एकसौ अट्ठाईसका अध्याय ॥

राजा वोले कि मैं वीरदेवमन नामराजा सब दिशाओंमें प्रसिद्धहूं अपने बेटेभूरिदेवमन के खोजने को वनमें आयाहूं हे ब्राह्मणोत्तम वह मेरा इकलौता बालक लड़का दृष्ट नहींआता ऋषभ मुनि वोले कि यह राजाका वचन सुनकर उसतनुऋषिने उत्तर नहींदिया मौनहोकर शिरझुकालिया हे राजेन्द्र पहले समय में उसराजाने उन तनुऋषिका वड़ा अपमान कियाथा फिरवह अपमान वड़े तपसे दूर हुआ अर्थात् यह संकल्प किया कि किसी राजाका अथवा दूसरे वर्णोंका भी दाननहीं लूंगा और यह वात ठहराके कि वर्त्तमान होने वाली आशा अज्ञान मनुष्य को चलायमान करदेती है मैं उस आशा को दूरकरूंगा यह दृढ़करलिया तदनन्तर वीरदेवमन ने फिर उस महात्मा ऋषिसे पूछा कि आशामें क्या वात हीन होजाती है और इसलोक में क्या दुःप्राप्त है आप धर्म्म अर्थ के दृष्टा हैं इससे आप कृपा करके कहिये तव महात्मा तनुऋषि वह सब वृत्तान्त राजा को स्मरण कराके वोले कि हे राजेन्द्र आशा की कृशता के समान दूसरी कोई वस्तुनहीं है मैंने उस आशा की कठिनता को राजाओं से कहा है राजाने कहा कि हे ब्राह्मण मैं आपके वचन से आशा की कृशता और अकृशता का होना जानता हूं परन्तु उसका दुर्लभ होना वेद वचन के समान है अर्थात् आशाने जिसको जीता वही कृश है और जिसको नहीं जीता वही पुष्ट है हे महाज्ञानी मेरे चित्त में वड़ा सन्देह उत्पन्न हुआहै उसको आपदूर करने को समर्थ हैं तुमसे अधिक कौन कृशांगहै इसका कहना आप उचित समझें तो कहिये कृशतनुवोले

यह चाहे दुर्लभ है या नहीं है परन्तुजो इच्छावान् धैर्य्यता को पावे वहीबड़ा दुर्लभ है और जो इच्छावान् का अपमान नहीं करता वह महादुर्लभ है जो समर्थ और योग्यता के अनुसार सत्कार करके अभीष्ट सिद्धनहीं करता और जिसकी आशा सबजीवों में लगीहुई है वह मुझ से अधिक दुर्बल है उपकार को भूलनेवाले निर्दयी और सुस्त आदमियों में और शत्रुता करनेवाले मनुष्यों में जो आशा वर्त्तमान है वह मुझ से अधिक दुर्बल है जो एक पुत्र वाला पिता बेटेके गुप्त होने या मरनेपर उसके वृत्तान्त को नहीं जानता उसकी आशा मुझ से भी अधिक दुर्बल है बेटेके उत्पन्न होने के समय स्त्रियोंकी और पुरुषोंकी आशा और उसीप्रकार धनीलोगोंकी जो आशाहै वह मुझसे भी न्यूनहै तरुणाई में होकर उस तरुणाई से सम्बन्ध रखनेवाली कथाओंको सुनकर विवाहके चाहनेवालोंको जो कन्याओंकी आशाहै वह मुझसे अधिक दुर्बलहै तबवह राजाने अपनी रानी समेत ऋषिकेपास जाकर दोनों चरण छुये और कहा कि आपको प्रसन्न करके पुत्रसे मिलना चाहता हूं हे ब्राह्मणोत्तम आपने जो कहा वह सब सत्य है इसमें संदेहनहीं तब तनुऋषि ने हँसकर अपने शास्त्रबल से शीघ्रही उसके पुत्र को बुलादिया और राजाको अपराध युक्त कर अपने को धर्मरूपदिखाके बनकी यात्रा की हेराजा मैंने प्रत्यक्ष देखा और उनके इन वचनों को सुना इससे तुमभी इसमहानिकृष्ट आशा को त्यागकरो भीष्मजी बोले कि हे राजा तब महात्मा ऋषभ के ऐसे वचन सुन कर राजा सुमित्रने महा दुर्बल आशाको दूरकिया हे कुन्तीपुत्र तुमभी इस मेरेवचन को सुनकर हिमालयपर्वतके समान दृढ़हो मुझ कष्टयुक्त से तुम्हीं प्रश्न करनेवाले और सुनने वाले हो इससे मेरी बातें सुनकर दुःखी होने के योग्य नहीं हो २७॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिअष्टाविंशतितमोऽध्यायः १२८॥

# एकसौ उन्तीसका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह आपकी वार्त्तालापों से अभी मेरी तृप्ति नहीं होतीहै जैसे कि अमृत पानसे और उसी प्रकारसे ध्यान लगारहाहूं जैसे समाधिमें पुरुष ध्यानावस्थित होताहै इसकारण हे पितामह पहले उसी धर्मको कहिये जो आपके वचनरूपी अमृतपान से पूर्णताको नहीं पहुंचता है भीष्मजी बोले कि इसस्थान पर मैं प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें गौतमऋषि और यमराज का प्रश्नोत्तरहै गौतमजीके महाआश्रम पारियात्रनाम पर्वतमें जितने दिवस गौतमजीने तपस्याकी उसको मुझ से सुनो कि साठ सहस्रवर्ष पर्यंत महाउत्तम तपस्या की उस तपको देखकर लोकपाल यमराज

आदि देवता मुनि के पासगये तबवह महामुनि यमराजजी को देखकर सावधान होकर हाथ जोड़कर सन्मुख बैठगये धर्म्मराजने उनसे सुन्दर वचन कहकर अपनी प्रसन्नता दिखाई और कहा कि हम तुम्हारा क्या मनोरथ करें गौतमजी ने कहा कि कौनकर्म करके माता पितासे अऋण होय और पुरुष किसप्रकार से दुःप्राप्य लोकोंको पाता है यमराज बोले कि तपसे पवित्र देह और सत्यधर्म में प्रवृत्त पुरुषको प्रतिदिन नियमके साथ माता पिताका पूजन करना चाहिये और पूर्ण दक्षिणा वाले बहुत से अश्वमेध यज्ञोंसे पूजन करना चाहिये इस कर्मसे पुरुषको अपूर्व लोकोंकी प्राप्ति होतीहै ११ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिराजधर्मेशतोपरिएकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः १२९ ॥

## एकसौ तीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशी पितामह मित्रों से रहित बहुत शत्रु रखने वाले और धनागार से रहित बिना सेनावाले को कौन गतिहै दुष्टमंत्री को साथ रखने और सबप्रकार हत राज्य और सलाहकारों से दिव्य उत्तमगति को न देखनेवाले दूसरेके देशपर चढ़ाई करने वाले शत्रुके मर्दन करनेवाले पराक्रमके साथ युद्धमें प्रवृत्त, निर्बल और अरक्षित देशवाले और देशकाल के जानने वाले राजाकी कौनगति है और जहांदेशको अधिक पीड़ा देनेसे साम और भेद भी प्राप्तनहो वहां क्या धनसे प्राप्तहोनेवाला जीवन या शुभकर्म अथवा अर्थअनरीतिसे भी प्राप्त होनेके योग्यहै भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर तुमने बड़े गुप्तधर्म को पूछा बिना तुम्हारे पूछे इस धर्मको कभी इच्छासे नहीं कहना चाहताहूं हे राजा शास्त्रके वचनोंसे सूक्ष्मधर्म और बुद्धिसे सुनकर सदाचारोंको करके किसी २ स्थानमें कोई साधु होताहै बुद्धिरूपकर्म्मसे धनी होताहै या नहीं होताहै इसी प्रकारका यह प्रश्नहै अपनी बुद्धिसे निश्चय करनेके योग्यहै हे राजा राज्यके कामोंके जारी करनेके निमित्त आप राजाओंके आपद्धर्ममें बहुतसी युक्तियों को सुनो मैं धर्म के कारण ऐसे धर्म्मको प्राप्तनहीं किया चाहताहूं जो युक्ति प्रजाके दुःखसे स्वीकार की जातीहै और पीछेमरण समानहै अर्थात् आपत्ति कालमेंभी प्रजाकी पीड़ासे उत्पन्न होनेवाली अग्नि राजाके प्राण सेना और धनको नष्ट करके लौटतीहै सबके मतोंका निश्चय पाकर पुरुष जैसा जैसा शास्त्रको देखताहै वैसेही वैसा ज्ञाता होताहै फिर विज्ञानको चाहता है अज्ञानतासे पुरुषकी अनुद्योगता प्रकट होती है और अच्छी विज्ञतासे भी उद्योग सिद्धहोता है वह युक्ति बड़े ऐश्वर्य्यकी उत्पन्न करनेवाली है तू इस वचन को संदेह और निन्दा रहित होकर सुन राजाका खजाना खाली होनेसे सेनाका अभाव उत्पन्न होताहै इससे राजा धनको ऐसे

पैदाकरे जैसे कि झिरनों से जल इकट्ठा होता है और समयपाकर प्रजाकापोषण करे यही सनातन धर्म्म है यह धर्म्मरूप युक्तिपहिले लोगोंने की है और हे राजा समर्थों का दूसरा धर्म है और आपत्ति कालों में दूसरे धर्म्म हैं बिनाखजाने के भी धर्म्म प्राप्त होता है परंतु धर्म्म से आजीविका बड़ीहै निर्बलराजा धर्मको पाकर न्यायमें प्रवृत्त जीविकाको नहींपाताहै इसकारण से सेना और पराक्रम का प्राप्त होना केवल धर्म्मही से नहींहोता है इस निमित्त आपत्ति समय में अधर्म्म भी धर्म्म लक्षण सुना जाता है और उसधर्म्म में अधर्म उत्पन्न होता है यह पण्डितों का कथन है उस आपत्तिकाल के पीछे क्षत्री को क्याकरना चाहिये जिससे कि वह धर्म्मग्लानिको पाकर शत्रुके बशीभूत न हो ऐसे स्थान में वह कर्म्म करना कहा है जिससे कि अपनी कोई हानि न हो किसी पराक्रम से अपने या दूसरे के धर्म्म को नष्ट न करे किन्तु अनेक युक्तियों से अपने को आपत्ति से पार करना चाहिये वह यह है कि उससमय धर्म्म के ज्ञाता पुरुषों का निश्चय धर्म्म की प्रवीणता है और भुजबल से उद्योग करना क्षत्री में बुद्धिमत्ता गिनी जाती है क्षत्रीको अपनी आजीविका के रोकने पर तपस्वी और ब्राह्मणों के बिशेष और किसका धन लेना योग्य है और किसका अयोग्य है जैसे कि पीड़ित होकर ब्राह्मण यज्ञ के अयोग्य मनुष्यों को यज्ञ करावे और अभोज्य अन्नोंको भोजनकर ऐसीही यह भी कर्म्म है इस में सन्देह न समझो पीड़ित पुरुष का कौन द्वार है और शास्त्र के बिरोधियों का कौन मार्ग है बुद्धिमान् जब पीड़ित होता है तब दुर्द्धर होकर भागता है जिस राजा के खजाने और सेना की ग्लानि से सब लोककी नष्टता है उसकी कोई भिक्षा नहीं नियत की गई और न बैश्यशूद्र की आजीविका उसको नियत हुई सजातियों से चाहना न करने वाले राजाकी वहजीविका है जो कि अपने धर्म्म के योग्य है पहिले कल्पशास्त्र के जाननेवाले राजाकी जीविका आपत्तिकाल में गौणकल्पसे योग्य है आपत्तिवान्को धर्म्म के बिपरीत जीवन करना यह बात आजीविका के नष्ट होने से ब्राह्मणों में भी देखी गई है तो किसकारण से क्षत्री के करने में सन्देह है इसप्रकार सदैव निश्चय कियागया वहक्षत्री भी अच्छे पुरुषों से बलके द्वारा धनको लेनेसे किसीप्रकारकी पीड़ाको न पावे क्षत्रीको प्रजाका रक्षक और पीड़ा देनेवाला कहा है इसीकारण अच्छे प्रकार से रक्षा करनेवाले क्षत्री को धनलेना चाहिये हे राजा बिनापीड़ा के किसीकी आजीविका नहीं है यहां तक कि बन में वर्त्तमान घूमने वाले अकेले मुनिकी भी जीविका बिनापीड़ाके नहीं है हे कौरवोत्तम क्षत्री को प्रारब्ध में ही लिखीहुई जीविका पर संतोष करके

रहनायोग्य नहीं है तो रक्षा करने वाले राजा को तो सन्तोषसे रहना सदैव अयोग्य है आपत्ति में राजा को और देशको परस्पर में अन्योन्यरक्षा करनी चाहिये यह सनातन धर्म्म है जैसे कि राजा आपत्तिकाल में देश की द्रव्य और औषधियों आदिसे रक्षा करता है उसीप्रकार कोई ब्यसन में राजा कीभी रक्षा देश को करनी अवश्य है खजाना, दण्ड, सेना, मित्र, और देशकी अन्य बस्तुओं के संचय को क्षुधा से संयुक्त राजा दूरनहीं करे बीज को तकावीधनके द्वारा प्राप्तकरना चाहिये यह धर्म्मज्ञों का कथन है इसस्थान पर बड़ीमायावाले शम्बर दैत्यका यह शास्त्र कहागया है जिसका देशआजीविका न पानेसे पीड़ापाता है अथवा जो राजा थोड़े मनुष्यों समेत दूसरे के देशसे जीवन करनेवाला है उसराजाके जीवनको धिक्कार है खजाना और सेनाराजाका मूल है और केवल खजाना सेनाकी जड़ है और धर्म प्रजाओं की जड़ है इसहेतु से सबधर्म्मों का मूल खजाना है यहां दूसरोंको पीड़ा न देकर खजानेकी बृद्धि सम्भव नहीं फिरसेना कहांसे होगी वहराजा उसके लिये प्रजाको पीड़ा देखकर दोषका भागी नहीं है यज्ञकर्म्मों में यज्ञके लिये अकार्य्य भी कियाजाता है इसकारण राजा दोष के योग्य नहीं है आपत्तिकाल में दूसरा कर्म्म अर्थात् प्रजाको पीड़ादेना धनके लिये होता है और पीड़ा न देना बिपरीत अर्थात् अनर्थ का हेतु होता है और हाथीआदिका पोषण धन के नष्ट होने के निमित्त होता है यह सब धनकेही कारण होते हैं इस प्रकार शास्त्रज्ञ मनुष्य बुद्धिके अनुसार निश्चय को बिचारता कर्म्मकर्ता होय जैसे कि पशु आदि यज्ञके कारण होते हैं और यज्ञ धनका संस्कार है इस से पशुयज्ञ और संस्कार यह तीनों मोक्षके निमित्त होते हैं और यज्ञके साधनकहे जाते हैं इसीप्रकार दण्डखजाने के लिये और खजाना सेना के निमित्त और सेना शत्रुके विजय के लिये और तीनों मिले हुये देशकी बृद्धि के लिये हैं इसस्थानपर धर्म्मतत्त्व के प्रकट करनेवाले दृष्टान्त को कहताहूं, यहां जो शत्रु हैं वह यज्ञस्तम्भ को काटते हैं और कितनेही सामन्तलोग वृक्षोंको भी अवश्यकाटते हैं वह वृक्षभी गिरते समय अपने नीचेकी बनस्पतियों को मारते हैं इसीप्रकार जो मनुष्य बड़ेखजाने के शत्रु हैं उनको भी बिनामारे सिद्धी नहीं प्राप्तहोती धनके ही द्वारा दोनों लोक और सत्यता आदि धर्म्म बचन को बिजय करता है और बिनाधन के मृतक समान है इससे हेयुधिष्ठिर यज्ञके निमित्त अनेक युक्तियों से धनको प्राप्तकरे इसप्रकार से कार्य्य कारण दोनों में दोष नहीं होता है हे राजा यह धनकी प्राप्ति और त्याग दोनों एकमनुष्यमें कभी किसी प्रकारसे भी सिद्धीको कहीं प्राप्तहोते धनवान् लोगों को बनमें कभी कोई नहीं देखता

अर्थात् जो धनीलोग हैं वह त्यागीनहीं होते हैं और जोत्यागीहैं वह धनीनहीं होते इसपृथ्वीपर जो कुछ यहधन दृष्ट पड़ता है उसको मनुष्य चाहते हैं कि यह मेरा होय इससे हे राजा राजधर्म्मसे अधिक कोई धर्म्म नहीं है वहीराजाओंका धर्म्मकहागया और आपत्ति के लिये इसके विपरीत कहा गया कोई दान और कर्म्म से और तपस्वी तपसे कोई बुद्धिकी चतुराई से धनके समूह को पाते हैं निर्द्धन को निर्बल और धनवान् को पराक्रमी कहते हैं तात्पर्य्य यह है कि धनवान् को सब वस्तुप्राप्त होसक्ती हैं खजाना रखनेवाला सब आपत्तियों से तरसक्ता है जैसे धन से धर्म्म अर्थ काम और परलोककी प्राप्तिहोती है वैसेही इस लोक के आनन्द प्राप्त होते हैं इस निमित्तउसधन को धर्म्म सेही प्राप्तकरे अधर्म्म से कभी न करे ५० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशतसाहस्र्यांवैयासिक्यांशांतिपर्वणिराजधर्म्मे शतोपरित्रिंशत्तमोऽध्यायः १३० ॥

इतिशान्तिपर्वराजधर्मसमाप्तः ॥

---

# अथमहाभारत भाषा ॥

---

## शान्तिपर्व ॥

## आपद्धर्म्म ॥

## पहिला अध्याय ॥

श्रीगणेशजी और नरोत्तम श्रीनारायण जी और सरस्वती देवी और व्यासजी को नमस्कार करके फिर जयको वर्णन करते हैं पाहिले अध्याय में यह वर्णन किया है कि सेनाकी चढ़ाई करनेवाला राजा आपत्ति काल में प्रजा को पीड़ित करके भी धन से खजाने को पूरा करके आपत्ति से निवृत्तहो अब वर्त्तमान राजा आपत्ति के आनेपर क्या करे इस बिषय में युधिष्ठिर ने प्रश्नकिया कि अनाज आदि के गोदाम और खजाने से रहित दीर्घसूत्री बान्धवों पर दयावान् अर्थात् राज्य और जिसकामंत्र प्रकटहो गयाहो और राज्य करने में शंका युक्त गढ़से बाहर निकलकर युद्धकरने असमर्थ जिसके ग्रामदेश शत्रुओंने परस्पर में बिभाग करलिये और देशों शत्रुओं ने परस्पर में विभाग करलियाहो और धनके समूहों से खाली मित्रों से भिन्न और सबमंत्रियों से रहित शत्रुकी सेना से घिराहुआ पराक्रमी शत्रु से व्याकुल चित्त राजाका कौनसा कर्म शेषरहजाता है उसको कहिये—भीष्मजी बोले कि जो धर्म्म अर्थमें कुशल चढ़ाई करनेवाला राजा विजयकी इच्छा करनेवालाहोय तो शीघ्रही उससे सन्धिकरे और अपने प्राचीन पुरुषोंके ग्राम और नगरोंको शत्रुने विजयकर लियेहों उनको सामनी छुड़ावे और जो पराक्रमी पापका निश्चयकरने वाला अधर्म्मसे बिजय

करनेकी इच्छा करताहो उससे भी अपने थोड़े बहुत ग्रामदेकर सन्धिकरे अथवा राजधानीको त्यागकर धनकेद्वारा आपत्तिसे उद्धारहो फिर जीवता हुआ उन राजगुणोंसे संयुक्त धनोंको इकट्ठाकरे जो आपत्ति कि धन और सेनाके त्यागनेसे दूरहोती जानपड़े तो अर्थधर्मका जाननेवाला कौन पुरुष धनके सिवाय अपनेको त्यागकरे अर्थात् ऐसे समय में सेना और धनके त्यागनेसे सब अपनी २ रक्षाको उचित जानतेहैं महलों को भगाना चाहिये नहीं तो शत्रुके आधीन होनेवाले धनमें क्या प्रीतिहै समर्थ होकर आप उसके स्वाधीन न होय युधिष्ठिर बोले कि मंत्री आदि के क्रोध युक्त होनेसे और देशगढ़ आदि शत्रुकेआधीन होनेसे और खजाने के नष्टहोने और गुप्तमंत्रोंके प्रकटहोने में कौनकर्म शेष रहता है–भीष्मजी बोले कि मंत्री आदि के धर्म्मज्ञ होनेपर सन्धिकी शीघ्रही इच्छाकरे अथवा शीघ्रही महाबीरता प्रकटकरे जबऐसा होताहै तब शत्रुकाहटाना शीघ्रहीहोताहै अथवा धर्म्मयुद्ध कर मरजानेमें परलोककी प्राप्तिहोती है सबपृथ्वीका रक्षक राजा ऐसी थोड़ी सेना से भी पृथ्वीको बिजय करता है जो प्रीतिमान् स्नेहयुक्त और प्रसन्न चित्तहो मरकर स्वर्गको जाय अथवा मारकर पृथ्वीको बिजय करे वहयुद्ध में प्राणों को अच्छेप्रकार त्यागकरके इन्द्रके लोकको प्राप्त होताहै मृदुता के गुण प्राप्त करने के निमित्त लोकप्रसिद्ध शास्त्रको बुद्धिसे प्रकटकरके विश्वास से बिश्वासको पाकर मृदुता करे और युक्तिसे बिश्वासितहो जो मंत्रियोंके क्रोधसे सामनीति होना असंभवहो अर्थात् मेलहोना कठिनहो तब मिल मिला कर किले से भागनेकी इच्छाकरे और थोड़ेदिन देशको छोड़कर उत्तम सलाहके द्वारा फिर पराक्रमको करे १४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्म्मेप्रथमोऽध्यायः१ ॥

## दूसरा अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह सबकेउपकारी उत्तमराजधर्म्मके नष्टहोने और सब पृथ्वीकी जीविका चोरोंके आधीन होजानेपर और उस नीच समय के आनेमें ब्राह्मण स्नेहसे अपने पुत्र पौत्रादि को नहीं त्यागकरे उसदशामें कैसे निर्बाहकरे भीष्मजी बोले कि उसदशामें बिज्ञान के पराक्रममें नियत होकर जीवनकरे क्योंकि यह सबसंसारी बस्तु साधुओं केलिये हैं असाधुओं के निमित्त कुछ भी नहीं है जो पुरुष अपनेको सेतुबनाकर नीचों से धनलेकर सत्पुरुषों को देताहै वही आपद्धर्म का जाननेवाला है हे राजा संसार की रक्षा करनेवालेका धनहै इसकारण यहशोचकर कि यह मेराही है अपने लिये अनिच्छा करके पालन धर्मको करता बिना दियेहुये धनको भी लेले

जो पूरीबुद्धिके बलसेपवित्र मनुष्य निन्दित कर्म्मोंमें भी प्रवृत्तहोताहै वहजी-
विकाकी पूर्णबुद्धि रखनेवाला और विद्वान्है उसकी निन्दा कौनकरसक्ताहै
जिनकी आजीविका बलसे उत्पन्न होनेवाली है उन्होंको दूमरी आजीविका
श्रेष्ठनहीं मालूमहोतीहै हेयुधिष्ठिर बलवान् मनुष्य अपनेबलसे सन्मुख होजाते
हैं और यहशास्त्र आपद्धर्म के योग्य वर्त्तमानहै इसको इसप्रकारसे काममेंलावे
और शास्त्रोंका ज्ञाता बुद्धिमान् पुरुषभी इससे उत्तम शास्त्रमें कुशल होताहै
अर्थात् जोअपने वा शत्रुके देशी मनुष्य दण्डके योग्य हैं उनसे धनकोलेना
चाहिये राजा आपत्तिकाल में शुभकर्मी ऋत्विज् पुरोहित आचार्यआदि पूज्य
ब्राह्मणों को जुर्माना आदिके सिवाय मारे नहीं क्योंकि उनके मारनेमें दोषी
होता है यह लोक मर्यादाहै और सनातन नेत्र हैं इसकारण इसमर्यादा का
माननेवाला उसको देशों में फिरावे चाहे वह उत्तमहो या अनुत्तमहो बहुतसे
ग्रामवासी परस्पर में क्रोध युक्त होकर कहैं राजा उनकी न तो वचनों से
अप्रतिष्ठा करे और न मारे गुरू आदिकी निन्दा न करनी चाहिये और न
किसी दशामें सुननी चाहिये ऐसे स्थान में दोनोंकान बन्दकरने योग्यहैं यह
निन्दा करना नीचों काही स्वभाव है और सन्त लोग सत्पुरुषों में गुणोंके ही
कहनेवाले होते हैं जैसे कि सुन्दर बोलने वाले सीधे सुशिक्षित अच्छे लो-
गों को सवार करने वाले दो बैल धुरको उठाकर ले चलते हैं उसी प्रकार
राजा भी कर्म्म करे जिस जिस रीति से उसके बहुत से सहायक होते हैं
उसी प्रकार दूसरे मनुष्य यहमानते हैं कि धर्म्म रूप आचार बड़ा है जो
दूसरे पुरुष शंख के लेख को प्रमाण मानते हैं वह इसप्रकार से चाहते हैं कि
मित्रता और लोभसेभी ऐसे वचन नहीं कहना चाहिये इसस्थानपर धर्म्मके
विपरीत कर्म्म करने वाले गुरू आदिके दण्डको आर्ष अर्थात् ऋषियों का
वचन कहते हैं परन्तु ऐसे प्रकारका कोई प्रमाण दृष्ट नहींआता तात्पर्य यह
है कि गुरू आदि कभी दण्डके योग्य नहीं हैं देवता धर्म्म के विपरीत कर्मी
नीच मनुष्यको दण्ड देते हैं इसी कारण वह राजा किसी मिसके द्वारा गुरू
आदि से धनको लेकर नष्टताको प्राप्तहोता है तात्पर्ययहहै कि जब देव गुरू
आदिको दण्ड देताहै उसदशा में राजा उस दण्ड देने से अलग होजाय
और जोवेदोक्त धर्म्म सबओरसे प्रतिष्ठाके योग्य औरसत्पुरुषोंसे सेवितस्मार्त्त
धर्म और सदैवसे प्राप्तहोनेवाले कुल देवता आदिसे स्वीकार कियेहुये धर्म
और इनतीनों हेतुओंके न होनेपरभी अपने हृदयका अभीष्ट जो धर्म्महै उस
को निश्चय करताहै तब ऋत्विज् आदि के दण्डदेने में उसका सम्मत नहीं
होताहै जो चारों गुणों से संयुक्त धर्मको कहे वह धर्मका जाननेवाला है स-
र्प के समान धर्मका खोज ढूंढना कठिनहै जिसप्रकार घायल मृगके चरण

चिह्नपाकर उसके स्थानको पाताहै और रुधिरकी आधिक्यतासे उसको देखताहै उसीप्रकार धर्म्मकोदेखो और युक्तिसे ऐसे दूसरोंको प्राप्तकरावे जैसे कि सत्पुरुषोंसे उपदेश पायेहुये पुरुषको इसरीतिसे धर्ममार्ग पर चलना योग्यहै और यही राजऋषियोंका चलन है सो हे युधिष्ठिर तुम भी इसी प्रकार से चलो २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिआपद्धर्म्मेद्वितीयोऽध्यायः २ ॥

# तीसरा अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हेयुधिष्ठिर अपने देश और दूसरेके देशसेधनको उत्पन्न करे क्योंकि धनसेही धर्म्म होता है और राज्यकीभी दृढ़ताहोतीहै इस हेतु से धनको इकट्ठाकरे और सत्कार पूर्व्वक उसकी सबप्रकारसे रक्षाकरे और फिर अच्छे २ कामों में खर्चकरे यह सनातन धर्म्म है पवित्र शौच क्रियावाले अथवा निर्दय मनुष्य से धन कभी इकट्ठा नहीं होसक्ता साधारण स्थान पर नियतहोकर धनको बटोरे बिनापराक्रम धननहीं और धनकेबिना सेना नहीं और बिना सेना के राज्य कहां और राज्यके बिना राजलक्ष्मी कहां होसक्ती है बड़े आचारवान् पुरुषके पास लक्ष्मीका न होना मरणके समानहै इसकारण राजा खजाना सेना और मित्रोंकी वृद्धि अच्छे प्रकार से करे खजाने से रहित राजाका अपमान होता है और उसके मनुष्य थोड़ेमासिक से प्रसन्न नहींहोकर इसके कामको भी उत्साह पूर्व्वक नहीं करते हैं लक्ष्मी के कारण राजाबड़ी सत्क्रिया को पाता है वह इसके पापोंको ऐसे ढकतीहै जैसे कि स्त्री के गुप्तअंगोंको बस्त्र आच्छादन करता है पहिले समयके अपमान कियेहुये मनुष्य इसके ऐश्वर्य को देखकर दुःखीहोतेहैं और कुत्तेआदिके समान इसकेमारनेको बराबर बैठतेहैं हे राजा ऐसेराजा को सुख कहां होसक्ता है उद्योगकरे सुस्ती न करे क्योंकि युक्तिपूर्व्वक उद्योगही करना मनुष्यका धर्महै और असमर्थ होने या अपना बुरासमय होनेमें भागजाय पर किसीके साथ निकृष्टकर्म न करे बनमें जाकर मृगयूथोंके साथ घूमे नहीं तो बेमर्याद होकर चोरोंके साथघूमे हे भरतबंशी दुष्टकर्मों में चोरों की सेना सुगमता से प्राप्तहोती है बहुतसी बेमर्यादा से सबमनुष्यों को व्याकुलताहोती है और निर्दयकर्म्म करने वाले चोर भी शंकाकरते हैं इससे मनुष्यों के चित्तकी प्रसन्नता करने वाली मर्यादा को नियत करे वह मर्यादा इसलोक के छोटे अर्थों में भी पूजित होतीहै प्राकृति पुरुषों का यह निश्चय है कि न यह लोक है न परलोक है नास्तिक और भयभीत पुरुषों को बिश्वास होना ऐसा कठिन है जैसे कि सत्पुरुष को चोरों से

बिश्वास नहीं होता दूसरेका धनहरना भी अहिंसा है इसको कहताहूं कि जैसे चोरोंकी मर्य्यादाहोने से सब जीवप्रसन्न होतेहैं उसी प्रकार युद्ध न करनेवा-लेका मारना और दूसरेकी स्त्रीका पुरुष उपकार को भूलजाना ब्राह्मण के धनका लेना और सर्वस्वहरण करना कन्याको चुराना गांवोंको अपने स्वाधीन करके उनका स्वामी बनजाना और दूसरे की स्त्रीसे सम्भोग करना यह सब बातें चोरों में निन्दित हैं चोर इनको त्यागकरे जो मनुष्य इस चोर के बिश्वास के निमित्त उस से मिलाप करते हैं वह चोर उसके बिश्वास होजाने पर स्थान आदि को पाकर उसके धन और बालबच्चोंको नाशकरते हैं ऐसा निश्चय जानके अपने स्वाधीनहुये भी चारजाति को शेष न छोड़ना चाहिये अपने को पराक्रमी समझकर जो उनको बाकी छो-ड़देते हैं तो वहबाकी के मनुष्य उस नाशकर्त्ता की बेबाकी करेंगे २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेतृतीयोऽध्यायः ३ ॥

# चौथा अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि प्राचीन बृत्तान्तों के जाननेवाले पुरुष इसस्थानपरधर्म्म के अनुबचनको कहते हैं कि धर्म्म अर्थ अच्छेबुद्धिमान् क्षत्री के दृष्टिगोचर होताहै ऐसेस्थानपर यह बिचार न करनाचाहिये कि यह धर्म्महै या अधर्म्महै क्योंकि धर्म्मका उपदेश ऐसा गुप्तफलवालाहै जैसा कि भेड़ीका खोज कभी किसीने धर्म्म अधर्म्म के फलको नहीं देखा इससे पराक्रमकोही प्राप्तकरने की इच्छाकरे क्योंकि यहबात निश्चयहै कि यह सबसंसार पराक्रमीकेही आधीनहै इसलोकमें पराक्रमी राजा लक्ष्मी सेना और मन्त्रियोंकोपाताहै जो धनरहितहै वह पतित है अर्थात् अपने धर्म्मका करनेवाला नहीं है और जो इससेभी अल्पहै वह उच्छिष्टके समानहै पराक्रमीमें बहुत कुमार्गोंको देखकर भयसे कुछनहीं कियाजाता है वह पराक्रम और धर्म्म दोनों सबे अधिकारमें नियत होकर बड़े २ भयोंसे रक्षा करतेहैं मैं धर्म्मसे पराक्रमको अधिकमानता हूं क्योंकि पराक्रमहीसे धर्म्मजारीहोताहै धर्म्मपराक्रमहीमें ऐसे बर्त्तमानहै जैसे कि पृथ्वीपर चेष्टाकरने वाले जीव धर्म्म पराक्रम के पीछे ऐसे बर्त्तमान होता है जैसे कि धुआँ हवाकेआधीन होता है यह धर्म्मपराक्रम में बर्त्तमान होकर स्वतन्त्र ऐसे नहींहै जैसे कि वृक्षमें लगीहुई लता धर्म्म इसप्रकार पराक्रमि-यों के आधीन है जैसे भोगी लोगों के आधीन सुखहोताहै पराक्रमियोंको कोई अप्राप्तबस्तुनहीं है और उनके आगेसब पवित्र हैं कुमार्गी और निर्बल की रक्षानहीं होती है क्योंकि उससे सबलोग ऐसे व्याकुल होते हैं जैसे कि भेड़ियेसे राज्यसे भ्रष्टअपमानयुक्त मनुष्य दुःखरूप जीवनको पाताहै जो

जीवन निन्दित है वह मरण के समानहै जो कोई ऐसा कहे कि पाप और बदमासी के कारण बांधवों ने इसको त्यागकिया इसबातसे वह अत्यन्त दुःख पाताहै वह बचनरूपभालों से चारोंओरसे घायलहै इसपापके दूरहोनेका उपाय आचार्य्यलोग ऐसा कहतेहैं कि तीनों वेदोंका पाठकरे और ब्राह्मणों की उपासनाकरे और नेत्रबचन कर्म्म आदिसे सबको प्रसन्नकरके महाउदारता प्रकटकरे और बड़ेकुलमें बिवाहकरे और अपनी हीनताकरके दूसरेकी प्रशंसाकरे अथवा स्नान जपस्तोत्र आदिसे प्रसन्नचित्त पवित्र और मृदुस्वभाव होकर दूसरों को प्रसन्नकरे बुराई न करे बड़े कठिन कर्म्मको करके बारम्बार लोगोंसेकीहुई अपनी प्रशंसाको सुनी अनसुनी करके ब्राह्मण और क्षत्रियों के बीचमें निवासकरे इसप्रकारके आचरणोंसे वह पापरहित होकर सबका प्रियहोसक्ताहै और अपूर्व सुखको भोगताहुआ एक उपकारही मात्रके करनेसे ऐसे गुणवाला राजा लोकमें प्रतिष्ठाको पाताहै और दोनों लोकों में बड़े २ फलोंको भोगताहै १७॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिआपद्धर्म्मेचतुर्थोऽध्यायः ४॥

# पांचवां अध्याय॥

भीष्म जी बोले कि इस स्थानपर इसप्राचीन इतिहास को कहता हूं जिससे मर्य्यादायुक्त चोर भी नरकको नहीं पाताहै, शिकार करनेवाला बुद्धिमान् शूरवीर शास्त्रज्ञ होकर शास्त्रकी रीतिसे हिंसा करनेवाला वेद ब्राह्मणों का रक्षक आश्रमियोंके धर्म्मकी रक्षा करनेवाले क्षत्रियोंका रक्षक एककायव्यनाम निषादका पुत्रथा उसने निषादी स्त्रीमें क्षत्री से उत्पन्न होकर चोर जाति में ही सिद्धी को पाया वह बनके मृगोंपर अहर्निश क्रोधकरनेवाला और मृगकी जातिके जीवों की बुद्धिका ज्ञाता निषादोंमें पण्डित सबकाल और देशका जाननेवाला सदैव पारियात्र पर्वतपर बिचरनेवाला सबजीवोंके धर्मोंका जाननेवालासफलबाण और शस्त्रधारीथा उसअकेलेने बहुतसीकठिन सेनाओंकोबिजयकरके वृद्ध अन्ध वधिर अपने मातापिताका वनमेंपूजनकिया और मधुमांस मूल फल और अनेकप्रकारके अन्नोंके भोजनोंसे सत्कार पूर्वक उनको तृप्तकिया और प्रतिष्ठाके योग्य पुरुषोंकी सेवा करके बनवासी ब्राह्मण संन्यासी लोगोंके निमित्त उसीबनमें मृगोंको मारकर उनके भेंटकिये जो पुरुष चोरजाति की शंकासे इससे नहीं लेतेथे उन्होंके घरमें वह प्रातःकाल ही भोजन रखकर चला जाताथा, निर्दयकर्मी चोरोंके समूहों ने इसको अपना मालिक बनाना चाहा और कहा कि हे मुहूर्त, देशकाल आदिके जाननेवाले ज्ञानी शूर और दृढ़व्रतवाले तुम हममें मिलकर हम सबके बड़े अधि-

पति होजाओ और जो हमको आज्ञाकरोगे वही हम सबलोग करेंगे तुम माता पिता के समान न्याय की रीतिसे हम सबकी रक्षाकरो कायव्य बोला कि तुम भयभीत स्त्री को, बालकको, तपस्वीको और युद्ध न करने वाले को, मतमारो और स्त्रियांकभी पराक्रमसे पकड़ने के योग्य नहीं होतीं सबदशा में जीवधारियों के मध्य स्त्रियां अवध्यहैं, सदैव ब्राह्मणोंका कल्याण बिचारना योग्य है और उनके आनन्द के लिये युद्धकरना भी उचित है सत्यता को कभी नष्ट न करना चाहिये और किसी के बिवाहादि कार्य्यों में विघ्न मतकरो क्योंकि बिवाहादि में देवता, अतिथि, पितृ पूजेजाते हैं सब जीवों में ब्राह्मण अदण्ड्यहै और उन ब्राह्मणों की वृद्धि सब प्रकार से करनी चाहिये वह ब्राह्मण क्रोधयुक्त होकर जिसका नाश करना चाहते हैं उसका रक्षाकरनेवाला तीनोंलोक में कोई नहीं होता है, जो ब्राह्मणोंकी निन्दाकरे और उनके नाशको चाहे उसका नाश ऐसे शीघ्रहोताहै जैसे कि सूर्य्योदय में अन्धकार का नाशहोता है इन ब्राह्मणों में बैठाहुआ सब प्रकार से राज फलकी इच्छाकरे कि जो ब्यापारी हमको नहींदेंगे उससे उनलोगों को चोरी लगेगी क्योंकि यह दण्ड निश्चय करके कुकर्मियों के नाश के निमित्त नियत कियागया है खजाने की वृद्धिके लिये नहीं कियाहुआ है जो श्रेष्ठ लोगों को पीड़ादेते हैं उनका मारना ही दण्ड कहागया है जो कोई देशके नाशसे अपनी बृद्धि करते हैं वह ऐसे मारेजाते हैं जैसे मृतकके साथ कीड़े मारेजाते हैं और जो चोर धर्मशास्त्र के अनुसार कर्म्म करें तो वह चोर जाति में भी शीघ्र सिद्धी को पातेहैं भीष्मजी बोले कि इतनीबातें सुनकर उनचोरों ने उस कायव्य की शिक्षा और आज्ञाको किया तब सबलोग पापों से निवृत्त होकर वृद्धि को प्राप्तहुये साधुओं की भलाई और चोरोंको पापकर्म्मोंसे निवृत्त करके कायव्य ने बड़ी सिद्धि प्राप्तकी जो पुरुष इस कायव्य के चरित्र को सदैव बिचार करेगा वह बनवासी जीवोंसे कभी भयभीत न होगा हे राजा जिसको सबजीवों से भय न हो और नीचोंसे भी कभी भय न करे वही बनका राजा है २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिआपद्धर्मे पंचमोऽध्यायः ५ ॥

## छठा अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर प्राचीन वृत्तान्तों के जानने वाले पुरुष ब्राह्मणोंकी कही हुई कथाको कहते हैं कि राजा जिन २ से धनको इकट्ठा करता है उनमें यज्ञकरनेवालोंका और देवताओंका धन न हरनाचाहिये, क्षत्रीराजा चोरोंका और यज्ञ न करनेवालों का धन हरसक्ता है क्योंकि यह

प्रजा और राज्यभोग क्षत्रियों के ही हैं धनभी क्षत्रियोंकाही है अन्य किसीका नहींहै वहधन इसके पराक्रम और सेनाकेवास्ते अथवा यज्ञके निमित्त होताहै भोगनेके अयोग्यइन्धन आदि और भोजनकेयोग्यचावल इत्यादि और औषधियोंको काटकर पकातेहैं जोपुरुष हविष्यान्नसे देव पितृ मनुष्योंकापूजन नहीं करता है उस स्थलमें धर्म्मज्ञ पुरुषोंने धनको निष्फल कहा है हे राजा धर्म्मज्ञ राजा पहिले धनकोहरणकरे तदनन्तर लोकको प्रसन्नकरे इसप्रकार करनेवाला राजा शोक रूप नहीं होता, जो पुरुष अपने देहको सेतु बनाकर असाधुओं से धनलेकर साधुओंको देताहै वही सब धर्म्मोंका ज्ञाता है अपनी सामर्थ्यसे ऐसेप्रकार से संसार को विजय करे जैसे कि उद्भिज चेंटी आदि जीव धीरे २ दूरतक चलेजाते हैं जैसे कि डांस मच्छर और चेंटियोंके अण्डे अपने आप उत्पन्नहोते हैं उसीप्रकार यज्ञ न करनेवाला पुरुष भी बारम्बार पैदाहोता है और जैसे डांसआदि जीवोंको पशु अलग करते हैं वैसेही यज्ञ न करनेवालों को त्यागना चाहिये और जैसे बहुत पिसावट से पृथ्वीकी रेणु महीन होजाती है उसी तरह इसलोक में धर्म भी सूक्ष्मसे सूक्ष्म होजाता है ११ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेषष्ठोऽध्यायः६ ॥

# सातवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जो मनुष्य भविष्यबातको पहिलेही करनेवालाहैऔर जो समय पर बुद्धिके अनुसार कार्य करता है यह दोनों सुखपूर्वक वृद्धिको पाते हैं दीर्घसूत्री सदैव नष्टताकोपाताहै इसस्थानपर इसउत्तम व्याख्यानको कहताहूं जोकि दीर्घसूत्रीको करने और न करने के योग्य कर्म्मके निश्चयके विषयमें कहाहै, हे राजा किसी बड़े गहरे तालाबमें मित्रभावके साथ रहनेवाले तीनमत्स्य थे उन तीनों में से एक तो प्राचीन वृत्तान्तोंका जाननेवाला दूसरा समय पर बुद्धिमत्ता प्रकट करनेवाला और तीसरा दीर्घसूत्री था किसी समय मछली मारनेवालोंने चारोंओरसे नीचाखोदकर उसके जलको खाली किया तब वह दूरदर्शी उसतालाव को खालीहोता देख कर अपने दोनों मित्रोंसे बोला कि सब जल जीवों की यह आपत्ति उत्पन्न हुईहै सो जबतक मार्गमें कोई दोष न आवे तब तक दूसरे किसी अन्यस्थान को चलना चाहिये हे मित्रलोगो जो पुरुष सन्मुख आनेवाली किसी आपत्तिको अच्छी नीतिसे निवृत्तकरे वह संशय से रहित होता है जो तुमलोगों को यहबात स्वीकार होयतो चलो उनमें से दीर्घसूत्रीने कहा कि ठीक है परन्तु शीघ्रता न करनीचाहिये यह मेरीपक्कीरायहै तदनन्तर समयपर बुद्धिप्रकट करनेवालेने दूरदर्शीसे कहा कि समय वर्त्तमान होनेपर मेराकोईकाम न्याय के विपरीत

नहीं होता है तबतो महाबुद्धिमान् दूरदर्शी वहांसे नालियों के मार्ग होकर किसी बड़े गहरे तालावको गया तदनन्तर मछुओं ने उस तालाव को खाली करके बड़ी २ युक्तियोंसे मछलियोंको पकड़ा उनमें वह दीर्घसूत्री भी पकड़ा गया वहां रस्सियों से मछलियों के बांधने पर वह समयपर बुद्धिप्रकट करने वाला भी उनमें आकर घुसगया और सबको जालमें लेकर वह मत्स्यघाती चलदिया और उसने उनसब पकड़ीहुई मछलियोंको देखा तदनन्तर मछलियों के धोने के समय यह बुद्धिमान् मत्स्य रस्सी से निकलकर गम्भीर जल में चलागया और उस निर्बुद्धी असावधान दीर्घसूत्री की मृत्युहुई इसीप्रकार जो पुरुष सन्मुख आयेहुये समय को नहीं जानता है वह दीर्घसूत्री मत्स्य के समान शीघ्रही मृत्युको पाता है और जो अपनेको बुद्धिमान् समझ कर प्रारंभ में अपने कल्याण को नहींकरता है वह ऐसे सन्देह में पड़ता है जैसे कि समयपर बुद्धिप्रकट करनेवाले ने पाया और जो आगामी होनेवाले कर्म्म को करता है और समयपर बुद्धिको प्रकट करता है वह दोनों सुखसे वृद्धिको पातेहैं और दीर्घसूत्री का नाश होजाताहै काष्ठा कला मुहूर्त दिन रात मास पक्ष छओंऋतु कल्प चारोंप्रकार के वर्ष पृथ्वी देश काल यह सब समय के विभागहैं इनकी सूक्ष्मता दृष्ट नहींआती है जो पुरुष मनोरथ सिद्धिकरने के लिये ध्यान करता है वह अपनेही प्रकार से जानता है ऋषियोंने यह दोनों धर्म्म अर्थ और मोक्षके शास्त्र और मनुष्यों के स्वीकृतशास्त्रों को ऋतुकहा है परीक्षा लेकर करनेवाला और कर्म्म का करनेवाला दोनों अच्छे प्रकारसे प्रयोजनको सिद्धकरतेहैं देश और काल चित्तके रोचकहैं इससे इन्हीं से फलको पाताहै २४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणि आपद्धर्म्मेसप्तमोऽध्यायः ७ ॥

## आठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह आपने सर्वोत्तम बुद्धियोंका वर्णन किया प्रथम वह है कि जिससे भविष्यत्बात ज्ञातहोजाय द्वितीय वह कि समयपर आपत्तिसेंबचे तृतीय नाशकरनेवाली दीर्घसूत्रियों की बुद्धिहै हेपितामह अब मैंआपसे उसबुद्धिको सुनाचाहताहूं जिससे कि शत्रुसे घिराहुआ राजा मोहयुक्त नहो और जो राजा धर्म अर्थमें प्रवीण और धर्मशास्त्रका पण्डित हो ऐसाकौनहै उसको आपकहिये मैं इनसबको बुद्धिके अनुसार सुना चाहताहूं पूर्व समयके खेदपायेहुये बहुतसे शत्रुआपत्तिमें संयुक्तअकेले भी होकर राजाकेनाशको चाहतेहैं बड़े पराक्रमियों से सब स्थानोंपर कैदकरने के योग्य निर्बल और असहाय राजा कैसे वर्त्तमान होनेको योग्यहै और शत्रु

मित्रको कैसे प्राप्त करताहै यहां शत्रुमित्र के मध्यमें कैसे कर्म्म करना चाहि-
ये इसीप्रकार जिस पुरुष का लक्षण जानागयाहै ऐसे मित्रको शत्रु होजाने
पर कैसे कामकरे जिससे कि सुखको प्राप्तहो, किसको मित्र और किसको
शत्रु करे और शत्रुओंमें वर्त्तमान बीर पराक्रमी भी किसप्रकारसे बर्त्तावकरे
इन सब बातोंको आप बिचार पूर्वक कहिये भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर बेटा
यह सुखदायी प्रश्न तेरे पूछने योग्य है इसको ब्यौरेसमेत मैं कहताहूं कि का-
र्य्योंके सामर्थ्य योग से शत्रुमित्र होजाताहै और मित्रशत्रु होजाता है यह
बात सदैवसे चली आई है इसकारण देशकाल को जानकर योग्यायोग्य
कर्म्मके निश्चय करने में विश्वास करना चाहिये और आतंकबन्ध घातइ-
त्यादिको अच्छेप्रकारसे करे और बुद्धिमान् शुभचिन्तकलोगों से सदैवमेल
और स्नेह रखना चाहिये और शत्रुओंसे भी सन्धिकरनी चाहिये क्योंकि
अपने प्राणोंकी रक्षा अवश्यहै जो मूर्ख शत्रुओं से सदैव मेल नहीं रख-
ताहै वह किसी अर्थ और फलकोनहीं पाताजो पुरुष अपना अर्थ समझकर
शत्रुसे सन्धिकरता है और मित्रकेसाथ शत्रुताकरताहै वहबड़े भारी फलको
पाता है इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें बट वृक्ष के
समीप रहनेवाले बिलार और चूहेका परस्पर विवादहै कि किसी बड़ेबन में
एक बड़ाभारी बरगद का वृक्षथा जिसकी बड़ी २ लता उसको घेरेहुयेथीं और
अनेक प्रकारके पक्षियों के समूहोंसे ब्याप्तथा उसकी सघनछायामें अनेक
सर्पादिक बिषवाले जीव और मृगोंका निवासस्थान था वहां एक पलितना-
म चूहाभी उसकी जड़ में सौ मुखवाले छिद्रमें निर्भयरहताथा और पक्षियों
का घातक लोमशनाम बिलारउसबृक्षकी शाखापर रहताथा वहांएक बहेलि-
या सूर्य्यास्तके समय उस वृक्षके नीचे जालबिछाकर प्रतिदिन घरको चला-
जाताथा और प्रातःकाल जब आताथा तब रात्रिके फँसेहुये मृग उसमें पाताथा
दैवयोगसे एक दिन वह बिलार उसमें फँसगया उसबड़े पराक्रमी अपने शत्रु
के फँसजाने पर वह पलितनाम चूहा निर्भय होकर इधर उधर फिरनेलगा तब
बहुत दिनोंसे आकांक्षी घूमने वाले चूहेने उसजालके समीप पड़ेहुये मांसख-
ण्डको देखा और जालपर चढ़कर उसको खाया और उसफँसेहुये अपने बैरी
बिलार के सिवाय उसने एक नौलेको और उलूकपक्षीको देखा यह दोनों भी
चूहेके शत्रुथे और चूहेकी गन्धपाकर होठोंको चाटतेहुये चूहेकी खोजमें इधर
उधर फिरनेलगे तब चूहेने चारोंओर से अपने को शत्रुओं से घिराहुआ देख
कर महाचिन्तायुक्त होकर यह बिचार किया कि ऐसे मृत्युके बर्त्तमान होने से
और चारोंओर से भयभीत होनेपर अपनी बृद्धिचाहने वालेको किसीप्रकार
काम करना चाहिये जिससे कि आपत्तिमें पड़ेहुये जीव अपनी आपत्तिदूर

कर के उत्तम जीवन प्राप्तकरें अगर पृथ्वीपरजाऊं तो नौला भक्षणकरेगा और जो यहां ही बैठा रहूंगा तो उलूक खाजायगा और फाँसियों के कटने से बिलार भोजन करेगा ऐसी दशा में मुझ सरीखा बुद्धिमान् मोह करने के योग्य नहीं है क्योंकि मैं जहां तक बनेगा वहां तक जीवने का उद्योग करूंगा बुद्धिमान् नीतिज्ञ लोग बड़ी आपत्ति में भी फँसकर चिन्ता में मग्न नहीं होते हैं इससे अबमैं इसस्थान पर बिलार के सिवाय दूसरे उपाय को नहीं जानताहूं यह मेरा शत्रु आपत्तिमें है और इस समय में उसका बड़ा काम कर सक्ताहूं अब तीन शत्रुओंसे घिरा हुआ अपने जीवनके लिये क्या काम करूं इससे इस बिलार अपने शत्रुकी शरण में जाताहूं नीतिशास्त्र की रीतिसे इसकी शरण में जाकर इसके अभीष्ट को वर्णन करूं जिसके द्वारा अपनी बुद्धिमत्तासे इनसब शत्रुओं से बचूं यह मेरा शत्रुबड़ी आपत्तिमें है जो यह मूर्ख अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये मेलकरनेको तैयारहोजाय अर्थात् महा दुःखी होकर जो मुझसे मित्रताकरे तो आपत्तिमें पड़ेहुये जीवन की इच्छाकरनेवाले उसपराक्रमी शत्रुसेभी मिलाप करनायोग्यहै जो कि समीप वर्त्तमान हो ऐसा आचार्य्यलोग कहते हैं कि पण्डित शत्रु भी श्रेष्ठ है और मूर्ख मित्रभी अच्छा नहीं और मेरा जीवन इस बिलार से है मैं अपने बचनेके लिये इसबिलारसे कहूंगा तो यहशत्रुभी मिलापसे पण्डितहोजायगा ऐसा मनमें विचारकर बड़ीमीठीबाणी से चूहेने बिलारसे कहा कि हे बिलार मैं मित्रता से पूछताहूं कि तुम जीतेहो मैं तेरा जीवन चाहताहूं हम दोनोंका कल्याण सुगम है हे स्वामी तुमको भय न करना चाहिये तू सुख को अधिक भोगेगा मैं तुझको इसबंधनसे छुटादूंगा जो मुझको न मारे यहां एककठिन उद्योग मुझको दृष्टपड़ता है जिसके द्वारा तुझको छुटाऊंगा औ मेरा भी कल्याण होगा मैं ने अपने और तेरे लिये खूब बिचारकर यह युक्ति शोची है इसीमें हमदोनोंका कल्याणहै हे बिलार यह नौला और पापात्मा उलूक मुझको नहीं मारते हैं इसीसे मेरा कल्याण है परन्तु यह चपलनेत्र नौलामुझको देखताहै और शब्दकरताहै और बृक्षकी शाखापर बैठा हुआ यहउलूक भी देखताहै मुझको इनसे बड़ाभयहै सातचरण साथचलने से सत्पुरुषों की मित्रता होतीहै सो तुम पण्डितहो मैं भी तुम्हारे साथचलूंगा तुम मेरे मित्र हो अब तू भयमत कर हे मित्र बिलार तुममेरे काटने बिना फंदे से नहीं निकलसक्के जो तुममुझको न मारोगे तो मैं तेरेफन्दोंको काटूंगा तुम अपने बृक्षपरजाओ और मैं बृक्षकी जड़में जाऊं क्योंकि हमतुम बहुतकाल से इस स्थानमें रहते हैं जिसका कोई बिश्वास नहींकरता और कहीं आपभी बिश्वास नहींकरता ऐसे चित्तवालोंकी पण्डित प्रशंसा नहींकरतेहैं इसकारण

हमदोनोंकी मित्रता बड़ीहोय और सदैव हमदोनों का मिलाप रहै इसस्था-
नपर पण्डितलोग समय पर प्रयोजन उल्लंघन करनेकी प्रशंसानहीं करते हैं
यहां इसअर्थ युक्तिको सुनो कि मैं तुम्हारे जीवनको और तुममेरे जीवनको
परस्पर चाहतेहो जैसे कि कोई पुरुषकाष्ठकेद्वारा महा गंभीरनदीसे पारउतर-
ता है वह उसकाष्ठकोभी तारताहै और उसके द्वारा आप भी तरताहै इसी प्र-
कार हमारा तुम्हारा योगहै मैं तुमकोतारूंगा और तुम मुझको तारोगे ऐसी
उचितबातेंकरके वह चूहाचुपहोगया तब वह पण्डित बिलार बड़े मीठेबचनों
से उसकी प्रशंसाकरके बोला कि हे सौम्य तेराभला हो मैं प्रसन्नहोताहूं जो
तुम मेराजीवन चाहतेहो तो इस कल्याणको करो इस में बिचारमतकरो मैं
इसकठिनफंदेमें फँसाहूं और तुममुझ सेभी अधिक आपत्तिमें फँसेहो हमदोनों
आपत्तिमेंहैं मिलापकरनेमें विलम्ब न करनाचाहिये और हेमित्र समयके अनु
सार जिसकर्म्मसे सिद्धीप्राप्तहोगी उसीकोकरूंगा मेरीआपत्तिके निबृत्तकरनेसे
तेरा उपकारब्यर्थ न होगा मैं निरहंकारीभक्तहूं शिष्यकेसमान तेरीभलाईकरूंगा
यहसुनकर उस पलितचूहेने यह हितकारी बचनकहा किआपने जो बातकही
वह आपसरीखे जीव में आश्चर्य्य कारी नहीं है प्रयोजन के सिद्धकरने को
जो युक्ति मैंने नियतकीहै उसको सुनो मैं तेरेपासआताहूं मुझको नौलेसे
बड़ाभय है सो तुमसुझको मतमारो क्योंकि मैं तेरीरक्षा करनेमें समर्थहूं और
उलूक भी मुझको चाहता है उसनीचसे भी मेरीरक्षाकरो हे मित्र मैं सत्यस-
त्य शपथकरता हूं मैं तेरी फाँसी को काटूंगा तव उसलोमशनाम बिलार
ने ऐसे सार्थकवचनों को सुनकर उसपलित नाम चूहे की बड़ी प्रशंसा
की और कहा कि तुम मेरे प्राण के समान मित्र हो तुम्हारा सदैव
भलाहो जल्द फन्दों को काटो हेज्ञानी तेरी कृपासे बहुत दिनतक जीऊंगा
और जो २ मुझसे इसके बदले में चाहेगा वह सब तेरे लिये करूंगा हेमित्र
जल्दी सेहमारा तेरा मिलाप हो इस आपत्ति से जल्दी छुड़ा मैं तेरेअनेक
उपकार करूंगा भीष्मजी बोले कि इस प्रकार से दोनों बिश्वासित होगये
तब चूहा उसकी बगल में फंदे काटने को आया और बिलार से निर्भय
होकर उसकी छातीके नीचे ऐसे शयनकिया जैसे कि बिश्वासी मातापिता
के साथ सोताहै उसचूहेको बिलार के नीचे चिपटा हुआ देखकर वह नौला
और उलूक दोनों निराश हुये और उनकी ऐसी प्रीति देखकर वह दोनों
महा आश्चर्यकरनेलगे और उसचूहेको अपनेपराक्रम और उद्योगसे पकड़ने
को असमर्थहुये और उसका पकड़ना असम्भवजानकर शीघ्रता से अपने २
स्थानोंको चलेगये तब उसपलित ने बहुत धीरे २ उसबिलार की फाँसि-
यों को काटा तब उसबिलार ने चूहेसे कहा कि हे सौम्य मित्र क्यों नहीं शी-

ग्रता से काटता और अपने सिद्धमनोरथ का क्यों अपमान करता है हे शत्रुओंकेमारनेवाले जल्दीसे फाँसियोंको काटसामनेसेवह चाण्डाल आताहै तब चूहेने उससे कहा कि हे मित्र चुपहोजाओ तुमको शीघ्रता न करनी चाहिये क्योंकि हम समय के जानने वालेहैं समय त्याग नहीं किया जाता बिना समय करने वाले का प्रारम्भ कर्म्म सिद्ध नहीं होता है और समयपर करने से वही प्रारम्भ कर्म्म शीघ्रही सिद्ध होता है बे समय तुझफाँसी से छूटेहुये से मुझको भयहै इससे समयतक राहदेख शीघ्रता क्यों करता है जब उस शस्त्रधारी चाण्डालको समीप आता देखूंगा तब साधारण भय होनेपर तेरीफँासियों को काटूंगा फाँसीसे छूटतेही तुम अपने जीवन के निमित्त वृक्ष परही चढ़ोगे तब मैं अपने बिलमें जाऊंगा और आप अपने वृक्षपर बैठोगे तब चूहेसे अपने हितकारी ऐसे वचनों को सुनकर बिलार बोला कि हे मित्र प्रीतिसे करने वाले साधूलोगइस प्रकार नहीं करते हैं देखो जैसे मैंने तुमको शीघ्रही आपत्ति से छुटाया उसी प्रकार तुमभी मुझको शीघ्रता से छुटाओ और जो तुम प्राचीन शत्रुता से देर करते हो सो देखो कि तुम्हारा जीवन मेरेकारण से सिद्ध हुआ और जो कोई अज्ञानता से मैंने तुम्हारे साथ पहिले पाप कियाहो उसको क्षमाकरो और चित्तसे द्वेषको त्यागकर मेरा कामकरो तब उसशास्त्रज्ञ चूहेने शास्त्रकी बुद्धिसे फिर श्रेष्ठ वचन कहा कि हे बिलार मैंने तुझ स्वार्थीका वचन सुना और तुम भी मुझ अपने स्वार्थी को जानतेहो जो मित्र भयकारी के समान मिलने वाला है और जो भय से हितकारी है वहकार्य बहुत विचारके साथ ऐसे करने के योग्यहै जैसे कि सर्पके मुखसे हाथ विचार करने के योग्यहै जो पुरुष पराक्रमियों से मिलाप करके अपनीरक्षा नहीं करताहै उसकी बात उसके प्रयोजनको सिद्ध नहीं करसक्ती है जैसे कि भोजन किया हुआ अपथ्य-- न तो कोई मित्र है न कोई किसीका शुभ चिन्तक है प्रयोजन से ही मित्र और शुभ चिन्तक होते हैं प्रयोजन से प्रयोजन ऐसे बांधाजाता है जैसे कि हाथियोंसे जंगलीहाथी- कार्य होजाने पर कोई उपकारको नहीं ध्यान करता है इस कारण सब कामोंको पूरा नहीं करता दिनमें भयभीत होकर आप भी मुझपर घात नहीं करसकोगे और भागने में प्रवृत्त होगे बहुत से फन्दे काटे हैं एकही फन्दा बाकीहै हे लोमश मैं उसको भी बहुतशीघ्र काटूंगा विश्वासयुक्तरहो इसी प्रकार से वार्त्तालाप करते २ रात्रि व्यतीतहुई और बिलारको भय उत्पन्नहुआ तिस पीछे प्रभातकेसमय विकृतकाला और पीलावर्ण महाघोररूप कुत्तोंको साथलिये शंकुकर्ण चौड़ाभयानक महामलिन घोर दर्शन हाथमें शस्त्रलिये परिघनाम चाण्डाल दृष्टपड़ा तब महा

भयभीत होकर बिलारने कहा कि अब क्या करेगा तदनन्तर वह दोनों नौला और उलूक जो निराश होकर चले गयेथे फिर उससमूह में आये और उस बिलार और चूहेको देखतेथे कि चूहेने बिलारका वह बाकीफंदा भी काटडाला और बिलार बड़ी शीघ्रता से पेड़पर चढ़गया फिर पलितचूहा भी बिलमें घुसगया तब वह चाण्डाल क्षणमात्र ठहर कर उस जालकोलेकर चलागया, तब बिलार ने बिलमें बैठेहुये उस चूहेसे यह कहा कि हे मित्रजीवदान् देकर मित्रता से मेरेपास क्यों नहीं आतेहौ जो मनुष्य पहिले मित्रताकरके पीछे पासनहीं आताहै वह निर्बुद्धी बड़ी आपत्तियोंमें कष्टसेभी मित्रोंको नहीं पाता है हे मित्र तैंने अपनी सामर्थ्य से मेरेऊपर उपकार किया इससे मुझसे मित्रता भोगो मेरेइष्टमित्र बान्धवभी तुमको ऐसेपूजेंगे जैसे कि शिष्यलोगअपने प्यारे गुरू को पूजते हैं और मैं अपने सब कुटुम्ब समेत तुझजीवदान देनेवालेको सदैव पूजूंगा उपकारको जानकर कौन पुरुष है जो उसकीसेवा न करे आप मेरेदेह प्राण घर आदिके स्वामीहो और मेरेमंत्रीहोकर पिता के समान मुझ को उपदेश करो हम शपथखाते हैं हम से आप कभी भय न करें यद्यपि हमपराक्रम में तुम से अधिक हैं परन्तु तुम शुक्रजीके समान गुरूहो इस से पराक्रमी सलाह में प्रवृत्त हो बिलार के ऐसे २ बचनों को सुनकर चूहेनेसाफ २ अपना हितकारी बचन कहा कि मैंने सब तुम्हारी बातें सुनी अब मुझको जैसा मालूम होता है उस मेरी बातको भी सुनो कि शत्रु जानने और प-हिंचानने के योग्य हैं लोक में यहअत्यन्त सूक्ष्म ज्ञानियोंका वचन सुनने में और देखने में आता है कि मित्रुशत्रुरूप हैं और शत्रु मित्ररूप हैं वह काम क्रोधमें संयुक्तहुये नहीं पहिंचाने जातेहैं प्रत्यक्ष में कोईशत्रुहै न मित्रहै मित्र और शत्रुदोनों सामर्थ्य के योग से उत्पन्न होते हैं जो अपने प्रयोजन के लिये जिसके पास जीवन करता है और जीवन में कोई दुःख नहीं पाता है वह तबतकही उसका मित्र बना रहता है जबतक कि कोई बिपरीतता न होवे प्रत्यक्ष है कि मित्रता स्थिर नहीं है और शत्रुता भी अविनाशी नहीं है मित्र और शत्रु सब अर्थयुक्तियों से उत्पन्न होते हैं किसीसमय की बिप-रीतता में मित्र शत्रु होता है और शत्रु मित्र होजाता है अपना प्रयोजनही महाबली है जो मित्रों में बिश्वास करता है और शत्रुओं में बिश्वास नहीं करताहै और जोअर्थ युक्तिको न जानकर प्रीति करनेवालों में इच्छाकरता है उसकी बुद्धि शत्रु या मित्र में अवश्य चलायमान होगी अविश्वस्तों में अ-धिक बिश्वास न करे विश्वाससे उत्पन्न होनेवाला भय मूलकोभी काटडाल-ताहै अर्थ युक्तिसेही पिता, माता, बेटा, मामा, भानजे, सम्बन्धी बान्धव आदि सब उत्पन्न होते हैं और पतित होनेवाले पुत्रको माता पिताभी त्याग करते

हैं सबसंसार अपनी आत्माकी रक्षाकरता है तुम अपने अर्थ की सरिता देखो हे ज्ञानी जो बंधन से छूटनेकेपीछे बदला है वहसाधारण है निस्सन्देह तुम सुगमता से अपने शत्रुको प्राप्त कियाचाहते हो इसबड़े बरगद से उतरते हुये तुमने चपलता से पहिले से बिछाये हुये जालको नहीं जाना चपल पुरुष जब अपनाहीनहीं है तो दूसरों का कैसेहोगा इसकारण चपल मनुष्य अवश्य सबकार्योंका नाशकरता है जो तुम इसमीठे बचनोंको कहते हो कि आप मेरे प्यारेहो तो मित्रहोने के उस संपूर्ण कारणको ब्यौरेवार मुझ से सुनो कि कारणही से मित्रता प्राप्त होती है और कारणही से शत्रु भी हो जाता है यह जीवलोक अपने स्वात्थ का चाहने वाला है कोई किसी का प्यारानहीं है सगेभाई या स्त्री पुरुषोंमें परस्पर प्रीति होती है मैं इसलोक में किसीकी प्रीति को बिनाकारण के नहीं जानता हूं जो किसी हेतु से भाई या स्त्री क्रोध युक्त हो जाते हैं तो वह स्वभाव से प्रसन्न भी हो जातेहैं दूसरा मनुष्य प्रसन्ननहीं होता कोई धनसे कोई मीठे वचन से कोई मंत्र, होम, जपआदि से प्रसन्न होता है सब मनुष्य कार्य के निमित्त प्रीतिकरतेहैं हमारी तुम्हारी प्रीतिकारणसे हुई है बेकारण नहींहुई मैं जानताहूं कि उस कारण स्थान के नाश होनेसे वहप्रीति दूरहोजाती है, वह कौनसाकारणहै जिससे मैं आपका प्याराहुआ, भोजन के प्रयोजन के सिवायभी उसस्थान पर हम बुद्धिमान् हैं समय कारण को बदलता है और अपनाप्रयोजन उसके पीछे वर्त्तमान होताहै ज्ञानी अपने प्रयोजन को जानता है और ज्ञानी के समान संसार कर्म्मकरता है बुद्धिमान् पण्डितहोकर तुमको ऐसा न कहना चाहिये तुझसरीखे समर्थ मनुष्यका यह प्रीति का कारणअयोग्य है इसकारण संधि और बिरोध में स्थिरस्वभाव होकर मैं प्रयोजनके मित्रसे अलगहोताहूं जैसे कि बादलोंकेरूप क्षणक्षण में बदलतेरहतेहैं इसीप्रकारआपभी शत्रुहोकर मेरे मित्रहोतेहो और फिर शत्रुहो जाओगे इनयुक्तियों की चपलताको देखो तभीतक हमारीमित्रतारही जबतक कि पूर्वसमयमें मित्रताका कारण बर्त्तमान था उससमयसे मिलीहुई मित्रताजातीरही तुम जन्मसेही मेरेशत्रुहो सामर्थ्यके योग से मित्रता हो गई उस कार्यको सम्पूर्ण करके स्वभाव ने शत्रुताको पाया सो मैं शास्त्रज्ञ होकर अपने को तेरेजाल में कैसे फँसाऊं यह मुझेसमझाओ मैं तेरेबल से छूटा इसीप्रकार आपभी मेरे पराक्रमसे जालसेछूटे परस्परमें कृपाहोनेसे फिर मिलापनहींहै हेबिलारअब जैसेतुम अभीष्टसिद्धकियेहो उसी प्रकार मैं भी सिद्ध मनोरथहूं अब भक्षण करनेके सिवाय कोई काम मुझ से तेरा नहीं है मैं भोज्य वस्तु हूं आप भोक्ताजीव हैं मैं निर्बलहूं आपपराक्रमी हैं भिन्न २ पराक्रमियोंका परस्परमें मेल नहीं होता सो मैं तेरी इस बुद्धिको

जानताहूं जो जाल से छूटने के पीछे तुझ में उत्पन्नहुई तुम निश्चय करके सुगमता से भोजन को चाहतेहौ भोजनहीके लिये तुम जाल में फँसे थे अब उससे छूटकर फिर गृहस्थाश्रम से दुःखीहो मुझे निश्चय है कि तुम अपनी विद्याबुद्धि के बलसे मुझको भक्षण करना चाहतेहौ मैं तुझ को जानताहूं यह तेरेभोजन का समयहै सो मुझसे मिलापकरके भोजन चाहते हो जो तुम मुझ से मित्रता करतेहो तो तुमभीस्त्री और बेटों में संयुक्तहो और मेरी सेवाकरनेकी युक्तिकरते हो सो हे मित्र वह तेरेस्त्री पुत्र मुझ को तेरेसाथ देखकर कबखाने से छोड़ेंगे इस से मैं तुझ से नहीं मिलूंगा मिलापकरनेका जो कारण था वहतो समाप्तहुआ अब जो उपकार को तुम स्मरणकरतेहौतो सावधानहोकर मेरी भलाईको ध्यानमें रक्खो नीच--दुःखी और भोजन को चाहनेवाली शत्रुके देशको कौन बुद्धिमान् जाताहै मैं दूरहीसे तेरा भय करताहूं क्षणमात्र में तेरा भोजनरूप कल्याण होजाऊंगा चाहै बिश्वास युक्तहो या अत्यंत प्रसन्नहो परन्तु समयपर यही कर्महोगा क्योंकि पराक्रमीकीसमीपता किसी २ समयपर दुखदायीभी होती है इस से हेलोमश मैं तुमसे नहीं मिलूंगा अपनी आशा दूरकरो और जो तुम उत्तम कर्म्म को जानतेहौतो चित्तमें प्रीति रक्खो मुझको शान्तचित्त पापी पराक्रमी से अवश्य डरना योग्य है जो तुम अपने मतलबी होजाओ तो मैं तुम्हारा क्याकरसक्ताहूं मैं इच्छाके माफिक सबबस्तुदूंगा परन्तु देहको नहींदूंगा क्योंकि देहकेपीछे सन्तान राज्य रत्न धनभी त्याग करनेके योग्यहैं सबधनकोभी त्यागकर बुद्धि के अनुसार देह की रक्षाकरे धन रत्नों के ऐश्वर्य्यको पाकर मित्रकेपास वर्त्तमानहो और धनकी प्राप्ति के अनुसार अपने जीवन का निर्वाहकरो, धन और रत्नों के समान अपने देहको कोई नहींदेनेकी इच्छाकरताहै स्त्री और धनसेभी अधिक अपना आत्मा रक्षाके योग्य है--जो पुरुष अपने आत्मा की रक्षा में प्रवृत्त अच्छी परीक्षाकरके कर्म करते हैं उन पुरुषोंको अपनेदोषसे प्राप्त होनेवाली आपत्ति कभी नहींहोती है, जो निर्बल अपने पराक्रमी शत्रुको अच्छे प्रकारसे जानते हैं उनकी बुद्धि चलायमान नहींहोती है तब तो बिलार ने लज्जायुक्त होकर उस पलित चूहे से यह वचन कहाकि पलित मैं तुझसे सत्य २ शपथखाताहूं मित्रसे शत्रुता करना महानिन्दितकर्महै और तुमजो मेरे अभीष्ट को चाहतेहौ इस से मैं तेरी इसबुद्धि को श्रेष्ठ जानताहूं तुमने अपने प्रयोजन के लिये अथवा मुख्य प्रयोजन पर दृष्टि करके अपूर्बबातें मुझ से कहीं सो हे मित्र तुम मुझको प्रतिकूल जानने के योग्य नहीं हो क्योंकि प्राणदानसे मैं तुझको मित्रबनाताहूं मैं गुण और धर्मों का जाननेवाला अच्छेप्रकार तेरे उपकार को जानताहूं मित्रों से प्रीति रखताहं

और विशेषकरके तेराभक्तहूं इसकारण तुम मेरेसाथ बिचरने के योग्यहो तेरे त्यागनेसे मैं बान्धवों समेत प्राणत्याग करूंगा जब कि यह मेरा बिचारहै तो आपको भय करना कभी नहीं योग्य है यहसुनकर चूहे ने फिर उत्तरदिया कि आपसाधू हैं परन्तु मैंने अर्थशास्त्र पढ़ाहै इस से शत्रुपर बिश्वास कभी नहीं करसक्ता तेरी प्रशंसा और धनके देने से भी मैं तेरेआधीन नहींहोसक्ता अरेभाई ज्ञानी पुरुष बिनाप्रयोजन शत्रु के आधीन नहींहोते हैं इसप्रयोजन में शुक्र जीकी दोगाथाओं को सुनो कि जहां साधारण शत्रुहै वहां पराक्रमी के साथ मेलकरके सावधानी से युक्तिपूर्वक कर्म्मकरे और मनोरथ सिद्ध करके भी विश्वास न करे, अविश्वासी में बिश्वास न करे और बिश्वासी में भी अधिक बिश्वास न करे, सदैव दूसरोंको अपना बिश्वास दिलावे परन्तु आप किसी दूसरे का बिश्वास न करे इसकारण चाहिये कि सब दशाओं में अपने आत्माकी रक्षाकरे धन और पुत्र देहसेही उत्पन्नहोतेहैं अविश्वासही को नीतिशास्त्रका उत्तम आशय कहतेहैं इससे मनुष्यों पर बिश्वास न करना ही अपना बड़ा हित है बिश्वास न करनेवाले निर्बलभी पराक्रमियों के हाथ से नहीं मारे जाते हैं और बिश्वासी पराक्रमी भी होकर निर्बलोंके हाथ से मारेजाते हैं इससे हे बिलार मुझको अपना आत्मा तुझ सरीखे जीवोंसे सदैव रक्षाके योग्य है तुमको भी उचित है कि पापी चांडालसे अपनी रक्षाकरो उस के यह वचन सुनतेही वह बिलार भयभीत होकर वृक्षको त्यागकर शीघ्रही बड़ी तीव्रतासे भागा वह पलित चूहा अपनी बुद्धिकी सामर्थ्य ऐसे वचन सुनाकर दूसरेबिल में चलागया इस प्रकार से इस निर्बल चूहेने अपनी प्रबल बुद्धिसे बहुतसे पराक्रमी शत्रुओं को स्वाधीन किया पंडित होकर समर्थ शत्रुसे सदैव संधिकरे मैंने क्षत्री धर्म चूहे और बिलार के दृष्टान्तसे तुमको सुनाया अब हे युधिष्ठिर इस का आशय भी मुझसे सुनो कि उनदोनों विरोधियों ने परस्पर में प्रीति करी और फिर परस्पर में मेल करने कीभी उन दोनों में इच्छाहुई ऐसे स्थान में ज्ञानी पुरुष बुद्धिके बलसे अच्छे प्रकार मिलाप करताहै ज्ञानी भूलसे भी अज्ञानियोंके साथमिलाप करता है इसकारण निर्भयता के समान भयभीत और बिश्वासी के सदृश बिश्वासको नहीं करता सावधान पुरुष चलायमान नहीं होताहै और जब चलायमान होताहै तब नाश को प्राप्त होता है समय पर शत्रुसे संधि और मित्रसे विरोध भी करना चाहिये यह सन्धिके जाननेवालोंने बारम्बार कहाहै हे युधिष्ठिर इस को जानकर शास्त्रके अर्थको निश्चय करके कर्ममें प्रवृत्त प्रसन्न चित्त होकर भयसे पूर्वही भयभीत के समान कर्मकरो, क्योंकि भ[illegible]धानी से उद्योग करने से बुद्धि उत्पन्नहोतीहै

और सम्मुख न आनेवाले भयमें भयभीत होनेवालेको भयनहीं प्राप्तहोता है और विश्वासयुक्त निर्भय से भी बहुत बड़ाभारी भय उत्पन्न होता है--जो पुरुष सदैव निर्भयहोकर घूमता है उसको बड़ी युक्तिसे मंत्रदेनाचाहिये कि अच्छेप्रकारसे जाननेवाला वह पुरुष अज्ञानी के समान उन लोगोंके पास जाय जोकि ऐश्वर्य्यमान हैं भयभीत विश्वासी के समान विश्वासकरने के कारण निर्भय के समान कार्य्योंकी महानता को पाकर मिथ्याकर्म नहीं करताहै हे युधिष्ठिर मैंने इसप्रकार यहइतिहासकहा इसको समझकर तुम मित्रों में बुद्धि के अनुसारकर्मकरो अर्थात् उत्तम बुद्धि और शत्रु मित्रके अन्तरको जानकर संधि और बिरोध के समय अपना बचाव जानके शत्रुको साधारण जान पराक्रमीसे मेलकर मिलापमें युक्तिके साथ कर्मकरो और मनोरथ सिद्धकरके विश्वास न करो--हे राजा यहनीति त्रिवर्ग से मिलीहुई है इसको काममें लाओ और फिर इसशास्त्रसे प्रजाकी अच्छी रक्षाकरके सावधानहो और तेरी यात्राभी ब्राह्मणों के साथ हो क्योंकि ब्राह्मण लोग इसलोक और परलोक में महाकल्याणरूप हैं और यही धर्मज्ञ और कृतज्ञ पूजितहोकर भला करनेवालेहैं इनका पूजन करनेसे परमकल्याण और यशकीर्तिको प्राप्तहोगे और न्यायपूर्वक परम्परा के समान घरानेकी संतानोंकोभी पाओगे--इसनीतिके अनुसार राजालोगोंको शत्रुओं के बीचमें बर्त्ताव करना चाहिये २२१॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिआपद्धर्म्मेअष्टमोऽध्यायः ८॥

# नवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाबाहो आपने मंत्र अर्थात् सलाहका वर्णन किया कि शत्रुओंपर विश्वास नहीं है जो राजा किसीपर बिश्वास न करे तो कैसे अपने सब राज्यकर्मकरे और विश्वाससे राजाओंको बड़ाभय उत्पन्नहोता है पृथ्वीकाराजा विश्वास रहितहोकरकैसे शत्रुओं को विजय करताहै इसअविश्वस्थता के वृत्तान्तको सुनकर मेरे चित्त में बड़ी अज्ञानताहै इससे मेरेसंदेह को दूरकरिये भीष्मजीबोले कि हे राजासुनो कि राजाब्रह्मदत्तके महलमें पूजनीनामपक्षीकी स्त्रीकेसाथ राजासे वार्त्तालापके द्वाराजो वृत्तान्तहुआ वहयहहै कि कांपिल्यनाम नगर में राजा ब्रह्मदत्त के राज महलमें पूजनीनाम पक्षिणी बहुत दिवस से रहतीथी यद्यपि वह तिर्य्यक्योनि में उत्पन्न हुई थी परन्तु सब सिद्धान्तों की ज्ञाता होकर सम्पूर्ण जीवोंकी भाषा जीव जीवके समान जानती थी (जीव जीवक पक्षियोंकी बोलीसे शुभ अशुभ जानने वाला होताहै) उसी महलमें उस पूजनी में एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ और उसी समय राजा के भी पुत्र हुआ तब वह पक्षिणी समुद्र के तटपर जाकर

दोनों बालकोंके निमित्त दोफललाई वह अमृतकेसमान सुस्वादु तेज बलका बढ़ाने वाला एक फल अपने पुत्रको और दूसरा राजकुमारको दिया उस फलसे राजकुमार की बड़ी वृद्धि हुई एक दिन धात्रीकी गोदमें बैठेहुये राजकुमार ने उस पक्षीके बच्चे को देखा और लड़कपन से उसके पास जाकर उससे खेलने लगा और खेलते २ उसखाली मकान में उस पक्षीको मारकर धात्रीकी गोदीमें आबैठा तदनन्तर वह फललानेवाली पूजनी आपहुँची और उस अपने बच्चेको राजकुमार से माराहुआ पृथ्वीपर पड़ा देखा और महाब्याकुल शोक से अश्रुपात डालती हुई उस पूजनी ने यह वचन कहा कि क्षत्री में न मिलाप है न प्रीतिहै यह क्षत्री लोग कारण से मीठेवचन कहकर दमदिलासा दिया करतेहैं और अपना मनोरथ करके उसको त्याग करते हैं सबप्रकार से अनुपकारी अकृतज्ञ क्षत्रियोंका विश्वास न करना चाहिये बुराई करके भी निरर्थक दिलासा देते हैं अब मैं भी इस शत्रुताका बदलादूंगी साथ उत्पन्न होकर बड़े होनेवाले और साथ भोजन करनेवाले और शरणागत में आनेवाले इनतीनों को मारने से तीन प्रकारका पातक है ऐसा कहकर दोनों पंजों से राजकुमार की दोनों आंखोंको फोड़कर आकाशमें जाकर यह वचन कहा कि इच्छा से किये हुये पापका फल इसलोक में शीघ्रही होताहै अर्थात् जैसा कर्म किया वैसा फलपाया क्योंकि कर्म का लोप नहीं होता जोकि किया हुआ पाप कर्म कर्त्तामें दृष्ट नहीं आताहै तो उसके पुत्र पौत्रादि में अवश्य दृष्टआता है राजा ब्रह्मदत्त ने अपने पुत्रको आंख रहित देखकर और जैसे कर्मका तैसाही फल जानकर उस पूजनी से यह कहा कि निश्चय हमारी ओर का दुष्कर्म है और तेरी ओर से उस कर्मका बदला है वह दोनों बराबर हुये सो हे पूजनी यहां से मतजाओ पूजनी बोली कि एकबार अपराध करनेवाले को उसीस्थान में शरण होनेवाला कर्म ज्ञानी लोग अच्छा नहीं समझते ऐसे स्थानसे अलगही होना कल्याणकारी है सदैव दम दिलासा देने से शत्रुका विश्वास न करे नहीं तो वह अज्ञानी शीघ्रही माराजाता है क्योंकि शत्रुता दूर नहींहुई परस्पर में शत्रुता करने वालों के पुत्र पौत्रादि को मृत्यु मारती है और पुत्र पौत्रादि के नाशहोने से उसके परलोक का भी नाशकरतीहै शत्रुसे अविश्वास करना सबप्रकार से सुखकारी है विश्वासघातियों का विश्वास कभी न करना चाहिये अप्रमाणीकमें कभी विश्वास न करे और प्रमाणीक में भी अधिक विश्वास न करे विश्वास से उत्पन्न होनेवाला भय मूल समेत काटता है दूसरोंको इच्छा के समान विश्वास करावे परन्तु दूसरोंका विश्वास न करे बांधवों में माता पिता सबसे श्रेष्ठ हैं और स्त्री वीर्य्य ग्रहण करनेसे

और पुत्र वीर्य रूप होनेसे श्रेष्ठ गिनेजाते हैं भाई शत्रुहै जिस को धनसे प्रसन्न करना पड़ताहै वह आत्माही अकेला मित्र होकर सुख दुःखका भोग-ने वाला है परस्पर में शत्रुता करनेवालों का स्नेह शुद्ध नहीं होता है वह सब बातें दूर हुई जिनके कारणमैं वहां रहती थी, धन और प्रतिष्ठा से पूजित पहिले बुराई करनेवाले जीवका चित्त अविश्वासी होता है और अपना कर्म्म मुझ सरीखे निर्बलकी रक्षा करता है जिस स्थान पर पहिले प्रतिष्ठाहो और पीछे अपमान हो उस स्थान में चाहे शत्रु बहुतसी प्रतिष्ठाभी करे परन्तु बुद्धिमान् वहां कभी न रहै, मैं तेरेमहल में बहुत कालतक अच्छे प्रकार से प्रतिष्ठा पूर्वकरही अब यह शत्रुता उत्पन्न हुई इससे आनन्द पूर्वक शीघ्रही जातीहूं, ब्रह्मदत्त ने कहा कि जो जीव कर्म्म के बदले कर्म्म करे उस स्थान पर अपराधी नहीं है उससे अऋण होता है इससे हे पूजनी निवास क-रो कहीं मतजाओ पूजनी बोली कि कर्त्ता और कर्म्म की मित्रता फिर नहीं होती है क्योंकि उस स्थान पर कर्त्ता और कर्म्मका हृदयही जानता है ब्रह्मदत्त बोला कि कर्त्ता और कर्म्म की मित्रता फिर भी होती है शत्रुता के दूरहोने से फिर वह पाप को नहीं भोगता है पूजनी ने क-हा कि शत्रुताका दूरहोना वर्त्तमान नहीं है मैं दम दिलासा दीजाती हूं यह बिश्वास न करे क्योंकि लोक में बिश्वासही से माराजाता है इसकारण अलगहोनाभी कल्याणकारी है जो लोग कि बड़े तीव्रशस्त्रों से भी वि-जयनहीं होसक्के वह मीठे बचन और दिलासासे पकड़ेजातेहैं जैसे कि हाथी हथिनियों के द्वारा—ब्रह्मदत्त बोला कि जीव नाश करनेवाले जीवों में भी साथ निवास करने से प्रीतिउत्पन्न होतीहै और परस्पर बिश्वासहोता है जैसे कि चांडाल के साथ कुत्ते का होता है परस्पर शत्रुताकरनेवालों के सहबास होनेसे मृदुतायुक्त शत्रुभाव से ऐसे नहीं होताहै जैसे कँवलपर वर्त्तमान जल-पूजनीबोली शत्रुता पांचस्थानों से उत्पन्न होती है उसको पण्डितहीजानते हैं प्रथम तोस्त्रीके कारण से--दूसरी पृथ्वीसे--तीसरीबचनोंसे--चौथी स्वाभा-विक्रीय--पांचवींअपराध से उत्पन्नहोनेवाली--शत्रुता के स्थान पर बल और अबल के दोषको जानकर बिशेषकर क्षत्रीकी ओर से प्रकट वा अप्रकट बांछित बस्तुका देनेवाला मारने के योग्यनहीं है परंतु इस लोक में शत्रुता करनेवाले मित्र में भी बिश्वास न करना चाहिये जैसे कि लकड़ी में गुप्त अग्नि होती है उसीप्रकार शत्रुता भी गुप्तरहा करती है हेराजा क्रोधकीअग्नि न धनदेनेसे न कठोर और मीठे बचनोंसे किन्तुशास्त्रों से शान्तहोतीहै जैसे कि सागरकी बड़वानल अग्नि--हे राजा शत्रुता से प्रकटहोनेवाली अग्नि और अपराध से उत्पन्न होनेवाला कर्म्मभी शत्रुको विध्वंसकिये बिना शान्त

नहींहोता है, पहिले बुराई करनेवाले और पीछे धनप्रतिष्ठासे सत्कार पाने वालेको मित्रकरनेकेयोग्य विश्वासनहीं होताहै क्योंकि निर्बलोंको अपना कर्महीं रक्षाकरता है किसी बुराई के कारण जैसे मैं तुझपर विश्वास नहीं करतीहूं और वैसेही आप भी मुझपर विश्वास नहींकरतेहो--मैं तेरे घरमें रहतीथी परंतु अब नहीं रहूंगी ब्रह्मदत्त बोला कि करने और न करनेके योग्य अनेक काम कालसे किये जाते हैं यह सबकर्म्म समयपरहोते हैं इसलोकमें कोई किसीका अपराध नहीं करता है जन्ममृत्यु दोनों बराबर वर्त्तमानहोतेहैं यहकालही पैदाकरता है और वहीमारताहै कितनेही एकही साथ परस्परमें मारे जाते हैं दूसरे परस्पर नहीं मारेजाते हैं जैसे अग्नि इंधन को भस्मकरती है इसीप्रकार काल सबको भस्मकरता है हे पक्षिणी हम और तुमदोनों किसीका कोई कारण नहीं है कालही संसार के सुख और दुःख को उत्पन्न करता है इससे हे पूजनी बड़ीप्रसन्नतासे अविनाशी होकर यहां निवासकरो तुमने जो किया वह मैंने क्षमाकिया और हमारेकरने को तुम भी क्षमाकरो पूजनी बोली कि जो कालही से सबहोता है तो एकको एकसे शत्रुता न होनीचाहिये बांधव किसकारण से मारेहुये बांधवों के द्वारा हानिको पाते हैं जो कालहीसे सुख दुःख और हानि लाभ है तो प्राचीनसमय में देवता और राक्षसों में क्यों परस्पर युद्धहुआ जो कालही सबका हेतुहै तो वैद्य रोगियों को औषधियोंसे क्यों चिकित्साकरते हैं और जीवोंके शोकसे पीड़ामानक्यों विलाप को करतेहैं किसकारण से कर्त्तालोगों में धर्म्म वर्त्तमान है तेरेपुत्रने मेरेपुत्रकोमारा वह मेरे हाथसे मारागया तदनन्तर हे राजा मैं तेरेहाथ से मारने के योग्यहूं मैं पुत्रके शोक से तेरेपुत्र के साथ पापकर्म्माहुई मैं तेरेहाथसे जैसे मारने के योग्यहूं उसको व्योरेसमेतसुनो--मनुष्यपक्षियों को भोजन और क्रीड़ाकरने के लिये चाहाकरते हैं उनको पक्षियोंको पकड़ना या मारनाइस के सिवाय तीसरा मिलाप हितकारी नहीं है यह सब जीवघात और बंधनके भयसे मोक्षतन्त्रमें रक्षावान्हैं वेदकेज्ञाताओंने दुःखको मरणकेउत्पातसे उत्पन्न होनेवाला कहा है प्राण सबकोप्याराहै और पुत्रसबकेप्रियहैं सबदुःखसेडरतेहैं और सुखसबको अभीष्ट है हेब्रह्मदत्त बुढ़ापाहोना और धनका हाथसे जाना यही दुःख है और अप्रिय के साथभी रहना दुःख है और हितू बांधवों से पृथक् रहनाभी दुःख है घात और बंधन से उत्पन्न होनेवाला दुःख है, स्त्री से संबंध रखनेवाला दुःख है इसीप्रकार देह से उत्पन्न होने वाला भी दुःख है, विरोधी पुत्रसे सदैव दुःख है, ऐसे २ दुःखों को जानकर भी इन्हींबातों में अधिक प्रवृत्तहोता है कितनेही अज्ञानी लोग दूसरे के दुःखको दुःख नहीं मानते हैं जो दुःख को नहीं जानता है वह बड़े मनुष्यों में बाद करता है

और जो अपने देह में सब दुःखों का जाननेवाला है वह दूसरे में भी वैसा-ही मानता है और दुःख से पीड़ित होकर शोचभी करता है वह कैसे कहने को समर्थहो हे ब्रह्मदत्त जो तुमने मेरा उपकार किया और जो मैं तुम्हारा किया वह बहुत कालतकभी चित्तसे दूरहोने को असम्भव है हमदोनोंका काम परस्पर में है अब संधि नहीं होसक्ती पुत्रको याद करके तेरी शत्रुता नवीनहोगी, जो शत्रुता के समीप होकर मित्रता चाहता है वह इस प्रकार कभी नहींहोती जिस प्रकार टूटी मिट्टी के पात्रकी सन्धि नहीं होती है अपने प्रयोजन के शास्त्र जाननेवाले जीवोंपर बिश्वास करना निश्चयकरके शोकका उदय करनेवाला है-प्राचीन समय में शुक्र जीने प्रह्लादजी से दो कथाकही हैं कि जो जीव शत्रुओं के सत्य बचन अथवा मिथ्या बचनोंपर श्रद्धाकरता है तो वह श्रद्धाकरनेवाले ऐसे मारे जाते हैं जिसप्रकार लोभरूपी शहदसे सूखेतृणोंसे ढकीहुई पृथ्वीपर गिरनेवाले लोग दुःखसे होनेवाली घराने की शत्रुता दूरनहीं होती है परन्तु उसमें शिक्षा समाधान करनेवाले बहुत होजाते हैं हे राजा शत्रुताओं को करके दमदिलासा देते हैं परन्तु किसी समय उसको ऐसे मारते हैं जैसे कि भरेहुये घड़े को पत्थरपर राजा इसलोक में किसीका पापकरके सदैव बिश्वास न करे क्योंकि दूसरों का अपमान करने वाला बिश्वाससे दुःखको भोगता है-ब्रह्मदत्त बोला कि कोई भी विश्वासके बिना मनोरथों को सिद्ध नहीं करसक्ता है और न कुछ इच्छा करसक्ता है लोगपूरेभयसे सदैव मृतक के समान रहते हैं, पूजनी बोली कि जिस के दोनों पैरों में फोड़ा फुंसी है और पैरों से चलता है उसके दोनोंपैर घायलहोते हैं जोपुरुष पीड़ामान नेत्रोंसे हवाकी ओर देखता है उसकी आंखोंको वह हवा महापीड़ादेती है-जो पुरुष कुमार्ग को प्राप्त होकर अपने पराक्रम को जानकर भूल से उस में चलता है उसका जीवन उसी मार्ग में समाप्त होता है, जो बर्षा न होना जानकर खेतको जोतता है वह खेतीके फल को नहींपाता है, जो पुरुष तिक्त कषाय मधुरआदि रसों को बिचार पूर्वक पथ्य सेखाता है वह नीरोग होता है और जो पुरुष पथ्य भोजन को छोड़के परिणाम को न जान के अज्ञानता से दुष्टभोजन को खाता है उसकी मृत्युहोती है प्रारब्ध और उद्योग परस्पर में एक एकको रक्षा में वर्त्तमान हैं-बड़े साहसी पुरुषों के कर्म श्रेष्ठ हैं, नपुंसक लोग प्रारब्धको ही रोयाकरते हैं-सब को अपनी वृद्धिकरनेवाला काम करनाचाहिये चाहे वह सुगमहो या कठिन हो क्योंकि निकम्मा निर्धन मनुष्य सदैव अनर्थों से ग्रसित होता है इस से सब को त्यागकरके पराक्रम करना चाहिये मनुष्यों को अपने हितके लिये सब धनभी त्यागना योग्य है विद्या, शूरता, विज्ञता, वैराग्य, धैर्य्य यह सब

देहके साथ उत्पन्न होनेवाले मित्र कहेजाते हैं अर्थात् इसलोकमें इनगुणोंके द्वारागुणी होते हैं सुवर्ण रत्न छत्र स्त्री और सुहृदजन यह सब हितकारी हैं इनको सब स्थानोंपर पुरुष पाता है और ज्ञानी पुरुष उनको सर्वत्रपाकर सबस्थलों में विराजमान होता है कहीं उसको कोई नहीं डराताहै और जो कोई डराताभी है तो वहभयनहीं करता है बुद्धिमान्‌का थोड़ाभी धन वृद्धि को पाता है और असावधानी से करनेवालेका कर्म्म अचेतता से रुकावट को पाता है प्रीति में बद्ध निर्बुद्धी मनुष्यों के मांसों को खोटी स्त्रियां अपने अपराधों से पीड़ा देती हैं अर्थात् ऐसे सुखादेती हैं जैसे कर्कश मनुष्यको उसकी सन्तान यहघर, क्षेत्र, मित्रदेश अपना है इसप्रकारकी बुद्धिकी विपरीततामें मनुष्यपीड़ित होते हैं रोग और दुर्भिक्षता के कारण अपने देशसे भागकर दूसरे स्थानमें रहनेको जाय या सदैव सुरक्षित होकर रहै इससे हे राजा मैं दूसरेस्थान में जाऊंगी यहां रहने को चित्तसे नहींचाहती हूं क्योंकि मैंने तेरेपुत्रकेसाथ यह बहुत पाप कर्म कियाहै खोटीभार्य्या कुपात्रपुत्र अन्यायीराजा खोटी मित्रता–खोटा नाता–और खोटादेश इनसबको दूरहीसे त्यागकरे—क्योंकि कुपात्र पुत्र में विश्वास नहीं—कुभार्य्या में रतिनहीं—खोटेराज्य में सुख नहीं—खोटेदेश में जीविका नहीं—सदैव निर्मूल मित्रता वाले खोटेमित्र में मिलाप नहीं—धनके नाशहोने से खोटी नातेदारी में अपमान होता है जो प्यारे वचन कहती है वही भार्य्या है—जिससे सुख उत्पन्न होताहै वही पुत्रहै–जिसमें विश्वास है वहीमित्रहै—जिसमेंजीवनहोताहै वहीदेश है-जिसदेशमें अन्याय और भयनहींहै और कठिन आज्ञादेनेवाला राजा निर्द्धनोंकी रक्षाकरना चाहताहै उसीगुणवान् धर्मज्ञ राजाकेपास भार्या देश-मित्र-बेटे–नातेदार-बांधवहोते हैं धर्म्म न जाननेवाले राजाकेदण्डसे प्रजानष्टहोती है क्योंकि राजा धर्म्म अर्थ कामकामूल है इसकारण से बड़ी सावधानतापूर्वक राजाको प्रजाकीरक्षा करनी चाहिये पृथ्वीके छठेभागकोलेकर अच्छे प्रकारसे खर्चकरे जो प्रजाकी रक्षानहीं करता है वह राजा चोरहै जो राजा आप अपनी निर्भयताको प्रकटकरकेधनके लोभसे उसको प्रमाणनहीं करताहै वह अधर्म्मी सब प्रकारके लोभसे पापीहोकर नरकको जाताहै और जो राजा अपनी निर्भयता प्रकटकरके प्रमाण पूर्वक धर्म्मसे प्रजापालन करता है वह राजा सबका सुखदायीहै—प्रजापतिमनुजीने—मातापिता–रक्षक–गुरू—अग्नि–कुबेर—यमराज इन सात राजाके गुणोंका वर्णन कियाहै जो राजा प्रजाकेऊपर कृपाकरता है वह पिताकेसमान है उस के साथ मिथ्याकर्म्म करनेवाला मनुष्य तिर्य्यग्योनिकी यातनाकोपाताहै- जो माता के समान बृद्धिको चाहताहै और दुखियाओंका पोषणकरता है और अग्निकेसमान श-

त्रुओंको ऐसे भस्मकरताहै जैसे कि यमराज पापियों को दण्ड देता है मित्रों में धनों को त्याग अर्थात् उनको देता कुबेरके समानहै मनोरथों का देनेवाला है और धर्म का उपदेश करने से गुरु के समान और चारोंओर से रक्षा करने से रक्षिक है, जो राजा अपने गुणोंसे पुरबासियों और देशबासियों को प्रसन्न करता है और देशकी रक्षा से उसकी प्रजा दुखी नहीं होतीहै वह देश भरका प्यारा होकर इसलोक और परलोक दोनों में आनन्द भोगता है जिसकी प्रजा करों के देने से पीड़ित भयभीत होकर सदैव अनर्थोंसे नाशहोतीहै वहराजा भी नाशहोजाताहै जिसकीप्रजा अधिक वृद्धि पातीहै वह राजा स्वर्गलोक में प्रतिष्ठापाताहै हे राजा बलवान् से बिरोध करना कभी कोई अच्छा नहीं कहता है जिसका बिरोध बलवान्से होताहै उसका राज्य कहां और सुख कैसे होसक्ताहै—ऐसा क कर वह पक्षिणी राजा को खूब जतलाकर अपनी दिशाकोगई हे राजा यह मैंनेपूजनीकेसाथ ब्रह्मादत्तकावर्णनंकिया अब दूसरी कौनसीबात सुनाचाहताहै ११२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेनवमोऽध्यायः ९ ॥

## दशवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले हे पितामह युगके अन्त में लोकके धर्म्मक्षीण होने से चोरों से पीड़ामान होनेपर राज्य में किस प्रकारसे वर्त्तमान होना चाहिये-भीष्मजीबोले कि हे युधिष्ठिर इसस्थानपर मैं तुझ से उस नीतिका वर्णन करताहूं जोकि आपत्तिकालोंमें उपकारी होती है कि समयपर दयाकोभी त्यागकर जैसे कि कार्य्य करना चाहिये प्रथम इसस्थान में इसप्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें राजा शत्रुंजय और भारद्वाजऋषिका परस्पर में प्रश्नोत्तर है सौबेरदेश में महारथी राजा शत्रुंजय होताहुआ उसने किसी समय भारद्वाजऋषिके समीप जाकर अर्थके निश्चय को पूछा कि महाराज अप्राप्त वस्तु की इच्छा कैसे करनी उचित है और प्राप्तहुई वस्तुको कैसे बढ़ावै और वृद्धि को प्राप्तहुई वस्तुकी कैसेरक्षाकरे और उस रक्षितवस्तु को कैसे खर्चकरेअच्छे प्रकारसे निश्चयकियेहुये अर्थके लिये अर्थ निश्चयको पूछेहुये ब्राह्मणने इस सहेतुकउत्तम बचन का उससे कहाकि सदैव दण्डजारी करनेवाला और उद्योग करनेवाला कोई दोष न करनेवाला और दूसरे शत्रुओं के दोषोंका देखनेवाला और उनके दोषोंका पकड़नेवाला होना चाहिये-सदैव दण्डधारी राजा के मनुष्य अत्यन्त भयभीत होतेहैं इसकारण सब जीवोंको दण्डसेही स्वाधीन करे मुख्यता के देखनेवाले पंडितलोग दण्डही की प्रशंसा करते हैं इसीहेतु से चारोंनीतों में दण्डही उत्तम कहाजाता है, जिस देश का मूल

काटागया उसमें सबके जीवन का नाशहुआ जब कि वृक्षका बीजही नष्ट होगया तो उसकी शाखा कहांसे नियतहोगी—बुद्धिमान् पंडित राजाको उचित है कि पहलेही शत्रुकेपक्ष की जड़को काटडाले तदनन्तर उसके सहायकों को मारे और उसके मूलको अपनेस्वाधीन करे—आपत्तिकाल के आनेपर नेक सलाह और सुन्दर पराक्रम और युद्धको करके समय पाकर बिना बिचारे युक्तिके साथ भाग भी जाय केवल बातें तो मृदुता से करे परन्तु हृदय में छुरे के समान रहै और सफाईके साथ वार्तालाप करनेवाला होवे और काम क्रोध को त्यागकरे अपनाकाम शत्रुके आधीन होजानेपर विश्वास के साथ संधि न करे और बुद्धिमानी से अपनाकाम सिद्धकरके शीघ्रही उस से पृथक् होजाय—मित्रोंके समान मीठेवचनों से शत्रु को बिश्वास युक्तकरे और सदैव उससे ऐसा भय करता रहै जैसे कि सर्पयुक्त घर से करते हैं शत्रुओंको बुद्धिके अनुसार विजयकरे और उन को व्यतीत वृत्तान्तोंसे दृढ़ताकरावे और दुर्बुद्धीको भविष्यतहोनेवाले वृत्तान्तोंसे विश्वास करावे और पंडित को उस समय के योग्य बचनोंसे धीरज करावे हाथजोड़ना शपथखाना मीठेवचन बोलनाभी उचित है और शिरको झुकाकर नमस्कार करना भी योग्य है और ऐश्वर्य्य के चाहनेवाले को शत्रुकी सफाई अश्रुपातों से भी करनी योग्य हैं जबतक समय अनुकूल न हो तबतक शत्रु को अपने कन्धे की सवारी में भी लेचले और समय वर्त्तमान होनेपर इस प्रकार से मारे जैसे कि पत्थरपर घटको मारते हैं हे राजेन्द्र एकमुहूर्त्त पर्य्यन्त तिन्दुक आलापवत् क्रोधाग्नि में संयुक्त होजाय बहुतसे मनोरथों का चाहनेवाला पुरुष कृतघ्नी मनुष्योंसे अर्थ सम्बन्ध न करे क्योंकि अर्थी पुरुष तो भोगने को समर्थ होता है और मनोरथ सिद्धकरनेवाला अपमान करता है इसीकारण से सबकामोंको पूरा न करावे और कोकिल, शूकर, पर्वत खाली मकाननट और भक्त मित्रका जो कल्याणकारी कर्म्महै उसको करे अर्थात् कोकिल तो अपने बालबच्चोंका पोषण दूसरेसे चाहताहै इसीप्रकार राजाभी रक्षाआदि कर्म प्रजा से करावे और बराह जड़को खोदताहै इसीप्रकार शत्रुओं कीजड़ राजा उखाड़े और मेरु पर्वत में दृढ़ता और उल्लंघनका न होनाहै इसीप्रकार राजा अपनी दृढ़बुद्धीको चाहै खाली मकानसे प्रयोजन धनके आमदनी है और नट से बहुतरूप धारण करना प्रयोजन है और भक्त मित्र अपने मालिक का उदय चाहता है इसीप्रकार राजाको भी अपनी प्रजाका उदय करना योग्य है मिलाप करनेवाला सदैव उठउठकर शत्रुके घरमें जाकर उसकी कुशलक्षेम पूछाकरे चाहै कुशल न भी हो तौभी पूछै और सुस्त नपुंसक, भगनेवाले संसारकीबातों से भयभीत और सदैव प्रारब्धहीका भरोसा

करने वाले मनुष्य कभी मनोरथों को सिद्धनहीं करसक्के, शत्रु जिसके दोष को न जाने परन्तु शत्रुकेदोषोंको आपजाने कछुये के समान अपने अंगों को छिपाये रहे और अपने दोषोंकी रक्षाकरै और बगले के समान अर्थोंको बिचारकरताहुआ सिंहकी समान पराक्रमकरके भेड़ियेकेसमान मारकर खर- गोस के सदृश भागे और मद्यपान, पांसा, स्त्रीसंग, शिकार, गीतवाद्यआदि को बड़ीयुक्ति पूर्वककरे और बहुतसे प्रसंगों का करना महादोषहै धनुष को तृणरूप बनाकर मृगों की शय्यापर शयन करे समयपर सूझताभी अन्धा और बधिरबनजाय और अपनी बुद्धिमानी से देश कालको अनुकूल जान के पराक्रम करे क्योंकि देशकाल के अनुकूल हुये बिना पराक्रम करना वृथाहोजाता है अपनी सबलता निर्बलता को और समय असमय को और परस्पर के बलको अनुमान करके उसकर्म्म में प्रवृत्तहो जोराजा दण्डकेद्वारा झुकेहुये शत्रुको अपने स्वाधीन नहीं करताहै वह अश्वतरीके गर्भके समान अपनी मृत्युको प्राप्त करता है सुन्दर पुष्पित होकर अफलहो और फलवान् होकर कठिनता से चढ़ने के योग्यहो कच्चे पकेआमकी सूरतबनै परन्तु कभी मुरझायाहुआ न बनै आशा को समयपर होनेवाली समझै और उसको वि- घ्नमें न डाले और विघ्नको निमित्त के द्वारा और निमित्तको हेतुकेद्वारा वर्णनकरे, जबतक भय सन्मुखनआवे तबतक भयभीतके समानकर्म करे और आयेहुये भयको देखकर निर्भयके समान दूरकरना चाहिये, मनुष्य संशयपर चढ़ेबिना कल्याणको नहीं देखसक्ता जब संशयपरचढ़कर जीवतारहताहै तभी कल्याणको देखताहै सन्मुख न आयेहुये भयको अच्छेप्रकार से जाने और सन्मुख में वर्तमानहुये भयको दूरकरे फिर उसकी वृद्धिके भयसे कुछ शेषरहे के समानदेखे सन्मुखमें वर्तमानकालके सुखकात्यागना और पीछेसे प्राप्तहोने की आशाकरना यह बुद्धिमानों का मतनहींहै जो शत्रुके साथ मिलापकरके बिश्वास पूर्वक सुखसेसोताहै वह वृक्षकी सबसे ऊंची नोकपरसे सोताहुआ गिरकर सावधान होता है जैसे बने तैसे मृदु और कठोरकर्म्म के द्वारा अपने दीनआत्माको बचावै और समर्थहोकर धर्मकरे, जो शत्रुओं के शत्रुहैं उनसबसे स्नेहकरे और शत्रुके नियतकियेहुये दूतोंको और अपने जासूसोंको भी जानना अवश्य है अपना जासूस शत्रुका बिनाजाना गुप्त नियत कर- ना चाहिये पाखंडी तपस्वियोंको शत्रुके देशमें प्रवेशकरादे, उद्यान बिहार स्थान प्याऊआदि पीने के स्थान प्रवेश स्थान तीर्थस्थान और सभा आदि के स्थानों में वह मनुष्य आते हैं जोकि मारण आदि कर्म्मरूप धर्म रखने वाले महापापी संसार के कंटकहैं उनको पहचान २ कर स्वाधीनकरे अथवा मारडाले और अविस्वस्थ मनुष्योंमें बिश्वासनकरे और विस्वस्थमेंभी अधिक

विश्वास न करे परीक्षाकियेबिना विश्वास करनेसे भयप्राप्तहोताहै, सिद्धान्त रूपकारण से शत्रुको विश्वासदिखाकर फिर किसीसमय राज्यके चलायमान होनेपर उसको मारे, बिना संदेह में भी संदेहकरे और संदिग्ध मनुष्यपर तो सदैवही संदेह करतारहै, असंदिग्धसे भी उत्पन्न होने वाला भयमूल समेतको काटताहै सावधानी और मौनता कापायवस्त्र, जटा, मृगचर्मआदिसे शत्रुओंको विश्वास कराके भेड़िये के समान घातकरे बेटा भाई पिता मित्र आदि भी जो प्रयोजन में हानिकारकहों वह ऐश्वर्य्य चाहनेवाले राजासे मारनेके योग्य हैं; अहंकारी कर्त्तव्य अकर्त्तव्य के न जाननेवाले कुमार्गगामी गुरुभी शासनारूपी दण्ड के योग्यहैं, तीक्ष्णचोंच वाले पक्षी के समान अभ्युत्थान और नमस्कार वा कुछदेनेसे शत्रुकेफूल फलोंको नाशकरे, शत्रुकेमर्मस्थानों को न काटकर और भयकारी कर्मकोभी न करके जो मछलीमारों के समान न मारे तो बड़ी लक्ष्मीको नहींपाता है, जन्मसेही शत्रुमित्र नहींहोते केवल सामर्थ्य के होनेसे शत्रुमित्र उत्पन्न होजाते हैं, शोकयुक्त बचनोंको कहता हुआ भी शत्रुनहीं छोड़नेकेयोग्यहै, प्रथम तो अपराधीको मारे उसमें दुःख न माने और दूसरेके गुणों में दोप न लगानेवाले मनुष्यको इकट्ठा करके कृपाकरना चाहिये और ऐश्वर्य्यका चाहने वाला उनको युक्ति पूर्वक दण्डभी देसक्ताहै, जो घातकरता हुआ प्यारे बचन कहै और घातकरके प्यारे उत्तरको भी दे और तलवारसे शिरकोकाट शोचकरके रोदनकरे, मीठे बचन पूर्वकप्रतिष्ठा और सहनशीलतासे उनको अपने सामनेकरे, ऐश्वर्य्य चाहने वाले को यह पुरुषोंकी प्रसन्नता करनेकेयोग्य है सूखी शत्रुताको नहीं करे नदीको भुजाओं से इसप्रकार न तरे जैसे कि गौके सींगकाखाना निरर्थक और आयुर्दाका घटानेवाला दांतोंका तोड़नेवाला नीरसताका देनेवालाहै, धर्म अर्थ काम यह त्रिवर्ग तीनप्रकारकी पीड़ारखनेवाला है अर्थात् धर्म्मसे अर्थकी और अर्थसे धर्म्मकी और कामसे अर्थ धर्म्म दोनोंकी पीड़ाहोतीहै और इनके फल भी इसीप्रकारके हैं अर्थात् धर्म्मका फल अर्थ और अर्थका काम और कामकाफल इन्द्रियोंका प्रसन्नकरना है, धर्म्मकाफल चित्तकी शुद्धी और अर्थकाफलयज्ञ और कामकाफल केवल जीवन यह सब फल उत्तमहैं ऐसे फल को जान करपीड़ाकोत्यागकरे जैसे कि ऋणकाशेष और अग्निशेष है उसी प्रकार शत्रुओं के शेषभी बारम्बार बढ़तेहैं इसकारण किसीप्रकारकी बाकीको न छोड़नाचाहिये जैसे वृद्धिपायाहुआ ऋणवर्त्तमान होताहै उसीप्रकार हाराहुआशत्रु और ध्यान न कियेहुये रोगभी बड़े भयको उत्पन्नकरतेहैं विपरीत रीति से कर्म्म न करना चाहिये सदैव सावधानरहै, अच्छेप्रकार न निकाला हुआ कांटाभी बहुत कालतक पीड़ादेताहै, मनुष्यों के मारने और मार्गों के

दोषी करने और स्थानों के तोड़ने आदि से शत्रु के देशको नष्ट न करे, गिद्ध के समान दीर्घदृष्टि बगले के समान निश्चेष्ट कुत्तेके समान जागने वाला और चोरका जाननेवाला सिंहके समान पराक्रमी और निर्भय और काक के समान दूसरे की अंगचेष्टाओं को जाननेवाला हो और सर्प के समान अकस्मात् शत्रुकेगढ़ आदि में प्रवेशकरे और शूर भयकारी शूरवीर को हाथजोड़ने से और भेदकरके और लोभीको धनसे अपनी ओरकरे, संमानसे युद्धकरना योग्यहै, प्रतिष्ठित नौकरोंके मिलाने से और शत्रुओंकी ओरसे अपनेमित्रोंके बहकानेपर बिरोध वा अबिरोधतामेंभी मंत्रियोंकीचारों ओर से रक्षाकरे, यह मृदुस्वभाव है ऐसा जानकर अपमान करते हैं और उग्रस्वभाव जानकर भयभीत होते हैं इसकारणसे तेजीके समय तेजहोजाय और नरमीके समय नरमहोजाना योग्यहै नरमीसे तो नरमकोकाटो क्योंकि नरमीसे भयउत्पन्न करनेवाला राजा शत्रुको मारता है नरमी से सब काम सिद्ध होते हैं इसीसे नरम आदमी बड़ातीव्रहोता है जो समय पर मृदु और क्षमावान्होता है वह सब कामोंको सिद्धकरके शत्रुकोभी बिजयकरता है पण्डित के साथ बिरोधकरनेवाला यह बिश्वास न करे कि मैं दूरबर्त्तमानहूं क्योंकि बुद्धिमान्की दोनोंभुजालम्बी होतीहैं वह घायलहोकर भी उनदोनों भुजाओंसे मारताहै, जिसकापारहोनानहींहै उसकोनहीं तरनाचाहिये--जिस को दूसराहरले उसकोनहींहरे-जिसकी जड़कोनहींउखाड़े उसकोनहींखोदे-जिसकेशिर को नहीं गिरावे उसको नहींमारे--मैंने आपत्तिकालसे संबंध रखनेवाला यहबचनकहा इसको पुरुषकभी न करे परंतु शत्रुकी ओरसे युद्ध के लिये बुलायेजानेपर अवश्यकरे-हित चाहनेवाले ब्राह्मणके बुद्धिके अनुसार कहेहुये बचनों को सुनकर बड़ेबुद्धिमान् सुतीर देशके राजाने उनबचनोंको उसीप्रकार करके बांधवोंसमेत राजलक्ष्मी को भोगा ७१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणि आपद्धर्म्मेदशमोऽध्यायः १० ॥

# ग्यारहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह सबलोकों से उल्लंघन कियेहुये उत्तमधर्म्म के नष्टहोने और अधर्म्म धर्म्मरूपहोने और धर्म अधर्म रूपहोनेमें, मर्यादाका नाशहोने और निश्चयधर्म के नियतन्नहोने से राजाओं और दूसरेआदमियोंसे भी लोकके पीड़ामान् होनेपर सब रक्षास्थानों के बिरोधी शास्त्रहोनेमें कर्मोंके नाशहोने और कामलोभ मोहसे भयके देखने से अविश्वास और भयभीतहोने, छलसे घायल होने, और परस्परमें छलकरनेसे, देशोंमें अग्नि लगने और ब्राह्मणों के अत्यन्त पीड़ितहोने और मेघोंसे वर्षा न होनेमें प-

रस्पर भेदके उठने से, पृथ्वीकी सबजीविका चोरोंके आधीनहोने और नीच कालआने पर ब्राह्मण कौनसी आजीविका करके अपने पुत्र पौत्रादिसमेत आपत्तियोंमें जीवनकरै इसको आप कृपाकरके कहिये और हे परन्तप लोक के पापरूप होजानेपर राजा किसप्रकारसे कर्मकरे और कौनरीतिसे धर्म अर्थकानाश न हो—भीष्मजीबोले कि हे महाबाहो मनोरथोंको सिद्धकरके उनकी रक्षाकरना और अच्छीबर्षाका होना यह सब राजाको दृढ़ रखनेवाली हैं--प्रजाओं में रोगोंकाहोना और मरणआदि सबभयभी राजाकोही मूल रखने वालेहैं और हे राजा सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग यह सब भी राजमूल हैं यह निश्चय मेरामत है तब प्रजाओंका दोष उत्पन्नकरनेवाले उसकालके निकटआनेपर पूर्णबुद्धिके पराक्रममेंदृढ़होकर जीवनकरनायोग्य है इसस्थानपर इसप्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसमें चाण्डालके घर में विश्वामित्र ऋषि और चाण्डाल से वार्त्तालाप हुई थी कि त्रेता और द्वापर के संधिमें दैवके रचेहुये बिधान से बारहबर्षका भयानक दुर्भिक्ष संसार में प्राप्तहुआ अर्थात् त्रेता के अंत में और द्वापरके प्रारम्भ में बड़ीवृद्धि पाईहुई प्रजापर इन्द्रने वर्षा नहींकी और बृहस्पतिजी तिरछेहुये और बिपरीतचि- ह्नवाले चन्द्रमा दक्षिणमार्गकोगये तब धूमभी नहींहुआ तो बादल कहांसे होय नदियों में बहुतकम जल रहगया और कितनीहीं तो गुप्तहोगई और सरोवर, नदियां, कूएं, झिरने भी ईश्वरकी आज्ञा से कुरूप होगये तब पृथ्वी इसप्रकार की होगई कि छोटे तालाब तो सूखगये और प्याऊ आदि बंदहो- गई यज्ञ वेद बन्दहोकर वषट्रूप मंगल से रहितहुये खेती और गौओं की रक्षानष्टहोगई दूकानों में बस्तुओं का बेचना बन्दहोगया यज्ञस्तंभ की सामग्री गुप्तहुई और महाउत्सवों का नाशहुआ अस्थियों के ढेरों में भूतों केशब्द होनेसे सबलोग व्याकुलथे जिसके नगर ग्राम और बहुतसे स्थान समाप्तहुये कहींबिषसे कहींशस्त्रोंसे कहींदुखी राजाओंसे और परस्परके भय से भी मनुष्योंसे रहित होकर उजाड़ होगये और देवताओंके मन्दिर भीनहीं रहे और वृद्धमनुष्यों का अपमान होताथा गौ, भेड़, बकरी, भैंसोंसे रहित परस्परमें घायलथे जिसमें ब्राह्मण और रक्षाकरनेवाले मारेगये और औषधि- यों के समूहनष्ट हुये और सबपृथ्वी वृक्षोंकेसूखनेसे श्मशानके समान अग- म्या होगई यहांतक हुआ कि उसमहाकाल के समयमें परस्परमें मनुष्य मनु- ष्य को खानेलगे ऋषिलोग भी अपने २ नियम और अग्नि देवता आदि को अत्यन्तछोड़ आश्रमोंको त्याग इधरउधरको भागगये तदनंतर क्षुधा में आतुर बुद्धिमान् महर्षि बिश्वामित्र भी आश्रमको त्यागकर चारोंओरको दौड़े स्त्रीपुत्रोंको किसीबसेहुये स्थान में छोड़कर भक्ष्य अभक्ष्य को एकसा

जानकर अग्नि और स्थानसे रहितहुये दैवयोग से इधर उधर फिरतेहुये उसऋषि ने कहीं जीवों के घातक किसी चाण्डाल के स्थानकोपाया वह स्थान फूटेकलशोंसे भराहुआ कुत्तेके चर्म्म छेदनेवाले यंत्रोंसेव्याप्त शूकरऔ गधोंकीटूटीहड्डियों और कपालोंसे संयुक्त मृतकोंके बस्त्रोंसे घिराहुआ नरोंकी मालाओंसे शोभित सर्पकी कांचलियों के हारोंसे चिह्नित मठवाला मुर्गों के अत्यन्त शब्दों से पूरित और गधोंके शब्द से परस्पर में शब्दकरके युद्ध करनेवाले और शब्द करनेवाले गधों के वचनोंसे और उलूकपक्षियों की धुनि और देवमन्दिरों से संयुक्त लोहेके घंटों से भूषित कुत्तोंके समूह से घिरा हुआथा उसघरमें भोजन के खोजमें महाव्याकुलहो विश्वामित्रपहुंचे वहां जाकर भी भिक्षा मांगनेवाले विश्वामित्र ने फल मूल मांसआदि कोई वस्तु नहींपाई तब तो महादुःखी हो भूख से निर्बल विश्वामित्रघबराके पृथ्वी पर गिरपड़े और चिन्ताकर के विचार किया कि मैं कौनसा उत्तम कर्म्मकरूं और कैसेमृत्यु नहींहोती वहां विश्वामित्रने चांडाल के घरमें शीघ्रता से यंत्र के काटेहुये कुत्ते के मांस के खंडोंको फैला हुआ देखा तब यह विचार किया कि मुझको यहां से चोरी करना चाहिये क्योंकि अब प्राणबचाने की कोई अन्य युक्ति नहीं है आपत्ति कालमें चोरी करना भी बुद्धिसे उचित जाना गयाहै और वेदपाठी ब्राह्मण को प्राणकीरक्षा के निमित्त चोरी करना योग्य है प्रारम्भमें नीच से लेना योग्य है तदनन्तर बराबर वाले से लेनाठीकहै इसी प्रकार अप्राप्त होनेपर धार्मिक और श्रेष्ठपुरुष से भी लेले सो मैं बुरेकर्म के पूरेकरने के निमित्त इसको चुराताहूं दानकेदोष से चोरीकेदोष को अधिक नहीं जानताहूं इससे मैं कुत्तेकी जंघाको चुराऊंगा हे राजन् ऐसा बिचारकर-के वह महामुनि उसघर में सोगये जहांपर कि चांडालथा चांडालके घरके सब मनुष्योंको सोताजानकर बहुत धीरेपन से उठकर फिर कुटी में प्रवेशकर गये तब ओंघसे नेत्रबन्द किये वह चांडाल यह बोलाकि चांडालकाघरभर सोजानेपर कौन जंघाओंको हिलाता है यहांमैं जागताहूं सोतानहींहूंमैं तुझे मारूंगा यह भययुक्त वचनकहा तबतो भयभीत होकर अकस्मात् बिश्वामित्रने उससे कहाकि हे चांडाल मैं विश्वामित्रहूं भूखसे आयाहूं मुझको मतमार यह ऋषिकाबचन सुनकर भयभीत युक्त वह चांडाल शयनसे उठा और आंखों से अश्रुपात डालकर हाथ जोड़कर बिश्वामित्रजी से बोला कि हे ब्राह्मण इस जंघा के बिषय में आपकी क्या इच्छा है फिर धैर्य्यता देकर विश्वामित्र ने उस मातंगनाम चांडाल से कहाकि भूखा और निर्बलहूं इस से कुत्तेकी जंघा को हरूंगा मुझ अर्धीने पापकर्म्मकी बुद्धिकी है बिभुक्षितको कोई लज्जानहीं है मुझको क्षुधादोषका भागी करती है इस से कुत्तेकी जंघा को हरूंगा मेरे

प्राण पीड़ायुक्त हैं और क्षुधासे मेराबल नाश होताहै निर्बल अचेतहोकर भक्ष्याभक्ष्यके विवेक से पृथक्हूं सो अधर्म्मरूप कर्म्म को जानकरभी कुत्तेकी जंघाको हरूंगा जब तुम्हारे मकान में घूमताहुआ भिक्षाको नहींपाया तब पाप युक्त कुत्तेकी जंघाको हरण करना चाहा है पदार्थों का पवित्र करने वाला देवताओं का मुखरूप अग्नि पुरोहित है जैसे कि वह सबका भोगने वाला है इसी प्रकार मैं ब्राह्मण भी उसके समान होकर सर्वभक्षी हूं मुझ को तुम धर्म्म पूर्वक जानों तब चांडाल बोला कि हे महर्षी मेरे वचन को सुनों और उसके सिद्धान्त को जान कर कर्म्म करो जिस से कि धर्म्म का नाश न हो हे ऋषि मैं आप के भी धर्म्म को कहूंगा जो मैं कहूं उसको सुनों बुद्धिमान् लोग कुत्तेको शृगालसे भी नीचकहतेहैं और उसकी जंघाभी उसके सब अंगों में निकृष्ट हैं इससे यह धर्म्म निन्दित है, जो कि चाण्डाल के धन का लेना भक्ष्य रहित वस्तुका है यह आपने ठीक निश्चय नहीं किया इससे बहुत श्रेष्ठ होगा कि तुम प्राण की रक्षा के निमित्त दूसरी वस्तुको विचारो इस मांस के लोभ से आप के तप का नाश होगा ज्ञानी से ही धर्म्म नियत किया गया है इसे धर्म्म में अधर्म्म संयुक्त करना अयोग्य है तुम धर्म्म को मत छोड़ो निश्चय करके तुम धर्म्मधारियों में उत्तम हो यह चाण्डाल का वचन सुनकर क्षुधासे पीड़ित महा मुनिने फिर उत्तर दिया कि मुझ निराहार और दौड़नेवाले का बहुत बड़ा समय व्यतीत हुआ और मेरेप्राणों की रक्षा में कोई युक्ति वर्त्तमान नहीं है पीड़ामान पुरुष जिस युक्ति अथवा कर्म्म से जीता रहे वही करे और समर्थ होकर धर्म्मको करे, क्षत्रियों का धर्म्म इन्द्र से सम्बन्ध रखनेवाला है और ब्राह्मणों का धर्म्म अग्नि से सम्बंध रखनेवाला है वेद रूप अग्नि मेरा पराक्रम है मैं भूख को दूर करने के लिये इसको भक्षण करूंगा। जैसे जीवन रहै वही काम करना योग्य है मृत्यु से जीना उत्तम है क्योंकि जीवने से धर्म्म करेगा सो मैं जीवन के लिये अभक्ष्य को भी खाना चाहता हूं फिर जीवन पाकर अपने धर्म को करूंगा और विद्या तप आदि के द्वारा पापोंको ऐसे दूर करूंगा जैसे कि बड़े अंधकार को सूर्य्य दूर करता है चाण्डाल ने कहा कि इस मांस का खानेवाला बड़ी अवस्था को नहीं पाता है और न प्राणों को पाता है अमृत के समान गुणकारी नहीं है तुम दूसरी भिक्षा को मांगो आपका चित्त कुत्ते के मांस खाने को कभी मत हो कुत्ते ब्राह्मणों के अभक्ष्य हैं विश्वामित्र बोले कि हे चाण्डाल ऐसे दुर्भिक्ष के समय में कुत्ते के मांस के सिवाय दूसरा मांस सुगमता से नहीं मिल सक्ता है और मेरे पास धनभी नहीं है भूख से पीड़ित निराशाहोकर मैं इसी कुत्ते के मांस में षट्रसों का स्वाद मानता हूं

चाण्डाल बोला कि पञ्चनख रखने वाले जीव ब्राह्मण क्षत्री वैश्य तीनोंको अभक्ष्य हैं जैसे कि आप शास्त्र को प्रमाण मानते हो वैसेही इस अभक्ष्य में चित्तको मत चलाओ, विश्वामित्र बोले कि यह निश्चय है कि भूखे अगस्त्यजी ने बातापी नाम असुर को भोजनकिया मैंभी आपत्ति में पड़ाहुआ भूखसे कुत्ते की जंघाको भक्षण करूंगा, चांडालने कहा कि आप दूसरी भिक्षा का उद्योग करो इसके खाने को आप योग्य नहीं हैं सर्वथा यह कर्म आप के योग्य नहींहै विश्वामित्र ने कहा कि निश्चयकरके श्रेष्ठ पुरुष धर्म्म में कारण हैं मैं उसी चलनपर कर्म्म करताहूं मैं पवित्र भोजन से भी अधिक इस जंघा को मानता हूं चांडाल बोला कि जो नीचों ने किया वह सनातन धर्म्म नहींहै आप को अयोग्य कर्म्म करना न चाहिये तुम छल से पाप मत करो विश्वामित्र बोले पाप को और निषिद्धकर्म को ऋषिलोग अच्छा नहीं मानते परन्तु मैं बिश्व जाति होनेसे कुत्ते और मृगको समान मानता हूं इस हेतु से इस श्वान जंघा के मांस को अवश्य भक्षण करूंगा, चांडाल बोला कि ब्राह्मणों से प्रार्थना किये हुये उस अगस्त्य ऋषि ने उस दशा में ब्राह्मणों के निमित्त जो कर्म्म किया वही धर्म्म निष्पाप है ब्राह्मण सब रीति से रक्षा के योग्य हैं बिश्वामित्र बोले कि यह मुझ ब्रह्मज्ञानी का देह मेरा मित्र और प्यारा है और संसार में बड़े पूजन के योग्य है उसके पोषण की इच्छा करनेवाला मैं इस मांस को हरता हूं मैं इस प्रकारकी निर्दयता का भय नहीं करता हूं, चाण्डाल बोला कि मनुष्य इच्छासे देह को त्याग करते हैं परन्तु किसी स्थानपर अभक्ष्य में बुद्धी को नहीं चलाते हैं और हे बुद्धिमान् इस लोक में पुरुष धर्म्म में बिजयी होने से सब मनोरथों को प्राप्त करते हैं तुम भी निराहारीहोकर सबकामनाओंको पूर्णकरो, बिश्वामित्र बोले कि देह के त्यागने से संशय उत्पन्न होताहै और कर्मोंकी नष्टताहोतीहै इससे यह अयोग्य बात है मैं फिर पापों को दूरकरूंगा इस निमित्त इसअभक्ष्य को भक्षण करूंगा देहमें अभिमान न रखनेवाले पुरुषमें प्रत्यक्ष महापुण्यहै और आत्मामें ऐसा मोहकरना दोषहै जैसाकि कुत्तेके मांसमें होताहै यद्यपि यहबातहै और मैं संशयात्मा होकर भक्षण करताहूं तौ भी जैसा तू है वैसा मैं नहींहूंगा, चांडाल बोला कि यह पापमेरी रायसे गुप्त करनेके योग्यहै और जोपापी और अन्यब्राह्मण के समान आपसे निंदायुक्त कठोर बचन कहताहूं और छलकरनेवालाहूं इसको क्षमाकरिये-- बिश्वामित्र बोले कि मेढ़कोंके रोदनकरने पर भी गौवें जलको पीतीहैं धर्म्म उपदेश करनेमें तेरा अधिकारनहीं है तू अपनी प्रशंसा मतकर चांडाल बोला कि मैं शुभचिंतक होकर उपदेश करताहूं हे ब्राह्मण तुममें मेरी बड़ीकृपाहै इसमें आपका कल्याण है इससे मेरी बातको मानो

और लोभसे पापको मतकरो, बिश्वामित्रने कहा कि जो तुम मेरे मित्र और सुखके चाहनेवालेहो तो मुझको आपत्तिसे छुटाओ मैं तुमको धर्मात्माजानताहूं कुत्तेकीजांघकोछोड़ो चांडालनेकहा कि मैं इसमांसको उत्साहसे आपको नहीं दियाचाहताहूं और अपने हरेहुये अन्नके दानोंकोभी उत्साहपूर्वक नहीं चाहता हूं क्योंकि इस कर्म से हम दोनों पाप संयुक्त होकर नरकमें जायँगे अर्थात् दान देनेवाला मैं और दान देनेवाले तुम ब्राह्मण हो बिश्वामित्रबोले कि अब मैं इस पाप कर्म को करके बड़ी पवित्रता से रहूंगा और पाप रूप आत्मा में धर्म ही को प्राप्त करूंगा इन दोनों में जो बड़ी बात हो उसको कहो, आत्माही सब धर्म्म कार्य्योंका साक्षी है जो इस में पापहै वह तुमहीं जानतेहो जो पुरुष इस कुत्ते के मांसको भोजन करनेकी बस्तुके समान कर सकै उसको त्याग करना क्यायोग्यहै यह मेरा सिद्धांत है, और लेने और खानेमें यद्यपि दोषहै परंतु प्राणत्याग के समययही दोष अदोषहोजाता है अर्थात् उससमय अभक्ष्यभी भक्ष्य होजाताहै जिसस्थान में अभक्ष्यक्रिया है वहां उसके निषेध करनेवाला बचन उत्तम नहीं है क्योंकि उसअभक्ष्यके भक्षणमें हिंसाऔर मिथ्यापननहींहै कुछथोड़ीनिंदासे वह हिंसाऔर मिथ्या केसमान अधिकनिंदाके योग्यनहींहै चांडालबोला कि जो इसकेखानेमें प्राण का पोषणहीकरना आपको अभीष्टहै तो ऐसीदशा में ईश्वर और उत्तम धर्म्म आपको प्रमाणनहींहै हेद्विजेन्द्र इसहेतुसे तो भक्ष्य और अभक्ष्यमें कोई दोष नहींमानना योग्यहै विश्वामित्र बोले किअभक्ष्य खानेवाले का पाप हिंसाके समाननहीं देखनेमें आताहै मद्यकेपानकरनेसे अधिकारसे गिरताहै यहशास्त्र का बचन केवल अज्ञानमात्रहै,जिसप्रकार स्त्रीप्रसंग आदिकर्म्महैं उसीप्रकार यहभी है- केवल थोड़ेसे पापसे पुण्यकानाश नहीं होताहै हां थोड़ेपापकी उत्पत्ति होतीहै परन्तु ब्राह्मण धर्म्ममें हानि नहींहोती चांडालबोला कि श्रेष्ठ चलनेवाले ज्ञानीको चांडालकेघरमें बुरेकर्मके द्वारा बिनादी हुई बस्तुपीड़ादेती है और जो हठसे कुत्ते के मांसको लेता है उसको दंड भी क्षमाकरने के योग्य है अर्थात् मैं देनेवाला उसके फलको नहीं पाऊंगा ऐसा कहकर वहमातंग चांडाल मौनहोगया और बिश्वामित्र ने कुत्तेकी जंघाको हरण किया तदनन्तर उसजीवनकी इच्छा करने वाले महामुनि ने उसकुत्ते के अंग को हाथसे ले जाकर आश्रम में अपनी स्त्री के साथ खाना चाहा तिसपीछे यहबुद्धिहुई कि मैं पहिले बुद्धिके अनुसार देवताओंको तृप्त करके फिर इसको इच्छापूर्वकखाऊंगा तब महामुनिने ब्राह्मण बुद्धि से अग्निको प्रज्वलित करके इन्द्राग्नि से सम्बन्ध रखनेवाली बुद्धि के द्वारा आपचरु को सिद्धकिया और देवपितरोंका पूजन प्रारंभकिया और इन्द्रादि देवताओं का

आवाहनकर के बुद्धि और क्रम के अनुसार उसके जुदे २ भागकिये--उसी समयपर सबप्रजा को जीवदान देतेहुये इन्द्रने बड़ी बर्षाकी और औषधियों को उत्पन्नकिया और बिश्वामित्र ने तपस्यासे पापोंको भस्म करके बड़े कालमें महासिद्धी को पाया और कर्म्मको बन्दकरके उसहव्यको आप न खाया और देवता पितरोंको तृप्त करके प्रसन्न किया इसीप्रकार दुःखसंयुक्त जीवनकी इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् साहसी युक्तियों के ज्ञातालोग अनेक उपायोंसे आपत्तिकाल में अपनेको बचावे इसबुद्धि में प्रवृत्त होकर सदैव जीवन करने के योग्यहै जीवनसेही मनुष्य पुण्य को प्राप्तहोकर कल्याणको भोगता है इसी कारण हे कुन्तीनन्दन शुद्ध अन्तःकरण वाले ब्रह्मज्ञानीको धर्म्म और अधर्म्म निश्चयकरने के समय बुद्धि में स्थिरहोकर इस संसार में कर्म्म करना योग्यहै १०२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिआपद्धर्म्मेएकादशोऽध्यायः११ ॥

# बारहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि जो मिथ्याके समान श्रद्धासे रहित घोर कर्म्मकरने केयोग्य उपदेश किया ऐसीदशामें यहचोरोंकी मर्य्यादहै जिसको मैं त्याग करताहूं अर्थात् चोरोंको धिक्कार न करना चाहिये इससे मैं अचेतहोकर मोहको प्राप्तहोताहूं मेराधर्म पक्कानहीं किया इससेआपकोबिश्वास कराताहुआ भी निश्चयको नहीं पाताहूं भीष्मजी बोले कि मैंने शास्त्रसे सुनकर तुझको यहधर्म उपदेश किया यहबात नहीं है यहबुद्धिकी निष्ठा पण्डितों ने कल्पनाकीहै, राजाको जहां तहांसे बहुतसी बुद्धि प्राप्तकरना चाहिये यहलोक यात्रा एक देशीधर्मसे जारी नहींहोती है हे कौरवबुद्धिका उत्पन्नकरनेवालाधर्म और सत्पुरुषों का आचार सदैव जाननेके योग्य होताहै उनसब प्रयोजनों में मेरेप्रयोजनको सदैव जानो उत्तम बुद्धिमान् बिजयकी इच्छारखने वाले राजालोग कर्मकरतेहैं इसलिये राजाको जहांतहां से बुद्धिकेद्वारा धर्मप्राप्त करने के योग्यहैं क्योंकि एकदेशीय धर्म्मसे राजाका धर्म्म प्राप्तनहीं होताहै पहलेसे शिक्षा न पाईहुई बुद्धि निर्बल राजाको कहींसे प्राप्तहोतीहै अर्थात् नहींप्राप्तहोतीहै--एककाम में दोप्रकार के प्रयोजनों का न जानने वाला राजा दो प्रकारवाले मार्ग में कष्टपाने के योग्य है इससे हे राजा पहलेही दोप्रयोजनवाली बुद्धि जानने के योग्य है, ज्ञानी राजा पीछेकरनेके योग्य बात को निश्चय करके करावे उसकर्म्म को मनुष्य धर्म्म रूप जानते हैं परन्तु ज्ञान दृष्टिसे धर्म नहीं होता कोई सच्चे कोई झूठे ज्ञानी बिज्ञानी हैं उसको ठीकजानकर सत्पुरुषों के ज्ञानको स्वीकार करताहै धर्म्म के बिरोधी लोग कहतेहैं कि अर्थशास्त्र ध-

र्मशास्त्र के विरुद्ध है वह आदर के योग्य नहीं है वह अर्थरहित अर्थशास्त्रों की अप्रमाणता को प्रकट करते हैं और जो पुरुष विद्या, यश, काम से जीवन की इच्छा रखतेहैं अर्थात् तीनोंको उदरपूर्ण करनेके निमित्त प्राप्तकरतेहैं वह सबपापी और धर्म्म के शत्रुहैं अल्पबुद्धि मन्द प्रारब्धी लोग मुख्यबात को ऐसे नहीं जानतेहैं जैसे कि शास्त्रमें अकुशल और सबस्थानों में अयुक्तिसे करने वाले और शास्त्रों के दोष देखनेवाले पुरुष शास्त्रोंको चुराते हैं अर्थात् बिपरीत वर्णन करते हैं इसकारणसे बिद्याओंका जानाहुआ अर्थ अच्छे प्रकारसे प्राप्त नहींहोता दूसरे की बिद्याओं की निन्दा करनेसे अपनी बिद्याको प्रसिद्धकरतेहैं वह बचन रूप अस्त्रशस्त्र रखने वाले निष्फल हैं जिनकी विद्या असारहै उनलोगों को विद्या बेचनेवाला राक्षसों के समान जानना चाहिये सत्पुरुषों से जारी कपटसे किया हुआ धर्म्म नाशको पाताहै धर्म्मका निश्चय केवल बचन और बुद्धिसे नहीं है यह हमने सुनाहै बृहस्पतिजी के इसज्ञान को इन्द्र ने आप कहाहै यहां कोई वचन बिनाहेतु के नहीं कहाजाता है फिर इसदूसरे अच्छी नीतिवाले पुरुष शास्त्रसे इसको निश्चय नहींकरते हैं,इसलोकमें कितनेही ज्ञानियों ने यात्राकोही धर्म्म कहा है इसी कारण पण्डितलोग सत्पुरुषोंसे अच्छेप्रकार उपदेश कियेहुये धर्म्मको आप शास्त्रोक्त बचनों से निर्णयकरें हे राजा सभा के मध्य ज्ञानी पुरुष का कहाहुआ शास्त्र क्रोध और मोहसे नाशहोजाता है वेदोक्त बुद्धिसे प्राप्तहुये जो बचनहैं उनसे दूसरामनुष्य अज्ञान और ज्ञानप्राप्तहोने के कारण केवल बचनहीको अच्छा मानताहै अर्थात् तर्कणाओंसे उसको निश्चय नहीं करता है अन्यलोग मानते हैं कि इसयुक्तिसे इसशास्त्रमें दोषलगाया गयाहै इसलिये निष्फल है यहबात भी केवल अज्ञानसेहै पूर्वसमयमें इससंशयका दूरकरनेवाला यह वचन कहाहै कि वह संशयरूप ज्ञान भी उस प्रकारका है जैसे कि नहीं अर्थात् नहींहोनेके समानहै इसहेतु से उस संशय को निर्मूल करके काटने के योग्यहो,जो आप मेरे इसनीतियुक्त वचनको नहीं मानतेहो यही अयोग्यहै क्योंकि तुम हिंसात्मक कर्म्म के लिये उत्पन्न होकर उसको नहींविचारतेहो हेपुत्र तुममुझकोही देखो कि दूसरे मनुष्य जिस प्रयोजनको अच्छा नहीं समझते वह पृथ्वी भरके चाहनेवाले राजालोग मेरीनिन्दा करतेहैं कि यहहिंसा करनेवालाहै और जो मैंने उनको स्वर्गलोकमें पहुंचाया वह उन्हींके कल्याणके लिये है कुछ अपने निमित्त नहीं है इस को वह नहीं जानते हैं-बकरा घोड़ा क्षत्री यह सब ब्रह्माजीने बराबर उत्पन्न किये अर्थात् दोनों प्रकार के यज्ञों में देह के त्यागने से मोक्ष के अधिकारी बनायेगये हैं इस कारण जीवों की कोई यात्रा बराबर सिद्ध होती है मारने के अयोग्य पुरुष के मारने में जो दोष है वही मारने

के योग्य मनुष्य के न मारने में भी कहा है निश्चय करके जिसको यह त्यागकरे वही मर्य्यादहै जैसे कि भेड़ियों के समान परस्पर में भक्षण करने वाली प्रजा घूमती है उसी प्रकारसे तीव्र बुद्धी राजा अपने धर्म में प्रजाओं को नियतकरे जिसके देशमें चोर मनुष्य दूसरे के धनको ऐसे हरते हैं जैसे कि काक जलसे मछलियों को वह राजा निश्चय करके क्षत्रियों को कलंक लगानेवाला है राजन् कुलीन वेदज्ञ मन्त्रियों को नियत करके धर्म से प्रजाको पालन करते हुये तुम सम्पूर्ण पृथ्वीपर राज्यकरो जो राजा राज्य के कर्म्मों से रहित संसार से विपरीत करको लेता है उस युक्ति के न जाननेवाले क्षत्री कुलको नपुंसक कहते हैं इस लोकमें रूप वा उग्रता रहित राज्य के योग्य नहीं होता है किन्तु धर्मसे प्रशंसा को पाता है तुम उग्ररूप होकर मृदु होजाओ, यही क्षत्री धर्म्म कठिन है और मेरी प्रीति तुझ में वर्त्तमान है तुम हिंसात्मक कर्म्म में उत्पन्न हुयेहो इससे राज्यका धर्म पूर्वक करो हे राजन् आपत्ति काल में सदैव नीचको दण्ड और योग्य मनुष्योंका पोषण करना चाहिये यह बुद्धिमान् शुक्रजी का वचन है युधिष्ठिरबोले हेपितामह जो यह मर्य्यादा है कि जिसको कोई दूसरा उल्लंघन नहीं करे वह आप मुझसे वर्णन कीजिये भीष्मजी बोले कि विद्यावृद्ध तपस्वी शास्त्र के आचार विचारमें प्रवीण ब्राह्मणोंका भी सेवनकरे यही पवित्र और उत्तम है देवताओं में जो तेरीवृत्ती है वही सदैव ब्राह्मणों में हो हेराजन् क्रोधयुक्त वेदपाठी ब्राह्मणोंसे बहुधा कर्म्म कियेगये हैं उनमें प्रीति करने से बड़ी कीर्ति होती है परन्तु प्रीति करनेसे बड़ाभय है वेदपाठी ब्राह्मण प्रीतिमें तो अमृतके समान और क्रोधमें विषकेसदृश होते हैं ३८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेद्वादशोऽध्यायः १२ ॥

## तेरहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हे महाशास्त्रज्ञ ज्ञानी पितामह शरणागत के ऊपर कृपा करनेवाले का जो धर्म है उसको मुझसे कहो--भीष्मजीबोले कि हे राजा शरणागतके पोषण करने में बड़ाधर्म है तुमको ऐसा प्रश्न पूछना योग्य है हे राजा शिविआदि राजाओं में शरणागतों पर कृपा करने से बड़ी २ सिद्धियोंको प्राप्तकिया सुनाजाता है कि किसी कपोत ने शरण में आयाहुआ शत्रु न्यायसे पूजा उसको अपने मांसका निमंत्रण दिया युधिष्ठिर बोले कि कपोत ने शरण में आयेहुये अपने शत्रु को अपने मांस से कैसे तृप्त किया और उसकाफल उसको क्या हुआ भीष्मजीने कहा कि भार्गव जीने राजा मुचुकुन्द से जिसकथा को कहा उस दिव्य पाप दूरकरने वाली कथा को

सुनो कि पूर्व समय में राजा मुचकुन्दने बड़ी नम्रतापूर्वक भार्गवजीसे यह प्रयोजन पूछा था तब भार्गवजीने राजा से यह कथाकही जैसे कि कपोत ने सिद्धी को पाया भार्गवजीने राजा मुचुकुन्द से कहा कि तुम एकाग्र चित्त होकर मुझसे इस कथाको सुनो कि किसी महाबनमें नीच आचारवान् कालके समान घोररूप एक चिड़ीमार घूमताहुआ निकला वह काकोल प्रकारकर के कौएके समान कालारंग लालनेत्र बड़ी जंघा छोटेपैर बड़ामुख और तीव्र नखवालाथा उसकाकोई मित्र बाँधव नहींथा क्योंकि इसीहिंसा कर्म्म से उनसबने उसको त्याग कियाथा ज्ञानियों को पाप आचारवाला मनुष्य दूरसेही त्याग करने के योग्य है जो आत्मा को विषफाँसी आदि से मारना चाहता है वह कैसे दूसरे का हितकारी होगा जो मनुष्य निर्दयी दुष्ट बुद्धी जीवोंके प्राणहरनेवाले हैं वहसबकी समान जीवोंके भयकारीहोतेहैं वह सदैव जलको लेकर पक्षियों को बनमेंमारकर बेंचाकरताथा इसी प्रकारइसनष्ट कर्मको करते बहुतसमय व्यतीतहुआ तबभी उसने धर्मको नहींजाना भार्य्या समेत सदैवक्रीड़ा करनेवाले उस अज्ञानीको दूसरी जीविका अच्छी नहीं मालूम होतीथी एकदिन उस बनमें बड़ी आंधी आई उसके कारण आकाश बादलोंसे पूर्ण बिजलीकी चमकसे शोभायमान हुआ और एक मुहूर्त्तमेंही ऐसा ढकगया जैसे कि संपूर्ण मनुष्योंसे भरी नौका सागर में ढकजाती है और ऐसी बर्षाहुई कि क्षणमात्रमें पृथ्वी जलसे डूबगई तब वह व्याधा शीत से महाव्याकुलहो वनमें चारोंओर घूमा परंतु कोई आश्रयस्थान नहीं पाया और बनके सब मार्ग जलसे गुप्तहोगये तब तीव्र वर्षासे पीड़ित पक्षीभी गुप्त हुए मृग सिंह बराह आदि पशु अपने २ स्थानोंमें रक्षा पानेवाले हुए और वह व्याधा शीतके मारे शिथिल अंगोंसे चल न सका तब उसने शरदी से व्याकुल पृथ्वीपर पड़ेहुए किसी कपोत पक्षीको देखा उस पापात्माने उसको पीड़ायुक्त देखतेही पिंजरेमें डाला और बनखंडोंमें मेघके समान किसी नीले वृक्षको देखा जो कि पक्षियोंका आश्रय रूपथा वह वृक्ष ईश्वरने दूसरोंके हित के लिये साधूके समान उत्पन्न कियाथा थोड़े काल पीछे आंधी निवृत्तहुई और आकाशमें निर्मल नक्षत्र दीखनेलगे तब उस शीतसे व्याकुल व्याधने निर्मल आकाशको देखकर दिशाओंको देखा और यह बिचार किया कि इस स्थानसे मेराघर दूर है इसकारण वहां रहनेके बिचारसे उस वृक्षसे हाथ जोड़ नम्रता पूर्वक यह बचन कहा कि इसवृक्षपर जो देवताहैं उनकी शरण लेताहूं यह कहकर वह व्याध पृथ्वीमें पत्ते बिछाकर सोगया २४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिआपद्धर्मेत्रयोदशोऽध्यायः १३ ॥

## चौदहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजा उसवृक्षकी शाखापर अपूर्व्व रोम रखनेवाला एक कपोत पक्षी अपने इष्टमित्रों समेत बहुत कालसे रहताथा उसकी भार्य्या प्रातःकाल चुगनेको गईथी वह नहीं लौटी और रात्रिको देखकर वह पक्षी महादुखी होकर कहनेलगा कि बड़ी हवा और वर्षाहुई और मेरी प्यारी नहीं आई इसका कारण क्याहै जो अबतक नहींलौटी बनमें वह जीतीरहै क्योंकि उसके बिना यह मेराघर उजाड़ है चाहै बेटेपोते नौकर चाकर बड़े बूढ़ोंसे पूर्ण भी घरहो उसको घरनहीं कहते केवल स्त्रीसेही घर कहाजाता है और स्त्रीसे खालीघर बनके समान मानाहै जो वह रक्तनेत्र अपूर्व्वदेह मीठेशब्द वाली मेरी प्यारी नहीं आती है तो मेराभी जीना वृथाहै वह ऐसी पतिव्रताहै जो बिनामेरे भोजन कराये भोजन नहीं करती है और मेरेस्नानके बिना स्नान नहीं करती और मेरेवर्त्तमान होनेबिना वर्त्तमान न होवे और मेरे सोजानेपर सोती है और प्रसन्न होनेपर प्रसन्न होतीहै दुखी होनेपर दुखी और दूरजानेपर मुख मैला करती है और मेरेक्रोध होनेपर प्यारे बचनोंको कहती है पतिव्रत रखनेवाली है जिसकी भार्य्या ऐसीहो वह पुरुष धन्यहै वह तपस्विनी मुझ थके और पीड़ावान्‌को जानती है और शांतचित्त भक्तिपूर्व्वक प्रीतिरखने वाली यशस्विनी है जिसकी प्यारी वृक्षकी जड़परभी होती है वह घरहै उसके बिना महलभी बनके सदृश निश्चय कियागयाहै धर्म अर्थ और कामकी बिपत्तियों में भार्य्या पुरुषकी सहायता करनेवाली है और इसके परदेश जाने पर वही बिश्वास करनेवाली है इसलोकमें स्त्रीही पुरुषकी उत्तम लक्ष्मी कही जातीहै इस संसारमें असहाय मनुष्यको स्त्रीही सहायता देनेवाली है उसीप्रकार रोगसे संयुक्त सदैव दुखसे पीड़ित आदमीको स्त्रीके सिवाय कोई औषधी नहीं है लोकमें धर्म्मोंके बीच भार्य्याके समान सहायक नहीं है बन्धुभी भार्य्याके समान नहीं होते जिसके घरमें नेक चलन और प्यारे बचन कहने वाली भार्य्या नहीं है उसको बनही जाना चाहिये क्योंकि उसको घरसे बन ही अच्छा है १७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिआपद्धर्मेचतुर्दशोऽध्यायः १४ ॥

## पन्द्रहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इसप्रकार बिलाप करने वाले कपोत के करुणा वचनों को सुनकर व्याधा से पकड़ी हुई कपोतनी ने बचन कहा कि मैं बड़ी प्रारब्धिनीहूं जो मेरापति मेरेगुणोंको कहता है चाहै मैं अच्छीहूं या बुरी हूं जिस स्त्री से पति प्रसन्न नहीं है वह स्त्रीमानने के योग्य नहीं है पतिके प्रसन्न

होनेसे स्त्रियोंके सब देवता प्रसन्न होतेहैं निश्चय करके पति देवता सब से उत्तम है जिसका साक्षी अग्निहै जैसे फूलफल वाले वृक्ष दावानलसे भस्म होतेहैं उसी प्रकार वह स्त्रीभी भस्म होतीहै जिसका कि पति प्रसन्न नहीं होताहै तब महा दुखित व्याधा से पकड़ी हुई कपोतनी अपने पतिसे बोलीकि मैं तुम्हारे कल्याण को कहतीहूं तुम इसको सुनकर उसी प्रकार करना हे पति तुम शरणागतके बड़े रक्षकहो आपके निवास स्थानमें शरणागत यह व्याधा सोताहै यह शरदी और क्षुधासे पीड़ित है उसका पूजनकरो जो कोई ब्राह्मणको अथवा लोकमाता गौ को मारे और जो शरणागत को मारे तीनों का पाप बराबर है कपोत जातिके धर्मसे हमारी जीविका नियत की गई है तुमसरीके ज्ञानी पुरुषसे वह वृत्ती न्यायके अनुसार करने के योग्यहै जो कुटुम्बी सामर्थ्य के अनुसार धर्मको करताहै वहमरकर अविनाशी लोकोंको पाताहै ऐसा सुनते हैं सोहेकपोत अब तुम कुटुम्बवाले हो अपनी देहमें दयाको धारण करके धर्म अर्थके साथ उसका पूजन ऐसा करो जिस से इसका चित्त प्रसन्न हो और मेरेनिमित्त दुख मतकरना अपने शरीरकी रक्षाके निमित्त दूसरीस्त्री को प्राप्त करना ऐसावचन कहकर उसपिंजड़े में से पतिकी ओरको देखा १४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्म्मेपंचदशोऽध्यायः १५ ॥

# सोलहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जब उस व्याकुलनेत्र पक्षीने पत्नीके धर्म्म और युक्तिपूर्वक वचनोंको सुना तब बड़ी प्रसन्नता से संयुक्त होकर उस घातकको देखकर बुद्धिके अनुसार पूजन किया और बोला कि अब तेरा आगमन मंगलदायी हो आप कोई प्रकार से शोच न कीजिये क्योंकि यह आपहीका घरहै मैं आपको नम्रता पूर्व्वक कहताहूं कि आप मेरेशरण में आयेहो जो आपकी इच्छाहो सोकरूंघरमेंशत्रु कोभी आनेपर योग्य आतिथ्य धर्मकरना चाहिये जैसे कि काटने वाले पर वृक्ष अपनी छायाको दूर नहीं करताहै इसी प्रकार शरणागतका आतिथ्य बड़ी युक्तिसे करना चाहिये गृहस्थको पंचयज्ञ में आतिथ्यधर्म बड़ी प्रसन्नता से करना चाहिये जो पुरुष गृहस्थाश्रम में मोहसे यज्ञोंको नहीं करताहै उसका न यह लोकहै न परलोक होता है सो आप चिन्ताको दूरकरके जो मुझसे कहोगे वही मैं करूंगा व्याधा ने पक्षी के इस वचनको सुनकर कहा कि मुझेशरदी बड़ी पीड़ा देरहीहै उसका उपायकरो यहव्याध से सुनतेही पक्षी पृथ्वी पर पत्तोंको बिछाकर पराक्रमके अनुसार अग्नि लेनेको गया और बड़ी शीघ्रतासे अग्निको लेआया तद-

नन्तर उसने सूखे पत्तों के द्वारा अग्नि को प्रज्वलित किया और उसशरणागत व्याधसे कहा कि अब तुम बिश्वास युक्त होकर अपने सब अंगोंको सेंको तबतो व्याधने बहुत प्रसन्न होकर अपने अंगोंको तपाया जब अग्नि से प्राणबचे और प्रसन्न हुआ तो फिर उसपक्षी से कहा कि अब क्षुधासे पीड़ामान् होकर तेरेदियेहुये आहारको चाहताहूं यह सुनतेही पक्षीने यह वचन कहा कि मेरेपास कोई सामान नहीं है जिसके द्वारा तेरीक्षुधा को मिटाऊं हम वनबासी सदैव मिलजाने वाले भोजन से आनन्द पूर्वक जीवतेहैं मुनियों के समान हमारे पासभी भोजन इकट्ठा नहीं है ऐसा कहकर वहपक्षी रूपान्तर हुआ और चिन्ताकरने लगा कि किस प्रकार कर्म करना चाहिये और अपनी जीविकाकी निंदाकरता शोचग्रस्त हुआ फिर क्षणमात्रमें सावधान होकर उसपक्षीने व्याधासे कहा कि थोड़े कालमें ही मैं तुझको तृप्तकरूंगा तू मुहूर्त्तभर और बाटदेख बड़ी प्रसन्नतासे और बहुतसे सूखेपत्तों में अग्निको प्रज्वलित करके यह वचन बोला कि मैंने पूर्बसमय में महात्मा, ऋषि, देवता, पितरोंका अतिथि पूजनमें बड़ाधर्म सुनाहै मैं आपसे सत्य २ कहता हूं आप कृपा करिये इससेही निश्चयकरके मेरी बुद्धि अतिथि के पूजनमें प्रवृत्त हुई तदनन्तर वहपक्षी उस अग्निकी तीन परिक्रमा करके उसमें प्रवेश करगया व्याध ने पक्षी को अग्नि में घुसा देखकर चिन्ताकी कि मैं ने यह क्या किया इससे मुझको निश्चय करके महाघोर नरक होगा और अपने कर्म्म की निन्दा करके उसदशा वाले पक्षीको देखकर इसप्रकारका बहुतसा बिलापकिया २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मे षोड़शोऽध्यायः १६ ॥

## सत्रहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि तब उस महादुःखित व्याधने अग्निमें पड़ेहुये पक्षीसे यह वचन कहाकि मुझ निर्दयी निर्बुद्धी ने ऐसा क्यों किया इससे मुझ जीवने वालेको सदैव पातकहोगा अपनी निन्दा पूर्व्वक बारम्बार यही शब्द कहा कि मैं अपनी निर्बुद्धि और पापबुद्धि से अनेक उत्तमकर्मों को त्याग कर पक्षियोंका घातकहुआ अब मुझनिर्दयी को धिक्कार के साथ यह उपदेशहै कि भस्महोने वाले महात्मा कपोत ने अपनामांस मुझको दिया सो मैं भी अपने प्यारे प्राणों समेत स्त्री और पुत्र आदिको इसीप्रकार त्यागकरूंगा महात्मा कपोतने मुझको धर्म उपदेश कियाहै अब से लेकर जीवन पर्यंत सब भोगोंसे रहित अपने देहको ऐसा सुखाऊंगा जिस प्रकार कि ग्रीष्म ऋतुमें बहुत छोटासरोवर सूखजाताहै क्षुधा, पिपासा, आतप का सहने वाला दुर्ब-

स और हड्डियों से तनाहुआ बहुत प्रकारके व्रतों के द्वारा परलोक से सम्बन्ध रखने वाला कर्मकरूंगा आश्चर्यकारी देहके दान से अतिथि पूजन इसक-पोतने दिखाया इसकारण धर्मको करूंगा क्योंकि धर्म्मही परम गतिहै जैसा धर्म्म इस धर्मिष्ठ उत्तम कपोतमें देखा वह कहीं किसीमें नहीं सुना वह बीभ-त्सकर्मी व्याध इसप्रकार से कहकर और बड़ी दृढ़तासे व्रत में परायणहो संन्यास धर्ममें प्राप्तहोकर चलदिया और अपनी लाठी सलाका जाल और पिंजरे को डालदिया और उसपकड़ीहुई कपोतनी को छोड़ दिया १० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिआपद्धर्म्मेसप्तदशोऽध्यायः १७ ॥

## अठारहवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उसव्याध के चले जानेपर दुःखी व्याकुल उस कपोत-नीने पतिको स्मरण करके यह कहा कि हे पति मैं तेरेअप्रियको कभीस्मरण नहीं करतीहूं सब विधवा स्त्रियां जो कि बहुत बेटेवाली होती हैं वह शोचती हैं विधवा तपस्विनी स्त्री बांधवों की ओरसे शोचके योग्य होती हैं मैं तुझसे बहुतप्यारकी गई और बड़े मानसे पूजित हुई मैं तेरेसाथ सुन्दर मीठे सुगम और चित्तरोचक बचनों के साथ पहाड़ोंकी कन्दरा और नदियों के झरने और वृक्षों की उत्तम शाखाओं पर क्रीड़ा करनेवालीहुई और तेरेसाथआका-श में सुख पूर्व्वक चलतीथी सो हे पति वह आगेकासुख मुझको अबकुछभी नहीं है पिता संख्यावाली वस्तुको देता है भाईबेटेभी संख्येयहीकी बस्तुको देते हैं और असंख्यबस्तु देने वाले पतिका कौननहीं सत्कार करेगा पतिकेसमान सुख और नाथ नहीं है निश्चय करके सबधनों को त्यागकरके स्त्री का रक्षास्थान पतिही है हे नाथ तेरेबिना मैं यहां जीवन करना नहीं चाहती पतिके बिना कौनसी पतिव्रतास्त्री जीनेकी इच्छाकरती है ऐसे अनेककरुणा विलाप के वचन कहके वह भी अग्नि में प्रवेश करगई मरने के अनन्तर उसने अपूर्व बाजूबन्दयुक्त बिमान में बैठे शुभकर्मी महात्माओं से पूजित अनेक आभूषण बस्त्रों से अलंकृत श्रेष्ठकर्म्मी पुरुषों के अनेक बिमानों से घिराहुआ अपने पति को देखा फिर वहां स्वर्ग में वर्त्तमान होकर उत्तम बि-मान में बैठा अपनी भार्य्या समेत क्रीड़ा करनेलगा १२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिआपद्धर्म्मेअष्टदशोऽध्यायः १८ ॥

## उन्नीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजा उसव्याध ने भी उन दोनों कपोत कपोतनी को बिमानमें बैठाहुआदेखा और उसगति को खूब बिचार करकेचाहा कि मैं भी इसप्रकार के तपसे परमगति को प्राप्तकरूं यह बुद्धिमें बिचारताहुआ चल-

दिया और सबसे ममता त्याग संन्यासी होकर हवाका भोजन करनेलगा और अनेक सुन्दर पक्षियों से व्याप्त अनेकरंग के कमलों से शोभित उसने किसी सरोवर को देखा जिसके देखतेही तृष्णा इसकी जातीरही तब बड़े२ व्रतों से देहको कृशकरके वह व्याध हिंसक जीवोंसे व्याप्त किसी निर्जन महाबन में पहुंचा वहां बनके कांटोंसे घायल रुधिर से भराहुआ फिरनेलगा दैवयोग से वृक्षोंकी रगड़ से उसबनमें दावानल अग्निलगी और उसमहा प्रचण्ड अग्नि ने सब पशुपक्षी बृक्ष और लताओंसमेत उस काननको भस्म किया उससमय वह व्याधभी देहको शुद्धकर मोक्षके निमित्त उस अग्निके सन्मुख दौड़ा और जाकर उसमें भस्महोगया और मरनेके पीछे उसने बड़ी सिद्धीको पाया अर्थात् अपने को स्वर्ग में जाकर यक्ष गन्धर्वों से सेवित इन्द्र के समान शोभायमान देखा इसप्रकार से कपोत कपोतिनी उस व्याधा समेत स्वर्ग को गये इसी प्रकार जो कोई स्त्री पति की इच्छा के अनुसार कर्म्म करती है वह कपोतिनी के समान शीघ्रही स्वर्ग में जाकर शोभायमान होती है यह कपोत कपोतिनीका और व्याधाका पूर्ववृत्तान्त और शुभकर्मसे उत्तमगति पानेकाहै जो इसको सदैव सुनै सुनावैगा उसका पाप नष्ट होगा हे युधिष्ठिर यह बड़ाधर्म्म है इसकथाके कहने से गौ ब्राह्मण मारनेवालेकी भी गति होती है परन्तु जो शरणागतको मारता है उसका प्रायश्चित्त भी नहीं होसक्ता है जो पुरुष इस पवित्र पाप के दूर करनेवाले इतिहासको सुनता है या सुनाता है वह दुर्गतिको त्याग स्वर्ग को जाता है १९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेएकोनविंशतितमोऽध्यायः १९ ॥

## बीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह अज्ञानता से जो पाप करै वह कैसे पाप से छूटता है भीष्म जी बोले कि इस स्थान पर मैं उस ऋषियों के कहे हुये पुराण को तुझ से कहता हूं जो शौनक के पुत्र इन्दोत ने राजा जनमेजय से कहा है कि परीक्षित का बेटा राजा जनमेजय महापराक्रमी हुआ उसने अज्ञानता से ब्रह्महत्या को किया था इस कारण पुरोहित समेत ब्राह्मणों ने उसको त्याग दिया तब वह राजा महाशोक से पीड़ित वन को गया और वहां जाकर अपने पाप का पश्चात्तापकरके शुद्धी के लिये उसने तपस्याकी और देश देशके ब्राह्मणों से उसने अपनी हत्या के निवृत्तहोने को पूछा वह धर्म्म की वृद्धि करनेवाला इतिहास तुझ से कहता हूं कि पाप कर्म्म से दुःखित वह राजा जनमेजय जब बन को गया और बन में घूमतेहुये उसने शौनक के पुत्र इन्दोत को पाकर उसके दोनों चरण पकड़ लिये तब उस

ऋषि ने उस राजा की बड़ी निन्दाकी और कहा कि हे बड़ेपाप और भ्रूण-हत्या करनेवाले यहां क्यों आया है तुम हमारे पास क्या करसक्ते हो मुझ को तुम कभी मत स्पर्श करो जाओ जाओ तुम्हारे रहने से हम प्रसन्न नहीं हैं तेरे देह की गन्धि रुधिर के समान है और तेरा मुख मृतकके तुल्य है अकल्याणवान् कल्याणवानों के समान मृतक जीवतेहुये के समान घूमता है ब्राह्मण को मार अपवित्र आत्मा पाप को ही बिचारता जागता सोता है और बड़े आनन्दमें बर्त्तमानहोता है हे राजा तेरा जीवन निष्फल है तू बुरे कर्म्म के लिये उत्पन्न हुआ है पिता माता आदि तप, देवपूजन नमस्कार और क्षमा युक्त होकर पुत्रों की इच्छाकरतेहैं और उनसे अपना बड़ा क-ल्याण चाहते हैं देख तेरे पिता का वंश तेरे कारण से नरक को गया उन माता पिता की तुझ से सम्बन्ध रखनेवाली सब आशा वृथा हैं जिनके पू-जन से स्वर्ग और कीर्त्ति होती है उन ब्राह्मणों के तुम शत्रु हो तुम इस संसारको त्यागकर अपने पाप कर्म्म से बिनाशवान होकर ऐसे स्थान पर शिर के बल बर्षों तक गिरोगे जहां पर लोहेके समान मुख रखनेवाले गिद्ध और शतकण्ठों से छेदे जाते हैं फिर वहां से अलग होकर पापयोनि को पावेगा और हे राजा जो तुम यह मानते हो कि यह लोक नहीं है तो पर-लोक कहांसे होगा इसबातकी याद तुझको यमलोकके दूत दिलावेंगे १९॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणि आपद्धर्मेविंशतितमोऽध्यायः २० ॥

# इक्कीसवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि यह बात जनमेजयने सुनकर उसमुनिसे कहा कि आपमुझ निन्दायोग्यकीनिन्दा करतेहो और धिक्कार के योग्यको धिक्कारी देतेहो मैं इसीके योग्यहूं यह मेरा पापहै अग्निमें बैठेहुये के समान भस्महो रहाहूं अपने पापको स्मरणकरके मेराचित्त प्रसन्न नहींहोताहै निश्चयहै कि मेरेपापसे उत्पन्न होनेवाली भालयमराज से भी अधिक घोरभयको पाकर पार निकरजायगी मैं उसभालको बिनाउखाड़े कैसे जीवनको समर्थहूं हे शौनकजी आप सब क्रोधको त्यागकर मेरे सन्मुख बातकरो मैं ब्राह्मणोंका बड़ाभक्तथा इसको फिरकहूंगा यह बंशबनारहैइसका नाश न हो, ब्रह्महत्या करनेवाले और अपकीर्तिपानेवाले हमलोगोंका रहना वेदकीरीतिसे एकमत प्राप्तहोनेके योग्य नहींहै आपको अपमानकरके फिर सनातन बचन कहताहूं कि आपमेरी इसप्रकारसे रक्षाकरो जिसप्रकार योगीजन निर्द्धनोंकी रक्षाक-रते हैं--यज्ञ न करनेवाले मनुष्य किसी दशा में भी परलोकको नहींपाते हैं और पुलिंद शवरनाम म्लेच्छों के समान नरकवासियों के समीप बर्त्तमान

होतेहैं जो मुझसरीखे अज्ञानी शरणमें आयेहुये की निन्दाकरै वह पण्डित नहींहै हे शौनक जैसे पिता पुत्रपर प्रसन्न होताहै उसीप्रकार आप मुझपर कृपाकरिये शौनकने कहा कि क्या आश्चर्य्यहै जो अज्ञानीपुरुष अयोग्य कर्म्मकरे उसके ऊपर पंडित अवश्य क्रोधनहीं करते ज्ञानमहल पर चढ़कर शोचके अयोग्य पुरुष दूसरे मनुष्योंको ऐसे शोचताहै जैसे पहाड़ पर बैठा मनुष्य पृथ्वी के मनुष्योंको ज्ञानसे जानताहै--जो साधुओंमें प्रीति नहीं रखताहै और उनकी आंखों से गिराहुआहै और पहिले साधुओंसे धिक्कारी को पायाहुआ है वह ज्ञानको नहींपाता है उसप्रकारके पुरुषमें दूसरे मनुष्य आश्चर्य्य को नहीं करतेहैं ब्राह्मणका बलवेद और उसका माहात्म्य शास्त्रोंमें है वह तुमको मालूमहै तुमयहां शांतहोकर कर्म्मकरो और ब्राह्मण तुम्हारारक्षकहो हेतात क्रोधरहित ब्राह्मणोंका जो कर्म्म है वह परलोकका हितकारी पापयुक्तभीहो ऐसी दशामेंभी धर्म्मकोही समझो जनमेजय बोले कि हे शौनक जी मैं पापसे पश्चात्ताप करताहूं औरधर्म्मको लोप नहींकरताहूं मुझकल्याण चाहनेवाले सेवक पर प्रसन्नहूजिये- शौनकजी बोले कि राजा मैं छल अहंकार रहित तेरी प्रीतिको चाहताहूं तू धर्म्मको यादकरके सब जीवोंकी वृद्धिमें वर्त्तमानहो मैं लोभदुःख भयआदिसे तुझको शिष्यनहीं बनाताहूं तुम ब्राह्मणोंसमेत मेरेउसदैवीसत्यवचनोंको सुनो मैं किसीसेधनकी इच्छा नहीं रखता हाहा धिक्कार धिक्कार ऐसेसबजीवोंके पुकारने से तुझको धर्म्मसे शिष्य करताहूं सुहृदजन मुझको धर्म्मसे अज्ञानी जानकर त्यागकरेंगे और मुझपर महादुःखीहोंगे मेरे चित्तके प्रयोजनको कोई ज्ञानीही पुरुष जानेंगेवह ब्राह्मण मेरे कारणसे जिसप्रकार कुशलताको पावें उसीप्रकार तुमको करनायोग्य है हेराजा ब्राह्मणोंकी अविरोधता का प्रणकरो, जनमेजय बोला कि हे वेदपाठी शौनक मैं कभी बचन चित्त कर्म्मसे ब्राह्मणों से विरोध नहीं करूंगा और मैं आप के दोनों चरणोंको स्पर्शकरके कहताहूं २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिआपद्धर्मेएकविंशतितमोऽध्यायः २१ ॥

# बाईसवां अध्याय ॥

शौनक बोले कि तुम बड़े पराक्रमीहोकर धर्मको देखतेहो और विद्यावान् प्रसन्नचित्त होकर पापसे ब्याकुल चित्तहो इस कारण मैं तुझसे धर्मको कहताहूं कि राजा प्रथम भयानकरूप होकर फिर अपने चलनसे जीवोंपर कृपा करता है वह अपूर्व तर है वह सम्पूर्ण प्रजाको नष्टकरता है यह सब संसार कहताहै तुम ऐसे अन्यायीहोकर धर्मकोही देखतेहो इससे तुम बहुत काल तक भोज्यवस्तुओं को त्यागकरके तपस्यामें प्रवृत्तहोजाओ हेजनमेजय अध-

मेंसे अपमान युक्त राजाओं की यह अपूर्व वार्त्ता है कि जो दानकरने वाला धनवान्हो और तपस्यारूपी धन का रखने वाला कृपण हो यह आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि जो आदि अन्त में विचार नहीं किया यही सम्पूर्ण कार्य्यता है जो कर्म ध्यानपूर्वक होता है उस में गुण है हे राजा यज्ञदान दया वेद सत्यता यह पांचों और अच्छे प्रकार किया हुआ तप सब पवित्र हैं यही राजाओं का पवित्र और उत्तम धर्म है इन गुणों से तू मोक्ष धर्म को प्राप्त करेगा पवित्र देश की यात्रा उत्तम और पवित्र कही जाती है इस स्थानपर राजा ययाति का कहाहुआ इतिहास कहते हैं जो आदमी अपनी आयु और जीवनको प्राप्त करे और बड़ी युक्ति से यज्ञ करके फिर तपस्याको करे वह तप कुरुक्षेत्र के समान पवित्र है और कुरुक्षेत्र से सरस्वती को और सरस्वती से तीर्थों को और तीर्थों से पृथूदक को पवित्र वर्णनकिया है जिन तीर्थों में स्नान और जल पान करके जीवन्मुक्त हो जाय वह महा सरोवर पुष्कर प्रभासक्षेत्र कालोदक आदि तीर्थ हैं और सरस्वती दृषद्वती दोनों का संगम और मानसरोवर यह बड़े तीर्थ हैं उन सब तीर्थों में वेद पाठ और जप का अभ्यास करनेवाला आचमन पूर्वक स्नान करे मनुजी ने कहा है कि पवित्र पुरुषों का धर्म त्याग है और उससे भी अधिक संन्यास है इस स्थान पर सत्यवान् के बनाये हुये इतिहासको कहता हूं जैसे कि बालकसत्य वक्ता है और पाप पुण्य का कर्त्ता नहीं है इसी प्रकार इस लोकमें सबजीवों के मध्य ब्रह्म से उत्पन्न होनेवाले अर्थात् ब्रह्म स्वरूप पुरुषों को सुख नहीं है तो फिर संसार के कुसंग से सब पापों के प्राप्त करनेवाले पुरुषों को कैसेहोगा अर्थात् वह दोनों कल्पित हैं पुण्य पाप के समाप्त होने पर त्याग करने-वालों का जीवन कल्याणकारी है राजाओं के कर्मों में जो उत्तम कर्म है वह तुझ से कहूंगा तुम धैर्य्यता और दानों से स्वर्ग को विजय करो जिसका धैर्य्यता और इन्द्रियों के जीतनेकी सामर्थ्य है वह मनुष्य धर्मका स्वामी है तुम ब्राह्मणों के अर्थ और सुख भोगने के निमित्त पृथ्वी की रक्षा करो क्यों कि तुमने पहिले इनको तिरस्कार किया था अब इनको प्रसन्न करो और शपथ करो कि मैं ब्राह्मणों को नहीं मारूंगा तू अपने कामों में उद्योग करके परमकल्याण को कर कोई राजा तो बरफ अग्नि और यमराज के समान होता है और कोई राजाहल और वज्र के समान होता है मैं सदैव रहूंगा ऐसा विचारकर नीचपुरुषोंका निष्फल संगनकरनाचाहिये अर्थात् नाशकी इच्छाकरके कभी नीचोंकासंगनकरे पश्चात्तापके करने से विपरीत कर्म का पाप दूरहोता है यह फिर नहीं करूंगा ऐसा निश्चय करलेने से भी पापसे निवृत्त होताहै मैं धर्म्म ही को करूंगा यहसंकल्प करके भी अपनेपापसे उ-

द्धारहोताहै ऐश्वर्य चाहनेवालेको अपना कल्याण करनाचाहिये जो सुगंधियों का सेवन करते हैं वह उसी सुगंधिके रखनेवाले होतेहैं जो दुर्गन्धियोंके रखनेवाले हैं वह उसी प्रकारकी दुर्गन्धि रखनेवाले होते हैं तप में प्रवृत्तहोने से पुरुष शीघ्रही पापसे छूटताहै जिसको दुष्टकर्मका दोष लगाया गया हो वहएक वर्ष पर्यन्त अग्निकी उपासनाकरके पापसे पृथक् होता है भ्रूणहत्या करनेवाला तीनवर्ष अग्निकी उपासनाकर के पापसे निवृत्त होता है महासरोवर पुष्कर प्रभासआदि तीर्थोंकी यात्राको करके सौ योजन चलने से भी भ्रूणहत्या दूरहोती है जितने जीवों को मार उतने ही मरनेवाले जीवोंको छुड़ाने से वहजीवघाती पापों से निवृत्तहोता है तीनऋचा अघमर्षणकी जल में गोतालगाकर पढ़े उसको अश्वमेध और अभृतस्नान के समान मनुजी कहतेहैं उससे शीघ्र ही पाप नष्ट हो सत्कार का पाता है और सब जीव भी जड़ और गूंगे के समान इसको प्रसन्न करतेहैं हे राजा देवता और असुरों ने देवगुरु बृहस्पतिजी से आदर पूर्वक पूछा कि हे महर्षी तुम धर्म से उत्पन्न होनेवाले सुखरूपी फल को जानते हो उसी प्रकार परलोक सम्बन्धी दुःख को भी जानते हो जिस योगी के वह दोनों सुख दुःख बराबर होयँ उन दोनों की बिजय भी वहां बराबर हो सक्ती है या नहीं, धर्म की प्रकृति रखनेवाला पुरुष किस प्रकार से पाप को दूर करता है, बृहस्पति जी बोले कि जो पहिले अज्ञानता से पाप को करके फिर बुद्धि से पवित्र कर्म्मों को करता है वह कर्म का अभ्यासी उस पाप को ऐसे दूरकरता है जैसे कि देह से मैले वस्त्र को दूर करते हैं—पाप करके यह माने कि मैं कर्त्ता नहीं हूं अर्थात् देह के अहंकार से पृथक् है वह श्रद्धायुक्त दूसरे के दोष गुण में दोष न लगानेवाला कल्याण को प्राप्त होता है जो पुरुष साधुओं से प्रकटहोनेवाले दोषों को ढकता है वह भी कल्याण भागी होता है--जो पुरुष पापको करके कल्याण को प्राप्त करता है वह इसप्रकार कल्याणको करताहुआ सब पापोंको दूरकरता है जैसे कि सम्पूर्ण अन्धकारको प्रातःकाल का सूर्य्य दूर करता है-भीष्मजी बोले कि शौनक के पुत्र इन्द्रोतने राजाजनमेजय से ऐसा कहकर बुद्धिके अनुसार अश्वमेध यज्ञ कराया तब वह जनमेजय निष्पाप होकर कल्याण युक्त देदीप्य अग्नि के समान रूपवान् शत्रुहन्ता होकर अपने नगरमें जाकर ऐसे पहुंचा जैसे कि आकाशमें पूर्णचन्द्रमण्डल युक्त चन्द्रमा होता है २९॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिआपद्धर्म्मेद्वाविंशोऽध्यायः २२॥

―――

# तेईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह आपने देखा या सुना है कि कोई मृतक होकर फिर जिया इसको कृपाकरके कहिये—भीष्मजी बोले कि एक प्राचीन इतिहास जिस में गिद्ध और शृगाल का वर्णन है उसको सुनो कि प्राचीन समय में नैमिष देश में किसी ब्राह्मण का बालक बड़ेनेत्र वाला कष्टसे प्राप्त होनेवाला बाल ग्रहसे पीड़ित होकर मरगया तब उस घराने के मूलधनरूप मृतक बालक को उसके भाई बन्धु महाव्याकुल शोक से अश्रुपात डालते हुये श्मशान भूमि के पास लेकर वर्त्तमान हुये और शोकसे उसबालक को पृथ्वीपर रखकर करुणा करके रोदन करनेलगे वारम्वार उसबालक के वचनों को यादकर कर मारेमोह के उसको वहां छोड़कर लौटजाने को समर्थ नहीं हुये उन के विलाप के वचन सुनकर एक गिद्ध उनसे बोला कि लोक में इकलौते पुत्र को छोड़कर जाओ यहां बिलम्ब न करो यहां हजारों स्त्री पुरुषोंको बान्धव लोग छोड़ २ कर सदैव चले जाते हैं और सुख दुःख से भरे हुये सब संसार को देखो मिलना और बिछुड़ना क्रमसे सब को होने वाला है जो लेकर आते हैं वह जीव भी अपनी अवस्था की संख्या से मृत्युहोते हैं तुम इस गिद्ध शृगाल काकादि व्याप्त महाभयानक भूमिसे चलेजाओ काल को पाकर कोई इष्टमित्र फिरनहीं जिया है जीवोंकी ऐसी ही गति है इस में जो उत्पन्न हुआहै वह अवश्य ही मरेगा कौनपुरुष मृत्युसे बचाकर मृतक को जिलासक्ता है लोक का सबकाम करके अंतको सूर्य्य भी अस्तंगतहोताहै पुत्रके स्नेह को त्यागकर अपने २ स्थानोंको जाओ तदनन्तर गिद्धके बचनों से वह सब बांधव पुकारे और रोकर लड़के को छोड़कर चल दिये और निराशाहोकर अर्थके निश्चय करने को मार्ग रोककर वर्त्तमान हुये तब कौवेके समान काला एकशृगालबिल में से निकलकर उनसबमनुष्यों से बोला कि निश्चय करके मनुष्य निर्दय हैं अरे मूर्खो यह सूर्य्यवर्त्तमान है प्रीतिकरो भय मतकरो अब बहुतरूप रखने वाला मुहूर्त्त है कभी २ मृतक भी जीता है तुम पुत्रभाव की प्रीतिसे पृथक् हो निर्दय होकर अपने इस बालक को श्मशान में छोड़कर किसकारण से जाते हो इसमीठे बचन वाले बालक में तुम्हारा स्नेहनहीं है जिसकी केवल बातोंहीसे खुशीहोते थे तुम देखो कि जैसे पशु पक्षियों की अपने पुत्रों में प्रीति होती है उनको अपने पुत्रों के पोषण के सिवाय कोई फलनहीं प्राप्तहोता है पुत्रों में प्रीति रखनेवाले पशुपक्षी कीट आदि जीवोंको पोपणकरने का कोईफल ऐसे प्राप्त नहीं है जैसे कि परलोक गतिमें वर्त्तमान मुनियों के यज्ञ और क्रियाओंका

फल प्रकट नहींहोता अर्थात् वह फल ईश्वर में वर्त्तमान होता है बेटों से क्रीड़ा विनोद करनेवालों को इसलोक परलोक दोनोंमें कोई फलनहींदेखने में आता है परन्तु सन्तान को पोषण करते हैं प्यारे पुत्रों के न देखने वाले उनजीवोंको शोकवर्त्तमान नहींहोता है और न बड़े होकर अपने पितामाता का पोषण करते हैं मनुष्य की प्रीति कहांसे है जिनका शोक कियाजाय इस अपने पुत्रको त्यागकर कहांजाओगे कुछसमय तक नेत्रों से जलबहाओ और प्रीतिसेदेखो इसप्रकारकी चित्तरोचकता अधिककरके उसमनुष्यको त्यागना कठिनहै जोकि सुखसे भ्रष्ट और प्यारीवस्तुओंसमेत श्मशान भूमि में वर्त्तमानहो, जिसस्थानपर बांधव वर्त्तमानहोतेहैं वहां दूसरा कोई नहीं ठहर सक्ता है प्राण सबको प्यारे हैं और सबप्रीतिको जानते हैं-तिर्यक् योनि के जीवोंमें भी सत्पुरुषों की प्रीति जैसी होतीहै उसकोभी देखो ऐसे कमलमुख कोमल बालक को छोड़कर तुम कैसे घरकोजातेहो जैसे कि हालके विवाह कियेहुये स्नानपूर्वक अलंकृतदूलहको-यहशृगालके वचन सुनकर वहसब भाईबन्धु उस मृतक बालक के लेनेको लौटे तब गिद्धबोला कि अरेनिर्बुद्धी लोगो तुम इसनीचबुद्धि शृगाल के बहकाने से क्यों लौटेआते हो और पञ्चभूतोंसे बने प्राणरहित काष्ठरूप बालकको क्या शोचतेहो तुम अपनी आत्माको क्यों नहीं शोचते निश्चयकरके उग्रतपकरो जिससे पापसेछूटोतपसे सबप्राप्तहोसक्ताहै विलाप करनेसे क्या होगा सब अनिष्ट देह के साथही उत्पन्नहुयेहैं जिसके कारण यह बालक अत्यन्त दुखदेकर जाताहै धनगौ रत्न और संतान भी तपसेही प्राप्त होते हैं और वह तप योगसे प्राप्तहोता है जिसप्रकार अपनेकर्मसे उत्पन्नहोनेवाले सुख दुःख जीवोंको प्राप्त होतेहैं उसीप्रकार सबजीव सुखदुःखोंको साथलेकर उत्पन्नहोता है पिताकेकर्म्म से पुत्र और पुत्रकेकर्म्म से पिता संयुक्त नहीं होताहै सब अपने अच्छे बुरे कर्मोंसे बँधेहुये इसमार्गहोकर जातेहैं तुम युक्तिपूर्वक अधर्मको चित्तसे दूरकरके धर्म कोकरो और समयके अनुसार देवता और ब्राह्मणोंमें वर्त्तावकरो शोक और दुःखको त्यागकरो और पुत्रके स्नेहसे अलग होकर इसको आकाशमें त्याग करके फिर शीघ्रतासे लौटो, जो पुरुष बुरेभले कर्मको करता है उसीको भोगता है इसमेंबांधवोंसे क्यासम्बन्धहै बांधवलोग यहां अपने प्यारे बांधवको त्याग करके वर्त्तमान नहीं रहते हैं और अश्रुपात डालडालकर प्रीतिको त्यागकर वहअपने २ घरकोजातेहैं ज्ञानी या मूर्ख धनी वा निर्द्धन यहसब बुरे भले कर्मके द्वारा कालके वशीभूत होतेहैं शोचने से क्याहोगा और मृतकको क्याकरोगे सबको बराबर देखनेवाला कालधर्मसे सबका स्वामीहै तरुण, वृद्ध, बालक आदि सब जीवकर्म में बँधेहुये मृत्यु के आधीनहोतेहैं यह संसार ऐसाहै शृ-

गालने कहा बड़ाआश्चर्य्य है कि अल्पबुद्धी गिद्धने पुत्र के स्नेहमें भरेहुये शोचग्रस्त तुम लोगोंकी प्रीति कम करदी जो यह समूह स्पष्ट विश्वासित और अच्छे प्रकारसे कहेहुये वचनोंसे कठिन प्रीतिको त्यागकरजाताहै और दुःखकास्थानहै कि पुत्रका वियोग और श्मशान के सेवनसे पुकारने वाले आदमियोंका ऐसा बड़ादुःख है जैसे कि बछड़ोंके वियोग होनेसे गौओंको दुःखहोता है अब मैं पृथ्वी के मनुष्योंके शोकको खूबजानताहूं प्रीति के कारण मेरे भी अश्रुपातहुये उद्योग सदैव करना चाहिये फिर वह दैव के योगसे सफल होताहै प्रारब्ध और उद्योग दोनों दैव के द्वारा प्राप्तहोते हैं सदैव प्रीति करना चाहिये बिना प्रीतिके सुखनहींहोता अर्थ की सिद्धी बड़े उद्योगसे होतीहै तुम क्यों निर्दयी के समान जातेहो अपने वीर्य से उत्पन्न आत्मारूप पितरों का बंश पैदाकरने वाले पुत्रको बनमें छोड़कर कहांजाते हो तुम सूर्य्यास्त के समय पुत्रको लेजाओगे या यहांपर वर्त्तमानहोगे फिर गिद्धबोला हे मनुष्यो अब मेरी अवस्था हजारवर्षसे अधिकव्यतीतहुई मैं स्त्री पुरुष नपुंसक किसीको जीता नहीं देखताहूं मृतक जीवगर्भसे उत्पन्न होतेहैं और जन्मलेतेही मर जातेहैं और इधर उधर घूमतेहुये भी मरजातेहैं इसीप्रकार तरुण बृद्धावस्थामें भी मरतेहैं इसलोकमें पशुपक्षी जड़ चेतन जीव और पहाड़ों के भी प्रारब्ध नाशवान् है क्योंकि अवस्था आगे नियत होती है प्यारी स्त्रीसे बियोग और पुत्रके शोकसे संयुक्त दुःखी मनुष्य सदैव शोककरते घरको गये हजारों इष्ट मित्र शत्रु प्यारे कुप्यारे लोगोंको बांधवलोग यहां छोड़कर चलेगये इस काष्ठतुल्य मृतक पुत्रको तुम त्यागकरो यह मृतकरूप जीव दूसरी देहमें पहुंचगया इससबबसे इस निर्जीवको छोड़कर नहींजाते हो यह प्रीति निरर्थकहै और परिश्रम निष्फल है यह न आँखोंसे देखता न कानोंसे सुनता है क्यों नहीं इसको त्यागकरके जल्दी घरकोजातेहो,मोक्षधर्म्म से सम्बन्ध रखने वाले कारण युक्त मेरे कठिन वचनोंसे समझाये तुम अपने २ घरको चलेजाओ हे मनुष्यो निश्चय ज्ञान विज्ञानसे संयुक्त सलाहको सुनकर लौटजाओ बालकको देखकर और चरित्रोंको शोचकर शोकदूनाहोजाताहै इस वचनको सुनकर सब मनुष्यलौटे तबशृगालने शीघ्रहीआकर उसपड़ेहुये बालकको देखा और मनुष्योंसेकहा कि तुम गिद्धकेवचनसे इससुवर्णवरण भूषणोंसे अलंकृत पितरोंके पिण्डदेनेवाले पुत्रकोक्योंत्यागे जातेहो,प्रीति शोकसे अलग नहींहै निश्चय इसमृतकके त्यागसेतुमको खेदहोगा सुनतेहैं कि शम्बुक शूद्रके मरनेपर ब्राह्मणका बालक धर्मको पाकर सच्चेपराक्रमीरामजीसे जिलायागया उसीप्रकारसे राजर्षिश्वेतका पुत्र मृत्युवशहुआ फिर इसबालक को धर्मनिष्ठ श्वेतने जिलाया उसीप्रकार कोई देव मुनि सिद्ध हो और शोचग्रस्त तुम

लोगों पर करुणाकरे तो यहभी बचे इसप्रकारसे कहेहुये शोकसे पीड़ितपुत्र पर प्यारकरनेवाले वह सबलोगलौटे और अपनी गोदी में बालक का शिर रखकर बड़ाभारी विलापकिया उनकी विलापयुक्तबाणी को सुनकर गिद्धने कहा कि अश्रुपात से भीजा देह हाथके छूनेसे घायल और धर्मराज के प्रयोगसे बड़ेभारी स्वप्नमें प्रवृत्त कियेगये तप से भरेहुये धनी महाबुद्धिमान् सब मनुष्य मृत्युके आधीन होते हैं यह वह मृतकोंका नगर है जहां बांधवलोग सदैव हजारों बालक और वृद्धोंको त्यागकरके पृथ्वी पर अहर्निश दुःख भोगते रहतेहैं हठको छोड़ चित्तसे शोक को दूरकरो अब इसका जीवन कैसे होसक्ता है मृतक और देहके त्यागनेवालों का फिर देह नहीं वर्त्तमान होताहै सैकड़ों शृगाल कीमूर्त्तियों के देनेसे भी यह बालक सैकड़ों वर्षतक भी जिलाना असम्भव है जो ब्रह्मा रुद्र विष्णु स्कन्दआदिमें से कोई इसको बरदान दें तो यह बालक जीवे और आपके इसरुदनके अश्रुपातों से नहीं जी सकेगा मैं तुम बांधव शृगाल आदि जितने हैं वह सब धर्म अधर्म को साथ लेकर यहां इस मार्ग में वर्त्तमान हैं अप्रिय मनुष्य दूसरे की स्त्री और जीवों की शत्रुता अधर्म मिथ्या इत्यादि बातों को ज्ञानी पुरुष त्याग करे तुम धर्म की सत्यता और न्यायशास्त्र के अनुसार गुण और जीवों पर बड़ी दया और निश्छलता को युक्ति से निश्चय करो, जो पुरुष माता पिता बांधव सुहृद आदि को जीवता नहीं देखते हैं उनके धर्म में विपरीतता है, जो बालक नेत्रों से नहीं देखता है और किसी प्रकार की अंगचेष्टा भी नहीं करता है उसकी अवस्था पूर्ण हो जाने में तुम शोक करके क्या करोगे यह सुनकर शोच में डूबे हुये वह बांधव बालक को पृथ्वी में छोड़कर घर को चले शृगाल बोला कि सब जीवों का नाश करनेवाला यह नरलोक भय उत्पादक और कठिनता से क्षमा किया जाता है यहां जैसे सुहृद बांधव आदि से वियोग है उसी प्रकार जीवन भी थोड़ा है बहुत से कुप्यारे जो परोक्ष में निन्दा और अप्रिय बोलनेवाले दुःख और शोक के बढ़ानेवाले पुरुषों से संयुक्त इस प्रकट संसार को देखकर यह नरलोक एक मुहूर्त भी मुझको अच्छा नहीं लगता है तुम सरीखे अज्ञान लोगों को धिक्कार है जो गिद्ध के कहने से पुत्र से निर्मोही होकर घर को जाते हो हे शोक युक्त मनुष्यो लौटो इस पापी गिद्ध के अशुद्ध बचनों को सुनकर क्यों जाते हो सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख है यहां सुख दुःख से संयुक्त इस संसार में एक बात बराबर नहीं होती है अज्ञानियो इस कुल के शोभा देनेवाले स्वरूपवान् बालक को छोड़कर कहां जाते हो मैं इस रूपवान् तरुणता युक्त बालकको निस्सन्देह चित्त से जीवता देखता हूं हे मनुष्यो इसका नाश नहीं

है निश्चय तुम इसको आनंद से पाओगे अब बालक के शोक से दुःखी मृतक के समान आप लोगों को जाना उचित नहीं है सुख को प्राप्त करके और धारण करके निर्बुद्धियों के समान पुत्रको त्याग कर कहां जाओगे- भीष्मजी बोले कि हे राजा इस प्रकार शृगाल के अमृतरूपी बचनों को सुन- कर उन सब बांधवोंने मध्य के बसेरेको पाया और अपने प्रयोजनके निमित्त उसके पास वर्त्तमानहुये गिद्ध बोला कि यह श्मशान भूमि प्रेत यक्ष राक्षसों से व्याप्त भयकारी नोला आदि जीवों से शब्दायमान भयानक घोर सूरत नीले बादल के समान प्रभायुक्त इसमें मृतक को त्याग करके प्रेतक्रिया में प्रवृत्त हो जब तक सूर्य्य अस्त नहीं होता है तबतक सब ओर के मार्ग साफ हैं इससे इसी शुद्धमार्गमें प्रेतक्रियाको करो बाजपक्षी कठोरशब्द करतेहैं और भयकारी शृगाल बोलते हैं मृगेन्द्र प्रसन्नहोतेहैं और सूर्य्य अस्ताचलको जाता है चिता के नीले धुएं से वृक्ष रंगिनहोते हैं, श्मशानभूमि में निराहार देवता गरजते हैं इस भयानकरूप देशमें भस्मसेभरेहुये देह और कुरूपसे रुधिर भक्षी राक्षस तुमको रात्रिमें डरावेंगे यह कठिनस्थान है इसमें अब भय उत्पन्न होगा इसकाठरूप बालकको त्यागो और शृगाल के वचनोंको विचारो, जो तुम शृ- गालके निष्फल और मिथ्याबचनोंको सुनोगे तो बेहोशहोकर नाशको पा- ओगे-शृगाल बोलाठहरो यहांडरना न चाहियेजबतक सूर्य्यकाउदयहै तबतक इस प्यारे पुत्रमें अप्रीति नहीं करना योग्य है तुम विश्वास करके कुछ समय तक देखो जबतक सूर्य्य है तब तक कच्चेमांसभक्षी गिद्धसे तुमको क्या प्रयोज- न है जोतुम गिद्धके वचनोंपर विश्वासकरोगे तो तुम्हारापुत्र नहीं जीवेगा- फिर गिद्धने कहा कि सूर्य्यास्त हुआ शृगालने कहा नहीं हेराजा अपने काममें प्रवृत्त वह दोनों गिद्ध और शृगाल भूखप्याससे थकेहुये शास्त्र का सहारा लेकर चुप होगये--विज्ञानी और पंडितलोग उन गिद्ध और शृगाल के अमृतरूपी बचनों से चलतेथे और ठहरजातेथे फिर शोकमें भरेहुये वह सबलोग ठहरगये और उनदोनों चतुरों की चतुराईसे वह सबकाम करने लगे तदनन्तर बादी प्रतिबादी गिद्ध और शृगाल और उनमनुष्योंके सन्मु- ख श्रीमहादेवजीने आकर दर्शनदिया और सबसे कहा कि मैं बरका देने- वालाहूं तब सबने हाथजोड़ के कहाकि आपहमारे इकलौते बेटेको जीवदा- न दीजिये तब शिवजीने जलसे पूर्ण नेत्रों समेत उस बालककी सौवर्षकी उमर करदी उसी प्रकार सबके उपकारी शिवजीने शृगाल और गिद्धको भूखकेनाश करनेका बर प्रदानदिया और वहलोग लड़के को जीवदान कराके बड़ी प्रसन्नता पूर्वक श्रीशंकरजीको नमस्कारकरके घरकोगये तात्पर्य्य यहहै कि बड़ीप्रीति पूर्वक पूर्णनिश्चयसे और देवोंके देव शंकर जीकी प्रसन्नता

से शीघ्रही फलप्राप्त होताहै-दैव संयोग और बांधवोंके निश्चयको देखो और दुःखी भूखे प्यासे मनुष्योंके अश्रुपातका साफ होनादेखो थोड़ेही समयमें बड़े निश्चयको करके शोकसेदुःखी मनुष्योंने महादेवजीकी प्रसन्नतासे बड़ेभारी सुखरूप कल्याण को पाया जो इस अध्यायको चित्तसे सुनताहै उसको इसी प्रकारके अनेक कल्याण होतेहैं १२२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेत्रयोविंशतिमोऽध्यायः २३ ॥

## चौबीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह जो निर्बल मिथ्याबादी असावधान मनुष्यहैं वह अपनी अज्ञानतासे अयोग्यबचनों के द्वारा सदैव सन्मुख वर्त्तमानेकी बदी करनेमें समर्थ उद्युक्त शत्रुके साथ बिरोध करके अपने बलके घमंडसे क्रोधयुक्त सन्मुख आनेवाले शत्रुके उखाड़नेकी इच्छासे कैसे कर्मकरे-भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर इसस्थानपर एकप्राचीन इतिहासको कहता हूं जिसमें शाल्मली वृक्ष और हवा का संबादहै--हिमालय पर्बतपर एक शाल्मलीका बहुतबड़ा वृक्षथा जिसकी बड़ी२ शाखाओंमें अनेक उपशाखार्थी वहां धूपसे पीड़ित थकेहुये मतवाले हाथी और अनेक प्रकारके पशुजीव निवास करतेथे उसकी मुटाई दोसौ गजकी बड़ी छायावाला तोता मैना आदि पक्षियोंसे शब्दायमान फलपुष्प युक्तथा दैव योग से उसउत्तम वृक्षकेनीचे बनबासी व्यापारियोंका समूह और बिदेशी तपस्वी इकट्ठे हुयेथे वहां नारदजीने आकर उस वृक्षसे कहाकि आश्चर्यहै कि तुम चित्तरोचक क्रीड़ाके योग्य हो हेशाल्मलवृक्ष हमतुझसे सदैव प्रसन्न रहतेहैं और तेरीछायामें बड़े २ मतवाले हाथी आदि अनेक बनकेपशु आनन्दसे बिश्राम लेतेहैं और तेरी शाखाओंको मैं किसी प्रकारकी हवासे टूटता नहीं देखता क्याहवा तुम्हारी मित्रहै और तुझपर प्रसन्नहै जिससे कोई तुम्हारा बिगाड़ नहींकरती तीक्ष्ण हवा सैकड़ों बड़े२ वृक्ष और पर्बतोंके शिखर और अनेक स्थानोंको अपने २ स्थानोंसे हटादेतीहै अति सुगंधित पवित्र बायु देवता, पाताल सरोवर,नदी और सागरोंको प्रसन्न करतीहै बायुदेवता तुमको मित्रतासे रक्षाकरतेहैं इसीसे तुमफल पुष्पयुक्तभी रहतेहो और तेरी सुन्दर शाखाओंमें यह प्रसन्नचित्त पक्षी कल्लोलें करतेहैं इनसब पक्षियों के शब्दऋतु २ के अनुसार मीठे और मनभावने सुनाई देते हैं और इसीप्रकार यहमतवाले गर्जनेवाले हाथी आदि जीवभी तेरे आश्रम में आनन्द पूर्बकनिवास करते हैं तुम इन सब बातों से सुमेरु पर्बतके समान शोभा देरहे हो तप से सिद्ध तपस्वी और भिक्षुक ब्राह्मणों के द्वारातुझ को स्वर्ग के समान मानताहूं २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिआपद्धर्मेचतुर्विंशोऽध्यायः २४ ॥

# पच्चीसवां अध्याय॥

हे शाल्मल भयकारी सर्वव्यापी वायुदेवता बिरादरीके नाते से या मित्र तासे तुम्हारी सदैव रक्षाकरते हैं इससे हे वृक्षतुमवायु देवता के दासहो औ मैं तेराहूं ऐसा सदैव दीनवचन कहते हौ इसी से वायु देवता तुम्हारी रक्ष करते हैं मैं ऐसाकोई वृक्षपर्वत स्थान पृथ्वी पर नहीं देखताहूं जो हवा से पीड़ित न हो--शाल्मल बोला हे ब्राह्मण वायु न मेरा मित्र है न बंधुहै औ न मेरा शुभचिन्तक है इसी प्रकार ईश्वरभी नहीं है जो सबकी रक्षाकरता है हे नारदजी मेरा और हवाका तेज बल-कठिनतासे सहनेके योग्य है वायुदे वता पराक्रम में मेरेअठारहवीं कलाकेभी समान नहीं हैं वहपवन वृक्षपर्वत स्थानों को तोड़ता हुआ मेरेही बलसे रोंकागयाहै वायुदेवता को बहुधा मैंने पराजय किया इससे हे नारदजी मैं क्रोध युक्त हवासे भी नहीं डरताहूं नारद जी बोले कि हे शाल्मल यहतेरा समझना मिथ्या है क्योंकि हवाके समान कोईजीव पराक्रमी नहीं है इन्द्रबरुण यमराज कुबेर यहभी बल में वायुदेव ताके समान नहीं हैं तो तुमकैसे होसक्तेहो, और इस पृथ्वीपर जो कोई जीवचेष्टा करता है वह सब चेष्टा करनेवाले वायुदेवता ही हैं यही देवतासब में व्याप्तहोकर जीवमात्रोंको चेष्टाकराता है और विपरीत से व्याप्त होकरबि- परीत चेष्टाभी करादेताहै सो तुम ऐसे पराक्रमी देवताका पूजननहीं करतेहो इससे यह बुरीबातहै जो स्वाभाविक गुणसे रहित है और शास्त्रकी जानने- वाली मेधाबुद्धि जिसकी नष्टहै वहबड़ी बकवादकरता है और क्रोधआदिसे आच्छादित निष्प्रयोजन बात करता है तेरेऐसे बचनोंसे मुझको क्रोधउत्पन्न हुआ मैं तेरेखोटे वचनोंको वायु देवतासे कहूंगा हेदुर्बुद्धी चन्दन, स्यन्दन, शाल, सरलदेवदारु वेत--धन्वनआदि अनेक पराक्रमी और ज्ञानीवृक्ष हैं वहसब भी वायुदेवताकी ऐसी निंदानहीं करसक्ते वे सबवायु देवताके और अपने बलको जानतेहैं इससे वहबड़े २ उत्तम वृक्षभी वायुदेवताको नमस्कार किया करते हैं तुमअपने मोहसे वायु देवताके अत्यन्तपराक्रम को नहींजानते हो जो यहबात ऐसेहीहै तो वायुदेवता के सन्मुख जाऊंगा १९॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिआपद्धर्मेपंचविंशतिमोऽध्यायः २५॥

# छब्बीसवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि हेराजेन्द्र ज्ञानियों में श्रेष्ठ नारदजीने शाल्मलसे ऐसा कहकर उसकी सबबातों कोहवासे कहा कि हिमालयके ऊपर एक शाल्मली वृक्ष है वह बड़ीजड़ और छाया रखनेवाला है वह तुम्हारा अपमान करता

है उसने बड़ी निन्दाके बचन जो तुमको कहे हैं वह मैं तुम्हारे आग कह नहींसक्ता हे बायुदेवता मैं तुमको सब देव दानव राक्षसों से भी बड़ा पराक्रमी और क्रोध में यमराजसे भी अधिक जानताहूं यह नारदके बचन सुनतेही बायुदेवता क्रोधयुक्त हो उसशाल्मली से जाकर यह बचन बोले हेशाल्मल तैंने नारदजी से मेरी निन्दाकी है मैं अपना पराक्रम तुझको दिखलाऊंगा और जो ब्रह्माजी ने तेरेनीचे बिश्राम किया उसी विश्राम करने से यहमेरी कृपा तेरेऊपर है हे दुर्बुद्धी इसी कारण से बचा हुआहै तू अपने पराक्रम से नहीं बचा है जो तू मुझको दूसरे प्राकृति जीवों के समान जानता है मैं अपनी आत्माको दिखाता हूं जिससे तू कभी मेरी निंदा न करेगा तब शाल्मली ने हँसकर उत्तरदिया कि हे बायुदेवता तुम अपना पूरा पराक्रम मुझको दिखाओ मुझपर क्रोधमतकरो और जो क्रोधकरोगे तो मेरा क्याकर सक्तेहो हेवायु यद्यपि आप समर्थहैं परन्तुमैं आपसे कभी नहीं डरता मैं तुझसे पराक्रम में अधिकहूं इससे तेरा भय मुझको जराभी नहीं है क्योंकि जो बुद्धि के बलीहैं वही पराक्रमी होते हैं जो देहसेही बलिष्ठ हैं वह बली नहीं समझेजाते हैं यह बचन शाल्मली से सुनकर वायुने कहा कि मैं कल अपनाबल तुझको दिखाऊंगा तदनन्तर रात्रि वर्त्तमान हुई और वायुके समान अपने को न जानकर शाल्मली ने ध्यान करके कहा कि मैंने नारदजी से जो २ वचन कहे वह सब मिथ्या हैं मैं वायु से निर्बलहूं वही पराक्रमी है निश्चय करके जैसा कि नारदजी ने कहा है सो ठीक है अर्थात् वायु देवता बड़ेबलवान् हैं और मैं निस्सन्देह दूसरे वृक्षों से भी निर्बलहूं सो मैं बुद्धिमें नियत होकर वायु से अपने भयको दूरकरूंगा जो बनकेवृक्ष भी उस बुद्धि में नियत होकर ठहरें वह भी सदैव वायुके कोपसे बचेंगे इस में सन्देह नहीं है परन्तु वह अज्ञानी इसको नहीं जानते हैं इसी से क्रोधभरी वायु इन वृक्षों को हिलाती है १९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्म्मेषड्विंशोऽध्यायः २६ ॥

## सत्ताईसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि उस शाल्मलीवृक्ष ने व्याकुल होकर अपनी छोटीबड़ी शाखा और गुद्दों को अपने आप गिरादिया सब फलपुष्प और शाखा आदि के दूरकरनेवाले शाल्मली ने प्रातःकाल के समय आनेवाले वायु देवता को देखा कि श्वासाओं से बड़े २ बृक्षों को गिरातेहुये क्रोधाग्नि में भरेहुये उसस्थान में आये जहांपर कि वह शाल्मली वृक्ष था उसकेफल पुष्प और शाखाओं को गिराहुआ देखकर बड़े प्रसन्नचित्त मन्द मुसकान

से यह वचन बोले कि हे शाल्मल मैं भी क्रोधसे तुमको ऐसाही करनेवाला था तुमने आपशाखाओंके दूरकरनेसे अपनेको दुःखमेंडाला अपने बुरेबिचार से फूल फल शाखाओं से रहित सूखे गिरेहुये तुम मेरेपराक्रमके आधीन किये गये तब शाल्मली महा लज्जायुक्त होकर नारदजीने जो कहा उस वचन को स्मरण करके महा दुःखितहुआ हे राजेन्द्र इसी प्रकार अज्ञानी राजाभी निर्बल होकर बलवानों से जो विरोध करता है वह शाल्मली वृक्षके समान दुःखी और लज्जायुक्त होताहै इसकारण निर्बल राजा पराक्रमी राजा से वि-रोध ऐसा न करे जैसा कि शाल्मली ने वायु से किया--हे महाराज महात्मा-लोग दुष्टता करनेवालों पर शत्रुता प्रकट नहीं करतेहैं और धीरे २ अपने पुरुषार्थ को दिखलाते हैं दुर्बुद्धी मनुष्य बुद्धिसे जीवन करनेवाले मनुष्य से शत्रुता न करे क्योंकि उसकी बुद्धि ऐसे प्रवेश करजाती है जिस प्रकार घासमें अग्नि—हे राजा जैसे पुरुषोंमें बुद्धिके समान कोई वस्तुनहीं है इसी प्रकार इसलोक में बलके समान कोई नहीं है इसी हेतु से बालक विक्षिप्त अन्धे, बहरे और अपने से अधिक बलवान् से क्षमाकरे हे युधिष्ठिर वह बात मैं तुझमें देखताहूं हे राजेन्द्र युद्ध प्रवृत्त होनेपर ग्यारह अक्षोहिणी सेना पराक्रम में महात्मा अर्जुन के समान न हुई सब सेनाके योद्धा पराक्रम में नियत होकर युद्ध में घूमनेवाले इन्द्र के पुत्र यशस्वी अर्जुन के हाथ से मारे गये और पराजय दियेगये--हे राजा यह राजधर्म और आपद्धर्म ब्योरेसमेत तुम से कहे अब और क्यासुनाचाहते हो १६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेसप्तविंशोऽध्याय. २७ ॥

# अट्ठाईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे भरत बंशियोंमें उत्तम पितामह पापका जो नियत स्थान है और जिससे पापजारी होता है मैं उसको ब्योरे समेत सुना चाहता हूं, भीष्मजीबोले कि हे राजेन्द्र पापके रहनेके स्थानको सुनो केवल लोभही बड़ाग्राह है लोभहीसे पाप जारी होताहै इसीसे पाप अधर्म और महा दुःख प्राप्तहोताहै जिसलोभ से मनुष्य पापकरते हैं वही छलका मूल है—लोभ से ही क्रोधहोता है और उसी से कामजारी होता है लोभसेही मोहछल अपमा-न और पराधीनता प्राप्तहोती है अधैर्य्यता—निर्लज्जता—धनक्षय—धर्म-नाश—अपकीर्ति-चिन्ता आदिभीलोभहीसे जारी होतेहैं-त्यागनकरना—अत्यंततृष्णा और बिपरीति कर्म्मोंमें जो२बातें होतीहैं यहसब और कुलविद्या का अहंकार और रूप वा ऐश्वर्य्यका मद—सब जीवोंसे शत्रुता और उनका अपमान अबिश्वस्थता—कुटिलता—पर धन का हरना—दूसरे की स्त्री से

सम्भोग करना—वचन वेग—चित्तका वेग—निन्दा का वेग—उपस्थइन्द्री और उदर का वेग—मृत्युका भयानक वेग—ईर्षा का बलिष्ठ वेग—दुःख से बिजय होनेवाला हत्या का वेग दुःख से हटाने योग्य रिस का वेग असह्यकानों का वेग—निन्दा—अपनी हीनता मित्रता और पाप दुःख से प्राप्त होनेवाला ब्याज इसी प्रकार बिना बिचारे होनेवाली सबकार्य्यों की क्रिया यह सब लोभसे उत्पन्न हैं, बालअवस्था, कुमारअवस्था, और तरुणअवस्था वाले पुरुषभी अपने कर्म को नहीं त्याग करते हैं हे राजा यह लोभ बृद्धसे बृद्ध पुरुष का भी कम नहीं होता है और प्रति दिन के लोभ से भी ऐसे पूर्ण नहीं होता जैसे महागम्भीर नदियोंके जलसे समुद्र नहीं अघाता जो लोभ से प्रसन्न और कामसे तृप्तनहीं होताहै, वहभी उसीके समान है, हेराजा जो देवता गंधर्व असुर महासर्प और सबजीवों के समूहों से मुख्यता के साथ नहीं जानाजाताहै वहलोभ मोहसमेत जितेंद्री मनुष्यसे बिजयकरने के योग्य है—हेराजाकपट-शत्रुता-निन्दा दुष्टभाव-मित्रता यह अवगुण अशुद्ध अंतःकरण वाले-लोभियोंके होते हैं बड़े ज्ञानीपुरुष बहुत बड़े शास्त्रोंको भी धारण करते हैं और सन्देहोंको भी दूर करनेवाले होते हैं और जो निर्बुद्धीहैं वह दुःखको प्राप्तहोतेहैं शत्रुता और क्रोधसे भरे हुए उत्तम पुरुषोंके आचारसे रहित अन्तःकरण से निर्दयी प्रत्यक्षमें मृदुभार्षा तृणोंसे ढकेहुए कूपोंके समानधर्मकेछल से दूसरोंको मारनेवाले धर्मध्वजा रखने वाले नीच मनुष्य जगतको ठगते हैं, धर्म अधर्मसे दूसरोंको प्रसन्न करनेवाले हेतुबलमें प्रवृत्त पुरुष इनबहुतसे मार्गों को उत्पन्न करतेहैं और लोभ ज्ञानमें नियत होकर सत्पुरुषोंके मार्गोंकोनाश करतेहैं--दुरात्मा लोभियोंसे हरेहुए धर्मकी जो जो मर्य्यादा भिन्न भिन्न होती हैं वह भी इसीप्रकारसे प्रसिद्धहोतीहैं, हे राजा अहंकार क्रोध धनआदिकामद--निद्रा, प्रसन्नता, शोक, यहसब दुष्टगुणलोभी मनुष्यमें दृष्टिआतेहैं--तुमइनको सदैव लोभसे भरेहुए नीच जानो और जिन्होंमें संसारके आवागमनकाभय नहीं है और परलोक की चिन्ता नहीं है और प्रिय अप्रिय बिषयों मेंजिन का चित्त नहीं है और सदैव शिष्टाचार में प्रवृत्त हैं और प्रत्यक्ष में शांत चित्त हैं और सुख दुःख को समान जानते हैं और उच्चस्थानी और दानी हैं और किसी से प्रतिग्रह को नहीं लेते और दयावान् होकर पितृ, देवता और अतिथियों के पूजनमें सदैव सावधान हैं वह बीर सब के उपकारी धर्म रक्षक जीवमात्र के हितकारी प्राणतक देनेवाले हैं वहधर्म व्यापार करनेवाले मार्ग से भी हटाने के योग्य नहीं हैं उनका वह चलन कभी नष्ट नहीं होता है जोकि पहले साधुओं से चलाया हुआ है--जो पुरुष भय का उत्पन्न करनेवाला नहीं है और चपलता, रुद्रतासे रहित सतमार्ग में बर्त्तमान हैं और

अहिंसाही परमधर्म है ऐसे मनुष्य सदैव साधुओंसे सेवनयोग्य हैं, जो काम क्रोध से रहित ममता अहंकार आदि से पृथक् सुंदर व्रत और मर्य्यादाओं में वर्त्तमान हैं उन्हीं की उपासना करके धर्मको पूछो, हेराजा उनका धर्म धन के और कीर्त्तिके निमित्त नहीं है किंतु देहकी भोजनादि सब क्रिया करने के योग्यहैं ऐसासमझकर करतेहैं उनमें भय क्रोध, चपलता शोकआदि अवगुण नहीं हैं और धर्मध्वजी भी नहीं हैं न किसी पाखण्डकर्म में प्रवृत्त हैं, लोभ मोहादिकसे रहित सत्य कहनेवालेहैं उनसे मिलाप करो ऐसे पुरुषोंका चलन कभी भ्रष्ट नहींहोता है— जो पुरुष हानि लाभहोने में शोक हर्ष नहीं करते और ममता अहंकाररहित सतोगुणमें वर्त्तमान समदर्शी हैं उनदृढ़ पराक्रमी सतोगुणी पुरुषोंको हानि लाभ सुख दुःख प्रियअप्रिय जीवन मरण सब बराबरहैं, तुम जितेंद्री सावधान धर्मके प्यारे होकर बड़े बड़े महानुभावों का पूजनकरो पूर्बके अच्छे संस्कारियोंसे सब कर्म कल्याणकारी होतेहैं और अज्ञानियों के सबकर्म अशुभदायक होतेहैं ३५॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्म्मेअष्टाविंशोऽध्यायः २८॥

## उन्तीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह आपने अनर्थोंका उत्पत्तिस्थान वर्णन किया अब ज्ञानको भी यथा योग्य सुना चाहता हूं भीष्मजी बोले कि जो अज्ञान से पापको करता है और अपने नाशको नहीं जानता है और श्रेष्ठ कर्म्मी पुरुषों से शत्रुता करता है वह संसार में वर्त्तमान होकर निन्दा को पाता है और मोहसे नरक और दुर्गती को प्राप्त होता है और दुखसे पीड़ित आपत्तियों में डूबजाता है—युधिष्ठिरने कहा कि मैं अज्ञानकी प्रवृत्ति, स्थान, बृद्धिहानि, उदय, मूलयाग, गति, काल, कारण, हेतु इत्यादि को ब्योरेसमेत सुना चाहताहूं और जो दुखप्राप्त होता है वह अज्ञान से होताहै- भीष्मजीबोले—प्रीति—बिरोध—मोह—हर्ष—शोक—अहंकार,काम—क्रोध—अपमान—सुस्ती आलस्य—इच्छा,अनिच्छा-कष्ट अन्यकी बृद्धिमें दुखपाना यही अज्ञान है अर्थात् यह अज्ञान केही रूप हैं—पापियोंकी जो हिंसाआदि क्रिया हैं वहपापरूप हैं इसजारी होनेवाले पापकी जिनबृद्धि आदि को तुम पूछतेहो उस को ब्योरे समेत कहताहूं कि यहदोनों अज्ञान और लोभ एकसा दोष और फल देनेवाले हैं इससे दोनों समान हैं लोभसे अज्ञान प्रकट होता है और पापकर्म से लोभकी बृद्धि होती है, समानता में समान और न्यूनतामें न्यूनहोता है उदयमें उदय होकर नाना प्रकारकी गतियोंका प्राप्त करता है अब सातवें प्रश्नका उत्तर कहते हैं कि अज्ञानरूप लोभकी जड़

मोहहै और योग्यायोग्यके विचारकर्म के निश्चय से मोहसंयोगी अज्ञानयोग है और कालात्मारूपसे अज्ञानकीगतिहै इसीप्रकार लोभकेघटने औरवृद्धहोने से कारण और काल होताहै उसकालके ज्ञानसेलोभ प्रकटहोता है और लोभ से अज्ञान उत्पन्न होता है इसी प्रकार लोभहीसे सब दोष प्रकट होते हैं इस निमित्तलोभको अत्यंत त्यागकरे--राजाजनक,युवनाश्व--वृषदर्भऔरप्रसेनजित--लोभकेहीं नाशसे स्वर्गकोगये इसीप्रकार अन्यबहुत से राजाभी बैकुंठवासीहुए इससे हे कौरवेन्द्र तुम यहां प्रत्यक्ष होकर लोभ को त्याग करोगे तो इसलोक परलोक दोनों में आनन्दपूर्वक बिचरोगे ४॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिआपद्धर्मेएकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः २९॥

# तीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिरबोले हे धर्म्मात्मा पितामह वेदपाठ और जपकेउद्योग करनेवाले इच्छावान् पुरुष का इसलोक में क्या कल्याण होता है और नानारूप धारणकरनेवाले इससंसारमें कल्याणको मानते हैं और यहां वहां जो कल्याण है उसको भी मुझसे कहिये और यह बड़ाधर्ममार्ग बहुत शाखावाला है उसकी जो बड़ी जड़ है उसको भी ब्योरे समेत कहो भीष्मजी बोले कि बहुतअच्छा इसको भी कहता हूं जिससे कि तेरा कल्याणहोगा, जैसे कि प्राणी अमृत को पान करके तृप्तहोताहै उसीप्रकार तू भी ज्ञानसे तृप्तहोगा देखो महर्षियों की कही हुई धर्म्म की बहुतसी रीतें हैं वह लोग अपने २ विज्ञान से वर्त्तमान होकर परम काष्ठाओंको करते हैं निश्चयकरके देखनेवाले महात्माओं ने प्रत्यक्ष शान्तचित्तको कल्याणकारी कहा है मुख्यकरके ब्राह्मणका प्रत्यक्ष में शान्तचित्तहोना सनातन धर्म है शान्तचित्त होने से उसके कर्म की सफलता अच्छेप्रकार से होती है शान्तचित्त होने से तेज की वृद्धि और अत्यन्त पवित्रता होती है पाप रहित तेजयुक्त पुरुष मोक्षको पाता है शान्तचित्तसे बढ़कर संसारमें कोई धर्मनहीं है यह चित्तकी शान्तता लोकमें उत्तम और सबधर्म्मो में श्रेष्ठ है हे राजा प्रत्यक्ष शान्तचित्त होने से बड़ा फलपाता है अर्थात् इसलोक और परलोकमें बड़ेसुखको पाता है शान्तचित्त मनुष्य सुखसे सोता जागता लोकों में घूमता चित्तसे प्रसन्न और साफरहता है और जो पुरुष शान्तचित्त नहीं है वह सदैव दुःखको पाता है और अपने दोषोंसे बहुत से अनर्थ करता है चारोंआश्रमों में प्रत्यक्ष शान्तचित्तकोही उत्तम ब्रतकहते हैं अब उसके चिह्नकहताहूं जिन पुरुषों की चित्त की शान्तता अच्छेप्रकार से उदयहोनेवालीहै उनमें धैर्य्यता, क्षमा, अहिंसा समानदृष्टि, सत्यता, शुद्धभाव, इन्द्री निग्रह, चातुर्यता, मृदुता, लज्जा, अच-

पलता,उदारता, अक्रोधता, सन्तोष, प्रियवचन दूसरेके गुणमें दोष न लगाना गुरुपूजन और जीवोंपर दया हुए मनुष्योंमें निर्विवादता,प्रशंसा,निन्दाआदि कात्याग यह सब बातेंभी होती हैं और काम, क्रोध,लोभ,अहंकार,दुष्टता,ईर्षा, अभिमान आदि बुरे गुणभी उनमें कभीनहीं होते हैं इच्छा रहित अविनाशी प्रशंसनीय सुखोंसे तृप्त न होनेवाला और अन्यके गुणमें जो दोषनहीं लगाने वाला पुरुषहै वह समुद्रके समान किसी प्रकारसे तृप्त नहीं होता है मैं तुझमें प्रीति रखता हूं तुम मेरेहो और मुझ में प्रीति रखते हो उसी प्रकार मैं भी उनमें स्नेह रखता हूं यह सब बातें और पहली नातेदारी का संयोग इत्यादि बातों को जितेंद्री नहीं सेवन करता है लोक में जो नगर और बन से सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं उनको और निंदा स्तुति को जो पुरुष काम में नहीं लाता है वह मुक्त होता है, जो पुरुष सब के मित्र सुंदर प्रकृति शुद्धचित्त और ब्रह्म ज्ञानी हैं वह अनेक प्रकार के दुस्संगों से रहित होकर स्वर्ग में बड़े फल को पाते हैं, श्रेष्ठ चलन, सुप्रकृति, शुद्ध चित्त, आत्मज्ञानी, बुद्धिमान् पुरुष इस लोक में सत्कार को पाकर परलोक में परमगति को पाता है इस लोक में जो शुभ कर्म्म हैं और सत्पुरुषों से किये गये हैं वह ज्ञान से भरे हुये मुनियों के मार्ग स्वाभाविक सिद्ध होते हैं जो घरसे निकलकर बन में वर्त्तमान होकर ज्ञान संयुक्त जितेंद्री काल को देखता बिचरताहै वह ब्रह्मभाव के जानने को समर्थ होता है जो जीवों से निर्भय है और उससे जीव निर्भयहैं उस देह से निरभिमानी पुरुष को कहीं भय नहीं होता जो कर्म्मों को भोगों के करने से नाश करता है और उनको संचय नहीं करता है वह सब जीवों में समदर्शी होकर जीवों को निर्भय दान करे उसकी मोक्ष ऐसे गुप्तहोती है जिस प्रकार आकाश में पक्षियों की और जल में जलजीवों की गति नहीं मालूम होती है जो पुरुष घरों को त्याग कर मोक्ष को ही सेवन करता है उसके तेजरूप लोक बहुत दिनतक कल्पना किये जाते हैं, सब कर्मों को त्याग बुद्धि के अनुसार तप को बिसर्जन कर नानाप्रकार की विद्याओं को त्याग सबको छोड़कर पवित्र इच्छावान् सब लोकों में जाने वाला अर्थात् माया के आवरण से पृथक् शुद्धचित्त आत्मज्ञानी अनिच्छावान् पुरुष इस लोक में सत्कार को पाकर स्वर्ग को प्राप्त करता है और जो ब्रह्माजी का स्थान ब्रह्म समूह से उत्पन्न होनेवाला हृदय कमल में बर्त्तमान है उसको शांतचित्त होकर प्राप्त करताहै उस ब्रह्मज्ञान में वर्त्तमान ज्ञानी सबजीवों के प्यारे पुरुष को संसार के आवागमन का भय नहीं होता है तो परलोक का भयकैसे होगा शांतचित्त होने में एक दोष के सिवाय दूसरा नहीं मालूम होता है वह एक दोष भी बड़े गुणवाला है संतोषी पुरुष को

संतोषके प्रभाव से बड़े बड़े लोक भी सुगम हैं हे युधिष्ठिर जितेंद्री पुरुष को वन से क्या प्रयोजन है उसी प्रकार अजितेंद्री को भी क्या लाभ है जितेंद्री जहां रहै वही वन और आश्रम है वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी के इस वचन को सुनकर राजा युधिष्ठिर ऐसे प्रसन्न हुये जैसे कि अमृत से अच्छा तृप्तहुआ मनुष्य आनन्द को पाता है ३० ॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि आपद्धर्मे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३० ॥

## इकतीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले इन सब का मूल तप ही है पण्डितलोग ऐसा कहते हैं कि तप न करनेवाला अज्ञानी पुरुष क्रिया के फल को नहीं पाता है ब्रह्मा जी ने इस सब सृष्टि को तप से ही उत्पन्न किया है और ऋषियों ने भी तप ही से वेदों को प्राप्त किया है तप से ही अन्न फल मूल हैं सिद्धलोग तप से ही तीनों लोकों को देखा करतेहैं रोगों की नाशक औषधियां और नाना-प्रकार की क्रिया तप से ही सिद्धहोती हैं जो साधन है उसकाभी मूलकारण तपहै जोकुछ कि कठिनतासे प्राप्त होताहै वह सबभीतपही से होताहै ऋषियों ने भी निस्सन्देह तप ही से ऐश्वर्य्य को पाया है मद्यपान करनेवाला भ्रूण-हत्या करनेवाला गुरुकी शय्या पर सोनेवाला पुरुष अच्छे प्रकार के तपे हुये तप से पाप से निवृत्त होता है बहुतरूप रखनेवाले तप के द्वारा कर्म्म को करता हुआ निवृत्त मार्गमें वर्त्तमान पुरुष का तप अनशन व्रत से उत्तमनहीं है और अहिंसा, सत्यता, दान, जितेंद्री आदि होकर अनशन करने से अधिक कोई व्रतनहींहै दानसे अधिक कर्मनहीं है दानके समान कोई गति नहींहै तीनोंवेदसे कोई उत्तम नहीं है संन्यास तपोंमें उत्तम तपहै इसलोकमें स्वर्ग और धर्म की रक्षाकेलिये इंद्रियोंकी रक्षाकरते हैं इसकारण अर्थ और धर्ममें अनशनसे उत्तमतपनहींहै ऋषि,पितर,देवता,मनुष्य,पशु,पक्षी और सब स्थावरजंगमजीव वह सबतपकोही उत्तमपद देनेवाला जानते हैं और तप हीसे सिद्धहोतेहैं और देवता लोग भी तपहीसे सबके पूजनीयहुये,यह तपके आठ भाग रखने वाले फलहैं तप और निश्चय से देव भावभी प्राप्तहोना सम्भवहै १२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणि आपद्धर्मेएकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३१ ॥

## बत्तीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ब्रह्मऋषि पितृ देवता आदि सब सत्यधर्म की प्रशंसाकरते हैं आप उस सत्यधर्मको कहिये और सत्यका लक्षण और

स्वरूप है और कैसे प्राप्त होता है और सत्यको कैसे करके क्या होजाताहै सोभी कृपाकरके मुझसे कहिये भीष्मजी बोले कि चारों वर्ण के धर्मों का सङ्कर अर्थात् मिलावट प्रशंसा के योग्य नहींहोताहै परन्तु सबवर्णों में सत्यही अपने स्वरूपको कभी नहीं बदलता है सत्पुरुषोंमें भी सत्यही धर्म सनातन गिनाजाताहै इससे सत्यही नमस्कार के योग्य परमगतिरूप है सत्यही धर्म तप योग और सनातनब्रह्महै और सब सत्यहीमें वर्त्तमान है इससे सत्यही उत्तमयुगहै इसस्थानपर सत्यके ठीक ठीक आचारोंको लक्षण समेत क्रमपूर्वक कहताहूं औरजिसप्रकारसे सत्यकी प्राप्ती होतीहै उसको भी सुनों हे भरतबंशी सबलोकोंमें सत्यतेरह प्रकारकाहै अर्थात्सत्य, समता, दम, अमत्सरता, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, अनसूयता, त्याग, ध्यान, श्रेष्ठता, धैर्य्यता, दया, अहिंसा यह तेरह सत्यके स्वरूपहैं और इन सत्य आदि शब्दके अर्थोंको सुनो कि सत्य अविनाशी प्राचीन रूपान्तररहितहै और सबधर्मोंसे अविरुद्धहोकर योग के द्वारा प्राप्तहोता है इसी प्रकार इच्छा द्वेष आदि काम क्रोधको नाशकरके प्रिय अप्रिय शत्रुआदिमें जो समदृष्टी है उसको समताकहतेहैं और सिवा-य आत्माके किसी दूसरेकी इच्छा न करना गंभीरता, धैर्य्यता अभयता, रोग शमन यह दमकेरूपहैं और ज्ञानसे प्राप्तहोताहै और दानधर्ममें जो शान्त चित्तहै उसको अमत्सरता कहते हैं, वह अमत्सरता सदैव सत्यमें वर्त्तमान होनेसे प्राप्तहोतीहै जो साधू सहने असहने की प्रिय अप्रियताको क्षमाकरता है वह सत्यवक्ता होकर प्रतिष्ठाकोपाताहै जो बुद्धिमान् बड़े कल्याणको कर-ता है और अप्रसन्न कभी नहींहोता सदैव शान्तता से बोलनेवाला और उ-दारहै उसकोधर्मसे लज्जा प्राप्तहोतीहै जो धर्म अर्थके लिये और लोकसंग्रह के लिये क्षमाकरता है, वह तितिक्षा और क्षान्ती कहीजाती है और धैर्यसे प्राप्तहोती है जो स्नेह और विषयोंका त्यागहै उसीरागद्वेषरहित पुरुषका त्याग कहाताहै जो देहाभिमान और स्नेहसे रहित पुरुष बड़ी युक्तिसे कर्म को करताहै वहीजीवोंकी श्रेष्ठताहै, सुख दुःखमें रूपान्तर को नहींपाना यही धृति कहाती है ऐश्वर्य्यका चाहनेवाला ज्ञानी उसका सदैव सेवनकरे और क्षमावान् सत्यवक्ता पुरुषको तो सदैव प्राप्तकरनी उचित है, रागद्वेष और क्रोध से रहित पंडित धृतिको प्राप्तकरता है मनवाणी कर्मसे किसी जीवपर शत्रुता न करना और दानपूर्वक कृपा करना यह सत्पुरुषोंका सनातन धर्म है, हे राजा यह तेरहस्वरूपवाले पृथक् पृथक् गुण एकसत्यही का लक्षण रखनेवाले हैं वह यहां सत्यही का सेवनकरके वृद्धिको पातेहैं सत्यकाअन्त अकथनीयहै इसकारण वेदपाठी ब्राह्मणदेवतापितरोंसमेत सत्यहीकी प्रशंसा करतेहैं सत्यके समान धर्म नहीं और मिथ्या के समान पापनहीं है सत्यधर्मकी श्रुतिहै इस

से सत्यको गुप्त न करे सत्यके दान और दक्षिणा वाले यज्ञोंको और त्रेता अग्निहोत्रवाले वेदोंको और जो अन्य धर्मके निश्चय हैं उनसबको प्राप्त करता है हजार अश्वमेध एकओर और दूसरी ओर एक सत्यको रक्खे तो उन हजार अश्वमेधोंसे सत्यही अधिक होता है २९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेद्वात्रिंशोऽध्यायः ३२ ॥

# तेंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह जिसकारण से कि क्रोध, काम, शोक, विधित्सा, परासुत्व, लोभ, मत्सरता, ईर्षा, निन्दा, असूया, कृपा, भयइत्यादि उत्पन्नहोते हैं उसको मूलसमेत मुझसे कहिये भीष्मजी बोले हेमहाराज युधिष्ठिर जीवोंके जो महापराक्रमी यह तेरह शत्रु कहेगये वह सब इससंसार में चारोंओरसे मनुष्यों की उपासना करते हैं और असावधान मनुष्योंको पीड़ा देते हैं और मनुष्यों को अचेत देखतेही भेड़ियों के समान बड़े पराक्रमसे मारते हैं तब उनसे दुःख और पाप जारीहोता है इससे हे युधिष्ठिर मनुष्य इनके उदयहोने और स्थिरहोने और नाशहोने को अच्छेप्रकार से जाने हे राजा इच्छा में जो क्रोधकी उत्पत्ति है उसको मैं मूलसमेत प्रारम्भसे कहता हूं तुमचित्त लगाकर सुनो कि जबलोभसे क्रोधउत्पन्न होकरदूसरों के दोषोंसे महातीव्रहोता है तब क्षमाकेकारण ठहरा रहता है अर्थात् रुकारहता है उसीसे दूरभी होजाता है--संकल्पसे काम पैदा होता है और सेवन किये जानेसे बड़वृद्धि को पाता है जबज्ञानी संकल्पको त्यागता है तब उसका काम नाशहोता है असूया क्रोध लोभ आदि यह सबमध्यवर्ती स्वरूप कहे जाते हैं वह सबजीवों पर दयाकरने और शास्त्रकी आज्ञा से निवृत्तहोते हैं यह असूया दूसरे में दोष लगाने से उत्पन्न होती है और बुद्धिमानोंके तत्त्वज्ञानसे दूरहोती है और अज्ञान से उत्पन्न होनेवाला मोह पाप के प्रतिदिन करने से जारी होता है और ज्ञानियों में रहकर शीघ्र नाशहोजाता है और भिन्न २ शास्त्रों के देखने से विधित्सा अर्थात् कर्मके प्रारंभकी इच्छा उत्पन्न होती है उसका नाश तत्त्वज्ञान से होता है और प्रीति से शोक उत्पन्न होताहै और उसदेहधारी के वियोग से जब उसको निरर्थक देखता है तब उसका शीघ्रही नाशहोता है और परासुता अर्थात् दुष्ट कर्म के आधीन होना क्रोध लोभ और अभ्याससे वर्त्तमान होती है वह सब जीवोंपर दया और वैराग्य से निवृत्त होती है और सत्यताके त्यागने और शत्रुओंके सेवन से ईर्षा उत्पन्न होती है यह ईर्षा साधुओंकी सेवासे नष्टहोती है और कुलज्ञान और ऐश्वर्य्य से मद उत्पन्नहोता है वह इनकुल आदि के अच्छेप्रकार जानने

से शीघ्र दूरहोजाता है—इच्छा प्रसन्नता आदिसे ईर्षा उत्पन्न होतीहै वहदूसरे जीवधारियों की वृद्धीसे निवृत्तहोती है और भ्रांतीके कारण धर्मरहित पुरुषों के जो अस्वीकृत और शत्रुतासंबंधी बचन हैं उनसे निन्दाउत्पन्नहोती है वह संसारको देखकर अर्थात् जीवमात्र की मुख्यताको जानकर शान्त होजाती है जोपुरुष अपने विरोध करनेवाले प्रबल शत्रुको बदला देने में समर्थ नहीं होता उसकी अत्यंत निन्दा होती है, वह दयासे निवृत्तहोती है और सदैव दुःखोंको देखकर कृपा उत्पन्नहोती है वह धर्म की निष्ठाके जानने से शांत होजाती है और सदैव जीवोंके अज्ञान से लोभदृष्ट आता है वहलोभ भोगों की अनियतताको देखने और जाननेसे दूरहोता है इनतेरहदोषोंको अन्तःकरणकी शांतता से बिजयकरना कहा है यहतेरह धृतराष्ट्र के पुत्रों में थे सो तुम सत्यताके चाहनेवालेने वृद्धोंकी सेवा से उनको बिजयकिया २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिआपद्धर्मेत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३३ ॥

# चौंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हे भरतवंशी पितामह मैं सदैव सत्पुरुषों के दर्शनों से दया को अच्छे प्रकार से जानता हूं परंतु निर्दय लोगों को और उनके कर्मोंको नहीं जानताहूं जैसे कांटे, कुए अग्नि को पुरुषत्यागकरतेहैं उसीप्रकारनिर्दय कर्मी मनुष्यों को लोगत्याग करते हैं इससे निर्दय मनुष्य इसलोक और पर लोक दोनों का नाशकर्त्ता है इसकारण हे पितामह आप उसकेधर्म निश्चय को कहिये, भीष्मजी बोले कि जिसके कर्मकीप्रीति और करनेकी इच्छा निन्दितहोती है वह ईश्वरका ठगाहुआ अपने को पुकारता है जो ऐसा कर्म करता है वही यह जानता है, दानदेकर अपनीश्लाघा करनेवाला, समता रहित नीचकर्मी स्नेह दिखाकर छलनेवाला और भागों का बिभाग अच्छे प्रकार से न करनेवाला अहंकारी कर्मफल चाहनेवाला काक के समान छलदृष्टि रखनेवाला सबपर संदेहयुक्त कृपण अपनी जातिवालों की प्रशंसा करनेवाला आश्रमोंका सदैव शत्रु और वर्णसंकर करनेवाला हिंसायुक्त गुण अवगुण में बिवेक न रखनेवाला बहुत अस्तव्यस्त बचनबोलनेवाला असाहसी, महालोभी, निर्दयी मनुष्य धर्म के अभ्यासी गुणवानों को पापी जानता है और अपनी दुश्शीलता से किसीपर बिश्वास नहीं करके गुप्त दोषवालेका दोष प्रकट करनेवाला दोषोंके समानहोनेपरभी अपनी आजीविका के निमित्त नष्टकरके उपकार करनेवालेको ठगाहुआ शत्रुमानता है और समयपर उपकार करनेवालेकेलिये धनदेकर दुखीहोताहै, भक्षपेयआदि जो अच्छेभोजन हैं उनको जो पुरुष सबके देखतेहुये भोजन करता है वह

निर्दयी कहाजाता है, जो पुरुष प्रथम ब्राह्मणों को देकर अपने मित्रों समेत भोजन करता है वह मरकर स्वर्गको पाताहै और इसलोक में भी बड़ेसुखको भोगता है हे राजा यह निर्दयी मनुष्यों का वर्णन तुझ से कहा यह ज्ञानी पुरुषोंको सदैव त्यागनेके योग्य हैं १३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिआपद्धर्म्मेचतुस्त्रिंशतमोऽध्यायः ३४ ॥

# पैंतीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि जो पुरुष चोरोंके धनसे रहित यज्ञकरनेवाला सब वेदान्तका ज्ञाता आचार्य्य और पितरों के कार्यके निमित्त वेदपाठकेलिये भी उद्योग करनेवाला है वह धर्म्मभिक्षुक ब्राह्मण साधुकहाता है इन निर्धनोंको धनदान और विद्यादानदेना योग्य है और अन्य ब्राह्मणों में भी दक्षिणा दानदेना योग्य है बेदीसे बाहर कच्चा अन्न भिन्न ब्राह्मणोंको भी देना योग्य है, राजा सबरत्नोंको जैसा उचित है वैसेही दानकरे, ब्राह्मण वेद, बहुत दक्षिणावाले यज्ञ यहसब सदैव परस्पर ऐश्वर्य्य और आचारवाले अपने गुण से बिजय करते हैं, जिसकेपास बालबच्चों के पोषणके निमित्त तीनवर्षतक के लिये अन्न वर्त्तमान है चाहै इससे अधिकभीहो वह यज्ञ में अमृतपान करने के योग्य है, जो यज्ञकरनेवालेको यज्ञका एकभाग स्त्रीआदि के कारण रुकजाय तब धर्मिष्ठराजा उसब्राह्मण के धनको यज्ञके निमित्तलेले जो वैश्य यज्ञसेरहित अमृतका भोजनकरनेवाला नहीं है और बहुत से पशुओं को रखता है उसके कुटुम्बसे यज्ञकेलिये उसके धनकोलेले परन्तु शूद्रके घरसे इच्छापूर्बक कभी कुछ न ले क्योंकि यज्ञोंमें शूद्रकाधन नहीं ग्रहण कियागया है, जो अग्निहोत्रका न करनेवाला सौगौओंका रखनेवाला है अथवा यज्ञों का न करनेवाला हजार गौओंका रखनेवाला है राजा उनदोनों के भी कुटुम्बसे बिना बिचारे धनलेसक्ता हैराजा सदैव दान न करनेवालों से प्रसिद्ध करके धनकोले ऐसेकर्म करनेवाले राजा के धर्म में न्यूनता नहीं होती है इसीप्रकार यहभीजानो कि तीनदिन व्रतकरने वालेको नीचकर्मी पुरुषके घर से भी एक दिनका भोजन हरना चाहिये जिसका कि शेष दूसरे दिनको न बचे, पूछनेवाले या न पूछनेवाले ब्राह्मण से राजाको यहबात कहना योग्य है कि हे ब्राह्मण तू खेतबाग खिरियान या जहां से मिले वहांसे लेले, धर्म्मज्ञराजा धर्मके द्वारा उसको दण्ड न दे राजाकी अज्ञानतासे ब्राह्मण भूखा प्यासा कष्टसहताहै अर्थात् ब्राह्मण के निराहार रहने में राजाही को दोष है शास्त्र और स्वभाव को अच्छे प्रकार से जानकर इसकी जीविकाके हेतुको विचार करे और उसकी चारों ओर से ऐसी रक्षाकरे जैसे पितापुत्र की रक्षा

करताहै, जो बनपशु आदियज्ञको न करे तो प्रति बर्ष नियम से बैश्वानरीय यज्ञको करे क्योंकि अनुकल्प नामधर्म उत्तम होताहै, फिरकेवल धर्मवादीआपत्तियों में मरण से भयभीत होकर विश्वेदेवा साध्यगण ब्राह्मण और महर्षि लोगोंकरके गौणधर्मी कियाजाता है परंतु प्रथम कल्प के करने को समर्थ जो पुरुष अनुकल्प धर्म से कर्मकरता है उसनिर्बुद्धी को परलोक का कोईफल प्राप्त नहींहोता, वेद का ज्ञाता ब्राह्मण राजा से यहबातन कहै कि मैं ब्राह्मणहूं क्योंकि धन और राजबल से ब्राह्मणका निजपराक्रमबहुतबड़ा है, इसीकारण से ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंका तेज राजा को सदैव बड़ी कठिनतासे सहने के योग्य है इसहेतु से कि ब्राह्मणको कर्त्ता शास्ता बिधाता देवतालोग कहते हैं जो ब्राह्मण के सन्मुख अकल्याणकारी बचनकभी न कहे और सूखे बचनों को जिह्वा से भी नहीं उच्चारण करे वह क्षत्री अपने भुजबल से आपत्ति से तरताहै, बैश्य शूद्रधनके द्वारा और ब्राह्मण हवन मन्त्रादि के पराक्रम से आपत्तिको तरता है, कन्या, तरुणस्त्री, मन्त्रका न जानने वाला, मूर्ख, असंस्कृत अग्नि में आहुतिका डालनेवाला, यह सबहोम करनेवाले यजमान समेत नरकगामी होते हैं इस कारण वेदोक्त बुद्धीसे अग्नि स्थापन में कुशलवेद में पूर्ण ब्राह्मणों के द्वारा यज्ञ कराना योग्य है, श्रद्धावान् जितेन्द्री पुरुष जिन पवित्र कर्मोंको करे उनमें बिना दक्षिणा वाले यज्ञोंसे पूजन नहीं करे, बिना दक्षिणा वालायज्ञ सन्तान पशु और स्वर्गका नाश करता है और इन्द्रियों समेत यशकीर्त्ति आयुका भी नाशकरने वाला है, जो कोईबिना अग्निहोत्री ब्राह्मण रजस्वलास्त्री से संभोग करताहै अथवा जिनका हवन वेदपाठी ब्राह्मण से रहित है वह सब पापकर्मी गिने जाते हैं, जिसग्राममें एक ही कूप है उसमें बृषलीपति ब्राह्मण बारह बर्ष रहकर शूद्रकर्मी होजाता है और जो अबिवाहिता स्त्री को अपनी शय्यापर बैठाता है यह सब बृद्धक्षत्री बैश्य शूद्रको अपने से बड़ा मानकर तृणोंपर शयन करने से जैसे पवित्र होते हैं उसी प्रकार यहांमेरे बचनों को सुनो कि जो ब्राह्मण नीच बर्ण के साथ मकान आसन आदि में बिहार करनेवाला एक रात्रिमें जितना पाप करता है उतने पापको तीनबर्ष ब्रतकरने से वह धोता है, हे राजा स्त्रियों में बिवाह के समय गुरुके और अपने जीवनके लिये निन्दा युक्त बचन नहीं मारता है, श्रद्धावान् पुरुष को शुभ विद्या नीचसे भी प्राप्त करनी योग्य है और सुवर्ण को अशुद्ध मनुष्य से भी बिना बिचारेलेले, और स्त्रीरत्न को दोषी कुलसे भी लेलेना उचित है और बिषके द्वाराभी अमृत को पिये स्त्रीरत्न धर्म्म से ऐसे निर्दोष है जैसे जल, बर्णों के संकर होनेपर बैश्यभी गौ ब्राह्मणके मनोरथोंकी सिद्धी और अपनी रक्षा के निमित्त शस्त्रों को हाथ में ले

मद्यपान ब्रह्महत्या गुरुशय्यापर सोना यहतीनों जब कि जानकर किये होयँतो इनकी शुद्धी किसी प्रायश्चित्त से नहीं होसक्ती, सुवर्ण चुराना वा ब्राह्मणका धन चुराना यह पातक हैं, मद्यपीना और अगम्यास्त्री में भोग करना, पतितों से स्नेह करना, ब्राह्मणी से भोगकरना यह सब पापशीघ्रही पतित करते हैं, पतित के साथ एकबर्ष बिचरने से पतित होताहै परन्तु पतितको यज्ञ कराने पढ़ाने और बिवाहादि संबंध करने से शीघ्रही पतित होता है साथ सवारी आसन भोजन आदि के कारण शीघ्र पतित नहीं होता अर्थात् पतित के साथ एकबर्ष तक भोजनआदि करनेसे पतित होताहै इनके सिवाय जो पाप हैं उनका प्रायश्चित्त होसक्ता है जब कि रीति के अनुसार प्रायश्चित्त करके फिर किसीकाल में पापको न करे उन पतितोंके मरने और दाहादि क्रिया न होनेपर भी उनका अन्न सुवर्णादि बिना बिचार केभी हरलेना योग्य है धार्मिक राजा धर्म्म से ऐसे मन्त्री और गुरुओंकोभी त्याग करे, जो कि पतित होने से प्रायश्चित्तादि कर्म्मों के योग्य नहीं हैं उनके साथ बैठना न करे, अधर्म करने वाला धर्म और तपसे पापोंको दूर करता है चोरकोचोर कहने से उतनाही पाप होताहै और जो चोर नहीं है उसको चोर कहने से दूनापापका भागी होता है पतिके सिवाय अन्य से संभोग चाहने वाली कन्या ब्रह्महत्या के तीसरे भागको पाती है, इसलोक में जो पुरुष ब्राह्मणों की निन्दा करके बाण आदि से घायलकरे वह उस दुष्टाकन्याके शेष पापको पाताहै क्योंकि ऐसा कर्म करनेसे वह पाप बहुत वृद्धिपाताहै सैकड़ों वर्षतक प्रतिष्ठाको नहींपाताहै अर्थात् प्रेतयोनिसे नहींछूटता है और हजार वर्षपर्य्यन्त नरकभोग करताहै इसकारण ब्राह्मणकी निन्दानहीं करनी योग्यहै और कभी उसकोघायल न करना चाहिये ब्राह्मणके घायलहोने से जितनी धूल उसके रुधिरसे भीजे उतनेही बर्षतक वहनरकको भोगताहै भ्रूणहत्याका करनेवाला युद्धभूमिमें शस्त्रोंसे पवित्र होताहै अथवा देदीप्यअग्निमें अपनी देहके होमनेसे पवित्र होताहै मद्यपीनेवाला मनुष्य उष्णमद्य को पीकर पाप से छूटता है अथवा उस उष्णमद्य पानसे मृत्युपाकर पवित्रहोता है और वेदपाठियोंके लोकोंकोपाताहै, दुष्टात्मा और पापात्मापुरुष गुरुशय्यापर वर्त्तमानहोकर लोहेकी स्त्रीको बगल में देकर सोने से मृत्युपाकर पवित्र होता है अथवा अपनी शिश्नेन्द्रीको वृषणों समेत अपने हाथमें लेकर उत्तर दिशाकी ओर चलाजाय अथवा ब्राह्मणके निमित्त प्राणोंको त्याग करनेसे भी पवित्र होताहै अथवा अश्वमेध, गोमेध और अग्निष्टोम यज्ञोंके द्वारा अच्छेप्रकार अमृतको पीकर इसलोक परलोक दोनों में पूजित होताहै इसीप्रकार ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य सदैव अपने को प्रसिद्ध करताहुआ बारहबर्ष तक

कपाली ब्रह्मचारी मुनि होकर फिरे अथवा इसीप्रकार से तपकरे तो ब्रह्महत्या के दोष से निवृत्त होताहै इसीप्रकार गर्भवती स्त्रीको गिरावे तो उसके मारने से ब्रह्महत्या से दूनापाप होताहै, मद्यपीने वाला ब्राह्मण ब्रह्मचारीके समान भोजन शयन करता तीनवर्षसे अधिक तक अग्निष्टोम यज्ञसे ईश्वर का पूजन करे अथवा एक बैल और हजार गोदान करके पवित्रताको प्राप्तकरे, वैश्यको मारकर दो वर्षतक एक बैल और सौ गोदान करनेसे पवित्र होताहै और शूद्रको मारकर एक वर्षतक एक बैल और सौ गोदान करनेसे पाप से छूटता है कुत्ते शूकर गधे को मारकर उक्तशूद्र व्रतको करे, और बिल्ली, चाख मेंढक, काक, सर्प, चूहेको मारकर भी शूद्रव्रतसे निवृत्त होताहै अब मैं दूसरे प्रायश्चित्तों को क्रमपूर्व्वक कहताहूं कि अज्ञानतासे कीट आदि जीवोंके मारनेसे जो छोटे २ पाप होतेहैं वह सब पश्चात्तापहीके करनेसे निवृत्त होते हैं गोहत्याके सिवाय प्रत्येक हत्याके पापका प्रायश्चित्त एकवर्ष तक करे, वेदपाठीकी स्त्रीसे भोग करने में तीनवर्ष और दूसरे अन्यकी किसी स्त्रीमें कुकर्म करनेसे दोवर्ष का प्रायश्चित्त है अथवा चौथेकालमें भोजन करने वाला व्रतपूर्व्वक ब्रह्मचारीहो तीनदिन केवल जलपान करके स्थान और आसनसे पृथक् होकर बिहारकरे तो पापसे निवृत्त होताहै इसीप्रकार किसी का अपमान करनेवाला अथवा अग्नियोंका दूषित करनेवाला वा बिना कारण माता पिता गुरूको त्याग करता है वह धर्मके निश्चयके अनुसार पतित होताहै, स्त्री को कुचालिनी होने से अधिकतर प्रबन्धमें रखकर केवल वस्त्र और भोजन देना योग्यहै और दूसरेकी स्त्रीसे संभोग करने में जो पुरुष का व्रतहै वही इस स्त्रीसेभी करावे, जोस्त्री अपने ब्राह्मण पतिको त्यागकरके दूसरे नीच पुरुषको प्राप्त करलेती है उसको राजा बड़े मैदानी मकानमें कुत्तों से पीड़ित करवावे और उसके जारज पतिकोभी लोहेकी गरम शय्यापर सुलवावे और काष्ठ लगावे जिससे कि वह कुकर्मी जलजाय यह पति त्याग-नेवाली स्त्रियोंकादण्ड कहाहै वह दोषी कदाचित् एकवर्षतक इस प्रायश्चित्त को न करे तो उसका दोष दूनाहोताहै उसके साथ मिलनेवाली स्त्री नौ वर्ष तक व्रतको करे और उसका पति मुनियोंका व्रत धारण करके पृथ्वीपर घूम-ताहुआ पांचवर्ष तक भिक्षाको मांगे, बड़े भाईसे पहिले अपना बिवाह करनेवाला छोटा भाई और जो स्त्री कि छोटे भाईको बिवाहीजाय और जिनका कि अधर्मसे बिवाहहो वह सब पतित कहेजाते हैं यह सब उस व्रत को करें जिसको कि वीरका मारनेवाला करताहै और पाप दूरकरनेके लिये एक मासतक चांद्रायण वा कृच्छ्र व्रतको करे बड़े भाईसे पहले विवाह करने वाला छोटा भाई उस अपनी स्त्री और पुत्रबधूको संभोगसे पहलेही उस बड़े

भाईके सुपुर्दकरे जिसका कि बिवाह नहीं हुआहै फिर बड़े भाईसे आज्ञालेकर बिना बिचारे उनको लेले इसप्रकारसे वह दोनों भाई और स्त्री पापसे निवृत्त होतेहैं, गौके सिवाय दूसरे पशुओंकी हिंसामें दोष नहीं होताहै क्योंकि पुरुष को पशुओंका स्वामी और पोषण करनेवाला कहतेहैं गोबध करनेवाला चर्म समेत गौकी पूंछको धारण करके मृत्तिकाका पात्र हाथमें लिये सबलोगोंसे अपने पापको कहताहुआ प्रतिदिन सात घरोंसे भिक्षा मांगकर भोजन करे तो बारह दिनमें पवित्र होताहै और पाप दूरहोनेके लिये एक बर्षतक इसी बृतको करे इसप्रकारसे प्रायश्चित्त करे अथवा धनवान् होकर दानकरे, जो नास्तिकता रहितहैं उनको एक गोदानकेभी देनेसे पापसे निवृत्ती होती है, कुत्ता, शूकर, मनुष्य, मुर्गा, गधा, यह सब मांस और मूत्र विष्ठाके खानेसे भी संसारके योग्य गिनेजाते हैं, यज्ञमें अमृत का भोजन करनेवाला ब्राह्मण कदाचित् मद्य पीनेवालेकी गंधिको सूंघले तो तीनदिन उष्ण जल और तीनदिन उष्ण दूध और तीनदिन वायु भक्षण करके शुद्ध होताहै यह सब सनातन प्रायश्चित्त कहे गयेहैं परंतु प्रायश्चित्त अज्ञानता सेही करने का होताहै ७९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेपंचत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३५ ॥

# छत्तीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि खड्ग युद्धमें प्रवीण नकुलने कथा समाप्त होनेपर शरशय्या पर वर्त्तमान अपने पितामह से यह कहा कि हे पितामह इस लोकमें धनुष नाम शस्त्र उत्तमहै और मेरा खड्ग अत्यन्त तीव्र धार है तो धनुषके टूटजाने और घोड़ों के नष्ट होनेपर युद्धमें साधू लोगोंकी चारों ओर से रक्षा करना खड्ग से सम्भव नहीं है तब अकेला खड्गधारी वीर उनध-नुष गदा शक्तिधारियों के पीड़ा करने को क्या समर्थ है यह मेरा सन्देहबड़ा चमत्कारी है कि सब युद्धों में कौनसा युद्ध उत्तम है और खड्ग कैसे किसने किस प्रयोजन के लिये उत्पन्न किया खड्गके प्रथम आचार्य्य को कहिये यह बुद्धिमान् द्रोणाचार्य्य के शिष्य नकुल के प्रश्नको सुनकर भीष्मजी ने उसकी बड़ी प्रशंसा करके उत्तर दिया कि हे माद्रीनन्दन तुम अपने प्रश्नका उत्तर सुनो कि प्राचीन समय में यह सब संसार दिव्य जलरूप स्थिरता स-मेत आकाश से रहित नाम चिह्न के बिना धरातलपै वर्त्तमान अन्धकार युक्त शब्दस्पर्श रहित अत्यन्त गम्भीररूप अपरम्पारथा तब ब्रह्माजीने पैदा

होकर वायु अग्नि सूर्य्य आकाश स्वर्ग पाताल और पृथ्वीको औरचन्द्रमा नक्षत्र ग्रह वर्ष ऋतु मास पक्ष तिथि लवक्षण काल इत्यादिको उत्पन्न किया तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजी ने लोकमें वर्त्तमान देहको धारण करके उत्तम २ पुत्रोंको उत्पन्न किया मरीचि, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, अंगिरा इन सप्तऋषियों को और समर्थ ईश्वर शिवजी को प्रकट किया और इसी प्रकार प्राचेतस गोत्री दक्षने भी साठ कन्याओंको उत्पन्न किया उन सब ऋषियों ने संतान के निमित्त ग्रहण किया उनसे सब संसारीजीव, देवता पितृगण, गंधर्व, अप्सरा और अनेक प्रकार के राक्षस,पशु, पक्षी, मछली बंदर, रीछआदि महासर्प और जल थलके पक्षियोंका समूह और अंडज,स्वेदज, जरायुज, उद्भिज आदि चारों प्रकार की सृष्टि स्थावर जंगम संसार उत्पन्नहुआ सबके उत्पन्न करनेके पीछे ब्रह्माजीने सनातन वेदोक्तधर्मको जारी किया उसधर्ममें देवता, आचार्य्य,पुरोहित,द्वादश सूर्य्य,अष्टवसु,एकादशरुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, भृगु,अत्रि,अंगिरा,सिद्ध, काश्यपगोत्री, तपोधन, वशिष्ठ, गौतम, अगस्ति,नारद,पर्वतऋषि, बालखिल्यऋषि,प्रभास, सिकित नामऋषि, घृतिपा, सोमपा, वायव्य, वैश्वानर,मरीचिपऋषि, अकृष्ट हंस, अग्नि से उत्पन्न होनेवाले बानप्रस्थ, प्रश्नीनाम ऋषि यह सब ब्रह्माजी के उपदेश में वर्त्तमानहुये फिर क्रोध लोभसे संयुक्त दानवेन्द्रों ने ब्रह्माजी की उस आज्ञा को उल्लंघन करके धर्म का त्याग और नानाहानि की हिरण्य कशिपु, हिरण्याक्ष, बिरोचन, शंबर, विप्रचिति, प्रह्लाद, नमुचि, बलि यह सब और अन्य दैत्य दानवों के गण धर्म मर्य्यादाको त्याग करके क्रीड़ाकरने वालेहुये और जो अधर्मका निश्चय करने वाले थे वह सब एकही जाति में थे जैसे कि देवता और हम सब लोग इसप्रकार के धर्म में नियत होकर देवता और ऋषियों से ईर्षाकरने लगे और जीवोंपरदया और प्रियबातों को नहीं किया तीनों युक्तियों को बड़ी बुद्धिमानी के साथ जारी करके दण्ड से ही प्रजाओंको आधीन किया तब असुरोंके मुख्य लोगों की उनसे एकता नहींहुई तदनन्तर ब्रह्मऋषियों के सन्मुख वर्त्तमान ब्रह्माजी हिमालयके उस शिखरमें जहां कमलों के समान नक्षत्र चमकते थे और सौ योजनके विस्तार में मणिरत्नों के समूहोंसे अलंकृतथा उसपर संसारके प्रयोजनकी सिद्धि के लिये वर्त्तमानहुये वहां हजार वर्षके पीछे कल्पमें कही हुई यथार्थ विधिके अनुसार अच्छे प्रकारसे ठीक२ करीहुई यज्ञकी उसरचना को ब्रह्माजीने किया जो विधिके अनुसार यज्ञकरने वाले यज्ञमेंप्रवीण समिध और देदीप्य अग्नियों से संयुक्त प्रभायुक्त सुवर्ण के यज्ञपात्रों से शोभित अच्छे २ देवगणों से व्याप्त यज्ञमंडल वाला और ब्रह्मऋषि सदस्यों से शोभायमान होती है

वहां मैंने ऋषियों के मुखसे बड़े भयकारी वृत्तान्त को सुना कि चन्द्रमा और नक्षत्रोंके उदयसे आकाश के समान निर्मल अग्नि के सदृश फैलाहुआ नील कमल के समान रूप तीक्ष्ण दाढ़ सूक्ष्म उदर ऊंचाईमें कठिनतासे प्राप्त योग्य महापराक्रमी जिसके प्रकटहोतेही सब पर्वतों समेत पृथ्वी प्रबल तरंग वाले समुद्र संयुक्त कंपायमान हुई और महा उल्कापातसे वृक्षोंकी शाखा टूट २ गिरनेलगीं और चारोंदिशाओंसे अशुभ वायु चलनेलगी और सबजीव भयके मारे पीड़ामान हुये तब इस महाउत्पातको देखकर ब्रह्माजीने महर्षि देवता गंधर्व आदि से कहा कि यह महातेज मेरेही ध्यान करने से उत्पन्न हुआ है तदनन्तर वह तेज लोककीरक्षा और असुरों के मारनेको अपनेतेज रूपको त्यागकर खड्गरूप होगया जिसकी निर्मल तीव्रधार थी और काल मृत्यु के समान ऊंचा था तब ब्रह्माजी ने उस अधर्म के हटानेवाले तेजरूप खड्गको वृषध्वज नीलकण्ठजीको दिया और रुद्रजीने उसखड्गको पाकर अपना ऐसा दूसरारूप धारण किया जो चार भुजायुक्त पृथ्वीपर बैठेहुये भी मस्तक से सूर्य्य को स्पर्श करने वाला बड़ीदृष्टि महालिंग मुख से अग्नि को निकालते अनेक रक्तनील पाण्डुवर्णोंको बदलते स्वर्णमय उत्तमचमकदार कृष्ण मृग चर्म धारणकिये सूर्य्य के समान एकनेत्रको ललाटमें धारण करके अत्यन्त पिंगल वर्णदो नेत्रोंसे शोभायमानथा तदनन्तर महापराक्रमी त्रिशूलहाथमें लिये भगदेवताके नेत्रफोड़ने वाले देवदेव महादेवजी कालाग्निरूप खड्गको लिये देदीप्य ढालको उठाकर नाना प्रकारके मार्गोंमें घूमे और युद्धकी इच्छासे खड्ग को आकाश में घुमाते महाशब्द से अट्टहास करतेहुये महाभयकारी रुद्ररूपहुये तब उस रुद्ररूप शिवजीको देखकर सब दैत्य दानव युद्धके लिये उनके सन्मुख गये और उनपर पाषाण और उल्कापात किये और महातीव्र शस्त्रोंकी वर्षाकी तदनन्तर इन महाउग्र तेजस्वी रुद्रके स्वरूपको देखकर वह दैत्यों की सेना कंपायमानहोकर अचेत हुई और सबोंने अकेले रुद्रजीको हजारोंकी समान समझा क्योंकि उन महाशत्रुओं में छेदते भेदन करते पीड़ित करते काटते फाड़ते अकेले खड्गलिये ऐसेघूमे जैसे कि सूखे वनमें दावानल अग्नि सबको भस्म करती घूमतीहै उनकेतीव्र खड्गसे दैत्यों के अंगकट २ करगिरे और दानव महापीड़ित होकर पराजय हुये और परस्पर में पुकारते हुये इधर उधरको चलेगये कुछतो पृथ्वी में कुछ पहाड़ोंमें कुछ आकाश और जलमें प्रवेश करगये और पृथ्वीपर उनकेमांस रुधिरकी कीच होगई और पृथ्वी उनके बोझेसे हलकी होगई इनदैत्य दानवोंको मार रुद्रजीने अपने इस उग्ररूपको त्याग फिर कल्याण रूपको धारण किया तदनन्तर सबमहर्षि और देवगणोंने बिजयी शब्दोंसे शिवजीकी स्तु-

ति करी फिर प्रसन्नहोकर शिवजीने सबकी रक्षाके निमित्त बिष्णुजीको दिया बिष्णुने मरीचिको और मरीचिने महर्षियोंको, महर्षियोंने इंद्रको और इन्द्रने लोकपालोंको,लोकपालोंने सूर्य्यके पुत्र मनुजीको देकर कहाकि तुम मनुष्यों के ईश्वर हो इससे खड्गकी जन्मभूमि संसारकी रक्षाकरो जोकि देह और चित्तके कारण धर्मरूप मर्य्यादाको उल्लंघन करनेवाले दण्डको विभाग करके धर्मसे रक्षा के योग्यहैं स्वतन्त्रता से कठोर बचन सुनाना और जुर्मानालेना देह को अंगभंग करना वा मारना यहछोटे कारणोंसे नहीं होताहै इससे यह कठोर बचन आदिकाकहना खड्गकेही समान है यह उपदेशकरो—खड्गके ऐसेप्रमाणवाले रूपोंको वे मर्य्यादापनेसे रक्षाकरो तदनन्तर मनुजीने अपने पुत्रक्षुपको उत्पन्न करके प्रजाओं की रक्षाके निमित्त वह खड्गदिया क्षुपने इक्ष्वाकुको दिया इक्ष्वाकुने पुरूरवाको, पुरूरवाने आयु को, आयुसे नहुषने पाया,नहुषने ययातिको,ययातिने पुरुको,पुरुसे अमूर्त्तरयसनेपाया, उससेराजा भूमिशयको, उससे भरतने, उससे ऐलबिलको, ऐलसे धुन्धमारने,धुन्धमारसे काम्बोजने, उससे मुचुकुन्दने, मुचुकुन्दसे मरुतने, मरुतसे रैवतनेरैवतसे युव नाश्वने, युवनाश्वसे रघुने,उससे इक्ष्वाकुवंशी हरिनाश्वने, हरिनाश्वसे शौ- नकने,शौनकसे औशीनरने,उससे यादव भोजने,यदुवंशियोंसेशिविने,शिवि से प्रतर्द्दनने, प्रतर्द्दनसे अष्टकने,अष्टकसे पृषदश्वने,पृषदश्वसे भारद्वाजऋषि ने,उनसे द्रोणाचार्य्यने, उनसे कृपाचार्य्यने,कृपाचार्य्य से भाइयों समेत तुमने पाया उसखड्गका नक्षत्र कृत्तिका है और देवता अग्नि है रोहिणीगोत्र युक्त रुद्रजी उसके बड़े गुरू हैं अब खड्ग के आठ गुप्तनामों को मुझसेसुनो उननामों के उच्चारण करने से सदैव बिजय को पाता है (श्लोक) अ- सिर्विशसनःखड्गस्तीक्ष्णधारोदुरासदः। श्रीगर्भोविजयश्चैवधर्मपालस्तथैव च॥ हेमाद्रीनन्दनयहखड्ग सबशस्त्रोंमें उत्तमहै यह महेश्वरजीने जारीकिया इसके निश्चय को पुराण कहते हैं तदनन्तर शत्रुहन्ता राजा पृथुने अव- लीन धनुष को धारण किया उसीने पृथ्वी को दोहकर बहुत प्रकारकी बन- स्पति और खेती उत्पन्नकरी उसबेन पुत्र पृथु ने धर्म से पूर्वके समान चारों ओर से इसपृथ्वी की रक्षाकी यह वह आर्षकथाहै कि जो युद्धविद्या में पंडित हैं वह सदैव इसका पूजनकरते हैं और सबको करना योग्य है हे नकुल यह खड्ग की उत्पत्ति और उसकी प्राप्ति प्रथम कल्प है इसको मैंने ब्यौरे समेत ठीक२तुमसे कहा इसखड्गके साधन के सुननेसे पुरुषकीर्तिको पाताहै और अन्तमें स्वर्ग के अनन्त सुखोंको भोगता है ८६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिआपद्धर्मेषट्त्रिंशोऽध्यायः ३६ ॥

# सैंतीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि भीष्मजी के इस प्रकार कहने से मौन युधिष्ठिर ने घरमें जाकर विदुरजी समेत अपने भाइयों से यह पूछा कि धर्मअर्थ काममें लोभवृत्ती वर्त्तमान है उनतीनों में उत्तम मध्यम निकृष्ट कौन २ हैं त्रिवर्ग अर्थात् काम क्रोध लोभ तीनों की विजय के निमित्त किस में आत्माको लगाना चाहिये आप यथार्थता से कहने के योग्यहो तब धर्मशास्त्रके ज्ञाता बिदुरजीने प्रथम यह वचन कहा कि शास्त्रका बहुत पढ़ना,तप,दान,श्रद्धा, यज्ञ,क्रिया, क्षमा,निष्कपटता,दया, सत्य, इन्द्रियोंका निग्रह यहदश आत्मा की सम्पत्ति हैं तू इनकोही प्राप्तकर कभी दिलको चलायमान मतकरो धर्म अर्थ का भी यहीमूल है और मेरा भी यहीआश्रय है ऋषिलोग धर्मसे पार होते हैं सब लोक भी धर्म में ही नियत हैं देवतालोग भी धर्म से बढ़े और अर्थभी धर्म में ही नियत है इससे हेराजा ज्ञानीलोग कहते हैं कि धर्मउत्तम गुण और अर्थ मध्यम और काम निकृष्टगुण कहा जाताहै इसकारण सावधान आत्मा और धर्मप्रधान पुरुष ऐश्वर्यमान होनाचाहिये और जैसे कि अपनी आत्मामें व्यवहार करे उसी प्रकार सबजीवोंमेंभी बर्त्तावकरना चाहिये वैशम्पायन बोले कि बिदुरजी के पीछे अर्थशास्त्र के ज्ञाता अर्जुनबोले कि हे राजा यह कर्मभूमि है यहां उनवार्त्ताओंकीही प्रशंसाकीजाती है यथाखेती व्यापार गौकी रक्षा नानाप्रकारकी शिल्पबिद्या इत्यादि सबकर्मों की मर्य्यादा अर्थ है यह वेदकीभी श्रुतिहै कि बिना अर्थ के धर्म और काम नहींबर्त्तमान होते हैं अर्थवान् पुरुष विषयों के द्वारा उत्तम धर्म के आराधन करने और कामके भोगने को समर्थ होताहै यह अशुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंको अगम है यहभी श्रुति है कि धर्म और काम यह दोनों अर्थके अंग हैं यहदोनों अर्थकी सिद्धीसे ही सिद्धहोते हैं उत्तमजाति के लोग उसअर्थवान् पुरुषकी सदैव ऐसे उपासना करते हैं जैसे कि सब जीव ब्राह्मणकी सेवाकरतेहैं जटा और मृगचर्म्म धारण करनेवाले सावधान चित्त निष्पाप जितेन्द्री मुण्ड निस्तंतु ब्रह्मचारी भी अर्थ की इच्छा से पृथक् २ निवासकरते हैं काषायवस्त्र और दाढ़ी मूंछरखनेवाले लज्जावान् पंडित शान्त सब परिग्रहों से रहित भी होकर कोईअर्थ की इच्छारखते हैं कोई स्वर्गका मनोरथ करतेहैं और कुलीन शास्त्रज्ञलोग अपने २ धर्म में प्रवृत्त हैं कोई आस्तिक कोई नास्तिक कोई पूरे जितेन्द्रीहैं अर्थ शास्त्रका न जानना अन्धकार रूपहै और उसमें विज्ञता होना प्रकाशरूपहै जो पुरुष भोगों से दास आदिकोऔर दण्डोंसे शत्रुओंको बिजय करता है वही अर्थवान् है यहमेरामत है तुम इनदोनों नकुल

और सहदेवको वचन वाक्य और करारसे जानों बैशम्पायन बोले कि अर्जुन के पीछे धर्म अर्थमें प्रवीण माद्रीकेपुत्र नकुल सहदेवने उत्तमबाणीसेकहाकि बैठता, सोता, घूमता और नियत मनुष्य भी नानाप्रकार की युक्तियों से धनके समूह को दृढ़ता संचयकरे इस दुष्प्राप्य और महा प्यारे धनके प्राप्त होनेपर इस संसार में निस्सन्देह सम्पूर्ण मनोरथों को प्रत्यक्ष होकर प्राप्त करता है जो अर्थ धर्मसे मिला है अथवा धर्म से अर्थ मिला है वह दोनों आप को निश्चय करके अमृत के समान हैं इस कारण यह दोनों संसार में हम को अभीष्ट हैं अर्थ से रहित पुरुष को कामकी सिद्धी और धर्म से रहित पुरुष को अर्थकी सिद्धी नहीं होसक्ती जो पुरुष धर्म अर्थ से रहित हैं उनसे संसार भय करता है इस कारण धर्मरूप दानी लोगों से और जितेन्द्री पुरुषों से वह मनोरथ सिद्ध होनेके योग्य है हमारे वचनों में विश्वास करनेवाले जीवों में सब ही कल्पना किया जाता है प्रथम तो धर्मको अच्छे प्रकार से करे तदनन्तर धर्म संयुक्त अर्थको प्राप्तकरे फिर काम को सिद्धकरे वह फल अर्थवानहीका है बैशंपायन बोले कि अश्विनीकुमार के पुत्र यह वचन कहकर चुपहुए तब भीमसेनने यह बचन कहा कि काम से रहित पुरुष अर्थ धर्म और इच्छा इनतीनों को नहीं चाहता है इस कारण कामही प्रधान है कामसे संयुक्त ऋषिलोग फलमूल भोजनकरे शान्तचित्त बायु भक्षीहो अच्छे नियमवान् तपमें प्रवृत्त होते हैं बहुतेरे वेद उपवेदों में संयुक्त जपमें नियत श्रद्धा यज्ञ क्रिया तपदान और दान लेने में प्रवृत्त हैं और कोई ब्यापारी, कृषिकर्मी गोपाल, कारव, शिल्पी, देवकर्म करनेवाले यहसब कामही से कर्म्मों में प्रवृत्त हैं और कितनेही कामना करनेवाले पुरुष समुद्र में भी प्रवेश करते हैं इससे कामही नानारूप धारण करनेवाला है और सब कामसे ही बिस्तार पानेवाला है कामात्मा के सिवाय कोई जीव न था न है न होगा हे महाराज यह प्रत्यक्ष है कि इस में धर्म अर्थ अच्छे प्रकारसे वर्त्तमान है जैसे कि दहीकातत्त्व मक्खन है उसी प्रकार अर्थ धर्मका सिद्धांत काम है खल से तेल उत्तम है और मीठे से घृत उत्तम है काष्ठ से फूल फल श्रेष्ठ है इसीप्रकार धर्म अर्थमें काम सर्वोत्तम समझा जाता है जिस प्रकार फूल से मधु रस निकलताहै उसी प्रकार इनधर्म अर्थों से काम उत्तम गिना जाता है कामही धर्म अर्थ का उत्पत्ति स्थान है और कामही उनकारूप है बिनाकाम केवल अर्थसेही स्वादिष्ट भोजन नहीं होता और बिनाकामके ब्राह्मणोंको भी कोई दान नहीं करता है और काम बिना नाना प्रकारकी लोकचेष्टा भी नहीं देखने में आती इस कारण यह कामही त्रिबर्ग मुख्य में जाना जाता है हेराजा तुम काम को प्राकर सुन्दर पोशाक और भूषणों से

अलंकृत मदसे मतवाले होकर प्यारी स्त्रियों के साथ क्रीड़ाकरोगे तब जानोंगे कि कामही सबमें उत्तम है यह मेरा सिद्धांत है इससे धर्म अर्थ कामतीनों सदैव सेवनके योग्यहैं और जो पुरुष एकहीको चाहताहै वह निकृष्टहै और जो त्रिवर्ग में सब ओरसे प्रीतिकरने वालाहै वह सबमें उत्तमहै यह कहकर अनेक गुण सम्पन्न महावीर भीमसेन भी चुपहोगये तब महाप्राज्ञ धर्म धुरंधर धर्मराज युधिष्ठिर क्षणमात्र इनके बचनोंको विचारकर यह बचन बोलेकि निस्संदेह आप सबलोग धर्मशास्त्र के ज्ञाता और प्रमाण जाननेवाले हो और मुझ इच्छावान् के लिये जो वचनकहा वहमैंने सुना हेसमानबुद्धिवाले भाइयोमेरे इसवचनको सुनों किजो मनुष्यनिश्चय करके पापपुण्य अर्थधर्म और काम में प्रीति करने वाला नहीं है वह निर्दोषी सुवर्ण मृत्तिका को समान जानने वाला पुरुष दुःखसुख और अर्थ सिद्धी से निवृत्त होता है जन्म मरण से संयुक्त वृद्धावस्था को प्राप्त विपरीत दशामेंपड़े जीव उनगुरुओंके समझायेहुए फिर मोक्षकीही प्रशंसा करते हैं जिनको कि हम नहीं जानते हैं संसार में प्रीतिवान् पुरुषको मुक्तिनहीं होती है यह भगवान् ब्रह्माजीका वाक्य है ज्ञानी पुरुष मोक्षमेंही चित्तको लगाये रहते हैं इस कारण प्रिय अप्रिय दोनों को न करे यह बात उत्तमहै कि मैं अपनी इच्छा के समान असावधाननहींहूं जैसे मुझको सबों ने प्रवृत्त किया उसी प्रकार के करता हूं ईश्वर या प्रारब्ध सबजीवों को कर्मों में प्रवृत्त करता है वह ईश्वर या प्रारब्ध महा बलवान है इसको तुम सबजानो न पाने के योग्य अर्थ को कर्मके द्वारा नहींपासक्ता है जो होनहार है वही होताहै, त्रिवर्ग रहित पुरुषभी मोक्षको पाताहै इस कारण वह गुप्तज्ञान मोक्ष के निमित्त है वैशम्पायन बोले कि इन । चित्तरोचक उत्तम२ बचनोंको सुनकर सबलोगोंने राजायुधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नतापूर्वक हाथजोड़े और उनकेबचनोंकी प्रशंसाकी।फिरप्रसन्नचित्त युधिष्ठिरनेभी अपने सबभाइयों की प्रशंसाकी। और भीष्मजीसे जाकर फिरउत्तम धर्मोंकोपूछा ५२॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेसप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३७॥

# अड़तीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे महाज्ञानी कुरुबंशियों के प्रीतिबढ़ाने वाले पितामह मैं कुछप्रश्न करताहूं उनके उत्तर आप कहने को योग्यहैं कि कैसेमनुष्य सौम्य होते हैं और कैसे लोगोंसे उत्तम प्रीति होती है और कौनसा पुरुषबर्त्तमान और भविष्यतकालमें वृद्धि करने को समर्थहै जहांपर मित्र होते हैं वहांधन की वृद्धि पूर्वक नातेदार बांधव लोग बर्त्तमान नहीं होते यह मेरा मत है सुननेवाले और हितकारी सुहृद लोग दुर्लभ हैं हे धर्मभृताम्बर इन सब का

आप वर्णन कीजिये भीष्म जी बोले कि मित्रता के योग्य और अयोग्य पुरुषों को सुनो कि लोभी, निर्दयी, अधर्मी, अकर्मी, शठ, नीच, पापचलन सन्दिग्ध चित्त, अनुद्योगी, दीर्घसूत्री, मिथ्यावादी, लोकनिंदित, गुरू की स्त्री से सम्भोग करनेवाला, व्यसनी, माता पिता आदिका त्यागकरनेवाला दुरात्मा, निर्लज्ज, सब की ओर पाप दृष्टि से देखने वाला, नास्तिक, वेद-निन्दक, भ्रांत चित्त, कार्य में संलग्न, कामी, असत्यवादी, सब का शत्रु, अनाचारी, कठोर, निर्बुद्धी, ईर्षा करनेवाला, पापकानिश्चयकरने वाला, दुस्स्वभाव, दुष्ट अंतःकरण, छली, मित्र द्रोही, दूसरे के धनकी इच्छा करनेवाला, जो अपनी सामर्थ्य के समान दान देनेवाले से अप्रसन्न होने वाला मित्र को धैर्यता से अलगकरनेवाला, अकारण क्रोधी, अचेत, अकारण शत्रु, कल्याणकारी, मित्रों का त्यागने वाला, अपने स्वार्थ के लिये मित्रों के साथ बैठनेवाला, अज्ञानतासे थोड़ी अनुपकारी, अप्रिय बात से मित्रता से शत्रुता करनेवाला, प्रत्यक्ष में मित्र और भीतर से शत्रुता करनेवाला, टेढ़ी दृष्टि से देखनेवाला और विपरीत दृष्टिवाला, उपकार से तृप्त न होनेवाला, दूसरेको अपने समान बनाने वाला, मद्यप, शत्रु, क्रोधी, अभीष्ट न मिलने से दूसरे को दुःख का देनेवाला, मित्र से शत्रुता करनेवाला, जीवहिंसा करने वाला कृतघ्नी, छिद्रान्वेषी इन पुरुषों से कभी मित्रता न करनी चाहिये और मित्रताकरने के योग्य पुरुषों को भी मुझ से सुनो कुलवान्, मधुरभाषी, ज्ञान विज्ञान में कुशल, रूपमें रूपवान्, गुणवान्, निर्लोभी, श्रमी, सन्मित्र, कृतज्ञ, सर्वज्ञ, लोभ, ईर्षा रहित, सत्य प्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, सदैव उद्योगी, कुलीन के बेटे, कुल के तारनेवाले दोषों से रहित प्रसिद्ध होयँ उन्हीं लोगों से राजा को प्रीति रखनी योग्य है हे राजन् सामर्थ्य के अनुसार आचार करने वाले अच्छे प्रकारसे तृप्त होतेहैं विना स्थान क्रोध न करनेवाले, अकस्मात् प्रीति न त्यागने वाले, प्रीति करनेवाले, जो अर्थ में पण्डित होकर चित्त से भी विरोधी नहीं होते हैं और अपने हृदय को कष्टभी देकर मित्र के कार्य में प्रवृत्त होते हैं जिस प्रकार कम्बल पर दूसरारंग नहीं चढ़ता है उसप्रकार जो मित्रों से प्रीति नहीं छोड़ते और निर्धन होने में स्त्रियों पर क्रोध लोभ मोह से अप्रीति नहीं प्रकट करते हैं वह धर्मशील विश्वासी लोग अपने मित्रों को भी अप्रीति नहीं दिखलाते हैं मृत्तिका और सुवर्ण को एकसा माननेवाले मित्रोंमें दृढ़ बुद्धि, स्वतंत्रता रहित, स्वामी के अर्थ को सदैव उत्तममाननेवाले जो पुरुष अपने मनुष्यों की रक्षा करते शास्त्रों से कर्मकरते हैं ऐसे उत्तम पुरुषों से जो राजा स्नेह पूर्वक मिलाप करता है उसका राज्य चंद्रमा की चांदनी के समान वृद्धिको पाताहै सदैव शास्त्रोक्त करनेवाले क्रोधजित

युद्ध में पराक्रमी जन्म से ही उत्तम गुण स्वभाव युक्त श्रेष्ठ पुरुषभी मिलाप के योग्य हैं—हे राजन् जो गुण दोषयुक्त मनुष्य मैंने कहे उनमें भी जो उपकार को भूलने वाले मित्रघाती और नीच हैं वह दुराचारी त्यागने के योग्य हैं यहसबका मतहै—युधिष्ठिर बोले कि मैं मिलापसे सम्बन्धरखनेवाले इतिहासको मुख्यता से सुनना चाहता हूं और जो आपने मित्र से शत्रुता करने वाला और उपकार का भूलने वाला कहा उसको भी मुझसे कहो—भीष्मजी बोले कि मैं उस प्राचीन इतिहास को तुम से कहता हूं जो उत्तर दिशामें म्लेच्छलोगों में हुआ कि मध्यदेशका रहनेवाला वेदोंसे अज्ञान कोई ब्राह्मण वृद्धियुक्त गांवको देखकर भिक्षाकी इच्छासे उसमें पहुंचा वहां गांवमें दस्युजातिवाला कोई महाधनी सब वर्णोंके बिभागों का ज्ञाता ब्राह्मणोंका भक्त सत्यप्रतिज्ञ और दानमें प्रीति रखनेवाला था उसके घरमें जाकर इस ब्राह्मणने रहनेके लिये स्थान और वर्षौंड़ी खर्चके निमित्त भिक्षामांगी तब उस धनीने ब्राह्मण को बहुतसे वस्त्र और एक नवीनस्थान दिया और एक तरुण स्त्री दासी करके दी हे राजन् इसप्रकार वह गौतम ब्राह्मण दस्युसे सब पदार्थ पाकर उस स्थानमें उस तरुण दासीसे बिहारकरने लगा और दासीके कुटुम्ब पोषणकोभी उसने प्राप्तकिया और बहुत दिनतक उस धनीके स्थानमें आनन्दपूर्वकरहा वहां उस गौतम ब्राह्मणने बाणविद्या में बड़ी कुशलता प्राप्तकी और वनमें जाजाकर हंसोंको उसीप्रकारसे मारता था जैसे कि दस्युलोगों के समूह माराकरतेथे तब तो वह गौतम महा हिंसामें प्रवृत्त होकर उन दस्युजातिके समान होगया इसीप्रकार अनेक जीवोंकी हिंसा करतेहुये बहुत दिन गौतमको व्यतीत हुये तब एक दूसरा ब्राह्मण उस देशमें आया वह जटा और मृगचर्मको धारण किये वेदपाठ और जपको उत्तम जाननेवाला पवित्रात्मा अवस्था के अनुसार भोजन करनेवाला वेदज्ञ ब्राह्मणों का रक्षक वेदमें पूर्णथा वह उस गौतमका स्वदेशी और परम मित्र था और शूद्र अन्नको त्यागकर अपने मित्र गौतमके घरको खोजता फिरता था और उस गांवको चारोंओरसे ढूंढ़ा फिर गौतमके घरको पाकर उसमें प्रवेश किया तब गौतमने भी आकर मिलाप किया और उन हंसोंका बोझ कन्धेपर रखनेवाले धनुर्बाण हाथ में लिये शस्त्रधारी रुधिरसे भरादेह राक्षसी सूरत घरके द्वारपर वर्त्तमान महा निन्दित कर्मोंसे घरमें आकर महा लज्जा युक्त होकर आनेवाले ब्राह्मणने कहा कि तुम कुलीन ब्राह्मणहोके अज्ञानता से यह क्या कर्म करतेहो और तुम मध्यदेशी होकर दस्युके भावको कैसे प्राप्तहुये तुम अपने प्राचीन वृद्धोंको स्मरण करो कि कैसे वेदमें कुशल थे उनके वंशमें ऐसे कलंकी तुम उत्पन्न हुये इससे अपने स्वरूप और कुलको

ध्यानकरके इस महा निन्दित कर्मका त्यागकर इस स्थानमें मतरहो तब उस गौतमने बड़े बिचारके साथ उसको उत्तर दिया कि हे मित्र मैं निर्द्धनहूं और वेदकोभी नहीं जानताहूं और तुम धनके निमित्त यहां आयेहो सो हे महाज्ञानी वेदज्ञ मैं तुम्हारे दर्शनसे कृतकृत्य हुआ अब रात्रिको आप निवास करिये कल प्रातःकाल हम दोनों अपने देशको चलेंगे वह ब्राह्मण घृणायुक्त किसी बस्तुका स्पर्श न करके वहां रहा और भोजनके विषय में बहुत सत्कार करनेपरभी न खाया ५१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेअष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८ ॥

# उन्तालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर उस रात्रिके अन्त में उस ब्राह्मण के जाने पर वह गौतम समुद्रके समीप गया वहां मार्ग में बर्त्तमान समुद्रके व्यापारियों को देखा और उनके साथ होकर सागरकी ओर चला दैवयोगसे वह जन समूह किसी पहाड़ी गुफाके समीप मतवाले हाथियों से मारागया और यहब्राह्मण मारेभयके घबराकर उत्तरदिशाको गया और अपने देशसे दूर उस समूहसे पृथक् होकर गुप्त होजाने के समान अकेला जंगलमें फिरनेलगा फिर मार्गको पाकर समुद्रके समीप एक बनको पाया जो कि क्रीड़ायोग्य दिव्य प्रफुल्लित वृक्षों से शोभित सब ऋतुओं के फलयुक्त नन्दनबनके समान यक्ष किन्नरोंसे सेवित शाल ताल तमाल और चन्दन अगरके वृक्षोंसे महासुगन्धि युक्त था वहां पर्वतोंके सुन्दरशिखरोंपर नानाप्रकारके पक्षी शब्दकरतेथे और मनुष्यकासा मुख रखनेवाले समुद्र और पर्वतोंमें उत्पन्न होनेवाले भूलिंगनाम पक्षी भी देखे उनके सुन्दर मधुर शब्दोंको सुनता हुआ वह गौतम ब्राह्मण वहां आया जहां अच्छी क्रीड़ाके योग्य बनमें सुवर्णकी रजसे निर्मित उत्तम प्रकाशवान् भूमिमें एक बड़ा ऊंचा वट वृक्षथा जिसकी शोभायमान शाखा महा सुन्दर छत्राकारथीं और उसकी जड़ उत्तम चन्दनकेजलोंसे सींचीहुईथीं वह प्रफुल्लित शोभायमानवृक्ष कल्पवृक्षके समानथा गौतम उसअपूर्व उत्तम वृक्षको देखकर प्रसन्नहुआ और उसकेनीचे बैठगया उसकेनीचे सुगन्धियुक्त तीनोंप्रकारकी हवाचलनेलगी उस आनन्ददायी हवाके कारण वह सोगया और सूर्य्यास्तहोनेपर सन्ध्याके समय वहां एक उत्तमपक्षी ब्रह्मलोक से अपने स्थानकोआया वह नाड़ीजंघनामसे प्रसिद्ध ब्रह्माजीका परममित्र बड़ाज्ञानी कश्यपजीका पुत्र बगलोंकाराजाथा जिसको पृथ्वीकेलोग राजधर्म्मा कहते थे वह महासुन्दर प्रतापवान् देवकन्याका पुत्र शुद्ध किरीटआदि सुवर्ण रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत सूर्य्यके समान प्रकाशमानथा उस पक्षीको दे-

खकर गौतम बड़ाआश्चर्य्ययुक्त हुआ और भूखप्यास से व्याकुल थकेहुयेने मारनेकी इच्छासे उसकी ओरकोदेखा तब वह राजधर्म्मा बोला हे ब्राह्मण तेराआना सफलहो तू मेरेघरपै प्रारब्ध से आयाहै और अब सूर्य्यास्तहोकर सन्ध्या बर्त्तमानहुई और तुम निर्दोषीप्यारे अतिथिहोकर मेरे घरमेंआयेहो सो प्रातःकाल के समय तुम मुझ से पूजितहोकर प्रसन्नता से अपने घरको जाओगे २४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेएकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ३९ ॥

# चालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजा तब तो शोचदृष्टि से संयुक्त गौतमने उसके मधुरबचनोंको सुनके बड़ा आश्चर्य्य करके उस राजधर्म्मा को देखा--तब राजधर्म्मा बोला कि हे ब्राह्मण मैं कश्यपजीका पुत्रहूं और मेरीमाता दक्षकी पुत्री है और तुम गुणवान् अतिथिहो इससे तुम्हारा आना सफलहो यह कहकर उस राजधर्म्मा ने बुद्धि में देखेहुये कर्म्मसे उसका सत्कार करके शाल के पुष्पों के समान दिव्य कुशासनको दिया और जो मछलियां राजा भगीरथ के रथसे इधर उधरहोकर गंगाजी से सेवित देशोंमें घूमतीथीं उनको उसके भोजन के लिये देनेका विचारकिया और बड़ी२ मछलियां उसके भोजनकोदीं और उसके श्रमदूरकरने को भोजन के पीछे बड़े आनन्द से अपनें परोंसे बायुकरी फिर विश्रामसे बैठेहुये गौतम से गोत्रको पूछा तब उसनेकहा कि मैं गौतमहूं वेदकी कोई वार्त्ता नहींकही फिर उसने मृदुपत्तों की शय्याबनाई और उसपर गौतमको सुलाया फिर उस राजधर्म्मा ने पूछा कि आपका आना कैसेहुआ तब गौतम ने कहा कि हे महात्माज्ञानी मैं निर्द्धनहूं और धनके लिये समुद्रपार जानेकी इच्छा करताहूं तबउस कश्यप ने कहा कि हे ब्राह्मण सन्देह मतकरो तुममनोरथ समेत घरको जाओगे सो हे प्रभु अर्थसिद्धि चारप्रकारकी हैं जैसा कि बृहस्पतिजी ने कहा है प्रथम तो प्राचीन अर्थात् बापदादों से दूसरी ईश्वर या प्रारब्धसे--तीसरी सफल कर्म करने से चौथी मित्रसे प्राप्त होनेवाली है सो मैं तेरा मित्र उत्पन्न हुआ हूं और मेरी मित्रता तुझमें है सो मैं वही विचारकरूंगा जिससे कि तू धनवान् होजायगा--फिर प्रातःकाल के समय उस प्रसन्न ब्राह्मण से यहकहा कि हे सौम्य तुम इसमार्ग होकर जाओ तुम्हारा मनोरथ सिद्धहोगा यहां से तीनयोजन पै राक्षसोंका बड़ा राजा महाबली विरूपाक्षनाम से प्रसिद्ध मेरा मित्र है सो हे ब्राह्मण तुम मेरे कहने से उसके पासजाओ वह तुमको निस्सन्देह अभीष्ट धनदेगा यह सुनकर परिश्रम रहितहो अमृत के समान

फल खाताहुआ उसके पासचला और मार्गमें चन्दन अगर दारचीनी तेज-पत्र इत्यादि वृक्षोंको देखता चलादिया और उस मेरुब्रजनाम नगर में पहुंचा जो पर्वतका द्वार और परकोटा खाईआदि से शोभित पर्वतोंकेही यन्त्रों से वेष्टितथा वहां पहुँचतेही उसबुद्धिमान् दनुजपतिको मालूम हुआ कि यह प्रीतिमान् अतिथि मित्रकी ओरसे भेजाहुआ आया है तब उसने अपने नौकरों को आज्ञादी कि उस गौतमको शीघ्रही यहां लेआवो तब उसके मनुष्य गौतमका नाम पुकारते नगर के द्वारपर आये और उससे कहा कि शीघ्रही चलो राजा विरूपाक्ष तुमको देखना चाहता है तब बड़ी तीव्रता से वह गौतम चला और उसके असंख्य धनकोदेख आश्चर्य्यित होताहुआ राजमहलको गया २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४० ॥

# इकतालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि वहांजाकर वह ब्राह्मण राजासे पूजित होकर उत्तम आसनपर बैठायागया-वहांभी राजाविरूपाक्षने ब्राह्मण से गोत्र प्रवरवेद और ब्रह्मचर्य्यपूछा परन्तु उसने सिवायगोत्रके और कुछ नहींकहा तब उनके रहनेके स्थान को पूछा कि हे ब्राह्मण तू कहांका रहनेवालाहै और तेरी ब्राह्मणी कौनगोत्रवाली है मुझपर विश्वासकरके निर्भयहोकर अपना सबवृत्तान्त कहो-गौतम बोला कि मैं मध्यदेशमें उत्पन्नहुआहूं और मेरा स्थान शवर जातिवाले मनुष्यके घरमें है-मेरीभार्या शूद्रापुनर्भूहै यह मैं तुमसेसत्य २ कहताहूं-भीष्मजीबोले कि इसबातको सुनकर राजाने विचार किया कि मेराकर्म अच्छा कैसे होगा और इसकाकार्य कैसे बनेगा-निश्चय है कि यह जन्मसे तो ब्राह्मणहै और उसमहात्माका मित्र है उसकाश्यपगोत्री ने मेरे पास भेजाहै वह मेरा रक्षकहै इससे मैं उसके अभीष्टको अवश्यकरूंगा वह मेराभाई बांधव और चित्तसे मित्र है अब कार्त्तिकी पूर्णमासीको मेरेघर हजार ब्राह्मण भोजनकरेंगे वहां यहभी भोजन करेगा और मुझे इसको धनदेना योग्य है और यही पवित्र दिनहै और यह अतिथिहै और धनभी संकल्प किया है अब दानकरनाही योग्यहै तदनन्तर क्षौमवस्त्रधारी एकहजार स्नातक ब्राह्मणभी आगये तब उसविरूपाक्षने शास्त्रकी रीतिसे जैसे अभ्युत्थान करना योग्यहै उसीप्रकार उनका अभ्युत्थान किया और उनके चरणधोकर उनके निमित्त उत्तमपवित्रकुशासन बिछवादिये औरयथायोग्य अपने २ आसनोंपर राजासे पूजितहोकर बैठगये फिर तिलजल कुशाओंसे पूजेगये और विश्वेदेवा समेत पितर और अग्नि स्थापन कियेगये और चन्दन पुष्प

अक्षतोंसे भी सुंदर रीतिसे पूजनकरके ऐसे बिराजमानहुये जैसे कि नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा फिर सुवर्णके थालोंमें अन्न मिष्ठान्नयुक्त नानाप्रकारके सुस्वादुभोजन ब्राह्मणों को परोसेगये आषाढ़ी या माघकी पूर्णमासीको बहुत से ब्राह्मण उसके घरपर सुन्दर बनायेहुये भोजनोंकोपाते थे और विशेषकरके कार्त्तिकी पूर्णिमाको ब्राह्मणोंको धनकाभीदान करताथा अर्थात् सुवर्ण,रजत, मणि, बहुमूल्यमोती, हीरा, वैडूर्य,मृग चर्म और दक्षिणा में रत्नों के ढेरोंको धरकर यह कहा कि अपनी इच्छाके अनुसार इनरत्नोंको लो और जिन २ सुवर्ण के पात्रों में तुमने भोजनकिया है उनकोलेकर अपने अपने घरको जाओ यह सुनकर सबब्राह्मणोंने अपनी अपनी इच्छाके अनुसार उन रत्नों को लिया जब शुभरत्नों से और सुन्दर वस्त्रों से शोभित वह ब्राह्मण उसके सत्कार से प्रसन्न होकर चलनेलगे तब फिर ब्राह्मणोंसे कहा कि हे ब्राह्मण लोगो अबकभी तुमको राक्षसोंसे भय न होगा प्रसन्नहोकर अपने अपने अभीष्टदेशों को जाओ देरमतकरो तब ब्राह्मणलोग चारोंओर को चलेगये और गौतमभी सुवर्णके बोझकोलेकर शीघ्रतासे उसबटके वृक्षकेनीचेआया और भूखप्याससेथकित पीड़ामानहोकर बैठगया फिर वह राजधर्मा उसके पासआया और कुशलपूछकर गौतम को प्रसन्नकिया और अपनेपरोंकी वायुसे उसकेश्रमको दूरकिया और पूजनकरके भोजनकाभी आतिथ्यकिया तब उसभोजनकरनेवाले गौतमने चिन्ताकी कि मैंने लोभ मोहसे इस सुवर्ण के बड़ेभार को लिया है और दूर मुझको जाना है और मार्गमें प्राणका धारण करनेवाला कोई भोजन मेरेपासनहीं है मैं कैसे प्राणोंको धारणकरूंगा इसकी चिन्ताकरके मार्गमें भोजनके योग्य कोईवस्तु न देखके उसअकृतज्ञनेमनमें यह विचारकिया कि मेरेसमीप यह बगलोंकाराजा बड़ेमांससे भरावर्त्तमानहै इसीकोमारकर साथलेकर शीघ्रजाऊंगा ३५॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्व्वणिआपद्धर्मेएकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४१॥

# बयालीसवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि वह पक्षियोंका राजा राजधर्मा उसगौतमके समीप रक्षा करने के लिये प्रकाशवान् अग्निको स्थापन करके बिश्वासयुक्त होके सोगया और वह कृतघ्नी दुष्टात्मा जो पहिलेही से उसके मारने के विचारमें था उसने एक सूखीलकड़ीसे उसको सोते में मारा और मारनेकेपाप दोषको मनमें भी नहीं विचारा और बहुत प्रसन्न होकर उसके परोंको अलग करके अग्नि में भूनकर उसको बांध सुवर्णसमेत घरकोचला तब दूसरेदिनके अंतमें विरूपाक्ष ने अपने पुत्रसे कहा कि हे बेटा मैं अब पक्षियों के राजा राजधर्मा को

नहींदेखताहूं क्योंकि वह पक्षी सदैव पूर्वाह्न संध्यामें ब्रह्माजीके दर्शनोंको प्रतिदिन जाता है तब मुझको देखेबिना कभीघरको नहीं जाताहै सो दोदिनसे मेरेघरको नहींआया इसकारणसे मेरे चित्तमें संदेह है उस मेरे मित्रको देखनाचाहिये मतकहीं उस वेदपाठसे रहित जपहीन हततेज हिंसा धर्मवाले उस नीचब्राह्मणने तो उसकोनहींमारा यही मुझको संदेह है अर्थात् वह निर्बुद्धी दुष्टाचारी है इसको मैंने उसके लक्षणों से जानाहै वह निर्दयी भयकारीरूप दुष्ट चोरोंके समान नीच गौतम वहां गयाहै उसीसे मुझको सन्देह होगयाहै सो हे बेटा तुम शीघ्रजाकर उस राजधर्माको घरमें देखो कि वह जीवताहै या नहीं यह पिताकी आज्ञा पातेही उसकापुत्र बहुत से राक्षसों समेत शीघ्रतासे वहां पहुंचा तो राजधर्माके देहके पक्ष पृथ्वी में पड़ेहुये खाली वृक्षको देखा यह वृत्तान्त देखकर वह राक्षसका पुत्र रोदन करके बड़ी शीघ्रतापूर्वक उसके पकड़नेको गया और समीपही उसने गौतमको पकड़ा और राजधर्माके देह समेत उसपापकर्मी दुष्ट गौतमको राजाके सन्मुख किया वह राजा उसको देखकर मंत्री और पुरोहितों समेत महा रुदन करनेलगा और उसके महलकी स्त्रियां और नगरके सब छोटे बड़े स्त्री पुरुषभी बड़े शोकयुक्त होकर रोदनकरने लगे तब राजाने पुत्रको हुक्मदिया कि इसपापी को मारो और अपनी २ इच्छाके सदृश इसके मांसकोखण्ड २करो क्योंकि यहदुष्टात्मा पापाचार पापकर्मी तुम लोगोंके मारनेके योग्यहै राजाकी इसआज्ञा होनेपर महापापी गौतमके मांसका भक्षण किसीने नहीं करना चाहा तब यहविचार किया कि इस नीच पापीको दस्युजातिवालोंको देना चाहिये और यही विचार राजासेनिवेदन करके शिरझुकाकर कहा कि हेराजा आप इसकापाप हमारे भक्षण के देनेको योग्य नहीं हो तबराजानेकहा कि ठीकहै अब यह कृतघ्नी पापात्मा गौतम दस्युजातिवालोंको दियाजाय तब उसके टुकड़े टुकड़ेकरके दस्युलोगोंकोदिया उनलोगोंने भी उस पापीको भक्षणकरना न चाहा इससे सिद्धान्त यहहै कि कृतघ्नीपुरुषके मांसको राक्षसभी कोई नहीं भक्षणकरता-हे राजा ब्रह्महत्या करनेवाला मद्यपीनेवाला चोरीकरनेवाला और ब्रतकात्याग-नेवाला ऐसे लोगोंका तो प्रायश्चित्तहोभी सक्ता है परन्तु कृतघ्नी मनुष्य के लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है और ऐसेलोग जो कि मित्रसे शत्रुता करने वाले कृतघ्नी और हिंसा करनेवाले हैं उनका भोजन मांसभक्षी जीव और कीड़े भी नहीं करते २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेद्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४२॥

# तेतालीसवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि उसको इसप्रकार दण्डदेकर उस राक्षसों के राजा ने उस बकराजकी चिताको रत्न और वस्त्रोंसे अलंकृत नाना सुगन्धियोंसे युक्त बनाया और दाह क्रिया करके मृतकक्रियाओंको किया उसीसमय शुभका-री दाक्षायणी देवी सुरभीके रूपमें चिता के ऊपर वर्त्तमानहुई उसके थनों से बहुतसा दूध उसकी चितामें गिरा उस दूधके प्रभावसे वह पक्षियोंका राजा जीउठा और वहांसे उठकर अपने मित्र विरूपाक्ष से मिला तदनन्तर देवराज इन्द्र भी विरूपाक्षके पुरमें आये और विरूपाक्षसे कहनेलगे कि यह राजधर्मा अपने प्रारब्धसे जीगयाहै और वह प्राचीनइतिहास विरूपाक्षको इन्द्रने सुना-या कि जैसे ब्रह्माजीने राजधर्माको शाप दियाथा अर्थात् जबराजधर्मा ब्रह्मा जी के पास नहीं गया तब क्रोधयुक्त होकर ब्रह्माजी ने राजधर्मासे यह कहा कि अरे अज्ञानी बगले जो मेरी सभामें तू नहींआया इससे थोड़ेही समयमें माराजायगा इसी कारण गौतमके हाथसे यह मारागया और अमृतके सींचने से फिर यह जी उठा यहसुनकर राजधर्माने इन्द्रदेवताको नमस्कार करके यह वचनकहा कि हेदेवेश्वर जो तुम बुद्धिसे मेरेऊपर अनुग्रहकरतेहो तो हेपुरुषो-त्तम मेरे प्यारेमित्र गौतमको भी फिर जीवदानदो तब इन्द्रने प्रसन्नहोकर उस गौतमको भी अमृत सींचकर जिलाया तब वह राजधर्मा सुवर्णपात्रयुक्त उसको देखकर बड़ी प्रीतियुक्तहो उस मित्र से मिला और उस पापकर्मी को धनसमेत बिदाकरके अपने स्थानकोगया और पूर्वके समान फिर राजधर्मा ब्रह्मलोककोगये और ब्रह्माजीने इसमहात्माको आतिथ्यधर्म से पूजनकिया और उस गौतमने भी उस दस्युजाति के राजाके स्थानको पाकर अपनी उसी दासी शूद्रामें पापीपुत्रों को उत्पन्नकिया तब देवताओं के समूह ने उसे महाघोर शापदिया कि अरे पापी तू बहुत दिनतक कुत्तेकी योनिमें पुत्रोंको उत्पन्न करके महाघोर नरक को पावेगा क्योंकि तू कृतघ्नी उपकारका भूल-ने वाला है हे राजा पहिले समय में यह वृत्तान्त मुझसे नारदजी ने कहाथा और मैंने उसको यथार्थ स्मरण करके बुद्धिके अनुसार तुमसे कहा कि कृत-घ्नी पुरुषको नतो यशहै न स्थानहै और न सुखहै वह कभी श्रद्धाके योग्य नहीं है न उसकेलिये कोई प्रायश्चित्तहै अधिक करके पुरुषको मित्रसे शत्रुता न करनी चाहिये क्योंकि मित्रसे शत्रुता करने वाला घोरनरक में गिरता है और कृतज्ञ और सदैव मित्रता चाहने वाले मित्रको ईश्वर सदैव ऐश्वर्य्यवान् करता है मित्रसेही सब मनोरथ और प्रतिष्ठा पूर्वक भोगोंको भोगता है और आपत्तियों में भी मित्रोंही के द्वारा उद्धार होताहै इससे बुद्धिमान् मनुष्य

उत्तम सत्कारों से मित्र का पूजनकरे पापी अकृतज्ञ निर्लज्ज मित्रसे शत्रुता करने वाला कुलनाशक पापकर्मी नीच मनुष्य ज्ञानियोंको त्यागने के योग्य है हे राजा युधिष्ठिर यह उपकार भूलने वाले पापात्मा मित्रसे विरोध करने वालेका वृत्तान्त तुझसे विधिपूर्वक कहा अब क्या सुनना चाहता है वैशंपायन बोले कि हे राजा जनमेजय इस प्रकार राजा युधिष्ठिरसे जब भीष्मजी ने कहा तब युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुये २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिआपद्धर्मेत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३ ॥

शान्तिपर्व आपद्धर्म समाप्तम् ॥

# अथ महाभारतभाषा ॥

## शान्तिपर्व्व मोक्षधर्म्म ॥

### पूर्व्वार्द्ध प्रारम्भः ॥

श्लोक श्रीमन्महाभारतशान्तिपर्व्वान्तर्मोक्षधर्म्मस्यकरोतिभाषाम् ॥
करोमिकालीचरणाभिधोहम् भाषाप्रबन्धेनजगद्धिताय १

## पहिला अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह आपने राजधर्म्म और आपद्धर्म्मों को बड़ी उत्तमतासे वर्णन किया अब आप आश्रमोंके श्रेष्ठ धर्म्मोंको वर्णन कीजिये— भीष्मजी बोले कि सब आश्रमों में श्रेष्ठधर्म और ज्ञान देहहीसे नियत किया गया है उनके फलोंको मैं कहताहूं तुम चित्तको एकाग्र करके सुनो कि धर्म्म के अनेक मार्गहैं किसी मार्गसे धर्म्म करो सब सफल होतेहैं सबका फल क्रम २ से मोक्षही से सम्बन्ध रखता है इसलोक का किया हुआ धर्म्म बहुधा शीघ्रता से फलीभूत नहीं होता परन्तु दूसरे लोकमें जन्मान्तर के द्वारा अवश्य प्राप्त होताहै और जो धर्म्म ज्ञान पूर्व्वक इस लोकमें किया जाता है उसका फल इसी देहसे प्राप्त होताहै सो हे युधिष्ठिर जो पुरुष जिस २ विषयमें जैसा जैसा निश्चयकरताहै उसीमें अपना कल्याण मानताहै और जो कदाचित् इस मेरे कहनेसे तुझको शंकाहुईहो तो यही सिद्धांत समझना कि केवलधर्म का फल दृष्टिगोचर नहींहोताहै किन्तु ज्ञानयुक्त धर्म काहीफल प्रत्यक्षहोताहै तो धर्मकरना व्यर्थ है और ज्ञानही करना सार है इसका तात्पर्य्य यहहै कि जो इसलोक में कामनाकेनिमित्त धर्मको करते हैं उनको इसीलोक में फलकी प्राप्तिहोती है क्योंकि धर्मके अनेकमार्ग कहे हैं इससे कभी संदेह करना योग्यनहीं है और उत्तमलोगभी सदैवकहते हैं कि क्रिया कभी निष्फल नहींहोती है, पुत्रादिकी कामना, स्वर्गकीकामना, वेदान्तविचारकी कामना इनतीनोंमेंसे जिसकामनामें पुरुषका निश्चयहोता है उसी में फल की इच्छा करताहै अन्यमें बासना नहींकरता और जैसेजैसे तृणकेसमान

संसारको असारनाशवान् समझाजाता है तैसेहीतैसे सुखदायीवैराग्य बुद्धिमें आताजाता है तब संसारको दुःखमय जानकर बुद्धिमान्लोग मोक्षहोनेके यत्नको करते हैं, यहबात सुनकर युधिष्ठिरबोले कि यह आपनेकहा सो सत्यहै परन्तु अब यहभी कृपाकरके समझाइये कि माता पिता धन पुत्र स्त्री इनसब के नष्टहोनेसे जो शोक उत्पन्नहोताहै उसकी निवृत्ति किसरीतिसे होती है भीष्मजीबोले कि मातापिता धन स्त्री पुत्रादिके नष्टहोनेपर संसारको अनित्य दुःखमय बिनाशवान्जान के शोककेदूरहोनेका उपायकरे अर्थात् चित्तसे खेदकोदूर करे इसतुम्हारे सन्देहके दूरकरनेकेनिमित्त ज्ञान का देनेवाला एक प्राचीन इतिहास तुमसे कहताहूं कि पूर्वसमयमें पुत्रकेशोकसे महापीड़ित एकसेनजित नामराजाथा उसको शोकसे महाब्याकुलदेख एक शुभचिन्तक ब्राह्मणने कहा कि हे राजा तू क्या मूढ़ निर्बुद्धियों के समान शोचकररहाहै तेरे शोचकोदेखकर तेरे सब बांधव तेरे भी शोचको करेंगे और हम तुमसब नौकर चाकर इष्टमित्र और जितने स्थावर जंगमजीवहैं सब अपनी अपनी देह और इन्द्रियों समेत वहांहीं जायँगे जहांसे कि आयेथे इससे ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त धैर्य्यवान्होकर शोककोदूरकरो सेनजितबोला कि हे ब्राह्मण वह कौनसे उत्तमज्ञान धर्म तप बुद्धि इत्यादि हैं जिनसे कि आपको कभी शोक नहीं सताता है ब्राह्मण ने कहा कि हे राजा तुम संसार में जितने उत्तम मध्यम निकृष्ट अनेक जीवोंको देखतेहो सब दुःखोंहीं से भरे हैं इससे पंडित बुद्धिमान् पुरुष कर्मकोही दुःखसुखका देनेवाला समझकर कभीहर्ष शोकको नहींकरते इसमेंएक कारणऔर कहताहूं उसको चित्तलगाकर सुनो कि और सदैव चित्त में बिचारो कि यह जोजीवात्मा है वह नित्य है अबिनाशीहै और ईश्वर का प्रतिबिम्बरूपहै वह न तेराहै न मेराहै जो देहका आत्माहो अपना नहीं है तो धन पुत्र स्त्री माता पिता पृथ्वी स्थान आदि हमारे कैसे होसक्ते हैं और जब हमसे कोई सम्बन्ध नहीं है तो हमारा उनपर प्रेमभी व्यर्थ है ऐसी बुद्धिके अनुसार ज्ञानहोनेसे हे राजा हमको कभीशोक हर्ष नहींबाधा करते, जैसेकि दोकाष्ठ बहते२ समुद्रमें मिलजाते हैं और फिर जलकी तरंगसे पृथक्२होजाते हैं ऐसेही यह जीवोंका समागम और पुत्र पौत्र स्त्री ज्ञाति बांधव आदिका होनाहै इससे हेराजा यहसब पुत्रादि दुःखकेही हेतु हैं ऐसा जानकर इनमें स्नेह कभी न करना चाहिये और जो तेरापुत्र था वह ईश्वरकेही घरसे आयाथा और वहींफिरि चलागया अबतू किसकाशोच करताहै वह न तुझको जानताहै न तू उसकोजानताहै तो शोचकिसका है अबमैं पूछताहूं कितू अच्युतके प्रतिबिम्बको शोचता है या उसके शरीरको शोचता है जो देहको शोचताहै तो देहजड़है जैसे उसको शोचताहै वैसेहीकाष्ठ पाषाण का भी

शोचकरना चाहिये और जो अच्युतके आभासको शोचकरता है तो वह अच्युत एकही है परन्तु सबजगत् में व्याप्त है, तृष्णासे दुःखहोताहै और तृष्णाके नाशसे सुखहोताहै दुःखके अन्तमें सुख और सुखके अंतमें दुःख इसीप्रकार यहदोनों दुःख और सुख मनुष्यके पीछे चक्रके समान फिरतेरहते हैं इसीकारणसे हे राजा तुमको भी सुखकेअंत में दुःखहुआ है और इसदुःख के पीछे अवश्य तुमको सुखकी भी प्राप्तिहोगी क्योंकि न सदैव सुखरहता है न दुःखरहेगा यह शरीर दुःख और सुखकास्थानहै और मनुष्य जिस जिस शरीरसे जो जो कर्म करताहै उसके फलको उसीउसी देहसे भोगताहै हे राजा ज्ञानी लोग कहते हैं कि यहस्थूल और सूक्ष्मदोनों शरीर संगही उत्पन्नहोतेहैं और अनेकरूप प्रकाश करके संसार में भी साथ ही साथ रहते हैं और संग ही संग दोनों का बिनाश भी होता है--जो पुत्र रूपी स्नेह की रस्सी से बँधे हैं वह ऐसे नष्ट होजाते मैंने देखे हैं जैसे कि रेत पर का बँधा हुआ सेतु जल से शीघ्र नष्ट होजाता है स्नेह के कारण तिल के समान कोल्हू में अज्ञानी लोग पिसते हैं उसीप्रकार मनुष्य संसारी स्नेह रूपी भार के द्वारा अज्ञान से उत्पन्न होने वाले क्लेश से पीड़ित होकर इस संसार चक्र में सदैव पीड़ा पाते हैं मनुष्य अपने पुत्र स्त्री आदि के पोषण के वास्ते पाप कर्म को करतेहैं वह दोनों लोक में महादुःखों को भोगते हैं अर्थात् उस कर्त्ता के पाप पुण्यको वह स्त्री पुत्रादि नहीं भोगते वह केवल उसके धनके भोक्ता हैं सब मनुष्य पुत्र स्त्री कुटुम्ब में चित्त से प्रवृत्त होकर ऐसे शोक के समुद्र में डूबे हुये हैं जैसे बृद्ध जंगली हाथी कीच में--और हे युधिष्ठिर धन जाति बांधव आदि के नष्ट होने में दावानल के समान बड़ा भारी कष्ट प्राप्त होताहै यह सबदुःख सुख ऐश्वर्य्य और नाश दैव के आधीन है तात्पर्य्य यह है कि पुत्रादि के नष्टहोने पर उनमें ममता न करनी चाहिये मित्र के साथ बिना स्वार्थ के प्रीति और उपकार करने वाला या मित्र के साथ शत्रुता रखनेवाला मित्र, शत्रु, सुबुद्धि, निर्बुद्धि कैसा ही होय दैव से ही सुख दुःखको पाताहै अर्थात् दैव को न माननेवाले धनाढ्य होने पर भी सुख की प्राप्ति में दुःखी होते हैं और दैव को मानने वाले धनाढ्य न होने पर भी लोभ के त्यागने से सुखी होते हैं सुख दुःख के देनेवाले मित्र शत्रु नहीं हैं और धन आदि की प्राप्ति में बुद्धि कारण नहीं है और सुखों के मिलने में धन उपयोगी नहीं है और धनकी प्राप्ति में बुद्धि और नाश में अज्ञानता समर्थ कारण नहीं हैं तत्त्व का जानने वाला इस भोग के योग्य प्रपञ्च की उत्पत्ति और सिद्धान्त को जानता है और जोकि बुद्धिमान अज्ञानि शूर भयभीत अल्पज्ञ दूरदर्शी नि-र्बल पराक्रमी दैव का माननेवाला है उसको सुख प्राप्त होता है, गौ अपने

बछड़े की है स्वामी की है और चोरकी भी है परन्तु जो पुरुष उसके दूध को पीता है वह निश्चय करके उसी की है तात्पर्य्य यह है कि उसमें दूरकी ममता होना बृथाहै इसी कारण आवश्यकता से अधिक इच्छा न करनीचाहिये जो पुरुष महा अज्ञानी हैं और जिन्हों ने बुद्धिमानों से भी बढ़ कर ऐश्वर्य्य पाया अर्थात् निर्विकल्प समाधि में हैं वे मनुष्य आनन्दपूर्वक वृद्धिका पाते हैं और जो भेद के देखनेवाले हैं वह कष्टको पाते हैं जो पण्डित लोग सिद्धान्तों में रमते हैं वह मध्यमें नहीं प्रवृत्त होते हैं यहां सिद्धांत की प्राप्ति को सुख और सिद्धान्त के मध्य को दुःख समझना योग्य है जो बुद्धि के सुख को प्राप्त करनेवाले हैं और सुख दुःख ईर्षा आदि से रहित हैं उनको अर्थ और अनर्थ आदि से कभी पीड़ा नहीं होती और जो पुरुष बुद्धि रहित अज्ञानता में डूबे हुये हैं वह दुःखों को भी पाते हुये अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, अज्ञानी पुरुष अहंकारमें भरेहुये सत् असत् के न जाननेवाले कामादि दोषों से युक्त दूसरे की अप्रतिष्ठा या नाश करने से ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे कि स्वर्ग में देवतों के समूह परिणाम में दुःख रखनेवाले सुख को जानकर दुःख ही ज्ञानसाधन के अनुष्ठान में उत्साहयुक्त सुखका उदय करनेवाला है इसी प्रकार आत्मा आदि लक्ष्मीयुक्त ऐश्वर्य्य के साथ ज्ञानी पुरुष में हीं निवास करते हैं आलस्य युक्तों में कभी नहीं नियत होते दुःख शोकात्मक चित्त का जीतने वाला पुरुष प्राप्त होनेवाले प्रिय अप्रिय सुख दुःख को समान जानकर सहता है पण्डित के सिवाय अज्ञानी पुरुष में प्रतिदिन हजारों शोक भय उत्पन्नहुआ करते हैं और स्वयंसिद्ध ज्ञानी बुद्धिमान् शास्त्र के अर्थों में दोष न लगानेवाला शास्त्रज्ञ शान्तचित्त जितेंद्री पुरुषको शोक कभी स्पर्शनहीं करसक्ताहै ऐसीबुद्धिमें प्रवृत्तहो निष्कामचित्त होकर ज्ञानीपुरुष बिचरताहै जो ब्रह्म संसारकी उत्पत्ति स्थिति लय का कारण है उसमें जो लगाहुआ ज्ञानी है उसको शोक कभी नहीं स्पर्श करताहै जिसदेहके किसी अंगके कारण शोक दुःखादि तापहोयँ उस अंगको भी जब कि काटडालना योग्यहै तो स्त्रीपुत्रादि किस गणना में हैं जब कुछ ममता कल्पना कीजातीहै तभी शोक दुःखादि उत्पन्न होते हैं विषयों में से जिस जिस विषयको त्यागता जाता है उस से सुख रूप मोक्षकी प्राप्ति होती है और बिषयी पुरुष बिषयों के साथ नाश को प्राप्तहोताहै, लोकमें जो बिषयादि सुखहैं और स्वर्ग के जो बड़े सुख हैं वहसब मिलकर लोभके त्यागनेपर बैराग्यनाम सुखके सोलहवेंभाग के भी समान नहींहैं, वैराग्यवान् पुरुषको यह जानना चाहिये कि प्रथम देहका कियाहुआ शुभअशुभ कर्मज्ञानी अज्ञानी वा शूरपुरुषको स्वतः सेवन करता है निश्चयकरके इसीप्रकार यह प्रिय अप्रिय सुखदुःख जीवों के चारोंओर

वर्त्तमानहोते हैं इसबुद्धि में प्रवृत्त होकर गुणीपुरुष प्रसन्नहोता है जो सब बिषयोंको त्यागकर क्रोधरहित होता है और यह चित्तसे उत्पन्न होकर हृदय में बुद्धिपूर्वक बासकरनेवाला क्रोधरूप जीवों के देह में नियतहोताहै उसको ज्ञानीलोग मृत्युरूप कहते हैं अर्थात् जन्ममरणवाले संसारका द्वारमानते जब इच्छाओंको सबप्रकार से कछुए के अंगों के समान देहमें लयकरताहै अर्थात् वहयोगी हार्दाकाशनाम कारण ब्रह्म में प्रवेश करता है तब यह जीवात्मा सब उपाधियों से रहित उस अपने स्वरूप में जहां केवल आत्माहीका प्रकाश है वहां अखण्ड चिन्मात्रको देखताहै और मायाके आवरणको त्याग करताहै और जब ममता से कुछ कल्पित होता है, तबवह सबदुःखों के निमित्त प्राप्तहोताहै, जब आत्मा में चित्तके लयकरनेपर भयनहीं करता और न इससे कोई भयभीतहोता और इच्छारहित होनेसे किसी से शत्रुता भी नहीं करता है तब ब्रह्मभावको प्राप्तहोता है, सत् असत् शोक हर्ष भय निर्भय प्रिय अप्रियताको अत्यन्त त्यागकरके महाशांताचित्त होता है और जब धीरपुरुष मनवाणी कर्मसे जीवोंमें हिंसाआदि पापोंको नहीं करता है तब ब्रह्मभावको प्राप्तहोता है, जो कुबुद्धियों से कठिनता से भी त्यागनहीं होसक्ती है और जैसे जैसे वहवृद्ध होते हैं तैसे तैसे वहभी दृढ़होती जाती है और जो प्राणान्तक महारोगरूपी तृष्णाकी आधिक्यता है उसके त्यागने से मनुष्य सदैव आनन्दयुक्त रहता है इस विषय में एक पिंगलानाम बेश्या के कहेहुए इतिहासको कहताहूं कि जैसे उसने दुःखके समय में भी सनातन धर्मको पाया उसको सुनो कि जब उस बेश्याको अपने स्थानपर निजप्यारे पुरुषसे बियोग हुआ तब महादुःखीहोकर उसने अपनी आत्मामें शांतिबुद्धिको धारण किया तात्पर्य्य यहहै कि वैराग्यका मुख्यकारण दुःखही है पिंगलाने अपने चित्त में बिचारा कि मैं बहुतकाल से उसनिर्विकार स्वामी ईश्वरको भूली हुईथी जो सदैव हृदय में रमण करनेवाला बिद्यमान अच्युत अनूपरूप कान्त है उसको मैंने अपनी अज्ञानता से ऐसे ढँकदियाथा कि कभीनहीं जानागया एक थूणरूप अज्ञानमें अबिद्यारूप जो यह शरीर है वह अत्यन्त दुःखदायी है उसके नासिकादिक नौओंद्वारोंको मैं अपनी ज्ञानरूपी विद्यासे चारोंओर से ढँकदूंगी तब अपने हृदय के रमण करनेवाले प्यारे कांतको बाहर न जानेदूंगी फिर उस आत्मलाभ से सब इच्छाओंके प्राप्तहोने पर मुझअनिच्छावान्को त्यागनेकेयोग्य वहधूर्त मनुष्य अज्ञानरूप कांत कांताभाव से कैसे ठगेंगे, इसप्रकार से बिदितहोकर अब मैं जागतीहूं तात्पर्य्य यह है कि जिसने तत्त्वको पायाहै वह बिषयों से आकर्षण नहीं होता है और दैवयोग से जो पिछले पापकर्म हैं वह भी नष्टहोजायँ मैं बिषयों से रहित ज्ञानको प्राप्तहुईहूं

इससे जितेन्द्रियहूं जो बिषयभोगसे पृथक्है वह सुखपूर्वक सोताहै वही परम सुखहै इसकारण पिंगला भी धनकी आशाको बिषयभोग से रहित करके आनन्दपूर्वक सोती है भीष्मजी ने कहा कि हे युधिष्ठिर तब ब्राह्मण के ऐसे सहेतुक बचन सुनकर राजासेनजित आत्मतत्त्व की निष्ठा में वर्त्तमानहोकर बहुत प्रसन्नहुआ ६६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेप्रथमोऽध्यायः १ ॥

## दूसरा अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह आशाजीतिकर मोक्षकी इच्छाकरना यह आपने प्रथम अध्यायमें वर्णनकिया अब आपमेरे इससन्देहको निवृत्तकरिये कि जीवोंके नाशकरनेवाले इसकालके मध्यमें वृद्धावस्थाआदि अनेकदेहके रोगोंसे देहके नष्टहोनेपर मनुष्य किसकल्याणको प्राप्तकरे, भीष्मजीबोले कि इसस्थानपर मैंपिता पुत्रके सम्वादवाले प्राचीन इतिहासकोतुमसेकहताहूं कि किसी वेदपाठी ब्राह्मणके पुत्र उत्पन्न हुआ वह बड़ा बुद्धिमान् शास्त्रज्ञ मेधावी जिसका नाम था उसने अपने पिता से यह कहा कि हे पिता जब असत् सत्काज्ञान प्राप्त होजाय तब मनुष्य को क्या करना उचित है यह मुझसे आप वर्णन कीजिये क्योंकि मनुष्यों की आयुर्दा क्षीणहोती चलीजाती है पिताने कहा कि हे पुत्र जो तुमने प्रश्न पूछा वह बहुत उत्तमहै उसको समझकर मैं कहताहूं तुम चित्त लगाकर सुनो कि ब्रह्मचर्य्यसे वेदोंको पढ़कर पितरोंकी पवित्रताके निमित्त पुत्रोंको उचित है कि अग्नियों को स्थापन करके पुत्रोत्पादन करे फिर बिधिपूर्वक अग्नियों में यज्ञ करे तदनन्तर मुनिरूप होकर बनमें बास करे इस धर्म्ममें प्राप्त होनेसे बड़े आनन्द को पाता है पुत्रने कहा कि इसप्रकार मृत्युसे घायलहोने और वृद्धावस्थासे घिरजाने और क्षण क्षणमें अवस्था ब्यतीत होनेपर धैर्य्यवान् के समान आप वार्त्ता कहतेहैं यह मुझको आश्चर्य्य होताहै पिता बोले कि लोक किसप्रकार किससे घायल और किससे ब्याप्तहै और कौन सफल होतेहैं पुत्रने कहा कि यह लोकमृत्यु से घायलहै और वृद्धावस्थासे घिराहुआहै बड़े कष्टकी बातहै कि यह अहर्निश ब्यतीत होतेजातेहैं तुम क्यों नहीं सावधान होतेहो और यह दिनरात निष्फल आते जातेहैं अर्थात् अवस्था घटती जातीहै परन्तु मृत्यु नियत नहीं होती अर्थात् क्षण क्षणमें समीप आती जाती है इसको जानकरभी माया जालसे आच्छादित मैं किसप्रकार भ्रमण करता बाटदेखूं बुद्धिमान् मनुष्य को जानना चाहिये कि दिनरातके अन्त में आयुर्दा घटतीजाती है तब वह दिनरातभी निष्फल हैं जब इच्छाकी अपूर्णतामेंही मृत्यु आजाती है तब

बिनजल मछलीके समान कौन सुखको पाताहै सफल कर्म्मोंके फलोंको प्राप्त करनेवाले और आत्मा के विशेष दूसरी ओर चित्त लगानेवाले पुरुष को मृत्यु ऐसे लेजाती है जैसे कि सिंहनी गौके बछड़े को, तुम अब भी अपना कल्याण करो इससमयको व्यर्थ व्यतीत मतकरो क्योंकि मृत्यु करनेके योग्य कर्म्मोंको न करनेपर भी आकर्षण करैगी कलके कामको आज करो और रात्रिके कामको प्रातःकालही करो चाहै किसीका काम होचुकाहो या नहो-चुकाहो मृत्यु मुखफाड़ेही बैठी है कौन जानताहै कि कब किसकी मृत्युहोती है इससे तरुणाईमेंही धर्म्मका अभ्यास करे क्योंकि निश्चय करके जीवन नाशवान् है, धर्म्म करनेसे इस लोकमें कीर्त्ति और परलोकमें सुख की प्राप्ति होती है मोहसे भराहुआ पुरुष पुत्र स्त्रीके निमित्त कर्त्तव्य अकर्त्तव्य कर्म्मोंको करके उनका पोषण करता है उस गृहस्थके नाना जंजालोंमें फँसेहुये पुरुष को मृत्यु ऐसे उठालेजाती है जैसे कि सोतेहुये मृगको सिंह उठा लेजाता है निन्दित बस्तुओंके ग्रहण करनेवाले और इच्छाओं में प्रवृत्त पुरुषोंको काल ऐसे उठालेजाता है जैसे कि पशुको व्याघ्र उठालेजाता है, यहतो किया और यह करनेके योग्यहै यह आधा है और आधाबाकी है इसप्रकार के लोभमें फँसेहुये मनुष्य को मृत्यु अपने आधीन करलेती है कर्म्मोंके फलको आप न पानेवाले और व्यापारी नामसे प्रसिद्ध क्षेत्र वा दूकान आदिमें आसक्त चित्त मनुष्यको मृत्यु अवश्य लेजाती है, अबल सबल शूर भयातुर पंडित और सब मनोरथ न सिद्धहोनेवाले मनुष्य को मृत्यु लेजाती है, जब कि देहमें मृत्यु बुढ़ापा रोग आदि अनेक दुःख लगेहुये हैं तो धैर्य्यवान् के समान कैसे आप वर्त्तमान हैं मृत्यु देहके नाशकेही निमित्त प्रकट हुआहै और बुढ़ापा देहके अंगोंको शिथिल करता है और सब स्थावर जंगम जीव इन दोनों मृत्यु बुढ़ापेसे संयुक्तहैं और स्त्री पुत्रादिमें जो प्रीति है यही मृत्युका मुखहै और जो एकान्त स्थान है वह देवताओं के बन्धनका आलय है और अपने जन समूहोंमें जो प्रीति है यही सदैव बांधनेवाली रस्सी है और शुभकर्म करने वाले इस रस्सीको सदैव काटकर मोक्ष प्राप्त करते हैं और पापी इसको नहीं काटते हैं, जो पुरुष मन वचन वाणी और श्राद्धादिक कर्मोंसे जीवोंको नहीं मारता है न किसीको मारनेकी अनुमति देताहै वह धन और जीवनके नाश करनेवाले जीवोंसे नहीं माराजाता है न उनकी समानताको पाताहै, मृत्यु की आनेवाली सेनाको सिवाय सत्य के कोई पराजय नहीं कर सक्ता है यद्यपि सत्य असत्य का नाश करने वाला है तौ भी सब को असत्य का त्यागनाहीयोग्य है और सत्यहीमें मोक्षवर्त्तमान है इसहेतुसे सत्यव्रतका कर नेवाला सत्ययोग में प्रवृत्त गुरू और वेदके वचनोंको प्रमाण माननेवाला

सदैव शान्तचित्त पुरुष उसी सत्यसे मृत्युको भी विजय करसक्ता है देहमें मोक्ष और मृत्यु दोनों वर्त्तमान हैं मोक्ष सत्यसे और मृत्यु असत्य से प्राप्त होती है मैं अहिंसक सत्यवक्ता काम क्रोध रहित सुख दुःख में समान परोपकारी हो हिरण्यगर्भ की समान मृत्युको विजय करूंगा—और देवयान मार्ग में शान्ति यज्ञ के द्वारा प्रीतिमान अर्थात् निवृत्त मार्ग में कुशलहो शान्त चित्त ब्रह्मयज्ञ में नियत उपनिषदों के अर्थ का ज्ञाता मुनियों के वचनोंसे यज्ञकर के चित्त का यज्ञ करने वाला हूंगा—जैसे कि पिशाच अपने देह के त्याग करने से पूजन को करता है उसी प्रकार मुझ सरीखा ज्ञानी विनाशवान् हिंसा युक्त पशुयज्ञों से पूजन करने को योग्य है अर्थात् नहीं है तात्पर्य यह है कि पशु आदि के देह को भी अपनाही देह समझ कर कैसे नाश करूं— जिसका मन वचन सदैव ब्रह्ममें अर्पित हो और तप, त्याग, सत्यभी होय वह ज्ञानी निश्चयकर के ब्रह्मको पाता है —विद्या के समान नेत्र नहीं और सत्य के समान तप नहीं और राग के समान दुःख नहीं और त्याग के समान सुख नहीं है हे पिता जो आश्रमों की परम्परा आपने बर्णन की वह मोक्ष मार्ग में व्यर्थ होती हैं—ब्रह्म में ब्रह्मरूप से उत्पन्न ब्रह्मरूप असन्तान होकर भी ब्रह्मही में उत्पन्न हूंगा सन्तान मेरी मोक्ष वैसी नहीं कर सक्ती है जैसी कि एकांत में स्थित और प्रशंसायुक्त गुरु पूजनादि से होती है - ब्रह्म भाव, सत्यता, शान्तचित्तता, मनवाणी से हिंसा रहित होना, शुद्धभाव इत्यादि से अधिक दूसरा ब्राह्मण का धन नहीं है— इन सब कर्म्मों से पृथक् तुमको धनों से और बांधव स्त्री आदि से क्या प्रयोजन है बुद्धि में स्थित आत्माको खोजो और आप के पिता पितामह आदि कहांगये—भीष्म जी बोले कि हे युधिष्ठिर जैसे इस पुत्र के कहनेके अनुसार उसके पिता ने किया उसी प्रकार तुम भी करो ३६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षद्धर्मे द्वितीयोऽध्यायः २ ॥

## तीसरा अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह आप ने जो कहा कि मोक्ष साधन यज्ञके द्वारा धन से होता है और निर्द्धन लोगों को मोक्ष होना कठिनहै यह सुनकर मुझ को आश्चर्य्य हुआ कि धनी और निर्द्धनी जो अपने शास्त्र के अनुसार कर्म करते हैं उन धनाढ्य लोगों का कौन रूप है और किस प्रकार से सुख दुःख की प्राप्ति होती है और निर्द्धनों को भी दुःख सुख की कैसी प्राप्ती है इसको आप वर्णन कीजिये—भीष्म जी बोले कि इस विषय में एक प्राचीनइतिहासको कहता हूं जिस की इस लोक में शान्त वृत्ति जी-

वनमुक्त सम्पाक ऋषि ने वर्णन किया है कि प्राचीन समय में निर्द्धनता से साधारण वस्त्र धारण किये भोजन की अभिलाषा युक्त प्रतिकूल स्त्री से पीड़ामान संसार से वैराग्यवान् किसी ब्राह्मण ने सम्पाक ऋषि से कहा कि इस संसार में उत्पन्न होनेवाले पुरुष को जन्म से ही नाना प्रकार के दुःख सुख सताते हैं जो कदाचित् दैव सुख दुःखके बीचमें इसको प्राप्त करके एक मार्ग में लेजाय तो ऐसी दशा में दुःख पाके सुखी न होय और न सुखपाकर सुखी होना योग्य है चित्त के आत्मारूप होने से सदैव अनिच्छा युक्त भी इच्छावान् होकर धैर्य्य से योगके भारको उठाकर अपने मोक्ष की समानता में नहीं प्राप्त होता है क्योंकि तुम चित्त के जीतनेवाले नहींहो धनस्त्री आदि से रहित चारों ओर को घूमताहुआ सुख को भोगेगा और वही आनन्दपूर्वक सोता और उठता है और अकिंचनहोकर लोक में सुखरूप मोक्ष के समीप निर्विघ्न रहताहै—शत्रुओं से रहित कल्याण रूप मार्ग कठिनता से प्राप्त होता है परन्तु इच्छावानों को सुगम है इस संसार में अकिंचन सिद्ध वैराग्यवान् ज्ञानी के समान मैं तीनों लोक में किसी को नहीं देखता हूं मैंने ज्ञानियों की अकिंचनता को और राजाओं के राज्य को अच्छे प्रकार से तुला में तोला तो अकिंचनता ही गुणों में राज्य से अधिक हुई अकिंचनता और राज्य में यह बड़ी मुख्यता है कि धनी तो ऐसा भयभीत रहता है मानो मृत्यु के मुख में ही वर्त्तमान है और धन के त्यागने से इस अनिच्छावान् विमुक्तके विघ्न, अग्नि, मृत्यु और चोरआदि प्रकटनहींहोते हैं ऐसीइच्छासे घूमनेवाले शय्यारहित पृथ्वीपर शयनकरनेवाले भुजारूप तकिया रखनेवाले निवृत्त पुरुषको देवतालोग भी अच्छा कहते हैं जो धनवान्, क्रोधवान्, निर्बुद्धि, कुटिलदृष्टि, रूक्ष और पाप मुखपर भृकुटी रखनेवाला दांतोंसे होठोंको काटता क्रोधाग्निसे कठोर बोलनेवालाहोता है वह जो पृथ्वीको भी देनाचाहता है तोभी कौन उसके देखनेकी इच्छाकरेगा जोलक्ष्मीवान्होकर सदैव अज्ञानी को मोहित करताहै उसकेचित्त को लक्ष्मी ऐसे हरलेती है जैसे कि शरदऋतु के बादलको वायु हरलेतीहै तदनन्तर इस धनी को रूप और धनका यह अहंकार होताहै कि मैं बड़ा कुलीनहूं और सिद्धहूं केवल मनुष्यही नहींहूं इनतीनों कारणों से इसकाचित्त असावधानहोता है और उनमें अत्यन्त टक्कर खाया हुआ पिता के संचित धनको खर्चकरके निर्द्धनता से धनआदिकी चोरीको अच्छामानता है उस बेमर्याद अर्थात् जहां तहां चोरी करनेवालेको राजा लोग ऐसे दण्डदेते हैं जैसे कि बहेलिया बाणोंसे मृगको-इसीप्रकारसे इस लोकमें नानाप्रकारकेदैवीदुःख और देहकोस्पर्शकरनेवालेदाहआदि भी मनुष्यको प्राप्तहोतेहैं लोक के धर्मको देहआदिके साथ

तुच्छ करके उन अवश्य होनेवाले दुःखों की चिकित्सा बुद्धिसे करे-बिना त्यागके सुख और मोक्षकीप्राप्ति और निर्भयतापूर्वक शयनको भी नहींकरता है और सबको त्यागकर आनन्दपूर्वक सुखभोगता है यह हस्तिनापुर में सम्पाकनाम ब्राह्मणसे मैंने सुनाहै इससे मैंने भी त्यागहीको उत्तममानाहै२३॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेतृतीयोऽध्यायः ३ ॥

# चौथा अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि जो कर्मकेप्रारम्भकरनेकी इच्छाकरनेवाले पुरुषको धन प्राप्त नहो वह धनकेलोभमें भराहुआ क्याकरके सुखकोपावे—भीष्मजीनेकहा कि हानि लाभ प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठाको समानकर धनआदिके निमित्त परिश्रम करकेसत्यता, वैराग्यता, आदिमें अनिच्छा जिसपुरुषकीहोतीहै वही मनुष्य सुखीहै-बृद्धोंने मोक्षके निमित्त इनपांचपदोंको कहा है यही स्वर्गधर्म्म और सबसे उत्तम सुखमानाहै यहां एक प्राचीनइतिहासको कहते हैं जिसको कि वैराग्यपूर्वकमनकीने कहाहै कि धनके चाहनेवाले बारम्बार आशारहितहोकर मनकीनाम मनुष्यने कुछशेषधनसे छकड़ेमें जोड़नेके योग्यदो तरुणबैलोंको मोललिया तो वह दोनों बछड़े जुयेके लगने में बड़ेसीखेहुये निकले और एक ऊंटको बैठाहुआ देखकर अकस्मात दौड़े तो वह ऊंट महा क्रोधितहोकर उनदोनों बछड़ोंको उनकेकन्धोंके बीचसे उठाकर बड़ीशीघ्रतासे दौड़ा उसपराक्रमी ऊंटसे उठायेहुये उनबछड़ोंको मृतकहुआ देखकर वह मनकीबोलाकि चाहेजैसा श्रद्धावन् कर्म्म करनेवाला चतुर भी मनुष्यहोय परन्तु बिना दैवके दियेहुये धनको कठिनतासे भी नहीं प्राप्तकरसक्ता प्रथम सुभमनोरथ रहित सावधानचित्त और मनोरथ सिद्ध करनेवाले के इसउपद्रवको जो कि बछड़े और ऊंटकेकारण उत्पन्नहुआहै देखो कि कुमार्गकेद्वारा मेरेबछड़े उछल२ कर ऐसे चले थे जैसे कि किसीने दोनों हाथोंसे तालीबजाई और उसमें कौवा दबजाय अर्थात् काकतालीयन्याय होगया कि मेरेप्यारे दोनोंबछड़े मणिके समान ऊंटके कन्धेपरलटकते हैं इसीको मुख्यदैवकहते हैं उसकीनाहीं में कोई उद्योग और पराक्रम नहींहोसक्ता अथवा जो किसीसमयपर उद्योग भी बनपड़े तो वह भी उद्योग दैवाधीनही होजाताहै अर्थात् उद्योगका फल नष्ट होनेपर उद्योग भी प्रारब्ध सेही सिद्ध होता है इस कारण सुखके चाहने वालेको वैराग्यही प्राप्तकरना उचित है क्योंकि अर्थ साधन की आशाका त्यागनेवाला बैराग्यवान् पुरुष आनन्द से सोताहै-गुरुजनकके स्थान से जानेवाले सर्वत्यागी श्री शुकदेवजीने भी कहाहै कि जो पुरुष सब कामनाओं को प्राप्त करे अथवा त्यागकरे ऐसेस्थानमें सबकामनाओंके मिलनेसे उसको

सर्वत्याग ही अधिकहै-प्राचीन समयमें भी किसीने सबकर्म्मोंके प्रारम्भके अन्तको नहीं पायाहै--अज्ञानीका लोभीदेह जीवन में वृद्धिकोपाता है हे इच्छावान् मन तू सबकर्म्मों के प्रारम्भोंको त्यागकर अन्तर्य्य स्वस्थचित्तता को प्राप्तकर बारम्बार छलेजानेसे दुःप्राप्य वैराग्यको प्राप्तकर हे धनके चाहने-वाले मन जो तुझसे मेरानाश न होसकै तो मेरेसाथ इसप्रकार से क्रीड़ा करके मुझको निरर्थक लोभमें संयुक्त मतकर तेराधन बारम्बारमिला और नष्टहुआ अरेमूर्ख तू कभीभी इसधनकी इच्छाको त्यागेगा यहमेरी बड़ी अज्ञानताहै जो मैं तेरा क्रीड़ारूपीमृग बनाहुआहूं क्योंकि इच्छारहित होने पर कभी कोई भी पुरुष दूसरेकी आधीनी नहीं करसक्ता है पहले और दूसरे किसी मनुष्य ने भी इच्छाके अन्तको नहींपाया है इसकारण मैं सबकर्मों के प्रारम्भको त्यागकरके सावधानहोकर जागताहूं हे काम तेरा हृदय बज्रसा कठोर है जो हजारों अनर्थों से ब्याप्तहोकर भी खण्ड खण्ड नहीं होता है मैं तुझको और तेरेअभीष्टको जानताहूं और तेरे प्रियको भी चाहताहुआ भी मैं आत्मामें सुखको नहीं प्राप्तकरसक्ताहूं और तेरेमूलको भी जानताहूं नि-श्चयकरके तू संकल्प से उत्पन्न होताहै मैं जब किसीबातका भी मनोरथ न करूंगा तो तू मूलसमेत नाश होजायगा--धनकी इच्छा सुखदायी नहीं है उसके कारण बड़ीचिन्ता प्राप्तहोती है जब कि धनजाता है तब मृत्यु के स-मान खेदहोता है देहकी प्रीति त्यागनेसे जो दूसरोंके निमित्त धनको नहीं पाता है उससे अधिक क्यादुःख है जो प्राप्तहोनेसे भी तृप्तनहीं होताहै अर्थात् बारम्बार खोजाही करता है धनलोभको ऐसे बढ़ाताहै जैसे कि तृषाको उत्तम गंगाजल यही तृष्णा मेरा नाशकरनेवाली है हे काम मैं सावधानहूं मुझे छोड़दे जो यह इन्द्रीआदिका समूह मेरी देह में वर्त्तमान है वह चाहे इच्छा-नुसाररहै या नष्टहोजाय परन्तु यहां तुमसरीके कामके लोभियों में मेरीप्रीति नहीं है इसकारणसे कामनाको त्यागकरके सत्यवाले सतोगुण में वर्त्तमानहूं और मैं अपने चित्त और देहमें सबजीवोंको देखताहूं और योग में बुद्धिको शास्त्रमें चित्तको और ब्रह्ममें मनको लगाकर राग द्वेष से रहित निरोग सुख पूर्वक बिहारकरूंगा जिससे कि तुम फिर मुझको इसप्रकारके दुःखोंमें संयुक्त न करोगे क्योंकि मुझ तेरेभ्रमायेहुयेको दूसरी गतिनहींहै हे काम तुम लोभ शोक परिश्रम के सदैव उत्पत्ति स्थानहो मैंभी जानताहूं कि धनके नाश में सबसे अधिक दुःखहै निर्धन मनुष्यकी जातिवाले और मित्रलोग भी निन्दा करते हैं बिनाधनके मनुष्य में हजारों अपमान के साथ कठिन दोषहैं धनमें जो सुखका अंशहै,वहभी दुःखमय है धनी पुरुषको चोरलोग नानाप्रकार से भयभीत करके दण्डपूर्बक कष्ट देते हैं यह मैं बहुतकाल से जानताहूं कि धन

की लालसा महादुःखदायी है यह पुरुष जिसजिस कामना में प्रवृत्त होता है उस उसको स्वाधीन करता है--तत्त्वका न जाननेवाला अज्ञानी दुःखसे तृप्त होनेवाला अयोग्य अग्निरूप होताहै तुमसुलभ दुर्लभ दोनोंको नहीं जानते हौ पाताल के समान पूर्ण न होनेवाले तुममुझको दुःखों में डालाचाहतेहौ इससे मैं तुझसे मिलनेके योग्यनहींहूं अबधनक्षय और दैवकी इच्छासे वैराग्यवान् होकर परमनिवृत्तिको प्राप्तकरके कामनाओंकी वासना नहीं करताहूं और यहां बड़े बड़े क्लेशोंको सहकर भी अज्ञानता से ऐसे सचेत नहीं होताहूं मानो धनके नाशसे ठगाहुआ महाभारी तपमें प्रवृत्त अंगोंमें शयन करताहूं हेकाम मैं चित्तकी सबवृत्तियोंको त्यागकरके तुमको सबओरसे त्याग करताहूं सो तुम मुझसे कभी स्नेह मतकरो--मैं अपमान करनेवालों की क्षमा और दुःखदाइयोंको कभी दुःख न देकर सबकेप्यारे बचनोंको कहूंगा और यथालाभ सन्तोष करके तुझ अपने शत्रुको कभी न चाहूंगा वैराग्य, सुख तृप्ति,शांति,सत्य दम क्षमा और सबजीवोंमें दयावान होना इत्यादि गुणोंसे सम्पन्न मुझकोजानो इसहेतुसे मुझ मोक्षकामनावालेको काम लोभक्रोधादि में मत प्रवृत्तकरो क्योंकि मैं सतोगुण में वर्त्तमानहूं और काम लोभसे रहित होकर अब मैं बहुत प्रसन्नहूं और अज्ञान व लोभ के कारण दुःखको कभी न पाऊंगा--जो पुरुष इच्छा आदि को त्यागता है वह सुखीहोता है सदैवकाम केही आधीन होनेवाला पुरुष दुःखही पाता है थोड़े रजोगुणमें प्रवृत्त होकर मनुष्य योगइच्छामें चित्तकोचलाताहै और जो दुःखहै वहकाम क्रोधसेउत्पन्न होनेवाला अमित और निर्लज्जहै मैं ब्रह्ममें ऐसेप्रवेश करताहूं जैसे कि ऊष्म ऋतुमें शीतलता हृदयमें दुःखसेरहित कर्मोंकीनिवृत्तिकोपाकर सिद्ध सुखको प्राप्तहोताहूं लोकमें विषयरूप सुख और स्वर्गसम्बन्धी महाआनन्दहै यहदोनों उससुखके षोड़शांशके भी समाननहींहैं जो कि लोभके नाशसेप्राप्तहोताहै मैं सूक्ष्मदेहसे सातवेंकामको बड़ेशत्रुकेसमान मारकर और अविनाशी ब्रह्मलोकको पाकर राजाकेसमान सुखको भोगूंगा ऐसीबुद्धि वर्त्तमानहोकर मनकीने सबकामनाओंकोत्याग बड़ेब्रह्मानन्दमें प्राप्तहोकर वैराग्यकोपाया और निश्चयकरके बछड़ोंके नाशहोने से कामके मूलको काटकर बड़े सुख को भी पाया ५४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मेचतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

## पांचवां अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि इसस्थानमें इसप्राचीन उपाख्यानकोकहताहूं कि जिसको त्यागवान् राजाजनकने कहाहै कि मेरा पंचकोष लक्षणयुक्तधन अ-

संख्यहै अर्थात् देशकाल बस्तुसेपृथक्है मुझशुद्धआत्मारूपका वहकुछ नहीं है अर्थात् रस्सी में सर्पके समान भ्रांतिके सदृश मुझमें कल्पितहै इसकारण मिथिलापुरीको अग्निमें भस्म होने पर भी मेरी कुछहानि नहींहै इस स्थान पर बोध्यऋषि ने भी यह श्लोक बैराग्यके बिषयमें कहाहै उसको सुनो कि राजाययातिने बैराग्यसे शांतिरूप शास्त्रज्ञ,बोध्यऋषि से पूछा कि हेमहाज्ञानी आंतर्य्यस्वस्थताहोनेकेलिये मुझको उपदेशकरो कि तुम किसज्ञानको बिचार करके शांत और सुखीहोकर विचारतेहो बोध्यऋषिने कहाकि मैं किसीको न उपदेश करताहूं न आज्ञादेताहूं उसके लक्षणोंको कहताहूं उससे अपनेआपही बिचारकरो कि पिंगलानाम वेश्या, कुररनामपच्छी सर्प बनमें भ्रमरकाघूमना बाणबनानेवाला कुमारी यह छः मेरेगुरूहैं और आशा अथवा विषयभोग बड़े प्रबलहैं और बिषयोंका त्यागनाही बड़ासुखहै—पिंगलाबेश्यातो बिषयभोगों को त्यागकर सुखपूर्बक सोतीहै—मांसवाले कुररनाम पक्षीको मांस न खाने वाले पक्षियों से दुःखी देखकर दूसराकुररपच्छी मांसके त्यागनेके द्वारा आ-नन्दसे वृद्धिको पाताहै—घरका बनाना सदैव दुःखदायी है कभी सुखदायी नहींहोता, सर्प दूसरे के बनाये हुये बिलमेंघुसकर आनन्दसे रहताहै, भिक्षा-बृत्ती में लगेहुये मुनिलोग भ्रमरपच्छियों के समान जीवोंसेशत्रुता न रखने के कारण निर्विघ्न रहते हैं बाण बनाने में संलग्न किसी बाणबनानेवाले ने समीप में आये हुये राजाको भी नहीं जाना इसीप्रकार ब्रह्ममें तदाकारहोना चाहिये, बहुत से मनुष्यों में सदैव कलह होती है और दो पुरुषोंका अवश्य बिवाद होता है इसलिये चूड़ी रखदेने वाली कुमारी के समान अकेला ही बिचरूंगा १२॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपंचमोऽध्यायः ५॥

## छठवां अध्याय॥

युधिष्ठिरबोले कि हे ब्रतज्ञ शोकरहित पितामह ज्ञानीलोग किस ब्रतको करके पृथ्वी में विचरें और इससंसारमें मनुष्य किसकर्म्म को करके उत्तमग-तिको पाता है—भीष्मजी बोले कि यहांभी एक प्राचीनइतिहासको कहता हूं जिसमें अजगरबृत्ती मुनिका और प्रह्लादका सम्बाद है—बुद्धिमान राजाप्रह्लाद ने रागद्वेष से रहित किसी दृढ़ चित्त ब्राह्मणसे पूछा कि तुम आत्मनिष्ठ,शुद्ध,मृदु,जितेन्द्रिय,होकर कर्म्मको प्रारम्भ कियेबिना अदोषदृष्टि सत्यबक्ता वाद प्रतिवाद में तत्पर तत्त्वज्ञहोकर भी बालकके समान बिचरते होहानिलाभ में दुःख सुख रहित सदैव तृप्त पुरुषके समान किसीबस्तुको प्रिय अप्रिय न मानकर किसीको अपमान नहींकरते हो और कामादिके वेग से

प्रजाओंके लूटनेसे खेदरहित चित्त धर्म्म, अर्त्थ, कामके कार्य्यों में कूटस्थ के समान दृष्टपड़तेहो उसकूटस्थको सुनिये कि धर्म अर्थमें अनियत काम में भी बर्त्ताव न करनेवाले इंद्रियोंके भी बिषयको अनादर करके भोजन करते हुये साक्षी के समान जीवन मुक्त होकर बिचरते हो और हे ब्रह्ममुनि आपका तत्त्वदर्शन शास्त्र और उसपर अभ्यास करना क्याहै इसको मेरे कल्याण के अर्त्थ शीघ्रतासे कहिये तब उसशास्त्रज्ञ ऋषिने प्रह्लाद से यह सार्त्थक वचन कहे कि हे प्रह्लाद जीवोंकी न्यूनाधिकता और नाशकोबिना कारण के देखो अर्त्थात् मायाके नाश होनेसे और सब दृश्यमान पदार्त्थोंको ब्रह्ममय होनेसे द्वैतता सिद्ध नहीं होती है इसीसे हर्ष बिषाद रहितहूं सब पदार्थ स्वाभाविक प्रकट होकर वर्त्तमान हैं और सब आत्मसत्ता में ही संयुक्तहैं इस हेतुसे किसी संसारी वस्तुको देखकर प्रसन्न नहीं होता और यही जानें कि यह संसार मिथ्या है इस प्रकारसे तत्त्वदर्शी लोग आत्मभावको सिद्धकरके अन्तर दृष्टिसे भी संसार को अनित्य और मिथ्याकहतेहैं हेप्रह्लाद योगसे बियोग प्राप्त होने वाले मनुष्यों को और अन्त में नाशवान् धनके समूहोंको देखो कि मैं इसी कारण से कहीं चित्तको नहीं लगाताहूं—तीनोंगुणों से संयुक्त जीव मृत्तिकासे स्वरूपान्तर होनेवाले घटके समान नाशवान्हैं इस उत्पत्ति नाशके देखने और जाननेवाले ज्ञानीको कोई बात करने के योग्य नहीं है— दूसरे को भी दृष्टिसे इस संसारको नाशवान् ही प्रसिद्धकरते हैं महा समुद्र के जलमें उत्पन्न होनेवाले सब बड़े छोटे देहवाले जीवोंका भी क्रम पूर्वक नाश देखने में आताहै और हे असुरेन्द्र प्रह्लाद पृथ्वीके भी सब स्थावर जंगमजीवों के भी नाशको सब ओर से देखताहूं और अंतरिक्षचारी पक्षियों की भी मृत्युको देखताहूं पराक्रमी जीवोंकी भी मृत्यु नियत समयपर होतीहै और आकाशके छोटे बड़े नक्षत्रों को भी नियत समयपर पतन होते देखताहूं इस प्रकार जीवोंको मृत्यु-बश देखता हुआ सबमें ब्रह्मसत्ता जानकर ज्ञानी होकर आनन्द से सोताहूं और स्वतः मिलनेवाले बड़े ग्रासको भी खाताहूं और कभी बिना भोजन के भी बहुत दिनतक सोताहूं अर्थात् समाधि में वर्त्तमान होताहूं मैं अनेक गुणवाले अन्नोंसे बहुत भोजन फिर थोड़ा २ क्रमसे घटाता हुआ यहां तक कि कुछ भी नहींखाताहूं और इसकी अप्राप्ति में कभी धन खलमांसादि अनेक प्रकारके भोजनोंको भी खाताहूं कभीपलँग पर कभी पृथ्वीपर सोताहूं कभी शय्यामहल में जहां सनसूत्र और कोमल मृगचर्मोंका ओढ़ता बिछाताहूं कभी२ बहुमूल्यबस्त्रों को भी धारण करता हूं दैवइच्छासे प्राप्तहोनेवाले किसीप्रकारके भी वस्त्रोंको त्याग नहीं करता हूं और इसकठिनता से प्राप्तबस्तुको रक्षापूर्वक भी नहीं रखता हूं पवित्रहोकर

इस अजगरव्रतको करताहूं यहव्रत बड़ादृढ़ मृत्युका बिरोधी कल्याणकारी शोकरहित अत्यन्त पवित्र ज्ञानियों करके स्वीकृत अज्ञानियों से असेवित और अस्वीकृत है और बुद्धि में सावधान स्वधर्म से नाश न होने वाला सन्धियोग करने वाला दोनों लोकका जानने वाला भय,मोह, लोभ,राग, द्वेष आदिसे पृथक् इस पवित्र अजगर व्रतको करताहूं जिसमें भोजन पान करने की जो फल आदि वस्तु बिपरीत दशामें प्राप्त देशकालवाली हैं वह नियत नहीं हैं और जो हृदयका सुखरूप बिषयके नानालोभों से सेवन नहीं किया गया है अर्थात् यहकरूं यहकरूं इस लालसासे निरादर युक्त धन न पानेवाले दुःखी मनुष्य को तत्त्वबुद्धी से अच्छे प्रकारसे विचार कर शुद्ध अन्तःकरणसे इस अजगर व्रतको करताहूं इसलोकमें धनके लिये उत्तम अनुत्तम मनुष्योंके आश्रित बहुत प्रकारके दुःखी मनुष्यों को देखकर शान्तचित्तहो सिद्धान्त से इन सुख, दुःख, लाभ, हानि, राग, द्वेष, मृत्यु, जीवनको दैवाधीन देखकर भय राग अहंकारसे रहित धैर्य्यवान् बिचारवान् बुद्धि युक्त श्रेष्ठ फलके पानेवाले अजगर सर्पको देखकर और शयन भोजनके नियम से रहित स्वाभाविकीय शांतचित्तता नियम व्रतमेंदृढ़ सत्यता, पवित्रतायुक्त सब फलों से रहित प्रसन्न ज्ञानी होकर विषय वासनासे पृथक् चित्त जितेन्द्रिय शुद्ध अन्तःकरण होकर इस अजगर व्रतको करताहूं यह अजगर व्रत सब को इस प्रकारसे प्यारा वर्णन करते हैं और बुद्धिमान् कीर्त्तिचाहने वाले पण्डित जो तर्कशास्त्र के ज्ञाता हैं वह भी इस अतर्क्य आत्मतत्त्वको बहुत प्रकार से उत्तम कहते हैं कि यह प्रत्यक्षादि प्रमाणों से निश्चय होने वाला जगत् अज्ञानी मनुष्योंकी ओर से आत्मा से पृथक् मानागया है तो उस जगत्का हेतुकाल गुण देश आदिसे निश्चय न होनेवाला दोषरहित देश से सम्बन्ध रखनेवालाहै उसकोशास्त्रयुक्तियोंसे बिचारकर तृष्णारूपी दोषसेपृथक् होकर मैं मनुष्योंके मध्य में बिचारताहूं—भीष्मजी बोले कि इस लोकमें जो महात्मा ज्ञानी पुरुष राग, भय, लोभ,मोह, क्रोधसे पृथक् होकर इस अजगर व्रतरूप क्रीड़ाको करेगा वह सुख पूर्वक बिहार करेगा ३७॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेपष्ठोऽध्यायः ६॥

## सातवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह अजगर व्रतरूप और आत्मभाव लक्षण वाली प्रतिष्ठा कौनसीहै और भाईबंधु या मणिमन्त्र औषधी आदिकर्म, धन ज्ञान आदिको भी मुझसे कहिये भीष्मजी बोले कि जीवोंकी अहिंसारूप प्रतिष्ठाको ज्ञान समझो इसी ज्ञानको बड़ा लाभकारी लोकमें कल्याण रूप

सत्पुरुषोंने स्वर्गमानाहै ऐश्वर्य्य के नष्ट होनेपर राजाबलि, प्रह्लाद, नमुचि, मंकी आदिने भी ज्ञानसेही मनोरथोंको सिद्धकियाहै उस ज्ञानसे उत्तमकौन पदार्थहै इस स्थान पर उस पुराण कथाको भी कहताहूं जिसमें इन्द्र और काश्यपगोत्री ब्राह्मणका संवाद है किसी अहंकारी धनवान् वैश्यने किसी व्रती काश्यपगोत्री ब्राह्मणको रथकी टक्करसे गिरादिया तबवह गिरकर महा पीड़ामान क्रोधयुक्त हुआ और अधीर होकर बोला कि मैं मरजाऊंगा क्योंकि इस संसारमें विनाधनके जीवन निःप्रयोजनहै उस मरनेकी इच्छा करने वाले मूर्च्छित अचेत लोभी ब्राह्मण शृगालरूप होकर इंद्रने कहा कि सबजीव मात्र और देवता लोग नरयोनि कोहीचाहा करते हैं और नरोंमें भी ब्राह्मण वर्ण को श्रेष्ठ जानते हैं हे काश्यपगोत्री तुम वेदपाठी ब्राह्मण मनुष्यहो इस उत्तम देहको पाकर अज्ञानता से मरने के योग्य हो सब लाभ अहंकारसे संयुक्त हैं अर्थात् वास्तव में सत्य नहीं है यह सत्यश्रुति है तुम सन्तोषी होकर लोभ से ऐसे उत्तम देहका अपमान करतेहो बड़ा आश्चर्य्य है कि जिनके हाथ हैं उनकी यह मनोरथों की सिद्धता देखीजाती है- जैसे कि तुम धनकी इच्छा करते हो उसीप्रकार हम हाथवालों की इच्छा करते हैं क्योंकि हाथ के प्राप्त होने के सिवाय दूसरा कोई विशेष लाभनहीं है हे ब्राह्मण देखो कि हम हाथ के न होने से न तो काँटा निकाल सक्के और न देह में पीड़ा देनेवाले मच्छर मक्खी आदिको मारसक्के हैं हाथ रखने वाले मनुष्य देहमें दंशकरने वाले अनेक दुःखदायी कीटोंको मारते हैं और वर्षाऋतु बरफ और धूपआदिसे अपने को स्थान आदिबनाकर रक्षाकरते हैं औरअन्नवस्त्र शय्या वायु आदिके सुखको भी भोगते हैं और संसारमें पृथ्वी और बैल आदिको स्वाधीन करके भोगते हैं और सवारीमें लातेहैं और अनेक प्रकारके भोग भी हाथों ही के द्वारा अपने स्वाधीन करते हैं हे मुनि जिनके मुखजिह्वा हाथ पैर आदि नहीं होते हैं वही मनुष्य देहके त्यागको करतेहैं तुम इसके योग्य नहीं हो क्योंकि तुम प्रारब्धाधीन न तो शृगालहो न सर्पादिकीड़े न मेंढक न किसी पापयोनि में पैदाहो हे काश्यप इतने पदार्थों के होते भी तुम अधै-र्यता करतेहो तुम सबप्राणियोंमें उत्तम ब्राह्मण होकर क्षमावान् क्योंनहींहोते तुममेरी दशाको देखो कि बिनाहाथोंके यहकीड़े मुझको काटते हैं और कुछ नहीं करसक्का मैं इस अयोग्य देहको भी नहीं त्यागसक्का क्योंकि न जानें इससे भी निकृष्ट कोई पापयोनि में उत्पन्न होजाऊं मैंने पापयोनि में से इस शृगाल देहको पायाहै इससे भी अधिक बहुतसी पापयोनियां हैं--कोई तो जन्मसेही बड़ेसुखी हैं और कोई अत्यन्त दुःखीहैं इस संसार में किसीको सर्वसुख सम्पन्न नहीं देखताहूं मनुष्य धनवान् होनेके पीछे राजा होनेकी

इच्छा करते हैं राज्यसे देवभावको देवभाव से इन्द्रपदको चाहते हैं इससे तुम धनवान् होकर राजपद इन्द्रपद पानेपर भी सन्तोष नहीं करोगे लोभ ऐसा प्यारा है कि उससे कोई तृप्तनहीं होता--जैसा कि तुममें शोकहै वैसेही प्रसन्नता भी है यही दुःखसुख सबमें हैं इसमें बिलापकरना व्यर्थ है अर्थात् अपने उत्तम कुलमें बर्त्तमानहोकर आनन्दसे शोकको दूरकरसक्तेहो सबकर्म और कामनाओं की मूलबुद्धिको और इन्द्रियों के समूहको देहमें स्वाधीन करके ऐसे निर्भय होजाओ जैसे कि मनुष्य पिंजरे में पक्षियोंको बन्दकरके उनके भागजाने आदि नहीं सुनाजाता है क्योंकि वास्तव में एकशिर और दो हाथ होते हैं इनके सिवाय जो हैही नहीं तो उसके काटनेका भय भी नहीं है तात्पर्य्य यहहै कि जो तीनोंकाल में अद्वैत है तो भय भी नहीं है निश्चय है कि अज्ञानी पुरुषकी इच्छाकहीं उत्पन्न नहींहोती है क्योंकि वह स्पर्श और देखने सुननेसे भी प्रकटहोती है तुममद्य और लट्वाकूनाम पक्षी के मांसको स्मरण नहीं करतेहो इनसे अधिक कोई भक्षणकी बस्तु कहीं नहीं है हे काश्यप पहले समयमें जीवोंमें जो दूसरे प्रकारके भोजन बर्त्तमान हुये और जिनको तुमने भोजन नहींकिया उन भोगोंका भी ध्यान तुमको नहींहोता है इसमें संदेह नहीं है कि देहके निर्वाहयोग्य भोजन से अधिक भोजनकरने न छूने और न उसके देखने का जो नियम है वह निस्संदेह पुरुषका कल्याणकारीहै हाथ रखनेवालेपराक्रमी धनीलोगोंकोभी मनुष्योंने हीं स्वाधीनाकियाहै वहलोग बारम्बारके घात और बन्धनसे दुःखको पातेहुये भी निस्संदेह क्रीड़ायुक्तहोकर प्रसन्नहोते हैं तात्पर्य्य यह है कि होतव्यता में दुःखको न माननाचाहिये बहुतसे भुजाओंके बली शास्त्रज्ञ धैर्य्यवान् मनुष्य निन्दितऔरदुःखरूप आजीविकाकोकरतेहैं और दूसरीभी आजीविकाकरनेकी इच्छाकरतेहैं वहभी अपने कर्मानुसारहोतव्यताही गिनीजातीहै देखोम्लेच्छ चांडालभी अपने देहको नहीं त्यागना चाहता है सब अपनी २ योनियों में प्रसन्नहैं हेकाश्यप पक्षाघातसे अयोग्य हाथ रखनेवाले अथवा किसी रोगसे पीड़ामान मनुष्यों से अपनेको सबप्रकार से उत्तम समझो कि तुम देहसे नीरोग सर्वांगधारी उत्तम कुलीन अनिन्दित कलंकरहित बर्त्तमानहो इससे धर्म्म के निमित्तउठो और देहको त्यागनकरो जो तुम मेरे बचनको मानोगे तो विवेकसहित चित्तशुद्धीको पाओगे इससे सावधानहोकर वेदपाठ अग्नि संस्कार सत्यता शान्तता उदारता आदिमें प्रवृत्तहोकर किसीसे ईर्षानकरो-- जो कोई वेदपाठी यजन याजन आदि कर्मोंको करते हैं वह शोचरहित कल्याणके भागीहोते हैं और अनेक उत्तम यज्ञोंको करके सुखपूर्वक बिहार करते हैं शुभनक्षत्र तिथि मुहूर्त्तमें उत्पन्नहोनेवाले मनुष्य सामर्थ्यके अनुसार

यज्ञ दानादि करके सन्तान की इच्छामें उद्योग करते हैं और इसके विपरीत अशुभ नक्षत्रादि में उत्पन्न होनेवाले लोग आसुरी योनि में प्राप्तहोकर यज्ञों से रहितहोते हैं मैंपहिले समयमें पण्डितोंका विरोधी और वेदशास्त्रकी निन्दा करनेवालाथा और अन्वीक्षिकीनाम तर्कविद्या जो सबओरसे पुरुषार्थरहित है उसमें प्रीतिमान् हेतुवचनोंका बोलनेवाला होकर साधुस्वभाव में कारण रूपही वचन बोलताथा और वेदोक्त बचनों के बिरुद्ध कठोर बचन कहने-वाला और वेदबचनों में ब्राह्मणों का उल्लंघन करनेवाला मूर्खता से सब में शंकाकरनेवाला महानास्तिक पण्डिताई में अहंकार करनेवालाथा उसीकर्म के फल से यह शृगालयोनि मुझे प्राप्तहुई है कभी ऐसाभी ईश्वर करेगा कि मैं इस शृगालरूप नीचयोनि से छूटकर मनुष्ययोनि में भी प्राप्तहोजाऊंगा तो मैं यज्ञदान तपसे प्रीतिमान् योग्यायोग्यका ज्ञाता और त्याज्य योग्यको त्यागकरनेवाला होजाऊंगा तब उस आश्चर्य में भरेहुये काश्यपमुनि ने उठकर उससेकहा कि बड़ा आश्चर्य है कि तुम इसयोनि में ऐसे बुद्धिमान् और कुशलहो यहकहकर ध्यानपूर्वक उसको देखा तब देवेन्द्र शचीपति इन्द्रकोजाना और बड़ीविधि से उसका पूजनकिया और पूजापाकर इन्द्र अपने स्थानको गये ५४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तमोऽध्यायः ७ ॥

## आठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि अजगर व्रतकेप्राप्तकरनेमें देहकेअभिमान दूरकरनेकेनि-मित्त ज्ञानही कारणरूपहै और ज्ञान बुद्धिका ऐसारूपान्तरहै जैसा कि दूध से दहीकारूपान्तर होताहै वह समयपर आपही प्राप्तहोजायगा फिर दानयज्ञ से क्याप्रयोजनहै और हे पितामह जो ज्ञानइष्ट और कियाहुआ तप गुरुकीसेवा आदि बुद्धिकीप्राप्तिकेकारणहोतेहैं उनकोभी मेरेअनुष्ठानके योग्यआपकहिये भीष्मजीबोले कि अनर्थयुक्त बुद्धिके कारणचित्तपापमें प्रवृत्तहोताहै और अपने पापकर्म के कारण नरक भोगना पड़ता है पापात्मा दरिद्रीलोग दुर्भिक्ष से दुर्भिक्ष क्लेशसे क्लेश भयसे भय और मरण से मरणको भी भोगते हैं अ-र्थात् बारंबार उनको सहतेहैं और उत्सव से उत्सव स्वर्ग से स्वर्ग और सुखसे सुखको पाते हैं और जो श्रद्धावान् जितेन्द्री शुभकर्मी हैं वह धनवान् हैं— नास्तिक मनुष्य हाथोंमें हथकड़ी पहरे सर्प हाथी आदि से अगम्य मार्ग में चोरोंसे भयभीत होकर जाते हैं इससे अधिक कौनसा दुःखहोगा—जो पुरुष देवता अतिथियों के प्यारे दानी साधुओं के कृपापात्र हैं वह चित्तको जीत कर योगियों के मार्ग में नियत होते हैं वह योगमार्ग विघ्नरहित योग्य दान

के समान है—मनुष्यों में जिनका धर्म्म सुखका कारण नहीं है वह खेतों में गरमीसे पकेहुये अन्नके समान और पक्षियोंमें मच्छरके समान हैं जिसजिस पुरुषने जोजो कर्म पूर्वमें कियेहैं वही उनके साथ रात्रिदिन बने रहते हैं और शीघ्रता से दौड़ने के समय दौड़ते हैं और नियत होनेवाले साथ नियत होते हैं चलने वाले के साथ चलते हुये प्रतिबिम्ब के समान पुरुषके समान होते हैं पूर्व में अपने २ जैसे २ कर्म्म जिसने किये हैं उनको अकेला ही भोगता है ऐसे कर्मवाले लोगोंको काल पुरुष चारों ओरसे खैंचता है और जैसे कि अपनी २ ऋतुके समयफलफूल फूलतेहैं उसीप्रकार कालभी अपने समय को कभी नहीं चूकताहै अर्थात् कर्मका फल समयपर अवश्य होता है— प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा हानि लाभ नाश उदय प्रारब्ध यह बारंबार होनहारके पीछे रूपोंको बदलते हैं गर्भसे लेकर मरण पर्यंत अपनी आत्मासे उत्पन्न होने वाले पिछले देहके सम्बंधसे दुःखसुखको भोगता है बालवृद्ध तरुण कोई हो जो जिस समय जैसा २ कर्म करता है वह उसी २ दशामें अपने कर्म्मोंके शुभ अशुभ कर्म फलोंको भोगता है जैसे कि गौकाबछड़ा हजारों गौओंमें से अपनी माताको पहचानताहै उसी प्रकारसे पिछले जन्मोंका किया हुआ कर्म्म भी कर्त्ताको पहचान लेताहै कीचमें बिगड़ा हुआ वस्त्र जैसे जलसे साफ़होता है इसी प्रकारसे उपवास पूर्व्वक तप करने वालों को अत्यंत सुखकारी मोक्षरूप फलप्राप्त होताहै—तपोबनके बीच बहुत कालतक कियेहुये तपके द्वारा उन धर्म्मोंसे निष्पाप होने वाले पुरुषों के सब मनोरथ ऐसे सिद्धहोते हैं जिस प्रकार आकाशमें पक्षियोंके और जलमें मछलियोंके चरण दृष्टि नहीं पड़ते उसी प्रकारसे ब्रह्मज्ञानियों की भी गति है अर्थात् वह महा पुरुष ब्रह्मलोकके जानेकी इच्छा नहीं करतेहैं किन्तु उनके शुद्धप्राण ब्रह्ममें लयहोजाते हैं—निन्दा पूर्व्वक वचन कहनेके अपराधोंको क्षमा करके कुशलतासे अपने योग्य हितको करना चाहिये अर्थात् उसकर्मके द्वारा सब वासनाओं के उदयसे श्रेष्ठबुद्धि प्रकट होतीहै २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेअष्टमोऽध्यायः ८॥

## नवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह ऊपरके आठ अध्यायों में क्रमसे वर्णन कियाहै कि पूर्वावस्थामें इच्छाको त्याग हिंसारहित परिग्रह भिन्न शुभकर्म्म करने वाला ज्ञानी अजगरी व्रतमें वर्तमान ब्रह्मविद्याका अधिकारी होना और समयपर आत्मतत्त्वका भी वर्णनकर ब्रह्मको अद्वैत प्रतिपादन करके ब्रह्मज्ञानी को ब्रह्म ठहराया फिर कार्य्य कारणके न होनेसे संसारकी उत्पत्ति

को अनहोना मानकर युधिष्ठिरने फिर प्रश्न किया कि हे पितामह यह सब स्थावर जंगम कहांसे उत्पन्न हुये हैं और प्रलयमें किसको प्राप्तहोते हैं इसको आप मुझसे वर्णन कीजिये कि यह सागर आकाश पर्वत बादल पृथ्वी अग्नि वायु समेत संसार किससे उत्पन्न हुआ है जीवोंकी उत्पत्ति और वर्णों का विभाग होकर उनके शौचाशौच धर्म्माधर्म्म विधि किस २ प्रकारसे हुई है और जीवोंका जीवात्मा कैसा है और जो मुक्तहुये वह किसमें लयहुये इसलोक से परलोक पर्य्यन्तका यह वृत्तांत वर्णनकीजिये---भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर एक प्राचीन इतिहासको कहते हैं जिसमें भृगुजीने प्रश्नकरने वाले भारद्वाज ऋषिसे शास्त्रकोवर्णन कियाहै कि भारद्वाजऋषिनेप्रकाशवान् कैलासके शिखरपर महातेजस्वी भृगुमहर्षिको बैठेहुये देखकर यहप्रश्न किया कि यहसागर बादल पर्व्वत आदि अनेक स्थावरजंगम जीवों सहित संसार किससेउत्पन्नहुआहै और पंचतत्त्व कहांसेहुये औरजीवोंकी उत्पत्तिपूर्व्वक वर्णनविभागकैसे और कहांसेहुआहै औरशौचाशौच उनमेंकैसे और कहांसे हुआहै और धर्म्माधर्म्म और जीवोंकाजीव क्याहै और जो मुक्तहुये वह किस में लयहुये और होते हैं यह सब इसलोक से परलोक पर्य्यन्त आप मुझसे वर्णनकीजिये-तब भृगुजीने कहा कि सबसे प्रथम मानस नाम प्रकाश जो महर्षियों से जानागया वह आदि अन्त रहित देव दानवोंसे अभेद्य अजर अमर है और वृद्धि क्षय जन्मादिसे रहित सदैव एकरूप अव्यक्तहोकर प्रसिद्धहै उसीसे जीवोंकी उत्पत्ति और नाशहोताहै तात्पर्य्य यह है कि निर्जीव गुणवाले चैतन्य नहीं होते अर्थात् उसीअव्यक्तदेवने प्रथममहान्तको उत्पन्न किया फिर महान्तसे अहंकारको अहंकारसे आकाशआकाशसे वायु वायुसे अग्नि अग्निसे जल जलसेपृथ्वीको उत्पन्नकिया स्थूलतत्त्ववाले चारप्रकारके जीवोंकी अहंकारसे उत्पत्तिहै जो आकाशादिपांचतत्त्व सबमेंवर्त्तमानहैं वही महातेजस्वीब्रह्मविराट्रूप है जिसके पहाड़अस्थि, पृथ्वी मांसमज्जा, समुद्र रुधिर, आकाश उदर, वायु श्वासा, अग्नितेज, नदीनाड़ियां और अग्नि सूर्य चन्द्रमानेत्र आकाश शिर पृथ्वी दोनोंचरण दिशाभुजा हैं यह अचिन्त्य आत्मा सिद्धोंसे भी कठिनतासे जानाजाताहै और अनन्तनामसे प्रसिद्ध सबजीवमात्रों का आत्मारूप अहंकारमें वर्त्तमान यह विष्णु भगवान् अशुद्ध अंतः करणवालोंसे कष्ट साध्य सबजीवोंके उत्पन्नकरनेके निमित्त अहंकारको उत्पन्न करनेवाले हैं और इसीसे यह विश्वहुआ यहीतेरे प्रश्नका उत्तर है और दूसराप्रश्न जोतेराहै कि संसार किससेउत्पन्नहुआ उसका उत्तरऊपरही दिया है कि विराट्रूपसे उसमें वर्त्तमानहै उसकामिलना नियतस्थानपर है अथवा सबस्थानपरहै इसका उत्तर फिरदेंगे भारद्वाजने कहा कि आकाश दिशा

पृथ्वी वायुइनका क्या परिमाण है इसको भी मूलसमेतवर्णनकीजिये भृगुजी बोले कि सिद्ध देवताओं से सेवित क्रीड़ायोग्य भवनोंसेयुक्त जो यह आकाशहै उसकाअन्त नहीं है जहांतक कि सूर्यकी किरणें जाती हैं उससेऊपर और नीचे सूर्य्य और चन्द्रमा दृष्टि नहींआते वहांपर देवताही अपने तेजों से सूर्य्यकेसमान प्रकाशवान् तेजस्वी अग्निकेसदृश तेजवान् हैं वह तेजस्वी देवता भी इसआकाशके अंतको नहींजानते हैं एकसे एकऊपर अपने २ तेजोंसे प्रकाशवान् लोकोंसे और अनेक देवताओं से यह आकाशव्याप्त है चौड़ाई का भी प्रमाण अनन्त है इसकोसुनो पृथ्वीके अन्तमें समुद्र और समुद्रके अन्तमें अन्धेराहै, अन्धेरे के अन्तमें जल और जल के अन्तमें अग्नि वर्त्तमानहै रसातल के अन्तमें जल और जलके अन्तमें सर्प्पराज उसके अन्तमें फिर आकाश और आकाशके अन्तमें फिर जल है इसप्रकारसे जल रूप भगवान् दीखतेहैं परन्तु जल अग्नि वायु आदि के मंडलकाअंत देवता भी कठिनतासे जानसक्ते हैं अग्नि, वायु, पृथ्वी तल, वरुण आदि आकाश से होते हैं और तत्त्वों के न देखने से विभागको प्राप्तहोते हैं अर्थात् वास्तव में सब आकाशरूप हैं परन्तु मुनिलोग नानाशास्त्रों में इसप्रकार से इस त्रिलोकी का परिमाण सागर समेत कहते और पढ़ते हैं कि जो अदृश्य और अगम्य है उसका क्यापरिमाण कहनाचाहिये जिसके जानने को देवताओं की भी गतिनहीं है वह अनन्त विश्वरूप प्रलयकी दशा में योगनिद्रा करके सबको अपने में लयकरता है फिर जागने के समय वृद्धि कोपाता है अर्थात् आदि अन्त मध्यमें भी एकरूप होकरनहीं है अर्थात् ब्रह्मरूपहै दूसराकौन पुरुषहै जो उसप्रकारके ब्रह्मभावको प्राप्तहोकर जानने के योग्यहो अर्थात् कोईनहींहै क्योंकि मृगतृष्णा केबीच रसरूपजल और स्पर्श को कौन करसक्ताहै तदनन्तर उनके स्थूल सूक्ष्मरूपकी नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्नहुये वही सर्व्वज्ञ मूर्तिमान् धर्म्मरूपप्रभु पहले प्रजापति सर्वोत्तम हैं भारद्वाजजी बोले कि जो ब्रह्माजी कमलसे उत्पन्नहुये हैं तो उनसे पूर्व्वहोने के कारण कमल क्यों नहींबड़ा है और आप ब्रह्माजीकोही सबसे प्रथम उत्पन्न होनेवाला कहते हैं इसमें मुझको सन्देहहै भृगुजीने कहा कि मनुष्य देवकी जो मूर्त्ति है उसने ब्रह्मारूपको प्राप्त किया है उसके आसन विधान के निमित्त पृथ्वीही कमलरूप कहीजाती है उस कमल का जो एक भाग आकाश की ओरको ऊंचा है उसका सुमेरु पर्व्वत नाम है उसके मध्य में वर्त्तमान होकर लोकों के स्वामी ब्रह्माजी जगत् को उत्पन्न करते हैं ३८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मेनवमोऽध्यायः ९ ॥

# दशवां अध्याय ॥

भारद्वाजजी बोले कि हे भृगुजी सुमेरु पर्वतपर वर्त्तमान होकर ब्रह्माजी सृष्टिको किसप्रकार से उत्पन्न करते हैं क्योंकि जीवोंकी उत्पत्ति तो अपने २ वीर्यों से उत्पन्न दृष्टआती है उसमें उसकी क्या ईश्वरता है इसको आप वर्णन कीजिये — भृगुजी बोले कि मानसनाम देवता ने जीवों की रक्षा के निमित्त नानाप्रकार की सृष्टिको मनसे उत्पन्नकिया है अर्थात् वह सत्यसंकल्प है इससे वहां वीर्यकी कुछ आवश्यकता नहीं है प्रथम जलको उत्पन्न किया वहीजल सबजीवों का प्राणरूप है उसीसे सबकी वृद्धिहोती है और उसके बिना सबकानाश होता है उसीसे सबव्याप्त है और पृथ्वी पर्वत मेघ और मूर्त्तिमान् जो अन्य पदार्थ हैं सब उसीजल से उत्पन्नजानो भारद्वाजबोले कि यहजल अग्नि, वायु, पृथ्वीआदि कैसे उत्पन्नहुये हैं इस संदेहको आप निवृत्त कीजिये भृगुजीने उत्तरदिया कि हे ब्राह्मण पूर्वकाल में ब्रह्मकल्प अर्थात ब्रह्मलोक के कल्प के प्रारम्भ में महात्मा ब्रह्मऋषियों के समूह में भी संसारकी उत्पत्ति के बिषयमें बड़ा संदेहहुआथा तब आज्ञाहुईथी कि ध्यानयोगमें बर्त्तमानहोना चाहिये यहसुनकर वह ब्राह्मण हृदय कमलकी ओर ध्यानलगाकर निरोधरूप योगमें नियतहोकर स्थिरहो वायुभक्षणके आधार से दिव्य [illegible] पर्यन्त [illegible]हुये वहां हृदयकमल में हार्दाकाशके द्वारा दिव्यरूप सरस्वतीजी प्रकटहुईं और वेदरूपबाणी उनसबके कानों में पहुंची तो प्रथम हार्दाकाश में गुरूकी युक्तिके द्वारा और स्थूलदेह से भिन्न सूक्ष्म देह के चित्तधारण करने से श्यामरूप अचल अनन्त आकाश जिसमें सूर्य्य चन्द्रमा वायु नहीं है सोताहुआ सा दृष्टआया फिर कुछ अंधकार दूरहोने पर पुरुषको तृष्णायुक्त होनेसे जलकी इच्छाहोतेही जल उत्पन्नहुआ उसके पीछे वायु उत्पन्नहोती ऐसी दृष्टपड़ी जैसे कि बिनाछिद्रका घट बिनाशब्द के देखने में आता है उसपात्रको जलसे पूर्णहोतेही वायु शब्दायमान करती है इसीप्रकार जलसे आकाशपर्य्यन्त व्याप्तहोने से शब्दायमान वायु समुद्रतलको फाड़कर उछलती है और समुद्रकी पूर्णता से उत्पन्न होनेवाला वायु आकाश स्थानको पाकर चारोंओरको घूमता है और कहीं शांतीको नहीं पाताहै फिर उसवायु और जल के बढ़ने से प्रकाशवान् तेजस्वी और पराक्रमी ऊंचीशिखा रखनेवाला अग्नि आकाशको अंधकारसे रहितकरके उत्पन्नहुआ वह अग्नि वायुसे मिलकर जलको आकाशकी ओर उछालताहै और वायु के ही योगसे वह अग्नि बादल रूप होजाता है उस आकाश में जानेवाले जलका जो दूसरा रसनीचे को बर्त्तमान होताहै वह अग्नि वायुसे संयुक्त

होकर पृथ्वीरूप होजाताहै---यहां सबरस गंधादि और जीवोंके उत्पत्ति स्थानको सब वस्तुओंकी उत्पन्न करने वाली पृथ्वी समझो १७॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे दशमोऽध्यायः १० ॥

# ग्यारहवां अध्याय॥

भारद्वाजबोले कि जो यह पांचधातु पंचतत्त्वों में ब्रह्माजीने प्रथम उत्पन्न किये उन्हीं महाभूतोंसे यह सबलोक आच्छादित है इसमें संदेहहै कि जब ब्रह्माजीने हजारोंभूतों को उत्पन्न कियाहै तो केवल पांचही भूतों का होना कैसे सिद्ध हुआ अर्थात् ब्रह्माजी के उत्पन्न किये हुए आकाशादि पंचधातु स्वप्न के समान मध्यवर्त्ती हैं वह अपनी मर्य्यादा से अलग होकर बाहर के लोकोंके ढकनेवाले कैसे होसक्के हैं अर्थात् किसीप्रकारसे नहीं होसक्के भृगुजी बोले कि जो अत्यन्तता से रहित हैं उनके लिये महाशब्द नियत हैं उनसे जीवों की उत्पत्ति होती है इसी कारण वह महाभूत कहे जाते हैं देह की चेष्टा वायु छिद्र आकाश उष्णता अग्नि रुधिरआदि सब जलहैं और मांस अस्थि आदि कठोर वस्तु देह में पृथ्वी है इन हेतुओं से देहपञ्चतत्त्वात्मक कहाजाता है इन प्रकारों से सब स्थावर जंगम जीव पञ्चभूतों से संयुक्तहैं-- श्रोत्र घ्राण रसना स्पर्श दृष्टि आदि सब इन्द्री हैं भारद्वाज बोले कि जो स्थावर जंगम जीव पञ्चभूतात्मकहैं तो स्थावर जीवों में भी पञ्चतत्त्व दृष्ट पड़ते हैं या नहीं उष्णता और चेष्टा से रहित ठोस वृक्षों के देह में पांचधातु मुख्यतासे मिलती हैं वह वृक्ष न देखते हैं न सुनते हैं न गन्ध रस आदि के जानने वालेहैं वह कैसे पञ्चतत्त्वात्मकहैं,जल अग्नि पृथ्वी वायु और आकाश का भाव न होने से वृक्ष पञ्च भूतात्मक नहीं मालूम होते हैं, भृगु जी बोले कि ठोस वृक्षों में भी आकाश निस्सन्देह है क्योंकि सदैव उन में फल फूल प्रकट होतेहैं तात्पर्य्य यह है कि उन में फल फूलों की प्रकटता और रस का होना बिना आकाश के असम्भव है और ऊष्मा से छाल और फल फूल कुम्हलाते हैं और गिरते हैं इस कारण स्पर्शेन्द्री भी उनमें वर्त्तमान है—हवा अग्नि और बिजली के शब्दों से फल फूल गिरते हैं इस कारण उन में श्रवणेन्द्री भी है क्योंकि शब्द के सुनने से ही फल फूलों को गिरते हैं—लता वृक्षों से लिपटती है और सब ओर को जाती है और दृष्टि के बिना मार्ग नहीं है इससे वृक्षादि में चक्षुरिन्द्री भी है उसी प्रकार पवित्र अपवित्र गन्धि और नाना प्रकार की धूपों से ही नीरोग होकर पुष्पित होते हैं इस हेतु से वृक्षों में घ्राणेन्द्री भी वर्त्तमान है जड़ोंसे जल के पीने और रोगों के देखने से और रोगों की चिकित्सा होने से वृक्षों में रसनेन्द्री भी वर्त्तमान है जैसे

कि कमल अपने नाल से ऊपर को जल खींचता है उसी प्रकार वृक्षभी वायु के योगसे अपनी जड़ों के द्वारा जल को पीता है और सुख दुःख होने और खण्डित शाखा उत्पन्न होने से वृक्षों में जीवों को देखता हूं इस निमित्त उन में जड़ता नहीं मालूमहोती उसके पिये हुये जल को वायु और अग्नि पचाती हैं और आहारके रस से कोमलता और अंगों की दृढ़ता प्राप्त होती है सब जंगम जीवों के देहों में पांच धातु पृथक् पृथक् नियत हैं उन्हीं से देहों की चेष्टा होती ही है त्वक् मांस अस्थि गुदा नाड़ी इन पांचोंका एकत्वरूप देह में पृथ्वी है उसी प्रकार देहधारियों की देह में अग्नि, तेज, क्रोध, ऊष्म चक्षु, जठराग्नि यह पांचों अग्नि रूप हैं कान, नाक, मुख हृदय अन्नआदि का कोष, प्राणियों के देह में यह पांचों धातु आकाश तत्त्व से उत्पन्न हैं — कफ, पित्त, पसीना, मज्जा, रुधिर यह पांच प्रकार के जल सदैव प्राणियों के देह में वर्त्तमान होते हैं और प्राणी जैसे प्राण से चेष्टा आदि करता है उसी प्रकार वक्तृत्व शक्तिसे प्राप्त होनेवाले उद्योग को भी करता है, अपान चला करता है समान हृदय में वर्त्तमान है उदान से श्वास लेता है और कण्ठादि स्थान के विभाग से वार्त्तालाप करता है इस संसार में यह पाचों इन्द्रियां देह धारियों में चेष्टा करतीहैं—जीवात्मा घ्राणेन्द्री रूप पृथ्वी से गन्धि के गुणों को जानता है और रसना जल से रस को जानती है और चक्षुरिन्द्री से रूप का ज्ञान होता है स्पर्शेंद्री से वायु के द्वारा स्पर्श का ज्ञान होता है रूप रस गंध स्पर्श शब्द ये आकाशादि पञ्चतत्त्वों के गुण हैं और गंध के गुण जो ब्योरेवार वृद्धों ने वर्णन किये हैं उनको भी विधिपूर्वक कहता हूं कि इष्ट अनिष्ट गंध मधुर कटु निर्हारी सहत स्निग्ध रूक्ष बिशद यह गंध सम्बंधी नवगुण पृथ्वीके हैं—अग्निनेत्रोंसे देखताहै और बायुसे स्पर्शको जानताहै और शब्द स्पर्शरूप रस यह भी गुण पृथ्वी में कहे हैं अर्थात् जो मुख्यपांचगुणहैं उनमें से रसकेगुण मुझसे सुनो उसरसको प्रसिद्धबुद्धी ऋषियोंने अनेक प्रकारसे कहाहै मधुरलवण तीक्ष्ण कषाय अम्लकटु यह जलरूप रस छः प्रकार के हैं और शब्द स्पर्शरूप इन तीनगुणों से युक्त अग्नि कहीजाती है ज्योतिरूप के द्वारा देखने से रूप अनेक प्रकार के हैं-लघु, दीर्घ, स्थूल, चतुष्कोण, सूक्ष्म गोल, श्वेत, कृष्ण, रक्त, नीला, पीला, हरित, कठोर, चिक्कण, स्वच्छ, श्लक्ष्ण, पिच्छल, मृदु, दारुण यह सब गुण अग्नि के हैं और स्पर्शगुण भी बहुत प्रकार काहै उष्ण शीत सुखरूप दुःखरूप स्निग्ध विशद तीक्ष्ण मृदु चिक्कण लघुअति बिस्तृत और बायुके मुख्यगुण शब्द और स्पर्श हैं उन्हींके यह ग्यारहभेद हैं इसी प्रकार आकाश में भी केवल शब्द ही एक गुणहै परन्तु उस एकके भी बहुत भेदोंको कहताहूं खर्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत, पंचम, निषाद

यह आकाश से उत्पन्न होनेवाले सातगुण हैं वह अपने ऐश्वर्य्य अर्थात् व्यापकता से पटहादि बाजों में भी वर्त्तमानहै मृदंग शंख भेरी बादलकी गर्ज्जना रथ जड़ चेतनका भी जो कोईशब्द सुनाजाताहै वह इन्हीं के अंतर्गतमें समझो इसप्रकार से आकाशजन्य शब्द बहुत प्रकारका कहाजाता है इनहवाके गुणों के द्वारा आकाश से उत्पन्न होनेवाला शब्द कहा है इन रुकावटों से रहित हवाकेगुणों से शब्द जानाजाताहै और भित्ति आदिकी रुकावटसे वहशब्द नहीं सुनाईदेता है और छाल आदि बस्तु गोलकरूप इन्द्रियोंकी धातुसे सदैव स्पर्शकोपाते हैं और जल अग्नि बायु यह सदैव देहोंमें जागते हैं यही तीनोंदेहकेमूलहैं और प्राणको आश्रय करके इसलोक में वर्त्तमान हैं ४४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्म्मेएकादशोऽध्यायः ११ ॥

# बारहवां अध्याय ॥

देह और इन्द्रीआदिका पंचतत्त्वरूपहोना वर्णनकिया अब ज्ञान क्रिया शक्तिवाले विज्ञान और प्राणका भी पंचतत्त्वरूप होना वर्णन करते हैं क्योंकि वह चैतन्यआत्मासे पृथक्हैं यह सुनकर भारद्वाजनेकहा कि हे भृगुजी आप इसको सिद्धकरिये कि देहमें निवासकरनेवाली अग्नि पंचभूत रूप देहको पाकरकिसप्रकार से प्रकटहोती है और प्राण भी उस देहको पाकर स्थानभेद से किसरीति से देहको चेष्टित करता है भृगुजीबोले कि हे निष्पाप ब्राह्मण मैं उस हवाकी गतिको तुझसे कहताहूं जो प्राणियों के देहको चेष्टित करतीहै कि अग्नि और चैतन्य बिज्ञान और प्राणोंकी ऐक्यतारूप जीवहै वही सब जीवोंका आत्मा सनातन पुरुष है अर्थात् उपाधि युक्त होनेसे जीव और निरुपाधि होनेमें ब्रह्मरूप है वही जीवोंका चित्त बुद्धि अहंकार और बिषयरूप होजाता है इसप्रकार से वहदेह प्राणसे चेष्टा करताहै और जीवन प्राप्तहोने के पीछे समाननाम वायुसे चेष्टित कियाजाता है वह समानबायु अपनी गति में समानरूप होकर प्राण जठराग्नि में वर्त्तमानहो अन्नको परिपाक कर उसके रसको अपने २ स्थानको पहुंचाताहै और अपानरूप होकर गुदा और शिश्नेन्द्री में प्राप्त होकर मूत्रपुरीष को जारी करता हुआ घूमताहै और उसी प्रकार कण्ठमें रहनेवाला उदान और सबशरीर में फिरनेवाला व्यान भी वर्त्तमान है वह समान वायु से चेष्टित मांस आदिमें व्याप्त जठराग्निरस धातु दोषको बिपरीतरूप करता नियतहोताहै और अपान प्राणके मध्यमें उनदोनोंके योगसे समान प्राप्त करनेवाले प्राणसे क्रोधाग्नि और नाभिमंडल में नियत जो है जठराग्नि वह अन्नआदि को अच्छे प्रकारसे परिपक्व करता है

वह पकाहुआ अन्न इसप्रकारसे शरीर में व्याप्तहोता है कि मुखसे लेकर वायुतक जिसके अन्तमें गुदाइन्द्री है वही प्राणके चलने का मार्ग प्रसिद्धहै उसबड़े मार्गसे दूसरे अन्य प्राणमार्ग उत्पन्न होतेहैं और जीवोंके देहमेंव्याप्त होकर नियतहोते हैं उनमार्गों से सब अंगोंमें प्राणोंके पहुंचने से उनप्राणों समेत घूमनेवाली जठराग्निका भी मेलहोताहै तबवहां ऊष्मासे अग्निजानना योग्यहै वहीदेहधारियोंके अन्नको पचातीहै; प्राणोंके परस्परमें सन्निपातहोने से सन्निपात उत्पन्नहोता है जबअग्निके वेगसे चलनेवाला वायु गुदाकेपास टक्करखाता है तब प्राणऊपरको आकर अग्निको उछालता है तात्पर्य्य यहहै कि प्राणके रोकनेकेद्वारा जठराग्निका भयदूर होता है इससे प्राण रोकने के योग्यहैं क्योंकि जठराग्निके रुकनेसे सब इन्द्रियोंका रुकना होताहै इसको कहते हैं कि पक्व अन्नका स्थान नाभिके नीचे है और कच्चेअन्न का स्थान नाभिकेऊपरहै और देहकी नाभिके मध्यवर्त्ती जठराग्निमेंसबइन्द्रियां वर्त्तमान हैं इसीप्रकार सब रस हृदयसेतिरछे और नीचे ऊपरको चलतेहैं और दशप्राणों सेलगीहुई नाड़ियांअन्नके रसोंको लेजातीहैं यह मुखसे लेकर वायु इन्द्रीतक योगियोंकामार्गहै जिसकेद्वारा उसपरमपदको प्राप्तहोते हैं परिश्रमको विजय करनेवालेजिनसमदर्शी पण्डितोंने सुषुम्ना नाड़ीके मार्गसे मस्तकको पाके वहांआत्माकोनियतकियाहै इसीप्रकार प्राणधारियोंकेप्राण अपाननाम होकर सबमार्गोंमेंप्राणनिरोध रूप योगमें वर्त्तमानहैं इसका अनुष्ठान करनेसेब्रह्मऐसे अच्छेप्रकारसे प्रकाशकरताहै जिसप्रकार थालीमेंरक्खीहुई अग्निहोतीहै १७॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे द्वादशोऽध्यायः १२॥

## तेरहवां अध्याय॥

भारद्वाज बोले कि जो वायुही जीवनमूलहो चेष्टाकरती है श्वासलेती है बोलती है तो जीवनका होना निरर्थक हुआ और जठराग्नि अग्निरूप है और उससेही अन्नपचता है और अग्निही उसको पचानेवाली है इसकारण से भी जीव निरर्थक है जब मृतकदेह में जीवनहीं रहता है तब वायु भी उस को त्यागदेती है और ऊष्माका नाशहोजाता है जो जीव वायुरूपहै अथवा उसवायु से उसकायोग है और वायुमण्डल के समान दृष्टपड़नेवाला है उस दशामें वहजीव हवाओं के साथ प्राप्तहोगा और वायुको प्रधान रखनेवाले इसतत्त्व समूह से उसका योगहै इसकारणसे भी वह इससे पृथक् है और देह के नाशहोनेपर वह इसप्रकार तत्त्वरूप है जैसे कि समुद्रमें तांबा पत्थरआदि गिरने में पत्थर से पृथक् तांबाही जल के ऊपर दृष्टआता है जीव ब्रह्मका अंशहै इससंदेहको निवृत्त करतेहैं कि कूपमें जलडाले और अग्निमें दीपक रक्खे जैसे कि इनदोनोंका नाशहोता है उसीप्रकार यहभी नाशको पाता है

तात्पर्य्य यह है कि देहके नाशहोनेपर ब्रह्ममें प्राप्तहोनेवाले जीवके स्वरूपका नाश ऐसेहोता है जिसप्रकार समुद्रमें नदियों के रूपका नाशहोता है-इस पंचतत्त्वात्मक देहमें जीवकहां से पृथक् है उनपांचोंमें से एकका नाशहोने से जैसे चारोंकी स्थिति नहीं रहती है वैसेही इसजीवका भी नाशहोजाता है तात्पर्य्य यह है कि पंचतत्त्वका समूहही जीव है जो भोजन न करने से शीघ्र नष्टताको प्राप्तहोता है और श्वासरोकने से वायु और वायुस्थानों के रोकने से आकाश नाशको प्राप्तहोता है और भोजन न करने से अग्निका नाशहोता है और नानाप्रकारके रोग और क्लेशोंसे पृथ्वीकी न्यूनता होती है उन्होंमें एकके भी पीड़ामान होनेपर संघात अर्थात् देहके तत्त्वआदि नाशको पाते हैं उन पंचतत्त्व के पृथक् २ होनेपर जीव न सुनता है न चेष्टा करता है न कहता है इससे ज्ञातहुआ कि संघातही जीव है इसकारण परलोकआदि नहीं है तो दानआदि भी करना वृथाहै इसको कहते हैं कि जो इस संकल्प से कियाजाता है कि यह गो मुझपरलोक निवासीको तारेगी यहकहकर जो जीवमरता है वह किसको तारैगी जब गोदान देनेवाला और लेनेवाला दोनों समान हैं वह इसीलोक में नाशको प्राप्तहोते हैं उन्होंका मिलाप कहां होसक्ताहै-पक्षियों के खायेहुये और पर्वतों से गिरेहुये और अग्निसे भस्मीभूतोंका फिर जीवन कहांसे होसक्ताहै जैसे कि जड़से टूटेहुये वृक्षनहीं जमते हैं तो उसके वीजही वृक्षके स्वरूपको धारण करते हैं परन्तु मृतक फिर जन्म नहीं लेताहै सबसे पहले समयमें केवल वीजहीको उत्पन्न कियाथा जिसने कि इस देहरूपको प्राप्तकिया मृतक से मृतक नहींजीते परन्तु वीजसे वीज वर्त्तमान होता है १५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रयोदशोऽध्यायः १३ ॥

# चौदहवां अध्याय ॥

भृगुजीबोले कि जीवका दानका और कर्मका नाशनहीं है सदैवप्राणी दूसरे देहको पाता है और पूर्वदेहका नाशहोता है देहमें वर्त्तमानजीव उस देहके नाशहोने में नाशको नहीं पाताहै जैसे कि काष्ठ के भस्महोजाने से अग्निदृष्ट नहीं पड़ती उसीप्रकार जीवभी देहके नष्टहोनेमें दिखाई नहींदेता तात्पर्य्य यहहै कि केवल दृष्ट न पड़ने से वस्तुका नाशमानना योग्यनहीं है भारद्वाजबोले कि जैसे अग्निका नाशनहीं होता उसीप्रकार उसका भी जैसे नाशनहीं होताहै उसको मैं कहताहूं कि इंधनके जलजानेसे वह अग्निनहीं रहताहै, इससे मैं जानताहूं कि जिसका गवन, रूप और नियत स्थान नहींहै तो इंधनसे पृथक् वह बुझीहुई अग्नि नाशको पातीहै, भृगुजी बोले कि जैसे

काष्ठके भस्म होनेपर अग्नि नहीं मिलती और रक्षा स्थानसे रहित आकाशमें प्राप्त होनेसे कठिनतासे ग्रहण करने के योग्यहै उसी प्रकार देहके त्याग करने पर आकाशके समान बर्त्तमान जीव सूक्ष्मतासे ऐसे नहीं पकड़ा जाताहै जैसे कि काष्ठके अंतर्गत अग्नि को नहीं पकड़सक्के—अग्नि रूप विज्ञान प्राणोंको धारण करता है उसी बिज्ञान रूपको जीवजानना चाहिये-वायुसे नियत रहने वाली अग्नि श्वासके रोकनेसे दृष्टिसे गुप्तताको पाताहै उस शरीराग्नि के गुप्त होनेपर जड़रूप पड़ाहुआ देहपृथ्वी रूपको पाता है उसकीलय रूपस्थान पृथ्वी है उसी प्रकार सब स्थावर जंगम जीवोंकी वायु आकाशके पीछे चलतीहै और उस वायुके पीछे अग्नि चलतीहै उन तीनोंके एक होनेसे दो पृथ्वी पर नियत होतेहैं जहां आकाश है वहां हवाहै और जहां हवाहै वहां अग्नि है वह तीनों दृष्टिसे अलक्ष हैं इस कारण उनका नाश जानना कठिनहै इसी प्रकार जीवभी अरूपहै तो उसका नाशकैसे निश्चय करसक्केहैं भारद्वाज बोले कि हे निष्पाप जो देहोंमें पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाशहैं तो उनमें जीव कैसे लक्षणवाला है इसको आप समझाइये और जो प्राणियोंके देहोंमें पंचभूत रूप पांच बिषयोंसे संयुक्त पंचज्ञानों से चैतन्य जीवहै उसकी मुख्यताको मैं जानना चाहताहूं और मांस मेदा नाड़ी और अस्थियों के समूह वाले देहके नाश होनेपर जो जीवनहीं पाया जाताहै और पंचतत्त्वसे मिलाहुआ देह चैतन्य नहींहै उस दशामें देह और चित्तके खेदमें कौन उसपीड़ाको जानताहै और जोकहते हैं कि जीव सुनता है परंतु वह चित्तके व्याकुल होनेमें कानोंसे नहीं सुनताहै इस कारण जीव निरर्थक है,चित्त संयुक्त सब मनुष्य नेत्रसे दृष्ट पड़ने वाली बस्तुको देखतेहैं और चित्तकी व्याकुलता में देखतीहुई आंखें भी उसको नहीं देखती हैं फिर निद्राके वशीभूत होकर न देखता न सूंघता न सुनता न बोलता न रसके स्पर्श आदिको जानताहै इस देहमें कौन क्रोध करता कौन शोच करता कौन भयकरता कौन प्रसन्न होता कौन इच्छा करता कौन ध्यानकरता कौन शत्रुता करता और कौन बात करताहै भृगुजी बोले कि इस देहमें पंचतत्त्वसे पृथक् कोई बस्तु नहीं है केवल अन्तरात्माही देहकी चेष्टा करताहै वही रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द आदि गुणों को जानता है और पूर्व्व में जो कहआये हैं कि चित्त के व्याकुल होने में नहीं सुनता है उसपर कहते हैं कि पांचगुणयुक्त जो अन्तरात्मा है वह पंचतत्त्वात्मक देह में सब जगह वर्त्तमान है वही इस देहके सुखदुःखों को जानताहै उसके बियोग से देहको कुछज्ञान नहीं होताहै तात्पर्य यह है कि सुषुप्ति और समाधि में चित्त आदि देहमें रहते हैं परन्तु बिना अन्तरात्मा के अपना काम नहीं करसक्तेहैं जब कि रूप

और स्पर्श नहीं होता न अग्निमें उष्णता होतीहै तब अग्निके शान्तहोने और देहके त्यागहोजानेपर अन्तरात्माका नाश नहीं होताहै--अब स्थूलशरीर के नाशको कहकर सूक्ष्म शरीरके नाशको कहते हैं कि यह सब दृश्यमान पदार्थ जलरूप हैं और जल शरीर धारीकी मृत्युहै उन जलरूपों में चित्त सम्बन्धी आत्मा ब्रह्मा आदि सबजीवोंमें लोकका उत्पन्न करने वाला है वही प्रकृतिके गुणोंसे संयुक्त क्षेत्रज्ञ कहलाता है और मायासे रहित होकर परमात्मा कहाजाता है उस आत्माको सब लोकों का सुखरूप जानो वह स्थूल सूक्ष्म शरीरमें ऐसे वर्त्तमान है जैसे कि कमल पर अम्बुकण होताहै,तुमअर्थ वाले परमात्माको सदैव सुखरूप जानो और इन सतोगुण रजोगुण तमोगुण को जीवके गुणजानो तात्पर्य्य यहहै कि आवरण प्रवृत्ति प्रकाश आदिका अभिमानी जो क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्माहै वही परमात्माहै जीवको भोग सामग्री को चैतन्य के साथ रखतेहैं और जो जीवका गुणचेष्टा करताहै उसको सर्वात्माब्रह्म चेष्टा देताहैवह कैसाहै कि क्षेत्रके जाननेवाले ज्ञानी उसको इस जीवसे उत्तम अर्थात् असंसारी कहते हैं उसीमें सातों भवनोंको उत्पन्न करके अपनेसे व्याप्तकिया है यह अज्ञानियों ने मिथ्याकहा है कि देहके नाश में जीवका नाश नहीं है—अर्थात् मृतक होकर जीव दूसरे देहमें प्रवेश करता है उसका देहका त्यागनाही मृत्यु रूपहै परन्तु उसका नाशनहीं है इस प्रकार अज्ञान से ढकाहुआ सबभूतोंमें अर्थात् देह इंद्रियों आदिमें व्याप्त होकर घूमताहै वह तत्त्वदर्शी ज्ञानियों की सूक्ष्म और उत्तम बुद्धिके द्वारा देखाजाताहै रात्रिदिन योगमें आरूढ़ अल्पभोजी शुद्धान्तःकरण ज्ञानी उस अविनाशी आत्माको आत्मा हीमें देखताहै, चित्तकी शुद्धतासे शुभअशुभ कर्मोंको त्यागकर के शुद्धान्तःकरण ज्ञानी आत्मामें नियत होकर आनन्द रूप मोक्षको पाताहै—सबजीवों की देहमें चित्तसे प्रकट होने वाला अग्नि अर्थात् प्रकाशरूप परमात्मा पुरुष जीव कहाजाता है-- यह ब्रह्मसृष्टि ब्रह्मज्ञानके निश्चय करनेके निमित्त प्रकट हुईहै ३१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुर्दशोऽध्यायः १४ ॥

## पन्द्रहवां अध्याय ॥

भृगुजी बोले कि जीवों की उत्पत्ति आदिको कहकर अबवर्णों के बिभागों को कहते हैं यहां पहले कहा है कि चित्त की शुद्धता से मोक्ष को पाता है और चित्त की शुद्धी अपने धर्म का फल है इस कारण भृगुजी ने धर्म का वर्णन करना चाहा और कहा कि पहले ब्रह्माजी ने अपने तेज से सूर्य्याग्नि के समान तेजस्वी ब्रह्मनिष्ठ सनकादिक और मरीचि आदि प्रजापतियोंको

उत्पन्नकिया फिर स्वर्गकी प्राप्ति के लिये प्रभुने सत्य धर्म तप सनातन वेदके आचार शौच आदिको बिचारकिया—तिस पीछे देवता दानव गंधर्व दैत्य असुर महाउरग यक्ष राक्षस नाग पिशाच और मनुष्योंको उत्पन्नकरकेब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र और अन्य जीव समूहोंके जो नाना बर्णहैं उनकोभी पैदाकिया ब्राह्मणका वर्ण श्वेत अर्थात् सतोगुण प्रकाशात्मकजितेंद्री प्रकृति—क्षत्रियोंका बर्णलाल अर्थात् रजोगुण प्रवृत्त्यात्मक शूरता तेजयुक्त प्रकृति—वैश्योंका बर्ण पीला रजोगुण तमोगुणसे मिलाहुआ खेती आदि निकृष्टकर्म करनेवालीप्रकृति—इसीप्रकारसे शूद्रकाबर्णकाला तमोगुणसे आवर्णित आत्मा प्रकाश प्रवृत्ति रहित प्रकृतिवाला उत्पन्नकिया—भारद्वाजने कहा कि जोचारों बर्णकी जातिसे बर्ण बिभागहुआहै वह नहींहै क्योंकि निश्चयकरके सब बर्णों का बर्णसंकर दृष्टआताहै हमसबको काम क्रोध लोभ भय शोक चिन्ता क्षुधा आदिकी पीड़ाहोती है तो किसप्रकारसे बर्णोंका बिभागकियाजाता है, पसीना मूत्र बिष्ठा कफ पित्त रुधिरआदि सबके देहसे गिरते हैं तो कैसे बर्णोंका बिभागजाने पशु बृक्ष पर्वतआदि की जाति अनेक हैं तो इन असंख्य बर्ण रखनेवालोंका निश्चय कहां से होसक्ता है भृगुजीबोले कि बर्णोंका विवेक नहीं है क्योंकि ब्रह्माजीने प्रथम यहसब जगत् ब्राह्मणजातिवालाही उत्पन्न कियाथा फिर अपने अपने कर्मों से बर्णोंकोपाया जो ब्राह्मण कामी भोगी उग्रप्रकृति क्रोधी बिनाबिचार कर्मकरनेवाले धर्मको त्यागकर रजोगुणी हुये वह क्षत्रीवर्ण होगये—जो गौ बृत्ती में नियत रजोगुण तमोगुण से संयुक्त खेती से निर्वाह करनेवाले अपने धर्मको त्यागनेवाले हुये वह वैश्य बर्ण होगये हिंसा मिथ्या से अनुरागी लोभी सबकर्मों से जीविका करनेवाले शोचरहित तमोगुणी हुये वह शूद्रवर्ण में बर्त्तमानहुये इनकर्मों से भी पतित कर्मी ब्राह्मणों ने अन्य अन्य बर्णोंको पाया उनचारों बर्णोंको धर्म्म और क्रियाका करना निषेध नहीं है जिन चारोंबर्णों के लिये ब्रह्माजी ने वेदरूप सरस्वतीको उत्पन्नकिया उन्होंने लोभसे अज्ञानताको पाया अर्थात् शूद्रभाव से वेदके अधिकार से बाहर होगये जो ब्राह्मण वेदोक्त अनुष्ठान में नियत हैं उन वेद धारण करने वाले और सदैव ब्रत नियम करनेवालों का तप नाश को नहीं प्राप्त होता है जो उत्तम वेद को नहीं जानते हैं वह नीच ब्राह्मण हैं उन्हों के अनेक प्रकार के जन्म बहुधा स्थानों में हुआ करते हैं और जो पिशाच राक्षस प्रेत और अनेक प्रकार की म्लेच्छ जाति हैं वह ज्ञान विज्ञान रहित अपनी इच्छाके अनुसार ज्ञान चेष्टारखनेवाले संसारको वेदोक्तकरनेवाली अपने कर्म के निश्चय में प्रवृत्तप्रजा उत्पन्न होतीहैं प्राचीन ऋषियों के तप से दूसरे नवीन ऋषि उत्पन्न किये जाते हैं और जो आदि देव से उत्पन्न

ब्रह्म मूल अविनाशी धर्म में परायण हैं वह मानसी सृष्टि कहीजाती है २०॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपञ्चदशोऽध्याय १५॥

# सोलहवां अध्याय॥

भारद्वाज बोले कि हे ब्राह्मणोत्तम भृगु जी ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र यह चारों वर्ण किस किस कर्म से होते हैं इस को आप कृपा कर के वर्णन कीजिये—भृगु जीने कहा कि जो पुरुष जाति कर्म आदि अड़तालीस संस्कारों से संस्कार कियाहुआ पवित्र वेद पाठ में प्रवृत्त अपने छः कर्मों में सावधान है अर्थात् स्नान, सन्ध्या, जप, होम, देवपूजन, अतिथि पूजन, बलिवैश्वदेव इन छः कर्मों का करनेवाला है—और शौचाचार में वर्त्तमान देवता और ब्राह्मणों से शेष बचे हुये अन्नादि को विधि पूर्वक भोजन करने वाला गुरू में प्रीतिमान सदैव व्रत करनेवाला सत्य धर्म परायण है और जिसमें सत्यता ज्ञान अशत्रुता अहिंसा लज्जा दया तप आदि अनेक उत्तम बातें दृष्ट आती हैं उसको ब्राह्मण कहते हैं—जो हिंसायुक्त युद्ध आदि कर्म को सेवन करता है और वेद पाठ में प्रवृत्त दान देने और राज्य के कर लेने में तत्पर है वही क्षत्री है — जो पशुओं के होनेसे शीघ्र प्रतिष्ठाको पाता है और कृषि दान आदि में श्रद्धावान् पवित्र वेदपाठ में प्रवृत्त है उसको वैश्य कहते हैं—सदैव सब वस्तुओं के भोजन में प्रीतिमान और सब कर्मों का करने वाला अपवित्र वेद त्यागी आचार से रहित है वही शूद्र कहा जाता है—जो ब्राह्मण के गुण शूद्र में दृष्ट पड़ें और ब्राह्मण में वर्त्तमान न हों ऐसी दशा में शूद्र शूद्र नहीं और ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं गिना जायगा — सब युक्तियों से क्रोध लोभ को जीतना और चित्त को चलायमान न करना यही ज्ञान सब ज्ञानों से पवित्र है—कल्याण के नाश में उद्युक्त वह दोनों क्रोध लोभ आत्मा से रोकने के योग्य हैं—सदैव लक्ष्मी को क्रोध से रक्षा करे और तप की मत्सरता से रक्षा करे—विद्या को मानापमान से—आत्मा को अज्ञानता से रक्षा करे हे ब्राह्मण जिसके सब प्रारम्भ कर्म फल से रहित हैं और सब कर्म फल के त्यागरूप अग्नि में होमे गये हैं वह त्यागी और बुद्धिमान् है, सब जीवों की हिंसा न करनेवाला सबकी मित्रता प्राप्तकरे और परिग्रहों को त्याग करके बुद्धि से जितेंद्री हो ऐसे शोक रहित स्थान में वर्त्तमान हो जोकि दोनों लोकों में भय से रहित है—सदैव तप करने वाले शांत चित्त सावधान मन पुत्रादि के स्नेह से विरक्त दुर्विजयको विजयकरने केअभिलाषी मनही से बिचार करनेके योग्यहैं इसप्रकार जीवधारी के अनुष्ठान के योग्य योग को कहते हैं, जो जो इन्द्रियों से ग्रहण किया जाता है

वह व्यक्त अर्थात् मायारूप है यही मर्य्याद है और जो इन्द्रियों से बाहर अन्य कारणों से प्राप्त करने के योग्य है वही अव्यक्त जानने के योग्य है अर्थात् उसका साक्षात्कार होना चाहिये—विश्वास के बिना जो प्राप्त होने के अयोग्य हो तो गुरु आदि के और वेद के बचनों में विश्वासयुक्त होकर उसमें तदाकार होके चित्त को प्राण में और प्राण को ब्रह्ममें धारण करे—वैराग्य से ही निर्वाण मोक्ष होती है क्योंकि निष्पाप ब्राह्मण वैराग्य ही से आनंद रूप ब्रह्मको पाता है अब योग के अधिकारीको कहते हैं उसको सुनो कि जो ब्राह्मण सदैव शौच आदि सत्य आचारवान् सबजीवोंपर दयाकरता है वही ब्राह्मण लक्षण युक्त है १९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मेषोड़शोऽध्यायः १६ ॥

## सत्रहवां अध्याय ॥

भृगु जी बोले कि ब्राह्मण का धर्म श्वेत वर्ण और शूद्रका धर्म्म कृष्णवर्ण यह पूर्वमें कहा अब उन दोनों रूपोंको कहतेहैं कि ब्रह्मका प्राप्त करनेवाला वेद सत्यहै सत्य तपहै सत्यही संसारको उत्पन्न करता है सत्यही लोकों का धारण करनेवालाहै—सत्यसेही स्वर्गकी प्राप्तिहै—मिथ्या अविद्या आदि का रूप है इसी से नरक में पड़ता है अविद्यादि में लिप्त अज्ञान से आच्छादित पुरुष प्रकाश को नहीं देखते हैं यहां स्वर्ग को प्रकाश रूप और नरकको अन्धकार रूप कहाहै और उनदोनों से युक्त तमोगुणको सत्यमिथ्या से मिश्रित कहा है यहदोनों सबसंसारियों को प्राप्तहोते हैं उसमें जो सत्य है वही धर्मरूप प्रकाश है और जो प्रकाश है वहीसत्य है उसमें जो मिथ्या है वह अधर्म है जो अधर्म है वहीतम है जो तम है उसीको अन्धकार कहते हैं ज्ञानी पुरुष इससंसारकी उत्पत्तिको देखतेहुये देह और चित्त के सम्बंधी सुखदुःखों से मोहको नहीं प्राप्तहोते हैं इसस्थानपर ज्ञानीपुरुष तो मोहसे अवश्य निवृत्ती करे क्योंकि इसलोक परलोक में संसारियोंका सुख विनाशवान् है जैसे कि राहुसेग्रसित चन्द्रमा का प्रकाश नहींहोताहै उसीप्रकार अविद्या से निन्दित जीवोंकासुख नाश होताहै अर्थात् गुप्तहोजाता है वह संसारीसुख अनेक प्रकारका कहाजाता है जैसे कि देह और चित्त आदिका सुखहै इसलोक परलोक में प्रकट और अप्रकट फलवाले कर्म सुखकेलिये वेदमें इस प्रकार से कहेगये हैं कि कोईकर्म इसत्रिवर्ग से उत्तम नहीं है क्योंकि उसत्रिवर्गका फल अतिउत्तम है वह आत्माका मुख्यगुणकामन्याय शास्त्रवालों का स्वीकृत और धर्म अर्थ जिसप्रधान सुखके गुणरूपहैं उसीके निमित्त कर्मका प्रारम्भ जाता है इससुखका उदय धर्म्म से है और प्रारम्भ कर्म सब सुखोंके

लिये है—भारद्वाज बोले कि आपने जो यहसुखोंकी उत्तममर्यादा वर्णन की हमउसको स्वीकार नहींकरते क्योंकि इनयोग ऐश्वर्यों में वर्त्तमान ऋषियों काकर्म निष्फल नहीं है, जो कामनाम मुख्यगुणहै उसको वहऋषिलोग नहीं चाहते हैं—सुनाजाता है कि तीनोंलोकों के उत्पन्न करनेवाले प्रभुब्रह्माजी अकेलेहीतपमें प्रवृत्तहोते हैं वह ब्रह्मचारी ब्रह्माजी ईप्सित सुखों में आत्माको नहीं धारण करते हैं और श्रीमहादेवजी ने भी सन्मुख आयेहुये कामदेवको अनङ्गरूपसेही शान्तकिया इससे हमजानते हैं कि इसको महात्माओं ने नहीं स्वीकार किया है क्योंकि उनलोगोंका वह अद्भुत मुख्यगुण नहीं है और ईश्वरमें भी यह गुण नहींपायागया है क्योंकि भगवान् ने आपकहा है कि सुखसे श्रेष्ठनहीं है, लोकोंकाकथन दोप्रकारके फलों का प्रकट करनेवाला है कि अच्छेकर्म से सुख और नष्टकर्म से दुःखप्राप्तहोताहै-भृगुजीबोले कि इस स्थानपर इसबातको निश्चयसमझो कि अज्ञानसे अविद्या प्रकटहुई इसकारण अविद्या में पड़ेहुए मनुष्य अधर्मपरही आरूढ़ होकर धर्मयुक्त कर्म नहींकरते वह निश्चय करके क्रोध लोभ हिंसा मिथ्या आदिसे ठगेहुए इसलोक और परलोकमें सुखको नहींपाते हैं और नानाप्रकारके रोग और पीड़ाओंको भोगते हैं—घात बंधनादिके दुःख और क्षुधा पिपासा परिश्रमादि की पीड़ाओं से दुःखी चित्त वर्षा वायु और शीतोष्णकी न्यूनाधिकता से उत्पन्न होनेवाले भय और देहोंके कष्टोंसे दुःखी होते हैं और बान्धवों के वियोग और धनके नाशहोनेके दुःखों से मन्दादर जरामृत्युसे उत्पन्न अनेक कष्टोंको सहते हैं-जो पुरुष इनाचित्त देहादिके दुःखोंसे अलग रहताहै वह सुखको जानताहै-यहदोष स्वर्गमें नहीं होते हैं वहां पुरुष ऐश्वर्य्यवान्ही रहता है स्वर्ग में बड़ी सुखदायी हवाहै वहां क्षुधा तृषा जरा थकावट और ऊष्मानहीं है केवल सुखही सुख है यह दोनोंदुःख सुख इसी लोकमें हैं नरकदुःखरूप परमपदमोक्ष सुखरूपहै,जैसे कि सबजीवोंकी उत्पन्न करनेवाली अविद्या सब क्लेशोंकीमूलहै वैसेही स्वर्ग में उसीप्रकारकी स्त्रियां हैं और पुरुष ब्रह्माजी हैं जो कि अपनी पुत्रीकेपीछे कामवश होकर दौड़े और शिवजी ने उनका शिरकाटा इसस्थानपर वीर्य्यही तेजरूप है पूर्वसमयमें ब्रह्माजीने इस संसारको उत्पन्नकिया इसके जीवमात्र अपने २ कर्मों में प्रवृत्तहोते हैं तात्पर्य्ययहहै कि मोक्षकासुखसबसे उत्तमहै १६॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे सप्तदशोऽध्यायः १७ ॥

## अठारहवां अध्याय ॥

भारद्वाजबोले कि मोक्षको कठिन जानके चित्तशुद्धीके द्वारा मोक्षकारक पवित्रकर्मोंमें प्रवृत्तहोके जो २ कर्मकरे उनमें दान, धर्म, आचरण, श्रेष्ठतप,

वेदपाठजप—होम आदिका क्याफल है इसको आपकृपाकरके वर्णन कीजिये भृगुजीनेकहा कि होमसेपापदूर होताहै-वेदपाठ और जपसेउत्तमशांति उत्पन्न होतीहै दानसेभोगोंकी अक्षयता होतीहै तपसे स्वर्गकीप्राप्ति है इसलोक और परलोकके निमित्तदानदोप्रकारकाहै कि सत्पुरुषोंकेनिमित्त जोदानदियाजाता है वहतो परलोकमें मिलताहै और नीचोंको जोदान दियाजाताहै उसकाभोग इसलोकमेंभोगताहै जैसा दानहोगा वैसाही फलभीहोगा—भारद्वाज बोले कि किसका कैसा धर्माचरण है धर्मका क्या लक्षणहै और कितने प्रकारका है-- भृगुजी बोले कि जो ज्ञानी अपने धर्मआचरण में प्रवृत्त होतेहैं उनको स्वर्ग फलकीप्राप्ति होतीहै और जोविपरीत आचरणकरताहै वह अज्ञानताको पाता है,भारद्वाजबोले कि हे ब्रह्मर्षिजी प्राचीनसमय में जो यह चारोंआश्रमों का धर्म नियतकिया उनचारों आश्रमों के मुख्य२ आचरणोंको आप कृपाकरके वर्णनकीजिये--भृगुजीने कहा कि लोकके हितकारी ब्रह्माजी ने पूर्वही धर्म की रक्षाकेलिये चारोंआश्रमोंको उपदेश कियेहैं उनमें गुरुकुलको प्रथम आश्रम कहते हैं इसआश्रममें अच्छेप्रकारके शौच व्रत नियम संस्कारआदि से शुद्धअन्तःकरण प्रभृ-तो संध्याओं में सावधान सूर्य अग्नि और देवताओंका [illegible]स्थान करके निद्रा आलस्य अयुक्तियों को त्यागकरके गुरुको [illegible]तकरे फिर वेदके पढ़ने में अर्थका विचारकरना इन सबबातोंसे अन्तःकरणको शुद्धकर तीनों संध्याओं में स्नानकरके ब्रह्मचर्य अग्निसेवन गुरुसेवा और सदैव भिक्षाकरना और भिक्षावस्तुओंको गुरुके अर्पणकरे तदनन्तर अन्तरात्मा से गुरुके उपदेश वचनोंसे कर्ममें प्रवृत्त होकर गुरुकी आज्ञा से वेद पढ़नेमें उद्युक्तहोजाय यहां यहकहाजाता है कि जो द्विज गुरुको अच्छेप्रकारसे पूजनकरके वेदको प्राप्तकरे उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है और अन्तःकरणभी निर्मल होताहै अर्थात् सत्यसंकल्प से सिद्धि प्राप्ति होतीहै गार्हस्थको दूसरा आश्रम कहते हैं अर्थात् उस अच्छेप्रकार से उदयहोनेवाले सब आचारलक्षणको कहते हैं कि गुरुकुलमें निवास करनेवाले श्रेष्ठआचरणी अपनी स्त्रीमें रति और उसको फल पुत्रादि के चाहनेवाले पुरुषोंका गृहस्थाश्रम कहाजाता है उसीमें धर्म अर्थ काम इनतीनोंकी प्राप्ति होतीहै उस त्रिवर्गसाधनको ध्यानकरके निन्दारहित कर्मोंकेद्वारा धनको प्राप्तकरके वेदपाठ या जपसे प्राप्तहोनेवाले या ब्रह्मर्षियों से नियत अथवा खानि से उत्पन्नहोनेवाले मणि सुवर्णआदि या नियमों के द्वारा ईश्वर की कृपासे प्राप्त होनेवाले मुनियों के हव्यकव्यरूपी धनसे वहगृहस्थी गृहस्थधर्म में प्रवृत्त होवे उसीको सबआश्रमों का मूल कहते हैं क्योंकि जो गुरुकुलनिवासी संन्यासी और जो दूसरे संकल्प से व्रत नियम और अनुष्ठान के करनेवाले हैं

उनकी भिक्षाबलि और पुत्रआदि के भागोंका विभाग इसी आश्रम से होता है वानप्रस्थों का धर्म बहुधा धनका त्यागना अथवा फलमूलों का भोजन करना है निश्चय है कि यहलोग साधुवृत्ती सुपथ्यखानेवाले वेदपाठ और जपका अभ्यासकरनेवाले पृथ्वीयात्रामें देशों को पर्यटन करतेहैं उन्हों के समीपजाकर प्रतिष्ठाकरके आदरकरना और उनसे निर्दोषवार्त्ता को कहना योग्य है आनन्द और श्रद्धापूर्वक सामर्थ्य के अनुसार आसन शय्याआदि देना उचित है यहांपर यहधर्म्म उचित है कि जिसका अतिथि घरसे निराशा होकर लौट जाताहै वह अपना पाप उसको देकर और उसकापुण्य आप लेकर जाता है इस गृहस्थाश्रम में यज्ञादिकोंसे देवता भी प्रसन्न होतेहैं तर्पण से पितृ और विद्याभ्यास से ऋषि और सन्तान से प्रजापतिजी प्रसन्नहोते हैं यहांपर यह बातकरना योग्य है कि प्रीति पूर्वक सबजीवों से कानों के सुखदायी वचन कहना योग्यहै और दूसरेका दुःख दूरकरना चाहिये क्योंकि कठोर वचन अपमान, अहंकार, कपट, हिंसाआदि महानिन्दित कर्म हैं और हिंसा न करना सत्यबोलना क्रोध न करना यही सबआश्रमों का तपहै इस प्रीतिधर्म में माला भूषण वस्त्र तैलादिमर्दन सदैव उपभोग नृत्य, कर्ण, रोचक, गीतवाद्य और नेत्रों के सुखरूप दर्शनों की प्राप्ति और भक्ष्य भोज्य चोष्य लेह्य पेयआदि अनेक रसोंका भोजन उपभोग अपने विहारसे सन्तोष और यथेच्छ सुखोंकी प्राप्ति है,जिसके गृहस्थआश्रममें सदैव त्रिवर्गगुणकी सिद्धी है वह इसलोक के श्रेष्ठ सुखोंको भोगकर उत्तमपदवीको पाता है--जो गृहस्थ उंछवृत्ती रखनेवाला अपने धर्म्माचरणमें प्रीतिमान् चित्तकी वृत्तियोंका रोकनेवाला है उसको स्वर्ग की प्राप्ति सुगमता से होती है १८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेऽष्टादशोऽध्यायः १८ ॥

## उन्नीसवां अध्याय ॥

भृगुजी बोले कि बानप्रस्थभी धर्म्मको करतेहुये पवित्र तीर्थ नदी झिरनों पर मृग भैंसा वराह शार्दूल जंगली हाथियोंसे पूर्ण निर्जन बनोंमें तपकरते विचरते हैं, गृहस्थियों के वस्त्र भोजन और उपभोगों के त्याग करनेवाले बनके फल मूल औषधी आदिसे नाना प्रकार के उचित भोजन करने वाले स्थान आसनयुक्त पत्थर पथरीली कंकड़ीली रेतलीआदि पृथ्वीपर सोनेवाले कांस कुशा मृगचर्म और भोजपत्रों के धारण करनेवाले शिर मुंड दाढ़ी मूछ नख और रोमयुक्तदेह समयपर स्नान करके पृथ्वीमें हवनका अनुष्ठान करनेवाले लकड़ी कुशा फूल दक्षिणाके शुद्धकरनेमें विश्राम लेनेवाले शीत उष्ण वर्षा वायुके सहनेवाले नानाप्रकारके नियम उपभोगयुक्त चारोंओरको

घूमना और अनुष्ठान की विधिसे शुष्कमांस रुधिर चर्म्म हस्ति सहित धैर्य्य-मान होकर शेष अवस्थाको व्यतीत करते हैं — ये जो इस ब्रह्मऋषियों के नियत कियेहुये आचार पर चलता है वह अग्नि के समान दोषों को भस्म करके दुःप्राप्य लोकोंको विजय करता है – तदनन्तर संन्यास धर्म्म है उसमें अग्नि धन स्त्री शय्याआदि भोगोंकी सामग्री को त्याग करके आत्मा को निस्संग करके प्रीतिकी फांसियों को काटकर संन्यासी होतेहैं – मिट्टी पत्थर सुवर्ण आदिको समान माननेवाले त्रिवर्गी पुरुषों में बुद्धि न लगाने वाले शत्रु मित्र उदासीन को बराबर देखनेवाले स्थावर जंगम और चारों खानिके जीवोंसे मन वाणी चित्तसे शत्रुता न करनेवाले स्थानरहित पहाड़ पुलिन वृक्ष और देवालय आदिमें बिचरने वाले कार्य्य बशसे ग्राम नगरों में क्रमसे एक रात्रि पंचरात्रि निवास करतेहैं फिर उनग्राम नगरों में प्रवेशकरके प्राणों की रक्षाकेलिये उन द्विजन्माओं के अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री बैश्योंके स्थानोंके समीप निवासकरें जहां रसोई आदि प्रबंध होचुकाहो वहां पात्ररहित भिक्षा-वृत्तिमें काम क्रोध लोभ अहंकार मोह कृपणता कपट निन्दा अभिमान हिंसा आदिसे रहित यह कर्म्म करे कि सब जीवोंको निर्भय करके विचरे और कि-सी स्थान में किसी जीवको उससे भय न हो और वेदपाठ और अग्निहोत्र को अपने शरीरमें नियत करके अपने मुखमें भिक्षासे प्राप्त होनेवाले हव्यों से देहकी अग्निमें आहुतिदे ऐसे अग्निहोत्र करनेवाले मुनियोंके लोकोंको जातेहैं अथवा भिक्षासे मिलनेवाले हव्यों से प्राणाग्निमें हवनकर अग्निके समान प्रकाशित देहमें बर्त्तमान जीवको अपने मुखमें अर्थात् ब्रह्ममें लय करके एकता प्राप्तकरे तो वह अग्निहोत्र का त्यागी ब्रह्मज्ञानियोंके लोकोंको पाताहै जो पवित्र संकल्पसे रहित बुद्धिवाला ब्राह्मण वेदोक्त मोक्ष आश्रम में बिचरताहै वह उसब्रह्मलोकमें जो निरिन्धन अग्निके समान शांतिरूप है प्रवेश करताहै भारद्वाज बोलेकि इसलोकसे परलोक सुनाजाताहै परंतु प्राप्त नहीं होता है मैं उस परमात्मा को साक्षात्कार करना चाहता हूं आप इसके करने के योग्य हैं, भृगु जी बोले कि उत्तरमें हिमवान् महापवित्र सर्वगुण-सम्पन्न है वही परलोक कहा जाता है वह निष्पाप सत्य इच्छा सत्य संकल्प और सब कामनाओं के उपभोग के योग्य परमात्मा रूप है उस स्थान पर समाधि में होकर वह पुरुष जाते हैं जो कि पापकर्म्मों से रहित पवित्र निर्म-ल देह लोभ मोह से विमुक्त और उपद्रवों से रहित हैं, वह देश स्वर्ग के स-मान है उसमें यह शुभगुण वर्त्तमान हैं कि समाधि के समय तो अविनाशी है और रोगों का स्पर्श नहींहै और अनात्मारूप स्त्रियों में लोभरहित आत्मा रूपस्त्री में प्रीतिमान् है निर्जनहै, और परस्परमें पीड़ारहित संकल्पजन्य द्रव्यों

में आश्चर्य्यरहित हैं वहां अनात्मरूप अधर्म्मभी नहीं है, निस्संदेह वहां योग और कर्म्म का कियाहुआ फल प्रत्यक्षमिलताहै खानेपीने की बस्तुओं से पूर्ण आसन आदिसे युक्त महलों के और घरों के रहने वाले सब ईप्सितों से पूर्ण सुवर्णादिके भूषणोंसे भूषित कितनेही पुरुषतो वहांसे लौटआतेहैं और कितने ही योगियों को परमात्मा में सब इच्छाओं का लयकरना प्राप्तहोताहै-अब सामान्य योग का बर्णन करतेहैं कि कितनेही पुरुष तो बड़े परिश्रमसे प्राणों को धारण करते हैं और कितनेही योगरूप ऐश्वर्य्यको पाकर धर्म्म में प्रवृत्त हैं कितनेहीछली हैं अर्थात् बाह्यभोगोंके कारण योगजन्य धर्म्मका नाशकरने वाले हैं इसी कारण से वह धर्म्मात्मा और छली दोनों सुखी दुःखी हैं क्योंकि कोई निर्द्धन कोई धनवान् हैं अर्थात् योग धर्म्म के द्वारा दूसरे के उपकारसे उत्पन्न होनेवाले धर्म्मरूप धनकी वृद्धिकरने वाले हैं और धनके कारण इस लोक में मनुष्यों का परिश्रम भय मोह गृहस्थादि की कठिनता और लोभ पैदाहोते हैं, इसलोक में धर्म्म अधर्म्म के करनेवाले बुद्धिमान् बहुत प्रकारके मनुष्य हैं जो ज्ञानी उनदोनों को जानता है वह पापमें नहीं फँसता है,कपट-युक्त छल, चोरी, निन्दा, दूसरेके गुणों में दोषलगाना,अप्रतिष्ठा,हिंसा, निर्द-यता मिथ्या आदि दोषोंका जो सेवन करता है उसका तपरूपी धर्म्म नाश होता है और जो इनदोषों से रहितहै उसके तपकीवृद्धि होती है, इसलोक में धर्म्म अधर्म्मरूप कर्म्म से बहुत प्रकारकी चिन्ता होतीहैं यह लोककर्म्म भूमि है यहां शुभकाशुभ और अशुभका अशुभ फलहोता है प्राचीन समयमें इसी पृथ्वीपर देवता और ऋषियों समेत ब्रह्माजी ने यज्ञ और तपसे पवित्रहोकर ब्रह्मलोक में बासाकिया यह ब्रह्मलोक पृथ्वीका उत्तम और पवित्रभागहै इस में रहनेवाले मनुष्य जो शुभकर्मोंको करते वह वहांप्रकाशवान् होते हैं और जो बिपरीत कर्म्म करनेवाले हैं वह तिर्य्यक्‌आदि योनिमें महापापोंको भोगते और लोभ मोहमें फँसे इसी संसारमें घूमते हैं और जो जितेन्द्रियहोकर मन वचन देहसे गुरूकी उपासना करते हैं वहीज्ञानीसबलोकोंके मार्गको अर्थात् सगुण निर्गुणब्रह्मको ठीकजानते हैं, यह वेद से प्रकटहोनेवाला धर्म्मका आशय तुमसे वर्णनाकिया कि जो लोकके धर्म अधर्म को जानता है वही बुद्धिमान् है--भीष्मजी बोले कि जबभृगुजी ने भारद्वाजजीको ऐसे उपदेश-पूर्व्वक धर्म्म का वर्णन किया तब भारद्वाजजीने अत्यन्त प्रसन्नहोकर भृगुजी कापूजन किया सो हे महाज्ञानी राजायुधिष्ठिर यहसंसारकी सब उत्पत्ति तुम से कही अब और क्यासुनना चाहता है २७॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोनविंशतितमोऽध्यायः १९॥

---

# बीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिरनेकहा कि हे पितामह आपने आचार योग मिलाहुआ कहा अब कृपा करके स्पष्टतासे ब्यौरेसमेत आचार बुद्धिका वर्णनकीजिये, भीष्मजीबोले कि हे धर्म्मज्ञ तुम मेरे कहनेसे सर्वज्ञताको प्राप्त होकर सुनो कि असन्त दुराचारी दुर्बुद्धी बिना बिचारे कर्म्मकरनेवाले प्रसिद्धहैं और आचार का लक्षण रखनेवाले सन्तलोगहैं अर्थात् उनका स्वरूप आचारही से जाना जाता है जो मनुष्य गोशाला राजमार्ग और अन्नादि में मूत्रपुरीषको नहीं करते हैं वहउत्तम हैं, यह मनुष्योंका आवश्यकधर्म्म है कि आवश्यक बिष्ठा मूत्रको त्यागे और दन्तधावन आदिसे निवृत्तहो आचमन पूर्व्वक नदी आदिमें स्नानकरे फिर देव पितृ मनुष्योंका तर्प्पण करके सूर्य्यका उपस्थान करे और सूर्यके उदय होजानेपर कभी न सोतारहै पूर्वाह्न और सन्ध्याकाल की सन्ध्याकेआदि में सूर्य के प्रकाश में गायत्रीका जपकरे और पूर्व्वाभिमुखहोकर हाथ पैर मुखशुद्धकरके आर्द्रभोजनको मौनहोकरकरे और भोजन की बस्तुकी निन्दा न करे भोजन के पीछे आचमन करके उठे और रात्रिके समय पैरधोकरसोवे, यह आचार लक्षण देवऋषि नारदजीने कहाहै, यज्ञशालाआदि पवित्र देश गौ बैल देवालय चौराहा स्नानकियेहुये ब्राह्मण आदिको मार्ग में मिलनेसे प्रदक्षिणाकरे कुटुम्बसमेत कुटुम्बी का भोजन अतिथि के भोजन के समान समझाजाता है अर्थात् भोजन में न्यूनाधिकता न करनी चाहिये--प्रातःकाल सायंकाल के समय भोजन करना मनुष्यों को वेदोक्त है इसप्रकार से करनेवाला व्रत के फलको पाता है और दोनों समयके मध्यमें भोजन करना वेदमें नहींकहाहै इसीप्रकार से होम के समय होमकरे और ऋतुकाल में अपनीस्त्रीके पासजाय एक स्त्री रखनेवाला ज्ञानी ब्रह्मचारीही कहलाता है ब्राह्मणोंके भोजनसे बचाहुआ अन्न ऐसा प्रशंसनीय है जैसा कि माताकाहृदय हितकारी होताहै उस अन्नकी उपासना सन्त लोग करते हैं इसीसे उनको ब्रह्मकीप्राप्ति होती है अर्थात् आहार की सिद्धी ब्रह्मको प्राप्तकरनेवाली है, यज्ञकीवेदी बनानेके लिये मृत्तिकाखोदना और तृणोंका छेदना चावल निकालनेकेलिये नखोंसे यज्ञके शेषमांस को काटकर खानेवाला सदैव झूठेमुख अमृतपान करनेवाला, फलका चाहनेवाला ब्रह्मको नहीं प्राप्तकरताहै, जो मांस खाना छोड़ाचाहे वह यजुर्वेदके मंत्रों से संस्कारकिये मांसको और असंस्कृत मांसको और श्राद्धसे बचेहुयेमांसको भी नहींखाय अर्थात् हिंसायुक्त कर्म्म न करे अपनेदेशमें या परदेशमें अतिथि को कभीभूखानरक्खे अवश्य भोजनकरावे अन्नआदि श्रेष्ठफलको प्राप्तकरके

गुरू पिता आदि वृद्धोंको भेटकरे और गुरू लोगों को आसन पूजन दण्डवत् करने से कीर्त्ति और लक्ष्मी प्राप्तहोती है उदयकाल के सूर्य्य को और अन्यकी नग्न स्त्री को कभी न देखे और एकान्त में ऋतुकाल सम्बन्धी दिवसों में सदैव स्त्रीसंगकरे—तीर्थों की गुप्त बातगुरुहै और पवित्रवस्तुओंकी गुप्तवस्तु अग्नि है और सत्पुरुषों का किया हुआ सबकर्म उत्तम है और गौ की पुच्छका स्पर्श करना सदैव पुण्यकारी है, सायंकाल प्रातःकाल ब्राह्मणों को दण्डवत् करना शास्त्रका उपदेश है जब देखे तब अच्छा प्रश्नकरे, देव स्थानमें, गौओंके मध्य में, और ब्राह्मणों के वैदिकस्मार्त्त कर्मके अनुष्ठान में और वेदपाठ आदि भोजन कर्ममें यज्ञोपवीत को बायें कन्धेपर रक्खे अर्थात् सव्यरहै जैसे कि दूकानोंकी बेचनेकी वस्तुसाफ और उज्ज्वल होती है और खेतों की खेती नियतकरके अनाजकी वृद्धि कीजातीहै और इन्द्रियोंको उनके ईप्सित विषयोंमें-प्रवृत्त कियाजाताहै उसीप्रकार सायंकाल प्रातःकाल बुद्धि के अनुसार वेदपाठी ब्राह्मणोंके पूजनकी इच्छा करना चाहिये तात्पर्य्य यहहै कि दूकानके देखने आदि के समान ब्राह्मणोंका पूजन प्रत्यक्ष फलवाला है, भोजन कराने में दाता सदैव संपन्न कहाता है और भोजन करनेवाला सुसंपन्न कहाता है उसीप्रकार जल पिलाने में दाता तर्पण और पीनेवाला सुतर्पणहै और तस्मैभोजन करानेमें दाता स्मृत और भोजन करानेवाला सुभृत बोला जाता है उसीप्रकार कृपरान्नके लेनेदेनेमें यवाग्वां बोलना योग्य है हजामत बनवाने में छींकलेने में स्नान पूजनमें ब्राह्मणों को दण्डवत् करना महारोगोंका करनेवाला है—सूर्य्य के सन्मुख मूत्र न करे, अपनी विष्ठाको न देखें, स्त्रीके साथ सोने और भोजन करने को त्यागकरे वृद्धोंका नामलेना अथवा तुम शब्द कहना दोनों न करे छोटे और बराबर वालोंके नाम का लेना वा तुम शब्द कहना दोष नहीं है पाप चलन पुरुषोंके नेत्र आदि का फिरना उनके पापी हृदयको प्रकटकरताहै बड़े मनुष्योंमें प्रत्यक्षपापका छुपाना नाशको करताहै—अज्ञानी पुरुष जानबूझकर कियेहुये पापको छिपाते हैं उस पापको जो मनुष्य नहीं देखते हैं तो देवता अवश्य देखते हैं—पापीका छुपाया हुआ पाप पापीकेही सन्मुख आताहै और धर्मात्मा से गुप्त किया हुआ अधर्म धर्मात्माहीके आगे आताहै, अज्ञानी इसलोकके कियेहुये पाप को स्मरण नहीं करता है वह पापशास्त्रोक्त बातोंके न माननेवाले कर्त्ता पर होताहै जैसे कि राहु चन्द्रमा को घेरता है उसीप्रकार पाप अधर्मीको घेरलेता है आशा से संचय किया हुआ धन दुःख से भोगाजाता है मृत्यु उसको धन के भोगने का समय नहीं देती है और ज्ञानीलोग उसको बुरा कहते हैं, ज्ञानियों ने सबजीवों का धर्ममानसी कहा है अर्थात् जो चित्त से किया

जाय इसकारण सब जीवोंपर चित्तसे दयाकरे अर्थात् सबको निर्भय करे धर्म में किसीकासाथ न करे क्योंकि धर्ममें कोई साथी नहीं है केवल शुद्धबुद्धी से ध्यान योगरूप धर्मको करे इममेंकोई सहायता क्या करेगा धर्महीमनुष्य और देवताओं का उत्पत्तिस्थान है और हृदयाकाशनाम से प्रसिद्ध ब्रह्मलोक में अमृतरूप कैवल्यमोक्ष कारण है और अपूर्व देहकी प्राप्तिमें धर्मसेही उनधर्म करने वालोंको सुखमिलता है ३४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे विंशत्तमोऽध्यायः २० ॥

# इक्कीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हेपितामह जो यह अध्यातम नाम पुरुषका धर्मरूप कर्म इसलोकमें विचाराजाता है उसको आपमुझसे कहिये और यह जड़ चैतन्य रूप विश्वकहांसे उत्पन्नहुआ और प्रलयमें कैसे लय होताहै उसको भी कृपा करके कहिये—भीष्मजी बोले कि हे पांडव जो तुमइस अध्यात्म को मुझसे पूछतेहो उसमहाकल्याणकारी अध्यात्मसुखको तुझसे कहताहूं कि यहब्रह्मज्ञान जिसमें कि उत्पत्ति लयसंयुक्तहै वह आचार्य्योंने दिखायाहै जिसको किपुरुष लोकमें जानकर प्रीतिपूर्वक ब्रह्मानन्दकोपाता है और फलकी सिद्धी होती है वही जीवोंका हितकारीहै—पृथ्वी जल तेज वायु आकाश यह पंचतत्त्व सबजीवोंकी उत्पत्ति और लयके स्थानहैं जिस आनन्द स्वरूपसे पंचभूत उत्पन्नहुये वहबराबर उसीमें लयहोतेहैं वह पंचभूत जरायुजआदि चारोंप्रकारके जीवोंसे ऐसेउत्पन्नहोते हैं जैसे कि समुद्रकीलहरें यहां जरायुजआदिसे आकाश आदि की उत्पत्ति और लयको बर्णनकरके उनका आनन्दरूपहोनाकहाहै और स्वप्न आदि के समान आकाश आदितत्त्वों को कल्पित होना कहा है—जिस प्रकार कछुआ अंगोंको फैलाकर अपने में लयकरलेता है उसी प्रकार से जीवात्मा देहादि प्राप्त करनेवाले तत्त्वोंको फिर आकर्षणकरता है, पंचतत्त्वात्मक जीवों से पंचतत्त्वों की उत्पत्तिकैसे होसक्ती है क्योंकि पुत्रसे पिता की उत्पत्ति नहीं होसक्ती इसके बिषयमें कहते हैं कि ईश्वर ने सबजीवधारियोंमें पंचमहाभूतों को उत्पन्नकिया और पंचभूतोंमें वह अन्तर भी पैदाकिया है जिसको कि देहाभिमानी होकर नहीं देखता है जैसे कि स्वप्नका देखने वाला स्वप्नगत दृष्ट बस्तु को सत्यही जानता है और जागने पर मिथ्यारूप जानताहै इसीप्रकार देहके अभिमान दूरहोनेपर आत्माके सिवाय सब बस्तुओं को मिथ्या समझता है अब इस बातको सिद्धकरते हैं कि जीवही सबकी उत्पत्तिका कारणहै जैसे कि घटकी उत्पत्तिमें मृत्तिका कारणरूपहै इसीप्रकार शब्द श्रवण और देहों के छिद्र यहतीनों आकाश से उत्पन्न होते हैं और

स्पर्शचेष्टा त्वचायहतीनों वायु से पैदाहोते हैं और रूप नेत्र और अन्नादिका परिपाकहोना यहतीन प्रकार तेजसे होते हैं रस, शीतलता, जिह्वा, यह तीनों जलके गुणहैं सूंघने के योग्यबस्तु, घ्राणेन्द्री और देह यहतीनों पृथ्वी के गुणहैं यह पंच महाभूत और छठामन कहाजाताहै सो हे भरतबंशी जो इन्द्रियां कि पंचमहाभूतों में संयुक्त हैं और चित्त उनकी वृत्तीरूप है सातवीं बुद्धि आठवां क्षेत्रज्ञ साक्षी है, पांचों इंद्रियां तो बिषय प्राप्त करने के निमित्त और चित्तसंदेह करनेको बुद्धि निश्चय करनेको और क्षेत्रज्ञ साक्षीकेसमान बर्त्तमान है दोनों चरणों के तलुओंसे शिखातक जो नीचेऊपर दीखताहै वह सब उदर आकाशादि साक्षी चैतन्यसे व्याप्तहोने वाला जानो—इस प्रकार बुद्धि आदि के साक्षीका ब्रह्मभावकहकर इसबुद्धि आदिसे संयुक्त महाभूतोंकी उत्पत्ति कही यह युक्त और श्रुती से बिचार करने के योग्यहै, अब इसबात को कहते हैं कि पुरुषोंको पांचों इंद्रियां और चित्तबुद्धि यहसातो अच्छेप्रकार से जानने के योग्यहैं और जो सतोगुण रजोगुण तमोगुणहैं वह अप्रकटभी उन इन्द्रियों से उत्पन्न होकर उनमेंहीं वर्त्तमान हैं, ज्ञानी मनुष्य बिचारसे इस त्रिगुणात्मक मायाको अथवा बुद्धिको आकाश आदि भूतोंका और जरायुज आदि जीवोंका उत्पत्ति और लयस्थान अच्छेप्रकारसे जानके वैराग्य विवेकके क्रमसे उत्तमसुख अर्थात् ब्रह्मानन्दको प्राप्तहोते हैं अबभूतों के उत्पत्ति और लयके स्थानों को कहते हैं कि तमोगुणसे बुद्धि बारंबार बिषयात्मक कीजातीहै इसकारण बुद्धिही चित्त वा पञ्चेन्द्रीऔर स्थूलसूक्ष्मपञ्चभूतरूपहै उसबुद्धिके नाशहोने में सतोगुण,रजोगुण,तमोगुण,चित्त औरइन्द्रियोंकेविषय आदि कैसेबाकी रहजायँगे-यह जड़ चैतन्यमय जगत् उसीबुद्धिका रूपहै बुद्धिके लय और प्रकटहोनेमें इसप्रकार बुद्धिरूप दिखलायाजाताहै, कि वह बुद्धि जिसकेद्वारा देखती है वहनेत्रहैं और जिससे सुनती है वह कान जिस से सूंघती है वह घ्राण और जिस से रसपीती है वह रसनाकहलाती है और जिससे स्पर्शहोताहै वह त्वक् इन्द्री है, यह बुद्धी भी चिदाभास से संयुक्त होकर कर्त्तापन और कारणपनेको प्राप्त करती है और जब बुद्धिमें कोई इच्छा उत्पन्न होती है तब वह चित्तरूप हो जाती है, बुद्धिके अधिष्ठान पांचप्रकारके हैं उन्हींको भिन्न २ बिषय वाली पांचोंइन्द्री कहते हैं, चैतन्य आत्मा अपनी स्वरूप सत्तामात्र से उन इन्द्रियों को कर्ममें प्रवृत्त करता है, चैतन्य आत्मामें नियत होनेवाले बुद्धि सुख, दुःख, मोह इनतीनों भावोंको पाती है और सुख दुःख मोहमें बर्त्तमान होकर बुद्धि चित्तमें प्रवेश करती है और चित्तकेद्वारा इन्द्रियोंके विषयों में भी प्रवृत्त होतीहै यह सर्वात्मा बुद्धि सुख दुःखादि भावों को उनका आत्मारूप होनेपर भी उल्लंघन करके ऐसे बर्त्तमान होती है जैसे

कि नदियों का स्वामी समुद्र अपनी लहरोंसे बेलाको उल्लंघन करता हुआ बर्त्तमान होता है तात्पर्य्य यह है कि इस प्रकार बुद्धि से उत्पन्न होनेवाले देह इन्द्री, बिषय जो कि योगके द्वारा बुद्धिमें लयहोते हैं उनके संस्कार ब्रह्माकार बुद्धिसे अन्तर्द्धान होतेहैं, आत्माकार वृत्तीवाला बुद्धिके निर्गुण सिद्ध होने पर उसकी दशाको कहते हैं कि सुख आदिभावसे पृथक् होनेवाली बुद्धि चित्तमें सत्तामात्र बर्त्तमान होती है अर्थात् पूर्णज्ञानमें मोक्षरूप सूक्ष्म होती है फिर उत्थान कालपर प्रकट होनेवाला रजोगुण बुद्धिके भाव को प्राप्तहोता है सबका आशययहहै कि जैसे तैलजलरूप होजाता है उसीप्रकार लयहोने वाली बुद्धि रजोगुण रूपी शीतसे तैलके समान फिर सूक्ष्म रूपको प्राप्तहोती है और जबतक प्रारब्ध कर्मका नाश नहीं होता तबतक अबिद्या रूप देहादिकों को प्रकट करती है प्रारब्ध नाशहोने के पीछे कैवल्यमोक्ष प्रत्यक्ष होतीहै तब वह रजोगुण रूप बुद्धि सब इन्द्रियों को कर्ममें प्रवृत्त करती है फिर सतोगुण रूप बुद्धि बिषयोंके मुख्य रूपको पहिंचानती है और तमोगुण से उत्पन्न होने वाला भावरागादि दोषोंमें प्रवृत्त होता है—सतोगुण प्रीति रूप रजोगुण शोक रूप तमोगुण मोहरूप है इसलोक में जो २ भाव शम दमकाम क्रोध, भय, बिषाद आदिहैं वह सब इनतीनों गुणों में बर्त्तमान होतेहैं यहसब बुद्धिकी गतितुमसे कही बुद्धिमान्को सब इन्द्रियां जीतनी योग्यहैं यह तीनों गुण सदैव जीवोंमें रहतेहैं इसीसे सब जीवोंमें तीनहीं प्रकारकी पीड़ा देखने में आती है उसको सात्त्विकी राजसी तामसी बोलते हैं सतोगुण सुख रूप रजोगुण दुःखरूप और यह सुख दुःख तमोगुण से मिलके सुख दुःख रूप नहींहोते किन्तु मोह के करनेवाले होते हैं फिर जो दुःख से मिलाहै और अपनी प्रीतिकरने वाला नहींहै वहां यह जानना चाहिये कि रजोगुण युक्त कर्म हुआ है किसी बातकी चिन्ता न करे अर्थात् दुःखको गिनती में नहीं गिने—यह सात्त्विकी गुण बड़ी कठिनतासे प्राप्तहोते हैं, तृष्णा, दुःख, शोक, लोभ अक्षमा—यह रजोगुण के लक्षणहैं, अपमान, मोह, प्रमाद, अर्थात् भूल स्वप्न, अर्धस्वप्नइत्यादि नानाप्रकार के तमोगुण बड़ी अभाग्यता से उत्पन्न होते हैं दुःप्राप्य बस्तुओं में भी प्राप्तहोने वाला बहुत से बिषयों में एकबारही प्रवृत्त होनेवाला प्रश्नकर्त्ता, और संशयात्मक चित्त, अथवा जिसके चित्तकी वृत्तिरुकगई है वह इसलोक परलोकमें सुखका भोगकरता है—३७ उस सूक्ष्म रूप बुद्धिचल और क्षेत्रज्ञ साक्षीके अंतर को देखो कि उनमें एकतो गुणोंको पैदाकरता है दूसरा नहीं करता है जैसे कि मशक अर्थात् मच्छर और गूलर यहदोनों परस्पर में सदैव एकत्रहोते हैं उसी प्रकार उनबुद्धि और क्षेत्रज्ञ दोनोंका संयोग है वह दोनों स्वभावसे भिन्न सदैव मिलेरहते हैं जैसे कि जलमें

मछली रहती है उसी प्रकार वह दोनों संयुक्त हैं गुणतो आत्माको नहीं जानते परन्तु आत्मा सबगुणों को जानताहै तात्पर्य्य यहहै कि गुण जड़ रूपहैं और आत्मा चैतन्यरूपहै इसीप्रकार पुरुष उनगुण अर्थात् देह अहंकारादिका द्रष्टाहै और उनको अपनेसे भिन्न नहीं मानताहै—वह परमात्मा उन चेष्टाओंसे रहित अज्ञान इन्द्री बुद्धिकेद्वारा दीपकके समान अर्थोंको प्रकाश करताहै—बुद्धिगुणों को उत्पन्न करती है और क्षेत्रज्ञ देखताहै उसबुद्धि और क्षेत्रज्ञका यह प्राचीन सम्बन्ध है,बुद्धि और क्षेत्रज्ञका सम्बन्ध वर्णनमें नहीं आसक्ता इसको कहते हैं कि बुद्धि और क्षेत्रज्ञका कोई आधार नहीं है क्योंकि क्षेत्रज्ञ असंग और निर्गुणहै और बुद्धि मिथ्या और चित्तकी उत्पन्न करनेवाली है उसके जड़ रूप गुणोंको कभी पैदानहीं करती अर्थात् वह गुण अपने कार्य्य समेत सब मिथ्या हैं—अब अध्यास निवृत्तिकी युक्तिको कहते हैं कि जब उस बुद्धिकी इन्द्री को अच्छे प्रकारसे स्वाधीन करता है अथवा रोकता है तब उसका आत्मा ऐसे प्रकाश करता है जैसे कि घटमें प्रज्वलित दीपक होताहै, जो ज्ञानी अपने स्वाभाविक कर्मों को त्याग करके केवल आत्मामें प्रीति रखनेवाला ध्यान शील मुनि होकर सबजीवों का आत्मारूप होता है अर्थात् जो इसप्रकार से जानता है कि मैं ब्रह्महूं वह सर्वरूप होता है और इसीसे उत्तम गति को पाताहै—जैसे कि हंस पक्षी जलमें नहीं भीजताहै उसीप्रकार ज्ञानी देहादि भूतों में घूमता है, इसप्रकार के इस आत्मरूप स्वभाव को अपनी बुद्धि से विचारकर समदर्शी और मित्रता से पृथक् मनुष्य हर्ष शोक रहित होकर बिहार करता है, इसी ज्ञानी की जीवन्मुक्ती को कहते हैं कि जो पुरुष आत्मस्वरूप योग से संयुक्त है वह सदैव गुणों को अपने ऐश्वर्य्य बल से ऐसे उत्पन्न करताहै जैसे कि सूत्रको मकड़ी उत्पन्न करती है वह गुण तारके समान जानने योग्य हैं यह दृष्टांत एकताके निमित्त वर्णन किया इस प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष जिसका देह प्रारब्ध कर्म से बनाहै पूर्व संस्कार के कारण सन्मुख वर्त्तमान गुणों से देखने के समय उत्पत्ति को देखना योग ऐश्वर्य्य आत्मा आदि से अथवा निर्बिकल्प ध्यानसे बर्त्ताव करता है यह तो पूर्वकहा और प्रारब्ध कर्म्म के समाप्त होनेपर गुणघटके समान निबृत्तहोते हैं अथवा रस्सी के सर्पके समान पीड़ादेतेहैं इसबातको बिचारते हैं और नाशरूप होने वाले गुणनिवृत्त नहीं होतेहैं क्योंकि प्रत्यक्ष में निवृत्ती नहीं पाईजाती है वह परोक्ष अनुमान से सिद्धहोती है अर्थात् नानाजीव माननेवाले व्यवहारकी रोकसे निवृत्ती होना नहीं मानतेहैं और दूसरे एकजीव माननेवाले निश्चय करते हैं कि निवृत्ती होजातीहै अर्थात् अपने अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला जो प्रपञ्च है उसके नाश होनेमें अत्यन्त निवृत्ती ऐसे होजाती है,जैसे कि स्वप्न

में दृष्ट आनेवाली वस्तु जागतेही नष्ट होजातीहैं इन दोनों को दिखाकर इन में से एक मतको शास्त्रसे अच्छे प्रकारसे बिचारकर बुद्धिके अनुसार निश्चय करे अर्थात् ध्यानसे साक्षात्कार करे—क्षेत्रज्ञ और बुद्धिके अन्तररूपी हृदय की गांठको खोल अर्थात् दोनोंको एक करके सुख पूर्वक वर्त्तमान होकर संदेहरूपी शोचको न करे—क्षेत्रज्ञ में बुद्धिके धर्म दुःख आदि हैं और बुद्धिमें क्षेत्रज्ञके धर्मदृष्ट पड़ते हैं इससे बुद्धिसे होनेवाला जो अन्तर है उसको त्याग करे जैसे कि मलिन देहवाला मनुष्य पूर्ण नदी में स्नान करने से देह की पवित्रताको पाते हैं उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष इस ज्ञानको प्राप्त करके शुद्धता को प्राप्त होते हैं, जैसे महानदी के पारको जानेवाला अत्यन्त दुःखको पाता है वह मिथ्या नहीं है किन्तु नौका आदिके द्वारा पारको जाताहै उसीप्रकार तत्त्वज्ञान का जाननेवाला ज्ञानसेही संसारको तरताहै जिन्होंने इसप्रकार से हृदयरूपी आकाशके मध्यवर्त्ती बिषयों से पृथक् आत्मा को जाना है वही उत्तम ज्ञानको पाते हैं, सबजीवोंके उत्पत्ति और लयका स्थान ब्रह्मको जान कर धीरे २ सूक्ष्म बुद्धि से बिचारकर जो पुरुष त्यागको करता है वह सुनने और बिचार करने से ध्याननिष्ठ तत्त्वको देखनेवाला और आत्म दर्शन के सिवाय कहीं देखनेकी इच्छा न करनेवाला होता है—अपवित्र मिथ्यावादी मनुष्यों से कठिनता से प्राप्त होनेवाला आत्मदर्शन इन्द्रियों के द्वारा नहीं होसक्ता है इसको जान के ज्ञानी होवे—ज्ञानी का दूसरा लक्षण क्या है अर्थात् कोई नहीं ज्ञानी लोग इसी को जानकर निर्विघ्नता पूर्वक कर्मों से निवृत्त होते हैं अज्ञानियों का जो बड़ा भयकारी संसारी दुःख है उससे ज्ञानियों को भयकभी नहीं होता है—किसी की मोक्ष रूप गति अधिक नहीं है अर्थात् सबकी बराबर है गुणों के स्वीकार और अलंकार से असमानता होती है जो पुरुष कर्म को फल की अनिच्छा से करताहै वह पहले किये हुए पापों को दूरकरताहै पूर्वजन्मके और वर्त्तमान के कर्म उसज्ञानी के अनीप्सित को सबप्रकारसे उत्पन्न नहीं करतेहैं तो यहां अभीष्टको कैसे करेंगे अर्थात् कर्म मोक्षमें कारण रूपनहीं है—काम क्रोध लोभरूप बिषयोंसे जर्जरीरूप लोक को देखनेवाला मनुष्य धिक्कारी देताहै वह निन्दित कर्म उस ब्यसनी को यहां सब योनियों में पैदा करता है—लोकमें अच्छे प्रकार से मिलकर ब्यसनी लोगों को देखो कि पुत्र स्त्रियां आदि के शोचनेवाले हैं और सारासार के विवेक के जाननेवाले और शोकसे रहित पुरुषोंको देखो जिन्होंने सत्पुरुषोंके उनदोनों क्रममुक्ति और सदैव मुक्तियोंको जानाहै६३॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकविंशत्तमोऽध्यायः २१ ॥

# बाईसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर मैं चार प्रकारके ध्यानयोगको तुमसे कहताहूं जिनको कि इसलोक में महर्षि लोग जानकर सनातन मोक्षसिद्धीको पातेहैं, ज्ञानसे तृप्त निर्वाण मोक्ष में शांतचित्त योगी इसप्रकार से ध्यानको करतेहैं जैसे कि अच्छे अनुष्ठानवाले कियाकरतेहैं—हे युधिष्ठिर आत्मरूपमें चारोंओर से नियत होकर संसारी दोषों से रहित पुरुष फिर संसार में नहीं आते हैं, शीतोष्णता के सहनेवाले सदैव प्रकाश में नियत लोभ आदि से रहित और शौच सन्तोषादि कर्म्मों के करनेवाले हैं और जिनके स्थान स्त्री आदिके संगसे और पक्षपातसे रहित और चित्तकी शुद्धी करनेवाले हैं उन स्थानोंपर ध्यानसे मनको लगाकर एकाग्रता प्राप्तकरे और इन्द्रियोंको दमन करके काष्ठके समान वर्त्तमान होजाय—कानसे शब्दको न सुने त्वचा से स्पर्शको न जाने नेत्रसे रूपको न पहिंचाने जिह्वा से रसका आस्वाद न करे और घ्राणसे सबगन्धों को त्यागदे वह पराक्रमी योगी ध्यानसे पांचों इन्द्रियों को दमन करनेवाले इन बिषयों को नहींचाहै तदनन्तर वह ज्ञानी पंचवर्ग्गों को हृदय में रोककर पांचों इन्द्रियों समेत व्याकुल चित्तको आत्मा में लयकरे, ज्ञानीपुरुष प्रथम उस चित्तको जोकि बिषयोंमें घूमनेका अभ्यासी पांच द्वारवाला चेष्टायुक्त बिषयों में भी चेष्टा रहितहै उसको हृदयाकाश में देहादि के अवलम्बन से रहितकरके चारप्रकारके ध्यानमार्ग्गमें धारणकरे—जबयह ज्ञानी चित्त और इन्द्रियोंको पिण्डीभाव करताहै यह पिण्डीकर्म्म मुख्य ध्यानमार्ग है,इसको मैंने तुमसेकहा—उस जीवात्मा के जो चित्त बुद्धि पंचेंद्री समेत सातअंगहैं उनमें छठाअंग जो चित्तहै वह प्रथम रोके जानेसे भी ऐसे चेष्टा करेगा जैसे कि बादल में घूमनेवाली बिजली—और पत्तेपर ठहराहुआ और सब ओर से चलायमान अम्बुकण होता है उसीप्रकार ध्यानमार्ग्ग में नियत होकर चित्तभी चलायमान होताहै वह थोड़े समयतक तो ध्यानमार्ग्ग में वर्त्तमान होताहै फिर नाड़ीमार्ग्ग में जाकर भ्रान्तियुक्त चित्तवायुके समान होजाता है—योग मार्ग्ग में कष्टपानेवालाभी उससे चित्तको न हटावे, और निरालस्य दूसरे की वृद्धिका सहनेवाला होजाय फिर ध्यानयोगका जानने वाला ध्यान के द्वारा चित्तको समाधान करे—प्रथम योगका अनुष्ठान न करने वाले मुनि का बिचार रूपी ध्यान या बिवेक अथवा वितर्क नाम ध्यान प्रारम्भमें अधिकारके भेदसे प्राप्तहोताहै अर्थात् चित्तसेकल्पित सुन्दर पीताम्बर आदिकेरूपमें चित्तका लगाना बीचवालों का बिचारहै वहभी सबिचार और निर्बिचारके नामसे दो प्रकारकाहै, जब शब्दार्थ के लिखने के साथही भक्ति

होतीहै वह उत्तम है और उस शब्दार्थ के बिना जो होतीहै उसमें दूसरा वि-
चार है, सवितर्क और निर्वितर्क नाम दो प्रकार के स्थूलालम्बनमें यहभेद अ-
धम अधिकारियों के योग्यहै—चित्तसे क्लेशपानेवाला मुनि समाधिनिष्ठहो
और उससमाधि से प्रीतिरहित न होकर अपनेहितकोहीकरे जैसे कि धूल भस्म
और गोबर के खात आदिकी मूर्ति जलके योग से जल्दी नहीं बनसक्ती है
परन्तु जैसे कि कुछ दिन पीछे उनमें चिकनाई आदि होने से मूर्ति बनजाती
है इसीप्रकार सवइन्द्रियों को एकरूपकरे और क्रम से उसके अंगों के त्याग
नेसे चित्तरूप करे वह पुरुष अच्छे प्रकार से शांती अर्थात् निर्विकल्पता को
पाता है अर्थात् वितर्क से विचारको पाताहै विचारसे आनन्दको आनन्दसे
समताको समतासे कैवल्यभावको पाताहै यह क्रमयोगशास्त्र में प्रसिद्धहै—
हे युधिष्ठिर इसप्रकार प्रथम बुद्धिवाला आपही चित्त और पांचों इन्द्रियोंको
ध्यानमार्ग्ग में नियतकरता है अर्थात् इनसबको लयकरके सदैवके योग से
आपभी शांतीको पाताहै, नरलोक और देवलोक की किसी पदवीसे उससुख
को नहीं पाताहै जो सुख कि चित्तरोकनेवाले योगी को होता है उस सुखसे
संयुक्त ध्यान कर्म्म में प्रीतिमान् योगी इस प्रकार उसद्वैत से पृथक् कैवल्यरूप
ऐक्यता को पाते हैं २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्वाविंशोऽध्यायः २२ ॥

# तेईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि तुमने चारोंआश्रमों का हितकारी धर्म्मकहा उसीप्रकार
राजधर्म्म आदि अनेक प्रकारके धर्म्मोंके उत्पत्ति स्थान और भिन्नभिन्न प्रकार
के बहुतसे इतिहास वर्णन किये—हे महाज्ञानी आपसे मैंने बहुतसी धर्म्म सं-
बंधी कथाओं को सुना अब मैं आपसे जप करनेवालों की फलकी प्राप्तिको
सुना चाहताहूं कि जप करनेवालोंको क्या फल होताहै और उनका निवास
कहांहोता है और जप करनेवाला पुरुष वेदान्त का विचार करनेवाला है या
योगी और कर्म्म करनेवाला है और यह सांख्य है या योग या क्रिया बुद्धि
है यह क्या ब्रह्मयज्ञकी बुद्धि है यहजप क्या कहाजाता है यह सब मुझ से
कहो मैंने आपको सर्वज्ञ माना है—भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर मैं एक
प्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसमें यमराज कालपुरुष और ब्राह्मण आदि
का प्राचीन वृत्तांतहै—मोक्षदर्शी मुनियों ने जो दोनोंसांख्यऔरयोगकहे उनके
मध्य वेदांत के विषय में तर्कही वर्त्तमानहै अर्थात् संन्यासियोंको जपकी आ
वश्यकता नहीं है वह उपासना के अधिकारसे भी बढ़कर उत्तमपदको प्राप्त
हुये क्योंकि सब वेदवचन ब्रह्ममें नियत शांतरूप वैराग्यसे संयुक्तहैं समदर्शी

मुनियोंने जो सांख्ययोग कहे यह दोनों मार्गभी जपके उपकारी हैं अर्थात् चित्तशुद्धी के द्वारा तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ जाननेसे आलम्बनरूप योग में प्रणवका जप उपकारी है और वह मार्ग्ग जपका उपकारी भी नहीं अर्थात् साक्षात्कार में जपकी आवश्यकता नहीं है हे राजन् जैसे सुनाजाताहै उसी प्रकारसे यहां कहाजाताहै इन दोनों मार्गोंमें भी चित्तका रोकना और इन्द्रियों का जीतना, सत्यता, अग्निसेवा, एकांतवासी महात्माओंका सेवनध्यान, तप, विषयों में दोषदृष्टि होना, दम, क्षमा दूसरे के गुणों में दोष न लगाना अनुकूल भोजन, विषयों का जीतना, मितभाषी, देहेन्द्रीका जीतना, यहप्रवर्त्तक यज्ञ है अर्थात् स्वर्गादिका देनेवाला है, और निवर्त्तक यज्ञ यह है कि जैसे ब्रह्मचारी जपकरनेवाले का कर्म्म समाप्त होताहै अर्थात् मोक्ष प्राप्तहोती है वही निवर्त्तकयज्ञ है उसकी यह रीति है कि चित्तकी जो समाधि ऊपर वर्णन करचुके हैं उसको कर्मके द्वारा फलसे रहितकरे अर्थात् निवृत्तिमार्ग को जोकि गुप्त प्रकट आलंबन का आश्रय न करनेवाला शुद्ध चिन्मात्रहै उसको पाकर नियतहो—अब मार्ग प्राप्तहोने को कहते हैं—कि हृदय कमलसे कुशाके समान जो नाड़ियां निकलकर संपूर्ण देहमें फैली हैं उन प्रकाशात्माओं से भरीहुई नाड़ियों पर बिराजमान आगे ऊपर नीचे और चारोंओर कुशाओं से व्याप्त उसकुशाजालरूप हृदय पिण्डके मध्ययह पुरुष कुशाओंसे ढकाहुआहै अर्थात् दीपकके समान तेजकेद्वारा सम्पूर्णब्रह्मांडमें व्याप्तहै वही सबकाप्रकाश करनेवाला और आत्माहै—चित्तको बाहरके विषयोंसे पृथक्करे और अन्तर्य विषयोंको त्यागकरे चित्तसे जीवब्रह्मकी एकताको प्राप्तकरके चित्तको चित्तमें लय करे क्योंकि चित्त कूटस्थ ब्रह्मका रूपांतर नहींहै और मायामिथ्याहै इस कारण वह इनदोनों में लयनहीं होता है उससमदर्शी बुद्धि से हितकारी संहिता को जपकरताहुआ शुद्ध ब्रह्मको ध्यान करताहै फिर समाधि में नियत होकर वह पुरुष चित्तकी स्थिरता के पीछे उसको भी त्यागकरताहै यहां वह शुद्ध चित्ता विचारसे जितेन्द्री और योगियों की इच्छायुक्त ब्रह्मनाम का रखनेवाला ज्ञानी संहिता बलकी रक्षासे ध्यानको उत्पन्न करता है—राग, मोहसे रहित सुख दुःखादि योगोंसे जुदा वह पुरुष न शोचता है न शान्तचित्त होता है वह कर्म्मों का कर्मफल उत्पन्न करनेवाला नहीं है यही मर्य्याद है—कहीं अहंकार के योगसे चित्त को प्रवृत्त नहींकरे—धनके प्राप्त करने में प्रवृत्त अहंकार युक्त और कर्म रहित न होवे ध्यान क्रिया को उत्तम माननेवाला ध्यानमेंप्रवृत्त और निश्चय रखनेवाला ध्यान के आलम्बनमें समाधिको प्राप्त करके उसको भी क्रम क्रमसे त्याग करताहै उसदशामें वह सबका त्यागकरने वाला अनिच्छा से प्राणोंको त्याग करताहै वह आनन्द रूप ब्रह्ममें प्राप्त

होताहै अर्थात् उसके प्राण पितृयान और देवयानों के द्वारा चेष्टा नहीं करते हैं वह तद्रूप होजाताहै चाहे ब्रह्मरूप सुखका सेवन भी न चाहे तौ भी वह मार्ग्ग में वर्त्तमान ब्रह्मलोककी ओर चेष्टा करता है परन्तु कहीं जन्म नहीं लेता है आत्मारूप बुद्धि से अच्छेप्रकार ब्रह्ममें नियत होकर शान्तरूप जरा मृत्यु से पृथक् रजोगुण रहित अविनाशी आत्माको वह पुरुष प्राप्त करता है २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रयोविंशत्तमोऽध्यायः २३ ॥

# चौबीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह यहां आपने जप करनेवालों की उत्तम गति प्राप्तहोनेका बर्णन किया सो उनकी एकही गतिहै अथवा दूसरी भी कोई गतिहै—भीष्मजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर तुम जपकरनेवालों की उस दूसरी गतिको सावधान चित्तहोकर सुनो जैसे कि वह वहुत प्रकारके नरकों को जाते हैं कि जो जपकरनेवाला पहले कहेहुये वचनोंके अनुसारकर्म नहीं करता है और इसलोकमें अपूर्ण जपका करनेवाला है वह नरकको जाता है, श्रद्धा प्रीति रहित अप्रसन्न चित्तहोकर जपकरनेवाला भी अवश्य नरकको जाताहै अहंकार करनेवाले सबमनुष्य नरकमें जातेहैं, दूसरेका अपमान करने वाले भी नरककोजातेहैं, जो मोहसे भराहुआ मनुष्य चित्तकी इच्छाके अनुसार जप करता है उसकी जिस फलमें प्रीति होती है वह वहां २ उसके भोगने को जन्मलेताहै फिर उन्माद आदिमें वह जप करनेवाला इच्छा करताहै वही उसका नरकहै उससे उद्धार नहीं होताहै उन उन्माद आदि विभूतियों में रागसे मोहित होकर जप करताहै ऐसी दशामें जिसफलकी उसको इच्छा होती है वहां उसका फलभोगने के लिये जन्म लेता है—दुष्टभोगों में बुद्धि लगानेवाला और भोगोंके परिणामवाले दुःखोंका न जाननेवाला चलायमान चित्तहोता है और चलायमान गतिको पाता है अर्थात् नरकको जाता है अज्ञानी बालक जप करनेवाला मोहको पाताहै और उस मोहसे नरकको जाताहै वहां जाकर शोचकरता है मैं करताहूं इस प्रकार जो दृढ़ग्राही जापक जप करताहै और वैराग्यवान् नहीं है परन्तु वहुतसे भोगोंको त्यागकियेहुये है—वह नरककोजाताहै, युधिष्ठिर बोले कि जो स्वाभाविक चित्तवृत्ति से रहित ब्रह्म में स्थित है ऐसा जापक किस प्रकार देह के साथ ब्रह्म में प्रवेश करताहै भीष्मजी बोले कि काम से ढकीहुई बुद्धि के कारण बहुत नरक और उस बुद्धि से सम्बन्ध रखनेवाले दोषरागादिक और उत्तम जपका करना यह सब वर्णन किये १३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेचतुर्विंशोऽध्यायः २४ ॥

# पच्चीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह जप करनेवाला किस प्रकार नरकको जाताहै इस मेरे चित्तके शोकको आप दूरकरिये—भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर तुम धर्म्मके अंशसे उत्पन्न और स्वभावसे धर्म्मनिष्ठहो तुम सावधान होकरमेरे कहेहुये वचनोंकोसुनों—कि यह जो परमउत्तम देवताओंके उत्तमस्थान नाना वर्णोंके निवासरूप अनेकफलोंके देनेवालेहैंऔर वैसेही दिव्यकामचारी विमान और सभाहैं औरक्रीड़ाके उद्यान आदिमें सुवर्ण सदृश कमलशोभित हैं और चारों लोकपाल शुक्र, बृहस्पति, मरुद्गण, विश्वेदेवा, साध्यगण, अश्विनीकुमार, रुद्र सूर्य, अष्टवसु, इसी प्रकार दूसरे देवताओं के जो लोकहैं वह सब परमात्मा से पृथक् स्थान होने से नरकरूप हैं, परमात्मा का परमधाम तो निर्भय अविनाशी स्वभाव सिद्ध दोष रहित बाह्याभ्यन्तरसे शुद्ध आनन्दमय कालरूप ब्रह्म और स्वर्ग आदि का ईश्वर है शुद्ध आत्मारूप को पानेवाला ज्ञानी उस ब्रह्मरूप स्थान को पाकर शोच से रहित होता है परमधाम ऐसा है और वह नरक वैसे हैं—यह सब नरक ठीक २ तुम से कहेगये इस लोक में उस परमधाम की अपेक्षा सब नरक रूप हैं ११ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेपंचविंशोऽध्यायः २५ ॥

# छब्बीसवां अध्याय ॥

जप करनेवाले के स्वाधीन यमराज आदि होते हैं वह आप समेत दूसरों को तारताहै उसको सत्यता आदिकी रक्षा करनी योग्य है और छल आदि भी त्याग करने योग्य हैं इन बातों को दो अध्यायों में वर्णन करेंगे युधिष्ठिर ने कहा कि आपने पूर्व्व में कालमृत्यु, यमराज राजा इक्ष्वाकु और ब्राह्मण का सम्बाद वर्णन किया सो इसके भी कहने को आप सामर्थ्य हैं—भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहासको कहताहूं इस में भी सूर्य्य के पुत्र यमराज और इक्ष्वाकु और ब्राह्मण का वृत्तांतहै दूसरे उसी प्रकारके काल और मृत्यु का भी वर्णन है उसको मुझ से सुनों और उन्होंका वह सम्वाद भी जिसप्रकार जिस स्थानपर हुआ उसको सुनों—कि कोई जप करनेवाला धर्मवृत्ती ब्राह्मण बड़ा यशस्वी शिक्षा कल्पादि छः अंगों का जाननेवाला महाज्ञानी कौशिक गोत्री पिप्पलादि नाम वेद के छः अंगों में उसका अपरोक्ष ज्ञानथा वह वेदों में पूर्ण होकर हिमालयके मूल में वर्त्तमान था वहां संहिता को जप करते उस सावधान ब्राह्मण ने अति उत्तम ब्राह्मण के योग्य तपको किया, इस नियम से इसके हजार वर्ष व्यतीत हुये तब साक्षात् देवी

भगवती ने उसको दर्शन दिया और कहा कि मैं प्रसन्नहूं उस ब्राह्मण ने जप में मौनहोकर उससे कुछ नहीं कहा तब तो देवी सावित्री ने उसकी निरपेक्षता से बहुत प्रसन्न होकर उसके जपकी अत्यन्त प्रशंसाकी तब वह जपको समाप्त करने वाला धर्म्मात्मा उठकर मस्तक को नवाकर देवी के चरणों पर गिरपड़ा और यह बचन बोला कि हे देवी तुम प्रारब्धसे मेरेऊपर प्रसन्न हो इससे मुझको दर्शन दिया और मेरे देखने को आईं जो आप मेरेऊपर प्रसन्न हैं तो मेराचित्त जपमें प्रवृत्तहो सावित्री बोली कि हे जप करनेवालों में उत्तम ब्रह्मऋषि तू क्या चाहता है तेरी क्या प्रसन्नताकरूं तू अपने अभीष्टको अच्छे प्रकारसे कह मैं सब पूर्ण करूंगी जब देवी ने ऐसा कहा तब उस धर्मज्ञ ब्राह्मण ने बारम्बार यही कहा कि मेरी यह जपकी इच्छा वृद्धिको पावे और प्रति दिन चित्तमें नियमबढ़े तब देवी ने इसे मधुरबचन से कहा कि यहतेरा अभीष्ट सिद्ध होगा और यह दूसराबरभी दिया कि तुम नरकयुक्त बिनाशवान् होनेसे उसस्वर्ग को नहीं जाओगे जहां कि उत्तम ब्राह्मण जाते हैं अर्थात् उस ब्रह्मलोक को जाओगे जो कि स्वभाव सिद्ध और निर्दोष है इसकारण से कि तैंने यही इच्छा मुझ से कीहै कि मेरा चित्त जपही में प्रवृत्तर है इसहेतुसे मेरी कृपा से तुझको वही प्राप्त होगा और तुम सावधानता पूर्व्वक चित्तको एकाग्र करके जपमें प्रवृत्तहो तेरेसमीप धर्म काल मृत्यु यमराज यह सब आवेंगे तब धर्म के विषय में तेरा और उनका शास्त्रार्थ होगा—भीष्मजी बोले कि इस प्रकार भगवती कहकर अपने भवनको गई और ब्राह्मण भी उसी प्रकार से दिव्य शतवर्षतक जप करने में वर्त्तमान रहा और चित्तसे जितेन्द्रिय क्रोध रहित सत्यवक्ता दूसरों के गुणों में दोष नहीं लगाता था फिर उस बुद्धिमान् ब्राह्मण का वह नियम समाप्त होने पर साक्षात धर्म देवता ने प्रसन्न मूर्ति होकर आप दर्शन दिया और कहा कि हे ब्राह्मण तुम मुझ धर्मको देखो मैं तेरे देखने को आयाहूं इस जपका फल जो तुमने पाया है उसको मुझ से सुनो कि तुमने पृथ्वी स्वर्ग से सम्बन्ध रखनेवाले सब लोकों को विजय करके देवताओं के भी सब लोकों को उल्लंघन करोगे इससे प्राणों को त्यागो तुमको इच्छा के समान लोकों की प्राप्ति होगी ब्राह्मण बोला हे धर्म मुझको लोकों से कोई प्रयोजन नहीं है तुम आनन्द से चलेजाओ और हे समर्थ मैं बहुत सुख दुःखवाले दूसरे देह को उत्पन्न नहीं करना चाहता अर्थात् इसीदेहसे मुक्तहोना चाहताहूं—धर्मने कहा हे मुनिश्रेष्ठ तुमको अवश्य देह त्यागना योग्यहै और हे अनघ तुम स्वर्गमें बसोगे या और कुछ चाहतेहो—ब्राह्मणबोला कि हे समर्थ मैं आत्माके देहबिना स्वर्गको नहींचाहताहूं हे धर्म तुमजाओ आत्मा के बिना स्वर्गजाने में मेरी श्रद्धा है धर्म्म बोले

कि देहमें चित्त लगाना त्यागकरो और शरीरको त्यागकरके सुखीहो रजोगुणसे पृथक् लोकोंमें जाओ जहां किसी बातका शोच नहीं है, ब्राह्मणबोला कि हे महाभाग मैं जपताहुआ रमण करूंगा सनातन लोकोंसे मुझको क्या लाभहै इससे हे धर्म मुझको देहसमेत स्वर्ग जाना चाहिये या नहीं, तात्पर्य्य यहहै कि सदेह स्वर्गकोजाना जपके फलसे न्यूनहै–धर्म बोले हे ब्राह्मण जो तुम देह का त्यागना नहीं चाहते हो, देखो यह कालमृत्यु और यमराज तेरे पास आये हैं–तदनन्तर यमराज और कालमृत्युने उसमहाभाग ब्राह्मण के पासजाकर यहकहा कि अच्छेप्रकार तपेहुये और विधिपूर्व्वक कियेहुये इस तेरे तपकी यह उत्तम फलकी प्राप्तीहै मैं यमराज हूं तुमसे कहताहूं फिर काल पुरुषबोले कि इस जपकाफल उत्तम जैसा कि चाहियेथा उसी प्रकारसे किया तेरे स्वर्गजाने का कालहै मैं कालपुरुष तेरे पास आयाहूं मृत्युबोली किमुझ आई हुईको रूपवान् मृत्यु जानों हे ब्राह्मण मैं कालकी भेजीहुई तेरेलेने को यहां आईहूं ब्राह्मणने कहा कि काल, यमराज, मृत्यु और महात्मा धर्म का आनाशुभहो आपका क्याकार्य्यकरूं भीष्मजी बोले कि यह कहकर उनका अर्घ्यपाद्य करके प्रसन्नता पूर्वक यहबोला कि मैं अपनी सामर्थ्यके अनुसार आपकी क्या सेवाकरूं इसी अंतरमें तीर्थयात्रा करताहुआ राजा इक्ष्वाकु भी दैवयोगसे वहांगया जहांपर कि वहसबवर्त्तमानथे वहां उस राजर्षि ने सबको यथायोग्य प्रणाम पूजनादि करके कुशल प्रश्नपूछा तब उस ब्राह्मणने भी राजाका पाद्यअर्घ्य आसनादिसे सत्कारकरके यह प्रश्नकिया कि हे महाराज आपका आना कल्याणकारीहो आपका जोअभीष्टहै उसको यहां मैं अपनी सामर्थ्यके समान किया चाहताहूं आप आज्ञा दीजिये राजाने कहा मैंराजाहूं तुम ब्राह्मणहो जब तुम अपने छओं कर्मों में वर्त्तमानहो तब सुवर्ण रत्नादि धनोंमेंसे कौनसा आपकोदूं उसको आप मुझसे कहिये, ब्राह्मण बोला कि हे राजा ब्राह्मण दोप्रकारके हैं और धर्मभी दोभेदकाहै प्रवृत्त और निवृत्त इस कारण मैं दानलेना नहीं चाहताहूं जोदानलेनेवाले पवित्र ब्राह्मणहैं उन्हींको आपदानदीजिये मैं दान नहींलूंगा आपको क्या अभीष्टहै और मैं क्याकरूं और हेराजाओंमें उत्तम जो आप अपना मनोरथकहैं उसको मैं अपने तपके बलसे पूराकरूं, राजाबोला कि हे ब्राह्मणोत्तम मैं क्षत्रीहूं मैं इसबचनके कहनेको नहींजानताहूं कि मुझकोदो, हमइसप्रकारके कहनेवालेहैं किहमको युद्धदानदो ब्राह्मणने कहा कि हे राजा जैसे तुम अपने धर्मसे प्रसन्नहो उसी प्रकार हमभी अपने धर्ममें प्रसन्नहैं परस्पर में कोई अन्तर नहींहै जो आपको अभीष्ट है वहीकरो, राजाने कहा कि हे विप्रवर्य तुमने जो कहा कि मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार दूंगा तो मैं आपसे मांगताहूं कि इस अपने जपका फलमुझको

दीजिये, ब्राह्मणने कहा कि जो आप कहतेहैं कि मैं सदैव युद्धकी ही याचना करताहूं तो हमारे साथमें कोई युद्धनहीं है फिर ऐसी याचना क्योंकरते हो राजाबोला कि ब्राह्मण बज्ररूप बचन कहनेवाले होते हैं और क्षत्री लोग भुजबलसे जीवतेहैं सो हे ब्राह्मण यह बचनरूप कठिनयुद्ध मेरा आपके साथहै ब्राह्मणने कहा कि हे राजेन्द्र अबभी मेरा वही प्रणहै कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार क्या दियाजाय आप कहिये मैं सामर्थ्य होनेपर दूंगा बिलम्ब न कीजिये—राजाने कहा कि जो आप मुझको दिया चाहते हैं तो आपने जो दिव्यशतबर्ष तक जप किया है. उसका फल मुझको दो, ब्राह्मण बोला कि उसजपके श्रेष्ठफलको लोजो मैंनेजपाहै तुमबिना बिचारके उसके आधेफलको पाओ—और जोतुममेरा सबफल चाहतेहो तो सब जपका फललो राजा बोला आपका कल्याणहो मैंने जो जपके फल की इच्छा की वह आपने पूर्णकी अबयह भी बतलाइये कि इस जपका क्याफल है ब्राह्मणबोला कि मैं फलकी प्राप्तीको नहीं चाहताहूं मैंने जो जप किया वह मैंने दिया यह धर्मकाल यम मृत्यु इसकेसाक्षी हैं राजा बोला कि इस धर्मका अज्ञातफल मेराक्या उपकार करेगा जो तुम जपके धर्मफल को मुझसे नहीं कहतेहो इससे हे ब्राह्मण उस फलको आपही भोगें मैं नहीं चाहताहूं ब्राह्मण बोला कि दूसरे के बिपरीत बचनों को स्वीकार नहींकरूंगा मैंने इस जपका फल तुमको दिया हे राजर्षि अब मेरा और तेरा बचनप्रमाण है मैंने कभी जपके फल की इच्छा नहीं की इससे हे राजेन्द्र मैं किसप्रकार जपके फलको जानूंगा तुमने मांगा मैंने दिया मैं अपने बचन को दोषी नहीं करूंगा सत्यता पर दृढ़ताकरो अब जो तू मेरे बचनों को नहीं करेगा तो मिथ्या बोलने से तुमको बड़ा अधर्म होगा—हे शत्रुहन्ता जैसे तू मिथ्या बोलने के योग्य नहीं उसीप्रकार मैंभी अपने बचन को मिथ्या नहीं करसक्ता—जो आपसच्चे हैं तो जैसे कि मैंने पहले बिना बिचारे देने को कहा उसीप्रकार बिना बिचारके उसको आपभी लीजिये तुमने यहां आकर जपके फल को मांगा मैंने उसको दिया और तुम उसको लो और सत्यतामें भी वर्त्तमान हो जो मिथ्या बोलता है उस का न यह लोक है न परलोक है और अपने पितरोंको भी नहीं तारेगा तो इनके पीछेवालों को कैसे तारेगा हे पुरुषोत्तम इसलोक परलोक में जैसे सत्यता उद्धार करती है उसप्रकार यज्ञोंका फल दान और नियम आदि नहीं तारते हैं हजारों लाखों बर्षतक जो तपकिये गये या करे जायँगे वह सबसत्य से अधिक नहीं हैं सत्य प्रणवरूप ब्रह्म है और सत्यही प्रणव रूप तप है सत्यही प्रणव रूप यज्ञ है सत्यही प्रणव रूप ज्ञान है सत्यही वेदों में जागता है सत्यही में श्रेष्ठफल भी है सत्यही से धर्म और शान्तचित्त है सत्यही में सब वर्त्तमान है सत्यही वेद

वेदांत विद्या बुद्धि ब्रत नियम है उसीप्रकार ॐ कारभी सत्यरूप है जीवों की उत्पत्ति सत्यरूप है सत्यहीसे वायु सन्मुख आतीहै सत्यही से सूर्य्य प्रकाश करताहै सत्यही से अग्नि भस्म करता है सत्यही में स्वर्गबर्त्तमानहै यज्ञ तप वेद स्तोभ मंत्र और सरस्वती यह सबसत्यरूपहैं हमने सुनाहै कि धर्म और सत्य एक तुलामें तोलागये। तोसत्यही अधिकहुआ जहां धर्महै वहांसत्यहै सबसत्य हीसे बृद्धिपातेहैं हे राजा तुम किस कारण मिथ्या कर्म किया चाहतेहो सत्यमें चित्तको स्थिरकरो मिथ्याकर्म मतकरो तुम इसशुभ बचनको क्यों मिथ्याकरतेहो हेराजाजो तुममेरे इसजपके फलको नहीं चाहोगे तो धर्म से रहितहोकर लोकों में भ्रमतेडोलोगे, जो प्रतिज्ञाकरके देना नहीं चाहताहै और जो याचना करके लेनानहीं चाहताहै यहदोनों मिथ्या कर्म हैं तुम ऐसे मिथ्याकर्म करनेके योग्य नहीं हो राजा बोला हे ब्राह्मण युद्ध करना और प्रजापालन करना यही क्षत्री का धर्म्म है—क्षत्री दान देनेवाले कहे जाते हैं—मैं आपके दान को कैसे लूं ब्राह्मण बोला कि हे राजा मैं तुमको जबरदस्ती नहीं करताहूं कि तुम लो और न देने को तेरे घर गया तुम यहां आकर याचना करके क्यों नहीं लेते हो धर्म्म बोले कि तुमदोनों मत झगड़ो मुझआये हुये धर्मको जानों ब्राह्मण दानके फलसे और राजा सत्यके फल से संयुक्तहै स्वर्ग्ग देवता बोले कि हे राजेन्द्र तुम मुझे आप आये हुए रूपवान् स्वर्गको जानों तुमदोनों मतझगड़ो क्योंकि दोनों समान फलवाले हो राजाबोला कि स्वर्गने मेरा काम किया तुम जैसे आयेहो वैसे स्वर्गको जाओ, जो ब्राह्मण स्वर्ग को जाना चाहता है तो मेरेसंचितफलकोलो—ब्राह्मणबोला कि जो मैंने बाल्यावस्था में अज्ञानतासे हाथ पसाराहो तो ऐसी दशामें तेरे दान को लूं मैं संहिता अर्थात् प्रणव गायत्री को जपकरता निवृत्ति लक्षणवाले धर्म की उपासनाको करूंगा हे राजा बहुतकालसे मुझ संसारकेत्यागने वालेको आप कैसे लुभातेहैं मैं आप अपनेकामको करूंगा तुझसे फलको नहींचाहताहूं मैं तप और वेदपाठका अभ्यास रखनेवाला दानलेनेसे निबृत्तहूं—राजाबोला किहेब्राह्मण जोतुमने जपके उत्तम फलको दिया उस दशामें हमदोनोंका जो कुछ फलहै वह हम दोनोंको साझेमें आधा २ हो—ब्राह्मण दानलेनेमें प्रवृत्तहैं और राजवंशी राजा दाता है सो हे ब्राह्मण जो तुमने धर्म को सुनाहै तो ऐसी दशा में हम दोनों को फल साझे में हो चाहे हम दोनों साथ में न भोगें जो मुझपर तेरीकृपाहै तो मेरे किये हुये धर्म को लेकर मेरे फलको पाओ भीष्मजीबोले कि इसके पीछे कुरूप और मैलेवस्त्र पहरे दो पुरुष सम्मुख वर्त्तमानहुए और दोनों परस्पर में झपट और पकड़कर एकने दूसरेसे कहा कि तू मेरा ऋणीनहीं है दूसरेने कहा कि मैं तेराऋणीहूं यहहम दोनोंका झगड़ाहै और यहराजा न्याय करनेवाला

हमारा न्यायीहै—मैं यह सत्य कहताहूं कि आप मेरेऋणी नहीं हो और तुम मिथ्या कहतेहो कि मैं तेरा ऋणियांहूं अत्यंत दुःखीहोकर उनदोनोंने राजा से यह कहा कि आप ऐसा न्यायकरो जिसमें हमदोनों निन्दित न हों उनदोनों पुरुषोंमेंसे विरूपने कहा कि हे राजा मैं विकृतके एक गोदानके फल का ऋणीहूं सो मैं देताहूं और विकृत नहीं लेताहै विकृतने कहा कि हे राजा यह बिरूप मेरा कुछ नहीं रखता है यह तुझ सत्यज्ञसे मिथ्याबोलताहै राजाबोला हे बिरूप तुम किस वस्तुके इसके ऋणीहो यह मुझसे कहो मैं न्यायसेझगड़ा निपटाऊंगा यह मेरा चित्त कहताहै—बिरूपबोला कि इस के ऋण को आप ध्यान देकर सुनिये हे राजा इस विकृतने धर्मकी प्राप्ति के लिये एकतपस्वी वेदपाठी ब्राह्मणको सुन्दर गौदानमें दी और मैंने इससे इस गोदान के फल को मांगा और इस विकृतने अत्यंत शुद्ध अंतःकरणसे मुझकोदिया तदनंतर मैंने अपनी पवित्रता के लिये शुभकर्म किया कि सवत्सा बहुतदूध देनेवाली दो कपिलागौ मोललेकर उंछवृत्ती ब्राह्मणके अर्थ बुद्धि और श्रद्धाके अनुसार अर्पणकरीं अबमैं इसके गोदान फलके द्विगुणफलको अभी देताहूं सोहेराजेन्द्र इस विषयमें हमदोनों में से कौन अपराधी और कौन निरपराधी है हमदोनों झगड़ालू तेरेसमीप आये हैं धर्म से या अधर्म से हम दोनों का निर्णयकरो जिसप्रकार मुझने इसको दिया और यह मेरेदान को नहीं चाहताहै अब आप यहां वर्त्तमान होकर हम दोनों को न्याय में नियतकरोगे फिर विरूपने बिकृत से कहा कि तुम अपने दिये ऋणको मुझसे क्यों नहीं लेतेहो जैसे तुमने दियाहै वैसेही लो देर न करो—बिकृतने कहा कि तुमने कहाथा कि मैं ऋण लेताहूं तब मैंने भी कहाथा कि मैं देताहूं अब यह मेराऋणीनहीं है वहांजाय जहां ऋण चाहता है—राजाबोला कि तुम इसके देने पर नहीं लेतेहो यह बात मुझको बिरुद्ध ज्ञातहोती है तुम मेरीरायसे निस्संदेह दण्डके योग्य हो बिकृतबोला हे राजर्षि मैंने इसको देदिया अब फिर किसप्रकारसेलूं जो इसमें मेरा अपराध समझो तो दण्डकी आज्ञादो बिरूपने कहा कि जो तुम मेरेदिये हुये को नहींलोगे तो यह धर्म का जाननेवाला राजा तुमको दण्डदेगा बिकृतने कहा कि मैंने तुम्हारे मांगने पर गोदानके फलको दिया अब मैं उसको किस प्रकार से फेरलूं आप जाइये मैं आपको आज्ञादेताहूं—ब्राह्मण बोले हे राजा तुमने इनदोनोंके इस बर्णनकोसुना, मैंने जो तेरेसाथ प्रतिज्ञा करीहै उसको विचार कियेहुयेलो—राजाबोला कि इनदोनोंका कर्म कलांतर बड़ा प्रशंसनीय है और जापक ब्राह्मणके सिद्धांत को दृढ़ करनेवाला है यह कैसे होगा जो अब ब्राह्मणका दिया हुआ नहीं लेताहूं तो मुझको भी बड़ा अधर्म क्यों नहीं होगा तब राजऋषि ने उन दोनोंसे कहा कि तुम मनोरथ

सिद्ध करके जाओगे अब यहां मुझको पाकर राजधर्म मिथ्या नहीं होगा राजाओं को यह बड़ा निश्चयहै कि अपना धर्म अवश्य रक्षाके योग्यहै— ब्राह्मणका धर्म कठिनतासे करने के योग्य मुझ निर्बुद्धी में प्रवृत्त हुआ—ब्राह्मण बोला कि मुझको योग्यथा कि तुमने याचना की और मैंने स्वीकार किया हे राजा जो तुम नहीं लोगे तो मैं अवश्य शाप दूंगा—राजाबोला कि राजधर्मको धिक्कारहै यहां जिसके विषयमें यह नीति है अर्थात् दान लेने का अधिकार नहीं और मुझे उसके जपका फल लेनायोग्य हुआ तो वहमेरे धर्म के समान कैसे होगा मैंने पूर्वके विपरीत यहहाथ धरोहड़के लिये पसारा—हे ब्राह्मण जोमेराऋण आप रखतेहैं उसकोदीजिये ब्राह्मण बोलाकि प्रणवव्याहृती सहित गायत्री का जपकरते में मैंने जो कोई गुण प्राप्त किया और जो कुछ यहां मेरा धनहै उस सबको लो—राजा बोला कि हे ब्राह्मण यह जल मेरेहाथ में गिरा वह मेराहो वा बांटेमेंहो आप उसको लीजिये—विरूप बोला कि हम दोनों काम और क्रोधहैं आपको हम दोनोंने इस विषय में प्रवृत्त किया तुम ने जो साक्षीका शब्द कहा इस हेतुसे तेरे और इसके लोक बराबरहैं यहकुछ ऋणद नहींहै काल धर्म मृत्यु और हम दोनों काम क्रोधने तेरीबुद्धि जानने की इच्छाकरी तेरेसमक्ष में परस्पर के निर्णयमें सब झगड़ा किया गया तुम अपने कर्मसे जहां चाहतेहो उन्हीं विजय कियेहुये लोकों को जाओ—भीष्म जी बोले कि मैंने तुमको जपकरने वालोंके फलकी प्राप्ति दिखाई जैसे कि उस जापक ब्राह्मणने सूर्य्यलोक आदि को विजय करके मोक्षगतिको पाया संहिता का पाठ करनेवाला ब्राह्मण परमेष्ठी ब्रह्माजी को प्राप्त होता है अर्थात् उनके शरीरमें सायुज्य मुक्तिको पाताहै याजप करनेवाला अग्निलोकमें या सूर्य्यमें प्रवेश करताहै और वहां तेजसरूप से रमताहै और रागादिसे रहित होकर उनके गुणों को प्राप्त करताहै—जैसे कि चन्द्रमा वायु पृथ्वी और आकाश की देहमें प्रवेश करनेवाला और रागवान् पुरुष उन्हीं के गुणको प्राप्त करता हुआ वहांपर वर्त्तमान रागवान् होताहै तब संशयको पाता है वह उस उत्तम अविनाशी ब्रह्मको चाहता हुआ फिर उसीमें प्रवेश करताहै उस अमृत से अमृतको अर्थात् कैवल्य मोक्षको प्राप्त करनेवाला इच्छा रहित बुद्धिमान् अहंकारको त्यागकर ब्रह्मरूप हर्षशोक रहित सुखी शान्तरूप द्वैततासे पृथक् आवागमनसे रहित एक अविनाशी जरामृत्यु से अदूषित ब्रह्मरूप स्थानको पाता है वह चित्तके प्रत्यक्षागम अनुमानके बिनाहै क्योंकि रूप गुण सम्बंध और जड़भाव से हीन छः उर्मियों से और प्राणादि सोलह गुणों से पृथक् कारण ब्रह्मको उल्लंघन कर उस पुरुषको प्राप्त होताहै तब वह रागरूप पुरुष उस पुरुषकी प्राप्तिको नहीं जाताहै ऐसी दसा में उस सर्वात्मा कारण ब्रह्म का

अभिमानी होताहै वह जिस कामनाको चाहता है अथवा अनिच्छावान् वा सब प्रकारसे पृथक् होकर सुखपूर्वक उस निर्गुण ब्रह्ममें रमताहै—इसप्रकार जप करनेवालेकी गतिकही और क्या सुननाचाहतेहो १२८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेषट्विंशत्तमोऽध्यायः २६ ॥

# सत्ताईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह उस बिरूप के कहने के पीछे उस बिकृत ब्राह्मण ने और राजाने क्या वार्त्तालाप करी उसकोआप मुझको समझाइये भीष्मजी बोले कि हे राजेन्द्र युधिष्ठिर उस ब्राह्मणने ऐसाही होगा यह स्वीकार करके और पूजनीय यमराज, काल, मृत्यु और स्वर्ग का यथोचित पूजन करके पूर्वमें जो अन्य ब्राह्मण वहां इकट्ठे हुये थे उन सबको शिर से दण्डवत्कर राजासे यह कहा कि हे राजा तुम इस फल में संयुक्त होकर प्रतिष्ठा को पाओ और आपसे आज्ञालेकर मैं फिर जपका प्रारम्भकरूं क्योंकि मुझको श्रीशारदाजीने बरदियाहै कि तेरी जपमें सदैव श्रद्धा रहै, राजाने कहा कि हे ब्राह्मण जो जपकरने में तेरीश्रद्धा है और बिनाफल के इस प्रकारकी सिद्धी है तो तुम मेरेसंगचलो और जपके फलको प्राप्तकरो ब्राह्मण ने कहा कि वहां सब के सामने बहुत बड़े उद्योग के समान फलवाले हम दोनों साथही जायँगे जहां कि हमारी गति है—वहां देवताओं के ईश्वर इन्द्र देवता उन दोनों के निश्चय को जानकर देवता और लोकपालों समेत उनके सन्मुख गये—और साध्यगण विश्वेदेवा मरुद्गण बहुत से बड़े २ बाजेवाले नदी पर्व्वत—समुद्र—और अनेक प्रकार के तीर्थ, तप, संयोग—बिधिवेद—स्तोम—सरस्वती—नारद—पर्व्वत विश्वावसु हाहाहूहू गन्धर्व्व—चित्रसेनअपने परिवार गणों समेत नाग, सिद्ध—मुनि देवोंके देव प्रजापति-विष्णु—शेष यहसब देवता आये और नाना प्रकार के बाजों से आकाशमें मंगल शब्द करनेलगे और उन दोनों महात्माओं के ऊपर पुष्पोंकीबर्षाहुई और अप्सराओं के समूह नाचने गाने लगे तदनन्तर उस रूपवान स्वर्ग ने ब्राह्मणसे यह बचन कहा कि हे बड़भागी तुम्हारी पूर्णसिद्धी हुई और हे राजा आपकी भी इसी प्रकारकी सिद्धीहुई यह सुनकर दोनोंने एकसाथही बिषय करने वाली इन्द्रियोंका संहारकिया और मूलाधार से कुण्डली को उठाकर ऊपर ऊपरके चक्रोंके बिजय क्रमसे पांचोप्राणों को हृदय के अनाहद चक्रके मध्य में नियत करके अर्थात् रोककर उसमें नियत चित्तको एकरूप प्राप्त करनेवाले दोनों प्राणों में धारण करके नियत किया और पद्मासन होकर भृकुटी के नीचे नासिकाके अग्रभाग को देखते हुये उन दोनों ने धीरेधीरे प्राण अपानको चित्तके समेत दोनों

भृकुटी के मध्य दृष्टिको स्थिर किया उसी प्रकार दृष्टिको नियत किये हुये सावधान चित्तको एकाग्र करके निश्चेष्ट देह होकर मस्तक में धारण किया तदनन्तर ज्योति की बड़ी ज्वाला उस महात्मा ब्राह्मण के ब्रह्मरन्ध्रको फोड़ कर स्वर्गको गई उसी प्रकार चारों ओरसे सब जीवों का बड़ा हाहाकार हुआ तब वह ज्योति देवताओं से पूजित और प्रशंसित होकर ब्रह्माजी में प्रवेश करगई—फिर ब्रह्माजी ने आसन से उठकर उस प्रादेशमात्र पुरुषको अभ्युत्थान देकर उस तेजसे कहा कि आनन्द पूर्व्वक आये यह कहकर दूसरे मीठे बचन यह कहे कि जप करनेवाले और योगियों का फल बराबर है परन्तु इन में जप करनेवाले की अधिक प्रतिष्ठाहै, आनन्द से निवासकरो यह कहकर बराबर चैतन्य किया अर्थात् जीवब्रह्म अर्थात् अपनी और उसकी एकता को जताया—तिस पीछे वह ब्राह्मण तप से पृथक् होकर ब्रह्माजी के मुखमें प्रवेश करगया, और राजा मान्धाता भी उसी बुद्धिसे भगवान् ब्रह्माजी में प्रवेशकर गया, तब देवताओं ने ब्रह्माजी को दण्डवत् करके कहा कि हमलोग इसी निमित्त आये थे कि जापका फल देखें सो देखा कि आपने योगी और जापक को समान फल दिया यह दोनों वहां प्राप्तहुये जहां कि अनन्तसुख है ब्रह्माजीबोले कि जो पुरुष महास्मृतिअर्थात्मनुस्मृतिआदि शुभ स्मृतियोंका पाठ करता है वह मेरी लोकताको पाता है और जो पुरुष योग में प्रीतिवान होता है वह भी इसी प्रकार देहके अन्त में मेरेलोकों को पाताहै तुम अब अपने लोकों को जाओ मैं तुम्हारेभी अभीष्टों के निमित्त सिद्धीको साधन करूंगा यह कहकर ब्रह्माजी अंतर्द्धान होगये और देवता अपने अपने लोकों को आये हे राजा वह सब महात्मा प्रसन्न चित्त होकर धर्म्मका सत्कार करके चलेगये यह जपकरनेवालोंका फल और गति तुम से वर्णन किया अबक्या सुना चाहते—२५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तविंशोऽध्यायः २७॥

## अट्ठाईसवां अध्याय॥

युधिष्ठिरबोले कि हे पितामह ज्ञान योगका फल वेदों का फल उसीप्रकार अग्निहोत्रादि नियमका क्याफल है और जीवात्मा कैसे जानने के योग्यहै यह सब आप मुझ से वर्णन कीजिये—भीष्मजी बोले कि यहां मैं इसप्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसमें प्रजापति मनुजी और बृहस्पति महर्षीका सम्वाद है देवताओं में अतिउत्तम महर्षि बृहस्पतिजी ने अपने गुरू प्रजापतिजी से दण्डवत् करके यह प्रश्न किया कि हे भगवन् जिसके निमित्त कर्मकाण्ड जारीहुआ और ब्रह्मज्ञान होनेसे जिसके फलकी प्राप्ती है ऐसा जो जगत् का

कारण है और मन वाणी चित्तसे बाहर होनेके कारण वेद बचनों से प्रत्यक्ष नहीं होता उसको आप ठीक २ मुझ से वर्णन कीजिये—अर्थ शास्त्र और मंत्रशास्त्र और वेदके जाननेवाले पुरुषों के बहुत यज्ञ और गोदानों के जो फलरूप सुख सेवन कियेजाते हैं वह क्या बस्तु हैं और किस रीति से प्राप्त होते हैं वह कहां और किस देशमें है अथवा परमात्मा है पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले वृक्ष आदि वायु अन्तरिक्ष, जलजीव, जल, स्वर्ग, और देवता पर्यन्त जिससे उत्पन्नहुये उसपुराण पुरुषकोभी आपवर्णन कीजिये औरजिसके लिये मनुष्य ज्ञानकी इच्छाकरताहै और उसज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाली मिथ्या प्रवृत्तिहोती है और मैं भी उसमहापुराणपुरुषको नहींजानताहूंतो निरर्थकप्रवृत्तीको कैसेकरूं ऋग्यजु सामवेदोंकी और नक्षत्रोंकी गति निरुक्त और शिक्षा कल्प समेत व्याकरणोंको भी पढ़कर भूतोंकी प्रकृतिको अर्थात् आत्मा को नहींजानताहूं सो आप साधारण शब्दोंके द्वारा इनसबको और ज्ञान में वा कर्ममें जोफलहै उसको और देहधारी जोयह जीवात्मा देहसे पृथक् होता है और फिर जैसे देहको पाताहै वह सब आप वर्णन कीजिये—मनुजी बोले कि जो जिसको प्याराहै वह सुख और जोअप्रिय है वही दुःख कहाजाता है और किसी के अभीष्टका न होनाहोजाय इसनिमित्त कर्म्मकाण्ड जारीहुआ और प्रिय अप्रिय मुझको नहीं व्यापे इसनिमित्त ज्ञानरूप कर्म्म बुद्धि जारी हुई—अर्थशास्त्र जाननेवालोंका जोफलहै उनको कहतेहैं कि वेदमें जो कामनाको प्रधान रखनेवाले कर्म योगहैं अर्थात् सफल कर्महैं उनसे रहितहोकर मोक्षको पाताहै परन्तु नानाप्रकारके जोकर्म्म मार्ग्ग वैदिक लौकिक हैं उनमें प्रवृत्त सुखका चाहनेवाला पुरुषस्वर्गको अथवा नरकको पाताहै—बृहस्पति जी बोले सुख और दुःख दोनोंमें सुखप्याराहै और दुःख कुप्यारा है अर्थात् त्यागने के योग्यहै वहइच्छा इसइच्छावान् को कर्मके अभ्यासमें प्रवृत्तकरती है मनुजीने कहा कि इन इच्छाओंसे रहित अर्थात् ब्रह्मज्ञान आदिकी इच्छा से ब्रह्ममें लयहोताहै इसनिमित्त कर्म्म बुद्धिजारी हुई फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको वहकर्म्म योग बन्धन में डालताहै इसीकारण इनइच्छाओंको त्याग के ब्रह्मज्ञानकेही निमित्त कर्म्मकरे चित्त आदि और निष्फल कर्म्म से वृद्धि युक्त अर्थात् प्रीति आदि दोषोंके दूरकरने से प्रकाशमान् सत् असत् विषयों का ज्ञाता सुखकी इच्छा करनेवाला पुरुष उस परब्रह्मको पाताहै जो कि श्रेष्ठ होकर कर्म्म मार्ग से पृथक् इच्छा नहीं रखता है—यह सब सृष्टि चित्त और कर्म्म से उत्पन्नहुई है यह चित्त और कर्म्म दोनों संसारके देनेवाले भी ब्रह्म प्राप्तीके मार्ग हैं और लोकोंसे सेवित हैं क्योंकि वह वेदोक्त कर्म्म अविनाशी और नाशवान् हैं वहां चित्तसे फलका त्यागकरनाही मोक्षका हेतु है दूसरा

कोई नहीं है, जैसे कि निशाके अन्तमें अर्थात् प्रातःकाल के समय अन्ध-कारसे रहितहो नेत्र अपनेही तेजसे सबसंसारके त्यागनेके योग्य कांटेआदि को देखताहै उसीप्रकार विज्ञान गुणसे मिलाहुआ ज्ञान अशुभ कर्म्मको देखता है या जैसे सर्प्प कुशाओं की नोकों को त्याग करताहै उसी प्रकार क्रोध को जानकर सर्व्वथा त्याग न करता है वहां जोकोई गिरता है तो अज्ञानही से गिरताहै इससे ज्ञान में ही उत्तम फलको समझना योग्यहै बुद्धि के अनुसार पढ़ाहुआ मंत्र सम्पूर्ण शास्त्रोक्त यज्ञ दक्षिणा अन्नका बड़ा दान और देवता-ओं के ध्यान आदि में चित्तकी एकाग्रता इनपांचप्रकारके कर्म्मोंको फल के समान कहते हैं--अब कर्म्म कर्त्ताके स्वभावसे भिन्न कर्म्मोंके फलको कहते हैं कि करनेके योग्य कर्मवेदकी रीतिसे त्रिगुणात्मक अर्थात् सात्विकी, राजसी तामसी, कहाते हैं इस हेतुसे मंत्रभी त्रिगुणात्मक हैं क्योंकि मंत्रही के साथ कर्म्महैं, बुद्धि भी तीनप्रकार की है क्योंकि आत्माकी इच्छा करनेवाला वा स्वर्गकी कामनावाला अथवा अन्य के मारणादि प्रयोगकी इच्छा करने वाला यह तीनों पुरुष यज्ञकरते हैं और चित्तसे फलकी प्राप्ति भी तीनप्रकार कीहै उसीप्रकार फलका भोगनेवाला देहधारीभी तीन प्रकारका है अर्थात् सुखी दुःखी, अज्ञान, और शब्द, रूप पुण्य रसस्पर्श इसीप्रकार उत्तम गन्ध है उनका अधिकारी जीवधारी पुरुषहै परन्तु यह कर्म्म, फल प्राप्तहोने वाले लोकमें मिलता है तात्पर्य्य यहहै कि उसअदृष्ट कर्मफल से दृष्टगोचर ज्ञान फलही श्रेष्ठहै-देहसे जो २ कर्म्म करताहै वह दूसरे देहमेंही अच्छे प्रकार से उसके फलको भोगताहै क्योंकि देहही सुखालय और दुःखालय है अर्थात् बिना देहके आत्मा सुख दुःखसे पृथक्है इसीकारण देहके अभिमान से पृथक् होना मोक्ष है देहके कर्म्मोंसे मोक्ष नहीं होती है-जो कर्म कि बचन के द्वारा करताहै उसको बचनहीसे भोगताहै और चित्तसे जोकर्म करताहै उसके फल को चित्तमेंही नियतहोकर भोगेगा, कर्मफलका चाहनेवाला पुरुष जैसे सतो-गुणी रजोगुणी तमोगुणी कर्मफलको इच्छासे करताहै उसी उसी रीति से गुण संयुक्त पुरुष अच्छे बुरे कर्म्म फलको भोगता है जैसे कि मछली प्रवाह रहित जलके पीछे चलतीहै उसी प्रकार पिछले जन्ममें किया हुआ कर्म्मफल प्राप्त होता है और शुभफल में सुखी और अशुभ में दुःखी होना यही अज्ञानता है इससे आत्माही श्रेष्ठ है जिस से कि यह जगत् उत्पन्न हुआ चित्तके जीत-नेवाले पुरुष उसको जानकर संसारको त्याग उस ब्रह्मको पाते हैं जो मंत्र शब्दों से प्रकाश नहीं करता है उसकी श्रेष्ठता को सुनो कि वह रसों से और नानाप्रकार के गंधादिकों से और शब्द स्पर्शरूप से पृथक् पकड़ने में नहीं आता है और गुप्तहोकर तीनोंगुणों से पृथक् उसी एकाकीने प्रजाओं

के पांचों विषयों को उत्पन्न किया है और पुल्लिङ्ग स्त्रीलिंग नपुंसक लिंग इनतीनों से रहित सतप्रधान परमाणु आदिभी नहीं है और असतभी नहींहै सदसत माया सबलभी नहीं है उसी अविनाशी को ब्रह्मज्ञानी लोग देखते हैं उसका कभी नाश नहीं है २७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणि मोक्षधर्मेअष्टाविंशत्तमोऽध्यायः २८ ॥

# उन्तीसवां अध्याय ॥

मनुजीबोले कि उस अविनाशी ब्रह्मसे आकाश अर्थात् माया सबलब्रह्म उत्पन्नहुआ उससे बायु बायुसे अग्नि अग्निसे जल जलसे पृथ्वी पृथ्वीसे सब सूक्ष्म और अस्थूल उत्पन्नहुये और पृथ्वीपर जगत उत्पन्न होताहै इन पृथ्वी रूप देहोंसे जलको पाकर जलसे अग्निको अग्निसे बायुको बायुसे आकाश को वह आत्मारूप परम मोक्षको प्राप्त होते हैं और जो आत्मारूप नहींहै वह आकाशरूप माया सबलसे लौट आते हैं वह अक्षर ब्रह्म शीतोष्णता रहित मृदुत्व कठिनत्वबिना मधुर अम्ल कटु कषाय तिक्तादिरसों से विगत श्रेष्ठआत्मभाव शब्द गंधादिका भी रखनेवाला नहीं है और स्पर्शेन्द्री जिस स्पर्श को जानतीहै और रसना रसको जानतीहै घ्राण गंधोंको और दोनों कानशब्दोंको और नेत्ररूपोंको देखते हैं परन्तु उस श्रेष्ठ ब्रह्मको नहीं देखतेहैं जिस को कि योग रहित अज्ञानी पुरुष नहींपाते हैं जिह्वाको रसोंसे घ्राणको गंध से दोनोंकानों को शब्दसे त्वचाको स्पर्शसे नेत्रोंको रूपगुणसे पृथक्हटाकर अपने आत्मारूप श्रेष्ठब्रह्मको देखताहै—उस आत्मारूप को उन मुनियों ने करता आदि का समूह उत्पत्तिका कारण आत्मारूप कहाहै जो समूह करता है और जिसकेद्वारा देश, काल, कारण, स्वरूप सुख दुःखहोते हैं उसी के अनुसार उद्योग प्रारम्भ कियाजाताहै और जिसको राग द्वेष या ईश्वरकीइच्छा से प्रारम्भ करके उसका दर्शन और प्राप्ति आदि करताहै इस कारण करता--कर्म हेतु कर्म्म- देश--काल--सुख, दुख, प्रवृत्ति प्रारम्भ कर्म्मनाम उद्योग राग, गति, ईश्वर आदिके समूहका हेतु जो चिन्मात्रहै वही स्वभावहै-वह कौनहेतु है जिसके कारणसे प्राचीनजीव और ईश्वरका कार्य्यरूप होना कहाजाता है यह शंका करके कहतेहैं कि जो व्यापक ईश्वर नामहुआ और साधकजीव नामहुआ और मंत्रार्थ के समान लोक में भी वर्त्तमान है अर्थात् एकहोकर बहुतरूपों से दृष्टि पड़ताहै और सबका कारणहै अपने एकही रूपसे सबको प्रकट करने वालाहै वह परमकारण आनंदरूप ब्रह्म है और शुद्धब्रह्म ईश्वरके विषयमें अवान्तर कार्य्यरूपहै अर्थात् प्रीतिकरानेके लिये केवल मध्यवर्त्तीवस्तु है इसी हेतुसे वह शुद्धब्रह्म इसकार्य्य रूपसे दूसराहै इसप्रकार स्वभावकी परम

कारणताको कहकर ज्ञानात्माको कहतेहैं कि जैसे कोई मनुष्य अपने कर्मोंसे अच्छे बुरे फलको बिना रोकटोक के पाताहै उसी प्रकार उत्तम अनुत्तम देहों में अपने कर्म्मसे उत्पन्नहोनेवाले पापपुण्यों से यह चैतन्य स्वभावनाम परम कारण ज्ञान बँधाहुआ है जैसे कि अग्निसेप्रकाशित वृक्षकी नोकपर नियत दीपकदूसरोंको प्रकाश करताहै वैसेहीवृक्षकी जड़मेंरक्खाहुआ दीपकप्रकाश नहीं करता उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप दीपक से संयुक्त पंचेंद्री रूपवृक्ष प्रकाश रहित होकर ज्ञान दीपक से प्रकाशित और चैतन्य के प्रकाश से प्रकाशको करतेहैं-जैसे राजाके नियत किये हुये बहुतसे मंत्री पृथक् प्रमाणको कहतेहैं उसीप्रकार देहों में पांचइन्द्रियां ज्ञानरूप के मुख्यअंग होते हैं वह ज्ञानरूप स्वभाव अर्थात् आत्मभाव उनसे उत्तम है, जैसे अग्निकी ज्वाला-वायुका वेग-सूर्य्यकीकिरणें—नदियों का जल—यह सब अच्छे प्रकारसे घूमतेजाते हैं उसीप्रकार के जीवात्माकेभी देह हैं तात्पर्य्य यहहै कि देहों में चित्तसे बँधा हुआ ज्ञान देहकी नाश अवस्था में नाशको नहींपाता है जैसे कि कोई मनुष्य करसेको लेकर लकड़ी में अग्नि और धुवांको नहीं देखते उसीप्रकार देहकी पीठ और हाथ पैरोंको काटकर उसको नहीं देखते हैं, आत्मा उससे ऐसा पृथक् है जिस प्रकार युक्तसे उनलकड़ियोंको मथकर अग्नि और धुवां को देखे उसीप्रकार ज्ञानी जीवात्मा एकही समय उस श्रेष्ठ आत्मभाव को उत्तम बुद्धिसे देखता है, जैसे कि स्वप्नमें पृथ्वीपर पड़ेहुये अपनेदेहको अपने से पृथक् देखताहै उसी प्रकार चित्त बुद्धिसे मिलाहुआ दशइन्द्री पंच प्राणसे संयुक्त अर्थात् अपने रूपसे पृथक् देहको अपनेसे जुदा न समझने वाला एक देहसे दूसरी देहमें जाताहै यह श्रेष्ठ आत्मा उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय, मृत्युआदि से संयुक्त नहींहोताहै वह अदृष्टकर्म्मफलसे युक्तहोकर इसमृतक देहसे दूसरीदेहमें जाताहै,नेत्रसे आत्माके रूपको नहीं देखताहै न स्पर्श करताहै अर्थात् वास्तव में भोगने वाला न होनेसे असंगहै उनइन्द्रियोंसे कार्य्यको साधन नहीं करता है वह इन्द्रियां भी उसको नहीं देखतीहैं और वह उनको देखता है अर्थात् उनका साक्षीहै—जैसे कि कोई प्रज्वलित अग्निके सामने संतापसे उत्पन्न होनेवाले रूपको पाताहै और दूसरे रूपको नहीं धारण करता है उसी प्रकार इस आत्माका वह रूप देहमें भी दृष्टपड़ता है तैसेही मनुष्य इसदेहको त्याग कर दूसरे अदृश्य शरीरमें प्रवेश करताहै—महाभूतों में देहको त्यागकर दूसरे देह सम्बन्धी रूपको धारण करता है अर्थात् उस देहके धर्म्मों को आत्मामें मानता है फिर यह शरीरी देहको त्याग पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश में चारों ओरसे प्रवेश करता है और नानाप्रकार के निवास स्थान रखनेवाली कर्म में वर्त्तमान पांचों इन्द्रियां पांचों गुणों को प्राप्त करती हैं श्रोत्र इन्द्री

आकाश के शब्द गुणको, घ्राण पृथ्वी के गन्ध गुणको, नेत्र अग्नि के गुणरूपको, जिह्वा जल के गुण रसको और त्वचा वायु के स्पर्श गुण को, प्राप्त करती है अर्थात् पांचों इंद्रियां पांचों आकाशादि तत्त्वों में और पांचोंतत्त्व पांचोंइन्द्रियों में निवास करते हैं और चित्त बुद्धि के पीछे चलता है, और बुद्धि स्वभावके पीछे चलतीहै, इसकारण बिषयों की उत्पत्तिस्थान इन्द्रियां हैं, उनकाकारण चित्त और चित्तकी कारण बुद्धिहै और उस बुद्धि का कारण चैतन्य आत्मा इसक्रमसे सब बासनाओंसे पूर्ण बुद्धिमें सब वर्त्तमानहैं उस बुद्धिके पृथक् न होनेसे चैतन्य आत्मा फिर संसारी होता है जो दूसरा अच्छा बुरा कर्म्मकिया उसको कर्म्माधीन प्राप्तहोनेवाले दूसरे नवीन देहमें प्राप्त करताहै—अर्थ और बुद्धि आदि चित्तके पीछे चलते हैं जैसे कि जलके जीव अपने जल प्रवाहके अनुसार जाते हैं जैसे कि नौकापर चलने वाले को नदीके किनारेके वृक्ष आदि चलते से दृष्टपड़ते हैं और छोटी बस्तु दूरदर्शी यन्त्रके द्वारा बड़ी मालूम होतीहै—उसीप्रकार चैतन्य पुरुष बुद्धि मार्ग में प्राप्त होताहै अर्थात चेष्टारहित भी चंचलमाया के कारण चेष्टायुक्त मालूम होताहै और सूक्ष्महोकर भी बुद्धि में संयुक्त होनेसे बिराट आदि रूपवान् दृष्टपड़ता है और अपने अज्ञानसे अकेला भी बहुत रूपवाला देखने में आता है और जैसे कि ऐनक आदि के रहित होने से मुख्यरूप दिखाईदेता है उसीप्रकार वह आत्मा बुद्धि मार्गसे पृथक् होने में शुद्ध चिन्मात्र है तात्पर्य यह है कि ब्रह्मज्ञानही उसअनादि भ्रान्ति रूपमायाके नाश करने को समर्थ है २३॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकोन त्रिंशत्तमोऽध्यायः २९॥

# तीसवां अध्याय॥

मनुजी बोले कि चित्त और इन्द्रियोंसे संयुक्त जो चैतन्य जीवहै वह बहुत काल तक प्रथम प्राप्तहोनेवाले बिषयों को स्मरण करता है परन्तु उनइंद्री आदिके लयहोने पर अपने मुख्य स्वभावको प्राप्त होता है फिर वह बुद्धि रूप सबसे उत्तम चैतन्य रूप आत्मा कहाता है अर्थात् बास्तव में बुद्धि से पृथक् है जैसे कि वह आत्मा एकही समय या बहुत समय पर इन्द्रियों के सम्पूर्ण बिषयों को अच्छे प्रकार से प्रकाश करता है उसी रीति से चेष्टावानों में भी घूमाकरताहै,वह साक्षीहै उसी कारण से वहएकही श्रेष्ठआत्मा है तात्पर्ययहहै कि आत्मा बुद्धि आदिका प्रकाशकहै और बुद्धिआदि आत्माके प्रकाशकनहींहैं वहचेष्टारहितभी चेष्टावान् पदार्थोंमें घूमताहै इसकोसिद्धकरतेहैं कि यह आत्मासतोगुण रजोगुण तमोगुण अर्थात् त्रिगुणात्मक जागृतआदि

बुद्धीके स्थान और गुण अपूर्व दुःख सुख रूपों को जानता है अर्थात् केवल साक्षीरूपहै भोक्तानहीं है वह इसप्रकारसे इन्द्रियोंमें प्रवेशकरता है जैसे कि अग्नियुक्त इन्धनमें बायुका प्रवेशहोताहै उसको न आंख देखसक्ती न त्वचा स्पर्श करसक्ती क्योंकि वह आत्मा इन्द्रियोंकी भी इन्द्रीहै वह कानोंसेभी नहीं सुनाजाता और शास्त्र के अनुसार जो आत्माका दर्शनहै उसमें जैसी आकृतिका दर्शनहै वही नाशवान् है श्रोत्रादि इन्द्री अपनी सामर्थ्य से अपने २ बिषयोंको देखती हैं उस आत्माको नहीं देखती हैं वह सर्व्वज्ञ और सर्वदर्शी आत्मा उन सबको देखता है, जैसे कि मनुष्यों ने प्रथम हिमालय पर्व्वत के फलोंको और चन्द्रमाकी पीठकोनहीं देखा इतनी बातसेही यह नहीं कहसक्ते कि वह नहीं है उसीप्रकार यह सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप आत्मा जोकि पहले नेत्रोंसे दृष्ट नहींआया इतनी बातसेभी यह न कहनाचाहिये कि वह नहींहै जैसे कि चन्द्रमामें दृष्ट करताहुआ भी संसार के प्रतिबिम्ब चिह्नको नहीं देखता है अर्त्थात् यह जगतही चन्द्रमामें दृष्टपड़ताहै इसबातको नहीं जानताहै इसी प्रकारका यह आत्मज्ञानहै जो आत्माहै वही ब्रह्महै इसहेतु से वहज्ञान उत्पन्न नहीं हुआहै यहबात ठीकनहीं है क्योंकि आत्मज्ञानही सर्व्वोत्तम स्थान है तात्पर्य्ययहहै कि ब्रह्मको जानकर विपरीतरीतिसे मानतेहैं इससेशास्त्र की आवश्यकताहै, ज्ञानीलोग आदि अन्तमें बुद्धि से रूपवान्को बिनारूप देखते हैं अर्त्थात् वह जिससे प्रकट हुआहै उसी मूलको मानते हैं उस आदि अन्तको देखनेवाले पुरुष सूर्य्यकी गतिको देखतेहैं अर्त्थात् मण्डलको तो चलायमान और मण्डलके भीतर वर्त्तमानसूर्य्य को अचल देखते हैं, उसीप्रकार बड़ेज्ञानी पुरुष अज्ञानतासे दूरवर्त्ती आत्माको बुद्धिरूपी दीपकसे दीखतेहैं और समीपवर्त्ती प्रपञ्चको जानने के योग्य ज्ञानरूप ब्रह्ममेंलय किया चाहतेहैं निश्चयहै कि बिना उद्योगके कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, जैसे कि मछलीमार सूतके जालों से मछलियोंको बांधते हैं और जैसे मृगोंके द्वारा मृगोंका पकड़ना और पक्षियोंके द्वारा पक्षियोंका पकड़ना होताहै और हाथियोंसे हाथी पकड़ेजातेहैं इसीप्रकार जाननेके योग्य ब्रह्मज्ञान से ब्रह्म प्राप्तहोताहै तात्पर्य यहहै कि सजातियोंके द्वारा सजाती पकड़ाजाताहै जो कि ज्ञानभी उसज्ञान स्वरूपका सजातीहै इससे वह ब्रह्मकी प्राप्तिमें उपयोगीहै, सर्पही सर्पके खोजों को देखताहै यह हमने श्रवणकियाहै इसीप्रकार जानने के योग्य और कारण नाम देह में नियत आत्माको सूक्ष्मदेहों के भीतर ज्ञानसे देखताहै, जबबुद्धि कीवृत्तीसे आत्मदर्शनहुआ तब आत्माकी जड़ता सिद्धहुई इस शंकाको इस प्रकार से निवृत्त करतेहैं कि जैसे इन्द्री इन्द्रीके जानने की उत्साह नहीं करती है उसीप्रकार पराबुद्धि उस जाननेके योग्य आत्माको नहीं देखतीहै आशय

यहहै कि वेदान्तकी प्राप्तिके लिये बुद्धिकी वृत्तीकी व्याप्ती है फलकी नहींहै वृत्तीरूप उपाधि के दूर होनेमें भी इसको ब्रह्मही कहते हैं, जैसे चन्द्रमा अमावसके दिन देह रहित होनेसे दृष्ट नहीं पड़ताहै और उस समय उसका अभाव नहीं होताहै उसी प्रकार देहवान् आत्माकोभी जानों प्रत्यक्षदेहसे पृथक् न मालूम होनेवाला चन्द्रमाऽमावस्याको प्रकाश नहीं करताहै ऐसेही वृत्ती या देहसेजुदा यहआत्मा भी दिखाई नहीं देताहै जैसे कि चन्द्रमा दूसरे आकाशको प्राप्तहोकर फिर प्रकाशकरताहै उसीप्रकार आत्माभी दूसरे देहको पाकर फिर अपना प्रकाश करताहै, प्रत्यक्षदेहका जन्म वृद्धिनाश पायाजाताहै वह चंद्रमंडलकाधर्म्महै उसआत्माकानहींहै,जैसे किउत्पत्ति वृद्धिदशासेएकपुरुषही जानाजाता है उसी प्रकार अमावास्या के दिन गुप्तहोनेवाला चंद्रमा भी फिर देहधारी होकर एकही दृष्ट पड़ता है उसीप्रकार बालदशा आदि और देहके रूपान्तरमें भी एकहीआत्माहै--देह और आत्मा का सम्बन्ध तीनोंकालमें नहीं है इसबातको इसप्रकार सिद्धकरतेहैं कि जैसे अन्धकार चन्द्रमाको स्पर्शकरता या त्यागकरता दृष्टनहीं पड़ताहै उसीप्रकार आत्माको देहकास्पर्श करने वाला वा त्यागकरनेवालाजानों जिसप्रकार वहअन्धकार चन्द्रमा और सूर्य सेसंयुक्त देखाजाता है उसीप्रकार आत्मादेहसे संयुक्त मालूमहोता है अर्थात् देह और आत्माका प्रकाश परस्पर में सम्बन्ध रखनेवालाहै जैसे कि चंद्र सूर्यसेभिन्न वह राहुप्रकाश नहीं करता है उसीप्रकार देहसे पृथक् आत्मा भी प्रकाश नहींकरता है जैसे अमावास्याकेदिन सूर्यसे संयुक्त चंद्रमा नक्षत्रों से मिलताहै उसीप्रकार देहसे पृथक् आत्मा कर्म्म फलसे संयुक्त होताहै २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३० ॥

# इकतीसवां अध्याय ॥

मनुजी बोले कि जैसे अस्थूलदेह सोजाताहै और स्वप्न में लिंग शरीर चेष्टाकरताहै और मृतकही स्थूल शरीर से पृथक् होकर विचरता है उसी प्रकार का संसार है और इन्द्रियों से संयुक्त लिंग शरीर भी सोजाता है और सुषुप्ती में अर्थात् स्वप्नावस्था से पृथक् अवस्था में ज्ञान विचरता है, लिंग शरीरके नाश में उससे पृथक् होकर बिचरता है वैसेही मोक्ष है, जानने के योग्य आत्मा को ज्ञान से जानकर अज्ञानसे छूटता है और वह ज्ञान इन्द्रियों के जीतने से होता है उसको इसरीति से सिद्ध करते हैं कि जैसे शुद्धजल में नेत्र से रूपको देखता है उसीप्रकार इन्द्रियोंकी सफाई से ज्ञान के द्वारा आत्मा को देखताहै और जिसप्रकार उसजलके हिलने पर रूपको नहीं देखसक्ता है उसीप्रकार इन्द्रियों की व्याकुलतामें ज्ञान से आत्मा को नहीं देखताहै अ

विद्याअज्ञानसेपैदाहोतीहै और अविद्याही सेचित्त खींचाजाताहै औरचित्तको दूषितहोनेमेंचित्तसे मिलीहुईपांचोंइन्द्रियांभी दोषयुक्तहोजातीहैं--अज्ञानतासे भराहुआ और इन्द्रियों के बिषयों में डूबाहुआ जीवात्मा तृप्तिको नहीं पाता है और अदृष्ट के समान विषय भोग के लिये फिरजन्म लेताहै--इसलोक में मनुष्यकी इच्छापापों से नाशनहीं होतीहै जबपापका नाशहोताहै तबइच्छा भी नाशहोजातीहै बिषयोंके योगसे साधनके बिपरीत सुखदुखकी इच्छा करताहुआ पुरुष सनातन ब्रह्मके आश्रय से ब्रह्म को नहीं पाताहै और पापकर्मके नाशहोनेपर पुरुषोंको ज्ञानउत्पन्न होताहै और जैसे शुद्धआदर्शमें मुख को देखताहै उसीप्रकार बुद्धिमें आत्मा को देखताहै--और विषयोंमें प्रवृत्तइंद्रियोंसे दुखीहोताहै और उन स्वाधीन होनेवाली इन्द्रियों से सुखीहोता है इस कारण चित्तके द्वारा बिषयोंसे इंद्रीनाम आत्मा को हटावे अर्थात् अपने बश में करे--चित्त इंद्रियोंसे प्रथमहै और उसचित्तसे महाउत्तम बुद्धिहै और बुद्धिसे उत्तमोत्तम ज्ञान अर्थात् जीवात्माहै और उस जीवात्मा से श्रेष्ठतम परमात्मा है तात्पर्य्य यह है कि परम्परासे एकको दूसरे में लय करता हुआ ब्रह्मभाव को प्राप्तकरे, उस लयता के निमित्त उत्पत्तिके क्रमको कहते हैं उसगुप्त और शुद्ध चिन्मात्र से ज्ञानात्मा उत्पन्नहुआ उससे बुद्धि बुद्धिसे चित्त चित्तसे पांचों इन्द्रियां और उन पांचों से शब्द आदि बिषय उत्पन्नहुये वह चित्त इन्द्रीआदि से संयुक्त होकर शब्दादिकों को देखता है, जो पुरुष उन शब्दादि विषयों को और सब प्रत्यक्ष बस्तुओंका त्याग करताहै वह मायासम्बन्धी स्थूल सूक्ष्मादि शरीरों को त्यागकर अबिनाशी एकत्वभाववाली मोक्ष को पाता है, जैसे कि सूर्य्य उदयहोकर किरणें प्रकट करताहै और अस्तहोकर उस किरण मण्डल को अपने में लय करताहै,उसीप्रकार से जीवात्मा किरणरूप इंद्रियोंके द्वारा देहमें प्रवेशितहोकर और पांचों इंद्रियोंके बिषयोंकोपाकर अन्तमें आत्म रूपको पाताहै— अब बारम्बार उसकेदेहधारी होनेके कारणको कहतेहैं—कर्म्म में नियत बारंबार बिषयों में प्रवृत्तहोनेवाला यह जीवात्मासुखआदि कर्म्म फल कोपाताहै क्योंकि उसनेप्रवृत्ती प्रधानकर्म्म अर्थात् पितापनको प्राप्तकिया इस हेतुसे निवृत्ती धर्म्मको कहते हैं कि बिषयभोग से पृथक् जीवात्मा की बिषय रूप इच्छादिक दूरहोजातीहैं परंतु बासनारूप रसका नाशनहीं होताहै वहभी आत्माको देखकर नष्टहोजाताहै,जब बुद्धि उन बिषयोंकेद्वारा जिनके कि गुण कर्म हैं चित्तमें वर्त्तमान होतीहै तब वह चित्त ब्रह्मको प्राप्तहोताहै और उसीमें लयहोजाताहै और वहबुद्धि उसपरब्रह्म में प्रवेशकरतीहै जोकि स्पर्श गंध रूप रसादि से रहित चित्तसे बाहर है -- अब अध्यायभर के आशयको समझोकि सबरूपतो चित्तमें लयहैं और चित्तबुद्धिमें और बुद्धिज्ञानजीवात्मा में लयहोते

हैं और जीवात्मा परब्रह्म में लय होजाताहै इन्द्रियों से चित्तकी शुद्धीनहींहोती और चित्तबुद्धिको नहींजानता और बुद्धिआत्माको नहींजानतीहै परन्तु वह सूक्ष्मआत्मा सबको देखता है २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३१ ॥

# बत्तीसवां अध्याय ॥

मनुजीबोले देहकेरोग और चित्तकेखेद वर्त्तमान होनेपर जिसके होतेहुये विचारयोग करनेको समर्थ नहीं होता उसको चिंता नहीं करे अर्थात् निर्भय होकर उसकोदूरकरे दुःखकायही उपायहै कि उसकी चिंता न करे क्योंकि चिन्ताकरनेसे सन्मुखआताहै और अधिक वृद्धिपाताहै, बुद्धिसे चित्तके खेदको दूरकरे और औषधियोंसे देहके रोगोंको दूरकरे यहपूर्णबुद्धिवाले की सामर्थ्यहै बालक बुद्धि अज्ञान से समताको नहीं प्राप्तहोती —तरुणता, स्वरूप, जीवन, धनसमूह, नीरोगता, बांधवोंमें निवास यह सबबातें सदैव नहींरहतीं अर्थात् सब नाशवान्हैं इनमें पंडित कभी इच्छा न करे—अकेला मनुष्य सबइलाके का दुःख शोचने को योग्यनहीं है इससे शोचरहित उपाय करे इसजीवन में सुखसे अधिकतर दुःखहै यहनिस्सन्देह बातहै कि इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रीति करनेवाले की भूलसे अनिच्छा से मरण होताहै, जो मनुष्य इनदोनों सुखदुःखों को त्यागकरता है वहअपारब्रह्मको प्राप्तकरताहै और ब्रह्म प्राप्त करनेवाले पण्डित शोच नहीं करते हैं सबप्रकारके धन दुःखसेही मिलते हैं और वह रक्षा के कारण सुखदायीनहीं हैं और दुःखमेंप्राप्त नहींहोते हैं इनके नाशकीचिंता न करे इसप्रकार दुःखके दूरकरनेकी युक्ति वैराग्यको कहकर सुख मिलनेकी युक्ति ब्रह्मात्मज्ञानको कहतेहैं, जब ज्ञानजाननेके योग्यहुआ तब चित्तको उसज्ञानकागुण अर्थात् धर्मजानो और जबवह चित्त ज्ञानेन्द्रियोंसे मिलताहै तब बुद्धि वर्त्तमान होती है —बुद्धिका जो लयकरनाहै वही ब्रह्मकीप्राप्ती है इसको कहतेहैं कि जबकर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले संस्कारों से मिलीहुई बुद्धि चित्तमें वर्त्तमानहोती है तब ब्रह्मज्ञान होता है वहबुद्धि, ध्यानयोग से प्राप्त होने वालीसमाधिसे उदयहोती है —वह गुणवती बुद्धि अज्ञान से विषयों में वर्त्तमान होतीहै जैसेकि पहाड़के शिखर से निकलकर जलनदियों में प्राप्तहोताहै, जब ध्यानको जो कि सबकामूलहै चित्त में पाताहै तबब्रह्मजानाजाताहै जिसप्रकार पत्थरपर सुवर्णकी रेखा, जो ब्रह्मज्ञान इसप्रकारसे जानाजाताहै जैसे कि पत्थरपर सुवर्णकीरेखा ऐसी दशामें उसकी चैतन्यता प्रकट नहींहोती यह शंकाकरके कहते हैं कि चित्त जो इन्द्रियों के विषयों का दिखलानेवालाहै वह समक्ष गुणों का अपेक्षीहोकर निर्गुणको नहींदिखलासक्ताहै, इनइन्द्रीरूप

सबद्वारों को बंदकरके संकल्पमात्रसे नियतहो उनको बुद्धि में लयकरके इस आत्मारूप एकाग्रता को पाकर उस अद्वैतता से ब्रह्मको पाता है, इसलय के क्रमको युक्तिसेभी सिद्ध करतेहैं, शब्दतन्मात्रा आदि अपंचीकृत भूतनाम है उनका नाशसुषुप्ती में होनेपर उनके कारणरूप महाभूत नाशहोते हैं इसीत-रह चित्तकारण में लयहोनेवाला कार्य अपने दोषसे कारणको भी दोषसंयुक्त करता है जैसे कि जल में डालाहुआ पारा जल के खारको अपने उत्पन्नकिये हुये रससे दूषित करताहै—इस संदेहको कहते हैं कि जब निश्चयात्मक रूप गुणसे संयुक्त अहंकार में घूमनेवाली बुद्धि चित्त में बर्त्तमान होतीहै तब बुद्धि भी चित्तरूप होजाती है, मीठाजल निमक के पारे का कारण नहीं होता इसकारण वहदोष अन्य बस्तु के मिलाने से होताहै जब त्रिगुणात्मक चित्त अहंकाररूप कहाजाता है तब अन्यपदार्थ निर्गुणमें लय होनेवाला भी अपने धर्मसे दूषित करताहै इसशंकाको ध्यानसे सुनो कि वहअहंकार जब रूपआदि विषयोंके साथगुणोंको प्राप्तकरताहै तब सबगुणोंको लयकरके निर्गुणब्रह्मको प्राप्त करताहै जब बुद्धि आदिका लयन होताहै तब उनमेंलयहोनेवाला चित्त स्वभावस्था और प्रलय में फिर उठखड़ा होताहै क्योंकि उसके कारण का तो नाश नहींहुआ आशय यहहै कि रस्सीमें सर्पकी भ्रांतीके समान होनेसे वह माया ब्रह्मको दूषित नहीं करसक्ती और अव्यक्त नाम आदि जो चैतन्यके गुणहैं उनका स्वरूप कहना कठिनहै उसको भी कहतेहैं यहां बिज्ञान में उस माया के समान कोई दृष्टांत नहीं है, जहां कि बचन का ब्यापार नहीं उस विषय को कौन प्राप्त करसक्ता है इसीकारण से सगुण आदि से उत्पन्न होने-वाले साक्षात्कारसे आत्मतत्त्व को निश्चय करना चाहिये ऊपर कहीहुई रीति से तत्त्वदर्शी का गुप्तप्रकट एकसा है उसमें कोई अंतर नहींहै जैसे कि सुवर्ण और सुवर्ण के कुण्डल दोनों एक हैं और पृथक् भी हैं इसीप्रकार यहभी है-विषयों से रहितहोने से बुद्धि ब्रह्मकोपाती है, जैसे कि पांचोंइन्द्रियां स्वभाव-स्थामें अपने कर्मोंसे छूटजाती हैं उसीप्रकार परब्रह्म भी कारण को त्यागकर जन्मांतर रूप औरमायासेपरे है-इसप्रकार जीवात्मा स्वभावसेसंसारकी ओर बर्त्तमान होतेहैं और संसारसे निबृत्ती होनेपर परब्रह्मकी ओर लौटतेहैं अर्थात् ब्रह्मभाव को पाते हैं और स्वर्गादिकको भी पाते हैं जीव, प्रकृति, बुद्धि, सब विषय, इन्द्रियां, अहंकार, अभिमान इनसबको भूत कहतेहैं, सदैव प्रवाहयुक्त आकाशादिका नाशकहां से है इस शंकाको निबृत्त करतेहैं कि इसभूतसमूह की पहली उत्पत्ति प्रधानसे होती है, और दूसरी उत्पत्ति बीज अंकुरकी रीति से होतीहै ज्ञानी पुरुष पंचतन्त्र एकादश इन्द्री और अहंकारसे पंचमहाभूतों की उत्पत्तिको रोकता है अर्थात बिशेषको अविशेष में लयकरता है, धर्म से

कल्याणकी वृद्धिहोती है और अधर्म से अकल्याण बढ़ताहै और संसार की प्रीति में फँसाहुआ मनुष्य समयपर मायाके लयको करताहै और वैराग्यवान् ज्ञानी मुक्तिको पाताहै २९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्वात्रिन्शोऽध्यायः ३२ ॥

# तेंतीसवां अध्याय ॥

मनुजीने कहा कि जब अपने विषयों समेत पांचोंइन्द्रियां चित्त बुद्धि से संयुक्त स्वाधीन होतीहैं तब वहब्रह्म इसप्रकार दृष्टपड़ता है जैसे कि मणि में प्रविष्टसूत्र होताहै आत्माकी एकता सिद्धकरनेके लिये इसदृष्टांतसे सबस्थानोंमें आत्माकी व्याप्तीको कहते हैं फिर जिसप्रकार वहखानका सोना स्वर्ण मुद्रिका आदि में भी वर्तमान होताहै और मोती मूंगोंके दानोंमें भी होता है उसीप्रकार आत्मा अपने कर्मोंसे गौ घोड़ा मनुष्य हाथी मुर्गा कीटपतंगों के देहोंमें चित्तलगानेवाला है, यह जिस जिस देहसे जो जो कर्मकरता है उस उस देहसे वैसेही फलको पाताहै, एकरसवाली पृथ्वी औषधीरूप अर्थके अनुसार होतीहै उसीप्रकार कर्म्मोंके पीछे चलनेवाली बुद्धीहै जिसका कि साक्षी आत्माहै—बुद्धीके अनुसार कर्मकी इच्छाहोय और उस इच्छा के अनुसार उद्योगहोय और उद्योगके अनुसार कर्महोय उसके पीछे कर्मरूप मूल रखने वाला फलहोय, फलको कर्मसे उत्पन्नहोनेवाला जाने उसीप्रकार कर्मको बुद्धि आदि से और उस बुद्धिआदिको जीवात्मासे उत्पन्न होनेवाला जाने, वह जीवात्मा जड़ चैतन्यरूप है अर्थात् जीव जड़ और आत्मा चैतन्य है, ज्ञान बुद्धि आदि और संचितकर्मोंके नाशहोनेपर जोदिव्यफल ब्रह्मज्ञाननामप्राप्त होता है वहजानने योग्य ब्रह्म में वर्त्तमान है अब जानने के योग्य ब्रह्म के स्वरूपको कहते हैं योगी जन उसको देखते हैं और विषयों में बुद्धि लगाने वाले अज्ञानी उसबुद्धि में वर्त्तमान ब्रह्मको नहीं देखतेहैं इसलोकमें पृथ्वीरूप से जलरूप बड़ाहै जल से अग्नि, अग्नि से वायु, वायुसे आकाश बड़ा है और उससे भी बड़ाचित्त है चित्त से बुद्धि बुद्धि से बड़ा काल है काल पुरुष से वह विष्णु भगवान् श्रेष्ठ है जिसका कि यह सब जगत् प्रकटहै उस ईश्वर का आदि मध्य अंत नहीं है वह अविनाशी आदि मध्य अंतके न होने से सब दुःखों से पृथक् है उसको परब्रह्म कहते हैं वह ज्योति परमपदहै उसको जानकर कालपुरुषके देशसे छूटकर मोक्षको प्राप्त होतेहैं यह मुक्त पुरुष गुणों में प्रकाश करते हैं, ब्रह्मनिर्गुण होनेके कारण उनगुणों से प्रधानहै इसीप्रकार निवृत्ती लक्षणवाला धर्ममोक्ष के लिये कल्पना कियाजाता है अब वेदपाठ धर्मको दिखातेहैं—यजुर्वेद और सामवेदकी ऋचा कारणरूप देहोंमें जिह्वा

के अग्रभागोंपर वर्त्तमान होती हैं इसी हेतुसे युक्तिसे होनेवाली और विनाश वानहैं यहबात ब्रह्ममें बिपरीत हैं इस निमित्त ब्रह्म उसको नहीं चाहता है ब्रह्म युक्तिसे सिद्धहोनेवाला नहीं है और आदि मध्यान्त रहित होकर यजु साम-वेदोंकी ऋचाओंका आदि कहाजाता है और जब आदिहै तो अंत अवश्य हीहोगा इससे ब्रह्म अनादि कहाहै आदि अन्त न होनेसे वहब्रह्म अनंतअवि-नाशी है और अबिनाशी होनेसे आनन्दरूप है इसीकारण मानापमान से पृथक्है इस उन्नीस श्लोकसे बत्तीस तकका अभिप्रायहै कि मनऔर आत्मा के संग होने में मनका धर्म आत्मामेंनहींहोता- जिस में सत्वगुण प्रधान है वहमन जब प्रकृतिको प्राप्तहोताहै तब प्रकृति और गुणोंको त्यागकर निराकार को प्राप्तहोकर उसी निराकार में मिलजाताहै, वह निराकार देखनेमें नहीं आता है तो उसको दृष्टांतों से मुझे बताइये मनुजी ने कहा कि जो कहने में और देखने में नहीं आता उसको दृष्टांतोंसे कैसे बतलासक्ते हैं इससे जो अव्यक्त और निराकार आत्मा है उस में श्रवण मनन निदिध्यासनादि से बिचारकरे फिर अपने में और ब्रह्मभाव में कुछ भेद न रक्खे वह निश्चय ब्रह्मज्ञान को पाता है जो सर्वगुण रहित मति से ब्रह्मज्ञान में तत्पर हैं वह अवश्य ब्रह्मकी प्राप्ति करते हैं और जो गुणसमेत बुद्धि से ध्यान करते हैं वह कभी ब्रह्मको नहीं प्राप्तहोते, जैसे कि सुषुप्ति अवस्था में इन्द्री और कर्मों से रहित होतेहैं उसीप्रकार मायासे जो पृथक् रहतेहैं वह ब्रह्मको पाते हैं जो मनुष्य इस संसारमें प्रकृतिसे युक्त हैं वह ज्ञानके उदय होने से स्वधर्म निष्ठहो मायाको त्याग ब्रह्म में मिलजाते हैं—जब प्रलयहोतीहै तबअज्ञानीजन प्रकृति में मिलतेहैं और जो ज्ञानवान् हैं वह निराकार ब्रह्ममें मिलजाते हैं ३२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे मनुबृहस्पतिसम्वादेत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३ ॥

# चौंतीसवां अध्याय ॥

ब्रह्मके साक्षात्कार को मोक्षका कारण आप ने ऊपर वर्णन किया उस में सगुण ब्रह्मका ज्ञान होने से निर्गुण का दर्शनहोताहै इस निमित्त पहले मह-र्षियोंके मुखसे श्रीकृष्णजीको परमात्मारूप सुनकर श्रीकृष्णजीके गुणों का कीर्त्तन करने के निमित्त राजायुधिष्ठिरने कहा कि हे भरतर्षभ महाज्ञानी पि-तामह मैं कमल लोचन श्रीकृष्णजीको जानना चाहताहूं कि वह अबिनाशी ईश्वर अजन्मा सर्वव्यापी सब जीवों के उत्पत्तिस्थान और नाशवान् देहके धर्मों को त्यागे नारायण इन्द्रियोंके स्वामी गोविंद और केशव जिन का नाम है, भीष्मजीबोले कि हेराजन् मैंने परशुरामजी, देवर्षि नारदजी और व्यासजी के बचनसे इसप्रयोजनको सुनाहै—हेतात महातपस्वी आसित, देवल, बाल्मीकि,

मार्कण्डेय ऋषि इत्यादि इन गोविन्दजी के अनेक अद्भुत महात्मों को कहते हैं, हे भरतवन्शी युधिष्ठिर यह श्रीकृष्णजी सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य ज्ञान यश लक्ष्मी वैराग्य और धर्म्म के स्वामी ईश्वर प्रभु पूर्णरूप देहों में निवास करने वाले व्यापकसर्वरूप बहुतप्रकारसे सुनेजातेहैं, लोकमें ब्राह्मणोंनेइसशार्ङ्ग धनुषधारी महात्मासें जो जो माहात्म्य निश्चयकिये उनकोसुनो किउसभूतात्मामहात्मा ने पंच महाभूत होकर पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाशको प्रकट किया, और वेद में लिखा है कि वह संसारको उत्पन्न करके उसीमें आप प्रविष्ट हुआ इस आशय को सिद्ध करतेहैं कि उन सबजीवोंके ईश्वरने पृथ्वी आकाशादिको उत्पन्न करके जल में निवास किया, जाग्रत आदि दशा के अन्त में नाश होनेवाली जीव सृष्टिको कहतेहैं उसजलमें शयन करनेवाले सब बासनारूप उस पुरुषोत्तमने सबजीवोंके पहले अहंकारको उत्पन्न किया, वह भूत भविष्य काल और जीवों को धारण करता है, उसके पीछे उस महाबाहु पुरुषोत्तम बिष्णुकी नाभि में कमल उत्पन्न हुआ वह सूर्य्य के समान रूपवान्था उस कमलमें सबजीवोंके पितामह सब दिशाओंको प्रकाशकरतेहुये भगवान् ब्रह्मा जी उत्पन्नहोतेभये उनके पैदाहोनेपर अंधकारसे प्रथम उत्पन्नहोनेवाले योगका विघ्नकर्त्ता मधुनाम महाअसुर उत्पन्नहुआ उस भयंकर और भयानकरूपको पुरुषोत्तम चिदात्माने ब्रह्माजीकी प्रशंसाकरते२ मारडाला उसकेमारनेसे सब देवता दानव मनुष्यों आदिने उस पुरुषोत्तमका नाम मधुसूदन रक्खा फिर ब्रह्माजी ने मानसी पुत्र उत्पन्नकिये उनके यहनामहैं दक्ष, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्ति, पुलहक्रतु, योगी और अज्ञानियोंकी मानसी उत्पत्ति एकसीहै तौभी सावधान चित्त योगियों की उत्पत्ति दुःखदायी नहीं है, अज्ञानियों की उत्पत्ति विपरीततासे दुःखदायीहै क्योंकि ज्ञान और अज्ञानसेही मोक्ष और बंधनहोता है यह प्रसिद्धहै जैसे कि प्रजापतिजी के असुर और देवता पुत्र हैं जिनमें छोटेपुत्रदेवता और बड़ेपुत्र असुरहैं वहपरस्परमेंशत्रुहैं परन्तुशमदमादि गुणोंसे देवता उनको बिजयकरते हैं और बड़े गिनेजाते हैं और कामआदि दुर्गुणोंसे संयुक्त असुरपराजयहोतेहैं, तात्पर्य्ययहहै कि कामआदिकोअसुरऔरशम दमादिको देवता जानना चाहिये हेतातबड़ेभाई मरीचिनेमानसी तेजस्वी और ब्रह्मज्ञानियोंमें उत्तम कश्यपनामपुत्रको उत्पन्नकिया और हेयुधिष्ठिर ब्रह्माजी ने मरीचि सेभी प्रथम होनेवाले पुरुषको अंगूठेसे उत्पन्न किया वह दक्षप्रजापति नामसे प्रसिद्धहुये प्रथम उनप्रजापतिजीके तेरहपुत्रियां उत्पन्न हुईं उन सब में दिति बड़ीथी उनसब के मरीचि के पुत्र महात्मा कश्यपजी पतिहुये उसके पीछे दक्षने दशपुत्रियां उत्पन्न करके धर्मको ब्याहदीं उसधर्मके पुत्र बड़े तेजस्वी अष्टवसु, एकादशरुद्र, विश्वेदेवा, साध्य और मरुद्गण उत्पन्न

हुये उनके सिवाय दक्षकी सत्ताईस कन्या और हुई उन सबके पति चन्द्रमा हुये—उन छोटीकन्याओं ने गंधर्व घोड़ीपशु—गौ—किंपुरुष, मछली और पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले वृक्षों को उत्पन्नकिया और अदिती ने महाबली देवताओंको उत्पन्नकिया उनमेंही प्रभु वामनजीने अवतारलिया उनवामन जीने असुरोंसे तीनचरण पृथ्वीमांगकर देवताओंकी वृद्धिकी और दानवोंकी पराजयहुई और आसुरीप्रजा दितीसे उत्पन्नहुई दनुनामस्त्रीने विप्रचित्तीआदि दानवोंको उत्पन्न किया और दिती ने महाबली असुरों को उत्पन्न किया, मधुसूदनजीने दिनरात्रि कालऋतुप्रातःकालसायंकाल आदिको उत्पन्नकरके बादल और स्थावर जंगमजीवों समेत पृथ्वीको उत्पन्न किया तदनन्तर महा प्रभु श्रीकृष्णजीने मुखसे असंख्यब्राह्मणों को पैदाकिया भुजाओंसे क्षत्रियों को जंघाओंसे वैश्यों को और चरणोंसे शूद्रोंको उत्पन्न किया इस प्रकार चारों वर्णोंको उत्पन्न करके समष्टि अहंकारको सबजीवों का स्वामी किया फिर उसीपुरुषोत्तमने वेदविद्याके विधाता ब्रह्माजीको और भूत और मातृगणों के स्वामी विरूपाक्षजीको उत्पन्नकिया फिर विष्णुजीने पापीजन और पितरों के स्वामी यमराज को और सबधनके स्वामी कुबेरजी को उत्पन्न किया इसी प्रकार जलजीवों के और जलमात्रके स्वामी बरुणजी को उत्पन्नकिया और इन्द्रको सब देवताओंका स्वामी बनाया जहां तक जीवते रहनेकी जीवोंकी इच्छा हुई तबतक जीते रहे और यमराजका भय नहींहुआ उन सबमें विषय धर्मनहीं था केवल संकल्पसेही संतान उत्पन्न होती थी तदनंतर त्रेता युग में स्पर्श से सन्तान उत्पन्न होतीथी उनमें भी विषयधर्म नहींहुआ परन्तु द्वापर में प्रजाओंका धर्म विषयहुआ इसीसे कलियुग में मनुष्योंको दण्डप्राप्तहुआ इसप्रकार से यहजीवोंका स्वामी सर्वव्यापी कहाजाताहै और हेपुत्र युधिष्ठिर नरोत्तम अन्धक, गोह, पुलिन्द, शबर चुचुक यहसब मनुष्य जाति के लोग मद्रकोंसमेत दक्षिण देशोंमें रहनेवालेहैं और यौनक, कंबोज, गान्धार, कि-रात, शबर यहसब उत्तरके देशोंमें रहनेवाले हैं, हे राजा यहपापात्मा चांडाल काक और गधेके समान धर्मधारी इसपृथ्वीपर घूमतेहैं और हे युधिष्ठिर यह मनुष्य सतयुगमें इसपृथ्वीपर नहीं रहते हैं त्रेतायुग से इन की वृद्धिहोती है, फिर उसमहाघोर संध्याकालके वर्त्तमान होनेपर राजालोग परस्परमें युद्धादि कोंकोकरतेहैं इसप्रकारसे यहसंसार महात्मा विष्णुजीसे प्रकटहुआ इसदेवदेव का वृत्तांत सबलोकोंके घूमनेवाले देवऋषिने मुझसेकहा और श्रीकृष्णजीकी प्राचीनताको आपभीमाना इसप्रकारसे यहसत्यपराक्रमीकमल लोचन केशव जीभी ध्यानगम्यहैं यह केवल मनुष्यही नहीं हैं किन्तु साक्षात्परमात्माहैं४६॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेभीष्मयुधिष्ठिरसम्वादेचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४॥

# पैंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह, पहले कौन प्रजापति हुये और कौन से महाभाग ऋषिहरएक दिशामें विघ्नों के नाशकर्त्ता हुये, भीष्मजी बोले कि हे भरतर्षभ सुनो सबसे पहले स्वयंभू ब्रह्माजीहैं और उनब्रह्माजी के सातपुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्ति, पुलह, कृतु—और महाभाग वशिष्ठ जोब्रह्मा जी केही समानहैं पुराणोंसे निश्चय किये हुये यहसात ब्रह्माजी के पुत्र हैं इनके पीछे सब प्रजापतियोंको जानो, अत्रि के वंशमें उत्पन्न ब्रह्मयोनि सनातन भगवान् प्राचीन वही हुये उनसे प्राचेतसनाम दशपुत्रहुये उनदशों का एकपुत्र दक्षप्रजापति नामहुआ लोकमें उसके दोनाम कहेजाते हैं अर्थात् दक्ष और (क) मरीचि के पुत्र कश्यपजी हुये उनकेभी दो नाम बोले जाते हैं अर्थात् अरिष्टनेमि, और कश्यप अत्रिका औरसपुत्र पराक्रमी श्रीमान् राजा सोमहुआ जोकि हजार दिव्य युगोंतक चारोंओरसे सेवितहोगा हैराजा भगवान् अर्य्यमा और उनके पुत्र जोचन्द्रमा हैं वहसब भुवनों के उत्पन्न करनेवाले देवता स्वामीरूपहैं और राजा शशिबिंदुकी दशहजार स्त्रियांथीं उसने प्रत्येक स्त्री में एक २ हजार पुत्र उत्पन्न किये इसप्रकारसे उस महात्माके एक किरोड़ पुत्रहुये वहकिसी दूसरे प्रजापतिको नहीं चाहतेहैं यह राजा शशिबिन्दुकी संतानकी संख्या प्राचीन ऋषिकहतेहैं औरसंकल्पसे हुये हैं,यहप्रजापति जीका बड़ावंश वृष्णिवंशका उदयकरनेवालाहै,यहतोयशस्वी प्रजापति वर्णन किये इसके पीछे तीनों भुवनों के ईश्वर देवताओंको कहता हूं कि भव, अंश, अर्यमा, मित्र वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, महाबल, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवीं विष्णु कहेजाते हैं यही कश्यपजीके पुत्र द्वादशसूर्य हैं, नासत्य, दस्र यहदोनों अश्विनीकुमार भी कहेजातेहैं यह दोनों आठवेंसूर्य्य महात्माके पुत्र हैं, पहले वह देवता और नानाप्रकारके पितृ देवताकहे, त्वष्टाकाबेटा बड़ा यशस्वी श्रीमान् बिश्वरूपहै अजैकपाद, अहिर्बुध्नि, विरूपाक्ष, रैवत, हर,बहुरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, सावित्र जयन्त, पिनाकी, अपराजित, यहग्यारहरुद्रहैं और महाभाग आठवसु प्रथमही कहे गये, प्रजापति मनुजी के पहले इतने प्रकारके देवता प्रकटहुये वहदेवता और पितृ नामसे दो भेदके हैं प्रथम शील और यौवन से उत्तम हैं और दूसरे शुद्धभाव में उत्तमहैं आदिसे देवताओंके गण मरुतनामहैं इसीप्रकारसे बिश्वेदेवा और अश्विनीकुमार हैं उनमें आदितीके पुत्र क्षत्री और वैश्य मरुतदेवताहैं और उग्रतपस्वी अश्विनीकुमार शूद्र कहेजाते हैं और अंगिरावंशी देवता ब्राह्मण कहेजाते हैं सब देवताओंके यह चार वर्णकिये जो पुरुष प्रातःकाल उठकर

शुद्धता पूर्वक इनदेवताओंका अच्छेप्रकारसे स्मरणकरे वह अपने कियेहुये या दूसरे की प्रीतिसे कियेहुये सबपापोंसे छूटताहै, यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, औषज, कक्षीवानवल, अङ्गिरस यह सब मेधातिथिके पुत्रहैं और कण्वऋषि के वर्हिषदहैं इसीप्रकार तीनोंलोकोंके उत्पन्न करनेवाले सप्तऋषि पूर्व्वदिशामें वर्त्तमान हैं और उन्मुच, विमुच, स्वस्ति और पराक्रमी आत्रेय प्रमुच, इध्मवाहु, भगवान् दृढ़व्रत, मित्रावरुणीके पुत्र और प्रतापी अगस्त्य यहसब ब्रह्मर्षिलोग सदैव दक्षिण दिशामें वासकरते हैं—उषंगु, कवष, धौम्य, पराक्रमी, परिव्याध, एकतद्वित, त्रित यह तीनों ब्रह्मर्षि और अत्रि के पुत्र प्रभुभगवान् सारस्वत यहमहात्मा पश्चिमदिशामें नियत हैं, अत्रि, वशिष्ठ, महर्षि, कश्यप, गौतम, भारद्वाज, विश्वामित्र, कौशिक, और ऋचीकके पुत्र भगवान् जमदग्नि यह सातों उत्तर दिशामें वर्तमानहैं यहसब तेजस्वी लोग चारोंदिशा में वर्णन किये, लोकों के उत्पन्न करनेवाले यह महात्मा साक्षीरूपहैं रक्षाचाहनेवाला मनुष्य जो इनका कीर्त्तन करेगा वहसब पापोंसे छूटेगा और आनन्द से अपने स्थानको जायगा २७॥

इतिश्रीमहाभारते शांतिपर्वणि मोक्षधर्मेपंचत्रिंशोऽध्यायः ३५॥

## छत्तीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिरबोले कि हे युद्धमें सत्य पराक्रमी पितामह इनअविनाशी श्रीकृष्ण जीके सम्पूर्ण गुण तेज और पूर्वसमयमें जो कियाहुआ कर्म है उसको और तिर्य्यक्योनिमें प्रभुने कैसे किस निमित्त रूपको धारण किया यह सबबातें ब्योरे समेत आप मुझसे वर्णन कीजिये मुझे सुननेकी बड़ीउत्कण्ठाहै—भीष्म जीबोले कि पूर्व समय में आखेट करताहुआ मैं मार्कंडेयजी के आश्रममें प्राप्त हुआ वहां हजारों मुनियों को बैठाहुआ मैंनेदेखा कि उन मुनियों ने देखकर मधुपर्क से मेरा पूजन किया मैंने उस पूजाको लेकर ऋषियोंको प्रसन्न किया वहां कश्यप महर्षिजीने जो कथा कही वह आनन्ददायी कथा तुम चित्तलगाकर सुनो—पूर्वकालमें दानवों में उत्तम क्रोध लोभमें प्रवृत्त नर्कासुर आदि सैकड़ों महाबली असुर पराक्रमके मदमें मदोन्मत्त होगये और देवताओं से ईर्षा करके महादुःख देनेलगे तब महापीड़ावान् होकर देवता और ऋषियोंने महाबली घोररूप दैत्योंसे व्याप्त पृथ्वीको भी महापीड़ित देखा कि भारे बोझ के डूबनेहीवालीथी यह दशा देखकर सब देव ऋषियोंने भयभीतहोकर ब्रह्मा जीसे यहसब बृत्तांत इसप्रकार से कहा कि हे ब्रह्मन् हम दानवों से कैसे बचें तबब्रह्माजी ने कहा कि यह मैंने बुद्धिसे विचार किया है कि यह दानवलोग बड़ेबड़े बरोंको पाकर पराक्रम और अहंकारसे युक्त देव देव पुरुषोत्तम विष्णु

जी को नहीं जानते हैं और पृथ्वी के नीचे वसते हैं वह इनकी अनीति को देख वाराहरूप बनकर वहांहीं इनको मारेंगे यह ब्रह्माजी की सुखदायी वाणी को सुनकर हृदयका शोच दूरकर चित्त में प्रसन्न हुये, तदनन्तर श्रीविष्णुजी वाराहका रूप धारणकर वहां गये जहां कि पृथ्वीमें सबदनुजों का समूहरहता था वहां राक्षसोंने इसवाराहरूप विष्णुको देखकर बड़े २ पराक्रम करके उसको पकड़नेकी इच्छाकी और पकड़कर चारोंओर से खींचनेलगे जब उनके बल से वह नहीं चलायमान हुये तब वाराहजीने महाभयानकरूप करके ऐसाघोर शब्द किया कि तीनोंलोकोंमें व्याप्त होगया और इन्द्रादिक देवता महाभय भीत होकर विचार करनेलगे कि यहशब्द कहां से हुआ परन्तु किसी ने इस भेदको नहींजाना सर्पलोकमेंभी सब महा भयभीत हुये और ज्ञान सबकेजाते रहे ऐसे शब्दके सुनतेही सब दैत्य महा भययुक्तहो पृथ्वीमें गिरपड़े और अपने २ पुरुषार्थों को सबने त्याग दिया उससमय वाराहरूपने महाउग्ररूप धारणकरके उनके अस्थिमांस मज्जा रुधिर आदिको अपने तीव्र नखोंसे विदीर्ण किया तब सब देवता घबरायेहुये उदासचित्त होकर ब्रह्माजीसे यहवचन बोलते हुये कि हे जगत्पति ब्रह्माजी यह महाभयानक घोरशब्द कहांसे और किसने किया जिसको सुनकर सब संसार व्याकुल होगया उसको आप कृपा करके कहिये, इतने में वाराहजी भी दैत्योंको मार महाक्रोधरूप धारण किये पृथ्वी से बाहर निकले तब ब्रह्माजीने देवताओं से कहा कि देखो यही वाराहरूप विष्णु भगवान्‌जी तुम्हारी रक्षा के निमित्त धारणकर दैत्यों का नाश करके आतेहैं इन्होंनेही दैत्योंके मारने के निमित्त वह भयानकशब्द कियाथा तुम अपने चित्तमें चिन्ताको मतकरो और आनन्दपूर्वक अपने स्थानोंको जाओ सो हे युधिष्ठिर जिन श्रीमधुसूदन विष्णुजी ने वाराहरूपधारण किया वहयही कमललोचन योगेश्वर महात्मा सबजीवोंके उत्पन्न करनेवाले जगत्पति श्री कृष्णजी हैं यही कालरूप होकर नाशकरतेहैं यह वाराहअवतार धारणकरने का कारण तुमसे कहा अब क्या सुनना चाहते हो ३६ ॥

इतिश्रीमहाभारते शांतिपर्वणिमोक्षधर्मे षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६ ॥

## सैंतीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि प्रथम तीनअध्यायों में वह ईश्वरकी उपासना वर्णनकी जिससे कि शीघ्रयोग सिद्धी होती है और योग में जो रोग दुःखादि प्रकट होते हैं उनका नाश होता है अब आप प्रधान योगको कृपाकरके कहिये जिससे कि मोक्षकी प्राप्ति होय—भीष्मजी बोले कि इसस्थान में उसप्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें शिष्य और गुरुका परस्पर में मोक्ष सम्बन्धी

सम्बाद है—बड़े सावधान बुद्धिमान कल्याण के खोजी किसी शिष्यने किसी महा तेजस्वी ऋषियों में उत्तम महात्मा जितेन्द्रिय आचारवान ब्राह्मण को मिलकर उनके दोनों चरणों में शिर झुकाकर हाथ जोड़कर उनसे यहबचन कहा कि हे महात्मा जो आप मेरी उपासना से प्रसन्नहैं तो कृपाकरके मेरेसं-देहको दूर कीजिये कि मैं कहां से आया और आप कैसे और कहां से उत्पन्न हुये इसको और इस परमश्रेष्ठ ब्रह्मको बर्णन कीजिये और सब जीवों में और पुरुषों में उत्तम दशा बिपरीतता, नाश, उदय इत्यादि बातें कैसे सदैव हुआ करती हैं और वेदों में भी जो लौकिक और न्यायिक बचनहैं उनको भी आप कहने को योग्यहैं—गुरुजी बोले कि हे महाज्ञानी शिष्य तुम इस वेदकी गुप्त और उत्तम ब्रह्म बिद्याको जो कि सब बिद्या और शास्त्रोंका धन है अर्थात् धनके समान रक्षाके योग्य वा उपकारी है उसको सुनो कि वेद और संसार का आदि प्रणवरूप सर्ब व्यापी श्रेष्ठ वासुदेवही सत्यता ज्ञान क्षमा शान्त चित्त और शुद्धभाव रूप हैं जिसको कि वेद के जाननेवालों ने सम्पूर्ण रूप और देहों में निवास करनेवाला सनातन सर्ब ब्यापी उत्पत्ति प्रलयका करता गुप्त और अबिनाशी ब्रह्म कहाहै वही श्रीकृष्णजी हैं ब्राह्मण ब्राह्मणसे क्षत्री क्षत्री से वैश्य वैश्यों से शूद्र शूद्र से कहने के अधिकारी हैं इस से तुम इस इतिहासको मुझ से सुनो तुम श्रीकृष्णजी की कथाके सुननेसे कल्याणभागी होगे वह परमात्मा कृष्ण आदिअन्त रहित उत्पत्ति लयका कारण कालचक्र रूप है इस सबजीवों के ईश्वर में तीनों लोक चक्र के समान घूमते हैं इसीको केशव पुरुषर्षभ कहते हैं, जिस रूपांतर दशा रहित ने पितृ, देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, असुर और मनुष्यों को और वेद, शास्त्र, सनातन लोक धर्म्म और प्रलयका स्थान रूप सबल मायाको भी उत्पन्न किया जिसप्रकार कि ऋतुओं के बदलने में नानाप्रकार के रूप दिखाई देते हैं उसीप्रकार यज्ञों में बहुतसे भाव प्रकट होते हैं इसको सिद्ध करते हैं कि यज्ञोंके मध्य में जो जो काल के योग से प्रकट होताहै उस उस विषयमें ब्यवहार बुद्धी से उत्पन्न होनें-वाला ज्ञान प्राप्त होता है यज्ञ के अन्त में इतिहास समेत गुप्त होनेवाले वेदों को ब्रह्माजी से उपदेश पानेवाले महर्षियों ने अपने तप के द्वारा प्राप्त किया, वेदके ज्ञाता भगवान ब्रह्माजी हैं और वेदान्त जाननेवाले बृहस्पतिजी हैं और जगत् का उपकारी नीति शास्त्र भार्गव शुक्रजी ने निर्माण किया, गां-धर्व वेदको नारदजी ने, धनुष धारण को भरद्वाज ने, देव ऋषियों के चरित्रों को गार्गीऋषिने, आयुर्वेद को कृष्ण और अत्रिऋषिने जाना उन्हीं कहने-वालों ने न्याय सांख्य पातंजलि शास्त्रभी कहे युक्ति, वेद और प्रत्यक्ष प्र-माणों से जो ब्रह्मका बर्णन कियागया उसीकी तुम उपासना करो वह परम

ब्रह्म आदि कारण रहित है, उसको देवता और ऋषियों ने भी नहीं जाना वह अकेलाही षडैश्वर्य्यवान् सबका धारण करता सर्व देह निवासी प्रभु परमेश्वर अपने को आपही जानता है और नारायणसे उत्तम ऋषियोंकेसमूह देवता, असुर और प्राचीनराजऋषियोंने उस पुरुषोत्तम सब दुःखोंके औषधी रूप ब्रह्मको जाना है—जब प्रकृति इस पुरुषके मनकी इच्छाके भावको उत्पन्न करतीहै और यहजगत पहलेही धर्म्म अधर्म्म से संयुक्तहै इसीकारण भ्रमताहै जैसे कि हेतुरूप तेलबत्तीके होनेसे एकदीपकसे हजारों दीपक वर्त्तमान होजाते हैं उसीप्रकार प्रकृति भी प्रारब्धके योगसे सृष्टिको उत्पन्न करती है और अनन्त भावसे हानि को नहीं पाती है, अब सृष्टिकी उत्पत्तिको कहतेहैं कि प्रथम अव्यक्तसे कर्म्म संयुक्त बुद्धि उत्पन्न होती है, बुद्धि से अहंकार अहंकार से आकाश आकाशसे बायु बायुसे अग्नि, अग्निसेजल जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है यह आठ मूल प्रकृति हैं इनमें ही जगत वर्तमान है, इस पुरुष का उत्पत्ति स्थान आठरूपवाली प्रकृति से रूपांतर दशा के साथ पंचज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय पांचबिषय और सोलहवां चित्त और एकचित्तका बिषय यहसब उत्पन्न हुये श्रवण, त्वचा, घ्राण, रसना, चक्षु, यह पांच ज्ञानेन्द्रियहैं और दोनों चरण, गुदा, लिंग, हाथ, नाक यह पांच कर्मेन्द्रिय हैं इनके पांचो कर्म्म भी इन्हीं में वर्त्तमानहैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनसबको च्युतरूप जानना चाहिये अर्थात् चित्तके ज्ञापक हैं वहचित्त सब इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है उन शब्दादिकों में चित्तही सर्वइन्द्री रूपहै इसको सिद्ध करतेहैं कि रसका ज्ञान जिह्वासे वार्त्तालाप बाक्इन्द्री से कहीजाती है यह चित्तहीहै उसीप्रकार नानाप्रकार की इन्द्रियों से संयुक्त सब आभ्यन्तरीय सुख दुख बुद्धि इत्यादि और बाहरी आकाशादि उसीप्रकार अव्यक्त अर्थात् महत्तत्त्व आदिभी चित्तही है, दशइन्द्री पंच तत्त्व और चित्त इन सोलह देवताओं को विभागी जानें जो कि देहोंमें ज्ञान उत्पन्न करने वाले परत्मा की उपासना करते हैं उसीप्रकार जिह्वा जलका कार्य्य है पृथ्वी गन्धका कार्य्य श्रोत्रइन्द्री आकाश का, चक्षुइन्द्री अग्निका कार्य्य है सबजीवों में स्पर्श करने वाली त्वकइन्द्री को बायुका कार्य्य जानों, चित्त सतोगुण का कार्य्य और सत्त्वगुण अव्यक्त से उत्पन्न होता है इस कारण बुद्धिमान् पुरुष सबको सबजीवोंके आत्मारूप ईश्वर में वर्तमान समझै सत्त्व वा ईश्वर जड़ चैतन्य समेत सब जगत को धारण करते हैं और वह सब मिलके उस कूटस्थ ब्रह्मके आश्रय हैं जो प्रकृति से भी प्रधान है वह महात्मा पुरुषोत्तम नौद्वारवाले सर्वभाव सम्पन्न पवित्र पुर में व्याप्तहोकर शयन करता है इसी कारण से वह पुरुष कहा जाता है वह जरामृत्यु रहित अरूप रूपवान इनदोनों रूपोंसे उपदेश होने वाला व्या-

पक्र सगुण सूक्ष्मरूप होकर सबजीव और गुणों का आश्रय स्थानहै, जैसेकि छोटा बड़ा कैसाही दीपकहो वह प्रकाश करनेवालाहै उसीप्रकार सबजीवोंमें उस ज्ञानात्मा पुरुषको भी जानों—जिसके द्वारा श्रोत्रइन्द्री सुनती है और जानने के योग्यको जानता है वही आत्मा सुनता और देखता है यह देह उसके शब्द ज्ञानादि का कारण है जानने वाला नहीं है सब कर्म्म भी वही करने वालाहै—जैसे कि लकड़ी में व्याप्त अग्नि उसके तोड़ने छोरने परभी दृष्टनहीं आता है, उसीप्रकार देहमें वर्त्तमान आत्मा योगसेही दृष्ट पड़ताहै, योगके अभ्यासमें देहका सम्बन्ध दूरनहींहोताहै, इसको सिद्धकरतेहैं कि जैसे नदियों में जल भरा है और सूर्य्य में किरणें हैं और सदैव प्रचलित हैं उसी प्रकारसबजीवों के देहहैं, जैसे पांचों इन्द्रियों समेत आत्मा स्वप्नावस्था में देहको त्याग करजाता है उसी प्रकार देहके अंतमें इसदेहको छोड़कर आत्मा दूसरे देहमें प्रवेश करता है यह बात शास्त्रसे वा योग से जानीजाती है अर्थात् दूसरे देहमें आत्माका जाना स्वप्नके समान है—अपने किये हुये प्रबल कर्म्म से प्राचीन देहका त्याग होताहै और उसी कर्म्म से दूसराभी देह प्राप्त होताहै और एक स्थानसे दूसरे स्थानको पहुंचाया जाताहै, जैसे कि देहको त्याग कर वह एकदेहसे दूसरे देहमें प्रवेश करताहै उसीप्रकार अपने कर्म्मसे उत्पन्न होनेवाले दूसरे जीवोंके समूह को कहता हूं ४६ ॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७ ॥

# अड़तीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि चारप्रकारके जड़ चैतन्य जीव ऐसेहैं कि जिनके दूसरे देहका मिलना प्रकट नहीं होता और न उनके पूर्वदेहका वियोग प्रकट होता है अर्थात् दोनों स्वप्नके तुल्यहैं दूसरे स्थानमें जाने के समान नहीं हैं इसमें यहहेतुहै कि इसका उसप्रकार का लक्षण प्रकटनहीं है देह चित्तके कारणसे आत्मारूपहै अर्थात् दूसरेचन्द्रमाके समान उसीमेंकल्पितहै और देहकी प्राप्ति और त्यागमेंभी आत्मारूपहै,जैसेकिपीपलके बीजमेंप्राप्त बड़ावृक्षबीचमें प्रकट व वर्त्तमान दृष्टपड़ताहै उसीप्रकारअव्यक्तसेचित्तकी उत्पत्ति है अर्थात् आदि अन्त और मध्यमें भी आत्माही है, जैसे कि जड़रूप लोहा चुम्बक पत्थरकी ओर दौड़ताहै इसी प्रकार पिछले संस्कार से उत्पन्न होनेवाले कर्म्मों के धर्म्म और अधर्म्म आदिका उदय और इसी प्रकार की जो दूसरी अविद्या आदिहैं वह भी देहके सन्मुख दौड़तीहैं उसी प्रकार अव्यक्त अर्थात् अविद्यासे उत्पन्न होनेवाले जड़रूप भाव चारों ओरसे एकत्र इकट्ठे होते हैं इसी प्रकार चैतन्य और कर्त्तारूप जीवात्मा के भाव बुद्धि चित्त आनन्दादि जो ब्रह्मका दर्शन

कराने वालेहैं वह सब भी इकट्ठे होते हैं, वीर्य और रुधिर के योग आदि से देह बुद्धि आदि दृष्टपड़तेहैं फिर किस प्रकार स्वप्न के समान अकस्मात दूसरी देहका प्राप्तहोनाहै इसशंकाको निवृत्त करतेहैं—चैतन्यधातु जीवके बिना पृथ्वी आकाशादि पंचतत्त्व, प्राण, शम, दम और काम आदि प्रकट नहींहुये और इसअज्ञानकी उपाधिसे संयुक्त जीवकी उपासनाभी नहींकी फिर जीवमें उसका कैसे सम्बन्ध निश्चय होसक्काहै, इसकारण से इसजीव में पृथ्वी आदि की तादात्मताहै वह अज्ञान कर्म्म और मायाका कार्य्यहै यह वेदमेंकहाहै, क्योंकि वहप्राचीन जिसकी आदि नहीं और सर्वव्यापी चित्तकी उत्पत्तिका कारण वाणीसेपरे है उसकी पूर्व्व वासनाही उसको जतलातीहै, वह जीवका स्वरूप बासनाओं से संयुक्त कर्मोंका संचय करनेवाला है जिसबासना और कर्म्म से यह आदि अन्त रहित बड़ा चक्र वर्त्तमान है, उसमें मन इन्द्रियों समेत जीव गिरकर तबतक भ्रमता है जब तक कि बुद्धिकी स्थिरता नहीं होती फलकी बासनासे जो२ कर्म्मकियेजातेहैं वह आगे देहप्राप्त होनेके हेतुहैं,जितने कर्महेतु और सब मायादिक हैं उनकायोग जब क्षेत्रज्ञ से होताहै तब देहके मिलने से यह सबभी परस्पर में मिलजातेहैं हे शिष्य जो पुरुष ईश्वरके आश्रय में पूर्व देहको त्यागते हैं वह लोकान्तरको प्राप्त होतेहैं जब जीव लोकान्तरको जाताहै तब उसके संग रजोगुण तमोगुण नहींजाते हैं उसकेसाथ केवल सतोगुणही जाताहै इस बिषयको ज्ञानी पुरुषही जानते हैं संगमें जातेहुये भी रज और वायु के समान पृथक् है, ज्ञान प्राप्तहोने से आपे को जानताहै जब आपे को जानता है तब देह नहीं पाता है १७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेअष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः ३८ ॥

# उन्तालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि जिसप्रकारसे यह प्रवृत्त लक्षणवाला धर्म्मसबको स्वीकार होता है उसी प्रकार उन बिज्ञानी ब्रह्मज्ञानियों को बिज्ञान के सिवाय दूसरा कोई तत्त्व नहीं भाताहै वेदके ज्ञाता पुरुष जोकि वेदोक्त कर्म्मों में प्रवृत्त हैं वह बहुत कमहैं वह बड़ेज्ञानी प्रयोजनकी महत्त्वतासे उत्तममार्गको चाहतेहैं यह चलन सत्पुरुषों की शिक्षासे निन्दायोग्य नहीं होता अर्थात् कर्म्म उसज्ञान योगमें प्रवेश होनेका कारणहै और यहब्रह्मज्ञान वह बस्तुहै जिसको प्राप्तहोकर उत्तम मोक्षको पाताहै रजोगुण तमोगुण क्रोध लोभ आदि गुणों से संयुक्त देहाभिमानी पुरुष अज्ञानतासे सब स्त्री पुत्रादि परिग्रहोंको प्राप्त करताहै इस कारण मोक्षका चाहनेवाला अपवित्र कर्म्म नहींकरे कर्म्मसे ब्रह्मज्ञानकी इच्छा को उत्पन्न करता शुभ लोकोंको न चाहे अर्थात् फलके त्यागसमेत पवित्र

चित्त होने के निमित्त कर्म्मों को करे चित्तकी पवित्रता न होने से यह दोष होतेहैं जैसे कि लोहे से युक्त सुवर्ण पकेहुये बिना शोभित नहीं होताहै उसी प्रकार जिसचित्तने रोगादि दोषोंको बिजय नहीं किया उसका बिज्ञान उदय नहीं होताहै, जो पुरुष धर्म्ममार्ग्गको उल्लंघन करके कामक्रोधके अनुसार कर्म्म करताहै और लोभसे अधर्म्मको करताहै वह अपने साथियों समेत नाशको पाताहै इसी हेतुसे पुरुषप्रीतिकी आधिक्यतासे शब्दआदि बिषयोंको प्राप्तनहीं करे, क्योंकि यहां एकको एकसे क्रोधहर्ष और भूल उत्पन्नहोतीहै देहके पंचभूतात्मकहोने और चित्तके राजसी तामसी होनेपर यह किसकी प्रशंसा करताहै और क्या कहताहुआ किसकी निन्दाकरताहै अर्थात् किसीकी नहींकरता है, अज्ञानीलोग रूपरस गन्धस्पर्शादिकों में प्रीति करते हैं और अपनी बिपरीत बुद्धिसे पृथ्वीकेगुण देहको नहीं जानतेहैं, देहकेभस्मीभूत होनेमें युक्ती कहतेहैं जैसे कि मृत्तिका का स्थान मृत्तिकासेही लीपाजाता है इसीप्रकार यहपृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाला देह मृत्तिका के विकार अन्नादिक से पुष्टताको पाताहै, मधु तैल, दूध, घृत, मांस, लवण, धान, फलमूल यह सब जलकेद्वारा मृत्तिका के रूपान्तर रूप विकार हैं, और जैसे कि बनमें निवास करनेवाला संन्यासी मुट्ठीअन्न आदि से प्रसन्न नहीं होता उसीप्रकार ग्रामादिकोंके बेस्वाद भोजनों से अप्रसन्न देहके निर्वाहकेलिये प्राप्तकरे, उसी प्रकार संसार रूपी बनमें निवास करता परिश्रम में संयुक्त कुटुम्बी यात्रा के निर्बाहके निमित्त अन्नको ऐसेभोजनकरे जैसे कि रोगी औषधीका सेवन करताहै आशययह है किइन्द्रियोंकी प्रीतिकेलिये भोजननहींकरे इसप्रकार कुटुम्बी और संन्यासीके बैरागकोमुट्ठी अन्न आदि में प्रकट करके दोनों आश्रमोंकेयोग्य मोक्षधर्म्मको कहतेहैं—सत्य बोलना मृत्तिका और जलसे बाहरकीशुद्धी और चित्तशुद्धीसे भीतरकी पवित्रता, शुद्धभाव—बैराग्य वेदपाठ आदिसे उत्पन्न होनेवाला तेज, चित्तके बिजय करने में शूरता, शास्त्र सुनने से उत्पन्न होनेवाली बुद्धि, क्षमा, धैर्यता, ज्ञान विवेक तप, उदारचित्तता, सन्मुख आनेवाले संन्यासी वा संसारीभाव या बिषय स्वरूपको अच्छेप्रकारसे विचारकर शान्तचित्त इन्द्रीजित् होनाचाहिये—सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से मोहित अज्ञानीजीव चक्रके समान घूमते हैं इसकारण अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले दोषोंको अच्छेप्रकार से बिचारकरे, अज्ञानमयदुःखदायी अहंकारको अत्यन्तता से त्यागकरे—क्योंकि पंचमहाभूत और सत्त्व रज तम यह तीनोंगुण, तीनोंलोक ऐश्वर्यांसमेत अहंकार में फँसे हुये हैं अर्थात् अहंकार से कल्पित हैं, जैसे कि इस लोक में सावधानकाल ऋतुसम्बन्धी गुणोंको दिखलाता है इसीप्रकार पंचभूतोंमें अहंकार को कर्म्म काजारी करनेवालाजाने, अज्ञान से उत्पन्नहोनेवाले अप्रकाश और महामोह

उत्पन्न करनेवाले अहंकारकोजाने फिरसुखदुःखसे मिलेहुये सतोगुणरजोगुण को जानेहर्ष,चित्तशुद्धी, आनंदयुक्तप्रीति, निस्सन्देहहोना, धैर्य्यता, स्मरणता यहसब सतोगुणकेरूपहैं-और काम,क्रोध, अविवेक,लोभ,मोह,भय,दुःखइत्यादि सब रजोगुणके स्वरूपहैं—शोक,अप्रीति,स्वतंत्रता,अहंकारता तीक्ष्णताइत्यादि सब तामसी गुणहैं, इसप्रकारके दोषोंकी हानिलाभको बिचारकर उसआत्मामें वर्त्तमान हरएकगुण को अच्छे प्रकारसे विचारकरे अर्थात् कौनदोष है कौन नाश हुआ कौन शेषरहा इन सबबातोंको सदैव विचारकरे, युधिष्ठिरबोले कि पूर्व्व में मोक्षकी इच्छा करनेवालों ने चित्तसे कौनसे दोष दूरकिये और किस बुद्धिसे निर्बलकियेगये और कौनसी कठिनता से त्याग किये जाते हैं कौन लौट आते हैं और कौन अज्ञान से निष्फल हैं और ज्ञानीकिसबुद्धि और कारणोंसे गुणोंके बलाबल को विचारकरे इस मेरे सन्देह को हे पितामह आप दूर करिये— भीष्मजी बोले कि अत्यंत शुद्धात्मा पुरुष दोषोंको मूलसे उखाड़नेके द्वारा मुक्तहोताहै, जैसे कि धार रखनेवाला औजार लोहेकी बेड़ियों का काटने वालाहै उसीप्रकार विचारसे शुद्धहोनेवाली बुद्धिकेद्वारा पैदाहोनेवाली दोषयुक्त अविद्यादिक भी नाशहोजाती हैं अर्थात् उनको नष्टकरके आपभी शान्तीको पातीहै चौथेप्रश्नका उत्तर कहकर तीसरे प्रश्नका उत्तरदेते हैं, रजोगुण, तमोगुण, काम, मोह इत्यादिसेपृथक् शुद्धरूप सतोगुण यह सब देहके उत्पन्नकरनेवाले बीज रूप हैं उनमेंसे दृढ़ चित्तज्ञानीको ब्रह्म में मिलानेवाला केवल सतोगुणही है, पहले प्रश्नका उत्तर कहते हैं—कि ज्ञानीको रजोगुण तमोगुणत्यागकरनेयोग्यहैं क्योंकि रजोगुण तमोगुण रहित बुद्धीसे परमात्माको पाताहै अथवा सांख्यशास्त्रवाली बुद्धिको स्वाधीन करनेकेलिये मन्त्रयुक्त यज्ञादिकोंकोकरे अर्थात्उससे चित्तशुद्धी होती है और चित्त शुद्धी से मोक्षहोती है, वेदोक्त कर्म्मोंमें भी काम क्रोधकेकारण राजसी तामसी कर्म्म त्याज्यहैं सात्त्विकी कर्म्म में प्रवृत्त रहना योग्यहै इस विषयको तीन श्लोकों में कहतेहैं, रजोगुण के द्वारा अधर्म्म युक्त कर्मोंको प्राप्त करताहै वह रजोगुणी कर्म्म अर्थसे संयुक्त होते हैं उन्हीं से सबकामनाओं की इच्छाहोती है और तमोगुण से उनकर्मों को सेवन करताहै जो कि क्रोध से उत्पन्न होनेवाले लोभ हिंसा में प्रीतियुक्त आलस्य निद्रा में प्रवृत्त करते हैं और सतोगुण में वर्त्तमान ब्रह्मका आश्रय करनेवाला श्रीमान् निर्मल श्रद्धा और विद्यायुक्त जीवात्मा सतोगुणी शुद्ध भावोंको देखताहै २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ३९ ॥

# चालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर रजोगुण तमोगुण से लोभ मोह क्रोध भय अहंकार आदि उत्पन्न होते हैं उनके नाश करने से पवित्र होताहै—शुद्धभाव का फल जीव ब्रह्मकी एकता का ज्ञानहै इसी कारण शुद्ध पुरुषोंने उस विभु परमात्मा अविनाशी सर्वव्यापी निराकार रूपको देवताओंमें श्रेष्ठतरजाना और शुद्धपुरुष अबभी जानता है, उसकी माया से मनुष्य ज्ञान विवेक रहित होकर अचेत होतेहैं उस व्यग्र बुद्धि से वा अज्ञानतासे वह मनुष्य क्रोध अथवा व्यग्र चित्तताको पाते हैं फिर काम क्रोध लोभ मोहसे संयुक्त होकर पूजन आदि करने में अहंकारको करके कर्म्मों को करते हैं, उन कर्मों के द्वारा राग में भरेहुये शोकको उत्पन्न करते हैं और जन्म मरणको अंगीकार करके कर्मों के प्रारम्भ से सुख दुःखको पाते हैं और जन्म से कर्मोंकी दृढ़ताको पाते हैं और वीर्य्य रुधिरसे उत्पन्न मूत्र विष्ठा और रुधिर में भरेहुये होते हैं फिरलोभ में आसक्त क्रोध इत्यादिसे दूषित उन्हींसे पार उतरनेकी इच्छा करते वर्त्तमान होते हैं वहां स्त्रियों को तो तंतुवाह अर्थात् कोलियोंके समान संसाररूपी वस्त्र के तारको तानाबाना बुननेवाली जाने, वह स्त्रियां स्वभावसे क्षेत्ररूप हैं और पुरुष क्षेत्रज्ञरूप हैं अर्थात् जैसे प्रकृति क्षेत्रज्ञको अपने स्वरूप से गुप्त करतीहै इसी प्रकार यह स्त्रियां जीवात्मा को संसार में स्वाधीन करती हैं इस कारण ज्ञानी पुरुष अत्यन्ततासे उनको त्यागकरें अथवा उनके पास न जावें यह स्त्रियां घोररूप कृत्या अर्थात् शत्रुके मारने को मन्त्ररूप शक्ति हैं और अज्ञानियों को अचेत करती हैं और रजोगुण में अन्तर्गत हैं और इन्द्रियों की सनातन मूर्त्ति हैं अर्थात् इन्द्रियोंसे कल्पितहैं इसी हेतुसे उन स्त्रियोंसे सम्बंध रखनेवाले प्रीतिरूप वीर्य्यसे उत्पन्न होते हैं, अब जिस प्रकार अपनी देह में पैदा होनेवाले और अपने में से पृथक् कीड़ों को देहसे जुदाकरते हैं उसी प्रकार पुत्रभावरूप रखनेवाले आत्मजरूपी कीड़ोंको त्यागकरे, स्वभाव और कर्म्मयोगके द्वारा वीर्य और पसीने से जीव उत्पन्न होते हैं उनको बुद्धिमान् लोग त्यागकरें, इस रीति से त्यागके योग्यको कहकर जानने के योग्य वस्तु को कहते हैं कि प्रवृत्ति और प्रकाशरूप रजोगुण सतोगुण यह दोनों तमोगुण में अन्तर्गत होजाते हैं वह अज्ञाननाम तमोगुण ज्ञानमें नियत बुद्धी और अहंकारका जतलानेवाला होता है, अहंकार और बुद्धिसे मिला हुआ वह अज्ञान जीवात्माओं को देहके मिलने में बीजरूप है उस कार्य्यके साथ ज्ञानका वीज अर्थात् अधिष्ठान रूप जो ज्ञान है उसीका जीव नाम है वह अज्ञान से मिला हुआ ज्ञान वीज रूपहै इस हेतुसे कि वह काल से मिलेहुये

कर्म्म के साथ संसारका घुमानेवाला है यह जीव या ईश्वर जैसे कि स्वप्न में चित्तके साथ देहधारीके समान रमताहै उसीप्रकार यह देहवान् आत्मा कर्म से उत्पन्न होनेवाले गुणों के कारण माता के उदर में उसको पाताहै जिसका कि आगे वर्णन है अर्थात् मांस पिण्ड रूप राग युक्त होकर पूर्ववासना से मिलकर चित्तके साथ जिस२ इन्द्रीको स्मरण करताहै वह इन्द्री बीजरूप कर्म और अहंकारसे उत्पन्न होती है जब इसकी शब्द में प्रीति होती है तव श्रोत्र इन्द्री उत्पन्न होतीहै इसीप्रकार रूप,रस,गन्ध,स्पर्शमें प्रीति होनेसे चक्षु जिह्वा घ्राण त्वचा यह सब क्रमसे उत्पन्न होतीहैं अर्थात् सबवासनासे उत्पन्न होतीहैं इसीप्रकारप्राण,अपान,व्यान, समान, उदाननाम पांचोंप्रकारकी इंद्रियों से देह का सब व्यापारहोताहै इसप्रकारसे दशोंइंद्रियों समेत पुरुषउत्पन्नहोताहै अर्थात् गर्भमें इन्द्रियों के अंगीकार करने से दुःखको पाताहै और देहके अभिमान से उसदुःखकी अधिकवृद्धि होतीहै इसीप्रकार देहत्यागनेमें कष्टको भी पाताहै इन हेतुओं से दुःखोंका त्यागही योग्यहै क्योंकि उन दुःखों का रोकनेवाला मुक्ति कोपाताहै इन्द्रियोंकी उत्पत्ति नाश दोनों रजोगुण में हैं ज्ञानी इसको विचार कर बुद्धिके अनुसार शास्त्र रूप नेत्रोंसे कामकरे तात्पर्ययह है कि रजोगुण रूप प्रवृत्तीके रोकने और इन्द्रियजित् होनेसे दुःखकी रुकावट होती है, ज्ञानेन्द्रियां बिषयों को पाकर भी निर्लोभी पुरुष को व्याप्त नहीं करती हैं और उन इंद्रियोंसे पृथक् वह जीवात्मा फिर देहोंके प्राप्तहोनेको योग्य नहीं होता २१॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचत्वारिंशोऽध्यायः ४० ॥

# इकतालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे राजा मैं इस स्थानपर शास्त्र रूप नेत्रों से उपाय को कहताहूं तुम इसी विज्ञान से कर्मको करना अर्थात् शम मद आदि गुणों से कर्म करने में मोक्षरूप गतिको पाताहै, सबजीवों में पुरुष उत्तम गिना जाता है, पुरुषों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है और ब्राह्मणोंमेंभी मन्त्रज्ञ ब्राह्मण उत्तम होते हैं वह ब्राह्मण सब जीवों के आत्मारूप सर्वज्ञसर्वद्रष्टा वेदज्ञ और शास्त्र के तत्त्वार्थ निश्चयकरनेवाले हैं, जैसे कि अन्धा अकेला मनुष्य मार्ग में दुःखों को पाता है उसी प्रकार अज्ञानी लोग भी इस संसार में हैं इस कारण ज्ञानी पुरुष सबसे अधिकहैं—इसप्रकारसे उपाय जाननेवालोंकी प्रशंसा करके उन के गुणोंकोकहतेहैं—अर्थात् धर्मकी इच्छाकरने वाले शास्त्र के अनुसार उन उन धर्म्मोंका सेवन करते हैं जिनका कि मोक्ष में कोई भेद नहींहै वह आगे लिखेहुये गुणोंको करते हैं वह धर्म्मज्ञ सब धर्म्मों में इन शुभ गुणोंको जतलाते हैं देह वाणी चित्त इत्यादिकी पवित्रता, क्षमा, सत्यता, धैर्यता, स्मरण यह

जो ब्रह्मचर्य कहा वह ब्रह्मरूपहै वह सब धर्म्मोंसे उत्तमहै उसीसे मोक्षको पाते हैं जोकि पंचप्राणचित्त बुद्धि दश इन्द्रियोंको समूहके योगसे और शब्द स्पर्श से पृथक्है और कानसे सुनना आंख से देखना, बचन से कहना जिसमें जारी हुआ वह ब्रह्मचारी चित्तसे दृढ़ रहनेवाला बिषयेन्द्रियों से रहित है अर्थात् वह शब्द से कहने योग्य बिकल्प अवस्था है और जिस दोष से रहित ब्रह्मचर्य को बुद्धिसे निश्चय करताहै वह मूर्द्धा से उत्पन्न होनेवाली बुद्धिसे निश्चय किया हुआ सन्देह रहित परोक्ष ज्ञानहै, ब्रह्मचर्याओं के फलको परम्परा पूर्व्वक कहतेहैं, पूर्णबृत्तीवाला उस मोक्षको पाताहै जिसका लोकब्रह्महै और बीचवाला सत्यलोकको पाताहै और छोटीबृत्ती में बर्त्तमान ज्ञानी ब्राह्मणका जन्म लेताहै और ब्रह्मचर्य बड़ी कठिनतासे प्राप्तहोताहै उसके उपाय को मैं कहताहूं ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होनेवाले बृद्धि पानेवाले रजोगुण को अपने में से पृथक्करे, स्त्रियों की कथाको न सुने, न कभी उनको नंगा देखे, इस निमित्त कि उनके दर्शनों से निर्बल मनुष्यों में कभी रजोगुण प्रबृत्त होजाता है, जिसके देहमें प्रीति उत्पन्न होजाय वह कृच्छ्रब्रतको करे, और बीर्य की बृद्धिसे अत्यन्त पीड़ित होने में जलमें प्रवेशकरे, जब स्वप्न में बीर्यपतन होजाय तब जल में बर्त्तमान होकर अघमर्षण नाम ऋचाको तीनबार जप करे, ज्ञानी मनुष्य ज्ञानसे संयुक्त उदार चित्तता के द्वारा इसप्रकार देह के अभ्यन्तर्गत रजोगुण रूपी पापको अत्यन्त नष्ट न करे, जिसप्रकार देह में बर्त्तमान मल पवित्र बस्तुओं से मिला निच्छिद्र जकड़ा हुआहै उसीप्रकार देह में नियत आत्मा और देहको दृढ़ बन्धनवाला जाने, नाड़ियोंके जालों से जैसे रस मनुष्यों के बात, पित्त, कफ, रुधिर, चर्म्म, मांस, अस्थि शिराओं को और देहों को तृप्त करता है, इस देह में पांच इन्द्रियों के गुणको बहानेवाली दश नाड़ियों को समझो जिन से हजारों एक से एक नाड़ी उत्पन्न होती हैं इसप्रकार यह नाड़ीरूप नदियां जिनमें रजोगुण रूपी जल भरा है नियत समयतक देहरूपी समुद्रको तृप्त करती हैं जैसे कि समुद्र को नदियां भरती हैं इस देह में चित्त के बीच एक नाड़ी मनोवाह नामहै जो कि मनुष्यों के संकल्प से पैदा होनेवाले बीर्य को सब अंगों से छोड़ती है उसके पीछे चलनेवाली नाड़ियां सब अंगों को तपानेवाली हैं, वह तैजसगुणको बहातीहुई नेत्रोंमें प्राप्तहोतीहैं जैसे कि दूधमेंगुप्त घृत मथन दण्डों से मथाजाताहै उसीप्रकार देहके संकल्पसे पैदाहोनेवाले मथन दण्डों से बीर्य भी मथाजाताहै इसीप्रकार स्वप्न में भी चित्त के संकल्प से उत्पन्न होने वाली प्रीति रूपास्त्री जिसप्रकार प्राप्तहोतीहै उसीप्रकार इसकी मनोवाह नाड़ी संकल्प से पैदाहोनेवाले बीर्य्य को देहसे प्रकट करतीहै इसबीर्यकी उत्पत्तिको

भगवान् अत्रि महर्षीने जानाहै जिसकी कि तीनस्थानोंमें उत्पत्तिहै अन्नरस, मनोबाह,नाड़ी और संकल्प और इन्द्र इसकादेवताहै इसहेतुसे वहइन्द्रही कहा जाताहै निश्चय करके जिनपुरुषोंने बीर्यकी गति को जो कि जीवोंको वर्ण संकर करने वालीहै विचारकियाहै वह प्रीतिरहित और बासनासे रहित देहकी उत्पत्ति को नहीं पातेहैं, जो कि चित्तके द्वारा योगबलसे निर्व्विकल्प भावको पाकर मनोबाहमें अन्त समयमें प्राणोंको चलायमान करताहुआ मुक्तहोताहै, वह केवल देहके निर्वाहके निमित्त कर्म्म करनेवालाहै, नाश और देहसम्बन्ध के लिये कर्म्म औरमुक्ती देनेवाले योगमार्ग को कहकर जीवन शक्ति उत्पन्न करनेवाले ज्ञानमार्गको कहते हैं अर्थात् चित्तसेही ज्ञान होता है चित्तही उत्पत्ति रूप होता है क्योंकि ब्रह्मज्ञानियोंका चित्त प्रणवकी उपासनासे सिद्ध अनादि मायाकेरूप बासनासे पृथक् प्रकाशित होजाताहै इसकारण इसलोकमें उसचित्तके नाशकेलिये निवृत्तिरूपकर्मकोकरे औररजोगुण तमोगुणको त्याग कर जैसे बने तैसे मोक्षको प्राप्तकरे, जिसको युवावस्था में ज्ञानप्राप्तहो और वृद्धावस्थामें न्यून न होगयाहो उसचित्तके बेगको अर्थात् संकल्पको वह पुरुष विरक्त बुद्धिसे स्वाधीन करताहै, अत्यन्त कठिन और अगम्य मार्गको जिसमें देह इन्द्री आदि गुणबन्धनहैं उनको निबटाकर जैसे दोषोंको देखे उसीप्रकार उनसे पृथक् होकर मोक्षको पाताहै २६ ॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१ ॥

# बयालीसवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि परिणाममें दुःखदायी स्पर्शादि इन्द्रियों के बिषय में प्रवृत्त चित्त जीव पीड़ाको पाते हैं, और जो महात्मा उनमें प्रसक्त चित्त नहीं हैं वह मोक्ष को पाते हैं बुद्धिमान् लोग इस संसारको जन्म, मृत्यु, जरा, रोग दुःख और चित्त के क्लेशों से व्याप्त देखकर मोक्ष के निमित्त उपायकरे, मन बाणी और देह से पवित्र अहंकार रहित शान्तरूप ज्ञानी और संन्यासी हो-जाय और अनिच्छावान् होकर सुखपूर्व्वक घूमे अथवा जीवों की करुणा से चित्तके बन्धन को देखे वहां भी संसारको कर्म्म रूप फल जानके त्यागकरे, जो शुभ अशुभ कर्म्म किया है उसको भोगता है इसकारण बुद्धि मन बाणी और देहसे शुभकर्म्मोंको करे वह शुभ कर्म्म यह हैं कि अहिंसा, सत्यता, सब जीवों में सत्यभाव, क्षमा, दीनदयालुता, जिसमें यह गुण होते हैं वह सुखको पाता है—इसी हेतु से ब्रह्मज्ञान के द्वारा सब जीवों में स्थिर चित्तता को धारण करे जो पुरुष सबजीवों के सुखदायी इस उत्तम धर्म्म को दुःखसे पृथक् होनेका कारण रूप जानता है वह सर्वज्ञ सुखी होता है इस हेतुसे ब्रह्मज्ञान के द्वारा

स्थिर चित्तको जीवों में धारणाकरे दूसरे की बुराई कभी नहीं बिचारे और जो राज्य आदि बस्तु अपने योग्य नहीं हैं उनकी इच्छा न करे और नाशवान् स्त्री पुत्रादि का शोच न करे सकल उपायों से चित्त को ज्ञान के साधन में प्रवृत्त करे और वह मनोहर ज्ञान सकल प्रयोगवाले वेदान्त वाक्यों से प्राप्त होता है शुभ बचन कहने के इच्छावान् और सूक्ष्म धर्म्म को देखनेवाले पुरुष की ओर से ऐसाकर्म्म करना चाहिये कि वह सत्य युक्त और परनिन्दा रहित अन्यके सुखदायी बचनको सदैव कहे, सावधान चित्त पुरुषको ऐसा बचन बोलनाचाहिये जो शठतासेरहित कठिनतासे पृथक् दयायुक्त क्रूरता रहित संक्षिप्तहो,संसार देहसे बँधाहुआहै जो अप्रीतितासे वार्त्ताकरे तब बुद्धियुक्त चित्तकेसहित तामसकर्म्म अर्थात् हिंसा आदिको कहदे—आशय यहहै कि जो पुण्य पापहैं वह अपने मुखसे कहने पर नाश होजातेहैं, जो पुरुष रजोगुण में प्रवृत्त इन्द्रियोंके विषयादि कर्म्मोंमें प्रवृत्त होताहै वह इसलोक में दुःखोंको पाकर नरकगामी होताहै इस हेतु से अपने मनबाणी देहसे अपने धैर्य्यता को प्राप्तकरे अब कर्म्मके त्यागको दृष्टांत समेत दो श्लोकों में कहते हैं, कि जैसे मांसके बोझको लेचलनेवाले चोर जिसओरको जातेहैं उस दिशाको राज्य भयसे शत्रु जानके उसमांसको त्यागकर कल्याण दिशाकोजाते हैं और जैसे वह पकड़ेनहीं जाते उसीप्रकार अज्ञानी पुरुष अविद्या से सम्बन्ध रखनेवाले कर्मों को साथलेकर काम आदि के सन्मुख चलनेवाले संसारी भयको जानकर और उन रजोगुणी तमोगुणी कर्मोंको त्यागकरके फिर मोक्ष को पाते हैं निस्सन्देह जो पुरुष चेष्टासेरहित सब स्त्रीपुत्रादि परिग्रहसे रहित एकान्तबासी, अल्पाहारी, तपस्वी, सावधान इन्द्री, ज्ञानसेनष्ट क्लेशवाला योगांगोंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होने वाला बुद्धिमान्है वह शान्तचित्तके द्वारा परमगति मोक्षको पाताहै, जोपुरुष धैर्यमान् और बुद्धिमान्है वह बुद्धिको स्वाधीनकरे और उस बुद्धिसे संकल्प बिकल्पात्मक चित्तको स्वाधीन करे और उस चित्तके द्वारा बिषयोंको रोंके—अब योगके आवान्तर फलको कहतेहैं—इन्द्रियों को आधीन करके चित्तकोस्वाधीन करनेवाले योगीके देवता बड़ीप्रसन्नतासे प्रकाशमान होकर उसी योगीमेंलयहोजातेहैं जिसका चित्त उनदेवताओंसे तदाकारहोताहै उसीका ब्रह्म अच्छे प्रकारसे प्रकाश करताहै और बुद्धि में इन्हीं के लयहोने पर ब्रह्मभाव के लिये कल्पना किया जाता है या योगी ऐश्वर्य के प्रकट करने से प्रत्यक्ष न होजाय तब योगतन्त्र से अनुष्ठान का प्रारम्भ करे तंत्रोक्त योगका अनुष्ठान करता हुआ जिसरूप से उत्तम वृत्तीहोवे उसीको काम में लावे और गोधूमचूर्ण अर्थात् गेहूं का आटा, कौमारी, खल, शाक, यवका सत्तू मूल फल इत्यादि जो भक्षण के योग्य हैं उनको बहुधा भोजन करे परंतु

योग को प्रकट न करे देशकाल के अनुसार भोजनके उस सात्त्विकी नियम की परीक्षा करके उसकी प्रवृत्ति के समान कर्म्म करे जो कर्म्म जारी होजाय उसके रोकने से योगमें बिघ्न न डाले इसीप्रकार धीरे२ज्ञानयुक्त कर्मकोअग्नि के समान वृद्धिकरे इस रीतिसे ज्ञान स्वरूप ब्रह्म सूर्य्य के समान अच्छेप्रकार से प्रकाश करताहै, आत्मासे अभिन्न ज्ञान के प्रकाशसे खालीहोना नहीं हो सक्ता है फिर वह क्यों नहीं प्रकाश करताहै यह शंकाकरके कहते हैं कि ज्ञान का अधिष्ठान अज्ञान तीनों लोकों में वर्त्तमान होताहै इसी हेतुसे बुद्धिका अनुगामी ज्ञान अज्ञानसे गुप्त कियाजाता है इस से निश्चय हुआ कि जिस के अंगहैं वह अंगोंसेही प्रकाशकरताहै और जो अंग रहितहै वह प्रकाशनहीं करता इसी हेतुसे इस अज्ञानका प्रकाश न करताही प्रकाशकरना चाहिये इस शंकाको कहते हैं तीनों दशाओंसे पृथक् उपाधिसे रहित आत्माको दशाओं में मिलाहुआ मानसे दोषलगता हुआ भी उसको नहीं जानताहै उनके पृथक् भाव और पृथक्भावके सिद्धांतका जाननेवाला संसारी प्रीतिसे रहित पुरुष मुक्तिको पाताहै कालका विजयकरनेवाला ज्ञानी जरामृत्युको जीतकर उस अविनाशी ब्रह्मको पाताहै जिसमें कि कर्भीनाश और न्यूनता नहींहोती२७॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२ ॥

# तैंतालीसवां अध्याय ॥

पिछले अध्यायों में वर्णन कियागया कि योग और ऐश्वर्य्यको अनुभव करके वा न करके ब्रह्ममें लय होता है अब अनुभव ऐश्वर्य्य की निन्दाकरते हैं—भीष्मजी बोले कि सदैव शुद्ध ब्रह्मचर्य के करने में इच्छायुक्त और स्वप्न के दोषों को देखनेवाले पुरुषको निन्दा करनी कभी न चाहिये, यह जीवात्मा स्वप्न में रजोगुण तमोगुणसे संयुक्त होता है और दूसरे देह में प्रवेश हुआसा इच्छा रहित घूमता फिरताहै उसस्वप्नकी ओषधि जागरण को कहते हैं, ज्ञान के अभ्यास से जागरण होता है वह सदैव बारम्बार विज्ञान में प्रवेश करने से बिचारके निमित्त जागताहै यहां पूर्व्वपक्ष करनेवाले ने कहाहै कि स्वप्न में दृष्ट आनेवाला देह आदि पदार्थ क्या है सत्य है या मिथ्या है वह विषयवान् के समान दिखाई देता है जैसे कि आकाश में वर्त्तमानसूर्य जल में वर्त्तमानसा दिखाई देता है इसी प्रकार जाग्रत अवस्थावाले देह आदिभी स्वप्नदशा में दूसरे प्रकार से दृष्टआते हैं इतनी ही बातसे स्वप्नकी निर्विषयता नहीं इसको शंकाकरके कहते हैं कि इन्द्रियों के लयहोजानेपर जीवात्मा देहवान्के समान वर्त्तमान होताहै, इसस्थानमें यहकहाजाताहै कि जैसा यह है उसको योगेश्वर हरि जानते हैं इसीप्रकार इसयुक्ति से संयुक्तअर्थको महर्षि

लोग भी वर्णन करते हैं अर्थात् जैसे कि वेदमें लिखाहै कि इसयोगीके संकल्प से पितृ आदि प्रत्यक्षहोते हैं इसीप्रकार हमारे संकल्प से आकाशादि के जीव इत्यादि हैं और स्वप्नदशा भी संकल्पमात्रहै, ज्ञानियोंने सब जीवोंमें प्रसिद्ध स्वप्नको इन्द्रियों के परिश्रमसे जो कि जाग्रत अवस्था में होताहै उस को कहा है और चित्त के लय न होनेसे उस स्वप्नदशा में आगे लिखेहुए श्लोकों के दृष्टान्तको कहाहै निश्चय करके कार्य में चित्त लगानेवाले का संकल्प जाग्रत अवस्थामें भी होताहै और जैसा मनोरथका ऐश्वर्यहै उसीप्रकार स्वप्नावस्था में भी वह संकल्प चित्तमें वर्त्तमान होताहै अनेक जन्मों के संस्कार से विषय में चित्त लगानेवाला पुरुष स्वप्न आदिकी दशा के ऐश्वर्य को पाता है वह उत्तम पुरुष साक्षी आत्मा चित्तके सब गुप्त वृत्तान्तों को जानताहै अर्थात् प्रकाश करताहै, बुद्धि आदि के भीतर पिछले कर्म से जो २ सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण वर्त्तमान होताहै और चित्त जिस कर्म में प्रवृत्त होताहै तब सूक्ष्म तत्त्व उस २ को उसके सन्मुख प्रकट करतेहैं उस रूप दर्शन के पीछे निस्सन्देह जैसे सुख आदिका उदयहोय उसीप्रकार राजसी तामसी सात्त्विकी गुण भी समयके अनुसार उसके सन्मुख वर्त्तमान होतेहैं तदनन्तर अज्ञानसे उन बात पित्त कफ से सम्बन्ध रखनेवाले देहों को राजसी, तामसी भावोंसे देखतेहैं उसको भी कठिनता से पारहोनेके योग्य कहा, प्रसन्नेन्द्रियों से जब मानसी संकल्पोंको करताहै तो चित्त स्वप्न के वर्त्तमान होनेपर प्रसन्न होताहुआ उस उस वस्तुको देखताहै, वह व्यापक अरुद्ध चित्त सब जीवों में वर्त्तमानहै उसको आत्माके प्रभाव से जाने क्योंकि सब देवता आत्मा में हैं आशय यह है कि आत्मज्ञानसे सर्वज्ञ होजाताहै इसप्रकार स्वप्नदशाको कह कर सुषुप्तिदशाको डेढ़ श्लोकमें कहतेहैं—स्वप्न देखनेमें जो २ स्थूल देहरूपी द्वार है वह चित्त में गुप्तहै उस देहमें नियत होकर सोताहै और उस अहंकार में अपने उस आत्माको भी पाताहै जो कि अव्यक्त,सत्य, असत्यरूपवाली सबल माया में साक्षीरूप और सब जीवों का आत्मारूपहै उस सुषुप्तिदशा में आत्माको अहंकार आदि गुणोंसे स्पर्श करनेवाला जानो अर्थात् सुषुप्ति में शुद्ध साक्षी के मध्यमें अहंकार आदि लय होजातेहैं क्योंकि वह सब उस आत्मा के प्रतिबिम्बहैं, अब सम्प्रज्ञात नाम दशाको कहतेहैं, जो पुरुष चित्त के संकल्पसे ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य को चाहे उसको चित्तशुद्धी जाने, क्योंकि सब देवता आत्मा में हैं तात्पर्य यह है कि शुद्ध चित्तही ईश्वर है इसप्रकार विषय आदि के विचार से संयुक्त चित्त इसप्रकार का होताहै, और ज्ञानसे उत्तम ब्रह्मको पानेवाला चित्त सूर्य के समान प्रकाशित अर्थात् ज्ञानरूप होता है इस स्थान पर जीवात्मा के दोप्रकारके ब्रह्मभावको कहतेहैं जीवात्मा तीनों

लोकों का उत्पत्ति स्थान अर्थात् सगुण ब्रह्म है और अज्ञान के अन्त में महेश्वर अर्थात् शुद्धब्रह्महै देवताओंने तप आदि के करनेमें निवास किया और असुरों ने तपके नाश करनेवाले अहंकार और कपट आदि में प्रवृत्ती करी अर्थात् रजोगुणी तमोगुणी देवता और असुरोंसे वह ब्रह्म प्राप्त नहींहोसक्ता इस ब्रह्मको देवता असुरों से गुप्त करके ज्ञान स्वरूप वर्णन किया है, सत्त्व, रज, तम यह तीनों देवता और असुरों के गुणहैं परन्तु इनमें केवल तत्त्व गुण तो देवताओं काहै और शेष रजोगुण तमोगुण असुरों के हैं, वह ब्रह्म गुणों से परे ज्ञानस्वरूप स्वयं प्रकाशवान और व्यापकहै जिन शुद्ध चित्त ज्ञानियों ने ध्यान आदि से उसको जानाहै वही ज्ञानी परमगतिको पातेहैं, ज्ञान चक्षु से युक्तिके द्वारा केवल इतनाही कहना सम्भव होसक्ताहै अथवा उस अविनाशी को प्रत्याहार से अर्थात् विषयों को इन्द्रियों से खींचने के द्वाराजान सक्ता है २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३॥

## चवालीसवां अध्याय ॥

अब सावधान से ब्रह्मकी प्राप्तीको कहते हैं, भीष्मजी बोले कि वहपुरुष परब्रह्म को नहींजानताहै जो स्वप्नावस्था सुषुप्त्यवस्था सगुण, निर्गुणब्रह्म इन चारोंको नहींजानता; व्यक्त अव्यक्त अर्थात् जगत् और चिदात्मा और जो तत्त्वहै उसको श्रीनारायणजीने अच्छे प्रकारसे वर्णन कियाहै कि व्यक्तसंसार को तोमृत्युका मुखजाने और अव्यक्त ब्रह्मको अविनाशी यहनारायण ऋषि ने प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म कहा, उसी कर्म्मफल में जड़ चैतन्ययुक्त तीनों लोक वर्त्तमान हैं और निवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म ब्रह्मही है वहप्रत्यक्ष और प्राचीन है, रजोगुणरूप ब्रह्माजी ने प्रवृत्ति लक्षणवाले धर्म्मको कहाहै, प्रवृत्ति धर्म्म संसार में फिर लौटाकर लानेवाला है और निवृत्ति धर्म्म मोक्षरूप है सदैव चैतन्य आत्मतत्त्वका विचार करनेवाला और संसार से मुक्तिहोनेके मूल के देखनेकी इच्छा रखनेवाला निवृत्ति धर्म्ममें पूर्णमुनि उस ब्रह्मगतिको पाता है वहां तीनोंका विचारकरके आगेकी लिखीहुई युक्तिकोजाने अर्थात् अव्यक्त जो प्रधानमाया और क्षेत्रज्ञ पुरुष यह दोनों जानने के योग्यहैं और जो इन माया और पुरुषसे दूसराहै उसकोभी जाने वह बड़ा परमात्मा है, दुःखादि से रहित उसपरमात्माको ज्ञानीपुरुष लक्षणोंके द्वारा साक्षात्कारकरे क्योंकि वह प्रधान और क्षेत्रज्ञ दोनों आदि अंतसे रहित बिनारूप के हैं और प्राचीनता चेष्टारहित वृद्धसेभी वृद्धहैं दोनों के यहगुण एकसे हैं इसीप्रकार गुणोंसे रहित भी है, उत्पत्ति धर्म्मयुक्त और उसी त्रिगुणात्मिका माया से बिपरीति क्षेत्रज्ञ के

मुख्य लक्षणको जाने वह प्रकृतिके विकारका देखनेवाला किन्तु आप दृष्ट न आनेवाला विषय और सब गुणों से पृथक् है, प्रधान और क्षेत्रज्ञ की एकतावा बिपरीत गुणोंको कहकर जीव ईश्वरके एकसे गुणोंको कहते हैं-यहदोनों चेष्टा रहित होनेसे पकड़ने में नहीं आते क्योंकि पुरुष और निराकार में निश्चय करके उन रूपरहित जीव ईश्वरका विभाग किसरीति से है यह शंकाकरके उनका विभाग उपाधि सम्बन्धीहै स्वाभाविक नहीं है इसप्रयोजन से कहते हैं कि दृष्टिकी समानता और स्वीकारता जतलानेवाला और प्रत्यक्षका कारण है वही करता है उसीसे शास्त्रोक्त और लौकिक कर्म्मों की सिद्धी है वहकरता जैसे जैसे इन्द्रियों और साधनोंसे जो जो कर्म्म करताहै उसी उसीप्रकार उस योनि देनेवाले कर्म्म के साथ जानाजाता है इसप्रकार व्यवहार द्वारा करता तीसरा है वास्तव में नहीं है इसको दृष्टांत सहित वर्णन करते हैं, को हम इस शब्द से कहाजाताहै कि मैं कौनहूं जैसे कि अपनेको कुन्तीका पुत्र न जान कर कर्ण ने कहा कि कुन्तीका पुत्रकौन है तब सूर्य्य देवता से अपनेको निश्चय कुन्तीका पुत्रजान के कहा कि मैं कुन्ती का पुत्रहूं इसीप्रकार अज्ञानी पूंछता है कि ब्रह्मकौनहै और ज्ञानी जानताहै कि मैं ब्रह्महूं इसप्रकारसे एकही वस्तु में ज्ञान और अज्ञानके भेदसे दोबातें भेद खुलनेवाली उत्पन्न होती हैं, इसीप्रकार दृष्ट आनेवाली वस्तु में भी यहहै वह है यह दोनों गुणपाये जाते हैं ऐसेही जीव ईश्वर में जानो, जैसे कि दिस्तारबन्द मनुष्य तीनवस्त्रों से संयुक्त होता है उसी प्रकार यह आत्मा वस्त्रों के समान ढकनेवाले स्थूल सूक्ष्मकारण रूप देहों से गुप्त होता है और सतोगुण रजोगुण तमोगुण से ढकाहुआहै तात्पर्य्य यह है कि जैसे कि दिस्तारबन्द तीनों वस्त्रों से पृथक् है उसीप्रकार जीवात्मा तीनों देह और तीनों गुणों से पृथक् है इसकारण चारों प्रधान पुरुष के गुण हैं, इनचारोंको जानकर जोकरने के योग्य है उसको कहते हैं-हृदय आकाश में ब्रह्ममें प्रकट होनेवाली लक्ष्मीको चाहनेवाला और चित्त से पवित्र देहधारी पुरुष देह और इन्द्रियोंके उग्रनियमों से अनिच्छावान् होकर तपकरे, उस चैतन्य के प्रकाश से संयुक्त आंतरीय तप से तीनोंलोक व्याप्त हैं आकाश में सूर्य्य और चन्द्रमा तपसेही प्रकाश करते हैं क्योंकि वेद में वाह्य आकाश और हृदयाकाश दोनों समान हैं इसी कारण से योगियों का साक्षात्कार सिद्ध होताहै, तपका फल ज्ञान है स्वरूप ब्रह्महै वह तपलोक में प्रसिद्ध है तपका जो कर्म्म उन रजोगुण तमोगुणका नाश करनेवाला है अर्थात् वैराग्यके साथ वेदांत श्रवण नामहै वह असावधानरूपहै, अब मुख्य तपको कहतेहैं ब्रह्मचर्य और हिंसारहित होना देहका तप कहाजाता है, मन वाणी को अच्छे प्रकारसे आधीन करना चित्तका तप कहाजाताहै, जो अन्य

बुद्धी जाननेवाले ब्राह्मणोंसे अंगीकृतहै वह उत्तमहै क्योंकि आहारके नियम से इसका रजोगुणी पाप नाश होताहै और इसकी इंद्रियां विषयों से वैराग्य को पाती हैं इसकारण से उतनीही लेनाचाहिये जितनी कि उसको आवश्य कताहो अर्थात् भोजन से अधिक धनआदि को न लेवे इस बुद्धिके न होने पर मोक्षमें जो सुगमरीति है उसको कहते हैं अन्तके समयपर पूर्ण उपाय से उस ज्ञानको प्राप्तकरे जो ज्ञान कि योग से संयुक्त चित्तके साथ धीरेधीरे प्राप्त होताहै वह सुगमरीति यहहै कि अन्तसमयपर काशी सेवनकरे क्योंकि काशी के बीच देहत्यागकरने में रुद्रजी के मुखसे तारक मन्त्रका उपदेश होनेके द्वारा मुक्ती होती है इससे अंतसमयपर ईश्वरके उपदेश से ज्ञानको प्राप्त करे, रजोगुण से पृथक् यह जीवात्मा समाधिमें स्थूल शरीर का त्यागकरनेवाला भी देहधारी होकर विचरे जोकि कार्योंसे अबद्ध बुद्धिहै, वैराग्यसे उत्तमभोगों में अनिच्छावान् वह जीवात्मा प्रकृति में लयहोताहै अर्थात् प्रकृति से सर्वोपरि पुरुषको नहीं पाताहै त्यागकरने तक देह से सावधान रहने और तीनों देहोंके नाश होने से शीघ्रही मुक्तिको पाताहै जीवात्मा पूर्वोक्तकर्म्म मुक्तीको पातेहैं इसका वर्णन करते हैं, सदैव जीवों की उत्पत्ति उसीप्रकार अज्ञान के नाशको मूल रखनेवाली है अर्थात् देहके अभिमान से जुदे होनेवाले जीवों का अज्ञान और कर्मनाश न होनेसे सदैव जन्म मरण होता रहता है और शुद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार उदय होनेपर धर्म और अधर्म वर्त्तमान नहीं होते हैं अर्थात् पूर्ण सिद्धीवाले के पिछले पापों का नाश और आगे के कर्मों का स्पर्श न होना प्राप्त होताहै इसीकारण से उत्पत्ति कारणके बिना मुक्तिहोती है, और शुद्धब्रह्मका साक्षात्कार न होनेपर संसारी अनर्थों से मिलता है इस को कहते हैं जो पुरुष ज्ञानकी बिपरीतता में वर्त्तमान है अर्थात् अनात्मा में आत्मबुद्धि करके वर्त्तमान है वहमहत्तत्त्वादि की उत्पत्ति नाश में बुद्धि रखने वाले हैं अर्थात् विपरीत बुद्धिवाले पुरुषोंमें मोक्ष कथाभी नहीं होती दृढ़आसनहोकर देहको धारणकरनेवाले और बुद्धिके द्वारा चित्तके बिषयोंको रोकने वाले इन्द्रियों के गोलक नेत्रआदि से पृथक् अन्नमयादिकों को वो त्यागकरनेवाले योगी उन प्राण इंद्री आदि को उपासना करते हैं अर्थात् आत्मारूप बिचारतेहैं, यह सब ब्रह्मलोकमें नियतहोतेहैं इसकारण श्रेष्ठ ब्रह्मको पाकर उस में आपही बुद्धिसे शास्त्रके अनुसार जानताहै कोई शुद्ध अंतःकरण योगी उन तीनोंदेहोंसे पृथक् अपनी महत्त्वता में नियतशुद्धब्रह्मको उपासना करता है, कोई पुरुष श्रीकृष्णआदि रूप से संयुक्त आत्माको स्वामी सेवकभाव से उपासना को करतेहैं, कोई सबल अविद्याको उपासनाकरते हैं और कोई सबल से उत्तम निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करतेहैं अर्थात् लगातार अनुभव को सिद्ध

करतेहैं वह ब्रह्म बिजली के समान एकबार प्रकाश करनेवाला रूपांतर दशा से रहितहै, यह पांचों उपासनावाले अपने पापोंको तपसे भस्मकरके अंतकालमें शीघ्र वा क्रमसे परमगतिको प्राप्त होतेहैं शास्त्ररूप नेत्रों से उनभेद और उपासनावालों की सूक्ष्म द्वैतताको बिचारकरे और स्थूल देह से प्रीति रहित संन्यासी को तीनों देहोंसे पृथक् ब्रह्मरूप मोक्षको पाते इसप्रकार जाने अथवा उस योगीको हृदय आकाश से श्रेष्ठतर ईश और सूत्रात्माजाने, वेदोक्त उपासनामें चित्तलगानेवाले नाशवान् लोकसे छूटजाते हैं वह रजोगुणरूप ब्रह्मसे पृथक् हैं इसकारण वेदजाननेवाले मनुष्योंने उसधर्मको कहाहै जिसमें ब्रह्म ही प्राप्तिस्थानहै, जैसे ज्ञानकी उपासना करनेवाले वह सब पुरुष मोक्षकोपाते हैं जिनका कि ज्ञान रागादि से रहित होकर अचल उत्पन्न होता है उसीप्रकार वह लोग भी उत्तम लोकोंको पाते हैं और वैराग्य के द्वारा मोक्षको पाते हैं और जो शुद्ध ज्ञान से तृप्त इच्छासे रहित हैं वह भक्तिके द्वारा उस सर्वैश्वर्य्यवान् अजन्मा सर्वव्यापी हृदयाकाश में वर्त्तमान अव्यक्तरूप को पाते हैं, और जीवन्मुक्त पंचकोशों में वर्त्तमान आत्मामें नियत हरिको जानकर फिर लौटकर संसार में नहीं आते किंतु उस अबिनाशी उत्तम स्थान को पाकर आनन्द भोगते हैं, यह संसार है भी और नहीं भी है अर्थात् सर्प और रस्सी के समान होना न होना जानकर बाणी से कहने योग्य नहीं है आशय यह है कि मिथ्यारूप लोभ में भराहुआ सब जगत् चक्र के समान घूमताहै जैसे कमल का मृड़ाल सब प्रकारसे मृड़ाल में अन्तर्गत है उसी प्रकार लोभ सब देहों में सब रूपों से वर्त्तमान है जैसे कि सुई से सूत्रके द्वारा वस्त्र बांधाजाता है उसी प्रकार संसार संबंधी लोभ रूपी सुई के सूत्रसे देह बांधाजाताहै, लोभ त्यागने का उपाय यहहै कि जो पुरुष प्रकृति और प्रकृति के रूपांतर तत्त्वों को और सनातन पुरुषको यथार्थ जानता है वह लोभ से पृथक् होकर मुक्त होता है,इस मोक्ष साधन को जीवों की रक्षा के निमित्त संसार के उत्पत्ति स्थान भगवान् नारायण ऋषि ने स्पष्टतासे कहा है ३६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४ ॥

## पैंतालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह मिथिलापुरी के राजा जनक ने कौन से ब्रतको करके संसार के बिषय भोगों को त्यागकर मोक्षको पाया भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर ब्रत संयुक्त एक प्राचीन इतिहासको कहता हूं जिस ब्रतको जानकर राजा जनक ने मोक्षको पाया, एक जनकवंशी जनदेवनाम मिथिलापुरी का राजा था वह ब्रह्म प्राप्ति करनेवाले धर्मों के बिचारमें प्रवृत्त

था उसके स्थान में नानाप्रकार के शौचाचारी आश्रमी लोग उपासना के धर्म्मों को पृथक् २ दिखाते हुये इकट्ठेहुये उनमें कोई तो देहके नाश से अपना नाश कहते थे और कोई देहके नाशकोही नहीं मानते थे उन दोनों के वर्णनसे राजा प्रसन्ननहीं होताथा क्योंकि वह सिद्धी में वर्त्तमान आत्मतत्त्व का माननेवाला था वहां एक पंचशिखनाम महामुनि आये उनसे राजा जनक ने संसारकी मोक्षका वृत्तांत पूछा अर्थात् राजाने पूछा कि हेमहामुनि जैसे सुषुप्ति दशाकी मूर्च्छा में पूर्व स्मरण नहीं रहता उसी प्रकार मोक्षमें भी पूर्व स्मृति नहीं रहती है और सुषुप्ति अवस्था अज्ञानसे होती है और ज्ञान से मोक्ष अवस्था होती है यह बात बड़े २ महात्मालोग वर्णन करते हैं तो ज्ञान और अज्ञानमें क्या न्यूनाधिकता हुई जो ज्ञान अज्ञानमें कोई न्यूनाधिकता नहीं है तो ज्ञान के निमित्त अनेक क्लेशोंका सहना व्यर्थ है भीष्मजी बोले कि जनक के ऐसे बचन सुनकर पंचशिख मुनि ने कहा कि हे राजा मैं ज्ञान और अज्ञानका निर्णय तुझ से कहता हूं तू सावधान चित्तहोकरसुन—जब अज्ञान के द्वारा आत्माकेबीच बुद्धि आदि आरोपित कियेजातेहैं तब उसका अभाव होजाता है, और जब ज्ञान से आत्मा को जानता है तब सब अनर्थ मिटजाते हैं उन अनर्थों के मिटजाने से निर्विकार शुद्ध आनन्दमयब्रह्म और श्रेष्ठ बुद्धिका उदय होजाता है तब बुद्धि आदिका अभाव भी नहीं होता है इसहेतुसे ज्ञान के उपाय में क्लेश करना व्यर्थ नहीं है हे राजा अब देहादिक के अनात्मा सिद्धकरने को देहादिक के मूल वृत्तांत को कहता हूं कि देह में यह जो पंचधातु हैं वह तबहींतक एकत्र रहती हैं जबतक कि यह प्राणी जीवता है यह पांचों धातुओंका संघात देहादिकों का मूलहै इनको हे राजा तुम अनात्मा रूप जानो ॥

सो० बुध्यादिक सब जौन तौनहु सर्व अनात्मा ।
इनमाहीं क्षिति रौन आत्मभावसो दुखित अति ॥
दो० जाने इन्हें अनात्मा मैं अरु मम यह भाव ।
जौन बुद्धिसों कहतहैं रहत न सो नर राव ॥

अब यहां सांख्य शास्त्रका उत्तम बिचार कहना योग्यहै उसको सुनो उस विचार को जो तुमकरोगे तो अवश्यही मोक्षधर्म को प्राप्तहोगे, अर्थात् जो पुरुष मोक्षको चाहै वह सबका त्यागकरे क्योंकि जो त्याग रहित मोक्षको चाहता है वह महादुःखों को प्राप्तहोता है, देखो द्रव्य के त्यागने से सबकर्म होजाते हैं और भोगके त्यागने से सबव्रत होजातेहैं और सबसुखोंके त्यागने से सब प्रकारकी तपस्या और योग होजातेहैं सब वस्तुओं के त्यागने से यह सब धर्म होजातेहैं हेराजा जो मनुष्य सर्वत्याग के मार्गको जानतेहैं वह उस

मार्गको चलकर मोक्षको पातेहैं ज्ञानसे इन्द्रियों समेत बुद्धिके ऊपर मनको भी त्यागना योग्य है क्योंकि मनमें कर्मेन्द्री बलयुक्तहोकर चपलता करती हैं इससे बुद्धिके त्यागमें सबका त्यागहोताहै, रूप, रस गन्ध स्पर्शचित्त और श्रवणका शब्द यहसबज्ञानमेंभी होतेहैं इनसबोंका कर्त्ताचित्तहै,आकाशकेआश्रितश्रोत्र और श्रोत्रकेआश्रित शब्दहै जिह्वाकेआश्रितरस औरजलके आश्रितजिह्वाहै इसीप्रकार सबइन्द्रियांभूतोंके आश्रितहैं और इन्द्रियोंके आश्रित विषयहैं और सब इन्द्रियां मनके आश्रित हैं इसीसे मनही सबका आधाररूप है हे राजा दशों इन्द्रियों के जो ज्ञानकर्म हैं उन सबको मनही जानता है इससे इन सबका राजा ग्यारहवां मन और बारहवीं बुद्धिहै जो मनकोभी जानती है इन बारहों से ज्ञानीलोग आत्माको पृथक् मानते हैं, हेराजा जाग्रत अवस्था में जो विषय देखा और सुनाहै उसे सूक्ष्म इन्द्रियों के द्वारा स्वप्नावस्थामें गुणोंके साथहोकर जीवात्मा प्रत्यक्षहीके समान अपने समीप देखता है वहां सब इन्द्रियोंका राजा चित्तमतसे युक्तहोकर आत्माको उससेभिन्न कर देताहै इन्द्रियोंसे आत्मा को पृथक् होनेसे सुखरूप नीचतामस नाम उत्पन्न होता है इससे सुषुप्ति और मोक्षमें समान आनन्द मालूम होता है परन्तु सुषुप्तिमें नाशवान् सुख है और मोक्ष में सदैव अविनाशी सुखहै और सुषुप्तिमें अहंकारादिक सबहोते हैं मोक्ष में नहींहोते और हेराजा सब भूतादिकों के समुदाय को क्षेत्र कहते हैं और उससमुदायके आधारको क्षेत्रज्ञकहते हैं, वह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों कर्मोंकेप्रभावसे मिलजाते हैं इनमें किसको सत्यऔर किसको असत्य समझे, परन्तु जबतक यह कर्मका प्रभाव है तभीतक यह सब भी हैं परन्तु जब कर्मका अंशभी नहीं रहता तब इनका भी चिह्ननहीं रहता,जैसे कि नदी नदआदि समुद्र में मिलने से अपने नाम और रूपको त्यागदेतेहैं इसीप्रकार यह सबभी ब्रह्ममें लयहोनेसे अपने नाम और रूपोंको खोबैठते हैं, जो मोक्षरूपी बुद्धि को जानते हैं, वह आत्मा को प्राप्तहोते हैं, जैसे कि कमल के पत्तेमें जलस्पर्श नहीं करता उसी प्रकार मोक्षवाले पुरुष में कर्मोंका स्पर्श नहीं होसक्ता जैसे कि सर्पकांचली को डालकर चलाजाता है उसीप्रकार मुक्त मनुष्य दुःखों को त्यागकर चलेजाते हैं इन पंचशिख के वचनों को सुनकर राजा जनक बहुत प्रसन्नहुआ, इसमोक्षके निश्चयको जो कोई पढ़ेगा अथवा सुनेगा वहउपद्रवोंसे रहितहोकर आनन्दोंकोपावेगा४८॥

इतिश्री महाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेपंचशिखवाक्यपाखंडखंडननामपंचचत्वारिंशोऽध्यायः४५॥

## छियालीसवां अध्याय॥

भीष्मजी बोलेकि महर्षि प्रबोधित राजा जनकजीने फिर यह प्रश्नकिया

कि हे भगवन् शरीर त्याग समय में संसार और मोक्षकी क्या अवस्था होती है १ यह संसार ज्ञान और अज्ञान शब्दों से कहने के योग्य नहीं फिर रज्जु सर्पवत् इस अल्प संसार के सुख की प्रत्याशा करनाही निष्फलहै यह शंका करके राजा जनकजी बोले हे द्विजश्रेष्ठ मरण पश्चात् जीवकी क्यासंज्ञा होती है और तब अज्ञान अथवा ज्ञान क्या करते हैं २ हे द्विजोत्तम सब उच्छेद और निष्टहोते हैं इसपर विचारकरो तो सजग और अचेत मनुष्य अज्ञान और ज्ञानभेदमें क्या करेंगे ३ प्राणियोंमें तो अलग होना और अविनाशियों में मिलापहोनाहै फिर यहां कौन पुरुष किस फलके लिये तत्त्व में निश्चय करै और उसकेलिये परिश्रमकरै ४ भीष्मजी बोले कि उसअज्ञान सेठके और भ्रान्तियुक्त दुःखी राजासे शांति वचनद्वारा पंचशिखा कविने यहकहा ५ यहां जन्ममरण कुछ नहीं है—यह चैतन्य इन्द्रियों और शरीर का संयोग कर्म्म प्रधान्यतासे होता है ६ शरीर को अनात्मा कहने के लिये उसकी प्रकृतियों को कहते हैं धातु पांच प्रकारकी हैं जल, आकाश, वायु, अग्नि और पृथ्वी वे स्वभाव से एकत्र स्थित होते हैं और स्वभावसेही भिन्न होजातेहैं ७ आकाश वायु और अग्नि के स्नेह और उन्हीं पांच धातुओं के समाहार से शरीर प्राप्त होताहै ८ शरीरांतर्गत बुद्धि अग्नि और प्राण यह तीनों सब कार्य्य साधक होतेहैं और इन्द्रिय और इन्द्रियोंके मनोरथ और स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान और विकार इत्यादि धातु यह सब इन्हीं तीनों से निकले हैं—९ कान छूनेकी इन्द्री जिह्वा, आंख और नाक यह पांचों इन्द्रिय हैं और इनका आदि कारण चित्त है १० वहां विज्ञान करके युक्त चेतनाकी तीन ध्रुवा हैं जिनको सुख दुःख और अदुःख असुख कहते हैं ११ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पांच सद्गुण मरण पर्य्यन्त ज्ञान सिद्धिके लिये होतेहैं १२ उन गुणों में कर्म्म, संन्यास और मोक्ष का कारण स्थित है उस तत्त्व निश्चयको मोक्षका बीज और श्रेष्ठ मोक्ष देने से अनन्त और ब्रह्ममें ज्ञान उत्पन्न करने से ब्रह्मरूप कहा १३ इस ज्ञान समूहको आत्मा रूपसे देखनेवाले पुरुषके विरुद्ध दर्शियों से भी अनन्त दुःख शांति को नहीं प्राप्त होता १४ जो दृष्टि पड़े वह अनात्मा है उस कारण अहंकार ममता यह दोनों बातें वर्त्तमान नहीं होती हैं फिर आनेवाले दुःख का प्रस्ताव किस आधार पर होगा १५ इस स्थल पर उस अनुपम त्याग शास्त्र को शोच में बारम्बार सहस्रों मोतियों द्वारा लाना चाहिये जिनका तेरेमोक्षार्थ वर्णन किया जायगा १६ मुक्ति के लिये सब कर्म्मों का त्याग युक्त है नित्यही मिथ्या विनीत दुःखभागी होते हैं १७ द्रव्य त्याग के लिये कर्म्मोंको और भोग त्यागकेलिये वृत्तोंको और सुख त्यागकेलिये तपको और सर्वत्याग के लिये योग का उपदेश करते हैं १८ दुःख नाशके लिये उस सर्व त्यागका

यह मार्ग बतलाया है जिसका कोई भेद नहीं है और त्यागके न होने में दु-र्गति होती है १९ जिनका छठवां मन है उन पांच ज्ञान इन्द्रियों को बुद्धि में जोड़कर उन पांच कर्म्म इन्द्रियों को जिनका छठवां प्राण शक्ति है त्याग करै २० दोनों हाथों को कर्म्म इन्द्री और दोनों पांवों को गति इन्द्री जानना चाहिये प्रजोत्पत्ति और आनन्द में लिंग इंद्री और विष्ठा त्याग में गुदाको कहा २१ वाक् इंद्री वाक्य बोलनेके लिये जाननी चाहिये—मनको इन पांचों से सम्मिलित जानै इस प्रकार मनको त्याग करै और बुद्धिद्वारा शीघ्र ग्यारह इंद्रियों को छोड़देवे वाक् मनके त्याग करने में कर्म्म इंद्रियों का त्याग हुआ और बुद्धिके त्याग करनेमें मनके साथ ज्ञान इंद्रियोंका त्यागहुआ २२ दोनों कान शब्द और चित्त यह तीनों कर्म्म कर्ण इंद्री के कारण हैं इसीप्रकार रूप रस और गन्धमें भी तीन तीन कारण हैं २३ इसीप्रकार शब्दआदि विषयों के ज्ञान होने में यह पन्द्रह गुण कारण होते हैं जिसके द्वारा यह तीनप्रकार का भाव कर्त्ता कर्म करण भिन्न अभिप्राय के साथ सन्मुख उपस्थित हुआ २४ वे तीनों भी सात्त्विकी राजसी तामसी में हैं जिन के मध्य सबका साधन कर ने वाले तीन प्रकारके अनुभव वृद्धिको प्राप्त हुये २५ प्रसन्नता, प्रीति, आनन्द सुख, शांत चित्तता आदि सतोगुणके धर्म्महैं २६ असंतोष, परिताप, शोक, लोभ क्षमा, रजोगुणके धर्म हैं २७ अविवेक, मोह, प्रमाद निद्रा स्वप्न यह तमोगुण हैं २८ यहां जो कोई शरीर अथवा मनमें प्रीति युक्तहोवे—वह सात्त्विकभाव में है इसीप्रकार उसका त्यागकरै जो आगे लिखाजावेगा २९ जो आत्मामें असंतुष्ट अप्रीतिकरै है वह रजोगुण प्रवृत्तहै ३० जो देह और मनमें मोह युक्त है उसको तमोगुणीजानो ३१ इसीप्रकार शब्दआदि विषय और ज्ञानइन्द्रियोंका शिरोमणि चित्तरूप होना कहा चित्तके त्यागसे गुण और इंद्री और विषयोंका त्यागहोता है इस ज्ञानके लिये अब आकाश आदि तत्त्व रूपी विषय और इन्द्रियों का भिन्न न होना अर्थात् एक रूप होना कहतेहैं इनके वश करने से आकाश आदि वश होतेहैं इस आशय के लिये दो श्लोक लिखतेहैं—आकाशमें शर-णार्थ श्रोत्र इंद्री आकाश रूपही है और श्रोत्र इंद्री में शरणार्थ शब्द है आकाश तत्त्वहीहै इस अवस्थामें शब्द और श्रोत्र यह दोनों विज्ञानके विषय नहीं ३३—इसी प्रकार आंख जिह्वा नाक आदि पांचों स्पर्शरूप सम्बंधरखतेहैं वे सब शब्द व आकाश आदि स्मरणात्मक चित्त रूपहैं वह चित्त भी निश्च यात्मक मनका रूपहै अर्थात् चित्तके वश होने से सबवशकोप्राप्तहोते हैं ३४ सबके मन रूप होने में जगतही को कहते हैं इन पांचों इंद्री व पांचों विषयों में प्राप्त होने वाला ग्यारहवां चित्त होताहै उसको जानो ३५ सूक्ष्म इन्द्री भी पहिले सुने के आगम से अस्मरण करती हुई भी तीनों गुणों से युक्त फिर

नहीं लौटती ३६ जो तमसे ढकाहुआ चित्त जिसका कोई निश्चय नहीं और जो शीघ्रही संहार होसक्ताहै अपने शरीरमें ग्रहण करतेहैं उसको पण्डितलोग तामस कहतेहैं ३७ जो चित्त तमोगुण युक्त और परवर्ती प्रकाशात्मक आत्मा को छिपाता है और जो नाश योग्यहै वह शरीर में युगपद भावको नाश करताहै ३८ इसी तरह से अपने कर्म का प्रत्ययगुण प्रसंख्यात हुआ किसी२ में वर्त्तताहै और किसी में निवृत्त रहताहै ३९ अध्यात्मकी चिंतना करनेवाले इसीको समाहार क्षेत्र कहते हैं मनमें जो भाव स्थित होताहै वही क्षेत्रकहाता है ४० ऐसा होते हुये स्वभावही से वर्त्तमान सब प्राणियों में हेतु से उच्छेद और शाश्वत कैसे होता है ४१ जैसे नदियां समुद्र में जाके अपनी पहली रीतिको छोड़ देतीहैं ऐसेही प्राणीको भी मरने के अनंतर समझिये ४२ ऐसा होते हुये मरण के अनन्तर फिर क्या संज्ञा होती है और जीव के सब ओर से ग्रहण हुये देह में प्रविष्ट होने से कैसी संज्ञा होती है ४३ इस विमोक्ष बुद्धि आत्माको जो जानता और अप्रमत्त होके ढूंढ़ताहै वह अनिष्ट कर्म फलोंसे लिप्तनहीं होता जैसे जल से सींचाहुआ कमल का पत्र नहीं कुम्हिलाता ४४ फिर प्रजा निमित्त जो दृढ़ फँसरीहैं तिनसे छूट के जब सुख दुःखको छोड़ताहै तब आगे की गतिको प्राप्त होताहै ४५ फिर वेद और आगम के मंगलों से बुढ़ापा और मृत्यु के भयसे निर्भय सोता है ४६ एक परमेश्वरही में आसक्त प्राणी जैसे पुण्य या पाप के नाश हुयेसे और निमित्त फलकेभी नाश होनेसे चिह्न रहित निर्मल आकाश में स्थित होके परमेश्वर ही को देखते हैं ४७ जैसे ऊनका बीनने वाला ऊनके डोरेके नाशमें निर्भय सोताहै ऐसेही विमुक्त पुरुष दुःखको छोड़के निर्भय सुखसे सोता है ४८ जैसे रुरु नामक जीव पुराने सींगों को छोड़ के नये सींग धारण करता है और सर्प पुरानी त्वचा को छोड़के नई त्वचा ग्रहण करता है तैसेही विमुक्त प्राणी दुःखको छोड़के सुखी होताहै ४९ जैसे जलमें गिरेहुये वृक्षको पक्षी छोड़के निर्भय दूसरे वृक्षमें बैठताहै तैसेही मुक्त पुरुष सुख दुःखको छोड़ के श्रेष्ठ गति को प्राप्त होताहै ५० इस मैथिल पंचशिखके मुखसे निकलेहुये अमृतके तुल्यपद जिसमें ऐसे गानको सुनके और सबको देखके निश्चय अर्थ और शोच रहित राजाजनक परम सुखी होके विचरते भये ५१ । ५२ इस मोक्षके निश्चयको जो सदैव देखता और पढ़ता है वह उपद्रवों से दुःखित नहीं होता जैसे कपिलदेवजीको पायके राजा जनक सुखी हुए तैसेही वह पुरुष सुखी होता है ५३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मेषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६ ॥

# सैंतालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह क्या करने से सुख और क्या करने से दुःख और क्या करने से लोकमें निर्भय होकर विचरताहै भीष्मजी बोले कि इसका उत्तर अंतर्गत होजायगा अबपूर्व कथाका शेष वर्णन करता हूं कि इस पंचशिख महर्षी के समझाये हुये राजा जनकने फिर प्रश्नकिया कि देह के त्यागने के समय संसार और मोक्षकी कौनसी दशा होतीहै—भीष्मजी बोले कि इन्द्रियों का जो जीतना है उसको दमकहते हैं उसीकी प्रशंसा सब वेदज्ञ और धर्मज्ञ ऋषिलोग करते हैं इसदमके साधन को सब लोग करें और विशेष करके ब्राह्मण तो अवश्यही करेंजो इन्द्रियों का दमन नहीं करता है उसकी क्रिया कोई सिद्ध नहींहोती, क्रियाकी सत्यता और तपस्या यहदोनों दमही में वर्त्तमान हैं दमही तेजकी वृद्धि करताहै दमही अनेकपवित्रताओं को करताहै दमही निष्पाप और निर्भय होकर ब्रह्मपदको प्राप्त करताहै दम-करनेवाला संसार में भी जबतकरहैगा तबतक आनन्दसे रहैगा, जोक्रोधीजन होताहै वहतेजस्वी नहीं होता किन्तु उसीको अन्य जनोंसे सदैवभय उत्पन्न हुआ करताहै, जो कच्चे मांसको खाता है उसका नामक्रव्याद अर्थात् राक्षस होता है उस से जैसाभय होता उसीप्रकार मनुष्यों सेभीहोना प्रसिद्ध है उन मनुष्यों के उपद्रवोंके दूर करने के निमित्त लोकेश ब्रह्माजीने राजाको पृथ्वी पति बनाया, आश्रमी धर्मों से जो २ फलहोते हैं उससेभी अधिक दमकरने वालों को धर्महोता है जिनपुरुषोंके कि दमका उदयहोताहै उनके चिह्न मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहताहूं कि अदीनता, सन्तोष, आस्तिकबुद्धि, मृ-दुता, अरुष्ठता, अहंकारकात्याग, गुरुपूजा, अनुसूया, जीवों में विशेषदया, स्तुतिनिन्दा से रहितहोना, असत्यवादका त्यागना, निर्बैरता, रागादिककी वार्त्ताओंका त्यागना, सर्वकामनाओं कात्याग, शीलवान् सुव्रती, चुगलीका त्यागना यहसब लक्षण दम वाले के हैं इसलोक में दमवालेका बड़ासत्कार होता है और देहके अन्त में उत्तमस्वर्गकी प्राप्तिहोती है सुंदर सरल स्वभाव वान् होकर सबजीवोंका हितबिचारे किसीसे शत्रुतानकरे सबसे मीठेबचनोंको कहे नतोकिसी जीव को डराताहै नकभीआपकहीं डरता है उसदम वाले को सबजीव देखकर बड़ेप्रेमको करते हैं सबलोग समीप आकर प्रणाम करते हैं और बहुत से सन्मुख होकर खड़ेहोते हैं, बहुत से अर्थ में हर्षनकरे औरअनर्थ में शोचभी कभी नकरे हेराजा वहीदमीहै, चबकोई तामसी बुद्धिमान् नहीं कहाता प्रशंसा और बड़ीक्षमा, सन्तोष, शान्ति, प्रियवाणी इनबातों को

दुष्टमनुष्यनहीं पाताहै, बिनाकालकोईनहींमरता है और दमीपुरुषही निर्भय होकर लोक में बिचरता है ५२॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७॥

# अड़तालीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह आपने हिंसा को निषेधकिया परंतु वेद में यज्ञादिकों को हिंसायुक्त कहा यह संदेह और यज्ञदीक्षा मंत्रदीक्षासेयुक्त तीनों वर्ण द्विजन्मा जो इसहव्य और अन्न मांसादिक को इस मनोरथ के निमित्त जो वेदके ब्राह्मण में लिखा है भोजनकरते हैं इसकाब्योरा मुझेसमझाइये- भीष्मजी बोलेकि हेयुधिष्ठिर वेदके बिपरीत व्रत करनेवाले पुरुष भोजनके अयोग्य मांसादिक को भोजन करनेवाले कामचारी हैं अर्थात् इसलोक में पतित गिनेजाते हैं और वेदोक्त कर्म्मोंमें भोजन करनेवाले दीक्षामें लिखेहुये फलके लोभीहैं अर्थात् वहभी स्वर्गको पाकर फिरनीचे पतितहोंगे युधिष्ठिरने कहा कि हेमहाराज संसारी मनुष्यों ने जो इसव्रत को तपकहा है सो तप है या और कुछ है-इस प्रकार से दूसरे के पीड़ा देनेवाले यज्ञादिकों की निन्दा करके देहको पीड़ा देनेवाले मोक्षकी इच्छावालों के विरुद्ध व्रतआदिके निन्दा के बिषय में भीष्मजीने उत्तरदिया कि संसारी महीने और पक्षके व्रतादिक से जो तपमानते हैं वहतप आत्मबिद्या का बिघ्नरूप है उस तपको सत्पुरुष नहींकरते अब आत्मबिद्या का उपकारी तप वर्णन करते हैं जीव हिंसावाले कर्म्मोंका त्याग और प्राणियों की रक्षा यहीउत्तम तप है, अब गृहस्थ के तपको सुनो बहुकुटुम्बीभी सदैव व्रतकरनेवाला और ब्रह्मचारी होताहै, वेदपाठी ब्राह्मण सदैव मुनिहै और देवता रूप भीहै वह धर्म चाहनेवाला सदैव निद्रा जीतनेवाला, मांस भोजन रहित पवित्रता से रहै, देवता अतिथियों का सत्कार करने वाला सदैव अमृत भोजन करै और श्रद्धा पूर्वक देव ब्राह्मणोंका पूजकहो, युधिष्ठिर ने कहा कि कैसे व्रत करके ब्रह्मचारी होय और विघसान्न को भोजन करके कैसे अतिथियों को पूजे-भीष्मजीबोले कि जो सदैव प्रातःकाल सायंकाल भोजन करनेवाला है और मध्य में भोजन नहीं करताहै वह सदैव उपवासी होता है ब्राह्मण ऋतुकाल में ही स्त्री संग करने वाला ब्रह्मचारी होता है, जो मनुष्य सदैव सत्यवक्ता और ज्ञानी होता है वह निरर्थक मांस को न खाय वह भी मांस का न खानेवाला ही समझा जाता है सदैव दानी पवित्र दिवस में न सोने वाला जागरण करनेवाला समझाजाताहै, जो मनु अतिथि और बालबच्चों के भोजन के पीछे आप भोजन करता है वह केवल अमृतका भोजन करने वाला है, जो ब्राह्मणबिना अतिथि भोजन करा

ये भोजन नहीं करता है अर्थात् निराहार रहता है उस निराहारता से उसको स्वर्ग प्राप्तहोता है, जो पुरुष देवता पितृ अतिथि और वाल बच्चों से शेषबचे हुये अन्नादिको भोजन करता है वह भिक्षासी कहा जाताहै, ब्रह्माजीकेसाथ ब्रह्मलोकमें उसको अनेक लोकोंकी प्राप्ति होतीहै और अप्सरादिके आनन्दों को देखता चारोंओर घूमताहै, जो पुरुष देवता पितरों के साथ उपभोग करते हैं और अपने पुत्रपौत्रादि के साथ क्रीड़ा करते हैं उनको वह उत्तम गतिप्राप्त होती है कि जिस्से अधिक कोई गति नहीं है १७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेअष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८ ॥

# उनचासवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह इसलोकमें जो शुभ अशुभ कर्म कैसाहीहोवह फलीभूत होता है उनकाकर्त्ता पुरुषहै वा नहीं है यहसंदेह आप मेरा निवृत्त कीजिये, भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर इसविषय में एक प्राचीन इतिहासको कहताहूं जिस में कि प्रह्लाद और इन्द्र का प्रश्नोत्तर है, कि फल की इच्छा रहित निष्पाप कुलीन शास्त्रज्ञ आलस्य विना निरहंकारी सतोगुणी जितेन्द्री धर्मानुरागी निन्दा स्तुति रहित सावधान सब जड़चैतन्यों के लय प्रलयकरने वाले परमात्मा के ज्ञाता अप्राप्ति में शोक रहित प्राप्ति में हर्ष रहित सुवर्ण मृत्तिकाको समान मानने वाले महा पंडित सर्वज्ञ इत्यादि अनेक गुण युक्त एकान्त में विराजमान प्रह्लादजी की बुद्धिकी परीक्षा करनेकी इच्छाकरके इन्द्र ने उनके निकट जाकर उन से यह कहा कि कोई पुरुष मनुष्यों में जिन गुणोंके द्वारा सबका प्याराहोताहै वह सब गुण तुम में वर्त्तमान देखताहूं और तेरीबुद्धि बालकोंके समान विदित होतीहै यहां तुम आत्माको जानकर किस साधनको श्रेष्ठतर मानतेहो, हे प्रह्लाद पाशोंसे बँधाहुआ राज्य से उतराहुआ शत्रुओं के स्वाधीन लक्ष्मीरहित शोच के योग्य स्थान पर शोच नहीं करते हो हे दैत्यपुत्र प्रह्लाद तुमज्ञानलाभ या धैर्यता से अपने दुःखको देखते भी बुद्धि में सावधान हो यहइन्द्र के बचन सुनकर उससर्वज्ञ महापंडित प्रह्लाद ने स्पष्टवाणी से यहकहा कि यहां सांख्यके मत से कर्त्तापने को अमुख्यकरते हैं, जो पुरुष जीवोंकी प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं जानताहै उसको अज्ञानता से बंधन होताहै और जो जीवात्मा का देखनेवालाहै उस को कभी बंधन नहींहोता, सब भाव अभाव स्वभाव हीसे जारीहोते हैं और इसीप्रकार प्रीति भी स्वभाव के ही द्वाराहोती है इसकारण इस में पुरुषार्थ नहीं है अर्थात् रथ आदिके समान जड़ प्रकृतिमें भोगमोक्ष रूप सामर्थ्य नहीं है तात्पर्य यह है किजो कर्त्ताहै वहीभोक्ताहै आत्मा में भोक्तापन जानना केवल भ्रान्ति रूपहै,

चुम्बक पत्थर के समान उदासीन पुरुष की सत्तामात्र से संसारकी प्रवृत्ति है यानहीं इसशंका का समाधान करते हैं कि भोगमोक्ष रूपी पुरुषार्थ के नहोने से कोई कर्त्तानहीं है इसदेह में अपने आपकर्म न करनेवाले उसआत्मा का कभीअविद्या से अभिमान न होवेकि मैं कर्त्ताहूं, जो पुरुष शुभ अशुभ कर्मों का कर्त्ता आत्माको मानताहै उसकी बुद्धि दोषयुक्तहै तत्त्वोंकी जाननेवालीनहीं है इससे हेयुधिष्ठिर जो पुरुष निश्चयकरके अपनेकल्याणमें कर्त्तारूपहोताहै उसके आरंभ कर्मसिद्धहोतेहैं और कभी पराजयनहींहोती, उपायकरनेवालेपुरुषोंके अनिष्टोंकी बर्त्तमानता और इसबस्तुकाबर्त्तमान न होनादृष्टपड़ताहै इसीकारण पुरुषार्थ नहींहै,हम कितनेही पुरुषोंके अनिष्टोंका प्राप्तहोना और अभीष्टों का बियोग बिना उपाय के देखतेहैं उनका प्राप्तहोना स्वभावसे होताहै, कितनेही बड़ेबुद्धिमान लोग निर्बुद्धी कुरूपमनुष्योंसे धनकी प्राप्तिको चाहतेहैं और आज्ञा कारी बने रहतेहैं, जब कि सब शुभाशुभ गुण स्वभाव सेही होते हैं तब वहां कौन किस के अभिमानका कारणहै अर्थात् वहांयह अभिमान नहीं है कि मैं सुखीहूं अथवा कर्त्ता भोक्ताहूं मोक्षरूप आत्मज्ञान स्वभावही से होता है अर्थात बन्धन के निर्मूल होने से उसकी औषधि रूप मुक्ती भी अज्ञानसेही कल्पना की जाती है यह मेरा मत दृढ़है उसके बिपरीत मेरी बुद्धि नहीं है बादल के समान ईश और कालके स्थानपर नियत प्रकृती साधारण कारण है और बीज के समान कर्म असाधारणहै इस शंकाको कहतेहैं, इस लोकमें शुभाशुभ फलका योग और सब बिषयोंको कर्मों से मिलेहुए मानतेहैं इसको मैंकहताहूं तुम सुनो जैसे काकओदन भक्षण करनाजानताहै इसीप्रकार सब कर्म स्वभाव के ही लक्षणहैं अर्थात् स्वभावही उनका बतलानेवालाहै जो पुरुष बिकाररूप धर्मों कोही जानताहै और परा प्रकृति को नहीं जानता है उसकी अज्ञानता से बन्धन होताहै और परा प्रकृतिके साक्षात्कार करनेवाले पुरुषको बन्धन नहीं होताहै, ब्रह्मज्ञानी को बन्धन क्योंनहीं होताहै इस के विषयको कहते हैं—यहां स्वभावसे उत्पन्न होनेवाले निश्चयके जाननेवाले ज्ञानी का अहंकार क्या करेगा अर्थात् कर्तृत्वभावको अपने में सम्बन्धदेना अहंकारादि का कारण है उसके न होनेसे अहंकारादि भी नष्ट रूप हैं और हे इन्द्र मैं सब धर्म बुद्धिको और जीवों के नाशको भी जानताहूं इसहेतु से शोच नहीं करताहूं यह निश्चय करके नाशवान् है, ममता, अहंकार और इच्छा से पृथक् बासना रहित आत्मरूप में नियत देहाभिमान न होने से आत्मरूप से मैं अबिनाशी जीवों के उत्पत्ति और लय में परब्रह्म को देखता हूं, हे इन्द्र मुझ जितेन्द्री ज्ञानी इच्छा लोभ से रहित अबिनाशी दर्शी का उपाय आदिबर्त्तमान नहीं है प्रकृति के बिकार में रागद्वेष रहित

हूं और अपने उसशत्रुको भी नहीं देखताहूं जो अब मुझको ममता में प्रवृत्त करे और जानने के योग्य बिज्ञान और ज्ञान में मेराकर्म बर्त्तमान नहींहै अर्थात् मैं सिद्ध दशामें नियतहूं इन्द्रने कहा कि हे प्रह्लाद जिसप्रकार से यह ज्ञान होता है और शान्ति को प्राप्तहोता है उस युक्तिको मुझसे समझा कर कहो, प्रह्लाद बोले कि हे इन्द्र जो पुरुष बिस्मरणता रहित शुद्धभाव और बुद्धिकी नम्रता से बृद्धोंकी सेवाकरताहै वह मोक्ष को पाताहै जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं सबस्वभावही से हैं और स्वभाव सेही ज्ञान वा शान्तताको पाता है यह प्रह्लाद के बचनों को सुनकर इन्द्रने बड़ा आश्चर्य्य किया और प्रसन्नतासे प्रीति युक्तहोकर उसकी प्रशंसाकी और उस दैत्येन्द्रका पूजन करके अपने लोककोगये ३७॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेइन्द्रप्रह्लादसंवादेएकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ४९॥

# पचासवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह जिस बुद्धि से लक्ष्मी रहित होकर कालदण्ड से पीड़ित राजालोग पृथ्वी में घूमते हैं उसका बर्णन आप मुझ से कहिये, भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर भी एक पुरातन इतिहास कहता हूं जिस में इन्द्र और बैरोचन के पुत्र राजा बलिका सम्बाद है, इन्द्रने सब असुरों समेत राजा बलिको बिजय करके ब्रह्माजी से हाथ जोड़कर पूछा कि हे ब्रह्मन् दान करते हुए जिसका धन कभी कम न हुआ उस बलिको मैं नहीं पाताहूं उस को मुझ से कहिये इस बलि ने बायु, बरुण, सूर्य्य, चन्द्रमा, और अग्नि रूपहो सब जीवों को तपाया और जलरूप होकर गुप्त हो सब दिशाओं को प्रकाशित किया और उसीने समयके अनुसार जलकी बर्षा भी की उस बलिका आप बर्णन कीजिये वह मेरेहाथ नहीं आता, ब्रह्माजी बोले कि हेइन्द्र यहतेरी बात अच्छी नहीं है जो तू इसप्रकार से पूछता है और पूछीहुई बातको मिथ्या नहीं कहना चाहिये इसहेतुसे बलि का बृत्तान्त तुझ से कहताहूं कि वह जीवोत्तम बलि किसी उजड़े फूटे स्थान में ऊंट,गधे बैल, अथवा घोड़ों में होगा, इन्द्रबोले कि हे ब्रह्मन् जो मैं उस एकान्तस्थान में बलिसे मिलूं तो उसको मारना योग्य है या नहीं यह आप मुझको उपदेश दीजिये ब्रह्माजी बोले हे इन्द्र बलिको कभी न मारना क्योंकि वह मारने के योग्य नहीं है, तुम उससे इच्छाके अनुसार कारण पूछने के योग्यहो, भीष्मजी बोले कि इसप्रकार ब्रह्माजी के समझानेसे शोभा युक्त इन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार होकर पृथ्वी पर घूमनेलगा तदनन्तर उस इन्द्र ने गधे की सूरत में किसी उजड़ेहुए मकानमें बैठाहुआ राजा बलिको देखा और जैसा

कि ब्रह्माजीने कहा था उसीप्रकार से पूछा कि हे दैत्य तुम गधे की यो-
नि में होकर तृणखानेवालेहुये यह तेरीयोनि नीच है इसमें तू शोचताहै या
नहीं बड़े कष्टकी बातहै कि मैं तुमको शत्रुओं के आधीन तेज बल लक्ष्मीसे
रहित इष्टमित्रों से जुदा गुप्तरूप में देखताहूं किसीसमय तुम हजारों सवा-
रियोंके साथ अपने जात कुटुम्ब इष्टमित्रोंसे व्याप्तसबलोकोंको तपातेहुये हम
लोगों को तुच्छ समझते चलतेथे और बड़े२मुखिया दैत्यतेरे आज्ञावर्त्तीथे तेरे
राज्यमें पृथ्वी बिनाबोये जोतेभी अन्नको उत्पन्नकरतीथी और अब इसदुःखमें
हो इसको शोचतेहो या नहीं जब बहुतसे भोगोंको भोगकर तुम समुद्रकेपूर्वी
तटपर नियत हुये तब तेरा चित्त कैसाथा कि हजारों देवांगना तेरे सन्मुख
खड़ी होकर नृत्य करती थीं और हजारों बर्ष तक प्रतिदिन सुवर्ण और
कमलों के अनेक आभूषण पहरे नाचाकरीं हे दानवेश्वर अब तेराचित्त कैसा
है उससमय तेरा रत्नजटित छत्र भी अद्वितीय शोभायमानथा तेरे यज्ञस्तम्भ
सुवर्णकेथे और हजारों गन्धर्व सप्तस्वरोंसे गानको करतेथे उसयज्ञ में हजारों
गोदान ब्राह्मणों को देताथा उससमय तेरीक्या बुद्धिथी जब दण्डके फेंकने
की बुद्धिसे उतनेही बिस्तारमें तुमने सम्पूर्ण पृथ्वीको भ्रमणकिया तबतेरे हृदय
में क्याथा हे असुरेन्द्र मैं तेरे भृंगारपात्र छत्र, चमर, व्यजन और ब्रह्माजी की
दीहुई मालाको नहींदेखताहूं राजाबलिने कहाकि हेइन्द्र तुम मेरे भृंगारपात्र
छत्र, चमर, व्यजनको और ब्रह्माजी की दीहुई माला को भी नहीं देखतेहो
तुम मूल प्रकृति में अन्तर्द्धान होकर मेरे रत्नादिकों को पूछतेहो जब मेरा उ-
दयकाल आवेगा तब उन सब वस्तुओं को देखोगे यह तेरा पूछना व्यर्थ है
और कुलके योग्य नहींहै कि तुम ऐश्वर्य्यवान् होकर मुझ भ्रष्ट राज्य लक्ष्मी
वालेको लज्जायुक्त किया चाहतेहो ज्ञानी ज्ञानसे तृप्त और शान्त बुद्धिवाले
पुरुष दुःखों में नहीं शोचतेहैं और न प्रतापके उदय में प्रसन्नहोतेहैं हे इन्द्र
तुम प्राकृत बुद्धि से अपनी प्रशंसा करतेहो जब मेरेसमान होनहारमें फँसोगे
तब इसप्रकार नहीं कहोगे ३० ॥

इतिश्री महाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पंचाशत्तमोऽध्यायः ५० ॥

## इक्यावनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशी युधिष्ठिर इसबातको सुनकर भी इन्द्रने हँ-
सते हुयेही फिर उससर्पके समान श्वासलेनेवाले राजा बलिसे यहबचन कहा
कि जो तुम हजारों सवारियों समेत अपने सजातियों से संयुक्त सब लोकोंको
तपाते और हमको तुच्छ समझते जातेथे अब जातिवालों से और मित्रोंसे
त्यागेहुये अपनी इसकठिन दशाको देखकर शोचतेहो वा नहीं और पहिले

समयमें लोकों को अपने आधीन करके अतिप्रीति युक्तहो इस बाहरकी विपरीत दशाको देखकर शोचतेहो या नहीं राजा बलिबोले कि हे इन्द्र यहां धर्मकेरूपान्तरवाले समयसेइसविपरीतताको देखकर शोचनहींकरताहूं क्योंकि निश्चयकरके यह सबनाशवान्है हेदेवराज इसीकारण मैं शोचनहीं करताहूं और यह मेरागधेका रूप पापसे नहीं है किन्तु समयकी लौटपौट सेहै जीवन और देह जन्मके साथही उत्पन्नहोते हैं और दोनों साथही साथ वृद्धिपातेहैं मैं इसगधेके भावको पाकर देहके धर्म्मोंसे रहित नहीं हूं जब कि मुझे इतना ज्ञानहै तो मुझविज्ञानीको पीड़ाकैसे होसक्ती है, जो मरणहै वह जीवों की निष्ठा है आत्माकी नहींहै जैसे कि समुद्र नदियों की निष्ठा है अर्थात् परागति है हे इन्द्र उसपरागति के जाननेवाले मनुष्यमोहको नहींपाते हैं जोपुरुष रजोगुण और मोहमें फँसेहुये इसको इसप्रकारसे नहींजानते हैं और जिनकी बुद्धि नष्टहोजाती है वहदुःखको पाकर पीड़ित होते हैं पुरुष बुद्धीकेलाभ से सब पापों को दूरकरता है और पापसे पृथक् बुद्धिको पाताहै और बुद्धिमान् शुद्धहोता है अर्थात् मोहसे उत्पन्न होनेवाली स्याही को त्याग करताहै जो उसबुद्धि से रजोगुण तमोगुणमें प्रवृत्तहोते हैं वह बारम्बार जन्मधारण करते हैं और उन रजोगुण आदिसे चलायमान कृपणहोकर वह लोग दुःखोंकोपाते हैं मैं अर्थ अनर्थ सुखदुःखजीवन मरणके फलको बुरानहीं कहताहूं और न उसकीइच्छा करताहूं निर्जीव देहको मारताहै कुछ जीवात्माको नहीं मारता जो कोई मनुष्य मारताहै अर्थात् कहताहै कि मैं देहका दूसरा करताहूं वह बिनाशवान् और जड़ है वह दोनों अर्थात् एक बाधक दूसरा बाध्य नहीं जानते हैं अर्थात् अज्ञानी हैं हे इन्द्र जो कोई मारपीट से बिजय करके अभिमान करताहै वह अवर्तीही होताहै अर्थात् मुख्य कर्त्ता नहीं है क्योंकि उसको कर्त्ता बुद्धिही बनाती है तात्पर्य्य यह है कि कर्तृत्वता बुद्धिसेही सम्बन्ध रखती है आत्मा से नहींरखती है जगत्की कर्तृत्वता पुरुषमें नहीं हैइसको सिद्धकहते हैं अर्थात् लोक की उत्पत्ति और नाशको कौन करता है कि मायासे उत्पन्नहोनेवाले चित्तने उसकी उत्पत्ति और नाशको किया और उसचित्तका करता आत्मानहीं हैकोई औरही है पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, यह पांचों तत्त्वही स्थूल सूक्ष्मशरीरके उत्पत्ति स्थान हैं उसमें कौन विलापकरना है जो बड़ाविद्वान् छोटाविद्वान् सबल, अबल, सुरूप, कुरूप, भाग्य, अभाग्य इन सबको गम्भीर काल अपने तेजसे जैसे स्वाधीन करता है उसकालके स्वाधीन वर्त्तमान होने पर मुझ विज्ञानी को क्या पीड़ा है अर्थात् वह सब गुणचित्त और देह के हैं आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है तो पीड़ा क्या होसक्ती है, कालात्मा ईश्वर के नाशकियेहुयेको अग्नि आदिसे फिर भस्मकरता है और मृतक को पीछेमार-

ता है प्रथम नाशपाया हुआही नाशितहोता है और प्राप्तहोनेकेयोग्य पदार्थ को मनुष्यपाता है इसविधाता और पुण्य पाप से जुदे कालका कोईदेशनहीं है तो पारकहां से होसक्ताहै और बार भी दिखाई नहींदेताहै य: सब मैं विचारताहुआ भी उसके अन्तकोनहीं देखताहूं हेशचीपति जो कालमेरेदेखते हुये जीवोंकानाशनकरे ऐसीदशामें मुझको प्रसन्नता अहंकार और क्रोध होसक्ता है तुम इसउजड़े एकान्त स्थानमें तृणभक्षी मुझगर्दभ रूपको मिलकर और जानकर निन्दाकरतेहो मैं इच्छाकरताहुआ अपने अनेक प्रकारके भयकारी रूपों को बदलूंगा तुम उनमेरे रूपों को देखकर भागजाओगे, काल सबको अपने आधीन करता है और कालही नाशकरता है उसीसे सब उत्पन्नहुआ है इससे हे इन्द्रतुम अभिमान मतकरो हे इन्द्रपूर्व समय में मेरे क्रोधहोनेपर सब जगत् पीड़ितहोताथा मैं इसलोकके सनातन धर्म्मोंको भी जानताहूं अर्थात् बृद्धि और क्षय रूपको जानताहूं उसको भी इसीप्रकार से बिचारो, बुद्धि से आश्चर्य्य में मतपड़ो ऐश्वर्य्य और उसका उदय लक्ष्मी अपने आधीनमेंनहीं है जैसे कि पूर्वसमय में तेराचित्त बालकों के समानथा वैसा अब भी है यह अच्छीतरहसे बिचारकरो और नैष्टकी बुद्धिको प्राप्तकरो, देवता, मनुष्य, पितर, सर्प, गन्धर्ब, राक्षस यह सब मेरे स्वाधीनथे इनसब बातोंको तुम भी जानतेहो उसदशासे इसदशाको भी नमस्कार है जिस में बिरोचनका बेटा राजाबलिहै इसप्रकार बुद्धि और मत्सरतासे मोहित जीवमेरे आज्ञावर्ती थे हे शचीपति मैं उसबातको और अपनी नष्टताको नहीं शोचताहूं इसप्रकारकी मेरी निश्चित बुद्धिहै मैं ईश्वरकी आधीनतामें नियत रहताहूं वह महाकुलीन दर्शनके योग्य प्रतापवान् राजा मंत्रियोंके साथदुःखसे जीवता तुमको दृष्टपड़ता है यहऐसाही होनहारथा सोहुआ इसीप्रकार अकुलीन अज्ञान नष्ट उत्पत्तिवाले राजमन्त्रियों समेत सुखसे जीवता दृष्टपड़ता है उसकी वही होतव्यताहै हे इन्द्र कल्याणी स्वरूपा स्त्री अभागिनी दृष्टआती है और दूसरी कुलक्षणी कुरूपास्त्री भाग्यवाली दृष्ट आती है हे बज्रधारी जो तुमने इसदशाको प्राप्तहोकर यह नहीं किया तो हम भी ऐसी दशावाले हैं यहहमने भी नहीं किया और यह धनाढ्यता अथवा दरिद्रता मेराकर्म्म नहीं है वहकालके क्रम से कियाहुआ होताहै इसीप्रकार तुझ श्रीमानयशस्वीतेजस्वी बज्रधारीऊपर गर्जनाकरनेवाले आनन्दपूर्बक बिराजमानको भी मैं एक मुष्टिका से गिरासक्ताहूं जोइसप्रकार गधेका रूप न होऊं और काल मुझको धर्षण न करके नियत न हो तो सब काम करसक्ताहूं यहहमारे पराक्रमका समय नहीं है यह शांतिका समयप्राप्त है काल सबको नियतकरताहै और पकाताहै जोदानव असुरोंसे पूजित मुझको काल प्राप्तहुआ उसदशा में किस गर्जनेवाले और दूसरे के तपाने वाले

पुरुषको प्राप्तनहींहोगा, हे देवराज मुझ अकेलेने सब द्वादश सूर्य्योंके तेजों को धारणकिया और मैंहीं बादलरूपसे जलकोभी धारण करताथा और बर्षाताथा और मैंहीं सूर्य्यरूप होकर तीनों लोकोंको संतप्तकरके प्रकाशित करता था और संसारकी श्रेष्ठप्रकारसे रक्षाको करताथा और दण्डदेता और लेताथा और लोकोंमें प्रभु ईश्वर होकर अपराधियोंको पकड़ता और बुरेमार्गोंसे बचाताथा हे देवराज अब वहमेरा ऐश्वर्य्य जातारहा और मुझकालकी सेना से घिरेहुयेका सब ऐश्वर्य्य दृष्टनहीं पड़ता है हे शचीपति इन्द्र मैं कर्त्ता नहीं हूं और न तुमहो और न कोई दूसराहै सब लोककालके क्रमसे और दैवइच्छासे भोगेजाते हैं आयुर्वेद जाननेवाले मनुष्योंने उसकाल पुरुषको ऐसा कहाहै कि वह कालमहीना पक्ष आदिसे बिदितहोता है और उसका आश्रय माया सबलब्रह्महै ऋतुद्वार हैं अर्थात् उसकी प्राप्तीके साधन हैं वायु मुखहै अर्थात् प्रथम प्राप्तिके योग्यहै अथवा वायु के स्थान में बर्षशब्दहो उसका यह अर्थहै कि बर्षा करनेवाला धर्म्ममेघनाम ध्यान उसका मुखहै अर्थात् निर्बिषय ध्यान से मिलने के योग्य है कितनेही जीवनमुक्त मनुष्यों ने बुद्धिसे न कि शास्त्र बलसे इस सर्बकालनाम ब्रह्मको ध्यानके योग्यकहाहै अर्थात् ध्यान में पूर्ण ब्रह्मका आना असंभव है क्योंकि वह अद्वैतता में गिनाजाताहै इसीसे इस ध्यानके पांच विषय अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, बिज्ञानमय, आनन्दमयकोशोंको पांचप्रकार से बर्णन करूंगा अर्थात् वेदमें प्राप्तकरूंगा जैसे कि कहावतहै कि यहपुरुष अन्नरसरूप पक्षी है उसका यह शिरहै यह दाहिना और बायांपक्ष है यहआत्मा है यह पुच्छहै वहजाननेके योग्यहै परन्तु वहब्रह्म नहींहै क्योंकि अनात्मा है आत्माब्रह्म है और वेदमें जोकहा है कि यह सब आत्मा है इसको दोषलगनेसे हम कहतेहैं कि आत्मा में सब प्रकाश इसरीति का है जैसे किसी बीमें चांदीका आभास जैसे कि स्फटिक में पद्मराग इन्द्र नीलमणि आदि दृष्टपड़ते हैं फिर ध्यानकरते २ अन्त में केवल स्फटिकही शेषरहजाता है उसीप्रकार बुद्धि और चैतन्यमें ईशसूत्र बिराट्का अध्यास होताहै वहां देहका अभिमान दूरहोनेपर मैं बिराट्हूं यह अध्यास शेषरहजाता है उसकी निवृत्तिहोने पर मैं सूत्रात्माहूं यह अध्यास होजाता है उसके भी निवृत्तहोनेपर मैं ईशहूं यह अध्यास नियतहोता है उसके भी निवृत्त होने पर चित्त और बाणीके विषय से रहित चिन्मात्र शक्तिके समान शेषरहताहै वह तर्क से प्राप्त न होनेवाला शास्त्र से प्राप्तहोकर भी अगम्यब्रह्म महासमुद्रके समान आदि अन्त और वारापार न रखनेवाला एकरसहै और जैसा कि शंख और चांदीका श्वेतरूप होताहै वैसारूप धारण किये है और जन्म मृत्यु से पृथक् भी संसार रूपसे नाशवान् और जीवरूप से अबिनाशी है बुद्धि आदि

में अपने प्रतिबिम्बको प्रवेश करके आप चिह्न रहित भी है जो तत्त्वज्ञमनुष्य हैं वह उसको उपाधि धर्म्मसे स्पर्श रहित मानते हैं वह षडैश्वर्य्यमान ईश्वर तत्त्वोंकी बिपरीत सूरतका मिथ्यापन औरआश्रय अथवा दुःखादिदुर्भाग्यताको अपने में अविद्याके द्वारा मानता है यह अविद्यासे प्रकट होनेवाला दुःखादि आत्माको प्राप्त होनेके लायक नहीं है क्योंकि शुद्ध ब्रह्म से फिर दूसरा ब्रह्मा बिष्णु रुद्र प्रकट नहीं होता है सब जीवोंकी गति को पाकर कहांजायगा वह भागनेवालेसे त्यागहोने के योग्यनहीं है और निश्चल होताभी उससेपृथक् नहींहोता है अर्थात् सदैव प्राप्त होने से चित्तवृत्तीमात्र सब इन्द्रियां पांचप्रकार से उसको नहीं देखती हैं कितनेही पुरुषोंने इसको अग्निरूप कहा और कितनोंही ने प्रजापति और कितनेही उसकाल पुरुषको ऋतुमासपक्ष दिन क्षण पूर्व और परदिन और मध्याह्न मुहूर्त्तभी कहते हैं एक होनेपरभी उसकालको वहुतप्रकार का कहते हैं यह सब बातें जिसके आधीन हैं उसीको मुख्यजानो हे शचीपति बल पराक्रम में पूर्ण जैसे तुम हो वैसे हजारों इन्द्र होचुके यह महाबली कालरूप समय आनेपर तुम्ह सरीके बलमें मतवाले देवराजको भी आधीन करेगा वही सदैव इस सब दृश्यादृश्यको आधीन करता है, इसकारण हे इन्द्र तुम सावधान चित्तहो वहकाल पुरुष हमसे तुमसे पुरुषों से और पूर्व पूर्वजों से हटाने के योग्य नहीं है न होगा इस अनूपम राजलक्ष्मी को पाकर जो कोई जानता है कि यह मेरेपासही रहैगी वह मिथ्याहै क्योंकि इस का नाम चंचलाहै यह एकही स्थानपर कभी नहीं रहती तुम्हसेभी महाउत्तम हजारों इन्द्रों के पास यहराजलक्ष्मी नियतहुई और सबको त्यागकर मुझ को भी प्राप्तहुई फिर यह तुम को भी उसी प्रकार का जानकर कभी दूसरे के पास जायगी ५६ ॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ५१ ॥

# बावनवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इसके पीछे महात्मा बलिकी देहसे स्वरूप युक्त प्रकाशमान लक्ष्मी को निकलते हुये इन्द्रने देखा उस तेजसे प्रकाशमान लक्ष्मी को देखकर वड़े आश्चर्ययुक्त होकर प्रसन्न नेत्रहो देवराज इन्द्रने बलिसे पूछा कि हे बलि यह अपने तेज से प्रकाशमान चूड़ाकेयूर धारण किये शोभायमान स्त्री जो तेरी देहसे निकली और बर्त्तमानहै वह कौनहै बलिने कहा कि हे इन्द्र मैं इस आसुरी वा दैवी अथवा मानुषी को नहीं जानताहूं तुम इस से पूछो या न पूछो या जो इच्छाहो सो करो इन्द्रबोले कि हे पवित्रालय शोभायमान चूड़ाधारी स्त्री तुम कौनहो मुझ अज्ञानी से अपना बर्णन करो हेतेज

से प्रकाशित तुम इस उत्तम दैत्यको त्यागकरके मेरेपास बर्त्तमानहो सो कौन हो हे सुभ्रू तुम अपनावर्णन मुझसे करो लक्ष्मीबोली कि मुझको न बिरोचन जानताथा और न यह बिरोचनका पुत्र बलिमुझको जानताहै तुम मुझको भूति लक्ष्मी श्रीजानो हे इन्द्र न तो तुम मुझको जानतेहो न सब देवता जानते हैं इन्द्रने कहा हे दुःसह इस बलिकेपास बहुतकाल से निवास करनेवाली सती तुम मेरेकारण या इस बलिके कारण से दैत्यराजको त्यागतीहो यह बात क्या है लक्ष्मी बोली हे इन्द्र मुझको किसीप्रकारसे भी धाता धारण नहींकरता है और बिधाता धारणकरता है इसको कालने प्राप्त किया है तुम इसका अपमान मतकरो इन्द्रबोले हे पवित्रालय देवि तुम ने राजाबलिको किसकारण और किसरीतिसे त्यागकिया और मुझको क्यों नहींत्यागकिया, लक्ष्मीबोली कि मैं सत्यता, दान, ब्रत तप, पराक्रम और धर्म्ममें बर्त्तमान हूं इनगुणों को सुनकर राजाबलि ने मुखफेर लिया इस ने पहिले समय में ब्राह्मणों का भक्त सत्यबादी जितेंद्रीहोकर फिर ब्राह्मणों की निन्दाकरी और उच्छिष्टभरे मुखसे घृतका स्पर्शकिया और सदैव यज्ञकरनेवाला होकर काल से पीड़ित अज्ञान बुद्धिने संसारके लोगोंसे कहा कि मुझको भी पूजनकरो इस कारणसे मैं इस से पृथक्होकर तेरेपास निवासकरतीहूं सावधानमनुष्यसे मैं तपस्या औरबलके द्वारा धारण करने के योग्यहूं इन्द्र बोले कि हे पद्मालय देवि देवता मनुष्य और सब जीवोंमें कोई पुरुष भी है जो अकेला आपके धारण करनेको समर्थ हो लक्ष्मीबोली कि कोई देवता गंधर्ब असुर राक्षस ऐसानहीं है जो अकेला मुझे धारण करने को समर्थ होय, इन्द्रने कहा हे देवि तुम जिसप्रकार सदैव मेरेपास नियत रहो उस रीति को मुझ से बर्णन कीजिये मैं तेरेइस सत्यबचन को पूराकरूंगा लक्ष्मीने कहा कि हेइन्द्र मैं जिस प्रकारसे तेरेपास सदैव रहूंगी उसको मुझसे सुनो कि तुम वेदोक्त बुद्धिसे मेरेचार भागकरो, इन्द्रने कहाकि मैं अपने बल पराक्रमके अनुसार तुमको धारण करूंगा हे लक्ष्मी जी आप के सन्मुख मैं कभी बेमर्यादा न होऊंगा जीवधारियों में मनुष्योंका पोषण करने वाली आधार रूप पृथ्वी है वह तेरे चरणको सहैगी क्योंकि वह समर्थ है यह मेरा मतहै, लक्ष्मी बोली कि मैंने वही चरण रक्खा है जो पृथ्वी पर नियतहै हे इन्द्र इसीकारण से मेरेदूसरे चरणको अच्छे प्रकारसे नियत करो, इन्द्रबोले हे चारों ओर घूमनेवाली मनुष्योंमें जारी रहनेवाले जल हैं वहभी तेरेचरणों को सहैं क्योंकि जल भी क्षमाकरने को बहुत योग्य है लक्ष्मी ने कहा कि मैंने वही चरण रक्खाहै जो कि जलमें नियत है अब तू मेरेतीसरे चरण को अच्छी रीति से रख, इन्द्रने कहा कि जिसमें वेद यज्ञ और देवता बर्त्तमान हैं वह अग्नि तेरेतीसरे चरणको सुन्दर रीति से धारण करैगी, लक्ष्मी बोली हे

इन्द्र मैंने वही चरण रक्खाहै जो कि अग्नि में नियत है अब मेरे चौथे चरण को अच्छा नियत करो, इन्द्रबोले कि मनुष्योंमें जो निश्चय करके संत वेद ब्राह्मणों के भक्त और सत्यबक्ता हैं वह तेरेचौथे चरणको धारण करें क्योंकि संत बड़े सहनशील होते हैं पृथ्वीने कहा कि मैंने वही चरण रक्खा जो संतों में नियतहै, धन,तीर्थादिमें पुण्य यज्ञादिकर्म्म, विद्या, यहीचारों लक्ष्मीके चरण हैं जो कि पृथ्वी, जल, अग्नि और संतों में बर्त्तमान हैं, इन्द्रबोले कि निश्चय करके इसलोक में जीवोंकेमध्य जो पुरुष मुझ धारणकिये हुये तुझ सती को दुःखदेगा वह मारनेकेयोग्यहै यह सुनकर लक्ष्मीसेहीन दैत्योंकेराजा बलिने कहा कि जो मेरुनाम प्रकाशित पर्वत स्वर्ग में है उसके पीछे ब्रह्मलोक है और पूर्वादिचारों दिशाओं में इन्द्र, बरुण, कुबेर, यम इनचारों देवताओं की पुरी हैं वह चारोंपुरी मेरुके चारोंओर घूमने वाले सूर्य्यकी किरणों से प्रकाशवान् हैं जिस पुरीकानाश बर्त्तमान होताहै वहां सूर्य्यप्रकाश नहींकरतेहैं बिश्वासियोंको सूर्य्यकादृष्ट आनाउदय और दृष्टनआना अस्तमालूमहोताहै जब पूर्बमें उदयहोताहै तब पश्चिम देशनिवासियों को अस्तमालूमऔर जब उत्तरवासियोंकोमध्याह्नकेसमय उदयहोना मालूमहोताहैतबदाक्षिणात्य लोगों के यहां अर्द्धरात्रिहोती है इसीप्रकार दक्षिण आदि में भी जानना चाहिये ऐसी दशा में जब पूर्वमें प्रकाशहोताहै तब मेरुकी प्रदक्षिणा बराबरहोने से सूर्य्य दसरी दिशा में भी प्रकाशकरता है इसहेतु से जबतक पूर्ब में प्रकाश करता है तबतक दक्षिण में इसकहने से जितने काल में पूर्ब की नष्टताहोगी उससेदूने काल में दक्षिणकी होगी ब्रह्माजीका जो दिनहै उसके सोलहभाग कियेजाँय उनमें के पहिले भाग में पूर्बकीहानि, दो भाग में दक्षिणकी, चार भाग में पश्चिमकी, आठभाग में उत्तरकी, तब देखनेवालोंके बर्त्तमान न होनेपर सूर्य्यका उदय अस्त जो कि दर्शनीय और अदर्शनीय रूपहै नहींहोता है किंतु मध्याह्नही रहता है अर्थात् बराबर ब्रह्महीलोक को प्रकाश करता है क्योंकि उससमय दूसरी पुरी बर्त्तमानता नहींहोती, उसीको बर्णन करते हैं कि जब एकस्थान अर्थात् ब्रह्मलोक में बर्त्तमान सूर्य्यमेरु पहाड़की पीठसेनीचेकी ओर बर्त्तमानलोकोंको प्रकाशकरेगा तब ब्रह्माजीके मध्याह्न समय के पीछे वैवस्वतमनुका अधिकार भ्रष्टहोने से सावर्णीनाम मनुकेहोनेपर राजाबलिही इन्द्रहोगा अथवा वैवस्वतमन्वंतरके आठभागकरके उनमें ऊपरके क्रमके अनुसार अष्टपुरियोंके भ्रष्टहोनेपर दूसरे मन्वन्तर में राजाबलि इन्द्रहोगा उसीप्रकार जब मध्याह्नके समय सूर्य्य प्रकाशमानहोगा अर्थातचारोंपुरी नष्टहोजाँयगी फिर देवता और असुरोंका युद्धहोनेवालाहै तब मैं तुमको बिजयकरूंगा, इन्द्र बोले कि हे बलि मैं ब्रह्माजीसे आज्ञा दियाहूंइससे मैं आपकेमारनेके योग्य

नहींहूं इसीकारण वज्रको तेरे मस्तक पर नहींमारताहूं हे दैत्येन्द्र महाअसुर तुम इच्छानुसारजाओ तेराकल्याणहो मध्यमें वर्त्तमानसूर्य कभी नहीं तपावेगा अर्थात् चारोंपुरी की नष्टता कभी न होगी प्रथमही ब्रह्माजी की ओर से इससूर्यका नियम नियतकिया गयाहैयह सूर्य सत्यकर्मसे संसारकोतपाता हुआ बराबर चलताहै उसका स्थान छःमहीने तक उत्तर और छः महीने दक्षिणको होताहै सूर्य जिसमार्ग से शीत और उष्णताको उत्पन्नकरताहुआ लोकोंमेंघूमताहै उसको क्रांतिवृत्तकहतेहैं भीष्मजीबोले कि हे युधिष्ठिर इन्द्रसे इसप्रकार कहाहुआ राजाबलि दक्षिणदिशाकोगया और इन्द्र उत्तर दिशाको चलकर राजाबलिके इससाहंकारी बचनकोसुनकर आकाशको चढ़ा ३८॥

इतिश्रीमहाभारते शांतिपर्वणिमोक्षधर्मे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ५२॥

# तिरपनवां अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर इस निरहंकारता के बिषय में और एक प्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसमें इन्द्र और नमुचिका सम्बादहै किसी समय इन्द्र ने लक्ष्मी से रहित समुद्रकी समान स्थिरता में युक्त जीवोंके उत्पत्तिलय के जाननेवाले नमुचि से कहा कि हे नमुचि पाशों से बँधे स्थान से भ्रष्ट शत्रुओं के स्वाधीन वर्त्तमान लक्ष्मी से रहित तुम शोचते हो या नहीं शोचतेहो, नमुचि ने कहा कि दूर न होनेवाले शोकसे देहको पीड़ा होतीहै उससे शत्रु बहुत प्रसन्न होतेहैं शोक में किसी की सहायता नहीं है, इसकारण हेइन्द्र मैं शोच नहीं करताहूं क्योंकि निश्चय करके यह सब नाशवान् हैं शोकसे स्वरूप की नष्टता होतीहै और शोभाकी हानि होतीहै और शोकही से आयु वा धर्म नष्ट होतेहैं इस अनिच्छासे उत्पन्न होनेवाले दुःखको त्यागकरके ज्ञानी मनुष्यको हृदय में वर्त्तमान आत्मा और अपने कल्याणको चित्तसे ध्यान करना योग्यहै, पुरुष जब कल्याण में चित्त को करताहै तब उसके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होतेहैं एकही स्वामी है दूसरा कोई नहीं है वह स्वामी गर्भ में शयन करनेवाले पुरुषको उपदेश करताहै उसीसे कर्मों में प्रवृत्त पुरुष होताहै जैसे कि ढलाव के स्थान से जल बहताहै, मुझको भी जैसी आज्ञाहुई उसी कर्म को करताहूं, मोक्ष बन्धन अथवा सत्य मिथ्या इन सबके मध्यमें ज्ञान मोक्षको श्रेष्ठ जानता हुआ सिद्ध नहीं कर सक्ताहूं जैसे कि धर्मरूप उत्तम आशाओं में ईश्वरने कर्म करना कहाहै उसको उसी प्रकारसे करताहूं, मनुष्य जिसप्रकार से उसको प्राप्त करना योग्य समझताहै उसी उसी प्रकार से प्राप्त करताहै जैसी होतव्यता होतीहै वैसाही सब होताहै, ईश्वर ने जहां जहां बराबर गर्भों में अपने को निवेशित किया

है वहां वहांहीं निवास करताहै क्योंकि उसके आधीन है मुझ को जो यह जन्म प्राप्त हुआ सो मेरा होनहार था जिसका इसप्रकार से चित्त में ज्ञान है वह कभी मोहको नहीं पाता है, काल के क्रम से प्राप्त होनेवाले सुख दुःखों से पीड़ित मनुष्यों में कोई बिपरीत नहीं जानता जिससे कि किसी नालिश को करे सब बुद्धिमान् पुरुष यही कहतेहैं कि हमहीं अपने दुःखों के करता हैं फिर नालिश किसकी किसकोकरें किस देवता असुर और बनमें निवास करनेवाले मुनि वेदज्ञों को आपत्ति नहीं आतीहै अर्थात् सबको प्राप्त होती है लोकमें जो सत् असत् अर्थात् सत्य मिथ्या बस्तुके जाननेवाले हैं वह निर्भय रहतेहैं और पण्डित मनुष्य क्रोध नहीं करताहै न संसार में चित्तको लगाता है न पीड़ा पाताहै न खुश होताहै और दुःखसे हटानेके योग्य दुःखोंमें शोच भी नहीं करताहै और स्वभाव से हिमालय पर्वत के समान अचल होकर नियत है, जो मनुष्य उत्तम मनोरथों से और समयके सुख दुःखोंसे बिस्मरण नहीं होता और सुख दुःखों को समान गिनताहै वह मनुष्य बड़ा धुरन्धर गिनाजाताहै, जैसी जैसी दशाको पुरुष प्राप्त करे उसमें दुःखी कभी न हो किन्तु उसी में निर्बाह करे और बड़ेभारी चित्त में उत्पन्न होनेवाले दुःखदायी कष्टों को देह से दूरकरे, अब बिबेककी कठिनताको सुनो कि वह सभावेद और स्मृतियों के न्याय और अन्यायकी खोलनेवाली है उसको पाकर कभी भय नहीं करताहै, जो बुद्धिमान् धर्मतत्त्वों को जानकर उसको प्राप्त करताहै वहपुरुषधुरन्धरहै अर्थात् सभासदोंमें उत्तमहैआशययहहै किधर्म्मतत्त्वभी कठिनतासेप्राप्तहोताहैतो ब्रह्मतत्त्व क्यों नहीं दुःखसे प्राप्तहोगा,ज्ञानीकेकर्म्म ऐसेहैं जिनकाफलआगेको समझमेंआना कठिनहै ज्ञानीमोहके समय मोहकोनहीं पाताहै,इसगृहस्थाश्रमसे रहितगौतमऋषि इसीप्रकारकी आपत्तियोंको पाकर उनके दुःखों से मोहित नहीं हुआ, तात्पर्य्य यहहै कि मैं तेरेसमान अजितेन्द्री और चित्त के आधीन नहींहूं किन्तु गौतम ऋषि के समान चित्तका जीतने-वालाहूं, मनुष्य मन्त्र, बल, पराक्रम, बुद्धि, उपाय, स्वभाव, रीति और धन आदिसे दुर्ग्राह्य बस्तुको नहीं पासक्ताहै अर्थात् चित्तकी सावधानताको नहीं पाता है उसमें क्या शोचहै, पूर्व्व समय में ईश्वर ने इस प्रकार जन्मलेनेवाले का जो बिधान कियाहै उसी के अनुसार कर्म्म करूंगा मृत्यु मेरा क्या कर सक्ती है, प्राप्त होनेवाले सुख दुःखों को अवश्य पाता है और यात्राके योग्य देशों को भी जाता है और प्राप्त होने के योग्य को प्राप्त होता है जो मनुष्य इसको सम्पूर्णता से अच्छेप्रकार जानकर मोहको प्राप्त नहीं होता है वह सब दुःखों से निवृत्त होकर धनका स्वामी होता है २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ५३ ॥

# चौवनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह बन्धुओं समेत राज्य के नाश होने में महा कठिन आपत्तियों में डूबेहुये मनुष्य का कल्याण करनेवाला क्या है इस बात को आप कहने के योग्य हैं क्योंकि इसलोक में हे भरतर्षभ आपही हमारे अद्वैतवक्ता हैं भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर पुत्र स्त्री सुख धनसे पृथक् और कठिन आपत्ति में पड़ेहुये मनुष्य को धैर्यही सुखका देनेवालाहै सदैव धैर्य युक्त पुरुष नाशको नहीं पाता है और शोक रहित सुखको पाता है और देह की उत्तम नीरोग्यता को भी धारण करता है वह देहकी नीरोग्यता से और सात्त्विकी वृत्तिमें नियत होकर पूर्ण लक्ष्मी को पाता है उसको धैर्य ऐश्वर्य्य और कर्मों में निश्चयभी प्राप्त होता है, इसस्थानपर फिर एक प्राचीन इतिहास को कहताहूं उसमें भी इन्द्र और बलिके प्रश्नोत्तर हैं कि देवासुरके युद्ध जारीहोने में दैत्य दानवों के नाश पूर्वक सबलोकों को विष्णुजी में व्याप्त होनेपर इन्द्रको देवराज पदवी मिली तब इन्द्र देवताओं के पूजित हुये उस समय चारों वर्ण नियतहुये और तीनों लोकोंकी वृद्धिहुई तब ब्रह्माजी समेत ग्यारहरुद्र, आठवसु, द्वादशसूर्य, दोनों अश्विनीकुमार, सब ऋषि गन्धर्व राक्षस सर्प आदि से व्याप्त इन्द्र अपने चार दांतवाले ऐरावतपर सवारहोकर तीनों लोकों में घूमे और घूमते हुए समुद्र के तटपर किसी पहाड़की गुफामें बिराजमान राजा बलिको देखा और समीपगया उस बलिने इस बड़ीधूमधाम समेत इन्द्रको देखकर कुछ भी शोच न किया और न दुखीहुआ तब इन्द्रने उस सावधान निर्भय स्वरूप राजा बलिसे कहा कि हे दैत्य बलि तुम शूरतासे या वृद्धों के सेवनसे अथवा अपने चित्तकी शुद्धतासे पीड़ा रहितहो यह बड़ा कठिन कर्म है कि शत्रुओं के आधीन अपने स्थान से भ्रष्ट राजलक्ष्मी से पृथक् होकर भी तुम किसके बलसे भयके स्थान में भी निर्भयहो पूर्व समय में अपने बापदादे के राज्यपर अधिकारी होकर अब तुम उसराज्यको शत्रुओं से छीनाहुआ देखकर क्यों शोच नहीं करते और वरुणके पाशों से बँधे वज्र से घायल स्त्री धन रहित भी क्यों नहीं शोच करते ऐसा कौनहै जो तीनों लोकों के राज्य भ्रष्टहोने पर जीवनेका उत्साहकरे ऐसी दुःखदायी मर्मभेदी इन्द्रकी अनेक बातें सुनकर उसइन्द्रको निरादर करके बिरोचन का पुत्र राजा बलि यह बचनबोला कि हे इन्द्र मेरे आपत्ति के होने से तुझको प्रशंसाकरने की क्या आवश्यकता है अब तुम बज्र उठाये दीखते हो किसी समय तुम ऐसे असमर्थ थे कि भागते फिरते थे अब दैवयोग से इन्द्र पद पाकर तेरे सिवाय दूसरा कौन ऐसे निर्दयबचनों को कहने के योग्य है जो कोई

अपने बलवान् शत्रुको स्वाधीन करके उसपर करुणा करता है वही पुरुषहै ज्ञानियों के बीचमें दो पुरुषोंका बिवाद निर्णय नहींहोता है उनमें एक हारता है और एकजीतता हैं हे देवेश यह तेरा स्वभाव ईश्वर ने कि सब जीवों का स्वामी तेरे बलपराक्रम से बिजयहोय और यह हमारा कर्म नहीं है न तुम्हारा है जो तुम या दूसरा ऐसी दशा में हो और हम ऐसी दशा में हुये अबजैसे तुमहो वैसाही मैं भीथा और जैसे अबहमहैं वैसेही तुमभी होगे तुम यह न समझो कि मैंने बड़ाकर्म किया क्योंकि समयकी विपरीतता से पुरुष सुख दुःखको भोगताहै और तुमने भी समय की बिपरीततासेही इंद्रपद पाया है कुछ अपने पुरुषार्थ से नहीं पाया कालने जैसे मुझे प्राप्त कियाहै उसी प्रकार तुझको भी अवश्य करेगा कभी मैं तेरे समान नहीं कभी तू मेरे स- मान न होगा, पुरुषका सुखदायी माता पिता से अधिक कोई नहींहै विद्या, तप, दान, मित्र, बांधव यहसब उस कालसे पीड़ित मनुष्यकी रक्षा नहीं कर सक्ते मनुष्य बुद्धि बलके विशेष सैकड़ों उपाय और अनर्थोंसे भी होनहार सुख दुःखके दूरकरने को समर्थ नहीं होसक्ते हैं, समय के बिपरीतपने से दुखी मनुष्योंका कोई रक्षक नहींहै हे इन्द्र इसीको दुःख जानो जो तुम मानते हो कि मैं इसका कर्त्ताहूं, जोमनुष्य कर्त्ता होजाय तो वह कभी उत्पन्न भी न हो फिर कर्त्ताकी उत्पत्ति होनेके कारण वह कर्ताभी असमर्थहै मैंनेभी तुझेकाल से विजय कियाथा और अब कालसे तैंने भी मुझको विजय किया है काल ही कर्मके फलमें वर्तमान पुरुषों को प्राप्त होनेवालाहै, कालही जीवोंकी सं- ख्या करताहै और एक को एकसे पृथक् करता है, हेइन्द्र तुम प्राकृत बुद्धिसे नाश को नहीं जानते हो, अपने कर्म्मोंसे प्रतिष्ठा पानेवाले लोग तुम को बहुत मानतेहैं, कालसे पीड़ित मुझसा पुरुष लोककी प्रवृत्तियों को जानता कैसे मोहित होकर शोचकोकरे और भ्रान्ती पावे मुझकालसे व्याप्त या मेरे समान पुरुष की बुद्धि टूटी नौका के समानपीड़ा को पाती है, मैं तुम और अन्यभी बहुतसे देवेन्द्र होंगे वह सबभी सैकड़ों इन्द्रोंके प्राप्त होनेवाले मार्गों में जायँगे, अन्तके समय तुझ शोभायमान विजयी कोभी काल ऐसेही भ्रष्ट करेगा जैसा कि मुझको किया है, देवताओं के हर एक यज्ञ में हजारों इन्द्र कालसे व्यतीतहोगये यह कालही कठिनतासे उल्लंघन के योग्यहै और जो तुम इन्द्रासनको पाकर अपने को बड़ामानते हो सो यह कालही जीवों के उत्पत्तिस्थान ब्रह्माजीके समान तुमको भी प्रतिष्ठित मानताहै यह किसीका अचलस्थान नहीं है, तुमनिर्बुद्धितासे जानतेहो कि यह मेराहै हे देवेन्द्र तुम अविश्वस्तमें बिश्वासकरतेहो और चलको अचलमानतेहो तुममोह से राजल- क्ष्मीको चाहतेहो कियहमेरीहै यहतेरीहै नमेरीहै नदूसरोंकीसदैवहै यहहज़ारोंको

उल्लंघनकरतीहुई तुझमेंप्राप्तहुईहै सोकुछकालतक यहचंचल तुझमें नियतहोकर जैसे कि गौस्थानको बदलती है उसीप्रकार तुझको भी छोड़कर फिर दूसरे को प्राप्तहोगी बहुतसे राजा ब्यतीत होगये जिनकी संख्याकरना कठिनहै हे पुरंदर दूसरे तुझसे भी अधिकगुणवान् होंगे, यह पृथ्वी पूर्वसमयमें वृक्ष औ-षधि बनआकररत्न और जीवोंसमेत जिनसे भोगीगई उन पुरुषोंको अबनहीं देखताहूं अर्थात् राजापृथु, ऐल, मय, भीम, नरक, शंबर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, बिप्रचित्ति, बिरोचन, ह्रीनषेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान, वृष, सत्येसु, ऋषभ, बाहु, कपिलाश्व, विरूपक, बाण, कार्त्तस्वर, वह्नि, बिस्वदंष्ट्र, नैऋति, सकोच, बरीताक्ष, बराह, अश्व, रुचिप्रभ, बिश्वजित्, प्रतिरूप, बृषाण्ड, बिस्कर, मधु, हिरण्यकश्यप, कैटभ, यह सब दैत्येय और दानव नैऋति समेत और अन्य बहुत प्राचीनबृद्ध और उनसेभी प्रथमहोनेवाले दैत्येन्द्रदानवेन्द्र और जिन२को सुनतेहैं यहसबपृथ्वी को भोगकर चलेगये इससे कालही बड़ापराक्रमीहै सबनेसैकड़ोंयज्ञोंसे उसका पूजनकिया केवल तुम्हींशतक्रतु नहींहो वहसब धर्म्ममें पूर्णसदैव यज्ञकरनेवाले अंतरिक्षगामी सन्मुख युद्धकरनेवाले देहसेदृढ़परिघकेसमानभुजावालेसैकड़ों माया धारणकरनेमें समर्थकामरूपथे अर्थात् स्वेच्छासेरूप धारणकरनेवाले थे वहकभी युद्ध में पराजित नहीं सुनेगये वेदब्रत में परायणसत्यवक्ता और शास्त्रज्ञथे सबमें सबका अभीष्ट ऐश्वर्य्यपाया उन महात्माओंकोभी अपने ऐ-श्वर्य्यकाकभी अभिमान नहींहुआ सब अपनी सामर्थ्यके अनुसारदानी और मत्सरतासे रहितथे,सब ने जीवधारियों में जैसा बर्त्ताव योग्य था वैसाही किया दक्षप्रजापति के महाबली पुत्र प्रतापी हुये वह भी कालने आकर्षण किये, हे इंद्र तुम जब इस पृथ्वी को भोगकर फिर त्याग करोगे तब तुम अपना शोक दूरकरने को समर्थ न होगे कामभोगों में जो इच्छा है उसको त्यागदो और लक्ष्मी से उत्पन्न होनेवाले इस अहंकारको भी त्यागो इसी प्रकारसे तुम राज्य के नष्टहोने में शोकको न सहसकोगे तुमको चाहिये कि शोचके समय अ-शोच और हर्षके समय हर्ष रहित होजाओ, भूत और भविष्यको त्यागकरके बर्त्तमान बस्तु से निर्वाह करो क्योंकि सदैव कर्म्म में प्रवृत्त मुझसे सावधान को जो काल प्राप्त हुआ, हे इन्द्र क्षमाकरो वह थोड़ेही काल में तुमको भी प्राप्त होगा हे इन्द्र तुम यहां मुझको डराकर अपने बचनों से घायल करतेहो यह काल पहिले मुझको सताकर अब तेरेभी पीछे दौड़ताहै इसीहेतु से प्रथम काल से मेरेघायल होनेपर तुम गरजतेहो इसलोकमें युद्धके बीच तुझक्रोधी के सम्मुख कौन बर्त्तमान होने को समर्थ है और हे इंद्र पराक्रमी काल के प्राप्त होनेपर हजार बर्षतक तुम नियत रहोगे, जब मुझसे पराक्रमीके सबअंग

सावधान नहीं रहे तब मैं इंद्रासनसे उतारा गया और तुमको स्वर्ग का इन्द्र बनाया इसबड़े जीवलोक में समयके लौटने से उपासना के योग्य हुआ, अब तुम किस कर्म्म से इंद्र हो और हम किस अपराधसे राज्यसे भ्रष्ट हुये, काल ही कर्त्ता और नाशकर्त्ता है और सब निरर्थक हैं, ज्ञानी पुरुष ऐश्वर्य्यवान् होने वा न होने अथवा दुःख सुख होने न होने में सुखी दुःखी नहीं होते हे इंद्र तुम मुझको जानते हो और मैं तुमको जानताहूं तुम अपनी प्रशंसा हम से क्यों करतेहो क्यों काल से निर्लज्जहोते हो पूर्व समयमें तुम मेरेपराक्रम और उपायों को जानतेथे जो युद्धों में मैं करताथाहे शचीपति मैंने पूर्व समयमें बारह सूर्य्य, ग्यारह रुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, वसुओं समेत देवासुर युद्धमें बिजय किये इसको तुमभी जानतेहो, मैं ने युद्धमें बलसे भागने वाले देवता सब परास्त किये और जंगल वा जंगलके जीवों समेत अनेक पहाड़ों को हाथ से उठा २ नगरों समेत तेरेमस्तक पर फेंककर तोड़डाले अब मुझे क्या करना सम्भवहै निश्चय करके काल कठिनता से पारहोनेवाला है नहीं तो तुझ बज्रधारी को अभी मुष्टिका से मारने का उपाय करता यह मेरा पराक्रम का समय नहीं है किन्तु शांति का समय आया है इसीकारण से हे इन्द्र मैं तुमसे अधिक असहिष्णु होकर तुमपर क्षमा करताहूं सो तुम कालके विपर्यय से उस कालाग्नि से व्याप्त होकर कालकी फांसी में बंधे हुये मुझको अपनी प्रशंसा सुनातेहो, यह वह पुरुष श्यामवर्णलोक से दुर्ग्राह्यरुद्र काल मुझको बांधकर ऐसे नियतहै जैसे कि रस्सीसे पशुको बांधकर कोई वर्त्तमान हो, हानि, लाभ, सुख, दुःख, काम, क्रोध, ऐश्वर्य्य, नष्टता, मारना, पकड़ना मोक्षहोना इत्यादि सब बातें काल से प्राप्तहोती हैं न मैं कर्त्ताहूं न तू कर्त्ता है जो कर्त्ताहै वहसदैव सबका स्वामीहै वह कालवृक्षमें होनेवाले फलोंके समान हम सबको पकाता है, पुरुष जिन २ कर्म्मोंके करने से सुखको प्राप्त करता है फिर उन्हीं कर्मों को करता कालकेही कारण दुःखोंको भी भुगतता है, काल का जानने वाला पुरुष कालसे स्पर्श किया हुआ शोचके योग्य नहीं है इस कारणसे मैं शोच नहीं करताहूं, शोकमें किसीकी सहायता नहींहै जब शोच करनेवाले का शोक दुःखसे दूरनहीं करसक्ता है तब शोचको कौन करै इसी कारण से अब मैं शोच नहीं करताहूं इतनी बलिकी बातें सुनकर इंद्रने क्रोध को रोककर यह बचन कहा कि बज्र समेत हाथके उठने और बरुणके पाशोंको देखकर किसकी बुद्धि भयसे पीड़ित न होगी और यह तेरी तत्त्वदर्शी अचला बुद्धि मारनेवाली मृत्युसे भी पीड़ा नहीं पाती है निश्चयकरके तुम सच्चे पराक्रमी हो और अपने धैर्य्यसे भय नहीं करतेहो और इस संसारको अस्थिर जानके कौनसा देहधारी विषयोंमें बिश्वास करेगा मैं भीइसीप्रकार इसलोक

को नाशवान् जानताहूं,जोपुरुष उसघोररूप अविनाशी गुप्तप्रकट कालाग्नि में वर्त्तमानहै वह कभी नहीं छूटसक्ताहै चारोंओरसे जीवोंको तपानेवाले लोक को विनाशवान् जानताहूं,और फिर न लौटनेवाले कालकेपंजेसे नष्टताकोप्राप्त पुरुष मोक्ष नहीं होता है क्योंकि वह सावधानकाल अचेत जीवों में सदैव जागता है, पूर्वकाल में बड़े उपाय से भी वह प्राचीन सनातन धर्म्म और सबमें समान वर्त्तमान वह काल किसीसे उल्लंघन होनेके योग्यनहीं देखा वह काल न दूरहोसक्ता है और न बदलसक्ताहै जो काल दिनरात मास पक्ष क्षण काष्ठादि कला बिकलाओंको ऐसेइकट्ठा करताहै जैसे व्याजकी जीविका वाला ब्याजका संचय करताहै, अब यह करूंगा कल वह करूंगा इसप्रकारके कहनेवाले पुरुषको प्राप्तहोनेवाला काल आकर्षण करलेता है और जैसे कि नदीका बेग वृक्षको गिराताहै उसीप्रकार यह भी गिरालेजाता है, अर्थ भोग स्थान ऐश्वर्य्यादिक सब नाशहोजाते हैं; कालआकर जीवलोकके जीवनको लेजाताहै सब संसार बिनाशवान् और अनियतहै तेरी वह अचल औरतत्त्व दर्शिनी बुद्धिपीड़ा से रहितहै, इस जगत्में बलवान् कालसे दबाकर पकड़ने परभी इसको चित्तसे ध्यान नहीं करताहै कि मैं पहिले समय में ऐसाथा यह ऐश्वर्य्यवान् नष्टहुआ इस बचन से चित्तको चलायमान नहीं करता है यह संसार, ईर्षा, क्रोध,लोभ,अहंकार,इच्छा,द्वेष,भय, मोहादिकों से अज्ञानताको पाताहै परन्तु आप तत्त्वभाव के ज्ञाता बुद्धिमान् ज्ञान तपसे संयुक्तहो,प्रत्यक्षमें कालको ऐसे देखतेहो जैसे कि हाथमें लिये आंवलेको देखा करते हैं हे बिरोचनके पुत्र तुम कालके मुख्य चरित्रों के ज्ञाता सब शास्त्रोंमें प्रवीण बुद्धिमान् ज्ञानियों के चाहनेवाले हो मैं मानताहूं कि यह सब लोक आपकी बुद्धि से व्याप्त है सब ओर से मुक्तहोकर बिचरतेहुये किसी बन्धन में नहीं पड़ते और तुमको रजोगुण तमोगुणभी आधीन नहीं करसक्के हर्ष शोक से रहित तुम आत्माकी उपासना करतेहो सब जीवोंमें समभाव शान्त चित्त तुमको देखकर तुम में मेरी बुद्धि दयालुतायुक्त उत्पन्न हुईहै मैं ऐसे ज्ञानीको बन्धन दशा में कभी नहीं मारना चाहताहूं दयाही उत्तम धर्म्म है तुममें मेरी दयाहै और यह तेरी बरुणपाश समयके विपरीति होनेमें पृथक् होगी हेमहाअसुर प्रजाओंकी अभाग्यता से तेरा कल्याणहो जब पुत्रबधू वृद्धसासको अपनी सेवामें प्रवृत्त करेंगी और पुत्र अपने पिताको अज्ञानतासे काम करनेको भेजेगा और शूद्र ब्राह्मणों से पैर धुलवावेंगे और ब्राह्मणीस्त्रीको निर्भय होकर अपनी स्त्रीबनावेंगे और उत्तम पुरुष अपने बीर्य को बिपरीत योनिमें डालेंगे और वर्णसंकर होजायँगे और कांसीके पात्रों से बलिकर्म होने लगेगा और चारों वर्ण बे मर्याद होजायँगे तब तेरा एक २ पाश क्रम पूर्वक देहसे अलग होगा मुझसे

तुझे कोई भयनहीं है समय को देखते हुये सुखी निर्विघ्न स्वस्थचित्त नीरोगतापूर्वक बिचरो याजहांचाहो वहांरहो उससेऐसेबचन कहकरदेवेश इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर बड़ी प्रसन्नता से असुरों की विजयकर महाइन्द्र पदवी पाकर चलेगये और वहां सब देवताओंने उसकी स्तुतिकी और देव ब्राह्मण आदिसे पूजित स्वर्गमें इन्द्रासनको पाकर महा आनन्दयुक्त हुये ११९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेचतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ५४ ॥

# पचपनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह राजा भीष्मजी ऐश्वर्यवान् होनेवाले और नष्टताको प्राप्त होनेवाले पुरुषोंके जो मुख्य और प्रथम चिह्नहैं उनको आप मुझसे वर्णनकीजिये, भीष्मजी बोले कि तेरा कल्याणहो चित्तही से ऐश्वर्य होनेवाले और भ्रष्टहोनेवाले मनुष्यों के प्रथम चिह्नों को तुमसे वर्णन करताहूं हे युधिष्ठिर इसस्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें कि लक्ष्मीजी और इन्द्र का सम्बाद है कि ब्रह्माजी के समान महा तेजस्वी तपोमूर्त्ति श्रीनारदजी ब्रह्मलोकबासी ऋषियोंकी समानतामें प्राप्तहोकर बड़े तपके तेजसेगुप्त और प्रकटदोनों लोकोंको देखतेस्वेच्छाचारीहो तीनोंलोकोंमें घूमे, कभी प्रातःकाल उठकर पवित्रजल में स्नानकरनेकी इच्छासे ध्रुवजीकेद्वारपर वर्त्तमान श्रीगंगाजी के तटपर पहुंचे और उस आकाशगंगापर उतरे वहां देव ऋषियों से पूजितपाकासुर और शम्बरकेघाती वज्रधारी सहस्राक्षइंद्रजीभीउस देवऋषियोंसेब्याप्त श्रीगंगाजी पर आये वहदोनों जितेन्द्रीस्नानजप आदि क्रियासे निवृत्तहोकर कंचनके समान उसनदीकेरेतमें किसी टापूपरबैठगये(इस बातसे सिद्ध है कि स्वर्गबासी लोगभीस्नान जप आदि कर्मकरते हैं वहां बैठ कर उनदोनों पवित्रात्माओं ने उत्तम कर्मवाले देवऋषि और महर्षियों की कहीहुई कथा को वर्णन किया और भूतकालीन कथाओं को कहते हुये वह दोनों सावधान हुये फिर उन दोनों ने हजारों किरणों से ब्याप्त उदयहुये सूर्य्य को पूर्णमंडल युक्त देखकर उठकर उपस्थान किया और उसी सूर्य्य के समीप अन्य सूर्यकेसमान एकज्योतिभी जो कि प्रज्वलितअग्नि के सदृश देदीप्यमानथी दृष्टपड़ी वह गरुड़रूप सूर्यकेऊपर रचित चारोंओरसे नियत बिष्णुकेसमान उनदोनोंके सम्मुख तीनोंलोकोंको प्रकाशकरता किरणों से अनुपम देदीप्यमानथी उसकेभीतर रूपवान् शोभायुक्त नाना अलंकारोंसे भूषित श्वेतमाला पहरे कमलदल में बर्त्तमान साक्षात् श्रीलक्ष्मीजीको देखा कि वह अपने उत्तम बिमानमें से उतरकर देवेश इंद्र और नारदजी के पास आई उनको देखतेही इंद्र और नारदजी हाथजोड़कर खड़ेहोगये और बड़ीबिधिसे उनक

पूजन करके इस बचनको कहा कि हेसुन्दरी तुम कौनहो और किस निमित्त यहां आईहो और कहांको जाओगी, लक्ष्मीजीबोलीं कि तीनों पवित्रलोकों में सब स्थावर जंगम जीव मेरे प्रकाशको चाहा करतेहैं और मेरेलिये अनेक बुद्धियों से उपाय करतेहैं सो मैं कमल में उत्पन्न होकर सूर्य की किरणों से संसारको व्याकुलदेख उनके आनन्द देनेको उत्पन्नहुईहूं जो कि मैं पद्माश्री और पद्ममालाधारी लक्ष्मी भगवतीहूं हेबलिध्वंसी मैंहीं श्रीलक्ष्मी, श्रद्धा, मेधा सन्नति विजिति, स्थिति, धृति, सिद्धि, और मैंहीं तेरी विभूतिहूं स्वाहा, स्वधा, नियति, स्मृतिभी मैंहींहूं मैंहीं विजयी राजाओंकी सेनाओंकी अग्रध्वजाओं पर धर्मशीलोंकी आश्रयस्थान देशपुरों में विजय से शोभित युद्धों में और मुख न मोड़नेवाले शूरवीर राजाओंके पास सदैव निवास करतीहूं और बड़े बुद्धिमान् वेदज्ञ धर्मशील ब्राह्मणोंके पोषण करनेवाले सत्यवक्ता गुरूके वचनोंसे कर्म करनेवालेदान शील पुरुषों के पासभीसदैव वर्त्तमान रहतीहूं, और पूर्वसमयमें मैं सत्यधर्मसे सम्बन्धरखनेवाले असुरोंकेपासनियतथी फिरउनको कुमार्गगामी जानकर तेरेपास रहतीहूं, इन्द्रबोले कि हे सुमुखि तुम कैसे चलन वाले दैत्योंके पास वर्त्तमानथीं और फिर क्या देखकर तुम दैत्यदानवों को त्यागकर यहां आईं लक्ष्मीजी बोलीं कि मैं धैर्यवान् अपने धर्म्ममें दृढ़स्वर्गमार्ग में क्रीड़ाकरनेवाले जीवोंमें प्रीतिमान्हूं दान, वेदपाठ, यज्ञ, पूजन, पितृ देवताओंकापूजन, गुरुअतिथियोंका सत्कार और सत्यगुण वर्त्तमान होने से वही असुर बहुत शुद्धस्थान रखनेवाले स्त्रीसे अजित हवन करनेवाले गुरुसेवापरायण जितेन्द्री वेद ब्राह्मणोंके भक्तऔर सत्य बक्ताहुये और श्रद्धावान् क्रोधरहित दानी दूसरेके गुणोंमें दोषन लगानेवाले पुत्रमन्त्री और स्त्रीकेपोषण करनेवाले ईर्षा रहितथे कभी ईर्षासे परस्परमें इच्छावान् न हुये वह पण्डित अन्य के उत्कर्ष में कभीचित्तको म्लाननहीं करतेथे दानी योग्य भेजलेनेवाले अच्छेबुरे अनाथ दुःखीआदिके ज्ञाता बड़ेपारतोषिक देनेवाले सत्यवक्ता दृढ़भक्त और जितेन्द्री थे नौकर और मंत्रीआदिके प्रसन्न रखनेवाले प्रियाभाषी, सिद्धमनोरथी लज्जावान् और व्रतपरायणथे, सदैव पर्वों में तीर्थादिस्नान दान यज्ञ धर्म्म करनेवाले चंदनादि सुगन्धित वस्तुओंसे अंगशोभित करके व्रत और तपके अभ्यासी प्रसन्नचित्त और ब्रह्मवादी थे प्रातःकाल के समय शयन नहीं करते और सोते में जिनके कभी सूर्य का उदय नहीं हुआ और रात्रि के समय जिन्होंने दही और सत्तूनहींखाया और ब्रह्मवादी हो प्रातःकाल घृतको देखकर घरसे निकले और मंगली पदार्थोंको भी देखा ब्राह्मणोंका भी पूजन किया सदैव धर्म्म कर्त्ता और दान नहींलिया और अर्द्धरात्रि पर शयन किया उसीप्रकार दिवसमें कभी न सोये, दुःखी अनाथ वृद्ध निर्बलरोगी और स्त्रियों पर करु

णा करते उनके भागों को सदैव बिभागकिया और सदैव भयभीत उद्विग्न और व्याकुल चित्त भय से पीड़ित निर्बलअसमर्थ दुःखीलोगों को और जिनका धन जातारहा उनको प्रतिदिन बिश्वास कराते थे और धर्म्मही में प्रवृत्त एक दूसरे को नहींमारते थे और गुरुवृद्धों की सेवाआदिकर्मों में आसक्त चित्त थे और सब बुद्धि के अनुसार पितृ, देवता, और अतिथियों के पूजक थे और सत्यता, तपब्रत में प्रवृत्तहोकर देवताआदि से शेषबचेहुये अन्न को और उत्तम भोजन को भी अकेलेनहीं खाते थे और अन्य की स्त्रीकेपास भी नहींजाते थे और जीवों में ऐसे दयाकरतेथे जैसे कि अपनी आत्मा में; और आकाश में पशुओं में, बिपरीत योनियों में, और पर्वों में कभी बीर्य पतननहींकिया, हे इन्द्र उनमें इनगुणों के बिशेष दान करना, सावधानी और सीधेपने से उत्साह करना निरहंकार होना, उत्तम प्रीति, शांत, स्वभाव, पवित्रता, मृदुभाषण, मित्रोंसेद्रोह न करना इत्यादि अनेकबातें उत्तमर्थीं, मैं पूर्व समय में जीवोंकी उत्पत्ति के प्रारम्भ से बहुत से यज्ञोंके विपरीत होनेतक इस प्रकार के गुणवाले दानवोंके पास बर्त्तमानरही, तदनन्तर समयकी विपरीततामें उनकेगुण विपर्य्ययहोने से काम क्रोध लोभके आधीनहोनेवाले असुरों कीदेहोंसे बाहर निकलनेवाले धर्मको मैंनेदेखा औरबड़े बलवान्होनेसे अहंकारयुक्तहोकर उन्हीं ने वृद्धोंकीनिन्दाकी और कथापुराणकहनेवाले वृद्धसभासदोंका हास्यकिया और अपनेस्थानों में बैठेहुये उनपराक्रमियोंनेपास आनेवाले वृद्धसत्पुरुषोंका सत्कारपूजन इत्यादिभी पूर्वकेअनुसार नहींकिया ५२ और पिताके बर्त्तमानहोने में पुत्र स्वामी होताथा और स्वामी सेवकभाव को पाकर अपने को बड़ेलज्जावान् प्रसिद्धकरते थे इसीप्रकार जो पुरुष धर्म से रहित निन्दितकर्म के द्वारा बड़े मनोरथों को प्राप्तकरते हैं वैसेहीकर्मों में इनकीभीइच्छाहुई और रात्रि के समय उच्चस्वरसे अप्रियवार्त्ताओं को भीकहा तब अग्निने अपने प्रकाश को कमकिया और पुत्रों ने पिता के विपरीत और स्त्रियोंने अपने स्वामियों के विपरीत कर्मकोकिया, और माता पिता वृद्ध आचार्य्य अतिथि गुरुआदिका प्रतिष्ठापूर्वक मानसत्कार और बालकों का लालन न करके भिक्षा बलि से रहित आपही अन्न को भोजन करते थे अन्नादिक का विभाग न करके पितृदेवता अतिथि ब्राह्मण और गौओं को न पूजकर भोजनकरते थे उसी प्रकार उनके रसोइयोंनेभी चित्त कर्म बाणीसे पवित्रता पूर्वक काम नहींकिया फलेहुये धानोंको कौवे और चूहोंने भोजन किया दूधउघड़ा रक्खा और झूठे मुख से असुरोंने घृतका स्पर्श किया, बाल बच्चेवाली स्त्रीने कुदाल, दरान्त, बांसका पात्र झूठे कांसीके और पीतल आदिके पात्रादि सामानको नहींदेखा और गिरनेकेयोग्य महल आदिकी दीवारें

को नहीं बनवाते थे और पशुजीवों को बांधकर घास जल आदि से पोषण नहीं करते थे जानबूझकर बालकों के भोजन को खाया और नौकर चाकर आदिको तृप्त न करके भोजन किया और केवल अपनेही निमित्तखीर मोहनभोग पूप पूरीआदि अनेक पक्वान्नों को बनवाया और देव पितरों के उद्देश बिना मांसको भक्षण किया और सूर्यास्त के समय निद्रायुक्तहुये और प्रातःकाल सायंकाल सब समयों में शयन करनेलगे और घर घर में कलह वर्त्तमान हुई और नीचों में बैठ श्रेष्ठ पुरुषोंकी उपासना त्यागकरदी और विपरीतधर्मी पुरुषों ने परस्पर में आश्रमीलोगों से शत्रुताकी वर्णसंकर होगये किसी बात का शोच विचार नहीं रक्खा जो ब्राह्मण वेदज्ञथे और जो प्रत्यक्ष में वेदनहीं जानतेथे वहसब अत्यन्त प्रतिष्ठा और अपमानमें अन्तर रहित और मुख्यता से पृथक् हुये अर्थात् सब एकलाठी से हांकेगये और अनेक भूषण बस्त्रादि को अपमान से देखते थे स्त्रियों ने पुरुषोंका और पुरुषों ने स्त्रियोंका रूप धारण करके नानाखेलों में चित्तको लगाया, धन ऐश्वर्य्यों में प्रवृत्त असुरों ने नास्तिकतासे पूर्व पूजाके योग्यों को देना बन्द किया कभी धनके संशय में मित्रसे मित्रने भी मांगना प्रारम्भ किया और उस मित्रने अपने प्रयोजन के लिये बड़े मूर्खों के समूहों में अपने धनको वृथाखोया, श्रेष्ठ वर्णों के मध्य में ब्यापार करनेवाले मनुष्य दूसरेके धन मारलेने में इच्छा करते देखे और शूद्र लोग भी तपस्या करनेलगे और कितनेही पुरुष ब्रह्मचर्य्य ब्रतके बिना पढ़ते थे और कोई २ मिथ्या ब्रतभी करते थे, शिष्य गुरुकी सेवारहितथे और कोई २ गुरू भी शिष्य के मित्र होगये और उत्साहरहित वृद्ध मातापितापुत्रों से भोजनको चाहते स्वाधीन हुये और देवज्ञ और शान्तचित्त ज्ञानीलोग कृषि कर्म्मोंको करने लगे और मूर्खोंने श्राद्धों में भोजनकिया गुरूकी आज्ञाशिष्यों ने नहींकी बहूने सास श्वशुर के विद्यमानहोनेमें नौकरोंपर आज्ञाकी, स्त्रीने पति पर हुक्मचलाया और पति को बुलवाकर आज्ञादेतीथी पिता ने बेटे के चित्तको बड़े उपाय से बचावकिया चोर और राजाओं ने धनको हरा पुण्य श्लोक ईश्वरके न माननेवाले और गुरूकीस्त्रीसे प्रीतिकरनेवाले पापीमनुष्य और मित्रके पोषित भी होकर मित्रकी निन्दा करनेवालेहुये, निषिद्ध वस्तुओं के खाने में प्रीतिमान अमर्यादहोने से तेज और प्रताप से हीनहुये विपरीत समय में इसप्रकारके आचरण करनेवाले उनअसुरों के पास में निवासनहीं करतीहूं और हे देवेन्द्र तुम्हारे पूजनके पीछे देवतालोग भी सब मुझको पूजेंगे, जहां मैं रहूंगी वहां मुझसे विशेष मेरी बड़ी प्यारी और आज्ञाकारी सात देवी हैं और आठवीं जयानाम देवी है वह आठ रूपों से तेरे घर आवेंगी, उनके यह नाम हैं आशा, श्रद्धा, धृति, क्षांति, विजिति, सन्नति, क्षमा और

हे इन्द्र इनके आगे चलनेवाली आठवीं वृत्ति है यह सच और मैं असुरों को त्यागकरके तुम्हारे देश में आई हूं हम उन देवताओं के पास निवास करें गी जिनका अन्तरात्मा धर्म्म निष्ठहै यह लक्ष्मी जी के बचनसुन देवऋषि नारदजी और इन्द्रने उसकी प्रसन्नता के अर्थ अनेक स्तुतियों से आनन्द दिया तदनन्तर उस देवमार्ग में वायुका बड़ा बेगहुआ उसमें नानाप्रकारकी ऐसी सुगन्धियां थीं जिनसे देहकी सब इन्द्रियों को आनन्द होता था और बहुतसे देवतालोगभी पवित्र स्थानों में निवास करते वर्त्तमानहुये और लक्ष्मी जी के पास बैठेहुये इन्द्रके दर्शनों की लालसा करते थे फिर इन्द्र और नारद जी हरे घोड़ेवाले सुन्दर रथ में सवार होकर देव सभाको गये और इन्द्रकी अंगचेष्टाको चित्तसे बिचारते देवलके देखनेवाले नारदजी ने महर्षियों समेत श्रीलक्ष्मी जी के आने की कथाको लक्ष्मी के अर्थ वर्णन किया फिर उस प्रकाशमान स्वर्ग से अमृतकी बर्षा हुई और पितामह ब्रह्माजी के भवन में बिना बजाये दुन्दुभी के शब्दहुये और दिशाओं में प्रकाश होगया इन्द्र ने ऋतु के अनुसार पृथ्वी पर बर्षाकरी और कोई पुरुष धर्म्म मार्ग से न हटा और देवताओं की बिजय से पृथ्वी उर्बरा और रत्नों की आकरीं से शोभित हुई, यज्ञादि कर्मों में क्रीड़ा करनेवाले और पवित्र कर्मी पुरुषों के शुभमार्ग में सम्पूर्ण मनुष्य चित्तसे प्रवृत्तहुये मनुष्य, देवता, किन्नर, यक्ष, राक्षस बड़े धनाढ्य और अच्छे साहसी हुये, वायु से पृथक् होनेवाले बृक्षसे भी कभी बे समय पर फूल नहीं गिरा तो फल कैसे गिरे और किसी का बचन दुःखदायी और भयकारक नहीं हुआ, ब्रह्म सभामें वर्त्तमान ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले जो पुरुष सब मनोरथों के दाता इन्द्र आदि देवताओं से किये हुये लक्ष्मी जी के इस पूजनको पढ़ते हैं वह लक्ष्मी को पाते हैं हे युधिष्ठिर जो तुम ने मुझ से पूछा वह सब मैंने कहा अबतुम खूबबिचारकरके सिद्धांतके पानेकेयोग्यहो ९६॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ५५ ॥

## छप्पनवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह किसस्वभाव, आचार, विद्या और पराक्रमवाला मनुष्य उस ब्रह्मलोक को पाता है जो कि प्रकृति से परे और निश्चल है, भीष्मजी बोले कि मोक्षधर्मों में सावधान अल्पाहारी जितेन्द्री पुरुष प्रकृति से परे अचल ब्रह्मलोक को पाता है इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को सुनो जिसमें जैगीषव्य और असित देवलऋषि का संबादहै, असित देवल ऋषिने बड़े ज्ञानी धर्म्म शास्त्रज्ञ हर्षशोक से रहित जैगीषव्य से कहा कि हे अनघ तुम न प्रसन्न होते न निन्दा से दुखी होतेहो ऐसी तुम में क्या बुद्धि है

और कहां से है और उसका मुख्यस्थान कौनसा है यह बचन सुनकर उस महा तपस्वी ने देवलसे वह बचनकहा जो कि संदेहसे रहित बड़े सार्थकपदों से युक्त और पवित्रथा कि हे ऋषियों में श्रेष्ठ, पवित्र कर्मी पुरुषोंकी जोगति, पराकाष्ठा, और शांति है उसको तुमसे कहताहूं कि जो निन्दा और स्तुति करनेवाले मनुष्यों में एकभाव हैं और अपने ऐसे गुणोंको वा नियम और कर्मोंको गुप्तकरते हैं वह निन्दा कियेहुये ज्ञानी लोग उस निन्दकको निन्दा के बदले उत्तर नहीं देते हैं और मारनेवालोंको मारनेके बदले मारना नहीं चाहते और निष्प्रयोजनको नहीं शोचते और समय पर वर्त्तमान होनेवाले कर्मोंको करके व्यतीत दशाको नहीं शोचते न प्रतिज्ञा करते हैं वह समर्थ और ब्रतकरनेवाले ज्ञानी पुरुषपूजाके प्राप्तहोनेपर इच्छा पूर्वक अर्थोंमें न्याय के अनुसार कर्म्मकर्त्ता होतेहैं वह दृढ़ बिद्यावान् महाज्ञानी स्वभाव और चित्त के रोकनेवाले मनबाणी और कर्म्म से किसी समय भी अपराधको नहींकरते और ईर्षारहित हो परस्पर में मारपीट कभी नहीं करते वह पण्डित लोग दूसरे की वृद्धि आदि से कभी दुखीनहीं होते हैं और न किसी की अत्यन्त निंदा और स्तुतिको करते हैं और न कभी निन्दा स्तुतिसे बिपरीत दशाको प्राप्त होते हैं वह शांतचित्त सब जीवोंकी वृद्धि चाहनेवाले न कभी क्रोधकरते हैं न प्रसन्न होते हैं और कभी किसी समयपरभी अपराध नहींकरतेहैं हृदय की गांठको खोलकर सुखपूर्वक घूमते हैं जिनके कि बांधव नहीं हैं और न वह किसी के बांधव हैं अथवा न वह किसी के शत्रु न उनके कोई शत्रुहैं ऐसी वृत्तिवाले मनुष्य सदैव सुखपूर्वक जीवते हैं,हेब्राह्मणोत्तम जो धर्म्मज्ञ धर्म्ममें प्रवृत्तरहते हैं अथवा इसमार्ग से बाहर कियेगये हैं वह प्रसन्नहोते हैं न चित्तसे व्याकुलहोते हैं मैं उसमार्गमें नियतहूं किसको किसप्रकारसे निन्दाकरूं निन्दा स्तुति से मेरी हानि लाभ कुछनहीं है,तत्त्वका जाननेवाला ज्ञानी अपमानसे ऐसा तृप्तहोजाय जैसे कि अमृतसे होताहै और प्रतिष्ठासे ऐसा भयकरे जैसे कि बिषसे करतेहैं अपमान पानेवाला सुख से सोता है और दोनों लोकों में निर्भयरहता है और सब दोषरहित होताहै और जो अपमान करनेवाला है वह नष्टहोजाता है जो कोई ज्ञानी उत्तमगतिको चाहते हैं वह इस ब्रतको धारण करके सुख से वृद्धिको पाते हैं, जितेन्द्री पुरुष सब ओरसे सब यज्ञोंको प्राप्तकरके ब्रह्मलोक को पाताहै इसपरमगति पानेवाले ज्ञानी के पदपर देव गंधर्वादि कोई नहीं प्राप्तहोते हैं २५॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ५६॥

---

# सत्तावनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि पृथ्वीपर कौनसामनुष्य सब संसारका प्यारा और जीवों का प्रसन्न कर्त्ता सबगुण सम्पन्न है, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशियोंमें उत्तम मैं इसस्थानपर एक इतिहास तुझ से कहताहूं जिसमें नारदजी के विषय में श्रीकृष्णजी और उग्रसेनका सम्बादहै उग्रसेनने श्रीकृष्णजीसे कहा कि हे केशवजी संसार नारदजी के कीर्त्तनको करताहै और मैंभी मानताहूं कि वह गुणवान् हैं उनका वृत्तांत आप वर्णन कीजिये बासुदेवजी बोले कि हेराजा उग्रसेन मैं नारदजीके उत्तम गुणोंको तुम से कहताहूं अर्थात् इसदेहका तपानेवाला अहंकार कुछ खेलके निमित्त नहीं है वह शास्त्र के अनुसार चरित्रों से युक्तहै इसीकारण सब स्थानों में पूजित है नारदजी में अमित्रता, क्रोध, चपलता, भय इत्यादि नहीं हैं न उनमें दीर्घसूत्रता है वह बड़े उपासना के योग्यहैं काम या लोभसे इनके वचनों में कोई बेमर्यादगी नहीं है वह वेदांत की बुद्धिसे सिद्धान्तके ज्ञाता शान्तचित्त समर्थ जितेन्द्रिय और सत्यवक्ता हैं, तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, नम्रता, जन्म और तपसे बड़े हैं इसीकारण सब स्थानों में पूजितहैं और उत्तम शीलवान् सुखरूप निद्रावान् श्रेष्ठ भोजन करने वाले इच्छाचारी पवित्र प्रियभाषी और ईर्षासे रहितहैं वह बड़े कल्याणकारी निष्पाप दूसरोंकेअनर्थोंसे अप्रसन्न वेद, श्रुति के आख्यानों से अर्थोंको प्राप्त किया चाहतेहैं क्षमावान्हैं और समान दृष्टीहोनेसे कोई उनकाप्रिय अप्रियभी नहींहैचित्तके अनुसार वार्त्ताकरनेवालेबहुतसेशास्त्रऔरअपूर्व कथाओंकेज्ञाता पण्डितइच्छाऔरद्वेषसे रहित उदारबुद्धि क्रोधलोभसे पृथक्हैंप्रथमधनकीअभिलाषामें इनका मुख्यज्ञान नहीं हुआ इसी से यह अत्यन्त निर्दोषहैं दृढ़भक्ति पवित्र बुद्धि युक्त शास्त्रज्ञ दयावान् और अज्ञान दोष से पृथक् हैं इसकारण सब स्थानों में पूजित हैं सब संगों में प्रवृत्त चित्त नहीं हैं और न आसक्त चित्तके समान दृष्टिआते बड़े संशयसे रहित उत्तम वर्णन करनेवालेहैं इनकी समाधि कार्य के निमित्त नहीं हैं न किसी समय अपनी प्रशंसा करते हैं और हठसे रहित मृदुसंभाषण कर्त्ता हैं इसी से सर्वत्र पूजितहैं, निन्दा रहित लोक को नानाप्रकारकी बुद्धियों को देखते संसर्ग विद्या में कुशल सबशास्त्रों की स्तुति करते अपनी इच्छापूर्वक निर्बाह करके सफल कालवान् और चित्तको जीतनेवाले हैं इन हेतुओं से सर्वत्र माननीय हैं परिश्रमी ज्ञानी समाधि से सुनो जिसकर सदैव योगी और सावधानहैं लज्जा युक्त कल्याणके निमित्त ऋषिने बड़े ज्ञान से काम में प्रवृत्त होते हैं और दूसरों के गुप्त भेदों को प्रकट न अनघ तुम न प्र लाभ से प्रसन्नता रहित और लाभ न होने में शोकदुःख रहित

स्थिर बुद्धि संसार से विरक्त हैं इसी कारण वह सर्वत्र सब पुरुषों से माननीय हैं इन सब गुणसम्पन्न चतुर पवित्र नीरोग काल और अभीष्ट के जाननेवाले को कौन अपना मित्र और प्यारा न बनावेगा २४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशां.तिपर्व्वणिमोक्षधर्मेसप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ५७ ॥

# अट्ठावनवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह मैं जीवों के आदि अन्त को और युगयुग के ध्यान, कर्म, काल और अवस्थाको और लोकतत्त्व अर्थात् लोकका वास्तवरूप वा आकाशादि पंचभूतों की उत्पत्ति और लय के स्थान को अत्यन्तता से जानना चाहता हूं और यह भी निश्चय किया चाहता हूं कि यह उत्पत्ति और प्रलय कहां से होती है हे कौरवेन्द्र जो आपकी कृपा हमारे ऊपर है तो वर्णन कीजिये, प्रथम ब्रह्मर्षि भरद्वाजजी के सन्मुख भृगुजी के वर्णन किये हुये उत्तम ज्ञान से मेरी उत्तम बुद्धि योग धर्म्म में निष्ठायुक्त दिव्य रूपवाली हुई इसी हेतुसे फिर पूछताहूं आप विस्तार समेत कहने के योग्यहैं, भीष्मजी बोले कि इस स्थानमें एक प्राचीन इतिहास तुझ से कहताहूं जिसको कि भगवान् व्यासजी ने प्रश्न करनेवाले अपने पुत्रसे वर्णन किया अर्थात् व्यासजी के पुत्र श्रीशुकदेवजी ने सांगवेद और उपनिषधों को पढ़कर धर्म्म के पूर्ण दर्शन से नैष्ठिककर्मों की इच्छाकरके कृष्णद्वैपायन व्यासजी जो धर्म्म अर्थ के निस्सन्देह ज्ञाता हैं उनसे पूछा कि सब जीव समूहोंका ईश्वर जो काल, ज्ञान, अविद्या सम्बन्धी रूप धारण करके जीव भी कहलाता है उसको और ब्राह्मणों के जो कर्म हैं उनको मुझ से कहने के योग्यहैं भीष्मजी ने कहा कि इस प्रकारसे पूछे हुये धर्म्म अधर्म्म और ब्रह्मके ज्ञाता व्यासजीने पुत्र शुकदेवजी से इस सब भूत भविष्य वृत्तान्तको कहा कि हे पुत्र वहआदि अन्त रहित प्रकाशवान् जरावस्था और रूपान्तर से पृथक् अविनाशी जैसे जीवों करके ईश्वर कहाजाताहै वह अजन्मा तीनों कालों से पृथक् न जानने के योग्य ब्रह्मसंसार की उत्पत्ति से प्रथम वर्त्तमान होताहै, अबदूसरे प्रश्नका उत्तर देते हैं कि पन्द्रह निमेषकी एक काष्ठा और तीस काष्ठाकी एक कला और तीस कला का एक मुहूर्त्त जो कि सूर्य सम्बन्धी कला के दशवें भागसे संयुक्तहो वैसे तीस मुहूर्त्त का एक दिन और रातहोय यह प्रमाण मुनियों से नियत हैं और तीस रात्रि दिनको एकमास और बारह मासको एकवर्ष और गणितज्ञ पुरुष दक्षिणायन और उत्तरायण दोनों के होनेको वर्ष कहते हैं, सूर्य नरलोक में दिन रातको विभाग करते हैं रात्रि शयन करने को और दिन कर्म करनेको है मनुष्यों का एकमास पितरों का एक दिनरात होताहै फिर

उन दोनोंका यह विभागहै कि शुक्लपक्ष उनका दिन कर्म करने को और कृष्णपक्ष उनकी रात्रि शयन के निमित्त है और मनुष्य का एक वर्ष देवताओं का एक दिनरात है उन दोनों के यह विभागहैं कि उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रिहै और पूर्व में जो मनुष्यों के दिनरात कहे उनके वर्षों की संख्याकरके ब्रह्माजी के दिनरातको कहताहूं और सतयुग, त्रेता,द्वापर, कलियुगके क्रम से दिव्य वर्षोंको भी कहताहूं सतयुग चार हजार वर्षोंका होता है और उसकी संध्या उतनेही सैकड़े अर्थात् चारसौ वर्ष की और सन्ध्यांश भी चारसौही साल काहै शेप बचेहुये सन्ध्या और सन्ध्यान्शयुक्त तीनोंयुगों में हजार और सैकड़े में एक २ चरण अर्थात् चौथाई भाग कम होजाता है यह वर्ष इन सदैव वर्त्तमान सनातन लोकों को धारण करतेहैं हे तात यह कालनाम चारयुग की सूरत आदि अन्त रहित जीवरूप चित्तरूप उपाधियों के योग से चार प्रकार का भी वास्तव में सर्व विकारसे पृथक् ब्रह्महो है और ब्रह्मज्ञानियों का जाना हुआ है, सतयुग में चारोंचरण रखनेवाला सब धर्म सत्य वर्त्तमान होताहै उसका कोई शास्त्र अधर्मयुक्त नहीं जारी होताहै, दूसरे युगों में वेदोक्त धर्म एक चरणसे कम होजाताहै चोरी, निन्दा, मिथ्या और शठता आदि से अधर्म की वृद्धि होतीहै, सतयुग में मनुष्य नीरोग और सब मनोरथों के सिद्ध करनेवाले चारसौवर्ष की अवस्थावाले होतेहैं, त्रेतायुग में आयुका एक चरण कम होजाताहै इस युगमें वेद वचन युगके अनुसार नष्टताको प्राप्तहोतेहैं अवस्था आशीर्वाद और वेदके जो फलहैं वह भी न्यूनता को पातेहैं, सतयुगमें औरही धर्महैं इसीप्रकार त्रेता द्वापर आदिमें भी पृथक्२ धर्म होतेहैं, सतयुगमें तपको प्रधान कियाहै त्रेतामें ज्ञान उत्तमहै द्वापरमें यज्ञ को और कलियुगमें केवल दानही श्रेष्ठ रक्खाहै पण्डित लोगोंने इनयुगोंकी बारह हजार संख्या कही है उसकी हजार आवृत्तिको ब्रह्माजी का एक दिन कहते हैं और उतनीही रात्रिहै इस दिन के प्रारम्भ में ईश्वर विश्वको प्रकट करता है और रात्रि के प्रारम्भ से प्रलय में प्रवृत्त ध्यानावस्थित होकर योग निद्रा में होताहै और उस निद्रा से रात्रि के अन्त में जागताहै, जिन्हों ने ब्रह्माजी के दिन रातको युगों की हजार २ चौकड़ी जानी है वही दिनरात के जाननेवाले हैं, और हम लोगों में भी इसी उत्पत्ति और प्रलयको दिखलातेहैं, प्रलयके समय निद्रा से व्याकुल होकर ब्रह्माजी इस अविनाशी आत्मस्वरूपको विकारवान् करतेहैं अर्थात् उससे अहंकारको उत्पन्न करतेहैं और अहंकार से व्यक्तात्मक चित्तको पैदा करतेहैं, तात्पर्य यह है कि काल और आकाशादि चित्तरूप हैं और योगनिद्रासे जगने की दशा में उत्पत्ति और नाश होताहै ३२ ॥ इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ५८॥

# उनसठवां अध्याय ॥

व्यास जी बोले कि जो ब्रह्म है वह सूक्ष्म वासना रूप और बीज रूपहै क्योंकि इस अकेलेही से यह सब जड़ चैतन्यात्मक जगत् उत्पन्न हुआ वह ईश्वर प्रातःकाल के समय जगकर महत्तत्त्वोंकी कारणरूप अविद्यासे जगत् को उत्पन्न करताहै उत्पत्तिसे प्रथम महत्तत्त्व हुआ फिर वही शीघ्रतासे व्यक्त रूप चित्त वर्त्तमान होताहै फिर उसी चित्तरूप कर्त्ता ने दूरगामी बहुत प्रकार से चलनेवाला संकल्प बिकल्पात्मक होकर चैतन्य आत्माको ढककर चित्त से उत्पन्न होनेवाली सात वस्तुओं को उत्पन्न किया वही उत्पत्तिकी इच्छा से चलायमान चित्त बहुत प्रकारकी सृष्टिको उत्पन्न करताहै उसी चित्तसे आकाश उत्पन्न होताहै उसका गुण शब्दहै रूपान्तर होनेवाले आकाश से वायु उत्पन्न हुआ वह सब सुगन्धियों का चलानेवाला पवित्र और पराक्रमी है उसका गुण स्पर्श है फिर उस रूपान्तर होनेवाले वायुसे प्रकाशमान ज्योति हुई जिससे कि अग्नि उत्पन्न हुआ उसका गुणरूपहै उस रूपान्तर प्राप्त होने वाले तेजरूप अग्निसे रसात्मक जल उत्पन्न होताहै, जलसे गन्ध पृथ्वी और सबकी उत्पत्ति कही जातीहै, पहिले पहिले सब तत्त्वोंके गुण पिछले पिछले तत्त्वों को प्राप्त करतेहैं उन भूतों में जो भूत जितने कालतक जिस मार्ग से वर्त्तमान होताहै वह भूत उतने समयतक उतने गुणवाला कहा जाताहै यहां प्रथम आधे श्लोक में बर्णन होनेवाली दशा सूक्ष्मतत्त्वों में भी जानना चाहिये और स्थूल तत्त्वों में पंचीकरणके पीछे सब पांचों गुण वर्त्तमान होते हैं पंचीकरण यह है कि एक तत्त्व के दोभाग किये पहिला भाग तो उसीतत्त्व से सम्बन्धितरक्खे और दूसरेभागके चारबिभाग करके चारोंतत्त्वों में मिलादिये जायँ यही बिभागपांचों तत्त्वोंमें करना चाहिये, जो कोई पुरुष जलमें गन्धि जानकर अज्ञानता से कहै कि जलमेंही गन्धि है तब जल और वायु में वर्त्तमान गन्धिको पृथ्वी में भी जाने, यह सात रूपयुक्त और पृथक् २ अनेक प्रकारके पराक्रमी सबमिलकर सृष्टिके उत्पन्न करनेको समर्थ न हुये१० किन्तु परस्पर सब मिलकरही रक्षाकरने वाले हुये और सब ने अपने २ अंशों से शरीर रूप को उत्पन्न किया इस कारण आत्मापुरुष कहाजाता है अर्थात् पुर देहको समझो और जो उसेदेहरूप पुरमें बसे वह पुरुष कहाता है इनस्थूल तत्त्वोंके एकत्र होनेसे मूर्त्तिमान देह उत्पन्न होताहै यहदेह सोलह वस्तुओंसे बनता है वह सोलह यह हैं पंच भूत, चित्त, दशइन्द्रियां, सूक्ष्मतत्त्व महत्तत्त्व, अहंकार यहसब और भोग से और शेष कर्म्म के संयोगसे इस देहमें प्रवेश करते हैं १२ इसप्रकार से स्थूल शरीरमें सूक्ष्म शरीरके प्रवेशको कहकर उसमें

जैसे चैतन्य का प्रवेशहोता है उसको भी सुनो वह सबजीव मात्रोंका स्वामी प्रथम सब देहोंको लेकर तपकरने के लिये उसमें प्रवेश करता है उसजीवरूप प्राप्त करनेवाले को प्रजापति ब्रह्मकहा १३ वही जड़ चैतन्य जीवों को उत्पन्न करताहै फिर वही ब्रह्माजीदेवताऋषि पितर और मनुष्योंको उत्पन्नकरते हैं१४ लोक,नदी,समुद्र,दिशा,पर्वत,वृक्ष,मनुष्य, गन्धर्व,राक्षस,पशु, पक्षीसबआदि को उत्पन्न करते हैं अनाशमान आकाशादिक और नाशवान् घट इत्यादि और सब जड़ चैतन्यों को पैदाकरते हैं और उन सब जीवोंके जो पिछले कर्म्म पूर्व देहके बर्त्तमान थे वही बारंबार उत्पन्नहोनेवाले मनुष्य किन्नर आदि अपने उन्हीं कर्म्मोंके फलको प्राप्तकरते हैं और हिन्सात्मक पापोंसे रहित कठिन साधारण धर्म्म, अधर्म्म, सत्य, मिथ्या आदि गुणोंके कारण जन्मलेने वाले उनको पातेहैं इसहेतुसे उनको वही अच्छालगता है, महाभूत देह और इन्द्रियोंके नानाप्रकारके भोजन और बिषयोंको ईश्वरही रचताहै,१६ कितनेही मीमांसा जानने वाले पुरुषोंने कर्म्मोंमें पुरुषकीही सामर्थ्यको कहा है अर्थात कर्म्मही प्रधान कियाहै और कितनेही लोग दैव प्रधान कहतेहैं उनके मतसे ग्रहही अच्छे बुरे फलके देनेवालेहैं और भूत चिन्तकोंने स्वभावहीको प्रधान कहा है २० अर्थात् उपाय कर्म्म और दैव यह तीनोंफलवर्त्ती स्वभावसे पृथक् नहीं हैं उनका जुदा२मानना कोई बिवेक नहींहै और कई मतवाले अपने२ मतके अनुसार कहतेहैं परन्तु सिद्धान्त मत यहहै कि जो पुरुष रजोगुण तमो गुणसे रहित सम्प्रज्ञात नाम दशामें अर्थात् यथार्थ बिचारावस्थामें वर्त्तमान हैं वह यही सिद्धान्त देखतेहैं कि ब्रह्मही सबका उत्पत्ति कारक है—अब ब्रह्म प्राप्ति के साधन और फलको ढाईश्लोकों में वर्णन करतेहैं कि जीवोंका तप ही मोक्षका कारण है उसका मूलचित्तका और इच्छाका रोकनाहै उस योग से सब मनोरथों को प्राप्त करसक्ता है, तपसे उस ईश्वरको पाता है जो कि जगत् को उत्पन्न करताहै ब्रह्मभाव को पानेवाला वह योगी सब जीवों का स्वामी होताहै, ऋषियों ने दिन रात्रि तपस्या करने के द्वारा वेदोंको प्राप्त किया अर्थात् पूर्वजन्म में पढ़ेहुये वेदोंको योगबलसे प्राप्त किया और ब्रह्माजी ने आदि अन्त रहित विद्याको ईश्वरसे उपदेश पाकर शिष्योंकी शिक्षा के द्वारा जारी किया, ऋषियोंके नाम और वेदों में जो उत्पत्तियां हैं और जीवों का अनेक रूपहोना और कर्म्मों का जारीहोना इन सब बातोंको उस ईश्वरने वेदके शब्दोंसे उत्पत्तिकी आदि में पैदाकिया वेदों में जो शुद्ध ऋषियों के नाम और उत्पत्ति हैं उनको वह अखिलात्मा ईश्वर अपनी रात्रिके अन्त में दूसरों के निमित्त बिचार करता है अर्थात् वेद में भविष्य काल का बर्णन है, नाम, भेद, तप, कर्म्म, यज्ञ, आख्या आलोक यह सब लोक की

सिद्धियां हैं, आत्मसिद्धि, दश साधन संपन्न वेदों में कही जाती है—अब अंतरङ्ग मोक्ष साधनको कहते हैं कि वेदोक्त कर्म्मोंमें जो कठिनता से प्राप्तहोने के योग्य ब्रह्म वेददर्शी ब्राह्मणोंसे कहाहुआ और उनवेदोक्त कर्मोंके अन्तमें अर्थात् उपनिषदों में जिसप्रकारसे वहब्रह्म साफ २ कहागयाहै वहब्रह्मकर्म्म योगके द्वारा दृष्टपड़ताहै लक्षण के योग्य ब्रह्मस्वरूपको दिखलातेहैं, देहका अभिमान रखनेवाली जीवकी द्वैतताकर्मसे पैदाहोनेवालीहै अर्थात् कर्म्मकेथकनेपर शयनदशाको समाधि नहींकहसक्के वह द्वैतता सुखदुःख शीतउष्णआदिका जोड़ोंसेसंयुक्तहै और आत्माकी मोक्ष विज्ञान सेहै पुरुष विज्ञान के बलसे त्यागकरताहै,शब्दब्रह्म और परब्रह्म यहदोनों जाननेके योग्यहैं, शब्द ब्रह्मकी पूर्णउपासनासे पुरुष पर ब्रह्मको पाताहै अब दूसरोंको निन्दायुक्त करके प्रणव उपासनाकी प्रशंसा करतेहैं, पशुहिन्सा युक्त यज्ञोंके करनेवाले क्षत्री लाग हैं और हविसे यज्ञकरने वाले बैश्यहैं और तीनों वर्ण की सेवारूप यज्ञकरनेवाले शूद्रलोगहैं, ब्राह्मण तपरूप यज्ञ करनेवालेहैं परन्तु यह यज्ञोंकीरीति त्रेतायुगमेंथी और सतयुगमें नहींहोतीथी क्योंकि सतयुगमें स्वतः सिद्धिहोजाती थी। और द्वापर वा कलियुगमें ऐसे यज्ञोंमें उपद्रव होतेहैं द्वैततासे रहित धर्म रखनेवाले अर्थात् अद्वैत निष्ठा रखनेवाले लोग सतयुग में तपकोही करतेहैं वह ऋग् यजुःसाम वेदोंको और फलयुक्त यज्ञोंको विचार के द्वारा अनात्मारूप स्वर्ग आदिका देनेवाला देखकर योगमार्गको ही अंगीकार करतेहैं वह वेद और शास्त्र जड़ चैतन्य स्थावर जंगम जीवों के शिक्षा करनेवाले होते हैं आशय यह है कि त्रेतायुगमें सतयुग के समान मनुष्यों की धर्म्म में प्रवृत्ति अपने आप नहींहोती, त्रेतायुग में वेदयज्ञ वर्ण और आश्रम दृढ़हुये फिर वह द्वापर युग में उमरकी न्यूनता से नष्टहोते हैं कलियुग में सब वेदहृष्ट पड़ते हैं और नहींभी दृष्टआते हैं वहवेद केवल अधर्म्म से पीड़ामान यज्ञोंके साथ गुप्तहोजाते हैं उस सतयुग में जो धर्म्म ब्राह्मणों में दृष्ट आता है वह धर्म्म अबभी चित्तके जीतनेवाले योगनिष्ठ वेदांत और तपयुक्त वेदज्ञ ब्राह्मणोंमें नियतहै इसकारण वह सतयुगरूपहै, अब त्रेतायुगके व्यवहारकोसुनो कि स्वधर्म्मनिष्ठ वैदिक ब्राह्मण वेदोक्त धर्म्मसे व्रत और तीर्थयात्रा आदिको इच्छानुसार करते हैं और स्वर्ग की कामना से यज्ञादिकभी करते हैं और द्वापर में पुत्रादिकी कामनासे यज्ञ करतेहैं और कलियुगमें शत्रुके नाशकी इच्छासे यज्ञकरतेहैं, जैसे कि बर्षाऋतुमें बर्षाकेहोने से स्थावर जंगम जीवोंकी वृद्धिहोतीहै उसी प्रकार हरएक यज्ञमें धर्म उत्पन्न होतेहैं और नाशकोपाते हैं और जैसे नानाप्रकारके रूपवाले चिह्न ऋतुके बदलने में दृष्टआतेहैं उसी प्रकार ब्रह्मा और रुद्र आदिमें उत्पत्ति और नाशकी सामर्थ्य वृद्धिपाती है,

चारोंयुगके रूप रखनेवाले पुरुषका अनेक प्रकारका होना और आदि अन्त रहित होना हमने प्रथमही तुमसे कहा वही कालपुरुष सृष्टिको उत्पन्न करताहै और मारताहै, स्वभावसेही जो सुखदुःख रखनेवाले चारोंप्रकार के जीव वर्त्तमान होतेहैं उन सबका उत्पत्ति स्थान काल है वही काल उनको धारण और पोषण करताहै और वही जीव रूप होताहै अर्थात् आपही भूतात्माहै, उत्पत्ति, काल, क्रिया, यज्ञ, श्राद्धादि, वेद यज्ञादिका कर्त्ता, कार्य, क्रिया, फल यह सब कालात्मा पुरुष है हे बेटा जो तुमने मुझसे पूछा वह सब मैंने वर्णन किया ४५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोनषष्टितमोऽध्यायः ५९ ॥

# साठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि अब क्रम से प्राप्तहोनेवाली प्रलयको कहताहूं अर्थात् दिवसके अन्त में और रात्रिके प्रारम्भमें कालात्मा ईश्वरमें संसार लयहोताहै इसको सुनो कि जैसे ईश्वर इस संसारको आत्मा सम्बन्धी कारण में नियत करताहै उसीप्रकार आकाश में सूर्यनारायण अग्नि संयुक्तहो अपने तेजसे इस संसारको भस्म करते हैं तब यह सम्पूर्ण संसार सूर्य्य और अग्नि की ज्वालाओंसे अग्निके समान संतप्त होताहै पृथ्वीके सब जड़ चैतन्य स्थावर जंगम जीव तो प्रथमही नाशहोजाते हैं अर्थात् पृथ्वी के समान रूपहोजातेहैं तदनन्तर सब जीवों के नाशहोने के पीछे वृक्ष तृण आदि से रहित पृथ्वी कछुये की पीठ के समान दृष्टपड़ती है जब जल इस पृथ्वी के गन्ध गुणकोआकर्षण करताहै तब गन्ध रहित पृथ्वी लयके योग्यहोती है अर्थात् गन्धरूप कठोरता जाने से जल के समान होजाती है फिर यहां लहरें लेता और महाशब्द करता अमोघ जलही जल होजाता है फिर अग्नि जलों के गुणोंको आकर्षण करलेता है तब अग्नि गुण से जल अग्निमें उपरामपाता है अर्थात् अग्निरूपहोजाता है जब अग्निकीज्वाला आकाश में सूर्यकोढकती है तब यह आकाश ज्वालाओंसेव्याप्त अग्नि के समान होजाताहै फिर वायु अग्नि के गुण को आकर्षण करती है तब अग्नि शान्त होजातीहै और वायुका बड़ावेग होताहै तबवायु अपने उत्पत्तिस्थान शब्द तन्मात्राको पाकर नीचे ऊपर तिरछे दशोंदिशाओं में चेष्टाकरता है जब आकाशभी वायुकेगुण स्पर्शकोअपने में लयकरताहै तब वायु शान्तहोताहै फिर शब्दगुणवाला आकाश वर्त्तमानहोताहै रूप रस गन्ध स्पर्शरहित अरूप शब्दगुणवाला सबलोक में शब्द करनेवाला आकाश वर्त्तमान होताहै शब्द आदि और स्थूलरूप सबवस्तुओंको प्राप्त और सूक्ष्मचित्त अपनेसे उत्पन्न होनेवाले शब्दको जोकि

आकाशका गुणहै अपनेमेंही लयकरताहै यह चित्त विराट् से सम्बन्ध रखने वाली प्रलयहै अर्थात् विराट् चित्त से कल्पितहै और उसीचित्तमें लयहोजाता है- अब सूत्रात्माकी प्रलयको कहते हैं-जब हमलोगों से सम्बन्ध रखने वाला व्यष्टि चित्त उस अपने ज्ञान वैराग्य रूपमें प्रवेशकरके नियतहोता है तब चंद्रमा उस चित्त को लय करताहै चित्तके लयहोने और चन्द्रमा के नियत होनेपर पूर्व्वमें जो ब्रह्मकी प्राप्तिकेलिये प्रणवकी उपासना कहीहै और भूत शुद्धीमेंभी ऊपर लिखेहुये क्रमसेस्थूलतत्त्वोंके समूहरूप विराट्को जो कि आकारकारथहै लयकरके और सब आत्मासेस्थूल शरीरको बिस्मरणकरके केवल चित्तरूप नियतकरे वह बन्धन से रहित चन्द्रमा नाम उकारार्थ से संयुक्त ऐश्वर्य्यवान् होताहै योगी उस चन्द्रमानाम समष्टिचित्त को जो कि उकारार्थवान् और संकल्प रूप देहका रखनेवालाहै उसको बहुत समयमें अपने स्वाधीनकरताहै वह संकल्प चित्तकोलयकरताहै और उससंकल्पको मकारार्थ वाला अहंब्रह्मास्मि नाम उत्तमज्ञान लयकरताहै, अब दो श्लोकों में ईशका भी लय वर्णनकरते हैं, काल विज्ञानको लयकरताहै कालको बल नामशक्ति लयकरती है बल शक्तिको महाकाल लयकरताहै उस महाकालको विद्यालय करती है अर्थात् स्वाधीन करती है अब उस विद्या के क्रमको सुनो कि वह ज्ञानी आकाश के उस शब्द को आत्मा में लयकरता है वह नादका उत्पत्तिस्थान और परब्रह्मका लयात्मक गुप्त और प्राचीनतायुक्त सब से उत्तमहै तात्पर्ययहहै कि सबजीव उसकेरूपहैं उनके लयहोने परब्रह्महो शेषरहताहै इस प्रकारसे परमात्मारूप योगियों ने समझाने के योग्य और विद्यारूप शिष्य शुकदेवजीको देखकर यह निस्सन्देह पूर्णज्ञानकावर्णन किया है युधिष्ठिर इस प्रकार उत्पत्ति प्रलय प्रणव अखण्ड ब्रह्म है इसीप्रकार हजार चौकड़ीके प्रारम्भ में दिन और बराबर होना वर्णन किया गया १६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे षष्टितमोऽध्यायः ६० ॥

# इकसठवां अध्याय ॥

अब सांख्ययोग के अधिकारीको कहते हैं -व्यासजी बोले कि जीवोंके समूह में जोस्वामी है उसका वर्णनकिया अब ब्राह्मणों के कर्मोंका वर्णन करताहूं उसकोसुनो कि जिस के जातिकर्मआदि संस्कार और दक्षिणावाले कर्मोंकी क्रियाहोवै वह समावर्त्तनकर्मकरनेसे प्रथम वेदपारगआचार्य होनेपर सबवेदोंकोपढ़कर गुरूकी सेवा में प्रीतिकरनेवाला यज्ञोंकाज्ञाता गुरुओं से अऋणहोकर समावर्त्तनकर्मकरे फिर वहपुरुष गुरूकी आज्ञालेकर चारोंआश्रमोंमें से एकआश्रम में बुद्धि के अनुसार देहकी अवधितक नियतहोय और

स्त्रियोंकेपास सन्तानकी उत्पत्ति वा ब्रह्मचर्य से वन में या गुरुकुलमें अथवा संन्यासधर्म से अपनी अवस्था को व्यतीतकरे, यह गृहस्थाश्रम सब धर्मोंका मूल कहाजाता है इसआश्रममें ऐसा जितेन्द्रिय पुरुष जिसके अन्तष्करणके दोष नष्टताको प्राप्तहुये सबस्थानों में सिद्धिकोपाता है फिर सन्ततियुक्तवेद-पाठी यज्ञकर्त्ता तीनोंऋणों से निवृत्त पवित्र कर्मी होकर दूसरे आश्रमों को प्राप्तकरे और पृथ्वी पर जिस स्थान को चित्त से अत्यन्त पवित्र जानें वहां निवासकरे उसस्थान में उत्तम परमात्मा की प्राप्तिका उपायकरे, ब्राह्मणों का यश, तप, यज्ञ, विद्या उनके दान देने से बढ़ताहै जबतक इसलोक में इसकी कीर्त्ति यशकी उत्पन्न करनेवाली होती है तबतक वह पुरुष अपने पुण्यसे अनेक लोकों को भोगता है १० वेदपढ़े और पढ़ावे यज्ञकरे करावे निरर्थक दान न ले न दे जब यज्ञकरनेवाले यजमान और शिष्यसे वा कन्यासे भी जो बड़ा धन प्राप्तहो उससे यज्ञ और दानको करे और अकेला भोजन कभी न करे, देवता, ऋषि, पितर गुरू और भोजनकी इच्छा करनेवाले वृद्ध रोगी और गुप्त शत्रु से दुखी और सामर्थ्य के अनुसार ऐश्वर्यवान् होने की लालसा युक्त पुरुषोंका इस कुटुम्ब के पोषण के निमित्त दानलेने के सिवाय और कोई उत्तम उपाय नहीं है धनकी सामर्थ्य न होनेपर भी इनसबको लाभ से देना योग्यहै क्योंकि पात्र और पूजन के योग्य पुरुषों को कोई वस्तु अदेय नहीं होती अर्थात् सब बस्तु देनी योग्यहैं यहांतक कि जो उच्चैःश्रवा घोड़ाभी होय वह भी सत्पात्र योग्य पुरुषों को देना योग्य है बड़े व्रतवाला सत्यसिंधु अपने वांछित मनोरथ को प्राप्त करके अपने प्राणों से ब्राह्मण के प्राणों की रक्षाकरके स्वर्ग को गया, रन्तिदेव और सांकृती यह दोनों महात्मा वशिष्ठ जी के अर्थ शीतोष्णजल देकर स्वर्ग में प्रतिष्ठित हैं, अत्रिवंशी बुद्धिमान् इन्द्रद्युम्न भी पूजनके योग्य ब्राह्मणको अनेक प्रकारके धन देकर अनन्त लोकों को गया, औशीनरकापुत्रशिवी, अपने अंगों को और अत्यन्त प्यारे औरस पुत्र को ब्राह्मणकी भेटकरके उत्तम लोककोगया, काशीका पति राजा प्रतर्दन अपने दोनों नेत्र ब्राह्मण को देकर इसलोक के सुखको भोगकर अब परलोक में आनंद करताहै देवावृध राजा सुवर्णकी बहुमोल्य आठशलाका युक्त दिव्यछत्रको ब्राह्मण के अर्थ देकर अपने देश निवासियों समेत बैकुंठ में विराजमान है, अत्रिवंशी महा तेजस्वी सांकृती अपने शिष्यों को निर्गुण ब्रह्मका उपदेश करके सब से उत्तम लोकों को गया, महा प्रतापी राजा अम्बरीष ब्राह्मणों को ग्यारह अर्बुद गोदान करके देश बासियों समेत स्वर्गकोगया, सावित्री और राजाजनमेजय दोनों अपने कुंडल और शरीरको ब्राह्मणोंके अर्पणकरके उत्तम लोकको गये, वृषदश्वका पुत्र युव-

नाश्व अपने सबरत्न और प्यारीस्त्री वा सुन्दर स्थानोंको दान करके स्वर्गको गया, राजा विदेहने निमिदेशको और परशुरामजीने पृथ्वीको और राजा षगयने नगरों समेत पृथ्वीको ब्राह्मणोंको दान में दिया, वशिष्ठजी ने बर्षा न होनेसे सब जीवोंको ऐसा जीवदान दिया जैसे कि ब्रह्माजी सबको जीव से रक्षाकरते हैं, करन्धमका पुत्र रुतात्मा अपनी मरुतनाम कन्या अङ्गिरा ऋषि को देकर शीघ्रही स्वर्गको गया, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ब्रह्मदत्तनाम पांचाल देशको राजा ने एकशंखधन उत्तम ब्राह्मणों को दानदेकर उत्तम लोकों को पाया, राजा मित्रसह भी बशिष्ठजी के निमित्त दमयन्ती नाम प्यारी स्त्री को देकर उस समेत स्वर्गको गया, राजा सहस्रजित राजर्षि ब्राह्मण के निमित्त अपने प्यारेप्राणोंको त्यागकर स्वर्गकोगया, राजा सतद्युम्न सब अभीष्टों से पूर्ण सुवर्णके महल मुद्गल ऋषिको दान देकर के स्वर्गकोगया, द्युतिमान प्रतापी राजाशाल्व अपने देश और राज्य को ऋचीक मुनि को दान देकर उत्तमलोककोगया, लोमपादराजर्षि अपनी शांतानाम पुत्रीको शृङ्गीऋषिके अर्थ दानकरके सब मनो रथों से पूर्ण हुआ, मदिराश्वराजाअपनी सुन्दरी कन्याको हिरण्यहस्तऋषिको देकर देवताओं से पूजित लोककोगया, बड़ा तेजस्वी राजाप्रसेनजित सवत्सा लक्षगोदान करके उत्तमलोककोगया, यह और अन्यबहुत से महात्मा जितेन्द्री बुद्धिमान् राजादान और तप के द्वारा स्वर्ग को गये, उनकी कीर्त्ति तबतक रहेगी जब तक कि पृथ्वी नियत है इनसबोंने दानयज्ञ और संतानके उत्पन्नकरनेकेद्वारा स्वर्गको प्राप्तकिया॥३८॥

इतिश्री महाभारते शांतिपर्वणि मोक्षधर्म्मेएकषष्टितमोध्यायः ६१ ॥

# बासठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि वेदों में बर्णन कीहुई तीनप्रकार की विद्याको ऋग् यजुः साम और अथर्वण वेद के अक्षर और अंगों से विचार करे छओं ऐश्वर्य और कर्मों में प्रवृत्त परमेश्वर इनवेदआदि में नियत है जो पुरुष वेदवचनों में कुशल ब्रह्मविद्या में पूर्ण बुद्धिमान महाभाग हैं वह उसउत्पत्ति लयकेस्थान ईश्वरको देखतेहैं इसीप्रकार धर्मसे कर्म्मकरे और उत्तम पुरुषों के समान क्रियाको करे, सत्पुरुषोंसे विज्ञान प्राप्तकरनेवाला श्रेष्ठ शास्त्रज्ञ ब्राह्मण जीवों के बिना दुःखदिये अपनी जीविकाको करे, जो सतोगुणमें नियत और लोकमें अपने धर्मसे क्रियाकर्मको अच्छेप्रकार से सिद्धकरनेवाला है वह गृहस्थी ब्राह्मण उनछःकर्म्मोंमें नियत होताहै, वह श्रद्धावान् बुद्धिमान् सावधान जितेन्द्री धर्म्मज्ञ ज्ञानीब्राह्मण बराबर पांचयज्ञोंसे पूजनकरे हर्ष क्रोध अहंकार से रहित ब्राह्मण पीड़ा नहींपाताहै दान, वेद पाठ, यज्ञ, तप, लज्जा, शांत

चित्त इनसबगुणों के प्रत्यक्षसे तेजकी वृद्धिकरताहै और पापको दूर करताहै पापरहित धारणा बुद्धि का स्वामी अल्पाहारी जितेन्द्री पुरुष कामक्रोध को जीतकर ब्रह्मपदको प्राप्तकरे और अग्नि ब्राह्मण देवताओं को प्रणामकरे, और अकल्याणरूपबचन और अधर्मयुक्त हिंसाको त्यागकरे यहप्राचीन समय से प्राप्तहोनेवाली वृत्तिब्राह्मणकी कहीजातीहै, वेदान्त शास्त्र से कर्मोंको करता हुआ कर्मोंमें सिद्ध होताहै, बुद्धिमान् पुरुष पंचेन्द्रीरूप जल लोभरूप किनारे क्रोधरूप कीचवाली दुस्तर नदी को तरताहै वह अत्यन्त मोहनेवाली सदैव सब ओरसे बर्त्तमानकाल और होनहारमें दृष्टपड़नेवाले अबिनाशी बड़े पराक्रम में भरे कर्मको देखे, १२ स्वभावरूप नदी से उत्पन्न होनेवाला बिस्तृतसंसार पूर्वोक्त पराक्रमसे बराबर मोहाजाताहै, वह नदी बर्षरूप घेरेवालाबड़ाजल रखनेवाली हैं जिसमें महीना तरंग ऋतुवेग पक्षलता और तृणहैं, पलक खोलना और बन्द करना फेण और रात्रि दिन जलहैं काम घोर ग्राह और वेद यज्ञ इत्यादि उसमें नौकाहैं, धर्मद्वीपहैं और जीवोंका अर्थ काम यह जलकी गम्भीरता है, सत्यबचन कहना किनारा है वह नदी हिंसारूप वृक्षकी बहाने वाली है वह ब्रह्मसे प्रकट होतीहै इसनदी के द्वारा जीव यमलोकमें खेंचलिये जातेहैं, बुद्धिमान् धैर्य्यवान् पुरुष इसनदी को ज्ञानरूप नौकाओं से सदैव पार होतेहैं और ऐसी नौका न रखनेवाले अज्ञानी क्या करसक्तेहैं इससे यही युक्ति से सिद्धहुआ कि सिवाय ज्ञानी के दूसरानहीं तरसक्ता क्योंकि ज्ञानीसबस्थान पर दूरसेही गुणदोषोंको देखताहै, वह निर्बुद्धी अज्ञानी चलायमान चित्तकामात्मा पुरुष इस संदेहको नहीं तरताहै और जो बर्त्तमानहै वह नहीं जाताहै, नौका न रखनेवाला अज्ञानी पुरुष बड़े दोषको पाताहै और कामरूप ग्राहके पंजेमें फँसेहुए इस पुरुषको ज्ञानभी नौका नहीं है, इसकारण सावधानमनुष्य इस नदीसे पारहोने के लिये बड़ा उपायकरे इसका तरना यही है कि ब्राह्मण होजाय अर्थात् महात्माहोजाय, और शुद्ध पुरुषोंमें संस्कारोंकेसाथ उत्पन्नहोनेवाला तीनोंवेदका ज्ञाता तीनकर्म का अर्थात् कर्म उपासना ज्ञानका करने वाला है इसीहेतुसे नदीसे निकलनेके उपायमें प्रवृत्तहोवे जैसे कि ज्ञानसे पार होतेहैं, संस्कारयुक्त जितेन्द्री सावधान चित्त ज्ञानीकी सिद्धि इसलोक परलोक दोनोंमें होतीहै, २४ किसी के गुणमें दोष न लगानेवाला क्रोधरहित गृहस्थी इन कर्मों में प्रवृत्तहो बिघसान्नभोजी होकर सदैव पंचयज्ञोंसे पूजनकरे औरसत्पुरुषोंके आचरण क्रियायुक्त अहिंसापूर्वक निन्दारहित जीविकाको करे, जो शास्त्र और बिज्ञानकी मुख्यताका ज्ञाता श्रेष्ठाचरण बुद्धिमान् अपने धर्म्म से क्रियावान्है वह भी कर्मके द्वारा संकरधर्मको नहीं करताहै, क्रियावान् श्रद्धावान् जितेन्द्रीज्ञानी अन्यमें दोष न लगानेवाला धर्म्माधर्मका विवेकीसबप्रकार

से पारहोताहै धैर्य्यवान् सावधान जितेन्द्री धर्मज्ञ बुद्धिमान् हर्ष शोक क्रोधअ-हंकार से रहित ब्राह्मण भी अचेत नहीं होता है, यह ब्राह्मणकी प्राचीन बृत्ति है कि ज्ञानभाव से कर्मों को करताहुआ सबस्थानों में सिद्धको पाताहै—इस लोकमें धर्मका आकांक्षी अज्ञानी अधर्मको करताहै अथवा वह शोचताहुआ अधर्मरूप धर्म को करताहै और अधर्म को करके कहताहै कि मैं धर्म करता हूं औरअधर्मका चाहनेवाला धर्मकरताहै दोनोंकर्मों को अच्छे प्रकारसे न जा-नतावह देहाभिमानी निर्बुद्धी जन्मको लेताहै और मरता है ३२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्विषष्टितमोऽध्यायः ६२ ॥

# तिरसठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि पूर्वकहेहुए साधनके पीछे जो पुरुष नीचेलिखीहुई शा-न्तीनाम कैवल्य मोक्षको स्वीकारकरे वह ज्ञानी ज्ञानरूप नौकारखनेवाला है धैर्यवान् और ध्यानजन्य साक्षात्कर्ता से निश्चयपानेवाले पुरुष ज्ञानरूप नौकाओं के द्वारा अज्ञानियों को तारते हैं और अज्ञानी किसीप्रकार से दू-सरेको नहींतारसक्के न आपतरसक्के, रागादि दोषोंसे रहित स्त्री आदि के संग से पृथक् मुनियोग के बारह सहायकोंका सेवनकरे, प्रथम १ कंकड़ बालूअग्नि इत्यादि दोषरहित निर्विघ्न शुद्धदेश में आसनजमावे दूसराधर्म्म २ आहार बिहार कर्म्म सोना जागना सामान्यहो, तीसराधर्म्म ३ अच्छेशिष्य हों योग्य धन, सामर्थ्य के अनुसार उपाय, रागादि से पृथक्ता, गुरु और वेदके बचनों में बिश्वास, नेत्रआदि इन्द्रियां, शुद्धआहार, स्वाभाविक बिषय प्रवृत्तिका संकोच, संकल्प विकल्पात्मक चित्तजन्म मृत्यु जरारोग इत्यादि दोषोंका द-र्शन इनबारह पर इच्छावान् मुक्तिका चाहनेवाला पुरुष ध्यानकरे और मन बाणी को बुद्धिसे स्वाधीनकरे इससे उत्तमज्ञान प्राप्तहोता है, इसप्रकार बारह गुणों से युक्त अधिकारीको जो करनायोग्य है उसको कहते हैं कि ज्ञान से आत्मा को स्वाधीन करे इससे उसकी शांति अर्थात् कैवल्य मोक्ष होगी, अब योगफलको कहते हैं कि इनका साक्षी जो शांतआत्मा है, उसीरूपको प्राप्तकरनेवाला पुरुष या महापुरुष अथवा अविद्या असमता आदि पांचक्ले-शोंसे शोधितहो वह इसरीति से महाअगम्य जरामृत्यु रूपसागर को तरताहै, इसप्रकार इसयोग से जिसका फल शांतानाम मोक्षकी प्राप्तिहै आत्मा को परमात्मा में मिलाता ज्ञानकी इच्छाकरनेवाला भी शब्दब्रह्म को उल्लंघनकर कर्म्मकर्त्ता होता है अर्थात् परोक्षज्ञानवालाभी अपने कर्म्म त्याग से उत्पन्न होनेवाले दोषोंको नहींपाता है, जिसरथ के सारथीके बैठनेका स्थान यज्ञादिक धर्म्महै और श्रमबरूथ है और उपाय आसन और रागादि से पृथक्ताहै अ-

पान अश्व है प्राणयुग है प्रज्ञाआयु है जीव बन्धनहै शीलता उसकीनेमि हैं अर्थात् चक्रधाराहै, देखना, स्पर्शकरना, सूंघना और सुनना उसरथके चारों घोड़े हैं शम दम आदि गुणों में कुशलता उसकीनाभिहै शास्त्र उसका चाबुक है और शास्त्रार्थका निश्चय उसकासारथी है क्षेत्रज्ञ के अधिकार में नियत पराक्रम में पूर्ण श्रद्धा और चित्तकी स्थिरताका धारण करनेवाला त्यागी नौकरों पर आज्ञा करनेवाला मोक्षकाचाहनेवाला शुद्धमार्ग गामी ध्यानगोचर और जीव से मिलाहुआ दिव्यरथ ब्रह्मरूपलोक मेंविराजमान है, बचनआदि से सावधान पुरुष उनधारणाओंको प्राप्तकरताहै जो कि संख्यामें सातहैं इन सातों धारणाओंसे इन्द्री और बुद्धिकीधारणा अधिक हैं वह दोनों अहंकार में वर्त्तमान हैं, क्रमवाली बुद्धि के द्वारापृथ्वी जल अग्नि वायु अहंकार और अव्यक्तके ऐश्वर्यको प्राप्तकरताहै पांव से जंघातक पृथ्वीका स्थान है और जंघासेलेकर गुदातक जलका स्थान है और गुदासे लेकर हृदयतक अग्निका स्थान है और हृदयसे भृकुटी पर्यन्त बायुका स्थानहै और भृकुटी से मस्तक के अंततक आकाशका स्थानहै पृथ्वीमें लकार ( ल ) अक्षर के संयुक्तबायुको नियत करके संसारकेकर्त्ता चतुर्मुख ब्रह्माजीको पांचघड़ीतक धारणा करके ध्यान करना इससे पृथ्वी बिजयहोतीहै, जलकेस्थान में ( व ) वकार अक्षरसे संयुक्त प्राणको नियतकरके पवित्रस्थान में पीताम्बरधारी शुद्ध स्फटिकके समान बिष्णुजीको स्मरण करता पांचघड़ी धारणा करे उसधारणा केद्वारा सब इच्छाओंसे निवृत्तहोता है, अग्नि में ( र ) रकार अक्षर से संयुक्त प्राण को नियत करके तरुण सूर्यके समान प्रकाशमान तीननेत्र रखने वाले बरदाता भस्मधारी आनंदमूर्त्तिरुद्रजी को स्मरण करता पांचघड़ी धारण करे वह अग्नि से भस्मनहीं होताहै, वायुमंडल में ( य ) यकार अक्षर और ईश्वरसे संयुक्तप्राणकोपांचघड़ी धारणकरेवहबायुकेसमानआकाशमेंचेष्टाकरने वालाहोता है, आकाश में प्राणको नियत करके ( ह ) हकार अक्षरके ऊपर बिन्दुरूप आकाश स्वरूप महादेव आकाश में नियत चित्त से सदाशिवजी काध्यानकरे और एकमुहूर्त्तकधारणाकरे यहां लकार आदि बीजोंके स्थान परक्रमसे अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा और बिन्दुको नियतकरेइससेअव्यक्त धारण में छठवां नादहै उसके सन्मुख शुद्धब्रह्म शेषरहताहै इसीप्रकार यहां भी प्रणवके द्वारा तीनतीन प्राणायामों से ब्रह्माआदि कार्य रूपोंको अपनेअपने कारण में लयकरके अत्यंत चित्तशुद्धी से नादकेपास परमेश्वरको देखो और अहंकारकी यहधारणाहै कि स्थूलदेहसे असंगहोकर यहसब मैंहीहूं यह अभिमानहोना अहंकारकी धारणा कहलातीहै, तत्त्वमसिआदि बचनसेउत्पन्न होने वाला विद्याके बिनाइसअहंकारकी धारणाका लोपहोना अव्यक्त धारणाहै १५

युक्तिसे योगमेंप्रवृत्त योगियोंकेमध्यमें जिसयोगीकेनीचे लिखेहुयेअनुभवकर्म्म जिसरीतिसे प्रकट होते हैं उसको और अपनी देह के भीतर ध्यान करनेवाले योगीकी योगसम्बन्धी पृथिव्यादिसिद्ध्यर्थकनाम सिद्धिको वर्णनकरताहूं१६ प्रथमअनुभव कर्म्मोंको कहताहूं जैसे कि गुरुकी बताईहुई युक्तिसे स्थूलदेह के अध्यासको त्यागकर सूक्ष्मतासे आत्माके लिखेहुए रूपों को देखताहै उसीप्रकारदेहसे मुक्तपुरुषका पहिलारूप प्रकट होताहै अर्थात् जैसे उस धुयें के गुप्त होने से दूसरारूप दर्शन जलरूप आकाश में होताहै उसीप्रकार योगी अपने देह के भीतर देखता है जल के रूपान्तर में इसका अग्निरूप प्रकाश करता है उस अग्निके लय होनेपर वह वायु जो शस्त्ररूपहो वृक्षस्थान पर्वतादिकों को भी भक्षण करताहै प्रकाश करताहै उसका रूप मकड़ी के तारके समान निराधार प्रकाशमान है, फिर वह योगी वायुजित होकर वायुसम्बन्धी सूक्ष्म श्वेत शुद्धस्वरूपको प्राप्तहोताहै भृकुटियोंके मध्यसे लेकर मस्तकके अंततक आकाशका स्थानहै उसमें मिलकर और लयहोकर नीलरूप आकाशमात्र पहले के समान प्रकाश करताहै जोकि मुक्तिकी इच्छाकरनेवाले पुरुषके चित्त को शुद्ध करनेवाला शास्त्र ने वर्णन किया है, इनके शुद्धहोने पर जो फल उत्पन्नहोते हैं वह मैं तुमसे कहताहूं, यहां शुद्ध होनेवाले योगीके पार्थिवऐश्वर्योंसे यह संसार ऐसे धारण और पालन कियाजाताहै, जैसे कि ब्रह्माजी देह के सब हाथ पांव आदि अंगोंसे सृष्टिको उत्पन्न करतेहैं, वायुके गुणको प्राप्त करनेवाला अकेला योगी पृथ्वीको चलायमान करताहै और आकाशरूपको प्राप्त करनेवाला सबस्थानों में वर्तमान होने से आकाश में प्रकाश करता है और स्वरूपसे गुप्तहोजाताहै अर्थात् अरूपतासे अन्तर्द्धान शक्तिको भी प्राप्त करताहै, अब जलके जीतनेके फलको कहतेहैं कि वह जल रूपको प्राप्तकरने वाला योगी इच्छासे बापी कूप आदिको भी पीजाताहै इसके तेजोंका रूप दृष्टि नहीं पड़ताहै और शान्तताकोभी प्राप्तहोताहै जोऊपर लिखेहुये क्रमसे पांचों तत्त्वों की विजय न हो तो भी अहंकारको विजय करने से पांचों स्वाधीन होजाते हैं, पांचों तत्त्व और छठे अहंकारके विजय होने से आत्मारूप बुद्धिमें ऐश्वर्य्यमान् सात धारणाहोतीहैं इस योगीको संशय विपर्ययसे रहित पूर्णज्ञान प्राप्तहोताहै, उसीप्रकार बुद्धि आदि रूप आत्माको ब्रह्मभाव से जानताहै,यहलोक जिसहेतुसे ब्रह्मरूपकोसूजजाताहै उसीकारण से इसका व्यक्त नाम होताहै, इस स्थान पर तुम उस विद्या को जिसमें अव्यक्त प्रधान है मुझ से ब्यौरेवार सुनो कि योग और सांख्य शास्त्र में पच्चीस तत्त्व कहेहुये हैं वह महतत्त्व से लेकर विकारों पर्यंत तेईस तत्त्वों के समूहको व्यक्त कहतेहैं जो उत्पत्ति वृद्धिक्षय वृद्ध इन चार लक्षणों से संयुक्त है और जो इससे विप-

रीत अर्थात् जन्म बृद्धि आदि से रहितहै उसको अव्यक्त कहतेहैं और सांख्य शास्त्रवाले एकही जीवको प्रत्येक देहमें पृथक् २ मानतेहैं इस कारण उसकी मुख्यताको कहताहूं, दोनों जीव ईश्वर वेदों में और सिद्धान्तों में ब्रह्मरूप कहे गये जीव तो कार्य की उपाधि है और ईश्वर कारणकी उपाधि है इस श्रुती के अनुसार जीव ईश्वर के विभाग को कहते हैं कि व्यक्त नाम जीव को चार लक्षण की उपाधि रखनेवाला और उन चारों वर्गों का इच्छावान् कहते हैं और ईश्वर को माया से ढका हुआ कहते हैं इसी प्रकार वह दोनों का च्युत अच्युत नाम है अब श्रुति के अनुसार जीव ईश्वर के भेदको कहते हैं, यह दोनों जीव ईश्वर बुद्धि और क्षेत्रज्ञ नाम श्रुती से दिखाये गये हैं, वेदों में दोनों को आत्मा कहाहै, विषयों में प्रीति करनेवाले की ओर से उत्पत्ति क्रम के विपरीत घट आदि विषयों को लय करना चाहिये तात्पर्य यहहै कि अज्ञानियोंकी ही समझ से जीव ईश्वरका मुख्य भेद है परन्तु ज्ञानियों की बुद्धिसे वह दोनों बिम्ब और प्रतिबिम्ब के समान हैं इससे प्रतिबिम्बरूप जीव के लय होनेपर चिह्नमात्रही शेषरहता है,इसप्रकार तत्त्वज्ञ जीवनमुक्त पुरुषों के लक्षणों को कहते हैं, समता और अहंकारसे पृथक् सुखदुःख आदि योगोंसे रहित पुरुष जिसके कि सब संशय कटगये वह क्रोध नहीं करता है और शत्रुता रहित होकर न मिथ्या बचन कहता है, न किसीको शाप देता है और कठोर बचन हिंसात्मककर्म और चित्तसे दूसरे की बुराई इनतीनों को त्याग करताहै, सबजीवों में समदर्शी ज्ञानी ईश्वरकी ओर तदाकार होजाताहै इच्छावान् भी अनिच्छावान्है अर्थात् केवल शरीर के निर्बाहके लिये दूसरे विषयोंको त्याग करके मुख्य विषय में वर्त्तमान है, निर्लोभ पीड़ा रहित जितेन्द्री कर्म्म से निवृत्त और पूर्ण वस्त्रसे युक्त देह होताहै इसकी इन्द्रियां इकट्ठी होती हैं और सत्यसंकल्प होता है सब जीवों का मित्र सुवर्ण मृत्तिका को समान माननेवाला धैर्यवान् प्रिय अप्रिय और निन्दास्तुति को बराबर जाननेवाला सब मनोरथों से अनिच्छावान् ब्रह्मचर्य्य का दृढ़ ब्रतरखनेवाला हिन्सारहित वेदान्ती मुक्त होताहै, योगके द्वारा जिन हेतुओं से मुक्त होते हैं उनको समझो कि जो योगके ऐश्वर्य्यको उल्लंघन करनेवाला होजाताहै वह मुक्त होताहै सांख्य वा योग दोनों फलमें समान हैं इसको वर्णन किया इस प्रकार करनेसे निर्द्वन्द्वहो ब्रह्मभावको प्राप्तहोता है ४१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३ ॥

## चौंसठवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि सांख्य और योगके मध्यमें सांख्यही कल्याण कारक

है इसको वर्णन करते हैं कि इस संसार सागर में गोते खाता और उछलता ध्यानीपुरुष ज्ञानरूप नौकाको पकड़कर अपनी शान्ति अर्थात् मोक्षके कारणरूप ज्ञानकोही आश्रय करे, शुकदेवजी बोले कि मैं उस ज्ञानको समझना चाहताहूं कि वह प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म्म है वा निवृत्तिवाला है जिसप्रकार कि दोनों जन्म मरणको बराबर तरताहै उसी प्रकार उसको भी वर्णन कीजिये, इस स्थानमें अहंब्रह्मास्मि अर्थात् मैं ब्रह्महूं इस अनुभवके होनेपर जड़ अहंकार और उसका प्रकाश वर्णन कियेजातेहैं वह दोनों आत्माहैं यहभट्टों का वर्णन है, अहंकार का अर्थही आत्मा है प्रकाश उसका गुणहै वह भी तीनक्षण नियत रहनेवालाहै यह तर्कशास्त्रवालों का सिद्धान्तहै और आत्माही सदैव प्रकाशमानहै अहंकारका अर्थ आत्मानहीं है यहसांख्य मतवालोंका सिद्धान्त है आत्मा और अनात्मा में अनात्मा नियत है और देह के नाश में चिदात्माका नाश होजाताहै यह बौद्धलोगोंका मतहै, आत्माही सत्य है अनात्मा मिथ्याहै यह वेदान्त वादियों का सिद्धान्तहै और दोनों नहीं हैं यहशून्यवादीकहतेहैं इससे आत्माका अभाव होने में ज्ञान निरर्थक होजाय इसनिमित्त उसमें दोषलगानेको व्यासजी बोले कि जो पुरुष अहंकारआदि को विना आत्मभाव के प्रकाश करनेवाला देखता सब शिष्यों को जिनकी युक्तियां ज्ञानसेरहितहैं इसप्रकारके ज्ञानसे उपदेशकरके तृप्तकरताहै वह अज्ञानी है, अब आत्मा के नाशनाम बौद्धके सिद्धांतको दोष लगाते हैं कि जिन बौद्धोंके पूर्णनिश्चयके साथ स्वभावही कारण मानागया अर्थात् दहीआदि काकारण दूध है न कि अदृष्ट ईश्वरकी कृपा है क्योंकि प्रत्यक्ष में वह नहीं दिखाईदेती इसस्थानपर कहते हैं कि वह बौद्ध मूंजको शुद्धकर उसके भीतर वर्त्तमान पहिले न देखीहुई सींक को भी नहीं पाते हैं क्योंकि मूंज में वर्त्तमान सींकभी दृष्ट नहीं पड़ती है अथवा द्वितीय पाठमें देहसे पृथक् आत्मा को कहते हैं कि वेदमें लिखाहै कि आत्माको देह से भिन्न ऐसे जाने जैसे कि मूंजमें सींकहोती है, इस वेद बचनको ऋषियों के सन्मुख सुनकर कुछ तत्त्वको नहीं पातेहैं किन्तु आचार्योंकी उपासना न करनेवाले आपही ऐसी कल्पना करते हैं, स्वभावसेही शून्यमें संसारकी भ्रांती है और स्वभावसेही देहादिकी उत्पत्तिहै यह दोनों पक्षभी निरर्थक हैं इसको कहते हैं—जो अल्प बुद्धि मनुष्य इसपक्षका आश्रय लेकर और स्वभावको कारण जानकर बर्त्ताव करते हैं वह कल्याण को नहींपाते हैं, मोहसे उत्पन्न जोचित्त है उससे पैदा होनेवाला स्वभाव नाशवान् है आपस्वभाव सत्ताका कारणहै यह एकपक्ष हुआ और अपना और दूसरोंका भावकारणहै यह दूसरापक्षहै, इनदोनों का न कहनाही सिद्धांत है इसलोकमें कृषिकर्मादि में खेतीका काटना, सवारी,

आसन और घर बुद्धिमान् से बिचार कियेगये आशय यह है कि जो स्व-
भावही कारण है तो इसदशा में बुद्धिकी चतुरता निष्फलहुई, ज्ञानियों के
आज्ञाकारी ज्ञानी पुरुषही क्रीड़ास्थान घर और रोगोंकी औषधीको तय्यार
करनेवालेहैं, बुद्धिअर्थोंसे संयुक्त करतीहै और कल्याण करती है इसीसे बड़े२
अर्थोंको भोगनेवाले राजालोग राज्यकरते हैं, जीवोंसे श्रेष्ठ चैतन्यआत्मा और
मायाको ज्ञानहीसे जानतेहैं हे पुत्र विद्यासे उत्पन्न होनेवाले जीवोंके लयहोने
का स्थान विद्याही है, इसप्रकार बुद्धिरूप उत्पत्ति और लयको कहकर व्यव-
हारको कहते हैं नानाप्रकारके सबजीवों के इन अण्डज, स्वेदज, जरायुज,
उद्भिजके चारोंप्रकारकी उत्पत्तिको देखे और बिचारकरे, जंगम जीवोंको स्था-
वर.जीवोंसे उत्तमजाने जो इन जड़चैतन्य जीवों में चेष्टाहोती है उनकोबड़ी
रक्षासे मुख्यतादेवे अर्थात् वृक्षआदि में देखना और सुनना आदि सिद्धहोता
है परन्तु कभी प्रत्यक्ष दृष्ट नहीं आते और वह गुण चेष्टावान् मनुष्यादि में
प्रकटहैं इसकारण वह उनसे उत्तम हैं, चैतन्यजीवोंके बहुतसे पैर और दो पैर
कहे बहुत पैरवालोंसे दो पैरवाले उत्तम हैं दो पैरवाले भी दोप्रकारके हैं एक
पृथ्वीपर रहनेवाले दूसरे नभचारी उनमें पृथ्वी के रहनेवाले उत्तमहैं वह अन्नों
को भोजन करते हैं वह पृथ्वी के दो पैरवाले भी दो प्रकारके हैं मध्यम और
उत्तम उनमें जातिधर्म्मके धारण करने से मध्यम उत्तमहैं मध्यमभी दोप्रकार
के हैं धर्म्मज्ञ, और अधर्म्मज्ञ, उनमें योग्यायोग्य कर्म्म के जाननेसे धर्म्मज्ञ
उत्तमहैं, धर्म्मज्ञ पुरुषभी दोप्रकारके हैं वेदज्ञ और अवेदज्ञ, उनमें वेदज्ञ श्रेष्ठहैं
क्योंकि उनमें वेद प्रतिष्ठावान्है वेदज्ञोंके भी दो भेदहैं वेदार्थज्ञाता, और अज्ञा-
ता, उनमें वेदार्थज्ञ सबधर्म्मों के धारण करने से उत्तमहै जिनके द्वारा वेद में
धर्म्मयज्ञ और फल बिदितहोते हैं क्योंकि सब वेदधर्म्मोंके साथ वेदार्थज्ञाताओं
से जारी कियेगये, अब उत्तमोंका निर्णयकरने को मध्यमों में भी उनकी ग-
णना करातेहैं, वेदार्थ जाननेवालों को दो प्रकारका कहा, आत्मज्ञानी और
अनात्मज्ञानी उत्पत्ति और नाशके जानने से आत्मज्ञानी उत्तम हैं जो पुरुष
दोनों धर्म्मोंको जानता है वह सर्वज्ञ और ब्रह्मज्ञानी है वह संन्यासीही सत्य
संकल्प, पवित्रात्मा और ईश्वर है, देवताओं ने उसब्रह्मज्ञान में नियत वेद
शास्त्रों में, पूर्णपरब्रह्म में निश्चय करनेवालेको ब्राह्मणजाना है हे तात ज्ञानी
पुरुष उसदूसरे के चित्तमें बाह्याभ्यन्तर नियतको अध्यग और अधिदेव समेत
देखतेहैं वही ब्राह्मण और देवता हैं यह विश्व उनमें प्रकट हुआहै और वर्त्त-
मानहै अर्थात् वहसब उनके आधाररूपहैं उनकेमाहात्म्यकी समानता किसीसे
नहीं होसक्ती वहब्रह्मरूप सबप्रकारसेश्रेष्ठ अन्तमें मृत्यु और कर्म्मको उल्लंघन
करके सबचारप्रकारकी सृष्टिके ईश्वरहैं २५ ॥ इति चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ६४ ॥

# पैंसठवां अध्याय॥

ब्यासजी बोले कि जो पुरुष बिना आत्मज्ञानके दान तप आदि कर्म्मको हजारों वर्षतक करताहै वह दानआदि नाशवान् होताहै इसकारण आत्माका आकांची उसकी प्राप्तिकेलिये कर्म्मकरे, यहप्राचीन वृत्ति ब्राह्मणकी कहीजाती है और ज्ञानीपुरुषही सब स्थानोंपर कर्म्मोंको करताहै और सिद्धि कोपाताहै, जो इसकर्म्ममें निस्संदेह हो ऐसीदशामेंकर्म करना सिद्धीकेही निमित्तहोताहै चाहै वहकर्म स्वभावहै अर्थात् नित्यहै,अथवा ज्ञान उत्पन्न करनेसे सफलहै इससंदेह के होने पर जो ब्राह्मणकी ओर से उस पुरुषको ज्ञान उत्पन्न करनेवाला कर्म उपदेश कियाजाय तब वह वेद बुद्धि होजातीहै अर्थात् आत्मज्ञानके लिये जो कर्म कियेगये उनसे भी सिद्धि होतीहै इन ईप्सित और अनीप्सित कर्मों की मुख्यताको सुनो कि बहुतसे मनुष्यों ने इस जन्म और पिछले जन्म के कर्मोंको कारण कहाहै कोई दैवको कोई स्वभावको कारणकहतेहैं इस वर्णनसे मीमांसक कालबादी शून्यवादी और बौद्धों के मतोंको कहकर उनके बिकल्प और समुच्चयको कहतेहैं कि दृष्टादृष्ट,उपायकर्मऔर दैवयहतीनों कालवृत्तियां शोभा से पृथक् २ हैं अर्थात् उन में एकही प्रधान है दूसरा कोई नहीं है उन के समुच्चयको कहतेहैं, अब आर्हत मतको सुनो कि जीवों के अनेक प्रकार होने का क्या कारण है इसको कहें कि इसप्रकार का है सो नहीं कहसक्ता क्योंकि यह बाणी के बिषय से दूर है तो यह भी इसप्रकार से नहीं कहसक्के क्योंकि वह बाणी के बिषयसे पृथक् नहीं है, और दोनों हैं यह भी नहीं कह सक्के और यह भी नहीं कहते कि वह दोनों कर्म दैव नहीं हैं क्योंकि दोनों से पृथक् कारण नहीं है वह आर्हित मतवाले सत्वस्थ नामहैं, रजोगुण तमोगुण से पृथक् अन्तःकरणवाली संप्रज्ञात दशामें नियत होकर योगी ब्रह्मको कारणरूप देखते हैं, त्रेता द्वापरमें और कलियुग में मनुष्य संदेह रखनेवाले होतेहैं सब यज्ञों में तपस्वी तीनोंवेद ऋग् यजुर् में भी भेद न देखनेवाले सब आदमी कामद्वेष रहित होकर तपस्या को करते हैं इसीकारण जो पुरुष तप धर्म युक्त सदैव तपनिष्ठ और श्रेष्ठ ब्रत रखनेवाला है वह सब इच्छाओं को प्राप्त करता है, तपसे उस ब्रह्मको पाता है जो ब्रह्मस्वरूप होकर संसार को उत्पन्न करताहै, वह ब्रह्मरूप होनेवाला सब जीवमात्रका स्वामी होताहै, वह ज्ञान क्या है, विद्या या कर्म से उत्पन्न होनेवाला या नाशवान् आत्मा इनमें से पिछला स्वभाव के अपमान करने से त्याग कियाहै पहले में प्रमाण को दिखाकर मध्यवाले को त्याग करतेहैं वह ब्रह्म कर्मकाण्डों में भी कहाहै तो भी अज्ञात रहा, फिर वेददर्शियों ने वेदान्त शास्त्रों में विद्या से प्राप्त होने

वाले उस ब्रह्मको प्रत्यक्ष बर्णन किया वह ब्रह्म कर्म योग में दृष्ट नहीं आता अर्थात् भृंगीकीट के न्यायसे ब्रह्मकी उपासना के द्वारा ब्रह्मभाव की प्राप्ति कहना उचित नहीं है, हिंसात्मक यज्ञ करनेवाले क्षत्री और हव्यसे यज्ञ करने वाले वैश्य और सेवारूप यज्ञ करनेवाले शूद्र और जपरूप यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण कहेहैं, ब्राह्मण जप यज्ञादि कर्म से ही निवृत्त होताहै जपके विशेष दूसरा कर्मकरे या न करे क्योंकि ब्राह्मण (मैत्र) वर्णन कियाजाताहै अर्थात् सबका मित्र कहा जाताहै, त्रेतायुगके प्रारम्भमें केवल वेद, यज्ञ, बर्ण और आश्रम थे यह द्वापरयुग में अवस्था की न्यूनता से प्रकारता को प्राप्त करते हैं वह वेद द्वापर और कलियुग में उपद्रवता से कलियुग के अन्त में दृष्ट आते हैं और नहीं भी आतेहैं वहां अधर्म से पीड़ित अपने धर्म नाश होजातेहैं गौ पृथ्वी जल और सिद्धियों के जो रस हैं वह भी नष्टता को पाते हैं, वेद वैदिक धर्म, और आश्रम अधर्म से गुप्त होजाते हैं, आश्रम दानलेने से स्थावर जंगम बस्तु लाभ के लिये बेंचीजाती हैं जैसे कि बर्षा सब पृथ्वी के जीवों को प्रसन्न करतीहै उसीप्रकार वेद प्रत्येक यज्ञमें सबओर से वेदपाठियों के योगांगों को प्रकट करतेहैं, जो सत्य यज्ञ आदि का रूप धारण करनेवाला जीवात्माहै उसका नानाप्रकार का होना निश्चय कियाहै कि वह आदिअंत रहित है और जो प्रथम मैंने तुझ से कहा वही सृष्टि को उत्पन्न करताहै तात्पर्य यह है कि जीव तत्पदार्थ से पृथक् नहीं है, जो यह जीवों की उत्पत्ति और लय का स्थान है वही सबका स्वामी और अन्तर्यामीहै, सुख दुःखादि से रहित बहुत से जीव ब्रह्मभाव से उसी में बर्त्तमान होतेहैं, कालही उत्पत्ति, धैर्य, वेद, क्रिया का कर्त्ता और क्रियारूप है हे तात जो तैंने पूछा वह सब मैंने कहा २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपंचषष्टितमोऽध्यायः ६५ ॥

# छयासठवां अध्याय ॥

अबसांख्य और योगके अन्तरको छयासठ और सड़सठ अध्यायमें वर्णन करते हैं ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर इसप्रकार महर्षि व्यासजीसे सुनकर श्रीशुकदेवजीने उनके वचनों की प्रशंसा करके मोक्षधर्म के सम्बन्धी इस प्रश्न को व्यासजी से पूछा कि बुद्धिमान् वेदपाठी यज्ञकर्त्ता ज्ञानी और परनिन्दारहित पुरुष उस ब्रह्मको कैसे पाताहै जो कि वेद और प्रत्यक्ष अनुमानोंसे भी जाना नहींजाता है और जिस युक्तिसे पुरुषोंको चित्त और इन्द्रियोंकी अविकारता प्राप्त होतीहै उसकोभी आप वर्णन कीजिये, व्यासजी बोले कि कोई पुरुष

विद्या, तप, इन्द्री निग्रह और सर्व त्याग किये बिना किसी प्रकार से सिद्धि को प्राप्त नहीं होसक्ताहै, सब महाभूत प्रथम ब्रह्माजीकी उत्पत्ति अथवाजीवों की उत्पत्तिसे पृथक् हैं वह जीवात्माओंके समूहके मध्य देहाभिमान रखने वाले अज्ञानीजीवोंमें बहुतप्रविष्टहैं अर्थात् इनअज्ञानियोंने उनको आत्मारूप मानरक्खाहै, पृथ्वीसे देह,जलसेरस, अग्निसे नेत्र, व्यानमें बायु प्राण,अपान में आश्रितहै और देहके कर्णादि छिद्रोंमें आकाश वर्त्तमानहै, योग के मतसे आत्माभोक्ताहै कर्त्ता नहीं है, और सांख्यके मतसे न भोक्ताहै न कर्त्ता है उन में से पहलेको दूसरेका सिद्धान्त रूप प्रकट करने को दोष लगातेहैं कि पाद इन्द्रीमें विष्णु, पान इन्द्री में इन्द्र उनको कर्म्म में प्रवृत्त करनेवाले नियत हैं, जिसप्रकार राजाके रथआदिके पास युद्धकर्त्ता वर्त्तमानहों वहां युद्धकर्त्ताओंमें वर्त्तमान जिसप्रकार हारजीतको और रथमें वर्त्तमान वृद्धि और हानिको अभिमान से राजा अपने में नियत करता है उसीप्रकार चैतन्य आत्मा देवता और इन्द्रियों में वर्त्तमान भोक्तापन आदिको अज्ञानसे अपने में नियतकरता है किमैं भोगीआदिहूं जैसे कि नौकरमें उसका अभिमान न होनेसे हारजीत नहीं होती उसी प्रकार विष्णु आदि में भोग भी नहीं है आत्मामें उसका दृष्ट पड़ना अज्ञानसेहै इस वर्णनसे आत्माका कर्त्ता और भोक्ता न होना साबित हुआ स्थानरूप दोनोंकानोंमें दिशा देवता और श्रोत्र इन्द्री और जिह्वा में बाक् इन्द्री और उसकी देवता सरस्वतीदेवी वर्त्तमानहै,दोनों कान त्वचादोनों नेत्र जिह्वा और पांचवीं नाक यह इन्द्रियां दर्शन आदि विषय प्राप्त करने के लिये द्वारहैं, शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध इन विषयों को सदैव इन्द्रियों से पृथक्जाने चित्त इन्द्रियोंको अपने २ कर्म्म में ऐसे प्रवृत्त करताहै, जिसप्रकार सारथी अपने अधिकारमें नियतहोकर घोड़ोंको चलाताहै उसीप्रकार हृदयमें नियत जीवात्मा सदैव चित्तको कर्म्म में प्रवृत्तकरताहै जैसे चित्त इनसब इंद्रियोंका ईश्वरहै उसी प्रकार इस चित्तके उत्पत्ति और नाशमें जीवात्मा समर्थहै, इन्द्रियां उनके विषय स्वभाव, बुद्धिकी वृत्ति, चित्त, प्राण, अपान और जीव सदैव जीवोंकी देहमें वर्त्तमान रहतेहैं बुद्धिका आश्रय जो पहिले देहकोकहा वह भी नहींहै क्योंकि वह देहभी स्वप्नदशा के समान है फिर उसका आश्रय और स्वरूप क्याहै, मूल प्रकृतिही उस अपनी रूपान्तर रखनेवाली शब्दमात्र स्वरूपवाली बुद्धिका आश्रयहै, चिन्ता उसबुद्धिका स्वरूप और आश्रय नहीं है चाहे गुण बुद्धिकेही धर्म्महो परन्तु यहपुरुष सात्विकी और राजसी है उस की उपाधिसे संयुक्त पुरुष में यह कहना सम्भवहै इस शंकाको कहते हैं—तेज बुद्धिको उत्पन्न करता है गुणों को नहीं करताहै इससे वह आदिरहित बासना बुद्धिका कारणहै गुण नहीं है यह सात्विकीहै यह कहना परम्परासे भी होता

अर्थ को कहते हैं – बीजरूप प्रकाशमान सतोगुण प्रधान जो महत्तत्त्व है वही ब्रह्म है उसीब्रह्मका यह सब सारभूत है इसभूतका दृष्टकरनाही सब जड़चैतन्यों का प्रकटहोना है, ध्यान, वेदपाठ, सत्यता, श्रम, शुद्ध भाव, संतोष, पवित्रता, बाहरभीतरसे आचारनिष्ठ शांतचित्त इनगुणों से तेजकी वड़ी वृद्धिहोती है, और पाप निवृत्तहोता है और सब इच्छा पूर्णहोकर तत्त्वज्ञान प्राप्तहोता है और रागद्वेषरहित अनायास प्राप्तिसेतृप्त निष्पाप तेजस्वी अल्पाहारी जितेन्द्री पुरुष काम क्रोध को आधीन करके महातत्त्वका लयस्थान प्रकृति को आधीनकरे वह सावधानचित्त इन्द्रियों को एकाग्र करके अर्थात् चित् को विषयों से हटाकरबुद्धि में धारणकरे अर्थात् संकल्परूप चित्तकोरोंके, इन्द्रियोंके न रोकने में दोषोंको कहते हैं जो इसपांचइन्द्री रखनेवाले जीवात्माकी एकइन्द्री छिद्ररूपहो उसछिद्र से उसकी शास्त्रजन्य बुद्धिऐसी गिरती है जैसे मसक से जल गिरता है, योगी पुरुष प्रथम चित्तको ऐसे आधीनकरे जैसे कि मत्स्यघाती जाल तोड़नेवाली मछली को करता है--तदनन्तर यतीहो इन सब चक्षु, श्रोत्र [illegible] नियतकरे, और संकल्पोंको अपने स्वरूपमेंहै क्योंकि वेदमें लिखाहै कि ब्रह्मजहां न्द्रियोंको [illegible] प्रकारके रूपोंसे वर्त्तमान है उतनाही वेदवचन है जो पुरुष [illegible]इस प्रकारसे जानताहै वह अविनाशीहोनेको कल्पना किया जाता है, जो सबजीवोंका आत्मा और हितकारी हुआ उस अव्यक्त मुक्त पुरुषके मार्ग को देवता भी निश्चय करते २ मोहको प्राप्तहोतेहैं जैसे आकाशमें पक्षियों का और जल में जलजीवोंका मार्ग दृष्टनहीं पड़ता उसीप्रकार ज्ञानमार्गहै, अर्थात् प्रकृतिका जितना सामानहै वहसब क्रमसे लयहोकर अचल वा अनन्तआत्मा बाकी रहजाता है फिर उसका क्या मार्गहोगा, काल अर्थात् जीवात्मा सबभूतों को आप अपनी आत्मामें लयकरता है और जिसपरमात्मा में वह काल रूप जीवात्मा लयहोता है उसको यहां कोई नहीं जानताहै, वह परमात्मा ऊंचे नीचे तिरछे बायें दाहें नहीं है न कोई वस्तुहै न यह कहसक्ते कि वहकहांसे और कहांतकहै तात्पर्य्य यहहै कि किसी मुख्य स्थानका प्राप्त होना मुक्ति नहीं है यह सब संसारकेलोग मुक्ति स्वरूप के मध्यमें वर्त्तमानहैं इनलोकों के मध्यमें कोई स्थान उससे बाहर नहीं है जो प्राप्त करने के योग्य हो, अगर धनुषसे निकलेहुये बाणकी समान बराबर चलाजाय तो भी ब्रह्म की सन्निकटताको नहीं प्राप्त होसक्ता और जो चित्तके समान शीघ्रगतिहो तो भी उस सूक्ष्मसे सूक्ष्म नहींहै न इससे कोई स्थूलसे स्थूलहै, वह सबओर हाथ पैर आंख शिर मुख कानयुक्त लोक में सबको ढककर वर्त्तमान है वही लघुसेभी लघुतमहै और बृद्धोंका बृद्धहै सबजीवोंमें वर्त्तमान दृष्ट नहीं आता

योगी निवासकेलिये जीवोंसेरहित पहाड़ीगुफा और देवताओंके मकान और उजड़े स्थानों को प्राप्त करे और दूसरे का संगकर्म्म बचन चित्तसे भी न करे उदासीन वृत्ति स्वल्पाहारी और हानिलाभ में और निन्दास्तुति में एकचित्त रहै लाभमें प्रसन्न न हो हानिमेंशोच न करे बायुके समान सबजीवों में समान धर्मीहोवे, इसप्रकार सावधान चित्तसाधु समदर्शी सदैव योग में छःमहीने तक प्रवृत्त मनुष्यका शब्दब्रह्म अपने अर्थका अपरोक्ष ज्ञानकरने से अत्यंत प्रकाश करताहै सुवर्ण पाषाण को समान जाननेवाला योगीधनकी प्राप्ति में पीड़ित मनुष्योंको देखकरधनके प्राप्तकरनेमें प्रीति न करे और अज्ञान न हो,इसमेंश्रद्धा वानही अधिकारी है इसका वर्णन करते हैं कि इसशांत चित्तरूप योगमार्ग से शूद्र और धर्म्म जाननेवाली स्त्रियां भी परमगति को पाती हैं आशय यह है कि तत्त्व मसि इत्यादि बाक्यों के अर्थ बिचार रूप वेदान्त में तीनवर्ण अधिकारी हैं परन्तु शांत चित्तरूप योगमार्ग में स्त्री और शूद्रभी अधिकारी हैं चित्त और बुद्धिसे संयुक्त अचल इंद्रियोंके द्वारा जो पायाजाय वह अजन्मा पुराण और बिपरीत दशामें रहित शांतसूक्ष्म में भी सूक्ष्म बृद्धसे बृद्ध अनंत [illegible]देखताहै अब कर्म-

## सड़सठवां अध्याय ॥

[illegible]ण महर्षि के

व्यासजी बोले कि इसप्रकार सांख्यतत्त्वको कहकर योगियोंका [illegible]र्णन करतेहैं कि हे श्रेष्ठ पुत्र यहां सांख्यज्ञानसे संयुक्त जो यहज्ञान मैंने तुमसे कहा सो सांख्यशास्त्रसे उत्तम दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है फिर योगकर्म वर्णन करनेसे क्या प्रयोजनहै यह शंकाकरके योग मतमें ज्ञान शब्दके अर्थको कहते हैं सबइन्द्री और चित्तबुद्धिकी ऐक्यता और सर्व्वब्यापी आत्माकाज्ञान यह श्रेष्ठहै यहज्ञान चित्तके जीतनेवाले निष्ठावान् आत्मामें प्रीतिमान तत्त्वज्ञ शास्त्र यम नियम आदि युक्त पुरुष से जानने के योग्य है, जो कि योग के पांचों दोषोंको जिनको पण्डितोंने वर्णन किया है नाशकरके जानसक्ता है वह पांचोंयहहैं कि काम क्रोध लोभ भय स्वप्न, शान्ततासेक्रोधको और संकल्प के त्यागनेसे कामकोजीतताहै और बुद्धिके विचारसे धैर्यवान्पुरुष स्वप्नको और अपने धैर्य्य से लिंग उदर और दुष्टकर्म्मों से रक्षाकरे और हाथपांव को नेत्रकेद्वारा और नेत्रकानों को स्त्री आदि के देखने से और मनबाणी को यज्ञादि से भयको सावधानीसे और कपट वा शठताको ज्ञानियोंके सत्संग से रक्षाकरे, सावधान पुरुष सदैव इस प्रकार इनयोग के दोषों को विजयकरे और अग्नि ब्राह्मणका पूजन करे देवताओं को नमस्कारकरे और हिंसायुक्त चित्तके बिगाड़नेवाले काम प्रधान वचन को त्यागकरे, ब्रह्मज्ञानसेही मुक्ति प्रसिद्धहै केवल बुद्धिकेही निरोधसे मुक्तिनहींहोती यहशंकाकरके ब्रह्मशब्दके

अर्थ को कहते हैं – बीजरूप प्रकाशमान सतोगुण प्रधान जो महत्तत्त्व वही ब्रह्म है उसीब्रह्मका यह सब सारभूत है इसभूतका दृष्टकरनाही जड़चैतन्यों का प्रकटहोना है, ध्यान, वेदपाठ, सत्यता, श्रम, शुद्ध भाव, तोष, पवित्रता, बाहरभीतरसे आचारनिष्ठ शांतचित्त इनगुणों से तेजकी वृद्धिहोती है, और पाप निवृत्तहोता है और सब इच्छा पूर्णहोकर तत्त्वज्ञान प्राप्तहोता है और रागद्वेषरहित अनायास प्राप्तिसेतृप्त निष्पाप तेजस्वी अल्पाहारी जितेन्द्री पुरुष काम क्रोध को आधीन करके महातत्त्वका लयस्थान प्रकृति को आधीनकरे वह सावधानचित्त इन्द्रियों को एकाग्र करके अर्थात् चित् को बिषयों से हटाकरबुद्धि में धारणकरे अर्थात् संकल्परूप चित्तकोरोके इन्द्रियोंके न रोकने में दोषोंको कहते हैं जो इसपांचइन्द्री रखनेवाले त्माकी एकइन्द्री छिद्ररूपहो उसछिद्र से उसकी शास्त्रजन्य बुद्धिऐसी गिरती है जैसे मसक से जल गिरता है, योगी पुरुष प्रथम चित्तको ऐसे आधीनकरे जैसे कि मत्स्यघाती जाल तोड़नेवाली मछली को करता है—तदनन्तर यतीहो इन सब चक्षु, श्रोत्र, अपने स्वरूप ... नियत करे, और संकल्पों अपने स्वरूपमेंहै क्योंकि वेदमें लिखाहै कि ब्रह्मजहां न्द्रियोंको ...प्रकारके रूपोंसे वर्त्तमान है उतनाही वेदवचन है जो पुरुष नि... से प्रकारसे जानताहै वह अविनाशीहोनेको कल्पना किया जाता है, जो सबजीवोंका आत्मा और हितकारी हुआ उस अव्यक्त मुक्त पुरुषके मार्ग को देवता भी निश्चय करते २ मोहको प्राप्तहोतेहैं जैसे आकाशमें पक्षियों का और जल में जलजीवोंका मार्ग दृष्टनहीं पड़ता उसीप्रकार ज्ञानमार्गहै, अर्थात् प्रकृतिका जितना सामानहै वहसब क्रमसे लयहोकर अचल वा अनन्तआत्मा बाकी रहजाता है फिर उसका क्या मार्गहोगा, काल अर्थात् जीवात्मा सबभूतों को आप अपनी आत्मामें लयकरता है और जिसपरमात्मा में वह काल रूप जीवात्मा लयहोता है उसको यहां कोई नहीं जानताहै,वह परमात्मा ऊंचे नीचे तिरछे बायें दाहें नहीं है न कोई बस्तुहै न यह कहसके कि वहकहांसे और कहांतकहै तात्पर्य्य यहहै कि किसी मुख्य स्थानका प्राप्त होना मुक्ति नहीं है यह सब संसारकेलोग मुक्ति स्वरूप के मध्यमें वर्त्तमानहैं इनलोकों के मध्यमें कोई स्थान उससे बाहर नहीं है जो प्राप्त करने के योग्य हो, अगर धनुषसे निकलेहुये बाणको समान बराबर चलाजाय तो भी ब्रह्म की सन्निकटताको नहीं प्राप्त होसक्ता और जो चित्तके समान शीघ्रगतिहो तो भी उस सूक्ष्मसे सूक्ष्म नहींहै न इससे कोई स्थूलसे स्थूलहै, वह सबओर हाथ पैर आंख शिर मुख कानयुक्त लोक में सबको ढककर वर्त्तमान है वही लघुसेभी लघुतमहै और बृद्धोंका वृद्धहै सबजीवोंमें वर्त्तमान दृष्ट नहीं आता

योगी निवासकेलिये जीवोंसेरहित पहाड़ीगुफा और देवताओंके मकान और उजड़े स्थानों को प्राप्त करे और दूसरे का संगकर्म्म बचन चित्तसे भी न करे उदासीन वृत्ति स्वल्पाहारी और हानिलाभ में और निन्दास्तुति में एकचित्त रहे लाभमें प्रसन्न न हो हानिमेंशोच न करे वायुके समान सबजीवों में समान धर्मीहोवे, इसप्रकार सावधान चित्तसाधु समदर्शी सदैव योग में छःमहीने तक प्रवृत्त मनुष्यका शब्दब्रह्म अपने अर्थका अपरोक्ष ज्ञानकरने से अत्यंत प्रकाश करताहै सुवर्ण पाषाण को समान जाननेवाला योगीधनकी प्राप्ति में पीड़ित मनुष्योंको देखकरधनके प्राप्तकरनेमें प्रीति न करे और अज्ञान न हो,इसमेंश्रद्धा वानही अधिकारी है इसका वर्णन करते हैं कि इसशांत चित्तरूप योगमार्ग से शूद्र और धर्म्म जाननेवाली स्त्रियां भी परमगति को पाती हैं आशय यह है कि तत्त्व मसि इत्यादि वाक्यों के अर्थ बिचार रूप वेदान्त में तीनवर्ण अधिकारी हैं परन्तु शांत चित्तरूप योगमार्ग में स्त्री और शूद्रभी अधिकारी हैं चित्त और बुद्धिसे संयुक्त अचल इंद्रियोंके द्वारा जो पायाजाय वह अजन्मा पुराण और बिपरीत दशासे रहित शांतसूक्ष्म से भी सूक्ष्म बृद्धसे बृद्ध अनंत रूप है, चित्तका जीतनेवाला पुरुष उस बुद्धिसे मुक्तिको देखताहै अब कर्म्म-मुक्तिको कहते हैं कि बुद्धिमान् पुरुष इसवर्णन कियेहुए महात्मा महर्षि के बचनको ध्यानसे शब्द और अर्थयुक्त उपदेश जानकर और युक्तिसे बिचार कर महाप्रलय तक ब्रह्माजी की सारूप्य मुक्तिको पाते हैं, आशय यह है कि परोक्ष ज्ञानवाले शुद्धचित्त पुरुष ब्रह्माजीके साथ एकसे भोगवाले होकर महा प्रलयपर ब्रह्माजी के साथ मुक्त होते हैं और अपरोक्ष ज्ञानवाले ३४ श्लोकके अनुसार निर्गुण ब्रह्मकी समताको पाते हैं ३५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्तषष्टितमोऽध्यायः ६७ ॥

# अड़सठवां अध्याय ॥

अब ब्रह्मविद्या समाप्त हुई और कर्म्मों के साथ उसका समुच्चय खण्डन करने को शुकदेवजी ने प्रश्नकिया कि यह जो वेदका बचन है कि कर्म्मकरो और त्याग करो इस ब्रह्मज्ञान से किस दशाको जाते हैं और कर्म्म से किस को प्राप्त करते हैं यह दोनों बचन परस्परमें विरुद्धसे मालूम होते हैं इसको आप कृपा करके समझाइये, भीष्मजी बोले कि ऐसेशुकदेवजी के बचनसुन-कर व्यासजी ने पुत्रको उत्तर दिया कि यह कर्म्म और ज्ञानरूप दोनों बिनाशी और अबिनाशी मार्ग में तुमसे कहताहूं, हे पुत्र ब्रह्मज्ञान से जिस दशाको प्राप्त करते हैं और कर्म्म से जिसको प्राप्तकरते हैं उनको एक चित्त होकर सुनो कि दोनों में बहुतही अन्तर है, यह सत्य धर्म्मही कहागया इस

स्थान पर जो कहैं कि धर्म नहीं है उसकेही समान यह मेरा पक्ष होगा यह दोनों मार्ग वेद प्रतिष्ठित हैं निवृत्ति में प्रवृत्ति लक्षण वाला धर्म अच्छा बर्णन कियागया है अर्थात् जो प्रवृत्ति धर्म्म निवृत्ति धर्म्मका उत्पादक नहो तो अच्छानहीं है, जीवात्मा कर्म्म से बन्धन को पाता है और ज्ञानसे मुक्त होता है इसकारण पारदर्शी यती पुरुष कर्म्मको नहीं करते हैं, कर्म्म से ही दूसरा जन्म होता है जो कि सोलह अंगवालाहै और ज्ञानसे प्राचीन द्वैतता रहित अविनाशी ब्रह्मप्रत्यक्ष होताहै; कर्म्म की प्रशंसा महा अज्ञानी लोग करते हैं इस कारण वह लोग स्त्री आदि से रमणकरते शरीररूप जंजाल को प्राप्तकरते हैं, उत्तम धर्म्मों के देखनेवाले जिन पुरुषोंने उत्तम बुद्धि को प्राप्त किया है वह कर्म्मकी प्रशंसा ऐसे नहीं करतेहैं जैसे कि नदीके जलका पीने वाला कूपकी प्रशंसा नहीं करताहै, कर्म्म के फलसे सुख दुःख और ऐश्वर्य समेत नाशको पाता है और ज्ञानके फलसे अशोचता को प्राप्त होताहै जिस अखण्डब्रह्म में मिलकर न मरताहै न जन्म लेता है अर्थात् अहङ्कार रूपजीव स्वरूप को प्राप्त नहीं होता और फिर जन्म नहीं लेता न उसमें प्रविष्ट होकर बर्त्तमान रहताहै अर्थात् जीवगुण नाश होकर शुद्ध आत्मा रूपशेष रहजाता है, जिस दशामें वह ब्रह्मजीव ईश्वरकी द्वैतता रहित होताहै वह श्रेष्ठ और गुप्त अचल रूपांतर दशा से अदृष्ट सुगमतासे प्राप्त होनेवाला अविनाशीहै, सब स्थानोंमें समदर्शी सर्बमित्र सब जीवों के उपकारी ज्ञानी पुरुष हर्षशोक आदि संकल्प से पीड़ामान नहीं होते हैं, हे पुत्र ज्ञानी पुरुष दूसरा है और कर्म्म कर्त्ता दूसरा है अमावस के दिन चन्द्रमा को सूक्ष्मकला से युक्त देखो आशय यह है कि वृद्धिक्षययुक्त यह सम्बत्सर नाम प्रजापति चन्द्रमा प्रत्येक मास में अमावस के दिन एक कलाबाकी रहता है उसी प्रकार का कर्म्म कर्त्ताओं का ऐश्वर्य्य है सो आकाश में नवीन बक्रचन्द्रमा को देखकर याज्ञवल्क्य ऋषि से यह बिधिपूर्वक कहा गया अनुमान कियाजाता है, जो दश इन्द्री और चित्त इन ग्यारह बिकार स्वरूप और कर्म्मरूप कलाओं के भारसे संयुक्त मूर्त्तिमान् है उसव्यष्टिजीवको त्रिगुणात्मक कर्म्मका फल और और चन्द्रमाके समान वृद्धिनाशवाला समझाहै, उसजीव उपाधिरूप चित्तमें जो प्रकाशमान चैतन्य नियत है वह ऐसा है जैसे कि कमलपत्रमें जलबिन्दु होता है उसयोग से प्राप्तहोनेवाले चित्तजीव को क्षेत्रज्ञ परमात्मा अविनाशी जानो, और यह सतोगुण रजोगुण तमोगुण जीवके गुणहैं और जीवको आत्माका गुणजाने और उस आत्माको परमात्माका गुणजाने जड़ चैतन्य रूपजीव जड़भाग के त्यागकरने से ब्रह्मही है आप जड़रूप चेतनासे संयुक्त देहको जीवके गुणचैतन्यसे संयुक्त कहतेहैं इसकारण वह जीव सबको चेष्टा

देताहै और चैतन्य करता है क्षेत्रज्ञका ज्ञाता जीव से परे उसपरमात्मा को कहतेहैं जिसने भूलोकआदि सप्त भवनों को उत्पन्न कियाहै २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेअष्टषष्टितमोऽध्यायः ६८ ॥

## उनहत्तरवां अध्याय ॥

शुकदेवजी बोले कि प्रधानसे लेकर चौबीस तत्त्वरूप जोसाधारण सृष्टिहै वह आत्मासे है इसी प्रकार बिषयों समेत इन्द्रियां भी बुद्धि से उत्पन्न हुई हैं ईश्वर की सामर्थ्यसे उत्पन्न होनेवाली सृष्टिउत्तमहै और बंधनरूपहोनेसे अनुत्तम है, जीव और ईश्वरसे सम्बन्ध रखनेवाली सृष्टि दोप्रकारकीहै उनमें बुद्धि रूप जीवीसृष्टि बंधनका कारणहै मैं काल से संबंध रखनेवाले सत्पुरुषोंके उस आचारको जिससे कि इसलोकमें सन्त कर्म्मकर्त्ताहोते हैं सुनना चाहताहूं और वेदमें कर्म्म करना और कर्म्मोंका त्यागना दोनों परस्पर विरुद्धबातें लिखी हैं इसको भी आप निर्णय करके सुनाइये, क्योंकि मैं लोकरीतिकी मुख्यताका जाननेवाला और देहाभिमान का त्यागने वाला गुरू के उपदेश से पवित्र बुद्धिका संस्कार करके अबिनाशी आत्माको देखना चाहताहूंगा, व्यासजी बोले कि जैसे पहिले आपब्रह्माजी की ओरसे जो वृत्ति बिचारकी गई वही प्राचीन ऋषियों करके काममेंलाईगई आशय यहहै कि ज्ञानके साथ कर्म्मोंका समुच्चय नहींहै परन्तु कर्म्म समुच्चय होगा जैसे लिखाहै कि कर्म्मोंसे बुद्धिको शुद्धकरके उसबुद्धिके द्वारा आत्मदर्शनको चाहै,परम ऋषिलोग ब्रह्मचर्य्य के द्वारा लोकोंको विजय करतेहैं इसकारण चित्तकेद्वारा अपने कल्याणकोचाहा बन में मूलफलों का भोक्ता बड़ातपस्वी पवित्र देशगामी अहिंसायुक्त वानप्रस्थ आश्रम में समय पर भिक्षाकरता हुआ ब्रह्मभावके लिये कल्पना किया जाताहै, शुभ अशुभको त्यागकर किसी एक भोजन से तृप्तस्तुति और नमस्कार के व्यवहार से रहित अकेले बनमें घूमो, शुकदेवजी ने कहा कि कर्म्म करो वा त्यागकरो यह जो वेदका बचन है वह परस्पर में बिरोधी है तो कैसे शास्त्रसे प्रमाणीकमाने, सो यह संदेह निवृत्त कीजिये कि दोनों प्रमाण किस प्रकार से हैं और कर्म्मोंके बिरोधोंमें मोक्षकैसे प्राप्तहोतीहै,भीष्मजी बोले कि इसप्रकार महातेजस्वी शुकदेवजीके प्रश्नको सुनकर व्यासजी बोले कि ब्रह्मचारी गृहस्थ बानप्रस्थ संन्यासी यह सब शास्त्र उपदेशके अनुसार कर्म्म करने वाले परमगतिको पातेहैं, जो अकेलाही बुद्धिके अनुसार इन आश्रमों का अनुष्ठानकरे और काम द्वेषसे रहितहो वह ब्रह्मज्ञान के योग्यहोताहै यह चार पाये वाली ब्रह्मरूप नसेनी नियतहै इस नसेनी पर चढ़कर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा पाताहै, धर्म्म अर्थमें पण्डित किसीके गुणमें दोष न लगाने वाला ब्रह्मचारी

गुरू या गुरूके पुत्रकेपास चौथाई अवस्थातक निवासकरे नीचेपृथ्वीपर सोवे और प्रातःकाल उठकर गुरूके घरमें भृत्यकर्मकरके और गुरूको जतलाकरगुरू के पास बैठे और सब कर्मकर्त्ता होकर दासहोजाय, ऐश्वर्यकी इच्छा करने वाले पुरुषको गुरूके सब कामपूरे करके फिर उनके पास पढ़ना चाहिये और आज्ञाकारी होकर असभ्यबात कभी न कहे और गुरूके पासबुलानेसेप्राप्तहोवे, पवित्र और चतुरता युक्त प्रियवचन बोले और जितेन्द्रियसावधानहोकर नेत्रोंसे गुरूको देखे गुरूसे पहलेभोजन जलआदिको नग्रहणकरे और स्थिरन होनेपर स्थिर न हो और गुरूके जागतेहुये शयननहींकरे औरनम्रतासे गुरूके चरणछुए दाहिने हाथ से दाहेंचरणको और बायें हाथसे बायेंचरणको पकड़े गुरूसे दंड वत्करके कहे कि हे भगवन् पढ़ाओ यहकाम मैंने किया और यहकरूंगा और जो आप आज्ञादेंगे उसको करूंगा यह सब जतलाकर और बुद्धि के अनुसार प्रकटकरके दूसरी बारभी गुरू से कहना चाहिये, और ब्रह्मचारी को जो २ रसगन्धादि सेवन करना वर्जितहैं उनसबको समावर्त्तन कर्म से निवृत्त होकर सेवनकरे यह ब्रह्मचारीके धर्म हैं इनको सदैव कर्त्ताहुआ गुरूके सन्मुख वर्त्तमानहो और सामर्थ्यके अनुसार गुरूमें प्रीतिको प्रकटकरे फिर वह शिष्य एक आश्रमसे दूसरे आश्रमोंमें कर्मके द्वारा प्रवृत्तहोवे वेद व्रतके उपवास से अवस्था के चतुर्थांश व्यतीत होनेपर गुरू को दक्षिणा देकर विधिपूर्वक समावर्त्तन कर्म करे और व्रतीपुरुष धर्म पत्नियों से संयुक्त युक्ति से अग्नियों को स्थापन करके अवस्था के दूसरे भाग में गृहस्थी होय ३९ ॥

इतिश्रीमहाभारते शांतिपर्वणिमोक्षधर्मे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ६९ ॥

# सत्तरवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि सुन्दरव्रत परायण धर्मपत्नी संयुक्त गृहस्थी पुरुष अग्नियोंको स्थापनकरके अपनी अवस्था के दोभागतक घरमें निवास करे, पण्डितों की ओरसे गृहस्थियों की चारप्रकार की आजीविका कही हैं प्रथम तीनवर्षतकके निमित्त अन्नका संचयकरना उसको कुसूलधान्य कहते हैं दूसरा कुम्भधान्य अर्थात् कुंभकी पूर्णताके समान अन्न संचयकरना तीसरे एकदिन के खर्चके योग्य अन्नरखना चौथे उञ्छवृत्तीसे अपनी आजीविकाकोप्राप्तकरे इन चारों में पहले पहलेकी अपेक्षा दूसरा उत्तम है, एक छःकर्म करनेवाला कर्मकर्त्ता होताहै, दूसरा तीन कर्मसे कर्मकर्त्ताहोताहै, एक दोकर्मसे कर्मकर्त्ता होताहै, चौथा ब्रह्मयज्ञमें अर्थात् जप वेदपाठ आदिमें नियत होताहै अबगृहस्थीकेबड़े धर्मोंको कहतेहैं, केवल अपनेही निमित्त भोजननबनावे और देव पितृ यज्ञकेउद्देशके बिनाकभी पशुओंका घात न करे बकरी आदि जीवधारी

और फलआदि निर्जीवोंको यजुर्वेदके मंत्रोंकेद्वारा संस्कारकरे और दिवस वा अगली पिछली रात्रिमें कभी न सोवे और दोनों समयके भोजनके सिवाय मध्यमें फिर भोजननकरे और ऋतुकालोंके सिवाय स्त्रीसेभोगनकरे और पूजन भोजनके बिना कोई ब्राह्मण उसके घरमें निवासनकरे, इसीप्रकार उसके हव्य कव्यके धारणकरनेवाले वह अतिथिभी सदैव पूजन के योग्यहैं जो कि वेद विद्या और व्रतमें पूर्ण वेदकेपारदर्शी धर्मसे निर्बाह करनेवाले जितेन्द्रिय क्रियावान् और तपस्वी हों उन्हींके पूजन के निमित्त हव्यकव्य भी कहागयाहै, और पाखण्डके निमित्त नख आदि के बढ़ानेवाले अपनाधर्म विख्यात करनेवाले गुरूको न मानकर अग्निहोत्रके त्यागी इत्यादि, इसप्रकारके भी सब जीवोंका भाग इसगृहस्थको देना कहाहै इसीप्रकार ब्रह्मचारी और संन्यासीको भी गृहस्थ भोजनकरावे, सदैव बिघसान्न और अमृतका भोजन करे जो हव्य के समान वा अन्यपदार्थ यज्ञसे शेषरहाहो उसको अमृत कहते हैं और जो गृहस्थोंके बालबच्चे और बृद्ध अतिथियोंको देकर शेषरहै उसको बिघसान्न जानो उसका भोजन करनेवाला विघसाशी कहलाताहै, अपनी स्त्रीसे प्रीति करनेवाला जितेन्द्री परनिन्दा रहित धर्ममें क्लेशादि रहित, ऋत्विज पुरोहित आचार्य्य, मातुल, अतिथि, आश्रित, बृद्ध, बाल, आतुर, वैद्य, ज्ञाति, सम्बन्धी बांधव, माता, पिता, सगोत्री, स्त्री, भाई, बेटा, भार्य्या और दास आदिकेसाथ भोजनके भागके बिषयमें बाद न करे क्योंकि इनके बादको त्यागनेसे पापोंसे निबृत्तहोताहै, इन्होंसे बिजय कियाहुआ सबलोगोंको बिजयकरताहै निस्संदेह आचार्य्य ब्रह्मलोकका और प्रजापति के लोकका स्वामी है अतिथि इन्द्रलोक का स्वामी ऋत्विज देवलोकका अधिपति, बहन बेटी बधू आदि अप्सराओं के लोक में स्वामी हैं, जातिवाले बैश्व देवलोकमें स्वामी हैं, नातेदार और बांधव दिशाओं में, और माता मामा पृथ्वीपर, और बृद्ध, बालक, रोगी, निर्बल आदमी आकाशमें स्वामीहैं, आशय यहहै कि जो जिस लोकका स्वामी है उसके अप्रसन्न करनेमें उन उन लोकों में हानिको पाताहै, बड़ा भाई पिताके समान है, भार्या और पुत्र अपना देह है दास लोगों के समूह अपनी छाया हैं, बेटी परम कृपण है इसीकारण गृहस्थ धर्म में प्रवृत्त बुद्धिमान् धर्माभ्यासी थकावटका विजयी और तपसेरहित पुरुष इनसब बातोंसे निंदित सदैवक्षमाकरे २१ कोई धर्मज्ञ पुरुष मनोरथ सम्बन्धी यज्ञआदिकोनहीं करे, गृहस्थी की तीन आजीविका हैं एकतो मुख्य तोलसे अन्न संचय रखना उंछ, शिल, कापोती उनमें पिछली पिछली कल्याण करनेवाली है, चारोंआश्रमों में भी एक से एक पिछले उत्तम समझो, २२ जिसप्रकार उनके नियम किये वह सब ऐश्वर्य की इच्छावालेको करनेके योग्यहैं, कुंभधान्य शिल उंछसे निर्बाह करनेवाले

कापोती नाम जीविका में प्रवृत्त हैं २४ यह योग्य मनुष्य जिस देश में निवास करते हैं वह देश सब ओर से वृद्धि को पाता है, जो पीड़ा रहित मनुष्य इनगृहस्थी की आजीविकाओं पर ध्यान पूर्वक कर्मकरे वह अगले पिछले दश २ पुरुषाओं को तारताहै, और चक्रवर्त्तियों के समान गति को पाता है यही गति जितेन्द्रियों की भी होती है, स्वर्गलोग उदार चित्तवाले गृहस्थियों का हितकारी है, बिमानयुक्त स्वर्गवेदसे देखाहुआ क्रीड़ायोग्य है, सावधानचित्त गृहस्थियों की स्वर्गही प्रतिष्ठा है इसी कारण यह गृहस्थधर्म स्वर्गका देनेवाला ब्रह्माजीनेरचाहै और भोगकियाजाताहै, इसदूसरे आश्रमको क्रमसे प्राप्तकरके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठापाताहै मैंने तुमसे तीसरे परमउदारबान प्रस्थोंके उत्तमोत्तम बड़े आश्रमकोकहा और जोदेहके अभिमानदूरकरनेवाले बनबासी और गृहपति अपने अस्थिचर्मवाले देहको सुखाने वालेहैं उनके भी आश्रमको कहताहूं तुम चित्त से सुनो ३१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेसप्ततितमोऽध्यायः ७० ॥

# इकहत्तरवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर शास्त्रमें ज्ञानियों से बिदितकी हुई गृहस्थी की आजीविका तुमसे बर्णन करी अब गृहस्थ वृत्तिको क्रमसे निन्दित करके जो आश्रम उत्तम कहा गयाहै उसको समझो कि इस स्त्री सम्बन्धित गृहस्थ वृत्ती से चित्तको हटाकर बानप्रस्थ आश्रम में आश्चर्य भूत तीसरी वृत्तिको कहताहूं जिनके कि सब लोक और आश्रम आत्मारूप हैं उन विचारवान् पवित्र कर्मियों के धर्म को सुनो, व्यासजी अपने पुत्र शुकदेवजीको आशीर्वाददेकर बोले कि जब गृहस्थी अपने मुखपर श्वेतकेश और पुत्रकी संतान को देखे तब बनमें ही निवासकरे अर्थात् अवस्थाके तीसरे भागको बानप्रस्थ आश्रम में ब्यतीत करे और देवपूजन पूर्वक उनअग्नियोंका सेवन करे, जो अचारवान् सामान्यभोक्ता दिनके छठेभाग में भोजन करनेवाला सावधानहो वही अग्निहोत्र वही गौवही यज्ञोंके सब अंगहैं यहां बनमें भी पंचमहायज्ञोंके बीच लोहेकी फारसे रहित हल के जोतने से उत्पन्न धान जो नीवार नाम जो मुनियों के अन्न और सब प्रकारके बिघसान्नहैं उनको भोजनकरे और करावे, ५ बानप्रस्थ आश्रम में भी यह चार आजीविका कही हैं कोई तत्काल प्रक्षालक होताहै अर्थात् शीघ्र भोजन निबटानेवाले कोई एक मासके भोजनार्थ अन्न इकट्ठाकरनेवाले हैं कोई अतिथि पूजन और यज्ञ तंत्र आदिके निमित्त एक वर्षकेउद्देशको और कोई बारहबर्ष के खर्च के लिये इकट्ठा करतेहैं, बर्षामें स्थान

रहित मैदान में तपकरनेवाले, हेमन्तऋतु में जलमें नियत होनेवाले और उष्णऋतुमें पंचाग्नि तपनेवाले मितभोजनवाले पृथ्वीपर सोते हैं एकपैरसे खड़े रहते हैं स्थान और आसनोंको भी त्यागदेते हैं और यज्ञों में अभिषेक करते हैं,कोई दांतको ऊखलबनानेवाले हैं अर्थात् केवल दांतसेही चबाकर खातेहैं और कोईपत्थरपर कूटकर खातेहैं कोई कृष्णपक्षमें व्रतकरके शुक्लपक्षमें यवागूनाम और अच्छे पके मूलआदिको एकबार खाते हैं कोई कृष्णपक्ष में जब आदि जो कुछ मिले भोजन करतेहैं आशय यहहै कि कोई फल कोई मूल कोई फूलोंसे न्यायके अनुसार निर्बाहकरतेहैं कोई बैखानस ऋषियोंकी गति में प्रवृत्तहैं उनज्ञानियों की यह और अन्यप्रकारकी भी अनेक दीक्षाहैं चौथाधर्म उपनिषद् सम्बन्धी साधारणहै, जो सब आश्रमों में बर्त्तमानहो उसको साधारणकहते हैं, हे पुत्र उसगृहस्थ और बानप्रस्थ से दूसरा आश्रम जो होता है इसेयज्ञ में सब अर्थके देखनेवाले ब्राह्मणोंमेंसे अगस्त, सप्तऋषि, मधुच्छन्द, अघमर्षण, सांकृति, सुदिव, अतंडि, यथावास, कृतश्रम, अहोबीर्य, काव्य, तांड्य, मेधातिथि, बुध, बलवान्, कर्णनिर्बाक, शून्यबाल इत्यादि ऋषियों ने किया है इसीहेतु से वह सब स्वर्गबासी हुये, इसीप्रकार सत्यसंकल्प आदि प्रत्यक्ष धर्म्मकरनेवाले या यावरनामगण स्वर्गको गये, हे तात इसीप्रकार धर्म्म दर्शी उग्रतपवाले अन्य उत्तम ब्राह्मण बनमें निवासीहुये और बैखानस बालखिल्य और सैकतनाम ऋषि कृच्छ्र चान्द्रायण कर्मोंके कारण आनन्दसे रहित सदैव धर्म्म करनेवाले जितेन्द्री प्रत्यक्ष धर्म्मधारी बनके बासीभी स्वर्गबासीहुये वह प्रकाशवान् नक्षत्रोंसे भी अधिक प्रकाशित निर्भय दृष्टपड़ते हैं, वृद्धावस्था से निर्बल और रोगसे अत्यन्त पीड़ित पुरुष अवस्थाके चतुर्थांश बाकी रहने पर बानप्रस्थ आश्रमको त्यागकरे एकदिनमें होनेवाले सबवेद और दक्षिणा युक्त यज्ञको करके जीवनदशा में आपश्राद्ध आदि करनेवाला आत्मामें प्रीतिमान् आत्मामें ही क्रीड़ा करनेवाला आश्रयी और अग्नियोंका स्थापनकर के सब परिग्रहोंको त्याग संन्यासी होजाय बड़ा बैराग्य न होनेपर दूसरा पक्ष कहतेहैं—शीघ्रहोनेवाले ब्रह्मयज्ञ और दर्शपूर्णमासनाम यज्ञादि तबतक सदैव करै जबतक कि कर्मरूप यज्ञसे आत्मयज्ञ अर्थात् योगाभ्यास बर्त्तमानहोताहै, अबआत्म यज्ञका स्वरूप कहते हैं—देहके त्याग पर्यन्त गार्हस्पति आहबनी आदि तीनों अग्नियां जोकि मनचित्त मुखरूपहैं उनको पूजनकर मंत्रकेद्वारा पांचोंप्राणके लिये पांच या छः ग्रासोंको खाय उसके पीछे कर्म्मों से पवित्र बानप्रस्थ मृतक शिरदेह और नखोंको पृथक् करके एक आश्रमसे दूसरे पवित्र आश्रमको प्राप्तकरताहै, जोब्राह्मण सब जीवोंको निर्भय करके संन्यासी होता है उसके लोक तेजरूपहैं वहदेह त्यागकर मोक्षको पाताहै अच्छे शीलचलन

वाला निष्पापपुरुष इसलोक और परलोकमें कर्म्म अनुष्ठानको नहीं चाहताहै और काम क्रोध से रहित प्रिय अप्रियतासे जुदा उदासीन पुरुष आत्मज्ञानी होताहै अपने वेदान्तशास्त्र और सूत्र दोनोंलोकको त्यागकरके आत्म इच्छा रूप आहवनी और शिखायज्ञोपवीतके त्याग से सम्बन्ध रखनेवाले मंत्रका पराक्रम रखनेवाला प्राप्त होनेवाले नियममें पीड़ामान नहींहोय, आत्मज्ञानी की गति स्वेच्छाचारी होतीहै उसजितेन्दी और धर्म्ममें पूर्ण पुरुषके विषय में संदेह नहीं है इसके अनन्तर उत्तम और सद्गुण युक्त श्रेष्ठ पुरुष तीनों आश्रमोंको तुच्छकर उच्चस्थानी चौथे आश्रमका वर्णन किया अब जिसमें शम आदिवृत्ति अधिकहैं और मोक्षका हेतुहै उसको सुनो २८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे एकसप्ततितमोऽध्यायः ७१ ॥

## बहत्तरवां अध्याय ॥

पूर्वमें वैश्वानर आत्माकी उपासना वर्णन की वह कर्म ढीले आदमी से होना कठिनहै इसबातको मानकर शुकदेवजीने यह प्रश्न किया कि इसबानप्रस्थ आश्रममें इसप्रकार नियत होकर जानने के योग्य ब्रह्मकी इच्छाकरने वाले पुरुषकी ओरसे उसआत्माका सामर्थ्य के अनुसार ब्रह्म में ठीक २ तद्रूप होना किसप्रकार से सम्भव है व्यासजी बोले कि इनदोनों आश्रमोंसे चित्त शुद्धीरूप संस्कारको पाकर फिर आत्माको ब्रह्ममें लयकरना चाहिये जो परमार्थ करनेके योग्यहै उसको एक चित्त होकर सुनो, तीनों आश्रमोंमें चित्तके दोषको दूरकरके सब आश्रमोंमें उत्तम पदवाले संन्यास आश्रमको धारणकरे, सो तुम इसप्रकार अभ्यास करके कर्म्मकरो इसीप्रकार अन्यभी सुनो कि अकेला किसीको साथ न रखनेवाला शुद्धी के लिये धर्म्मकोकरे, जोअकेला देखता किसीपदार्थको त्याग नहींकरताहै अर्थात् सर्वव्यापी है औरमोक्षके सुखसे भ्रष्ट नहींहोताहै वह अग्नि और स्थानरहित अन्नकेनिमित्त ग्रामकोजाय,सावधान चित्त अल्पाहारी एक समय भोजन करनेवाला मुनि किसी वस्तु का संग्रह न करे कपालका जलपात्र वृक्षों के मूल पर निवास गेरुवेवस्त्र एकाकी सब जीवों के रागद्वेषसे पृथक् होना यह संन्यासी का लक्षणहै, जिसमें भयानक कोपयुक्त हाथी के समान बचन प्रवेश करतेहैं वे बचन फिर कहनेवाले को प्राप्त नहीं होतेहैं वह पुरुष कैवल्य मोक्ष सम्बन्धी आश्रम में निवास करे, कभी किसी की मुख्यकर ब्राह्मणकी निन्दाको न सुने न देखे न किसी दशा में आप करे, जिसमें ब्राह्मणकी भलाईहो उसीको सदैव कहै, अपने संसारी रोगों की चिकित्सा करता निन्द्रारहितहो सदैव जिस अकेले से आकाश व्याप्त होताहै और जिससे जन समूह भी निर्जनस्थान के समान होता है

देवता लोग उसको निर्दोष ब्राह्मण समझतेहैं जिस किसी रोगसे गुप्त देह और कोई अन्नसे तृप्त और जहां योगहो वहांही शयन करनेवालाहै उसीको देवता ब्राह्मण कहतेहैं, जैसे कि सर्प से भयभीत होतेहैं उसीप्रकार जन समूहों से भय करता रहै और जैसे नरक से भय उत्पन्न होताहै उसीप्रकार मिष्टान्नसे भयभीत रहै और जैसे मृतकआदि से भय होताहै उसीप्रकार स्त्रियों से भय करता रहै और मानसे प्रसन्न न हो और अपमानमें क्रोध रहितहो और सब जीवोंको अभय देनेवाला हो, जो मृत्यु जीवनको न चाहै और समयकी बाट आज्ञाकारी भृत्यके समान देखता रहै दोष रहित निर्दोष बक्ता सर्वपाप रहित अशत्रुहो उसको क्या भयहै जिससे सब जीव निर्भयहैं न किसी जीवसे उस को भयहै उस मोह रहित पुरुषको कहीं भय नहीं है, निर्भयता को कहकर पूर्णानंद प्राप्तिको भी कहतेहैं, जैसे कि हाथी के पैर में सबके चरण अंतर्गत होजातेहैं उसीप्रकार समाधि में बर्त्तमान योगी के स्थानपर इन्द्रियोंके स्थान अन्तर्गत होजातेहैं इसप्रकार के सब धर्म्म अर्थ इस हिंसासे रहित और सब जीवों की निर्भयता रूप संन्यास योग में लय होजातेहैं जो हिंसा रहित हो- ताहै वह अविनाशी जीवनमुक्त होताहै, हिंसा रहित समदर्शी सत्यवक्ता धैर्य- वान् सावधान सब जीवों का रक्षास्थान वह पुरुष उत्तमगतिको पाताहै जिससे कि उत्तम दूसरीगति नहीं है, इसप्रकार मृत्युरूप आत्माके प्रत्यक्ष अनुभवसे तृप्त अनिच्छावान् पुरुषको उल्लंघन करनेवाला नहीं है क्योंकि वह पुरुष मृत्यु को उल्लंघन करजाताहै, सब संगों से रहित आकाश के समान वर्त्तमान अ- दृष्ट अकेले घूमनेवाले शान्तरूपही को देवताओंने ब्राह्मण कहाहै, जिसका जीवन निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न होनेवाले पुण्य के निमित्तहै और वह धर्म भी पास रहनेवालेपुत्र और मित्र आदिके लियेहै और जिसके दिनरात्रि पुण्य के हेतुहैं अर्थात् समाधि परमेश्वरार्थ है उस अनिच्छावान् असावधा- नता रहित अपनी प्रशंसा रहित नमस्कारादि से उत्पन्न होनेवाले सुख और बासना रूप बंधनों से रहित पुरुषको ब्राह्मण जानों सब जीव सुख में क्रीड़ा करतेहैं और सब दुःखका भय करतेहैं उन कर्मों के द्वारा उत्पन्न होनेवाले भय से दुखी होनेवाले श्रद्धावान् पुरुष हिंसात्मक कर्मोंको नहीं करें सब जीवों की निर्भयतारूप दान सब दानोंसे उत्तम होताहै जो पुरुष प्रथमही हिंसात्मक कर्मको त्याग करताहै और जीवों को निर्भय दान देताहै वहमोक्षको पाताहै व्यतीत अध्याय के तेंतीस श्लोक के अनुसार खुलेहुये मुखमें हव्य को नहीं होमताहै अर्थात् वह योगी चित्त और इन्द्री आदिको आत्मामें होमकरताहै, सब जड़चैतन्य जीवोंकी जो नाभिहै वह तीनों लोकके आत्मा वैश्वानरका स्थानहै उस लोक के मस्तक आदि अंगों से लेकर सब अंगोंतक वैश्वानरके

अंग हैं वह बैकल्पितहैं, हृदय से लेकर नाभि पर्यन्त प्रादेश मात्रस्थान में आत्माप्रकटहै जोयोगी इस चिन्मात्रमें सब प्रपंचको होमकरता है अर्थात् लय करताहै देह में नियत इन देवताओं से युक्त सब लोकोंमें होमाहुआ अग्नि-होत्र होताहै अर्थात् उस होम से सब ब्रह्माण्ड तृप्तहोताहै, जिन पुरुषोंने उस प्रकाशमान और अकार अर्थवाले सूत्रात्मा को और तीनों गुणवालीमकार अर्थ युक्त मायाकी उपाधि रखनेवाले ईश्वरको और सूक्ष्मतम और उपाधि से पृथक् ब्रह्मभावको जानाहै वह सब लोक में प्रतिष्ठावान् हैं समर्थ देवता उस मोक्षरूपको प्राप्तहोतेहैं अर्थात् उसके अंगरूप होतेहैं, अब विद्या के फल को कहते हैं, जो पुरुष वेदोंको और जानने योग्य यज्ञादिकों को और कर्म-काण्ड वा परलोक आदिको आत्मामें जानताहै उसकी देवताभी सेवा किया चाहते हैं, अब इसके पक्षीरूप का वर्णन करतेहैं, किरणों से प्रकाशमान जो जीवात्मा उस पृथ्वीसे अनुराग रहित और स्वर्ग में भी अचिन्त्य प्रभाव चि-न्मात्र रूप ब्रह्माण्डके मध्यमें प्रकाशित बहुतपक्षरूप देवताओंसे संयुक्त पक्षी अर्थात् असंग और मोद प्रमोद नाम बृत्तिरूप दो पक्ष रखनेवाले पक्षी को देहके भीतर हार्द आकाश में हृदय कमल पर जानताहै उसको देवता प्राप्त होतेहैं उसके छः ऋतु तो नाभि हैं और बारह महीने आरे हैं और मावस सं-क्रांति आदि सुन्दर पर्बहैं यह विश्व जिसके मुखके ऊपर जाता है वह भ्रमण करनेवाला ईश्वरसे युक्त अजर कालचक्र बुद्धिमें नियतहै,सुषुप्तिनामअज्ञान जो कि जाग्रत और स्वप्न अवस्थाका बीजरूपहै और संसारका शरीरहै और स्थूल सूक्ष्म सृष्टिको व्याप्तकरता है उस अज्ञानरूप स्थूल सूक्ष्मरूप देहमें जो जीवहै वह देवताओं को तृप्त करताहै वह तृप्त देवता इसके मुखको तृप्त करते हैं, वेदमें कहाहै कि इस मंत्रसे जो पहले आहुति मुखमें होमी जाती है उससे प्राण तृप्त होताहै प्राणकी तृप्तिसे नेत्र तृप्तहोतेहैं और नेत्रोंकी तृप्तिसे सूर्य तृप्त होतेहैं सूर्यकी तृप्तिसे स्वर्ग तृप्तहोताहै, स्वर्गकी तृप्तिसे स्वर्ग संयुक्त सूर्यलोक तृप्तहोताहै, फिर वह आहुति देनेवालासन्तान पशुअन्नादि युक्तहोकर ब्रह्मतेज से तृप्त होताहै, जो निर्गुण ब्रह्मभावको न पाकर सगुणब्रह्ममें प्रवृत्तहोताहै उस की गतिको कहतेहैं, जिससे जीवमात्र निर्भयहोते हैं और जीवमात्रों से वह आपभी निर्भयहोताहै वह उन निर्भय अनन्त लोकों को पाता है, जो लोक बास्तवमें एकाकी तेजरूप और पुराण ब्रह्मलोकनामसे प्रसिद्ध है, जो ब्राह्मण अनिन्द्य और दूसरोंकी निन्दा नहीं करताहै और अज्ञान वा अपवित्रता से रहित जिसके स्थूल सूक्ष्म पाप निवृत्त होजातेहैं वही ब्राह्मण उसपरमात्माको देखताहै, वहपुरुष इस लोक और परलोकमें भोगने के स्थानों को नहीं प्राप्त होताहै तात्पर्य यहहै कि केवल मोक्षपानेसे उसकीगति नहींहै इसकी जीव-

नमुक्त की दशाको कहते हैं, क्रोध मोहसे पृथक् मृत्तिका सुवर्णको समानजानेवाला प्रत्यक्ष ऐश्वर्य रखनेवाला राग द्वेषसे रहित निन्दास्तुति रहितप्रिय अप्रियता रहित संन्यासी और उदासीनों के समान भोगों को भोगता नियत होता है ३६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेद्विसप्ततितमोऽध्यायः ७२ ॥

# तिहत्तरवां अध्याय ॥

व्यासजीबोले कि प्रकृतिके जो देह इन्द्री चित्त आदि बिकारहैं उनके कारण यह क्षेत्रज्ञआत्मा कर्तृत्व और भोक्तृत्व गुणोंसे गुणीहै वहनेत्रआदि जड़ रूप होनेसे आत्माको नहीं जानते हैं अर्थात् आप प्रकाशमान नहीं होसक्ते हैं परन्तु वह आत्मा उनकोभी जानताहै अर्थात् प्रकाशकरता है आत्मा इस लोकमें उन इंद्रियोंसे जिनमें छठा चित्तहै करनेके योग्य कर्मको ऐसे करताहै जैसे कि अच्छे सीखेहुये घोड़ोंसे सारथी सारथ्यकर्मको करताहै, इन्द्रियोंसेपरे अर्थ अर्थोंसे परे मन मनसेपरे बुद्धि बुद्धिसेपरे महत्तत्त्व महत्तत्त्वसेपरे अव्यक्त अव्यक्तसेपरे चैतन्यात्मा है और चैतन्यात्मासे परे कुछ नहीं है वहीकाष्ठा और परमगतिहै, इसप्रकार सबजीवोंमेंगुप्त आत्माप्रकाश नहीं करताहै और सूक्ष्मदर्शी ब्रह्मज्ञानियों की सूक्ष्म और तीक्ष्ण बुद्धि से दृष्टिगोचर होता है, ध्यान ध्यानी ध्यानयोग्य और सब इंद्री और उनके विषयोंके बिचाररहित बुद्धि और इंद्रियों के द्वारा चित्तको महत्तत्त्व में लयकरके ध्यान से उपरामहो अहंब्रह्मास्मि अर्थात् मैं ब्रह्महूं इस विद्यासे शुद्ध ईश्वरभावको लयकरनेवाला मुक्तचित्त कैवल्य मोक्षको पाताहै, इसके विपरीतपक्षमें दोष है उसको भी सुनो कि चित्त को सब इन्द्रियों के स्वाधीनकरनेवाला आत्मस्वरूपके स्मरण से पृथक् मरण धर्मवालामनुष्य विषयोंमें प्रवृत्त चित्तहोनेसेमृत्युकोपाताहै सबसंकल्पोंकानाश करके चित्तको सूक्ष्मबुद्धिमें प्रवेशकरे, बुद्धिमें चित्तको प्रवेशकरके फिर काल इन्द्र पर्वतके समान अचलहो अथवा कालका नाश करनेवाला होवे, इस संसार में यतीपुरुष चित्तकी शुद्धतासे पाप पुण्यको त्याग करताहै वह शुद्ध चिदात्म स्वरूप में नियतहोकर बड़ेसुखको भोगताहै, चित्तकी शुद्धिका यह लक्षण है कि जैसे स्वप्न में शयन और निर्वातस्थान में प्रकाशमान दीपक निश्चल होताहै इसीप्रकार अगले और पिछले समयपर आत्माको परमात्मा में संयुक्त करनेवाला अल्पाहारी अति शुद्धचित्त योगी परमात्माको आत्मा में देखताहै यह उपदेश पुत्रानुशासन वेदमें गुप्त बातहै यहकेवल अनुमानसे विदित नहीं होता न केवलशास्त्रसे जानाजाता है यह अनुभवसे प्राप्त होता है और आत्मज्ञानसे सम्बन्ध रखताहै सब धर्माख्यान और सब आख्यानोंमें

जो सारहै और कुछऊपर दशहजार वेदकी ऋचाओं को मथकर यह ज्ञान रूप अमृत ऐसे निकालाहै जैसे दहीसे मक्खन को और काठसे अग्निको निकालते हैं इसीप्रकार पुत्रके अर्थ यह ब्रह्मज्ञानियों का ज्ञान अच्छेप्रकारसे निकालागया है, यह पुत्रानुशासन नाम शास्त्रज्ञान स्नातकों के आगे कहना योग्य है और ऐसे पुरुषसे न कहना चाहिये जो इन्द्रीके विषयों से अशांतचित्त अवज्ञाकानेवाला वेदरहित उपदेशके अनुसार कर्मकर्त्ता न होकर निन्दकतासहित कुटिल प्रकृतिहो, और न्यायशास्त्रसे रहित अहंकारीको भी उपदेश न करना चाहिये, और बड़े शान्ततपस्वी दूसरेकी स्तुति करनेवाले प्रियपुत्र शिष्य और उपासकके लिये यहगुप्तधर्म उपदेश करना चाहिये इस ज्ञानको किसीसे विनापरीक्षा किये न कहा जाय यह ज्ञान रत्नजटित पृथ्वी से भी अधिक ब्रह्मज्ञानियोंके मतसे है इसीकारण यह अर्थ गोपनीयहै, जो दिव्य आत्मज्ञान महर्षियों से देखागया और वेदान्तियों से गायाजाताहै वह मैं तुमसे कहताहूं हेपुत्र जो तेरेचित्तमें दूसरीबातवर्त्तमानहै और उसमें जहां तुझे संशय है उसकोभी मैं कहूंगा २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ७३ ॥

## चौहत्तरवां अध्याय ॥

शुकदेवजी बोले कि हे भगवन् आप जिस ब्रह्मज्ञानको ठीक जानतेहो उसको मुझसे वर्णनकीजिये व्यासजीबोले कि हेतात पुरुषका जो अध्यात्म पढ़ाजाताहै उसको तुमसे कहताहूं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पांचों महाभूत चारोंप्रकारकी सृष्टिके जीवोंमें पृथक्२ ऐसे कल्पितहैं जैसे कि समुद्रमेंतरंगेंहोतीहैं, जैसे कि कछुआ अपने अंगोंको फैलाकरखैंचलेताहै उसी प्रकार पंचभूत देहरूपहोनेवाले पंचमहाभूतोंमें नियतहोकर नाश और उत्पत्ति रूपांतर दशाको उत्पन्न करतेहैं, छोटेतत्त्वोंके रूप सब जड़ चैतन्य जगत की उत्पत्ति प्रलयहोनेपर उसदेहके अन्तर्गत नियत तत्त्वसमूहों में लय होते हैं, हे तात सबजीवमात्रोंमें पंचमहाभूतहीहैं परन्तु इनमें ईश्वरने कुछअन्तर किया है कारण यहहै कि जिसकर्मकेहेतु रूपहोनेमें देहके त्यागने के समय जो ध्यान करताहै वही प्राप्त करताहै, शुकदेवजी बोले कि देहके बुद्धि इन्द्री आदि अंगों में जो अन्तर उत्पन्न किया है उसको किसप्रकार देखके अपने विषयों समेत इन्द्रियां किस गुणरूपयुक्त होती हैं और कैसे उनको देखना चाहिये व्यासजी बोले कि इसको क्रमसे ठीक २ मैं कहताहूं तुमसावधान होकर मुख्यसिद्धांतको सुनो, शब्द श्रोत्र और देहकेछिद्र यह तीनों आकाश से संयुक्त हैं प्राण, चेष्टा और स्पर्श यह तीनों वायुके गुणहैं रूप नेत्र और

जठराग्नि यह तीनप्रकारकी ज्योति कहीजातीहै, रस, रसनेंद्री और आर्द्रता यह तीनों जलके गुणहैं, सूंघनेके योग्य बस्तु, घ्राणेंद्री, और देह यह तीनों पृथ्वीके गुण हैं पंचभूतसे संबंध रखनेवाली यह रूपांतर दशा इंद्री समूहों के समेत बर्णनकी, बायुकागुण स्पर्श जलकारस, अग्निकारूप, आकाशका शब्द, पृथ्वी का गंध है मनबुद्धि और स्वभाव यह तीनों अपनी योनि से उत्पन्न होने वाले हैं, सतोगुण आदि से श्रोत्र इन्द्री आदि स्वरूप को प्राप्त होनेवाले वह तीनों शब्द आदिगुणों को उल्लंघन नहीं करते हैं जिस प्रकार इसलोक में कछुआ अंगों को फैलाकर खैंचलेता है इसीप्रकार बुद्धि इन्द्रियों के समूहको उत्पन्न करके फिर अपनेमें लय करती है, पैरके तालु ऐसे ऊपर और मस्तकसे नीचे जिस देह को देखता है इनदृष्टरूप कर्म्मों में बुद्धि-ही उत्तम कर्म्म कर्त्ता होतीहै अर्थात् मैंहूं यह अनुभव विषय बुद्धिका रूप है, बुद्धि बिषयों के रूपको प्राप्त कर्ता है और बुद्धिही इन्द्रियों के भी रूप को प्राप्त करती है वह मन समेत छः हैं, बुद्धिके न होने में इन्द्री और विषय कहां से प्रकटहों, मनुष्यों के देह में पांच इन्द्री और छठा मन कहाजाता है, बुद्धि को सातवां कहतेहैं फिर आठवां क्षेत्रज्ञ है, नेत्र दर्शन के निमित्तहै और मन संशयको करताहै बुद्धि निश्चय करनेको है क्षेत्रज्ञ सबका साक्षीहै, रजोगुण तमोगुण सतोगुण यह तीनों अपनी योनिसे उत्पन्न होतेहैं आशय यहहै कि चित्त और उससे उत्पन्न इन्द्री आदि सब त्रिगुणात्मक हैं, सब देव मनुष्या-दिक जीवमें समान हैं इन गुणोंको देखे और इनको जो प्रीतिसे संयुक्त बुद्धि में देखे उस अत्यन्त शांत और शुद्धको सतोगुण जाने, देह और चित्त में जो दुःख से संयुक्तहो उस स्थानपर जाने कि रजोगुण उत्पन्न हुआ, जो मोह से संयुक्त अज्ञानकाविषय होवे उस तर्करहित जाननेके अयोग्यको तमोगुण समझे, हर्ष, प्रीति, आनन्द समदर्शी होना, बुद्धिमान्‌की सावधानी यह सातोंके गुण सहेतुक और निर्हेतुक वर्त्तमान होतेहैं, अभिमान, मिथ्यावचन, लोभ, मोह, असंतोषयह रजोगुणके चिह्नहैं, यह भी सहेतुक और निर्हेतुक वर्त्तमान होते हैं, इसीप्रकार, मोह, भ्रांति, शयन, आलस्य अज्ञानता यहसब इसीप्रकार सामने वर्त्तमान होते हैं यह तमोगुण जानने योग्यहैं, २५॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मेचतुस्सप्ततितमोऽध्याय. ७४ ॥

## पचहत्तरवां अध्याय ॥

इसप्रकार बुद्धिका स्वाभाविक त्रिगुणात्मक होना कहकर कर्म्म से उत्पन्न होनेवाले तीन प्रकारों को कहते हैं, व्यासजी बोले कि चित्त नानाप्रकारके पदार्थों को उत्पन्न करता है बुद्धि उनको निश्चय करनेवाली है, हृदय अनु-

कूल और प्रतिकूल को जानता है यह तीन प्रकारके लिखेहुये कर्म्म हैं इसी कारण बिषय इन्द्रियों से सूक्ष्म हैं और बिषयोंसे सूक्ष्म चित्त और चित्त से सूक्ष्म बुद्धि और बुद्धिसे सूक्ष्म आत्माको माना है, मनुष्यकी व्यवहारिक आत्मा बुद्धि है, जब बुद्धि आत्मामें आपही बिपरीत दशाको करती है तब वह चित्तरूप होतीहै, इन्द्रियोंके पृथक्२ बिषयहोने से बुद्धिही रूपांतरकरतीहै इसकारण वह सुननेवाली बुद्धि श्रोत्रइन्द्री को प्रकाश करती है और जो स्पर्शकरती है वह स्पर्शेन्द्री कहीजातीहै, देखनेवाली चक्षुरिन्द्री होतीहै और रसको प्राप्त करके रसनेन्द्री होती है और सूंघनेवाली होकर घ्राणइन्द्री हो जाती है यह सब पृथक् २ रूप बुद्धिही प्राप्त करती है इनको इन्द्री कहते हैं उनमें दृष्ट न आनेवाला चैतन्य आत्मा ईश्वररूप नियत होताहै, पुरुषमें नियत होनेवाली बुद्धि तीनों सात्विकी आदि भावों में वर्त्तमान होती है, कभी हर्ष और कभी शोकमें होकर इसलोक में कभी सुख दुःखसे संयुक्तनहींहोती, यह भावात्मक बुद्धि उन तीनों भावों को उल्लंघन करके ऐसे वर्त्तमान होतीहै जैसे समुद्र लहराता हुआ किनारेको, जब इच्छावान् होती है तब मनरूप होती है बुद्धि में इन इन्द्री गोलकोंको गुप्त और परस्परमें पृथक् जाने, बुद्धि से सम्बन्ध रखनेवाली सब इन्द्रियां क्रम क्रमसे सबकी सब विजय करने के योग्य हैं, जो इन्द्री जब बुद्धिके साथ होती है तब पहिले निर्विभाग और एकरूप होनेवाली बुद्धि भी सतोगुण आदि भावों के साथ संकल्परूप चित्त में वर्त्तमान होती है तब बुद्धि से रक्षित इन्द्री संकल्प से उत्पन्न होनेवाले घट को अपना बिषयरूप बनाती है इसी प्रकार क्रम पूर्वक रूप आदि बिषयोंको भी जानों परन्तु एक समयही नहीं करतीहै, इन तीनों में जो भाव वर्त्तमान होते हैं वह विषयों के अनुसार ऐसे प्रकट होते हैं जिसप्रकार रथकी नेमि अर्थात् चक्रधारा रथके साथही होती है बुद्धि आदि उन सब सत्त्व आदि के रूप हैं परन्तु बिषय नहीं हैं, विषयों के अलिप्त होने पर किस प्रकार इन्द्रियों से उनकी समीपता और उनसे घट आदि का ज्ञान होय इस शंका को कहते हैं कि बुद्धि तीनप्रकारकी है एक तो सीपमें चांदीका प्रकाश दूसरे घट आदि के ब्यवहारसे संबंध रखनेवाली तीसरे ब्रह्मसे संबंध रखनेवाली इसी से वह बुद्धि सत्य, सत्यतर, सत्यमत, इनतीन नामोंसे प्रसिद्धहुई उनमें सत्यतर नाम बुद्धि ब्रह्मरूपहै इससे चित्त इनस्थानोंके अनुसार घूमनेवाली स्वतन्त्रता से उदासीन ब्रह्मरूप बुद्धिरूप इन्द्रियों के द्वारा बिषयको ब्रह्मरूप करे अर्थात् ब्रह्मके छिपाने वाले अज्ञानका नाशकरे है इस अज्ञान के फलको कहते हैं, यह जगत् ऐसे स्वभाव वालाहै अर्थात् बुद्धिसे कल्पितहै इस बातको जानता मोहको नहीं पाताहै आशय यहहै कि जैसे जागने वाला पुरुष स्वप्नादि के

धनके नाशमें शोकनहीं करताहै न प्रसन्न होताहै किन्तु सदैव पृथक् रहताहै, इन्द्रियोंके विषयों में आसक्त अपवित्रचित्त पुरुषको इन्द्रियों के द्वारा आत्म दर्शन होना असम्भवहै जब चित्तकेद्वारा उन इन्द्रियों की लगामको अच्छे प्रकार से पकड़ताहै तब इसका आत्म ऐसे प्रकाश करताहै जिस प्रकार दीपकसे घट आदिरूप प्रकाश होते हैं उसी प्रकार इसको भी जानो, जैसे कि जलचारी पक्षी जलपर घूमताहै और उसमें लिप्तनहीं होता है, उसी प्रकार विमुक्त आत्मा योगी प्राकृति पाप पुण्यसे लिप्त नहीं होता है इसी प्रकार सबमें चित्त न लगाने वाला ज्ञानी पुरुष विषयों को भोगताहै और दोषों से लिप्त नहीं होता है आशय यह है कि जैसे ज्ञानी पुरुष पुत्रादि के नाश में शोक आदिको नहीं करता है इसी प्रकार देहसे असंग योगी देहके कर्म्मोंसे लिप्त नहीं होता है, पहिले किये हुये कर्म्मों को त्याग करके सब जीवों के आत्मारूप और गुणसमूहमें चित्त न लगानेवाले जिस योगीकी प्रीति सदैव आत्मामें है, आत्माकभी बुद्धि और गुणोंकी ओर प्रवृत्त होता है, गुण तो आत्माको नहीं जानते परन्तु आत्मा गुणोंको अच्छे प्रकार जानता है वह निश्चय गुणोंका उत्पन्न करनेवाला और साक्षीहै इनसूक्ष्म बुद्धि और क्षेत्रज्ञका यह अन्तर जानो, कि इनमें एक तो गुण उत्पन्न करता है और दूसरा नहीं पैदाकरताहै वह दोनों स्वभावसे पृथक् और सदैव संयुक्तहैं, जिसप्रकार मछली जलसे पृथक् और संयुक्त होतीहै उसी प्रकार वह बुद्धि और क्षेत्रज्ञ दोनों संयुक्तहैं, जैसे कि मूंजमें सींक पृथक् और युक्त भीहै उसी प्रकार यह दोनों साथ और एक दूसरे से संयुक्तहैं २५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मेपंचसप्ततितमोऽध्यायः ७५ ॥

## छिहत्तरवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि बुद्धि विषयों को उत्पन्न करती है और ईश्वर क्षेत्रज्ञ विपरीत दशा करने वाले सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों को उदासीन के समान देखताहुआ ऐश्वर्य पदपर नियत होताहै वह सर्व स्वभावयुक्त है जो इनगुणोंको पैदाकरताहै, जैसे कि मकड़ी सूत्रको पैदाकरतीहै इसी प्रकारका गुण वह भी रखनेवालाहै, तत्त्वज्ञान से गुप्त होनेवाले यह गुण लौटतेनहींहैं उनकी फिर वर्त्तमानता नहीं पाईजातीहै, आशय यहहै कि रस्सी में सर्पका ज्ञान ध्यानसे दूरहोता है, फिर कभी रस्सी में सर्पकी वर्त्तमानता नहीं होती इसी प्रकार यहगुणभी नष्ट होजातेहैं, कोई ज्ञानी पुरुष इसप्रकार से निश्चय करतेहैं और दूसरे न्यायशास्त्रज्ञ इनगुणों के लौटनेको निश्चयकरते हैं, इन दोनों को विचारकर बुद्धि के अनुसार निश्चयकरे इसी बुद्धि से आत्मा में

आश्रयकरे,आत्मा आदि अन्तरहितहै सदैव मत्सरता रहित मनुष्य उसआत्मा को जानकर क्रोध हर्ष रहित होकर विचरे इसप्रकार चिन्तारूप कर्म्म से बँधी हुई बुद्धिरूप हृदय की गांठ को काटकर निस्संशय जीवन्मुक्त पुरुष शोच से रहित सुख पूर्व्वक निवास करे, जैसे कि पूर्ण बहती नदी में गिरनेवाले अनपैराक पुरुष डूबने और उछलने से शोकको पाते हैं इसी प्रकार इस लोकको भी जानो परन्तु बुद्धिमान् तत्त्वज्ञ पुरुष थल में विचरता शोकसे रहित होता है इसी प्रकार जो पुरुष अपनी आत्माको आनन्द स्वरूप जानता है वह मनुष्य इस प्रकार से सब जीवों का उत्पत्ति स्थान ब्रह्मकी लय को जानकर और लौटपौटको अच्छीतरह विचारकर अर्थात् ईश्वरजानकर अद्वितीय सुखको पाताहै मुख्यकर जन्मपानेवाले और शास्त्रोक्तआचारवाले ब्राह्मणका यह पूर्ण आत्मज्ञान मोक्षरूप सुखको प्राप्तकरनेवालाहै, इसको जानकर पाप पुण्य से पृथक्होता है, ज्ञानीका दूसरालक्षण कहा है, इसकोजानकर ज्ञानी लोग कर्मों से निवृत्तहोकर मुक्तहोतेहैं, परलोकमें जो अज्ञानियोंका बड़ाभय है वहज्ञानियों को नहीं होताहै, ज्ञानीकी जो सनातनगतिहोतीहै उस से अधिक किसी कीनहींहोती है मनुष्य दोषोंसेयुक्त स्त्री आदि वस्तुके भोगकी निन्दा करते हैं और उस उस वस्तु को देखकर शोचकरते हैं उस स्थानपर शोच न करनेवाले ज्ञानियोंको देखो जिन्होंने उन हर्ष शोक को क्रम पूर्वक जानाहै, जो फलकी बासना रहित कर्म्म को करताहै वह उस कर्म्मका नाश करता है और जो पूर्व्व में कियाहै, वह दोनों उस कर्म कर्त्ता ज्ञानी के प्रिय अप्रिय को इसलोक में उत्पन्न नहीं करते हैं १४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषट्सप्ततितमोऽध्यायः ७६ ॥

## सतहत्तरवां अध्याय ॥

शुकदेवजी बोले कि इसलोक में धर्म्मोंमें उत्तम महाश्रेष्ठ ब्रह्मविद्याका प्राप्त करानेवाला जो धर्म्म है उस को आपकहिये व्यास देवजी बोले कि ऋषियों का कियाहुआ और सब धर्म्मों से श्रेष्ठ प्राचीन धर्म्मको तुमसेकहताहूं तुम चित्त से उसको सुनो, जैसेपिता बालक पुत्रोंको स्वाधीन करताहै उसीप्रकार बुद्धि और उपायसे उन इंद्रियोंको एकाग्र करे जो कि दुखदाई और सब ओर से दौड़ने वालीहैं, मन और इन्द्रियों की एकाग्रतामें तपही उत्तम है और सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठतरहै वह धर्म्म उत्तमकहाजाताहै कि उनसब इंद्रियों को जिनमें छठामन है बुद्धिसे स्वाधीन करके आत्मासे तृप्त और बहुत चिंताको न मानकर नियत होजाय, जब बाह्याभ्यंतर अर्थोंसे रहित इन्द्रियां स्थान ब्रह्ममें नियतहोंगी तब तुम बुद्धि के द्वारा सनातन पर-

मात्माको देखोगे, जो ब्राह्मण महात्मा और ज्ञानी हैं वह उस उपाधि रहित सबके आत्मा परमात्मा को देखते हैं, जिसप्रकार फूलफल से युक्त बहुत शाखावाला वृक्ष अपनी दशाको नहीं जानता है कि मेरे फूलफल कहां हैं इसीप्रकार बुद्धिभी नहीं जानती है कि मैं कहां से आई और कहां को जाऊंगी और दूसरा सबका देखनेवाला अंतरात्मा है वह देहके भीतर प्रकाशमान् ज्ञानदीपक से आत्मा को देखता है तुमसर्वज्ञ होकर आत्म ज्ञानसे आत्माको देखकर उपाधिसे पृथक् होजाओ, तुमइसलोक में ब्रह्मज्ञान को पाकर पाप रहित तपसे पृथक् कांचलीसे छुटेहुये सर्प की समान सब पापोंसे निवृत्त हो जाओ, सब ओर बहुत प्रकार से बहनेवाली और लोकों को बहानेवाली पांचइन्द्री रूपगृह और चित्तरूप संकल्पवाले किनारेवाली लोभमोहरूप तृण युक्त कामक्रोध रूपसर्प और सत्यतारूप तीर्थवाली मिथ्यारूपी बचनोंसे व्याकुल क्रोधरूप कीचवाली अव्यक्त से प्रकाशित और अपवित्रचित्त पुरुषों से कठिनता पूर्वक पारहोनेवाली नदियों में उत्तम संसाररूपी नदीको अच्छी तरह से तरो यह संसार रूपीनदी अव्यक्त से प्रकट तीव्रधार अपवित्र चित्त पुरुषों से कठिनता पूर्वक पारहोने योग्य कामरूपी ग्राहसे व्याप्त संसार सागर में वर्त्तमान बासनारूप पाताल से अगम्य अपने जन्म से प्रकट होनेवाली जिह्वारूप भ्रमरचक्र से भयानक जिसको कि बुद्धिमान् ज्ञानी धीर पुरुष तरते हैं उसका तरनेवाला सब ओर से मुक्तज्ञानी पवित्र सर्वज्ञ और आत्मज्ञ उत्तम बुद्धि में नियत होकर ब्रह्महीहोगा सब संसार से उत्तम रीति से तरने वाले निष्पाप बिमलबुद्धि क्रोधरहित दयायुक्त प्रसन्नता पूर्वक तुम इन ज्ञानियोंको ऐसे देखो जैसे कि पर्वत पर चढ़ा मनुष्य पृथ्वी के वर्त्तमान जीवोंको देखता हैं, फिर सब सृष्टिके उत्पत्ति और लयके स्थानरूप ब्रह्मको देखोगे धर्म्मध्वज तत्त्वदर्शी ज्ञानीमुनियोंने इस धर्म्म को जीवोंके उपकारार्थ बहुत उत्तमजाना है, सर्वव्यापी आत्मा का यह ज्ञान जो कि पुत्र को उपदेश कियागया वह सावधान हितकारी और अपने आज्ञाकारी पुरुष को उपदेश करना योग्यहै, हे तात यह आत्मज्ञान बड़ा गोपनीयहै जिस आत्मसाक्षीको मैंने बहुत स्पष्ट और यथार्थ वर्णनकियाहै, यह हर्षशोक रहित भूत भविष्यका उत्पत्तिस्थान और उनका रूप आत्मा स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीनों में कोई नहीं है, इसको स्त्री पुरुषमेंसे कोईभी जानकर पुनर्जन्मको नहींपाताहै, यह योगधर्म आत्म सिद्धी के निमित्त कहाजाताहै, हे पुत्र जैसे सब मत मुक्ति में समाप्त होते हैं उसीप्रकार यह मेरे वचनहैं—वह मत फलोंके अन्तर होनेसे होतेहैं और बाणी से परे होने से नहीं भी होतेहैं इसी कारण सब तान्त्रिकों को यह शास्त्र स्वीकार करना योग्यहै, हे उत्तम पुत्र इसी हेतु से प्रीतिमान् शान्त चित्त भक्ति-

मान् पुत्र से प्रश्न कियाहुआ पुरुष इस शास्त्रको जिसको कि पिताने पुत्र के सन्मुख वर्णन किया यथार्थ वर्णन करे २५ ॥

इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ७७ ॥

# अठहत्तरवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि गन्ध रस आदि सुखों की इच्छा न करे और उनके सिवाय मान कीर्त्ति और यश को भी नहीं चाहै ज्ञानी ब्राह्मणका यही व्यवहार है, सेवा करने का इच्छावान् ब्रह्मचारी सब वेदोंको पढ़े जो पुरुष यजुर्वेद और सामवेद की ऋचाओं को जानता है वह ब्राह्मण उत्तम पदवाला नहीं है किन्तु जो सब जीवों में सजातियों के समान सर्वज्ञ और सर्व वेदज्ञ अनिच्छावान् अर्थात् ज्ञानसे तृप्तहै वह कभी नहीं मरताहै अर्थात् मुक्तहोकर जीवताही जीवन्मुक्त होताहै इस अनिच्छासे वह ब्राह्मण प्रथमाधिकारी अवश्यहै, नानाप्रकार के इष्टी और पूर्ण दक्षिणावाले यज्ञोंको करके दया और अनिच्छाके अभ्यास बिना किसी दशा में भी ब्रह्मभावको नहीं प्राप्त होसक्ताहै; जब यह निर्भय होताहै और जीवमात्र इससे अभय होते हैं और इच्छा और शत्रुता रहित होता है तब ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, जब जीवमात्र में मन बाणी और कर्म से हिंसा रहित होताहै तब ब्रह्मभावको पाता है, अकेला कामही बंधनहै यहां दूसरा बंधन नहीं है काम बंधन से छूटनाही ब्रह्मभाव के योग्य समझाजाताहै, जैसे काले बादल से चंद्रमा अलग होता है इसीप्रकार काल से अलग रजोगुण से पृथक् धैर्यमान काल को चाहना अपने धैर्यसे वर्त्तमान होताहै, जैसे कि जल सबओर से पूर्ण निश्चल समुद्र में प्रवेश करते हैं इसी प्रकार सब इच्छा जिसमें प्रवेश होतीहैं वह शान्तीको पाताहै अर्थ चाहनेवाला शान्ती नहीं पाता है, वही सत्य संकल्प और संकल्प से होनेवाली कामनाओं से शोभित है न कि स्वर्ग आदि का चाहने वाला क्योंकि वह देहाभिमानी कामनाओं से स्वर्गादिकों को पाताहै तात्पर्य यहहै कि थोड़े काल पीछे स्वर्ग से पतित कियाजाताहै, वेदका रहस्य हितकारी वचनहै और उसका शिर गुप्त शान्तरूप प्रकट है और शान्त चित्त की प्रकटता दानहै और दान का रहस्य तपहै, निर्गुण ब्रह्मको पाकर सब गुप्त और प्रकट संसार के उल्लंघन करनेवाले और परमपद पानेवाले को फिर आवागमन नहीं होताहै २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ७८ ॥

# उनासीवां अध्याय ॥

व्यासजी बोले कि मानापमान औ अर्थ धर्मादि गुणों का करता पुरुष जो मोक्षका चाहनेवाला होय तब उस शिष्यको पहले यह बड़ा आत्मज्ञान गुणवान कहनेवाले से सुनना योग्य है, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पांचवीं पृथ्वी भाव, अभाव, काल यह आठों इन पंचतत्त्वों से मिले हुये सब जीवों में नियत हैं देह के रूप के प्रकट करनेवाले वेदवचनों का जानने-वाला पुरुष देह के छिद्रों को आकाश जानें उस आकाश का रूप श्रोत्र इन्द्री को जानें और उसके विषय को शब्द जाने, चलना वायुका रूप है प्राण अपान उसके भेद रूप हैं स्पर्श को इन्द्री और विषय जानें. ऊष्मा अन्नकी परिपक्कता दीपक आदि का प्रकाश सन्तप्तता और पांचवां नेत्र यह सब गुण उसके रूप हैं और यही रक्त श्वेतादि रूप उसका विषय है प-वित्र करना और पृथ्वी में प्रवेशकर उसके अंगों के जोड़को निर्बल करके हलका रहनाऔर रस यह तीनों जलके गुण कहेजाते हैं रुधिर मस्तक और जो जो आर्द्रवस्तु हैं उनको जलरूप जानो, जिह्वा रसनेन्द्री कहाती है और रस जलोंका गुणहै और कठोर वस्तु हाड़ नख आदि डाढ़ी मूंछ शिरकेश शिरा और स्नायु नाम नाड़ी पृथ्वी से सम्बन्ध रखनेवाली धातु और नाक नामसे प्रसिद्धघ्राणेंद्री यह विषयहैं और गन्ध नाम पृथ्वीरूप जानना चाहिये, पिछले सबतत्त्वों में पहले तत्त्वों के गुणहैं अर्थात् आकाशका शब्द गुण, वायुमें शब्दस्पर्श, अग्निमें शब्द, स्पर्श रूप जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पृथ्वीमें गन्ध समेतपांचहैं इसीप्रकार सब प्राणियोंमें पहले अविद्या, काम, कर्म्म, गुण, कहेहैं, मुनियोंने पञ्चतत्त्वोंकी उत्पत्तिको जाना है इनमें नवां-चित्त और दशवींबुद्धिहै ग्यारहवां आत्माहै वहअनन्त सर्वरूप और सर्वोत्तम कहा जाताहै, बुद्धि निश्चयात्मकहै और चित्त संशयात्मक है वह क्षेत्रज्ञ नाम जीवकर्मों के अनुमान से जानाजाताहै, जो पुरुष इनकामरूप भावोंसे संयुक्त आत्मा को देखता है और वास्तव में सबसे अलिप्त जानता है वह सकल कर्म्म करता नहीं है तपका रहस्य त्याग, त्यागका रहस्य सुख, सुखका रहस्य सर्ग अर्थात् सगुण ब्रह्मभाव है, सर्गकारहस्य शम है जो संतोष के द्वारा बुद्धिकी निर्मलता को चाहै वही बुद्धि शान्ति का लक्षण है क्योंकि वह शोक सन्देह को लोभके साथ संतप्त करके निर्बल करतीहै, शोक मोह और मत्सरतासे पृथक् शांत शुद्ध चित्त इनछओं गुणोंका लक्षण रखनेवाला ज्ञान से तृप्त मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्तहोताहै, इसप्रकार मुक्त पुरुषके लक्षणकोकहकर मुक्तिके साधनको कहते हैं—जिनपुरुषोंने सतोगुण युक्त सत्यता शांत चित्तता

दान, तप, त्याग, शम, इनछः गुण और श्रवण, मनन, निदिध्यासन और शास्त्र,अनुमान,अनुभव यह तीनों इच्छाओंसे युक्त और देहमें नियतआत्मा को देहकी वर्त्तमान दशामें जाना है वह इस मुक्त लक्षण गुणको प्राप्तहोकर देहमें उस अजन्मा अविनाशी, स्वभाव सिद्ध और ब्रह्मको प्राप्त होने वाले अविनाशी सुखको पाते हैं अथवा पक्षांतर में उपनिषद् नाम विद्याको प्राप्त होनेवाला पुरुषभी ध्यान आदि के क्रम से अविनाशी सुखको पाता है, वह उपनिषद् विद्या सदैव से अविनाशी आदि अनेक गुण रखनेवालीहै, केवल शास्त्रकेही ज्ञानसे मुक्ति नहीं होती किन्तु दूसरे साधनकी भी आवश्यकता है उसको कहते हैं, यह पुरुष चित्तको कर्म रहितकर सब ओर से नियत करके जिस तुष्टिताको पाता है वह दूसरे प्रकार से प्राप्त करना कठिन और असम्भव है, जिस ब्रह्मके कारण बिना भोजन के निर्धन भी तृप्त होताहै और संसार से वैराग्यवान् भी बलवान् होता है जो उसको जानताहै वहीवेदज्ञ है, जो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सावधानी से इन्द्रियों को रोककर ध्यानमें नियत होताहै वह आत्मा से प्रीति रखने वाला कहा जाता है परमतत्त्वों में समाधि करनेवाले अनिच्छा युक्त नियत पुरुषको सब ओरसे सुख मिलताहै, पंचतन्मात्रा, बुद्धि, महत्तत्त्व और प्रधान समूह और स्थूल तत्त्व ग्यारह इन्द्री और इंद्रियोंके विषय समूहों के त्याग करनेवाले मुनिके सुखसे दुख ऐसे दूर किया जाताहै जैसे कि अंधकार सूर्यसे दूरहोताहै, उस कर्म के उल्लंघन करनेवाले और गुणोंके ऐश्वर्य्यसे पृथक् विषयोंसे अलिप्त ब्राह्मण को जरामृत्यु नहींहोतीहै इसीसे करुणायुक्त सबओरसे वैराग्यवान् रागद्वेषसे रहित होताहै, अर्थात् आत्मतत्त्वका जाननेवाला इच्छारहित होताहै १२॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोनाशीतितमोऽध्यायः ७९ ॥

# अस्सीवां अध्याय ॥

इसप्रकारसे पंचतत्त्व अविद्याकाम कर्मचित्त बुद्धि इनदशरूप युक्तदेहहै इस केविशेष अनन्तआत्माहै वहभी लिंगात्माहै इसभ्रमके निवृत्तकेअर्थ उसकोभी दशोंमेंही वर्त्तमानसिद्ध करतेहैं—व्यासजी बोले कि स्थूल शरीरसे पृथक्जीव को सूक्ष्म शरीरवालाकहा इसहेतुसे शास्त्रज्ञ योगी उसलिंगात्माको शास्त्रोक्त कर्मसे समाधिमें देखतेहैं अर्थात् उसका साक्षात्कार करतेहैं जैसे कि सूर्यकी किरणें एकबारही सब जगह घूमतीहैं और नियत रहती हैं और गुरूकी युक्ति से दृष्टिपड़तीहैं इसीप्रकार जीवन्मुक्त लोग प्राचीन स्थूल शरीरको त्यागकर सूक्ष्मरूप से पृथ्वी पर घूमतेहैं, जैसे कि जल में सूर्य का किरण मण्डल जिस रूपवाला विदित होताहै उसीप्रकार सजीव देहों में सत्वप्रधान लिंग उसीरूप

वाला दृष्ट आताहै, और वह योगी उसीको देखता है, जितेन्द्री और लिंग नाम देहके जाननेवालेयोगी पुरुष अपने लिंग देहसे उन स्थूल देहोंसे पृथक् सूक्ष्म शरीर रखनेवाले जीवोंको देखते हैं वह योगी परकाय प्रवेशनादि कर्म करनेको समर्थ होते हैं, योग ऐश्वर्य जो कि जगत् कारण प्रधानका आत्मा रूपहै उससे निवृत्त और कर्मसे दीखनेवाले रजोगुणको त्याग करनेवालेसोते जागतेहैं उनसब योगाभ्यासी पुरुषोंके स्वाधीन वह लिंग शरीर सदैवहोताहै जैसा रात्रिमें वैसाही दिनमें स्वाधीनताको करतेहैं उनयोगियोंका जीवात्मा सदैव गुणोंके कार्य महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा नाम सातसूक्ष्म गुणों समेत इंद्रलोक आदि में आनेजाने वाला और तीनों काल में बिनाशवान व्यवहारसे अजर अमर होताहै,इसप्रकार योगियोंको सूक्ष्मशरीरका अपरोक्ष ज्ञान कहागया वह अज्ञानियोंको भी प्राप्तहै, चित्तबुद्धिसे बिजय कियाहुआ जीवात्मा स्वप्नावस्था में भी अपने और दूसरेके शरीर जो कि स्थूल शरीरसे पृथक् हैं उनको जानताहै और सुख दुखोंका भी ज्ञाताहै परन्तु वहां भी सुख दुःखोंको पाकर क्रोध लोभसे दुखीहोता है और बहुत अर्थवान होकर प्रसन्न चित्तहोताहै तब पुण्यभी करताहै और जीवतासा दीखताहै, प्रत्यक्षहै कि उस जठराग्निके भीतर बर्त्तमान् होकर गर्भ रूपको धारण किया और दशमहीने तक माताके उदर में निवासी होकर भोजन की बस्तु के समान पेटमें नहीं पचताहै, तमोगुण रजोगुण से युक्त गिरे हुये मनुष्य उस परमेश्वर के अंश हृदयस्थ जीवात्मा को शरीरों के भीतर नहीं देखते हैं तो आत्माकी प्राप्ति कैसे होय उसका वर्णन करतेहैं, उस आत्माको चाहनेवाले पुरुष योगशास्त्र को जानकर सूक्ष्म और प्रलयमें भी अबिनाशी कारण नाम शरीरको उल्लं-घन करतेहैं आशय यह है कि योग से तीनों देह त्याग करनेवाले योगियों को आत्माकी प्राप्तिहै, सांडिल्यऋषि ने पृथक् रूपवाले चार आश्रमके कर्मों के क्रम में समाधि के योग्य सब वृत्तियों के शान्ती रूप इसयोग का बर्णन कियाहै, सातसूक्ष्म अर्थात् इन्द्री, बिषय, चित्त बुद्धि, महत्तत्त्व, अव्यक्त,पुरुष, आत्माको और छः अंगयुक्त महेश्वरको जानकर और त्रिगुणात्मक ज्ञानका रूपान्तर इस जगत्को जानकर गुरू, वेद बचनों के बिचार से परब्रह्मको सा-क्षात्कार करताहै १५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे अशीतितमोऽध्यायः ८० ॥

# इक्यासीवां अध्याय ॥

ब्यासजी बोले कि इसप्रकार सूक्ष्म स्थूल देहों से पृथक् आत्मा को कहकर मूल अज्ञानसे भी उसकी पृथक्ता बर्णन करते हैं कि हृदयमें काम

रूपवृक्ष अपूर्व है जो मोहके समूहरूप बीजसे उत्पन्न क्रोध और अभिमान रूप शाखाओंसे युक्त इच्छाकर्मरूप थांवले में वर्त्तमान अज्ञानरूप मूल और प्रमादरूप जल से सींचाहुआ है उसमें निन्दारूपपत्ते और पूर्व पापही सार है मोहचिन्ता शोकआदि डालियां भयरूप अंकुर और लोभरूपी मोहिनी लता ओंसे आच्छादितहै लोहमयी पाशमें बँधाहुआ महालोभी उसकेफलके चाहनेवाले मनुष्य उसफल देनेवाले बड़े वृक्षको चारों ओरसे घेरकर समीप बैठतेहैं,जो पुरुष उनपाशोंको आधीन करके उसवृक्षको काटताहै वह उन दोनों प्रकारके दुःखोंको त्यागकरताहै विषय से सम्बन्ध रखनेवाला सुखभी दुःखहै इसकारण दुःखको द्विवचन कहाहै, जिस कारणसे अज्ञानी उसवृक्षको बढ़ाताहै उसीकारणसे वहइसप्रकार उसको मारताहै जैसेकि विषकीगांठ रोगीको मारतीहै, उसदृढ़ बीजवालेवृक्षकीजड़ निर्विकल्पसमाधिरूप उत्तमतेजकेद्वारा काटी जातीहै, जो पुरुष केवलकामकी निवृत्ति और कामशास्त्रके बन्धन को जानताहै वहदुःखोंको उल्लंघनकरवर्त्तमानहोताहै, देहपुर और बुद्धिस्वामी और उस निश्चयात्मक बुद्धिकामंत्री चित्तहै वह शरीरमें नियतहै, चित्तरूप मंत्रीसे बसाये गये इन्द्री रूप पुरवासी हैं और इन्द्रियोंका विषय धनहै उनइन्द्री रूप पुरवासियों के पोषणके अर्थ दान आदि बड़ेयज्ञोंका प्रारम्भहै उसकर्मकेप्रारम्भमें दो दोषभयकारी हैं जो कि तमोगुण रजोगुणनाम हैं अर्थात् वह राजस, तामसअहंकार कर्मफल सुखदुःखको जैसे मंत्रीचित्त ने उत्पन्न कियाहो वैसे भोगते हैं, यह चित्त बुद्धि अहंकार इसदेहरूपी पुरके अधिपति हैं और तीनों उस सुख आदि रूप धनको पर स्त्री भोग आदिकेद्वारा भोगते हैं उस दशा में अजिता बुद्धि भी चित्तके समान दोषों से लिप्त कहीजाती है, पुरबासी भी चित्तरूप मंत्रीसे भयभीत होतेहैं तब उनकी दृढ़चित्तताभी नष्टहोजातीहै और दोषवान् बुद्धि भी जिसधन पुत्रादि अर्थको अपना हितकारी निश्चय करतीहै वह अर्थ दुखदायी होकर नाश होजाताहै, नाशवान् अर्थभी दुःखका देनेवालाहै उसको सुनो कि जब चित्त बुद्धिकेद्वारा धनआदिको उनकेनाश होनेके पीछे शोचकर यादकरता है तबवह चित्त महापीड़ावान् होताहै, जब चित्त बुद्धिसे पृथक् होताहै तब केवल चित्तकहा जाताहै परन्तु बास्तवमें वही बुद्धिहै इसीहेतु से चित्तके योगसे बुद्धि में भी दुःखसुखहोते हैं, अनात्मारूपबुद्धि और चित्तके दुःखमें आत्माकी क्याहानिहोतीहै इसको बिचारकरकहतेहैं—उस बुद्धि में प्रतिबिम्बरूपसे नियतइसआत्माको केवल रजोगुणही व्याप्तकरता है वह रजोगुण दुःखरूप फलकादाता है इसकारण वह चित्त रजोगुण से मित्रता करताहै अर्थात् प्रवृत्ति के सन्मुख होताहै और उन पुरबासीलोगों को पकड़कर रजोगुण के आधीन करता है १४ ॥ इत्येकाशीतितमोऽध्यायः ८१ ॥

# अठ्यासीवां अध्याय ॥

इसप्रकार संसाररूपी कारागृहसे मोक्ष होने के लिये व्यासजीकी कहीहुई युक्तिके कहनेको भीष्मजी उद्यतहुये—भीष्मउवाच—हे निष्पापपुत्र व्यासजी के मुखसे निकलाहुआ चैतन्य आत्माकी उपाधिरूप आकाशादि तत्त्वों का बड़ा विचार तुम बड़ी श्लाघा से सुनो, देदीप्य अग्निके समान प्रकाशित अज्ञान रहित भगवान व्यासजी ने उन अज्ञान ढके धूमवर्ण शुकदेवजी से कहा कि हे पुत्र इसकारण से मैं निश्चय किये हुये शास्त्र को कहताहूं कि निश्चलता, गुरुत्व, कठिनत्व, अन्नादि की उत्पत्तिस्थान, गन्ध अपनी प्रबलतासे देहादि की वृद्धि करना गन्ध के प्राप्ति की सामर्थ्य एकत्र होकर दृढ़ होना, मनुष्यादि का रचास्थान और पंचभूत सम्बन्धी चित्त में जो धैर्य का भागहै यहसब पृथ्वी सम्बन्धी गुणहैं—शीतलता, आर्द्रता, जारीहोना, सचिक्कणता, शोभा, जिह्वा अर्थात् रसनेन्द्री की चेष्टा, बरफ आदि जल विकार, तन्दुलादि पाक यह सब जल सम्बन्धी गुणहैं—स्पर्श के योग्य होना, अग्नि का प्रकाश, ऊष्मा अन्न का परिपाक, शोक, रोग, शीघ्रगामिता, तीव्रता, ऊपरका बराबर जाना, यह सब अग्नि सम्बन्धी गुणहैं—शीत उष्ण से रहित स्पर्श, वचन इन्द्री के गोलक, गमन में स्वतंत्रता, पराक्रम, शीघ्रता, छूटना, स्वासका आना जाना, प्राणरूपसे चैतन्यकी उपाधिरूप होना, जन्म, मरण यह सब वायु सम्बन्धी गुण हैं—शब्द, व्यापकता, छिद्रत्व, आश्रयत्व, अनन्याश्रयत्व, स्पर्श रहित अव्यक्तता, एकदशासे दूसरी दशा में न होना,— यह आकाश सम्बन्धी हैं यह सब पचास गुण पांचों तत्त्वों से प्रकट हैं चित्त में नौ गुण हैं अर्थात् मराडन करना, खराडन करना, वार्त्तालाप में प्रवीणता, स्मरणता, भ्रांति, मनोरथ वृत्ति, क्षमा, वैराग्य, राग, द्वेष आदि और व्याकुलता, प्रिय अप्रियता का नाश, निद्रा रूप वृत्ति, समाधि से चित्त का रोकना, संशय प्रत्यक्ष आदि प्रमाण की वृत्ति इन पांचो को बुद्धि के गुण जानो, युधिष्ठिर ने कहा कि बुद्धि किस प्रकार से पांचों गुण रखने वालीहै और कैसे पांचों इन्द्रियों के गुणहैं हे पितामह इनसब मोक्षज्ञानों को मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि तत्त्वोंके गुण पचास और बुद्धि के पांच ५५ पचपनहुये जो कि पांचोंतत्त्व भी बुद्धिकेही गुण हैं इससे सबको इकट्ठा किया तो ६० साठहुये वह सबगुण चैतन्य से संयुक्त हैं पंचतत्त्व और उनकी बिभूतियों को अबिनाशी ब्रह्मसे मिला हुआ कहते हैं हे पुत्र यहां उसको सदैव नहीं कहतेहैं अर्थात् जैसे सीपीमें चांदीहोना नित्यनहींहै इसी प्रकार केवल चैतन्य के देखने के समय से विश्वकी उत्पत्ति है, इसीकारण

चैतन्यकी सदैव एकदशा होनेपर उससे उत्पन्न होनेवाला जगत् रस्सीके सर्प की समान मिथ्याहै, ब्रह्म अद्वैत सिद्धहोताहै; यहऊपर वर्णन कियाहुआ वेद वचनके समानहै इसको कहतेहैं, हे पुत्रप्रथम लिखेहुये श्लोकमें सृष्टिकी उत्पत्तिके विषय में दूसरे वादियोंने जो वेदसे विरुद्ध बचन तुमसे कहावहविचारसे दोषयुक्तहै अर्थात युक्ति सहितभी अयुक्तिकहै क्योंकि वेदका सिद्धान्तबड़ी युक्तिवाला है, परन्तु तुम इसलोक में मेरेकहे हुये उससदैव नित्य सिद्ध ब्रह्म को ब्राह्मय ऐश्वर्य्य अच्छेप्रकार प्राप्तकरके वृत्तिसे रहित बुद्धिवाले हो १२॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे द्वशीतितमोऽध्यायः ८२॥

## तिरासीवां अध्याय॥

शान्त बुद्धिहोनेसे कल्याणहै वहशान्ति मरण समयपर स्वतः उत्पन्नहोजातीहै क्योंकि स्मृतिके अनुसार मृत्यु मौनरूपहै फिर साधनासे क्याप्रयोजन है यहशंका करके एकगावँ से दूसरे गावँके जानेके समान जन्म मृत्युहैं परंतु वह मौनता उत्पत्ति नाशके समान केवल स्थूल देहसे है सूक्ष्मदेहसे नहीं है इसके विषयमें मृत्यु और ब्रह्माजीके प्रश्नोत्तर वर्णन करते हैं—युधिष्ठिर बोले कि सेनाके मध्यमें जोमृतक छः महाबली राजा लोग वर्तमानहैं वह पृथ्वीपर सोते हैं उनमें हरएक भयकारी पराक्रमी दशहजार हाथीके समान बली था यहलोग युद्धमें पराक्रमी मनुष्यों के हाथसे मारेगये; मैं उसयुद्धमें इनपुरुषों के किसी दूसरे मारनेवालेको नहीं देखताहूं वहपराक्रम तेजबलमें युक्तथे फिर वह बड़े ज्ञानी निर्जीव सोतेहैं और उन निर्जीवों में यहशब्द वर्त्तमान है कि वह मरगये, बहुधा ऐसे भयकारी पराक्रमी राजा लोग मरगये इसमें मुझ को संशयहै कि मरगये यहशब्द कहांसे उत्पन्न हुआ, हे देव स्वरूप पितामह मृत्यु किस की है स्थूल सूक्ष्म शरीरकीहै या आत्माकी है और किस पुरुषसे उत्पन्न हुई और किसकारण संसारको मारती है यहसब मुझको समझाइये— भीष्मजी बोले हे तात पूर्वकालके सतयुगमें एक अनुकम्पक नाम राजाहुआ वह युद्धमें क्षीणवाहन होकर शत्रुकी सवारीपर शत्रुकी स्वाधीनतामें वर्त्तमान हुआ उसका हरिनामपुत्र जोभगवानके समान पराक्रमी था वह सेना और साथियों समेत युद्धमें शत्रुओंके हाथसे मारागया तब राजा अनुकम्पक जो शत्रुके स्वाधीनपुत्र शोक युक्त और शान्तचित्तथा उसने पृथ्वीपर स्वतः आये हुए नारदजीको देखा और अपने शत्रुवश और पुत्रशोक होनेका सबवृत्तांत नारदजीसे वर्णनकिया तब तपोमूर्त्ति नारदजीने उसके वचन सुनकर पुत्र शोकको दूरकरनेवाली कथा उससे वर्णनकी अर्थात् नारदजी बोले कि हेराजा बड़े विषयवाली कथाको सुनो कि प्रजा उत्पन्न करने के समय ब्रह्माजी

सृष्टिको उत्पन्न करके उसकी अत्यन्त वृद्धिको न सहसके, हे अधिकार संच्युत न होनेवाले युधिष्ठिर उससमय पृथ्वी जीवोंसे कहींभी खाली न रही तबतीनों लोक जड़पदार्थ के समान अचल होगये और संसारके नाशके विषय की चिन्ता ब्रह्माजीके चित्तमें उत्पन्नहुई और ब्रह्माजीने विचारकरके सृष्टिके नाश होनेका कोई कारण न समझा और उनके क्रोधकरने से इन्द्रियोंके छिद्रों के द्वारा अग्नि प्रकटहुई तब ब्रह्माजीने उसअग्निके द्वारासब दिशाओंको भस्म किया और भगवान के कोप से उत्पन्न हुई अग्नि ने स्वर्ग पृथ्वी ग्रह नक्षत्र आदि चराचर जगत्को भस्म किया और सब स्थावर जंगम जीवभी भस्म होगये तब जटाधारी संसार के रक्षक श्रीशिवजी महाराज ब्रह्माजी के पास गये तब ब्रह्माजी शिवजी से मिलकर संसार के उपकारार्थ यह बचन बोले कि हे शिवजी आप मेरी बुद्धिसे सबबरोंके योग्यहो मैं तुम्हारे मनकी इच्छा के समान तुम्हारा अभीष्ट करूंगा २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्म्मे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ८३ ॥

## चौरासीवां अध्याय ॥

शिवजी बोले कि हे प्रभु पितामह संसारकी उत्पत्तिके निमित्त इस मेरी प्रार्थना को सुनो कि यह सृष्टि आपनेही उत्पन्नकरी है इसपर क्रोध न करिये हे ब्रह्मन् सब प्रजालोग आप के तेज की अग्निसे जलतेहैं उनको देखकर मुझको दया उत्पन्नहोती है इन पर दया कीजिये, ब्रह्माजी बोले कि मैं कोप नहीं करताहूं और यह भी नहीं चाहताहूं कि सृष्टिका नाश होजाय यह सृष्टि का नाश पृथ्वी के बोझ उतारनेको किया जाता है सो हेमहादेवजी इसभार से क्रान्त भयभीत पृथ्वी को जल में डूबता हुआ जानकर यह युक्ति कीगई, जब बुद्धि के बड़े बिचारसे इस संसारकी वृद्धिको न्यून करनेका कोई बिचार न पाया तब मुझ में क्रोध प्रवृत्त हुआ, शिवजी बोले कि हे देवेश्वर प्रसन्न हूजिये और संसार के नाश के निमित्त क्रोधको त्यागो जिससे कि सब जड़ चैतन्य जीव बचें सब छोटे बड़े सरोवर नदी तृण और चारों खान के जीव जलकर भस्म होगये अब आप प्रसन्न हूजिये यही बर मैं मांगताहूं, यह नाशवान भस्म हुये जीव अब किसीप्रकारसे उत्पन्न नहींहोंगे इस कारण आप अपनेही तेज से इस तेजको हटाओ और इनके वृद्धिकी कोई दूसरी युक्ति बिचारिये हे पितामह जैसे यह सब जीव बचें सोई कीजिये जिनकी स्त्रियां गौ आदि नष्ट होगई हैं वह नष्ट होवें, हे लोकेश्वरों के स्वामी मुझको आप ने अधिदेवके अधिकारपर नियत कियाहै और सब संसार तुम्हाराही बनाया है मैं आपको प्रसन्न करके मरमर कर जन्म लेनेवाली सृष्टिको चाहताहूं, ना-

रदजी बोले कि यह शिवजी के बचनको सुनकर ब्रह्माजी ने उस तेज को अपने अन्तरात्मा में आकर्षण कर लिया १३ और उस अग्निको भी अपने में लय करके जीवों के जन्म मरणको बिचार किया आशय यहहै कि जन्म मरण इन दोनों के होने से न पृथ्वी पर भार होगा न सृष्टि की अधिकता होगी इन सब बातों के पीछे उन ब्रह्माजी के शरीरी छिद्रों से एक स्त्री प्रकट हुई जिसके काले और लाल बस्त्र और काले भीतरीनेत्र और दिव्य कुंडलों से शोभित दिव्य भूषणोंसे अलंकृतथी वह देहके छिद्रोंसे निकलकर दक्षिण दिशामें नियतहुई और उन दोनों बिश्वेश्वर देवताओंने उस शोभित कन्या को देखा सो हे संसारके पोषण करनेवाले राजा युधिष्ठिर ब्रह्माजी ने उस कन्याको बुलाकर यह कहा कि हे मृत्यु तुमको हमने स्मरण किया था सो तुम सब स्थावर जंगम जीवोंको मारो और किसीपर दया मतकरो सब छोटे बड़ों को विनाश करो तुम मेरी आज्ञा से बड़े कल्याणको पाओगी यह ब्रह्मा का बचन सुनकर उस कमल मालाधारी स्त्रीरूप शोचग्रस्त मृत्युने बड़ाध्यान करके अश्रुपात किया और मनुष्यों के आनन्द के निमित्त उन अपने अश्रुपातों को दोनों हाथों में भर लिया और प्रार्थना की और आंशू गिरने से सब जीवों का एकही बार नाश न हो यह अभिप्राय था २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे चतुराशीतितमोऽध्यायः ८४ ॥

## पचासीवां अध्याय ॥

नारदजी बोले कि फिर वह दीर्घ नेत्रवाली चित्त से दुःख को दूरकर हाथ जोड़ नम्र शिर से इसी प्रयोजन को कहनेलगी कि हे श्रेष्ठबक्ता ब्रह्माजी तुम से उत्पन्न हुई मुझसी स्त्री सब प्राणियों को भय उत्पन्न करनेवाली कैसे होसक्ती है, मैं अधर्म का भय करती हूं मुझको धर्मरूप कर्म का उपदेश करो आप मुझ भयरूप अग्निको विचार कर कल्याणरूप नेत्रों से देखो हे प्राणियों के स्वामी मैं उन निरपराधी बालक बृद्ध तरुण पुरुषों को नहीं मारूंगी मैं आपको नमस्कार करती हूं आप मुझपर प्रसन्न हूजिये, प्यारे पुत्र, बराबर के भाई और माता पिता आदिको भी नहीं मारूंगी जिनके कि सम्बन्धी मारेगये वह शापदेंगे मैं उनसे भयकरतीहूं,दुखियाजीवों का अश्रुपाती यजल मुझको बहुत बर्षोंतक सदैव भस्मकरेगा मैं उनसे अत्यन्त भयभीत आपकी शरण आई हूं हे देव पापकरनेवाले जीव यमलोक में गेरेजाते हैं इस से हे बरद मैं आपको प्रसन्न करतीहूं मेरेऊपर कृपाकरो हे लोक पिता मैं आप से यह चाहतीहूं कि तुम्हारे प्रसन्नता के अर्थ मैं तपस्या करूं ब्रह्माजी बोले कि हे मृत्यु मैंने तुझको संसारके नाशके निमित्त उत्पन्नकिया है तुमजाओ सब

संसार को मारो किसीबातका विचार मतकरो यहीबात अवश्यहोगी कभीइस के बिपरीत न होगी हे पापरहित निर्दोष स्त्री मेरे वचनोंको मानकर जैसाकहाहै वैसाहीकरो, फिर हे महाबाहु युधिष्ठिर इस प्रकारसे आज्ञापाईहुई मृत्यु ने उत्तर नहीं दिया और नम्रता पूर्वक ब्रह्माजी के सन्मुख नियतहोगई और बारम्बार आज्ञप्त होनेसे निर्जीवके समान अवाकहोगई तदनन्तर देवोंके देव ईश्वर ब्रह्माजी आपसे आप प्रसन्न हुये और मन्द मुसक्यानयुक्त होकर सब लोकोंको देखा और देखतेही अपनी कृपा प्रकटकी औरसुनाजाताहै कि ब्रह्माजीको क्रोधरहित देखकर वहकन्या उनके साम्हनेसे पृथक् चलीगई,हे राजेन्द्र तबवह मृत्यु सृष्टिकेनाश कर्म्मको भूलकर वहांसे चलकर शीघ्रही धेनुकनाम तीर्थको गई और वहां महाउत्तम उग्र तपकिया और पन्द्रहपद्म बर्षतक एक चरण से खड़ीरही फिरभी उन महातेजस्वी ब्रह्माजीने उस उग्रतपवाली कन्या से कहा कि हे मृत्यु तू मेरेवचनकोकर यहसुनकर मृत्यु उनके बचनको ध्यान न करके फिर सातपद्म बर्षतक एकपैर से खड़ीरही फिर तेरह पद्मवर्ष खड़ीरही और अयुत बर्षतक मृगोंके साथ घूमी फिर दो अयुत बर्षतक वायुके आधारसे रही फिर मौनतामें नियत हुई और आठ सहस्रबर्षतक जलमें निवास किया फिर वह कन्या कौशिकी नदीको गई वहां बायु और जलके आहारसे नियम किया फिर वह श्रीगंगाजी और शुद्ध मेरुपहाड़पर गई वहां काष्ठके समान निश्चेष्ट सृष्टिके आनन्दकी इच्छासे नियतहुई तदनन्तर हे राजेन्द्र वह हिमालयके मस्तकपर जहां देवताओं ने यज्ञ कियाथा गई वहांभी एक निखर्व बर्ष तक अंगूठा बिनालगाये खड़ीरही और बड़ीयुक्तिसे ब्रह्माजी को प्रसन्न किया तदनन्तर वहां लोकेश ब्रह्माजीने आकर उससे यहकहा कि हे पुत्री यहक्या करतीहै मेरा वह बचनकरो फिर मृत्युने भगवान ब्रह्माजीसे कहा कि हे देव मैं सृष्टि को नहींमारूं यह आपसे प्रार्थना करतीहूं, फिर तो ब्रह्माजीने बड़े हठसे उस अधर्मसे भयभीत मृत्यु से कहा कि हे मृत्यु ऐसा अधर्म नहीं है तुम निःसंदेह प्राणियोंकोमारो मेरा वचन अन्यथा कभी नहीं होगा तेरेपास यहांही सनातन धर्म आवेगा मैं और सबदेवता सदैव तेरी भलाईमें प्रवृत्तहैं औरइस दूसरे तेरेमनोरथोंको देताहूं हमसे पीड़ामान प्रजालोग तुझको दोष न लगावेंगे, तुम पुरुषोंमें पुरुषरूप स्त्रियोंमें स्त्रीरूप और नपुंसकोंमें नपुंसकरूप होगी अर्थात् ब्रह्मभावको प्राप्तहोगी और तुमको पाप नहीं होगा,हे राजा इसप्रकार आज्ञायुक्त भी उसमृत्युने हाथ जोड़कर फिर उस अबिनाशी ब्रह्माजीसे निषेध किया, तब ब्रह्माने फिरकहा कितू मनुष्यादिकों को मार तुझको दोष कभी न होगा मैं ठीक बिचार पूर्व्वक करूंगा, हे मृत्यु मैंने जिन अश्रुपातोंके कणों को जिनको पूर्व्वमें तैंने अपने हाथोंमें धारण कियाथा घोररूप रोग बनायाहै

वह समय आनेपर जीवोंको मारेंगे, तुम सब जीवोंके अन्त समयपर उनदोनों काम क्रोध को चलायमानकरो अर्थात् उनके कर्म्मफल के द्वारा काम क्रोध प्रकट होनेपर तुम उनको मारो इसप्रकारसे तुमको धर्म्महोगा और राग द्वेषसे रहित तुमको अधर्म्मभी न होगा, तुम इसप्रकार से धर्म्मपालन करोगी और अधर्ममें नहींडूबोगी इसकारण इस अधिकारको अंगीकारकरो और जीवों में कामको प्रवृत्त करके उनकोमारो, तब मृत्युनाम स्त्रीने भयभीतहोकर ब्रह्माजी से कहा कि बहुत अच्छा तबसे वहमृत्यु जीवों के अन्तसमयपर उनमें काम क्रोधका प्रवृत्त करके प्राणोंको अज्ञानकर मारती है, और मृत्यु के जो वहअश्रुपात रोग रूपहुये उन से जीवन के अन्तमें सब मनुष्यादि जीवों का देह पीड़ामानहोताहै इसकारण शोकमतकरो और बुद्धिसे समझो, जीवों की सब इन्द्रियां अपने व्यवहारके अन्तमें अर्थात् जागृतदशाके समाप्तहोने पर सुषुप्तीमें जीव ब्रह्मकी ऐक्यताको प्राप्तहोकर उस प्रकार जागृत अवस्थामें प्रकट होती हैं जिसप्रकार से कि सब मनुष्य उन देवता इन्द्रियों के समान जीवन के अन्त में परलोकमें जाकर फिर इसलोक में प्रकट होते हैं आशय यह है कि जागृत और स्वप्नावस्थाके समान समाप्ति वा उत्पत्तिकर्म्मसे जन्मऔर मरणको प्राप्तहोतेहैं और तुमने पूछा कि किसकी मृत्युहोतीहै उसका उत्तर सुनो कि भयकारी शब्द और रूप धारण करनेवाला बड़ातेजस्वी जो वायु है वह सब प्राणियोंका प्राणरूप नानाप्रकारके देहोंमें बर्त्तमान और जीवोंके देहके नाशमें इन्द्रियोंका राजाहै इसकारण वह अपूर्व्व बिलक्षण है तात्पर्य यहहै कि शरीरकीही मृत्युहोतीहै प्राणात्माकी नहीं है, सब देवतालोग जिनका कि पुण्य समाप्त होताहै वह पृथ्वीपर आनकर जन्मलेतेहैं और सुन्दर कर्म्मवाले मनुष्य देवभावको प्राप्तहोते हैं हे राजाओं में उत्तम इसीकारणसे तुमअपने पुत्रका शोच मतकरो वह तुम्हारापुत्र स्वर्गको प्राप्तहोकर आनन्द करताहै, इसरीतिसे देवता से मिलेहुये कालके बर्त्तमान होनेपर जैसे चाहे वैसे मारने वाली है और उसके अश्रुपात से उत्पन्न होने वाले रोग इसलोक में समय आनेपर जीवमात्रोंको मारते हैं ४२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपंचाशीतितमोऽध्यायः ८५ ॥

# छियासीवां अध्याय ॥

इस प्रकारसे अपने कर्मोंके द्वारा जीवोंकी मृत्यु और रोगोंको जानकर उनकी निवृत्ति धर्मसे मानके आर्य,जैन और म्लेच्छशास्त्रों के बहुत प्रकारके मार्गों में संदेह युक्त धर्मरूपको लक्षण और प्रमाण से जानने के इच्छावान राजा युधिष्ठिरने प्रश्नकिया कि यह सबमनुष्य धर्ममें अनेक संदेह करते हैं कि

यहधर्म क्याहै और कहां से है यह इसलोक के या परलोकके या दोनों लोकोंके निमित्तहै इसको हे पितामह आप समझाके मुझसे कहिये, सदाचार स्मृतिवेद यह तीन प्रकारका धर्मलक्षणहै और चौथे अर्थको भी पंडितलोग धर्मका लक्षण कहते हैं, जो धर्मरूप कर्म कियेगये उनको न्यूनाधिकता के कारण भिन्न२ निश्चय करते हैं जैसे कि गृहस्थाश्रममें मोक्षको न जानकर संन्यासको चाहना और कामी लोगों की इच्छा गृहस्थाश्रम में होना इस स्थानपर क्या सिद्धांतहै इसको शंकाकरके कहते हैं, कि यहां लोकयात्राके निमित्त धर्मका नियम कियागया है कि राजा जनक आदिके समान सावधान चित्तपुरुषको गृहस्थाश्रमभी मोक्षका दाताहै और अन्यको यहसंन्यास धर्म इसलोक परलोक दोनोंलोकोंमें सुखका देनेवालाहै, पापात्मा पुरुषउत्तम धर्म को नपाकर पापमें प्रवृत्त होताहै, कोई पाप करनेवाले मनुष्य भी पापों से मुक्तनहीं होते हैं, आपत्ति कालमें पापवादी मनुष्य अपापवादी होता है और अधर्म करनेवाला धर्मात्मा होजाताहै, धर्मकी निष्ठा आचारहै उसीके आश्रय होकर जानेगा जैसे कि अधर्म में डूबाहुआ चित्तचोरीके धनको लेताहै और राजासे रहित देशमें चोर दूसरेके धनको चुराता रहताहै, जबदूसरे मनुष्य उसकेधनकोलेतेहैं तबराजाको चाहताहै तभीऐसे लोगोंकी भी इच्छा करता है जो कि अपने धन ऐश्वर्य्य से प्रसन्न हैं, सब ओरसे पवित्र मनुष्य निस्संदेह राजाके दरबार में वर्त्तमान होताहै और अपनी अंतरात्मा में कुछ पापको नहीं देखता है, सत्यबोलना अच्छाहै सत्यसे उत्तम कोईबात नहीं है सत्यसेही सबधारण कियाजाताहै और सत्यहीमें सब नियतहैं, पापियोंकोभी सत्यत्यागना अयोग्यहै इसबातको डेढ़श्लोक में सिद्धकरते हैं—कि पाप करनेवाले दुष्ट आदमी पृथक् २ शपथखाकर उससत्यमें नियत इन दोगुणवाले होते हैं, प्रथमद्वेष न करना दूसरे अधिक बिबाद न करना, जो वह परस्पर में प्रतिज्ञाको त्यागकरें तो निस्संदेह नाशहोजाय, दूसरे का धन न हरना योग्यहै यह सनातन धर्म है, पराक्रमी मनुष्य उसपूर्वोक्त धर्मको निर्बलोंका कियाहुआ मानते हैं जब प्रारब्धहीन होता है तब यहबात उसको अच्छी मालूम होती है और अधिक बलवान सुखी भी नहीं होते हैं इसकारण तुमको कभी कुमार्ग में बुद्धि न लगानी चाहिये क्योंकि निर्दोषको नीचोंसे न चोरों से न राजासे भयहोताहै किसी का कुछ अप्रिय न करनाही निर्भय और पवित्रस्थान है, चोर सबओरसे ऐसे भयकरताहै जैसे कि गांव में पहुंचने वाला मृग चारों ओरसे भयभीत होता है, बहुत प्रकारसे किया हुआ अपना पाप दूसरेमेंभी देखताहै, पवित्र और सदैव सबओरसे निर्भय मनुष्य प्रसन्नता पूर्वक सन्मुख आता है और अपने किसी बुरेकर्मको दूसरों में नहीं

देखताहै, जीवोंके उपकार में प्रवृत्त पुरुषोंने इसधर्मको कियाहै और उनकाही कथनहै कि दान करना योग्य है धनवान मनुष्य उस धर्मको निर्धनों का कियाहुआ मानते हैं, जब मन्द प्रारब्ध होता है तब यहबात उनको अच्छी लगतीहै और धनवानभी अत्यन्त प्रसन्न नहीं होतेहैं, सावधान लोग धर्म्म लक्षणको कहते हैं जो पुरुष दूसरों से किया हुआ अपना अप्रिय कर्म्म नहीं चाहताहै उसको अपना अप्रियजानता दूसरे मनुष्योंके साथनहींकरे २० जो मनुष्य किसीकी स्त्रीका जारज मित्रहै वह किसी से क्याकहने को योग्य है अर्थात् अपने कुकर्म्म से दूसरेको कुछनहीं कहसक्ता और जो दूसरेका किया हुआ आपकरे तो उसमें देर न करे,जो अपने जीवनको चाहे वहकिसीप्रकार दूसरेको न मारे जो जो अपनेसे इच्छाकरे उस उसको दूसरेका भी समझले, निर्धनोंको अपने खर्चसे और शेषोंको अपने भोगों से भागदे, इसी कारण ईश्वर की ओरसे ब्याज जारी हुआहै जिस सत्मार्ग में देवता सन्मुखहों उसी मार्गमें नियतहो अर्थात् शान्त चित्त, दान, दयामें प्रवृत्तहो अथवा लाभ के समय परही धर्म्म में नियतहोना श्रेष्ठहै, ज्ञानियोंने हिंसा रहित सब कर्म्मोंको धर्म्म कहाहै हे युधिष्ठिर धर्म्म अधर्म्म में इस लक्षणके वर्णनको बिचारो, पूर्व्व समयमें ईश्वरने यहलोक संग्रहसे युक्त धर्म्म प्रकट कियाहै और सत्पुरुषोंका कर्म्म सूक्ष्म धर्म्म के प्राप्त के अर्थ निश्चय किया गया है; हे राजा यह धर्म्म लक्षण मैंने तुमसे कहा इस कारण तुमको किसी दशामें भी कुकर्म में बुद्धि न लगानी चाहिये २७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेषडशीतितमोऽध्यायः ८६ ॥

## सत्तासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोलेकि साधुओंसे उपदेश और निश्चय कियाहुआ धर्म्मलक्षण सूक्ष्म और वेदसे जाननेके योग्यहै समयके अनुसार मैं अपनी मतिके अनुमान से कहताहूं, मेरे हृदय में जो बहुत से सन्देहकारी प्रश्न थे वह आपने वर्णनकिये हे राजा अब यहप्रश्नमेरा छलसे रहितहै कि यह देहरूप प्राप्त होने वाले तत्त्व अपने आपही जिवाते उत्पन्न करते और देहके रूप से पृथक्भी करतेहैं, जैसे वेदमें लिखाहै कि अन्नसेही सबजीव उत्पन्न होतेहैं और उसीसे जीवतेहैं और लयभी उसी में होजातेहैं इसी हेतुसे वह धर्म्म केवल मर्य्यादही मात्रसे निश्चय नहीं होसक्ता, आपत्ति से मोक्षहोने वाले का दूसरा धर्म्म है और आपत्ति में पड़ेहुओंका दूसराहै वह आपत्तियां मर्य्याद मात्र से जाननी असम्भव हैं, सदाचार माना है और सन्त पुरुष आचार लक्षण वाले हैं कैसे

साधन और असाधन के योग्यजानें इससे सदाचारभी लक्षण से रहित है, प्राकृत मनुष्य अधर्मको करताहुआ धर्मरूप देखने में आता है और कोई संस्कारी मनुष्य धर्मको करता अधर्मरूप दिखाई देता है तात्पर्य यह है कि इस विषय में सदाचारभी निश्चय करना कठिन है ६ फिर शास्त्रज्ञ मनुष्यों से उसका प्रमाण कहागया इससे वेदवचनभी यज्ञके समान नाशको प्राप्त होते हैं यह हमने सुना है आशय यह है कि समयके विभाग से धर्म्म के प्रसिद्ध करने वाले वेदभी श्रद्धा के योग्य नहीं होते, सतयुग में दूसरे धर्म्म हैं, त्रेता द्वापर में और कलियुग में और २ हैं मानों यज्ञ करनेवालों कीही सामर्थ्य के समान नियत किये गये हैं वेद वचन सत्य हैं यह कहना केवल लोक रंजन है फिर सब ओर मुख रखनेवाले वेद आम्नायों से पूर्ण हैं, जो वह आम्नाय श्रुति हैं और इन स्मृतियों में उनका प्रमाण होना वर्त्तमान है स्मृतिसे भी वेदके विपरीत होनेमें शास्त्रता कहांसे होसक्तीहै, पराक्रमी दुष्ट आचरणवाले पुरुषों से कियेहुये धर्म्मका जो स्वरूप बदलजाताहै इस हेतु से उसकाभी नाशहोताहै, हमजाने हैं वा नहीं जाने हैं और जानना सम्भवहो वा असम्भव हो जो छुरीकी तीक्ष्णधार है वह पहाड़ों की अपेक्षा बड़ी भारी है कर्म्मकाण्ड पूर्व में गन्धर्व नगर के समान अर्थात् अपूर्व दृष्ट पड़ता है और पण्डितों से विचार किया हुआ फिर नाशको पाता है अर्थात् कर्म्मफल मोक्षदायी नहीं है, हे भरतवंशी युधिष्ठिर जैसे गौओं के निमित्त बनाहुआ छोटा तालाव खेत और क्यारी में काटकर लेजाने से शीघ्रही सूख जाताहै इसीप्रकार कलियुग के अन्त में लोप होनेवाला वैदिक धर्म और स्मृति धर्म्म दृष्ट नहीं आता है, कोई पुरुष फलयुक्त अग्निहोत्र को करते हैं कोई वेतनलेकर पढ़ाना आदि कर्म्म करते हैं और कोई अन्यप्रकार से धन लेने के लिये व्रतादिक करते हैं कोई छली बहुत से मनुष्य निरर्थक आचार को प्रतिपादन करते हैं और सेवन करते हैं, फलके चाहनेवाले अज्ञानियों का कहाहुआ कर्म्म शीघ्रही धर्म्मरूप होता है उन अज्ञानियों की दृष्टि से साधुओं में धर्म्म नहीं है और उन साधुओंको छली और विक्षिप्त कहते हैं और हास्य करतेहैं, बड़ेलोग अपने ब्रह्मकर्म्मसे पृथक् होकर राजधर्म में आश्रित हुये, कोई मुख्य आचार सब की भलाई के लिये वर्त्तमान नहीं होताहै और उसी आचारसे कोई २ विश्वामित्र के समान समर्थ होताहै कि वशिष्ठादिको पीड़ा देता है फिर वही आचारवान् वशिष्ठादि समान रूपवान् दृष्टपड़ता है, जिस आचार से कोई समर्थ होता है वह दूसरों को पीड़ा देता है इस कारण सब आचारों की विरुद्ध दशाको विचार करना योग्य है राजा युधिष्ठिर इस प्रकारसे श्रुति स्मृतियों का अप्रमाण कहकर अपने मतको कहतेहैं,

पूर्वकालमें जोधर्म्म प्राचीन पंडितोंसे उपदेश कियाहुआ है उसीप्राचीन आचार से सनातन मर्य्यादा होती है २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मेसप्ताशीतितमोऽध्यायः ८७ ॥

## अट्ठासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इसस्थान पर इसप्राचीन इतिहासको कहते हैं जिसमें तुलाधारने धर्म्म सम्बन्धी बचन जाजली नाम ब्राह्मण से कहेहैं, बनके बीच महातपस्वी बनचारी किसी जाजली नाम ब्राह्मण ने समुद्र के किनारे पर तपस्या की, वह बुद्धिमान् जितेन्द्री अल्पाहारी मृगचर्म और जटा धारण किये मुनिरूपहो बहुत कालतक मैलकीच आदिका धारण करनेवाला हुआ, हे राजा किसी समय वह महातपस्वी तेजधारवाले जल में निवास करने वाला अपनी इच्छाकेअनुसार ब्रह्मऋषियों के लोकों में घूमता देखता फिरता था कभी जल में बैठेहुये अपनी दृष्टि से बन पर्व्वतों समेत सब पृथ्वी को देख कर यह बिचार किया कि इसलोक के जड़ चैतन्यों में मेरेसमान कोई नहींहै जो मेरेसाथ जल में नियत होकर आकाशस्थ ग्रह नक्षत्रादि को देखे, इसी प्रकार जल में कहा करता था और राक्षसों की दृष्टिसे गुप्त था, उससे पिशाचों ने कहा कि तुमको ऐसा कहना उचित नहीं है हे श्रेष्ठ ब्राह्मण एक तुलाधार नाम यशस्वी वैश्यों का धर्म्म धारण कियेहुये काशी में रहता है वहभी इस प्रकारसे नहीं कहसक्ता है जैसे कि तुम कहते हो पिशाचों के यह बचन सुनकर महातपस्वी जाजली ने उत्तर दिया कि मैं उस यशस्वी तुलाधारको देखूंगा तब राक्षस उस ऋषिको समुद्रसे उठाकर बोले कि हे ब्राह्मणों में उत्तम तुम इस मार्गमें होकर जाओ, राक्षसों से यह सुनतेही बेमन होकर जाजली चल दिया और काशी में तुलाधारसे मिलकर यह बचन कहा, तब युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह जाजली ने पूर्वसमय में कौनसा कठिनकर्म किया था जिससे कि उसने ऐसी बड़ीसिद्धिको पाया यह आप मुझे समझा कर कहिये, भीष्मजीने कहा कि उस जाजली मुनिने बड़ाघोर तप कियाथा और प्रातःकाल सायंकालको स्नान आचमनादि कर्म्म बड़ी प्रीति से करता था और वेदविद्यासे तेजमें पूर्णबानप्रस्थ आश्रमकी सबयुक्तियों का ज्ञाता अग्नियोंको अच्छेप्रकारसे पूजताहुआ वेदपाठ और जपमें प्रवृत्तहोताथा बनमें तपयुक्तहोकर उसऋषिने अपने धर्मको नहीं शोचा अर्थात् धर्मका किंचित्भी अहंकार नहींकिया बर्षाऋतुमेंबाहर शयन,हेमंतमें जलशयन ग्रीष्ममें वायुघाम सहता परंतु धर्मकाअहंकार नहींकरताथा इनबातोंके बिशेषउसकी बहुतप्रकार की दुखशय्या इस पृथ्वीपर वर्त्तमान हैं और बहुत बर्षतक बर्षाऋतुमें निराधार

आकाशमें नियतहुआ और बराबर अंतरिक्ष मेंही जलको मस्तकपर लिया, और सदैव बनजाने से उसकी जटायें धूल में लिपटीहुई पापसे रहित गांठः दार और जलसे आर्द्ररहीं, कभी वह निराहार वायुभक्षी महातपस्वी सावधान मुनि काष्ठके समान नियतहुआ और कभी उसतपसे चलायमान नहींहुआ और हे युधिष्ठिर कलिंगनाम पक्षी ने उस काष्ठरूप जड़के समान पड़े हुयेपर घोंसले बनाये २० और जटाओंपर तृणके तारों से घोंसले बनानेवाले पक्षियों के जोड़ेको अपनी दयालुतासे निषेध नहींकिया, जबवह काष्ठरूप महातपस्वी अपने स्थान से चलायमान नहीं हुआ तब सुखपूर्वक बिश्वास करनेवाले वहदोनोंपक्षी आनन्दसे निवासकरनेलगे, हे राजा वर्षाऋतुके व्यतीत होने- पर शरदी के प्रारंभ में उस काम से मोहित पक्षियों के जोड़े ने गर्भाधान बुद्धिसे बिश्वासित होकर उसके शिर में अंडेदिये, और महातपस्वी मुनि ने जाना तब ऐसा देहको निश्चल किया कि कथंचितभी नहींहला सदैव धर्मज्ञ ने अधर्मको नहींचाहा तदनन्तर वह दोनोंपक्षी प्रतिदिन आकर उसकेमस्तक पर बिश्वास युक्त हो बड़ी प्रसन्नता से निवास करनेलगे फिर अण्डों से पक्षी उत्पन्नहुये और उसी मस्तकपर बड़ेहुये और जाजली जरा न हला उनके अंडे बच्चोंकी रक्षाकरता वहव्रती धर्म्मात्मा चेष्टासे रहित सावधानरहा फिर वह बच्चे समयपर परवाले हुये और मुनिने सपक्ष देहवालाजाना तब वह महाव्रती बुद्धिमान् मुनिवहां उन पक्षियों को देखकर बहुत प्रसन्नहुआ और उन पक्षियों ने भी अपने बच्चों को बड़ा समर्थ देखकर बहुत आनन्द माना और निर्भय बेटों समेत उसके शिरपर रहनेलगे और प्रति दिन सायंकाल के समय लौटते हुये परवाले पक्षियोंको देखा कि लौटकर फिर बराबर चलेजाते थे फिर माता से अलग होगये परंतु जाजलीने शिर न हलाया इसीप्रकार सदैव दिन में चलेजाकर सायंकाल को लौटकर वहांही निवास किया करते थे कभी छः दिनकेपीछे भी आये तौभी जाजलीका शिर न हिला जबवह पराक्रमी पक्षी क्रम २ से बहुत दिनतक नहींलौटे कभी महीनोंतक नहींलौटे तबवह जाजली उठकर चलागया तदनन्तर उन पक्षियों के गुप्त होजानेपर उसने बिचारकिया मैं सिद्ध हूं और अहंकार भी प्रवृत्तहुआ और इसप्रकार गयेहुये पक्षियों को देखकर उनके पोषण करने से अत्यन्त प्रसन्न चित्तहुआ और नदी में स्नान आचमनकर अग्निको तृप्त किया फिर उदय होनेवाले सूर्य्यका अभ्युत्थान किया, और जपकरनेवालों में श्रेष्ठ जाजलीने मस्तकपर पक्षियोंको बढ़ाकर के आकाशमें भुजाका शब्द किया और सूचित किया कि मैंने धर्मको प्राप्त किया, उसकेपीछे आकाशबाणीहुई कि हे जाजली तुम धर्म्म में तुलाधार के समान नहींहुये महाज्ञानी तुलाधार काशी में है वहभी ऐसाकहने के योग्य

नहीं है जैसा कि तुमकहतेहौ फिरवह मुनि ईर्षायुक्त होकर तुलाधारके दर्शन की इच्छा से पृथ्वीपरघूमा और जहां सायंकाल हुआ वहांही उसका घरथा, फिर वह बहुत काल पीछे काशीपुरी को गया तो उसने दूकानकी बस्तु को तोलता तुलाधारको देखा, मूलधन से निर्वाह करनेवाले अतिप्रसन्न उस वैश्य ने उस आतेहुये ब्राह्मणको देखकर उठकर कुशल मंगल पूछा और बोला हे ब्राह्मण तुम आतेहो मुझे मालूमहुयेहो सो हे ब्राह्मण मेरेबचनको सुनो,कि तुमने सागर के अनूप देश में आश्रय लेकर बड़ी तपस्या की और पूर्व्व में किसीदशामेंभी अपने को धर्म्मवान् नहींजाना फिर हे ब्राह्मण तुझ तप से सिद्ध होनेवाले के शिरपर शीघ्रही पक्षी उत्पन्न हुये और तुमने उनकी रक्षा करी जब वह पक्षवाले पक्षी भोजन के खोज में इधर उधर चलेगये तद पक्षियों के पोषण से अपने को तुम धर्म्मवान्समझनेलगे तब मेरे विषयका बचन तुमने आकाश से सुना और आतुरतासे यहां आये सो हे ब्राह्मणों में उत्तम आपका क्या शिष्टाचार करूं जो आपको अभीष्टहो उसको कहिये ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि मोक्षधर्मे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८ ॥

# नवासीवां अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि ऐसे तुलाधार के वचनों को सुनकर जाजली ने कहा कि हे वैश्यपुत्र सब रस गन्ध बनस्पति औषधी और उनके मूल फलों के बेचनेवाले तुमने इस दृढ़ बुद्धिको कहां से पाया सो हे बुद्धिमान् इसको ब्यौरे समेत मुझसे कहो यह जाजली के वचन सुनकर धर्म अर्थ के मूल ज्ञाता तुलाधार वैश्य ने सूक्ष्मधर्म्मों को बर्णन किया, तुलाधारबोला कि हे जाजली मैं सनातन धर्म्म को रहस्य समेत जानता हूं मनुष्यों ने जिस धर्म्म को सब जीवों का उपकारी जानाहै, जीवों के साथ शत्रुभाव न करना अथवा आपत्तिकाल में थोड़ी शत्रुतासे जीविका होती है वह उत्तम धर्म्म कहलाता है हे जाजली मैं उसीसे अपना निर्वाह करताहूं मैंने दूसरे के काटे हुये काष्ठ और तृणों से यह स्थानबनवाया है हे ब्राह्मण मैं लाचारस पद्मकतुंग नाम काष्ठ और कस्तूरी आदि गंध और मद्य रहित अनेक रसों को सत्यता से दूसरों के हाथ से मोल लेकर बेचता हूं, हे जाजली जो पुरुष सब का मित्रहै और मनवाणी कर्म से सबकी भलाई में प्रवृत्त है वही धर्म्मज्ञ है, न मैं किसी को दुःख देताहूं न शत्रुता रखताहूं इच्छा रहित सब जीवों में समान हूं यह मेरा ब्रतजानो, और मेरीतराजू सबजीवों में एकसी नियत होती है, हे वेदज्ञ मैं लोककी अद्भुतता को देखता हुआ दूसरों के कर्म्मोंकी प्रशंसा करताहूं मुझ को तुम समदर्शी और सुवर्ण मृत्तिका समान जाननेवाला समझो, जैसे

बहिरे अन्धे और ग्रहभूतादि से ग्रसेहुये ऊर्ध्व श्वास लेनेवाले और देवताओं से गुप्त इंद्री गोलकवाले होते हैं उसीप्रकार मुझको जानो, जैसे कि वृद्धरोगी आदि विषयों से अनिच्छावान् होतेहैं उसीप्रकार अर्थ कामादि भोगोंमें मेरी भी अनिच्छा होगई है, न किसीको भयदेता न दूसरेसे भयभीत होता इच्छा रहित शत्रुता से पृथक् होताहै तब ब्रह्मभावको पाताहै, जब मनबचकर्मसे सब जीवोंमें पापबुद्धि नहीं करता तब ब्रह्मभावको पाता है, जोपुरुष सबजीवों को निर्भय करता है उसने भूतकाल में न जन्मलिया न आगे कभीलेगा परंतु देहमें अभिमान आने से सब धर्म्मनष्ट होजाते हैं,जो निरभिमान है वह ब्रह्म रूप अभय पदको पाताहै कठोर बचन अथवा कठिन दण्ड बंधनादि से सब लोक-भयकरताहै उनसबको त्यागदे, जो वृद्धलोग पुत्रादियुक्त और कुलीन हैं वहशास्त्रके अनुसार कर्म्मकरतेहैं, जोहिन्सारहितहैं हम उन महात्माओं के चलनपर चलतेहैं अब श्रेष्ठोंके आचारको प्रमाणकरतेहैं—किसीस्थानपर सदाचारसे बिरुद्ध मोहको प्राप्त होनेवाला वेदोक्त धर्म्म परम्परासे प्राप्तभी ऐसेनष्ट होजाताहै जैसे कि आपत्तिकाल में बामदेव बिश्वामित्र के निन्दित आचार को देखकर बहुत से मतवाले मोहको प्राप्तहोकर पाखण्डमत में प्रवृत्तहुये उस मोहरूपी कारण से विद्यावान् जितेन्द्री काम क्रोधका जीतनेवालाभी मोहको पाताहै अथवा पाठांतर से यहै अर्थ है कि वह सदाचार से रहित होताहै, जो जितेन्द्री शत्रुता रहित पुरुष चित्तसे साधुओंका सत्संगी धर्म्मकोकरे वहज्ञानी आचार से शीघ्रही धर्म्म को पाताहै, जैसे कि लोक में नदी के मध्य अपने आप बहाहुआ काष्ठ आपही किसी दूसरे काष्ठ से मिलजाता है इसीप्रकार कर्म्म के प्रभाव से पिता पुत्र आदि का योग और बियोग है, उसनदी में कभी बिनाबिचारे दूसरी लकड़ी तृण काष्ठ और सूखा गोबर भी परस्पर में मिलजातेहैं, हेमुनि जिस मनुष्यसे कभी किसी स्थानमें कोई जीव भयभीत नहीं होता है वह सदैव सब जीवों से निर्भयताको प्राप्त होताहै और जिससे सबभय भेड़िये के समान करतेहैं अथवा जैसे जलजीव बड़वानलसे भयातुर होकर किनारे में आश्रय लेतेहैं वह भयदायक पुरुष अभयता को नहीं पाता है इसीप्रकार यह अभय दायकरूप आचार जो कि प्रकटहै इधर उधरसे प्राप्त करना चाहिये जो सहायता रखनेवाला वा धनीहै वहऐश्वर्य्य और परलोक का हेतुहै, उस निर्भयदान से पण्डित लोग उस सहायता और धनसेयुक्त पुरुषों को शास्त्रोंमें उत्तम बर्णन करते हैं जिसके हृदय में बाह्य सुख नियत है वह संसार में निर्भयता पूर्व्वक अपनी उत्तम कीर्त्ति उत्पन्न करते हैं और जो सावधानहैं वह उस निर्भयदान को ब्रह्म सम्बन्धी जानते हैं, सब तप यज्ञ दान और ज्ञानरूप बचनोंसे जिस जिस फलको पाता है उसी फलको अभय

दान देनेवाला भी प्राप्त करता है, जो पुरुष इस संसार में सब जीवों के लिये निर्भयदानरूप दक्षिणाको देताहै वह सब यज्ञोंसे पूजन करनेवाला निर्भयता रूप प्रतिष्ठा को पाता है, जीवों का कोई धर्म अहिंसा से उत्तम नहीं है जिस मनुष्य से कभी किसी दशा में कोई जीव भय नहीं करताहै वह सब जीवोंसे निर्भय रहता है और जिससे सर्प के समान संसार भयभीत रहताहै वह इस लोक परलोक दोनों में धर्म्म को नहीं पाता है, सब जीवों के आत्मा रूप अर्थात् निर्विकल्प समाधि में नियत और अच्छेप्रकार से जीवों के देखने वाले अर्थात् विकल्प समाधि में वर्त्तमान वे चिह्न मार्गमें उसके चिह्न को ढूंढ़नेवाले देवताभी मोहको पाते हैं, जीवोंके अभयरूप दानको सब दानों से श्रेष्ठ कहते हैं हे जाजली यह सब मैं सत्यहीसत्य कहताहूं, पूर्वोक्त दानकी प्रशंसा के अर्थ सफलदानकी निन्दाकरते हैं वह सफल कर्म करनेवाला स्वर्गवासी होकर फिर पृथ्वीपर आता है मनुष्य कर्म्मों के नाशको देखकर सदैव उसकी निन्दा करते हैं, हे जाजली सूक्ष्म धर्म्म निष्फल नहीं है इसलोक में ब्रह्म और स्वर्ग के निमित्त धर्म का बढ़ना वेद में नियत किया गया है आशय यहहै कि स्थूल धर्म यज्ञ आदि से दूसरा सूक्ष्म धर्म्म है, उसका ज्ञान सूक्ष्मता से असम्भव है क्योंकि मुख्य वस्तुको गुप्त करनेवाले बहुत हेतुवाले होतेहैं दूसरे आचारों को यथार्थ जानकर उस सूक्ष्म धर्म को जानता है जो बैलों को बधिया करते हैं या नथनोंको छेदतेहैं बांधतेहैं और बहुत से बोझों को लादकर लेचलतेहैं मारतेहैं और मारकर खाते भी हैं अथवा मनुष्य मनुष्य को दासबनातेहैं उनकी आप किसी प्रकारसे निन्दानहीं करतेहो और पकड़कर क़ैद कराते हैं मारते हैं क़ैद करने और मारने में रात्रि दिन अपने देह और चित्त को जो खेद होता है उसको भी जानता है, पांच इन्द्री रखने वाले जीवों में सब देवता निवास करते हैं अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, विष्णु, यमराज इत्यादि हैं उन जीवों को बेंचकर मृतकों में क्या विचार करना है बकरा अग्नि रूपहै मेढ़ा बरुण रूप है घोड़ा सूर्य रूपहै, पृथ्वी विराट्रूप है, गौ और बछड़ा चन्द्रमा रूप हैं इनको बेचकर सिद्धिको नहीं पाताहै, हे ब्राह्मण तेल घृत शहद और औषधीके बेचनेमेंभी क्या हानि है४३ डांस मच्छरों से रहित देश में सुख से बड़े होनेवाले उन पशुओं को माता के प्यारे जानकर उनको अनेक प्रकारसे स्वाधीन करके महाकीच के स्थान में जहां डांस मच्छरोंके समूह होते हैं बांधकर लेजातेहैं और बोझ से पीड़ित होकर बैल आदि मृत्युबश होते हैं, मैं जानताहूं कि उस कर्म से भ्रूणहत्या भी अधिक नहीं है और लोग खेती को अच्छा मानते हैं परन्तु वह जीविका भी बड़ी निर्दयता का कर्म्म है, क्योंकि लोहे के फलवाला हल पृथ्वी और

पृथ्वीके रहनेवाले जीवोंका नाश करताहै इसी प्रकार बैलों से युक्त रथ आदि कोभी जानो, वेदमें गौओंका नाम अघ्न्याहै अर्थात् अबध्यहै तो कौन उनको मारसक्ताहै, जो बैल या गौको मारताहै वह महाशोकोंको पाताहै, ऋषि और यती लोगोंने राजा नहुषसे जाकर कहा कि तुमने गौमाता और बैल प्रजापतिको मारा यह तुमने अयोग्य कर्म कियाहै हम तेरेकारण पीड़ाको पावेंगे, हे जाजली उन महानुभाव ऋषियोंने नहुषके पापसे उत्पन्न होनेवाली एकसौ एक रोगरूप हत्या सब जीवोंमें व्याप्त करदीं और ब्रह्महत्या करनेवाले नहुष से कहा कि हमतेरे हव्यको होम नहीं करेंगे हे जाजली उनसब तत्त्वार्थवेत्ता महात्मा शान्तरूप ऋषि और यतीलोगों ने अपने तपके द्वारा इसप्रकार के अकल्याणरूप घोर आचारों को प्रकटकिया अर्थात् जब नहुषकी भूलसे एक सौ एकगौ हत्या रोगरूपहोकर प्रजाओं में प्राप्तहुई तो जानकर होनेमें तो अवश्यही पाप प्रकटहोगा तुम केवल अन्धपरम्पराको जानकर हिंसारूपधर्मको नहीं जानते हो इसकारण धर्म को चाहनेवाला संसार के किये हुये कर्म्म को नहीं करे, हे जाजली जो मुझको मारकर मेरी प्रशंसाकरता है उसस्था न परभी मेरायह सिद्धान्त है कि यह दोनों भूलहैं क्योंकि मेरी बुद्धि से कोई प्रियअप्रिय नहीं है, इसधर्मकी ज्ञानी पुरुष प्रशंसाकरते हैं और संन्यास धर्म के समान कहाजाताहै और धर्मज्ञ पुरुषों की दिव्यदृष्टिसे देखागयाहै—५७ ॥

इतिश्री महाभारते शांतिपर्वणि मोक्षधर्म्मे एकोननवति तमोऽध्यायः ८९ ॥

## नब्बेवां अध्याय ॥

जाजलीबोला हे तराजू हाथमें लेनेवाले तुमसे जारीकिया हुआ यहधर्म्म स्वर्गरूप द्वारकी आजीविकाका बन्दकरनेवालाहै, हेबैश्य खेतीसे अन्नउत्पन्न होताहै उसीसे तुम भी जीवतेहो मनुष्य पशुआदि औषधियोंके द्वारा जीवते हैं और यज्ञादिक कर्महोतेहैं तुम नास्तिकताकी बातेंकरतेहो इसलोकमेंसिद्ध बातको त्यागकर कोई नहीं जीसक्ता, तुलाधार बोला कि हे जाजली ब्राह्मण मैं हिंसा रहित जीविकाको कहताहूं मैं यज्ञादिकी निन्दा नहीं करताहूं और नास्तिक नहीं हूं वह यज्ञ नारायण बिष्णु जानना कठिन है, ब्रह्म सम्बन्धी यज्ञके और यज्ञकेदाता पुरुषोंको भी नमस्कार है ब्राह्मण अपने योग रूप यज्ञ को त्यागकरके क्षत्रियों के यज्ञमें ज्योतिष्टोमादि में प्रवृत्तहुये हे ब्रह्मन् वेद बचनोंको न जानके लोभी और धन में प्रवृत्त चित्त नास्तिक मनुष्योंसे वह हिंसात्मकयज्ञ जारी कियागया वह ऐसा है कि जैसे भीतर से मिथ्या और प्रत्यक्षमें सत्यता विदितहो, तात्पर्य यह है कि बिश्वास के लिये वेद में प्रशंसाके बचन कहे गये कारणयहहै कि जो ज्ञानका अधिकारी नहीं है उसके

लिये प्रशंसाकर्म्म फलदायीहै क्योंकि कर्म्मकेद्वारा चित्तकी शुद्धिहोनेसे ज्ञान भी प्राप्त होजाताहै यहदेनायोग्यहै या अयोग्यहै ऐसायज्ञ प्रशंसाके योग्यहै इसीकारण हे जाजली बिपरीत दक्षिणासे लोभी यजमानको चोरीका अपराध होताहै और अशुभकर्म्म उत्पन्नहोतेहैं, इस प्रकारसे क्षत्री यज्ञकी निन्दा करके ब्राह्मण यज्ञके स्वरूपको कहते हैं कि जब उत्तमकर्म से प्राप्तहोनेवाला हव्य तय्यारहुआ उस तीनप्रकारके हव्यसे देवता तृप्त होतेहैं, प्रथम नमस्कार रूप द्वितीयजप और वेदपाठ रूप तृतीयऔषधीरूप हव्यसे देवताओंकी पूजा होती है यथा ज्योतिष्टोमादि यज्ञकरने और कुयें बावली बाग आदि के बनवाने से साधु पुरुषों की सन्तान भी लोभादि अवगुण युक्त उत्पन्न होती है, क्योंकि लोभियों से लोभी उत्पन्नहोते हैं और रागद्वेष रहित पुरुषोंकी सन्तान समदर्शी होतीहै यजमान और ऋत्विज अपने को इच्छावान् वा अनिच्छावान् देखते हैं उसीप्रकारकी उनकी सन्तानभी होती है यज्ञ से ऐसी सन्तान पैदाहोती है जैसे कि आकाशसे निर्मलजल उत्पन्नहोताहै अब इसका अभिप्राय लिखते हैं अर्थात् हे ब्राह्मण अग्निमें होमीहुई आहुति सूर्य्य के समीप जाती है सूर्य्य से वर्षा होती है वर्षा से अन्न और अन्न से सन्तान उत्पन्नहोती हैं, इस अनिच्छावान् यज्ञमें निष्ठावान् प्राचीन वृद्धोंने सब मनोरथों को प्राप्त किया और संसारका उपकार चाहनेसे पृथ्वी बिना परिश्रम उर्व्वराहोकर सब पदार्थोंकी उत्पन्न करनेवाली हुई उसीसे वीरुधिनाम लताहुईहैं, वह पुरुष आत्मयज्ञों में कुछ फलको नहीं देखते हैं और कभी यज्ञका फल जानके सन्देह युक्त पूजन करते हैं वह लोग असाधु धूर्त्त लोभी और धनकी इच्छावाले उत्पन्न होते हैं और पाप कर्मोंसे नरकको जाते हैं १४ और हे विप्रवर्य जो लोग वेद के प्रमाणको बुद्धिके बादसे अशुभ करते हैं वह इसलोक में सदैव पापात्मा और अज्ञानीहैं अर्थात्मोक्षके निमित्तज्ञान के अधिकारपर नहींचढ़ते हैं, इस प्रकार तीनश्लोकों से निष्फल कर्म्मकी प्रशंसाऔर धूर्त्तकुतर्कियोंकी निन्दा करके अवज्ञानियों की दशाको कहतेहैं—करने के योग्य कर्म्मकरना योग्य है क्योंकि वहनिश्चय वेदनिष्ठ कर्म्म है उसके न करनेसे ब्राह्मण भयकरताहै फिर वह आत्मामें कर्तृत्व भावको नहीं जानता है क्योंकि लोक में ऋत्विज हव्य, मंत्र अग्नि इत्यादि रूपोंसे ब्रह्महो वर्त्तमानहै जो इसबातको जानता है वही ब्राह्मण है, इस प्रकार के ज्ञानी ब्राह्मण में कोई अंगरहित भी कर्मउत्तम है यहवेद से निश्चय सुन ते हैं और आत्म ध्यान के कारण से उसज्ञानीके कर्ममें सब भ्रष्टजीव कुत्ता शूकर आदिका स्पर्शहोनाभी अशुभ नहीं है परन्तु भी[illegible]की इच्छामें प्रायश्चित्तहै, इसप्रकार ज्ञानी के यज्ञ कर्म की प्रशंसा करके भी बड़ी[illegible]कार के यज्ञों को भी कहते हैं कि सत्यता और शांतचित्तता से यज्ञ

करनेवाले परम पुरुषार्थके लोभी धन और विषयोंमें तृप्त अर्थात् वैराग्यवान् मत्सरता रहित सब मनुष्य प्राप्त वस्तुओं के त्यागी क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके ज्ञाता तत्त्वज्ञ योगनिष्ठ प्रणवका जप करनेवाले पुरुष दूसरों को भी तृप्त करते हैं, वह प्रणवरूप ब्रह्म सब देवताओंका आत्मरूप ब्रह्मज्ञानी में नियत होता है हे जाजली उसब्रह्मज्ञानी के तृप्त होनेपर विराटरूप के अंगसंबंधी देवता तृप्तहोते हैं, जैसे कि सबरसों से तृप्तमनुष्य किसीवस्तु को देखकर प्रसन्न नहींहोता इसी प्रकार पूर्णज्ञानसे तृप्तहोना भी सदैव को सुखकारी है, हमलोग धर्म के आश्रित सुख माननेवाले स्वामीकी आज्ञाका निश्चय करनेवाले हैं हमारे विचार से बुद्धि में चिदाभास सूत्रात्मा रूपप्राण विश्वव्यापक होने से बड़ा है उस से भी प्राणआदिका उत्पत्तिस्थान भूतात्माबड़ाहै ज्ञानी इसको विचारता है, शास्त्र से उत्पन्नज्ञान और अनुभव के रखनेवाले और संसारसे पारहोने के इच्छावान् सात्त्विकी पुरुषउस ब्रह्मलोक को पाते हैं जोकि पवित्र पुण्य दायक उत्तम कुलवान् पुरुषोंसेप्राप्तहोने के योग्यशोकपीड़ा से रहितहैं वहांसे फिर अधोगति नहींपाते हैं वह स्वर्गको नहींजाते हैं और वेद अथवा धनसे होने वाले यज्ञों को नहीं करते हैं सत्पुरुषों के मार्गपरचलते हैं और अहिंसायुक्त यज्ञोंकोकरते हैं, उन्होंने बनस्पति औषधी फल मूलकोही जानाहै उनको धन चाहनेवाले लोभीऋत्विज यज्ञनहीं कराते हैं, फिर कर्मको पूरा करनेवाले संकल्पसे आत्मारूप यज्ञ सामग्री विचार करनेवाले उन ब्राह्मणों ने संसार के उपकारकी इच्छासे मानसी यज्ञों कोही किया है, इसीकारण लोभी ऋत्विज उनके यज्ञनहीं कराते किन्तु धन के लोभसे अयोग्यों को यज्ञकराते हैं, और अन्य साधुओंने अपने धर्मके करनेसे भी प्रजाको स्वर्गमेंपहुंचायाहै आशय यहहै कि साधुलोग अपने धर्मसे दूसरोंका भी भलाकरते हैं, इसकारण मेरी बुद्धि सर्वत्र एकसी वर्त्तमानहै, हेमहामुनि इसलोक में ज्ञानी ब्राह्मण देवयज्ञ पितृयज्ञकेद्वारा जिनदेवयान पितृयान मार्ग से जातेहैं चाहैं वहदोनों देवयान मार्गसेही जातेहैं तो भी उनमें धौमआदि मार्ग से जानेवालेका पुनरागमन होता है और ऋचीक आदि ज्ञानी के मार्गसे जानेवालेका आवागमन नहीं होताहै ३१ सत्यसंकल्प ज्ञानियोंके ऐश्वर्य्यको कहतेहैं—इनज्ञानीपुरुषों के चित्त की संकल्पसिद्धि से बैलआप सवारी में जोड़कर लेजातेहैं और गौ आपदूध देतीहैं औरवह आपही संकल्प से यज्ञकुम्भको नियतकरके पूरी दक्षिणावाले यज्ञोंसे पूजन करते हैं, जो इसप्रकार योगके अभ्यास से शुद्धचित्तहोता है वह मधुपर्कमें गोहिंसाकरनेको योग्यहै, वह अज्ञानीलोग इसप्रकार से औषधियों से भी यज्ञनहींकरते इसीहेतुसे तर्कना पूर्वक ऐसे प्रकारका बर्णन तुमसे करताहूं, और मिलेहुये संन्यासीके लक्षणको भी कहताहूं देवतालोग उसीको ब्राह्मण

जानते हैं जो कि अनिच्छा से कर्म्मका प्रारम्भ करनेवाला नमस्कार, स्तुति आदि से पृथक् अधिकार से न डिगनेवाला और कर्म्मरहितहो, हे जाजली शास्त्र सुनता न सुनाता यज्ञ न करता और ब्राह्मणों को दान न देता इच्छानुसार जीविका चाहनेवाला पुरुष किसीगति को नहींपाता है, इसलक्षणको देवताके समान सेवन करके बुद्धिके अनुसार परमात्मा को प्राप्तकरे, जाजली ने कहा कि हे वैश्य हमने इस आत्मयज्ञ करनेवाले पुरुषोंकी इस गुप्तवार्त्ताको नहींसुनाहै यहकठिन बातहै इससे तुमसे पूछताहूं कि पहिले पुरुष इसयागधर्म्म के विचार करनेवाले नहींहुये और विचारवान् ऋषियोंने भी इस परम धर्म्मको लोकमें जारी नहीं किया हे वैश्य जो आत्मारूप भूमिपर अज्ञानीलोग मानसी यज्ञको प्राप्तनहींकरे तो वह किसकर्म्म से सुखको प्राप्तहों हेज्ञानीमैं तेरे बचनोंपर विश्वास करताहूं इसको मुझे समझाकरकहो, तुलाधार बोला कि इनधूर्तों के यज्ञभी श्रद्धारहित होकर नष्टरूपहोते हैं वहकहींभीयज्ञके योग्यनहींहोते गोघृत, दूधदही मुख्यकरपूर्णाहुतीसे यज्ञको पूर्णकरताहै और जो उसवेदोक्त यज्ञके करनेमें समर्थ नहीं हैं उनको पुच्छश्रृंग,चरणआदिसे पोषणकरतेहैं अर्थात् गौकी पूछपर पितृ तर्पणकरनेसे और जलसे सींगको धोकर स्नानकरनेसे और चरणों की रजसे पापोंका दूरहोना और परलोककी प्राप्तिस्मृतियोंमें बर्णनकी है,बिना स्त्री के वेदोक्त यज्ञ कैसेहोताहै उसको सुनो-कि हिंसारहित बुद्धियुक्त घृतादिक द्रव्योंको देवार्पणकर श्रद्धारूप स्त्रीको करता है यज्ञको देवताके समान सेवन करके सर्वव्यापी विष्णु ब्रह्मको प्राप्तकरै, सब पशुओंमें पुरोडासनाम हव्य पवित्र कहाजाताहै अर्थात् पशुयज्ञ निन्दितहै सत्यनदी सरस्वती हैं और सब पर्वत पवित्रहैं और आत्मातीर्थ है अर्थात् जहां आत्मयज्ञ है वहांसब तीर्थ हैं इस प्रकारके इनधर्म्मों को करता और कारणोंसमेत धर्म्मको चाहता वहपुरुष शुभलोकों को पाताहै, भीष्मजी बोले कि वह तुलाधार युक्तिसे मिला सदैव सत्पुरुषोंसे सेवित इसप्रकारके इनधर्म्मोंकी प्रशंसा करताथा ४५॥

इति श्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेनवातितमोऽध्यायः ९० ॥

## इक्यानबेवां अध्याय ॥

तुलाधारने कहा कि सत्पुरुषों से वा असत्पुरुषों से सेवित मार्गको प्रत्यक्ष कर इसपर चलोगे तब इसकी यथार्थताको जानोगे और यह बाजआदि अनेकपक्षी जो तेरे शिरपर उत्पन्नहुये चारोंओर को घूमते हैं और प्रत्येकस्थान पर घोसलोंमें बैठेहैं इन पक्षियों को फिर बुलाकर हाथ पैर सकोड़कर देहमें चिपटे हुये देखो कि यह तेरेपोषण किये हुये पक्षी तुझ पितारूप से प्रीतिभी करतेहों तो निस्संदेह तुम पिताहो अपने बेटोंको बुलाओ तब उस जाजलीके

सुलायेहुये पक्षियोंने धर्म्म वचनोंसे कहा, कि जिसका प्रारम्भ हिंसासे रहित है वह कियाहुआ कर्मफल इस लोक और परलोक में मिलता है और हिंसा बिश्वासघातनी है वह घायल विश्वास उस बिश्वासघातनी को मारता है, हानि लाभमें समान जितेन्द्री श्रद्धावान् शान्तचित्त यज्ञकरनेवाले पुरुषोंका यज्ञ प्राप्तहोता है आशय यहहै कि कर्त्तापन और कर्मफलसे पृथक्होतेहैं, अब श्रद्धाकी प्रशंसा सुनो हे ब्राह्मण यह श्रद्धा प्रकाशरूप चैतन्य आत्मासे सम्बन्ध रखनेवाली है और सूर्य्य समान प्रकाशित सतोगुणकी पुत्री है वही पोषणकरनेवाली है और अत्यन्त पवित्र योनिकी देनेवाली है इसीहेतु मन बाणीसे परे है अर्थात् जप दानसे उत्पन्न धर्म्म से श्रद्धा श्रेष्ठहै, हे भरतवंशी वह श्रद्धा उस मंत्रको जो कि स्वर वर्ण से अशुद्ध उच्चारणहोनेसे नष्ट होताहै रक्षा करती है और श्रद्धा से नाशवान् मनबाणी यज्ञआदिसे रक्षा नहीं किये जासक्ते हैं इस स्थानपर ब्रह्माजीके कहे हुए इतिहासको कहताहूं ६ जो पुरुष पवित्रहैं परंतु श्रद्धावान् नहीं है और जो श्रद्धावान्है परंतु पवित्र नहीं है यज्ञ कर्म में देवताओं ने उन दोनोंके धनको समान कहाहै कृपण, वेदपाठी, दान का बड़ा देनेवाला, अनाजका बेचनेवाला इन सबके अन्नों को देवताओं ने समान कहाथा परंतु प्रजापति ब्रह्माजीने उनकेबिचारको असिद्ध किया और कहा कि यह तुम्हारा बिचार विपरीतहै, बड़े दानके अभ्यासी पुरुषका अन्न श्रद्धासे पवित्रहै और श्रद्धारहितका अन्न नष्टप्रायहै इससे दानीका अन्न भोजन करने के योग्यहै और कृपण वा अनाज बेचनेवालेका नष्टहै, श्रद्धारहित पुरुष देवताओंको हव्यभेटकरनेके योग्य नहींहै उसका अन्नभोजनकरना अनुचितहै यहधर्मज्ञोंका उपदेशहै, श्रद्धारहितहोना महापापहै श्रद्धामहापातकों को नाश करतीहै और श्रद्धावान्पुरुष ऐसे पाप मुक्तहोताहै जैसे कि कांचली को सर्प त्यागदेताहै, जो निवृत्ति श्रद्धायुक्तहै वह सब पवित्रगुणोंमें उत्तम है जिसके स्वभाव से दोष दूर होगये और श्रद्धावान् है वही पवित्रहै, तपसे उस को कुछ प्रयोजन नहीं है और ब्रत और आत्मासे भी क्या प्रयोजन यहपुरुष श्रद्धारूपहै सात्त्विकी राजसी तामसी इनमेंसे जैसी जिसकी श्रद्धाहै वही उस का रूपभी है, धर्मार्थके देखनेवाले सत्पुरुषों ने इस धर्म को अच्छे प्रकार से कहाहै उस धर्म के जाननेकी इच्छावाले हमलोगोंने धर्म्म दर्शननाम मुनिसे धर्म्मको पाया, हे महाज्ञानी इस में श्रद्धा करो इसी से परब्रह्म को पावेगा हे जाजली श्रद्धावान् वेदवचनपर श्रद्धा करनेवाला धर्मात्मा और अपने मार्गमें नियत पुरुष श्रेष्ठतम है, तदनन्तर थोड़ेही कालमें वह दोनों बड़ेज्ञानी अर्थात् तुलाधार और जाजली हार्दाकाश ब्रह्मको पाकर सुखपूर्वक बिहार करनेलगे अर्थात् योगऐश्वर्य से क्रीड़ा कियेहुये अपने कर्मसे प्राप्त अपने २

देशको पाकर ब्रह्मके ध्यानमें तत्परहुये, अनेकअर्थों का देनेवाला तुलाधार का यहवचन है हेयुधिष्ठिर इसजाजलीने उसमहाज्ञानी तुलाधारके बचनों से शांतिपाई इसवृत्तान्तको तुमने सुना अब और क्यासुनना चाहतेहौ २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोत्तरनवतितमोऽध्यायः ९१ ॥

# बानबेवां अध्याय ॥

अब हिन्सात्मक धर्म्मकी निन्दाकरनेको भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर इसप्राचीन इतिहासको कहते हैं जिसको प्रजाओं के उपकारार्थ राजा विचख्युने कहाहै, गवालम्भननाम यज्ञमें बृद्धदेहवाले बैलको देखकर और गौओं के बड़े बिलापको सुनकर यज्ञशालामें नियत निर्दयी ब्राह्मणोंके देखतेहुये उसराजाने यहबचन कहा कि लोकों में गौओं के निमित्त कल्याणहो उसके पीछे यहबचन निश्चय किया कि हिन्सात्मकयज्ञ क्षत्रियोंका है ब्राह्मणों का दूसरायज्ञहै इसमर्यादसे पृथक् होनेवाले अज्ञानी नास्तिक संशययुक्त चित्त यज्ञसेही कीर्त्तिचाहनेवाले मनुष्योंकी ओरसे यह हिन्सात्मक उपदेश किया गयाहै, धर्म्मात्मा मनुजीने सब कर्म्मों में अहिंसाहीको उत्तम कहाहै मनुष्य, अपनी इच्छासे वेदसे बाहर पशुओंको मारतेहैं आशय यहहै कि हिन्सात्मक कर्म्म अज्ञानियोंके हैं क्योंकि वह फलकी इच्छारखतेहैं और जब उनको ज्ञान के कारण अनिच्छा होतीहै तब हिन्सात्मक कर्म्मकी उत्पन्न करनेवाली श्रुति अपने अर्थके प्रकाशसे उसको मोक्षमार्ग में नियत करतीहैं, इसीकारण ज्ञानी पुरुषको वह सूक्ष्मधर्म्म प्रमाण के साथ करनाचाहिये, सब जीवमात्रमें अहिंसाधर्म्म सब धर्म्मोंसे उत्तम मानागयाहै, कुटुम्बीकी पांचहत्या निवृत्त न होने से कैसे अहिंसा होसक्ती है इसको कहते हैं कि गांवके सन्मुख निवास करके तेजव्रतवाला होकर और देवतासे प्रत्यक्ष श्रुतियोंके फलको त्यागकरके गृहस्थियोंके आचारसे रहित होजाय क्योंकि नीचपुरुष ऐसे होते हैं कि उनका कर्म्मफल कर्म्म में प्रवृत्तहोनेका कारणहोताहै, जो आदमी यज्ञबिटप और यज्ञ कुम्भोंको नियतकरके निरर्थक मांसों को खाते हैं इसधर्म्मकी प्रशंसा नहीं कीजातीहै, मदिरा, मांस, मत्स्य, मधु, आसव कृसरोदन यहसब धूर्त्तोंने प्रवृत्त कियाहै श्रेष्ठलोगोंमें इसकी प्रवृत्ति नहींहै न वेदोंमें इसकी विधिहै, मान मोह लोभसे यहइच्छा कल्पनाकी गई है ब्राह्मण सब यज्ञों में बिष्णुकोही पूजनके योग्य मानतेहैं और उनका पूजन चन्दन पुष्पोंसे कहाहै और वेदोंमें जोयज्ञ के योग्य वृक्ष विचार कियेगयेहैं वह सब अत्यन्त पवित्र बुद्धिमान् शुद्धचित्त पुरुषोंने नियत किये हैं और सब वस्तुओं से देवताकाभी पूजनहै, युधिष्ठिर बोले कि देह और आपत्ति यहदोनों भी परस्परमें विरोधी हैं अर्थात् आपत्ति

तो देहको सुखाती है और देह आपत्तिका नाश चहतीहै फिर हिंसासे पृथक् और प्रारम्भ कर्म्म करनेवाले देहका निर्बाह कैसे होसक्ताहै, भीष्मजी बोले कि जैसे देहको पीड़ा न हो और मृत्युके बशमें न पड़े वैसेही कर्म्म में प्रवृत्त होकर सामर्थ्यके अनुसार धर्म्मको करे १४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेद्विनवतितमोऽध्यायः ९२ ॥

# तिरानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह करनेके योग्य कर्मकी परीक्षा जल्दी या देर में किसप्रकारसे करे, भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर इस प्राचीनइतिहासको कहताहूं जिसमें अंगिराऋषिके कुल में उत्पन्न होनेवाले चिरकारी नाम ब्राह्मणका प्राचीनइतिहासहै, हेचिरकारी तेराकल्याणहो हे विलम्बसे कर्म्मकर्त्ता तेराभलाहो क्योंकि विलम्बमे करनेवाला बुद्धिमान् पुरुषकर्म्मोंमें अपराधनहीं करताहै, बड़ाज्ञानी चिरकारिनाम ब्राह्मण गौतम ऋषिकापुत्रथा वहसबकामों को विचार पूर्वक विलम्बसे करताथा और अर्थसिद्धिको प्राप्तहोताथा वहदेरमें ही अर्थोंको विचारता और देहमेंही जागता देरमेंही करने के योग्य कर्म्मोंको जानताथा इसकारण से उसका नाम चिरकारी कहाजाता है, अल्पबुद्धि और अदूरदर्शी मनुष्य उसचिरकारीको सुस्त और निर्बुद्धी कहतेथे, किसी समय उसके पिताने क्रोधयुक्त होकर दूसरे पुत्रोंको त्यागकर इससेही कहा कि तुम अपनी माताको मारो यह कहकर वह महातपस्वी गौतम जपनिष्ठ विना विचार किये बनकोही चलेगये उसचिरकारीने अपने स्वभाव के अनुसार देरमें स्वीकार कर विलम्बसे कर्म्म करने के अभ्यास से विचारकर बड़ी चिन्ताकी कि कैसे पिताकी आज्ञाकरूं और कैसे माताको न मारूं और कैसे नीचके समान इसधर्म्मसंकटमें न डूबूं पिताकी आज्ञामानना सर्वोपरिहै और माताकी रक्षाकरना अपना धर्म्म है इससे अब पुत्ररूपी अस्वन्त्रता मुझको महापीड़ा देरही है स्त्रीको और सुख्यकरमाताको मारकर कौन सुखीहोता है और पिताकी आज्ञाको भंगकरके कौन प्रतिष्ठा को पाताहै, पिताका आज्ञाकारी होना योग्य है और माताकी रक्षाकरना भी योग्य है यह दोनों योग्य कर्म्मोंके सहनेवालेहैं मैं किसमार्गसे उनकी आज्ञाभंगआदि नहींकरूं, पिता अपनेको गर्भमें प्रवेश करता है अर्थात् नियत करता है और मातामें शील चरित्र गोत्रकुलसमेत उत्पन्नहोताहै फिर मैं आप माता पिताकी ओरसे पुत्रत्वके अधिकार पर नियत किया गया मुझको अज्ञान कैसे नहींहोय दोनों अपनी उत्पत्तिकाहेतु मानताहूं, पिताने जोजातकर्म्ममें आशीर्बाद दिये और दूसरे कर्म्मोंमें जपादिक किये पिता, गुरू धर्म्मरूप पोषण और शिक्षा रूपी

गुणोंसे संयुक्तहैं जो पिताने कहा वहीधर्म्महै उसीको वेदों नेभी उत्तमकहाहै, पुत्र केवल पिताकी प्रसन्नताका कारणहै और पिता बेटेका सर्बस्व है अकेला पिता देनेके योग्य देह आदिको देताहै इसकारण पिताका वचनमानना उचितहै इसमें कुछविचार न करना चाहिये, पिताकी आज्ञामाननेवाले पुरुषोंके पातकभी दूरहोजाते हैं, वस्त्र भोजनादि वस्तुवेदशिक्षा लौकिक शिक्षा और गर्भाधानसे सीमन्त आदिकर्म्मोंके संस्कार होनेमेंभी पिताही कारणहै, पिता ही धर्म्म और स्वर्ग है पिताही तप और पिताहीके प्रसन्नहोनेमें सब देवता प्रसन्नहोतेहैं, पिताने जो आशीर्बाद जिह्वासे दिये वह इसपुरुषको सेवनकरते हैं जबपिताप्रसन्न होताहै तब सबपापोंका प्रायश्चित्त होजाताहै, फूल बन्धन से छूटजाता है और फल वृक्षसे गिरपड़ता है परन्तु दुःख पानेवाला पिता पुत्रके स्नेह बन्धन से पुत्र को कभी नहीं छोड़ता है, यह पुत्रकी विचारी हुई पिता की प्रतिष्ठा है और सर्वोत्तम स्थानहै, अबमैं माताका विचार करताहूं, मेरे नररूप होनेमें जो यहनीच आज्ञाभंग संबंधी समूहहै जैसे अग्निका उत्पत्तिस्थान अरनीकाष्ठ है इसीप्रकार इस समूहका उत्पत्ति स्थान मेरीमाता है मातापुरुषों के देहोंकी अरनीहै और सब दुःखी पुत्रआदिको सुखदेनेवाली है माताके वर्त्तमान होनेमें सनाथता नियत है और माता न होनेमें अनाथता होतीहै, निर्द्धन मनुष्यभी माता यह शब्द कहके घरमें जाकर शोकसे रहित होता है और माता के होने में इसको बृद्धावस्था भी पीड़ित नहींकरती है, जो पुत्रादि युक्त भी माताके शरणमें है वह सौबर्ष के अंतमें भी दोबर्षकी अवस्थाके समान आनन्दसे बिचरता है, माता समर्थ असमर्थ दुर्बल स्थूल चाहै जैसापुत्रहो उनकी रक्षाकरती है ऐसीरक्षा उसबुद्धिसे अन्य मनुष्यनहीं करसका, जब पुरुषमातासे पृथक् होता है तबहीं बृद्धहोकर दुःख को पाता है और संसार उसकी दृष्टिमें नष्टसा मालूम होता है, माताके समानछाया नहीं माताके समान गति नहीं माताके समान रक्षा स्थान नहीं, माताके समान कोई प्यारानहीं, उदरमें धारणकरनेसे धात्री और उत्पन्न करनेसे जननी और अंगोंकी बृद्धिकरनेसे अंबा और बीरपुत्र उत्पन्न करनेसे बीरसूकहाती है, बालकका पोषणकरने से स्वसूहै यह माता प्रत्यक्ष देहहै वहज्ञानी मनुष्य इस को नहीं मारताहै जिसका शिर कटुतूमरके समाननहींहै सत्संगकेसमय स्त्री पुरुष दोनों यही मनाते हैं कि हमारे पुत्र स्वरूपवान् और दीर्घायुहों परन्तु जीवों का प्रयोजन मातामें नियतहै जो गोत्र है उसको माता जानतीहै और जिसका पुत्रहै उसको भी माताही जानतीहै, गर्भ में धारण करने से माता की प्रीति और शुभ करना चाहिये और पुत्र पिताकी सन्तानहैं तात्पर्य्य यह है कि माता पिता दोनों की आज्ञा मानना अवश्यहै जो पुरुष आप प्रतिज्ञा

पूर्वक पाणिग्रहण करके और साथ में धर्मको पाकर दूसरी स्त्रियोंके पासजावें-
गे वह पूजन और प्रतिष्ठाके योग्य नहीं हैं, तात्पर्य्य यहहै कि मेरा पितापति-
व्रताका स्वामीहै इससेपूजनके योग्यहै, फिरपिताकी आज्ञासेमाताको मारना
चाहिये यह शंका करके कहतेहैं कि स्त्री के पोषण करनेसे भर्त्ता और पालन
करने से पति कहाजाताहै इस गुण के न होनेसे न भर्त्ताहै न पतिहै तात्पर्य
यह हुआ कि भार्या के मारने का इच्छावान् और पोषण रक्षणादि गुण से
पृथक् इस पिता की आज्ञासे माताको नहीं मारूंगा, कुचालनी स्त्री मारने के
योग्यहै नहीं तो कुल में संकर होताहै यह शंका करके कहतेहैं कि स्त्री इस
प्रकारसे भी अपराध रहितहै पुरुषही अपराध कर्त्ता है पुरुषही परस्त्री गमनादि
बड़े २ दोषों को करताहै, ऐसे पुरुषके साथ आनन्द मानने से स्त्री का भी
अपराधहै यह शंका करके कहते हैं कि स्त्री का परम देवता दैवत कहाहै उस
के शरीर के समान इन्द्रको जानकर और देखकर अपना श्रेष्ठ अंग देदिया
तात्पर्य्य यह है कि अपने भर्त्ताके रूपके समान अन्य मनुष्यको अपना भर्त्ता
जानकर अपना देह देनेवाली मेरी माताका व्यभिचार दोष नहीं है, गर्भ से
उत्पन्न कुल संकरके न होने से यह मारने के योग्य नहीं है, स्त्रियों का अप-
राध नहीं है पुरुषही अपराध कर्त्ताहै सबबातोंमें पतिके स्वतन्त्र होनेसे जबर-
दस्ती से होनेवाले व्यभिचार आदिमें स्त्रियां अपराध नहीं करतीहैं कामदेव
को स्त्री में लगानेवाले इन्द्रकाही प्रत्यक्ष दोषहै मेरी माताकानहींहै यहनिस्सं-
देह बातहै आशय यहहै कि इन्द्रके अपराधसे माताका मरना न्याय विरुद्धहै
इसप्रकार अज्ञानी पशुओं ने भी स्त्री को और पतिव्रता माताको मारने के
अयोग्य समझाहै, एकही स्त्री के पास नियत पिताको देवताओं का समूह
समझा है अर्थात् पिताके प्रसन्न करनेसे स्वर्ग की प्राप्ति है और देव मनुष्यों
का समूह प्रीति से माताको प्राप्त होताहै अर्थात् माता दोनों लोकों की देने
वाली और इस लोकमें पोषण करनेवालीहै अभ्यास और विलम्बसे करने के
कारण बहुतविचार करतेहुये उसको बहुत समय व्यतीतहोगया और उनका
पिता भी आपहुंचा, बड़ेज्ञानी तपनिष्ठ मेधातिथि नाम गौतम स्त्रीके अयोग्य
मरणको विचारकर अत्यन्त दुःखित अश्रुपात डालतेहुये बोले और शास्त्रयुक्त
धैर्य से शान्त हुये और पश्चात्ताप करने लगे कि तीनों लोक का ईश्वर
इन्द्र ब्राह्मण रूपधारी अतिथिरूपी व्रतमें नियत होकर मेरे आश्रम में आया
वह मेरे वचनोंसे विश्वसित कियागया और कुशलक्षेम पूछकर पूजन किया
गया और न्याय के अनुसार मैंने अर्घपाद्य भी प्राप्त किया और मैं आप से
सनाथहुआ यहवचनभी कहागया, इस निमित्त कि वह इसवचनसे तृप्तहोकर
मुझपर प्रीति करेगा इस विचार में कामी इन्द्रकी ओरसे स्त्री दोष उत्पन्न होने

से स्त्री की बे मर्यादगी नहीं है, इसप्रकार स्त्री समेत मैं और स्वर्गमार्गगामी देवेश्वर इन्द्र अपराधी नहीं हैं योगधर्ममें जो असावधानी है वही अपराधकरती है, दुःखको अधैर्य से उत्पन्न होनेवालाकहाहै इसीकारण मुनि लोग ऊर्द्धरेता होतेहैं मैं अपने अधैर्य से अपमान युक्त हुआहूं और कुकर्मरूपी समुद्रमें डूबा हुआहूं, पतिव्रता स्त्री गर्भ का स्थान होने से और पोषण करनेके हेतु भार्या नामसे प्रसिद्ध है उसको मारकर मुझको कौन पार उतारेगा, बड़ा बुद्धिमान् चिरकारी जिसको भूलसे मैंने मारनेकी आज्ञादी है वह चिरकारीही मुझको पातक से निवृत्तकरे अर्थात् रक्षाकरे, हेचिरकारी तेरा कल्याणहो और भला हो और तुम चिरकारीहो इसकारण कि बिलम्बसे कामके करनेवालेहो, मुझ को और अपनी माताको और जो मैंने तप संचय किया है इन सबको और अपनेको पातकसे रक्षाकरो और बिलम्बसे कार्यकर्त्ता होना यह गुण तुम में स्वाभाविक है यहतेरागुण तेरी बड़ी बुद्धिसे सफलहो बहुत समयतक मातासे इच्छाकियागया और बड़ेकालतक गर्भमें धारण कियागया हे चिरकारी तुम अपने बिलम्बयुक्त कार्य्योंको फल युक्तकरो तेरे बिचारसे वहुत कालतक रक्षा कियागया मनुष्यबहुतसमयतक सोताहै इससे हमदोनोंके बड़ेदुःखका बिचार करो, हे राजा युधिष्ठिर जब इस प्रकारसे उस गौतम ऋषिने अपने चिरकारी पुत्रको सन्मुख वर्त्तमानदेखा उसकेपीछे बड़ेदुःखी चिरकारीने अपने पिताको देखकर शस्त्रको त्यागके मस्तकसे प्रसन्न करनेकेलिये कर्मको प्रारंभकिया ६० तदनन्तर गौतमनेभी शिरके बलसे पृथ्वीपर गिरेहुये उसपुत्रको और लज्जासे पाषाणरूप उसस्त्रीको देखकर बड़ेहर्षको पाया, आश्रममें नियत उसमहात्माके हाथ से वह स्त्री मारी नहीं गई और मारडालने की आज्ञा पानेवाला पुत्र भी निर्जन स्थानमें चैतन्यरहा अर्थात् माताको नहीं मारा और अपने पिताकी आज्ञामें अनुपस्थित खड्ग हाथ में लिये कार्य में नियत होनेपर और चरणों पर झुकेहुये पुत्रको देखकर पिताका यह सम्मतहुआ कि यह भयसे शस्त्र धारण करने की चपलताको गुप्त करताहै, फिर पिताने कुछ कालतक प्रशंसा करके बिलम्बतक मस्तकको सूंघते दोनों भुजाओंसे मिलकर यह बचनकहा कि चिरंजीवीहो, इसप्रकार प्रीतिकी प्रसन्नता सहित उस महाज्ञानी गौतमने पुत्रकी प्रसन्नता के अर्थ फिर यह बचन कहा; कि हे चिरकारी तेराभलाहो बिलम्बमें कार्य करनेवाले बहुत समयतक जियो हे सौम्यपुत्र तेरे बिलम्ब से आज्ञावर्त्ती होनेसे मुझको दुःखी न होनापड़ा, यह कहकर पुत्रसे इसकथाको कहा जोकि बिलम्बसे कार्य्य करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषोंके गुणों के बिषयमें है देरमें मित्रको पकड़े और बनायेहुये मित्रको बिलम्ब से त्यागकरे और देरमें कियेहुये मित्रको बिलम्बतक रखना उचित है, वह मनुष्य प्रीति, अहंकार,

शत्रुता, पापकर्म, और करने के योग्य अप्रिय कर्म में प्रशंसा कियाजाता है
जो कि चिरकारी अर्थात् बिलम्ब से कार्य्य करता है, बान्धव, सुहृद, स्त्री जन
नौकर आदि इनसबके गुप्त अपराधों में चिरकारीही प्रशंसा किया जाता है,
हे भरतवंशी इसप्रकारसे गौतमजी पुत्रपर प्रसन्नहुये और पुत्र चिरकारी उनसे
आनन्दितहुआ, इसी हेतुसे सब पुरुष अपने सब कार्योंको बिचारकर बिलम्ब
तक निश्चय करके बहुतदुखी नहींहोताहै अर्थात् फिर पश्चात्ताप नहींहोताहै,
जबकि देरतक क्रोधको धारण करताहै और देरमें उसकर्मको निश्चय कर-
ना है ऐसी दशा में पश्चात्ताप पैदा करनेवाला कोई नहीं होता है, देरतक
की उपासना करे, देरतक सन्मुख बैठकर पूजनकरे, देरतक धर्मका सेवन
देरतक धर्मको खोजकरे, देरतक ज्ञानियों के पास बैठे, देरतक श्रेष्ठ पुरुषों
सेवन करे, देरतक चित्तको स्वाधीन करे, तो देरतक प्रतिष्ठाको पाता है
सम्बन्धी वचन कहने वालेभी दूसरे को देरमें उत्तर दें तो देरतक दुःखको
पाते हैं, इसके पीछे वहबड़े तपस्वी पुत्र समेत बहुनकालतक उसआश्रम
निवास करके स्वर्ग को गये ७८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेत्रिनवतितमोऽध्यायः ९३ ॥

## चौरानबेवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोलेकि हेसत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ पितामह जबहिन्साही धर्महै हिन्साही
पापहै तो अपराधियोंके दण्ड देनेवाले राजाको हिन्सा कैसे होगी और बिना
दण्ड दिये संसारकी रक्षा कैसे होय और राजाकी रक्षा कैसेकरे और किसको
मारे किसीको न मारे यह आपसे पूछताहूं आपसमझाकर कहिये, भीष्मजी
बोले कि इस स्थानपर इस प्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसमें द्युमत्सेन और
राजासत्यवानका संवादहै, पिताकीआज्ञासे अपराधियोंके मारनेपरउपस्थित
होनेपर सत्यवानने यहवचनकहा जिसको कि पूर्व में किसीने नहीं कहाथा,
धर्म अधर्मरूपको और अधर्म धर्मरूपको वहांभासहोताहै जहांपर कि घातनाम
ही धर्म होताहै यहनहीं होनेके योग्यहै, द्युमत्सेन बोले कि हे सत्यवान जो न
मारनाही धर्म है तो ऐसीदशा में अधर्म कौनहोगा जो चोर न मारेजायँ तो
वर्णसंकर होजायँ, यह मेराहै और इसका नहीं है यहबात कलियुग सम्बन्धी
वर्त्तमान होजायँ तीर्थ यात्रा और व्यापारादिक व्यवहार भी मिटजायँ इस
विषय में जो आप जानतेहो वह मुझसे कहिये, ६ सत्यवान् बोला कि यह
तीनों वर्ण ब्राह्मणों के स्वाधीन करने चाहिये, इन धर्म्मपाश में बँधेहुये तीनों
वर्णों के दूसरे अनुलोम प्रतिलोम से पैदा होनेवाले सूत मागध इत्यादि भी
इसी प्रकार कर्म्म करेंगे उनमें जो २ पुरुष न्यायके बिपरीत हों उनको प्रकट

करदें कि यह मेरी आज्ञाको नहीं सुनते हैं राजा उनको दण्ड देगा, जिस शास्त्र में देहका नाश नहीं कहाहै उसमें प्रवृत्त होना चाहिये सब प्रकारकी बातोंको और शास्त्रके अभिप्रायको बुद्धिके अनुसार न बिचारकर हिंसात्मक शास्त्रके अनुसार कर्म्म न करना चाहिये, राजा चोरों को मारता है तो उनके साथ उनकी स्त्री माता पिता पुत्र आदि बहुतसे मनुष्य निरपराध मारेजाते हैं इसी कारण किसी से आज्ञाभंग किया हुआ राजा अच्छे प्रकारसे विचार करे, किसी समय साधुओं के सत्संग से असाधु पुरुषभी उत्तम स्वभाव को पाता है और असाधुओं से भी श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न होती है, निर्मूल न करना चाहिये क्योंकि यह सनातन धर्म्म नहीं है, थोड़े मारनेका भी प्रायश्चित्त होता है, भय दिखाना, पकड़ लेना, कुरूप करना इत्यादि बातोंसे दण्डदेना चाहिये और उन भार्य्या पुत्रादि को पुरोहित की सभा में उनके अपराधी स्वामियों को मारकर दुखी न करना चाहिये जब रक्षाकी इच्छा करके वह चोर पुरोहितके पास जाकर यह कहें कि हे स्वामी हम फिर इसपाप को नहीं करेंगे तब छोड़देने के योग्य हैं क्योंकि ईश्वर की आज्ञाहै कि दण्ड मृगचर्म का धारण करनेवाला मुण्ड ब्राह्मणभी उपदेश के योग्य है, बड़े आदमी बड़ा अपराधकरें तब बराबर अपराध करनेपर छोड़नेके योग्य नहींहैं, द्युमत्सेन बोले कि प्रजाके लोग जिस जिस मर्य्याद में चलाने सम्भवहों वही धर्म तब तक कहाजाता है जबतक कि वह धर्म्म उल्लंघन नहीं किया जाता है, फिर धर्म्म के विपरीत चलने पर चोरों के न मारने में प्रजा का नाश होजाता है प्राचीनसे प्राचीन समयमें संसार के लोग सासना योग्य होतेथे क्योंकि वह मनुष्य बड़े मृदुस्वभाव सत्यवक्ता शत्रुता, क्रोध आदि साधारण रखते थे उस समयमें धिक्कार दण्ड करनाही महादण्ड समझते थे फिर बचनदण्ड अर्थात् दश्युनाम आदिही दंडनियतहुआ फिर आदानदंड अर्थात् जुर्माना दंडहुआ अब कलियुग में मारनाही बड़ा दण्डहै कोई कोई मनुष्य मारनेसे भी सुमार्ग में चलाने असम्भव हैं, चोर न मनुष्यका है न देव गन्धर्व्व पितरोंकाहै फिर यहां कौन किसका है कोई किसीका नहींहै यह श्रुति है, वह चोर मृतक के भूषण आदिको लेताहै और पिशाच से ग्रसित मनुष्यके भी वस्त्रादिक हरण करताहै उन निर्बुद्धी और नाशवान् चोरों की बुद्धिमें कौन शपथ आदि मर्य्याद को जारीकरे अर्थात् कोई नहीं जारी करसक्ता तात्पर्य्य यह है कि चोरोंकी जातिका कभी बिश्वास नहीं है सत्यवान बोला कि जो तुम हिंसा आदि से उन साधुओं की रक्षा करने को समर्थ नहीं हो तो उसदशामें किस यज्ञके लाभसे उनचोरों के नाशको करतेहो आशय यह है कि वेदकी श्रुति के अनुसार चारों बरण जो कि अपराधी मारने के दण्ड योग्यहों वह यज्ञमें

मारने योग्यहैं क्योंकि वह यज्ञ पशु होकर स्वर्ग को जाते हैं, राजालोग इस प्रकारके चोरों से लज्जा करते हैं इस कारण चौरकर्मी होकर संसार के प्रबन्ध के निमित्त बड़ी तपस्या करते हैं, भयभीत करीहुई प्रजा नेकचलन होती है, राजा अपराधियों को अपनी इच्छानुसार नहीं मारते हैं अर्थात् जो बध के योग्य होता है उसको यज्ञ में मारते हैं और उत्तम कर्म्म सेही प्रजा को भय दिखलाकर शिक्षा करते हैं, ऐसा राजा होने पर सब मनुष्य परम्परा पूर्वक उसके चलन के अनुसार कर्म्म कर्त्ता होते हैं क्योंकि बहुधा मनुष्य अपने गुरू की मर्य्यादा पर चलते हैं जो राजा अपने चित्तको स्वाधीन किये विना दूसरों को अपने स्वाधीन करना चाहता है मनुष्य उस राजा को जो कि पशुओं के मध्य में इन्द्रियों के स्वाधीन हैं हँसते हैं, जो मनुष्य कपट और मोह से राजा की कुछ आज्ञा भंगकरे वह सब प्रकार से दण्डके योग्य है वह उसी प्रकार दण्डसे और पाप से निवृत्त होता है, अपराधी को दण्ड देने की इच्छा करनेवाले राजाको पहिले अपना चित्तही स्वाधीन करना योग्यहै और अपराधी के भाई आदि को भी बड़े दण्डों से दण्ड देवे, जिस राज्य में पाप करनेवाला नीच मनुष्य बड़े कष्टको नहीं पाता है वहां निश्चय करके पापी लोगों की वृद्धि होती है और धर्मका नाश होता है, हे तात इसप्रकार दयावान ज्ञानी ब्राह्मणने शिक्षा करी उसी प्रकार विश्वास देनेवाले पूर्व के महात्माओं से भी यही शिक्षा हुई है हे राजा सतयुग में इस भूमण्डलको हिंसारूप दण्ड से भी स्वाधीन कियाहै, अर्थात् धिक्कार करना कठोर वचन कहना जुर्माना लेना बध करना इनमें एकएक दण्डको क्रमसे हरएक युगमें जारी करे इसप्रकार धर्म के तीन चरण त्रेतायुगमें प्राप्तकरे द्वापरमें दो चरण से और कलियुग में एक चरण से और कलियुग के वर्त्तमान होनेपर मुख्य समयमें राजाके कुकर्म से धर्मकी सोलहवीं कलाबाकी रहजातीहै, हे सत्यवान फिर हिंसारूप दण्ड देनेसे वर्णसंकर होते हैं, अवस्था सामर्थ्य और समयको निश्चय करके तप रूप दण्ड की आज्ञादे अर्थात् जैसे तप से पाप नष्ट होता है इसी प्रकार अपराधी दण्ड पाने से पवित्र होताहै इसी कारण से तपका अर्थ दण्डहै, जैसे इसलोकमें बड़े धर्मफल अर्थात् ज्ञानको ब्रह्मप्राप्ति के लिये त्याग नहीं करे उसी प्रकारका अहिंसारूप धर्म स्वायम्भूमनुजी ने जीवों के उपकारार्थ वर्णन कियाहै ३६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ९४ ॥

## पञ्चानवेवां अध्याय ॥

जीवों की अहिंसा से जो छः गुणका कारण योगथा उसको कहा और

हे पितामह जो धर्म दोनों ओरका गुणदायक हो उसको मुझसे कहिये, ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, लक्ष्मी, वैराग्य, धर्म यह छः भग नामहैं यहछओं जिसके पासहों और जो जीवों की उत्पत्ति नाश होना, मोक्ष, विद्या, अविद्या, को जानताहै उसको भगवान् कहते हैं १ हे पितामह यह दोनों सन्मुख वर्त्तमान गृहस्थधर्म्म और योग इन में कौनसा कल्याणकारी है, भीष्मजी बोले कि यह दोनों गृहस्थ और योगधर्म बड़े कठिनहैं इनका पूरा करना बड़ा कामहै परन्तु सत्पुरुषों के करने के योग्य और बड़े फल के देनेवालेहैं, मैं इन दोनों के प्रमाणको कहताहूं तुम चित्त लगाकर सुनो कि यह धर्म अर्थके संशयका हरनेवाला प्राचीन इतिहासहै जिसमें कपिलजी का और गौ का सम्वाद है, कि प्राचीन समयमें राजानहुषने सनातन अचल आम्नाय को देखके त्वष्टा के निमित्त मधुपर्क में गो बध करना चाहाथा यह हमने श्रवण कियाहै कि उस समय महाज्ञानी उदारबुद्धि सतोगुणी शान्तचित्त कपिलजीने इसप्रकार से मारने को आगे की हुई गौ को देखकर अकस्मात् यह वचन कहा कि हे वेदो तुमको धन्यहै, स्यूमरश्मि नाम ऋषिने उस गौ में प्रवेश होकर कपिल यती से यह कहा कि बड़ा आश्चर्य्य है कि वेदनिन्दित मानेगये तो अब हिंसारहित धर्म ज्ञानका निश्चय किससे कियाजाय, तपस्वीलोग उस सदैव ज्ञानरूप परमेश्वर के कहेहुये वेदको अत्यन्त आर्ष मानते हैं वह तपस्वी अत्यन्त ज्ञानी विज्ञान शास्त्ररूप नेत्र रखनेवालेहैं और ईश्वरका कहाहुआ वचन मिथ्या नहीं होसक्ताहै, कपिलजी बोले कि मैं वेदोंकी निन्दा नहीं करताहूं और धर्म के विपरीत भी कभी न कहूंगा जुदे२ आश्रमोंके कर्म एकही प्रयोजनवाले हैं, संन्यासी वाणप्रस्थ ब्रह्मचारी गृहस्थ यह सब परमपदको पातेहैं यह चारों सनातनमार्ग आत्माको प्राप्तकरनेवाले मानेहैं उनमें न्यूनाधिकता औरएकसे एककी श्रेष्ठता दिखलाने के निमित्त यह कहाहै कि संन्यासी मोक्ष को, वाणप्रस्थ ब्रह्मलोकको, गृहस्थी स्वर्गलोक को, और ब्रह्मचारी ऋषि लोकको पाताहै, इसप्रकार जानकर सब स्वर्ग आदि अर्थोंके निमित्त यज्ञ आदिको प्रारम्भ करे यही वेदका मतहै इससे भिन्न कर्म्मोंका प्रारम्भ न करे यह निष्ठावान् श्रुति भी कहींकहीं सुनीजाती है, कर्म्म के प्रारम्भ न करने में दोष नहीं होता है और कर्म्म के प्रारम्भ में बड़ा दोषहै इसप्रकार के नियत शास्त्रों म प्रधानता अप्रधानता जानना कठिन है, जो यहां कोईशास्त्र प्रत्यक्ष फलवाला और अहिन्सासे श्रेष्ठतम वेदशास्त्रसे विशेष है और आप उसको अनुभव से देखतेहोंय तो कहिये, स्यूमरश्मिऋषि बोले कि यह स्मृति है कि स्वर्ग कामनावाला सदैव यज्ञकरे इसमें प्रथम फलका संकल्प करके यज्ञरचाया जाताहै १८ बकरा, घोड़ा, मेढ़ा, गौ और पक्षियोंके समूह आदिका भोजन

गावँ और बनकी औषधी है इसीसे इनके प्राणों की रक्षाहोतीहै यह श्रुति है इसीप्रकार प्रतिदिन प्रातःकाल सायंकाल अन्न नरोंके अर्पणहोता है पशु और धान्य यज्ञके अंगहैं यहभी श्रुतिहै इनको ब्रह्माजीने यज्ञोंके साथही उत्पन्न करके यज्ञसे देवताओंको पूजा २१ इसके सबजीव जो कि सातप्रकारकेहैं परस्पर में एकसे एकसेएक उत्तमहैं उसउत्तम नाम विश्वरूप पुरुषको यज्ञों में लयादिक करनेके लिये संस्कारसे संयुक्तकिया अर्थात् गौ, बकरा, मेढा, मनुष्य, घोड़ा, खिच्चर, गधा यह गांवके पशुहैं और सिंह, व्याघ्र, बराह, भैंसा, हाथी रीछ,हिरन यहसात बनकेपशुहैं सबके पूर्व्वमें बिष्णु और फिर ब्रह्माआदिने यह यज्ञका उपदेश कियाहै मुझसे बकरा घोड़ा आदिका मारना संभवहै इसबात को जानकर कौन पुरुष प्राणियोंको यज्ञमें मारनेके निमित्त विचार न करेगा; यज्ञमें हिंसा दोषनहीं है इसबातको सिद्ध करके कहते हैं कि पशु आदिवृक्ष औषधी स्वर्गकोही चाहतेहैं और स्वर्ग यज्ञके विना मिलनहीं सक्ता, औषधी, पशु, वृक्ष, बीरुधि लता, घृत, दूध, दही, हव्य, पृथ्वी, दिशा, श्रद्धा, काल, यह बारह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और सोलहवां यजमान और इनका ग्रहपति अग्निहै वह सत्रहवां कहाजाता है, यहसब यज्ञके अंगहैं औरयज्ञही संसारकी स्थितिका मूलहै यह श्रुतिहै,गौअपनेघृत दूध,दही, गोबर, फटादूध चर्म,बैल,पूंछ, सींग, और चरण आदि से यज्ञको सिद्धकरती है अर्थात् पूर्ण करती है और जो २ अंग इस यज्ञका कहाजाताहै सब इसीप्रकारके हैं यहसब इकट्ठे होकर दक्षिणा पाने वाले ऋत्विजों के सहित यज्ञ को धारण करते हैं इन सबको इकट्ठा करके यज्ञ निर्माण करतेहैं, वह सब यज्ञकेही निमित्त उत्पन्न हुये इस अर्थवाली श्रुति कही और सुनी जातीहै इसीप्रकार सब प्राचीन लोग कर्मकर्त्ता हुये, जो पुरुष फलकी अनिच्छासे पूजन करताहै वह न हिंसा करताहै न यज्ञ कर्म का प्रारम्भ करताहै और शत्रुता भी किसी से नहीं करता है क्योंकि वह यज्ञ करने केही योग्यहै, यह औषधी आदि यज्ञके अंग और यज्ञ में वर्णित यज्ञ कुंभादिक अपनी अलौकिक बुद्धिके अनुसार परस्पर में एकएककी सहायता करतेहैं, मैं उस आम्नाय को आर्ष देखताहूं जिसमें वेद प्रतिष्ठावान्हैं ज्ञानी लोग वेद ब्राह्मण के बिचारसे उसको देखतेहैं, यज्ञ में वह वेदके ब्राह्मणों से उत्पन्न होनेवाले हैं और ब्राह्मणमेंही वर्त्तमान हैं सब संसार यज्ञ के पीछेहै और यज्ञ सदैव संसार के पीछे है, वेदके उत्पत्तिस्थान प्रणव, नमस्कार, स्वाहा, स्वधा, वषट् यह सब जिसकी औरसे सामर्थ्य के अनुसार होतेहैं वह प्रयोग कहेजाते हैं उसके भयसे इसलोकको तीनों लोकोंमें नहीं जाना इसबातको वेदसिद्ध और महर्षिलोग जानतेहैं, ऋग यजुसाम और स्तोम इत्यादि विधि जिसमें सबहोती हैं वह द्विज कहा जाताहै, फिर अग्नि

होत्र और सोमपानमें जो फल ब्राह्मण को मिलता है या अन्य महायज्ञों से मिलता है, उसको आपज्ञान ऐश्वर्य्य से संयुक्त जानतेहो, हे ब्रह्मन् इसीकारण यज्ञकरे और बिचार सहित यज्ञकरावे स्वर्गकेदाता ज्योतिष्टोमादि से पूजन कराने वाले पुरुषको देहत्यागने के पीछे बड़ा स्वर्गफल मिलता है, यज्ञके न करने वालोंका न यहलोक है न परलोकहै यह निश्चयहै कि जो पुरुष वेदों के अर्थवादको जानता है उसका दोनों प्रकारका अर्थवाद प्रमाण है क्यों कि एक अर्थवाद केवल प्रशंसा रूप होता है जिसके द्वारा फलरहित कर्म करके शुद्धचित्त होकर मोक्षका अधिकारी होताहै और आत्मज्ञानी सबलोक और मनोरथों को प्राप्त करता है इसीकारण दोनों अर्थवाद समान हैं यह पूर्व पक्ष हुआ, ४० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे पंचनवतितमोऽध्यायः ९५ ॥

# छानवेवां अध्याय ॥

कपिलजी बोले कि हम नियमादि गुणयुक्त योगमार्गमें प्रवृत्त ज्ञानीलोग इसकर्मफल से उत्पत्ति और दृष्टि गोचर होने से अभाव रूप ब्रह्माण्ड के साक्षात्कार आत्माको प्राप्तहोते हैं और फलश्रुतिको अर्थवाद कहा यह शंका करके कहते हैं कि सबभोग पदार्थों में इन योगोंका संकल्प मिथ्या नहीं है अर्थात् इनके संकल्पसेही सब कुछ प्रकट होजाता है यह ज्ञानका फलहुआ आशय यहहै कि ज्ञानीका आत्मज्ञान कर्मके अंगत्व भावको प्राप्तनहीं होताहै क्योंकि वहांपर आत्मा के सिवाय कोई दूसरा शेष नहीं रहता इस कारण आत्मज्ञान का फल अर्थवाद नहीं होसक्ता और दूसरा अर्थवाद कर्म में ज्ञानी की श्रद्धा करने के लिये होता है यह उत्तर पक्ष हुआ, वह ज्ञानी लोग शीतोष्णता से उत्पन्न हर्ष शोकादि रहित किसी को नमस्कार न करनेवाले स्वभाव सिद्ध निर्म्मल अर्थात् आगामी दोष और पापों से रहित विचरते हैं वह मोक्ष सब त्याग और बुद्धि में निश्चय करने वाले ब्रह्मेष्टि ब्रह्मरूप ब्रह्ममें ही निवास करने वाले शोकरहित नाशवान रजोगुणहैं उनके सनातन अभीष्ट अर्थोंको अर्थात नित्य शुद्धतासे उत्तम गतिको पाकर गृहस्थ आश्रम के धर्मों में उनका क्या प्रयोजन है, स्यूमरश्मि बोले कि जो यह परम काष्ठाहै या परमगति है तौ भी गृहस्थियों को रक्षाश्रय होकर दूसरा आश्रम वर्त्तमान नहीं होता है, जैसे कि सबजीव अपनी २ माता के आश्रय होकर जीवते हैं इसी प्रकार अन्य आश्रम गृहस्थाश्रम का आश्रय लेकर वर्त्तमान होते हैं, गृहस्थी यज्ञ करता है गृहस्थीही तप करता है और सुखकी इच्छा से जो २ चेष्टा करता है उस धर्म्म फल का मूल गृहस्थाश्रम है, सब मनुष्य और जीव

मात्र सन्तान उत्पन्न होनेसे प्रसन्न होतेहैं दूसरे आश्रममें किसीप्रकारसे भी संतान नहींहोसक्ती,तृणधान ओषधी आदिका मूलभी गृहस्थाश्रमहै जैसे कि यज्ञ करनेसे बर्षा अन्नादि जीव क्रमसे उत्पन्नहोतेहैं क्योंकि ओषधीरूप प्राणसे कुछ बाहरनहीं दृष्ट पड़ताहै, किसका बचन सत्य नहीं है कि गृहस्थ आश्रम से मोक्ष नहीं है श्रद्धा रहित अज्ञानी सूक्ष्म दृष्टिसे पृथक् प्रतिष्ठारहित आलस्य परिश्रम युक्त और अपने प्राकृतकर्मों से दुःखित अपंडित मनुष्योंमें से संन्यासमें प्रवृत्त चित्त बाहर से उत्तम नहीं देखागया है, सनातन धर्म्मकी अचल मर्यादा तीनों लोककी कारण है प्रत्यक्ष है कि वेदज्ञ ब्राह्मण भगवान् के समान जन्म सेही पूजाजाताहै, ब्राह्मण आदि तीनों बरणों में गर्भाधान से पूर्वही वेदोक्त मन्त्र जारी होतेहैं और इसलोक परलोक सम्बन्धी साधन के योग्य सब कर्म्मों में निश्चय करके मंत्रही साधकहोते हैं, मृतकका दाह आदि कर्म्म जो कि दूसरे जन्म से संबंध रखनेवाला है और जन्म लेनेवाले मृतकके लिये तर्पण श्राद्ध आदिमें अन्नजल गोदान आदिका देना और वृषोत्सर्ग और और जलमें पिण्डोंका डालना इत्यादि सबकर्मों में बड़े तेजस्वी वर्हिषदनाम पितृ गण और कव्य के भोजन करनेवाले पितर मंत्रों को ही साधकमानतेहैं और मंत्रही कारणहै इसप्रकारसे कहनेवाले वेदोंमें कैसे किसी की मोक्ष है जब कि संसारके लोग देवता और ऋषि पितरोंके ऋणीहैं, निर्धन आलस्यी पण्डितों ने वह वेदबचनों के ज्ञानसे रहित सत्य समान दीखने वाला मिथ्यारूप मोक्ष स्वरूप जारी कियाहै, जो ब्राह्मण वेद और शास्त्रों के अनुसार यज्ञ करता है वह पापसे मुक्त और आकर्षण नहीं कियाजाताहै और यज्ञके द्वारा पशुओं समेत स्वर्गको जाता हैऔर कामनाओं से पूर्णदेव पितरोंको तृप्त करताहै, वेदोंकी निन्दा और छलसे मोक्षको नहीं पाताहै वह पुरुष वेदमेंही ब्रह्मको पाताहै, कपिलजी बोले कि दर्श पूर्णमास अग्निहोत्र चातुर्मास नाम यज्ञज्ञानी पुरुषोंके हुये इनमें सनातन धर्म है तात्पर्य्य यह है कि चित्त शुद्धिका चाहनेवाला बुद्धिमानही उनका अधिकारीहै २० कर्म्म प्रारंभ न करनेवाले बड़े धैर्य्यमान बाह्याभ्यन्तर पवित्र ब्रह्मज्ञानी और अबिनाशी होनेकी इच्छाकरनेवाले संन्यासी लोग ब्रह्मसेही देवता ऋषि तृप्तकरते हैं, सब जीवों के आत्मारूप और सबजीव मात्रके देखनेवाले परमपद के इच्छावान चिह्नरहित संन्यासियोंके मार्ग में देवताभी मोह को प्राप्तहोते हैं, इस सर्वात्मा चिह्नरहित शरीरके मध्यवर्त्ती आत्माको गुरूके उपदेशसे चारप्रकारका अर्थात् विराट्,सूत्र,अन्तर्य्यामी और शुद्धरूप इनभेदों से जानता है उसके चारद्वार अर्थात् दोनोंभुजा, बचन, पीठ, लिंग, यही गुप्तकरनेवाले हैं और देह, चित्त, मन, बुद्धि यह चारमुख भोगके साधनहैं इनचारों से देवताओंकाभी मोह

उत्पन्नहोताहै इसकारण द्वारपाल अर्थात् भुजा इत्यादिका स्वामी ऐश्वर्यमान् होनाचाहिये पाशोंसे नहींखेले न दूसरेकाधन लेवे और विपरीत जन्मवालेका हव्यनलेवे अर्थात् उसको यज्ञ न करावे और बुद्धिमानीसे न क्रोध युक्तहो न किसीपर चोटकरे गाली आदि न दे वृथावार्त्तालाप न करे कठोरवचन और निन्दा न करे सत्यव्रत मितिभाषी और सावधानहो और उसका वचन द्वारभी श्रेष्ठहोना चाहिये भोजनका अत्यन्तही त्यागी न होमिथ्यावादी न हो लोभ रहित साधुओं की संगतिकरे थोड़ा भोजनकरे इसप्रकार से उसके उदररूपी द्वारकी रक्षाहोती है हे वीर युधिष्ठिर यज्ञ सम्बन्धिनी स्त्रीको कभी पृथक् न करे अर्थात् दूसरी स्त्रीके करनेमें भी उसको धर्म्म अर्थ काममें अविभागिनी नहींकरे और ऋतुकालके बिना स्त्रीको नहीं बुलावे और दूसरेकी स्त्रीकेरूपसे सदैव परहेज करे कभी परस्त्री वासना आत्मामें न धारणकरे इस प्रकार से उसकेलिंग रूपद्वारकी रक्षाहोतीहै जिस बुद्धिमान्के लिंग, उदर, भुजा वचन यह चारोंद्वार अच्छे दृढ़होते हैं वही ब्राह्मणहै और जिसके यह चारोंद्वार रक्षितनहीं हैं, उसके तप आदि सब धर्म्म निष्फल होते हैं और वस्त्राच्छादन रहित बिना अस्तरण शयन कर्त्ता भुजा कांखवाले शांतरूपको देवता लोग ब्राह्मण जानते हैं, जो एकाकी दूसरों का ध्यान न रखनेवाला दुःख सुख के स्थानों में समभावसे निवास करनेवाला है उसको भी देवताओं ने ब्राह्मण कहा है और जिस से ब्रह्मकी एकता जानी जाती है और जीवों की गति का जानने वाला है और सब जीवों से निर्भय है और उस से भी सब निर्भय हैं वह सर्वात्मा रूपहै और दानयज्ञ क्रियाओंके चित्तशुद्धी आदि फलगुरु आदि से बिना पूंछे और कहे हुये ब्रह्मज्ञानको नहीं जानते हैं, और उसब्रह्मको न जानकर दूसरे स्वर्गादिक फलको स्वीकार करते हैं, आश्रमियोंका वेदांत श्रवणादि रूप विचार अपने कर्म्मों समेत उस अज्ञानका भस्मकरनेवालाहोताहै जो कि संसारका मूलहै, उसआदि रहित सदैव मोक्षके योग्य निश्चेष्ट फलयुक्त सदाचार में आश्रित होकर धर्म्मशास्त्रों में लिखेहुये किसी कर्म्म के करनेको समर्थ न होते उनकर्म्मों को देखतेहैं जो कि प्रत्यक्ष फलवालेहैं, पर ऐश्वर्ययुक्त अविनाशी और त्याग यज्ञ आदि कर्म्मोंसे फलकी अनिच्छा रखनेवाले अनेकांतिक हैं सावधानी और कामादिसे पृथक्ता यह दोनों आचार आपद्धर्म्म से पृथक्हैं, तात्पर्य यहहै कि यज्ञ आदिको विनाशवान् जानके ज्ञाननिष्ठा में प्रवृत्तहो स्यूमरश्मि बोले कि कर्म्मको त्यागकरो इसपक्ष के होने पर जिस प्रकार वेदके प्रमाण हैं और जिस रीति से त्याग और वे त्याग फलयुक्त हैं वह दोनों मार्गवेद में साफ कहे गये हैं अब आप ऐश्वर्यज्ञान आदि से युक्त उसकी मुख्यताको मुझसे कहो, फिर अनुभवका

प्रमाण करते हुये कपिलजी बोले कि योगमें जो ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग है उसमें नियत होकर आपलोग यहां शरीरके होतेहुये प्रत्यक्ष देखतेहैं और तुमसरीखे कर्म्मिष्ठ जिसको चाहते हैं वह इस लोकमें किसरूप का प्रत्यक्ष है स्यूमरश्मि बोले कि हे ब्रह्मन् मैं स्यूमरश्मिहूं और ज्ञान सीखने को यहां आयाहूं अर्थात् योगके द्वारा कल्याणकी इच्छासे गौमें प्रवेशकरके मैंने सत्यतासेप्रश्नकिया है अपने पक्ष सिद्धकरनेको नहींकियाहै आप छओं ऐश्वर्यवान्हैं इससेआप इस मेरे घोरसंशयको दूरकीजिये आप योगमार्ग में नियत प्रत्यक्ष देखरहे हैं और वह कौनसा प्रत्यक्षतमहै किसकी आप उपासनाकरतेहैं मैंने वेदके विपरीत बौद्ध, आर्हित, सौगत कापालिकआदि शास्त्रसे पृथक् आगमकेअर्थको बुद्धिके अनुसारजानाहै वहआगम वेदवचनहैं और वेदार्थको साफकरनेवाले पूर्वमीमांसा, उत्तर मीमांसा, सांख्य, पातंजलि यहचारोंभी आगम हैं इनको अपनेआश्रम धर्म्मके अनुसार उपासनाकरे तोआगम सिद्धहोताहै और आगमके निश्चयसे प्रत्यक्ष और अनुमानके अनुसार सिद्धि दिव्य भोगप्राप्ति इत्यादि रूपवाली दृष्टआती है, इसप्रकार दूसरेका मतजाननेके लिये अपने मतकी निन्दाकरते हैं हे वेदपाठी जैसे कि नावमें बँधीहुई और नदीसे बहाई हुई नावपार नहीं लगातीहै इसीप्रकार पहिले कर्म्मोंकी बासनासे बँधीहुई कर्म्म रूपी नौका किसप्रकारसे अज्ञानियोंको तारसक्तीहै आशय यहहै कि अज्ञानी जन्म मरणरूप प्रवाहके तरनेको समर्थ नहींहैं आप छओं ऐश्वर्यवान्हैं और मैं शिष्यरूप वा अधिकारीहूं मुझे उपदेश करके प्रत्यक्षतमको समझाइये,कोई पुरुष कर्म्म की इच्छासे रहित नहींहै और न शोकरोगादिसे पृथक्है, आपभी हमलोगोंके समान प्रसन्नहोते हैं और शोचते हैं आपकी इन्द्रियोंके बिषयभी सब जीवोंके समानहैं इसप्रकार एकही सुखके चाहनेवाले चारोंवर्ण और चारों आश्रमोंके व्यवहारी सिद्धान्तमें कौनसा सुख अबिनाशी है, कपिलजी बोले कि मोक्षशास्त्रकी प्राप्तिके निमित्त जिसजिस वैदिक अवैदिक शास्त्रको अच्छे प्रकारसे अनुष्ठान करताहै वह सबव्यवहारोंमें सफलहै और यह बात प्रसिद्ध है कि जिसशास्त्रमें जिसका अनुष्ठानहै अर्थात् शम दमआदिकी प्राप्ति है उस उसशास्त्रमें सब दोषोंसे रहित आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होती है, साधन के अनुष्ठानसे उत्पन्न ज्ञान सब संसारको आत्मामें मग्नकरताहै अर्थात् ज्ञानीको आत्माके समानरूप करताहै ज्ञान से पृथक् होकर जो वृत्ति वेदोक्तभी है वह जीवोंको दुःखदायी होतीहै जन्म मरणरूपी प्रवाहके पारहोनेसे ज्ञानी आपसे आप प्रत्यक्ष और सब रोगोंसे पृथक्हैं परन्तु आपसरीखे ज्ञानियों में कोई पुरुष द्वैततारहित आत्मज्ञानको पाता है, कोई मनुष्य शास्त्रको तत्त्व पूर्वक न जानकर कामद्वेषसे युक्तहोनेके कारण पराक्रमके द्वारा अहंकारके आधीन

होते हैं, शास्त्रोंके चोर और ब्रह्मके विषयमें विपरीत बचन कहनेवाले शम दम आदि के अनुष्ठानसे रहित मोहके फन्दमें वर्त्तमान पुरुष शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्तको न जानकर फलका होना नहीं देखते हैं आत्मज्ञानको सिद्ध करके ज्ञान ऐश्वर्य्यआदि गुण दूसरेको प्राप्त नहीं कराते हैं अर्थात् पाषाण के समान आपडूबते हैं वह दूसरेके निकालनेको समर्थ नहीं होसक्ते उन शरीरोंका जो अज्ञानहै वही अज्ञान उनका रक्षा स्थान है ५४ जो जीव जैसी प्रकृतिवाला है वह उसी प्रकृतिके आधीन होताहै उसके काम क्रोध द्वेष कपट मिथ्याबचन अहंकार आदि जो प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले गुणहैं वह सदैव वृद्धिको प्राप्त होते हैं परमगति के चाहनेवाले और धारणा ध्यान समाधि रूप नियम में प्रीतिमान् ज्ञानीलोग इसप्रकार से ध्यानकरके पाप और पुण्यको अत्यन्त त्यागकरें, स्यूमरश्मि बोले हे ब्रह्मन् मैंने यह सब शास्त्रसे बर्णन किये क्योंकि शास्त्रको न जानकर बचनबिलास जारी नहीं होते हैं, जोकोई आचार न्याय रूपहै वह सब शास्त्रहै यहश्रुतिहै और जो न्यायके बिरुद्धहै वह शास्त्र नहीं है यहभी श्रुति सुनीजातीहै, यहनिश्चयहै कि कोई बचनबिलास शास्त्रसे रहित नहीं है वेदबचनसे जोअन्यहै वह शास्त्रनहीं है, यहभीश्रुतिहै, प्रत्यक्ष सिद्धको माननेवाले बहुतसेपुरुष शास्त्रसेभिन्न सिद्धान्तको देखतेहैं, आत्माका अनुभव न होनेसे जिनकी स्वरूपनिष्ठा जातीरही और विषयोंमें जिनकी बुद्धि प्रवृत्तहै वह तमोगुण युक्त जैसे कि बौद्ध शास्त्रोक्त दोषोंको नहीं देखतेहैं और शोचते हैं उसीप्रकार हमलोग भी शोचते हैं क्योंकि आपलोगोंकी इन्द्रियों के विषय शीत उष्णता रूपका स्पर्श सबजीवों में एकसाहै अर्थात् सबको सुख दुःख देनेवाले हैं ६० इसप्रकार एक सुखके जाननेवाले चारों बर्ण आश्रमियों के ब्यवहारोंमें हमलोग तुमसे शान्तीको प्राप्त कियेगये जो कि आप सिद्धान्त में अर्थात् सबप्रकार सब शास्त्रोंके सिद्धान्तसे मोक्षको प्रकट करनेवाले बाद बिवाद में समर्थ हैं परन्तु वह निष्ठा सब प्रकारसे कर्म्म निवृत्त शांतचित्त कोई ऐसे योगी पुरुषोंसे प्राप्त करनी सम्भवहै जोकि देहके निर्वाह योग्य भोजनके बिशेष दूसरी बस्तुसे प्रयोजन न रखतेहों, यह न्यायशास्त्रसे रहितलोकनिंदित पुरुष से कहनेके योग्य है कि वेद बचनपर न चलनेवाले की मोक्षहोती है यह कठिनकर्म्म जो कि दान वेदपठन, यज्ञ, सन्तानकी उत्पत्ति, और सीधा-पन है इसको इसप्रकार करनेसे भी जो मोक्ष नहीं है तो ऐसी दशा में कर्त्ता और क्रियाको धिक्कारहै यह परिश्रम निरर्थक किन्तु दूसरी दशा में अर्थात् कर्म्मकाण्डको निरर्थक कहने में नास्तिकता होतीहै और वेदोंकी क्रिया का त्याग होजाता है, हे भगवन् मैं इस कर्म्मकाण्डकाहेतु मोक्ष न होना अथवा मोक्षका अंग होना ठीक २ सुना चाहताहूं हे ब्रह्मन् मैं आपकी शरण में

आयाहूं आप जिस प्रकारसे जानते हो कृपाकरके मुझे समझाइये ९७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्म्मेपर्वणषण्णवतितमोऽध्यायः ९६ ॥

# सत्तानबेवां अध्याय ॥

कपिलजीबोले कि सब वेद लोकोंको प्रमाणहैं वेदको बिना उल्लंघनकिये एक शब्द ब्रह्म अर्थात् कर्म उपासना कांड दूसरा परब्रह्म अर्थात् उपाधिरहित सच्चिदानन्द यह दोनों ब्रह्म जानने के योग्य हैं शब्द ब्रह्म में पूर्ण कर्म कर्त्ता परब्रह्मको पाताहै वेद के उपनिषद्कांड में जिस शरीरको गर्भाधान बुद्धि से उत्पन्न करताहै वह देहको संस्कार युक्त करताहै क्योंकि गर्भाधानके मन्त्रोंमें यह आशीर्वादहोता है कि हे विष्णुजी योनिको कल्पनाकरो प्रजापति सींचो और धाता गर्भको धारणकरो इन मंत्रोंमे विष्णुआदि देवताओं के समान ज्ञान ऐश्वर्य्यादि युक्त जीव उत्पन्न होताहै, वेद और स्मृतियों के संस्कारों से पवित्र देहवाला ब्राह्मण ब्रह्मविद्याके योग्य होताहै इस लोक में कर्मों के फल इस चित्तशुद्धी रूप मोक्षके योग्यको प्रत्यक्षजानो उसका वर्णन तुमसे करता हूं कि वह चित्तशुद्धी रूप फलके बल वेदसे प्राप्त होनेवाला स्वर्ग के समान दृष्टि से गुप्त अथवा परम्पराका उपदेश नहींहै किन्तु लोकसाक्षीहै—अनिच्छा से प्राप्त होनेवाले धनको त्याग करनेवाले निर्लोभी राग द्वेषसे रहित पुरुष यह समझकर यज्ञोंको रचतेहैं कि यह धर्म्म है वही मोक्षका साधन है और धर्मों का वही मार्ग है कि तीर्थके समान पवित्र करनेवाले सत्पुरुषों को दानकिया जाय वह सत्पात्र अग्निहोत्र आदि कर्म्म, योगी पापकर्म्म रहित चित्त के संकल्प से बड़े शुद्ध, विषयों से पृथक्, ब्रह्मज्ञान में निश्चय रखनेवाले, क्रोध निन्दारहित, अहंकार ईर्षादि बिना श्रवण, मनन, निदिध्यासनमें निष्ठायुक्त, जन्म, कर्म्म, विद्या इन तीनों को शुद्ध रखनेवाले अपने कर्मों में प्रतिष्ठित, सबके प्यारे बहुतसी सन्तानवाले, राजाजनक आदि और ब्राह्मणोंमें याज्ञवल्क्य इत्यादि बुद्धिके अनुसार योगी समदर्शी सत्यवक्ता संतोषी ज्ञाननिष्ठ सत्यसंकल्पादि गुण युक्त उपाधि रहित ब्रह्ममें श्रद्धावान्हुये आदिसेही शुद्ध अंतःकरण बुद्धिके अनुसार व्रती परस्पर में स्नेह रखनेवाले महा दुर्गमस्थान में भी धर्म्मको करते हैं, १० प्राचीन समयमें मिलकर धर्म्म करनेवालों का जो सुख हुआ किसी दशामें भी उनका धर्म्म प्रायश्चित्त के योग्य नहीं हुआ, वह सच्चे धर्म्म में नियतहोकर बड़े दृढ़बुद्धी समझे गये हैं बुद्धिसेही नहीं करते किन्तु शास्त्रोक्त कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और अपने निश्चय से धर्म्म में छल नहीं करतेहैं कारण यह है कि जो प्रधान कल्प अर्थात् धर्म्म सत्ययज्ञ है उसी को सबने मिलकर किया कभी उनका प्रायश्चित्त करनेके

योग्य नहीं हुआ, उस रीति पर नियत पुरुषों का प्रायश्चित्त वर्त्तमान नहीं है अज्ञानी पुरुषका प्रायश्चित्त उत्पन्न होता है यह श्रुति है, इसप्रकारसे अनेकप्रकार के प्राचीन यज्ञ कर्त्ता ब्राह्मण तीनों वेद के ज्ञाता गुरु सेवा परायण यशस्वी इच्छा रहित ज्ञानी प्रतिदिन यज्ञों के करनेवाले हुये, उनके यज्ञवेद और कर्म्म शास्त्रके अनुसार क्रम पूर्वक संकल्प युक्तहुये उन काम क्रोध रहित कठिन आचारवान् अपने कर्मों में पवित्र शुद्ध चित्त सत्यवक्ता पुरुषों का यज्ञादिकर्म ब्रह्मरूप हुआ हमारेनिमित्तभी यही सनातन श्रुति है, उन बड़े बुद्धिमान् कठिनकर्म और आचारोंके करनेवाले पुरुषोंकेतप अविद्या दूरकरनेवाले हुये, जो सदाचार आपत्ति धर्म्म से पृथक् काम क्रोधसे अजित जिनमें किसी प्रकारकी अमर्यादा नहीं हुई उसप्राचीन रूपांतर रहित एक आश्रमरूप सदाचारको ब्राह्मणोंने चारप्रकारका जानाहै उसीको संत लोग बुद्धिके अनुसार पाकर परमगति को पाते हैं इसकारण अन्य ब्रह्मचारियों ने गृहस्थी होकर फिर घरसे निकलकर बनमेंही आश्रमलियाहै वहां अधिकारी होकर संन्यास आश्रम में प्रवृत्तहुये वह तेजस्वी ब्राह्मण स्वर्ग में नक्षत्रों के समान दृष्टआतेहैं २४ बैराग्यसेभी अगस्त्य वशिष्ठादिने ब्रह्मभावकोपाया यह वैदिक बचनहै कि इस प्रकारके लोग जो बारम्बार योनियोंमें संसारको आते हैं वह प्रारब्ध कर्म्मके कारण कभी पापोंके फलसे योग नहींपाते हैं तात्पर्य यहहै कि देहको प्राप्तकरना उनकी इच्छाके अनुसार एक घरसे दूसरे घरमें जाने के समानहै, गुरूकी सेवा करनेवाला निश्चयमें तदाकार ब्रह्मचारीभी इसी दशाका होताहै ऐसा योगी ब्राह्मणहो अर्थात् ब्रह्मज्ञानीके अर्थके अनुसार ब्राह्मण होजाय और दूसरा नाममात्रको ब्राह्मणहो, इस प्रकारसे जिनके अन्तष्करणका दोष नाशवान्हुआ उनपुरुषोंके साक्षात् कारत्वम् पदार्थ और ज्ञान तत्त्वमसि इस महावाक्यसे सबब्रह्मरूपहीहुआ, इसप्रकारकी हमारी सनातन श्रुतिहै आशय यहहै कि सबका ब्रह्मरूपहोना बनावटनहींहै किन्तु मुख्य और सत्यहै, उपनिषद् धर्म्म शम दमादि से लेकर समाधितक उन निर्लोभी निर्मल मोक्षबुद्धी बर्णाश्रमी पुरुषोंका चौथी अवस्थावाला परमात्मा है उस से सम्बन्ध रखनेवाला सावधानहै अर्थात् उसके सब अधिकारीहैं यहस्मृतिहै, शुद्धचित्त और मनके रोकनेवाले ब्राह्मण उसको त्रयब्रह्मप्राप्ति कहते हैं संतोषवान् संन्यासी ज्ञानका उत्पत्तिस्थान कहाजाता है अर्थात् और कोई उस की योग्यतानहीं रखता सम्प्रदायक ब्रह्म साक्षात्कार वृत्तिवाला संन्यासियों का धर्म्म प्राचीनहै, वह धर्म्म दूसरे आश्रमोंके धर्म्म में मिलाहुआ वा पृथक् वैराग्यके अनुसार उपासना कियाजाता है वह धर्म्म उसके प्राप्त करनेवालोंके आनन्दका हेतुहै अर्थात् सब मनुष्य उससे लाभ उठासक्ते हैं और जो पुरुष

रागी है वह इसमें पीड़ापाताहै पवित्र मनुष्य ब्रह्मपदको चाहता संसारसे मुक्त होता है, स्यूमरश्मि बोले कि जो पुरुष प्राप्त होनेवाले अपने धनसे भोग करतेहैं, दानकरते हैं यज्ञकरते हैं और वेद पढ़ते हैं अथवा जो पुरुष त्यागी अर्थात् संन्यासी हैं इनमें सबसे अधिक कौन स्वर्गको प्राप्त करताहै यद्यपि गृहस्थ और संन्यासमें सदाचारमें प्रवृत्तपुरुषोंका निवृत्तीही धर्म्म है परंतु देह त्यागने के पीछे उनमें कौन अधिक है इस प्रश्न को हे ब्रह्मन् मुझे कृपाकरिके समझाइये, कपिलजी बोले कि गुणभावके प्राप्त करनेवाले सब परिग्रह शुभहैं परंतु संन्यास के सुखको नहीं पाते इसको तुमभी देखते हो, स्यूमरश्मि बोले कि आप निश्चय करके योगज्ञानमें निष्ठा रखनेवाले हैं और गृहस्थी कर्म की निष्ठा रखनेवालेहैं निष्ठामें सब आश्रमोंकी ऐक्यता कही जातीहै अर्थात् सबका निश्चय मोक्षहै इनमें एकता और द्वैतता में कोई मुख्यता नहीं दीखतीहै हेभगवन् आप इसको मुझे समझाइये, कपिलजी बोले कि स्थूल सूक्ष्म शरीरकी पवित्रता बुद्धिके अनुसार कर्म्म और ज्ञानमोक्षके साधनमें कर्मों से चित्तके दोषदूरहोने और शास्त्रसे उत्पन्न ज्ञानमें ब्रह्मानन्द रसमें नियत होने पर यह सब गुण उत्पन्न होतेहैं, दया ऐश्वर्य्य में भी चित्तको स्वाधीन रखना चित्तको जीतना, सत्यबोलना, सत्यता हिंसा न करना, अहंकार शत्रुता रहित लज्जा शांति, कर्मकात्याग यह सब ब्रह्ममार्ग हैं इन्हीं से ब्रह्मकी प्राप्ति होतीहै, विद्यावान् मनुष्य चित्तसे उसकर्म्मफल अर्थात् चित्तके दोषका दूरहोना और वैराग्य के उदयको जाने, सबओरसे शान्त और अतिपवित्र ज्ञानमेंनिश्चय करनेवाले तृप्त वेदपाठी ब्राह्मण जिसगतिको पातेहैं उसीको परमगति कहते हैं ४१ इसप्रकार वेदों को जानने के योग्य ब्रह्मरूप कर्म्म को उसीप्रकार कर्म्मोंको अनुष्ठान धर्म्म ज्ञानको जानकर वेदकाज्ञाता वर्णन किया इससे दूसरापुरुष चमड़ेकी धौंकनीके समान तुच्छपुरुष कहनेवालाहोताहै वेद जानने वालोंने सबको जानाहै वेदमें सब नियतहै वेदमेंही सबकी वह निष्ठाहै जो कि है और नहीं है अर्थात् वेद तीनोंकालके वृत्तान्तका प्रकट करनेवालाहै, पूर्व में ज्ञानकोकहा अब जाननेके योग्यको कहतेहैं, सबशास्त्रोंमें एकहीनिष्ठाहै वह यह कि यहजगत् पूर्णप्रतीतिवालाहै और बाधकालमेंनहींहै, और तत्त्वज्ञानी की दृष्टिसे यह दृश्यमान आकाशादि आदि मध्य अंत युक्तहै अर्थात् मिथ्या है और ज्ञानीलोगों के मतसे सब दृश्यमान पदार्थ स्थिर हैं और सिद्धान्त में मिथ्यारूप भी अज्ञानियों की दृष्टि से दृढ़तम है, पुत्र स्त्री घर धन शरीर मन अहंकार तकके त्याग निर्विकल्प समाधिमें नियत होनेपर आत्मा अच्छे प्रकार से प्राप्त होताहै यह सब वेदों में लिखाहै, उस मोक्षरूप संन्यासी में संतोष जो कि निरानन्दसे लेकर ब्रह्मानन्द तक सब आनन्दों में वर्त्तमान हो

नियत होताहै, अब निर्व्वाण मोक्ष के स्वरूप को कहते हैं, वह अविनाशी है और अरूप सरूप प्रपंचकी मूर्त्तिहै क्योंकि सबका उत्पत्ति स्थानही आत्मा है इसी से जाना हुआहै और जोकि जड़ चैतन्य रूपहै इसीकारण जानने के योग्यहै और पूर्ण कलावान् सुखरूप और सर्वोत्तमहै शिव है ब्रह्म है और ईश के प्रकाशका कारण रूप रूपान्तर दशा से रहित और असंगहै जितेन्द्री होनेकीशक्ति बुराई करनेवालेपर भी क्रोध न करना, शान्ति अर्थात् सबकर्मों से वैराग्य यह तीनों शुभ हैं अर्थात् ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति के हेतुहैं, बुद्धिरूप नेत्र रखनेवाले पुरुषों के इन तीनों गुणों से वह अकृत्रिम जगत् का कारण व असंग एकरूप अविनाशी प्राप्त होता है उस ब्रह्म और ब्रह्मज्ञानी को नमस्कार है ४७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे सप्तनवतितमोऽध्यायः ९७ ॥

# अट्ठानबेवां अध्याय ॥

जो पुरुष मोक्षधर्म के अनुष्ठान में समर्थ नहीं है उसके निमित्त त्रिवर्ग में कौन श्रेष्ठतम है इस बात के निर्णय करनेके निमित्त राजा युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह वेद इन तीनों धर्म अर्थ कामको कहतेहैं उनमें किसका जानना उत्तमहै उसको मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि इस स्थान पर मैं इस प्राचीन इतिहासको तुम से वर्णन करताहूं जिसमें कुण्डधार नाम मेघने प्रीतियुक्त होकर अपने भक्तका उपकार किया, किसी निर्द्धन ब्राह्मणने विचार किया कि फलकी इच्छासे धर्मको करूंगा यह बिचारकर उस आकांक्षी ने यज्ञके निमित्त कठिन तपस्याको किया और निश्चय करके देवताओंका पूजन किया और भक्तिसे देवपूजन करनेसे भी धनको नहींपाया फिर चिंता करके विचारनेलगा कि वह देवता कौनसा है जो कि मनुष्योंसे सिद्ध किया गयाहो वह मुझपर भी प्रसन्नहो फिर उसने मृदुचित्त से सन्मुख वर्त्तमान देवताओं के सेवक कुण्डधार नाम मेघको देखा उस महाबाहु बादल के देखने से उसको भक्ति उत्पन्न हुई और समझा कि यह मेरा कल्याण करेगा क्योंकि यह स्वरूप ऐसाही है और देवता के समीप रहनेवाला है और अन्य किसी मनुष्यसे संयुक्त नहीं है इस से यह शीघ्रही मुझको धन देगा तदनन्तर उस ब्राह्मणने कुण्डधारका धूप दीपादिसे बिधि पूर्वक पूजनकिया तदनन्तर थोड़े ही समयमें उस मेघने प्रसन्न होकर उसके उपकार करनेकेलिये यह निश्चित बचनकहा कि ब्रह्महत्या करनेवाला मद्यपीनेवाला, चोर ब्रतका खंडित करनेवाला इनसबका प्रायश्चित्त होसक्ताहै परंतु उपकारको भूलनेवाले कृतघ्नीके लिये प्रायश्चित्तसे शुद्धि नहींहोसक्तीहै, आशाके पुत्र अधर्म, क्रोध निन्दाहैं

और छलकेपुत्र लोभादिहैं और कृतघ्नी पुरुष संतान हीन होते हैं, इसकेपीछे कुशाओंपर सोनेवाले उसब्राह्मणने कुण्डधारके प्रभावसे स्वप्नमें सब जीवोंको देखा, सुखदुःखके अनुभवसे पृथक् शान्तचित्त तप और भक्तिसे शुद्ध उस ब्राह्मणने रात्रिकेसमय उस कुण्डधारकी भक्तिके फलकोदेखा, हे युधिष्ठिर उसने महातेजस्वी महात्मा मानभद्रको १४ जो कि याचकोंको देवताओंसे कहकर कर्म फलका दिलानेवालाथा देखा वहां देवतालोग उत्तमकर्मोंके अनेकफलों को देतेथे और दुष्ट कर्म वर्त्तमान होनेपर पूर्व दियेहुये राज्यको भी फेरलेतेथे हे भरतर्षभ इसके पीछे बड़ा तेजस्वी कुण्डधार यक्षों को देखता हुआ पृथ्वीपर गिरा इसके पीछे बड़ेसाहसी उदार मानभद्र ने देवताओं के बचन से उस पृथ्वी पर पड़ेहुये कुण्डधारसे कहा हे कुण्डधार क्या इच्छाहै कुण्डधार बोले कि जो देवता मुझ पर प्रसन्नहैं तो मैं इस ब्राह्मणपर कुछ सुखदायी अनुग्रह किया चाहताहूं क्योंकि यह ब्राह्मण मेरा भक्त है फिर मानभद्र ने देवताओं के बचन से कुण्डधार को यह उपदेश किया कि उठ२तेरा भलाहो और तेरी इच्छा पूर्ण हो जो यह ब्राह्मण धनकी इच्छा रखताहै तो इसको बहुतसा धन देदो यह तेरा सखा ब्राह्मण जितना धन चाहताहै मैं देवताओं के बचन से उतनाही असंख्य धन देताहूं यह सुनकर कुण्डधार ने मनुष्यता को अनियत और नाशवान् विचारकर ब्राह्मण को तपस्या करनेकी सलाहदी और कहा कि हे धनदाता मैं ब्राह्मणोंके निमित्त धन नहीं मांगताहूं किन्तु केवल भक्तों के वास्ते दूसरा अनुग्रह किया चाहताहूं अर्थात् रत्नोंसे पूर्ण पृथ्वी को भी भक्तों के लिये नहीं इच्छा करताहूं यह इच्छाहै कि यहब्राह्मण धार्मिकहो और इसकी बुद्धि सदैव धर्म्म में प्रवृत्तहो यह धर्म्महीं से अपना निर्वाह करे, मानभद्र बोले कि देहके कष्टसे रहित यह ब्राह्मण धर्म्मके फल राज्य आदि अनेक प्रकारके भोगों को भोगे भीष्मजी बोले कि इस बातको सुनकर कुण्डधार ने धर्म्मकेही निमित्त प्रार्थना बारम्बार की इससे देवता उसपर प्रसन्न हुये तब मानभद्र बोले कि सब देवता जैसे तुमसे प्रसन्नहैं उसीप्रकार इस ब्राह्मणसे भी प्रसन्नहैं यह धर्मात्मा होकर धर्म्म में बुद्धिको लगावेगा फिर इस ईप्सित बर को पाय कुण्डधार प्रसन्न हुये तब उस ब्राह्मण ने उन सूक्ष्म बस्तुओंको जो कि इधर उधर और सन्मुख रक्खी हुईथीं और वैराग्यवान् देखकर उनसे इच्छा को हटाकर यह कहा कि यह कुण्डधार उत्तम कर्म्मको नहीं जानता है तो दूसरा कौन शुभ कर्म्म को जानेगा मैं धर्म्म से जीवनके लिये श्रेष्ठ बनकोही जाऊंगा ३२ भीष्मजी बोले कि तब उस उत्तम ब्राह्मण ने वैराग्यसे और देवताओं की प्रसन्नतासे बनमें जाकर बड़ी तपस्या प्रारम्भकी और कन्दमूल फल भोजन करनेलगा और धर्म्म में अपनी बुद्धिको दृढ़ किया तदनन्तर

कन्दमूलादि को त्यागकर वृक्षोंके पत्ते खानेलगा फिर पत्ते भी त्यागकर जल का ही आहार करनेलगा तदनन्तर बहुत समयतक वायु भक्षण करनेलगा फिर भी इसके प्राणों की कोई बाधा न हुई यही आश्चर्य हुआ धर्म्मवान् उग्रतपी वह ब्राह्मण बहुतसमयमें दिव्यदृष्टिवाला होगया फिर अत्यन्त प्रसन्न होकर तपमेंही प्रवृत्त होगया और अपने पूर्व उत्तम बिचारको करके मनमें कहा कि जो मैं प्रसन्नहोकर किसीको राज्यदूं वह थोड़ेही समयमें राजाहोगा और मेरा बचन मिथ्या न होगा तब तो अत्यन्त प्रसन्न होकर उस कुण्डधार ने फिर दर्शन दिया और उस ब्राह्मण ने उस कुण्डधार का बुद्धिके अनुसार पूजन किया और आश्चर्य भी किया तब कुण्डधार ने कहा कि हे ब्राह्मण तेरेनेत्र दिव्यदृष्टिवाले हों तुम नेत्रों से राजाओं की गति और लोकों को देखो तब उसने अपनी दिव्यदृष्टि से नरक में फँसे हजारों राजाओंको देखा तब कुण्डधार ने कहा कि जब तुमने प्रीतिसे मुझको पूजा और तुमको खेद हुआ तो क्या हमारी प्रसन्नताका फल हुआ और स्वर्गमें केवल वही मनुष्य जाते हैं जिनमें देवताओंके से गुण होते हैं, भीष्मजी बोले कि यह कुण्डधार की बातें सुनकर उस ब्राह्मणने काम क्रोधादि अनेक दुर्गुणों को धारणकिये मनुष्योंको भी देखा तब कुण्डधार ने कहा कि सबलोग इस काम क्रोधादि से व्याप्त हैं और यही काम क्रोधादि देवताओं की आज्ञासे इस मनुष्य के बिघ्नकारी होते हैं बिना देवइच्छा कोई मनुष्य धार्मिक नहीं होताहै तुम इन बातों के देनेको तपकेद्वारा आप समर्थहो भीष्मजी बोले कि यह सुनकर वह ब्राह्मण कुण्डधार के चरणों में गिरपड़ा और कहा कि मुझपर बड़ा अनुग्रह किया पूर्वसमयमें काम लोभादि युक्त होकर जो आपकी प्रीतिकी मैंने निन्दा की उस को क्षमा कीजिये, तब कुण्डधार क्षमा किया यह बचन कह कर और उस ब्राह्मण से मिलकर वहीं अन्तर्द्धान होगया तब तपकी शुद्धि से वह ब्राह्मण सबलोकों में घूमा, आकाश में चलना, ईप्सित मनोरथों का प्राप्त करना, इस के विशेष जो परमगति हैं उन सबको भी धर्म्म सामर्थ्य से और योग से प्राप्त किया, देवता, ब्राह्मण, सन्त, यक्ष, गन्धर्व, चारण, मनुष्य और अनेक सुकृती जीव इत्यादिकोही इसलोकमें श्रेष्ठकहतेहैं परन्तु धनवान् कामीपुरुषों को नहीं कहतेहैं, देवता लोग तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हैं इसहेतुसे कि तेरी बुद्धि धर्म्ममें तत्पर है, धर्म्म में तो सुखका समूह है और धनमें केवल सुखकी कलामात्रही है ५६॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेअष्टनवतितमोऽध्यायः ९८॥

# निन्नानवेवां अध्याय ॥

निष्काम धर्म्मकी उत्तमता वर्णनहुई इसधर्म्म में हिन्सा नहीं होती इस कारण इस अध्याय में हिन्सायुक्त यज्ञोंकी निन्दा करते हैं युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह चित्तकी पवित्रता या ईश्वरकी भक्ति रखनेवाले अनेक यज्ञ और तपों में वह सुख धन आदिकी इच्छा रहित केवल धर्म्म के निमित्त नियत किया हुआ यज्ञ कैसे रूपकाहै, भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर यज्ञके विषयमें उंछवृत्ती वाले ब्राह्मणका प्राचीन वृत्तांत जिसको नारदजीने वर्णन किया है तुमसे कहताहूं नारदजीने कहा कि विदर्भ देशों में एक देश बड़ाधर्म प्रधान और श्रेष्ठथा वहां उंछवृत्तिवाला कोई तपस्वी ब्राह्मणथा वह यज्ञ पूजनको सावधानहुआ वहां वनमें श्यामाक, सूर्यपर्णी, सुवर्चला यह तीनों सागही भोजनको मिलतेथे यह तीनों साग नीरस और कटुथे परन्तु उस ब्राह्मणके तपके प्रभावसे वह सुस्वादु होगये और सब जीवोंकी हिन्सा न होनेसे बनमेंही सिद्धिको पाकर मूल फलोंसेही स्वर्ग सम्बन्धी यज्ञकिया, उसकी स्त्री व्रतसे निर्बल पवित्र पुष्कर धारणी नामसे प्रसिद्धथी वह विवाहिता यज्ञपत्नी सती स्वामी के साथ पशुयज्ञकी चाहनेवाली हिंसायज्ञ को उत्तम जानकर स्वामी से विपरीतथी परन्तु स्वामी के शापसे भयभीत होकर उसकेही स्वभाव के अनुसार कर्म्म करतीथी और उसका वस्त्र पुराने पंखोंका बनाहुआ था उसने पतिकी आज्ञा सेवन में निष्काम यज्ञकिया वहां शुक्रजी के शापसे मृगरूप उसी ब्राह्मणके समीप आश्रित सन्मुख बैठे हुये धर्म्मराजने उस ब्राह्मण से कहा कि यह तुमने विपरीति कर्म्म किया, क्योंकि यहयज्ञ मन्त्रांग से रहित है अर्थात् इसमें श्यामाकनाम चरुसे पशु बनालिया है मुख्य पशु नहीं है इस निमित्त तुम मुझे शीघ्रतासे हवनकरो और आनन्दपूर्व्वक तुमस्वर्गको जाओ तदनन्तर, यज्ञमें साक्षात्सावित्री जो कि सूर्य्य मण्डलकी अधिष्ठात्री देवी है उसने उसको समझाया कि मेरे निमित्त तुम पशु को होमो इन दोनोंके कहने परभी उसने यही उत्तर दिया कि मैं अपने समीपी आश्रित मृगको नहीं मारूंगा और यज्ञमें निकृष्टकर्म्म हुआ ऐसा कहकर वह देवीभी लौटगई और रसातलके देखनेकी इच्छासेयज्ञकी अग्निमें प्रवेश करगई फिर उस हाथ जोड़े हुये मृगने उस सत्यनाम ब्राह्मण से प्रार्थनाकी और सत्यने उसपर हाथफेर-कर आज्ञादी कि जाओ फिर वह हिरन आठचरण चलकर लौटआया और कहने लगा कि हे सत्य मैं चाहताहूं कि तू मुझको हवन करदे इस निमित्त कि मेरीभी सद्गति होजाय तुममेरे दिये हुये दिव्य नेत्रों से उत्तम अप्सरा और श्रेष्ठ गंधर्वों के दिव्य विमानों को देखो तदनन्तर उस इच्छायुक्त ब्राह्म-

णने नेत्रों से बड़ी देरतकपशु और यजमान सहित स्वर्ग गतिकोदेखा और मृगको भी स्वर्गका आकांक्षी देखकर स्वर्ग में नियत होनेका विचार किया, वह धर्म्म देवता मृगरूप होकर बहुत कालतक वनमें रहे और उस शापके प्रायश्चित्तको किया और उसकी चित्तकी वृत्तिमें यह बात जो आई कि यह हिन्सात्मक यज्ञकी बुद्धिनहीं है इस कारण से उसके बड़े तपकी हानिहुई इसी हेतु से जानना चाहिये कि हिंसायज्ञ की पूर्ण करने वाली नहीं है, अब इस सन्देहको कहतेहैं कि धर्म्मने क्यों छलकिया अर्थात् उसके पीछे धर्म्मने आप उस पुष्कर धारणी स्त्रीके उस नियत यज्ञको पूर्ण किया और उस ब्राह्मणने तप के द्वारा मोक्षपदवी को पाया, अहिंसा पूर्ण धर्म्म है और हिन्सात्मक धर्म्म उत्तम नहीं है अब मैं उस सच्चे धर्म्मको तुमसे कहताहूं जो कि ब्रह्मवादी पुरुषों काहै २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेएकोनशततमोऽध्यायः ९९ ॥

# एकसौका अध्याय ॥

अहिन्सा धर्म्महै और वैराग्य के द्वारा मोक्षकाहेतुहै इसको निश्चय कर के फिर युधिष्ठिर ने प्रश्नकिया कि किसप्रकार पापात्मा होता है और कैसे धर्म्मको करताहै किसकेद्वारा वैराग्यकी प्राप्ति होती है और किसरीति से मोक्ष को पाताहै, भीष्मजी बोले कि सब धर्म्म तेरे जानेहुये हैं तुम मर्यादा के निमित्त पूछते हो वैराग्य से मोक्ष को और पाप धर्म्म को मूलसमेत सुनो, कि पांचों विषयोंका विज्ञानहोनेके निमित्त प्रथम इच्छा वर्त्तमानहोती है उस से काम और द्वेष उत्पन्नहोतेहैं, फिर कामनाकी प्राप्तिके अर्थ और पापदूर करने के लिये उपाय करताहुआ बड़े कर्म्म का प्रारम्भ करता है और इच्छानुसार सुगन्धियोंका सेवन करना चाहताहै उससे रागउत्पन्नहोता है उसकेपीछे द्वेष उत्पन्नहोता है फिर लोभ मोह उत्पन्न होते हैं, लोभमोह और राग द्वेषसेयुक्त पुरुषकी बुद्धि अधर्म में प्रवृत्तहोती है फिरछलसे धर्म्मको करता है और छलसेही अर्थको चाहताहै तब उसीमें बुद्धिको करताहै और पापकरना चाहताहै फिर पण्डितों से निषेध कियाहुआभी राग मोह से उत्पन्न कायिक, वाचिक, मानसिक इन तीनों प्रकार के अधर्म्मों को करताहै अर्थात् पापको विचारता है कहता है और करता है, उस अधर्मी के दोषों को साधुपुरुष कहते हैं और एकसी बुद्धि रखनेवाले पापीलोग परस्परमें मित्रता रखतेहैं, ऐसापुरुष जबकि इसीलोकमें सुखनहींपाता तोपरलोकमें कैसेपावेगा इसप्रकार पापात्मा होता है, अबधर्म्मात्मा का वर्णनसुनो जैसे कि वहकल्पनारूप धर्म्मवाला दूसरेकी भलाईप्राप्त करताहै इसीप्रकार कल्याणरूप धर्म्मसे वांछित गति को पाता है,

सुख दुःख के पहिंचानने में कुशल जो पुरुष बुद्धि से प्रथमही इन दोषों को देखताहै और साधुओंका भी सेवन करताहै उसके श्रेष्ठ आचरण और उत्तम अभ्यास से बुद्धि बढ़तीहै और धर्म में प्रवृत्त होतीहै तबवह धर्म्मसेही निर्वाह करताहै और धर्म से प्राप्त होनेवाले धनों में चित्त करता है अर्थात् जिस में गुण देखताहै उसी की जड़को सींचताहै और धर्मात्मा होता है फिर श्रेष्ठ मित्रों को और उत्तम धनोंको पाकर इसलोक में आनन्द भोगकर परलोक में सुख को भोगताहै और शब्द स्पर्श रस रूप गंधमें संकल्प सिद्धि को पाता है यह सब धर्म्मका फलजानो फिर हे युधिष्ठिर वह धर्म्म के फल को पाकर प्रसन्न नहीं होताहै तब उससे असंतुष्टहो ज्ञान रूप नेत्र से वैराग्यको प्राप्त करताहै, जब वह ज्ञान दृष्टियुक्त होकर रूपरस गन्धस्पर्शादि से भी मनको खींचताहै और शोचरहित होताहै तब इच्छाओंसे निवृत्त होताहै परन्तु धर्म्मको नहीं छोड़ता है और इस लोकको नाशवान् जानके स्वर्गादि धर्म्म फलके भी त्यागनेका उपाय करताहै फिर मोक्षकाचिन्तमन करता है और युक्ति से वैराग्य प्राप्तकर पाप कर्मोंको त्यागता है, फिर धर्मात्मा होकर परम मोक्ष कोपाताहै, हे युधिष्ठिर यह पापधर्म्म मोक्ष और वैराग्य सब तुम से कहा इसी से तुमसब दशाओंमें धर्म्म के कर्त्ता हो, क्योंकि धर्म्म में नियत पुरुषों को सनातन सिद्धि होतीहै २४ ॥

इतिश्री महाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मे शततमोऽध्यायः १०० ॥

## एकसौएकका अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हे पितामह आपने जिस युक्ति से मोक्षका वर्णनकिया उस युक्ति को न्याय के अनुसार सुना चाहताहूं, भीष्मजी बोले कि हे बड़े ज्ञानी मोक्षके निमित्त अपनी बुद्धिको साक्षी रखने वाला उपाय तुम में योग्य है उसीसे सब अर्थ धर्म्म काम मोक्ष की प्राप्ति होती है जैसे घटके बनाने में जो बुद्धि होती है उस बुद्धि का घट के बनजाने पर कुछ प्रयोजन नहीं रहता उसी प्रकार जिनमें यज्ञ आदि उपाय हैं उनप्रवृत्ति धर्म्मों में दूसरा निवृत्ति धर्म्म कारण नहीं होसक्ता किन्तु फलकी इच्छा न रखनेवाले पुरुष का यज्ञादिक धर्म्म चित्तशुद्धि के द्वारा निवृत्तिधर्म्म का हेतु होताहै तात्पर्य यह है कि निवृत्ति धर्म्म के वर्त्तमान होनेपर प्रवृत्ति धर्म्म की आवश्यकता नहीं होतीहै, क्योंकि पूर्वीसमुद्र में जो मार्गहै वह पश्चिमको नहींजाताहै, मोक्षमार्ग एकही है उसको ब्यौरे समेत सुनो कि निवृत्ति धर्म की जो पराकाष्ठा योग है उसके वर्णन करने में प्रथम उसके १३ साधन वर्णन करता हूं कि शान्तिता से क्रोधको और संकल्पके त्याग से कामको दूरकरे धैर्यमान् पंडित

सतोगुणी मनुष्य भगवत् के ध्यान आदि धर्म के सेवनसे निद्रा आलस्य को त्यागे और सावधानी और चतुरतासे संसार की अपकीर्त्तिके भयको निवृत्त करे और क्षेत्रज्ञमें मन लगानेसे प्राण चेष्टाको रोके और धैर्यसे इच्छा, काम, द्वेषको शरीर में न रक्खे और तत्त्वाभ्यास से भ्रम अज्ञान आदि अनेक संशयोंको निकाले ऐसा तत्त्वज्ञानी ज्ञानके अभ्याससे निन्दा और प्रतिभाको दूरकरे अर्थात् अन्यका ध्यान न करे प्रयोजन यहहै कि ब्रह्मकाही ध्यान ब्रह्मकोही कहना ब्रह्मकाही उपदेश और ब्रह्मकोही परस्पर में ज्ञानोपदेश करना इसीको ज्ञानका अभ्यास कहते हैं काम रहित शीघ्रतासे पचनेवाले निरुपद्रव सतोगुणी भोजनों से रोगादि को दूररक्खे सन्तोषसे लोभ मोहको और विषयोंके अनर्थ देखके विषयों को त्याग करे, दया से अधर्म को, विचार से धर्मको और भविष्यतकाल से आशाको और अनिच्छासे अर्थको त्याग करे और पण्डित मनुष्य अस्थिरतासे प्रीतिको योगसे गृहस्थाश्रमको, दया से चित्तके अभिमानको, सन्तोषसे लोभको, युक्तिसे आलस्यको, वेद विश्वास से विपरीत बादको, मौनतासे अनर्गल बकनेको और छओं वर्ग के बिजय करने की सामर्थ्य से भयको त्यागकरे, इन अंगोंको कहकर अब प्रधानयोग को कहते हैं कि बुद्धिसे मन वचनको स्वाधीन करे और उस बुद्धिको ज्ञान शुद्धतम पदार्थ वा समष्टि बुद्धिसे आधीन करे फिर इस ज्ञानरूप शुद्धतम पदार्थको यह आत्मा ब्रह्मही है इस वचनके द्वारा उत्पन्न होनेवाली वृत्ति से और उस बुद्धिकी वृत्तिको भी परम चैतन्य के प्रकाशसे आधीन करे तात्पर्य यहहै कि इंद्रियों को मनमें, मनको बुद्धिमें, बुद्धिको तत्पदार्थ को ब्रह्माकार वृत्तिमें, उसको शुद्धआत्मा में लय करके आत्म स्वरूप नियत होजाय, यह ज्ञान शान्तवृत्ति और पवित्र कर्म करनेवाले पुरुषसे जाननेके योग्यहै, काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्नको त्यागकर वाक्जित् पुरुष योग साधन के योग्यहै, ध्यान, वेदपाठ, दान, सत्यबोलना, लज्जा, सरलता, क्षमा, पवित्रता बाह्याभ्यन्तर शुद्धी क्षुधा और इन्द्रियों का जीतना इत्यादि गुणों से तेजकी वृद्धि होतीहै और पाप नष्ट होताहै ऐसे पुरुष के संकल्प सिद्ध होतेहैं और विज्ञान प्राप्त होताहै, वह निष्पाप स्वल्प भोक्ता तेजस्वी जितेन्द्री पुरुष काम क्रोधको जीतकर उस स्थानको प्राप्तकरताहै जिसमें ब्रह्माजीका भी लयहोताहै, वेदांत श्रवण आदि अभ्यास से अज्ञान रहित वैराग्य युक्त सन्तोष क्षमाकी दृढ़ता ...धका त्याग, परिपूर्ण काम होना, अहंकार से रहित होना निर्भ... रहित होना और मन वाणी देहको आधीन करना यही परम सच्चा मोक्षमार्ग है १६ ॥

...पर्वणि मोक्षधर्मे योगआचारवर्णनोनाम एकोत्तरशततमोऽध्यायः १०१ ॥

# एकसौ दोका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इस ब्रह्मपद प्राप्ति के विषय में इस प्राचीन इतिहास
भी कहताहूं जिसमें नारदजी और असित, देवलऋषि का सम्वाद है,
जी ने बुद्धिमानों में श्रेष्ठ वृद्ध देवलऋषि को बैठा हुआ जानकर यह प्र
किया कि हे ब्रह्मन् यह जड़ चैतन्य स्थावर जंगम जगत् कहां से उ
हुआ है और प्रलय में कहां समाजाताहै, असित ऋषि बोले कि प्रा
की बुद्धिबासना से चेष्टित परमात्मा उनकर्म फलके उदयहोने के समय
से कि जीवों को उत्पन्न करता है और तत्त्वज्ञपुरुष जिनको आ
पंचभूत कहते हैं चारों युगों का आत्मा जीव बुद्धि से चेष्टावान् होकर
पञ्चभूतोंसे जीव मात्रों को उत्पन्न करता है जो कोई पुरुष कहै कि इनपञ्च
भूतों से पृथक् है वह मिथ्या है अर्थात् बुद्धि आदि रूप से ब्रह्मही प्रक
होता है और संसार का प्रत्यक्ष होना केवल दर्शनही मात्रहै विचार से
होनेवाला वह ऐसे प्रकट नहीं है जैसे कि रस्सी में सर्प की भ्रान्ति होती
हे नारदजी इनपञ्च तत्त्वोंको रस्सीमें सर्पकी भ्रांतिके समान स्वभावसे अ
अन्त और रूपान्तर रहित मोक्षपर्यन्त नियतरहनेवाला और महत्तत्त्व ज
सतोगुण प्रधान प्रकाशरूप सूक्ष्मबुद्धिहै उससे प्रत्यक्षहुआ जानों
जीवात्माहै, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश यह पांचतत्त्वहैं महत्तत्त्व
भूतभावसे इनमेंही गिनाजाताहै तो उनतत्त्वोंसे श्रेष्ठतम नहीं हुआ, जब
सीपीमें चांदी कल्पना कीजाती है ऐसी दशामें उस मिथ्या चांदीसे सी
पृथक् नहीं होती इसीप्रकार सब आत्माही है बास्तवमें तत्त्व नहीं हैं, तत्त्व
श्रेष्ठ न वेद युक्तिसे हुआ न लौकिक अनुमानसे है जो कोई कहै कि तत्त्व
से उत्तम है वह अज्ञानता है उसको सबजीवों में निस्सन्देह वर्त्तमान जा
और यह छओं जिसके कार्य्यरूप हैं उसको असित अज्ञानजानो, यहपां
तत्त्व और चतुर्युग रूप जीव पूर्व संस्कार अज्ञानआदि रहित और मोक्षप
सदैव रहनेवाले स्थावर जंगमजीवों के उत्पत्ति और लयके स्थान् यहआत
हैं इन्हींसे उत्पन्न और इन्हीं में लयहोते हैं, यह जीव उन विनाशवान् तत्त्व
को देखकर नाशहोताहै अर्थात् विज्ञान घन जीव इन तत्त्वों से निकलकर
तत्त्वों के पीछे नष्ट होता है अर्थात् उपाधि के नाशहोने पर शुद्ध आत्म
शेष रहजाता है उसका शरीर पृथ्वीरूप है श्रोत्र आकाशरूप से नेत्र सूर्य
रूपसे वायु से चेष्टा और जल से रुधिर उत्पन्न होता है आंख, नाक,
त्वचा, जिह्वा यह पांचों इन्द्रियां के बिषयों का ज्ञान पैदाकरनेवाले हैं इस
सूक्ष्मदर्शी सर्वज्ञ परिडतों ने जानाहै पंचेंद्री पंच विषय और रूपादि त्रिष

में पांच प्रकारसे वर्त्तमान इन्द्रियों को देखना सुनना, सूंघना, स्पर्शकरना स्वादुलेना इत्यादि कर्म्मरूपों को पंचतत्त्वही जानो और रूप रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द यह उसी विज्ञान आत्माके गुणहैं वह पांचों इन्द्रियों के द्वारा पांचप्रकार से सिद्ध कियेजाते हैं, फिर उस विज्ञान आत्माके गुण रूप रस शब्द गन्ध स्पर्शको इन्द्रियां नहीं जानती हैं उनको क्षेत्रज्ञ जानता है, अब क्षेत्रसे क्षेत्रज्ञ के विभागको कहते हैं मन इन्द्री समूहसे श्रेष्ठहै उससे श्रेष्ठ चित्तहै चित्तसे श्रेष्ठ बुद्धि और बुद्धिसे भी अधिकतर क्षेत्रज्ञ है जीव प्रथम इन्द्रियों के द्वारा अर्थों को जुदाजुदा जानताहै फिर चित्तसे विचारकर बुद्धिसे निश्चयकरताहै बुद्धिमान् पुरुष इन्द्रियों से प्राप्त होनेवाले विषयों को निश्चय करता है मन, इंद्री समूह, चित्त, आठवीं बुद्धि इन आठों को आत्मविद्याके विचारनेवाले पुरुष ज्ञानेन्द्री कहते हैं आशय यहहै कि बुद्धिको इंद्रियों में गिनने से क्षेत्रज्ञको उपाधि रहित चिन्मात्र स्वरूप दिखायाहै और हाथ पैर गुदा लिंग और मुख यह पांचों कर्मेन्द्री कहलाती हैं इनके काम सबको प्रसिद्ध हैं और छठवां पंच प्राण और बलहै यह सब छः हुये मैंने ज्ञानेन्द्री कर्मेन्द्री और उनके विषय शास्त्रकी रीतिसे अच्छे प्रकारसे वर्णन किये, जब परिश्रमसे थककर इंद्रियों को कर्म्मों से बैराग्य होता है तब मनुष्य इंद्रियों के त्यागसे सोजाता है, जो इंद्रियों के बैराग्य होनेपर चित्तको बैराग्य न हुआ तबउस दशा में विषयों को सेवनकरताहै उसको स्वप्नदर्शन समझो, जो सात्त्विकी राजसी तामसी बासना रूप विषय जाग्रत अवस्था में हैं उन भोगदेनेवाले कर्मों से संयुक्त सात्त्विक आदि वासनारूप विषयोंको स्वप्नदशामें भी कहते हैं अर्थात् जाग्रत बासनाही उनकर्म्मों से उत्पन्न होनेवाली स्वप्नावस्थामें दृष्टआती हैं, सुखकर्म्मोंकी सिद्धि ज्ञान बैराग्य धर्म्म यहसब सात्त्विकहैं सात्त्विक पुरुषकी स्मृति इन असाररूप आनन्द आदि और बासनाओंको स्वप्नमें स्मरण करतीहै, सात्त्विकी राजसी तामसी पुरुषोंकी जो कोई बासना कर्म्मगतिमें नियतहैं उनको स्मरण शक्ति स्वप्नमें यादकरती है, अर्थात् वह स्मृतिरूप ज्ञानभी भोग देनेवाले कर्म्मों के कारण प्रत्यक्ष के समान दृष्टआताहै उनदोनों बासनाओंका सुषुप्तिअवस्थामें लयहोना प्रत्यक्ष है वह सदैव रहनेवाली अभीष्ट है आशय यह है कि सुषुप्ति अवस्थाका सदैव रहनाही मुक्तिहै, पूर्वोक्त चौदहइन्द्री सात्त्विक, राजस, तामस तीनों भाव यह सब सत्रहगुण हैं उनका अठारहवां देहाभिमानी आत्मा जो देहमेंहै वह सनातन भोक्ताहै, क्योंकि जीवों के देहसमेत उक्त सब गुण जिस भोक्तामें रक्षित हैं उसकी पृथक्ता में वह शरीर समेत नहीं हैं किन्तु पंचभूत सम्बन्धी एक समूहहै अर्थात बुद्धिवृत्तिरूप भोक्ताके साथ १९ गुण और शरीर समेत पंचभौतिक बीस गुण हैं आशय यहहै कि जो इनका प्रकाशक

अखण्डज्ञानस्वरूप है वह अनुभव क्षेत्रज्ञ समझो और इक्कीसवां प्राण इ स
समेत देहको धारण करताहै वह प्राण देहके नाशमें अपने प्रभावसे युक्त उ
महान्‌कालका निवासस्थानहै,जैसे किकच्चाघटआदि बनताहै और ना
है इसीप्रकार यहअनुभवप्रारब्ध पुण्यपापके नष्टहोने पर संचितपापपुण्यसे
ष्टावान्‌होकर समयपर अपनेकर्म्म संयुक्त देहमें प्रवेशकरताहै,यह कालसेप्रे
क्षेत्रज्ञ जिसका दूसरा देह अविद्या कर्म्म कामसे उत्पन्न है वह अपने पूर्व
देहोंको छोड़कर एकशरीर से दूसरे शरीर में ऐसे जाताहै जैसे कि पुराने
नको छोड़कर नवीन स्थानमें मनुष्य जातेहैं, सिद्धांतको निश्चय करनेवा
ज्ञानी पुरुष शरीर सम्बन्ध से ज्ञात होनेवाली मृत्यु आदि में दुखी नहीं
हैं वास्तवमें देह और पुत्रादि के साथ सम्बन्ध न होनेपर भी भ्रांति से
न्धदर्शी संसारको इच्छा करनेवाले मनुष्य दुखी होतेहैं—पुत्रादि से
न्धता वर्णन करतेहैं—अर्थात् यह न तो किसी का है न इसका कोई बर्त्तमा
है देह में दुःख सुख पैदा करनेवाला यह शरीरी सदैव अकेला रहता है—५
जीवात्मा उत्पन्न नहीं होताहै न कभी नाश होताहै यह कभी विद्या से क
के भस्म होनेपर देहको त्यागके मोक्षको भी पाताहै तो भी प्रारब्ध कर्म
वश्य भोगने पड़ते हैं इसको कहतेहैं प्रारब्ध कर्म के नाश होनेपर पापपु
रूप देहको त्यागकर वह जीवात्मा जिसके तीनों देह नाशहुये वह
वको पाताहै ज्ञान से संचितकर्म्म नाश होते हैं पापपुण्य के नाशके
सांख्यशास्त्रका ज्ञान उपदेश कियाजाता है उसपुण्यपाप के नाशहोने औ
उसके ब्रह्मरूप होने पर पण्डित लोग शास्त्र दृष्टी से उस जीवात्मा की
गतिकोदेखतेहैं क्योंकि एककी कैवल्यमोक्ष दूसरेको दृष्टआनाअसम्भवहै३८॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेनारदअसितसम्वादे द्युत्तरशततमोऽध्यायः१०२ ॥

# एकसौतीनका अध्याय ॥

सब अनर्थों का हेतु ज्ञानका नाशकरनेवाली तृष्णा और त्यागकेद्वारा
ममताके त्याग और नाशके विषयमें ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह राजलक्ष्मी के निमित्त पापकर्मी निर्दय
हमलोगों के हाथ से भाई चाचा ताऊ पुत्र पौत्र ज्ञाति सुहृद इत्यादि
मारेगये जो यह तृष्णा अर्थसे उत्पन्न होनेवाली है उसको कैसे दूरकरूं ह
सबलोग लोभसे पापकर्म्मी हुये, भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर एक प्राची
इतिहासको कहताहूं जिसको राजा बिदेहने प्रश्न करने वाले माण्डव्यऋषि
कहाहै, कि बड़े आनन्द का स्थानहै कि मैं अच्छे प्रकारसे प्रसन्नहूं किसी क

कुछ नहींहै इसी हेतु से मिथिलापुरी के अग्नि से भस्महोने पर मेरा कुछ भी नहीं भस्म होताहै निश्चय करके ब्रह्मलोकके अन्त तक प्राप्त होनेवाले विषय बिवेकी पुरुषोंकी दृष्टि से महादुःखदायी हैं वह अप्राप्त होने पर भी अज्ञानी लोगों को सदैव मोहित करते हैं लोकमें जो स्त्री आदिका काम सुखहै और स्वर्ग सम्बन्धी महासुखहै वह सब मिलकर उस सुखकी सोलहवीं कलाकेभी समान नहीं है जो कि ईर्षाके दूरहोने से प्राप्त होताहै, जिस प्रकार बड़ेहोने वाले बछड़ेका सींग बड़ा होताहै उसी प्रकार बृद्धिपाने वाले धनसे ईर्षा भी बढ़तीहै, जब कुछ वस्तु मेरी है इस प्रकार कल्पितहोतीहै फिर वही बस्तु नाश होनेपर दुःखका मूलहोतीहै, इच्छाओंके अनुसार कर्म्मकर्त्ता न होना चाहिये क्योंकि इच्छाओं में प्रवृत्त होना निश्चय करके दुखदायी है धनको पाकर दूसरोंका उपकार करना योग्यहै परन्तु देहसम्बन्धी इच्छा और धर्म्मोंको त्यागकरे ऐसा ज्ञानी पुरुष सबजीवों में आत्मा के समानहोताहै अर्थात् सबका सुखचाहै किसी का दुःख न देखे वह निवृत्त धर्म्मी शुद्धअन्तःकरणी ज्ञानी पुण्यपापोंके समूहको त्यागकरताहै,सत्य, मिथ्या, हर्ष,शोक,प्रिय,अप्रिय,भय निर्भयता आदिको अच्छेप्रकारसे त्यागकर सुखदुःखआदिसेरहित निर्विकल्प समाधिमें नियतहोय, जोनिर्बुद्धियोंसे त्यागना कठिनहै वहजरारहित प्राणी के सन्मुख रहनेवाला महारोग ईर्षारूपहै उसकेत्यागनेवाले पुरुषको आनन्द होताहै, धर्म्मात्मा पुरुष अपने सदाचारको चंद्रमा के समान उज्वल नीरोग देखता सुखपूर्वक इसलोक और परलोक में कीर्त्तिको पाताहै, माण्डव्यऋषि राजाके इन वचनों को सुनकर प्रसन्नहुये और उसके वचनोंकी प्रशंसाकरके मोक्षमार्ग में प्रवृत्तहुये युधिष्ठिर बोले कि सबजीवोंके भयदेनेवाले इसकालके भ्रमण होनेपर किस कल्याणको प्राप्तकरे, भीष्मजी बोले कि इसस्थानपर इस प्राचीन इतिहासको भी कहताहूं जिसमें कि पुत्रके साथ पिताका प्रश्नोत्तर है हे कुन्तीनन्दन वेद पाठया जपमें प्रवृत्त किसी ब्राह्मणका पुत्रथा वह शास्त्र स्मरण रखने वाली धारणा बुद्धिका स्वामी मेधावी नामथा मोक्षधर्म में पण्डित उस बेटेने वेदपाठ और जपकरनेवाले मोक्षधर्म्म रहित अपने पितासे प्रश्नकिया कि हेतात धैर्य्यवान् पंडित मनुष्य बहुत विषयों को जानकर क्या करे क्योंकि मनुष्योंकी आयु बहुतशीघ्र नष्टहोजाती है और योगको भी यथार्थ ऐसे कहोजैसे कि मैं क्रमपूर्व्वक करसकूं पिताने कहा कि हेपुत्र ब्रह्मचर्यसे वेदों को पढ़कर पितरोंकी पवित्रताके लिये पुत्रोंको उत्पन्नकरो अग्नि होत्रमें स्थापन करके बुद्धिके अनुसार यज्ञोंका करनेवाला बनमेंजाकर मुनि सम्बन्धी ए फिर ऐश्वर्यवान्होकर गृहस्थाश्रममें प्रवृत्तहोवेपुत्रने कहा किचारों ओर समेत प्रकार लोक के घिरजाने और घायल होने और सफल बस्तुओं

के गिरनेपर आप कैसे घोर बचन कहतेहो, पिताने कहा कि लोक कैसे घायल या मृतकहै किससे घिराहै और कौन सफल होकर गिरते हैं हे पुत्र मुझको क्यों डरातेहो, पुत्र बोला कि यहजगत् मृत्युसे घायल या मृतकहै और वृद्धावस्थासे घिराहै और यह दिनरात गिरते हैं इनसबको तुम कैसे नहीं जानतेहो, जब मैं भी जानताहूं कि मृत्यु नियत नहीं होतीहै तबज्ञानसे अपने हितको करता हुआ किसप्रकारसे मैं बाट देखूंगा, जब कि प्रत्येक रात्रि के व्यतीत होनेपर आयुर्दा न्यूनहोतीजातीहै तब थोड़े जलमें व्याकुल मछलीके समान कौन सुखको पावेगा, वह मृत्यु फूलोंके समान बिषयों को प्राप्तकरने वाली और अन्य विषयोंमें प्रवृत्तचित्त मनुष्यको प्राप्तहोती है चाहे किसी ने मनोरथोंको सिद्ध नहीं भी कियाहो परन्तु घड़ीभरका भी अवकाश न देगी इससे उचितहै कि जो काम कलकाहै वह उसीक्षणकरे अर्थात् बिलम्बकभी न करे जो कल्याण की बातहो उसको अभी करडालो बड़ासमय तुमको उल्लंघन न करजाय कौन जानताहै कि अब किसकी मृत्युका समयहै २८ मृत्यु कामपूरे न करनेपरही आकर्षण करलेती है मृत्युका कोई ऐसाकारण नहीं विदितहोता जिससे कि जीवनका समय विदितहो इससे धर्म्मकरना ही ठीकहै धन पुत्र स्त्री आदिमेंही प्रवृत्त न रहे धर्म्मके समय धर्म्मही निश्चय करे जिससे कि इसलोक परलोक दोनों में आनन्द पावे जब मृत्यु लेजाती है तब इसके योग्य अयोग्य चित्त के मनोरथ रहिजाते हैं बिषयोंमें लगे और मनोरथोंके पूर्ण न करनेवाले मनुष्योंको मृत्यु ऐसे निर्मूल करतीहै जैसे कि जलकाबेग बनस्पति और कच्चे स्थानों का विध्वंस करता है अथवा जैसे भेड़िनी भेड़को उठालेजातीहै वैसेही मृत्यु सबके बीचमें से जीवों को उड़ाले जाती है यह किया यहनहीं किया यहकाम करना है ऐसे बिचारवाले लोगों को और जिसने अपने कर्म्मोंका फल नहींपाया उन खेत दूकान घरमें आसक्त पुरुषोंको और सबल निर्बल ज्ञानी अज्ञानी पण्डित मूर्ख इच्छा करनेवाले पुरुषोंको और जरा व्याधिसे ग्रसित महापीड़ित कोभी मृत्यु ग्रासकरजातीहै सिवाय सत्यब्रह्मके सबस्थावर जंगम जड़चैतन्य मृत्युकेही ग्रासहैं, जो बनहै वही देवताओंका निवासस्थानहै यहश्रुतिहै और ग्रामादिकमें निवास करके पुत्र स्त्री धनआदि में प्रीतिहै वही इसपुरुषके बन्धनकी रस्सीहै श्रेष्ठ लोग इस रस्सीको तोड़करजाते हैं और निकृष्टकर्म्म करनेवाले इसको नहीं तोड़ते, जब पुरुष मन बचन कर्म्मकेद्वारा अपने धनजीवन के नाशहोनेपरभी किसी जीव मात्रको नहीं मारताहै वह कभी अन्यजीवोंके हाथसे नहीं माराजाता है इस कारण सत्यव्रत और आचारका रखनेवाला सत्यवक्ता जितेन्द्री समदर्शी पुरुष सत्य ब्रह्मकेही द्वारा मृत्युका जीतनेवाला होताहै अमृतता और मृतता दोनों

शरीरहीमें नियतहै अज्ञानसे मृतता अर्थात् मृत्यु और ज्ञानसे अमृतता अर्थात् अबिनाशताको प्राप्तहोताहै सो अहिंसायुक्त कामक्रोधरहित सत्य में आश्रित अबिनाशीके समानमैं सुखसे मृत्युकोत्यागूंगा, क्योंकि शांतियज्ञमें प्रीतियुक्त जितेन्द्री ब्रह्मयज्ञमें नियत मनकर्म्मवाणीका यज्ञकरनेवाला मुनिहोकर उत्तरायण समयमें ऐश्वर्य्यवान होऊंगा मुझसरीका समझाहुआ मनुष्य हिंसात्मक पशुयज्ञोंको कैसे करेगा, आत्मा में आत्माहीसे उत्पन्न आत्माही में निष्ठारखने वाला सन्तानरहित मैं आत्मयज्ञ कर्त्ता होऊंगा हेपिता सन्तान मुझको पारनहीं लगावेगी जिसके मनबाणी सदैव सावधान हैं और तप त्याग और योगभी होवे वह उनकेद्वारा सब पाताहै विद्याकेसमान नेत्र और फल नहीं है संसार की प्रीति के समान दुःख नहीं और त्याग के समान सुख नहीं है ब्रह्मकी ऐक्यता और अविनाशी होना इसके विशेष ब्राह्मण का दूसरा धर्म्म नहीं है हे पिता सदाचार में प्रवृत्त, दण्ड बिधान, साधुता और सफल कर्म्मों से वैराग्यवान् होकर जब तुम मरोगे तब तुमको धनबांधव स्त्रियों से क्या प्रयोजन है इससे तुम हृदयस्थान में बिराजमान आत्माकी इच्छाकरो भीष्मजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर पिताने पुत्रके ऐसे वचनोंको सुनकर वैसाही किया तुम भी इसीप्रकार सच्चेधर्म में प्रवृत्त होकर इसी कर्मको करो ५३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेपूर्वार्द्धेपितापुत्रसम्बादेत्र्युत्तरशततमोऽध्यायः १०३ ॥

इतिपूर्वार्द्ध समाप्तम् ॥

# अथ महाभारत भाषा ॥

## शान्तिपर्व्व मोक्षधर्म्म ॥

उत्तरार्द्ध प्रारम्भः ॥

## एकसौचारका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि ज्ञानीपुरुष कौनसे आचारज्ञानसे भरेस्वभाव और उन्नत स्थानका ज्ञाता होकर ब्रह्मरूप स्थानको पाता है क्योंकि पराप्रकृति रूपांतर दशासे रहित है, भीष्मजी बोले कि मोक्षधर्म्म अर्थात् अध्यात्म विद्यामें प्रीति मान् वह हितकारी जितेन्द्री पुरुष उस प्रकृतिसे भी ऊंचेराग द्वेष रहित रूपांतर अवस्था से पृथक् एक रसवाले स्थानको पाताहै जोकि कामरहित घरसे बाहर मोक्ष आश्रम में वर्त्तमान होवे और निष्पाप संन्यासी मनवाणी से भी दूसरे को दोषी न करे आगे पीछे कभी किसी स्थानपर किसी के अवगुण को न कहे हिंसारहित सूर्य्यके समान एकत्र स्थिर निवास न करे ईर्षा द्वेषसे पृथक् सबकी कठोर और असह्यबातोंको सहे कभी अहंकार न करे क्रोध उत्पन्न करा ने वाले से भी प्यारेही वचन बोले कोई गाली भी दे तबभी उसकी भलाईकरे जन समूहोंमें उनकी इच्छानुसार बर्त्तावकरे उनकी इच्छाके विरुद्ध कोईकाम न करे भिक्षाके निमित्त बहुत घरोंमें न घूमेप्रथम निमन्त्रित होकर किसी के यहां भोजन के लिये संन्यासी को जाना अयोग्य है किसी दशामें भी अपने मुखसे कठोर बचन न कहे ऐसा दयालुहो कि अपने मारनेवाले पर भी प्रहार न करे निर्भयरहै और अपनी बड़ाई न करे जब घरमें धुआं न होताहो अग्नि न जलती हो मनुष्यों ने भोजन न करलियाहो और लोगों का आनाजाना बन्द होगयाहो और भोजनपात्र हाथ में हो तब मुनि भिक्षाको चाहै केवल प्राण यात्राकेही योग्य भोजनकरे भोजन के पूरे न होने में हठ न करे न प्राप्त

होने में अपनी हानि न समझे न लाभहोने में प्रसन्नहो सबके समान माला चन्दन आदिको भी न चाहै प्रतिष्ठित होकर भोजन न करे इस प्रकारका संन्यासी आदर के लाभकी प्रशंसा न करे अर्थात् ( निन्दाकरे ) परंतु अन्य के दोषों की निन्दा न करे न किसी गुणकी प्रशंसाकरे सदैव सब से पृथक् आसन विछावे निर्जनस्थान पेड़ की छोह बन गुफा और दूसरे से अज्ञात अथवा श्मशान भूमिको पाकर फिर दूसरे किसी स्थान में प्रवेश न करे योगके अनुकूल संग से ब्रह्मरूपहोजाय और देवयान पितृयान गति से रहित रूपांतर अवस्था बिनाअच्छेबुरे कर्म्मोंको न चाहनेवाला जापक, शांत, सन्तोष, इन्द्रीनिग्रह, निर्भयता मौनता, वैराग्य, सबको आत्मारूप जानना कच्चे अन्न फलादिसे निर्बाहकरना चित्तबुद्धि से शुद्ध और अल्पाहारी, मनवचन क्रोधके वेगका सहना कामादिका रोकना रागद्वेष और निन्दास्तुतिमें समान बुद्धि इत्यादि गुणयुक्त, उदासीन, अशंक, गृहस्थ, बानप्रस्थके समीप न ठहरनेवाला, स्त्रीसेअशक्त, स्थानरहित, समाधि में नियतहोवे किसी समयपरभी गृहस्थ और वानप्रस्थकेघर में न ठहरे अनिच्छा लाभ में संतोषयह विज्ञानी संन्यासी सिद्धलोगों का मोक्षसाधन है इससाधन में अज्ञानी लोग दुःख पाते हैं २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मेउत्तरार्द्धचतुरधिकशततमोऽध्यायः १०४ ॥

# एकसौ पांचका अध्याय ॥

युधिष्ठिरने कहा कि हे पितामह सब मनुष्य हमको धन्यधन्य कहते हैं परंतु हमारी समान संसार में कोईभी दुःखी नहीं है क्योंकि मनुष्यों में जन्म पाकर लोकों के उत्पन्नकरनेवाले देवताओं में दुःखदेखागया है तो हम क्यों उसदुःखदायी संन्यास को करें इस कारण इनदेहोंका पानाही आपत्तिकामूल है और पंचप्राण,बुद्धिमन और दशोंइन्द्रियां यही सत्रह संसारके बन्धनहैं और कामक्रोध लोभ भय स्वप्न यह पांच योगदोष हैं और शब्दादि विषय और सत्त्वादि तीनोंगुण और पंचसूक्ष्मतत्त्व, अविद्या, अहंकार और कर्म्म यह आठकर्म्म हैं इनसबसे पृथक् व्रत परायण मुनिलोग फिर जन्मको नहींपाते हैं तो हमलोग कैसे राज्यको त्यागकरजायँगे अर्थात् संन्यास आश्रम को कैसे करसक्ते हैं, भीष्मजी बोले कि हेयुधिष्ठिर दुःखकाअन्त है अर्थात् दुःखके नाशकोही मोक्षकहतेहैं क्योंकि सब दृश्यपदार्थ और पुनर्ज्जन्मादि नाशमानहैं और सब ऐश्वर्य भी चित्त के लगाने से मोक्ष के हानिकारक दोष हैं सो हे धर्मज्ञ तुम इनसब के बिशेष अपने शमदमादि के अभ्यासरूप उद्योगही से समयपर मोक्षको पाओगे,हे राजा यहजीवात्मा सदैवके पापपुण्य और सुख

का स्वामी नहीं है और उस हर्ष शोक जन्य राग द्वेष रूप अज्ञान से भी रुकाहुआहै इसकारण दैवसेउत्पन्न सुखदुःखादि से व्याकुल न होनेवाला पुरुष मोक्षके निमित्त उपायकरे, जैसे कि रूपरहित बायु कृष्ण रक्तादि धूलोंसे मिलकर-उसीरंगसे आकाश को रंगीनकरता दृष्टि पड़ता है उसीप्रकार अविद्या रूप उपाधि से संयुक्त समस्त जीव अपने २ कर्मों से रंगीन होकर त्रिगुणातीत अपने मुख्य अन्तर्यामी को भी व्याप्तकरके देहों में घूमते हैं, जब जीवात्मा ज्ञान अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को दूरकरताहै तब सनातन ब्रह्म का प्रकाश होताहै उस सनातन ब्रह्म को मुनि लोग कर्म्म उपासनादि उद्योगके बिनाही सिद्धहोना कहते हैं अर्थात् जैसे कि कोई पुरुष अपने कण्ठ में पड़ी हुई मणि को भूलजाताहै और फिर विचार से उसको पाता है उसीप्रकार का यह ब्रह्मभी है इसीहेतु से जो पुरुष जीवन्मुक्त हैं उनका सेवन तुम को और सब संसारको करनायोग्य है अर्थात् उनकी उपासना से ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है इसी निमित्त सब ब्रह्मर्षि लोग ब्रह्मकी उपासना करते हैं, हे भरत वंशी जिस प्रकार पूर्व्व समयमें ऐश्वर्य्य के नाश होने पर वृत्रासुर ने इसी विषय में अपने चरित्रों को वर्णन किया उसको तुम चित्तसे सुनो कि उस पराजित असहाय राज्य हीन बुद्धिमें सावधान शत्रुओं में शोचरहित वृत्रासुर से शुक्रजी ने कहा कि हे दैत्य तुझ पराजित की कोई भी बस्तु नहीं है तब वृत्रासुरने कहा कि मैं सत्य और तपके बलसे जीवों के जन्म मोक्ष को निस्सन्देह जानकर न हर्ष करताहूं न शोक करताहूं, चारों युगसम्बन्धी जो पुण्य पापनाम धर्म्म अधर्म्महैं उनसे चेष्टावान् और विवसजीव नरकमें पड़ते हैं और सन्तोष गुण संयुक्त जीवोंको ज्ञानियोंने स्वर्गके योग्य कहा वह उस पापपुण्य की संख्या रखनेवाले कालको व्यतीत करके कुछ शेष बचेहुये पाप पुण्य रूपी काल से बारम्बार जन्म को लेते हैं और इच्छारूपी बन्धन में बँधे विवसजीव हजारों पशुपक्षियों के जन्मोंको पाते हैं इसीप्रकार सबजीव मात्र चक्रमें फिरते हैं और मैं इच्छासे रहित असुरारि ईश्वरका जाननेवालाहूं जैसा जिसका कर्म्म है उसीप्रकार का उसका देह वा ज्ञान होताहै यह शास्त्र से निश्चय है कि पूर्व्वकेही कर्म्मोंसे देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जन्मको और स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख आदि प्रिय अप्रियको प्राप्त करते हैं सबलोकों के जीव यमराजसेही दण्ड पाकर जन्मको पाते हैं सबलोग पूर्व्व में प्राप्त होने वाले मार्गको सदैव प्राप्त करते हैं अर्थात् स्वर्ग नरकमें अपने कर्म्मों के फल सुख दुःखको पाकर फिर जन्म लेतेहैं, वह समय चारों युगमें उत्पन्न होने वाले पाप पुण्य की संख्यासे अंकित है और उत्पत्ति स्थितिका मुख्य स्थान है तात्पर्य्य यहहै कि जो पुरुष निष्काम कर्म्म करताहै वह इस मार्गमें कभी

नहीं आता है यह बातें सुनकर भगवान् शुक्रजी ने उस असुर के ज्ञान से आश्चर्यित होकर उसकी परीक्षा के निमित्त उसको उत्तरादिया कि हे बुद्धिमान् वृत्रासुर तुम किस कारणसे असुरभाव की निन्दा करनेवाले वचनोंको कहतेहो वृत्रासुरने कहा कि यहबात आपके और अन्य ऋषियोंके प्रत्यक्ष है जैसे कि मुझ विजयके लोभीने पूर्व्वकालमें बड़ी तपस्याकी थी, मैंने अनेक ऋषि गन्धर्व्वों को बिवसकर अपने तेजसे तीनों लोकोंको ब्यास करके नष्ट किया और सब निर्भय जल थल आकाशचारी जीवोंको वशमें किया और तप के बलसे बड़े २ ऐश्वर्य्योंको पाया हे भगवन् वह सामान ऐश्वर्य्य तेज बल अपने कर्म्मों से नाशवान् हुआ इसी हेतुसे धैर्य्य में नियत होकर शोच नहीं करताहूं फिर मैंने उस षड़ैश्वर्य्यवान् पापोंके दूरकरने वाले युद्धके इच्छा वान् महात्मा ईश्वरको इन्द्रके साथमें देखा वही सबकी उत्पत्ति लयका आश्रय और सबका अन्तर्य्यामी है आदि अन्त रहित सर्व्वव्यापी है हे ईश्वर निश्चय वह मेरे उसकर्म्म के शेषफल का उदय था जिसके विषयमें कि आप से पूछना चाहताहूं कि बड़ा ऐश्वर्य्य किस ब्राह्मणादि धर्म्मों में नियतहै और उत्तम ब्राह्मय ऐश्वर्य्य फिर कैसेसदैव वर्त्तमान रहताहै अथवा दूरहोताहै,जीव किससे जीवते हैं जिसमें कि फिर बुद्धिके अनुसार चेष्टा करतेहैं अर्थात् कौन अन्तर्य्यामी है और जीव किस उत्तम फलको पाकर अर्त्थात् ज्ञानको पाकर ब्रह्मरूप होजाताहै, अथवा किस यज्ञादिकर्म्म या ज्ञान उपासना से उस फल का पाना सम्भवहै हे देव यहसब आप मुझे समझाके कहिये हे राजा युधिष्ठिर उसके उत्तरमें जो शुक्रजी ने वर्णन कियाहै उसको तुम चित्त लगाकर मुझ से सुनो ३४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्व्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेपंचाधिकशततमोऽध्यायः १०५ ॥

# एकसौछःका अध्याय ॥

शुक्रजी बोले कि उस षड़ैश्वर्य्यवान् ज्योतिरूप अनेक भावभेद से प्रकट होनेवाले परमेश्वरको नमस्कारहै जिसकी भुजाओं में आकाश समेत पृथ्वी तल वर्त्तमानहै और जिसका मस्तक अनन्त मोक्षका स्थानहै उस उत्तमसर्व व्यापी विष्णुभगवान्का माहात्म्य मैं तुझसे कहताहूं, यहदोनों इसप्रकार कहते ही थे कि इतनेमें धर्मात्मा सनत्कुमारजीभी संदेहके दूरकरनेके लिये वहां आपहुंचे और वृत्रासुर और शुक्रजीसे अभ्युत्थान पूर्वक पूजितहोकर वहमहात्मा सनत्कुमार बड़ोंके योग्य उत्तमोन्नत आसनपर विराजमानहुये और शुक्रजीने उनसे यहबचन कहा कि हे महाज्ञानी आप इस दानवेन्द्र को विष्णु भगवान्का उत्तम माहात्म्य सुनाइये इतनीबातके सुनतेही उन्होंने विष्णु के माहात्म्य

युक्त अर्थवान् वचन उस बुद्धिमान् असुरेन्द्र से वर्णनकिये कि हे परंतपदैत्य जिस सर्वव्यापी विष्णु में सबसंसार नियत है उस के माहात्म्य को सुनो कि वही सब स्थावर जंगम जीवों को उत्पन्नकर समय आनेपर अपने में ही लय करताहै फिर समयपर प्रकट करता है यह तो निमित्तका वर्णनहै और इसी में लयहोना और प्रकटहोना यही उपादान है इत्यादि गुणयुक्त विष्णुको जानना कठिन है इसकी प्राप्ति ज्ञानी के तपऔर यज्ञादि से असम्भव है यह केवल इन्द्रियोंके संयम अर्थात् योगसेही प्राप्तहोसक्ताहै जो पुरुषोत्तम बाह्याभ्यन्तर कर्म्मों में अर्थात् यज्ञादि शम दमादि में चित्त से नियत है और बुद्धि से उन यज्ञादिको निर्म्मल करता है अर्थात् यज्ञादि से अपनीचित्तशुद्धी को करता है वहदेहके अभिमानकोत्याग आत्मलोक में प्राप्तहोकर मोक्ष को प्राप्तहोता है जैसे कि सुनार चांदीको अग्नि से शुद्धकरता है उसीप्रकार जीवात्मा अपने कियेहुये बहुतसेयज्ञ और शमदमादि से सैकड़ोंवर्ष में अपनेदोषों से निवृत्त होकर पवित्रहोताहै और एकहीजन्म में बड़े २ उपायोंसे सिद्धीकोपाताहै जैसे अपनेदेहके मैलको थोड़े जल से धोता है उसी प्रकार बहुतसे उपायों से दोष निवृत्तहोते हैं१३जैसे कि थोड़ेपुष्पोंके समीपवर्त्तमान सरसों अपनी गन्धको नहींत्यागती उसीप्रकार निर्मल सूक्ष्म ब्रह्मकादर्शनहै और बहुतपुष्पों के समीपवाली सरसों जैसे अपनी स्वाभाविक गन्धको त्यागती है उसीप्रकार सैकड़ों त्रिगुणात्मक दोष प्रसंगी पुरुषों के बुद्धि और अभ्यास से उत्पन्न हुये उपायों से दूरहोते हैं हे दानव जैसे उत्पन्न होनेवाले जीव कर्म्म से प्रीति युक्त वैराग्यवान् भी कर्म्म के रागादि विषयों को प्राप्त करते हैं उसको सुनो, कि जो आदि अन्त रहित पापोंकानाशक सबका आश्रयपरमात्मा नारायण है वही सबस्थावर जंगमका उत्पन्न करनेवालाहै उसकी सर्वात्मता कहनेको नौप्रकार के गुणोंकी उत्पत्तिको कहते हैं वही सब देहधारियों में पंचतत्त्वात्मक होने से क्षर और जीवात्मारूप से अक्षर कहलाता है और मनसहित दशोंइन्द्रियां इनग्यारहरूपोंसे जगत्की रचनाकरके अपनेमेंही लयकरलेताहै एकता सिद्ध करनेकेलिये सब सृष्टिको नारायणकाही अंग कहते हैं अर्थात् उस के चरण पृथ्वी, मस्तकस्वर्ग, दिशाभुजा, आकाश कान, सूर्यनेत्र, चित्तचन्द्रमा, ज्ञान में उसकी बुद्धिकोजानो रसजलमें और सबग्रह उसकी भृकुटीके समीप हैं और नेत्रोंके प्रकाशमें नक्षत्रचक्रहै दोनों चरणोंमें पृथ्वीहै और रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण नारायणकेरूप हैं और यही जगदात्मा नारायण आश्रमोंको जप आदि कर्म्मका और संन्यासधर्म्मका स्वरूपफल है अर्थात् उसका मिलनाही मोक्षहै वेदोंकेमन्त्रआदि उसके शरीरीरोमहैं और प्रणव रूप सरस्वतीहै और बहुतसे वर्णाश्रमोंमें नियत बहुतप्रकारकाधर्म आत्मदर्शनरूप हृदयमें वर्तमान

है यहीब्रह्मधर्म्म सबसेश्रेष्ठहै वही तपवही कृच्छ्र चांद्रायण आदिव्रतहै वहीसत्य असत्य जगत्को पैदाकरताहै वहीसब वेदशास्त्र और ग्रहादिसे संयुक्त सोलह ऋत्विज्वालायज्ञहै वहीब्रह्मा वहीविष्णु वहीमहादेव वहीअश्विनीकुमार वही इन्द्रवरुण कुबेरभीहै यहसब उसीएकके अंगीहैं वहसबको विज्ञानवृत्तीसे देखताहै वही अद्वैत सबमें प्रकाश कररहाहै इस ब्रह्मकी प्राप्ति अत्यन्त कठिनहै इस को सुनो जितनेकालमें सृष्टिकीउत्पत्ति और लयहोती है उसको कल्पकहतेहैं और बहुतसे जीव हजारों कल्पतक जड़रूपहोते हैं और बहुतसे आनंदसे चर रूप बिचरते हैं हे दैत्य यह असंख्यबावड़ी इससंसारकी उत्पत्ति लयको प्रकट करतीहैं यहप्रत्येक बावड़ीपांचसौ योजनलम्बी एककोसऔंड़ी चारकोसचौड़ी अगम्य वृद्धियुक्तहो ऐसी बावड़ीके जलको बालकीनोक से प्रतिदिन एकबार जलकी बूंदनिकालीजाय और उस बूंदके निकलनेसे जितने कालमें उनका जल निबटै उतनेकालमें प्रलयहोना समझो इस प्रकारसेभी संसार में एकही जीविका लयहोताहै अर्थात् एकजीवकेमुक्तहोनेपर अथवानाशहोनेमें असंख्य जीवहोतेहैं इस बर्णनसे किसी दशामें भी संसारका नाशनहींहै, जीवात्माके छःबरण परम प्रमाणरूपहैं पहिला कृष्णबरण तमोगुणकी बिशेषता और बाकी के दो गुणकी परस्पर में प्रकटहोनेवाली कमी और बराबरी यह तोजड़जीव वृक्षादि हैं, दूसरा धूम्रबरण और बाकी के दोनों गुणोंकी न्यूनाधिकता यही पशुपक्षीहैं, तीसरा रजोगुणकी अधिकता नीलबरण और शेषदोनों गुणों की कमीबराबरी यहीमनुष्यादिहैं, मध्यमबरण पूर्वके प्रत्येक दोदोगुणकी न्यूनाधिकतासे प्रकट होनेवाले शमदम आदिगुण रक्तबरणहैं,वह प्रवृत्ति मार्गवालोंके निमित्त सुखरूप हैं, बड़े साहसी ज्ञानियों के सतोगुणकी आधिक्यता और शेष दोनों गुणों की परस्परकी न्यूनाधिकता स्वर्गरूप सुखदायी है, सतोगुण स्वेत, रजोगुण लाल, तमोगुणका कालारंग है इनतीनों की न्यूनाधिकतासे अन्य पीत आदिरंग उत्पन्न होते हैं हे दैत्य इनसृष्टियों में शुक्लनाम कौमार स्वर्ग रागद्वेषसे पृथक् होनेके कारण निर्मल पापरहित शोकसे पृथक् मोक्षको साधन करताहै परन्तु वह बहुतही कठिनता से प्राप्तहोताहै अर्थात् यह जीव उन योनियों से उत्पन्न हजारों जन्मों को पाकर सिद्धिको पाता है उसको बर्णन करतेहैं—इन्द्र देवताने जिसश्रेष्ठ शास्त्रके द्वारा जिस अनुभव आत्मारूप गतिका वर्णन किया वही गतिरूप बरण धारण करने वाले संसारकाहै इस प्रकार से वह बरण उसचारों युगों के रूपजीव से उत्पन्न होताहै आशय यहहै कि धर्म्म में प्रीतिमान धर्महीका आलम्बन करने वाला अधर्म्मरहित अधर्म्म सेही प्रीतिमान जीव इनचारों रूपसे चारोंयुगका स्वरूपहै और पूर्वसंस्कारके कारण गुणोंमें प्रवृत्त होताहै और हेदैत्य यहां जीव पंचकर्म्मेन्द्री पंचज्ञानेन्द्री

चारअभ्यन्तरेन्द्री इन चौदहों के प्रयोजन से लाखोंहोजाते हैं और अर्थों के विभागसे भिन्नवृत्ति भी होतीहै उनसतोगुण प्रधान चौदह इंद्रीरूपसे जीवोंका ऊपरनीचे और सब ओरहोना अथवा पृथक् होनासमझो, अब सतोगुण प्रधान न होने से दोनोंको कहतेहैं—जड़भाव होनेवाले कृष्णवरणकी अधोगतिहै वह कृष्णवरण जीव नरक देनेवाले कर्म में प्रवृत्तहोता है इसी हेतु से नरकका भोगनेवाला होताहै ऐसेही उनचौदह इंद्रोंके कारण कुमार्ग में चलने वालेका निवासभी नरकमें होताहै और बहुत कल्पतक रहताहै फिर वह जीव एकलाखवर्ष घूमकर धूम्रवर्ण पशुपत्तियों में जन्मको पाता है शीतोष्णता से दुखी सब ओरको भय और कालको देखनेवाला जीव उस योनि में निवास करताहै और पापके भोगके पूरेहोने पर विवेक बुद्धिसे जब वह सतोगुण से संयुक्त होकर तमोगुण प्रवृत्तिको दूरकरताहै तब अपनी बुद्धि से कल्याण के निमित्त उपाय करताहै वह लालवरण अर्थात् अनुग्रह स्वर्गशमदमादि गुणों कोपाताहै और सतोगुण से पृथक्होने में नीलवर्ण मनुष्यके जन्मको पाकर नरलोकमें आवागमन करताहै, वह जीव वहांपर एक कल्पतक अपने कर्म जन्मबंधन से खेदको पाताहै वहां ऊपरचढ़ने वाला वह जीव सौकल्पके अन्त होनेपर पीतवर्ण देवभावको पाता है अर्थात् सौकल्पतक कभी मनुष्य कभी देवता होताहै, हे दैत्य पीत वर्णवाला देवता हजारों कल्पों में भ्रमण करता हुआ भी विषयों से बँधाहुआ प्रत्येक कल्पमें प्राप्तफलोंको वास्तवमें नरकनाम स्वर्गमें भोगता गतियोंमें घूमता नियत होता है वह सबगति संख्यामें उन्नीस हजार हैं इस निमित्त इस जीवको नरक से अर्थात् भोग देनेवाले कर्म से जुदाजानो आशय यह है कि स्वर्गभी नाशवान् है और दूसरे जन्म में भी यही दशाहै इसी कारण पत्तियोंके जन्मके समान देवभाव भी भोग भूमिके होने से त्यागके योग्यहै वह जीव लोकमें सदैव विहार करताहै उससे छूटकर मनुष्य देहको पाताहै फिर देवभावको पाताहै पांचों इन्द्री मन बुद्धि चित्त यह आठों अपने अर्थोंके प्रत्यक्ष और लयके कारण हैं और अर्थों के विभाग से सैकड़ों होजातेहैं उन प्रत्यक्ष और लयादिको वह पाताहै जोकि नरलोकोंमें नियतहै वह इससंकल्पसे उत्पन्न प्रत्यक्ष और लयके कारण कलियुगसे भ्रष्टताको पाकर पृथ्वीपर सबसे छोटे वृक्षादिके रूपमें जन्म लेताहै, अब मुक्तिके उपायको कहते हैं—वह मोक्षका चाहनेवाला जोकि सातव्यूहरखनेवाले दिव्य सात्विक शमदमादि की वृत्तियों के कारण सैकड़ों वृत्ति रखनेवाले हैं उन में आश्रित होकर प्रथम लाल वर्ण अर्थात् शमदम आदि गुणों में अच्छेप्रकार से प्रवृत्त होताहै फिर पीतवर्ण देवभाव को पाता है फिर बालकके समान शुक्लवर्ण रागद्वेषसे रहित होताहै फिर इसी शुक्लमार्ग में दौड़ताहै वह अष्ट-

पुरियों से उत्तम अर्चितम लोकों को पाताहै, आशय यहहै कि धूम्रमार्ग से चन्द्रलोककी प्राप्ति होताहै वहीअर्चित और उससे भी ऊंचाब्रह्मलोक अर्चितर कहाता है और उससे श्रेष्ठतर केवल ज्ञानसेही प्राप्त होनेवाला योगफलरूप अर्चितम है, ब्रह्मज्ञानी इन आठोंको चित्तसे रोकते हैं इनके भी भेद पूर्व्वोक्त रीतिके अनुसार छःहजार होजाते हैं अर्थात् वह अज्ञानदृष्टि से पृथक् २ भी ज्ञानियों के केवल चित्तरूप हैं हे महानुभाव शुक्लवर्णकी जो गतिहै वह जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति इन तीनों दशाओं की रोधकरूप है अर्थात् तीनोंदशाओं की रोधकता तुर्यानाम अवस्था है क्योंकि उपाधि रहित होनेसे उसकी प्राप्ति नहीं कहसक्ते, इसप्रकार से जीवन्मुक्त पुरुष के भोग प्रारब्ध कर्म्मको जो कि हजारों प्रत्यक्ष और लयका रखनेवाला और अनिच्छासेही इसदेहमें निवास करताहै और योग ऐश्वर्य्य से प्राप्त दिव्यभोगों के त्याग करने में असमर्थ योगी दूसरे चार योगबलसे ऐश्वर्य्यमान् और कर्म्म मुक्तिके स्थान महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक में निवास करताहै क्योंकि वह उस शुक्लवर्ण रखनेवाले योगीकी गति है जिसने उसगतिकी सिद्धि में भी शुद्धब्रह्म के साक्षात्कार से जीवन्मुक्ति को प्राप्त नहींकिया परन्तु उसके रागद्वेष नष्टहोगये तात्पर्य्य यह है कि योग सिद्धि भी जीवब्रह्मकी ऐक्यता के ज्ञान से कर्म मुक्तिको प्राप्तहोताहै, योगभ्रष्टकी गतिको कहते हैं, जो योगी योगका अनुष्ठान अच्छीरीति से करने को समर्थनहीं है वह शेषबचेहुये कर्म्मसेयुक्त सौ कल्पतक इन्द्रीमन बुद्धि में प्रवृत्त होकर निवासकरता है फिर वहां से लौटकर नरलोकमें ऐसे मनुष्यकाजन्म पाताहै जो कि अच्छेकुल के व्यवहार और विद्या आदि में अति कुशलहो फिर उसनरदेहको त्यागकर क्रमसे उत्तम योनियोंके प्राप्तकरनेको जाताहै अर्थात् पहले अभ्यासकेद्वारा पिछली २ योग भूमियोंपर चढ़ता है इसप्रकारसे जानेवाला वहयोगी सातवार लोकों में ब्रह्म लोकतक भोगता और घूमता है वहयोगी समाधि और उत्थान से ऐश्वर्य्य को प्राप्तकरता है, फिर भूलोक आदिकी बुद्धि और चित्त से इच्छा को और पांचों ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञानसे लयकरके और सब को दुःखरूप निश्चयकर के जीवलोकमें नियतहोता है, तदनन्तर देह को त्याग रूपान्तर दशा से रहित अनन्त सिद्ध ब्रह्मस्थान को पाता है वह शिवजी महाराजका लोक है ऐसा शैव लोग कहते हैं और वैष्णव उसको विष्णुलोक कहते हैं और हिरण्यगर्भ उपासक उसको ब्रह्मलोक और शेषजीका लोक कहतेहैं और सांख्य शास्त्र वाले उसको जीवात्माका परम्पद कहते हैं और उपनिषद मतवाले उसको प्रकाश मान चिन्मात्र सर्व्वव्यापी तुरीयरूप परब्रह्म परमात्मा का स्थान कहते हैं अब वादीप्रतिवादी समेत सबकी स्वीकृत बृत्तिको कहते हैं संहार काल में

जिन जीवोंके स्थूल सूक्ष्म कारण और चेष्टारूप देवगण और जो ब्रह्मलोकसे दूसरे मध्यवर्ती प्रकृति आदिहैं यह सब देहसमेत ज्ञानसे जब अत्यन्त भस्म होतेहैं तब मोक्षहोकर ब्रह्मको प्राप्तहोतेहैं, इसप्रकार आत्मज्ञानसे उत्पन्न महा प्रलयको कहकर आवान्तर प्रलयको कहतेहैं—प्रलयकालके समीप होनेपर देवभाव को प्राप्त करनेवाले और सम्पूर्ण कर्म्म फलोंके न भोगनेवाले जीव पहले कल्पके प्राप्तहुये अपने स्थानोंको दूसरे कल्पमें भी पातेहैं क्योंकि वेद वचनोंके अनुसार सबकल्प पहले कल्पोंकेसमान होतेहैं और जो देवभावको प्राप्त करनेवाले जीव कल्पके अन्तमें कर्म्मों के फलोंको भोगचुकेहैं वह सब सृष्टिके संहारकालमें दूसरे मनुष्योंकी समान देहको प्राप्तकरतेहैं—तात्पर्य्ययह है कि विना ब्रह्मज्ञान के सैकड़ों प्रलय में भी किया हुआ कर्म्म नाश नहीं होताहै, जो जीव परम्परा पूर्व्वक ब्रह्मलोक से पतन हुये वह क्रम से उन्हीं मनुष्योंकी गतिको पातेहैं और जो जीव कि उनके बल और रूपमें समानहैं वह अपने २ अच्छेबुरे कर्म्मोंके फलको विपरीतताके साथ प्राप्तकरतेहैं, तात्पर्य्य यहहै कि एकहीकल्पमें स्थिति अस्थिति दोनों होतीहैं इसीकारण संसार से भयभीत मनुष्यको तत्त्वज्ञान में आश्रय लेना योग्यहै, इसप्रकार विवेकयुक्त ब्रह्मविद्याको कहकर संसारी दशाको कहते हैं—वहब्रह्मज्ञानी जब तक प्रारब्ध कर्म्मको भोगताहै तबतक उसके अंगों में उसकाही रूप सब संसार और दोनों शुक्लवर्ण वा दिव्यपरा अपरानाम मायाबर्त्तमान रहती है अर्थात् ब्रह्मज्ञानीको शुद्ध कैवल्य मोक्षतकही सब जगत्है फिर नहीं है क्योंकि योग से शुद्धचित्त होकर और धारण, ध्यान समाधि रूप संयमका अनुष्ठान करके यहसब दृश्यमान् आकाशादि पंचइन्द्री के समानहै, सदैव श्रवण, मनन निदिध्यासनके अभ्याससे शुद्धहोकर निश्चयकरता उसअविद्या रहित शुद्धचिन्मात्र भावपरमगति ब्रह्मकोपाताहै फिरब्रह्मके साक्षात्कारके पीछे अविनाशी मोक्षस्थानको पाता है—वहब्रह्म शुद्ध चैतन्यतर है फिर उसआकाश सदृश अरूपकी प्राप्ति नहीं कहसक्ते इसी से वहदुःप्राप्यहै, हे बुद्धिमान् वृत्रासुर यह मैंने जगदात्मा नारायणकाबल पराक्रम तुझसेकहा—वृत्रासुरने कहा कि मैं इसदशाको अच्छेप्रकारसे देखताहूं इसमें मुझको व्याकुलता नहीं है हे बड़ेबुद्धिमान् मैं तेरेइसवचनको सुनकर अविद्या और शोक मोहसे रहितहूं हेमहर्षि इसबड़े प्रतापी अनन्त विष्णुका यह अत्यन्त पराक्रम युक्त चक्रही सनातन स्थानहै जिसमें सब संसार बर्त्तमान है—भीष्मजी बोले कि हे कुन्तीनन्दन उसवृत्रासुरने इसप्रकार वचन कहकर उक्तरीति से आत्माको ब्रह्ममें लयकरके उत्तम स्थानको पाया, युधिष्ठिर बोले हे पितामह पूर्व्वसमयमें जिसको सनत्कुमारजीने वृत्रासुरसे वर्णन किया वहषड़ैश्वर्य्यवान् ज्योतिरूप यही श्रीकृष्ण

हैं जो राजाओंके समान मूर्त्तिमान सम्मुख वर्त्तमानहैं यह बातसुनकर ईश्वर में युधिष्ठिरको भ्रम न होनेके निमित्त भीष्मजीने कहा कि मैं मूल अधिष्ठान को कहताहूं जो उसके समान निराकाररूपसे नियतहुआ उसको मूलस्थायी कहतेहैं वह चैतन्यमहान् आत्मामायासे रहित भूमिरूप आधारस्थानहै वही प्रथमहुआ फिर चैतन्यमाया शबलनाम षड़ैश्वर्यमान कार्यकारणका आत्मा होताहै फिर स्थावर जंगमजड़ चैतन्यका आत्माजीव रूपहोताहै यही दूसरा है वह भी अपनेतेजसे दृष्ट आनेवाला तेजसनाम कार्यब्रह्मताको प्राप्तहोकर वृक्षहोताहै यह तीसराहुआ उसब्रह्मांडरूप कार्यमें नियत यहश्रीकृष्णजी बहुत बीजोंके गर्भ फलके स्थान में चौथे हैं यही श्रीकृष्णजी उसकार्य कारणरूप वृक्षबीज रूपभावको उत्पन्न करतेहैं इनकाचित्त सत्यसंकल्पादि गुणोंसे भरा हुआहै उसमूलस्थायी चिन्मात्रके आठवेंभागसे उत्पन्न इनमूर्त्तिमान् केशवजी को जानो यह अबिनाशी हैं अर्थात् अविद्याके बर्त्तमान रहने तक इनका नाशनहीं है यह बुद्धिमान चैतन्यके आठवें भागसे तीनोंलोकों को उत्पन्न करताहै इसका आशय यहहै कि मूल स्थायी तो पूर्ण चैतन्यहै और माय सबल ब्रह्म मायाके भागकी संप्रधानतासे चैतन्यका आधाहै और अविद्यारूप समष्टि कार्य्य तैजसमें बीजका भाग आधाहोनेसे चैतन्यका चौथाई है और व्यष्टि कार्य्य में देहआदिको पृथक् न माननेसे आठवां भाग है यहबात हम लोगोंमें भी है क्योंकि उपाधि रहित होने से हमारी भी यहीदशा होसक्ती है तो इनको भगवान् से कहना चाहिये इसशंकाको कहते हैं—कि कर्मफलका स्वरूप ईश्वरता आदि श्रीकृष्णजीमें योग्यहै और हमलोगों में कच्चे फलके स्वरूप अनीश्वरता प्रकटहै इसीकारण से हम लोग इनके समान नहीं होसके—इनचारों की पृथक्ता अपने अज्ञान से है नहीं तो चारों एकशुद्ध चैतन्य हैं इसीको कार्य्यरूप संसार और कारणरूप कर्त्ता की ऐक्यता सिद्ध करने से दृढ़ करते हैं— जो मध्यवर्ती समष्टि कार्य्य आत्मा तीसराहै वह कल्पके अन्त में लय होता है और षडैश्वर्य्यवान् ईश्वर महा पराक्रमी प्रभु अन्तर्य्यामी है वह भी अखण्ड एकरस ब्रह्ममें लयहोता है क्योंकि इस ईश्वर की अविनाशिता व्यवहार से है परमार्थ से नहीं है—शुद्ध चैतन्य ब्रह्माजी उस अखण्ड एक रस सदैव होनेवाले आत्मा को अविद्या के त्याग से प्राप्त करते हैं, वह अनन्त परमात्मा सब कारणों को अपनी सत्ता और स्फूर्त्ति देने से पूर्ण करता है और सदैव एकरूप वही उपाधि विशिष्ट श्रीकृष्ण रूप से लोकों में घूमताहै वह ऐसा भी हमारे समान उपाधि धर्म्म युक्तोंसे नहीं रोका जाताहै इसीकारण अहंकार रूप होकर जगत्को पैदा करताहै यह महात्मा सबका आधार रूपहै इसी में यह सब विचित्र जगत् ऐसे नियतहै जैसे कि

बीजमें वृक्ष और फलमें बहुत से बीज होतेहैं युधिष्ठिर ने कहा कि हेपितामह मैं जानताहूं कि बृत्रासुरने अपनी शुभगतिको देखा उस आत्मगतिके दर्शन से सुखी होकर शोच नहीं करता है और हे पितामह शुक्ल और शुक्लबंश में उत्पन्न पशुपक्षी योनि में जन्म नरक से छुटा फिर लौटकर नहीं आता है, और देवभाव युक्त पीतबर्ण जिसमें रजोगुण अधिक तमोगुण सम और सतोगुण कम होताहै अथवा लालबर्ण अनुग्रह स्वर्ग, शम, दमादि जिसमें रजोगुण अधिक सतोगुण सम तमोगुण कम होताहै इन सबमें बर्त्तमान मनुष्य अगर तामसी कर्मोंमें संयुक्तहो अर्थात् रजोगुणके समान होनेसे कभी आबरण प्रवृत्तिकी आधिक्यताहोय तो उससे पशुपक्षी के भी जन्मको देखे है और हम आपत्तिमें फँसे दुखरूप सुख में प्रवृत्त हैं इसकारण न जाने किस गतिको पावेंगे नीलबर्ण वा कृष्णबर्ण युक्त नीचगति पावेंगे, भीष्मजी बोले कि हे पाण्डव तुम उत्तम कुल में उत्पन्न प्रशंसनीयहो तुम देवलोकोंमें बिहार करके फिर मनुष्य जन्म पाओगे अर्थात् समयपर सुखपूर्वक शरीरको त्याग देव भावको प्राप्त सुखको भोग आनन्दसे सिद्धरूप कहलाओगे चिन्ता मत करो तुम सब निर्मलहो ९९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्म्मेउत्तरार्द्धेषडधिकशततमोऽध्यायः १०६ ॥

# एकसौसातका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे तात बड़ा तेजस्वी बृत्रासुर प्रशंसाके योग्य है जिसमें अपार बिज्ञान और बिष्णु भगवान्‌की ऐसी भक्ति वर्त्तमानहै और बिष्णुका अपार तेजोमय परमपद भी कठिनतासे जानने योग्यहै हे पितामह उसने उस पदको कैसे जाना मैं आपके कथन से श्रीकृष्णजीपर श्रद्धा करताहूं परन्तु फिर भी ठीक २ न जानने से मेरी बुद्धि में यह शंकाहै कि वह धर्म का अभ्यासी बिष्णुभक्त वेदान्त के अर्थ बिचारमें महातत्त्वज्ञ ज्ञानी बृत्रासुर इन्द्र के हाथ से कैसे मारागया इसको कृपाकरके बर्णन कीजिये और जिसप्रकार से युद्धहुआ उसके भी सुनने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा है — भीष्मजी बोले कि पूर्व समयमें इन्द्र अपने देवगणों के सहित रथोंमें बैठकर जातेथे कि दैवयोग से पर्वतके समान आगे खड़ेहुये बृत्रासुरको देखा वह उंचाईमें पांचसौ योजन और कुछ अधिक तीनसौ योजन मोटाथा वह त्रिलोकी से भी बिजय करने के योग्य न था उसको देखकर सब देवता महा भयभीत होकर व्याकुल हो गये और इन्द्रभी उसके इस महाघोर अद्भुत रूपको देखकर निश्चेष्ट होगया फिर युद्धके प्रारम्भ में देवता और असुरोंके मुख और बाजों के महाशब्दहुये तदनन्तर सन्मुख इन्द्रको उद्यत (नियत) देखकर बृत्रासुरको भय और भय

से उत्पन्न निश्चेष्टता इत्यादि सब जातीरही फिर देवराज इन्द्र और महात्मा वृत्रासुर का ऐसा घोरभयानक युद्धहुआ जो तीनोंलोकोंका भयकारीथा,खड्ग, पट्टिश,शूल शक्ति,तोमर,मुद्गर और बड़ेशब्दायमान अनेकअस्त्र शस्त्र धनुष दिव्य अस्त्र अग्न्यस्त्र और उल्कापातों से युद्धहुआ तबतो देवता लोग असुरों के शस्त्रोंसे घायल होकर महाव्याकुलहुये उस युद्धके देखनेको ब्रह्मादिक बड़े२ देवता ऋषि गन्धर्व भी अपनी२ अप्सरा और स्त्रियोंके साथ उत्तम२ अनेक बिमानों में बैठकर आपहुंचे फिर उस वृत्रासुरने आकाश में जाकर पाषाणों की वृष्टि से देवराज समेत सब देवताओं को ढक दिया तब देवताओं ने भी महाक्रोधित होकर अपने दिव्य बाणों से उस पाषाणवृष्टि को निवृत्त किया फिर वृत्रासुर ने महाक्रोधित होकर अपनी नाना प्रकारकी मायाओं से देवराज को व्याकुल किया और इन्द्र घबराकर निश्चेष्ट होगया तब वशिष्ठ जी ने वेदों की ऋचाओं के द्वारा उसको सावधान किया और कहा कि हे दैत्य और असुरों के मारनेवाले देवेन्द्र तुम देवताओं में श्रेष्ठ और तीनों लोक के पराक्रम से युक्त हो तुम क्यों असावधान होकर चेष्टा रहित होगयेहो और देखो यह भगवान् बिष्णुजी शिवजी ब्रह्माजी और चन्द्रमा आदि अनेक ब्रह्मर्षि लोग भी वर्त्तमानहैं हे देवेन्द्र तुम अन्यकेसमान मूर्च्छा को त्यागो और युद्ध में श्रेष्ठइच्छाकरके शत्रुको मारो और हे देवराज यह त्रिलोकी के स्वामी बिष्णु भगवान् तुमको देखते हैं और यह बृहस्पतिजी ब्रह्मर्षियों समेत तेरीही विजय के निमित्त दिव्य अस्त्रोंसे तुमको प्रतिष्ठा देरहे हैं—भीष्मजी बोले कि इसप्रकार से वशिष्ठजी की प्रशंसा से इन्द्र में महाबल उत्पन्न हुआ फिर चैतन्य होकर इन्द्रने बड़े योगमें प्रवृत्त होकर उस दैत्यकी मायाको दूर किया २८ तदनन्तर अंगिराऋषि के पुत्र बृहस्पतिजी और सब महर्षि वृत्रासुर के पराक्रमको देखकर महेश्वर जी के पासजाकर लोकों के आनन्दके निमित्त बृत्रासुरके बिनाशकी प्रार्थनाकरतेभये तब षडैश्वर्य्यमान जगत्पति शिवजीका तेजज्वर रूपहोकर महाउग्रता से वृत्रासुर के शरीरमें प्रवेशकरगया और संसार के पालनकर्त्ता और सब लोकोंमें पूजित बिष्णुजी ने इन्द्र के बज्र में प्रवेश किया तब महातेजस्वी बृहस्पतिजी बशिष्ठजी और सब महर्षियों ने इन्द्र के पास आकर उसको समीप करके उससे सब ने एक चित्त होकर यह बचन कहा कि प्रभु इन्द्र तुम बृत्रासुरको मारो और शिवजीनेकहा हे इन्द्र यह वृत्रासुर महापराक्रमी बड़ालम्बा चौड़ा ज्ञानसे बिश्वात्मा रूप सर्वत्र बर्त्तमान प्रबल मायाबीप्रसिद्ध है सो हे देवेश्वर तुमयोगमें आरूढ़ होकर इसमहाबली दुर्जयवृत्रासुरकोमारो और इसका अपमान मतकरो इसने पराक्रमकेलिये साठहजार बर्षतक तपस्याकीहै इससे ब्रह्माजीने बरदियाहै कि

तू योगियोंमेंश्रेष्ठ महापराक्रमी मायावी अतुल तेजधारीहोगा सो हे इन्द्र यह मेरातेज तुझमें प्रवेशहोताहै और तेरेवज्रमें श्रीविष्णुभगवान्ने आप प्रवेश कियाहै तुम इससंसारके व्याकुल करनेवाले वृत्रासुरको वज्रसेमारो, इंद्रनेकहा हे देवदेव भगवान् मैं आपकी कृपासे आपके देखतेही देखते इस महादुर्जय दैत्यको वज्रसेमारूंगा, भीष्मजी बोले कि फिर तो उसके देहमें ऐसे तेजों के होने से देवता और ऋषियों के आनन्दकारी महाशब्दहुये जब बड़े शब्दकी हजारों दुन्दुभियों के और शंख मुरज डिंडिभी के आनन्दकारी शब्दहुये तब असुरोंको मूर्च्छा हुई और क्षणभर में सब माया नाशहोगई तदनन्तर देवता और ऋषियोंने तप से भरा वृत्रासुरका देहजानकर अपने स्वामी इन्द्र की प्रशंसाकी और अनुमतिभी दी तब ब्रह्मर्षियोंसे स्तुतिकियाहुआ इंद्र युद्धकेसमय रथ में चढ़ा हुआ ऐसा तेजवान् हुआ कि उसके स्वरूप को कोई कठिनतासे भी नहीं देखसक्ता था ४३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेसप्ताधिकशततमोऽध्यायः १०७ ॥

# एकसौआठका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे महाराज तप से पूर्ण देह वृत्रासुर के शरीर में जो चिह्न प्रकट हुये उनको मुझसे सुनो, देदीप्य अग्नि के समान मुख और घोर रूप होकर उसकी अपूर्व बिवर्णता अर्थात् और का और रूप ऐसा होगया कि सम्पूर्ण अंगों में रोमहर्ष और बड़े२श्वासा निकलनेलगे अर्थात् स्वरूपमें मृतकताछागई और नाकमुखसे बड़े२श्वासनिकले और उसके मुखसे उसकी कल्याणरूप देवीनिकली जो दूसरोंको भयकारी दिखाईदी वह महाघोर देवी उसकी स्मृति अर्थात् स्मरणशक्तिथी उसके निकलतेही चारों ओर से उल्कापात होनेलगा और गिद्ध, कंक, बलाक इत्यादि पक्षी महाशब्द करने लगे और वृत्रासुरके ओरपास भ्रमणकरनेलगे तिसपीछे युद्धमें देवताओं से प्रशंसित इन्द्रहाथ में बज्र धारणकर रथमें बैठ उसदैत्य को अच्छेप्रकार से देखने लगा तबउस उग्रतप महा असुरने जंभाईली और अमानुष घोर शब्दकिया तभी इन्द्रने उसके वज्रमारा और उस कालरूप बज्रके लगतेही वृत्रासुरगिरा तब वृत्रासुर को मृतक जानकर देवताओंने चारों ओरसे जयजय शब्दकिया और इन्द्र देवता उसको मारकर विष्णुजी के साथ बज्र समेत अपने स्वर्ग में आये तब वृत्रासुर की देहसे ब्रह्महत्या बाहर निकली वह महाघोर रूप भयानक दांत मलिनशरीर कालापीलारंग बिखरेहुये बाल घोरनेत्रयुक्त कृत्या के समान कपालोंकीमाला धारण कियेहुये रुधिरभरे बस्त्रों से आच्छादित थी उसने निकलतेही बज्रधारी इन्द्रकी खोजकरी हे राजेन्द्र युधिष्ठिर थोड़े काल

केपीछे लोकोंके उपकारके हेतु इन्द्रदेवता स्वर्ग के सन्मुख चलेगये वहां उस ब्रह्म हत्याने उस निकलेहुये इन्द्रको देखकर पकड़लिया और देहसे चिपटगई उससमयइन्द्र महादुखी होकर कमलकी नालमें नियतहोकर बहुतकाल व्यतीतकरते हुये और उस ब्रह्महत्या ने पैरकी ऍंड़ी में होकर इन्द्रको बांधलिया तबउस तेजहीन इन्द्रने उस से छूटने के लिये अनेक उपायकिये परन्तु किसी प्रकार से भी उसहत्या को दूर न करसका तब महाभयभीत होकर इन्द्र ने ब्रह्माजीके पासजाकर साष्टांग दण्डवत्की तब ब्रह्माजी ने उसउत्तम ब्राह्मणकी हत्यासे पकड़ेहुये इन्द्रको जानकर बहुत बिचारकिया और मधुरस्वर से बिश्वासदेकर उसब्रह्महत्यासेकहा कि हे भवानी तू इसइन्द्रकोछोड़दे और मेरा कहनामानले और जो तेरा अभीष्टहो उसको कहदे ब्रह्महत्या बोली कि तीनोंलोक के स्वामी और पूज्यके ऐसे बचनोंसेही मैंने सबकुछ पालिया अब मेरेरहनेको स्थान बिचारकीजिये संसारकी रक्षाकी इच्छाकरनेवाले आपही से यह मर्य्याद विचारकीगई यह बड़ीमर्य्याद आपने प्रकटकी हे लोकेश्वर धर्म्मज्ञ आपके प्रसन्नहोनेसे मैं इन्द्रसे पृथक्होजाऊंगी आप मेरास्थान नियत कीजिये, भीष्मजी बोले कि फिर वहां ब्रह्माजीसे ध्यानकियेहुये अग्नि उत्पन्नहोकर ब्रह्माजीसे बोले हे निर्दोषब्रह्माजी मैंभी आपकेआगे वर्त्तमानहूं जो मेरेयोग्य कामहो वह आज्ञादीजिये ब्रह्माजी बोले कि मैं इन्द्रके बचनोंकेलिये इस ब्रह्महत्या के बहुतसेभाग करूंगा तुमइसके चौथेभागको लो अग्निदेवता बोले कि हेब्रह्मन् मेरीमोक्षका अन्तकौनहोगा इसको बिचारकरिये और मुख्यता समेत मुझे सुनाइये ब्रह्माजी बोले हेअग्नि जो अज्ञानी मनुष्य आप के किसी स्थानपर अग्निरूप तेजकोपाकर पुरोडास आदि वीरुध औषधी रस और सोमदूध आदि से पूजन नहीं करेगा उसको यह ब्रह्महत्या शीघ्रही प्राप्तहोगी और उसीमें निवासभी करेगी हे अग्नि तेरे चित्तकासंताप दूरहोय जब हव्यकव्य भोजन करनेवाले अग्निदेवताने ब्रह्माके ऐसे बचनसुने तब उनकी आज्ञा के अनुसार वहीकिया फिर ब्रह्माजीने वृक्षऔषधी तृणआदि कोबुलाया और यहीबचन उनसे भी कहा और वह सबभी अग्नि के समान पीड़ित न हुये और ब्रह्मासे बोले कि हे लोकोंके पितामह हमारी ब्रह्महत्या का क्याअन्तहोगा हमप्रारब्धके मारेहुयेहैं हम को आपपीड़ादेने केयोग्य नहींहो हेदेव हम सब ऊष्मा, शीत, वर्षा, वायु छेदन भेदनआदि अनेक दुःखोंको अपने ऊपर सहते हैं हे त्रिलोकीनाथ हम आपकी आज्ञा से अपने ऊपर हत्याको धारणकरेंगे आपहमारी मोक्षका बिचारकरिये, ब्रह्माजी बोले कि जो मनुष्य किसी पूर्वकाल के वर्त्तमान होनेपर भूलसे भी तुम्हारा छेदन भेदन करेगा उसपर यह ब्रह्महत्याप्राप्तहोगी यह सुनकर ब्रह्माजीकी आज्ञा को

अंगीकारकरके वृक्षऔषधी आदिभी दण्डवत्करके अपने अपने स्थानोंको चलेगये फिर ब्रह्माजीने अप्सराओं को बुलाकर बिश्वास युक्त मीठेबचनों से कहा हे उत्तमस्त्रियो यह ब्रह्महत्या इन्द्रसे प्राप्तहुई है तुम मेरी आज्ञा से इसके चौथेभागकोलो, अप्सरा बोलीं हेदेवेश्वर आपकी आज्ञासे ब्रह्महत्याकेलेने में हमारी मोक्षके नियम को बिचारो ब्रह्माजी बोले कि जो मनुष्य रजस्वला स्त्रियोंकेसाथ विषयकरेगा उसको यह ब्रह्महत्या शीघ्रलगैगी तुम्हारे चित्तका संतापदूरहो, यह सुनकर अप्सराओं के समूह भी ब्रह्मआज्ञाको अंगीकार कर बड़ी प्रसन्नतासे अपने २ स्थानोंको चलीगईं तदनन्तर तीनोंलोक के स्वामी ब्रह्मानेजलोंको स्मरणकिया और वहभी आज्ञापातेही शीघ्रआपहुंचे और सबने ब्रह्माजीकी दण्डवत्करके यहबचनकहा कि हेशत्रुहन्ता ब्रह्माजी हमआप की आज्ञासे सब आपके सन्मुख उपस्थितहैं हमको जैसी आज्ञाहोय वहकरें ब्रह्माजीबोले कि यहबड़ीभयकारिणी ब्रह्महत्या वृत्रासुरसे इन्द्रमेंआईहै तुमइस के चौथेभागको धारणकरो जल बोले कि हे प्रभुलोकेश्वर हमको अंगीकारहै परन्तु हमारे मोक्षको भी आप बिचारिये जिससे कि इसके कष्ट से हम छूटें ब्रह्माजी बोले कि जो बुद्धिसे अज्ञानी मोहित होके इस बिचारसे कि यह जल थोड़ाहै उसमें थूक, बिष्ठा, मूत्रको करेगा उसको यह ब्रह्महत्या प्राप्त होकर उसीमें निवास करेगी इससेही सत्य २ तुम्हारी मोक्ष होगी तदनन्तर हे युधिष्ठिर वह ब्रह्महत्या इन्द्रको छोड़कर बतलाये हुये उक्त स्थानोंको गई इसप्रकार इन्द्रको ब्रह्महत्या हुई थी फिर इन्द्र ने ब्रह्माजी की आज्ञा लेकर अश्वमेध यज्ञको रचा तब इन्द्रकी शुद्धीहुई और बड़े २ हजारों शत्रुओंको मार उनकी लक्ष्मी ले इन्द्रने बड़े हर्षको पाया और वृत्रासुरके रुधिर से शिखण्डी उत्पन्न हुये वह दीक्षायुक्त तपोधन ब्राह्मणों के अभक्ष्यहैं हेकौरवनन्दन तुम भी सब प्रकारसे इन ब्राह्मणोंको प्रसन्नकरो यह ब्राह्मण इस पृथ्वीतलमें देवता प्रसिद्ध हैं, और हे राजा इसप्रकार से वह वृत्रासुर इन्द्रके हाथसे मारागया, उसी इंद्रके समान पृथ्वी पर तुम भी बिजयी और अजेय होगे जो पुरुष हरएक पर्वमें इंद्र की इस दिब्य कथाको ब्राह्मणों के मध्य कहैंगे वह पाप से मुक्त होंगे यह वृत्रासुर और इन्द्रका परस्पर युद्ध और कर्म्म तुमसे ब्यौरेसमेत कहा अब क्या सुनने की इच्छा है ६५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेअष्टाधिकशततमोऽध्यायः १०८ ॥

# एकसौनौका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे महाज्ञानी सर्वशास्त्रज्ञ पितामह इस वृत्रासुर के बध में मुझको बहुतसी तर्कना उत्पन्न होतीहैं हे निष्पाप पितामह आपने कहा कि

वृत्रासुर जब ज्वररूप तपसे असावधान हुआ तभी इन्द्र ने बज्रसे मारा तो हे महाभाग यह ज्वर कहां से और किस प्रकार उत्पन्न हुआ इसका मूल से सब वृत्तांत सुना चाहताहूं भीष्मजी बोले कि इस ज्वरकी उत्पत्ति जो कि लोक में प्रसिद्ध है उसको सुनो कि सुमेरु पर्वतके शिखर जोतिषनाम सूर्य देवता से सम्बन्ध रखनेवाले सब रत्नोंसे भरे तीनों लोकोंसे पूजित और अजित बड़े प्रभाववाले थे हे राजा वहां पूर्वसमयमें वह सुवर्ण के समान प्रकाशमान अनेक धातुओं से शोभित पर्यंक अर्थात् पलङ्कके समान वर्त्तमानथे वहां शिव जी महाराज आनकर सुशोभित हुये उनके साथ श्रीपार्वती महारानी भी वर्त्तमानथीं और महातेजस्वी अष्टवसु देववैद्य अश्विनीकुमार, यक्ष, गुह्यक युक्त श्रीमान् राजराज कुवेरजी और महात्मा शुक्राचार्यभी शिवजी महाराज की सेवा उपासना में प्रवृत्त थे इनके बिशेष सनकादि महर्षि और अंगिरा ऋषि आदिक देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद, पर्वत, ऋषि और अप्सराओं के बहुत से समूह प्राप्त हुये और शीतल मन्द सुगन्ध सुखदायी बायु चलने लगी और सब प्रकारके वृक्ष ऋतु सम्बन्धी फलफूलों से आच्छादित थे और विद्याधर आदि तपोधन सिद्ध लोग इत्यादि इन सब लोगों ने पशुपतिनाथ जीको चारोंओरसे व्याप्त करलिया और अनेक रूपधारी महापराक्रमी राक्षस पिशाच और देवताओंके शस्त्र लेचलनेवाले भी वर्त्तमानथे वहां अपने तेज से प्रकाशित भगवान् नन्दीश्वर देदीप्यमान त्रिशूलको लेकर देवताओं की आज्ञा में नियत थे और सब नदियों और तीर्थों में श्रेष्ठ श्रीगंगाजी भी शिव जी की उपासना में वर्त्तमानथीं कुछ समयके पीछे दक्षप्रजापति पूर्वकही हुई बुद्धिसे यज्ञ करने के लिये दीक्षायुक्त हुये तदनन्तर इन्द्रादिक देवता इकट्ठे होकर उसके यज्ञ में जाने के निमित्त एकमत होके सुनते हैं कि हरिद्वार को चलेगये उनको आकाशमार्गी बिमानों में स्त्रियों समेत जाता देखकर महापतिब्रता श्रीसतीरूप पार्वतीजी ने अपने स्वामी पशुपतिनाथजी से कहा कि हे महाराज यह इन्द्रादिक सब देवता कहांजाते हैं हे तत्त्वज्ञ इसको आप वर्णन कीजिये, महादेवजी बोले कि हे महाभाग दक्ष नाम प्रजापति अश्वमेधयज्ञ को करताहै वहांही यह सब देवताभी जातेहैं उमा बोलीं कि हे महाराज महादेवजी आप इसयज्ञमें क्योंनहीं जातेहो अथवा किसी कारणसे आपको जाना नहीं है, महादेवजी बोले कि हे पार्वती पूर्वसमय में देवताओंका नियत किया हुआ हमारा यज्ञभाग इसने नहीं दिया था और उसी पूर्व विचारसे देवता मुझको यज्ञभागनहीं देतेहैं भगवती उमाबोलीं किहे महाराज आपतेजप्रताप ऐश्वर्य्य लक्ष्मीबल पराक्रममें सबसे उत्तमहो आपको यज्ञभागन मिलनेसे मुझको महाखेदहै और मेरे रोमरोम कँपते हैं यहकहकर

महाक्रोधित होकर शिवजीके सन्मुख मौनहोकर बैठीं तदनन्तर शिवजीने पार्वतीके चित्तकी बातकोजानकर नन्दीश्वरसे कहा कि तुमठहरो यह कहकर थोड़ेही समयपीछे योगेश्वर शिवजी ने अपने भयानकरूप अनुचरोंके साथ योगबलकेद्वारा अकस्मात् उसयज्ञको विध्वंसन किया बहुतसे गणोंमेंसे कितनोहीने शब्दकिया कितनोने हास्य कितनोहीने मूत्रपुरीष और कितनोहीने यज्ञकी अग्निमें रुधिर छिड़का कितनोने रूपांतर और कितनेही यज्ञ स्तम्भ उखाड़ उखाड़ नाचनेलगे कितनोने अपने नखोंसे यज्ञके नौकरों को निकाला जब चारोंओर से घायलयज्ञ मृगकारूप धारण करके आकाशकी ओरचला तब शिवजी उसरूपसे जानेवाले यज्ञको जानकर बाणयुक्त धनुषलेकर उसके सन्मुख उपस्थितहुये और क्रोधसे वेगयुक्त शिवजीके ललाटसे महाभयकारी प्रस्वेदकण टपका उसके पृथ्वीपर गिरतेही कालाग्निके समान एक महाभयानक अग्नि उत्पन्न होगई उस अग्निमें एकपुरुष उत्पन्नहुआ जिसकाछोटा शरीर अत्यन्त रक्तनेत्र पिंगलवर्ण डाढ़ीमूंछ समेत महाभयकारी बिखरेबाल शरीरमें बहुतसेरोम बड़ीभुजा लालवस्त्र पहिरे इसमहाबलीने उसयज्ञको ऐसे मारडाला जैसे सूखेबनको अग्नि भस्मकरडालता है, वह चारोंओर घूमता देवता और ऋषियोंकी ओरभी भागा तब सब देवता भयभीतहोकर दशों दिशाओंमें भागे हेयुधिष्ठिर उसके यज्ञभूमि में घूमने से पृथ्वीभर कंपायमानहुई और संसारमें हाहाकार मचगया यह दशादेखकर प्रभुब्रह्माजीने प्रत्यक्ष होकर शिवजीसेकहा कि हेप्रभु शिवजी सब देवता आपकाभी यज्ञभागदेंगे हे देवेश्वर आपअपने इसतेजको लौटाओ, हे महादेव यह सब देवताऋषि आपके इसउग्रतेजसे महाव्याकुल होरहेहैं हे देव यह जो पुरुष आपके पसीनेसे उत्पन्न हुआहै वह ज्वरनामहोकर सब लोकोंमें घूमेगा, यह सम्पूर्ण पृथ्वी इस इकट्ठेतेजके धारणकरनेको समर्थनहींहै इसके बहुतसे भागकरदीजिये, यज्ञमें भाग विचारहोनेपर शिवजी ने उनमहातेजस्वी ब्रह्माजी से कहा कि ऐसाहीहोगा और फिर पिनाक धनुषधारी शिवजीने अपनी मन्दमुसक्यान से बड़े आनन्द सहित यज्ञभागकोपाया, तबधर्म्मज्ञ शिवजीने जीवोंकी शांतिके अर्थ उसज्वरके बहुतसे भागकिये हेपुत्र युधिष्ठिर उनको भी सुनो कि हाथियों के शिरकादर्द, पहाड़ोंका शिलाजीत, जलोंकी काई, सर्पों में कांचली इन सबको ज्वरके भागजानो, खूराकनाम बैलोंके पैरोंकारोग, पृथ्वीपर ऊषर, पशुओंका अन्धाहोना, घोड़ोंके गलेके छिद्रमें वर्त्तमान जो बारहमासहै उसको और मोरोंकी शिखाओंके पृथक्होनेको सब पक्षियोंके नेत्ररोग इत्यादिको महात्मालोग ज्वरबोलते हैं, भेड़बकरियोंके पित्तभेदको और सबप्रकारके तोतोंका हिक्किकानाम रोगभी ज्वरकहाजाताहै हे धर्म्मज्ञ सिंहशार्दूलों में जो

रोगहैं उसेभी ज्वरकहते हैं और मनुष्यों में यह ज्वरहीनाम से प्रसिद्धहै यह ज्वरजन्म और मृत्यु और इनदोनों के मध्यवर्ती समय में भी मनुष्यके भीतर प्रवेश करताहै यह महेश्वरजीका तेजरूप ज्वर बड़ाभयानक है और सबजीवों से नमस्कार और प्रतिष्ठा करनेके योग्य है इसी ज्वरसे पूर्णहोकर जब धर्म्म धारियों में श्रेष्ठवृत्रासुरने जम्भाईलीथी तब इन्द्रने उसपर बज्रमारा उसबज्रने वृत्रासुर में प्रवेशकरके उसकी दोफांककरदीं वज्रसे फाड़ाहुआ वह महायोगी महाअसुर विष्णुजीके सर्वोत्तम लोकमेंगया, उससमय उसीकी विष्णुभक्तिसे यह सब जगत् व्याप्तथा इसीकारण उसने युद्धमें मरकर विष्णुलोकपाया हे पुत्र यह मैंने वृत्रासुरकी कथाके उपदेशसे ज्वरका मूल वर्णनकिया अब क्या सुननाचाहताहै, जो बड़े चित्तवाला अच्छासावधान मनुष्य इसज्वरकी उत्पत्ति को प्रतिदिन सुनेगा वह रोगोंसे रहित और सुखीहोकर आनन्दयुक्त वांछित फलोंको पावेगा ६३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेनवाधिकशततमोऽध्यायः १०९ ॥

# एकसौदशका अध्याय ॥

पूर्वमें भगवान् श्रीकृष्णजी का रूपसिद्ध करने में पूर्णब्रह्मकी प्राप्तिकाद्वार वर्णनकिया अब इस अध्याय में इसबातको सिद्धकरते हैं कि दयावान् मूर्त्तिमान् परमेश्वर अपने शत्रुओं को दण्ड देकर फिर उसपर भी कृपाकरता है और भक्तिसे परमेश्वर को प्रसन्न करने के निमित्त एकहजार आठनाम को कहते हैं मोक्षधर्म्म में इस के लिखनेका यह प्रयोजन है कि वह एकहजार आठनामभी शम दम आदि गुणों के समान मोक्ष के हेतुरूप हैं—राजाजनमेजय वैशंपायन जी से पूछते हैं कि हेब्रह्मन् वैवस्वत मन्वन्तर में प्रचेता के पुत्र दक्षप्रजापतिके यज्ञकाविध्वंस कैसे और किसकारण से हुआ, वह सर्वात्मा प्रभु शिवजी पार्वतीके शोकके फलको मानकर कैसे क्रोधितहुये फिर कैसे उनकी कृपा से दक्ष ने यज्ञको पूर्णकिया मैं इसका ठीक २ वृत्तांत जानना चाहताहूं आपकृपा करके व्यौरेसमेत वर्णनकीजिये, वैशंपायनबोले कि पूर्व कालमें हिमाचलके पीछे सिद्ध ऋषि गन्धर्व और अप्सराओंसे सेवित नाना प्रकारके वृक्षवल्ली आदि से संकुलित गंगा द्वारनाम शुभदेशमें दक्षप्रजापति ने यज्ञकोरचाथा और पृथ्वीके सब मनुष्य पृथ्वीपर और स्वर्गबासी अंतरिक्ष में गन्धर्वऋषि आदि सब बड़ी नम्रतासे हाथजोड़ेहुये धर्म्मध्वजों में श्रेष्ठदक्षप्रजापति के संमुख वर्त्तमान हुये, देवता दानव गन्धर्व पिशाच उरग राक्षस हाहा हूहू और तुम्बुरु गन्धर्व और नारदऋषि, विश्वावसु विश्वसेन और अनेक अप्सरा, बारहसूर्य्य, अष्टवसु, ग्यारहरुद्र, साध्य और मरुद्गण इत्याः

दिक यज्ञभागी इन्द्रसमेत सबआये और ऊष्मपा, सोमपा, धूमपा, आज्यपा, ऋषि, पितर,ब्राह्मण आदि अन्यबहुत से चारों प्रकारकी सृष्टिकेलोग ब्रह्मा-जीके साथआये इनके बिशेष अंडज स्वेदज जरायुज उद्भिज यहचारों प्रकारकेभी जीवआये और निमंत्रण पूर्वक बुलायेहुये सबदेवता अपनी २ स्त्रियों समेत देदीप्यमान बिमानोंमें बैठेहुये बिराजमानहुये उनसबको देखकर दधीचि ऋषिने क्रोधयुक्तहोकर यह बचनकहा, कि वह यज्ञनहींहै और धर्म्मनहीं है जहांपर कि रुद्रभगवान् पूजेनहींजातेहैं इससे तुमनिश्चय बांधेजाओ और मारेजाओ क्या समयकी बिपरीतबुद्धिहै कि सन्मुख बर्त्तमान नाशको अपनी अज्ञानता से नहींदेखते हैं और महायज्ञमें सन्मुख उपस्थित महाघोर उत्पात को नहींजानते हैं यह कहकर उसमहायोगी ने ज्ञानरूपनेत्रों से जबदेखा तो महादेव और बरदाता श्रीउमादेवीकोही देखा और उसदेवीके सन्मुख महात्मा नारदजीको भी देखा यह देखकर उसयोगीने बड़ासन्तोष पाया और निश्चय करके जाना कि इनसबका एकमतहै इसकारण सर्वेश्वर शिवजीको निमन्त्रण नहींदिया इसीसे उसदेशसे कुछहटकर दधीचि ने कहा कि अपूज्यों के पूजनसे और पूज्योंके न पूजनकरने से नृघातके समान पापहोता है इस को मैंने न पहिलेमिथ्याकहा न अबकभी मिथ्याकहूंगा मैं देवता और ऋषियोंमें बैठकर सत्य २ कहताहूं कि सब जंगत्‌केस्वामी यज्ञ में प्रथम भोगलेनेवाले सबकेप्रभु शिवजी को तुम यज्ञ में आयाहुआ देखो, दक्षने कहा हमारे यज्ञमें ग्यारह स्थानों में बर्त्तमान बहुत से रुद्र हाथों में शूल धारण किये बर्त्तमान हैं यह सब गंगाजी से पूर्ण जटाधारी हैं मैं इन के सिवाय महेश्वरजी को नहीं जानताहूं, दधीचिऋषि बोले कि मैं जानताहूं कि यहीसबकी राय है इसी से शिवजीनहीं नौतेगये हैं, मैं शिवजीसेबढ़कर जैसे किसीदेवताको उत्तमनहीं देखताहूं वैसेही यहभी देखताहूं कि यह दक्षका बड़ायज्ञभीनहींहोगा, दक्ष ने कहा कि सुवर्णकेपात्र में मन्त्रकीबिधि से पवित्र यह सम्पूर्णहव्य यज्ञेश्वर के निमित्तहै इसभाग को अनुपम विष्णुदेवता के अर्पणकरूंगा यह विष्णुदेवता सबका आत्मारूप और आहवनीयहै, देवीपार्वतीजीने अपनेचित्त में बिचार किया कि अब मैं किसदान नियम तपव्रतादिकोकरूं जिससे कि हमारे षडैश्वर्यस्वामी शिवजीआधे वा तीसरेभागकोपावें, तब तो अत्यन्त प्रसन्नचित्त शिवजीमहाराजने ऐसे बिचारकरनेवाली अपनी प्राणप्यारीको व्याकुलतामें व्यग्रचित्त देखकरकहा कि हेसूक्ष्मोदरी सुन्दररूप और बिशाल नेत्रवाली तू मुझकोनहीं जानतीहै कि यज्ञेश्वरमें कौनसाबचन योग्य है,हेसुन्दरीमैं अच्छे प्रकारसे जानताहूं कि ध्यानरहित असंतलोग मुझको नहींजानते हैं अबतेरे मोहसे इन्द्रसमेत सब देवता और तीनोंलोक भी अज्ञानी हैं, यज्ञ में स्तुति

करनेवाले ब्राह्मण मेरी स्तुतिकरते हैं और सामवेदी भी मुझीको गातेहैं और ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणभी मुझीको पूजनकरते हैं और मेराभाग यज्ञमें कल्पना करतेहैं-(देव्युवाच) देवीबोलीं कि साधारण मनुष्य स्त्रियों में अपनी प्रशंसा और अहंकारको करताहै, भगवान् बोले हे देवेश्वरी मैं अपनी प्रशंसा नहीं करताहूं हे कृशांगी अब तुम मेरी उससृष्टिको देखो जिसको कि मैं यज्ञविध्वंस के निमित्त उत्पन्न करताहूं यहकहकर मुखसे घोर प्रसन्नतावाले पुरुषको उत्पन्नकिया और उससेकहा कि तुम दक्ष के यज्ञका विध्वंसन करो यह सुनतेही उसने एकलीलाही मात्रसे देवीके क्रोध के निवृत्तकरनेको उन देवताओं के यज्ञका विध्वंस किया और देवीके क्रोधसे महाभयानकरूप महेश्वरी काली उत्पन्नहुई और अपना चरित्र दिखलानेको उसवीरके साथही चलीगई तिस पीछे शूरतामें आत्माके समान पराक्रम और रूप संयुक्त रुद्र तेज सहितक्रोध रूप अमितबल महा उग्रतेज रखनेवाली देवीका क्रोधदूर करनेवाले भगवान् बीरभद्रनाम ने शिवजीकी आज्ञाको अंगीकार और दण्डवत् करके अपने अंगके रोम कम्पायके रोमीनाम गणोंके स्वामियोंको उत्पन्न किया वह सब गण रुद्रजीके समान भयानक और बलपराक्रम रखनेवाले थे तदनन्तर वह हजारों लाखों भयानकरूप और देहधारी गण दक्षके यज्ञके विनाशकरनेको बड़ी शीघ्रतासे दौड़े और महाकलकला शब्दोंसे आकाशको व्याप्तकर दिया उसशब्द के सुनतेही सब यज्ञके देवता महाभयभीत और व्याकुलहुये पहाड़ फटे पृथ्वी कम्पायमान होकर वायु में घूमनेलगी और समुद्र उथल फुथल होने लगा उससमय अग्नि प्रकाश रहित हुई सूर्य्य प्रकाशमान नहीं हुये और चन्द्रमा समेत ग्रह नक्षत्रादि मन्दप्रभा होगये ऋषि देवता मनुष्य प्रकाशसे रहित अन्धेसे होगये ऐसे अन्धकार में उनअपमान पानेवाले गणोंने यज्ञका नाशकिया और बहुतसे दूसरेगण घोरघात करतेथे और यज्ञस्तम्भोंको उखाड़ उखाड़ फेंकतेथे एक एकको पकड़कर मर्दन करतेहुये मारडालतेथे, महावेग वान् वायुके समान दौड़ दौड़ घूमते थे यज्ञके सब पात्र और आभूषणों को तोड़तोड़ चूर्णकरतेथे, वह टुकड़े २ होनेसे ऐसे मालूम होतेथे मानो आकाश में तारागण उत्पन्नहुये और दिव्य भोजन और पीनेकी वस्तुआदि पर्व्वतसे पड़ेहुये दृष्टआतेथे दूधकी नदियोंमें घृत और खीरकी कड़सी विदितहोतीथी दहीके समुद्रोंमें खांड़ बालूसी दिखाई देतीथी और एकओर इक्षुरसकी नदियां अत्यन्तही शोभित मालूमहोती थीं यह तो छओंरसोंकी दशाथी और नाना प्रकारके मांस और भोजनकी वस्तु और चाटने चूसनेकी वस्तु इत्यादि सब पदार्थोंको वह अनेकरूपके गण अपने नानाप्रकारके मुखों से खाते थे और फेंकतेथे और अत्यन्त कुत्सित वचनों को कहते थे और वह कालरूपगण

शिवजीके कोपसे देवताओंकी सेनाओंको चारोंओर से डरातेमारते व्याकुल करतेथे और नानारूपोंको धारणकिये क्रीड़ा करतेथे और देवांगनाओं को पकड़पकड़ फेंकतेथे ऐसे रुद्रकर्म करनेवाले बीरभद्रने शिवजीके कोप से उस यज्ञको जो कि देवताओं से अच्छेप्रकार रक्षित था इनउपायों से बहुत शीघ्र सब ओर से विध्वंस किया और सब जीवोंका भयकारी महाघोर शब्दकरके यज्ञके शिरको काट अत्यन्त प्रसन्नहुआ तदनन्तर ब्रह्मादिक देवता और दक्ष प्रजापति आदि सब प्रजापति हाथ जोड़कर बोले कि आप कौन हैं अपना वर्णनकीजिये; बीरभद्र बोले कि मैं रुद्र नहींहूं और भोगनेको भी यहां नहीं आयाहूं सब जीवोंके आत्मा प्रभु सदाशिवजी देवीके क्रोधकर्मको अंगीकार करके कोपयुक्त हुयेहैं न मैं ब्राह्मणोंके दर्शनोंकोआया न खेलक्रीड़ाको आया केवल तेरे यज्ञ विध्वंस करनेको आयाहूं मैं रुद्रजीके कोपसे उत्पन्नहुआ बीरभद्र नामसे प्रसिद्धहूं और देवीजी के कोपमें उत्पन्नहुई यहभद्रकाली प्रसिद्ध है उस देवेश्वरके भेजेहुये हमयज्ञके समीपआयेहैं हेविप्रेन्द्र दक्ष तुमउसीदेवेश्वर शिव का आश्रयलो उसीकी शरण में तुम्हाराबचनाहै दूसराकोईउपायनहीं है क्रोध में भी देवताओंका वरदान उत्तमहै और किसी का आनन्दमेंभी उत्तम नहीं है यह बीरभद्रके वचनसुनकर दक्ष ने महेश्वरजीको प्रणामकर इसस्तोत्र से प्रसन्नकिया—स्तोत्रं प्रपद्ये देवमीशानंशाश्वतं ध्रुवमव्ययं महादेवंमहात्मानं विश्वस्यजगतः पतिम् १ दक्षप्रजापतिर्यज्ञे द्रव्यैस्तैःसुसमाहितैः आहूतादेवता स्सर्वाः ऋषयश्चतपोधनाः २ देवोनाहूयतेतत्र विश्वकर्मामहेश्वरः तत्रक्रुद्धा महादेवी गणांस्तत्रव्यसर्जयत् ३ प्रदीप्तयज्ञवाटेतु विद्रुतेषुद्विजातिषु तारागण मनुप्राप्तेरौद्रेदीप्तेमहात्मनि ४ शूलनिर्भिन्नहृदयैः कूजद्भिः परिचारकैः निखातो त्पाटितैर्यूपै रपविद्धैरितस्ततः ५ उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृद्धिभिः पक्ष वातविनिर्धूतैः शिवाशतनिनादितैः ६ यक्षगन्धर्वसंघैश्च पिशाचोरगराक्षसैः प्राणापानौसंनिरुध्यवक्रस्थानेनयत्नतः ७ विचार्य्यसर्व्वतोदृष्टिं बहुदृष्टिरमि त्रजित् सहसादेवदेवेशोह्यग्निकुंडात्समुत्थितः ८ विभूत्सूर्य्यसहस्रस्य तेजःस म्वर्त्तकोपमः स्मितंकृत्वाब्रवीद्वाक्यं ब्रूहिकिंकरवाणिते ९ श्रावितेचमखाध्याये देवानांगुरुणाततः तमुवाचांजलिंकृत्वादक्षोदेवंप्रजापतिः १० भीतशंकितवित्र स्तः सबाष्पवदनेक्षणः यदिप्रसन्नोभगवान्यदिचाहंभवत्प्रियः ११ यदिवाह मनुग्राह्योयदिवावरदोमम यद्दग्धंभक्षितंपीतमशितंयच्चनाशितं १२ चूर्णीकृता पविद्धंच यज्ञसम्भारमीदृशं दीर्घकालेनमहता प्रयत्नेनसुसंचितं १३ तन्नमिथ्या भवेन्मह्यं वरमेतदहंवृणे १४ तथास्त्वित्याहभगवान्भग नेत्रहरोहरः धर्म्माध्यक्षो विरूपाक्षः त्र्यक्षोदेवः प्रजापतिः १५ जानुभ्यामवनींगत्वा दक्षोलब्ध्वाभवाद्वरं नाम्नामष्टसहस्रेणस्तुतवान्वृषभध्वजं १६–७१॥ इतिदशाधिकशततमोऽध्यायः ११०॥

# एकसौग्यारहका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे निष्पाप पितामह दक्षप्रजापति ने जिन नामों से शिवजीकी स्तुतिकी उनको मैं श्रद्धापूर्वक सुननाचाहताहूं भीष्मजी बोलेहे युधिष्ठिर उन अपूर्व्वकर्म्मकर्त्ता और गुप्तव्रतधारी शिवजीके उननामोंकोसुनो जो कि प्रकटहैं और श्रद्धाविहीन पुरुषोंसे गुप्त हैं॥

स्तोत्र॥

युधिष्ठिरउवाच–यैर्नामधेयैः स्तुतवान्दक्षोदेवंप्रजापतिः॥ वक्तुमर्हसिमेतात श्रोतुंश्रद्धाममानघ १ भीष्मउवाच–श्रूयतांदेवदेवस्य नामान्यद्भुतकर्म्मणः॥ गूढव्रतस्यगुह्यानिप्रकाशानिचभारत २ नमस्तेदेवदेवेश देवारिबलिसूदन॥देवेन्द्रबलविष्टम्भ देवदानवपूजित ३ सहस्राक्षविरूपाक्ष त्र्यक्षयक्षाधिपप्रिय॥ सर्व्वतःपाणिपादान्त सर्व्वतोक्षिशिरोमुख ४ सर्व्वतःश्रुतिमल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठसि॥ शंकुकर्णमहाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय ५ गजेन्द्रकर्णगोकर्ण पाणिकर्णनमोस्तुते॥ शतोदरशतावर्त्त शतजिह्वनमोस्तुते ६ गायन्तित्वांगायत्रिणोअर्चंत्यर्कमर्किणः॥ ब्रह्माणंत्वांशतक्रतु मूर्ध्वंखमिवमेनिरे ७ मूर्त्तौहितेमहामूर्त्ते समुद्रांबरसन्निभ॥ सर्व्वावैदेवताह्यस्मिं गावोगोष्ठइवासते ८ भवच्छरीरेपश्यामि सोममग्निंजलेश्वरं॥ आदित्यमथवैविष्णुं ब्रह्माणञ्चबृहस्पतिं ९ भगवान्कारणंकार्य्यंक्रियाकारणमेवच॥ असतश्चसतश्चैवतथैवप्रभवाप्ययौ १० नमोभवायसर्व्वाय रुद्रायवरदायच॥ पशूनांपतयेनित्यं नमोस्त्वंधकघातिने ११ त्रिजटायत्रिशीर्षायत्रिशूलवरपाणिने॥ त्र्यम्बकायत्रिनेत्रायत्रिपुरघ्नायवैनमः १२ नमश्चण्डायकुण्डाय अण्डायाण्डधरायच॥ दण्डिने समकर्णाय दण्डिमुण्डायवैनमः १३ नमोर्ध्वदंष्ट्रकेशायशुक्लायावततायच॥ विलोहिताय धूम्रायनीलग्रीवायवैनमः १४ नमोस्त्वप्रतिरूपाय विरूपायशिवायच॥ सूर्य्यायसूर्य्यमालायसूर्य्यध्वजपताकिने १५ नमःप्रमथनाथायवृषस्कन्धायधन्विने॥ शत्रुन्दमायदण्डायपर्णचीरपटायच १६ नमोहिरण्यगर्भायहिरण्यकवचायच॥ हिरण्यकृतचूडायहिरण्यपतयेनमः १७नमोस्तुतायस्तुत्यायस्तूयमानायवैनमः॥ सर्व्वायसर्व्वभक्षायसर्व्वभूतान्तरात्मने १८ नमोहोत्रेथमंत्रायशुक्लध्वजपताकिने॥नमोनाभायनाभ्यायनमःकटकटायच१९नमोस्तुकृशनासायकृशांगायकृशायच॥संहृष्टायनमस्तुभ्यंनमःकिलकिलायच २० नमोस्तुशयमानायशयितायोत्थितायच॥ स्थितायधावमानाय मुण्डायजटिलायच २१ नमोनर्त्तनशीलाय मुखवादित्रवादिने॥नाट्योपहारलुब्धाय गीतवादितशालिने २२ नमोज्येष्ठायश्रेष्ठायबलप्रमथनायच॥कालनाथायकल्पाय क्षयायोपक्षयायच २३ भीमदुन्दुभिहासाय भीमव्रतधरायच॥ उग्रायचनमोनित्यं नमोस्तुदशबाहवे २४ नमःक

पालहस्ताय चितिभस्मप्रियायच ॥ विभीषणायभीष्माय भीमव्रतधरायच २५
नमोविक्षतवक्राय खड्गजिह्वायदंष्ट्रिने ॥ पक्वाममांसलुब्धाय तुम्बीवीणाप्रिया
यच २६ नमोवृषायवृष्याय गोवृषायवृषायच ॥ कटंकटायदण्डाय नमःपचपचा
यच २७ नमःसर्व्ववरिष्ठाय वरायवरदायच ॥ वरमाल्यगन्धवस्त्राय वरातिवरदे
नमः २८ नमोरक्तविरक्ताय भावनायाक्षमालिने ॥ सम्भिन्नायविभिन्नाय छा
यायातपनायच २९ अघोरघोररूपाय घोरघोरतरायच ॥ नमःशिवायशान्ताय
नमःशान्ततमायच ३० एकपाद्बहुनेत्राय एकशीर्षनमोस्तुते ॥ रुद्रायक्षुद्रलु
ब्धायसंविभागप्रियायच ३१ पंचालायसितांगाय नमःशमशमायच ॥ नमश्च
ण्डिकघण्टाय घण्टायाघण्टघण्टिने ३२ सहस्राध्मातघण्टाय घण्टामालाप्रिया
यच ॥ प्राणघंटायगन्धाय नमःकलकलायच ३३ हूंहूंहूंकारपाराय हूंहूंकारप्रिया
यच ॥ नमःशमशमेनित्यं गिरिवृक्षालयायच ३४ गर्भमांससृगालाय तारकाय
तरायच ॥ नमोयज्ञाययजिने हुतायप्रहुतायच ३५ यज्ञवाहायदान्ताय तप्याया
तपनायच ॥ नमस्तटायनद्याय तटानांपतयेनमः ३६ अन्नदायान्नपतये नमस्त्व
न्नभुजेतथा ॥ नमःसहस्रशीर्षाय सहस्रचरणायच ३७ सहस्रोद्यतशूलाय सहस्र
नयनायच ॥ नमोबालार्कवर्णाय बालरूपधरायच ३८ बालानुचरगोप्ताय बाल
क्रीड़नकायच ॥ नमोवृद्धायलुब्धाय क्षुधायक्षोभणायच ३९ तरंगांकितकेशाय
मुंजकेशायवैनमः ॥ नमःषट्कर्मतुष्टाय त्रिकर्मनिरतायच ४० वर्णाश्रमाणांविधि
वत्पृथक्कर्मनिवर्त्तिने ॥ नमोघुष्यायघोषाय नमःकलकलायच ४१ श्वेतपिंगलने
त्राय कृष्णरक्तेक्षणायच ॥ प्राणभग्नायदंडाय स्फोटनायकृशायच ४२ धर्मका
मार्थमोक्षाणां कथनीयकथायच ॥ सांख्यायसांख्यमुख्याय सांख्ययोगप्रवर्त्ति
ने ४३ नमोरथ्यविरथ्याय चतुष्पथरथायच ॥ कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञो
पवीतिने ४४ ईशानवज्रसंघात हरिकेशनमोस्तुते ॥ त्र्यंबकांबिकनाथाय व्य
क्ताव्यक्तनमोस्तुते ४५ कामकामदकामघ्न तृप्तातृप्तविचारिणे ॥ सर्वसर्वदसर्व
घ्न सन्ध्यारागनमोस्तुते ४६ महामेघचयप्रख्य महाकालनमोस्तुते ॥ स्थूलजी
र्णांगजटिले वल्कलाजिनधारिणे ४७ दीप्तसूर्य्याग्निजटिले वल्कलाजिनवास
से ॥ सहस्रसूर्यप्रतिम तपोनित्यनमोस्तुते ४८ उन्मादनशतावर्त्त गंगातोयार्द्र
मूर्धज ॥ चन्द्रावर्त्तयुगावर्त्त मेघावर्त्तनमोस्तुते ४९ त्वमन्नमन्नभोक्ताच अन्नदोन्न
भुगेवच ॥ अन्नसृष्टाचपक्ताच पक्वभुक्पवनोनलः ५० जरायुजांडजाश्चैव स्वेद
जाश्चतथोद्भिजाः ॥ त्वमेवदेवदेवेश भूतग्रामचतुर्विधः ५१ चराचरस्यस्रष्टा
त्वं प्रतिहर्त्तातथैवच ॥ त्वमाहुर्ब्रह्मविदुषो ब्रह्मब्रह्मविदांवर ५२ मनसःपरमायो
निः खंवायुर्ज्योतिषांनिधिः ॥ ऋक्सामानितथोंकार माहुस्त्वांब्रह्मवादिनः ५३
हायिहायिहुवाहोइ हुवाहोइतथासकृत् ॥ गायन्तित्वांसुरश्रेष्ठ सामगाब्रह्मवादि
नः ५४ यजुर्मयोऋङ्मयश्च त्वमाहुतिमयस्तथा ॥ पठ्यसेस्तुतिभिश्चैव वेदोप

निषदांगणैः ५५ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः शूद्रावर्णावराश्चये॥ त्वमेवमेघसंघाश्च विद्युत्स्तनितगर्जितः ५६ संवत्सरस्त्वमृतवो मासोमासार्द्धमेवच॥युगंनिमेषाःकाष्ठास्त्व नक्षत्राणिग्रहाःकलाः ५७ वृक्षाणांककुदोसित्वं गिरीणांशिखराणिच॥व्याघ्रोमृगाणांपततां तार्क्ष्योनंतश्चभोगिनां ५८ क्षीरोदोह्युदधीनांच यंत्राणांधनुरेवच॥ वज्रःप्रहरणानांच व्रतानांसत्यमेवच ५९ त्वमेवद्वेषइच्छाच रागोमोहःक्षमाक्षमे॥ व्यवसायोधृतिर्लोभः कामक्रोधौजयाजयौ ६० त्वंगदी त्वंशरीचापी खट्वांगीझर्झरीतथा॥ छेत्ताभेत्ताप्रहर्त्तात्वं नेतामंतापितामतः ६१ दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोर्थःकामएवच॥ गंगासमुद्राःसरितः पल्वलानिसरांसिच ६२ लतावल्ल्यस्तृणौषध्यः पशवोमृगपक्षिणः॥ द्रव्यकर्मसमारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ६३ आदिश्चान्तश्चदेवानां गायत्र्योंकारएवच ६४ हरितोरोहितोनीलः कृष्णोरक्तस्तथारुणः॥ कद्रुश्चकपिलश्चैव कपोतोमेचकस्तथा ६५ अवर्णश्चसुवर्णश्च वर्णकारोह्यनोपमः॥ सुवर्णनामाचतथा सुवर्णप्रियएवच ६६ त्वमिंद्रश्चयमश्चैव वरुणोधनदोनलः॥ उपप्लवश्चित्रभानुः स्वर्भानुर्भानुरेवच ६७ होत्रंहोताचहोम्यंच हुतंचैवतथाप्रभुं॥ त्रिसौपर्णंतथाब्रह्म यजुषांशतरुद्रियं ६८ पवित्रंचपवित्राणां मंगलानांचमंगलं॥ गिरिकोहिंडिकोवृक्षो जीवोमुद्गलएवच ६९ प्राणः सत्वंरजश्चैव तमश्चाप्रमदस्तथा॥ प्राणोपानः समानश्च उदानोव्यानएवच ७० उन्मेषश्चनिमेषश्च क्षुतंजृंभितमेवच॥ लोहितांतर्गतादृष्टिर्महावक्त्रोमहोदरः ७१ शुचिरोमाहरिश्मश्रू रूर्ध्वकेशश्चलाचलः॥ गीतवादित्रतत्त्वज्ञो गीतवादनकप्रियः ७२ मत्स्योजलचरोजाल्यो कलःकेलिकलःकलिः॥ अकालश्चातिकालश्च दुष्कालःकालएवच ७३मृत्युक्षुरश्चकृत्यश्च पक्षोपक्षक्षयंकरः॥मेघकालोमहादंष्ट्रः संवर्त्तकबलाहकः ७४ घण्टोघण्टोघटीघण्टी चरुचेलीमिलीमिली॥ब्रह्मकायिकमग्नीनां दण्डीमुण्डस्त्रिदण्डधृक् ७५ चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चातुर्होत्रप्रवर्त्तकः॥ चातुराश्रम्यनेताचचातुर्वर्ण्यकरश्चयः ७६ सदाचाक्षप्रियोधूर्त्तो गणाध्यक्षोगणाधिपः॥रक्तमाल्यांबरधरो गिरिशोगिरिकप्रियः ७७ शिल्पिकःशिल्पिनांश्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्त्तकः॥ भगनेत्रांकुशश्चण्डः पूष्णोदन्तविनाशनः ७८ स्वाहास्वधावषट्कारो नमस्कारोनमोनमः॥ गूढव्रतोगुह्यतपा स्तारकस्तारकामयः ७९ धाताविधाता सन्धाता विधाताधारणोधरः॥ ब्रह्मातपश्चसत्यञ्च ब्रह्मचर्य्यमथार्ज्जवं ८० भूतात्माभूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः॥ भूर्भुवःस्वरितश्चैव ध्रुवोदान्तोमहेश्वरः ८१ दीक्षितोदीक्षितःक्षान्तो दुर्दान्तोदान्तनाशनः॥ चन्द्रावर्त्तोयुगावर्त्तः संवर्त्तःसंप्रवर्त्तकः ८२ कामोविन्दुरणुस्थूलः कर्णिकारस्रजाप्रियः॥ नन्दीमुखो भीममुखः सुमुखोदुर्मुखोमुखः ८३ चतुर्मुखोबहुमुखो रणेष्वग्निमुखस्तथा॥ हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोरगपतिर्विराट् ८४ अधर्महामहापार्श्वश्चण्डधारो

गणाधिपः॥गोनर्द्दोगोप्रतारश्च गोवृषेश्वरवाहनः ८५ त्रैलोक्यगोप्तागोविन्दो गोप्तागोमार्गएवच ॥ श्रेष्ठस्थिरश्चस्थाणुश्च निष्कम्पःकम्पएवच ८६ दुर्वारणोदुर्विषहोदुःसहोदुरतिक्रमः ॥ दुर्धर्षोदुष्प्रकम्पश्चदुर्विपोदुर्जयोजयः ८७ शशःशशांकः शमनः शीतोष्णक्षुज्जराधिधृक् ॥ आधयोव्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिरेवच ८८ समयज्ञमृगव्याधो व्याधीनामागमोगमः ॥ शिखण्डीपुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकवनालयः ८९ दण्डधारस्त्र्यंबकश्च उग्रदण्डोण्डनाशनः ॥ विषाग्निपाःसुरश्रेष्ठः सोमपास्त्वंमरुत्पतिः ९० अमृतपास्त्वंजगन्नाथदेवदेवगणेश्वरः ॥ विषाग्निपामृत्युपाश्चक्षीरपाःसोमपास्तथामधुश्च्युतानामग्रपास्त्वं त्वमेवतुपिताग्रपाः ९१ हिरण्यरेताःपुरुषस्त्वमेवत्वंस्त्रीपुमांस्त्वंचनपुंसकंचवा लोयुवास्थविरोजीर्णदंष्ट्रस्त्वं नागेन्द्रशक्रः त्वंविश्वकृद्धिश्वकर्त्ता ९२ विश्वकृद्धिश्वकृतांवरेण्यस्त्वंविश्ववाहोविश्वरूपस्तेजस्वीविश्वतामुखः चन्द्रादित्यौ चक्षुषीतेहृदयंचपितामहः ९३ महोदधी सरस्वतीवाग्बलमनलोनिलः अहोरात्रंनिमेषोन्मेषकर्मा ९४ नब्रह्मानचगोविन्द पौराणाऋषयोनते ॥ माहात्म्यं वेदितुंशक्ता यथातथ्येनतेशिव ९५ यामूर्त्तयः सुसूक्ष्मास्ते नमह्यंयान्तिदर्शनं ॥ त्राहिमांसततंरक्ष पितापुत्रमिवौरसं ९६ रक्ष्यमांरक्षणीयोहं तवानघनमोस्तुते ॥ भक्तानुकंपीभगवान् भक्तश्चाहंसदात्वयि ९७ यःसहस्राण्यनेकानि पुंसामावृत्यदुर्द्दशः ॥ तिष्ठत्येकःसमुद्रान्ते समेगोप्तास्तुनित्यशः ९८ यंविनिद्राजितश्वासाः सत्वस्थासंयतेन्द्रियाः ॥ ज्योतिःपश्यन्तियुञ्जानास्तस्मैयोगात्मनेनमः ९९ जटिलेदंडिनेनित्यं लम्बोदरशरीरिणे ॥ कमण्डलुनिषंगाय तस्मैब्रह्मात्मनेनमः १०० यस्यकेशेषुजीमूतानद्यःसर्वांगसन्धिषु ॥ कुक्षौसमुद्राश्चत्वारस्तस्मैतोयात्मनेनमः १०१ सम्भक्ष्यसर्वभूतानि युगान्ते पर्युपस्थिते ॥यःशेतेजलमध्यस्थस्तम्प्रपद्येम्बुशायिनं १०२ प्रविश्यवदनंराहोर्य्यःसोमंपिबतेनिशि॥ग्रसत्यर्कञ्चस्वर्भानुर्भूत्वामांसोभिरक्षतु १०३ येचानुपतितागर्भा यथाभागानुपासते ॥ नमस्तेभ्यःस्वधास्वाहा प्राप्नुवन्तुमुदन्तुते १०४ येंगुष्ठमात्राःपुरुषा देहस्थाःसर्वदेहिनां ॥ रक्षंतुतेहिमांनित्यंनित्यञ्चाप्याययन्तुमां १०५ येनरोदन्तिदेहस्थाः देहिनोरोदयन्तिच ॥ हर्षयन्तिनहृष्यन्ति नमस्तेभ्योस्तुनित्यशः १०६ येनदीषुसमुद्रेषु पर्वतेषुगुहासुच ॥ वृक्षमूलेषुगोष्ठेषु कांतारगहनेषुच १०७ चतुष्पथेषुरथ्यासु चत्वरेषुतटेषुच ॥ हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषुच १०८ येषुपञ्चसुभूतेषु दिशासुविदिशासुच ॥ चन्द्रार्कयोर्मध्यगतायेचचन्द्रार्करश्मिषु १०९ रसातलगतायेच येचतस्मैपरंगताः ॥ नमस्तेभ्योनमस्तेभ्यो नमस्तेभ्योस्तुनित्यशः ११० येषांनविद्यतेसंख्या प्रमाणंरूपमेवच ॥ असंख्येयगुणारुद्रा नमस्तेभ्योस्तुनित्यशः १११ सर्वभूतकरो यस्मात्सर्वभूतपतिर्हरः ॥ सर्वभूतान्तरात्माच तेनत्वन्ननिमंत्रितः ११२ त्वमेवही

ज्यसेयस्माद्यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ॥ त्वमेवकर्त्तासर्वस्य तेनत्वंननिमंत्रितः ११३ अथवामाययादेव सूक्ष्मयातवमोहितः ॥ एतस्मात्कारणाद्वापि तेनत्वंननिमंत्रितः ११४ प्रसीदममभद्रन्ते भवभावगतस्यमे ॥ त्वयिमेहृदयंदेव त्वयिबुद्धिर्मनस्त्वयि ११५ स्तुत्वैवंसमहादेवं विरराममप्रजापतिः ॥ भगवानपिसुप्रीतःपुनर्दक्षमभाषत ११६ परितुष्टोस्मितेदक्ष स्तवेनानेनसुव्रत ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनमत्समीपेभविष्यसि ११७ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्यच ॥ प्रजापतेमत्प्रसादात्फलभागीभविष्यसि ११८ अथैनमब्रवीद्वाक्यं लोकस्याधिपतिर्भवः ॥ आश्वासनकरंवाक्यंवाक्यविद्वाक्यसंमितं ११९ दक्षदक्षनकर्त्तव्यो मन्युर्विघ्नमिमंप्रति ॥ अयंयज्ञहरस्तुभ्यं दृष्टमेतत्पुरातनं१२०भूयश्चतेवरंदद्यांतंत्वंगृह्णीष्वसुव्रत ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा तदिहैकमनाःशृणु १२१ वेदात्षडंगादुद्धृत्य सांख्ययोगाच्चयुक्तितः ॥ तपःसुतप्तंविपुलंदुश्चरंदेवदानवैः १२२ अपूर्वंसर्वतोभद्रंविश्वतोमुखमव्ययं ॥ अब्दैर्दशाहसंयुक्तं गूढमप्राज्ञनिन्दितं १२३ वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतंक्वचित्समं ॥ गतांतैरध्यवसित मत्याश्रमामिदंव्रतं १२४ मयापाशुपतंदक्ष शुभमुत्पादितंपुरा ॥ तस्यचीर्णस्यतत्सम्यक्फलंभवतिपुष्कलं १२५ तच्चास्तुतेमहाभागत्यज्यतांमानसोज्वरः॥ एवमुक्त्वामहादेवः सपत्नीकःसहानुगः ॥ अदर्शनमनुप्राप्तोदक्षस्यामितविक्रमः १२६ दक्षप्रोक्तंस्तवमिमं कीर्त्तयेद्यःशृणोतिवा ॥ नाशुभंप्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् १२७ यथासर्वेषुदेवेषु वरिष्ठोभगवाञ्छिवः ॥ तथास्तवोवरिष्ठोयं स्तवानांब्रह्मसंमितः १२८ यशोराज्यसुखैश्वर्य्य कामार्थधनकांक्षिभिः ॥ श्रोतव्योभक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः१२९ व्याधितोदुःखितोदीनश्चोरग्रस्तोभयार्दितः ॥ राजकार्य्याभियुक्तो वा मुच्यतेमहतोभयात् १३० अनेनैवतुदेहेन गणानांसमतांव्रजेत् ॥ तेजसायशसाचैव युक्तोभवतिनिर्मलः १३१ नराक्षसाःपिशाचावानभूतानविनायकाः॥ विघ्नंकुर्युर्गृहेतस्य यत्रायंपठ्यतेस्तवः१३२ शृणुयाच्चैवयानारी तद्भक्ताब्रह्मचारिणी ॥ पितृपक्षेमातृपक्षे पूज्याभवतिदेववत् १३३ शृणुयाद्यःस्तवंकृत्स्नं कीर्त्तयेद्वासमाहितः ॥ तस्यसर्वाणिकर्म्माणि सिद्धिंगच्छंत्यभीक्ष्णशः १३४ मनसा वर्जितंयच्च यच्चवाचानुकीर्त्तितं ॥ सर्वंसंपद्यतेतस्यस्तवस्यास्यानुकीर्त्तनात्१३५ देवस्यचगुहस्यापि देव्यानन्दीश्वरस्यच ॥ बलिंसुविहितंकृत्वादमेननियमेनच १३६ ततस्तुयुक्तोगृह्णीयान्नामान्याशुयथाक्रमं ॥ ईप्सितान्लभतेसोर्थान्भोगान्कामांश्चमानवः १३७ मृतश्चस्वर्गमाप्नोति तिर्यक्षुचनजायते ॥ इत्याहभगवान्व्यासः पराशरसुतःप्रभुः १३८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः १११ ॥

# एकसौबारहका अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हे पितामह स्तोत्रपाठ आदिके द्वारा चित्तशुद्धि होने से ब्रह्मज्ञान प्राप्तकरना योग्यहै यह आपने कहापरंतु इससंसारमें जिस पुरुषको अध्यात्मविद्याकाज्ञान वर्त्तमानहै वह कैसे और कहां से प्राप्तहोता है उसको कृपाकरके मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कितुम बुद्धिकेद्वारा जो उसको पूछते हो तो सबका विदितकरनेवाला सर्वोत्तम ज्ञानहै उसको मैं तुझसे बड़ी स्पष्टतासे कहूंगा तू उसकोचित्त लगाकर यथार्थतासे सुन, पृथ्वी जलवायु आकाश और अग्नि यहपंच महाभूत सबजीवोंके उत्पत्तिस्थान और नाश स्थान हैं, हे भरतवंशी सबजीवों का देह सूक्ष्म स्थूल गुणों का समूहहै वह बुद्धि आदि गुण परमकारण रूप आत्मा में सदैव लयहोते हैं और प्रकट भी होते हैं, इसी आत्मासे वह सब जीव उत्पन्न हुये और लय भी होते हैं इसीप्रकार जैसे सागरसे लहरें उत्पन्न होती हैं वैसेही जीवों से पंचमहाभूत भी प्रकट होते हैं, जैसे कि कछुआ अपने अंगोंको फैलाकर समेटलेताहै इसी प्रकार यह पंचभूत भी उन वृद्धजीवोंके छोटे अंगहैं अर्थात् देखतेही गुप्त और प्रकट होनेको समर्थहैं, यह तो शरीरको पंचमहाभूतों से भराहुआ कहा—अब उसमें उन भूतों के अंशोंका विवेक करते हैं—शरीरमें जो शब्दहै वह निश्चय आकाश का अंशहै और देहकी कठोरता पृथ्वीका अंशहै प्राण वायुका अंश है, रस जलका, रूप अग्निका अंशहै, यह सब जड़ चैतन्य ब्रह्मरूप हैं प्रलय में उसी ब्रह्ममें लय होते हैं और उत्पत्तिकाल में उसीसे उत्पन्न होतेहैं यह केवल कथनहीमात्रहै वास्तवमें रस्सी में सर्प के होने और लय होनेके समान है यह वेदान्तपक्षहै, पंचमहाभूतोंके उत्पन्न करनेवाले अहंकार ने सब देहों में आकाशादि तत्त्व और विषयों को कल्पना किया है और देह के भीतर उन आकाशादि तत्त्वोंमें जो कार्यरूप दृष्ट होताहै उसको कहताहूं, शब्दश्रोत्रेन्द्री और देहके छिद्र यह तीनों आकाश से उत्पन्नहैं रस, आर्द्रता, जिह्वा यह जल के गुण हैं, रूप, चक्षुरिन्द्री, जठराग्नि यह अग्नि के तीनों गुणहैं, सूंघने के योग्य गन्ध घ्राणेन्द्री और सब शरीर यह पृथ्वी के गुणहैं, प्राण, स्पर्श चेष्टा यह वायु के गुणहैं हे राजा पंचतत्त्वों से उत्पन्न होनेवाले यह सब गुण बर्णन किये, और इन शब्दादि पन्द्रह बस्तुओंमें उस मायाधीश ईश्वर ने सतोगुण रजोगुण तमोगुण यह तीन गुण और चारोंयुगका आत्मा चिदाभास, जीव अपने विषय स्वरूप का निश्चय और छठा चित्त और अच्छीतरह कल्पना किये जो कफ बायुसे ऊपर और मस्तकसे नीचे देखतेहो उस सबओरमें बुद्धि ही वर्त्तमान है अर्थात् वह बुद्धि शब्द से लेकर चित्तक इकीस तत्त्वोंका रूप

है, अब बुद्धिके सात रूपोंको कहते हैं—मनुष्यमें पांच इन्द्री छठा चित्त सातवीं बुद्धि और आठवां क्षेत्रज्ञको कहते हैं यह बुद्धिसे विलक्षण है, इन्द्री और इन्द्रियों का कर्त्ता उनके कर्म के विभागसे जानने के योग्यहैं, सतोगुण रजोगुण तमोगुण और वह सात्विक आदि भाव भी उन इन्द्रियोंके कर्त्तामें आश्रितहैं अर्थात् उससे उत्पन्न हुये हैं, चक्षुरिन्द्री देखने को, चित्त सुनने को बुद्धि निश्चयकरनेको, और क्षेत्रज्ञ उदासीन चिन्मात्र कहाजाताहै तमोगुण सतोगुण, रजोगुण चारों युगों का आत्मा जीव और कर्म इन पांचों गुणोंसे बुद्धि बारम्बार विषयों में प्राप्त कीजाती है बुद्धिही सब इन्द्री और मन इत्यादि का रूपहै और तमोगुण आदि का भी रूप है, बुद्धि न होने से गुणों का भी अभावहै देखने के कारण से चक्षुरिन्द्री सुनने से श्रोत्रइन्द्री, सूंघने से घ्राणेन्द्री, रसोंके स्वादलेनेसे रसनेन्द्री, छूने से स्पर्शेन्द्री यह सब बुद्धिही सब रूपों को करती है अर्थात् जब कुछ इच्छा करती है तब वह चित्त होजाती है, यह बुद्धिके पांच प्रकारके अधिष्ठानहैं इन्हींको चित्त समेत विषयवाली इन्द्री कहते हैं इन्होंके दूषित होनेपर बुद्धि भी दोषयुक्त होतीहै, साक्षीपुरुषमें नियत बुद्धि सात्विकआदि दुःखसुखमें बर्त्तमान होती है कभीहर्ष कभी शोक कभीसुख से तृप्तनहीं होती है न कभीदुःख से वैराग्य को पाती है यह सर्वात्मा बुद्धिसुख दुःख, मोह, इनतीनों भावोंको उनका आत्मारूप होनेपरभी ऐसेउल्लंघकर बर्त्तमान होतीहै जैसेकि तरंगयुक्त समुद्र अपनी महाबेला को अर्थात् मर्य्यादा को उल्लंघनकर वर्त्तमानहोता है सुखआदि भाव से पृथक् होनेवाली बुद्धि सत्तामात्र चित्तमें बर्त्तमान होती है अर्थात् पूरे ज्ञानमें सूक्ष्मरूप होतीहै, फिर उत्थान काल में प्रकट होनेवाला रजोगुण बुद्धिभाव से बर्त्तमान होता है बड़ाहर्ष, अनुराग, आनंद, सुख, चित्तकी शान्ति यहसातों के गुणबड़े उपाय से बर्त्तमान होतेहैं, ईर्षा, शोक, अंगोंका जलना, चिन्ता, अधैर्य्य, यह रजोगुणकेचिह्न कारण और अकारण दोनोंप्रकारसे दिखाईदेतेहैं, अविद्या राग, मोह,प्रमाद,समय,चेष्टा,अचेष्टा, भय अपने तपआदिकी वृद्धि न करना शोक मोह,निद्रा,अर्धनिद्रा यहनानाप्रकारके तमोगुणकेचिह्न महाप्रारब्ध हीनता से उत्पन्न होतेहैं,देहऔरमनमें जब अनुराग उत्पन्नहोताहै तब सात्विक भावहोता है और उसको बिना ध्यानाकिये जो दुःखीहोकर प्रीतिनहींकरताहै वहां रजोगुणी कर्मजानो और भयकरके चिन्तानकरे अर्थात् दुःखको कुछ न गिने,और मोहयुक्त देह और मनहोय इस तर्कणासेरहित जाननेके अयोग्यको तमोगुण जाने,यहां बुद्धिकी जितनी गति हैं वह बर्णनकरीं इनसबको जानकर ज्ञानी होजाय,उस सूक्ष्म बुद्धि और क्षेत्रज्ञके अंतरको समझो कि बुद्धितो गुणोंको उत्पन्न करती है और क्षेत्रज्ञ गुणों को नहीं उत्पन्न करताहै, इसप्रकार स्वभाव

से पृथक् वह दोनों सदैव ऐसे संयुक्त भी रहते हैं जैसे मत्स्य जल से पृथक् और मिलाहुआ होताहै गुणों ने आत्माको नहीं जाना परंतु वह आत्मा सब ओरसे गुणों को जानताहै, जैसेकि अज्ञानी गुण और गुणी रूपसे आत्मा और गुणोंका योग जानताहै उसी प्रकार गुणोंका देखनेवाला पुरुष गुणोंको आत्मारूप देखताहै, इसके अनन्तर गुण किसमें आश्रित रहते हैं उसको भी कहते हैं—बुद्धिका आश्रय अर्थात् उपादान नहीं है क्योंकि उसका कर्त्ता अज्ञान नाशवान् है सतोगुण आदि के कार्य्य महत्तत्वादि से अन्य गुण भी उत्पन्न होते हैं परन्तु उनगुणों को कभी कोईभी नहीं जानताहै जैसेकि रस्सी के सर्पका कारण अज्ञान उसके कार्य्य से जान लियाजाताहै परन्तु बास्तवमें नहीं है और गुणों के मिथ्या होने से उसका कार्य्य भी दृष्टनहीं पड़ता इस शंकाको कहते हैं इन संसार के बुद्धि आदि गुणका आधार बुद्धिही है, बुद्धि गुणों को उत्पन्न करती है क्षेत्रज्ञ देखताहै इन बुद्धि और क्षेत्रज्ञका संयोग प्राचीन है, यह ऐसे स्वभाववालाहै उसको बुद्धिसे जानकर हर्ष शोक मित्रता से रहित होकर मनुष्य बिहारकरै, जड़ अज्ञान इन्द्रियां जिनमें मध्यस्थ बुद्धि है उनसे वह आवरणभंग कियाजाता है अर्थात् परदा अलग कियाजाता है वह इंद्रियां दीपकके समान हैं तात्पर्य्य यह है कि इन्द्रियां दीपक बुद्धि कर्त्ता और चिदात्मा साची है, यह स्वभाव सिद्धहै जैसे कि मकड़ी तारोंको पैदा करती है उसी प्रकार बुद्धिगुणोंको उत्पन्न करती है, इस हेतुसे जो गुण बुद्धि से उत्पन्न होते हैं वह मकड़ी के तारकी समान जानने योग्य हैं अर्थात् उसी का रूप हैं, नाशरूप गुण निवृत्त नहीं होते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष में प्रवृत्ति नहीं जाती है आशय यहहै कि उक्तरस्सी के सर्पकी समान नाशको पाते हैं कोई ऐसा निश्चय करते हैं कोई प्रतिकूल निश्चय करते हैं, इस हृदयकी दृढ़ चिन्तारूपी बुद्धि गांठको खोलकर निस्सन्देह शोक रहित सुख से वर्त्तमान होजाय, जैसे कि थाहके न जाननेवाले अज्ञानी मोहसे युक्त होकर संसार रूपी घोर नदी में गिरकर दुःखको पाते हैं उसीप्रकार बुद्धि योग रूप नौका का न जाननेवाला जीवभी कष्टको पाताहै, संसार नदी से पारजानेवाले ब्रह्मविद्यामें कुशल धैर्य्यमान ज्ञानी पुरुष दुःखको नहीं पाते हैं, ज्ञानियों को वह संसारी बड़ाभयनहीं होता है जो अज्ञानियोंको है किसी की गति अर्थात् मोक्ष अधिकनहीं है सबकी मोक्ष बराबर है ज्ञानियों में कुछ भी परस्पर अंतर नहीं होता है, ऐसे ज्ञानी के फल कहते हैं—यह ज्ञानी जो बड़े दोषवाले कर्म को करताहैऔर जो इसने ज्ञानदशासे पूर्व में कियाहै वह सब केवल ज्ञानसेही नाश होजाताहै यह ज्ञानी अज्ञान दशा में जो दूसरेके कर्म में दोष लगाता है और रागादि दोषों को आपकरताहै उनदोनों बातों को ज्ञानदशा में नहीं

करता है अर्थात् आप दोषरहित होकर दूसरे के दोषको नहीं देखताहै–४६॥
इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेद्वादशोपरिशततमोऽध्यायः११२॥

# एकसौतेरहका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह मनुष्य सुखदुःख और मृत्यु से भय करतेहैं यह दोनों जैसे हमको बाधा न करें वह उपाय आप मुझसे कहिये भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहासको कहतेहैं जिसमें नारदजी और समंग ऋषिका संवाद है नारदजी बोले कि हृदय से दण्डवत् करतेहो अर्थात् अत्यन्त नम्रहो और भुजाओं से तरतेहो और बड़ेसंकटमें भी आनन्दमें रहतेहो सदैव प्रसन्न चित्त और शोचसे रहित दृष्ट आतेहो आपके अव्याकुल चित्त या प्रियवस्तुके बियोगसे उत्पन्न दुःख और भयको भी नहीं देखताहूं बालकके समान रागद्वेष रहित चेष्टाकरतेहो सदैव तृप्तरूप सुखपूर्वक नियतहो, समंगऋषिने उत्तरदिया कि हे प्रशंसा करनेवाले मैं भूत भविष्य वर्त्तमान कालोंके सिद्धान्तको जानताहूं इसकारण चित्तसे व्याकुल नहीं होताहूं, और लोकमें फलके देनेवाले कर्म्मोंको और विचित्र फलोंको भी जानताहूं इसीकारणसे कर्मके प्रारम्भको त्यागकर फिर मोहित नहीं होताहूं, हे नारदजी जैसे कि धन स्त्री से रहित विद्यारूपी धनसे पूर्ण अन्ध सिड़ी मूर्ख मनुष्यजीवते हैं उसी प्रकार मुझको भी निर्वाह करनेवाला समझो, नीरोग देह स्वर्गबासी पराक्रमी और निर्बल मनुष्य पूर्वकियेहुये कर्म्मोंकेद्वारा जीवतेहैं उसीकारणसे हमको भी पूजन करते हैं, हजारों मनुष्य निर्वाह करते हैं कोई सागही खाकर जीवतेहैं उसीप्रकार हम भी अपना निर्वाह करते हैं, हे नारदजी जब हम शोककेमूल अज्ञानके अभाव रूप होनेसे शोच नहीं करते तब यज्ञादिक धर्म्म अथवा लौकिक कर्म्मोंसे हमको क्या प्रयोजनहै क्योंकि जब सुख और दुःख दोनों नाशवान् बस्तुहैं तब हमको वह कैसे आधीन कर सक्ते हैं, ज्ञानी मनुष्य जिस मनुष्यको ऐसा कहते हैं कि उसकी इन्द्रियोंकी शुद्धता अर्थात् मोहादिकसे रहित होना ज्ञानका मूलहै इन्द्रियांही मोहकरतीहैं इसप्रकारसे जो शोचताहै वही ज्ञानी हैऔर जिसकी इन्द्रियां ज्ञान बिहीन हैं उसको ज्ञानका लाभनहीं है,जो अज्ञानी धनआदिका अहंकारी है वहीमोह में प्रवृत्त होताहै इसकारण अज्ञानी मनुष्यका न यहलोकहै न परलोकहै दुःख सुख सदैव नहीं रहते हैं तो दुःखमें शोच और सुखमें अहंकार भी न करना चाहिये, मुझसा आत्मज्ञानी इससंसाररूप और चारोंओर घूमनेवाले दुःखको कभी न माने प्रिय भोगोंको और सुखको कभी न चाहै और दैवयोग से होनेवाले दुःखमें चिन्ता न करे, योगमें नियतहोकर सुखादिकी चाहना न करे

और अप्राप्तवस्तुकी इच्छा न करे बहुतसे अर्त्थ लाभमें भी प्रसन्न न हो और अर्त्थों के नाश में भी कभी व्याकुल न हो बान्धव धन सब शास्त्र और मंत्र पराक्रम यह सब दुःखसे नहीं बचासक्के शम दमआदि गुणोंसेही शान्ति अर्थात् निर्विकल्पताकोपाते हैं, जो योगीनहीं है उसके बुद्धिभीनहींहै और जो योगके बिना सुखकी भी प्राप्ति नहीं होती है राजा मन प्राण और इन्द्रियोंके कर्मोंके रोकने में सामर्थ्य और दुःखकात्याग यही दोनों सुखरूपहैं, योगमें प्रवृत्ति होनेकेलिये लौकिक प्रिय वस्तुओंकी निन्दा करते हैं प्रिय वस्तु प्रसन्नता और सुखको उत्पन्न करतीहै परन्तु फिर वही हर्ष सुख अहंकारको बढ़ाती है उससे नरक होताहै इसी हेतुसे मैं उनको अत्यन्त त्याग करताहूं और उस सुखदुःखमें इनशोक और भय आदिको मैं साक्षीके समान मोह उत्पन्नकरने वाला देखताहूं, और शोक और तपसे पृथक् अर्थ काम तृष्णा और मोहको अत्यन्त त्याग करके इसपृथ्वीपर विचरताहूं मुझको इसलोक परलोकमें मृत्यु अधर्म्म आदि किसीसेभी ऐसे भयनहीं है जैसे कि बड़े अमृत पीनेवालेको भयनहीं होता है ब्रह्मन्नारदजी मैं अविनाशी योगरूप तपको करके ब्रह्मको जानताहूं इसीकारणसे प्राप्तहोनेवाला शोक मुझको पीड़ा नहींदेताहै २१ ॥

इतिश्री महाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेत्रयोदशोपरिशततमोऽध्यायः ११३ ॥

# एकसौ चौदहका अध्याय ॥

उस ब्रह्मविद्याको जिसमें उपदेशही प्रधानहै सुनकर उसीको युक्ति प्रधान जाननेकी इच्छासे युधिष्ठिरबोले—हे पितामह जिसने सब शास्त्रों के सिद्धान्त को नहीं जाना और सदैव संशय में ही पड़ा हुआहै और उस आत्मदर्शन के निश्चयकेलिये शम दमादिके अनुष्ठानको नहींकिया उसके कल्याणको आपकहिये, भीष्मजी बोले कि ईश्वरमें चित्तलगाकर गुरूकीपूजा और आचार्योंका सदैव पूजनकरे गुरू आदिसे शास्त्रोंकासुनना तदनन्तर शुद्ध ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाला कल्याण कहाजाताहै,इसस्थानपर इसप्राचीन इतिहासको भीकहताहूं जिसमें गालवऋषि और देवर्षिनारदजीका संवादहै,जितेन्द्री और कल्याणकी इच्छाकरनेवाले गालवऋषिने उनमोह और ग्लानिसे रहित वेदपाठी ज्ञान तृप्त नारदजीसे कहा कि हेमुनि मनुष्य जिनगुणोंसे लोकमें सबका प्याराहोताहै उनसब गुणोंको मैं आप में वर्त्तमान देखताहूं, इसप्रकारके आप सरीखे ज्ञानी हमसरीखे आत्मज्ञान न जाननेवाले अज्ञानियोंका सन्देहदूरकरने के योग्यहो,करनेकेयोग्य कर्मोंकी मुख्यतानहोनेसे ज्ञानमेंएकसी प्रवृत्ति होती है इसनिमित्त जो करनेकेयोग्यहै उसको हमनहीं निश्चयकरसक्के इससे आप दानकी मुख्यताको वर्णन कीजिये, जिसमें अनुष्ठान से उत्पन्न होने वाला

परिश्रम नहींहै उसको आश्रम ज्ञान कहतेहैं और उसके जो साधकहैं उसको शास्त्रमें आश्रम कहतेहैं वह सब पृथक् २ आचारोंके दिखानेवालेहैं हेभगवन् सब मनुष्य भी उनको जानतेहैं, शास्त्रों से उपदेश पायेहुये और अपने २ शास्त्रोंको अंगीकार करने वाले नानाप्रकार के मार्गों में चलनेवाले और अपनेही शास्त्रों से तृप्त ऐसे पुरुषों को देखकर सन्देह करने वाले हम लोग कल्याणको नहींपाते हैं, जो शास्त्रएकहीहोयतो कल्याण प्रकटहो और बहुत शास्त्रोंकेही कारण से कल्याण अत्यंत गुप्तहै, इस हेतुसे मुझको वह कल्याण बड़े २ संदेहोंसे भराहुआ दिखाई देताहै हे भगवन् उसको मुझे समझाकर उपदेशकरो, नारदजी बोले हे तात गालव जो चार आश्रम अर्थात् शास्त्रहैं उनसबको गुरूसे पढ़कर बिचारो और उन शास्त्रोंके अनेक रूपवाले गुणदेश जो कि जहां तहां बिपरीति रीति से नियतहैं उनको भी बिचार करो जिसप्रकार दूसरेका धर्म्म गरम शिलापर चढ़नाहै वह हमको अधर्महै और हमारा धर्म पशु यज्ञादिकहै वह दूसरोंका अधर्महै यह विपरीति रीतिसे नियत धर्म्म हुआ, निस्संदेह जैसे स्थूल दृष्टिसे देखेहुए वह शास्त्र अच्छे प्रकारसे अभीष्ट आत्मतत्त्व धर्म्मको प्राप्त नहीं कराते हैं उसीप्रकार दूसरे सूक्ष्मदृष्टी मनुष्योंने शास्त्रोंकी परम गतिको अच्छे प्रकारसे देखाहै, जो शास्त्र कल्याणरूप और संशयसे रहितहैं और जीवोंकी निर्भयता देनेवालोंको अनुग्रहरूप और हिंसा करने वालोंको दण्डरूप तीनोंबर्गोंका समूहहै उसीको ज्ञानियोंने कल्याणरूप कहाहै और पापकर्म्म से पृथक् सदैव पवित्र कर्म्म करना सत्पुरुषों से उत्तम व्यवहार बर्त्तना यह भी कल्याण रूपहै, सबजीवोंमें मृदुता, व्यवहारमें सत्यवक्ता, प्रियभाषण, देवपितरोंको भागदेना, अतिथिसत्कारकरना, बालबच्चेनौकर चाकरोंका पोषणकरना, अबिनाशी तत्त्वोंका कहना सुनना यहसब और ब्रह्मप्राप्त करने वाले ज्ञान कठिनता से प्राप्तहोतेहैं, जो जीवोंका अत्यन्त उपकारी है मैं उसको सत्यब्रह्म कहताहूं, अहंकारका त्याग, मोहका रोकना, संतोष अकेलाघूमना, इनसबको अबिनाशी कल्याण कहते हैं, धर्म्म से वेदों का पढ़ना, वेदांतों का बिचार करना, ज्ञान अर्थ के अनुभवकी इच्छा भी कल्याणदायी है और वह मनुष्य रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शको किसी दशा में भी अधिक सेवन न करे जो अपना कल्याण चाहै, रात्रिमें चलना दिन में सोना, आलस्य, निर्दयता, अहंकार, भोजनादि में न्यूनाधिकता, इनसब बातों को न करे जो कल्याण चाहै, दूसरे की निन्दा से अपनी प्रतिष्ठा न चाहै केवल अपने गुणों सेही नीचों से प्रतिष्ठाको चाहै, जो प्रतिष्ठावान् पुरुष अपने गुण और ऐश्वर्य्य के कारण दूसरे गुणवानों की निन्दा करते हैं वह बड़े अज्ञानी हैं वह अपने अभिमानसे बड़े लोगों को शिक्षा करतेहुये अपने

को बड़ा मानतेहैं, किसी की निन्दा न करता अपनी प्रशंसा रहित गुणी दयालु पुरुष ब्रह्मको पाताहै न बोलने से पुष्पों की पवित्र गन्धि उठतीहै और आकाशमें निर्मल सूर्य्य देवता बिना बोले प्रकाश करतेहैं, इसप्रकार के दूसरे जीव बुद्धि के द्वारा संसारमें प्रसिद्ध हैं जो अधिकभाषण नहीं करते हैं वह लोकमें यशकोप्रकाशकरते हैं, मूर्खमनुष्य केवल अपनीप्रशंसा से लोकमें प्रकाश नहींकरताहै,विद्यावान् मौनभी प्रकाशमानहोताहै ऊंचेस्वरसे कहाहुआ भी असारशब्द निचाईको पाताहै और धीरे भी कहाहुआ सुन्दरशब्द लोकों में प्रकाश करताहै, अज्ञानी मूर्खोंका कहाहुआ असारवान् बहुतबड़ा शब्द अन्तरात्माको ऐसा दिखाताहै जैसे कि सूर्य्य अपने अग्निरूपको, इसीकारण शास्त्रों के अन्तरोंसे नानाप्रकार रखनेवाली बुद्धिको निश्चय करतेहैं, जीवों का जो बड़ा लाभहै वही हमको उत्तम दिखलाई देताहै, बिना पूछे किसी से कुछ न कहै और पूछाहुआ भी न्यायसे विरुद्ध न कहै, शास्त्रोंके स्मरण रखने वाली बुद्धिकास्वामी ज्ञानीमनुष्य जड़केसमानबैठे और ऐसे मनुष्योंके मध्य में रहनाचाहै जो सदैव धर्म्मकर्त्ता साधु दानी और अपने धर्म्ममें प्रीति करने वालेहों, जिसस्थान में चारोंवर्णों के धर्मोंका योग हो वहां किसी दशामें भी निवास न करे जो अपना भलाचाहै, कर्म्मका प्रारंभ न करनेवाला, यथालाभ सन्तोषी पुरुष इसलोकमें पुण्यात्माओंमें पुण्य और पापात्माओं में पाप को पाताहै, जैसे कि जल अग्नि और चन्द्रमाके स्पर्श को पुरुष जानता है उसी प्रकार हम पापपुण्यके स्पर्श को देखतेहैं अर्थात् कुसंग और सुसंग पापपुण्य का देनेवालाहै, देवता आदिसे शेषअन्नके भोजन करनेवाले स्वादु को न देखते जो भोजन करतेहैं और जो बुद्धि सम्बन्धी विषयों को भोगते हैं उनको कर्मबंधनमें बंधेहुएजानो, अब गुरु शिष्य के धर्मोंका वर्णन करतेहैं—गुरु आत्मज्ञान धर्म्म के चाहने वालोंको उपदेशकरे और अश्रद्धावान् को कभीनकरे और जिस देशमें अप्रतिष्ठा पूर्व्वक गुरूको पूजते हैं ऐसेदेश को ज्ञानीसदैव त्यागकरे, जहांपर कि गुरू और शिष्यकी आजीविका अच्छेप्रकारसे नियत हो और बुद्धिके अनुसार शास्त्र युक्तहो ऐसे देशको कभीनत्यागे, जहां शास्त्रसे विरुद्ध होकरलोग पंडितोंके मिथ्यादोषोंको वर्णनकरें वहांपर अपनी प्रतिष्ठा चाहनेवाला कभीनरहै ४३ जिसस्थानपर लोभियों ने धर्मरूपी सेतुओं को तोड़फोड़ डालाहोय वहां और जहांपर कि लोग शोकरूपी अग्नि से व्याकुलहों कभीनजाय, शंका और मत्सरता रहित जहां अच्छेलोग धर्मको करतेहैं वहां अवश्यजाय और उन धर्म्मकर्त्ता साधुओंमें नियत होकर निवासकरे, जहां लोगधन आदि के निमित्त धर्म्मकरें वहांपर भी कभी न जाय क्योंकि वह पापकरनेवाले मनुष्यहैं, जिसस्थानमें मनुष्य पापकर्मोंका करके

अपना जीवनकरते हों वहांसे ऐसेशीघ्र अलग होजाय जैसेसर्प के स्थान से पृथक् होतेहैं, जहांकोई पूर्वकर्म वासनासे कठिन आपत्तिरूपी दुःख में पड़ा हुआ हो वहां आत्माभिलाषी को प्रायश्चित्त करना योग्य है, जिसदेश में राजा और राजा के मनुष्य छोटेबड़ों का अपमान करके बालबच्चों से पहले भोजनकरने वालेहैं ऐसे देशकोभी ज्ञानीसदैव त्यागकरे, जिस देश में सदैव धर्मकरने वाले ब्रह्मरूप यज्ञ कराने और पढ़ानेमें प्रवृत्त वेदपाठी प्रथम भोजन करतेहैं ऐसेदेशमें सुखसे निवासकरे,जिसदेशमें अच्छे प्रकारसे अनुष्ठान किये हुये यज्ञों में स्वधा स्वाहा वषट्कार सदैव वर्त्तमान होते हैं उसदेश में निस्सं-देह निवासकरे जिसदेशमें ब्राह्मण आजीविकासे दुःखी अपवित्र रहतेदीखें उसनिकटवर्त्ती देशकोभी अवश्य ऐसेत्यागे जैसे कि विषयुक्त भोजन को त्यागतेहैं, जिसदेशमें फलकी इच्छारहित दानको मनुष्य करतेहैं उसदेश में ऐसे सावधान चित्तहोकर निवासकरे जैसेकि चित्तकाजीतनेवाला कर्म्मों से निवृत्त मनुष्यहो, जिसदेशमें अपराधियों को दण्ड और ज्ञानियोंका सत्कार होताहै वहां विचरे और पुण्यात्मा साधुओंमें निवासकरे, जो मनुष्य जिते-न्द्रियोंपर क्रोधकरते हैं और साधुओंमें दुराचारीहैं उनलज्जा रहित लोभी म-नुष्यों को बड़ाभारी दण्डदेना चाहिये, जिसदेश में सदैव धर्मपरनियत और कामनाओंका स्वामीराजा इच्छाओं को त्यागकरके प्रजाका पालन धर्म्मसे करताहै उसदेशमेंभी विनाविचारकिये निवासकरे, कल्याण न होने में भीप्र-सन्नचित्त राजालोग सबदेशवासियोंको शीघ्रकल्याण युक्तकरते हैं, हे तात मैंने यह कल्याण तुझ से कहा और आत्मारूप कल्याण प्रधानता से वर्णन करना असंभवहै ऐसीवृत्तिवाले सावधानचित्त पुरुषका कल्याण तपसेही प्रत्यक्षहोगा ५९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्व्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेचतुर्दशोपरिशततमोऽध्यायः ११४ ॥

# एकसौपन्द्रहका अध्याय ॥

युधिष्ठिरने सबतन्त्रोंमें सावधान अहिंसाप्रधान मोक्षधर्मोंको सुनकर उसे राजाओंसे करना कठिनजानकर भीष्मजीसे प्रश्नकिया कि मुझसाराजा कर्म में प्रवृत्तहोकर किसरीतिसे पृथ्वीपरविचरे औरसदैव किनगुणोंसे युक्तहो स्नेह बंधनसे छूटे,भीष्मजीबोले कि इसस्थानपर इसप्राचीन इतिहासकोभी कहताहूं जिसको अरिष्टनेमिने पूछनेवाले राजासगरसे वर्णनकियाहै, सगरनेकहा कि हेब्रह्मन् इसलोक में किस परमकल्याणको करके सुखको पाता है और किस रीतिसे शोच और व्याकुलता रहित होताहै उसको आपमुझे समझाइये इस प्रकारसे पूछेहुये सर्वशास्त्रज्ञ अरिष्टनेमिने अच्छे प्रकार से विचारकर उपदेश

के योग्यइस वचनकोकहा कि पुत्रधनधान्य पशु इत्यादिमें प्रवृत्तचित्त अज्ञानी पुरुष इस लोकमें मोक्षरूपी सुखको नहीं पाताहै जिसकी बुद्धि विषयों में मग्न और चित्त लोभसे व्याकुलहै वह इससंसार रूपी रोगका इलाज करने को असमर्थहै वह अज्ञानी संसारी प्रीति की रस्सीमें बँधाहुआ मोक्षके योग्य नहीं समझा जाताहै उनप्रीतिके बंधनों को तुझसे कहताहूं किसमयपर पुत्रों को उत्पन्नकरके तरुण होनेपर उनका विवाहादि करके अपने निर्वाह करनेमें समर्थ जानकर जीव मुक्त होकर सुखपूर्वक विचरो और दैवाधीन प्राप्त होने वाले विषयोंमें रागद्वेष रहितप्यारी स्त्रीका सन्तानयुक्त पुत्रोंपर स्नेहकरनेवाली वृद्धाजान समयपर मोक्षका विचारकर उसभार्याको त्यागकरदो, तुम बुद्धि के अनुसार इन्द्रियोंसे विषयोंको भोगकर संतानयुक्त वा असंतान जीवनमुक्त घूमो, उनविषयोंमें इच्छारहित सुखपूर्वक जीवनमुक्त विहारकरो, यहविषयों के भोगके पीछे जो त्यागरूप मोक्षका प्रयोजनहै उसको मैंने तुझसे मिला हुआ वर्णन किया अब ब्योरेवार कहताहूं उसको सुनो कि लोकमें प्रीतिरूपी बंधनसेछूट निर्भयहोकर मनुष्य निस्संदेह सुखसे विचरते हैं और विषयों में चित्त लगाने वाले लोग निस्संदेह विनाशको पातेहैं, इसीप्रकार इसलोकमें भोजन का संचय करनेवाले कीड़ेचैंटीके समान नाशवान् हैं और भोजनमें चित्तनहीं लगानेवाले सुखीहैं, तुझमोक्ष बुद्धीको अपने लड़के बालोंके लिये यह चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि मेरे विनाइनकी कौन दशाहोगी, जीव आपही उत्पन्न होकर वृद्धिको पाता है और आपही सुख दुःख और मृत्युको पाताहै, और माता पिताके द्वारा वा अपनी देहके द्वारा भोजन वस्त्रादि को भी आपही प्राप्त करता है, जिसको पूर्व समयमें नहीं प्राप्तकिया वह इसलोक में प्रारब्ध फलके विभागकरनेवाले ईश्वरसे उत्पन्न और अपने कर्मोंसे रचित भोजन वाले सबजीव पृथ्वीके चारों ओर घूमतेहैं १९ आप मिट्टीके पिण्डके समान सदैव दूसरेकी आधीनतामें नियत निर्बल आत्मवाले पुरुष का कौन सा कारण अपने बालबच्चोंके पोषण और रक्षामेंहै, जब कि मृत्युतेरे देखतेहुये बालबच्चोंको बड़े उपाय करने परभी मारडालती है वहां अपनी बुद्धिसे समझना चाहिये कि इसीप्रकार पूर्णपोषण कियेबिना रक्षारहित इसजीवते कुटुम्ब को छोड़कर पीछेभी मरेगा, जबसुखीवा दुःखीमृतक भाईबन्धुरिश्तेदार आदि को कभी नहीं जानता है तब अपनी आत्मासे समझना चाहिये कि जैसे मैं इनसुखी दुखियोंको नहीं जानताहूं और कोई प्रकारसे उनकी सहायता नहीं कीजाती है उसीप्रकार वहभी मुझको न जानेंगे और न सहायता करेंगे,जब घरके लोग तेरेजीतेहुये वा मरनेपर अपने कर्मसे उत्पन्न सुखदुःखको भोगेंगे और तुम उनकी सहायताकर नहींसक्के इसी प्रकार वहभी तेरी सहायता नहीं

करमक्के इसको जानकर अपना अभीष्ट प्रयोजन करना चाहिये, इसप्रकार हेपूर्ण बुद्धिमान् इसलोक में कौन किसकाहै इसको निश्चय करनेवाले तुम मोक्षमें नियत होकर फिरभीसुनो, इसलोकमें जिस देहधारीने क्रोध, लोभ मोह, क्षुधा, तृषा आदिभावों को जीताहै वहसतोगुणी मुक्तरूपहै, जो मनुष्य अज्ञानतासे युवावस्थापाकर मद्यपान स्त्री शिकार में आत्माको भूलकर प्रवृत्त नहीं होताहै वहभी मुक्तिरूपहै, प्रत्यक्षहै कि जो पुरुष सदैव दिनरात्रि में यह ध्यान करकेदुखीहै कि अमुक भोगकरना चाहिये वहदोष बुद्धी कहाजाताहै, इसीप्रकार जो सदैव सावधान पुरुष अपने चित्तके स्वभावको स्त्रियोंसे मुक्त देखता है अर्थात् स्त्रीकी इच्छासे पृथक्है वह भी बुद्धिके अनुसार मुक्तहै, इस लोकमें जो पुरुष जीवोंके जन्ममरण और कर्म्मोंको मूल समेत जानताहै वह मुक्तहै देहके व्यवहारोंकेलिये हजारों लाखोंछकड़ेभरेहुये अन्नादिकभोजनको और सोने बैठनेको महलपलंगको बिचारताहै अर्थात् इनसबवस्तुओंकेसमूहों को निरर्थकजानता है वहभी मुक्तहोता है, जो पुरुष इस प्रत्यक्ष संसार को मृत्युसे घायल रोगोंसे पीड़ित और आजीविका से दुःखी देखता है उसकी भी मुक्तिहोतीहै, जो देखताहै वह संतुष्ट और जो नहीं देखता वह नष्ट हो जाताहै और जो थोड़ेमें संतुष्टहै वह इसलोकमें मुक्तहै, यहसब भोजन करने वाले और भोजनके रूपहैं जो पुरुष इसको बिचारताहै अर्थात् अपने को उन दोनों से पृथक् जानता है और मायारूप दुःखसुखके अपूर्व भावसे स्पर्शनहीं करताहै वह मुक्तही है, जिस देहधारीकी दृष्टिसे शय्या पलंग पृथ्वी आदि समानहैं और शालिनाम धान और निन्दित भोजन जिसकी बुद्धिसे बराबर हैं वह भी मुक्तरूप है अतसीके सूत्रका तृणोंका, रेशमी, बस्त्रकंबल, मृगचर्म आदिकाबस्त्र जो समान समझता है वह मुक्तरूपहै, जो पुरुष इस लोकको छः तत्त्वोंसे उत्पन्न जानताहै अर्थात् विचारकर उसीप्रकार समदर्शी होकर बर्त्ताव करता है और जिसकी बुद्धिसे हानिलाभसुख,दुःख, हार, जीत, इच्छा अनिच्छा, भय, निर्भयता व्याकुलता आदि समानहैं वह सबप्रकारसे मुक्तहै, इसीप्रकार रुधिर मूत्र बिष्ठा आदि दोषोंको और बहुत दोष रखनेवाले देहको देखकरभी मुक्तहोता है, जो पुरुष वृद्धावस्थाकी झुर्रीबालोंकी श्वेतता, निर्ब-लता, कुरूपता, कुब्जता आदिको देखताहै और बिचारताहै वहभी मुक्तहोता है, समयकी लौटपौटसे पुरुषार्थहीनहोनेपर अंधता बधिरता और देहकी नि-र्बलताको आपदेखता है, वह मुक्तहोताहै जो पुरुष इसलोक से परलोक में जानेवाले ऋषि, देवता और असुरोंको देखताहै वहभीमुक्तहै, ऐसे २ प्रतापवान् तेजस्वी बली हजारों राजामहाराजा पृथ्वी को छोड़कर चलेगये उसके भी बिचार करनेसे मुक्तहोता है, लोकमें कष्टसे प्राप्त होनेवाले प्रयोजनों को

और साधारणतासे प्राप्तहुई विपत्तियों को और कुटुम्बके लिये मिलने वाले दुःखोंको जो देखताहै और संसार में पुत्रोंकी और मनुष्योंकी गुणहीनता आदि बहुतसी अयोग्य बातोंको देखकर कौनसा मनुष्य मोक्षकी प्रशंसा न करेगा, जो मनुष्य शास्त्र और लोकसे विदित है और मनुष्यता को निर्मूल समझता है वहसब प्रकारसे मुक्तहै, आपमेरेइस बचनको सुनकर बुद्धिकी व्याकुलताको त्यागके गृहस्थाश्रम वा मोक्ष आश्रममें मुक्तकेसमान विचरो, उसऋषिके ऐसे बचनोंको अच्छेप्रकारसे सुनकर मोक्षसे उत्पन्नहोनेवालेगुणों से युक्त उसराजाने प्रजाका पालन किया ४८॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे पंचदशोत्तरशततमोऽध्यायः ११५॥

# एकसौसोलहका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि हेतात मेरे हृदयमें यह कौतूहल सदैव वर्त्तमान रहताहै उसको भी हे पितामह आपसे सुनना चाहताहूं कि देवर्षि शुक्राचार्य्यजी महा बुद्धिमान् होकर असुरोंके प्रिय और उपकारी और देवताओं के अप्रिय और अनुपकारी किस कारणसे हुए इनशुक्रजीने देवताओं के तेजको क्यों नाशकिया और दैत्यदानव देवताओंसे किस कारण शत्रुभाव रखतेहैं और देवताओंके समानतेजस्वी शुक्रजीका शुक्रनाम कैसेहुआ और कैसेवृद्धिपाई और आकाश मेंसे कैसे नहीं जातेहैं हेपितामह इसवृत्तांतको मैं यथार्थ और पूर्णताकेसाथ सुनाचाहताहूं, भीष्मजी बोले कि हे निष्पापयुधिष्ठिर जैसा कि मैंने बुद्धिके अनुसार पूर्वसमयमें सुनाहै वहसब ठीक २ चित्त लगाकर सुनो यह भृगुबंशी प्रतिष्ठाके योग्य मुनि दृढ़व्रतवाले शुक्रजी किसी कर्मके कारण से देवताओंके अप्रियकारी हैं अर्थात् असुरलोग देवताओंको दुःखदेकर भृगु-पत्नीके आश्रममें छिपजातेथे उस आश्रममें जानेको असमर्थ देवताओंने बिष्णुजीकी शरणली तबबिष्णुजीने चक्रसे भृगुपत्नीके शिरको काटा फिर मरनेसे बचेहुये असुरोंने शुक्रजीकी शरणली अपनी माताके मरनेसे दुखी होकर शुक्रजीने असुरोंको निर्भय करके देवताओंको पीड़ामान किया यही कर्मरूप कारणहै, यक्ष राक्षसोंके और धनोंके स्वामी कुबेरजी इंद्रदेवता के खजानेके अधिपति हैं उन कुबेरजीकी देहमें शुक्रजीने अपने योग बलसे प्रवेश करके उसको रोककर उसके धनको योगसिद्धी से हरलिया तदनन्तर उसधनके हरने से कुबेरजी को महादुःख हुआ और क्रोध से महाव्याकुल होकर वहकुबेरजी महादेवजीके पासगये और उन भवरूपधारी देवताओं के स्वामी शिवजीसे यह सब वृत्तान्त वर्णनकिया कि योगीशुक्रजीनेमुझको रोक कर मेरा सबधनहरलिया और अपने उग्रतेज और योग बलसे धनको लेकर

निकलगया हे राजन् कुबेरसे इतनी बातके सुनतेही महायोगेश्वर शिवजीने अत्यंत क्रोधमें युक्तहोकर अरुण नेत्रकरके त्रिशूलको धारण किया और इस उत्तम शस्त्रको लेकरबोले कि वह कहां है शुक्रजीने शिवजीके कर्म्म करनेकी इच्छाजानकर दूरसे दर्शनदिया, फिर उस योग सिद्ध शुक्रजीने महायोगी महात्मा शिवजीके क्रोधकोजानकर जानेआने और रहनेके स्थानको जाना १५ योगसे सिद्धआत्मा शुक्रजी महेश्वरजीको विचारकर उग्रतपके द्वाराशूल की नोकपर दृष्टपड़े और वहतपोमूर्त्ति शुक्रजी धनुषधारी शिवजीको मालूम हुये देवेश्वरने उस चरित्रको जानकर शूलको धनुषरूप करने के निमित्त हाथ से नीचेको नवाया फिर बड़ेतेजस्वीके हाथसे शूलके झुक जानेपर उग्र धनुषधारी प्रभु शिवजीने शूलको पिनाक धनुष कहा फिर देवताओंके स्वामी प्रभु उमापतिजी ने शुक्रजीको हाथोंमें वर्त्तमान देखकर मुखको खोलकरके बड़े धीरेपनेसे मुखमें डाला वह तपसिद्ध महात्मा भृगुनन्दन शुक्रजी उनमहेश्वर जीके पेटमें पहुंचे और वहां विचरनेलगे अर्थात् अन्नके समान परिपाक नहीं हुये, युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह बड़े तेजस्वी शुक्रजी उन देवदेव महादेव जीके उदरमें किस निमित्त विचरे और उन्होंने कौनसा तपकियाथा भीष्म जी बोले हे युधिष्ठिर महाव्रतधारी शुक्रजी पूर्व्व समयमें जलके भीतर नियत होकर प्रयुत और अर्बुद वर्ष पर्यंत स्तम्भरूप होकर वर्त्तमान रहे वहां कठिन तपस्या को करके उस महा ह्रद से उठे तब देवताओं के देवता ब्रह्मा जी उनके पास आये और तपकी वृद्धिपूर्व्वक कुशल को पूछा और शिवजी ने भी कहा कि अच्छी तपस्याकी और बड़े बुद्धिमान् अचिन्त्य आत्मा सदैव सत्यधर्म्म परायण शिवजी ने उस तप योग के द्वारा शुक्रजी के महत्त्व को देखा उस तपोधनसे युक्त पराक्रमी महा योगी शुक्रजी तीनोंलोकोंमें शोभायमानहुए, तदनन्तर योगात्मा शिवजी ध्यान योगमें प्रवृत्तहुए इसकारण भयभीत होकर शुक्रजी उदरमें छिपगये और बाहर निकलनेकी इच्छासे उसी उदरमें नियत होकर उन्होंने शिवजीकी स्तुतिकरी और रुद्रजीने उनकोरोक लिया, तब उदर में वर्त्तमान महामुनि शुक्रजी ने उनरोकनेवाले शिवजी से बारम्बार स्तुतिकरके प्रार्थनाकी कि मुझपर कृपाकरिये, उस समय महा तेजस्वी शिवजीने अपनी देहके सब छिद्रोंको रोककर शुक्रजीसे कहा कि इस लिंगके द्वारसे तू निकलजा शुक्रजीने सब द्वारोंको बन्ददेखा और मारेतेजके जलनेलगे और व्याकुल होकर इधर उधर घूमनेलगे और लाचार होकर उसी लिंगद्वारमें होकर निकले तभीसे शुक्र यह नाम उनका प्रसिद्ध हुआ इसी लिंगद्वार से उत्पन्न होनेके कारण आकाशमें होकर नहींजाते हैं तेजसे ज्वालारूप उन निकले हुए शुक्रजीको देखकर क्रोधमें भरकर शिवजी शूल को

फिर उठाकर उपस्थितहुए तब देवी पार्वतीजीने अपने स्वामी रुद्रजीको निषेध किया शिवजीके रोकनेपर शुक्रजीने पार्वतीजीके पुत्रभावको प्राप्तकिया देवीं ने कहा कि हे स्वामी इसने मेरे पुत्रभावको पायाहै इससे यह आपके हाथसे मारनेके योग्य नहीं है और देवताके उदरसे निकलनेवाला कोई नाशको नहीं पाताहै, फिर तोदेवीके ऊपर प्रसन्नहो शिवजीने हँसकर बारम्बार यहकहा कि यहइच्छापूर्वक जाय तदनन्तर महामुनि बुद्धिमान् शुक्रजी ने वरदाता शिव और पार्वतीजीको प्रणाम करके अभीष्ट गतिको पाया, हे भरतवंशियों में उत्तम तात युधिष्ठिर मैंने यह महात्मा भार्गवजी का चरित्रकहा जिसके सुननेकी तुमको इच्छाथी ३८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेषोडशोपरिशततमोऽध्यायः ११६ ॥

# एकसौ सत्रहका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह महाबाहु अब फिर उन कल्याणरूपोंका वर्णन कीजिये मैं आपके अमृतरूपी वचनोंसे तृप्त नहीं होताहूं और हे तात किस शुभकर्म्मको करके इसलोक परलोक दोनोंमें परमगतिकोपाताहै इसको कृपा करके कहिये, भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर मैं वह सम्वाद कहूंगा जो कि पूर्वकाल में बड़े यशस्वी तेजस्वी राजा जनक ने महात्मा पराशर ऋषिजीसे पूछाहै कि इसलोक और परलोक में कल्याणकारी जीवों के जाननेके योग्य क्या है तब सर्व्वधर्म्मज्ञ महातेजस्वी राजापर कृपालु पराशरजीने यह बचन कहा कि इसलोक परलोक दोनोंमें धर्म्मही कल्याणरूप कहाजाता है ज्ञानी लोग इससे उत्तम किसीको नहीं कहते, धर्म्म को प्राप्त करके मनुष्य स्वर्ग लोकमें प्रतिष्ठाको पाताहै, इस धर्म्म में निष्ठा करनेवाले पुरुष इसलोक में अपने कर्म्मोंको इसकामनासे करते हैं कि हमको धनकी प्राप्तिहो हे तात इस लोकमें चारप्रकारकी आजीविका कही जाती हैं उन्हीं जीविकाओंको संसारीलोग करते हैं अर्थात् ब्राह्मण की जीविका दान लेना क्षत्री की जीविका पृथ्वीकी भेज लेना वैश्यकी खेती आदि वाणिज्य करना, शूद्रकी आजीविका नोकरी करना सेवा करना, नानाप्रकार की रीतोंसे पापपुण्यको भोगकर देहके त्यागनेवाले जीवोंकी बहुत प्रकारकी गतिहोती हैं अर्थात् पापियोंका जन्म पशु पक्षियोंमें और पुण्यात्माओं को स्वर्ग मिलता है और पुण्य पाप के समान होने में मनुष्यका जन्महोताहै और तत्त्वज्ञानसे मायाके दूर होने पर मुक्तिहोना होताहै यही चारोंगतिहैं परन्तु इनकेभेद बहुतसेहैं जिसप्रकार तांबे आदिके वर्त्तन चांदी सोनेकेपानी से सुन्दर रंगीन किये जातेहैं इसी प्रकार पिछले कर्म्मों के पीछे चलने वाला जीव पूर्व के कर्म्मोंसे रंगको पाता

है बिना बीजके कुछ उत्पन्न नहीं होताहै और कर्म्मकिये बिना सुखकी वृद्धि नहीं पाताहै मनुष्य इसशरीरमें वा दूसरे शरीरको पाकर उत्तम कर्म्मसे सुख को पाताहै चारवाक कहता है कि मैं दैवको नहीं देखताहूं और उस पुण्य पाप का साधन भी नहीं है देवता गन्धर्व और मनुष्य स्वभावसेही सिद्ध हैं देहके त्यागनेके बिना कर्म्मकाफल नहीं पासक्ते वह मनुष्य उस कर्म्मफलके मिलनेपर सदैव चारप्रकारके कर्मोंको स्मरण करतेहैं अर्थात् पापपुण्य इच्छा अनिच्छा यही चार प्रकारके कर्म्म हैं, लोकमें सुख दुःखका कारण जो पाप पुण्य आदि कियाजाता है और वेदमें जो यह वचनहै कि पवित्र कर्म्म से पवित्र होता है यह केवल मन सन्तोषके निमित्तहै यह बृहस्पति सरीखे वृद्धों का वचन नहीं है किन्तु उस पूर्व्वोक्त चारप्रकारके जैसे कर्मको करताहै वैसे-ही फलको भी पाताहै १६ हे राजा यह कर्त्ता दुःख सुख या दोनोंको पाता है क्योंकि कर्म्मका नाश नहीं होता, हे तात इस संसार सागरमें डूबाहुआ मनुष्य तबतकही पक्षपातसे रहित उत्तमकर्म्म में प्रवृत्त होताहै जबतक कि वह दुःखसे नहींछूटता है, फिर दुःखसे निवृत्तहोकर सुखको भोगताहै और उत्तम कर्म्मोंके नाशहोनेपर पापकर्म्मके फलदुःखोंको भोगताहै, शान्तचित्त प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष में सन्तोष, धैर्य्य, सत्यता लज्जा, अहिंसा और क्रोध स्त्री मद्यपान आदिसे उत्पन्नव्यसनोंसे पृथक्होना प्रवीणता यहसबबातें सुखकीदेनेवालीहैं, जीव पापकर्म्म और शुभकर्म्ममेंभी नियमनकरे किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मदर्शनके निमित्त समाधिमें ध्यानलगावे, यह जीव किसी दूसरे के पाप पुण्य को नहीं भोगताहै जैसा आप कर्म्मकरताहै वैसाही फल पाताहै, मनुष्य सुख दुःखके कारण पुण्यपापको तत्त्वज्ञानके द्वारा आत्मा में लयकरके दूसरे ज्ञान मार्गसे उनप्रियवस्तुओंको पाताहै जो पृथ्वीसे सम्बंधरखने वाले पुत्रस्त्री पशु गृह धन बाग इत्यादि हैं वह दूसरेही मार्गसे जाते हैं अर्थात् स्वर्ग और मोक्षमें सहायता नहीं करते हैं, मनुष्य दूसरेके जिस कर्म्मकी निन्दा करता है उसको आप भी न करे जो योगी इसप्रकारसे दूसरे में और अपने में दोषोंका देखनेवालाहै वहनियमपूर्वक निंदाको स्वीकारकरताहै तात्पर्य्यहहै कि योगी स्नेह और निन्दासे पृथक्होजाय, जिसप्रकार निन्दाकरनेवाला योगी निंदा के योग्यहै इसी प्रकार योगके बिना वैरागी भी निन्दाके योग्यहै इसबातको बहुत से दृष्टान्तों के साथ कहते हैं, भय करनेवाला क्षत्री, सब क्षेत्रों में भोजन करनेवाला ब्राह्मण, बिना कर्म्मवाला वैश्य, सुस्तशूद्र, विद्यापढ़कर दुःख भाव गुरुपूजा आदि गुणोंसे रहित, कुलीन सत्यतासे रहित ब्राह्मण, दुराचारिणीस्त्री, केवल अपनेही निमित्त भोजनबनानेवाला, अज्ञानी बोलनेवाला, राजा के बिना देश, संसार से स्नेह करनेवाला योगी, प्रजापर प्रीति न करने

वाला राजा, योगाभ्याससे रहित, यहसबलोग शोच और निन्दाके योग्यहैं २६॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेसप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ११७॥

# एकसौअठारहका अध्याय॥

परारशरजी बोले कि इसप्रकार से सुख दुःखका कारण पूर्व कर्म्म को जानकर सब कर्मों के नाश करने के लिये योग धर्म्म में प्रवृत्त होना हमने वर्णन किया अब उसकी टीकाको कहते हैं कि जो मनुष्य चित्त देहरूपी रथ में जिसके इंद्रीरूप घोड़े हैं उसको पाकर ब्रह्मज्ञानरूपी रस्सी के द्वारा विषयों को भी चैतन्य रूप देखता है वही बुद्धिमान्है अर्थात् संपूर्ण विषयों को ब्रह्म रूप देखताहै वह भी मोक्षको पाताहै, हेब्रह्मन् सब आलम्बन से रहित चित्त के द्वारा नियत वृत्तिसे पृथक् पुरुषकी भक्ति प्रशंसाके योग्यहै वह भक्ति कर्म के त्यागी ब्रह्मज्ञानी से प्रसन्नहोनेवाली होती है अपने समान परोक्ष ज्ञानीको नहीं प्राप्त होतीहै क्योंकि परोक्ष ज्ञानियोंको ब्रह्मज्ञान के उपदेश में अधिकार नहीं है हेराजा यहबात साधारण नहीं है इससे उसको पाकर विषयोंके सेवन से पूर्णनहीं करे किन्तु उत्तमकर्म्मके द्वारा क्रमसे उत्तमस्थान मिलने के लिये उपायकरे, वृत्रासुरकी गीतामें ऊंचे वर्णसे नीचेवर्णमें वर्त्तमान मनुष्य प्रतिष्ठा के योग्य नहीं है फिर जो सत्क्रियाको पाकर राजसी कर्ममें प्रवृत्त होताहै वह भी वैसाहीहै, शुभ कर्मके द्वारा मनुष्य क्रम से वर्णकी उत्तमताको पाता है और उस दुर्ग्राह्यको न पाकर पापकर्म से अपनाहीं नाश करताहै, अज्ञानसे कियेहुए पापको तपकेद्वारा नाशकरे अपने से किया हुआ पापकर्म्म दुःख को देताहै इसहेतुसे दुःखरूप फलका उदय करने वाला पापरूप कर्म कभी न करे, जो पापरूप फलदेने वाला कर्म्म है चाहै वह बड़ाभी फलदेने वालाहो तौ भी पंडित और पवित्र मनुष्य उसको चांडालके समान बुराजानकर कभी न करे, मैं पापकर्म के कठिन फलको देखताहूं वह यहहै कि विपरीत दृष्टी मनुष्य को सदैव आत्मा अच्छा नहीं मालूम होताहै अर्थात् देहकोही आत्मा जानताहै, इसलोकमें जिसअज्ञानी को वैराग्य उत्पन्न नहीं होताहै उस योग में प्रवृत्तमनुष्यको उत्तम स्थानके न मिलनेसे महाशोच उत्पन्न होताहै अथवा उसको मरने से भी बड़ा शोच प्रकट होता है अर्थात् नरक यातना भोगनी पड़तीहै, जो वस्त्र वास्तवमें पवित्रहै और प्रत्यक्ष में विपरीतरंगसे रँगाहुआ है वह शुद्ध होसक्ता है और किसी काले रंगसे रँगाहुआ वस्त्रबड़े उपायों से भी शुद्धनहीं होसक्ताहै हे नरेन्द्र इसीप्रकार पापको समझो अर्थात् कोई पापतो दूरहोसक्ता है और कोई नहीं होसक्ता, जो मनुष्य आप जान बूझकर पाप को करके उसके प्रायश्चित्त संबंधी शुभकर्मको करताहै वहदोनों पाप पुण्यको

पृथक् २ भोगताहै अर्थात् जान बूझकर जो पाप किया जाताहै वह किसी प्रायश्चित्तसेभी नाश नहीं होता, मनुष्य वेदके अनुसार शास्त्रकी आज्ञासे अहिंसा के द्वारा उस हिंसाके दोषको दूरकरताहै जो कि अज्ञानतासेहोगई है यह ब्रह्मवादियोंका वचनहै कि अहिंसा धर्म उसकी उसहिंसाको नहीं दूरकर सक्ताहै जिसको कि उसने जानबूझकर इच्छासेकियाहो वेदज्ञ और शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंकाभी यही वचनहै परन्तु मैं इसबातको वहांतकदेखताहूं जहांतक कि कियाहुआ कर्मवर्त्तमानहै वह गुणयुक्तहो याबुद्धिसे जानकर कियाहो अथवा पापसे चाहो रहितहो तात्पर्य्य यहहै कि जानके या बिनाजाने कैसाही छोटा बड़ा कर्म कियाजाय वह बिनाभोगे नाश नहीं होगा १४ जिसप्रकार इस लोक में चित्त और बुद्धि से बिचारेहुए वह सूक्ष्मछोटे बड़े कर्म्म सफल होतेहैं अर्थात् सुखदुःख आदिको देतेहैं,इसीप्रकार अभ्यास कियाहुआ कर्म्मफलभी अविनाशी होताहै और अज्ञानतासे हिंसारूप कर्म से कियाहुआ कामथोड़े फलवाला और नरकसे मिलानेवाला होताहै, जोकर्म्म देवता और मुनियोंसे कियेगयेहैं उनको धर्मात्मा पुरुष नहींकरे और उनको सुनकरनिन्दाभी न करे आशययहहै कि जब कर्मका फलनष्ट नहींहोता ऐसी दशा में विश्वामित्र जीने वशिष्ठजीके सौ पुत्रमारे उसका फलनरक उन्होंने नहींपाया यह संदेह करके उन देवता आदिके समान कर्मकर्त्ता न होना चाहिये क्योंकि उनके कर्म लौकिक नहींहैं, हे राजा जो पुरुष मनसे अच्छे प्रकार बिचारकर और अपने शरीरसे उसका करना संभव जानकर शुभकर्मको करताहै वह कल्याणोंको देखता और भोगताहै जिसप्रकार कच्चे मिट्टी के पात्र में जलरखने से मिट्टीके पात्रका नाशहोताहै और पक्केमें जलरखने से नाशनहींहोता उसी प्रकार पक्का योगी ब्रह्मानन्द से अबिनाशीपनको पाताहै आशययह है कि उसतेजस्वी को जो कि पाप पुण्य में उदासीन है कर्म्म नष्टनहीं करता है, जैसे कि रखनेवाले पात्रमें जल भरकर ऊपर से दूसरा जल जब भराजाताहै ऐसी दशामें उसजलकी वृद्धिहोनेपर जलही बढ़ता है इसी प्रकार से हे राजा इसलोकमें जोकर्म्म बुद्धिसेयुक्त कैसेही टेढ़े सीधेहैं परंतु पवित्रहैं वहभी वृद्धिको पातेहैं, इसप्रकार से संसारी धर्मोंको कहकर राजाओं के धर्मोंको कहते हैं प्रथमतो राजाको बड़े २ शत्रुजीतने योग्यहैं और उत्तमरीतिसे प्रजाकापालन करना उचित है और अनेक यज्ञों के द्वारा अग्नि स्थापन करना योग्य है अवस्था के मध्यमें अथवा अन्तमें बनमें रहनाचाहिये, शांतचित्त जितेंद्री धर्म का अभ्यासी पुरुष जीवमात्रको आत्माके समान देखे और हे नरेन्द्र सुख पूर्वक मधुरभाषी होकर ब्रह्मप्राप्ति के निमित्त अपनी सामर्थ्य के अनुसार ब्रह्मविद्या देनेवाले गुरुओंका पूजनकरे २३॥ अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ११८॥

# एकसौउन्नीसका अध्याय॥

पराशरजीने कहा कि जो कदाचित् तू यहशंका करताहोय कि मैं राजा होकर मुनियोंका पोषण करनेवाला और उन्होंके योगफलका छठाभाग लेने वालाहूं मुझको ब्रह्मप्राप्तिके अर्थ गुरुओंके पूजने की क्या आवश्यता है इस शंकाको मैं निवृत्त करताहूं कि कौन किसके साथ उपकार करताहै और कौन किसको देताहै यहजीव आपअपनेही निमित्त कर्मोंको करताहै, जब गौरवता रहित मातापिताभाई बन्धु स्त्री पुत्रादिको भी त्याग करता है तब अन्यनीच मूर्खोंको क्यों नहींत्यागेगा तात्पर्य्य यहहै कि उपकार न करनेवाले अपने वृद्धजनोंको भी त्यागकरते हैं इसकारण कोई किसीकेसाथ उपकार नहीं करताहै, फिर अपने आनन्दके लिये क्या कर्मकरे इसको कहते हैं कि श्रेष्ठ मनुष्य को दानकरना और श्रेष्ठहीसे दानलेना दोनों समान हैं अर्थात् सत्पुरुष से दानलेना वेदोक्त दानकी समान है, जोधन न्यायसे मिला और न्यायसे ही बढ़ाया गयाहो उस धनकी युक्तिपूर्वक धर्म के लिये रक्षा करना चाहिये, धर्मका चाहनेवाला मनुष्य हिंसात्मक कर्मके धनको इकट्ठा नहींकरे अपनी सामर्थ्य के अनुसार सब कामोंको करे और धनकी वृद्धिका बिचार न करे, सावधान पुरुष अपनी सामर्थ्य से शीतल जल या उष्णजलको क्षुधासे पीड़ित अतिथिके देनेसे अन्नदानके फलकोपाताहै, महात्मा रन्तिदेवने लोकेष्ट सिद्धिको अर्थात् सर्वप्रियभावको पाया उसने केवल फलमूल और पत्तों से ऋषियों का पूजन कियाथा और राजा शैब्यने फलपत्रों से सूर्य्य देवताको प्रसन्न किया था इसी से उच्चस्थान को पाया, मनुष्य अपने पुत्रादिक बाल बच्चोंका और अतिथि देवता वा नौकर चाकर आदिका ऋणी अर्थात् कर्जदार उत्पन्न होताहै इसकारण उनके कर्जको अदाकरे अर्थात् वेदपाठ आदिके द्वारा महर्षियों से और यज्ञ कर्मादिकेद्वारा देवताओंसे और श्राद्धदान आदि के द्वारा पितरों से अनृण होना चाहिये और मनुष्यों के पूजन वेदशास्त्र पुराण आदि के सुनने बिचारने और पञ्चयज्ञ में शेष अन्न के भोजन से जीवों के पोषण करने से आत्माकी अनृणता को प्राप्त करे और पुत्रादिके जातकर्म आदि संस्कार को बुद्धि के अनुसार प्रारम्भ से ही करना चाहिये, बड़े सिद्ध धन हीन मुनियों ने भी अग्निहोत्र को अच्छे प्रकार करके सिद्धि को पाया है, हे महाबाहो अजीगर्त के पुत्र ने विश्वामित्र के पुत्रभाव को प्राप्तकिया और यज्ञभागी देवताओं को ऋग्वेदकी ऋचाओं से प्रसन्नकर के सिद्धिकोपाया और उशनाने महादेवजी के प्रसन्न करने से शुक्र नामपाया और देवी पार्वतीकी स्तुति करने से यशी कीर्तिमान् होकर आकाश में बि-

राजमानहै, असित, देवल, नारद, पर्वत, कक्षिवान् और जमदग्निकेपुत्र परशुरामजी और आत्मज्ञानी ताण्डयजी, वशिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, हरिश्मश्रु, कण्डधार, श्रुतश्रवा इन सावधान महर्षियोंने ऋग्वेदकी ऋचाओं से विष्णुजीको प्रसन्न करके उनकी कृपासे तपकेद्वारा सिद्धि को पाया और बहुत से पूजन से विमुख सन्तों ने उसीकी स्तुतिकरके पूजन कोपाया इसलोकमें निन्दित कर्म्म करके वृद्धिकरनी अयोग्य है, जो अर्थ कि धर्म्म संयुक्त हैं वही सच्चेहैं और जो अधर्म्म के साथ हैं उनको धिकार है इस लोकमें धनकीइच्छा से सनातन धर्म्मकात्याग नहीं करना चाहिये, जो धर्म्मात्मा अग्निका स्थापन करनेवालाहै वही श्रेष्ठ पुण्यात्मा है हेराजेन्द्र सब वेद तीनों अग्नियों में नियतहैं जिसकी जप गुरु पूजन आदिक क्रिया नष्ट नहीं होती हैं वह वेदपाठी अग्निको अच्छे प्रकार से स्थापन करनेवाला है अग्निस्थापन न करना अर्थात् संन्यास धर्म्मलेना मोक्षरूपहै, क्योंकि अग्निहोत्र भी कर्म्मही है, हे नरोत्तम आत्मा और पोषण करनेवाले माता पिता और गुरुभी अग्नि हैं इसीसे वह बुद्धिके अनुसार सेवाके योग्य हैं, वृद्धोंकी सेवाकरनेवाला विद्यावान् कामरहित साहसी धर्म्मयुक्त हिंसारहित मनुष्य अहंकार को त्यागकर सबको कृपादृष्टि से देखता है वह श्रेष्ठ पुरुष इस लोक में उत्तम पुरुषोंसे प्रशंसा कियाजाता है ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्म्मे उत्तरार्द्धेएकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ११९ ॥

# एकसौबीसका अध्याय ॥

पराशरजीनेकहा कि अपनी सहायता करनेवाला कोई दूसरा नहीं है इसीकारण अपनी भलाईकेलिये अपनी खुशीको त्यागकरके वृद्धों का सेवन करे यह ऊपर वर्णन किया अब वृद्धोंकीसेवा और सत्संगकी प्रशंसाके प्रयोजन से शूद्रवृत्तिकी उत्तमता वर्णन करते हैं, तीनों वर्णोंसे पञ्चशूद्रोंकी वृद्ध सेवारूपी आजीविका जो कि निश्चयसेयुक्त और प्रीतिपूर्वक कीहुईहोय सदैव सेवकोंको धर्म्मात्माकर्ताहै इसी कारण से अच्छी है, जो शूद्रकी आजीविका बाप दादों से होनेवाली और प्राचीननहीं है तौभी वहशूद्र तीनों वर्णकी सेवाके सिवाय दूसरी आजीविका को नहीं ढूंढ़े किन्तु सेवाही करे सदैव सबदशाओं में धर्मदर्शी पुरुषोंका मिलाप सन्तोषके साथ में शोभित होताहै पञ्चोंके साथ नहीं शोभित होताहै यह मेरा मतहै, जैसे कि उदयाचल पर्वतमें मणि और सुवर्ण आदि सूर्य देवताकी समीपता से प्रकाशित होतेहैं, उसीप्रकार पञ्चवर्ण भी सत्पुरुषोंकी समीपता से प्रकाशित होते हैं श्वेत वस्त्र जैसे रंगसे रँगाजाताहै वैसाही रंग उसपर आता है इस को ऐसे

प्रकारसे समझो, किगुणों में प्रीति करो और कभी दोषोंमें प्रीति न करो, इस लोक में जीवमात्रोंका जीवन नाशवान् और अस्तव्यस्तहै, जो सुखकाचाह नेवाला दुःखमें वर्त्तमानहोकर पण्डित मनुष्य शुभकर्म्मोंको प्राप्तकरताहै वही शास्त्रों का देखनेवाला है, जो कर्म्म धर्म्मसे रहित है वह चाहो बड़ेफलवाला भीहोय उसको बुद्धिमान्कभी न करे क्योंकि वह इसलोकमें उत्तम कभीनहीं कहाजाताहै, जो राजा हज़ारों गौओं को लूटकर बिनापोषण कियेहुए दान करता है वह चोर राजाकेवल संसारी प्रशंसाहीका फलपाने वालाहोता है ९ ब्रह्माजीने प्रथमही लोक से प्रतिष्ठापानेवाले धाताको उत्पन्न किया और धाताने लोकों के पोषण में प्रवृत्त पर्जन्यनाम पुत्रको उत्पन्न किया १० वैश्य उसको पूजनकर पशु और कृषि आदिकी रक्षाकरे वह सामान्यक्षत्रियों में रक्षाके योग्य है और ब्राह्मणों के भोगनेके योग्यहै ११ सत्यवक्ता क्रोध और कृपिणतारहित हव्य कव्यमें, प्रयोगकरनेवाले शूद्रोंसे भूमिशुद्धि आदिकरनी चाहिये इसप्रकारसे धर्म्मकानाश नहींहोता है १२ धर्म्मके नाशहोने से प्रजा सुखीहोती है और उनके सुखसे स्वर्गबासी सब देवता आनन्दको पाते हैं, इसकारण जोराजा अपने धर्म्म से संसार की रक्षाकरता है और जो ब्राह्मण वेदका पढ़ता है वा जपकरताहै और जो वैश्यधनके संग्रहकरने में प्रवृत्त है वह प्रशंसा कियाजाताहै १४ जो जितेन्द्रीशूद्र सदैवतीनों वर्णोंकी सेवाकरता है वहभी प्रशंसाके योग्य है हेराजा उसके बिपरीत करनेवाला नाशको पाता है १५ प्राणोंको कष्टदेकर तीनकाकिणी अर्थात् एकधेलाभी दानकरनाबड़ा फलदायकहै फिर न्यायसे इकट्ठीकी हुई हज़ारों काकिणी क्योंनहींफलदेंगी १६ जो राजा सत्कार पूर्वक ब्राह्मणों को दानकरता है और जैसीश्रद्धासे दे-ताहै उसीप्रकार से प्रबल फलको सदैव पाताहै १७ उसपात्र ब्राह्मणकी तृप्ति के निमित्त जो सन्मुख होकर दान दिया जाताहै वह सर्वोत्तमदान कहा जाताहै और याचना करनेसे जो दान किया जाता है उसको पण्डितलोग मध्यमदान कहते हैं १८ जो दान अनादरसे अथवा अश्रद्धासे दियाजाता है उसको सत्यवादी मुनिलोग अधमदान कहते हैं १९ संसारसमुद्र में डूबा हुआ मनुष्य सदैव नानाप्रकारके उद्योगोंसे संसारसागरको उल्लंघनकरे और ऐसे उपाय करे जिससे कि गृहस्थाश्रमके फन्देसे छूटे २० ब्राह्मण शांतचित्त होनेसे शोभाकोपाता है क्षत्रीशत्रुओं के विजयकरनेसे वैश्यधनकी आधि-क्यतासे और शूद्रसेवाकी हिम्मतसे सदैव शोभाकोपाता है २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेदानविषयवर्णनोनाम विंश-त्यधिकशततमोऽध्यायः १२० ॥

---

# एकसौइक्कीसका अध्याय॥

पराशरजी बोले कि दानकेद्वारा ब्राह्मणोंको प्राप्तहोनेवाला अर्थ धन और युद्धमें बिजयकरनेवाले क्षत्रीको प्राप्तहोने वाला अर्थधन और न्यायसे वैश्यका संचित किया हुआ अर्थधन और सेवासे शूद्रके पासहोनेवाला बहुत थोड़ाभी धनआदि अर्थ प्रशंसाके योग्यहै वह सबके अर्थधन धर्म्मकरने के लिये बड़ेशुद्ध और फलके देनेवाले हैं १।२ शूद्र सदैव तीनोंबर्णोंकीसेवा करने वाला कहाजाताहै और आजीविका रहित ब्राह्मणक्षत्री और वैश्यके धर्म्मों करके पतितनहीं होताहै ३ परंतु जब ब्राह्मण शूद्रकाधर्म्म करनेवाला होताहै तब ऊंचे ब्राह्मणपनेके अधिकारसे नीचे अधिकारको पाताहै अर्थात् ब्राह्मणत्वसे रहित होता है और जबशूद्रको अपनी जीविका नहींमिलै उसदशा में ब्यापारकरके अथवा पशुपालन, शिल्पविद्यासे भी वह अपनी जीविका करसक्ताहै यह भी शूद्रका कर्म्मबिचार कियागया है कुतूहलके स्थानमें स्त्री रूपसे उतरना कठपुतली आदिका तमाशा करना मद्य और मांससे जीवन करना धातु और चर्म्मकी वस्तुओंका बेंचना, और जिसने पूर्वमें मद्य और मांससे जीविका नहीं करीहै वह लोकमें निन्दित जीविकासे अपना निर्बाह न करे पहिले करनेवाले और पीछेसे त्यागकरनेवाले को बड़ाअधर्म्म होताहै यह श्रुतिहै ( अपूर्विणानकर्त्तव्यं कर्म्मलोकेविगर्हितं ॥ कृतपूर्वन्तुत्यजतोमहान्धर्म्मइतिश्रुतिः )६ धनवान् और अहंकारीसे कियाहुआ पापस्वीकारकेयोग्य नहीं है ७ पुराणों में ऐसी भी प्रजासुनीजातीहै जो केवल धिक्कारही मात्रसे दण्ड समझनेवाली जितेन्द्री धर्महीको उत्तममाननेवाली और न्यायधर्म निर्बाह करनेवाली थी८ हे राजा इसलोकमें सदैव से धर्म्महीकी प्रशंसा होतीहै धर्मप्रवृत्त मनुष्य पृथ्वीपर गुणोंकोही काममें लाते हैं ९ हे तात राजाजनक असुरोंने कामक्रोधादिके कारण इसधर्म को धारण नहीं किया इसीहेतुसे वह अत्यंत वृद्धिपाने परभी नाश को प्राप्तहुये और रहेसहे प्रजाओंमें आनमिले उन प्रजाओंका वह अहंकार जो धर्मका नाश करनेवालाहै अच्छे प्रकारसे प्रकटहुआ उसकेपीछे उसअहंकारी प्रजाकाक्रोध उत्पन्नहुआ तब उस क्रोधसे भरीप्रजाका गुरु पूजनादिक धर्म्म लज्जायुक्त हुआ अर्थात् केवल गुरु पूजनादिक धर्म्म लज्जायुक्त होकर करतेथे भक्तिसे नहीं करते थे जब लज्जाभी जाती रही तबमोह उत्पन्नहुआ तदनन्तर मोहमें भरेहुये परस्परमें एकएकको दुःख देकरपेट भरनेवाली उसप्रजाने पूर्व के समान बुद्धि के अनुसार सुखको नहींपाया और उसधिक्कार दण्डसे उसप्रजाको कुललज्जा नहींहुई फिरदेवता और ब्राह्मणों का अपमान करके नानाविषयों में प्रवृत्त हुई, इसप्रकार काम

क्रोधादिकसे प्रजाके बंधनको दिखलाकर उससे छूटने के उपाय के लिये साधारण युक्तिको वर्णन करतेहैं—उससमय परशमदम आदिदेवता उसगुणों में श्रेष्ठ अद्भुत रूपधारी शिवजीकी शरण में गये जोकि ईश्वरसे भी श्रेष्ठ और सेवायोग्य तीनोंदशाके अभिमानी बिश्व, तैजस प्रागनाम विराट्सूत्र अन्तर्यामी से भी उत्तम चौथाहै और मायाकरके अनेकरूप धारण करता है और ज्ञान ऐश्वर्यादि गुणोंसे अधिक उससाक्षात्रूप ब्रह्मसे व्यावृत आकाश में वर्त्तमान जो काम क्रोधरूप असुर वह उसके एकही बाणसे आत्मारूप पृथ्वी पर गिरायेगये अर्थात् लय कियेगये वह बाण इन्द्रीरूप देवताओं के द्वारा वृद्धिपानेवाला तेजथा और उन काम आदि का स्वामी भयानकरूप भय उत्पन्न करनेवाला और देवताओं का भी भय उत्पन्न करनेवाला महामोहनामथा वह हाथ में वर्त्तमान शूल के समान तीक्ष्ण अपनी स्वाधीनी में वर्त्तमान बुद्धिके द्वारा मारागया, उस महामोहके नाशहोने पर जीवों ने पूर्व्व के समान वेदशास्त्रों को पढ़कर ब्रह्मभावको प्राप्त किया अर्थात् जीवन्मुक्त होकर भी अनादि बासना के कारण से एक वेदकी निष्ठा रखनेवाले हुये, तदनन्तर चैतन्य आत्माको हृदयाकाश में इन्द्रियोंकी स्वामिता में अभिषेक करके अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ होनेसे जितेंद्री होकर सप्तऋषियों ने मनुष्योंका दण्ड और पोषण बिचार किया, जो सप्तऋषि संसार के अहंकार हैं उनसे भी ब्रह्मज्ञानी की उत्तमताको वर्णन करते हैं पंचज्ञानेन्द्री मन बुद्धि यही सप्तऋषि हैं इनसब ऋषियों के ऊपर हजार आरेवालाचक्र देहसे पृथक् परमात्माहै वह देह में नियत है और पृथक् २ मण्डलों में षट्चक्रों के राजा गणेश आदि जो कि योग के विघ्नों के नाश करनेवाले हैं, वह वर्त्तमानहैं अब उसकामआदि के जीतनेकी कठिनताका वर्णन करते हैं जो बड़े कुल में उत्पन्न हुये वृद्ध से वृद्ध प्राचीनलोगहैं उनके हृदय से भी यह आसुरी भाव दूर नहीं होता है इस कारण से देहाभिमान रखनेवाले मनुष्य उन आसुरी गुणों में प्रवृत्त होने से आसुरीकर्मोंमें प्रवृत्तहुये, जो मनुष्य बड़ेअज्ञानहैं वह उन्हीं कर्मोंमें प्रवृत्तहोते हैं और उनकोही जारी करते हैं और अब भी उन्हीं का अभ्यास करते हैं, हे राजा इसकारणसे मैं शास्त्रसे अच्छेप्रकार बिचारकर तुमसे कहताहूं कि जीव आत्मज्ञानही को प्राप्तकरे और हिंसात्मक कर्मों का त्यागकरे, बुद्धिमान् मनुष्य धर्म्म करने के निमित्त न्यायको त्यागकर वर्णसंकर से धनको प्राप्त नहीं करे क्योंकि उसमें कल्याण नहीं है भाइयों को प्यारा माननेवाले संसार के रक्षक और जितेन्द्री होकर तुम अपनी प्रजा और नौकर चाकर और पुत्रादिकों को धर्म्म से पोषणकरो, प्रिय अप्रियताके योग में शत्रुता और मित्रता को प्राप्त करता है और हजारों जन्मोंतक इसी चक्र में फिरताहै, इसकारण

गुणों में प्रीतिकरे और दोषों में कभी स्नेह न करे जो गुण रहित और निर्बुद्धी है वह भी अपने गुणों से अत्यन्त प्रसन्न होता है, हे राजा मनुष्यों में धर्म्म और अधर्म्म दोनों जारी हैं और मनुष्यों के सिवाय अन्य जीवों में इस प्रकारसे नहीं हैं, धर्म्म का अभ्यास रखनेवाला ज्ञानी भोजन आदिकी इच्छा से अथवा अनिच्छासे सदैव आत्मारूप मनुष्य या अन्यजीवों की अहिंसा से लोक में बिचरे, जबउसका मन हृदय वासनासे और अहंकार वा अज्ञानता से पृथक् होता है तब ब्रह्मानन्दको पाता है ३१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेएकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२१ ॥

# एकसौबाईसका अध्याय ॥

पराशरजी बोले कि हे राजा अब मैं तपकी प्रशंसा करने के निमित्त गृहस्थाश्रम की निन्दा करताहूं—प्रथम गृहस्थ की यह धर्म्म बुद्धि वर्णनकी अब तपकी बुद्धिको सुनो कि बहुधा राजस, तामस, सात्त्विक भावों के कारण से गृहस्थी की ममता प्रीति से उत्पन्न होनेवाली होती है इस हेतुसे इसलोक में गृहस्थाश्रम में नियत होकर मनुष्यको पशु क्षेत्र धन स्त्री पुत्र नौकर चाकर आदि प्राप्त होतेहैं, इस प्रकारसे उसआश्रम में प्रवृत्त और उनके नाशकोहोते हुये दृष्टिकरनेवाले उसगृहस्थी के रागद्वेषआदि अत्यंत वृद्धिको पातेहैं, हेराजा उस रागद्वेषसे हारेहुये धनकी स्वाधीनतामें वर्त्तमान मनुष्यको मोहसे उत्पन्न होनेवाली प्रीति अच्छे प्रकार से प्राप्तहोती है, संसारी प्रीतिमें फँसे हुये सब मनुष्य अपने को यथेच्छ लाभवान् और भोगकरने वाला मानकर स्नेह और स्त्री प्रसंगादि सुखोंके कारणसे दूसरे लाभोंको नहीं विचारते हैं, इसकेपीछे लोभमें डूबेहुये वहमनुष्य संग से दासी दास आदिको बढ़ाताहै और उन सब के पोषणके निमित्त ब्याज आदि ब्यापारोंसे धनकी वृद्धि करताहै, वहमनुष्य करनेके अयोग्य कर्म्मों को भी जानबूझकर धनके लिये करताहै और पुत्रादिके स्नेहमें डूबा हुआ उनके नाशहोनेमें महाशोक करताहै, तदनन्तर अहंकार और अहं बुद्धिसे संयुक्त होकर अपनी पराजय को बचाता यश और स्त्री आदि की चित्तमें इच्छा करता है अर्थात् अपनेको भोगी मानकर उसी स्त्री आदि के कारण नाशको पाताहै, और इसीप्रकार धन स्त्री आदि के नाश और देह मनके रोग सन्तापादिसे उसको बैराग्य उत्पन्न होताहै औरजो बुद्धिमान् सनातन ब्रह्मके कहनेवाले उत्तम कर्म्मकी अभिलाषायुक्त संसारी सुखों के त्याग करनेवाले हैं, उनको सच्चाबैराग्य होताहै और उसबैराग्यसे आत्मज्ञान होता है आत्मज्ञानसे शास्त्रदर्शन होताहै और शास्त्र के अर्थोंपर दृष्टि और श्री तपको ही कल्याण रूप जानताहै, सारासारका विचारने वाला नरेन्द्र

मनुष्य कठिनता से मिलता है, जिसने स्त्री आदि से उत्पन्न होनेवाले सुखके निमित्त दुःखोंकोपाया वह उसमें दोषजानकर तपका करना निश्चय करताहै, हे तात वह सावधान होकर उसशूद्रकाभी तपकहाजाता है जो कि जितेन्द्री और तपकेक्लेशोंके सहनेवाले मनुष्यके स्वर्गमार्गको वर्त्तमान करनेवालाहै हे राजा प्रथम बड़ेब्रह्मज्ञानी प्रजापतिजीने किसी जन्म और किसी देशमें व्रतों में निष्ठहोकर तपस्यासे सृष्टिको उत्पन्नकिया, द्वादशसूर्य, अष्टवसु, ग्यारहरुद्र, अग्नि, अश्विनीकुमार, उनचासवायु, विश्वदेवा, साध्यगण, पितृगण, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध और अन्यस्वर्गवासी देवता आदि सबतपसेही सिद्ध हुये हैं, प्रारम्भमें ब्रह्माजीने तपकेद्वारा जिनब्राह्मणोंको उत्पन्नकिया वह प्रजाको उत्पन्न करते पृथ्वी और स्वर्ग में विचरते हैं १८ जो राजालोग और गृहस्थी लोग इसनरलोकमें बड़े कुलमें उत्पन्न दृष्टआते हैं यह सब तपहीका फलहै और जो रेशमी इत्यादि वस्त्र सुंदर भूषण श्रेष्ठसवारी आसन और उत्तम भोजनादिकी वस्तुहैं वहसबभी तपहीकाफलहै, जो इच्छाके समान और स्वरूपवाली अच्छी स्त्री हैं और महलोंमें निवासहै वह भी तपहीकाफलहै, उत्तम पलँग आदि यथेच्छ भोगकी उत्तम वस्तु भी श्रेष्ठकर्म करनेवालों के ही होती हैं, हे परन्तप तीनों लोकमें तपके बिना कोई वस्तुकी प्राप्तिनहीं है अर्थात् तपहीसे सबपदार्थ मिलते हैं और जिनको तत्त्वज्ञान प्राप्तनहीं हुआ उनके तपकेफल वैराग्यरूपहैं, हे राजा उत्तम मनुष्य सुखी दुःखी कैसाहीहो वह चित्त और विचारवाली बुद्धिसे शास्त्र को विचारकर लोभको सबप्रकारसे त्याग करताहै, असन्तोषी होना दुःखकामूलहै और लोभसे इन्द्रियोंमें व्याकुलताहोती है और उस से उसकीबुद्धि ऐसी नष्ट होती है जैसीकि अभ्यास न रखनेवाले की विद्या नाशहोजाती है, जब बुद्धि में नष्टताहोती है तब योग्यायोग्य कर्म्म का विचार नहीं करता है इसकारण मनुष्य सुखके नाशहोनेपर कठिन तपस्या करे, जो चित्तसे प्याराहै वही सुख और जो चित्तसे बुराहै उसीकोलोकमें दुःख मानते हैं किये और बिनकियेहुये तपका फल जोसुखदुःखनामहै उसको देखो अर्थात् विचारकरो कि शुद्ध तपकाफल कल्याणहै उसी से सुखोंको भोगकर विख्यात होताहै फलकी इच्छारखनेवाला मनुष्य ऊपरलिखेहुये फलकोत्याग करके बड़े असह्य अपमान और दुःख वा विषयरूपी सुखको पाताहै, जैसे इस की इच्छा कर्म्म धर्म्म तप और दानमें उत्पन्नहोतीहै उसीप्रकार पापकर्म्मोंको भी करके नरकको पाताहै हे नरोत्तम सुखवा दुःखमें भी वर्त्तमान मनुष्यअपने गुरुपूजन आदि व्रतोंसे नष्टता को नहीं पाताहै क्योंकि वहमनुष्य शास्त्ररूप नेत्र रखने वालाहै, स्त्री आदिके स्पर्शमें जोसुखहोता है वहउतनीही देरतक नियत रहताहै जितनी देरमें कमानसे निकलनेवाला तीर पृथ्वीपर गिरता है

इसीप्रकार रसना आदि इन्द्रियोंका भी सुख थोड़ेही कालतक होताहै, फिर उस स्त्री आदिके नाशसे इसको कठिन दुःखहोताहै, सबसे उत्तम जोमोक्ष सुख है अज्ञानी लोग उसकी प्रशंसा नहीं करतेहैं, इसीकारण सब बुद्धिमानों के शम दम आदि गुण मोक्षके निमित्त उत्पन्न होतेहैं, धर्मवृत्ति में सदैव रहने के कारण काम अर्थ से मोहित नहीं होताहै, सब बातें प्रारब्धाधीन हैं फिर उद्योग करना व्यर्थ है इस शंकाके निवृत्त करनेको दोनों की प्रशंसा करते हैं—प्रारब्धसे उत्पन्न होनेवाली जो स्त्री और खाने पीने भोगनेकी वस्तुहैं वह गृहस्थियोंको भोगनी चाहिये और अपना धर्म्म बड़े उपायसे होनेके योग्य है अर्थात् धर्म्म में उद्योगही बलवान्हैं, प्रतिष्ठावान् कुलीन और सदैव शास्त्रार्थ रूप नेत्र रखनेवाले पुरुषों को यज्ञादिक क्रिया प्राप्तहोनी सम्भवहै और धर्म्म रहित चित्तसे अज्ञानी पुरुषों की क्रिया असम्भवहै, अब दोनों के कर्मों के भेदोंको वर्णन करतेहैं—मैं मनुष्यहूं इस अभिमानसे कियाहुआ कर्म्म नाश होजाताहै इसीकारण उन शास्त्ररूप नेत्र रखनेवाले पुरुषों का कर्म्म तपस्या के सिवाय दूसरा नहीं है, अब उन अज्ञानी लोगोंके धर्म्मको सुनो—गृहस्थी अपने धर्म्म में प्रवृत्त हव्यकव्यके लिये बुद्धिमानी के साथ यज्ञादिक कर्म्मों में निश्चय करे, जैसे सब नद नदी समुद्रमें जाकर निवास करतेहैं इसीप्रकार सब आश्रमी गृहस्थी के पास आश्रय लेतेहैं ३९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२२ ॥

# एकसौतेईसका अध्याय ॥

राजा जनक बोले हे महर्षी वर्णों में जो बिभागहैं वह किसकारण से हुये उनको मैं सुनना चाहताहूं १ जो यह सन्तान पैदा होतीहै वह उसी पिता के रूपहै यह श्रुति है ब्रह्माकी सन्तान सृष्टि ने कैसे दूसरे वर्ण को पाया अर्थात् सतोगुणी ब्राह्मणका पैदा होना योग्यहै उससे रजोगुण प्रधान क्षत्री आदि कैसे उत्पन्न हुये२ पराशरजी बोले हेमहाराज यह इसीप्रकारसेहै कि जो जिस से उत्पन्न हुआ वह वही है परन्तु तप के न होनेसे जाति भेद को पायाहै ३ अच्छे क्षेत्र और बीजसे उत्तम औरपवित्र सन्तान उत्पन्न होतीहै औरनीच से नीचही सन्तान होतीहै ४ लोकों के स्वामी ब्रह्माजीके मुखभुजा जंघा और चरणोंसे पुत्र उत्पन्नहुये ५ हे तात राजा जनक ब्राह्मण मुखसे उत्पन्नहैं, क्षत्री भुजासे, वैश्य जंघासे, शूद्र चरणोंसे पैदाहुयेहैं ६ इसप्रकार से चारों वर्णोंकी उत्पत्तिहै इनसे अन्य जो दूसरेहैं वे संकरवर्ण हैं ७ उनके नाम क्षेत्ररथ, क्षत्री, अतिरथी, अंबष्ठ, उग्र, वैदेहिक, श्वपाक, पुल्कस, स्तेन, निषाद, सूत, मागध, आयोग, कारण, व्रात्य, चाण्डाल यह सब इन्हीं चारोंवर्णोंके अन्योन्य भोगों

से उत्पन्न हुयेहैं, भिन्न अंग न रखनेवाले अज्ञानसे यह सब संसार उत्पन्नहुआ है यही सर्व्वत्र सुना जाता है उसमें अंगों का बिचार करना कहां से है यह शंका करके जनकने कहा कि एक ब्रह्माजी से सृष्टिके मनुष्योंकी मिलीहुई आधिक्यता और गोत्र आदिकी उत्पत्ति कैसे हुई क्योंकि इसलोकमें अनेक गोत्र हैं, जहां तहां किसीप्रकारसे पैदा होनेवाले मुनियों ने अपने मूलको पाया है जैसे कि काक्षीवान्से शूद्रामें उत्पन्नहोनेवाले पुत्रोंने ब्राह्मण वर्णको पाया उसीप्रकार शुद्ध योनिमें उत्पन्न होनेवाले अन्य मनुष्य बिपरीतयोनि में नियतहुये, पराशरजी बोले कि हेराजा तपसेशुद्ध अन्तःकरण महात्माओं की यह उत्पत्ति उसमनुष्य से जो कि रजोगुण तमोगुण में प्रवृत्तहो जानने के योग्य नहीं है, हे राजा मुनिलोगों ने जहांतहां पुत्रों को उत्पन्न करके फिर अपने ही तपसे उनका ऋषिभाव बिचार किया, पूर्व्वसमय में काश्यप गोत्री ऋषिशृंग मेरे पितामह वेदताण्डव, कृप, काक्षीवान्, कमठ, यवक्रीत, द्रोण, आयु, मतंग, दत, द्रुमद, मात्स्य, इन सब ने तपकेही आश्रय से अपने मूल को पाया वह वेदज्ञ शान्तचित्त तपकेही द्वारा प्रतिष्ठितहुये, हे राजा सगुण ब्रह्ममें यह चार गोत्र अर्थात् नाम पैदाहुये अंगिरा, काश्यप, बशिष्ठ, भृगु, आशय यह है कि अंगिरा अंगों का रस है इसीकारण देवताओं ने उसका नाम अंगिरा रक्खाहै और हम सबसे अधिक जितेन्द्री होने से देवताओं ने बशिष्ठ नाम रक्खा यह श्रुतिहै, हे राजा इसीप्रकार से दूसरे सब गोत्र कर्म्म से और उनका नाम तप से बिख्यात हुआ यह सब नाम गोत्र सत्पुरुषों के अंगीकार कियेहुये हैं, राजाजनकबोले कि हे भगवन् आपप्रथम सबवर्णोंके मुख्यधर्म्मोंको वर्णन कीजिये फिर सर्वसाधारण धर्म्मोंको कहिये क्योंकि आपसर्वज्ञ हैं, पराशरजीबोले कि हेराजा दानलेना यज्ञकराना और वेदपढ़ना यह तो ब्राह्मणों के मुख्यधर्म्म हैं और संसारकी रक्षा करना यह क्षत्रियोंका मुख्य धर्म्म है, खेती पशुपालन और व्यापारादि यहबैश्यों के मुख्यधर्म्महैं हे भूपयह तीनोंवर्ण द्विजन्मा कहेजातेहैं इनतीनों वर्णोंके सिवाय शूद्रका कर्म पृथक् है, यहबर्णों के मुख्यधर्म्म वर्णन किये और इनके सिवाय सर्व्व साधारण वर्णों को सुनो उनको मैं विस्तार समेत कहता हूं, दया, अहिंसा, अप्रमादता, सबका भागदेना, श्राद्धकरना, अतिथि को भोजनदेना, सत्यबोलना, क्रोध न करना, अपनीही स्त्री पर सन्तोष करना, सदैव बाहर भीतर से पवित्ररहना, किसीकेदोष को न कहना, आत्मज्ञान, शान्ति, यह सब धर्म्म सर्व्व साधारण हैं अर्थात् सबके लिये योग्य हैं २४ ब्राह्मण क्षत्री बैश्य यह तीनों दुबारा संस्कार होनेसे संस्कारी हैं और इनपूर्वोक्त धर्म्मों के अधिकारी भी हैं और हे राजा यह तीनों अपने धर्म्म से विपरीत चलने में

अपने२ अधिकार से अधःपतनहोते हैं अर्थात् नीचेअधिकारमें गिरते हैं और सतोगुण आदिसे उत्पन्न होनेवाले गुण उस स्वकर्म्मनिष्ठ मनुष्य के आश्रित होकर वृद्धिकोपातेहैं २५।२६ और शूद्र वेदोक्तधर्म्मोंसे रहितहोताहै इसीसे वह अपने से नीचे अधिकारमें नहीं गिरताहै परन्तु उक्त दशप्रकारके धर्म्मोंमें इस को निषेध भी नहीं किया २७ हे राजाजनक वेदपाठी ब्राह्मण शूद्रको तीसरे जन्ममें ब्राह्मणके समान मुक्त होनेवाला कहतेहैं और वही वेदज्ञब्राह्मणलोग शूद्रको वैदेहिककहतेहैं मुख्य आशय यहहै कि जो स्थूलशरीरको त्यागकरके सूक्ष्मशरीरको आत्मारूप जानतेहैं वहविदेह कहलातेहैं और जो स्थूल सूक्ष्म दोनों देहोंको त्यागकरके प्रधाननामकारणको आत्मारूप जानतेहैं वहप्रकृति में लयहोनेवालेहैं और तीनोंशरीरोंके त्यागकरनेवाले ब्राह्मणहैं, पहलेकीमुक्ति दोजन्म में दूसरेकी एकजन्म में और तीसरे की शीघ्रहीहोती है इसकारणसे ब्राह्मणोंने शूद्रको वेदहीन कहा है अर्थात् शूद्र वैश्य क्षत्रीके जन्मको पाकर ब्राह्मणहोता है यज्ञ न करनेवाले शूद्रकी चित्तशुद्धीहोने से वह कैसे विदेह आदि होगा इसका कारण कहते हैं—कामादि दोषों को दूर करने की इच्छा वाला अथवा आत्माकी निवृत्ति चाहनेवाला शूद्र सत्पुरुषों के शांतचित्त दया आदि चलनपर नियत होकर बिनामंत्रपौष्टिकादि क्रियाओं को करके दोष के भागी नहीं होतेहैं और अन्यलोग जिस २ उत्तमरीति चलनको अंगीकार करते हैं उसी २ प्रकारसे इसलोक परलोक दोनों में आनन्दको भोगते हैं, राजा जनक ने कहा कि हे महामुनि इस मनुष्य को कौनसा कर्म्म दोषयुक्त करता है इस मेरेसंदेह को भी आप निवृत्त करिये, पराशरजी बोले कि हे महाराज निस्संदेह कर्म्म बिरादरी दोनों दोषों के उत्पन्न करनेवालेहैं इसकेमूल को सुनो कि जो मनुष्य ज्ञाति और कर्म्म से दूषित कामों को नहीं करता है और जो ज्ञातिसे दूषित मनुष्य पापको नहीं करताहै वह उत्तम पुरुष कहाता है राजा जनक ने कहा कि हे मुनि इसलोक में कौन से कर्म्म धर्म्मरूप हैं, जिनको सदैव करनेसे मनुष्यकी हानि नहीं होती, पराशरजी ने कहा कि हिंसारहित धर्म्मही इसलोक में मनुष्यकी रक्षा करते हैं वह यहहैं कि तपसे पृथक् उदासीन पुरुष अग्नियोंको त्यागकर अर्थात् संन्यासी होकर क्रमसे योगमार्ग में प्रवृत्तहोके मोक्षरूपसुख को देखते हैं श्रद्धा और नम्रतापूर्वक दानयुक्त होकर मनवाणी से शान्त शुद्ध चित्तहोना, सूक्ष्म बुद्धि होकर सब कर्म्मोंका त्यागना इन कर्म्मोंसे मनुष्य रूपान्तर रहित स्थान को पाताहै, हे राजा सबवर्ण धर्म्मरूप कर्म्मोंको अच्छीरीतिसे करके सत्यवक्ता हो जीवलोक में भयकारी अधर्म्मोंको त्यागकर स्वर्गकोपातेहैं इसमें किसीबातका विचार न करनाचाहिये ३६ ॥ इतिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेत्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२३ ॥

# एकसौचौबीसका अध्याय॥

पराशरजी बोले कि इस लोकमें भक्ति आदि से रहित मनुष्यों के पिता, मित्र, गुरु, स्त्री, आदि कोईभी इसकी सेवा आदिका फल देनेको समर्थ नहीं होतेहैं और पूर्णभक्त प्रियवादी शुभचिन्तक जितेन्द्री मनुष्य रत्ता सेवा आदि के फलको पातेहैं, मनुष्योंका श्रेष्ठ देवता पिताहै पिताके कहने से माता संयुक्त समझना चाहिये और ज्ञानके लाभको उत्तम कहते हैं और जिन्होंने इन्द्रियोंके बिषयोंकोजीता वहब्रह्मपदको पातेहैं, जोराजकुमार युद्धभूमिमें जहां बाणरूप अग्निका शस्त्रहै उससे घायल होकर मरताहै वह देवपूजित लोकों को पाताहै और सुखपूर्वक स्वर्गफलको भोगताहै, हे राजा जो मनुष्य थका हुआ भयभीत अशस्त्र हाथजोड़े रथ कवच आदि सामानसे हीन बिना शस्त्र प्रहार किये अथवा रोगग्रस्त सन्मुख आकर बालक या वृद्धके समान प्रार्थना करनेवालाहै ऐसे मनुष्यको कभी न मारे, हे राजा ऐसे क्षत्री के लड़के को जो रथशस्त्र कवच युक्त शस्त्रको प्रहार करनेवाला अपनी समान का है उस को मारे, इसलोकमें समान या अपने से उत्तम पुरुषके हाथसे अपना मरण होना कल्याणरूपहै और नीच नपुंसक और कृपणके हाथसे मरना निन्दित कियाजाता है, पापी पाप कर्म्मवाले और नीचजाति के हाथ से मरना पाप रूप कहाजाताहै और उसका फलभी निश्चय नरक होताहै, हे राजा मृत्यु के वशीभूत मनुष्यकी कोई रक्षा नहीं करसक्ता है और जिसकी अवस्था बाकीहै उसको कोई मार नहींसक्ता, इसलोक में माता आदि के किये हुये कर्म चाहैं हिंसा रूपही होंय उनपर कभी ध्याननकरे और दूसरे के प्राणों से अपने प्राणोंका पोषण नहींकरे ६ हेतात बन्धन का नाश चाहनेवाले या पक्षीरूप परमात्माके द्वारा परमानन्दकी इच्छा करनेवाले क्रियावान् सब गृहस्थियोंका तीर्थोंपर मरना अच्छाहै—अब हठसे तीर्थोंपर मरनेकी निन्दा करते हैं—जिस मनुष्य ने देहको पाकर हटजल प्रवेशादिकसे अपने देहको त्याग किया उसका देह वैसाही है जैसा कि पूर्व में उत्पन्न होताहै अर्थात् इसप्रकार से देहका त्यागनेवाला देहके कठिन दुःखों को पाताहै यह हटमार्ग निन्दित है क्योंकि यह मोक्षक्षेत्र में भी इस देहसे दूसरेही देहमें प्रवेश करता है फिर क्या इसकी मोक्ष नहीं है यह शंकाकरके कहतेहैं—एक देहसे दूसरे देहके मिलने में दूसरा कोई कारण वर्त्तमान नहीं है अर्थात् उस देहके गुण केवल भोगही होने और कर्मगुण न होनेसे दूसरे देहकी उत्पत्ति नहीं है क्योंकि जीवोंका वह यातना रूप देह मोक्षके योग्य होकर रुद्र पिशाचादिकों में पूर्व कर्म्म फलके पूरेहोने के निमित्त संयुक्त होकर वर्त्तमान होताहै वेदान्त बिचार

करनेवाले ज्ञानियों ने देहको शिरा और स्नायुनाम नाड़ी और हाड़ोंका समूह अत्यन्त अपवित्र वस्तुओं से भराहुआ पंचतत्त्वात्मक बासनारूप विषयों के इकट्ठे होनेका स्थानहै ऐसा कहाहै और परिणाम में मृत्यु होनेवाला सुंदरतादि रूपों से रहित नाशवान् पूर्व संस्कारसे मनुष्यताको प्राप्त होनेवालाहै, जीवात्मा से और चेष्टासे रहित जड़रूप देह जिसमें पंचतत्त्व अपने २ मूल कारणों में लयहुए पृथ्वी में मिलजाताहै फिर योगादि कर्मों से प्रकट किया हुआ जहां तहां उत्पन्न होताहै और स्थान २ पर मृत्युको पाताहै उसीप्रकार उसीका स्वरूप अपने कर्म के फलसे दिखाई देताहै, हेराजा फिर वह भूतात्मा कुछ समयतक जन्म नहीं लेताहै और ऐसे भ्रमण करताहै जैसे कि आकाश में बड़ा बादल घूमताहै फिर इस लोकमें उद्धार होकर जन्मको पाताहै, उद्धार यहहै कि चित्तसे अधिकआत्माहै अर्थात् संकल्पसे रहितहोना और संकल्पसे पृथक् आत्मामें नियत होना मोक्षका लक्षणहै इन्द्रियों से प्रधान मनहै और सब जीवों में चैतन्य जीव श्रेष्ठ हैं और चैतन्य चेष्टावान् जीवोंमें द्विपाद जीव उत्तम हैं और द्विपादों में भी द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री वैश्य यह तीनों वर्ण श्रेष्ठ हैं और इन द्विज वर्णों में संतानयुक्त उत्तम हैं, प्रजाओं में योगी और योगियों में योग ऐश्वर्य्य से उत्पन्न होनेवाले निरहंकारी उत्तम हैं, मनुष्यों को यह पूर्ण निश्चय है कि संसार को मृत्यु प्राप्त होती है प्रजालोग सतोगुण आदि से युक्त कर्म्मों को कहते हैं, हे राजा जब सूर्य्यनारायण उत्तरायणहों तब शुभ नक्षत्र और मुहूर्त्त में जो पुरुष मरताहै वह ब्रह्मलोक के पानेका अधिकारी है, पाप से निवृत्तहो मनुष्यों को बिना दुःख दिये अपनी सामर्थ्य के अनुसार कर्मकरके कालजन्यमृत्युसे जो शरीरको त्यागता है वह भी उत्तम गतिको पाता है, बिष, फांसी, अग्नि, चोरों के हाथ से, मांसाहारी डाढ़वाले पशु जीवों से मरना प्रकृति मरण कहाजाताहै, आशय यह है कि दुःख से पीड़ित भी योगी इसअपमृत्युको नहीं चाहै, इच्छासे उत्पन्न इनअपमृत्यु और इसी प्रकारकी अन्य बहुतसी मृत्युओं को भी वह पुरुष नहीं पातेहैं जो कि पवित्र कर्म्म करनेवाले हैं, हे राजा पवित्र कर्म्म करनेवाले पुरुषों के प्राण सूर्य्यमंडल को भेदकर जाते हैं और सामान्य धर्म्म करनेवालों के प्राण नरलोक नाम सामान्य मार्ग से जाते हैं और निकृष्टकर्म्म करनेवालों के नीचे मार्ग जो पशुपक्षी योनिहैं उनमें जाते हैं, हेराजा पुरुषकाशत्रु एकअज्ञानहीहै उससे अधिक कोई दूसरा दुःखदायी नहीं है उससेही ठका और संयुक्त मनुष्य भयानक और भयके उत्पन्न करनेवाले कर्मोंको करताहै, उसी अज्ञान के नाश के लिये वेदोक्त धर्म्म में प्रवृत्त होकर वृद्धों के सत्संग से समर्थहोवे, हे राजपुत्र वह अज्ञान नाम शत्रु बड़े उपायों से जीतने के योग्य है वह ज्ञानरूप बाणसे

घायल करकेही नाश किया जाता है, ब्रह्मचारी तपस्याके द्वारा वेदको पढ़ कर सामर्थ्य के अनुसार पंचयज्ञों को करके धर्म्म और मोक्ष मार्ग में नियत होकर बनको जाय, मनुष्य उपभोगों के न मिलने से अपनी हानि न करे हे राजा जीवों में भी मनुष्य देह पाना बड़ा उत्तम है यही जन्म आदि है इसी को पाकर शुभ लक्षण युक्त कर्मों के द्वारा आत्माकी रक्षाहोना संभव है, इसी देह में वेदके प्रमाण से मनुष्य अनेक धर्म्म कर्म्म करसक्ता है, जो मनुष्य इस दुष्प्राप्य मनुष्य शरीर को पाकर उत्तम कर्म्म नहीं करताहै और धर्म्म का अपमान करनेवाला है वह दुराचारी कर्म्म से ठगाजाताहै, जो मनुष्य सबजीवों को कृपादृष्टि से देखताहै और सामर्थ्य के अनुसार दानमान सत्कारसे उनका पोषणभी करताहै और श्रेष्ठमीठेवचनों से प्रसन्न करताहै वह सुख दुःख में समान होकर परलोक में प्रतिष्ठा को पाताहै दान त्याग शान्तरूप श्रेष्ठहै और जल और तपस्यादि से शरीर को पवित्र करना चाहिये वह जल सरस्वती नदी पुष्कर नैमिष इत्यादि पृथ्वी के बहुत से तीर्थों में वर्त्तमानहै, जिन पुरुषों के प्राण घरों में निकलते हैं उनको सवारी के द्वारा समीपी पुण्यक्षेत्र अथवा श्मशान भूमि में लेजाकर विधि से दाहादि कर्म्म करना उत्तमहै, अमावास्या पूनों के अंगरूप यज्ञको इष्टी कहते हैं और बालबच्चों के पोषणको पुष्टि कहते हैं इन दोनों को और यज्ञ करना कराना दान पवित्र कर्मोंका प्रचार करना इत्यादि जो उत्तम कर्म्म हैं इनसबको यह मनुष्य आत्माके निमित्त सामर्थ्य के अनुसार करताहै और साधारण कर्म्म करनेवाले मनुष्य के कल्याण के निमित्त वेदके छओं अंग और धर्म्मशास्त्र धारण कियेजाते हैं, भीष्मजी ने कहा हे युधिष्ठिर इस प्रकारसे पराशरजी ने राजा जनक से वर्णन किया ४१॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेचतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२४॥

## एकसौपच्चीसका अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि हे तात मिथिलापुरी के राजा जनक ने फिर भी धर्म्म के निश्चय की उत्तमताको पराशरजी से पूछा कि हे बड़े बुद्धिमान् ऋषि कल्याण का क्या साधन है कौन गतिहै और कौनसा कर्म्म नाश नहीं होता और कहां जाकर फिर यहां लौटकर नहीं आता है इसको आप कृपाकरके समझाइये, पराशरजी बोले कि हे चिन्मात्र रूप जनक मायाके सब पदार्थों से प्रीति न करना कल्याण का मूल है और ज्ञान का होना परमगति है और करीहुई तपस्या का नाश नहीं होता है क्षेत्र और सत्पात्र में बोयाहुआ अथवा दिया हुआ दान नाश नहीं होता है, जब अधर्म रूप फाँसी को काटकर धर्म में प्रीति करता है तब निर्भयता करनेवाले दानको देकर संन्यास को

धारण करके मोक्ष रूप सिद्धिको पाता है यह चौथे प्रश्न का उत्तर हुआ, जो पुरुष हजारों गौ और घोड़ों को दान करता है और जीवमात्र को निर्भय दान देताहै उसको सदैव निर्भयता प्राप्त होतीहै, बुद्धिमान् असंग पुरुष विषयोंमें नियत होकर भी पृथक्ही रहताहै और दुर्बुद्धी मनुष्य सदैव नीच पुरुषों में और विषयों मेंही पड़ा रहताहै, कमल के पत्ते के ऊपर जैसे जलकी बूंद नहीं ठहरती है इसीप्रकार ज्ञानी को अधर्म स्पर्श नहीं करसक्ता है और काष्ठपर लाखके समान अज्ञानी महापापिष्ट मनुष्यको स्पर्श करताहै.७और दानरूप क्रियाके फलके चाहनेवाले और कर्म के करनेके अभिमानी पुरुषको अधर्म्म कभी नहीं त्याग करताहै, शुद्ध अन्तःकरण और आत्मज्ञानके विचारनेवाले पुरुष कर्मोंके फलसे कष्टको नहीं पाते हैं ९ जो कर्त्ता, पुरुष बुद्धि और कर्मेन्द्रियों के नष्टकर्मोंको नहीं जानताहै और अच्छे बुरे कर्मोंके फलों में आसक्त चित्तहै वह बड़े भयको पाताहै, जो सदैव वैराग्यवान् और क्रोध का जीतनेवाला होताहै वह विषयों में वर्त्तमान भी पाप युक्त नहीं होताहै, जैसे नदीपर बाँधाहुआ सेतु चलायमान नहींहोताहै किन्तु नदीकी पुष्टि करताहै इसीप्रकार सब रागों से रहित धर्म रूप सेतु रखनेवाला मर्य्यादा पुरुषोत्तम मनुष्य पीड़ा नहीं पाता है और उसके तपकी वृद्धि होतीहै, हे राजेन्द्र जैसे कि सिद्ध मुनिलोग नियम के द्वारा सूर्य्य सम्बन्धी तेजको पाताहै इसी प्रकार योग प्राप्त होनेपर यह जीव समाधि और ध्यानके द्वारा ब्रह्मभाव को पाताहै, जब स्वर्गकी इच्छा करनेवाला मनुष्य स्त्रियोंका त्याग करताहै और स्थान धन संवारी और नानाप्रकार के उत्तम कर्मों को त्याग करताहै अर्थात् उन कर्मों के फलोंको नहीं चाहताहै तब उसकी बुद्धि विषयोंको नहींचाहती है, जिसप्रकार इसलोक में तिलों का गुण पृथक् २ फूलों के योगसे बड़ी २ मनोहर सुगन्धिताओं को पाताहै इसीप्रकार अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरण मनुष्योंके सदैव अभ्यासके द्वारा सतोगुण उत्पन्न होताहै, जो विषयों में बुद्धि लगानेवाला मनुष्य किसीप्रकार से भी अपनी श्रेष्ठताको नहीं जानताहै वह सब भावोंमें प्रवृत्त चित्तसे ऐसे खैंचा जाताहै जैसे कि कांटे में लगेहुए मांससे मछली पकड़ी जाती है, यह नरलोक देह और इन्द्रियों के समूह आदि के समान स्त्री पुत्र, पशु आदिका समूहहै परस्पर में रक्षा स्थान से रहित है अर्थात् केलेके समान सारसे रहितहै, जैसे नौका जलमें डूब जातीहै इसीप्रकार यह भी डूब जाताहै मनुष्यके धर्म्म का समय नियत नहीं है और मृत्यु भी मनुष्यकी राह नहीं देखती इससे सदैव धर्म्मकाही अभ्यास रखना उत्तम है मनुष्य मृत्युके मुखमें अपनेको समझा करे, धर्म्म से चित्तशुद्धी होनेपर योगाभ्यास करना चाहिये इसको कहतेहैं कि जैसे अंधा अपने घरमें अभ्यास

सेही जाताहै इसीप्रकार ज्ञानीयोगी योगाभ्यासमें चित्तको लगाकर उसगति को प्राप्त करताहै, योगके न होनेमें अप्रियताको कहते हैं—मरना जन्मके लिये कहा और जन्म मृत्युसे संयुक्तही है अज्ञानी मोक्षधर्म्म को न जानता हुआ चक्र के समान मायामें घूमताहै, और बुद्धि मार्ग में चलनेवाले मनुष्य को इसलोक परलोक दोनों में सुख होताहै—बिस्तार करने से क्लेश होताहै और संक्षेपतासे करना सुखकारी है सब बिस्तार पराये निमित्त हैं और त्याग को आत्म हितकारी कहतेहैं, जैसे कमल के मृडाल की लगीहुई कीच शीघ्रतासे अलग होजातीहै वैसेही पुरुषका आत्मा उपाधि रूप चित्तसे पृथक् होताहै, चित्तसे उत्पन्न होनेवाला संसार चित्तसे ही नाश होजाताहै इसको कहतेहैं—चित्तही आत्माको योगमार्गमें लाताहै फिर वह योगी उस चित्तरूप आत्मा को परम काष्ठा में मिलाताहै जब वह योग सिद्ध होताहै तब उस परमात्मा को देखताहै, जो मनुष्य इन्द्रियोंकी तृप्तिके निमित्त कर्म करनेको अपना कार्य रूप मानताहै वह इन्द्रियों के बिषयों में संयुक्त होकर अपने योगरूप कार्य से नष्ट होजाताहै, अब योग से नष्ट होनेवाले की गतिको कहतेहैं—इस जगत् में ज्ञानी और अज्ञानीका आत्मा कर्मों के द्वारा आप नीची और तिर्य्यग्गति को और स्वर्ग में इन्द्रलोक को पाता है, अब योगनिष्ठ मनुष्यकी गति को कहते हैं—जैसे मट्टी के पात्रमें पकाया हुआ जल आदि नष्ट नहीं होता है उसी प्रकार तप से तपाया हुआ देह ब्रह्मलोक तक बिषय को व्याप्त करता है, जो आत्मा बिषयों को प्राप्त करता है वह भोगता नहीं है अर्थात् निःसंदेह वहसाक्षी है और जो चिदाभास जीवरूप आत्मा बैराग्यवान्होकर भोगोंको त्यागकरताहै वही उनकेभोगनेको निश्चय करताहै, वह साक्षीरूप आत्मा जिस हेतुसे संयुक्त नहीं होताहै उसको सुनो—कोहरे से ढकेहुयेके समान उदर और लिंगकी तृप्तिमें प्रवृत्त जीवात्मा जन्मसेही अन्धे के समान मार्गको नहीं जानताहै, जैसे वैश्य समुद्रसे अपने मूलधन के अनुसार धन को पाताहै उसीप्रकार इससंसारसागर में कर्म और बिज्ञान से जीवकी गति होतीहै, इसकालप्रधान लोक में वृद्धावस्था रूपसे घूमतीहुई मृत्यु जीवों को ऐसे निगलजातीहै जैसे कि सर्प हवाको निगलताहै, जन्म लेनेवाला जीव अपने कियेहुये कर्म्म फलों को पाताहै बिनाकर्म्म के कोई प्रिय अप्रिय वस्तु नहीं मिलसक्ती, सदैव अच्छे बुरेकर्म इस मनुष्यको प्राप्तहोते हैं, तत्त्वज्ञ पुरुषों का दूसराजन्म नहींहोता इसको कहताहूं देहधारी मनुष्य संसारसागरके किनारे को पाकर जलके सिवाय दूसरेका तरना निश्चय नहीं करताहै औरमहासमुद्र में इसका गिरना कठिन दृष्ट पड़ताहै, जैसे कि नौका बड़ेजलमें मल्लाहरूपी चित्तवृत्तीसे रस्सीके द्वारा खैंचीजाती है इसीप्रकार चित्तभी अपने बिचारसे

देहको कर्म्म में प्रवृत्त करताहै, जैसे कि सब नदियां समुद्रमें मिलती हैं उसी प्रकार आदिप्रकृति चित्तके विचारके द्वारा एकताप्राप्त करती है, बहुत प्रकार की प्रीति रूपी रस्सियों से बँधेहुये चित्त और अज्ञानके स्वाधीन मनुष्यदुःख को पातेहैं, जो देहरूपघर और बाह्याभ्यन्तरीय शुद्धीरूप तीर्थवाला बुद्धिके मार्ग में चलनेवाला शरीरी है उसको दोनोंलोक सुखदायी हैं मोक्षमार्ग में यज्ञादिककर्म्म दुःखरूपहीहैं और त्यागादि सुखदायकहैं,क्योंकि सबयज्ञादिक कर्म्म दूसरेके अर्थहैं और त्यागादि अपनेही निमित्त होतेहैं, योगके विघ्नरूप जो पुत्रादिकी चिन्ताहै उसको न करना चाहिये इस बातको कहते हैं–सब मित्रवर्ग संकल्पसे उत्पन्न होतेहैं और ज्ञातिसंबंधी लोग कारणरूपहैं अर्थात् पूर्व संस्काररूपहैं पुत्रस्त्री दासदासीआदि अपने प्रयोजनके सिद्धकरनेवालेहैं, माता पिता किसीके कामनहीं आतेहैं और दानरूप पाथेयहै अर्थात् पथिका भोजनहै यहजीव स्वर्गमें जाकर अपने कर्म फलको पाताहै यह माता पिता पुत्र भाई स्त्री और मित्रों के समूह ऐसेदृष्टपड़ते हैं जैसे कि अशर्फी के ऊपर मुख्यरेखा–जैसे पूर्व समयके निजकिये हुये पापपुण्य मनुष्यको अपना २ फलदेने के लिये प्राप्तहोते हैं इसी प्रकार अन्तरात्मा सन्मुख वर्त्तमान कर्म फलोंको जानकर बुद्धिको प्रेरणा करताहै,जोमनुष्य एकाग्रचित्तयोगाभ्यासी शूरधैर्यवान् और पण्डितहै उसकोकभी लक्ष्मी ऐसे त्याग नहीं करतीहै जैसे कि सूर्यको सूर्यकी किरणें नहीं त्यागतीं, जिसकी प्रशंसायोग्य बुद्धिहै वह मनुष्य परमेश्वर और परलोकके मानने वा निश्चय वा उपाय वा निरहंकारता आदि से आस्तिक्य बुद्धिके द्वारा कर्म्मका प्रारम्भकरे वहकर्म्म मिथ्या नहीं होताहै, सब जीव निश्चय करके गर्भसेही अन्ततक अपने पूर्व्व कर्म्मों के फलोंको प्राप्तकरतेहैं इसकारण वह पाप पुण्य त्याग नहीं कियेजासक्तेहैं,मृत्यु अपने साथी जीवनके नाशकरने वाले कालके साथ देहको ऐसे त्यागकरातीहै जैसे कि आरेसे निकलेहुये काष्ठ चूर्णको वायु उड़ादेताहै, इसी कारण प्रारब्ध से मिलने वाली मर्य्यादाओं से प्राणों को धारण करके मोक्षकेही निमित्त उपाय करना चाहिये,धनस्वरूप पुत्र स्त्री सुंदरकुल आदि सुख अपने पूर्व कर्म्मकेही फलके द्वारा पाताहै तात्पर्य्य यहहै कि इन पदार्थों के निमित्त उपाय न करे केवल आत्मतत्त्व के साक्षात्कारके निमित्त उपायकरे, भीष्मजी बोले हे तात इसप्रकारसे पराशरजीसे उपदेश पायाहुआ राजाजनक अत्यंत प्रसन्न हुआ ४८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेपञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२५ ॥

# एकसौछब्बीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे पितामह इससंसार में सत्यता, शान्तता और बुद्धिमत्ता इत्यादि गुणोंसे ज्ञानी मनुष्यकी प्रशंसा करते हैं इसको आपने किस प्रकार माना है, भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर इसस्थान में एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें साध्यों का और हंसका सम्वाद है, अजन्मा और नित्य प्रजापति ब्रह्माजी सुन्दर पक्षधारी हंसरूप होकर तीनों लोक में घूमते थे दैवयोग से घूमते हुये साध्य देवताओं के पास आये साध्य बोले हे पक्षी हम सब साध्य देवता तुमको नमस्कार करके मोक्ष धर्म्म को पूछते हैं क्योंकि आप निश्चय करके मोक्ष के जाननेवाले हैं आपको हमने पण्डित और ज्ञानियोंसे मोक्षधर्म्मका वर्णन करनेवाला सुनाहै आपकी कीर्त्ति और प्रकर्षता विख्यातहै आप किसको उत्तममानते हैं और किसमेंचित्तको रमातेहो हे महात्मा उसीकाउपदेश हमकोकीजिये और अनेककर्मोंमेंसे मुख्य एककर्मको बताइये जिसको करके मनुष्य संसार बन्धनोंसे छूटकर परम गतिकोपावे, हंसने कहाकि अमृतपान करनेवाले देवताओं में यहबात करनेके योग्य सुनताहूं कि तपस्या करना सत्यता पूर्वक शांतचित्तहोना चित्तको जीतना और हृदय के रागादि दोषोंको त्यागकर प्रिय अप्रियको समान जानना अर्थात् उनमें सुख दुःख न माननाचाहिये मर्मभेदी वचन न कहना नीचसे शास्त्रकोन पढ़ना दूसरेको व्याकुल करनेवाला भयकारी असभ्यवचनका न कहना यह वचनरूप बाणमुखसे निकलते हैं उनसे घायल होकर मनुष्य अहर्निश दुखी रहताहै वह वचनबाण दूसरेके मर्मस्थानको ऐसानहीं विदीर्ण करते जैसाकि कहनेवाले के मर्म्मको छिन्नकरतेहैं उनवचनरूप बाणोंको पंडित मनुष्य कभी दूसरेपर नहींछोड़े जो अन्यमनुष्य इसको किसी प्रकारसे वचन बाणोंसे घायलभी करे तबभी इसको शान्तीही करनी योग्यहै जो अत्यन्त क्रोधरूप पुरुष को प्रसन्न कर देताहै वह उसके पुण्यके फलको प्राप्तहोताहै, जो पुरुष दूसरे की अप्रतिष्ठा करनेवाले क्रोधको अपने आधीन करता है वह निर्भय दूसरे की निन्दा न करनेवाला और प्रसन्नचित्त दूसरोंके पुण्योंकोलेताहै, जो पुरुष गालीखाकर कुछनहींकहता और चोट खाकर क्षमाकरताहै वहीउत्तमहै क्योंकि श्रेष्ठपुरुषोंने क्षमा सत्यता,सरलता और दयाकोही उत्तमकहाहै, सबकामत यहहै कि वेदकीगुप्तबात सत्यताहै,सत्यवचनोंकी गुप्तबात अपनेमनकीइच्छाओं का रोकना है और इच्छाआदि के रोकने की गुप्तवार्त्ता मोक्ष है, जो पुरुष मनबचन क्रोध लोभ उदर और कामकी शक्तिको रोके मैं उसको ब्राह्मण और मुनि मानताहूं, क्रोधकरनेवालों में क्रोधरहितहोना उत्तमहै इसीप्रकार अशा-

न्त पुरुषोंमें शांतपुरुष श्रेष्ठहै और जो मनुष्यताके गुणसे पृथक्हैं उनसे मि-
लनसार मनुष्य श्रेष्ठहै इसीप्रकार अज्ञानी से ज्ञानी अथवा ब्रह्मका जानने
वाला उत्तमहै गालीदेनेवालेको अपनी ओरसे गाली न देशान्त पुरुषका
क्रोध इसगाली देनेवाले को नाशकरता है और पुण्यभी हरलेताहै, जो अ-
त्यन्त निन्दित वा प्रशंसितमनुष्य रूखे और अप्रिय वचनको नहींकहे और
घायल कियाहुआ धैर्य्यसे बदलानहीं लेताहै और मारनेवालेके पापकोनहीं
चाहता है उस पुरुषकी इच्छा देवलोकमें देवता लोगकरतेहैं अप्रतिष्ठा किया
हुआ और प्रहार कियाहुआ और गाली दियाहुआ भी अपने समानवाले या
अपने से बड़े या नीचकी क्षमाकरे तो सिद्धिको पाताहै, आशय यह है कि
मैंभी सदैव वृद्धोंका सेवन करताहूं मेरालोभ प्रकट नहीं होताहै और क्रोध
और बड़ी आवश्यकता में भी धर्म्मसे पृथक् नहीं होताहूं और विषयादिककी
प्राप्तिके लिये देवताओंसे भी याचना नहीं करताहूं, कोई मुझे शापभी दे-
ताहै तो मैं उसे शापनहीं देताहूं इसलोकमें शांतस्वभावहोने को मैं मोक्षका
द्वार जानताहूं सो यहगुप्त ब्रह्महै इसको कहताहूं कि मनुष्य देहसे बढ़कर
कोई कुछ नहीं है, जिसप्रकार चन्द्रमा बादलों से अलग होताहै उसीप्रकार
पापोंसे मुक्त रजोगुणसे रहित पंडित मनुष्य समयको देखता धैर्य्य से सिद्ध
होताहै, जो सबका बड़ाहोताहै और ब्रह्मांड मण्डपकास्तंभरूपहै और जिसकी
सबलोग प्रशंसा करते हैं वह जितेन्द्री देवताओं में मिलताहै,ईर्षा करनेवाले
लोगजैसे पुरुषोंके दोषोंको कहना चाहतेहैं वैसे उनके कल्याण रूपी गुणोंको
नहींकहना चाहतेहैं,जिसके वचनऔरमन अच्छेप्रकारसे आधीनहैं और वेद
तप अर्थात् स्वधर्मनिष्ठहोना और त्यागप्राप्तहै वहइस सबके फलको पावेहै
ज्ञानी पुरुष अज्ञानियोंको गालीदेने और अप्रतिष्ठा करने से सावधान करसके
इसीकारण दूसरेको नहींमारे और अपघातभी न करे,पण्डित मनुष्य अपमान
से ऐसे तृप्तहोजाय जैसे कि अमृतपीनेसे संतुष्टहोताहै क्योंकि अपमान पाया
हुआ सुखसे सोताहै और अपमान करनेवालानष्ट होजाताहै, क्रोधयुक्त मनु-
ष्य जो यज्ञकरताहै वा दानदेताहै अथवा तपहोम आदि करताहै उसके सब
धर्मको यमराज हरलेते हैं और क्रोधीका परिश्रम निरर्थक होताहै हे उत्तम
देवताओ जिसके लिंग उदर दोनोंहाथ और वचन यह चारोंद्वार अच्छे प्रकार
बुरेकर्म्मसे बचेहुये हैं वह धर्मज्ञ पुरुष है, सत्यता शान्त चित्तहोना सरलता,
दया धैर्य्य, क्षमा इत्यादिका अच्छे प्रकार से अभ्यास करनेवाला सदैव वेद
पाठ या जपमें प्रवृत्त इच्छा रहित और एकान्त वासी है वह मोक्षका अधिकारी
है जैसे कि बछड़ाचारों थनोंको पीता है उसीप्रकार इनसब गुणोंको करताहुआ
मोक्षका अधिकारी होताहै और मैंने सत्यतासे बढ़कर कोई उत्तम पदार्थ नहीं

पाया, मैं घूमताहुआ मनुष्य औरदेवताओंसे कहताहूं किसत्यता स्वर्गकीनसेनी इसप्रकारकीहै जैसे कि समुद्रकी नौकाहोतीहै, यहपुरुष जैसे लोगोंकेसाथ रहता है और जैसे मनुष्योंका संग करताहै और जैसाहोना चाहताहै, वैसाही होताहै, जो संतोंका सेवन करताहै अथवा तपस्वी या चोरकी सेवाकरताहै वह इसप्रकार से उनके आधीन होताहै जैसेकि कपड़ा रंगके आधीन होताहै, देवता सदैव साधुओंसे वार्त्तालाप करतेहैं और मनुष्योंके विषयभोगोंको देखनाभी नहींचाहते हैं क्योंकि विषयादिक नाशवान्हैं देखो अमृतरूप चन्द्रमाभी सदैव एकरूपनहीं रहता अर्थात् घटताबढ़ताहै औरवायुभी समाननहींहोती तीव्र मध्यमधीरे चलती है इसीप्रकार न्यूनाधिक युक्ति विषयों को जो जानता है, वहीजाताहै, रागद्वेष से रहित जैसेहो वैसेही हृदय में अन्तर्य्यामी पुरुषके वर्त्तमान होनेपर उसी अंतर्य्यामीके ज्ञानसे युक्त और सत्पुरुषोंके मार्ग में नियत पुरुषसे देवता प्रसन्न होतेहैं अर्थात् जो अन्तर्य्यामीहै वहीजीवहै यह श्रुतियां जीव ब्रह्मकी ऐक्यता को सिद्ध करतीहैं यहआत्माब्रह्महै मैं ब्रह्महूं वहतू है इत्यादि श्रुति कहतीहैं, जो मनुष्यसदैव लिंगेन्द्री और उदरमूर्ति में प्रवृत्तहैं वहचोर और सदैव कठोरबचन कहनेवाले हैं उनको देवतालोग प्रायश्चित्त के द्वारा दोषों से रहित भी जानकर दूरसेही त्याग करतेहैं, जो मनुष्य नीचबुद्धी सर्वभक्षी कुकर्मीहैं उससे देवता कभी प्रसन्न नहींहोते, जो पुरुष सत्यव्रत कृतज्ञ और धर्म्ममें प्रवृत्त हैं देवता उनको सुख विभाग करके सेवन करते हैं, बहुत बकने से मौनहोना कल्याण रूपहै और सत्य वचन कहना दूसरा कल्याण रूपहै, धर्म्मरूप वचन कहना तीसरा कल्याण वचनहै, प्रियवचन कहना चौथा कल्याणहै अर्थात् यहचारों एक दूसरेसे उत्तमहैं, यह सुनकर साध्यलोगोंने पूछा कि जो ऐसाही है तोलोग क्योंनहीं कल्याण वचनोंको कहतेहैं और यहलोक किससे ढका हुआहै और काहेसे प्रकाश नहीं करताहै और किस कारणसे मित्रोंको त्यागताहै और स्वर्गको नहीं जाताहै हंसरूपने उत्तर दिया कि यह लोक अज्ञानसे ढकाहुआहै ईर्षा आदिसे प्रकाश नहीं करताहै लोभसे मित्रोंको त्यागकरताहै और कुसंगसे स्वर्गको नहीं जाताहै, जिसका अज्ञान नाशहोगयाहै उसके प्रकारके लक्षण पूछनेके लिये साध्यों ने प्रश्नकिया कि ब्राह्मणोंमें कौनअकेला रमताहै और बहुत मनुष्योंमें कौनसा अकेला ज्ञानी सुख पाताहै और कौन अकेला पराक्रमी या निर्बलहै और इनमें कौन लड़ाई आदिको प्राप्त नहीं करता है, हंस बोले कि ब्राह्मणों में ज्ञानी अकेला रहताहै और अकेला ज्ञानी बहुत मनुष्यों के साथ सुखी रहताहै और अकेला ज्ञानी पराक्रमीऔर निर्बल भी है इनमें ज्ञानीही लड़ाई आदिको प्राप्त नहीं करता, साध्योंने कहा कि ब्राह्मणों के देवभाव होने का क्या कारणहै और साधुभाव होनेका क्या

कारण कहाजाताहै और इनके असाधु होनेका क्या हेतुहै और नरभाव कैसे होताहै, हंस बोले कि ब्राह्मणोंका वेदपाठ या जप देवभावका कारणहै और व्रतादिकों का करना साधुभाव कहाजाताहै दूसरेकी निन्दाकरना असाधुभावका कारणहै और मृत्यु नरभावका कारण कहातीहै, भीष्मजी बोले कि यह मैंने साधुओंका उत्तम संवाद वर्णनकिया और स्थूल सूक्ष्म शरीरोंकी उत्पत्तिके कारण कर्म हैं और सद्भाव अविनाशी कहा जाताहै अर्थात् सद्भाव रहित जो किया जाताहै वह मिथ्यारूपहै ४५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेषड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२६ ॥

# एकसौसत्ताईसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हेपितामह आपने सबके उपकारके लिये श्रेष्ठ लोगोंका अंगीकार कियाहुआ यहयोग मार्ग न्यायके अनुसार वर्णनकिया अब सांख्य शास्त्रमें और योगशास्त्रमें जोविशेषताहै उसको विस्तारपूर्वक कहिये क्योंकि आप तीनों लोकोंके ज्ञानको जानतेहैं, भीष्मजी बोले कि हे आत्मज्ञानी तुम सांख्यमतके इससूक्ष्मतत्त्वको मुझसेसुनो जोकि कपिल आदि महामुनियों से प्रकाश किया गयाहै हे नरोत्तम जिसमें अनेकगुण हैं और संदेह आदिनहीं दिखाईदेतेहैं वह शास्त्रके बलशुद्ध ब्रह्मसेही संबंध रखताहै इसका आशययहहै कि प्राणसंबंधी प्रपंच और दूसरा अविनाशी शुद्धब्रह्म इनके विशेष सबकर्म उपासना आदि जो व्यवहार सिद्धहैं यहां इनमें से किसीको भी साथलेकर द्वैतभाव नहींहै केवल एकही अकेला है इस वचनसे संसार नाशवान्है परंतु इसके सिवाय अन्यमतोंमें द्वैतता माननेसे एकता सिद्ध करनेवाले वेद वचन निरर्थकसमझे जाते हैं उनको जगत्की सत्यताका भ्रम दृष्ट पड़ता है ऐसे अनेक प्रकारके भ्रमसांख्य शास्त्रमें नहींहोते और कर्मकाण्ड ज्ञान काण्डका अंतर अदृष्ट गुणहैं और इनके विपरीत दोषहैं, हेराजा वहयोगी दोष और विषयोंको ज्ञानसे त्यागकर सब विषय भावको सीपमें चाँदीकी भ्रान्तिके समान मिथ्या समझकर मनुष्य पिशाचादिके विषयों को यक्षराक्षस देवगंधर्वों के विषयों को मनुष्य से देवता पर्य्यन्तों के ऐश्वर्य्यरूपी विषयोंको प्रजापतियों में ब्रह्मादिक पर्य्यन्तके विषयों को, और इसलोक में अवस्थाके अन्त को अच्छी रीतिसे जानकर और सुखके परमतत्त्वको भी जानकर विषयके सदैव चाहने वालोंके दुःखके समयको समझकर पशुपक्षी तिर्य्यक् योनि के जन्ममें और नरकमें पड़ेहुये लोकोंका दुःख देखकर स्वर्गको और वेद संबंधी गुणोंको भी जानकर ज्ञानयोगके गुण दोषोंको ध्यानकरके रागद्वेषादिमें गुण अवगुण देखकर और सतोगुण रजोगुण तमोगुण इन तीनोंमें भी दश नौ

आठक्रम से अवगुण जानकर चित्तको छः आकाशको पांचबुद्धिको चारगुण वाली इत्यादि सबबातें अच्छे प्रकार से जानकर ज्ञान विज्ञानयुक्त सात्त्विक भावोंसे शुद्धचित्त आकाश के समान सूक्ष्मज्ञानी शुभउत्तम मोक्षको पाताहै अब ब्रह्ममें सबके लयभावको कहतेहैं कि जैसे कुण्डलमें सुवर्णहै उसी प्रकार रूपसेयुक्त चक्षुरिन्द्री गन्धसे घ्राण,शब्दसे श्रोत्र,रससेयुक्त रसनाइन्द्री स्पर्श में देह आकाश में वायुतममें मोह और अर्थों में लोभलयहोताहै,वायुकी गति में विष्णुको भुजामें इन्द्रको उदरमें अग्निको जलमें पृथ्वीको तेजमें जलको और वायुमें तेजको संयुक्तजानो,वायु आकाशमें आकाश अहंकारमें अहंकार बुद्धि में, तममेंबुद्धिको रजोगुणमें तमको, लयजानो, सतोगुण में रजोगुण को और त्वम् पदार्थ जीवमें सतोगुणको इसीप्रकारईश्वर नारायण देवतामें त्वम् पदार्थ जीव को और मोक्षमें नियत देवताको जानो, और मोक्ष किसी में भी संयुक्त नहीं है अर्थात् वह कैवल्य निर्विकल्प मोक्ष अपनीही महत्त्वता में संयुक्त है, सोलहगुणवाले स्वप्नमें सम्बन्ध रखनेवाले देहकोजानकर पिछले कर्मको और उसकर्मकी उत्पत्तिकारणरूप वृत्तिको लिंगशरीरमें आश्रयीभूतजान निष्पाप आत्माको उदासीनजानके जाग्रत अवस्थामें विषय जाननेवालों के कर्मको दूसरा जानकर सब इन्द्री और इन्द्रियों के विषयों को आत्मामें कल्पितजान कर वासनारूप तीनोंदशा के कारण से वेदवचनके अनुसार मोक्षकी कठि-नता को जानकर प्राण अपान समान व्यान और उदान इनपांचोंप्राणोंको एककरके नीचे को प्राप्तकरताहै वह अधोनाम छठवांहै—फिर ऊपरको लेजाने वाला सातवां है इन सबको मुख्यता से जानकर इसीप्रकार फिर उनसातों को जिनप्रत्येकोंमें सातोंप्राण इसप्रकार वर्त्तमानहैं जैसे कि वृक्षकीजड़में बहुत सेबीज और उनबीजोंमें अगणितबीज होते हैं यह सबजानके प्रजापतिऋषि और अनेक उत्तम मार्गों को जानकर बड़े देवर्षि ब्रह्मर्षि और सूर्यके समान तेजस्वी महापुरुषों को जानकर देवताआदि अनेक जीवसमूहों को नाशवान् देख सुनकर पापोंकी अशुभ गतिको और यमलोककी वैतरणी नदीके गि-रनेवालों के महादुःखों को जानकर और नानाप्रकारकी योनियों में अशुभ जन्मको थूक खकार विष्ठा मूत्रसे संयुक्त नानादुर्जातनामें बड़े अनेक नरकों के दुःखोंमें पीड़ितजानकर संसारी दुःखों में ढकेहुए तामसीजीव और सात्वि की जीवोंके निन्दित कर्मोंकोजानकर और आत्मज्ञानी सांख्यमतवाले महा पुरुषों के अर्थ में निन्दित कर्मोंको जानके चन्द्र सूर्य के घोर ग्रहणको देख कर नक्षत्रों के गिरने और अदला बदली आदिको और स्त्री पुरुषोंके बियोग और दुःखको देखकर और जीवोंका परस्पर में भक्षण करना अशुभ भयकारी जानकर बालकपनेके अज्ञान और अशुभ नाशको जानकर प्रीति और मोह

होनेपर सतोगुणी बुद्धिमें और मोक्षबुद्धि में हजारों में कोई पुरुष नियत है, वेद वचनके अनुसार मोक्षकी कठिनता को जान अप्राप्त वस्तुओं में बहुतमानना और प्राप्त वस्तुमें साधारण मानना और हे राजा विषयोंमें दुरातमभाव और निर्जीव पुरुषोंके अशुभ देहोंको देखकर ४१ हे युधिष्ठिर घरों में दुःखरूप निवासको और ब्रह्महत्या करनेवाले मनुष्योंकी असह्य गति को, मद्यपान और गुरुपत्नीसे आसक्त भ्रष्टाचारी ब्राह्मणोंकी गतिको और जो माताओं में अच्छा बरताव नहीं करते और देवताओंसे व्याप्तलोकों में श्रेष्ठ चलनवाले नहींहोते उनगतियोंको जानकर बुरे कर्मोंकी और पशु आदिकी योनि में जन्म होकर उनकी अनेक दुर्गतियोंको और जलजीव कीटपतंगादिके नाश को और मास बरस आदिके नाशको ४६ इसीप्रकार यक्ष राक्षस देवता गन्धर्व दिन रात सूर्य चन्द्र सम्बन्धी वृद्धि क्षय को समुद्रों की न्यूनाधिकता और धनोंके वृद्धि क्षय को ऋतुओं के पहाड़ों के नदियोंके नाशको देखकर और ब्राह्मण क्षत्री आदि वर्णोंका नाश वृद्धावस्था मरणावस्थाआदि देहों के बिकारोंको और उनके दुःखों को ठीक २ बिचारकर, शरीरकी व्याकुलता और आत्मामें नियत आत्माके सब दोषोंको जानकर अपने देहकोशुद्धकरके कोई मोक्षको चाहताहै, युधिष्ठिरबोले हे महाप्राज्ञ पितामह अपने देह से उत्पन्न होनेवाले कौन से गुण दोषों को देखतेहो इसमेरे सन्देहको भी अच्छे प्रकार से दूरकरिये, भीष्मजी बोले हे शत्रुहन्ता युधिष्ठिर कपिलमुनि के सांख्य शास्त्रज्ञ और सांख्यमत के आचरण करनेवाले ज्ञानीपुरुष इसदेह में पांचदोषोंको कहते हैं उनको सुनो, काम, क्रोध, भय, निद्रा, और श्वास यही पांचों देहधारियोंके शरीरमें दोषरूप दृष्टआते हैं, सन्तोष शान्तीसे क्रोध को निवृत्तकरतेहैं और संकल्पके त्यागसे कामको, सतोगुणरूप कर्म से निद्रा को, सावधानी से भयको और अल्पाहारी होने से श्वासको वशमें करते हैं, गुणोंको अनेक गुणों से दोषोंको दोषों से पहचानकर और अपूर्व बातको अपूर्व बातोंसे, सैकड़ों मायासे व्याप्त भीतके चित्रके समान नरकुलके तुल्य असारवान् गुफाके अँधेरेके समान जलके ओलेके समान बिनाशवान् नाशरूप इसलोकको देखकर रजोगुण तमोगुण में भरी कीचड़में फँसे हाथी के समान परवश संसारको जानकर महाज्ञानी सांख्यशास्त्रवाले संसारी प्रीति को त्यागकर उस सर्व्वव्यापी बड़े सांख्यज्ञान योगसे राजसी असुर गन्धर्व्वों को और तामसीअसुर गन्धर्व्वोंको स्पर्श से उत्पन्न होनेवाले देहमें नियत जान पवित्र सात्विकी गन्धर्व्वोंको ज्ञान और तपरूप फरसेसे काटतेहैं हेराजा युधिष्ठिर इनसबबातोंके पीछे अपनी शुद्ध चित्तता और क्षेत्रज्ञके ज्ञानकेद्वारा ज्ञानी उसमहाघोरसागरकोतरतेहैं जिसमेंदुःखरूप जलऔरचिन्ताशोकगम्भी

रता, रोगमृत्यु ग्राह और भय महाभयानक सर्प है, तमोगुण कछुआ रजोगुण मछली स्नेहकीचहै, वृद्धावस्था कठिन मार्ग ज्ञानद्वीपहै, और कर्म्मोंके कारण अथाहहै सत्यतीर और व्रतस्थिरताहै, हिन्साशीघ्रता महावेगहै और नानाप्रकार के रसही रत्नोंकी खानि हैं और बहुतप्रकारकी प्रीति बड़े २ रत्नाधिकहैंऔर दुःख ज्वर नाम महावायु के उत्पात हैं शोक लोभ चारों ओरका जल है उग्ररोगही बड़ा हाथी है अंगके जोड़ पानी इकट्ठे होनेका स्थानहै और हाड़ों के जोड़ों का इकट्ठा होना मैदान है श्लेष्म समुद्र के फेनहैं दांत मोतियों की खानि है और रुधिरका तड़ागही मूंगे हैं और हँसना पुकारना उसका शब्द है और नानाप्रकार के ज्ञानों से अगम्य है अश्रुपातही निमक है त्यागकरनेवालाही उससे पार होता है लोक में फिर जन्म लेनाही जलकी तीव्रता है पुत्र बांधव लोग नदी के दोनों तटों पर नगर हैं और अहिंसा और सत्यता नदी की मर्यादा हैं और प्राणों का त्यागनाही तरलतरंग है, वेदांतका प्राप्त करना द्वीप है उस द्वीप में सब जीवों पर दया करना पानी के सोते हैं और कठिनता से प्राप्त होनेवाला मोक्षरूप देश है और बड़वानल नाम अग्नि जीव सम्बन्धहै, हे राजा शुद्ध जितेन्द्री लोग ज्ञानरूप नौका के द्वारा इस समु को तरतेहैं और दुस्तर स्थूल शरीर से निर्मोही होकर अर्थात् देहका अध्यास दूरकरके निर्मल हृदयाकाश में प्राप्त होते हैं वहां उनको ज्ञानका उदय होता है तदनन्तर उसी हृदयाकाश में सूर्य देवता आत्मसम्बन्धी चित्त के द्वारा प्रवेशकरके नाड़ियों के संग अपनी किरणों के परस्पर सम्बन्धसे चौदह भुवन के विषयों को उन शुद्धकर्म्मी सांख्यवालों के ऐसे आधीन करते हैं जैसे कि कमलनाल के छिद्र के द्वारा मुख से आकर्षण कियाहुआ जल उदर में प्रवेश करता है, अर्थात् उसी हृदयाकाश में सूर्य अपनी किरणों से उन सुकृती सांख्यवालों को आकर्षण करता है फिर हे युधिष्ठिर उन यती रागरहित वीर्यवान् तपोधन लोगों को प्रवहनाम वायु ग्रहण करलेता है और उन ब्रह्माण्डरूप विषयों को लोकों में प्राप्त करताहै इसीप्रकार आकाशकी परमगतिरूप हृदयाकाशको भी जाता है फिर उसी में ब्रह्माण्डको प्राप्त करताहै वह वायु सातों वायु से उत्तमहै वही रजोगुण की परमगति अहंकार को पहुँचाता है और अहंकार सतोगुण की परमगति महत्तत्त्वनाम शुद्ध पदार्थ को प्राप्त करताहै और सतोगुण तत्पदार्थ श्रेष्ठ नारायण को प्राप्त कराता है, वह ईश्वर आत्मा के द्वारा शुद्ध परमात्मा को प्राप्त कराता है फिर परमात्मा को पाकर परमात्मारूप स्थान रखनेवाले निर्मल लोग मोक्षके निमित्त समर्थ होते हैं और फिर संसारमें लौटकर नहीं आते हैं हे राजा द्वन्द्व रहित सत्यता में प्रवृत्त सब जीवों में कृपाकरनेवाले महात्मा यतीलोगों की यह उत्तम गति है, युधिष्ठिर ने कहा कि हे निष्पाप

पितामह यतीलोग उस षड़ैश्वर्यवान् परमात्मारूप मोक्ष स्थान को पाकर सर्वज्ञ होकर जन्म मरणआदि को स्मरण करते हैं या नहीं अर्थात् मोक्ष में मुख्य बिज्ञान है या नहीं, इस स्थान पर जो ठीक बचनहै वह जैसाहै वैसाही आप कहनेको योग्य हैं—मोक्ष सिद्धकरनेवाले मंत्रोंको पाकर यह बड़ा दोष प्रकट होता है और जो दूसरे यती उस मुख्य विज्ञान में कर्म्मकर्त्ता होते हैं उस दशा में मैं प्रवृत्ति लक्षणवाले धर्म्मको उत्तम देखताहूं किन्तु संसारमें डूबे हुये मनुष्य को उत्तमज्ञान का होना महादुःखदायी है—भीष्मजी बोले कि हे तात तुमने यहां न्यायके अनुसार बड़ा कठिन प्रश्न किया इस प्रश्न के उत्तर में ज्ञानीलोगोंको भी महामोह होता है इस स्थान में मेरे वर्णन कियेहुये उस उत्तम सिद्धान्त को सुनो जिसमें कपिल मतवाले महात्मा पुरुषों की उत्तम बुद्धि प्रकाशित है हे राजा जीवों के देहमें अपने २ स्थान में नियत इन्द्रियां जिनमें छठामन है अधिकतर दीखती हैं क्योंकि वहसब आत्म विज्ञान में मुख्य कारण हैं वह सूक्ष्म चिदात्मा उन कर्त्तारूप इंद्रियों में बाह्याभ्यन्तरीय ज्ञान को प्रकाश करताहै, अब आत्मा की ज्ञानशक्तिकी पृथक्ता न होना दिखलाने को इन्द्रियों की जड़ता वर्णन करते हैं—आत्मासे पृथक् इन्द्रियां काष्ठके समान नाश को पाती हैं यह निस्संदेह है कि जैसे महा समुद्रमें जल से पृथक् फेन होता है उसीप्रकार आत्मासे पृथक् इंद्रियां हैं—इंद्रियोंकी जड़ताको कहकर आत्मा के स्वयं प्रकाशवान् होने का वर्णन करते हैं कि स्वप्नावस्था में इन्द्रियों के साथ स्वप्न देखनेवाले देहाभिमानी का सूक्ष्म अन्तरात्मा सब बिषयों में ऐसे घूमता है जैसे कि आकाश में बायु- हे भरतबंशी वह न्याय के अनुसार देखताहै और स्पर्श के योग्योंको स्पर्श करता है और जैसे कि पूर्व जाग्रत अवस्थामें देखताथा उसी प्रकार इस स्वप्नावस्था में भी पूर्णता से सब बिषयोंका प्रकाश करता है, इस स्वप्नावस्था में अपना स्वामी न रखनेवाली सब इन्द्रियां अपने २ स्थानपर बुद्धिके अनुसार निर्विष सर्प के समान लय होजाती हैं, वह आत्मा अपने स्थानपर नियत होकर सब इन्द्रियोंकी सूक्ष्म अशेष वृत्तियोंको फैलाकर विचरताहै अर्थात् चैतन्यसे व्याप्त वृत्तियां निस्सन्देह उदयको प्राप्तहोतीहैं अब चैतन्यकी सबस्थानोंमें व्याप्तिको दिखलातेहैं—हे युधिष्ठिर फिर वह आत्मा सत्त्वके और रजोगुण तमोगुण और बुद्धिके सब गुणोंको व्याप्त करके ६१ चित्तके संकल्प आदि गुणोंको आकाशके श्रोत्र आदि गुणोंको और वायु अग्निके गुणोंको भी व्याप्त करके बिचरताहै इसी प्रकार जलके और पृथ्वी के भी गुणोंको व्याप्त करके बिचरताहै, फिरवह ब्रह्म क्षेत्रज्ञोंमें नियत होकर सतोगुण आदि गुणोंको सतचित् आनन्द से व्याप्त करके क्षेत्रज्ञको भी व्याप्त करताहै और अच्छे बुरे कर्मभी इसी जीवको ऐसे

व्याप्त करतेहैं जैसे कि शिष्यलोग गुरू अध्यापक को घेरलेते हैं और चित्त समेत इन्द्रियांभी इसीप्रकार जीवको घेरतीहैं, वहजीव प्रकृतिको अर्थात् कारण की उपाधिको और इन्द्रियों कोभी उल्लंघनकर न्यूनाधिकता से रहित अविनाशी ब्रह्मको प्राप्तहोताहै, हेराजा सब पुण्य पापोंसे रहित निरुपाधि निर्द्वन्द्व निर्गुण उत्तम प्रकृतिसेपरे आत्मारूप नारायण में प्राप्त होनेवाला वह जीव फिर संसार में लौटकर नहीं आताहै, इस स्थानपर समाधि और व्यवस्थान कालके भेद से प्रारब्ध कर्म्म के अनुसार ईश्वराधीन कर्म्म करनेवाले शान्त चित्त जितेन्द्री के पासमन और इन्द्री आतेजातेहैं, इसीप्रकार जीवन्मुक्ती के शुद्ध भावको कहकर कैवल्य वुद्धीको कहतेहैं—हेकुन्तीनन्दन इसप्रकार उपदेश पायाहुआ ज्ञानी मोक्षके अधिकारी गुणग्राही मनुष्यसे थोड़ेही समयमें मोक्षका पानेवाला होजाता है, ऐसे बड़ेज्ञानी सांख्य मतवाले श्रेष्ठ गतिको पातेहैं हे युधिष्ठिर इस ज्ञानमें उत्तम कोई ज्ञाननहीं है, इसप्रकार सांख्य या योगसे शुद्धहोनेवाले त्वंपदार्थ का अद्वैतब्रह्म सिद्धहोने के निमित्त तत्पदार्थका अभेद कहने को तत्पदार्थ के स्वरूपको कहतेहैं—इसमें तुमको सन्देह नहीं होनाचाहिये कि सांख्य ज्ञान उत्तम माना है जिसमें सर्व्वव्यापी चेष्टा रहित पूर्ण सदैव एकरूप सर्वोत्तम ब्रह्मका वर्णनहै उसीको ज्ञानीलोग आदि अन्त मध्यरहित अद्वितीय जगत्के जन्म मरणका कारण सनातन निर्विकार अविनाशी और नित्यकहतेहैं उसीसे संसारकी उत्पत्ति प्रलय और रूपान्तर दशा प्राप्तहोती है उसकी महर्षि लोगोंने शास्त्रों के द्वारा बड़ी भारी प्रशंसा कीहै, सबब्राह्मण देवता और बाहर भीतरसे शुद्धचित्त लोग उस ब्रह्मरूप देव अनन्त अविनाशी सर्व्वोत्तमको अपना ईश्वर जानते हैं इसीप्रकार अच्छे सावधानयोगी और दूरदर्शी सांख्यमतवाले संसार का कर्त्ता और सबका आदि कारण उसको मानतेहैं और उस अरूपका स्वरूप शुद्ध चिन्मात्रहै यह वेदकी श्रुतिहै, उसके होनेको सिद्धकरते हैं—घट आदि वस्तुओंका जोज्ञानहै वही उस अरूप ब्रह्मका भी ज्ञानहै अर्थात् निर्विषयक घट आदि का ज्ञानही परब्रह्महै—हेभरतवंशी तातइसपृथ्वीपर दो प्रकारके जीवहैं अर्थात् स्थावर और जंगम इनमें जंगमजीव उत्तमहै, हे राजा जो ब्रह्मज्ञानियोंमें ज्ञान और वेद शास्त्रोंमें सांख्य और योग बड़ेउत्तमहैं और नानाप्रकारके उत्तमज्ञान पुराणोंमें देखेगये हैं वह सब सांख्यशास्त्र में वर्त्तमान हैं आशय यह है कि सांख्य के विज्ञान से सबका विज्ञान होताहै इसीप्रकार स्थावर जीवों से जंगम अर्थात् चलने फिरनेवाले उत्तमहैं और जंगमोंमेंभी ज्ञानी सर्वोत्तमहै, बड़े इतिहासोंमें जो ज्ञान देखा और अच्छे पुरुषोंसे कियाहुआ जो शास्त्रोंमें सुना और देखा वहसब सांख्य शास्त्रमें वर्त्तमानहै जो उत्तम बल चित्त वृत्तिनिरोध और सूक्ष्म

ज्ञानतपआदि सुखरूपहैं वहसब सांख्य विज्ञानकेही निमित्त नियत कियेगयेहैं, हे राजा उसज्ञानके पूरे होनेपर सांख्य मतवाले पुरुष देवलोकोंको जातेहैं और वहांके भोगोंको भोगकर अपने मनोरथोंको सिद्धकरके वही लोगयतीब्राह्मणों में गिरकर जन्मलेते हैं, और यहांसे शरीर त्यागकर वह सांख्यवाले देवताओं में प्रवेश करते हैं—हेराजा इसीकारण वहब्राह्मण बड़े प्रतिष्ठित और श्रेष्ठ पुरुषों से सेवित सांख्यज्ञानमें अधिक प्रवृत्तहैं इसहेतुसे देवता तत्पदार्थमें प्रवेशकरते हैं, उनका तिरछा चलना अर्थात् पशु पक्षी आदि में जन्मलेना न अधोगति होना देखागयाहै और हे राजा वह ब्राह्मणभी नीचनहीं हैं जो इससांख्यज्ञान में प्रीति करनेवाले हैं, सांख्यज्ञान बहुत बड़ा श्रेष्ठप्राचीन एकरस निर्मल और चित्तरोचक है उस अप्रमेय अशेष सांख्यज्ञानको महात्मा परब्रह्म नारायण भी धारण करतेहैं और श्रुति कहतीहै कि ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मही होताहै, हे नरदेव मैंने यह सिद्धांत वर्णनकिया यह सबविश्व प्राचीन नारायणहीहै वही समय पर संसारको उत्पन्न करताहै वही प्रलयकाल में सबको अपनेमें आपलय कर लेताहै, अब आधेश्लोकमें सांख्यके सब सिद्धान्त का संक्षेप कहते हैं—वह जगत् का अन्तरात्मा नारायण आकाशादि सब सृष्टिको अपने देहमें लय करके आपभी शुद्ध चिन्मात्र में लयहो जाताहै ११३॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेसप्तविंशत्युपरिशततमोऽध्यायः १२७॥

# एकसौअट्ठाईसका अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि त्वंपदार्थ के शोधनेवाले सांख्ययोगको आपने कहा अब उसके पारमार्थिक पदार्थ मात्रको मूलसमेत वर्णन करिये और जो आपने अविनाशी कहावह क्याहै जिसमें कि प्रवेश करके फिर लौटकर नहीं आता है और जो विनाशवान् कहा कि जिसमें जाकर फिर लौट आता है वहक्या है हेसर्वज्ञ पितामह उनविनाशी और अविनाशी का पूर्ण वृत्तान्त सुनना चाहताहूं आपको ऋषि और महात्मा यतीलोग वेदज्ञ और ज्ञानकी खानि वर्णनकरतेहैं, आपकी अवस्थाके थोड़ेही दिनबाकीहैं संसारके प्रकाश करनेवाले उत्तरायण में वर्त्तमान सूर्य्य भगवान् के होनेपर आपइस अनित्य संसारको त्याग परमगति को पावेंगे, आपके जानेपर हमफिर कहांसे ऐसे मोक्षरूप वचनोंको सुनेंगे आपकुरुबंशियोंके दीपकरूप अपने ज्ञानदीपकसे हमलोगोंपर प्रकाशकरतेहो हे कौरव कुलके दीपक स्वर्ग में पहुंचानेवाले राजेन्द्र आपसे सब वृत्तांत सुना चाहताहूं आपके अमृत रूपी वचनोंसे मेरी तृप्ति नहीं होती है, भीष्मजी बोले कि इस स्थानपर मैं तुमसे एकप्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसमें वशिष्ठजी और राजाकराल जनकका प्रश्नोत्तर

है, कि पूर्वसमयमें राजाकराल जनकने उन ऋषियों में श्रेष्ठ आत्मविद्या में कुशल ब्रह्मज्ञानके अनुभवमें निश्चय करनेवाले सूर्य्यके सन्मुख अभिवादन करके मैत्रावरुणके पुत्रवशिष्ठ जीको बैठाहुआ देखकर बड़ीनम्रतासे हाथजोड़कर यह मोक्षसंबंधी प्रश्नकिया, हेब्रह्मन् मैं सनातन परब्रह्म को सुनाचाहताहूं जिससे कि ज्ञानीलोग आवागमनसे छूटजातेहैं, जो वह आनन्द रूप कल्याण मय संसारसे छुटानेवाला अद्वैत ब्रह्म कहाताहै उसीमें यह अनित्य संसार नोन और जलके समान लयहोताहै, बशिष्ठजी बोले कि हे सृष्टि और पृथ्वीके पालनेवाले जैसे कि यह संसार लयहोताहै उसको चित्तसे सुनो यह संसार कालसेभी पूर्णताके साथनाशनहीं होताहै, यह सब अनित्य संसार जितने समय में लयहोताहै उसकी संख्या को कहताहूं कि चारोंयुग बारह हजार दिव्यबर्षोंके होते हैं और चारों युगोंको एककल्प कहते हैं और एक हजार कल्पमें जो समय है वह ब्रह्माजीका एकदिन कहाजाताहै और इतनी ही रात्रिहोती है जिसके अन्तमें संसारके स्वामी शिवजीमहाराज जागते हैं वही उस महाकर्मी सबकी आदिमें पैदाहोनेवाले हिरण्यगर्भको उत्पन्न करते हैं वह शिव अरूप रूपमानाबिश्वरूप है और अणिमा लघिमा प्राप्तिआदि अष्टसिद्धियां उसको सदैव स्वयंसिद्धहोती हैं इसीकारण से उस कालस्वरूप ईश्वर को रूपांतरदशा से रहित चैतन्यरूप कहते हैं उस अविनाशी रूप रहित जानने के योग्य रूपको कहते हैं—वह परमेश्वर सबओरको हाथ मुख चरणनेत्र शिरकान आदिअंग रखनेवाला संसारमें सबकोव्याप्त करके नियत है यही अविनाशी सर्व ऐश्वर्य्यमान हिरण्यगर्भ है यही बुद्धिरूप योगेश्वर ब्रह्मा और अज हैं सांख्यशास्त्र में नामों से बहुत रूपवाले भी कहेजाते हैं वही विचित्ररूप विश्वात्मा और एकाक्षर अर्थात् प्रणवरूप है उसी ने अपनी आत्मा से तीनोंलोकों को उत्पन्न करके अनेक रूप युक्त किया इसी कारण बहुतरूप होनेसे बिश्वरूप कहाजाताहै,रूपांतर प्राप्त करनेवाला बड़ा तेजस्वी यहसूत्रात्मा अपनेको आप प्रकटकरताहै औरवही अहंकार अथवा अहंकारके अभिमानी विराट्को उत्पन्न करताहै, उसके दोप्रकार इसरीति से हैं कि अव्यक्तसेव्यक्त प्रकटहुआ उसको बिद्यासर्ग अर्थात्महान्त समष्टि कहतेहैं और अविद्यासर्ग अहंकारभी उसी से प्रकटहुआ, अवविद्या और अविद्याके लक्षण को कहतेहैं प्रथम उत्पत्ति अक्षरकीहै अक्षर से दूसरी उत्पत्ति हिरण्यगर्भ की और तीसरी विराट्कीहै इनतीनों से एकके बिषयमें अबुद्धि और बुद्धि उत्पन्न हुई, वेद और शास्त्रके अर्थ बिचारनेवाले पंडितों की ओर से वहविद्या और अविद्यानाम असंभव प्रकारसे संभव प्रसिद्धहुई आशय यहहै कि वह तूहै मैं ब्रह्महूं यह आत्माभी ब्रह्महै इस सिद्धी के समान कहना बुद्धि बिद्याहै कोई

मनुष्य रस्सीको सर्पमाने और दूसरा उसको शिक्षाकरे कि यह रस्सीहै इससे उसका भयदूर होजाताहै यहीअबुद्धि विद्याहै हे राजा अहंकारसे उत्पन्न पंचतन्मात्रा स्थूल तत्त्व अपंचीकृत को तीसरी जानो और सब अहंकाररूप सातोंकी राजसी तामसी और प्रत्यक्ष में पंचीकृत सूक्ष्मतत्त्व को चौथाजानो इसको कहतेहैं—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और गंधरूप रस स्पर्श शब्दयह दशोंवर्ग दृष्टि के साथ उत्पन्न होनेवाले प्रकटहुए और पंचज्ञानेन्द्री पंचकर्मेंद्री मन समेत एकसाथ उत्पन्नहुये, यह चौबीस तत्त्वात्मक मूलप्रकृति सब शरीर मात्रों में वर्त्तमानहै, तत्त्वदर्शी ब्राह्मण जिसको पुरुषसे पृथक् जानकर शोच नहीं करतेहैं, हे नरोत्तम देवमनुष्य दैत्यदानव आदि से युक्त तीनोंलोकहैं, सबजीवों में यहसमान नाम देह अर्थात् पिंड ब्रह्माण्ड जानने और देखने के योग्य है यहब्रह्माण्ड पिण्ड हाथीसे लेकर लघुतम चेंटीपर्यंत असंख्यजीवों से भराहुआहै, इनसब समेत यहसंसार प्रतिदिन नाशकोपाताहै इसकारणसे इस भूतात्माको नाशवान्कहते हैं यहअक्षर अर्थात् अविनाशी ब्रह्मऔर जैसे यह जगत् नाशकोपाताहै इसकाभीवर्णनकिया अव्यक्तऔरव्यक्त नाम संसारको मोहरूपवर्णनकिया और जगत्के अव्यक्त और व्यक्तरूप कहनेसे अव्यक्तकाभी नाशकहा इसस्थानमें उसयुक्तिको कहतेहैं--जिसकेकारण बड़ीसूक्ष्मबुद्धि सदैव नाशवान्है इसीकारण उसकास्वामी अव्यक्त भी नाशवान्है यह दृष्टांत तुमसे वर्णनकिया यहीतुम मुझसे पूछतेथे, पचीसवां विष्णु शुद्ध चिन्मात्र रूप तत्त्व नहीं है परन्तु तत्त्वनामहै अर्थात् तत्त्वों में उसकी गणनाहै वह तत्त्वों का अधिष्ठानहोनेसे तत्त्वनाम कहाजाताहै स्वामीपन और सृष्टिपन से नहींकहाता और तत्त्वोंके मध्यवर्ती होनेसे तत्त्वोंके हेतुरूप अज्ञानके कारण ब्रह्मको कर्त्तारूप वर्णनकिया क्योंकि दूसरी दशामें उसका नाश भी सिद्धहोताहै, तत्त्व होनेसे उसमें अधिष्ठातापनभी नहींहै इसको अब वर्णन करतेहैं— जिस हेतुसे नाशवान् कर्त्ता और कर्मको उत्पन्न किया इसीकारण वहमूर्त्ति मूर्तिमान् जगत् प्रधानसे भी प्रकट होताहै वह अधिष्ठाता अव्यक्त चौबीसवां है क्योंकि पचीसवां पुरुष अंगरहित अमूर्त्तिमान् है इसीहेतुसे वह अधिष्ठाता नहींहै काष्ठ पाषाणके समान नाशवान् अव्यक्तभी अधिष्ठाता नहीं होसक्ता इसहेतुसे कहते हैं, चैतन्यकी छायासेसंयुक्त वह चौबीसवां अव्यक्त सबदेहोंमें हृदयस्थ अधिष्ठाताहै और उपाधि रहित प्राचीन चैतन्य प्रकृतिके द्वारा मूर्त्तिमान् होजाताहै वास्तवमें वह अमूर्त्तिमान् है, और उत्पत्ति नाशरूपधर्मवाली प्रकृतिसे वह उत्पत्ति और नाशवान्होताहै वहीनिर्गुण सगुणहोकर सदैवविषयों में ऐसे प्रवृत्त होताहै, जैसे कि दर्पणमें मुखप्रतिबिम्बरूप होता है, अबतवग पदार्थको वर्णन करते हैं, इसप्रकार उत्पत्तिनाशका जाननेवाला यहमहान्

आत्मा अज्ञान और अविद्यासे संयुक्त होके विपरीत दशाको प्राप्त होनेके पीछे यहमानताहै कि मैंहूं अर्थात् देहाभिमानी होताहै, सत गुण रजोगुण तमोगुण में संयुक्तहोकर अज्ञानियोंके सत्संगसे उन उनयोनियों से ऐक्यता प्राप्तकरता है और संग में रहने से अपने को पृथक् नहीं मानता है और कहता है कि मैं अमुकका पुत्रहूं अमुक मेरी जात है यह अपने गुणों परही बर्त्ताव करताहै अर्थात् ज्ञाति के अभिमान आदिको त्यागनहीं करताहै, तमोगुण से नानाप्रकार के काम क्रोधादिकोंको प्राप्त करताहै इसीप्रकार रजोगुणसे राजस भाव प्रवृत्ति आदिको और सतोगुणसे सात्त्विक भाव प्रकाश आदिकोपातेहैं इन तीनों भावोंका रूप सतोगुण आदिके क्रमसे श्वेतरक्त कृष्णहै यह प्रकृतिसे संबंध रखनेवाले तीनोंरूप अग्नि जल पृथ्वी से संबंध रखनेवाले पूर्वोक्तही रंग केहैं, तमोगुणी नरकको जातेहैं रजोगुणी मनुष्य शरीर पातेहैं और सुख के भागी सात्त्विकी पुरुष देवलोकको जाते हैं केवल पापात्माजीव पशुपक्षी आदि के जन्मको और पुण्य पाप दोनों के योगसे मनुष्य योनि को और केवल पुण्यसे देवता रूपकोपाते हैं इसप्रकार जो यह पच्चीसवां आत्मा है उसमाया युक्तको अज्ञानसे नाशवान् अथवा विपरीत दशा प्राप्त करनेवाला कहा वह ज्ञानसे प्रकाश करताहै, आशय यहहै कि तत्पदार्थनेही अज्ञान से जीवभाव को पाया वह ज्ञानसे मुक्तहोताहै इसवर्णनसे तत्त्वमसि महावाक्य के अर्थ द्वारा जीव और परब्रह्मकी ऐक्यता सिद्धहोती है ४६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्व्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेअष्टाविंशत्युपरिशततमोऽध्यायः १२८ ॥

# एकसोउन्तीसका अध्याय ॥

वशिष्ठजीने कहा कि प्रकृतिमें मिलकर पुरुष उसीके अनुसारकर्म करताहै यहऊपर वर्णन कियागया अब दो अध्यायोंमें उसका ब्योरेवार वर्णन करते हैं कि जैसे ज्ञान न होनेसे अज्ञानके समान कर्म्म करते हैं इसीप्रकार एक देहसे हज़ारोंदेह प्राप्त करतेहैं, कर्मोगुणों के साथ मिलने से गुणोंकी सामर्थ्य से हजारों तिर्य्यग्योनि और देवयोनियों में भी प्राप्तहोताहै, मनुष्य शरीरके द्वारा स्वर्गको जाताहै और स्वर्ग से क्षीणपुण्य होकर पृथ्वीपर मनुष्य का जन्मपाताहै और मनुष्य शरीरसे अपार नरकोंको पाताहै, जैसे कि रेशमका कीड़ाघर बनाताहै और सूत्र वा तन्तुओंकी रस्सियोंसे सदैव अपनेको बन्द करताहै इसीप्रकार यह निर्गुण आत्मा अपनेको गुणों से बँधाताहै यह सुख दुःखसे रहित उनउन योनियों में सुख दुःखकोपाताहै जैसे कि शिरपीड़ा, नेत्र पीड़ा, दांतपीड़ा, गलग्रह, जलोदर, तृषारोग, ज्वर, गण्डरोग, विशूचिका, कर्ण- पीड़ा, कुष्ठ, मन्दाग्नि, कास, श्वास, अपस्मार आदि अनेक रोगों में महा

कष्टोंको पाते हैं, मनुष्य अपनेको समझताहै कि मैं रोगीहूं और देहों के मध्य में अनेक प्रकारके सुख दुःखआदि प्राकृत द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं उनकोभी यह जीव अपनेही देह सम्बन्धी जानताहै अर्थात् कहताहै कि मैं दुःखीहूं रोगीहूं उसीप्रकार कभी हजारों पशुपक्षियोंकी योनियों में और देवताओंमें भी बड़े अहंकारसे अपने उत्तम कर्मोंका वर्णन करता है, श्वेत या मलिन पोशाक रखनेवाला और पृथ्वीपर सोनेवाला और मेढ़कके समानहाथ पैरोंका सकोड़नेवाला शिरके बलसे सोनेवाला और बीर आसनपर बैठनेवाला बस्त्रधारण कर मैदान में सोना और नियतहोना ईंट कांटोंपर सोना राख पृथ्वी पलँग आदिपर सोना और बीरोंके स्थान जल कीच आदिमें बैठना और नाना प्रकारकी शय्याओंपर सोना और फलकी आशायुक्तहोना अलसी के बलकल या सनसे बनाहुआ बस्त्र और कालेमृग चर्मका धारण करनेवाला लँगोटी आदिका पहरना भोजपत्र या छालको धारणकरना शाल्मली आदि से उत्पन्न बस्त्रोंका पहरना रेशमी या सूत्र बस्त्रों से निर्वाह करनेवाला और चीथड़ोंका धारण करनेवाला ज्ञानीपुरुष बहुतसे उत्तम भोजन बस्त्र और अनेक रत्नादिकोंको चाहताहै, एकरात्रिके पीछे एकबार भोजनकरना चौथे आठवें औरछठवेंसमयपर भोजनकर और छठें आठवें दिन भोजन करनेवाला वा बारहवें दिनभोजन और एकमहीनेतक व्रतकरना फलमूलभोक्ता वायुजल दहीखल भोजन करनेवाला गोमूत्र पीनेवाला सागफूल सेवलऔरचावलके माड़से निर्वाह करनेवाला सूखे वृक्षोंके पत्र पेड़से गिरेहुये फल आदि से उदर भरताहुआमनुष्य अनेककृच्छ्र चान्द्रायणादिव्रतोंका सेवनकरताहै औरचान्द्रायणनाम व्रतोंको धर्मके नानाप्रकारके मार्गोंसे आचरण करताहै और पाशुपतिआदि अनेकयज्ञके पाखण्डोंको अभ्यासकरताहै और पर्व्वतों या एकांत में नानाप्रकारके नियम तप जप यज्ञआदिको बुद्धिमें प्रवृत्तकरताहै इसीप्रकार ब्राह्मण क्षत्री बैश्य शूद्रआदिके धर्म्म और उनके व्यापार मार्गको और दुःखी अन्धे कृपलोगोंको अनेकप्रकारकेदान और अनेकगुणोंको वहआत्मा अज्ञानता से अपनेसे सम्बंधकरताहै, इसीप्रकार तीनोंप्रकारके गुण और धर्म्म अर्थ काममोक्ष इनचारोंकोभी वहआत्मा प्रकृतिकी प्रेरणासे अपनेसे संबंध करताहै स्वधावषट् स्वाहा नमस्कार यज्ञकराना वेदपढ़ाना दानलेना देना यज्ञकरना वेदपढ़ना इत्यादि सबकर्म्म और जन्म मृत्युआदि शुभ अशुभ कर्म्म इनसबको प्रकृति रूपामाया उत्पन्न और नाशकरतीहै फिर अकेलीमाया इनसब गुणोंको कुछदिनके पीछे आपनिगलकर नियतहोतीहै जैसेकि सूर्य्य अपनीकिरण समूहको समय समयपर प्रकट करके व्याप्त करताहै इसीप्रकार यह आत्मा बारंबार पूर्व्व आत्मामें कल्पित हृदयके प्यारे नानाप्रकारके गुणोंको क्रीड़ाके नि-

मित्त मानलेताहै इसप्रकार क्रियामार्गमें प्रीति करनेवाला त्रिगुणाधीश आत्मा उत्पत्ति नाशरूप धर्मवाली क्रियारूप त्रिगुणात्मक प्रकृतिको बहुतसे रूपोंमें बदलताहै और क्रियामार्गमें संयुक्त होकर क्रियाको मानताहै कि वहउसी प्रकारकाहै अर्थात् अवश्य करनेके योग्यहै, हे समर्थ युधिष्ठिर यहसब संसार प्रकृतिसे अन्धा कियागया है और रजोगुण तमोगुणमे अनेक प्रकार करके भराहुआहै, इस प्रकारसे यहसुख दुःखादि दगड सदैवसे वर्त्तमानहैं और मुझ सेही उत्पन्न होकर मेरीही ओर दौड़तेहैं—२६ हेराजा यहसब सदैवतरने के योग्यहैं इसीप्रकार यहजीव ज्ञानसे मानताहै कि सबउत्तम कर्मभी २७ मुझ देव लोकमें भीप्राप्त होनेवाले को भोगनेके योग्यहैं औरइन बुरेभले कर्मों के फल को इसलोकमेंभी भोगूंगा २८ तो मुझे सुखही उत्पन्न करना योग्यहै एकबार सुख कर्म्म करके जबतक उसका अन्तहो तबतक वह मुझे प्रत्येक जन्मों में प्राप्तहोगा, इसलोकमें कर्म्म से मुझको अत्यन्त दुःखभीहोगा मनुष्यका शरीरपाना और नरक में भी पड़ना महादुःखहै नरक भोगकर फिरभी मनुष्य देहको मैं पाऊंगा मनुष्य देहसे देवभाव देवभावसे फिर नरदेहको पाऊंगा, मनुष्य देहसे क्रमपूर्वक नरकमें जाताहै आत्माके सत्चित् आनंदात्मक गुणसे संयुक्त जीवात्मा सदैव इसबातको जानताहै, इसकारण देवलोक नरलोक और नरकमें भी जाताहै और ममतामें फँसकर हजारों संसारीजन्मोंतक नाशवान् मूर्त्तियोंमें प्राप्तहोकर उन्हीं लोकोंमें घूमताहै, जो पुरुष इस प्रकारसे अच्छेबुरे कर्म्म को करता है जैसेकि स्त्री पुरुषसे सन्तान उत्पन्नहो यद्यपि इसीप्रकार प्रकृति पुरुषसेभी सबकाम होतेहैं तथापि आगेके वर्णनसे कर्त्तापन प्रकृति मेंही निश्चय होताहै क्योंकि प्रकृति विकारवानहै और पुरुष निर्विकार है, इसबातको सिद्ध करतेहैं—वहशरीरवान्जीव इसप्रकारसे तीनोंलोकोंमें इच्छानुसार फलकोपाताहै सबशुभअशुभ कर्मोंकी करनेवालीप्रकृतिहीहै और वहीप्रकृति जोकिइच्छानुसारतीनोंलोकोंमें चेष्टाकरतीहै वह पशु पक्षी नरदेव आदि योनियोंके द्वारा इसलोक परलोकमें उसकर्म फलको भोगतीहै इसस्थानमें तीनों स्थानों को प्रकृतिसम्बन्धीही जाने, प्रकृतिका कोईचिह्न नहीं है उसके महत्तत्त्वादि कार्य्यों से उसको अनुमान करतेहैं इसीप्रकार चैतन्य आत्मा को चिदाभासके चिह्नोंसे अनुमान करते हैं यहसांख्य मतवाले महापुरुष इस प्रकारसे मानतेहैं, यह जीव अष्टपुरीवाले शरीरको जोकि प्रकृतिसे संयुक्त मोक्षप्राप्त होनेतक निर्विकारहै पाकरउसके इन्द्री रूपी द्वारपर नियत होकर अपने कर्मकेद्वारा उसको आत्मामें मानताहै यहसब ज्ञानेन्द्री और कर्मेन्द्री अपने २ विषयोंके साथगुणों में वर्त्तमान होतीहैं, यहसब इन्द्रीरूप मैंहींहूं और यहसब मुझमें हैं इसप्रकार अपने को इन्द्रियों से पृथक् मानताहै और विना

घायल अपनेको घायलमानताहै और लिंगशरीरसे पृथक् आत्माको उक्तशरीरवान् मानताहै और अक्षय होकर अपनी मृत्युको मानताहै बुद्धिसे पृथक् आत्माको बुद्धिरूप मानताहै और तुच्छशरीरआदिको आत्मतत्त्व समझताहै और मृत्युरहित अपनेको मृत्युरूप जानताहै और चेष्टारहितहोकर अपने को चेष्टावान्मानताहै और क्षेत्ररहितहोकर अपनेको क्षेत्रवान्जानताहै औरकर्तृत्व गुणसे हीन होकर सृष्टिको आत्मासंबंधी मानताहै, तप से असम्बन्धी होकर आत्माको तपस्वी मानताहै और सबस्थानोंमें वर्त्तमान होने से निश्चेष्टहोकर अपनीगतिको मानताहै और अजन्माहोकर आत्माको जन्मलेनेवालामानता है एकतासे निर्भयहोकरभी आत्माकेभयको मानताहै और अविनाशी होकर भी आत्माको नाशवान् मानता है कारण यहहै कि अज्ञानीहै ५४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेएकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १२९ ॥

# एकसौतीसका अध्याय ॥

बशिष्ठजी बोले कि इसप्रकार अज्ञान और अज्ञानी मनुष्यों के संयोगी होनेसे हजारों नाशवान् जन्मोंको पाताहै, यहपुरुष सोलह कला रखनेवाला है इनसोलह कलाओंमें सोलहवां अविनाशी पुरुषहै उसप्रकाशरूप चैतन्य कलाके द्वारा अनेक पशुपक्षी मनुष्य देवयोनियों आदिमें देवलोक पर्य्यन्त हजारों नाशवान् स्थानोंको पाताहै सब जीवों के चन्द्रमा के समान पन्द्रह कलाहैं पञ्चतत्त्व पञ्चज्ञानेन्द्री पञ्चकर्मेन्द्री फिर यह अज्ञानी उनकलाओं में बुद्धि लगानेसे हजारों जन्मोंमें प्राप्त कियाजाताहै पन्द्रहवीं कलामूल प्रकृति है वह चिदात्मासे चैतन्य होतीहै इस चन्द्रमारूप अविनाशी चिदात्मा को सदैव सोलहवीं कलाजानो, अज्ञानी मनुष्य बारम्बार मूल प्रकृतिरूप पन्द्रहवीं कलामें जन्म लेताहै उसकी सोलहवीं कला सच्चिदानन्द रूपहै उस में आश्रित होकर जीवचेष्टा करते हैं इसीहेतुसे फिर जन्महोताहै, जोसोलहवीं सूक्ष्म कला है उसको चन्द्रमा अर्थात् अमृतरूप ब्रह्मजानो वह इन्द्रियों से पोषण नहीं कियाजाताहै किन्तु अपनी सत्तास्फूर्त्ति देनेसे उन इन्द्रियों का पोषण करता है, हे राजेन्द्र इस सोलहवीं चैतन्यात्मक कलाको अविनाशी मानकर यह सब ऐसे उत्पन्न होताहै जैसे कि रस्सीकी विद्यमानतामें सर्पका होना, वहसोलहवीं प्रकृति इसप्रत्यक्ष संसारकी उत्पत्ति और लयस्थान जानी जाती है, उससंसारके नाशहोने से अर्थात् अहंब्रह्माऽस्मि इसमहावाक्य के अनुभवसे मोक्षकही जातीहै दूसरा अर्थ यहहै कि इसपन्द्रहवीं कला नाम प्रकृतिको नाशकिये विना जन्म लेताहै वही उसकी उत्पत्ति और लयस्थान है उसके नाशहोनेसे मोक्ष कहीजातीहै, जोधाम और मोक्षनाम शब्द से

कहाजाताहै वही आनन्दरूप सोलह कला रखनेवाला सब स्थावर जंगम का पिण्डरूप ब्रह्माण्डहै जोपुरुष पन्द्रहवीं प्रकृतिनाम से संयुक्त शरीरको इस प्रकार माननेवाला है कि यह मेराहै वह मनुष्य उसी में घूमाकरताहै अर्थात् देहसे नहींछूटता है आशय यहहै कि वेदमें लिखाहै कि निश्चयकरके आनंद सेही सब जीव उत्पन्नहोते हैं और आनन्दहीसे जीवते हैं और उसी में प्रवेश करते हैं, जो इसप्रकारसे माननेवाला है उसका वर्णन करतेहैं—पचीसवां बड़ा आत्मा है उस निर्मल अत्यन्त शुद्धके न जानने और शुद्धअशुद्धके सेवन करनेसे वह शुद्धआत्मा वैसाही अशुद्ध होजाताहै इसीप्रकार ज्ञानी भी अशुद्ध के सेवनसे अज्ञान होजाताहै हे राजा अच्छाज्ञानीभी इसीप्रकार जानने के योग्यहै और त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके सेवनसे तीनोंगुण युक्तहोताहै ११ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेत्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १३० ॥

# एकसौ इकतीसका अध्याय ॥

राजाजनक बोले कि हे महाराज आपनेकहा कि प्रकृतिके नाशसे मोक्ष होतीहै इसमें मुझको शंकाहै कि जो प्रकृति और पुरुष समानहैं फिर प्रकृति की निवृत्ति कैसे होसक्तीहै हे भगवन् जैसे प्रकृतिपुरुष दोनोंका योगसम्बन्ध है इसीप्रकार स्त्री पुरुषकाभी सम्बन्ध योग कहाजाताहै, इससंसारमें स्त्री बिना पुरुषके जैसे गर्भवती नहीं होसक्तीहै इसीप्रकार पुरुषभी बिना स्त्री के गर्भ नियत नहीं करसक्ताहै, परस्पर सम्बन्धहोनेसे और परस्पर गुणोंमें संयोगहोने से सबयोनियोंमें गर्भ उत्पन्न होता है ऋतुकालमें संभोगहोने और परस्पर गुणसंयोगहोनेसे गर्भहोताहै इसकादृष्टान्त कहताहूं और इसलोकमें माता पिताके जो गुणहैं उनकोभी कहताहूं हे ब्राह्मण हाड़ नाड़ी और मस्तकको तो पिताका अंश और चर्म मांस रुधिर को माताका अंश सुनते हैं हे महा पुरुष ऐसा वर्णन वेदशास्त्रोंमें देखा पढ़ागया है, अपने वेद और शास्त्रों में जो कहाहुआ है वही प्रमाण है वह वेद और शास्त्र दोनों सनातन हैं और प्रमाण हैं, इसी प्रकार प्रकृतिपुरुष दोनोंके परस्पर गुणसंयोग और परस्परा- श्रित होने से परस्पर सम्बन्धवान् हैं इसकारण मैं देखताहूं और विचारकरता हूं कि मोक्षधर्म वर्त्तमान नहींहै या मोक्षके साक्षात्कार होनेमें कोई दृष्टान्त है इसको मूलसमेत आप वर्णन कीजिये क्योंकि आप सदैव प्रत्यक्षके देखने वाले हैं, और हममोक्षके चाहनेवालेहैं और उसको चाहतेहैं जिससे कि दुःख दूरहोजाताहै और जो शरीर रहित सदैव जरा इच्छारहित ईश्वरसेभी उत्तम है, वशिष्ठजी बोले जो यह वेदशास्त्रका दृष्टान्त आपने वर्णनकिया यह ऐसा

ही है जैसा कि आप समझरहे हैं, हे राजा तुमने वेद और शास्त्र दोनों अच्छे प्रकार से जाने हैं परन्तु जो उनका मुख्यसिद्धान्त है उसको नहीं जानतेहो जो पुरुष वेदशास्त्रके ग्रन्थोंको पढ़ाहै और उसके मुख्य आशय को नहीं जानताहै उसका वह सब पढ़ाहुआ निष्फल है अर्थात् जो ग्रन्थ के आशय को नहींजानता वह केवल उसग्रन्थका भार उठानेवाला है और जो ग्रन्थके मुख्य आशयका जाननेवालाहै उसका ग्रन्थपढ़ना सफलहै, ग्रन्थका आशय पूछाहुआ वैसाही कहने को योग्य होताहै तब वह मुख्य प्रयोजनके अनुसार उसकेआशयको पाताहै जो स्थूल बुद्धिवाला पुरुष पण्डितों की सभामें ग्रंथके प्रयोजन को वर्णन न करसके तो वह निर्बुद्धी ग्रन्थको खोलकर कैसे कहसकैगा,ज्ञानरहित चित्तवाला मनुष्य जिसहेतुसे इसस्पष्टबातकोभी मुख्यतासे नहीं कहसक्ताहै वह आत्मज्ञानी भी होकर हास्यके योग्य गिनाजाता है, हे राजेन्द्र इसी कारण अब चित्तदेकर श्रवणकरो जैसे कि यहबात सांख्ययोग में आत्मज्ञानियों के मध्यमें ठीकदृष्ट पड़ती है वह मैं कहताहूं, जिसको योगीजन देखते हैं उसीको सांख्य मतवाले प्राप्त करते हैं, सांख्य और योग यह दोनों एकही हैं जो ऐसा विचार से देखता है वही बुद्धिमान् है हे तात चर्म मांस रुधिर मज्जा पित्त और नसें यहसब इन्द्रियोंको अधिक रखनेवाले हैं यह तुमने मुझसे कहासो यहसब द्वैतसे उत्पन्नहोते हैं जैसे कि द्रव्यसे द्रव्य की उत्पत्ति होती है उसीप्रकार इन्द्री से इन्द्री शरीर से शरीर बीज से बीजको प्राप्त करते हैं तात्पर्य्य यह है कि समान जातिसे उसी जातिकी उत्पत्ति होती है और से और नहीं होसक्ती और प्रकृति पुरुषके भिन्नस्वभाव होनेसेयोग होना असंभवहै, उस इन्द्री रहित निर्बीजरूप मायाके आडम्बरसे पृथक् अशरीरी महात्मा पुरुषके गुण निर्गुण होनेसे कैसेहोसक्तेहैं तो यह उत्पत्ति किसप्रकार से है इसको कहतेहैं—आकाश आदिगुण इस त्रिगुणात्मक प्रकृतिमेंही उत्पन्न होतेहैं और उसीमें लयहोते हैं इसीप्रकार गुणप्रकृतिसे उत्पन्न होतेहैं और प्रकृतिमें ही लयहोते हैं फिर उस असहाय प्रकृति के सृष्टि संबंधी कर्तृत्वगुण कैसे होसक्तेहैं इस शंकाको दृष्टान्तसे सिद्धकरते हैं किचर्म मांस रुधिर मज्जा पित्तभेजा हड्डी नसें इनप्रकृतिसे संबन्ध रखनेवाली आठों वस्तुओंको वीर्य्य संबंधीजानो,जैसेकिबिना माताकेभी द्रोणाचार्य्यके शरीरमें केवल वीर्य्यहीसे त्वक् मज्जा मांसादि उत्पन्नहुये तो दर्पण के समान दूसरेके प्रतिबिम्बको प्राप्त करनेवाली प्रकृतिसे यहसब संसार उत्पन्न होताहै, पुरुषके अन्तःकरण चैतन्य का प्रतिबिम्ब जीव और आकाशादि अपुरुष आत्माको प्राप्तकरानेवाले प्रमाता प्रमाण प्रमेय यहतीनों प्रकृतिसे संबन्ध रखनेवाले कहेपरन्तु वहचिदात्मा पुरुष अपुरुष नहींकहाजाताहै अर्थात् वह चिदात्मा जीव संसारसे पृथक्है, संबंधन

होने में प्रकृति पुरुष का लिंगी वा लिंगरूपहोना कैसे होसक्ताहै इसशंका को कहते हैं—वह प्रकृति अलिंगी अर्थात् चिह्न रहित पुरुषको पाकर अपने देह से उत्पन्न महत्तत्त्वादिक चिह्नों से उसीप्रकार विदित होती है जैसे कि बिना रूपकी फसलें सदैव फूल और फलों से विदित होती हैं—हे तात इसी प्रकार शुद्ध चिन्मात्र भी अनुमानसे जानाजाता है जो कि पचीसवां है और चिदाभासों में व्याप्त आदि अन्त रहित है अर्थात् समय के चक्र से पृथक् अत्यन्त द्वेष रहित सबका द्रष्टाहै और उपाधियों से भिन्न सीपी में मिथ्या चांदी के समान केवल अभिमान करने से शरीर आदि रूप धारण करने वालों में कहाजाता है कि यह इन्द्री आदिका समूह आत्मा है, जबयह जीवात्मा प्रकृति संबंधी इनगुणों का नाश करता है अथवा (पाठान्तरसे) इन गुणों को श्रवण मनन निदिध्यासन से विचारकर जानता है तब शरीरादिके आत्मा जानने के भ्रमको दूरकरके उस परब्रह्म को देखताहै, सांख्ययोग और सब तांत्रिकों ने जिस परब्रह्मको जड़रूप अहंकारके त्यागनेसे ज्ञात होनेवाला महाज्ञानी और बुद्धिसे परे वर्णन किया है और अज्ञात अथवा गुणों से गुप्त अन्तर्य्यामी गुण संबंध से रहित ईश्वर प्राचीन अधिष्ठाता भी कहा है ३२ सांख्ययोग में कुशल मोक्ष के चाहनेवाले ज्ञानीलोग प्रकृति को और उसके महत्तत्त्वादिक गुणों को विचारकर जिसको पचीसवां कहते हैं, जब बाल्यावस्था और जाग्रत् अवस्था आदि जन्म से भयभीत ज्ञानी पुरुष निराकार ज्ञान स्वरूप परमात्मा को जानते हैं तब उस ब्रह्मको प्राप्त करते हैं अर्थात् वह उपाधि रहित ब्रह्मन् जानाहुआ जीव है और जानाहुआ ब्रह्म है हे राजा यह जीव ईश्वरकी एकताका सिद्ध करनेवाले शास्त्रज्ञ ज्ञानी की ओरसे अच्छे प्रकारसे पृथक् वर्णन कियागया और अच्छे प्रकार जीव ब्रह्मकी ऐक्यता का न देखनाही अज्ञानीकी ओरसे अनुत्तम शास्त्र पृथक् कहागया, इस जड़ चैतन्यका सिद्ध करनेवाला शास्त्र इस प्रकारसे वर्णन कियागया कि अपनाही मत अच्छा है दूसरेका अच्छानहीं है—वादियों के भ्रमोंको कहकर अपने सिद्धांत को कहते हैं—ऐक्यता को अविनाशी और द्वैतताको विनाशवान् कहाजाता है यह अनुभव जानके योग्य समझकर इसका वर्णन करते हैं—जब रस्सी में सर्प के समान ध्यान चिदाभासके साथ पचीस तत्त्वों में अच्छे प्रकारसे बिचार करना होता है तब उनके अधिष्ठानसे पचीसवें आत्मा को साक्षात्कार करता है तब ऐक्यता और द्वैतता शास्त्र और अशास्त्रकी सत्य होती है, संसार तत्त्व और असंसार तत्त्वका यह अनुभव पृथक् है ज्ञानियोंने पचीस प्रकारके तत्त्वोंकी उत्पत्ति को संसार कहा है और उस अतत्त्वको पचीसों तत्त्वों से उत्तमअनुभव कहाहै क्योंकि सृष्टि के समूह चारोंओर घूमनेवाले

हैं औरतत्त्वोंका तत्त्व पच्चीसवां परमात्मा सदैव एकरूप औरअबिनाशीहै ३६॥
इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे एकत्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १३१ ॥

# एकसौबत्तीसका अध्याय ॥

जनकबोले कि हे महर्षि आपने जो कहा कि एकता विनाश रहित है और दो आदि अनेक नाशवान् हैं मैं इनदोनों के इस सिद्धांत को अशुद्ध जानताहूं क्योंकि एकतामें बंधन और मोक्ष नहीं है और अनेकता में आत्मा का नाश सिद्ध है हे राजा इसी प्रकार से ज्ञानी और अज्ञानी से जाने हुये इस आत्मतत्त्व को सूक्ष्म बुद्धिसे देखताहूं हे निष्पाप तुमने जो अबिनाशी होने का कारण एकता और नाश होनेका कारण अनेकता बर्णनकी वहभी मेरी अस्थिर बुद्धि से नष्टताको प्राप्तहुआ इस हेतुसे इसएकता और अनेकता के शास्त्रको और ब्रह्म प्रतिब्रह्म और प्रधान आदि ब्रह्मको और जड़ चैतन्य के आत्मारूप जीवको सुना चाहताहूं, हे भगवन् बिद्या जानने के योग्य आत्माको प्राप्त करनेवाली और अबिद्या आत्माकी गुप्त करनेवाली है इसी प्रकार अक्षर अबिनाशी और क्षर नाशवान् है और सांख्यतत्त्वों का विवेक और योग चित्तकी वृत्तिका रोकना है और भेद अभेद अर्थात् एकता और अनेकता यह सबभी प्रधानरूप सांख्य और योग के बर्णन से सब प्रश्नों का उत्तर होजाता है इस निमित्त योगका बर्णन करने को बशिष्ठजी बोले कि हेमहाराज तुमजो यहपूछतेहो इसको मैं अच्छेप्रकारसे कहूंगा अबयोगके कर्मों को मैं पृथक्ता से बर्णनकरताहूं, योगियों के शास्त्रमें करनेकेयोग्य ध्यानहीपरम सामर्थ्यहै उस ध्यानको भी बिद्या जाननेवालोंने दो प्रकार का कहाहै एकतो मनकी एकाग्रता और दूसरा प्राणायाम है फिर प्राणायाम भी दो प्रकारका है अर्थात् संगर्भ और निर्गर्भ उनमें मन संबंधी मुख्यहै, हे राजा मूत्र पुरीषका त्याग और भोजन इनतीनों समयपर योगका अनुष्ठान नहींकरे इनके सिवाय और समय में मन बुद्धिको लगानेवाला योगी आत्माको आत्मा में मिलावे फिर वह योगी मनसमेत इन्द्रियोंको बिषयों से रोककर चित्तसे शुद्धहो उन बाईस चेष्टाओंसे जो कि मनरूपी घोड़ेके चाबक समान हैं उस अजर अमर जीवनमुक्त जीवको जिसको ज्ञानीलोग तत्त्वरूप कहतेहैं उस पचीसवें परमात्मा में जो कि चौबीस तत्त्वोंसे उत्तमहै प्रवेश करनेकी चेष्टाकरे उनबाईस चेष्टाओंकेद्वारा आत्मा सदैव जानने के योग्य है जिसकामनकामादेमें आसक्तनहींहै उसका ब्रतयोगनामहै यही निश्चयहै इसमेंकभी संदेहनहींहै,सब संयोगसेरहित अल्पाहारी जितेन्द्रीयोगी पहली पिछली रात्रिमें मनको आत्मा मेंतदाकारकरे, हेराजा जनक मनकेद्वारा इन्द्रियोंके समूहोंको वशकरे अर्थात्

इधर उधर चलने न दे और मनको बुद्धिसे पाषाणके समान निश्चल करके स्तंभरूप स्थिरता प्राप्तकरके पर्वतके समान अचल होजाय तब शास्त्रकेप्रयोजनके जाननेवाले ज्ञानी योगी मिलनेकी दशापर ब्रह्ममें बर्त्तमान कहते हैं अब योगीके अनुभवको कहतेहैं योगदशामें वहयोगी स्वाद सुनना देखना स्पर्श आदि कोईबातनहीं करताहै और उसके चित्तमें कोई संकल्प विकल्पभी नहीं होता है न किसी प्रकारका अभिमान करता है और काष्ठ पाषाण के समान स्थिरहोकर संसार के व्यवहारों को भूलजाता है उस योगीको ज्ञानी योगीलोग अपने शुद्धस्वरूपसे मिलाहुआ कहतेहैं, वह बुद्धि आदि से पृथक् और व्यापक होने से निश्चेष्ट योगी इसप्रकारसे प्रकाशकरताहै जैसे कि वायु रहित स्थान में देदीप्यमान दीपक होताहै और अखंड चिन्मात्र रूपहोने में उसकी गतिशेष नहीं रहती, जिससमय अनुभव के बलसे यह कहता है कि जो हृदयमें नियत अन्तर्य्यामी ईश्वरहै वह मैंहीहूं तब आत्माको साक्षात्कार करे हेतात मुझसे मनुष्योंसे वह जाननेके योग्यहै दूसरा साफ अर्थयहहै कि जब सब वृत्तियों के निरोध से निराकार होनेके कारण आत्मा के न जानने योग्य होने से यहनहीं कहता है कि वह जानने के योग्य जानना चाहिये अर्थात् परोक्ष ज्ञानसे बढ़कर अपरोक्ष ज्ञानसे मिलगयाहै तब वह आत्मज्ञानी कहाजाता है, आत्मा में आत्मा इसरीतिसे दृष्ट पड़ता है जैसे निर्धूम अग्नि और आकाशमें प्रकाशमान सूर्य्य दीखताहै,जो धैर्य्यवान् बुद्धिमान् वेदांतके ज्ञाता महात्मा ब्राह्मण हैं वह उस उत्पत्ति स्थान रहित अबिनाशी ब्रह्मको देखते हैं, उसीको सूक्ष्म से सूक्ष्म बृहत् से बृहत कहते हैं वह अचल तत्त्व सब जीवों में नियत होकर भी दृष्टनहीं पड़ताहै जबवह दृष्टही नहीं पड़ता है तो उसका योगकैसे होसक्ता है इसको कहताहूं—हे तात महान्ध कारके अन्त में बर्त्तमान वह सृष्टिकास्वामी बुद्धिरूप धनसेपूर्ण सबसेपरे बर्त्तमान उस पुरुषके चित्तरूपी दीपकसे दिखाई देताहै, सर्व वेदपारग ब्राह्मणों से वह अन्धकारका नाशकर्त्ता चिदात्मा प्रकाशमान सूत्रात्मा से पृथक् उपाधि रहित ब्रह्म कहा गयाहै,इसप्रकार उसजरामृत्यु रहित साक्षीरूप उत्तम आत्माको देखताहै यही योगियों का योग कहाजाताहै, हेतात मैंने इतना योगशास्त्र सिद्धांतके साथ तुझसे बर्णन किया अब उससांख्य योगको कहताहूं जिसमें न्यायरूपी रस्सी और सर्पके समान पिछले पिछले कार्य्यको पहले पहलेमें लयकरनेसे साक्षात्कार होता है २९ हे राजेन्द्र प्रकृति वादियों ने प्रकृतिकोही अव्यक्त बर्णन कियाहै उसीसे महत्तत्त्वहुआ जो कि प्रकृतिसे दूसरा है तीसरा अहंकार महत्तत्त्वसे उत्पन्न होता है यहहमने सुनाहै सांख्य के सिद्धहोने वाले आत्माको देखनेवाले पुरुषोंने पंचतत्त्व अर्थात् पंचतन्मात्रा नामसूक्ष्म तत्त्वको अहंकारसे

उत्पन्न होनेवाला कहाहै यह आठप्रकृतिहैं और उनके विकृतरूप सोलहहैं और अपने२ विकारोंको प्रकटकरनेवाली ग्यारह इंद्रियां पांचसूक्ष्मतत्त्व जो कि विशेष नामकेहजातेहैं, सांख्यशास्त्रके आशय जाननेवाले और सांख्यमार्गमेंही सदैवचलनेवाले ज्ञानियोंने इतनेही तत्त्ववर्णन कियेहैं-अब इनकेलयको कहतेहैं—जो जिससे उत्पन्न होताहै वह उसीमें लय होताहै अर्थात् वह अन्तरात्मासे उत्पन्न होतेहैं, और बिपरीति रीतिमें नियत होनेवाली लयताको प्राप्त होते हैं; वहगुण सदैव अनुलोम अर्थात् सीधे मार्गसे उत्पन्न होते हैं और प्रतिलोम अर्थात् उलटेमार्ग से ऐसे प्रकार गुणोंमें लयहोते हैं, जैसे कि समुद्रकी लहरें समुद्रमें ही लय होजातीहैं हे राजा इसी प्रकारसे प्रकृतिकीभी उत्पत्ति और लय है अर्थात् त्रिगुणात्मिका प्रकृति ब्रह्मसे उत्पन्न होकर उसीशुद्ध ब्रह्म में लय होजाती है, प्रकृतिके लय होनेपर इस पुरुषकी भी एकता होतीहै और जब उसको उत्पन्न करतीहै तब अनेकता होतीहै हे राजा उसी ओरकाभय ब्रह्मज्ञानियोंको जानना चाहिये जिसको कि अगले श्लोकमें वर्णन करेंगे जिसे महत्तत्त्वादिका चेष्टा करानेवाला अव्यक्त कहते हैं इसकाभी वहीदृष्टांत है जिसने अर्थ तत्त्वको अच्छे प्रकारसे पायावह सुषुप्ति और प्रलय कालमें प्रकृतिकी एकताको और संसारकी उत्पत्तिमें अनेकताको जानताहै, इसप्रकार अज्ञान के अधिष्ठाता सांख्यवाले मनुष्योंकी विजय है इसशंकाको कहते हैं— मोक्ष में चिदात्मासे इस अज्ञानकी एकत्वताही है और स्वरूप सत्ताके द्वारा चिदात्मा प्रकृतिके प्रकट होनेसे उसकी अनेकताहै क्योंकि आत्माउस उत्पत्तिरूप प्रकृतिको बहुत प्रकारका करदेताहै इसी हेतुसे चिदात्माही मुख्य अधिष्ठाता है औरप्रकृति गौणअधिष्ठाता, हे राजेन्द्र वहां जो पचीसवां परमात्मा क्षेत्रमें अर्थात् प्रकृति और उसके विकार रूपोंमें नियत होताहै तबसाधुओं की ओर से अधिष्ठाता कहाजाताहै २६ क्षेत्रोंमें नियत होनेसे अधिष्ठाता होताहै और अव्यक्त नाम मायाको क्षेत्र जानताहै इसीहेतुसे क्षेत्रज्ञ कहाताहै, वह पुरुष इस आठपुरीवाली अविद्यारूप क्षेत्र में प्रवेश करताहै यहभी कहा जाताहै क्षेत्र एक पदार्थ और दूसरा अनेक पदार्थ कहाजाता है तात्पर्य्य यह है कि क्षेत्रज्ञका अधिष्ठातापन अव्यक्तही के द्वारा है, अब पुरुष और प्रकृति के विवेकको वर्णन करते हैं—क्षेत्रको अव्यक्त रूपकहा और उसके जानने वालेको पचीसवां चिदात्मा कहाजाता है दूसरा नहीं है परन्तु ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य पदार्थ दूसराकहाजाताहै, ज्ञाताके ज्ञानको अव्यक्त और ज्ञेयको पचीसवां अव्यक्तको क्षेत्रबुद्धी और ईश्वरकहा और पचीसवां तत्त्व चिदात्मा ईश्वरनहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष सामानसे दूसरा है और तत्त्वभी नहीं है क्योंकि तत्परोक्ष का जतलानेवाला है परन्तु वह चिदात्मा परोक्षहै, सांख्यशास्त्र

इतनाही है कि सांख्यमतवाले उस साक्षात्कारको जो स्थूल सूक्ष्म प्रपंचका आत्मामें लय करता है यही सिद्धकरते हैं और मायाको जगत् का कारण कहते हैं—अब लय होनेके योग्य वस्तुओं को कहते हैं सांख्य मतवाले चौबीस तत्त्वोंको प्रकृति के साथ वास्तव करके चिदात्मा में लयकरके सिद्धहोते हैं पच्चीसवां चिदात्मा सदैव अपरोक्ष है, प्रकृतिसे परे पच्चीसवां चिदात्मा जीव रूप कहा है और जब वह आत्माज्ञान स्वरूप होताहै तब सिद्धहोताहै, ब्रह्म दर्शन इतनाही है यह सब मैंने मूलसमेत तुमसे कहा इस प्रकारसे इसके ज्ञातालोग ब्रह्मभावको पाते हैं, ब्रह्मदर्शही पूर्ण दर्शनहै और रस्सी के सर्पकी समान अब्रह्मका दर्शन नहीं योग्यहै वहकेवल भ्रांतिरूप है इसीप्रकार ब्रह्ममें कल्पित अहंकारादिके देखनेसे दृष्टा पूर्णताको नहीं पाताहै, किन्तु जो उस अहंकारादिकमें नियतहै उसका देखने वाला पूर्णताको प्राप्त होताहै निर्गुणके सिवाय यहभ्रान्तिरूप महत्तत्त्वादिक जैसे अपने सन्मुख और व्यवहार में सच्चा होनेसे प्रत्यक्ष है उसीप्रकार निर्गुण पुरुषोंका भ्रांतिरहित रूपहोना प्रत्यक्ष होता है अब आत्मज्ञानके फलको कहते हैं--इसप्रकार देहाभिमान से रहित ज्ञानमें प्रवृत्त पुरुषोंका आवागमन नहीं होताहै ब्रह्मरूप होनेसे अपर सत्य संकल्पादि ऐश्वर्य्य और पर अर्थात् उपाधिरहित समाधि समयका अविनाशी सुख वर्त्तमान होता है आवागमन किसको है उसको वर्णन करते हैं—जो नानाप्रकारकी बुद्धि रखनेवाले पुरुष अनेकताको देखते हैं और उनमें ब्रह्मदर्शन नहीं है वह वारंवार शरीरोंको धारण करते हैं, इसब्रह्मको विज्ञान और ध्यान बल से अपरोक्ष नकरनेवाले ब्रह्मका ज्ञान न होने से शरीर प्राप्त करनेवाले पुरुष शरीरके आधीनहोंगे, यह सबसंसार अव्यक्त अर्थात् अज्ञान प्रधान है और पच्चीसवां चिदात्मा इससे पृथक्है जो पुरुष इस पच्चीसवें को जानतेहैं उनको इस दुःखरूपी संसार का कोई भय नहीं है ४६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेद्वात्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १३२ ॥

## एकसौतेंतीसका अध्याय ॥

वशिष्ठजी बोले कि बारह प्रश्नों में से सांख्ययोग और एकता अनेकता का विज्ञान इन तीनों प्रश्नोंको मूलसमेत कहा अवशेष प्रश्नों के उत्तरवर्णन करताहूं—हेनरोत्तम यह सांख्ययोग तो तुमने सुना अब विद्या और अविद्या को क्रमसे सुनो, उत्पत्ति नाशकी धर्मरखनेवाली अविद्याको अव्यक्त अर्थात् अज्ञान प्रधानकहा और उत्पत्ति नाशसे रहित अविद्याको पचीसवां कहा, इस विद्याकी उत्तमता वर्णन करनेको अवान्तर विद्याके भेदको कहतेहैं एक दूसरेकी विद्याको ऐसे क्रमपूर्वकसमझो जैसे कि सांख्यऋषियोंने टीका वर्णन

कीहै, सब कर्मेन्द्रियोंकी विद्या अर्थात् लयस्थान ज्ञानेन्द्री और ज्ञानेन्द्रियों की विद्या स्थूल तत्त्व कहे गये यह हमने सुनाहै, ज्ञानीलोग उनस्थूल तत्त्वों की विद्याका चित्त और चित्तकी विद्याको सूक्ष्म पंचतत्त्व कहतेहैं, हेराजा इन पांचों सूक्ष्मतत्त्वकी विद्या अहंकारहै और अहंकारकी विद्या बुद्धिहै अर्थात् महत्तत्त्व है, महत्तत्त्वादिकी विद्या परमेश्वरी प्रकृतिहै जिसको प्रधानअज्ञान भी कहतेहैं, हेनरोत्तम वहश्रेष्ठ विद्या जानने के योग्य है और परमबुद्धिकोही श्रेष्ठसंसारका कर्त्ताकहा पच्चीसवें चिदाभास को उस अव्यक्तकी उत्तमविद्या वर्णनकी और सब ज्ञानियोंके ज्ञेय अर्थात् जाननेके योग्यको अव्यक्त कहा अर्थात् अव्यक्तके ज्ञानसे सर्वज्ञहोताहै, ज्ञान अर्थात् बुद्धिकी वृत्तिको अव्यक्त वर्णन किया और जाननेके योग्य रूपरहित पच्चीसवां है इसीप्रकार ज्ञान अव्यक्त और जाननेवाला भी पच्चीसवां है यह मैंने विद्या और अविद्या क्रम पूर्वक तुझसे वर्णनकी और अक्षर वा क्षर जो कहे उनको भी सुनो ब्रह्मजीव माया यह तीनों ब्रह्मरूप हैं इनमेंसे माया और जीव दोनोंका वर्णन करते हैं यह माया और जीव आदि अन्त रहित होनेसे अक्षरहैं अर्थात् अविनाशीहैं और यही दोनों हरसमयपर रूपान्तर करने से कहेजातेहैं उनका कारण ज्ञान से ठीक २ कहताहूं, यह दोनों आदि अन्त रहितहैं और दोनों मिले हुये अक्षरहैं अर्थात् उत्पत्तिके कारणहैं इनदोनोंको ब्रह्मदर्शी पुरुष तत्त्वनामसेवर्णन करते हैं उत्पत्ति नाशके धर्मरखनेसे अव्यक्तमायाको अविनाशीकहा क्योंकि उसके नाशवान् होने से संसारका अन्त होजायगा परंतु उस संसारका भी आदि अन्त मोक्षदशाके सिवाय नहीं है वह अव्यक्त गुणोंकी उत्पत्तिकेनिमित्त बारंबार रूपान्तर करनेवालाहै, पच्चीसवें चिदाभासकोभी परस्परके अधिष्ठानसे गुणोंका उत्पत्तिस्थान वर्णन करतेहैं अर्थात् बिनापरस्पर संगहोने के न तो प्रकृति संसार को उत्पन्न करसक्ती है न जीव करसक्ता है किन्तु दोनों मिलकरही करसक्तेहैं इसी हेतु से प्रकृतिके समान जीवभीअविनाशी है १४ यहतो दोनों की अविनाशताको कहा अब उनके नाशको कहतेहैं—जब योगी उस प्रकृतिको शुद्ध ब्रह्ममें लय करताहै तब वह पच्चीसवां चिदाभासजीव उन गुणों समेत लयको प्राप्त होताहै अर्थात् तीसरा महापुरुष शेषरहताहै तात्पर्य यहहै कि जबतक चिदाभास और प्रकृतिकी एकताहै तबतक दोनों अविनाशीहैं फिर दोनोंका नाशहोजाताहै जब प्रलयकेसमय महत्तत्त्वादि गुणप्रकृति के गुणोंमें लयहोतेहैं तबप्रकृतिही अकेलीरहजाती है इसीप्रकार क्षेत्रज्ञभी जब अपने प्रत्यक्षस्थान पच्चीसवें चिदात्मा में लयहोताहै तब वह पच्चीसवांही अकेलारहजाताहै,हेराजाजनक जबचिदाभासगुणोंमें कर्मकर्त्ता न होनेसेनिर्गुण भावकोपाताहै तबमहत्तत्त्वादिसमेत,प्रकृतिभी नाशकोपातीहै,इसीप्रकारयहक्षे-

ज्ञभी क्षेत्रज्ञानके दूरहोनेमेंनाशकोपाताहै परंतुप्रकृतिमें और उसमेंइतनाअंतर है कि यह वास्तवमें निर्गुणहै अर्थात् यद्यपिगुण और गुणी नामक्षेत्र क्षेत्रज्ञ विनाशवान् हैं परन्तु क्षेत्रज्ञके क्षेत्रसे पृथक् होनेवाला चिदंश अविनाशी है यह हमने सुनाहै १८ जब यह क्षेत्रज्ञ अज्ञानदशामें प्राप्तहोताहै तब विनाश युक्तहोता है इसी प्रकार जब प्रकृति को गुणयुक्त और आत्माकी निर्गुणता को देखता है, तब प्रकृति को लयादि करके अत्यन्त पवित्र होता है जब यह ज्ञानी अपरोक्ष कहता है कि मैं दूसरा हूं और यह प्रकृति दूसरी है तब यह तत्त्वनाश अर्थात् गुणों की कल्पना से पृथक्ताको पाता है, और उसकी सम्बन्धताको दूरकरताहै, हे राजेंद्र यह आत्मा प्रकृति से युक्त और पृथक् भी दृष्टआताहै, जब वह चिदाभास प्रकृति के गुण जालकी निन्दा करताहै और सर्व द्रष्टा चिदात्मा को देखता है तब उसको देखता हुआ त्याग नहीं करै है अर्थात् भूलता नहीं है, मैंने यह किया जो यहां इस प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाले देहका ऐसा साथी होताहै जैसे कि मछली अज्ञानसे जाल में आजाती है मैंनेहीं बड़ी भूल से एक देहसे दूसरे देह में ऐसे निवास कियाहै जैसे कि मछली जल के इस ज्ञान से कि यह मेरेजीवनका कारणहै तालाब में स्थिरता से निवास करती है, जिसप्रकार मछली अपनी अज्ञानताके कारण जल से अपनी अभिन्नताको नहीं जानती है उसीप्रकार मैं भी अज्ञानसे पुत्र आदि से अपने आत्माको पृथक् नहींजानताहूं, मुझ अज्ञानीको धिक्कारहै जो फिर उस आपत्ति में फँसे हुये देह का साथ किया और एक देह से दूसरे देह में प्रविष्ट हुआ, यहांपर यह मेरा भाई और मित्र है उसके साथमें मेरा कल्याण होगा यह विचारकर समानता और एकताको प्राप्त किया जैसा यहथा वैसा ही मैं भी हुआ निश्चय करके मैं उसी के समानहूं जैसे यह प्रत्यक्ष में कपट से रहित है इसीप्रकार का मैं भी हूं ऐसा विचार करनेवाला मैं अज्ञानी भूल से इस अज्ञानी के साथ प्रवृत्त हुआ मैं असंग होकर इतने समय तक इस संगी के साथ नियत हुआ और उसके आधीन हुआ अबतक नहीं चेताहूं मैं उस उत्तम मध्यम निकृष्ट देव मनुष्य पशु पक्षी से सम्बन्ध रखनेवाली प्रकृति के साथ कैसे निवास करूं यहां मैं अज्ञानतासे इस प्रकृति के साथ कैसे निवास करूंगा, अब सांख्ययोग में निष्ठावान् होकर मैं आत्मा को जानूं इस समय अज्ञानी छली अपने साथीको नहीं पाऊंगा, मैं निर्विकार होकर इस विकारवान् प्रकृति से ठगागयाहूं यह इसकाअपराध नहीं है यह मेरेही अपराध काफलहै जिससे कि मैं इसका साथी होकर आत्मासे बहिर्मुख हुआहूं अर्थात् विषयों केभोगने में प्रवृत्त होगया इसहेतु से मेरा आत्मारूप भी धन और रूपों में अथवा मूर्त्तियों में मूर्त्तिमान् है यह देह से रहित ममता में फँसकर

देहवान् है और अत्यन्त ममताके अभ्यास से नानायोनियों में गिरायागया, उनउन योनियों में चित्तकी भ्रान्ति के साथ वर्त्तमान ममता से उस ममता रहित आत्माका कुछ काम नहीं है, अहंकार से आत्माकी नाश करनेवाली इस प्रकृति से मेरा क्या काम है यह अनेक रूपों को धारण करके फिर मुझ को उनसे मिलाती है ३६ अब ममता और अहंकार से रहित होकर मैं सावधान हुआहूं कि अहंकार से आत्माकी नाशकरनेवाली ममता इसी प्रकृति से सदैव उत्पन्न होती है, मैं इस प्रकृति को छोड़कर इससे अलग होकर निरानन्द परमात्माकी शरण लूंगा और इसी परमात्मासे एकताको प्राप्तकरूंगा इस जड़रूप प्रकृति से नहीं करूंगा, इस परमात्मा के साथ मेरी एकता है और प्रकृतिके साथ अनेकताहै, इसप्रकार उत्तम ज्ञान से पचीसवें चिदाभास ने शुद्धब्रह्म को साक्षात्कार कियाहै, नाशवान् प्रकृति को त्याग करके सब उपाधियोंसे पृथक् अविनाशीपनेको प्राप्त करना योग्यहै क्योंकि वह प्रकृति रूप अव्यक्त वा प्रत्यक्ष धर्म रखनेवाली सगुण और निर्गुणहै हे राजा जनक यह चिदाभास प्रथम आदि निर्गुण ब्रह्मको देखकर वैसाही होता है अर्थात् ब्रह्मज्ञानी ब्रह्महीं होताहै, यहां मैंने वेदानुभव के अनुसार यह ब्रह्म और प्रकृति का अनुभव जो कि ज्ञानयुक्तहै तुमसे कहा और जो सन्देह रहित सूक्ष्म पवित्र और दोषोंसे रहितहै उसको भी तुमसे वेद के अनुसार कहताहूं, मैंने सांख्य और योग दोनों शास्त्रोंकी रीति से वर्णनकी जो सांख्यशास्त्रहै वही योग दर्शनहै इसका तात्पर्य्य यहहै कि सम दम आदिसे द्वैतका नाशहोना मोक्ष का देनेवाला है यह बात दोनों शास्त्रों में बराबर है साधन के अनुभव फलोंसे दोनोंकी एकताई होतीहै, हेराजा सांख्यमतवालों का ज्ञान बड़ी विज्ञताका करनेवाला है वहां शिष्यों के प्रयोजन के सिद्धहोने की इच्छा से अच्छेप्रकार स्पष्टतासे कहाजाताहै, इसप्रकार यह शास्त्रबड़ाहै यह ज्ञानियोंका कथन है फिर उस सांख्यशास्त्र और वेद में योगियों का बड़ा आदर है, जीव इसमें क्याहै यह समझकर सांख्यमतवाले योगकी प्रतिष्ठा नहीं करते हैं इसी से कहते हैं—हेराजा पचीसवें चिदाभाससे बड़ातत्त्व कोई नहीं है, और सांख्यमतवालों का उत्तम तत्त्व छब्बीसवांही ठीकवर्णन कियागया है, फिर योगमत में उक्त दोष की कौनगतिहै यह शंकाकरके कहतेहैं—जो चिदात्मा स्वरूपहै वही सारूप्य वृत्तीदशा में शुद्ध रूपके न जाननेसे जीव रूप होताहै इसीकारण प्रधान और चिदात्माकोयोगका अनुभव वर्णनकिया है ४१॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्म्मेउत्तरार्द्धेत्रयोत्रिंशत्युपरिशततमोऽध्यायः १३३॥

# एकसौचौंतीसका अध्याय॥

वशिष्ठजी बोले कि अब तुम परमात्मा जीव और सतोगुण आदि के प्रभावको सुनो कि वह चैतन्य अपने को मायाके कारण से बहुत प्रकारका करके उनके रूपोंको तत्त्वरूप देखताहै तात्पर्य्ययहहै कि वही दोनोंपरमात्मा जीव प्रधानसे पृथक् जानने उचितहैं उस दशामें जीवसे सम्बन्ध रखनेवाला शास्त्र निष्फल नहीं होताहै, इसप्रकार से भेदवादी की जीत नहीं होती है इसको कहते हैं—जीव इस ब्रह्मको नहीं जानताहै कारण यहहै कि अपनेको कर्त्ता और भोक्ता मानकर विपरीत दशा करनेवाला है जब यह गुणों को धारण करता है तब उत्पत्ति और नाशको करता है, हे राजा यहां क्रीड़ा के निमित्त रूपान्तरको करता है और कार्य के साथ अज्ञान के जानने से जीव को विधीयमान नामसे भी प्रसिद्ध करताहै, यह जानना जीवकाही धर्म्म है इस शंकाको कहते हैं—हे तात निश्चय करके यह रूप आदि से युक्त प्रधान अव्यक्त इस पचीसवें निर्गुण पुरुषको नहीं जानताहै इसीकारण इसको जड़ वर्णन किया, पचीसवें महात्मा चिदाभास को अव्यक्त के जानने से विधीयमान कहते हैं यह भी वास्तवमें नहीं जानताहै, अब जाननेवालेको कहते हैं—जो छब्बीसवां निर्मल ज्ञानस्वरूप अप्रमेय सनातन है वह पचीसवें चिदाभास और चौबीसवीं प्रकृतिको सदैव जानताहै अर्थात् उपाधि रहित चैतन्यही सबका प्रकाशकहै, हे महातेजस्वी वह पचीसवां अपनी सत्तासे कार्य कारण में वर्त्तमान है अर्थात् सन्मात्रही छब्बीसवां है हे तात इस जीवते शरीर में वह गुप्त उपाधि रहित ब्रह्मज्ञानियों को विदित होता है, फिर सर्वत्र वर्त्तमान वह शुद्ध ब्रह्म हमको साक्षात् क्यों नहीं होता है—इसी हेतु से कहते हैं—जब यह जीव अपने को आत्मासे जुदामानता है अर्थात् कहता है कि मैं अमुक पुरुषका बेटाहूं ब्राह्मणहूं तब शुद्ध ब्रह्म पचीसवें चिदाभास और चौबीसवीं प्रकृति को भी नहीं जानताहै, फिर कैसे शुद्ध ब्रह्मका जाननेवाला होसक्ता है इसी हेतुसे कहते हैं—जब शुद्ध ब्रह्मसे संबंधरखनेवाली द्वैतता रहित सर्वोत्तमा विद्याको प्राप्त करताहै तब अव्यक्त प्रधान अज्ञान में दृष्टि करने वाला यह चिदाभास प्रकृतिको जीतता है, हे नरोत्तम इस प्रकारसे छब्बीसवां ब्रह्म जीवभावको प्राप्त करताहै फिर वह जीव विद्या के द्वारा इस उत्पत्ति और नाश के धर्म्म रखनेवाले प्रधान अज्ञानको त्यागकरदेता है, यहजीव अव्यक्त अज्ञान को अपने से पृथक् देखने से शुद्ध होता है जो आप निर्गुण होकर गुणयुक्त जड़रूप प्रकृति को जानता है वही शुद्ध ब्रह्म है, तीनों उपाधियों से रहित जीव शुद्ध आत्मा से मिलकर उसी आत्मा को पाता है जिसको

कि निर्विकल्प अपरोक्ष अजर और अमर कहते हैं, हे महादानी तत्त्वज्ञ महात्मा दृश्यमान शरीरादिक में निवासकरने से तत्त्ववान् होताहै वास्तव में कभी नहीं होता इस कारण से कि केवल साक्षीमात्र है उन तत्त्वों को ज्ञानी लोग संख्या में पच्चीस कहते हैं, हे तात यह तत्त्ववान् अर्थात महत्तत्त्वादि का रखनेवाला परोक्ष नहीं है क्योंकि निस्तत्त्व अर्थात् कार्य्य कारण से रहित अपरोक्ष यह ज्ञानीके अहंब्रह्माऽस्मि इसतत्त्व लक्षणकोभी शीघ्र त्याग करता है, जबज्ञानी मानता है कि मैं अजर अमर छब्बीसवां हूं तब केवल अपनी सामर्थ्यरूप ब्रह्माकारवृत्तीकेद्वारा ब्रह्मभावको पाता है आशययह है कि यह ब्रह्माकार अन्तकी वृत्ती दूसरी वृत्तीको और अपने को भी शीघ्रशांत करती है, छब्बीसवें ब्रह्मकेद्वारा पच्चीस तत्त्वोंको जाननेवाला भी उस छब्बीसवेंको नहीं जानताहै यह उसका अज्ञान सांख्य श्रुति के दृष्टांतसे अनेक अर्थात् द्वैतताके विरुद्धहै कहा जाताहै, अब छब्बीसवेंके अनुभव स्वरूप को कहतेहैं—इसबुद्धिसे युक्त पच्चीसवेंकी ब्रह्मसे ऐक्यता उस समय होती है जब बुद्धिसेभी आत्माको नहीं जानताहै अर्थात् बुद्धिका निरोधहोनेपर पूर्णसुषुप्तिके समान छब्बीसवेंका अनुभवहै, हेराजा जनक जबयह सुखादिका भोक्ता अहंवृत्तीमें नियत जीव मनबाणी से परे छब्बीसवें चिदात्मासे एकताको प्राप्त होताहै तब पुण्य पापके स्पर्श से पृथक् होताहै, जब यह समर्थ उस असंग अजन्मा समर्थ छब्बीसवें परमात्म को पाकर अज्ञान प्रधान अव्यक्तको त्याग करताहै तब उसको जानताहै तात्पर्य्ययहहै कि पुरुषके देखतेही प्रकृति लयहो जातीहै,छब्बीसवेंका ज्ञानहोनेसे चौबीसवां रस्सीकेसर्पकीसमान अरूप असार होजाताहै,हेनिष्पाप यह मायाजीव और ब्रह्ममूल समेत वेदके प्रमाण संयुक्त तुझसेकहे अब चौबीस तत्त्वोंके साथ जीवकी यहएकता और द्वैतता शास्त्रके अवलोकन से जानना योग्यहै जैसे गूलर और गूलरके जीव वा मछली और जलजुदे हैं इसीप्रकार इनदोनों को पृथक्ता ज्ञातहोती है, इसीप्रकार इनदोनों कीभी एकता और द्वैतता जाननी उचितहै अव्यक्तको पुरुष से पृथक् जानना और केवल पुरुषका शेष रहना नामयह मोक्षउस पच्चीसवें चिदाभास का वर्णन कियागया जो कि शरीरों में बर्त्तमान है यह चिदाभास अज्ञान और उसके विषय महत्तत्त्वादिकों से जुदा करनेके योग्य वर्णन किया इस चिदाभास और अज्ञानके नाशहोने से मुक्तहोताहै दूसरी रीतिसे नहीं होताहै यह ठीक निश्चयहै यह चिदाभास क्षेत्रसे मिलकर चिदात्मासे दूसरा और क्षेत्रका धर्म्म रखनेवाला होताहै, हे नरोत्तम वह अत्यन्त पवित्र धर्म्मवान् बुद्धिमान् मोक्षधर्म्म में नियत चिदाभास उस शुद्धज्ञान स्वरूपमुक्त वियोगधर्मी चिदात्मासे मिलकर वैसाही होजाता है, वह पवित्रकर्मी महा प्रकाशमान होता है

और सब उपाधियों से पवित्र निर्मल आत्मा से मिलकर स्वच्छ निर्विकार आत्माहोताहै, इसीप्रकार केवल शुद्ध ब्रह्मसे मिलक र केवल आत्मा होता है और यह स्वतन्त्र चिदाभास इस स्वतन्त्र चिदात्मासे मिलकर स्वतन्त्रताको प्राप्त होताहै, ३० हे महाराज मैंनेयह सिद्धांत इतना तुमसे वर्णन किया सो तुम ईर्षासे रहित होकर प्रयोजनको स्वीकार करके यह पवित्र सनातन आदि परब्रह्म तुमको उस मनुष्य से कहनेके योग्यहै जोकि तीनोंगुणों से रहितहो यह ज्ञानका कारण और नम्रपुरुषका उपदेश ज्ञानकी इच्छा करने वालोंको करना उचितहै और मिथ्या वादीशठ नपुंसक कुटिल बुद्धीको कभी न देना चाहिये ऐसे मनुष्यको देनायोग्य है जो सदैव श्रद्धायुक्त दूसरेकी निन्दा से रहित पवित्रात्मा योगी क्रियावान् शान्तरूप संतोषी महात्मा है, जो मनुष्य एकांतमें बैठनेवाला शास्त्रका माननेवाला विवादरहित अनेक शास्त्रोंकाज्ञाता बिज्ञानी मोक्षमार्गमें शत्रुसे क्षमा न करनेवाला वाह्याभ्यन्तर से शान्तात्मा धर्मवान् है उसको उपदेश करना योग्य है, जो इनगुणों से अत्यन्त रहित है उसको कदापि न देनाचाहिये क्योंकि यहअत्यन्त पवित्र परब्रह्म कहाजाताहै इसीसे अभक्त मनुष्यको उपदेश करना निःप्रयोजन है क्योंकि वह उपदेश उसको कल्याणकारी नहींहोगा और अपात्रको दानकरनेसे उसदानी और धर्मोपदेश करनेवालेका भी कल्याण नहींहोता, चाहे रत्नोंसे भरीहुई सम्पूर्ण पृथ्वीको दानकरे परन्तु इसब्रह्मज्ञानको ब्रत न करनेवाले मनुष्यको कभी न देना चाहिये यहज्ञान निस्सन्देह जितेन्द्री पुरुषको देनाचाहिये, हेकरालजनक अब तुमको किसी प्रकारकाभय न होगा क्योंकि तुमने यहशुद्ध उत्तम आदि अंत रहित सनातन परब्रह्मका उपदेश ठीकठीक वर्णन कियाहुआसुना हेराजा जोब्रह्म जन्म मृत्युसे छुटानेवाला उपाधिरहित निर्भय और आनन्दस्वरूपहै उसब्रह्मको बिचारकर और इसज्ञानके तत्त्वार्थको जानकर अब सबमोहों को त्यागकरो हे राजेन्द्र मैंने उसउग्र आत्मा सनातन ब्रह्माजीको युक्तिसे प्रसन्नकर के उस उपदेशकरनेवाले सनातन हिरण्यगर्भसे इस ब्रह्मज्ञानको ऐसे पायाहै जैसे कि अब तुमने मुझसे प्राप्तकियाहै,हे राजा यहब्रह्म ज्ञान मोक्ष जाननेवालों का उत्तम रक्षाका आश्रयहै इसको जैसे तुमने मुझसे पूछा उसी प्रकार मैंनेतुम से कहा, युधिष्ठिरने प्रश्नकिया था कि वह अबिनाशी कौनहै जिसको प्राप्त होकर आवागमन से छूटजाताहै इसको सिद्ध करनेके लिये भीष्मजी बोले कि हे राजा मैंने वेदोंके दृष्टान्त से यहपरब्रह्म वर्णन किया जिसको पाकर पच्चीसवां चिदाभास संसारमें फिरलौटकर नहीं आताहै, यहजीव इसअजर अमर परब्रह्मको सिद्धान्त सहित नहीं जानताहै इसीहेतुसे उत्तम ज्ञानको न पाकर आवागवन में फँसताहै हे पुत्र राजायुधिष्ठिर मैंने देव ऋषि नारदजी से सुन॰

कर यह कल्याणकारी उत्तमज्ञान मूलसमेत तुमसे कहा, यहज्ञान महात्मा व-शिष्ठऋषिजीने ब्रह्माजीसे पाया और नारदजीने उस ऋषियोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठ जीसे पाया और मुझको नारदजीसे मिला है कौरवेन्द्र तुम इस परमपदको सुनकर शोच मतकरो हे तात जिसने यहक्षर माया और अक्षर जीवको जाना वहनिर्भयहै और जो इसब्रह्मको नहीं जानताहै वह सदैव भयभीतहै, अज्ञानात्मा पुरुषने विज्ञानके न होनेसे बारंबार दुःखोंकोपाया और मरकर हजारों मृत्यु सम्बन्धी जन्मोंको पायाहै, देवलोक आदि लोकों को और पशु पक्षी मनुष्य पर्य्यन्त योनियोंको भी पाताहै जब इच्छा से रहित होताहै तब उस अज्ञान समुद्रसे पारहोताहै, हे भरतवंशी वहअज्ञान सागर महाघोर रूपहै उसी में हजारोंजीव डूबते हैं, हे राजा तुम जिसअथाह और प्राचीन अव्यक्तनाम समुद्रसे बाहर निकले हो इसहेतुसे तुमरजोगुण तमोगुणसे पृथक्हो अर्थात् शुद्धसतोगुण प्रधानहो ५१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे जनकवशिष्ठ सम्वादे चतुस्त्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १३४ ॥

# एकसौ पैंतीसका अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि चौबीस तत्त्वोंको क्षरकहकर और योगमत सम्बन्धी पच्चीसवें चिदाभासको जो कि धर्म्म आदिके सम्बन्ध से क्षरहै उसको वर्णन किया और धर्म्म आदिसे असम्बन्धी छब्बीसवां अक्षर ब्रह्मभी सांख्यमतसे वर्णनकिया अब उसके प्राप्त करनेमें अधिकारी होनेके हेतु कुछधर्म्मोंका वर्णन करताहूं-निर्जनवन में आखेट करते हुये राजा जनककेपुत्र राजावसुमान ने वेदपाठियों के इन्द्र भृगुवंशी मुनिको देखा, उन बैठेहुये मुनिको शिरसे दण्डवत् करके उनके पास बैठगया और उनकी आज्ञालेकर राजावसुमानने यह प्रश्नकिया, हे ब्रह्मन् इस अनित्य शरीरमें इच्छाकी आधीनतामें वर्त्तमान पुरुषका इसलोक और परलोकमें कैसे कल्याणहोय, तब बड़ी प्रसन्नतासे सत्कार पूर्व्वक उसमहात्मा तेजस्वीने राजासे यह कल्याणकारी वचन कहा, जो तुम इसलोक और परलोक में मनोवांछित पदार्थों को चाहतेहो तो इन्द्रियोंसे सावधान होकर हिंसा आदि जीवोंके अप्रिय कर्म्मोंको चित्तसे त्यागदो, धर्म ही सत्पुरुषोंका हितकारी और रक्षाका स्थानहै और हे तात धर्म्मसेही तीनों लोक स्थावर जंगम जीवों समेत उत्पन्नहैं, विषयी लोगोंकी जो इच्छा और मनकी बांछा हैं उनकी अनिच्छा क्यों नहीं करताहै हे मूर्ख मधुको देखताहै और उन के दुःखोंको नहीं देखताहै जिसप्रकार ज्ञानकाफल जाननेवाले मनुष्यको धर्म्ममें अभ्यास करना चाहिये, जो सत्पुरुषनहीं है और धर्म्मकी इच्छा करने वालाहै वह अत्यन्त पवित्रहोना कठिन है परन्तु धर्म्मको चाहने वाले

सत्पुरुषसे कठिन कर्म्म होना सुगमहै, जो बनके बीच स्त्री प्रसंगादि सुखका अभ्यास करने वालाहै वह उस प्रकार काहै जैसा प्राकृत मनुष्य और जो गांव बनके सुखोंका अभ्यास करनेवालाहै जैसा बनचारी,तुम सावधान होकरनिवृत्तिमार्ग्ग वा प्रवृत्तिमार्गमें गुण अवगुणोंको विचारकर मन बुद्धि देहसे सम्बन्ध रखनेवाले धर्म्ममें श्रद्धाकरो, दूसरेके गुणमें दोष न लगानेवाले मनुष्य और ऐसे साधुओंको सदैव बहुतसा दानदेना योग्यहै जोकि बाहर भीतरमे पवित्र व्रती विरक्त देशकालपर पूजितहो, श्रेष्ठ बुद्धिसे प्राप्त होनेवाले धनकोयोग्य और पात्रलोगोंको दानकरे दानमें क्रोध और पश्चात्तापको न करे न अपने मुखसे उसका कहीं वर्णन करे, दयावान् पवित्र जितेन्द्री सत्यवक्ता स्वधर्म्म पत्नीमें सन्तान हेतु विषय करनेवाला शुद्धकर्म्मी वेदज्ञ ब्राह्मण दानदेने के योग्य पात्रहै—अब योनि और कर्म्मकी शुद्धिको कहतेहैं—इसलोकमें सन्तान का उत्पत्तिस्थान स्त्रीही समझीजाती है परन्तु जोएकही पुरुषकी स्त्रीहै वही पूजितहै, ऋग्वेद यजुर्व्वेद सामवेदका जाननेवाला षट्कर्म्मी ज्ञानी ब्राह्मण पात्र कहाजाताहै, सबदानों में देशकालको विचारकर दानके योग्य पात्र और कर्म्मकी प्रशंसासे उसीमनुष्यको धर्म्म और अधर्म्म दोनों होते हैं जैसे कि मनुष्य शरीरके साधारण धब्बेको शरीरहीसे शुद्धकरता है और बड़ेधब्बे को बहुत उपायोंसे दूरकरता है इसीप्रकार पापका भी दूरकरनाहै जैसे बिरक्त की मुख्य औषधिघृतहै उसीप्रकार दोषरहित मनुष्यका यज्ञादिधर्म्म परलोक में सुखदायक होताहै, सब जीवधारियों में मानसीपाप और पुण्य वर्त्तमान होताहै उसमनको सदैवपापों से पृथक्करके शुभकर्म्मों मेंही प्रवृत्तकरे, सर्वत्र सबसे कियेहुये सबकर्मोंको पूजनकरे जिसस्थानपर अपने धर्ममें मैत्री और प्रीतिहो वहां इच्छानुसार धर्म्मको करे, हे अधीर धीरजधर हे दुर्बुद्धी सुबुद्धी हो अशान्तीसे शान्ती धारणकरो हे अज्ञानी तुम ज्ञानीके समान कर्म्मकरो, अपनेसाथी सतोगुण अथवा पराक्रमसे उपाय करना उचितहै इसलोक और परलोकमें जो कल्याणहै उसका मूल उत्तम धीरजहै, धीरजसे रहित महाभिषनाम राजर्षि स्वर्गसे गिरा और पुण्य नाशहोनेपर भी राजाययातिने धीरजहीके द्वारा लोकोंको प्राप्तकिया, तपस्वी धैर्य्यवान् ज्ञानियोंकी संगत और सेवासे बड़ी बुद्धिको प्राप्तकरके उत्तम कल्याणको पाताहै, भीष्मजी बोले कि उसस्वाभाविक धर्म्मसे युक्त राजा वसुमानने मुनिके इसवर्णनको सुनकर और चित्तको इच्छाओंसे हटाके धर्म्ममें बुद्धिको नियतकिया २५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेपंचत्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १३५ ॥

# एकसौछत्तीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि जो चिदात्मा सुख दुःखादि धर्म्मों से और अनेक सं-शयोंसे और जन्ममृत्युसे पृथक् पाप पुण्यसे रहितहै और सदैव निर्भय नित्य अविनाशी न्यूनता और दोषों से रहित उपाधियों से मिलाहुआ भी सदैव एकही रूपमें नियतहै उसको आप कहनेके योग्यहैं, भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशी इसस्थानपर एकप्राचीन इतिहासको तुमसे कहताहूं जिसमें याज्ञ-वल्क्यऋषि और राजाजनकका प्रश्नोत्तर है, महायशस्वी राजा देवराति के पुत्र नरभूषण राजाजनक ने ऋषियोंमें और प्रश्नोंके महाज्ञाताओं में अति उत्तम याज्ञवल्क्यजीसे प्रश्नकिया, कि हे ब्रह्मर्षि कितनी इन्द्रियां और प्रकृति हैं और महत्तत्त्वसे परे कारण ब्रह्मकौनहै और उससेभी परे निर्गुण ब्रह्म कौन है, हे वेदपाठियों में इन्द्ररूप आपके अनुग्रह चाहनेवाले मुझ प्रार्थना करने वाले से उत्पत्ति प्रलय और कालकी संख्या कहनेको आप योग्यहैं क्योंकि आपज्ञानके समूहहैं मैं अज्ञानतासे इससंशयसे रहितको सुनाचाहताहूं, याज्ञ-वल्क्य बोले कि हे पृथ्वीपाल जिसको तुम पूछतेहो वह योगियों का और सांख्यमतवालोंका उत्तम ज्ञान है उसको बिभागपूर्वक सुनो, तात्पर्य्य यह है कि योगमत में अव्यक्तको जड़ और सत्यभी मानते हैं और सांख्यमत में चैतन्य के प्रतिबिम्ब से युक्त अव्यक्त शुद्धब्रह्म के ज्ञान से लय होजाता है, प्रकृति आठ प्रकारकी और उसके विकार सोलहकहे इनमें से वेदान्त वि-चार करनेवालों ने भी आठही प्रकृति वर्णनकी हैं अज्ञान प्रधान अव्यक्त महत्तत्त्व, अहंकार पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि यह सूक्ष्म पंच-तत्त्व जिनको तन्मात्राभी कहते हैं, यही आठप्रकृति हैं और सोलह विकारों को भी सुनो—श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्री और शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध जिनको स्थूलतत्त्वभी कहतेहैं, वाक्, पाणि, पाद, गुदा लिंग, यह कर्मेन्द्री, हेराजेन्द्रपांचों महाभूतोंमें यह दशों बिशेषनामहैं अर्थात् उनसे बिकारों की उत्पत्ति नहींहोतीहै यह ज्ञानेन्द्रियां बिशेष नामहैं अर्थात् बिशेष नहीं है, वेदान्त गतिके बिचार करनेवाले और तत्त्वज्ञों में पंडित तुम ने और अन्य आत्मज्ञानियोंने मनको सोलहवां कहा अर्थात् मनविकार के मध्यवर्त्तीभी विशेष नहींहै क्योंकि वह तत्त्वोंकी उत्पत्तिका कारणरूप है—अब उत्पत्ति के क्रमको वर्णन करतेहैं—हे राजा अव्यक्त से महान् आत्मा उत्पन्नहो-ताहै इसकी उत्पत्तिको ज्ञानीलोग प्राधानिक कहते हैं और प्रधान से संसार और महत्तत्त्वसे अहंकार उत्पन्नहुआ इस दूसरी उत्पत्तिको बुद्धिसे संसारक-हतेहैं, अहंकारसे चित्तउत्पन्नहुआ वही चित्त पंचतत्त्व और शब्दादि विषयों

का उत्पत्तिकारणहै यह तीसरी सृष्टिकी उत्पत्ति अहंकार सम्बन्धी कहीजाती है, हेराजा पंचमहाभूत चित्तसे उत्पन्नहुये इस सबकी अंगीकृत चौथी उत्पत्ति को चित्त संबंधी सृष्टि जाने,, तत्त्वों के बिचार करनेवाले ज्ञानियों ने रूपरस गंध स्पर्शशब्द को पांचवीं उत्पत्ति को तत्त्वसम्बन्धी सृष्टिवर्णनकरी है, श्रोत्र, त्वक्,चक्षु,जिह्वा,पांचवींघ्राण इस छठी उत्पत्तिको मनसम्बन्धी बर्णन किया हेराजा श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों से पंचकर्मेन्द्री उत्पन्न होती हैं वह चित्तरूप हैं अर्थात् चित्तसे हुईहैं इस सातवीं उत्पत्तिको इन्द्रीसमूह बर्णन किया, ऊर्ध्वग तिवाले प्राण और तिर्य्यक्गति रखनेवाले, समान,व्यान, उदानको, आठवीं उत्पत्ति कहते हैं और इन्द्रियोंसे उत्पन्न इन प्राण आदिकी वृत्तिको सामान्य कहते हैं इन समान व्यान उदानके नीचे अपान उत्पन्न होना है उसकी बाईं ओर को गतिहै ज्ञानीलोग इन्द्रियों की सृष्टिको सामान्य वृत्तिवाली कहतेहैं, हेराजा वेदोंके दृष्टांतों से यह नौप्रकारकी उत्पत्ति और चौबीस तत्त्वोंका बर्णन किया तदनन्तर महात्माओं की कहीहुई इस गुणकी उत्पत्तिसंख्यारूप काल को मूल समेत मैं कहताहूं अर्थात् उस २ गुणकी उपासनासे उसके स्वरूपको पाकर जितने २ समयतक नियतहोताहै वही उसकी संख्या है २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेषट्त्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १३६ ॥

# एकसौसैंतीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हेनरोत्तम मोक्षका अन्त नहींहै और कर्मउपासनाके सब फलों का अन्तहै और जिसने अव्यक्तकी उपासना से अव्यक्त भावको प्राप्तकियाहै उसके समयकी संख्याको मैं कहताहूं उसका दिन दशहजार कल्पकाहोताहै और रात्रिभी इतनीही होतीहै, हेराजा वहजागनेवाला अव्यक्त प्रथम तो औषधीको उत्पन्न करताहै क्योंकि उसी से सबजीवोंका जीवनहै वेदमें लिखाहै कि चित्त अन्नरूपहै इसीकारणसे यहां औषधी का अर्थ सूक्ष्मचित्तही है, उसचित्तके द्वारा सुबर्णरूप अंडेमें अर्थात् बासनारूप ब्रह्मांड में प्रकटहोनेवाले ब्रह्माजीको उत्पन्न किया वही ब्रह्माण्ड सब प्रत्यक्षोंकी मूर्त्ति है इसप्रकारसे हमने सुनाहै, उस महामुनि प्रजापति ब्रह्माजीने एक वर्षतक अंडे में निवास किया और वहांसेनिकलकर पृथ्वी औरआकाशआदि संपूर्ण संसारका विचार किया और वेदोंमें भी इसस्वर्ग और पृथ्वीकी प्रकटता लिखीहुई है ईश्वरने उस आधे अंडे में मध्यको आकाश बिचारकिया,पूर्णपंडितों ने वेद वेदांगों में इस ब्रह्माण्डकी अवस्थाकी संख्या भी वर्णनकी है उसका दिन पौनेदशहजार कल्पका कहाजाताहै, और अध्यात्म ज्ञानीलोगोंने उस की रात्रिभी इतनीही बर्णनकीहै इसीप्रकार तत्त्वोंका हेतु अहंकारभी उत्पन्न

किया फिर उस महर्षिने भौतिकदेहकी उत्पत्तिसे पहले दूसरे चारपुत्र अर्थात् मनबुद्धि चित्तअहंकारनाम उत्पन्नकिये हेराजा वहीचारोंपुत्र महाभूतोंके पितर सुनेजातेहैं अर्थात् मनआदिही महाभूतोंके कर्त्ता हैं और चौदहइंद्रीरूप देवता महाभूतों के पुत्रहैं इन्हीं चौदहोंमें चौदहभुवन और स्थावर जंगमजीव ढकेहुये हैं ऐसा हमने सुनाहै, ब्रह्ममें लय होनेवाले अहंकारने पृथ्वीआदि पंचतत्त्वों को उत्पन्नकिया,—अहंकारकीउपासना करनेवाले औरउसमें तद्रूपहोनेवाले कालपुरुषकी संख्या को कहतेहैं—तीसरी अहंकारिक नामउत्पत्तिके कर्त्ता अहंकारकी रात्रिको पांचहजार कल्पकी बर्णन करते हैं इसी प्रकार दिनभी जानो, हेराजेन्द्र शब्दस्पर्शादि यहसब पंच महाभूतों में बिशेष नामसे कहे जातेहैं, इन्हीं शब्दादिसे व्याप्तयह सबजीव परस्परमें प्रतिदिन इच्छाकरते हैं और परस्परकी वृद्धिहोने में प्रवृत्त हैं और एकएकको उल्लंघन करके कर्म कर्त्ताहोतेहैं और परस्पर ईर्षा भी किया करतेहैं और बिषयोंसे पीड़ित पशुपक्षी आदि योनिमें प्रविष्ट होकर इसीलोकमें घूमाकरते हैं, हेराजा बिशेषकी उपासना करनेवाले पुरुषोंकादिन तीनहजार कल्पका कहाजाताहै औरइतनी ही रात्रिहोतीहै मननाममहत्तत्त्वकी उपासनासे भूतादि की उपासना अधिक नहीं है यहशंका करके मनकी प्रधानताको सिद्धकरते हैं—हे राजेन्द्र इन्द्रियों से घिराहुआ सबबिषयों में मनहीबिचरताहै इन्द्रियां नहीं देखती हैं मनही देखताहै, चक्षुरिन्द्री मनमेंही रूपोंको देखती है आंखसे नहीं देखती क्योंकि मनकी व्याकुलताहोनेमें देखनेवाली आंखभी नहीं देखतीहै, इसीप्रकार यहां कहते हैं कि सब इन्द्रियां देखतीहैं परंतु इन्द्रियां नहीं देखतीं किन्तु मनही देखताहै और हेराजा मनके अनिच्छा होनेसे बिषयों से इंद्रियोंकी अप्रीति होजाय और जिसहेतुने इन्द्रियोंमें बिषयोंकी अनिच्छाहुई इसकारण मन में भी अप्रीति होती है, इसप्रकारसे मनप्रधान इन्द्रियोंका ज्ञानकरे क्योंकि मन सब इन्द्रियोंका स्वामी कहलाता है यहां यह महायशस्वी मनसब इन्द्रियों में प्रविष्ट होताहै २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेसप्तत्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १३७ ॥

# एकसौअड़तीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्यजीबोले कि मैंने तत्त्वोंकी और कालकीसंख्या क्रमसे बर्णन की अब प्रलयको भी कहताहूं, जिसप्रकार उन आदि अंत न रखनेवाले अबिनाशी ब्रह्माजीने बारंबार जीवोंको उत्पन्नकिया और अपने में लयकरते हैं, वह ब्रह्माजी अपने दिनका अस्तजानकर रात्रि के समय जबशयन करते हैं तब शिवजीको बुलाते हैं फिर अव्यक्त मायासे रहित सौसूर्यके समान

तेजरूप रुद्रजी अपने बारहरूप धारणकरके अग्निके समान प्रचण्ड होते हैं, और चारों खानके जीवोंको भस्मकरते हैं, उससमय यह स्थावर जंगम सब जगत् पलक भरमेंही नाशको प्राप्त होजाता है और सबपृथ्वी चारोंओरसे कछुएकी पीठके समान होजाती है, फिरवह महातेजस्वी सूर्य्यरूप देवता सब जगत् को भस्म करके पृथ्वीको जलसे पूर्णकरदेते हैं, फिर वह जलभी कालाग्नि उत्पन्न होनेसे नाशहोजाताहै जबवह महा कालाग्नि अत्यन्त प्रचंडतर होताहै, तो महाप्रबल ऊंचे नीचे तिरछे घूमतेहुये महा वेगवान् अष्टमूर्त्तिधारी अप्रमेय वायु देवता रूप होकर सब जीवों के जाठराग्नि रूप सप्त जिह्वाओं से उस प्रबल प्रचंड अग्निको भी भस्म करतेहैं, फिर उसभयानक प्रचण्ड वायु को आकाश अपने में लयकरलेता है फिर अधिकारमें बड़ामन भी चारों ओर से अश्रुपात डालताहुआ उसआकाशको निकालताहै और अपना अहंकार बाहरकरताहै यह अहंकार महान् आत्माहै और भूत भविष्य वर्त्तमानतीनों कालोंका जाननेवाला है इसकोभी फिर वह अणिमादिक सिद्धियोंका रूप प्रजाओंका स्वामी ज्योतिरूप अविनाशी ईश्वर निगल जाता है अर्थात् अपने में लयकरलेताहै, जो कि सबओरको हाथपैर शिर, मुखनाक आंख रखनेवाले सबको व्याप्त करके लोकमें वर्त्तमान है और सबजीवोंका हृदयरूप है अर्थात् हृदयमें वर्त्तमान बुद्धिके प्रवृत्त कर्मका कर्त्ताहै और बुद्धिहीकी उपाधिसे अंगुष्ठ प्रमाण कहाजाता है वह अनन्त महात्मा ईश्वर इस विश्वको अपने में लयकरलेताहै, फिर मायाकेनाश होजानेपर वहब्रह्मप्रकट होताहै जोकि न्यूनता रहित अविनाशी विपरीत दशासे पृथक् तीनों कालों का स्वामी और मायाके दोषोंको स्पर्शनहीं करनेवाला है, हे राजेन्द्र यह प्रलयभी मैंने तुमसे अच्छे प्रकारसे वर्णनकी अब अध्यात्म, अधिभूत और अधिदेवको भी सुनाता हूं तुम चित्तसेसुनो १७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेअष्टत्रिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १३८ ॥

# एकसौउन्तालीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्यबोले कि तत्त्वदर्शी ब्राह्मणों ने चरणों को अध्यात्म और गति को अधिभूत और विष्णुको अधिदैवत कहा है, तत्त्वार्थ दर्शियों ने वायु इंद्री को अध्यात्म विसर्गको अधिभूत और मित्र देवताको अधिदैवत वर्णन किया है और योगदर्शी पुरुषों ने उपस्थ इंद्रीको अध्यात्म और उसके आनन्द को अधिभूत और प्रजापतिजी अधिदेव वर्णन किये, सांख्यदर्शी पुरुषों ने दोनों हाथों को अध्यात्म और करने के योग्य कर्मको अधिभूत और इन्द्रको अधि-

दैव कहाहै, श्रुति देखनेवालों ने वाक् इन्द्रीको अध्यात्म कहनेवाला अधिभूत और अग्नि अधिदैव बर्णन किये हैं, वेददर्शी चक्षुरिन्द्रीको अध्यात्म, रूप, अधिभूत और सूर्य्यको अधिदैव कहते हैं, और उन्हीं श्रुति देखनेवालों ने श्रोत्रइन्द्री को भी अध्यात्म कहाहै उसमें शब्द अधिभूत और दिशा अधिदैव है, वेद दर्शियों ने जिह्वा को अध्यात्म, रस अधिभूत और जलको अधिदैव कहा है, श्रुतिदर्शी घ्राणइन्द्री को अध्यात्म गन्धको अधिभूत और पृथ्वी को अधिदैव कहते हैं, तत्त्व बुद्धिमें कुशल पुरुषों ने मनको अध्यात्म उसके बिषय को अधिभूत और चन्द्रमाको अधिदैव कहाहै, और शास्त्रवेत्ता पुरुषों ने त्वक्इन्द्री को अध्यात्म स्पर्श इंद्री को अधिभूत और वायुको अधिदैव कहा तत्त्वदर्शी अहंकारको अध्यात्म अभिमान को अधिभूत और इसमें बुद्धिहोना अधिदैव कहते हैं, फिर उन्हीं पुरुषों ने बुद्धि को अध्यात्म उसके बिषय को अधिभूत और क्षेत्रज्ञको अधिदैव कहाहै, हेराजा आदि मध्य अंत अर्थात् उत्पत्ति समाधि लय में यह पृथ्वी रस्सी में सर्प के समान तुमको ऐसे दिखलाई गई है जैसे कि तत्त्वज्ञ पुरुष सिद्धांत के अनुसार देखताहै, हे महाराज यह प्रकृति रूप अबिद्या स्वतंत्रता और अपनी इच्छासे हजारों महत्तत्त्वादि गुणों को पृथक् २ प्रकट करती है इसी से यह प्रकृति कहलाती है, जैसे कि संसारी पृथ्वी के पुरुष एकदीपकसे हजारों दीपक प्रकाशित करतेहैं इसी प्रकार प्रकृति पुरुष के हजारों गुणों को प्रकट करती है, उनका ब्यौरा धैर्य्य ऐश्वर्य्य, आनंद, प्रीति, प्रकाश सुख, शुद्धि आरोग्यता, संतोष, श्रद्धा, उदारता, क्रोधरहितहोना, अहिंसकता समदृष्टिता सत्यता, तीनों ऋणों से निवृत्त होना, शील, लज्जा, अचपलता बाहर भीतरकी शुद्धता, सरलता आचारता निर्लोभता, निर्भयहोना प्रिय अप्रियतासे रहितहोना बुरेकर्म्म से बचना दान से जीवों को आधीन करना, इच्छा, परोपकार करना, सबपर दया करना, यह सत्त्वके गुणहैं और ऐश्वर्य्य स्वरूपादि त्याग न करना, निर्दयता, सुख दुःखका अभ्यास दूसरेकी निन्दा में प्रवृत्त होना, परस्पर में विवाद करना, अहंकार, असत्कार, चिन्ता, शत्रुता करना, शोक, भय, परायेधनका लेना, निर्लज्जता कुटिलता, परस्परमें बिरोध रखना, अपनी बीरता प्रकट करना काम क्रोध अहंकार, बहुत बकना, यह राजसके गुण हैं, अब तामसके गुणों को सुनो मोह, अप्रकाश, तामिश्र, अन्धतामिश्र, यह तमोगुण के लक्षणहैं भोजन आदिकी वस्तुओं में अधिक प्रीति रखना भोजन से तृप्त न होना, पीने की वस्तुओं से तृप्त न होना सुगंधि, पोशाक, आनन्द के बाग आदि में बिहार, पलंग आदि का शयन आसन, दिन में सोना, अधिक बोलना, और कामों में प्रवृत्त होकर बिस्मरण होना, अज्ञान से नृत्यगीत वाद्य में

प्रवृत्तचित्त, धर्म्मात्माओं से विरोध करना, इत्यादि तमोगुण के धर्म्म हैं २८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे एकोनचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १३६ ॥

# एकसौचालीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्यजी बोले कि इन गुणोंके बिकारों से उनका प्रकाशक पुरुष अनेकरूपका होताहै और इनके समान उत्तम मध्यम निकृष्ट स्थानोंको प्राप्तकरता है इसबातको इसअध्याय में वर्णनकरते हैं--हे पुरुषोत्तम यह सतोगुण रजोगुण तमोगुण तीनों प्रधानकेही गुणहैं वहसदैव सब संसार के आगे वर्त्तमान होतेहैं यहपडैश्वरकास्वामी अव्यक्तरूप हजारोंप्रकारसे आत्माकेद्वारा इसअकेलेशुद्ध चैतन्यकोहजारों लाखोंकरोड़ों प्रकारकाकरताहै इससे इसब्रह्माण्डमें सात्त्विकी पुरुषका स्थान उत्तम है राजसी का मध्यम और तामसीका निकृष्ट स्थान है यह वेदान्त विचारवाले कहतेहैं यहां केवल पुण्यसेही स्वर्गको प्राप्त करना योग्यहै पुण्य और पाप से मनुष्य देह और अधर्म्म से अधोगतिको पाता है इन तीनोंगुणों की प्रशंसा और वैसेही उसके संयोगको भी मैं कहताहूं कि सतोगुणी में रजोगुण और रजोगुणीमें तमोगुण और तमोगुणी में सतोगुण और सतोगुणी का शुद्ध ब्रह्मरूपी अव्यक्त देखागया है सतोगुण से युक्त अव्यक्त जीवात्मा देवलोकको पाताहै, रजोगुण सतोगुणयुक्त मनुष्य नरलोकों में जन्मलेताहै और रजोगुण तमोगुणयुक्त पुरुष तिर्य्यग्योनि पशुपक्षीआदि में जन्म लेताहै, रजोगुण तमोगुण और सतोगुण तीनों से युक्त मनुष्य शरीर को पाताहै और पुण्य पाप से पृथक् मनुष्य महात्माओंके स्थानको पाताहै, और जो सनातन अविनाशी न्यूनता से रहितहै वह मोक्षरूप है, ज्ञानियोंमें जन्म लेना उत्तमहै उनका स्थान निर्विकार अविनाशी इच्छाओं से रहित अविद्या से पृथक् जन्म मरण और अज्ञानका नाश करनेवालाहै वह अरूप ब्रह्ममें नियत होनेवाला सर्वोपरि है जिसको तू मुझ से पूछताहै वही ब्रह्म प्रकृति में नियत होकर प्रकृतिहीमें निवास करनेवाला कहाजाता है, हेराजा प्रकृतिको भी जड़रूपही मानते हैं वह प्रकृति इस चैतन्यसे मिलकर उत्पत्ति और नाशको करती है परन्तु पकड़ने में नहीं आती है, हे वेदपाठियों के इंद्र याज्ञवल्क्य तुम मोक्षधर्मको सम्पूर्णता के साथ उपासना करतेहो मैं सम्पूर्ण मोक्षधर्म को मूल समेत सुनना चाहताहूं इसीप्रकार चैतन्य होनेपर भी आवश्यक गुणों के वर्त्तमान होने बिना उनका होना कैसे होसक्ता है क्योंकि अग्नि और उसकी ऊष्माके समान प्रकृतिपुरुषकी प्रीति एकसाथ होजाती है और वर्त्तमानता होनेपरभी एकताअर्थात्प्रकृतिसे पृथक्कैसेहोसक्तीहै क्योंकि पुरुष के ऐश्वर्य्य और प्रकृति के अविनाशी होने से उसका होनाअसम्भवहै

और शरीरमें जो देवता नियतहैं उनकोभी मुझे समझाइये, इसीप्रकार देहके त्यागनेवाले मृतकजीवके उसस्थान को भी बताइये जिसको कि समय पर प्राप्त करताहै और सांख्यज्ञान और पृथक्योग को भी मूल समेत वर्णन कीजिये हे महात्मा आप मृत्यु जाननेवाले तत्त्वोंके भी वर्णन करनेको योग्यहैं यह सब आप हस्तामलकके समान जानतेहैं १८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १४० ॥

# एकसौइकतालीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्यजी बोले कि हेराजा वह निर्गुण ब्रह्म सगुणहोना ऐसे असम्भव है कि वह गुणवान् और निर्गुण दोनों है इसको मूलसमेत मैं कहताहूं वह मायाके गुणोंसे गुणवान्है इसीप्रकार गुणोंसे पृथक् निर्गुणहै ब्रह्मका साक्षात् करनेवाले महात्मा मुनियोंने इसप्रकार से कहाहै, गुणकास्वभाव रखनेवाला अव्यक्त गुणोंको त्यागकर वर्त्तमान नहीं होसक्ता है और स्वभावसे अज्ञानी वही अव्यक्त उनगुणोंको भोगताहै, और दृष्टिसे अलक्ष दूसरा चिदात्मापुरुष स्वभावसेही गुणों को न जानताहै न भोगता है किन्तु सदैव मानता है कि मुझ आत्मासे भोगने के योग्य पदार्त्थ पृथक् नहीं हैं, इसीकारण भोक्तापन और अभोक्तापनकी विलक्षणता से स्वभावसेही जड़रूप वह प्रधान अव्यक्त चैतन्यकी प्राचीन योगता और विनाशी अविनाशीपन आदि गुणोंसे भोक्ता है और काष्ठके समान चैतन्य के अंशसे भिन्न नहीं है इसीकारण अज्ञान के हेतुसे बारम्बार गुणों से मिलाकरताहै इस निमित्त जबतक आत्माको असंग नहीं जानताहै तबतक मुक्त नहीं होताहै, इसीप्रकार संसारके कर्तृत्वभावसे भी धर्मकी उत्पत्तिवाला कहाजाताहै और योगोंके स्वामीपनसे भी धर्म कहलाताहै इसहेतुसे मुक्तनहींहोताहै,प्रजाओं के स्वामीभावसे प्रकृति धर्मता नाम गुणको धारण करताहै इसकारणसे भी मुक्तनहींहोता बीजोंके स्वामी होनेसे बीजधर्मा और गुणोंकी उत्पत्ति लय करनेसे ईश्वर कहलाताहै इत्यादि सबकारणों से मुक्ति से रहितहोताहै,इसप्रकारके पुरुषकी एकता कैसेहोसक्ती है इसीसे कहते हैं—तप से पृथक् ब्रह्मविद्या जाननेवाले शुद्धयतीलोग केवल साक्षीभाव और एकत्वता से अथवाअभिमानसे मानतेहैं कि अव्यक्तअर्थात् गुप्तब्रह्म सदैवहै और प्रत्यक्ष कार्य्य सब बिपरीत दशाकरनेवाले हैं अर्थात् बिनाशवान् हैं यह सुनते हैं, इसी प्रकार अनीश्वरबादी सांख्यों ने अव्यक्तकी एकताको और पुरुषोंकी अनेकताको कहा है वह अनीश्वर सांख्यबादी सब जीवोंपर दयावान् होकर केवल ज्ञानमें नियत होते हैं, अब प्रकृति पुरुषके बिभागको बहुत दृष्टांतों समेत कहते हैं वह सबमें पूर्णअबिनाशी नाम अव्यक्त और है अर्थात् पुरुष

से पृथक्है जैसे कि सींकों के बाहर मूंजउत्पन्न होती है उसीप्रकार यह भी उत्पन्नहोता है इसीप्रकार गूलर और गूलरके भुनगोंकी अलगजाने क्योंकि भुनगे गूलरकेयोगसे पृथक् हैं इसीप्रकार जल और मछली को समझो क्यों कि मछली सब दशामें जलके स्पर्शहीकी पाबन्दी नहींरखती इसीप्रकार अग्नि और अग्निकी अंगीठी पृथक् पृथक्हैं इसीप्रकार कमल और जलभी जुदे २ हैं ज्ञानीपुरुष इन सबके निवासस्थान और साथीके निवास स्थानको सदैव मुख्यता अर्थात् आद्योपांतदेखतेहैं और जो प्राकृत मनुष्यहैं वह सदैव नहीं देखते हैं, जो पुरुष बिपरीत देखनेवाले हैं उन्होंमें पूर्णदृष्टि नहींहै वह सबके प्रत्यक्ष घोरनरकमें पड़ते हैं, यह सांख्यदर्शन और उत्तमयोग तुमसे कहा सांख्यपर चलनेवाले पुरुषोंने इसीप्रकारसे ज्ञानीहोकर एकता को प्राप्त कियाहै, उससांख्यमें जो दूसरे ज्ञानीप्रवृत्तहों उनके निमित्त यहसब दृष्टांतहैं, अब योगियों के विचारज्ञान को कहताहूं--२० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेएकचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १४१ ॥

# एकसौबयालीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्य बोले हे राजेन्द्र मैंने सांख्यज्ञानको तो वर्णन किया अब योगज्ञानको मूलसमेत मुझसेसुनो, सांख्यके समानकोईज्ञान नहींहै इसीप्रकार योगके समान कोई पराक्रमनहीं है वह दोनों एक चरियावाले अर्थात् शम दमादिका अनुष्ठान करनेवाले और मृत्युके नाश करनेवाले कहे हैं हे राजा जो मनुष्य अल्पबुद्धि हैं अर्थात् उनदोनों को पृथक् २ देखते हैं और हम अपने निश्चयसे एकही देखतेहैं, जिसको योगीलोग देखतेहैं वही सांख्य मतवाले भी देखतेहैं जो सांख्य और योगको एकदेखताहै वही तत्त्वज्ञ कहाताहै, हे शत्रुहन्ताराजा दूसरे धारणरूप योगोंको रुद्रप्रधान जानो अर्थात् शरीर त्यागनेके समय जीवात्माको रुलानेवाले प्राण इन्द्रीआदि प्रधानरूप आलम्बन उनधारणाओं में नियत हैं उसप्राणधारणाका यह फल है कि वह योगी दशोंदिशामें उसीदेहसे घूमते हैं अर्थात् आकाशकी गतिमें सामर्थ्यवान् होते हैं, हे निष्पाप जनकपुत्र जब तक ब्रह्ममें लयभावहो तबतक योगकेद्वारा अष्टपुरीरूपसूक्ष्मशरीरसे लोकोंमें घूमतेसुखपूर्वक संन्यासको धारण करो यह फल केवल श्रद्धाबढ़ानेके निमित्तकहाहै कुछयोगियोंको आवश्यक आदरार्थनहीं है, हे राजेन्द्र ऋषियोंने वेदोंमें अष्टउन्माद आदि गुणरखने वाले योगकोपढ़ाहै और प्राणायाम, प्रत्याहार,ध्यान,धारणा, त्याग,समाधि, यम, नियमरखनेवाले योगको सूक्ष्मकहाहै उसअन्यकोनहीं कहाहै जिसको पहिले आधेश्लोक में वर्णन कियाथा, योगियोंकी उत्तम योगचरिया को

शास्त्रके दृष्टांतसमेत दो प्रकारकीकही पहिली सगुण अर्थात सबीज दूसरी निर्गुण अर्थात् निर्बीज, हेराजाप्राण निग्रहके साथ आधारोंमें मनकाधारण करना सगुण योगचरिया कहलाती है इसीप्रकार ध्यानकरनेवाला ध्यानके योग्य बस्तु और ध्यान इनतीनोंके विभागसे पृथक् उसएक ईश्वरके सन्मुख होना और मनसमेत इन्द्री और बुद्धिको रोकना यहनिर्गुण योगचरिया कहाती है, सगुण निर्गुणअंग और अंगी हैं इसबातको कहते हैं—प्राणायाम सगुण है और वृत्तिसे मनको पृथक् नियतकरना निर्गुणहै हेराजाजो योगीदृष्टिसे गुप्त त्यागके स्थानप्राणमें प्राणोंको छोड़ताहै तबवायुकी आधिक्यताहोतीहै तात्पर्ययहहै कि जो योगीहै और मूलाधार आदिके देवता आदिका ध्यानकरता हुआ बायुकी धारणाकरता है वह सिद्धिको पाताहै और जोध्यान रहित केवल अभ्यास करताहै वहअवश्य कष्टको सहताहै जैसे कि पवनयोग संग्रहमें लिखा है कि ध्यान देवतासे संयुक्त प्राणायाम करनेसे सब रोग दूरहोते हैं और जिसमें अभ्यास और योगयुक्त नहीं है उसके करनेवाले को महारोग उत्पन्न होता है वहदेवता यहहैं किनीलकमल दलके समान श्यामवर्ण नाभिदेशकेमध्यनियत चतुर्भुज रूपको पूरकके द्वारा ध्यानकरे और हृदयमें नियत कमलासन पर रक्तवर्ण वा श्वेतवर्ण चतुर्मुख ब्रह्माजीको कुम्भककेद्वारा ध्यानकरे और ललाटमें नियत शुद्धस्फटिकरूप पापनाशक महेश्वरजीको रेचकके द्वारा ध्यानकरे इन्हीं हेतुओंसे उसको नहींकरे अर्थात् मूलाधार चक्रसे लेकर सब चक्रों में प्राणको पहुंचाकर उनके अधिष्ठाता देवताका ध्यान यहांतककरे कि बारहवींबार शुद्ध ब्रह्ममें ध्यानलगाना होजाय इसप्रकारसे बायुधारणाआदि उपायकेद्वाराडुःखसे जीतने योग्य मनको अपने आधीन करके शांतरूप तत्त्वप्राप्तिके योग्य एकांत अभ्यासी केवल आत्मामेंही क्रीड़ाकरनेवाले तत्त्वज्ञ योगीकी ओर से जीव ब्रह्मकी निस्सन्देह एकताकरनेके योग्यहै,अब मिलजानेकी रीतिको कहतेहैं—पांचों इन्द्रियोंके पांचप्रकारके उनदोषोंको जोकि इच्छाके अप्राप्तिरूप शब्दादि विषयों को प्राप्तहों तुच्छकरके विक्षेप और लयको एकरूप करके सम्पूर्ण इन्द्री समूहोंको मनमें और मनको अहंकारमें,अहंकारको महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वको प्रकृतिमें लयकरके फिर मायासे रहित ब्रह्मका ध्यान करते हैं वह ब्रह्म रजोगुण से रहित अनन्त प्राचीन अत्यन्तपवित्र रूपांतर दशासे रहितहै १६ कूटस्थ पुरीरूप देहोंमें शयन करनेवाला अज्ञानदशामें जीव ईश्वररूपके कारणमाया से द्वैत न भासकरने वालाभी आकाशके समान गिरनेवाला अजर अमर सदैव अविनाशी परमेश्वर ब्रह्मन्यूनतासे रहितहै हे महाराज समाधियोंमें नियतयोगीके लक्षणोंको और आनन्दरूप योगीके उनलक्षणोंको सुनो जैसे कि तृप्तहोकर आनन्दसे सोताहै, वायुरहित स्थानमें घृतसेपूर्ण दीपक प्रकाशमानहोते हैं और

अग्निकी ज्वालाभी निश्चल प्रकाशमानहोतीहै उसीप्रकारसे समाधिमें नियत योगीकोभी ज्ञानीलोगकहतेहैं औरजैसे कि मेहकीबूंदेंपर्वतको चलायमाननहीं करसक्तीं उसीप्रकार समाधिमें नियत योगीका चित्त नानाप्रकारके गीतवाद्य रागादिकों से नहीं चलायमानहोता यह मुक्त पुरुषका दृष्टांतहै,समाधिस्थों के लक्षण कहकर अबयोगी के लक्षणोंको कहते हैं--जिसप्रकार हाथ में खड्ग लिये मनुष्यों से घुड़काहुआ भयभीत मनुष्य तेलके पात्रको दोनों हाथों से पकड़कर सीढ़ीपर चढ़ताहै और वह सावधान चित्त उन खड्गधारियोंके भय से पात्रके तेलकी बूंद भी न गिरावे इसीप्रकार एकाग्र चित्त योगी के उत्तम लक्षणको पाकर वैसाही होजाताहै, इसप्रकार जितेन्द्री समाधिमें नियतयोगी के लक्षणको जानो आत्मामें मिलाहुआ पुरुष उस ब्रह्मको देखता है जो कि न्यूनता रहित महाउत्तमहै और ज्योतिस्वरूप तत्त्वंनाम दोनों पदार्थों में नियत है अर्थात् उन दोनों का सारांशरूपहै, हे राजा इसज्ञान के साक्षात्कारसे बहुत समयमें अनात्मारूप देहको त्यागकर शुद्धब्रह्मको पाताहै यह सनातन श्रुतिहै यही योगियोंका मुख्ययोगहै दूसरा योगनहीं है इसीयोगको जानकर ज्ञानीलोग अपनेको निवृत्त मानतेहैं २७॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे द्विचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १४२॥

# एकसौतेतालीसका अध्याय॥

याज्ञवल्क्य ऋषि बोले कि राजयोगके फल कैवल्यप्राप्तिको कहकर अब हठयोगका फल कहतेहैं—हे राजा इसीप्रकार सावधान होकर अब देहके त्यागनेवाले जीवात्माको सुनो, मनके साथ प्राणको चरण में धारण करनेवाले और उसीमार्ग से देह के त्यागनेवाले का परमपद विष्णुलोक वर्णन करते हैं, जंघाओं से वसुदेवताओं के लोकों को और घुटनों के द्वारा साध्य देवताओं के लोकों को प्राप्त करताहै, पाप इन्द्री में मन और प्राण की धारणा से प्राण त्यागनेवाला मनुष्य मैत्रलोकको और जघन अंग से पृथ्वी को और ऊरू अंगसे प्रजापतिके लोकको और दोनोंपार्शोंसे मरुत् देवताओं के लोकको और नाभिके द्वारा इन्द्र पदवी को पाता है और दोनों भुजाओं सेभी इन्द्रलोकको और छातीके द्वारा रुद्रलोकको पाताहै, ग्रीवासे मुनियों में श्रेष्ठ नरलोकको मुखसे बिश्वेदेवाओं के लोकको और श्रोत्रइन्द्रीसे दिशाओं को पाताहै और मूर्द्धाकेद्वारा सुषुम्णानाड़ी अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रसे देवताओंसे प्रथमही प्रकट होनेवाले प्रभु ब्रह्माजीको पाताहै, हे मिथिलेश्वर यहशरीर त्याग के स्थान वर्णन किये अब ज्ञानियोंके नियत कियेहुये मृत्यु चिह्न जो कि एकबर्षके अन्तर्गत मरनेवालों के शरीरमें प्रकट होते हैं उनको वर्णन करताहूं

जो पुरुष पहले देखेहुये अरुन्धती के नक्षत्रको और ध्रुवजीके नक्षत्रको और पूर्ण चन्द्रमा और दीपक पूरा न देखसके वहएकही वर्षके भीतर देहको त्यागेंगे और हे राजा जो पुरुष दूसरे मनुष्य के नत्र में अपने प्रतिबिम्बको नहीं देखतेहैं वहभी एकही वर्ष के भीतर जीवेंगे तेज और बुद्धिकी आधिक्यताहोना अथवा दोनों का नाशहोजाना और स्वभाव में विपरीत होना अर्थात् असन्तोषी से सन्तोषी होना कृपणसे उदारहोना यहतो ऐसा लक्षण है कि छही महीने में मृत्यु होजाय—जो देवताओंका अपमान करताहै और ब्राह्मणों से शत्रुता करता है कृष्ण वर्ण वा धूसर वर्ण दीखकर मृत्यु को प्रकट करताहै यह छः महीनेके पीछे मृत्युहोने का लक्षण है, जो पुरुष चन्द्रमा और सूर्यको मकड़ीके जालेके समान वा उन चन्द्रमा सूर्यमें छिद्रदेखताहै वह सातही रात्रिमें मरनेवाला है, जो पुरुष देवताके मन्दिर में वर्त्तमान सुगन्धित वस्तुको पाकर उसमें मृतककीसी गन्धको सूंघता है वहभी सातही रात्रिमें मरनेवालाहै,कान नाकका टेढ़ाहोजाना,दांत और आंखकारंग बदलजाना,देहकी बेहोशी और गर्मीका दूर होजाना यह बहुतजल्द मरनेके लक्षण हैं, हे राजा जिसके बायें नेत्रमेंसे अकस्मात् अश्रुपात होने लगें और मस्तकसे धुआंनिकले वहशीघ्र मरनेका लक्षणहै,ज्ञानी मनुष्य इतनेमरनेकेलक्षण जानकर दिनऔर रात आत्मा को परमात्मामें मिलावे, जिससमय कि मरणहोगा उसकालकीबाटदेखनेवाला अपने मरणको अप्रियजाने उसदशामें इसकर्म्मको करनाचाहिये,पूर्व्वोक्तरीति से पृथ्वी आदिके विजय करनेकेद्वारा उनके गन्धादि विषयभी जीतेजाते हैं और पांचोंतत्त्वोंके विजय करनेसे मृत्युकोभी विजय करताहै इसकोकहते हैं— हेराजा सबगन्ध और रसोंको धारणकरे अर्थात् आत्माके रूप समानकरे वह नरोत्तम सांख्य और योग से प्रशंसनीय ज्ञानीपुरुष योग और उसयोगमें प्रवृत्त अंतरात्माकेद्वारा संसारी मृत्युको जीतता है, और उसपूर्ण अविनाशी अजन्मा आनन्द स्वरूप न्यूनतादि आवागमन और रूपांतर दशासे रहित को प्राप्त होकर उसकेज्ञान से उसकीएकता प्राप्तकरे जो कि भ्रष्ट अन्तःकरण वालेपुरुषोंसे करना कठिनहै २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्व्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १४२ ॥

# एकसौचवालीसका अध्याय ॥

याज्ञवल्क्य ऋषिबोले हेराजा अचलहोनेकेकारण ब्रह्मऔरप्रकृतिकी पृथक्ता सिद्धकरनेकोयाज्ञवल्क्यऋषिबोले—तुम अव्यक्त में नियत जोपर परब्रह्म है उसको और अपने पूछेहुए गुप्तप्रश्नको सावधानीसे श्रवणकरो१ ब्रह्मविद्या की कठिनतासेप्राप्ति और गुप्तता देवताकी प्रसन्नतासे होतीहै इसको कहतेहैं२

हे नरोत्तम जिसप्रकार इससंसार में मैंने आर्षबुद्धि में प्रवृत्त होकर बड़ीनम्रतासे यजुर्वेदकीऋचाओं को सूर्य्य नारायण से प्राप्तकिया है निष्पाप मैंने बड़ी तपस्या से उसज्योतिरूप संसार के प्रकाशक देवताको सेवनाकियाथा तब उसने प्रसन्न होकर मुझको आज्ञादी कि हे ब्रह्मर्षि तुम वहवरमांगो जो तुम्हारा अभीष्ट और कठिनता से प्राप्तहोनेवालाहै मैं प्रसन्न चित्तहोकर वहवर तुमको दूंगा मेरा प्रसन्न करनाबड़ा कठिनहै तब मैंने शिरसे साष्टांग दण्डवत् करके उस सर्वप्रकाशक सूर्य्य देवता से प्रार्थना करी कि यजुर्वेद की उनऋचाओं को जो कि अन्य मनुष्यों को अप्राप्त हैं शीघ्रही जानना चाहताहूं तदनन्तर षडैश्वर्य्य के स्वामी सूर्य्य देवता ने मुझ से कहा कि हे ब्राह्मण में तुझकोदूंगा और यहांवचनरूप सरस्वती तेरेशरीरमें प्रवेशकरेगी, फिर आज्ञा दी कि अपना मुख फाड़ो जभी मैंने मुख को फाड़ा उसी समय सरस्वतीजी उसमें प्रवेश करगई, इसके अनन्तर मैं अत्यन्त तप्त महात्मा नारायण सूर्य्य के तेज को न सहकर जल में घुसगया फिर मुझको अत्यन्त सन्तप्त समझकर भगवान् सूर्य्य ने कहा कि एक मुहूर्त्तमात्र शरीरके तापको सहो फिर तेरा शरीर शीतल होजायगा, सूर्य्यनारायणने जब मुझको तापसे रहित देखा तब प्रसन्नतासेकहा कि हे ब्राह्मण तेरा वेद उपनिषदों समेत बड़ी प्रतिष्ठाको पावेगा और सतपथनाम ब्राह्मणको प्रकट करेगा तदनन्तर तेरी बुद्धि मोक्ष में नियत होगी, सांख्ययोग में जो अभीष्टपदहै उसको भी प्राप्त करेगा इतना कहकर वह सूर्य्यरूप परमेश्वर अन्तर्द्धान होगये, फिर मैंने अत्यन्त प्रसन्नता से घरमें आकर सरस्वती को ध्यानकिया इसके अनन्तर स्वर और व्यंजन वर्णों से विभूषित प्रणवको सन्मुख करके देवी सरस्वतीजी मेरे मुखसे प्रकटहुईं फिर देवता में प्रवृत्तचित्त होकर मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार सरस्वती और सूर्य्यदेवता को ध्यान किया फिर तब उत्साह से सम्पूर्ण शतपथ रहस्य संयुक्त मैंने संग्रह किया तात्पर्य्य यहहै कि सरस्वती के मुखमें प्रवेश करने से और सूर्य्यदेवताकी कृपा से वह प्राचीन शतपथ आपसे आप प्रकट होगया और मेरे १००सौ शिष्य उनको पढ़कर विद्वान् होगये फिर जैसे कि सूर्य्य अपनी किरणों से घिरा होता है उसीप्रकार शिष्यों से घिरेहुये मैंने अपने मामा महात्मा वैशम्पायन और उनके शिष्योंका अप्रिय करनेको तेरे महात्मा पिता का यज्ञ व्याप्त किया,उसके पीछे धनके निमित्त मामाआदिसे बड़ा विवाद होनेपर अपने मामाके पक्षवाले देवल ऋषि के देखतेहुए मैंने अपनी वेद दक्षिणाका आधाभाग प्राप्त किया फिर जैमिनि आदि ऋषियों सेभी मैं स्तुतिके योग्यहुआऔर हेराजामैंनेतो सूर्य्यदेवतासे यजुर्वेदकीपन्द्रह ऋचाप्राप्तकीं और लोमहर्षऋषिने उन्हीं सूर्य्यदेवता से पुराणोंकोपढ़ा,फिर मैं

बीजरूप प्रणव और देवी सरस्वतीको सन्मुख करके सूर्य्यनारायण के अनुभाव से शतपथ के करने में प्रवृत्त हुआ और मैंने बड़े परिश्रम से अनूपम शतपथ नाम ब्राह्मण प्रकट किया और शिष्योंकी जैसी अभिरुचिथी उसीके समान सम्पूर्ण ज्ञान सिखलाया और शिष्यलोग बाहर भीतर से पवित्र अत्यन्त प्रसन्नचित्तहो अपने २ आश्रमोंको चलेगये सूर्य्यकी दीहुई इनपंद्रह शाखानाम विद्याको प्रतिष्ठा देकर इच्छानुसार उस जाननेके योग्य ब्रह्मका बिचारकरे, इसलोकमें ब्राह्मणको कौनबस्तु हितकारी और कौनसी जाननेके योग्य सत्य और श्रेष्ठतर हैं इस बातको मैं बिचारही रहाथा कि एक गंधर्वने वहांआकर मुझसे प्रश्नकिया फिर वेदांत ज्ञानमें पण्डित विश्वावसु गंधर्वने आकर वेद के चौबीस प्रश्नों को पूछा और युक्तिविचार संबंधी पचीसवें प्रश्न कोभी गंधर्वोंने मुझसे पूछा और विश्व, अविश्व, श्वा, अश्व, मित्र, बरुण, ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञ, अज्ञ, कः, तपा, अतपा, सूर्य्याद, सूर्य्य, विद्या, अविद्या, वेद्य, अवेद्य, अचल, चल, अपूर्व, अक्षय, क्षय यह उत्तम चौबीस प्रश्नपूछे, इसके अनन्तर मुझसे आज्ञालेकर उनगन्धर्वोंमें श्रेष्ठ गंधर्वोंके राजाने अर्थयुक्तउत्तम प्रश्नोंको क्रमसे पूछना प्रारम्भकिया, तबमैंने कहाकिमैं एकमुहूर्ततक बिचारांश करताहूं तबतक आपठहरिये यहसुनकर वहगन्धर्व मौनहोगया तब मैंनेभगवती सरस्वतीको स्मरणकिया भगवतीकीकृपासे वहप्रश्नमेरे चित्तकेऊपरऐसे आगया जैसे कि दहीपर घृतआजाताहै हेतातजनकमैंने उसस्थानपर सरस्वतीकीकृपासे दीखनेवाली युक्तिको देखकरवेदऔर उपनिषदोंकेदृष्टांतोंको मनहीमनमेंमथन किया हेनरोत्तम यहविद्या जो मैंने तुझसे वर्णनकीहै और तत्त्ववाले देहकेअधिकारमेंनियतहैवहदण्डनीति और मोक्षसे सम्बन्धरखनेवालीहै फिर मैंनेराजाविश्वावसुसे कहा कि हेगन्धर्वों के इन्द्र जो तुम विश्वऔर अविश्व नाम प्रश्नको पूछते हो तो इस विश्वको प्रधान अज्ञानरूप अव्यक्त नाम जानो यही इस संसार का उत्पन्न करनेवाला है और अपने कर्त्तापने के गुण से तीनगुणों को धारण करता है इसीप्रकार का अविश्व अर्थात् आत्मा भी अंगों के विभागों से पृथक् है ऐसेही अश्वा और अश्वका भी जोड़ा दृष्ट आता है अर्थात् प्रकृति अश्वा और उसका मानना अश्व है, स्त्रीरूप प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं और वीर्य डालनेवाले पुरुषको निर्गुण कहते हैं अर्थात् प्रकृती पुरुषके प्रतिबिम्बको पाकर सृष्टिको उत्पन्न करती है इससे अन्य दूसरा शुद्ध ब्रह्महै इसीप्रकार पुरुषको मित्र और प्रकृतिको बरुण कहतेहैं, ज्ञानको प्रकृति और ज्ञेयको शब्द ब्रह्मइसकारणसे जीव और ईश्वरनाम रखनेवाला अकेला पुरुष शुद्धब्रह्मही कहाजाताहै और (क) वा तपा, अतपानाम जो कहा यह आनन्दपुरुष कहाजाताहै इनमें तपाको प्रकृति अतपाको शुद्धब्रह्म कहते हैं,

तात्पर्य यह है कि जीवतो कार्यकी उपाधिहै और ईश्वर कारणकी उपाधि है उपाधिके दूरहोनेपर वह दोनों शुद्धब्रह्म हैं, अवेद्य अर्थात् न जानने के योग्य को अव्यक्त और वेद्य अर्थात् जानने के योग्यको पुरुष कहते हैं और जो चल वा अचल है उसको भी कहताहूं अर्थात् अज्ञानके दूरहोनेसे केवल ब्रह्म जाननेके योग्यहै उपासनाके योग्य नहीं है और अव्यक्त तुच्छतासे जानने के अयोग्यहै जैसे कि रस्सीको सर्प माननाहै वहांउसको सर्प न मानें किन्तु रस्सीहीमानें, उत्पत्तिनाश के कारण रूपांतर होनेवाली प्रकृतिको चलकहा और उसकी उत्पत्ति और लयका करनेवाला अचलपुरुष कहाजाताहै अर्थात् सदैव एक दशामें रहताहै और उसीके आभाससे प्रकृतिका होनाहै,इसीसे अव्यक्तको प्रकटहोनेसे जानने के योग्य कहा और पुरुषको गुप्त होनेसे न जानने के योग्य वर्णन किया दोनों अज्ञानहैं अर्थात् प्रकृति जड़ है और पुरुष प्रकृतिके मिलनेसे अपने मुख्यरूप ब्रह्मको नहीं जानता है दोनों आदिरहित अबिनाशी हैं अर्थात द्वैतदशामें तो अवश्य बिनाशी हैं परंतु अज्ञान रहित होनेमें केवल शुद्धब्रह्महैं, अध्यात्मगतिके निश्चयसे दोनोंको अजन्मा बर्णन करतेहैं, वेदोक्त बीसप्रश्नों का उत्तर वेदकीही रीति से देकर अब तर्कना से उत्पन्न प्रश्नोंके उत्तरको तर्क बलसेही देतेहैं—यहां बहुतरूपसे प्रकटहोनेपरभी न्यूनता न होनेसे उस अजन्माको न्यूनता रहित बर्णनकिया और उस अष्टपुरीमें निवास करनेवाले को अबिनाशी कहा क्योंकि उसका नाश वर्त्तमान नहीं है, भोग ऐश्वर्यादि गुण बिनाशवानहैं और मायाको उत्पत्तिकरने से प्रकृतिनामहै कर्म्मउपासना ज्ञान से बारंबार उत्पन्नहोनेवाले भोग ऐश्वर्य्यको अबिनाशीकहा क्योंकि वह तीनोंभोग पृथ्वीपर नहीं हैं इसीकारण अप्राकृत लोकोंमें भोगोंकी अबिनाशिता योग्यनहीं है और कर्म्म भूमि में सिद्धहोने वाले भोगोंका अवश्य बिनाशहै और भोग भूमि में अनुष्ठान नहीं होता है यहसब ज्ञानी लोगोंका कथन है और जिसमें युक्ति विचार उत्तमहै यहमोक्ष संबंधी चौथी बिद्या तुमसे कही, इसचौथीबिद्यासे मिलेहुये धनको श्रवणमनन करके गुरुके द्वारा नित्यकर्म में प्रवृत्त होनायोग्यहै हे विश्वावसु सब वेदकर्म नित्यहैं और ईश्वरके प्रत्यक्ष करनेवालेहैं हेगंधर्बराज यह आकाशादि जिस अधिष्ठानमें उत्पन्न और लय होतेहैं उस जानने योग्य वेदसे सिद्ध होनेवाले आत्माको जिस हेतुसे नहीं जानतेहैं उसी हेतु से सब नाशको पाते हैं, जो पुरुष वेदोंको अंग उपअंग समेतभी पढ़ताहै, और वेदसे जानने योग्य ब्रह्म को नहीं जानताहै वह वेदोंका भार उठानेवालाहै, हे गंधर्व जो घृतका चाहने वाला गधीके दूधको बिलोवे वह उसमें मठा और घी नहीं पाताहै किन्तु मठा रूप विष्ठाको देखताहै, इसी प्रकार जो वेदका जाननेवाला पुरुष जानने के

बोले कि शोभायमान दर्शनसे दिखाई देनेवाला वह महात्मा गन्धर्व बड़ी प्रसन्नतासे यह कहताहुआ आशीर्वाद देकर मेरी परिक्रमा करके प्रकाश करता हुआ स्वर्गको चलागया, हे नरेन्द्र पृथ्वी और पाताल में जो निवास करतेहैं और जो ब्रह्मा आदि आकाशचारी देवताओं के लोक और कल्याण रूप मार्ग में वर्त्तमान हैं वहांही उनको इसशास्त्रका ज्ञान देने को उस गन्धर्व ने निवास किया, जैसे सब सांख्य मतवाले लोग सांख्यधर्म में प्रवृत्त हैं उसीप्रकार योगी लोग भी धर्म्म में प्रीति करनेवालेहैं और जो कोई अन्य लोग भी मोक्षके आकांक्षी हैं उन्होंकेही निमित्त यह शास्त्र प्रत्यक्ष फलका देनेवाला है, हे राजेन्द्र ज्ञानसेही मोक्ष उत्पन्न होतीहै अज्ञानसे कभी नहीं होती इस कारण ज्ञानहीको मुख्यता समेत निश्चय करना योग्यहै ज्ञानहीं से आत्मा जन्म मृत्युसे रहित होताहै, ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र अथवा कोई नीच भी हो उससे भी ज्ञानके लेने में श्रद्धा करनी चाहिये श्रद्धावानको जन्म मृत्यु नहीं होतीहै, सब वर्ण ब्रह्मासे उत्पन्न ब्राह्मण हैं जो सदैव ब्रह्मकोही कहते हैं मैं ब्रह्मबुद्धि से तत्त्वशास्त्रको कहताहूं कि यह सम्पूर्ण स्थावर जंगम संसार ब्रह्मही है, ब्रह्माजी के मुखसे ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्री जंघाओं से वैश्य और चरणों से शूद्र किसी बरणको भेद दृष्टिसे न जानना चाहिये, हेराजा अज्ञान के द्वारा कर्मसे उत्पन्न होनेवाली उस उस योनिको सेवन करतेहैं और वह जैसे नाशको पातेहैं उसीप्रकार ज्ञानसे रहित सब बरण महाअज्ञान से अनेक योनियों में गिरते हैं, इसीकारण सबप्रकारसे सबसे ज्ञानलेना योग्यहै मैंने सब वर्णों में वर्त्तमान यह ज्ञान पदार्थ तुमसे बर्णन किया जो ज्ञान निष्ठ है वही ब्राह्मणहै और जो क्षत्री आदि भी ज्ञानमें प्रवृत्तहो उसके लिये भी यही मोक्ष मार्गहै, जो तुमने पूछा उसको मैंने यथातथ्य बर्णन किया इससे अब तुम निर्भय होजाओ तुम अपने अभीष्टको पाओगे तेरा कल्याणहो, भीष्मजी बोले कि इसप्रकार से याज्ञवल्क्यजी से उपदेश पाकर वह बुद्धिमान् राजा जनक
वल्क्य... हुआ और इनकी परिक्रमाकी तदनन्तर उनको बड़े सत्कार पूर्वक
सब स्थावर पीछे ध्यानमें प्रवृत्त होकर बड़ी श्रद्धाके साथ राजा जनकने एक
को सुनाइये ज... और अप्रमाण सुवर्ण और अनेक रत्नोंका दान ब्राह्मणों को
हे गन्धर्व मैंभी तु... राज्यको अपने पुत्रको सुपुर्द करके संन्यास धर्म में उप-
आप शास्त्रके अनुसार ...र अविद्या सम्बन्धी धर्म और अधर्म निन्दा करता
प्रकृति को जड़रूप जानता ...ं सांख्यज्ञान और योगशास्त्र का ज्ञाता हुआ,
जानतीहै तात्पर्य यहहै कि ज...य करके और धर्म अधर्म पुण्य पाप सत्य मिथ्या
से पुरुष नहीं प्रकाशित होता ...से संयुक्त जानकर सदैव शुद्धब्रह्मकेही ध्यानमें
तत्त्वज्ञयोगी और सांख्यमतवा... शास्त्रोक्त लक्षण रखनेवाले योगी और सांख्य

मतवाले सदैव देखतेहैं कि यह धर्म आदि बुद्धि और अज्ञानका कर्म है १०० ज्ञानियों ने सदैव उस ब्रह्मको अप्रियता रहित बड़ेसे बड़ा पवित्र और अचल वर्णन कियाहै इसकारणसे तुम भी पवित्र होजाओ, हे राजा जो दियाजाता है वा जो पाता है और जो मानता है कि मैंने दिया अथवा जो लेताहै वा देताहै वह सब आत्माही है, निश्चय करके देनेलेनेवाला वही ईश्वरात्मा है उस आत्मासे उत्तम कोई नहीं है, उस पण्डित बुद्धिमान को तीर्थ और यज्ञ साधन करना उचितहै हे कौरवनन्दन वेदपाठ जप तप यज्ञआदि से ज्योतिरूप स्थानको नहींपाताहै वह अपरोक्ष ज्ञान प्राप्तकरके प्रतिष्ठाको पाताहै इसीप्रकार महत्तत्त्व और अहंकारमें नियत होकर देवताओं के लोकोंको और अहंकार से ऊपर के स्थानों को भी प्राप्त करे, अर्थात् जिस २की उपासना करताहै उस२ के रूपको प्राप्त करताहै और जो शास्त्रका जाननेवाला ज्ञानी अव्यक्तसे ऊंचे और सदैव एक दशा रखनेवाले जन्म मृत्यु से रहित सत्य मिथ्या से पृथक् ब्रह्मको जानते हैं वह ब्रह्मभाव को पाते हैं, हे राजा मैंने इसज्ञानको जनकसे प्राप्त किया है और जनक ने याज्ञवल्क्यऋषि से पायाथा इस से यह ज्ञान ऐसा बड़ा उत्तम है कि इस के समान कोई यज्ञ नहीं ज्ञानकेही द्वारा दुर्गमस्थानोंसे पारहोता है और यज्ञों के द्वारा पार नहीं होसक्ता इसी ज्ञान से दुस्तर जन्ममृत्यु के दुःख से भी पारहोता है ज्ञानी पुरुष ब्रह्मको माया से जुदा कहतेहैं जो पुरुष ज्ञान मार्ग में नियत नहीं है वह यज्ञ तप नियम और व्रतों के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त होकर फिर पृथ्वी में गिरकर जन्मको पाते हैं, इस कारण तुम उस महा पवित्र ब्रह्मकी उपासनाकरो जो कि कल्याणरूप निर्म्मल विमुक्त और पवित्र है तुम क्षत्री शरीरको जानकर ज्ञान यज्ञ और तत्त्वोंकी उपासना करके ऋषि होजाओगे, राजा जनक के पुरोहित इन याज्ञवल्क्यजी ने उपनिषद्बुद्धि के अनुसार जो पाया जिसको कि न्यूनता रहित सनातनब्रह्म वर्णन करते हैं वही शोक सन्ताप से रहित जीवन्मुक्ति को देता है ११२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे चतुश्चत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १४४ ॥

## एकसौपैंतालीसका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि यह ब्रह्मविद्या श्रुति और युक्ति प्रधान है अब साधन प्रधान ब्रह्मविद्या का वर्णन करतेहैं अर्थात् अपने धर्म्म आचरणके साथ नि- वृत्त मार्ग में प्रवृत्त पुरुष जरा मरणको उल्लंघन करता है इस अध्याय के इस प्रयोजन को समझकर—युधिष्ठिर बोले कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ पितामह बड़े २ धनादि ऐश्वर्य्य और पूर्ण अवस्थाको पाकर कैसे मृत्युको जीते और कौनसी बड़ी २ तपस्या कर्म शास्त्र और बड़ी २ युक्तियों के अभ्यासमे जरा

मरणको नहीं पाता है, भीष्मजी बाले कि इस स्थानपर एकप्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें पंचशिख संन्यासी और राजा जनक का प्रश्नोत्तर है, बिदेह देशके स्वामी राजा जनक ने वेदज्ञों में श्रेष्ठ पंचशिख नाम संन्यासी जिसका कि धर्म्म अर्थ से संदेह मिटगया था उससे पूछा कि, हेभगवन् कौन से तप बुद्धि कर्म अथवा शास्त्रसे जरा मरणको जीते यहबात सुनकर उस अपरोक्ष ज्ञानी ने राजा को उत्तर दिया कि देहको किसी दशा में भी जरा मरण से पृथक्ता और अपृथक्ता नहीं है अर्थात् योग के द्वारा उससे पृथक्ता होसक्ती है, महीने दिन और रात लौटकर नहीं आते हैं और यह बिनाशवान् जीवात्मा बहुत काल में अपने अचल मार्ग को पाताहै, सबजीवों का नाश सदैव होताहै मानों नदी के प्रवाहसे एक स्थान से दूसरे स्थानको पहुंचाया जाता है कोई मनुष्य इस बे नौका और जरामरणरूप ग्राहसे व्याप्त काल सागरमें बहनेवाले वा डूबनेवाले पुरुषको नहीं पाता है न इसका कोई है न यह किसी का है,, स्त्री और बांधवआदिका मिलाप मार्ग में है इसनिवास को पहले भी किसी ने सदैव नहीं किया न करताहै न करेगा, बारंबार मृत्यु पानेवाले देहको उसके ऐसे २ हितकारी बांधवलोग श्मशान भूमि में ऐसे डालजाते हैं जैसे कि काल से वायु के द्वारा बादलों के समूह इधरसे उधरको फेंकेजाते हैं, यह जरा मरण भेड़ियों के समान सब छोटे बड़े जीवों के भक्षण करनेवाले हैं, सदैव रहनेवाला भूतात्मा उत्पन्न होनेवाले और सदैव न रहनेवाले मायाके जीवों में कैसे प्रसन्नहोय और मृत्यु पानेवालों में कष्ट न पावे, मैं कहां से आया और कौनहूं किसकाहूं किसमें नियतहूं कहां जाऊंगा किस कारणसे किसको शोचताहुआ किसस्थानमें रहूंगा, स्वर्ग और नरकका देखने वाला कौनहै इत्यादिबातें स्मरणकरके शास्त्रकीरीतिसे दानयज्ञादिककोकरे१५॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेपंचचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १४५ ॥

# एकसौछियालीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हे कौरवेन्द्र पितामह किस पुरुषने गृहस्थाश्रमके बिना त्यागेहुये बुद्धिके लयस्थान मोक्षतत्त्वको पायाहै और जैसे इसस्थूल और कारण शरीरको त्यागते हैं और मोक्षका जो परमतत्त्व है इन सबबातोंको मुझसमझाइये, भीष्मजी बोले कि हेभरतवंशी युधिष्ठिर इसस्थान परभी एक प्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसमें राजाजनक और सुलभानाम संन्यासिनीका प्रश्नोत्तर है, पूर्वसमयमें कोई मिथिलाका जनकनाम बड़ाधर्मध्वज राजासंन्यास धर्मकेफलका बड़ाज्ञाता होताहुआ, वेदमोक्षशास्त्र और अपने शास्त्र दण्डनीति आदिमें कुशलहोकर उसराजाने इन्द्रियोंको समाधान करके

इस पृथ्वीपर राज्यकिया, और संसारके वेदज्ञ ज्ञानी पुरुष उसकी साधुवृत्तीको सुनकर उसके मिलनेकी इच्छाकरतेथे, उसधर्म्म यज्ञमें योग धर्मका अनुष्ठान करनेवाली सुलभानाम संन्यासिनी अकेली पृथ्वीपर घूमाकरती थी उसने दैवयोगसेकईत्रिदंडी औरऔरसंन्यासियोंसे श्रवणकिया कि राजाजनकमोक्ष-मार्गकाबड़ा ज्ञाताहै यहजानकर इसनेअपने अनेक संदेहनिवृत्त करनेकेलिये राजा जनकसे मिलनेकी इच्छाकी और अपने योगबलसे पूर्व रूप को त्याग कर दूसरे ऐसे उत्तम रूपको धारण किया जिसके कमलके समान नेत्र सुन्दर भृकुटी महातीव्रगामी स्वरूपा मोहनीरूप धारण कियेहुये क्षणभर में राजा जनक की राजधानी में पहुंची और वहां उसने क्रीड़ाके योग्य बहुत से मनु-ष्योंसे भरीहुई मिथिलापुरी को देखकर भिक्षुकी होकर राजाजनकको जाकर देखा तब राजानेभी उसके उत्तम रूपको देखकर आश्चर्य्य कियाकि यहकौन किसकी स्त्री और कहां से आईहै तदनन्तर उसको क्षेमकुशल पूछचरण धो-कर उत्तमआसनपर बैठाय उत्तम अन्नसे तृप्तकिया फिर भोजनसे निवृत्त होकर बड़े प्रसन्न चित्तसे उस संन्यासिनी ने सूत्रार्थके ज्ञाताओंके और मंत्रियोंके मध्य वर्त्ती होकर मोक्षधर्मोंमें अन्यलोगोंका तिरस्कारकरके राजासे प्रश्नकिया कि यह राजा मुक्तनहीं है ऐसासंदेह करनेवाली सुलभाने योगबलसे अपनी बुद्धिको राजाकी बुद्धिमें प्रविष्ट किया अपनेनेत्रोंके प्रकाशसे उसकी आंखों के प्रकाशको रोका फिर उसप्रश्न करनेवाली भिक्षुकीने योगके बलसे रसना और चित्तकेद्वारा राजाको बांधा अर्थात् स्वाधीन करलिया, तबतो राजा जनकने भी उसके बिचारको तुच्छकरके अपनेचित्तसे उसके चित्तको पकड़ लिया, उससमय एकही कारण शरीर में नियत होनेपर राज्यके छत्रादि चिह्नोंके प्राप्त होनेपर भी विमुक्त राजाके और त्रिदंडनाम संन्यास आश्रम में प्रवृत्त उस संन्यासिनीके प्रश्नोत्तरोंको सुनो, राजाजनक बोलेकि हे सुभद्रे भगवतीकी योगचर्य्या तुमने कहांसे सीखी कहां जाओगी किसकीहो और कहांसे आईहो आपके रूपमें साधुभाव नहीं विदित होताहै इसकारण मेरे मिलने में तुमको इनबातोंका उत्तरदेना उचित है मुझको राज्यके छत्र चम-रादि चिह्न युक्तहोने परभीमुख्यतासे मुक्तही जानोसोमैंभी तुमको जानना चाहताहूं आपको प्रतिष्ठा के योग्य मैं समझताहूं और मैंने पहले समय में मोक्ष मार्ग के अद्वितीय जाननेवाले महात्मा जिसगुरूसे यह वैशेषिक ज्ञान प्राप्तकियाहै उसकोभी सुनो, मैं पराशरगोत्री बड़े महात्मा वृद्ध पंचशिख नाम संन्यासीका कृपापात्र शिष्यहूं, वहगुरू महाराज सांख्यज्ञान योग और राजबुद्धि कर्म्म उपासना ज्ञान इनतीनों प्रकारके मोक्षज्ञान धर्म्म मार्गके ज्ञाता सन्देहों से निवृत्तहैं, प्राचीन समय में शास्त्रमें देखेहुये मार्ग में घूमते हुये वर्षाऋतुके

चारमास पर्य्यंत मेरेसमीप आनन्द से निवास करतेहुये, उस सांख्य शास्त्र के मुख्य अर्थकेज्ञाता गुरू महाराजने तीन प्रकारका मोक्षधर्म मुझको सुनाया और इसराज्यसे पृथक् भी नहींकिया सो मैं उस श्रेष्ठपद पर नियत वैराग्यवान् अकेलाहोकर उसमोक्षकी उपकारी तीनों प्रकारकी वृत्तियोंको करताहूं इसमोक्ष का मुख्य उपाय वैराग्यहै और वैराग्य ज्ञानसे उत्पन्न होताहै उसीसे मुक्तहोता है, ज्ञानसे चैतन्य होकर पुरुष योगाभ्यासको करता है और योगाभ्याससे सर्वज्ञताको प्राप्तहोता है वह सर्वज्ञता सुखदुःख आदि से निवृत्त होनेके निमित्तहै और सिद्धि वहहै जो कि मृत्युको जीतनेवालीहै, यहांही मोहसे जुदे मुक्तसंगी घूमतेहुये गुरूजीसे सुखदुःख आदिसे पृथक्ता और उत्तम बुद्धिको मैंने पाया है, जिसप्रकार जुतेहुये जलके सींचेहुये खेतमें बीजकेद्वारा अंकुर उत्पन्नहोता है उसी प्रकार बीजरूप कर्म्म मनुष्यों के पुनर्जन्म को करता है जैसे कि भाड़की बालूमें भुनाहुआ बीजरूप अन्न उत्पत्ति कारणरूप भी होकर बीजके गुणसे रहित होकर नहीं उपजताहै इसीप्रकार इनभगवान् पंचशिख संन्यासी गुरूजी ने मेरी बुद्धिको भी निर्बीज अर्थात् बीज बासना से रहित करदियाहै इसीसे वह बुद्धि विषयों में नहीं लगती है किसी में प्रीति नहीं करती अनर्थ और स्त्री आदिक परिग्रह और राग द्वेष आदिको मिथ्या जानकर इनमें प्रीति नहीं करती है, जो पुरुष मेरी दाहिनी भुजाको चन्दनसे लेपनकरै और बाईं भुजाको शस्त्र से काटै यह दोनों मेरी दृष्टि में समानहैं, इसप्रकारका होकर मैं मट्टी पाषाण के समान सुवर्णको जानताहुआ मुक्तहूं और अन्य त्रिदण्डी नाम संन्यासियों से विलक्षण पाषाणरूप राज्यपर नियतहूं, अन्य मोक्ष के ज्ञाताओं ने तीन प्रकारकी निष्ठा देखी है सब लोकों में कर्म्म उपासना ज्ञान और सब मानसी आदिक कर्मका त्यागनाही मोक्ष कहतेहैं, और कोई मोक्ष शास्त्र के ज्ञाता केवल ज्ञाननिष्ठाकोही कहते हैं इसके विशेष दूसरे सूक्ष्मदर्शी यतीलोग केवल कर्मनिष्ठाकोही कहतेहैं इसीप्रकार अब चारों पक्षोंको छोड़ कर अपने मतको कहता हूं, ऊपरके दोनों श्लोकों के लिखे हुये दोनों सच्चे विकल्पोंको भी त्याग करके केवल ज्ञान और दूसरे के उपकाररूप कर्मकोही उस महात्मा पंचशिखने तीसरी निष्ठा वर्णनकीहै–इसी निष्ठाकी प्रशंसा करते हैं–यम, नियम, काम, द्वेष, परिग्रह, मान, दम्भ आदिके होनेसे गृहस्थी संन्यासीके समानही त्रिदंडी संन्यासीहैं अर्थात् यम आदिके होनेपर गृहस्थीभी संन्यासीकेही समानहै, और काम आदि के होनेपर संन्यासी भी गृहस्थी के समानहै, जो ज्ञानकेद्वारा त्रिदंडी आदि में किसीकी मोक्षहै फिर छत्र आदि परिग्रह रखनेवालों में कैसे मोक्ष नहींहोसक्ती क्योंकि परिग्रहमें दोनों समान् हेतु रखनेवाले हैं, यहां विषयादिककर्म्म में जिस२ से जिसका जो प्रयोजनहै

वह धन और स्त्री आदि अर्थ प्राप्त करनेको उसीउसी में प्रवृत्तचित्त होता है, गृहस्थाश्रम में दोषदेखनेवाला जो पुरुष दूसरे आश्रममें जाताहै वह त्याग और स्वीकार करनेवाला पुरुष भी संगदोषसे निवृत्त नहींहोताहै, इसीप्रकार शिष्य वा सेवक कृपा और दण्डरूप आज्ञाके समान होनेपर संन्यासीलोग राजाओंके समानहैं फिर वह कैसे मुक्तहोते हैं, आज्ञादेनेवाला होनेपर भी उत्तम शरीर में नियत पुरुष ज्ञानके द्वारा सब पापों से छूटजातेहैं, फिर गेरुये वस्त्रोंका धारण करना कमण्डलु त्रिदण्ड आदि चिह्न भी केवल कुमार्ग रूप ही हैं मोक्षके निमित्त नहीं हैं यह मेरी रायहै, जो इन चिह्नों के होनेपर भी ज्ञानही सुखका कारण है फिर यहां दुःखसे अलग होना किस निमित्त है इस से केवल चिह्नोंका होना निरर्थकहै, अथवा चिह्नों में दुःखकी अप्रबलता देखकर उसमें बुद्धि हुई है वह उन राज्यके छत्र आदि चिह्नों में क्या सदैव दृष्ट नहीं होते हैं केवल संसारी सामानोंकेही त्यागने से मोक्ष नहीं होती है और न संसार के समान रहने से बन्धन होताहै सब पुरुष संसारी सामान को त्यागें वा न त्यागें परन्तु उनकी मोक्ष सब दशा में ज्ञानही से होसक्ती है ४९ इसी कारणसे धर्म्म अर्थ काम और राजपरिग्रह आदि बन्धनरूप स्थान में नियत होनेपर भी मुझको मोक्षपदवी में प्राप्तही जानो, मैंने यहां त्यागरूप खड्ग को मोक्षरूप पाषाणपर घिसकर उसकी तीक्ष्णधार से उस राज्यरूप ऐश्वर्य्यमें चित्तकी प्रीतिरूप फांसीको जो कि प्रीतिके स्थान स्त्री धन आदि से बन्धन में डालती है काटडालाहै, हे संन्यासिनी इस दशावाला मुक्तरूप होकर मैं तुझ योगप्रभाव रखनेवालीको प्रतिष्ठा करनेवालाहूं तौ भी योग के विरुद्ध त्रिगुण से उत्पन्न तेरे स्वरूप को मैं कहता हूं, शरीरकी कोमलतारूप उत्तम देह और तरुणावस्था यह सब तुझको प्राप्त हैं और यह योगाभ्यास रूप नियम भी सन्देहयुक्त है क्योंकि यह दोनों भिन्न २ दशा तुझ एक में कैसे होसक्ती हैं, जैसे कि देह आदिके सूखेहोने पर इस योगरूपकी त्रिदण्ड धारणादि चेष्टा तेरेयोग्य नहीं विदितहोतीं और मेरे सभासद तैंने अपने उत्तमरूप के दिखाने से विपरीत दशामें करदिये इसी हेतुसे सन्देहहै कि यह मुक्तहो या न हो, दूसरोंके अनुग्रह चाहनेवाले योगीमें संन्यासका फल नहीं होताहै मेरे देहके सत्संगसे यह आश्रमके चिह्न तुझसे रक्षा नहीं कियेजातेहैं इन चिह्नों से योगके अधिकारपर चढ़कर उस करनेवाले की रक्षा नहींहै इसका दूसरा यहभी अर्थहै कि देहके कर्म्मसे मुक्तपुरुषकी रक्षा योग्यहै, अपने मनसे जो मेरे शरीरमें तुझ आश्रय लेनेवालीने अमर्य्यादा से प्रवेश कियाहै उसको भी सुनो, कुकर्म्मिणी स्त्री भी दूसरेके नगर वा स्थानमें इंगितभावसे प्रवेश करतीहै वहांभी हमारा तिरस्कार करनेवाली तेराही अपराध है इसको

कहताहूं-तुमने किस कारण से मेरे देश वा नगर में प्रवेशकिया और तुमने
किसके इशारेसे मेरीदेहमें प्रवेशकिया, उत्तम वर्णोंमें श्रेष्ठतुम ब्राह्मणहो और
मैं क्षत्रीहूं हम दोनों का योग सजातीय नहीं है तुम वर्णसंकर मतकरो, तुम
मोक्षधर्मसे बर्त्तावकरतीहो और मैं गृहस्थ आश्रममें हूं यहभी तेरी दूसरी बड़ी
वर्णसंकरता है, मैं तुझको सगोत्रा वा असगोत्रा नहीं जानताहूं और तूभी
मुझको नहीं जानतीहै तुझ सगोत्रमें प्रवेश करनेवालीका तीसरागोत्र संकरहै
फिर तेरापति जीवताहै अथवा कहीं बिदेशको गयाहै इससे भोगके अयोग्य
दूसरेकी भार्य्या है यहचौथा अधर्म्मसंकर है तत्त्वका विज्ञान न होने से मिथ्या
ज्ञानमें युक्त प्रयोजन की चाहने वाली तुमइन कर्मोंको निश्चय करतीहो,
अथवा किसी समयपर अपने दोषोंसे स्वतंत्रभीहो उसदशामें तुमने जो कुछ
शास्त्र पढ़ाहै वह सब निरर्थक है क्योंकि शास्त्रके अनुसार स्त्री कभी स्वतंत्र
नहीं है तुझदूषित और भेद खोलनेवाली से प्रकट किया हुआ यह तीसरा
चित्तका स्पर्शादि देखने में आता है, तुझबिजय चाहने वालीने विजय के
निमित्त केवल मुझपरही इच्छानहीं की किन्तु जो यह मेरी संपूर्ण सभा है
उसको भी बिजय करना चाहती है, इसीप्रकार तुमने मेरे पक्षकानाश और
अपने पक्षकी विजय के लिये अपनी दृष्टिको पूजनके योग्य पुरुषों पर
डाली है सो तुम ईर्षा से उत्पन्न मोहकी आधिक्यता से अज्ञान होकर फिर
दूसरे की बुद्धिसे अपनी बुद्धिके संयोग को इसप्रकार पैदा करती हो जैसे कि
बिष और अमृत का मेल होता है, इसलोक में मिलनेवाले स्त्री वा पुरुष का
जो योग है वह अमृत के समान है और जो मित्रका न मिलना अर्थात् बिना
आज्ञाके मिलजाना है वह बिषकेही समान है, अच्छाहै सावधान होकर अ-
पने संन्यास शास्त्रकी रक्षाकरो उसको मत त्यागो तुम ने यह मेरी परीक्षा
...स बिचार से की थी कि यह मुक्त है वा नहीं है, यहसब बदला हुआ रूप
यतीलोग ...गुप्त करना अयोग्य है, किसी दशा में भी राजा वा ब्राह्मण अ-
कर अपने मतको कहत... स्त्री से मिथ्या बचनों के द्वारा नहीं मिले जो मिथ्या
विकल्पोंको भी त्याग क... कियाजाय तो ऐसी दशा में यह तीनों उसको मारे
उस महात्मा पंचशिखने ...वर्य्य है, ब्रह्मज्ञानियों का बल ब्रह्म है और स्त्रियों का
हैं—यम, नियम, काम, द्वे... सौभाग्य है, इस कारण यह तीनों अपने २ बलों से
न्यासीके समानही त्रिदंडी ...हनेवाले मनुष्य को इन तीनों से सत्यता पूर्वक
संन्यासीकेही समानहै, औ... इनसे कुटिलता करना नाशकारी है, सो तुमअपनी
समानहै, जो ज्ञानकेद्वारा ...चित्तका बिचार, स्वभाव और यहां आने के प्रयोजन
परिग्रह रखनेवालों में कैसे मो... योग्यहो, भीष्मजी बोले कि राजाके इन दुःखरूप
हेतु रखनेवाले हैं, यहां विषय... नों से तिरस्कार पानेवाली वह सुलभा क्रोधयुक्त

नहींहुई और राजाकी बातों के समाप्त होनेपर वह श्रेष्ठ रूपवाली सुलभा अत्यन्त उत्तम बचनों को बोली कि हे राजा बचनों के दूषित करनेवाले कठोर आदि नौ दोषहैं और बुद्धिके दूषित करनेवाले काम आदि नौ दोष से पृथक् और बचनके मृदुता आदि नौ गुण और कामादिके विपरीत बुद्धिके नौ गुण से संयुक्त सौक्ष्म्य अर्थात् पद अर्थों से बिगड़ाहुआ सांख्य—अर्थात् पूर्वपक्ष और सिद्धान्तमें गुणागुण बिचार, क्रम—अर्थात् प्रत्यक्ष गुणदोषों में बलाबल बिचारना निर्णय अर्थात् सिद्धांत-प्रयोजन अर्थात् अनुष्ठान यह पांचों जिसके अर्थसे सिद्धहोतेहैं वह वचन कहाजाताहै इनमें मुखसे निकलेहुये सौक्ष्म्यादि के प्रत्येक अर्थसम्बन्ध निज रूपको पद, वाक्य, पदार्थ, वाक्यार्थ इनभेदोंसे चार प्रकारका होना मुझ से सुनो जब जानने के योग्य अनेक प्रकारके वचनोंमें असंख्य संदेहोंको स्पर्श करनेवाली और उसके ज्ञान करने में अयोग्य बुद्धि वर्त्तमानहोतीहै वही सौक्ष्म्यहै और किसीप्रयोजनको दृष्टिकेगोचर करके दोष और गुणोंका जो विभाग से परिमाणहै वह सांख्यहै यह पहले और यह पीछे कहना चाहिये यह जो कहनेकी इच्छाहै उस वचनको वचनज्ञलोग क्रमयोग कहते हैं, अर्थधर्म काम मोक्षमें पृथक् निश्चयको जानकर अर्थात् बचन के अन्त में युक्ति पूर्वक जोकहाजाताहै कि यह वहहै वही निर्णयहै हेराजन् जिस विषयमें इच्छा और अनिच्छासे उत्पन्न होनेवाले दुःखोंसे यह बिचार उत्पन्न होताहै कि यहकरना योग्यहै वा अयोग्यहै और उसमें जोप्रवृत्ति निवृत्ति रूप वृत्तिहैं उसीको प्रयोजन कहते हैं, हे नरेश यह सौक्ष्म्य आदिक जैसे वर्णन कियेगये वह सब एकही अर्थ निश्चय होनेवाले हैं उनपांचों गुणोंसे युक्त मेरेबचनको सुनो—अब बचन के गुणको कहती हूं—प्रत्यक्ष अर्थवाला पूरा बहुत प्रकारके अर्थोंसे रहित प्रसिद्ध स्पष्ट अर्थवाला न्यायके अनुसार श्लाघ्य संक्षेप असंदिग्ध उत्तम कठिन अक्षरोंसे रहित सुकुमार नाम सुनने में सुखदायी सत्य त्रिबर्ग धर्मादिके अनुसार संस्कारकियाहुआ सम्यछन्द व्याकरणादि के दोषोंसे रहित सुगम शब्दयुक्त क्रम पूर्वक लक्षण से दूसरे पदों को जिसमें संयुक्त कियाजाय ऐसे बचनोंसे पृथक् अर्थ और युक्तिके साथहो उस को कहूंगी प्रथम बुद्धिके नौ दोषोंको कहतीहूं मैं किसीदशामें काम, क्रोध लोभ, मोह, दीनता, अहंकार, श्रम, कृपा और मानसे बचनको नहीं कहूंगी, अब बचन कहनेवाले के गुणको कहतेहैं—हे राजा जब कहनेवाला और सुनने वाला बचन के सिद्धान्त के अनुसार तत्त्वनिर्णय से सम्बन्ध रखनेवाली इच्छा में प्रवृत्त और प्रवीण होकर बुद्धिमें प्रवेश करतेहैं तब वह अर्थ प्रकाशकरता है, जब कहनेवाला कहनेके योग्य बचनहोनेपर सुननेवालेका अपमान करके अपने अंगीकृत बचनको कहताहै तब वह बड़े अर्थवालाभी बचन हृदय में

नहीं नियत होताहै, फिर जोमनुष्य अपने अर्थको त्यागकर दूसरेके अर्थ को कहे उसमें विशेष संदेह उत्पन्न होताहै वहवचन भी दूषितहै, हे राजा जोकहनेवाला अपने और सुननेवाले के अर्थको विपरीत नहीं करताहै वही वक्ताहै दूसरा नहीं है, हे राजा तुम एकचित्त होकर उस अर्थवान् वचनको सुनो, जड़ रूपदेह और इन्द्रीसे आत्माको पृथक् जानकर जड़ चैतन्य समूह रूप जीवात्माओंसे सम्बन्ध रखनेवाला अंशचैतन्य आकाशके समान तुझमें और मुझमें वही एकहै जो कि मनवाणीसे परेहै वह प्रश्नके योग्य नहींहै क्योंकि अद्वितीयहै और ईशजड़भी काष्ठमृत्तिकाके समान होनेसे प्रश्नके योग्यनहीं है इसको सुलभा वर्णन करतीहै— हे राजा जैसे लाख वा काष्ठधूल और जलकण मिलजाते हैं इसीप्रकार यहां प्राणियोंका जन्महै शब्दस्पर्श रूपरसगंध और पांचों इन्द्रियां नानाप्रकारके रूप धारण करनेवाले लाख और काष्ठ के समान आत्मा अर्थात् आकाशादि के योगसे मिलाप रखते हैं अर्थात् इन्हीं आकाशादिके रूप हैं, किसी शरीरमें इनमेंसे प्रत्येकका वर्णन नहीं है, चक्षुरिन्द्री अपनी दृष्टि शक्तिको नहीं जानतीहै इसीप्रकार श्रोत्रादि इन्द्रीभी अपने स्वरूप और शक्तिको नहींजानतीं और व्यभिचार से परस्परमेंभी एक दूसरे को नहींजानतीं अर्थात् वह अपनेसंघातसे पृथक् नहींहैं और प्रकाश करनेवाला आत्मा इनकेसंघातसे पृथक्है इसीसे संघातका भागभी न आपको जानताहै न दूसरेको, और परस्परमें मिलकर भी अपने मिलापको नहीं जानती हैं और रूपनेत्र और प्रकाश यहतीनों दृष्टिमें कारण रूप हैं उसीप्रकार ज्ञान और ज्ञेय यहदोनों रूपादिमें कारणहैं, उसज्ञान और ज्ञेयमें मनदूसरा गुणहै,यह जिसके द्वारा श्रेष्ठ उन्नतिरूप निश्चयको विचारताहै यही उनसबमें बुद्धिनाम दूसरागुण बारहवां कहाजाताहै,और जिसकेद्वारा संदेहमें भराहुआ ज्ञेय पदार्थको निश्चय करताहै वह उसबारहवेंमें सत्त्वनाम पृथक्गुणहै,जिसकेद्वारा सुबुद्धी और निर्बुद्धीप्राणी जानाजाताहै, उसीमें चौदहवां एकजुदागुण है जो कि अपने को कर्त्तापन सिद्ध करताहै उसीके द्वारा मानताहै कि यह मेराहै वा मेरानहीं है, हे राजा फिर उनमें पन्द्रहवां अन्यगुणहै वह यहां सोलह कलाओंके समूहका बासनारूप जगत् कहाजाताहै,उसबासनामें अविद्यानाम सोलहवां गुणहै वही त्रिगुणहोने से संघातरूप अर्थात् जगतका अंकुर और बीजरूप है, उसीअविद्यामें प्रकृति और व्यक्तिनाम दोनोंगुण अच्छे प्रकार से नियत हैं, प्रकृतिके कार्य्य रूप सुख दुःख जरा मृत्यु हानिलाभ प्रिय अप्रियनाम संयोग उन्नीसवां गुणहै इसको द्वन्द्वयोग कहते हैं, अबव्यक्तीके कार्यको कहतेहैं कि उन्नीसवें गुणके पीछे कालनाम एकबीसवां अन्य गुणहै इसी बीसवें से जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलय होती है, यह बीसोंगुणोंका समूह और पांचमहातत्त्व, सद्भावयोग

असद्भावयोग यहदोनों गुणप्रकाशक इसप्रकारसे बीसों गुणोंका समूह और सात ऊपर कहेहुयेगुण और बुद्ध शुक्र और बल यह तीसगुण कहेगये जिसमें सबगुण वर्त्तमान होते हैं उसीको शरीरजानो,इनतीसगुणोंकी उत्पत्तिमें जुदे२ मत हैं उनको कहते हैं—अनीश्वर सांख्यवालोंने इनतीस कलाओं के उत्पत्ति स्थानको अव्यक्तकहाहै इसीप्रकार स्थूलदर्शी कणादिलोग इनकेव्यक्त अर्थात् महासमूहकोही इनका उत्पत्तिस्थान देखतेहैं अव्यक्तको कपिल मतवाले अंगीकारकरते हैं औरव्यक्तको चारवाक्आदि स्वीकार करतेहैं और जीव ईश्वर और इनदोनोंकी उपाधिरूप मायाको वेदांत विचार करनेवाले पुरुष सबजीवोंका उत्पत्ति स्थान समझतेहैं, हे राजेन्द्र जो यह अव्यक्त प्रकृति तीसकलाओंसे व्यक्तरूप होजाय तो मैं और तुम और जो अन्यशरीरधारी हैं वह सबभी इसी अव्यक्त प्रकृति के रूपहैं, इसप्रकारसे चैतन्यांशों में तू कौन है इसप्रश्न को अयोग्य कहकर जड़ांशमें भी उसप्रश्न की अयोग्यता वर्णन करतेहैं जन्मादिक वीर्य और रुधिरके योगसे होते हैं पुरुष स्त्रीकेयोगसे पहिले कलल पैदा होता है कललसे बुद्बुद होते हैं बुद्बुद से पेशी अर्थात् मांसपरकी झिल्ली और पेशीसे अंगोंकी प्रकटता और अंगोंसे नख रोमादिक इसप्रकार से देहकी उत्पत्तिहै,हे राजाजनक नौमास पूरे होनेपर जन्म लेनेवाली स्त्री वा पुरुष नाम रूपदेहसे प्राप्तहोताहै उत्पन्नहोनेवाले लालनख उँगलीयुक्त कौमाररूपको देख कर फिर रूपांतरदशा नहीं होसक्ती है कौमारदशासे तरुणावस्था और तरुणावस्थासे वृद्धावस्थाको प्राप्तकरताहै इसक्रमसे फिर वहजीव अपनीपूर्वअवस्थाको नहींपासक्ताहै सबजीवोंमें हरसमय बिषयरखनेवाली कलाओंका रूपभेदपृथक् ही वर्त्तमान होताहै और सूक्ष्मतासे उसका ज्ञाननहीं होता है, हे राजा प्रत्येक दशामें इनकलाओंका उत्पत्ति नाश दृष्टिमें नहींआता है, ऐसा प्रभाव देखने वाले और उत्तमघोड़ेके समान दौड़नेवाले इससबलोकको यहप्रश्नकरना उचितनहीं है कि तू कौनहै और कहांसेआयाहै,यहकिस का यहकिसी का नहीं यह कहांसे आया यहकहींसे नहींआया अपनेअंगोंसेभी जीवोंको क्यासम्बन्ध है अर्थात् कुछनहीं, जैसे कि सूर्यकी किरण और मथन दण्डसे अग्नि उत्पन्न होता है इसीप्रकार कलाओं के उदय होने से जीव उत्पन्न होते हैं, जैसे कि तुम अपनी देहमें आत्मज्ञान के द्वारा आत्माको देखतेहो इसीप्रकार आत्मा केद्वारा दूसरेमें भी आत्माको क्यों नहीं देखतेहो, जो अपने और दूसरेकी आत्मामें ब्रह्मभावकी बराबरीको निश्चय करतेहो तो मुझको क्यों पूछते हो कि तू कौनहै और किसकी है, हे राजाजनक यह मेराहै वा मेरानहीं है इन दोनोंसे रहित ज्ञानीको इनबातोंसे क्याप्रयोजन है कि तू कौन किसकी और कहांसे आईहै· जो राजा शत्रु मित्र और उदासीनों में वा युद्धके जय पराजय

में योग्य कर्म्म करने वालाहै उसमें मुक्तों का कौनसा लक्षणहै जो इसलोक में सातप्रकार के त्रिबर्गको कर्म्मों में नहींजानता है और त्रिबर्गको साधन करताहै उसमें मुक्तोंकालक्षण कौनसाहै, प्रिय अप्रिय सबल निर्बलमेंभी जिस की समान दृष्टिनहीं है उसमेंभी मुक्तों का लक्षणक्या है अर्थात् कुछभी नहीं है ३० हे राजा इसी कारण तुममोक्षसे न मिलने वालेको जो अभिमान उत्पन्न हुआ वह श्रेष्ठ कर्म्मी पुरुषोंसे ऐसे हटानेके योग्यहै जैसे कि कुपथ्यकरनेवाले को औषधीसे करतेहैं हे शत्रुओं के जीतनेवाले स्त्री प्रसंगादिके स्थानोंको अच्छे प्रकारसे बिचारकर आत्मज्ञान के द्वारा आत्मामेंही देखीहुई मुक्तिका दूसरा लक्षण न ढूंढ़नाचाहिये अर्थात् यही लक्षण बहुतहै, तुम मोक्षमें आश्रित होकर शयन, उपभोग, भोजन, वस्त्र इनचारोंहीं अंगोंमें नियत जानतेहो इन के बिशेष पृथ्वीआदिके अनेक उपभोगोंको मुझसेसुनो, तुमने जो यह कहा कि मेरेराज्य अथवा पुरमें तुम किसके कहनेसे घुसे यहां तेरेपुरआदि से मेरा कुछभी सम्बन्ध नहीं है इसको मैं वर्णन करताहूं, जो पुरुष एक एक छत्रवाली सम्पूर्ण पृथ्वी का चक्रवर्त्तीराज्य करता है वह भी निश्चय करके अकेला एकही पुरमें निवास करता है अर्थात् उसदशा में पृथ्वी निरर्थकहै, जो उस पुरमें उसका एकही महल नियतहै और महलमें भी एकही शयन स्थान है जहांपर कि रात्रिके समयआकर सो रहताहै ३५ उस शय्यामें भी आधी शय्या उसकी स्त्रीकीहै इसीकारण इसलोकमें स्नेहरूपी बन्धनसे मोक्षनहीं पाता है, इसीप्रकार भोजन बस्त्रादि गुणोंमें और अपने भृत्यादिमें दण्ड और अनुग्रह के करने के कारण राजाभी सदैव दूसरेकी आधीनतामें है थोड़े स्नेहसे भी बंधन में पड़ताहै और संधि बिग्रहमें भी राजा अस्वतन्त्रहै स्त्रियोंकीक्रीड़ा बिहारोंमें यह पुरुष सदैव स्वतन्त्र है मित्रोंमें और मंत्रियोंकी सभामें उसको स्वतन्त्रता कैसे होसक्तीहै, हां जब दूसरोंको आज्ञादेताहै तब अवश्यउसको स्वतंत्रता है ऐसे २ समयोंपर नियतहोकर वहराजा वहांपर अस्वतंत्र कियाजाताहै शयनमें उत्सुकराजा भृत्योंके कहने से सोतानहींहै किन्तु उनकीप्रार्थनासे शयनमें सोयाहुआ भी जगाकर उठायाजाता है अर्थात् नौकरलोग कहते हैं कि स्नान पूजन दान हवन भोजनादि कर्म्मोंको करो इन २ प्रकारों से राजा भी दूसरोंके स्वाधीन गिनाजाताहै, मनुष्य सन्मुखता में आआकर बारंबार प्रश्न करते हैं परन्तु वह धनका स्वामी राजा बड़े बड़े साहूकारों को भी देना नहीं चाहताहै अर्थात् दे नहीं सक्ता है, दानमें तो इसका भण्डार खाली होताहै और न देनेमें शत्रुता उत्पन्न होती है और इसके बैराग्य उत्पन्न करनेवाले दोष उसी क्षण वर्त्तमान होतेहैं ४४ इसीप्रकार राजा एकस्थानपर भी अपने प्राचीनज्ञानी और शूरबीर कामदारों को भी भयभीत रखताहै और

राजाको भी उन नौकरोंसे निर्भयस्थानपर भी भयरहताहै जो कि सदैव सेवा में रहते हैं, हे राजा इसीप्रकार से वह लोगभी शत्रु होजाते हैं जिनको कि मैंने वर्णन कियाहै इसीप्रकार जैसा कि इसको भय उनसे उत्पन्न होताहै इसी प्रकार उनकोभी इसी रीतिसे समझो, अपने २ घरके सब राजा हैं और अपने २ घरोंकेस्वामी हैं, हे जनक मनुष्यदण्ड और कृपाको करनेसे राजाओंके समानहै, और मनुष्यके पुत्र स्त्री मित्र आत्मा और धनआदि वस्तुओंके जो समूहहैं वह सब उन २ हेतुओं से अन्य मनुष्यों के पुत्रादि के साधारण हैं, राज्याभिमानमें बड़ाडुःखहै इसको वर्णन करते हैं देशका उजड़ना पुरमें अग्निका लगना प्रधानहाथी आदिका मरना इत्यादि लोकोंके साधारण कारणोंमें मिथ्याज्ञान से दुःखों को पाताहै, इच्छा अनिच्छा भयआदिसे उत्पन्न होनेवाले मानसी दुःख और शिरपीड़ा आदिरोग चारोंओर से खैंचनेवाली आपत्तियों से सदैव बन्धन में पड़ते हैं उनउन सुखदुःखादि योगों से घायल सबओर से सन्देहयुक्त मनुष्य रात्रियों को गिनताहुआ अनेक शत्रुओं से व्याप्त राज्यका सेवन करताहै, उसअल्पसुख और बहुतसे दुःखमें प्रवृत्त असार के समान राज्यको प्राप्तकरके फिर इसकी भी इच्छानहीं करताहै इसकारणसे शांतिको पाताहै, जो इन पुरदेश सेना खजाना और मंत्रियों को मानता है कि यह सबमेरे हैं हे राजा यह किसीके हैं और किसीके नहीं हैं मित्र मन्त्री पुत्र देश दण्डखजाना और राज्य यह सब त्रिदण्डके समान नियत एकदूसरे के गुणसे युक्त ऊपरलिखेहुये सात गुणयुक्त इस राज्यका कौनसा अंग किस अंगसे गुणमें अधिकहै अर्थात् सबअंग बराबर हैं उनउन समयोंपर वह वह अंग श्रेष्ठता को पाता है जिससे जो कार्य सिद्धहोताहै और वही श्रेष्ठता के लिये विचार कियाजाता है, हेराजा सातअंगों का पुतला और दूसरे तीन गुण यह दशवर्ग ऐश्वर्यमानकर राजा के समान राज्यको भोगते हैं जो राजा बड़ा उदार और क्षत्रीधर्म्ममें प्रवृत्तहो वह दशवें भागसेही प्रसन्नहोताहै और शेषबचेहुये नौभागसे दूसरा—राजा साधारण नहीं है और राजाके बिना राज्यभी नहीं है, राज्यके होनेपर धर्म्म कहां है और धर्म्मके न होनेमें मोक्ष कहांहोसक्ती है यहां राजा और राज्यका जो उत्तम और पवित्रधर्म है, और जिसकी दक्षिणा पृथ्वीहै वह अश्वमेध मोक्षसाधनमें उपकारी नहींहोसक्ताहै, हे राजा जनक मैं इसराज्य के हजारों दुःखदायी कर्म्मों के कहनेको समर्थहूं जब अपने शरीरमें मेरासंगनहींहै तो दूसरेके शरीरमें मेरासंग कैसेहोसक्ताहै, मुझसरीकी ऐसी योगिनी को ऐसा कहना योग्य नहींहै कि तुमने पञ्चशिखनाम योगी संन्यासीसे सम्पूर्ण मोक्ष शास्त्रको सुना, श्रवण मनन निदिध्यासनादि उपाय और ध्यानके अंगनियम आदि युक्तजीव ब्रह्मकी एकताके

अनुभव समेत काम आदिकी फाँसियोंसे पृथक् तुझमुक्त संगीका संग उन छत्रआदि निजबस्तुओंमें फिरकैसेहै मेरीबुद्धिसे तो तुमने शास्त्रको नहींसुना अथवा सुनाभीहै तो कपटसे सुनाहै, अथवा इसशास्त्रके रूपका कोई दूसरा शास्त्रसुना है कि फिर इसलोककी बस्तुओं पर नियत होतेहो, तुम प्राकृत पुरुषके समान स्त्रीआदिकी स्नेहमें प्रवृत्तहो मैंने जो तेरे शरीरमें प्रवेशकिया वहतेरी बुद्धिमें प्रवेशनहीं है, मैंने उसमें तेराक्या अनुपकार किया जो तुम सब प्रकारसे मुक्तहो तो संन्यासियों का यह बनबास इनबर्णोंमें नियम किया जाता है, उजाड़ और बिन्नता रहित तेरी बुद्धि में मैंने प्रवेश करके किसका अपराध कियाहै हेराजा मैंदोनोंहाथ भुजाजंघा और अन्य अंगोंके भागोंसे तुझको स्पर्शनहीं करतीहूं बड़ेकुलीन लज्जावान् दूरदर्शी पुरुषसे सभाकेमध्यमें यह गुप्तकर्म उचितहुआ अनुचित्त न कहना चाहिये, यह ब्राह्मण गुरुहैं इसी प्रकार उत्तम गुरूभी प्रतिष्ठाके योग्यहैं तुमभी इनसब लोगोंके राजारूप गुरूहो इसप्रकार परस्परकी वृद्धता है, इसबातको बिचारकर कहने और न कहने के योग्य बातोंके आप ज्ञाताहोकर आपको सभामें स्त्री पुरुषका योगहोना कहना योग्य नहीं है जिसप्रकारसे कमलके पत्तेके ऊपरका जलउस पत्तेको स्पर्श न करताहुआ नियत होताहै इसीप्रकार स्पर्शसे रहित मैंने तुझमें निवासकिया, अब जो मुझस्पर्श न करनेवाली के किसी स्पर्शको जानतेहैं ऐसी दशामें यहां पंचशिख संन्यासीने तेरे ज्ञानको किसरीतिसे निर्वासना रूप कहा, सो गृहस्थाश्रम से गिरेहुये तुमदुःखसे प्राप्त होनेवाली मोक्षको न पाकर दोनों आश्रमोंके बीचमें केवल मोक्षकीबातें करनेवालेहो,जाननेके योग्य आत्माकी एकता और द्वैतता में प्रकृति पुरुष के कारण से मुक्तका मुक्तके साथ और आत्मा का प्रकृतिके साथ मेल होनेसे वर्णसंकर नहींउत्पन्न होताहै,मिलेहुये वर्ण और आश्रम जिसको बहुत प्रकारके दृष्ट पड़ते हैं और जिसने अर्थको देखा उससे वर्णसंकर उत्पन्न होता है देह और आत्मा दो २ नहीं होते इस एकत्वताको जानकर मेरा दूसराचित्त तुझदूसरे में बर्त्तमान नहीं होता है, हाथमें कुंड कुंडमें दूध और दूधमें मक्खी यहसब आश्रय स्थानके मिलने से एकत्र होकर नियत हैं और फिर पृथक् २ भी नियत हैं, कुण्डमें दूध और मक्खीभी मिलावट नहीं रखती और दूधका अभाव भी नहीं निश्चय करके वहसब बस्तु अपनेआपही दूसरेके निवास स्थानको प्राप्त करतीहैं,आश्रमोंके और बर्णोंके पृथक् २होने और परस्परमें जुदेहोनेसे तेरा बर्णसंकरहोना किस प्रकारसेहै,मैं जातिमें तुझसे उत्तम बर्णहूं न बैश्याहूं न शूद्राहूं हेराजा मैं पवित्र उत्पत्तियुक्त और शान्तचित्तीमें तेरीसवर्णता रखतीहूं, प्रसिद्धीमें कभी तैंनेभी सुनाहोगा कि एक प्रधाननाम राजर्षिहै मैं उसीके कुल में उत्पन्नहूं मेरासुलभा

नामहैं, मेरे पुरुषोंके यज्ञों में द्रोणशत शृंग और चक्रद्वार नामपर्व्वत इन्द्र के द्वारा ईंटों के स्थानापन्न लगाये गयेथे, मैं उसघराने में उत्पन्न हुई और मेरे समान पतिके न मिलनेपर मोक्षधर्म्मों में गुरुओं से शिक्षापाई हुई अकेली में मुनियों के व्रतों को करती हूं, मैं कपटरूप संन्यासिनी नहीं हूं मैं दूसरे का धन हरनेवाली हूं और धर्म्म संकर करनेवाली भी नहीं हूं अपने धर्म्म में व्रत करने वाली हूं अपनी मर्य्यादा में नियत होकर बिना बिचारे वार्त्तालाप नहीं करतीहूं और इसतेरे स्थानमेंभी मैंबिना बिचारके नहीं आई हूं, कुशल चाहनेवाली मैं मोक्षमें प्राप्ततेरी शुद्धबुद्धिको सुनकर इस तेरे मोक्षकी परीक्षा करनेके निमित्त यहां आईहूं, अपने और दूसरे के पक्षमें अपनेही पक्षपात परनियत होकर मैं ब्रह्मको नहीं कहतीहूं किन्तुतेरे कल्याणके हेतु कहतीहूंकि जो मनुष्य शूरवीरोंके समान अपनी बिजयकेनिमित्त वार्त्तालापऔर ब्रह्मके निरूपणमें परिश्रमनहीं करताहै और ब्रह्ममें शान्तहोताहै वही मुक्तरूपहै, जैसे कि संन्यासी पुरुष नगर के उजड़ेहुये स्थान में एकरात्रिही निवास करता है उसीप्रकार मैं भी इस तेरे शरीर में आज की रात्रिभर निवास करूंगी, हेराजाजनक मैं आपके प्रतिष्ठा और बचनरूप आतिथ्यसे पूजित श्रेष्ठस्थानमें शयनकरके प्रसन्नचित्त होकर कल प्रातःकाल जाउंगी, भीष्मजीबोले कि राजाजकने ऐसीयुक्तियोंसे भरेहुयेप्रयोजनवाले बचनोंको सुनकर भी कुछदूसरा वचन नहींकहा अर्थात् उसको उत्तर देनेमेंसमर्थ नहींहुआ--इस बर्णनसे यह सिद्धांत दिखाया कि गृहस्थाश्रम में मुक्तीकाहोना कठिन है इसकारणसे संन्यासही उत्तमहै १६० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्व्वणिमोक्षधर्म्मेउत्तरार्द्धेपट्चत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १४६ ॥

# एकसौ सैंतालीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि पूर्व्व समयमें व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीने कैसे बैराग्य को प्राप्तकिया और अव्यक्त वा व्यक्त वा तत्त्वोंका निश्चय और बुद्धिका निश्चय और अजन्मा देवता वा सगुणदेवताकी लीलाको आप मुझे समझाइये मुझेइसके सुनने की बड़ी उत्कण्ठाहै, भीष्मजी बोले कि पिता व्यास जीने प्राकृत आचरणसे विचरनेवाले निर्भय पुत्रको अपना संपूर्ण बेद पढ़ाकर उपदेश किया कि हे पुत्र तुम धर्मका सेवनकरो और ऊष्माशीत वर्षाभूख प्यास और वायुका बिजयकरके सदैव जितेन्द्री हो सत्यता सरलता क्रोधरहित होना दूसरेके गुण में दोष न लगाना शान्त चित्त अहिंसा दया आदि गुणों में अपनी बुद्धिके अनुसार प्रवृत्तहोना सत्यतामें नियत कुटिलता रहितहोना धर्म में प्रीतिमान देवता अतिथिआदिके पूजनसे जो शेष रहै उसी से अपनी

प्राणरक्षाकरो, हेपुत्र देहको फेणके समान और जीवको पक्षीके समान नियत होनेपर और साथी भाई बन्धुओं के नाशवान् होनेपर कैसे सोरहा है अर्थात् पुरुषार्थ साधनमें क्यों नहीं प्रवृतहोताहै हे बालक तुम इनबड़े सावधान चैतन्य सदैव कर्म्ममें प्रवृत्त और कामादि शत्रुओंमें अवकाशकी इच्छा रखनेवालोंके मध्यमें क्यों नहीं सावधान होतेहो दिनोंको संख्यायुक्त होनेसे और अवस्थाके न्यूनहोने वा जीवनके क्षणभंगुर होनेपर क्योंनहीं उठकर दौड़ता है अर्थात् देवता और गुरु आदिका क्योंनहीं आश्रयलेताहै, जो नास्तिक हैं वहमांस रुधिर आदिकी वृद्धि करनेवाले नरलोक संबंधी भोगोंको चाहते हैं और परलोक संबंधी कर्मों को भूलेहुये रहतेहैं, जो पुरुष बुद्धिकी भूलसे धर्म की निन्दा करतेहैं उनकुमार्गगामियों के पीछे चलनेवालाभी दुःखपाताहै, जो सन्तोष गुणयुक्त वेदको उत्तम जाननेवाले महात्माधर्मरूप मार्गमेंनियम हैं उनकी उपासनाकरो और उनसेही पूछो, उन धर्मदर्शी ज्ञानियोंके मतको स्वीकारकरो और उत्तम बुद्धिकेद्वारा बुरेमार्गसे चित्तको सदैव हटाओ, इसी समय देखनेवाली बुद्धिसे यह मानकर कि प्रातःकाल दूरहै इसहेतु से निर्भय निर्बुद्धी सब बस्तुओं के भक्षण करनेवाले मनुष्य कर्म्मभूमि को नहीं देखते हैं, तुमसीढ़ीके समान धर्ममें नियत होकर कुछ २ उसपर चढ़ो और तुमअपनेको रेशमके कीटके बंधनमें डालतेहुये क्यों नहीं चैतन्यहोते और तुम विश्वासयुक्त होकर नास्तिक और बे मर्य्यादा चलनेवाले बांससेऊंचे मनुष्यों का कभी संग न करो, तुम प्राण बेग धारण नाम योगरूप नौकाकोबनाकर मृत्युरूप काम क्रोध और पांचइन्द्रीरूप जलरखनेवाली नदीको और जन्म नाम कठिनस्थानोंको अच्छेप्रकारसेतरो, जरामृत्युसे पीड़ामान् लोकको जानकर और अवस्थाकी न्यूनकरनेवाली ऋतुओं के होनेपर धर्मरूप जहाज में चढ़कर इससंसार समुद्रकोतरो,जब मृत्यु सोतेहुये मनुष्यको प्राप्त होतीहै तब अकस्मात् मृत्युसे नाशवान् पुरुष किस से मोक्षपासक्ता है अर्थात् कोई नहीं उसको बचासक्ता है, इसधन आदि के संचय करनेवाले और मनोरथों से असन्तुष्टी मनुष्यको मृत्यु इसरीति से लेकरजाती है जैसे कि भेड़िया बकरी को लेकरजाता है, संसाररूपी अन्धकार में प्रवेशकरना चाहिये और क्रम पूर्वक धर्मरूप तेजस्वी अग्नि से ज्ञान रूपी दीपक को प्रज्वलित कर के बड़ी युक्तिसे उस को निवृत्त करना चाहिये, हे पुत्र इसनरलोक में देहरूपी जालमें फँसाहुआ जीव बड़ीकठिनता से कभी ब्राह्मण के शरीरको पाता है इस को तुम चारोंओर से बचाओ, ब्राह्मणका यहशरीर कभी काम और अर्थके निमित्त नहींपैदाहोताहै किन्तु तपस्या आदिकेनिमित्त होताहै ऐसे शरीर के त्यागकरनेके पीछे अनुपम सुख मिलता है, ब्राह्मणका शरीर बड़ी तपस्या से

होताहै उसको प्राप्तहोकर संसारी प्रीतिमें डूबकर मनुष्यको उसकी अप्रतिष्ठा करनी उचितनहीं है, वेदपाठ जपतप और चित्तकी शान्ती में सदैव प्रवृत्त मोक्षको उत्तम माननेवाले तुम सदैव उपाय करतेरहो, मनुष्यका जो अवस्था रूपी घोड़ाचलता है उसका उत्पत्ति स्थान अव्यक्त है और कला उसका शरीर है और उसका आत्मा सूक्ष्मरूप है वह चण और त्रुटिनाम समय में शयन करनेवाला है और पलकका लगाना उसकी देहके रोमाञ्च हैं दोनों सन्ध्याउसकेकन्धे हैं और एक से प्रभाववाले शुक्लपक्ष कृष्ण यहदोनों उस के नेत्र हैं महीनेअंग हैं, उस तीव्र गामी सदैव चलने और दौड़ने वाले और अपूर्व्व दिखाई देनेवाले घोड़ेको देखकर जो तेरा ज्ञान अन्धे के समान नहीं है तब परलोक वा आत्मा को सुनकर तेरा मन धर्म्म में नियतहोगा २६ जो पुरुष इसलोक में धर्म से पृथक् संसारी भोगों में प्रवृत्तहोकर सदैव दूसरे के अप्रियकर्मोंके करनेवालेहैं वह अपने अत्यन्त अधर्म्मरूप कर्मोंसे यमकेलोक में शारीरक दण्डको पाकर महाआपत्तियोंको भोगतेहैं, जो राजा अच्छेप्रकार से विचारकर सदैव धर्म्म में प्रवृत्त छोटेबड़े जातिवालोंका रक्षक है वह श्रेष्ठ कर्म्मीपुरुषोंके लोकोंकोपाता है और अनेकप्रकारके सुखोंको भोगता है और हजारोंयोनियों में प्राप्तहोनेवाले दोषों से रहितहोकर ब्रह्म में प्राप्तहोता है अर्थात् मोक्षकोपाता है नरकदननाम भयानक नरक में कुत्ते और लोहेकेमुख वाले बल गृध्रनाम पक्षियों के समूह जो रुधिर मांसादि के भक्षी हैं वह सब उस देहके त्यागनेवाले पुरुषपर गिरते हैं, जो कि गुरू पिता माता आदि के वचनोंको नहीं मानताहै यह मर्य्यादा जो वेदसे नियतकीगई सांख्य में दश हैं अर्थात् शौच सन्तोष, तप, वेदपाठ, ईश्वरकाध्यान, अहिंसा, सत्यबोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य्य, परिग्रह रहितहोना, जो मनुष्य इन दशोंस्थानोंको मनसे नहीं मानताहै वह पापीपुरुष अत्यन्त दुःखरूप यमलोक सम्बन्धी असिपत्रनाम बनमेंजाकर निवासकरताहै, जो मनुष्य अत्यन्त लोभी मिथ्यावादी और सदैव दुष्टकर्म्मी छल में प्रवृत्तचित्त होताहै वहपापात्मा छलआदि से दुःखोंका उत्पन्न करनेवाला बड़े नरकमें पड़कर महाअसह्य कष्टों को पाता है, ऊष्मजलवाली वैतरणी नाम महानदी में गोतेखाताहुआ असिपत्रबन से घायल फरसे के बन में सोता महानरक में गिराहुआ घोरकष्टको पाता है, अब स्वर्ग से भी अनिच्छा करातेहैं, ब्रह्मलोकादि परमपदोंकी प्रशंसा करता है और ब्रह्मको नहीं बिचारता है और आगे प्राप्तहोनेवाली वृद्धोंकीमारने वालीमृत्युको यत्नकरक्याबैठा है बड़ाकरालबली भयउपस्थित हुआ है इससे सुखका उपाय कर ३४ नहींजानताहै वह जबतक यमराजकी आज्ञासे मरकर यमलोकमें पहुंचायाजाता है तबतक तुमआगेके सुखके निमित्त कृच्छ्रआदि

तपोंकेद्वारा सत्यमार्ग में उपायकरो, ३५ जबतक दूसरेके दुःख को न जानने वाला प्रभु यमराज इसलोक में तेरे जीवनको बान्धवादिकों समेतनहींहरताहै क्योंकि उसका रोकनेवालानहीं है और यमराज के सन्मुखरहनेवाली वायुके द्वारा तू अकेलाही यमलोकको पहुंचायाजाताहै उससमयसे पूर्व्वही उसकाम कोकरो जो कि परलोक में लाभ दायकहो, ३७ वहीनाशकारी हवा तेरे सन्मुख जबतकनहीं चलती है इससे पूर्व्वही उपायकरो और जबतक बड़े भय के आने में तेरीदिशा और पास घूमतीहैं उससे पूर्वही उपायकरो, ३८ हेपुत्रयह जब तक तुझ व्याकुल और यमलोकमें जानेवाले की श्रवणेन्द्रीकी सामर्थ्य बन्दहोय उससे पूर्वही उत्तम समाधिको करो, कर्म्मकी भूल से दुःखीहोने पर पूर्व समयके बुरेभलेकर्मोंका स्मरण करताहुआ जबतक दुःख पाताहै तबतक शुद्ध ब्रह्म रूप खजानेको आत्मामें धारणकरो,जबतक देहके बलरूपकी हरने वाली वृद्धावस्था शरीरको अत्यन्त जर्ज्जरीभूत न करे तबतक शुद्ध ब्रह्मरूप खजानेको आत्मा में धारणकरो, जबतक जीवनके अन्तमें रोगको सारथी बनानेवाला यमराज हठकरके तेरेशरीरको निर्जीवनहीं करे उससे पूर्व्वहीबड़ी तपस्यामें प्रवृत्त होजाओ, जबतक मनुष्यों के शरीरों में घूमनेवाले भयानक भेड़िया के समान काम क्रोधादिक सबओर से सन्मुख न दौड़ें उससे पूर्वही पुण्यकी वृद्धि में उपायकरो, जबतक सहायता न रखनेवाला तेरेदोषरूप अन्धकारोंको नहीं देखे और पर्वतके शिखरपर पत्तोंके चिह्नोंको देखे न उससे पूर्वही शीघ्र उपायकरो, जबतक बुरी इच्छा और मित्ररूप शत्रु तुझको अपने नेत्र से या बुद्धि तुझको न बाहर फेंके हे पुत्र उससे पहलेही तू मोक्षमें उपाय करले ४५ जिस विद्यारूपी धनको राजा और चोरसे भयनहीं है और मरनेपर भी जिसकी कीर्त्ति विख्यात रहती है उस धनको अच्छे प्रकारसे सञ्चयकरो, वहां अपने कर्म्म का बिभाग परस्परमें नहीं दियाजाताहै जिसका जो पाथेय है वही अपने को वहां भी भोगताहै हे पुत्र परलोक में जिससे अपना जीवन होता है उसी को दानकरो जो धन अबिनाशी और अचल है उसीको उपाय करके इकट्ठा करो, जबतक साहूकार की यावकनाम भोजनकी वस्तु पकी नहीं होती है और उसके पक्के न होनेपर भी जो मरजायगा इस निमित्त पहलेही उपाय करना योग्य है, माता पिता पुत्र भाई और अच्छे प्रतिष्ठित रिस्तहदार लोग भी संकट में उसअकेले जानेवाले के पीछे नहीं जाते हैं, और पूर्व समय में जो कर्म्म अच्छा बुरा बनगयाहै केवल वही कर्म्म उसपरलोकगामी का साथी होता है, अच्छे बुरे कर्म्मों से जो सुवर्ण रत्नादिक इकट्ठे किये गये हैं वह देह के मरने के पीछे उसके काम में नहीं आते हैं, इस स्थान में तुझ परलोककी इच्छा करनेवाले के और अन्य सब मनुष्यों के क्रोधसे वा बिना

क्रोधसे किये हुये कर्म्मों का आत्मा के सिवाय कोई साक्षी नहीं है, परलोकमें अर्थात् साक्षी पुरुष में जीवात्मा के लय होनेपरही मनुष्य का शरीर नाश होता है वह साक्षी हार्दाकाश में जाकर सबको दिखाई देता है, इसलोक में अग्नि, सूर्य्य, वायु यह तीनों देवता देह में वर्त्तमान रहते हैं वह धर्माधर्म के साक्षी होते हैं, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष वृत्तियों में सब जीवों के भीतर बिचरने वाले और रात्रि दिन सब साक्षियों के चारों से स्पर्श करनेवाले होनेपर भी तुम धर्म्मकीही रक्षाकरो, बहुत से शत्रु और बुरी सूरतके भयानक दंश करने वाला परलोक के मार्ग में अपनाही कियाहुआ कर्म साथजाता है इसी हेतुसे अपने कर्मकी भी रक्षाकरो, वहां कोई किसी के कर्म का कोई भागी नहीं होता है जैसा करताहै वैसाही अपने कर्म से उत्पन्न होनेवाले भागों को भोगता है, जिसप्रकार अप्सराओं के समूह अपने कर्म फल रूपी सुखको पातेहैं उसी प्रकार इच्छानुसार चलनेवाले बिमानों पर चढ़े हुये उत्तमपुरुष भी महर्षियों समेत कर्म के फलको पाते हैं, जिसप्रकार इसलोकमें पापों से रहित ज्ञानी पुरुषों से जो कर्म कियाजाताहै उसीप्रकार अत्यन्त पवित्र उत्पतिवाले पुरुष भी अपने उत्तम कर्म फल को पाते हैं, वह लोग गृहस्थ धर्म्मरूप पुलों के द्वारा प्रजापति बृहस्पति इन्द्र इत्यादि के लोकों को पाकर मोक्षको भी पाते हैं, फिर हमसरीके अज्ञानियोंको मोहनेवाला धर्म्म हजारों प्रकारसे कहने को समर्थ है और वही अपनी सामर्थ्य से हमलोगों को ईप्सित स्थान में भी पहुंचाकर पवित्र करनेवालाहै, तेरी अवस्था के वर्ष ब्यतीतहुये अब केवल तुम्हारी अवस्था के पच्चीस बर्ष बाकी हैं तेरी अवस्था चलीजाती है इससे धर्म्मकाही संचयकरो जबतक अज्ञान में वर्त्तमान होनेवाली मृत्यु इंद्रियों को अपने२ कार्मोंसे पृथक् करती है उससे पूर्वही मृत्युके पंजे में फँसेहुये शरीरको मतत्यागो किन्तु तैयारहोकर अपने धर्मकी रक्षा शीघ्रहीकरो, जैसेकि आत्मा रूप तुमभी आगे या पीछे आत्माको प्राप्तहोगे उसीप्रकार मोक्षप्राप्तकरनेवाले को अपने शरीर अथवा पुत्रादिकों से क्या प्रयोजनहै अनेक भयोंके प्राप्त होनेपर केवल धर्म्म या ज्ञानके द्वारा परलोकमें जाने वाले सत्पुरुषों का जो हितकारी लोक होता है उसी शुद्ध और गुप्त निर्गुण को धारणकरो, वही असंग प्रभु सब जीवों को भाई बन्धु पुत्रादि समेत बाल वा वृद्धों को हरलेता है उसका रोकने वाला कोई नहीं है इसहेतुसे धर्म संचय शीघ्रही करो, हे पुत्र अब यहांमैंने अपने शास्त्र और अनुमानसे यहउचितदृष्टांत मुझसे सबबर्णन किये इनकोही तुमअपना हितकारी जानकर अवश्यकरो, जो पुरुष अपने कर्मसेअपने शरीरको पुष्टकरता है और जिस किसी उपकारीको देताहै वही अकेला अज्ञानमोहजन्य कष्टोंसे मिलताहै, ६७ उत्तमकर्म करनेवाले पुरुषों

का तत्त्वमसि वाक्यसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान ब्रह्मांडको व्याप्तकरताहै वही परम पुरुषार्थ मोक्षरूप अर्थका दर्शन है कृतज्ञ पुरुषोंको उपदेश कियाहुआ ज्ञान पुरुषार्थसे संयुक्त होताहै, जो संसारी लोगोंमें निवास करनेवाले पुरुषों को प्रीतिहोती है वही बड़ाभारी रस्सीबंधनमें डालती है और उत्तमकर्मी मनुष्य इसरस्सीके बंधनको काटकर जातेहैं और निकृष्ट कर्मी नहीं काटसक्ते हैं, हे पुत्र जबकि तुममृत्युके वशीभूत होनेवालेहो फिर तुमको धनभाई बेटोंसे कुछ प्रयोजन नहींहै तुमअपने हार्दाकाशमें नियत आत्माकी इच्छाकरो देख तेरेपिता आदि कहांगये, कलकेकामको आजकर और रात्रिके कामको प्रातःकालही करले क्योंकि मृत्यु जराभी बाटनहीं देखतीहै न यह देखती है कि इसका काम समाप्त हुआ है वा नहीं, मरने के समय मित्र बांधव और जातिवाले पीछे२ चलकर मृतक को अग्निमें डालकर लौटआते हैं, ७२ तुम मोक्षके अभिलाषी आलस्यको दूरकरके विश्वासयुक्तहोके उन निर्दयी पाप बुद्धि नास्तिकों को अपनेसे सदैव हटाओ, इसप्रकार लोकसे घायलकालसे पीड़ावान् होनेपरभी तुमबड़े धैर्य्यसे सबजीवोंमें धर्म्मको करो, फिर जो मनुष्य इसज्ञानकी युक्तिको अच्छेप्रकारसे जानतेहैं वहइस लोकमें अपनेधर्मको अच्छे प्रकारसे करके परलोकमें सुखको भोगतेहैं, और देहके त्यागनेमें ज्ञानी लोगोंकी मृत्युनहींहोतीहै और अपने धर्ममार्गकी रक्षा करनेमें किसीप्रकार की हानिनहीं है जो धर्म्मकी वृद्धिकरताहै वहपंडितहै और धर्म्मसे हीनहोता है वह अज्ञानमें फँसता है, कर्म कर्त्ता मनुष्य कर्म मार्गमें प्रकट होनेवाले अपने दो प्रकारके कर्म्म फलोंको इसप्रकारसे पाते हैं जैसा कि उन कर्मोंको कियाहै अर्थात् बुराकर्म्मकरनेवाला नरककोपाताहै और परायण लोग स्वर्ग पातेहैं इस स्वर्गकी नसेनीको बड़ी कठिनतासे प्राप्त होनेवाले मनुष्य देहको पाकरउस आत्माको अच्छे प्रकारसे ध्यानकरे जिससे कि आपत्तिमें न फँसे, स्वर्गमार्गके अनुसार कर्म्मकरनेवाली जिसकी बुद्धिधर्म को नहीं उल्लंघन करती है उसको पवित्रकर्मी और पुत्र बान्धवादिसे शोचनेकेयोग्य कहाहै, जिसकीबुद्धि अज्ञान से मोहितनहीं है और निश्चयमें आश्रयलेती है उसस्वर्गमें निवासी को कोईभय नहीं होताहै, जो पुरुष तपोवनमें उत्पन्नहुये और वहीं मरे उन कामभोगों से रहित पुरुषोंकाधर्म्म अत्यन्तछोटाहै, जो पुरुष भोगों को चारोंओरसेत्यागकर देहसे तपस्याकरताहै उसको सब अभीष्ठ प्राप्तहोते हैं मैंने भी इसीबातको सिद्धांत समझाहै, हजारों मातापिता और सैकड़ों पुत्रस्त्री भूतकालमेंहुये और आगे भी होंगे वह सब किसकेहुये और हम किसकेहैं, मैं अकेलाहूं मेराकोईनहीं है न मैं किसीकाहूं और जिसकाहूं उसको नहीं देख सक्ताहूं और जो मेराहै इसकोभी नहींदेखताहूं, न मुझसे उनका कामहोगा न

उनसेमेराकामहोगा वह अपने२कर्म्मोंसे उत्पन्नहोकरमेरेवामरेंगे और आप भी जाओगे, इसलोक में धनवान्के भाईबन्धु अपनी प्रसन्नताको प्रकटकरते हैं और निर्द्धनोंके भाईबन्धु नष्टताकोप्राप्तहोते हैं, मनुष्य स्त्रीकेद्वारा बुरेकर्मों को संचयकरताहै फिर परलोकमें और इसलोक में भी कष्टोंको पाताहै, अपनेकर्म्मोंसे इसदुःखरूप जीवलोकको देखताहै हेपुत्र इसीहेतु से इनसबबातोंको ऐसे हीकरनाचाहिये जैसा कि वर्णन कियागयाहै, इसको अच्छेप्रकार ध्यानकरके परलोक चाहनेवालेको उत्तमकर्म्म करनायोग्य है, जिसकालके महीने ऋतु वर्षभ्रमणहैं सूर्य अग्निहै और दिनरात ईंधनहै वह सूर्य कर्म्म और फलकी नियतताका साक्षी भी है ऐसे इन्धन और अग्निमें वह काल भ्रमाय२ कर सब को भस्मकरता है, उसधनसे क्या लाभहै जिसको न देताहै न भोगताहै और ऐसा पराक्रमभी निरर्थकहै जिससे कि शत्रुको नहीं पीड़ितकरताहै और वह शास्त्रभी निष्फलहै जिसके द्वारा धर्म्मको नहींकरे और उसआत्मासे भी क्या प्रयोजनहै जो जितेन्द्री और मनका जीतनेवाला नहींहै भीष्मजी बोले कि शुकदेवजीने व्यासजीके कहेहुये इन हितकारी वचनोंको सुनकर पिता को बिदाकर मोक्षका उपदेश करनेवाले राजाजनक के पास जाकर मोक्षकी रीति को पूछा, युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह दान यज्ञ तप और गुरुओंकी सेवा जैसे करनी योग्यहै वह मुझे समझाइये, भीष्मजी बोले कि अनर्थ में संयुक्त बुद्धिके कारण मन पापकर्म्मों में प्रवृत्त होताहै और अपने कुकर्म्म के फलसे महाकष्टोंको नियत होताहै दुर्भिक्षसे और नानाक्लेशों से अनेक भयकारी आपत्तियोंमें पड़कर मृतकनाम पाके अर्थात् मुक्त न होनेवाले पुरुष मृतक मनुष्योंमें मिलजाते हैं और पापी मनुष्य निर्द्धन होते हैं, उत्सवसे उत्सवको स्वर्गसे स्वर्गको सुखसे सुखको पाते हैं श्रद्धावान् जितेन्द्री और धनवान् लोग श्रेष्ठ कर्म्मी हैं, परलोकके न माननेवाले नास्तिकलोग सर्प हाथी आदि से दुर्गम और भयकारी मार्ग में हथकड़ियों समेत पिटतेहुए जाते हैं इससे कठिन दुःख क्याहोगा, देवता अतिथि साधलोग और देवता आदि जिन पुरुषोंकोप्यारे हैं और महादान दक्षिणाआदिके दाताहैं वह ज्ञानियोंके मार्गमें नियतहैं१८ जैसे धान्योंमें पुलाका और पक्षियोंमें पूत्यण्डाहोता है उसीप्रकार मनुष्योंके मध्यमें वह नास्तिक पुरुष गिनेजाते हैं, जिस २ मनुष्य से जैसा२ कर्म्म हुआहै वही कर्म्मफल प्रारब्ध रूपहोकर दौड़नेवाले के मनुष्यके पीछे२ दौड़ताहै और सोनेवाले के साथमें सोताहै और पापकर्म्म उसकर्म्मकर्त्ता के समीप नियत होता है और दौड़नेवाले पीछे दौड़ताहै और कर्म्मकरनेवाले के साथ कर्म्मकरताहै सदैव छायाके समान संगही बनारहताहै, जिस जिस पूर्व्वजन्म समयमें जो जो कर्म्म कियाहै उसउस अपने कर्म्म किये को आगे

के जन्म में सदैव वह भोगताहै, जिसमें कर्म्म और त्याग समानहैं उसप्रारब्ध से चारोंओर से रक्षित जीवको काल चारोंओर से खैंचकर पृथक् करदेताहै जैसे कि बिना कहेहुये अपने अपने समय और ऋतु में फूल फल समय को उल्लंघन नहीं करतेहैं उसीप्रकार पूर्व्व जन्मके किये हुये कर्म्म भी कभी समय को नहीं उल्लंघन करतेहैं, प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा लाभ हानि जीवन मृत्यु इत्यादि सब जारी होनेवाले बंधनहीं होते हैं और प्रत्येक चरणपर नाशके जतानेवाले हैं, आत्माहीसे सुख और दुःख किये गये हैं गर्भशय्याको प्राप्तहोकर आत्मा अपनेही कियेहुये कर्म फलोंको भोगताहै, बालक, तरुण और वृद्धकोई मनुष्य जिस जिस शुभ अशुभ कर्म्मोंको करताहै उसीदशामें वहप्रत्येक जन्ममें उसके फलको भोगताहै, जैसे बछड़ा हजारों गौओं के मध्य में अपनीही माताको पालताहै इसीप्रकार पूर्व्वका कियाहुआ कर्त्ताका कर्म्म उसके पीछे २ चलता है, जैसे कि मैला वस्त्र फींचेसे जलके द्वारा शुद्धहोजाताहै उसीप्रकार व्रतादि अनेक नियमोंसे कष्टसहनेवाले पुरुषोंको अत्यन्त सुख प्राप्तहोताहै हे महाज्ञानी बहुत समयतक तपस्या करनेसे और धर्म्मसे जिनकापाप दूरहोगयाहै उनके मनोरथ शीघ्र सिद्धहोते हैं, जैसे कि आकाशमें पक्षियोंका और जल में मछलियोंका पहला चिह्न दृष्ट नहीं आता है उसीप्रकार पापात्माओं की भी गतिहै, प्राप्त और नियत नानाप्रकारकी वे मर्य्यादाओंको छोड़ो औरजो अपना हितकारी श्रेष्ठ कर्म्म है उसको करना उचितहै ११२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे सप्तचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १४७ ॥

# एकसौअड़तालीसका अध्याय ॥

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि हे पितामह व्यासजी के पुत्र धर्म्मात्मा तपस्वी शुकदेवजी ने किस प्रकार से जन्म लिया और सिद्धि रूप मोक्ष को प्राप्त हुये यह सब आप वर्णन कीजिये, तपोधन व्यासजी ने किस स्त्री में शुकदेवजी को उत्पन्न किया इन महात्मा की माता को और उनके उत्तम जन्मको नहीं जानतेहैं और उस बालककी बुद्धि किसकारणसे ज्ञानमें प्रवृत्त हुई इसलोकमें ऐसी बुद्धि किसीकी ज्ञानमें नहीं प्रवृत्तहुई हे महाज्ञानी मैं उस को मूल समेत सुनना चाहताहूं क्योंकि आपके अमृतरूपी शास्त्रों के सुनने से मेरी तृप्ति नहीं होतीहै इसी से हेपितामह शुकदेवजी के माहात्म्ययोग और विज्ञानको ठीक२ क्रम पूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये, भीष्मजी बोले कि ऋषि लोगों ने अधिक अवस्था वा वृद्धता मृतक शरीर और धनके कारण से धर्म को नहीं कहा है जो पुरुष अंगोंसमेत वेदों को जानता है वही हम लोगों में बड़ाहै इन सबमें तपही मूलरूप है वह तप जितेन्द्री पुरुषों से होताहै दूसरों से

नहीं होसक्ताहै, हे तात हजार अश्वमेध और सौ बाजपेययज्ञ का फल योग की कलाकेभी समान नहीं होताहै अब मैं इसस्थानमें शुकदेवजीके उस जन्म योगफल और उत्तमगति को जो कि अपवित्र मिथ्यावादी मनुष्यों को कठिनतासे समझ में आसक्ती हैं तुझ से कहताहूं, निश्चयकरके पूर्व समय में भयंकररूप भूतगणों से सेवित श्रीमहादेवजी ने मेरु पर्वतके उस शिखर पर जो कि वन के नानावृक्षों से शोभित था उत्तम जानकर बड़े आनन्द से विहार किया और उससमय श्रीपार्वती जी भी उन के साथ थीं उसीसमय देवताओं के समान श्रीव्यासजी ने वहां तपस्या की और हे कौरवेन्द्र वहां व्यास जी ने योग धर्म में प्रवृत्तहो अपने योगबलसे इन्द्रियोंको हृदय में रोककर पुत्र की कामनाके निमित्त प्रार्थना की अर्थात् उन्होंने यह इच्छाकरी कि मेरापुत्र धैर्य से पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश के समान होवे, उस उत्तम तप में प्रवृत्त उसऋषि ने यह संकल्प करके योगके द्वारा उन शिवजी को आराधन किया जो कि अज्ञानियों को प्राप्त होने कठिनहैं, वायु का भक्षण करके बहुत रूप रखनेवाले उमापति शिवजी के ध्यानमें प्रवृत्त होकर व्यास जी सौवर्षतक खड़े रहे वहां परब्रह्म ऋषिराज ऋषिलोकपाल और साध्यगणों ने वसुओं समेत शिवजी महाराजको सेवनकिया और बारहसूर्य, ग्यारहरुद्र, चन्द्रमा, सूर्य, वसु, मरुद्गण, सागर, नदी, अश्विनीकुमार, देवता, गन्धर्व, नारद, पर्वत, देवऋषि, विश्वावसु गन्धर्व, सिद्ध और अप्सराओं ने शिवजीको आराधन किया उससमय शिवजी महाराज कनेरके पुष्पों की मालाको धारण किये हुये ऐसे शोभायमान थे जैसे कि अपनी किरणों समेत चन्द्रमा शोभायमान हो अपने धर्म में दृढ़ व्यासदेवजी उस दिव्य क्रीड़ाके योग्य देवता और देव ऋषियों से व्याप्त वनके मध्यमें पुत्रकी इच्छा करके उत्तम योग में नियतहुये इनका न तो प्राण निकलता था और कोई प्रकारकी ग्लानि भी नहीं उत्पन्न होतीथी यह बात देखकर तीनोंलोकों को आश्चर्यसा हुआ तब उस बड़े तेजस्वी की जटाकारूप तेजकेमारे महादेदीप्यमान अग्निकी ज्वालाके समान दृष्ट पड़ताथा यह चरित्र और अन्य भी अनेक देवचरित्र इसस्थान में मुझ से भगवान मार्कण्डेयजीने कहेहैं, हेतात अब भी उसी तपके प्रतापसे व्यास जीकी जटा अग्निवर्ण के समान दिखाई देतीहै हे युधिष्ठिर उनके इसयोग भक्ति से अत्यन्त प्रसन्नहोकर शिवजीने अपने चित्तमें विचार किया और ईषद्धास्य पूर्वक भगवान् शिवजीने व्यासजी से यह कहा कि हेव्यास तेरापुत्र पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश इनकेही समान सिद्धहोगा और महापुरुष समझा जायगा, मैं ब्रह्महूं ऐसा विचार करनेवाला उसीब्रह्ममें बुद्धिका लगाने वाला और उसी में मनको दृढ़ करनेवाला और उसी में निवास करके तेरा

पुत्र अपने तेजसे तीनों लोकोंको व्याप्त करके यशको विख्यात करेगा २६॥
इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेअष्टचत्वारिंशदुपरिशततमोऽध्यायः १४८ ॥

# एकसौउनचासका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले उन व्यासजी ने शिवजी से उत्तम वरको पाकर और युग्म अरणीकाष्ठको लेकर कामनाकी प्रत्यक्ष करनेवाली अग्नि से उनको मथा, हे राजा फिर व्यासजी ने अपने तेज से उत्तमरूप धारण करनेवाली घृताचीनाम अप्सरा को देखा, हे युधिष्ठिर भगवान् व्यासजी उस बनमें अप्सरा को देखकर कामसे पीड़ितहुये और घृताचीभी व्यासजीको कामसे व्याकुलदेखकर अपना रूपतोतीका बनाकर उनके पासगई, वहऋषि उसअप्सराको पक्षीकेरूप में गुप्त हुआजानकर काममें संयुक्तहुये और बड़े धैर्यसे कामको स्वाधीन करकेव्यासजी अपने चंचल चित्तकेरोकनेको समर्थ नहींहुये और होनहारके बशसे घृताचीके शरीरकी लावण्यता पर मोहित होगये बड़ी युक्तिसे कामको स्वाधीन करनेवाले उसमुनिकी कामाग्निसे उनका वीर्यपतनहोकर एक अरणीकाष्टकेऊपर गिराइसीहेतुसे उसमहाऋषि ने अरणीकाष्टको मथा और उससे शुकदेव जीने जन्मलिया जैसे कि यज्ञ सम्बन्धी तीव्र अग्नि हव्यको धारणकरता हुआ प्रकाशमानहोता है वैसेही रूपवान् और तेजसे देदीप्यमान शुकदेवजी भी होतेहुये हेकुरुभूषण पिताके अनूपरूप और सुन्दरवर्ण को धारण करतेहुये शुद्ध अन्तःकरण शुकदेवजी धूमरहित अग्निके समान प्रकाशमान होतेहुये हे राजा तदनन्तर मेरुपर्वत के पीछे श्रेष्ठरूपवाली सब नदियोंमें उत्तम श्रीगंगाजीने अपनेरूप से उनके पास आकर उनको अपनेजलसे तृप्तकिया और आकाशसे दण्ड और कृष्ण मृगकाचर्म उनमहात्माके निमित्त पृथ्वीपरगिरा और गन्धर्ववाअप्सराआदि गाने वा नाचनेलगे और देवतालोग बड़ीशब्दायमान दुन्दुभी बजानेलगे और बिश्वावसु नारद तुम्बुर और हाहा हूहू आदि गन्धर्वोंने शुकदेवजीके जन्मोत्सवका मंगलगानगाया और इन्द्रादिक सब देवता और लोकपाल, ब्रह्मर्षि, देवर्षिभी सबआये और बायुने सुगन्धित उत्तम पुष्पोंकी बर्षाकी और सब संसारके स्थावर जंगम जीव अत्यन्त प्रसन्नहुये तब महातेजस्वी महात्मा शिवजीने भगवतीके साथबड़ीप्रीतिसे उसमुनिके पुत्रको उत्पन्न होतेही बुद्धि से अपनाशिष्यकिया और देवेश्वर इन्द्रने अपूर्वदर्शनवाला दिव्यकमण्डल और देवताओंकेवस्त्र बड़ी प्रीतिसे उनकोदिये फिरहजारोंहंस सारस,शतपत्र, तोते और नीलकण्ठोंने उनकी दक्षिणा किया, हे भरतर्षभ फिर तो इसदिव्य जन्म को पाकर महातेजस्वी ब्रतमें सावधान अरणीकेपुत्र बुद्धिमान् शुक-

देवजी उसस्थानमें निवास करनेलगे तदनन्तर रहस्य और संग्रहोंसमेत सब वेद उनकेपास वैसेही बर्त्तमानहुये जैसे कि उनके पिताके पास आयेथे, हे राजा वेद वेदांगके भाष्यकेज्ञाता धर्म्म विचारनेवाले शुकदेवजीने बृहस्पति जीको अपना गुरूकिया और उनसे सब वेद वेदांग रहस्य संग्रहों समेत और इतिहास आदि अनेक शास्त्रोंकोपूर्णतासेपढ़ गुरूको दक्षिणादेकरसमावर्त्तन कर्म्मकिया, फिर उससावधान ब्रह्मचारीने महातपकरना प्रारम्भकिया और अपने ज्ञान वा तपसे बाल्यावस्थामेंही देवता और ऋषियों में बड़ेमाननीय हुये, हे राजा मोक्षधर्म्मके साक्षात्कार करनेवाले इनशुकदेवजीकी बुद्धि गृहस्थादिक तीनों आश्रमोंमें नहीं रमतीथी २७॥

इतिश्री महाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेएकोनपंचाशदुपरिशततमोऽध्यायः १४९॥

# एकसौपचासका अध्याय॥

भीष्मजीबोले कि शुकदेवजी गुरूसेमोक्षशास्त्रको पढ़करपिताके पासगये और कल्याणके आकांक्षी बिनीततासे अपनेपितारूप गुरूकोदण्डवत् करके बोले कि हेपिता आपमोक्ष धर्ममें प्रवीणहैं इससेमुझको ऐसाउपदेशकीजिये जिससे कि चित्तमें उत्तम शान्तिहोजाय, ब्यासजीने पुत्रके ऐसेबचनसुनकर उत्तरदिया कि हे पुत्र तुममोक्षशास्त्रको और अन्य नानाप्रकारके धर्मोंकोभी पढ़ो, हेभरतबंशी उस धर्म्मधारियोंमें उत्तम श्रीशुकदेवजीने पिताकी आज्ञासे संपूर्ण योगशास्त्र और सांख्य शास्त्रकोभी पढ़ा जबउन ब्यासजीने उस पुत्रको ब्राह्मणोंकी लक्ष्मी से संयुक्त ब्रह्मकी समान पराक्रमी और मोक्ष धर्मोंमें महा पंडितजानातबकहा कि अबतुम राजाजनक के पासजाओ वह मिथिलेश्वर संपूर्ण मोक्षशास्त्रको तुमसे कहैगा,हेराजा शुकदेवजी पिताकी आज्ञाको मान करधर्मनिष्ठा औरमोक्षके सिद्धांतके निर्णयके निमित्त मिथिलापुरीमेंगये और चलनेके समय पिताने समझादियाथा कि तुम निस्संदेह मनुष्यमार्ग होकर जाना आकाशमार्ग होकर न जाना सीधेऔरसरलपनसे जाना उचितहै और उसहमारे यजमानराजासे तुम कभीअहंकार न करना उसकेआधीन होनाही योग्यहै वही तुम्हारे सन्देहों को निवृत्तकरेगा, वहराजा धर्म में कुशल और मोक्ष शास्त्रमें अद्वितीय पंडित है जो वहकहै वही तुमको निस्संदेह करना उचितहोगा इसप्रकार से समझाये हुये वह धर्मात्मा शुकदेव मुनि मिथिला पुरी को गये जो कि वहमुनि अन्तरिक्षके मार्गसे अपने चरणों करके समुद्रों समेत पृथ्वीके उल्लंघन करनेको समर्थथे इस हेतुसे उन्होंने पर्वतोंको उल्लंघन कर नदीतीर्थ सरोवर बन उपवन आदि अनेक पर्वत श्रेणी और सर्प मृगोंकरके ब्यासबनोंके अनेक मार्गों को उल्लंघन करके मेरुके इलावर्त्तादि शिखरों

को क्रम पूर्वक व्यतीतकरके भरतखण्डको पाया, फिर चीनी और हूननाम मनुष्योंसे सेवित नानाप्रकारके देशोंको देखतेहुये इसआर्य्यावर्त्त देशमेंआये (अन्यमतवाले लोग इस आर्य्यावर्त्त देशको एरियनकहते हैं) और पिताके बचनको जानकर उसी अर्थ को विचारतेहुये शुकदेवजीने मार्ग को व्यतीत किया, आकाशमें चलतेहुये पक्षीके समान क्रीड़ा के योग्य नानाकुतूहलों से वृद्धिमान नगर और नानाप्रकारके पृथ्वीके रत्नोंको देखतेहुयेभी उनकोतुच्छ समझकर अथवा बैराग्यसे नहीं देखतेथे और मार्गके अनेक क्रीड़ाके योग्य उद्यान स्थान और सुन्दर नानारत्नों को भी तुच्छही समझा इसी प्रकार से चलते २ थोड़ेही समय में महात्मा जनक से रक्षित विदेह नगरको पाया उस नगरमें और अनेकरस अन्नभोजनआदि पदार्थोंसे भरेहुये और अनेक गौओंसे शोभित घोसपल्लीजातिके लोगों से व्याप्त बहुतसे ऐसे ग्रामोंको देखा जिनमें घास अन्न से पोषित अनेक हंस सारसथे और बहुत प्रकारके कमल युक्त तड़ाग बापी कूपों से शोभित अनेक धनाधीश साहूकारोंसे और व्यापारोंसे युक्त हाथी घोड़े रथआदि अनेक बाहनों से पूर्ण विदेह नगरको उल्लंघन करके आत्मज्ञान और मोक्षज्ञानके आकांक्षी शुकदेवजी उसके खुलेहुये द्वारके भीतर निश्शंक होकर घुसे वहां उग्रबचनोंके द्वारा राजा के द्वारपालों ने उनको रोका तब शुकदेवजी क्रोधरहित होकर यथावस्थित खड़ेहुये यद्यपि मार्गकी ऊष्मा और क्षुधा पिपासा से व्याकुल भी मुनिथे तथापि हर्षशोकसे रहित धूपमेंही बर्त्तमान रहे फिर उन द्वारपालोंमें से एक द्वारपालने आकाश में सूर्य्य के समान तेजस्वी शुकदेवजी को शोकयुक्त रूप धारण किये देखा और वह बड़ी प्रीतिसे पूजन करके दण्डवत्कर हाथजोड़ सन्मुख खड़ाहोगया और राजमहलकी दूसरी ड्योढ़ीपर लेगया। हेयुधिष्ठिर वहां बैठकर शुकदेवजीनेमोक्षकाही विचार किया क्योंकि वहमहाप्रतापी धूप और शीतकोसमान देखतेथे, एक मुहूर्त्तहीमात्र में राजाके मन्त्रियों ने बड़ी नम्रतासे आकर शुकदेवजीको राजमहलकी तीसरी ड्योढ़ीपर खड़ाकरदिया और वहांसे लेजाकर स्त्रियों के समूह में प्रवेश करवाया वहां राजमहल से लगाहुआ चित्ररथ के समान सुपुष्पित वृक्षोंसे शोभित क्रीड़ा के योग्य जलक्रीड़ा स्थानसेयुक्त बन था उसमें शुकदेवजी का आसनकरवाके वह मन्त्री चलागया उसस्थान में सुन्दर नितम्बवाली यथास्वरूपवान् स्त्रियां जो अरुण सूक्ष्मवस्त्र धारण किये अग्निके समान सुबर्ण आभूषणोंसे अलंकृत सुन्दर आलाप करनेवालीमृदुभाषिणी गीतबाद्य में प्रवीण मन्दमुसुकान युक्त वार्त्तालाप करनेवाली थीं और अप्सराओं के समान रूपकाम कलामें कुशल हावभाव कटाक्ष जाननेवाली सब बातोंकी ज्ञाता ऐसी पचास स्त्रियां उनकेपास गईं और पाद्य अर्घ्यसे

उनका पूजन करके समयपर उपस्थित उत्तम भोजनों से उनको तृप्त किया और प्रत्येक स्त्रीने साथ लेलेजाकर वह क्रीड़ावन शुकदेवजीको दिखलाया और हँसती गाती और दूसरेके चित्तकी जाननेवाली उन स्त्रियों ने उस बुद्धिमान् महाज्ञानी शुकदेवमुनिकी अच्छे प्रकार से सेवाकी वह शुद्ध अन्तःकरण स्वकर्मनिष्ठ अरणीके पुत्र शान्तचित्त क्रोधरहित शुकदेवजी इन के प्रेमों से न प्रसन्न होतेथे न क्रोधित होतेथे तब उन सुन्दरस्त्रियों ने शुकदेवजी के बिछाने को वह कृष्णवर्ण अनेक रत्नों से जटित आसनदिया जो कि उत्तम देवताओं के योग्यथा शुकदेवजीभी चरण धोकर संध्योपासनादि कर्मों से निबटकर उसी मोक्षको विचारते हुये उस पवित्र आसनपर बिराजमानहुये और रात्रिके प्रथमभाग में ध्यानावस्थित होकर अर्द्ध रात्रि के समय रीति के अनुसार शयन किया फिर एकही मुहूर्त में उठकर निरालस्य शौच और स्नानादिक करके स्त्रियोंसे घिरेहुये मुनिने अपने मन को ध्यानमें लगाया, हे भरतबंशी मोक्षके अधिकारमें बड़ेदृढ़चित्त शुकदेवजी ने इसबुद्धि से उस दिनके शेषऔर रात्रिको उसी राजकुलमें व्यतीतकिया ४५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्व्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेपंचाशदुपरिशततमोऽध्यायः १५० ॥

# एकसौ इक्यावनका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इनसब बातों के पीछे राजाजनक अपने सब मन्त्री पुरोहित और रानियोंको आगे करके बड़े २ आसन और नानाप्रकारके रत्नों समेत शिरसे अर्घ्यकोलेकर गुरु पितर देवताओंके सन्मुखगया और बहुतसे रत्नोंसे जटित बहुमूल्य वस्त्रों से युक्तबड़े पूजित ऋद्धिमान् सर्वतोभद्र नाम आसनको हाथ में लेकर गुरु और पितृरूप शुकदेवजीको दिया, ४ जबउस आसनपर शुकदेवजी बिराजमान हुये तबराजा जनकने पाद्य अर्घ्यपूर्वक शास्त्रकी बिधिसे उनका पूजन करके बहुत से रत्न संयुक्त सुन्दर गौओं का दान में दिया और शुकदेवजीने उसके मन्त्रयुक्त पूजनको बुद्धिसे अंगीकार किया फिर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ तपस्वी शुकदेवजीने भी उसके पूजनको और रत्नादिक समेत गौओं को स्वीकार करके और राजाको आशीर्वाद देकर उसराजाकी कुशल क्षेमको पूछा और राजा अपने सबसाथियों समेत हाथजोड़ेहुये मुनि की आज्ञासे ब्राह्मणों समेत नीचे पृथ्वीपर बैठगया फिर महाकुलीन प्रबल बुद्धिमान् राजाने शुकदेवजीका कुशल मंगल पूछकर कहाकि आपका आगमन कैसेहुआ शुकदेवजी बोले तेरा कल्याणहो मैंने अपने पितासे सुना है कि मोक्ष धर्ममें महाविद्वान् मिथिलापुरीका राजा जनक मेरा यजमानहै वह तुम्हारी बुद्धिसे प्रवृत्ति निबृत्तिवाले सन्देहोंको दूरकरेगा तुम मेरी आज्ञासे वहां

जाओ वह तुम्हारे हृदयके सबसन्देहोंको निवृत्त करेंगे सो मैं पिताकी आज्ञासे आपसे अपने संदेहोंके पूछनेको आया हूं सो धर्म्म धारियों में श्रेष्ठ आपमुझ से कहनेको योग्य हैं इसलोक में ब्राह्मणको क्या करना योग्य है और मोक्ष अर्थका क्या स्वरूपहै ज्ञानसे अथवा तपकेद्वारा मोक्ष किसरीतिसे प्राप्त करनेके योग्य है, राजा जनकने उत्तरदिया कि हेतात इसलोक में जन्मसे लेकर ब्राह्मणको जो करनेके योग्यहै उसको आप सुनिये कि प्रथम तोयज्ञोपवीत प्राप्त करके वेदपाठी होनाचाहिये तब गुरुवृत्ती और ब्रह्मचर्य होकर देवता और पितरोंके ऋण को निवृत्तकरके सबकी निन्दा रहित दूसरेके गुणमें दोष न लगाने वाला सावधान वेदोंकोपढ़ गुरूको दक्षिणा देकर और उनकी आज्ञा प्राप्त करके फिर ब्राह्मणको समावर्त्तन कर्म्म करनाचाहिये, गृहस्थधर्म्म में प्रवृत्त होनेवाला और केवल अपनीही बिवाहितास्त्री में प्रीति करनेवाला अन्यकी निन्दा और गुणों में दोषरहित होकर निवासकरे और न्यायके अनुसार अग्नि स्थापन करे फिर अपने पुत्र पौत्रादिको उत्पन्न करके बानप्रस्थ आश्रममें निवासकरे और उनअग्नियों को शास्त्रकी रीति से पूजता हुआ अतिथियों का प्याराहोवे, फिर वह धर्मज्ञवन में अग्नियों को न्याय के अनुसार आत्मामें प्रविष्टकरके दुःख सुखआदि योगों से रहित विरक्त चित्त होकर संन्यास आश्रममें निवासकरे, शुकदेवजी बोले कि ज्ञान और विज्ञान के उत्पन्न होने और हृदय से सुख दुःखादि के रहित होनेपर और सनातन आत्मा के होनेपर तीनों आश्रमों में निवास करना क्या आवश्यक और योग्यहै यह मैं आप से पूछताहूं इसको मुझे समझाइये और हे राजा तुम वेदार्थ और सिद्धान्त के अनुसार वर्णन कीजिये राजाजनक ने उत्तरदिया कि बिनाज्ञान और बिज्ञान के मोक्षकी प्राप्ति नहीं होसक्ती और बिनागुरू के ज्ञान नहीं मिलता यहां ज्ञान रूप शास्त्र नौका है और गुरू उसका कर्णधार है अच्छे प्रकार से ज्ञानी होकर कर्म्मों से निवृत्त संसार सागर से पारहोने वाला उनदोनों गुरू और शास्त्रको त्यागकरके बामदेवऋषि के समान ब्रह्मचर्य्य से प्रथमही बिज्ञान के उत्पन्न होनेपर उस ब्रह्मचर्य्यधर्म्म से क्या प्रयोजनहै यह शंकाकरके कहतेहैं कि धर्म्म परलोकों के निवास और कर्मों के नाश न होनेकेलिये प्राचीनवृद्धोंका कियाहुआ चारों आश्रमों में सुखरूपहै तात्पर्य्य यहहै कि ज्ञानीको संसारी लोगोंकी शिक्षाके निमित्त उसका करना आवश्यकहै, इसकर्म्मकी परम्परा से इसलोकके अनेक जन्मोंमें शुभअशुभ कर्म्मोंका त्यागकरके यह मोक्षनाम पदार्थ प्राप्तहोताहै, यह शुद्धात्मा बहुतसे जन्मोंमें शुद्ध होनेवाली बुद्धि आदि के कारणसे पहलेही आश्रम में मोक्षको पाताहै उस मोक्षको पाकर उस मोक्षदर्शी मुक्त ज्ञानी और कैवल्य मोक्ष चाहने

वालेका तीनोंआश्रमोंमें क्या प्रयोजनहै, अर्त्थात् आश्रमधर्म्म केवल चित्त-शुद्धिके निमित्त हैं उसकी चित्त शुद्धी होनेपर वह सब निरर्त्थक है राजसी और तामसी दोनोंदोषोंको सदैव त्याग करे केवल सात्विकीमार्ग में नियत होकर आत्माहीके द्वारा अत्माको देखे, सब जीवोंमें नियत आत्माको और आत्मामें नियत सब जीवमात्रोंको अच्छेप्रकार देखताहुआ ऐसे लिप्त न होवे जैसे कि हंस आदि जलसे निर्लिप्तहोतेहैं, देहको त्यागकर सुख दुःखादि से रहित शान्त चित्तहोकर मुक्त ज्ञानी ऐसे प्रकारसे पक्षीके समान परलोक में मोक्षको पाताहै जैसे कि पक्षी नीचे स्थान से ऊपरको उड़ताहै, हे तात इस स्थानपर मैं उन गाथाओंको कहताहूं जिनको कि पूर्व्वकालमें राजाययातिने गायाहै और जो मोक्षशास्त्रमें कुशल ब्राह्मणों से धारणकी जातीहैं चिन्मात्र ब्रह्मरूपी ज्योति बुद्धिमेंही होतीहै दूसरे स्थानमें नहींहोतीहै और वहज्योति सबजीवमात्रों में एकही है जिसका चित्त योगारूढ़है वही उसका दर्शन कर-सक्ताहै, जिससे कोई भयनहीं करताहै न आप किसी दूसरे से भयकरताहै न इच्छाकरताहै न निषेधकरताहै ऐसी दशाहोनेपर वह ब्रह्मभावको पाताहै २२ जब सबजीवोंमें मन बाणी कर्म्मसे पाप कर्म्मको नहींकरताहै तब ब्रह्मभावको पाताहै, जब मनके द्वारा आत्माको परमात्मा में मिलाता है और मोहकी उत्पन्न करनेवाली ईर्षाको त्यागकर काम मोहको पृथक् करताहै तब ब्रह्मभा-वको पाताहै, जब यह सुनने और देखनेके योग्य सबवस्तु और जीवमात्रोंमें समदर्शी और सुख दुःख आदिसे रहित होताहै तब ब्रह्मभावको पाताहै, जब निन्दास्तुति, सोना लोहा, सुखदुःखको समान देखताहै वा शीतोष्णता अर्थ अनर्थ प्रिय अप्रिय जीवन और मृत्युको समान देखता और मानताहै तब ब्रह्मभावको प्राप्तहोता है जैसे कि कछुआ अंगोंको फैलाकर फिर भीतर को सकोड़ लेताहै उसीप्रकार संन्यासीकोभी मनके द्वारा सब इन्द्रियों को जी-तना योग्यहै जैसे कि अँधेरेवाले घर में दीपकसेही पदार्थ देखते हैं उसी प्रकार ज्ञान रूप बड़े दीपकसे आत्मा का दर्शन करना सम्भवहै (आत्मा रूप घरमें अज्ञानरूप अँधेराहै) हेबुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ मैं इनसब बातोंको तुममें देखताहूं और जो दूसरी बातभी जाननेके योग्यहै उसकोभी आप मूल समेत जानतेहो, हेब्रह्मर्षि आपके पिताकी कृपासे और आपकी उपशिक्षतासे आप सरीखे लोगोंका आना इसदेश में हुआहै, हे महामुनि उन व्यासजी कीही कृपासे यह मेरा दिव्यज्ञान भी प्रकाश हुआहै जिसके कारण आप मुझको विदित हुयेहो, आपका बिज्ञान अधिक है और आपकी गति ऐश्वर्य्य भी अधिक है तुम इसको नहीं जानतेहो, बाल्यावस्थाहीमें संशय और बन्धनसे उत्पन्नहोनेवाले भयसेबिज्ञानकी उत्पन्न दशामेंभी उस गतिको नहीं प्राप्त कर-

तेहो, मुझसरीखे पुरुषमें संशयको निवृत्त करके और शुद्ध निश्चयसे हृदयकी गांठोंको खोलकर उसगतिका प्राप्तकरताहै,आपविज्ञानी स्थिर बुद्धियुक्त और निर्लोभहो परन्तु हेब्रह्मन् बिना निश्चयकियेहुये उसमोक्षको नहींप्राप्त करताहै, सुखदुःखादिमें आपकी मुख्यता नहींहै लोभनहींहै न नृत्य गीतादिमें रुचिहै न आपको शोक उत्पन्न होताहै, बांधवों में आपको बंधनया संलग्नता और किसी प्रकारका भयभी नहीं है और आपकी बुद्धि में सुवर्ण वा पत्थर समान देखताहूं, मैं अथवा अन्य लोग जो ज्ञानी हैं वह सब भी आपको इस मार्ग में स्थिरबुद्धि जानते हैं जो सर्वोत्तम निरुपाधि और अविनाशी है हे ब्रह्मन् इसलोकमें ब्राह्मण का जो फल है और जिसरूप का कि मोक्ष अर्थ है उनसब में आपका पूरापूरा बर्त्ताव है अब दूसरी कौनसी बात है जिसको आप पूछते हो ५१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेएकपंचाशदुपरिशततमोऽध्यायः १५१ ॥

# एकसौबावनका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि वह निश्चय करनेवाले ज्ञानी शुकदेवजी जनक के इस बचनको सुनकर बुद्धिरूप आत्माके द्वारा आत्मामें नियतहोकर और आत्मा को आत्माही से देखकर सिद्धमनोरथ महा आनन्दित और शान्तरूप वायु के समान धर्म्मधारी हिमालय पर्व्वत की इच्छासे मौनहोकर चले और दैव योग से उसीसमयपर देवर्षि नारदजीभी सिद्धचारणों समेत उसपर्वतके देखने को आये, वह पर्व्वत अप्सरा गणों से व्याप्त मन्द २ शब्दों से शब्दायमान हजारों किन्नर गन्धर्व्व वा बिचित्र जीव जीवकनाम पक्षियों से और मोरों की केकानाम बाणियों से शोभायमान राजहंस और कृष्णागौओं से शोभित था और पक्षियों के राजा गरुड़ चारों लोकपाल और ऋषियों के समूहों समेत देवतालोग जिसपर सदैव निवासकरते थे और सबका प्यारा उसको समझकर सदैव वहां आया करते थे उसी पर्व्वतपर महात्मा बिष्णुजी ने भी पुत्रकी इच्छासे तपको किया था और उसी शैलपर बाल्या वस्था में स्वामिकार्त्तिकजीने देवताओंको अपने आधीन किया और तीनों लोकोंका अपमान करके शक्तिको पृथ्वी पर फेंका फिरसंसारको तुच्छकरके स्वामिकार्तिकजी ने यहबचनकहा किजोकोई दूसरा मुझ से अधिक है और वेदपाठी ब्राह्मण जिसको अधिकप्यारे हैं अथवा कोई अन्यभी जो ब्राह्मणों का माननेवालाहै और तीनोंलोकोंमें पराक्रमीहै वहइसशक्तिकोउठावे अथवा हिलाहीदे यहबचनसुनकर सबलोकपीड़ामानहुये कि कौन इसको उठावे तद नन्तर भगवान् बिष्णुजीने सबदेवताओं के समूहको भ्रांतिचित्त और अस्वस्थ

व्याकुलता में प्रवृत्त और असुर राक्षसों से तिरस्कृत देखके यह बिचारकिया कि इसस्थानपर कौनसाकाम उत्तमहोगा, ऐसाबिचार अप्रतिष्ठाको न सहकर उसअग्नि के पुत्र स्वामिकार्त्तिक के समचमेंजाके उसप्रज्वलित शक्तिको अच्छेप्रकार से पकड़कर बायेंहाथसेही हिलाया तब महाबली विष्णुके शक्ति हिलातेही उस शक्तिकेसाथ बन पर्वतों समेत सब पृथ्वी कांपनेलगी जबवह शक्ति ऐसे धारणकरने में सामर्थ विष्णुजी ने केवल हिलाही मात्रदी और स्कन्द के अपमान को न किया अर्थात् भगवान् ने इसको हिलाकर प्रह्लाद से यह बचन कहा कि कुमार के पराक्रम को देखो इसपराक्रमको दूसरा नहीं करसक्ताहै इस वचन को न सहकर प्रह्लाद ने शक्तिके उठाने का निश्चय करके उस शक्तिको पकड़कर हिलाना चाहा परंतु उससे नहीं हिली तब तो वह महाशब्द करके पर्वतके शिखरपर मूर्च्छावान होकर अति व्याकुलता से पृथ्वी पर गिरा और फिर शैलराज के उत्तर दिशाकी ओर शिवजी ने जाकर हिमालय में सदैव तपस्याको किया उनका आश्रम अग्नि के समान देदीप्त है, उस पर्वत पर एक सूर्यनाम पर्वत है जो अशुद्ध अन्तःकरणवालोंसे महा कठिन और दुर्धर्ष है वहां यक्षराक्षस दानवनहीं जासक्ते उसका बिस्तार दश योजन है और अग्निकी ज्वालाओं से व्याप्त है वहां भगवान् अग्निदेवता आप बिराजमान रहते हैं हजार दिव्य वर्षतक एकचरण से खड़ेहोकर महा-प्रतापी अग्नि देवता श्रीमहादेवजी के अनेक बिघ्नों को शान्त करते हुये वर्त्तमान हुये वहां महाव्रतधारी शिवजी ने देवताओं को अच्छे प्रकार से संतप्तकिया और उस पर्वतकी पूर्वदिशामें पहाड़केकिनारेमें बड़ेएकान्त स्थान पर बैठेहुये पराशरजी के पुत्र महातपस्वी व्यासजी ने अपने शिष्यों को वेद पढ़ाया उनके नाम महाभाग महाज्ञानी तपस्वी सुमन्त बैशम्पायन जैमिनि और पैलथे,जिसस्थानपर शिष्योंके मध्य वर्त्तमान व्यासजीथे उसपिताके उत्तम क्रीड़ाकेयोग्य आश्रमको शुकदेवजी ने देखा, जो कि अरणीकेपुत्र शुकदेवजी अत्यन्त शुद्धआत्मा और आकाशके सूर्यकेसमान तेजस्वीथे इसकारण व्यास जी ने अग्निकी ज्वाला के समान तेजस्वी और सूर्य के समान प्रकाशमान देश पर्वत बृक्षादि को प्रकाशित करते और सब से स्पर्श योगयुक्त महात्मा-रूप धनुष से निकलेहुये बाणकी समान आतेहुये पुत्रको देखा, उस अरणी के पुत्र महामुनि शुकदेवजीने सन्मुख में आकर पिता के चरणोंको स्पर्श करके दण्डवत्की और उन अपने पिताके शिष्यों से भी मिले फिर राजा जनक से जो जो बृत्तांत हुआथा वह सब अपने पितासे प्रसन्नता पूर्वक सत्य २ वर्णन किया इसप्रकारसे पराशरजीके पुत्र व्यासमुनि नें अपने पुत्र और शिष्योंको वेद पढ़ाया और हिमालयके पृष्ठपर निवास किया एकसमय वेदपाठी शांत-

चित्त जितेन्द्री शिष्योंको चारोंओर बैठाकर व्यासजी पढ़ातेथे तब वह महातपस्वी शिष्यलोग अंगोंसमेत वेदोंमें निष्ठाको पाकर हाथ जोड़के गुरू से बोले कि हे गुरुदेव बड़े तेजस्वी यशस्वी और वृद्धि पायेहुये हमसब अब आप से एकअनुग्रह करवाना चाहते हैं उनके इसबचनको सुनकर ब्रह्मर्षि व्यासजी ने उनसे कहा कि हे पुत्रो तुम उसबातको अवश्यकहो जो मेरेकरने के योग्य है, हेराजा गुरूके इस बचनको सुनकर शिष्योंने फिर हाथजोड़ शिरसे गुरू को प्रणामकरके यह उत्तम बचनकहा कि हेमहाराज गुरुदेवजी जो आपहम सबपर प्रसन्न हैं ऐसीदशामें हमलोग धन्य हैं और यह बरदान आपसे चाहते हैं कि आपका छठवां शिष्य संसारमें कीर्त्तिको न पावै इसविषयमें आपप्रसन्न हूजिये, हमआपके चारशिष्य हैं और गुरुपुत्र शुकदेवजी पांचवें हैं यही इस लोक में वेदकी प्रतिष्ठा पावें यही हम बरदान चाहतेहैं, शिष्यों के बचन को सुनकर वेदार्थ और सिद्धान्तों समेत परलोकके अर्थको जाननेवाले धर्मात्मा बुद्धिमान व्यासजीने शिष्योंसे यह धर्मरूप कल्याणमय बचन कहा कि जैसे ब्राह्मणको वेद होताहै उसीप्रकार सेवा करनेवाले के लिये सदैव धन आदि पदार्थ देना चाहिये, जो पुरुष ब्रह्मलोकमें अचल स्थानको चाहताहै यह उस का कामहै आप सबलोग वृद्धि पायेहुयेहो और यह वेद बहुत विस्तारकोपावे, यह हमारा आशीर्वाद है जो शिष्य नहीं है वा ब्रत रहित है अथवा अशुद्ध अन्तःकरण है उसको कभी न देना चाहिये शिष्योंके यह सब गुण अर्थसमेत जाननेके योग्यहैं, जिसके ब्रत और चालचलन आदि की परीक्षा नहीं ली है उसको किसी दशामें भी यह विद्या देना योग्य नहीं है, जैसे कि शुद्ध सुवर्णकी परीक्षा गरमकरके काटने और खींचनेसे करतेहैं उसीप्रकार शिष्यों की परीक्षा कुलीनपनके गुण आदि से करनी चाहिये, और अपने शिष्यों को ऐसे स्थानपर तुमको आज्ञा नहींकरनी चाहिये जो कि आज्ञाके विपरीत और भयका करनेवालाहो, जैसी बुद्धिहोतीहै वैसाहीपढ़ना होताहै इसीप्रकार जैसेको वैसाही फलविद्याभी देगी, सबअगम्य स्थानोंको सुगमकरो औरसब कल्याणोंको देखो ब्राह्मणको आगे करके चारों वर्णोंको सुनावे यहीवेदका पढ़नाहै और महाकर्म है इसलोकमें ब्रह्माजीने देवताओंकी स्तुतिके लिये वेदों को उत्पन्न कियाहै जोमनुष्य भूलसे वेदपाठी ब्राह्मणसे कठोरता पूर्वक दुर्बचन कहताहै वह उस ब्राह्मणके शापसे निस्सन्देह नाश होजाता है और जो ब्राह्मणको अधर्म्म से उत्तर देताहै या अधर्म्म से ही प्रश्न करता है वह भी नष्ट होजाताहै अथवा जोकोई वेदपाठीसे विरोध करताहै वहभी भ्रष्टहोजाताहै यह सब वेदकी विधि तुमसे वर्णनकी और तुम शिष्योंका उपकार करो यही बुद्धि तुम्हारे चित्त में सदैव नियतहो ५३ ॥ इतिद्विपंचाशदुपरिशततमोऽध्यायः १५२ ॥

# एकसौतिरपनका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इसपरस्पर वार्त्तालापके पीछे व्यासजीके शिष्य जो बड़े तपस्वी तेजस्वी और प्रसन्नचित्तथे वह सब व्यासजी के इन बचनोंको सुनकर परस्परमें एकएकसे स्नेह पूर्वक मिले, भगवान् गुरूजीने जोउपदेश कियावह बर्त्तमान और भविष्यत कालमें हमारा हितकारीहै वह उपदेश हमारे चित्त में नियतहुआ हम सब उसको उसीप्रकारसे करेंगे, फिर अत्यन्त प्रसन्नचित्त और बार्त्तालापमेंप्रवीणउन शिष्योंने परस्परमें इसप्रकार कहकर फिर गुरूजी को जतलाया कि हेमहामुनिप्रभु हमवेदोंको बहुतप्रकारका करनेको पृथ्वीपरजाना चाहते हैं इसमेंक्याआपकी आज्ञाहै तदनन्तरव्यासजीने शिष्योंके बचनोंको सुनकर धर्म्मअर्थ संयुक्त हितकारी बचनोंको कहा, किजोतुमको इच्छाहै तो पृथ्वीपर या स्वर्ग में जहांचाहो वहांजावो परन्तु तुम को सावधान करना उचित है क्योंकि वेदबिहित तर्कनाओं से युक्तअनेक अर्थवाला है, तदनन्तर सत्यवक्ता गुरूसे आज्ञालेकर वहसब शिष्य व्यासजीकी प्रदक्षिणाकरके मस्तक को नवा नवा दण्डवत्कर चलेगये, और पृथ्वीपर उतरकर उनशिष्यों ने चातुर्होत्रमन्त्रों को वेद से बिचारकिया और ब्राह्मण क्षत्री बैश्य इनतीनों बरणों को पूजन करातेहुये उन्हीं द्विजन्माओं से अन्यभी पूजितहोकर आनन्दसे गृह में प्रीतिमानहो यज्ञ कराने और पढ़ाने में प्रवृत्त होकर श्रीमान् और कीर्त्तिमान् जगत्में विख्यात हुये, पर्व्वतसे शिष्योंके जानेके पीछे पुत्र, को साथलिये बुद्धिमान् श्रीव्यासदेवजी मौनता पूर्व्वक ध्यान में प्रवृत्त होकर एकान्त में बिराजमान हुये, तब महा तपस्वी नारदजी ने व्यासजीको आश्रमरूपी स्थान में देखकर समय के अनुसार बड़ीमृदुता पूर्व्वक उनसे यह बचनकहा कि हेवशिष्ठगोत्री बिना वेदघोष के आप एकांत में मौनहोकर ध्यानावस्थित अकेले चिन्तायुक्त क्योंबैठेहो-बिना वेदहोनेसे यह पर्व्वत ऐसे शोभायमान नहीं लगता है जैसे कि आकाश धूल अन्धकार और राहुसे ग्रसाहुआ शोभा नहींदेता है, देव ऋषियों के समूहों से व्याप्त होकरभी बिना वेदोंके यह पर्व्वत पूर्व्वके समान नहीं शोभित होता है ऐसा विदित होता है जैसाकि निषादों का स्थान हो बड़े तेजस्वी ऋषि देवता गन्धर्वभी वेदरूप धनसे रहित होकर शोभितनहीं मालूम होते हैं, व्यासजीने नारदजीके बचनों को सुनकर उत्तरदिया कि हे वेदबिदाम्बर जो आपकहते हैं यहमेरे मनकी बात है क्योंकि आप सर्वज्ञ और वेदज्ञ होकर सर्वत्र उत्तम बातों के देखने वाले हो तीनोंलोकोंका बृत्तांत आपकीमति में नियत है सो हे ब्रह्मर्षि आप आज्ञा कीजिये कि आपका क्या शिष्टाचारकरूं जो मेरे योग्यहै यहां शिष्यों

से पृथक् होकर मेराचित्त अप्रसन्न है, नारदजीबोले कि अभ्यास न करना वेदकामलहै, व्रतन करना ब्राह्मणका मलहै और वाहीका जातिवाले मनुष्य पृथ्वीकामलहैं और उत्तम२ पदार्थोंके देखनेकी उत्कण्ठाहोना स्त्रियोंकामल है, आपअपने पुत्रसमेत वेदरूप धर्मकेद्वारा राक्षसादि के भयरूप अंधकार को निवृत्त करतेहुये वेदोंकोपढ़ो, भीष्मजीबोले कि उत्तमधर्मज्ञ वेदभ्यास में दृढ़व्रतधारी व्यासजीने अत्यन्त प्रसन्नहोकर नारदजीसेकहा कि ऐसाही हो, तदनन्तर अपनेपुत्र शुकदेवजीसमेत बड़ेउच्चस्वर पूर्व्वकस्वरकी रीतियुक्त वेदों के शब्दोंसे लोकोंको पूरितकरके व्यासजीने वेदोंका अभ्यास किया, उन दोनों महातेजस्वी पुरुषोंके वेदघोष करतेही समुद्र कोभी व्यथितकरनेवाला वायुमहावेगयुक्तहोकर चलनेलगा, तब व्यासजीने पुत्रको वेदके पढ़नेसे निषेधकिया फिर शुकदेवजीने अपूर्वबातों के देखनेकी उत्कण्ठा से अपने पिता से निषेधका कारण पूछा औरकहा कि हे ब्रह्मन् यह बायुकहां से उत्पन्न हुआ आप इसका सबवृत्तांत मूलसमेत वर्णन करने को योग्यहैं, व्यासजीने शुकदेवजी के इस वचन को सुनकर बड़े आश्चर्य्य पूर्वक इस आंधी के विषय में यह वचनकहा कि तेरे दिव्यदृष्टि उत्पन्न हुई है और तेरा चित्तभी अति निर्मलहै अर्थात् तमोगुण रजोगुण से रहित बुद्धि में नियतहै, जैसे कि दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखतेहो उसीप्रकार बुद्धिसे आत्माको देखो और आपही वेदार्थोंको खंडन मंडनकी तर्कनाओं से सिद्धकरके बुद्धिसेही अच्छे प्रकार विचारकरो, सर्बव्यापी परमात्मा से सम्बन्ध रखनेवाला जो देवयान नाम मार्ग है उसमें विचरनेवाला अर्थात् सात्विक उपासकों के आवागमन रहित बिष्णुलोक में पहुंचानेवाला वायु देवयानचर कहाजाता है और पितृयान सम्बन्धी वायु तामस कहाजाताहै यह दोनोंवायु दोनों मार्गोंको पाकर स्वर्ग और पाताल को जातेहैं, पिण्डरूप पृथ्वी और ब्रह्माण्ड रूप अन्तरिक्ष में जहां जहां वायु चलते हैं वह सब सात मार्ग्ग हैं उनको क्रम से जानों, वहां पर महाबली साध्य नाम देवगण हैं उनका समान नाम पुत्र उत्पन्न हुआ वह बड़ी कठिनतासे बिजय होताहै, उसकापुत्र उदान हुआ उसकापुत्र व्यान व्यानका पुत्र अपान और उसीका दूसरा भाई प्राणभीहै, शत्रुओंका संतप्त करनेवाला दुराधर्ष वहप्राणहीहै अर्थात् प्राणका दूसरारूपनहींहै उनके पृथक् पृथक् कर्म्मोंको मूलसमेत कहताहूं ३५ बायु प्राणियोंकी चेष्टाको सब ओरसे पृथक् पृथक् वर्त्तमान करताहै जीवोंके जीवनमूल होनेसे उसकाप्राण नामहै जो धूमसे वा ऊष्मासे उत्पन्न होनेवाले बादलोंके समूहों को इधरउधर करताहै वह प्रवह नाम प्रथम वायुहै वह प्रथम मार्गमें धूम और ऊष्मासेपैदा होनेवाले बादलों के समूहोंको चलायमान करताहै वही वायु वर्षाऋतुपाकर

बिजलीरूप होकर महा तेजस्वी होजाता है और गर्जना करताहुआ दूसरा वायु चलताहै अथवा जो चन्द्रमा आदि प्रकाशमान पदार्थोंको सदैव उदय करता है वह आवह नामवायु कहाताहै, ज्ञानी पुरुष जिसको देहके भीतर आदान वा अपान कहते हैं और जो चारों समुद्रसे जलको उठाता है और जो जलको उठाकर आकाश में लेजाकर जीमूतनाम बादलोंके सुपुर्द करता है और जो जीमूतोंको जलमें मिलाकर पर्जन्य नाम बादलोंको सुपुर्द करता है वह तीसरा उद्वहनाम बड़ावायुहै, जिससे खिंचेहुये एकस्थानसे दूसरेस्थान पर पहुंचाये हुये बादल पृथक् २ होतेहैं और जिन्होंने बर्षाकेलिये कर्मको प्रारंभ कियाहै वहघननाम जलसे भरेहुये और अघननाम बिनाजलके बादल हैं, जिसवायु से मिलेहुये बादल पृथक् २ होजाते हैं इसीकारण उनगर्जने वालोंके नामनद होतेहैं और रक्षाके निमित्त प्रकट होनेवाले जलसे रहित बादल भी मेघही नामसे प्रसिद्ध बोलेजातेहैं अर्थात् रससे रहित फलके समान नाशको नहींपातेहैं, जो वायुजीवोंके बिमानोंको आकाशमार्ग होकर चलाता है वह पर्व्वतोंका तोड़नेवाला चौथावायु संवह नामसे बोलाजाताहै, वृक्ष वा पर्वतोंको तोड़नेवाले रूखे बेगवान वायुसे खंडित होनेवाले मेघजिस वायुके साथी होतेहैं उसको बलाहककहतेहैं अर्थात् जो दूसरेके बलयाटकरसे चलते हैं वह बलाहक कहातेहैं, संसारका नाशसूचनकरनेवाले धूम्रकेतु सम्बर्त्तनाम मेघादिक जो उत्पात हैं और जिससे उन्होंकी चेष्टा होतीहै वह आकाशका स्तनयित्नुनाम बड़ाशीघ्रगामी पांचवांवायु बिवहनाम कहाता है, जिसवायु में दिव्य और पारिप्लवनाममेघ आकाश मार्ग होकर चलते हैं और जो आकाशगंगाके पवित्रजलको आकाशमें नियतकरके आपस्थिरहोता है और जिसमें दूरसेटकरखाकर एकज्योतिवाला सूर्यहजारों किरणोंका उत्पत्तिस्थान होताहै और उससूर्य से पृथ्वी प्रकाशमानहोती है और जिससे कलारहित चन्द्रमा पूर्णमण्डल और वृद्धियुक्त होताहै वहप्रवहनाम छठवां बायुकहाताहै जो वायु कल्पके अन्त में सब प्राणियोंके प्राणोंको खेंचताहै और मृत्यु वा यमराज दोनों उसके पीछे चलतेहैं अर्थात् वह इन दोनोंकाभी चलानेवाला है, हे वेदांत बिचारकरनेवाले तुम बाह्याभ्यन्तरीय बिषयोंसे रहित बुद्धिकेद्वारा अच्छीरीतिसे साक्षात्कारकरो, और जो वायु उनपुरुषोंकी मोक्षकेलियेकल्पना कियाजाताहै जो ध्यान और अभ्यासमें क्रीड़ाकरनेवाले हैं, दक्षप्रजापति के दशहजार पुत्रों ने भी उसीको पाकर बड़े बेग से ब्रह्माण्ड के अन्त को पाया है—अब सातवें बायुको कहताहूं—जिसबायुसे संपर्क होनेवाला ब्रह्मरूप योगी जाता है और फिर लौटकर नहीं आता है वह दुःखसे उल्लंघन होने वाला सबसे परे परावहनाम बायुहै, यह अखण्डचैतन्य जन्य अर्थात् उसी

के रूपभेद सबमें वर्तमान सबको धारण करनेवाले अपूर्व बायु नियतहोते हैं और चलते हैं, यह बड़ाआश्चर्य्य है जो यह उत्तमपर्वत अकस्मात उसकठोर बेगवाले बायुसे कम्पायमानहुआ, हे तात जब सर्वव्यापी परमात्मा के बेगसे चलायमान उनका श्वासरूप यह वेद अकस्मात् उच्च स्वर से पढ़ाजाता है तब यह जगत् पीड़ामान होताहै इस हेतुसे कि मूलपुरुष के श्वास की बायु अकस्मात् ऊंचेस्वर से उत्पन्न होकर मतकहीं सब संसार का नाशही करदे, इसी कारण से ब्रह्मज्ञानी पुरुष बायु के कठोर और बेगयुक्त चलने पर वेदों को नहीं पढ़ते हैं क्योंकि बायुसे बायकोही भयहोना कहागया और वहजगत् रूप या वेदरूप ब्रह्मभी पीड़ित होताहै तब यह बचन कहकर और अपने पुत्र को पढ़नेकी आज्ञादेकर ब्यासजी आकाशगंगाको गये ५७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेत्रिपंच शद्धुपरिशततमोऽध्यायः १५३ ॥

# एकसौचौवनका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि ब्यासजी के जातेही स्थानके भीतर एकांत स्थान में नियत वेदपाठ में तदाकार शुकदेवजी के पास जब नारदजी आये तब शुकदेवजीने सन्मुख आयेहुये देवर्षि नारदजीको देखकर वेदके अर्थोंके पूछनेकी इच्छासे अर्घ्यपाद्य पूर्बक वेदोक्त बुद्धिसे उनका पूजन किया,फिर प्रसन्नचित्त होकर नारदजी बोले कि हे धर्म्मधारियों में श्रेष्ठ बेटा मैं प्रसन्नहोकर तुम्हारा कौनसा कल्याणकरूं भीष्मजी बोले हे भरतबंशी युधिष्ठिर नारदजी के इस वचनको सुनकर शुकदेवजीने उत्तरदिया कि इससंसारमें जो महतहो अर्थात् बड़ाहो उसीसे मुझको मिलाओ, नारदजी बोले कि पूर्वसमय में भगवान् सनत्कुमारजीने शुद्ध अन्तःकरण और तत्त्वाभिलाषी ऋषियों से यहबचनकहा कि विद्याके समान आंख नहीं है त्यागके समान सुख नहीं, पापकर्म्म से पृथक् उत्तम प्रकृति श्रेष्ठबृत्ति और सदाचार यह महाकल्याणहैं, जो दुखरूप मनुष्य शरीरको पाकर उसमें प्रवृत्ति चित्तहोता है वह मोहकोप्राप्तहोताहै और दुःखसे नहीं छूटसक्ता है क्योंकि संसारमें लगनाही दुःखका मूलहै, संसार में प्रवृत्तिचित्त मनुष्यकी बुद्धि मोहजालकी बढ़ानेवाली चलायमान होतीहै मोहजालमें फँसाहुआ जीव इसलोक और परलोक दोनों में दुःखको भोगताहै कल्याण चाहनेवाले मनुष्य अनेक युक्तियोंके द्वारा काम क्रोधादिके जीतने के योग्य हैं क्योंकि वह दोनों कल्याणके नाश के लिये सदैव तैयार रहतेहैं, सदैव क्रोधसे तपकी रक्षाकरे और आलस्य से लक्ष्मीजी की रक्षा करे और प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा से विद्याकी और प्रमाद से आत्माकी रक्षाकरे,दयाधर्मही उत्तम है शांतहोनाही बड़ापराक्रम है और ज्ञानों में आत्मज्ञान श्रेष्ठ है और

सत्यसे बड़ाधर्म कोई नहीं है, सत्य बोलना कल्याणरूप है और सत्यसे भी वह उत्तमहै जो हितकारी बातकहै इस निमित्त जीवोंका जो प्रियवचन या प्राप्तहोनेवाला हितहै वह सत्यताही जानो, जो सम्पूर्ण प्रारम्भ कर्मोंका त्याग करनेवाला इच्छा और परिग्रहसे रहितहै और जिसने सर्वस्व त्यागभी किया है वही ज्ञानी और महापंडितहै, जो पुरुष आत्माके वशीभूत इंद्रियों से विषयादिकों को भोगते हैं उन में वहपुरुष श्रेष्ठ है जो उन विषयादि में चित्त न लगाकर रूपांतर दशासे रहित सावधान होता है उन आत्मारूप इंद्रियों के साथ अथवा उनसे पृथक्भी उनसे सम्बन्ध नहींरखताहै वह विमुक्तपुरुष शीघ्र ही कल्याण पदकोपाताहै, हे मुनि सदैव जीवधारियों में जिसको दृष्टि स्पर्श और वचन सम्बन्ध नहीं है वहभी परमकल्याण का भागी है कभी किसीजीवमात्र को न मारे और देवयान मार्ग में वर्त्तमानहोकर विचरे इस जन्मको पाकर किसीके साथ शत्रुता न करे कुछपास न रखना सन्तोषयुक्त चपलता रहितहोनाभी महाकल्याणकारी है जो कि मनको जीतकर आत्मज्ञानी हैं और स्त्रियादि परिग्रहको अत्यन्त त्यागकर जितेन्द्री और दुर्व्यसनोंसे रहित अशोकस्थानमें नियतहैं और जो संसारी विषयोंसे पृथक् हैं वह शोच कभी नहीं करते हैं, जो इन विषयोंको त्यागेगा वह दुःखरूप तीनों तापों से छूटेगा सदैव तप करनेवाले जितेन्द्री सदैव अजय को विजय करने के इच्छावान संगोंसे असंगीमुनिको मोक्षका अधिकारी होना उचित है, गुणों के संगों में प्रवृत्त न होनेवाला सदैव एकान्त विचार करनेवाला ब्राह्मण थोड़ेही समय में असादृश्य सुख को पाता है, जो एकाकी मुनि उन जीवधारियों में घूमता है जो कि सुख दुःखादि योगों में प्रवृत्त हैं उसको विज्ञान से तृप्तजानो क्योंकि ज्ञान से तृप्त पुरुष शोच नहीं करता है, उत्तम कर्म्मों से देवभाव को पाता है और दोनों अच्छे बुरे कर्म्मों से मनुष्य योनि को पाता है और बुरे कर्म्मों से महानीचयोनियों में जन्म को पाता है और जरामृत्यु और अनेक दुःखों से बारम्बार पीड़ित कियाहुआ संसार में पकायाजाता है उसको तुम कैसेनहीं जानतेहो, यद्यपि अमंगलमें मंगलबुद्धि और चलमें अचल अनर्थ में अर्थबुद्धिभीहो तो भी आपकिस निमित्त सावधान नहींहोतेहो, अपने मोह के कारण देहजन्य अनेक जालों से और बंधनों से बँधेहुये आपेको कैसेनहीं जानतेहो और रेशमके कीड़ेके समान अपनेको आपही बंधमें करतेहुये भी नहीं जानते इसलोकमें स्त्रीआदि के परिग्रह से तृप्तहो वह परिग्रह निश्चय करके दोषयुक्त है वहरेशम का कीड़ा परिग्रहसेही माराजाताहै, पुत्र स्त्री और कुटुम्ब में आशक्त चित्त मनुष्य बड़ीपीड़ापाते हैं उनकी वैसीही दशाहै जैसी कि वृद्ध जंगलीहाथी कीचके तालाब में फँसकर फिर नहीं निकलसक्ता है,

प्रीतिरूपी रस्सी से खैंचेहुये बड़ेदुःखी जीवों को देखो वहऐसी दशामें होते हैं जैसे बड़ी रस्सियों के जालमें फँसीहुई मछलियां सूखे स्थलमें धरीहों, पुत्र स्त्री कुटुम्ब और अपना संचित आदि अनेक संसारी पदार्थ सब नाशवान् हैं केवल पुण्यपापके सिवाय अपना यहां कुछभी नहीं है, जब सबको त्यागकरके तुझअसहायको चलनाहै तो फिर क्यों अनर्थमें फँसता है और अपने मोक्षरूप अर्थका अभ्यास नहीं करताहै, तुमअकेलेही उसअन्धकार बनके मार्गमें कैसे जाओगे वह बन निवासस्थान और रक्षास्थान मार्गके भोजन और आबादी से रहित हैं, तुझ यात्रा करनेवाले के पीछे तेरे पापपुण्य के सिवाय कोई भी नहींजायगा, बिद्या कर्म्म शौच और बड़ाज्ञान यही केवल मोक्षकी प्राप्तिके लिये अभ्यास कियेजाते हैं और सिद्ध अर्थ अर्थात् मुक्तपुरुष उनसे छूटजाता है, वह रस्सी बारम्बार बांधने वाली है जो कि बहुतों में मनुष्यकी प्रीतिहोती है उसरस्सी को शुभकर्म्मी मनुष्य काटकर जातेहैं और पापी इसको काटनहीं सक्तेहैं, जिसमें रूप किनाराहै, मनप्रवाह, स्पर्शद्वीप, भावरस, गन्ध कीच, और शब्दजल है और स्वर्गके मार्ग में अगम्यरूप है अर्थात् स्वर्ग मार्गको रोकनेवाली है, शांति नौकाचलानेका दण्ड है और धर्म्म में नियत रहना नाव खेंचनेकी रस्सी है त्यागबायु है ऐसी नौकाके द्वारा वह नदी तरने के योग्यहै उसमार्गरूप मार्गमें बर्त्तमान तीक्ष्ण बेगवाली नदीकोपार होना चाहिये; धर्म्म अधर्म्म सत्य मिथ्या और जिसबुद्धिसे सत्य मिथ्या करतेहो उस बुद्धिको त्यागकरो, संकल्प न करनेसे धर्म्मको और अनिच्छासे अधर्म्मको त्यागकरो और दोनों सत्य मिथ्याको बुद्धिसे त्यागकरो और परमात्माके निश्चयसे बुद्धिको भी त्यागो, जिसमें कमरकी हड्डियांरूप खम्भा नाड़ीरूप रस्सियों से बँधाहुआमांस रुधिरसे लिपा देहके चर्मसेमढ़ा दुर्गन्ध मूत्रपुरीष आदिसे भराहुआ बुढ़ापे और शोकसे जीर्णरोगकाघर रजोगुण से आतुर है ऐसे भूतावासको अर्थात् देहके निवास स्थान को त्यागकरो यह विश्व और बिश्वके सिवायभी जो कुछहै सब पंचतत्त्वरूप है और जो देहसे भी महत्है वह बुद्धिपंचइन्द्री पंचप्राण तीनोंगुणोंका समूह यह सत्रह बस्तुओंका ढेर अव्यक्तनाम कहाता है, यहां सब इन्द्रियोंके शब्दादि पंच बिषय और दो बिषय मनबुद्धिके गुप्तप्रकटनाम युक्त यह व्यक्त अव्यक्तरूप गुणबीस प्रकारका बोलाजाता है, इनसबसे युक्तहोनेवाले को पुरुष कहते हैं धर्म्म अर्थ काम यह त्रिबर्ग और सुखदुःख जीवनमरण इनसबको जो पुरुष मूलसमेत जानता है वह उत्पत्ति लयके स्थान रूपब्रह्म को जानता है ज्ञानियों का जो कुछ सार पदार्थ है वह क्रमसे जानना योग्य है, इन्द्रियों से जो जो बस्तुलीजाती हैं उनका नाम व्यक्त है और जो इन्द्रियों के घेरेसे बाहर है और कारणरूप देह-

से पकड़ने के योग्य है वह अव्यक्त कहाजाता है यही मर्यादा है इन्द्रियों से सावधान वह जीवात्मा धाराओं के समान तृप्त होताहै जो कि लोकमें फैले हुये आत्माको और आत्मा में फैलेहुये लोकोंको देखता है, सदैव सब दशा में जीवोंको और सगुण निर्गुण ब्रह्मको देखनेवाले पुरुषकी ज्ञानमूल शक्ति नाश नहीं होती है, ब्रह्मरूप ज्ञानीका योग पापकर्म्मों से प्राप्त नहीं होता है मोहसे उत्पन्न अनेक प्रकारके क्लेशोंको ज्ञानसे उल्लंघन करता है, लोकमें प्रकाशरूप बुद्धिसे लोकका मार्ग नाश नहीं होता है, मोक्ष की युक्ति जाननेवाले परमेश्वरने आत्मा में नियत जीवका आदि अन्त रहित न्यूनता से जुदा अकर्त्तारूप वर्णन किया है जोजीव अपने अपने कियेहुये उन कर्म्मोंसे सदैव दुःखी हैं वहदुःखके नाशके अर्थ जीवोंको अनेक प्रकारसे मारते हैं फिर जीव दूसरे नवीन अनेक कर्म्मोंको प्राप्त करता है, और उन्हीं कर्म्मों से ऐसे दुःखपाताहै जैसे कि रोगी अपथ्य वस्तुको खाकर पीड़ितहोताहै बारम्बारमोह से अन्धाहोकर दुःखोंमें सुख मानता है और सदैव मथनके समान बांधा और मथाजाताहै फिर वह बँधाहुआ जीव अपने कर्म्मोंकी मुख्य योनिको प्रकट करताहै और अत्यन्त पीड़ित होकर संसार में घूमताहै सोतुम बंधन से और कर्मों से जुदेहोकर सर्वज्ञ सर्वजित सिद्धरूप और संसारके भावों से रहितहोकर तपके बलसे दृष्टिदोषसे भी उत्पन्न हुये नवीन बंधनको पृथक् करके सुखको उदय करनेवाली बाधा रहित सिद्धिको अच्छे प्रकार से प्राप्तकरो ५६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेचतुःपंचाशदुपरिशततमोऽध्यायः १५४ ॥

# एकसौपचपनका अध्याय ॥

नारदजी बोले कि शोकके नाशकेलिये शोकरहित शान्ति उत्पन्न करनेवाले आनन्द रूपशास्त्रको सुनकर बुद्धिको पाताहै और उसको पाकर सुखमें वृद्धि पाताहै, शोक भयके हजारों स्थान प्रतिदिन अज्ञानी में प्रवेश करतेहैं पण्डित में कभीनहीं प्रवेश करते, इस कारण अप्रिय के नाशके निमित्त मैं एक इतिहासको कहताहूं जो बुद्धि स्वाधीनता में नियत होतीहै तो शोकका नाशहोता है, अप्रियके मेलसे और प्रियके वियोगसे अत्यन्त निर्बुद्धी मनुष्य मानसी दुःखों से संयुक्त होतेहैं, धन आदि के व्यय होजाने पर जो उसधन आदिके गुणोंको नहीं चिन्तवन करतेहैं उनकी प्रतिष्ठा करनेवाले मनुष्यकी प्रीतिरूप फांसी पृथक् नहींहोतीहै अर्थात् उसमें फँसाही रहताहै,जिसमें प्रीति उत्पन्न होती है उसका अपूर्व इष्टहोवे और जब अप्रियता से देहको दुःखित जानता है तभी बैराग्यको प्राप्त होता है, जो गतबात को शोचता है वह न अर्थहै न धर्म्महै और न यशहै जिसका अर्थ नाशहोजाताहै वह फिर करनहीं

आताहै सबजीवमात्र जैसे कि गुणों से मिलते हैं वैसेही जुदेभी होतेहैं यह शोकका स्थल केवल एकजीवधारी काही नहींहै, किन्तु सबका है जो पुरुष भूतकाल के मृतकको अथवा नाश प्राप्त होनेवालेको शोचता है वह दुःखसे दुःखको पाताहै अर्थात् दुःखशोक दोनों अनर्थों को प्राप्त करता है, जो पुरुष लोकोंमें सन्तान आदिको देखकर बुद्धिके द्वारा अश्रुपात नहीं करताहै उस ब्रह्मदर्शन करनेवाले को अश्रुपात करनेवाला कर्म्म प्राप्त नहींहोता है, देह और मनके दुःखोंकारोग सन्मुखवर्त्तमान होनेपर जिसमें कि कोईउपाय नहीं करसक्ताहै उसमें चिन्ताभी न करे,दुःखकी औषधियहीहै जो इसको नहींशोचे शोचाहुआ दूरनहीं होताहै किन्तु औरभी वृद्धिपाताहै, बुद्धि के द्वारा चित्तके दुःखको और औषधी से देहके दुःखको निवृत्तकरे यह बिज्ञानकी सामर्थ्य है बालकरूप अज्ञानियों से बराबरी न करे, युवावस्था, रूप, जीवन धनका ढेर, नीरोगता, मित्रोंके साथ निवास, इत्यादि सब बस्तु सदैव नहीं रहतीहैं इस हेतुसे इन बस्तुओं में बुद्धिमान् पण्डित लोग लोभ न करें, अकेला आप सम्पूर्ण प्रदेशका शोचकरने को योग्य नहीं है शोच न करताहुआ रोगके स्थानोंको देखकर उनकी चिकित्सा करे,जीवनमें निस्संदेह सुखसेभी अधिक दुःखहै इन्द्रियों के बिषयों में जो प्रीतिकरनाहै वही मोहसे अप्रियकारी मृत्युहै, जो मनुष्य दोनों सुखदुःखोंको चारोंओरसे त्याग करताहै वह अनन्त ब्रह्मको पाताहै और पण्डित लोग उसको नहीं शोचते हैं धन आदि अर्थोंका त्याग करतेहैं इसहेतु से जो दुःखरूपहै वह बिना पालन करने से सुखरूप होजातेहैं और जो दुःखसे प्राप्तहोतेहैं उनके नाशको नहींशोचतेहैं कोईकोई धनकी मुख्य दशाको पाकर तृप्त न होनेवाले पुरुष नाशको पातेहैं,इसीकारण पंडित लोग सन्तोषको धारणकरतेहैं,सबधनआदिके समूह अन्तमेंनाशवान्‌हैं औरवृद्धिप्राप्त करनेवाले अन्त में गिरनेवालेहैं सब मिलनेवाले अन्तको वियोगी होनेवाले हैं जीवन अन्तमें मृत्यु रखनेवालाहै, लोभका अन्त नहीं है सन्तुष्टतामें बड़ा आनन्द है इससे पण्डितलोग संतोषरूपी धनको सर्वोत्तम समझते हैं, सदैव जातीहुई अवस्था अपने नाशवान् देहोंमें एक पलक भी नियत नहीं रहती है इस निमित्त शोच क्यों करना चाहिये, जो पुरुष मोक्षमार्ग में बर्त्तमान हैं वह बुद्धि के द्वारा चित्तसे भी परे भावको विचारकर परमगतिको देखके शोच नहीं करतेहैं, इन धन संचय करनेवाले और मनोरथों से अतृप्त मनुष्यों को मृत्यु ऐसे लेकर जाती है जैसे कि पशुको व्याघ्र लेजाताहै, तौ भी बुद्धिमान् पुरुष दुःख के दूरहोनेका उपाय विचारसे अवश्य करे और शोचरहित होकर उपायको विचार करे और जीवनमुक्तहोकर काम क्रोधादिकके दोषोंसे पृथक् होजाय, धनी वा निर्धनको शब्दादि विषयों में उपभोगसे अधिक कुछ नहीं

है, विषयों के योगसे पहला दुःख जीवोंका निवास स्थान नहीं है विषयों के वियोगसेही सबको दुःख उत्पन्न होताहै इसलिये मुख्य दशामें नियत होकर शोच नहीं करे, शिश्नेन्द्री और उदरको धैर्य से रक्षाकरे, हाथ पैरों की रक्षा नेत्रों से करे और आंख कानकी रक्षा मनकेद्वारा करे और मनवाणीकी रक्षा विद्याके द्वारा करे, निन्दास्तुतिमें अनिच्छा और प्रीतिको दूरकरके जो बंधन से पृथक् होकर बिचरे वही सुखी है और पण्डित है, जो ब्रह्मविद्या में प्रीति करनेवाला ज्ञानी अनिच्छासे एक स्थानपर नियत विषयोंसे जुदा होकर केवल आत्माहीको अपना साथी बनाकर विचरताहै वही महासुखी होताहै ३०॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेपंचपंचाशदुपरिशततमोऽध्यायः १५५ ॥

## एकसौछप्पनका अध्याय ॥

नारदजी बोले कि जब सुख दुःखका विपर्य्यास सन्मुख वर्त्तमान होताहै तब उसकी रक्षा बुद्धिसे नहींहोतीहै और अच्छेप्रकार से प्राप्त होनेवाले उपाय भी रक्षा नहीं करसक्तेहैं, स्वभावसे उपाय में नियत होवे क्योंकि उपाय करने वाला दुःखी नहीं होताहै अपने प्यारे आत्माको जरामृत्यु और अनेक रोगों से छुटावे, देह और मनके रोग देहोंको ऐसे पीड़ादेते हैं जैसे अच्छे बलवान् के धनुषसे छोड़ेहुये तीक्ष्णबाण भेदन करते हैं, लोभोंसे पीड़ित जीवनकी इच्छाकरनेवाले परतन्त्र प्राणीका शरीर नाशके निमित्त आकर्षणकियाजाता है यह दिनऔररात्रिजीवोंकी आयुर्दाको लेकर बराबर व्यतीतहोतेचले जातेहैं और लौटकर फिर इसप्रकार नहीं आते हैं जैसे कि नदियोंका प्रवाह फिरनहीं लौटता, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षका यह बड़ा आवागमन जन्मधारी जीवोंको वृद्धकरदेता है और एक पलकमात्रको भी स्थिरनहीं होता है यह जरारहित सूर्य्य बारम्बार उदय और अस्तहोताहै और जीवों के सुखदुःखोंको निर्बल करताहै, यहरात्रिभी मनुष्योंकी उनप्रिय अप्रिय बस्तुओंको लेकर समाप्त होजाती हैं जिनको कि पूर्वमें न देखाथा न किसीओरसे उनके आनेकीशंका थी, यह इच्छासे जो चाहै तो उनमेंसे उसको तभी प्राप्तकरे जब कि पुरुषका कर्म्मफल दूसरेके आधीन न होवे,परन्तु जितेन्द्री बुद्धिमान् सावधान सन्त लोग सब कर्म्मोंसे पृथक् अर्थात् कर्म्मफलके बिना दृष्टआते हैं और कितनेही गुणोंसे रहित आशीर्बाद न पानेवाले नीचपुरुष अज्ञानी भी मनोरथ पाने वाले दिखाईदेते हैं, जीवधारियोंमें कितनेही मनुष्य सदैव हिन्सा और लोक के ठगने में उपस्थित हैं वह सुखोंमेंही वृद्धहोते हैं, किसी २ निकम्मे बैठे हुये मनुष्य के पासभी लक्ष्मी निवासकरती है और कोई २ कर्म्म प्रवृत्त मनुष्य प्राप्तहोनेके योग्य बस्तुकोभी नहीं पाताहै; पुरुषके अपराधको कहताहूं स्वभाव

सेही वीर्य्य दूसरे स्थान में उत्पन्नहुआ और दूसरेही में फिर भी जाता है, उस योनिमें संयुक्त वीर्य्यकागर्भ उत्पन्नहोताहै अथवा नहींभी उत्पन्न होताहै उसका होना खपुष्पकेसमान पायाजाताहै पुत्रकी इच्छाकरनेवाले और पिछलीसंतान चाहनेवाले, सिद्धि में उपायकरनेवाले कितनेही पुरुषोंका वीर्य्यरूप बीजनहीं उपजताहै जैसेकि क्रोधभरेहुये महाविषवाले सर्पसेभयहोताहै इसीप्रकार गर्भसे भयभीत मनुष्योंका पुत्रभी बड़ीअवस्थावाला उत्पन्नहोताहै मानोंमरकर जीता है, देवताओंको पूजकर तपस्याकरके पुत्रकीइच्छावाले पुरुष दुःखोंसे दशमहीनेतक गर्भमेंरक्खेहुये कुलीनपुत्रकोभी दोषलगानेवालेहोतेहैं, उन्हीं मंगलोंसे प्राप्तहोनेवाले अन्यपत्र पिता के संचितकियेहुये धनधान्य और बड़े २ उत्तम भोगोंके भोगने के लिये उत्पन्न होते हैं, परस्पर में अच्छीरीति से सलाहकर के स्त्री पुरुषके भोगमें योनिकेद्वारा गर्भ ऐसे प्राप्तहोताहै जैसे कि देहमें प्रवेश करनेवाला उपद्रवप्रकटहोता है, शीघ्रही दूसरेशरीरको प्राप्त करते हैं अर्थात् स्वर्गनरकका बीर्यरूप सूक्ष्मदेह जिसका नाशवान् हुआ और मांसरुधिर रखनेवाले देहसे जिसकी चेष्टा है उसशरीरवाले प्राणीको देहकेत्यागने के समय दूसरादेह प्राप्तहोता है, मरने के समय दूसरीदेह में भस्म और नाशपानेवाले जीवको देखकर बिपरीतदशा से क्षणमात्रमेंही नाशहोनेवाला दूसरादेह कर्म्म संबंधसे ऐसे उत्पन्नहोताहै जैसे कि नौकामें रक्खीहुई नौकाहोतीहै, स्त्री पुरुषके संभोग से उत्पन्नबीर्य जो कि चैतन्यनहीं है पेटमेंरक्खागयाहै उसगर्भ को किसउपायसे तुम सजीवकरतेहो और जीवतादेखतेहो, जिसउदरमें भोजन की बस्तुके समान वह गर्भ क्यों नहीं परिपाक होताहै गर्भमें मूत्र बिष्ठा आदिकी गति स्वाभाविक है उनकेधारण करने वा त्यागकरनेमें स्वतन्त्रभी कर्त्ता वर्त्तमाननहीं है, उदरसेगर्भ गिरभी पड़तेहैं इसीप्रकार बहुत से कर्म्मभी उत्पन्नहोकर नाशहोजातेहैं और ग्रहभूत पिशाचादिके प्रवेशसे अनेक गर्भों का नाशहोता है इसीकारण जो पुरुष योनिसम्बन्ध से बीर्यकोछोड़ता है वह किसीप्रकारकी सन्तानकोपाताहै और फिर सुखदुःख आदि योगों में संयुक्त होताहै, गर्भकानिवास, जन्म, बाल्यावस्था, कौमारअवस्था जो कि पांचबर्ष तक रहतीहै और पौगण्ड अवस्था जो दशबर्षतकहोतीहै तरुणवृद्ध और जरावस्था, प्राणरोधावस्था, नाश यह दशअवस्था हैं उसअनादि प्रवाह से बँधीहुई देहकीसातवीं वृद्धावस्था और नवीं प्राणरोधावस्थाओं को पंचतत्त्व प्राप्तकरते हैं आत्मानहीं कर्त्ता है तदनन्तर वह दशवीं नाशदशाको प्राप्तहोते हैं, उपाय करनेमें मनुष्योंकी सामर्थ्य निस्सन्देह नहीं होतीहै जब कि वह अनेक रोगोंसे ऐसे व्यथित कियेजातेहैं जैसे शिकारियोंसे मृगपीड़ित किये जाते हैं, उपाय और चिकित्सा करनेवाले वैद्यादि लोग अपनी अनेक औष-

धियों से और अनेक रीति से धनके व्ययकरवानेसे भी उनके रोगों को दूर नहीं करसके हैं और चिकित्साकरनेवाले भी जब तंगहोजाते हैं तब अनेक प्रकारके कड़ुए कसेलेकाढ़े और फुकेहुये दिव्य रसोंको खिलातेहैं फिर भी वृद्धावस्था से ऐसे जीर्णशरीर दिखाई देतेहैं जैसे कि बड़े २ हाथियों के तोड़े हुयेवृक्ष निस्सत्त्वहोजाते हैं, पृथ्वीपर रोगोंसे पीड़ित पशु पत्ती और व्याघ्रादि बिचारे जीवोंकी कौनचिकित्सा करताहै इसीहेतु ईश्वरकी कृपासे वहबहुधारोगी नहीं होतेहैं २३ महाउग्रतेजस्वी राजाओं को भी रोगदबाकर अपने आधीन करते हैं जैसे कि पशुओंके समूहअन्यपशुओंके समूहोंको,यहलोक पीड़ाकरके व्याकुल मोह शोकसे व्याप्त और आकस्मिक महावेगवाले प्रवाह से घिराहुआ चेष्टाकरताहै,जो अपने दिव्य शरीरपर स्वाधीनहै वहधनराज्य और उग्रतपके द्वारा स्वभावको उल्लंघन नहीं करते हैं,उद्योग सफलहोने पर न मृत्युपाते हैं न वृद्ध होतेहैं न अशुभको देखते हैं किन्तु सब मनोरथों के सिद्धकरनेवाले होतेहैं, सब मनुष्य संसारसे ऊपर ऊपर जानाचाहते हैं और सामर्थ्यके अनुसार उद्योगभी करतेहैं परन्तु वह ईश्वर उसरीतिसे वर्त्तमान नहीं होताहै,सावधान शूरबीर पराक्रमी मनुष्य शठताको त्यागकर ऐसे लोगोंको प्राप्तहोतेहैं जो कि अपने रजोगुणमें मद्यपानसे उन्मत्त हैं, कितनेही मनुष्यों के अदृष्टक्लेश दूर होजातेहैं और कितनोहीको अपना भी धनप्राप्त नहींहोता है, कर्म्मफलकी इच्छाकरनेवाले मनुष्योंमें फलोंका बहुतसा अन्तर दीखताहै कोई पालकीको लेचलतेहैं कोई पालकीमें सवारहोतेहैं, वृद्धिचाहनेवाले सब मनुष्योंके रथके आगे भी कोई मनुष्यहोते हैं, सैकड़ों मनुष्य तो बिनाहिता स्त्रियों के रखने वाले हैं कितनेही सुख दुःखादि योगोंमें क्रीड़ायुक्त नानाप्रकारकी स्त्रियोंका संगकरतेहैं तुमइस दूसरे पदकोदेखो इसमें मोहकोनहीं करो, धर्म्माधर्म्मको त्यागकर सत्यमिथ्यासे रहित होकर जिसबुद्धिके द्वारा उनको छोड़ताहै उसको भी त्यागकरो, हे ऋषियोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी यहबड़ीगुप्त बार्त्तामैंने तुमसे कही इसकेद्वारा देवता मर्त्यलोकको त्यागकर स्वर्गलोककोगये हैं, नारदजी के इनबचनों को सुनकर बड़े धैर्यवान् बुद्धिमान् शुकदेवजी मनसे अच्छे प्रकार बिचार कर दृढ़निश्चय को न पाकर जाना कि स्त्री पुत्रादि से बड़ी उपाधि में फँसताहै और बिद्याके अभ्यास अथवा उपदेश में बड़ा परिश्रम होताहै इससे थोड़े परिश्रम में बड़े उदयवाला सनातन स्थान कौन है, यह विचारकर सगुण निर्गुण के जाननेवाले शुकदेवजी ने एकमुहूर्त्ततक अपनी निश्चयकी हुई और मोक्षधर्म में उत्तम कल्याण करनेवाली गतिको अच्छी रीतिसे बिचारा कि मैं किसप्रकार से सब उपाधियों से छूटकर उत्तम गतिको पाऊं जिससे कि इसयोनिसंकट समुद्र में फिर न वर्त्तमानहूं, मैं उसपरम ब्रह्म

भावको चाहताहूं जिसमें आवागमन नहीं होता है इससे सब प्रकारके स्नेहों को त्यागकर मनसे गतिको निश्चय करनेवाला, मैं वहां जाऊंगा जिसमें मेरा आत्माशांतिको पावेगा और जिसमें अविनाशी न्यूनाधिकता रहित सनातन ब्रह्मरूप नियतहोगा, वह उत्तम गतियोगके विना प्राप्त नहीं होसक्ती कर्मोंसे ज्ञानीको बन्धननहीं होताहै, इसीकारण योगमें अच्छेप्रकारसे नियत होकर और स्थानरूप देहको त्याग वायुके रूपसे इसप्रकाशपुंज सूर्य में प्रवेश करूंगा क्योंकि इसकानाश नहींहै जैसे कि असुरगणोंसे कम्पायमान होकर चन्द्रमा पृथ्वीपर गिरताहै और फिर चढ़ताहै अर्थात् सदैव नष्टताको पाताहै और फिर पूर्णकला होताहै मैं इसवृद्धिक्षयको बारम्बार जानकर नहींचाहता हूं अविनाशी मण्डलवालासूर्य अपनी प्रत्यक्ष पवित्र कलाओं से लोकों को अच्छी रीति से संतप्तकरता है और सब ओरसे तेजको खैंचता है इसकारण प्रकाशमान तेजवाले सूर्यमें जाना मुझको अभीष्टहै, दुर्धर्षमें निश्शंक अन्तः-करण से बासकरूंगा मैं सूर्यलोकमें इसकारण नाम देहको त्यागूंगा, और ऋषियोंके साथ बड़े असह्यसूर्यके अन्तर्यामी तेजमें प्राप्तहूंगा, मैं वृक्ष सर्पपर्वत पृथ्वी और दशोंदिशाओंको पूछताहूं, और दानव, देवता, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस आदि से भी पूछताहूं कि मैं संसार के जितनेप्राणी हैं उनसबमें निस्सन्देह प्रवेशकरूंगा, सब देवता ऋषियोंके साथ मेरेयोग्य बलको देखो तदनन्तर उसअपूर्व प्रसिद्ध अनूपम नारद ऋषिसे पूछकर और उनकी आज्ञा लेकर पिताजीके पासगये वहांजाकर शुकदेवजीने अपने पिता व्यासजी को दण्डवत् और प्रदक्षिणाकरके पूछा तब महात्मा व्यासजीने शुकदेवजीके उस बचनको सुनकर कहा कि हे पुत्र तुम तबतक निवासकरो जबतक कि मैं तेरे निमित्त चक्षुओंको तृप्तकरूं तब शुकदेवजीने इच्छाप्रीति सन्देह इत्यादि से पृथक्होकर मोक्षकोही बिचारकर चलने के लिये मनकिया और अपने पिता को त्यागकर कैलाशके उस ऊंचे शिखरपर गये जहां सिद्ध लोगों के समूह वर्त्तमान थे ६४॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्म्मेउत्तरार्द्धेषट्पंचाशदुपरिशततमोऽध्यायः १५६॥

# एकसौसत्तावनका अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि हे भरतवंशी उनव्यासजी के पुत्र शुकदेवजीने पर्वत के शिखरपर चढ़कर तृणादिसे रहित एकान्तस्थलकी समभूमि में विराजमान होकर योगके क्रमको जाननेवाले शास्त्रबुद्धि के अनुसार चरण से लेकर शिखापर्यन्त सबअंगोंमें आत्माको धारणाकिया, तदनन्तर सूर्य्यके शीघ्रउदय होनेपर वह ज्ञानी शुकदेवजी पूर्व मुखहोकर उसस्थानपर अपने हाथ पैरों को

छातीपर इकट्ठेकरके बड़ीनम्रतासे सूर्य्यके सन्मुख बैठगये, जिसस्थानमें न पक्षियोंका समूह न किसी प्रकारका शब्द न संसारी जीवोंका बहुधा दर्शनथा ऐसे स्थानपर बुद्धिमान् शुकदेवजी ने योगक्रियाको प्रारम्भ किया, जब आत्माको सब संगों से असंगदेखा तब शुकदेवजी ने उसपरमात्माको मोक्ष मार्गकी प्राप्तिके निमित्त योगारूढ़ महायोगेश्वरहोकर आकाशको उल्लंघन किया, फिर देवऋषि नारदजी को प्रदक्षिण करके उस अपने योगको महर्षि से प्रकट किया,शुकदेवजी बोले कि हे. तपोधन मैंने मार्ग देख लिया मैं उसी में प्रवृत्त हूं आपका कल्याणहो हे महातेजस्वी आपके अनुग्रहसे मैं वांछित गतिको प्राप्तहूंगा, व्यासजीके पुत्र शुकदेवजी उनसे दण्डवत् पूर्वक आज्ञा लेकर फिर योगमें नियतहोकर आकाश में पहुँचे और अन्तरिक्षचारी योग के ज्ञाता शुकदेवमुनि वायुरूप होके कैलाशके ऊपरसे उछलकर स्वर्गको उड़े उससमय ऊपर की ओर चलनेवाले शुकदेवजीको सबजीवोंने गरुड़केसमान तेजस्वी और मन वायुके समान शीघ्रगामी देखा फिर बड़ेमार्ग के अंगीकार करनेवाले और सूर्यके समान प्रकाशमान उस मुनि ने पूरे निश्चय से तीनों लोकों को ध्यानकिया, सब स्थावर जंगम जीवोंने उस एकाग्रमन और सावधान निर्भयहोकर जानेवालेको देखकर सामर्थ्य और न्यायकेअनुसार पूजन किया और देवताओंने दिव्य पुष्पमालाओं की बर्षा से उनको व्याप्त किया और सब गन्धर्व और अप्सराओं के गण उनको देखकर आश्चर्य्यित हुये और बड़े २ शुद्ध ऋषियोंने भी बड़ा अचंभा किया कि इसकौनसे अन्तरिक्षचारीने तपसे सिद्धी को पाया, सूर्यकी ओर देखनेसे जिसका नीचेको शरीर और ऊंचेको मुखहै और नेत्रों से प्रीतिको प्रकट करताहै, तदनन्तर तीनोंलोकों में प्रसिद्ध वह बड़े धर्मात्मा शुकदेवजी सूर्य्यदेवताको देखतेहुये पूर्व्वाभिमुखहोकर सुन्दर बाणी को बोले और अपने शब्द से संपूर्ण आकाशको पूर्ण करतेहुये चले, हेराजा सब अप्सराओं के समूह उस आकस्मिक आते हुये ऋषिको देखकर महाआश्चर्ययुक्त मनसे अचंभा करनेलगे जो कि अत्यन्त सुन्दर नेत्रवाली पंचचूड़ा नाम आदि अप्सराथीं वह परस्परमें कहनेलगीं कि यह उत्तमगति में नियत कौनसा देवता है जो अच्छा निश्चय करनेवाले इच्छारहित विमुक्त पुरुषके समान यहां आताहै तदनन्तर उसमलयाचलनाम पर्वतको अच्छे प्रकारसेउल्लंघन किया जहांपर कि उर्वशी और पूर्व्वचित्तीनाम अप्सरा सदैव निवास करती हैं, वह सबभी उस महर्षिके पुत्रको देखकर आश्चर्य युक्तहुईं कि इस वेदाभ्यासमें प्रीति करनेवाले ब्राह्मणमें ऐसी बुद्धिकी एकाग्रता है, कि थोड़ेही समयमें चन्द्रमाके समानआकाशमें चलताहै इसने अपने पिताकीही सेवासे उत्तम बुद्धिको पाया है यह पितृभक्त दृढ़ तपस्वी

अपने पिताका प्यारापुत्रहै पुत्रके सिवाय दूसरे में चित्त न लगानेवाले उस पिताने इसको कैसे यहांको बिदा कियाहै, परमधर्म्म के जाननेवाले शुकदेव जीने उस उर्बशीके बचनको सुनकर वचनमें चित्तलगाकर सब दिशाओं को देखा और पहाड़बन विपिनों समेत पृथ्वीको और अनेक सरोवर समेत नदी और अन्तरिक्षको देखा, तदनन्तर चारों ओरसे हाथजोड़ेहुये सब देवताओंने बड़ी प्रतिष्ठासे युक्त उन शुकदेवजीकोदेखा, तब परमधर्मज्ञ शुकदेवजीने उन से यह वचनकहा कि जो पिताजी मुझको अरे शुक इस वचनसे पुकारतेहुये मेरेपीछे चलेआवें तो तुमसब उनको मेरी ओरसे सावधानीसे उत्तरदेना इसमेरी प्रार्थनाको आप सब लोग प्रतिपालन कीजिये, शुकदेवजी के इस बचनको सुनकर सब समुद्र बन नदी आदि समेत दिशाओंने उत्तर दिया कि हे वेद-पाठी ब्राह्मण जैसी तुम आज्ञाकरतेहो वह अंगीकार है इसी प्रकारहोगा जब ऋषि आवेंगे तो उत्तर दिया जायगा ३१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे सप्तपंचाशदुपरिशततमोऽध्यायः १५७ ॥

## एकसौअट्ठावनका अध्याय॥

भीष्मजी बोले कि महातपस्वी ब्रह्मर्षि शुकदेवजी इस प्रकार के बचनको कहकर और चारों प्रकारके दोषों से जुदेहो बुद्धि में प्रवेश करते हुये, पाठांतर से शुकदेवजी ने सिद्धी में प्रविष्टहोकर, आठ प्रकारके तमोगुण और पांच प्रकार के बिषयों को त्यागकर फिर सत्त्वगुण वा बुद्धिको भी त्यागकिया यह आश्चर्य सा हुआ, तदनन्तर निर्धूम अग्निके समान देदीप्यमान वह ऋषि उससूर्य के अंतर्य्यामी आवागमन रहित लय के स्थान निर्गुण निराकार ब्रह्म में नियत हुये अर्थात् ब्रह्मभावको प्राप्तहुये, उससमय उल्कापात और दिग्दाहहोकर पृथ्वी कंपायमान हुई यहभी महाआश्चर्यसा होताहुआ (महा पुरुषोंके लयादिक होनेपर संसारकी प्रारब्ध हीनतासूचक अनेक उत्पातहोते हैं,) वृक्षोंसेशाखा और पर्व्वतोंसे शिखर गिरे और निर्घातशब्दोंसे हिमालय पर्व्वतभी फटगया और सहस्रांशु सूर्य्य देवता भी प्रकाशित नहींहुये और अग्निने प्रकाश त्यागकरदिया और नदीसमुद्रादि सब व्याकुलहुये, इन्द्रने स्वादु सुगन्धि युक्त जलकी वर्षाको किया और दिव्य सुगन्धित युक्तपवित्र वायु भी चलनेलगी, हे भरतबंशी फिर उसने उत्तर दिशामें नियत होकर दो महासुन्दर शिखरों को देखा वह दोनों शिखर मेरुपर्वत के दिब्य प्रकाशवान् और तुषार से श्वेतरूप ऐसे दिखाई देतेथे मानोंचांदी और सुवर्ण के ढेरहैं बिस्तार में सौ योजन और उँचाई में तीनयोजन थे,, उसके समीप निश्शंक चित्तहोकर शुकदेवजी जो दौड़े तो उनके दोखण्ड अकस्मात् होगये यह भी

आश्चर्य्यसाही हुआ फिर शुकदेवजी उनशिखरों से अकस्मात् बाहर निकले उसउत्तम पहाड़ने भी इनकी गतिको नहींरोका इसकारण स्वर्ग में देवताओं का बड़ा शब्दहुआ और ऋषिगन्धर्व्व आदि जो पर्व्वतपर रहतेथे उन्होंने भी महाशब्दकिया और पहाड़ उल्लंघन करनेवाले शुकदेवजी को और दोफांक होनेवाले पर्व्वतके शिखरोंको देखकर वहां सबस्थानों पर धन्यधन्य यह शब्द हुआ और देवता ऋषि गन्धर्व यक्षराक्षस और विद्याधरोंके गणोंनेभी उनका यथोचित पूजनकिया और उनके ऊपर दिव्यपुष्पोंकी बर्षाहुई फिर ऊपरको चलकर शुकदेवजी ने मंदाकिनी गंगाको देखा जिसका तटसुगन्धित और प्रफुल्लित वृक्षों से व्याप्तक्रीड़ाके योग्य स्थानथा और उसगंगामें अप्सराओं के गण क्रीड़ापूर्व्वक नग्न होहोकर स्नानकर रहे थे वह नग्न शरीरवाली अप्सरा शुकदेवजीको ब्रह्मरूप देखकर उसीप्रकार नग्न शरीरही वर्त्तमानरहीं हृदयसे प्रीति और स्नेहयुक्त पिताव्यासजी उसमोक्ष मार्ग में चलनेवाले को जानकर, और उत्तम गतिमें नियतहोकर उन के पीछे २ चले तब शुकदेवजी वायु से ऊपर अन्तरिक्षकी चालको और अपने प्रभावको दिखाकर ब्रह्मरूप हुये और महातपस्वी व्यासजी ने दूसरी महायोग गति में उपाय करनेवाले होकर पलभरमें ही उनके मार्गमें पहुंचकर शिखरके दोटुकड़े करनेवाले शुक देवजी को देखा और वहांके सब ऋषियोंने शुकदेवजीके उसकर्म को बर्णन किया तदनन्तर व्यासपिताने बड़े उच्चस्वरसे तीनोंलोकों को व्याप्तकरके हे शुक इस बचनको ऊंचेस्वरसे कहा, तब धर्मात्मा शुकदेवजीने सर्बव्यापी सर्बात्मा सर्बतोमुख होकर हे पिता इसगर्जना पूर्व्वक शब्दसे उत्तरदिया तिस पीछे भी इस एकाक्षरवाले शब्दके द्वारा सब दिशाओंसे अशेष जड़चैतन्य जीवोंने उत्तरदिया तबसे लेकर अबतक प्रथक् २ कहेहुये शब्दों कोगुफा और पहाड़ोंके ऊपर शुकदेवजीके विषय में कहतेहैं फिर शुकदेवजीने प्रभावको दिखाकर अन्तर्द्धान होकर, शब्दादि गुणोंको त्यागकरके परम पदको भी पाया उसमहातपस्वीपुत्रकी उस अपूर्व्व महिमाको देखकरपुत्र के शोच में व्यासजी पर्व्वतके शिखरपरही बैठगये तदनन्तर मंदाकिनी नाम आकाश गंगा के तटपर क्रीड़ा करनेवाले अप्सराओंके गणउन व्यासजीको देखकर भ्रांतियुक्त हो ऐसीलज्जा युक्तहुई कि कोई तो जलमें छिपीं कोई गुल्मों में घुसहुई और कितनीहीं अप्सराओं ने उन व्यासजीको देखकर बस्त्रों से अपने शरीरों को आच्छादनकिया तब मुनिअपने पुत्रकेमुक्त भावको जानकर और अपने में आत्माके बंधन को समझकर प्रसन्नहोके लज्जितहुये, उस समय देवगंधर्व्व और बड़े २ महर्षियों समेत हाथमें पिनाक धनुष धारण किये भगवान् शिव जी उनव्यासजीकेसन्मुख आये, और उसपुत्र शोकसे व्याकुल व्यासजी को

ढाढ़स और बिश्वासकराके यह वचनबोले कि पूर्व्वसमय में पंचतत्त्व पृथ्वी जल अग्नि और आकाश केवलकी समान पुत्र तुमने मुझसे मांगाथा इस हेतुसे वह उसी प्रकारका पुत्र उत्पन्नहुआ और तुम्हारी तपस्यासे पोषितहुआ और मेरीकृपा से वह पवित्र और ब्रह्मतेज रूपहुआ, उसने उसउत्तम गतिको पाया जो अजितेन्द्रियोंसे प्राप्तहोनी कठिनहै हे ब्रह्मर्षि वह गतिदेवताओं से भी प्राप्तहोनी असंभवहै तुम उसको क्याशोचतेहो, जबतकपर्व्वत समुद्रादि नियत हैं तब तकतेरी और तेरेपुत्रकी कीर्त्ति अचलरहैगी, हेमहामुनि तुम इसलोकमें मेरी कृपासे सदैव अपनेपुत्रकी समान सबओरसे सन्मुख बर्त्तमान छाया को देखोगे, हे युधिष्ठिर आप भगवान् शिवजी के समझायेहुये वह ब्यासजी छायाको देखतेहुये बड़ीप्रसन्नतासे लौटआये, हेराजा यह मैंने शुकदेवजीका जन्म और मोक्ष ब्योरे समेत तुमसे बर्णनकिया, हे पुत्र पूर्व्व समय में देवर्षि नारदजी और महायोगी ब्यासजीने हरएक स्थान की कथा में इस वृत्तान्त को मुझसे कहा, जो पुरुष बाह्याभ्यन्तरसे शान्तहोकर इसमोक्ष धर्मसेभरी महा पवित्रकथाको सुनेगा वह मोक्षरूप परमगतिको पावेगा ४२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्म्मेउत्तरार्द्धेअष्टपंचाशदुपरिशततमोऽध्यायः १५८ ॥

# एकसौ उनसठका अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले कि हेपितामह गृहस्थी, ब्रह्मचारी, बानप्रस्थ, सन्यासी इत्यादिमें से जो कोई सिद्धिमें नियत होनाचाहै वह किसदेवताका पूजनकरे और आवागमन रहित ब्रह्मलोक किसकी कृपासे प्राप्तहोता है और किससे मोक्ष प्राप्तहोती है और किस बुद्धिसे देवता पितृसंबंधी हवनश्राद्धादिको करे, और मुक्त पुरुष किस गतिको पाता है और मोक्षका क्या स्वरूप है और स्वर्ग में प्राप्तहोकर क्या २ करे जिसके द्वारास्वर्गसे नहीं गिरे देवताओं काभी देवता कौन है इसीप्रकार पितरोंका पितरभी कौनसाहै और देवता आदिके स्वामी से जो श्रेष्ठतरहै इनसबको आप मुझेसमझाइये, भीष्मजी बोले कि हेनिष्पाप प्रश्नोंके ज्ञाता तुम यहबड़ाप्रश्नमुझसे पूछतेहो इसप्रश्नके उत्तरको मैं सैकड़ों बर्षमेंभी देवताकी कृपा और ज्ञानप्राप्ति के बिनातर्कनाओंके द्वारा कहनेको समर्थनहीं होसक्ता हे शत्रुहन्ता युधिष्ठिर यह कठिनतासे बुद्धिमें आने योग्य आख्यान तुझ से कहने के योग्यहै, इस स्थानपर इसप्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसमें नारदजी और श्री नारायण ऋषिकाप्रश्नोत्तर है, वह नारायणजी बिश्वके आत्मा चतुर्मूर्त्तिधारी सनातन धर्मराज के पुत्रहुए अर्थात् वासुदेवजी से संकर्षणनामजीव उत्पन्नहुआ जीवसे प्रद्युम्ननाम चित्तहुआ चित्त से अनरुद्ध नाम अहंकार प्रकट हुआ यही चार मूर्त्ति हैं, हे महाराज

पहले स्वायंभुव मन्वन्तर के सतयुग में स्वतः सिद्ध होनेवाले नर नारायण हरिकृष्ण नाम चारों रूप प्रकट हुए उन सब में आदि अन्त न रखनेवाले नर नारायणजी ने बदरिकाश्रम को पाकर मोह उत्पन्न करने से सुवर्ण रूप और शकट के समान अन्य से चेष्टा पानेवाले शरीर में तप स्याकरी वह सवारी रूप देह आठप्रकार की अविद्यारूप आठ पहिये रखनेवाला पंचतत्त्व युक्त मनको क्रीड़ा करानेवाला है अर्थात् मायारूप है वहां वहदोनों लोक नाथ महाकृषाङ्ग नाड़ियों से व्याप्त अपने तपके तेजके द्वारा देवताओं से कठिनतासे देखनेमें आतेथे, जिसपर प्रसन्न होतेथे वहीदेवता दर्शनके योग्य होताथा उनदोनों की इच्छा से और हृदयमें वर्त्तमान अन्तर्य्यामी की प्रेरणा से सर्वज्ञ सर्व दर्शी नारदजी महामेरुपर्व्वत के शिखरसे गंधमादन पहाड़पर आये और सब लोकों में घूमे, हे राजा शीघ्रगामी नारदजी घूमते हुये उस बदरीवन में उन दोनों नर नारायण की संध्याके समय पहुंचे और दर्शन न होनेका नारदको बड़ा शोक और पश्चात्ताप हुआ और कहनेलगे कि यह वह उत्तम अधिष्ठान है जिसमें देव गन्धर्व दैत्य दानवादिक सबजीवयुक्त लोक नियत हैं, प्रथम यह एकही मूर्त्तिथी फिर धर्मकी कुलसन्तान में चार प्रकारसे प्रकटहुए और धर्मादिकसे वृद्धियुक्त हुए, बड़ा आश्चर्य्य है कि अब यहां धर्म नरनारायण कृष्ण हरि इन चारों देवताओं से कृपा किया गया है इनमें से कृष्ण और हरि किसी कारणसे धर्म के उत्तममाननेवाले हुए और इसीप्रकार यहदोनों नर नारायण जी तपमें प्रवृत्तहुए, यह दोनों उत्तम तेजवान यशस्वी सबजीवों के स्वामी पिता और देवताहैं इनदोनों को संध्या आदि क्रियाकाकरना क्या आवश्यक है, बड़े बुद्धिमान् यह दोनों किस इच्छासे किस देवता और पितरका पूजन करते हैं ऐसामनमें बिचारकर नारद जी नारायणकी भक्तिसे अकस्मात् उनदोनोंके सन्मुख वर्त्तमानहुए तब देव कर्म पितृकर्म समाप्त होनेपर उनदोनों ने नारदजीको देखा और शास्त्रकी बुद्धिसे इनकापूजन किया इसआश्चर्य्यको देखकर परम प्रसन्नहोकर नारद जी उनके समीप बैठगये और आनन्द पूर्व्वक श्रीनारायणजीका दर्शनकरके बड़े ईश्वरका ध्यानकर यहवचन बोले, कि पुराण उपपुराण और अंगों समेत चारों वेद तुमको अजन्मा वा सदैव वर्त्तमान अविनाशी सर्वपालक और सर्वोत्कृष्ट वर्णनकरते हैं, यह सब संसार जो हुआ और है और होगा तुमहींमें नियतहै हे देव चारों आश्रम के पुरुषआपको अनेक मूर्त्तियों में नियत करके पूजन करते हैं तुमही सबजगतके पितामाता और सनातन गुरुहो ऐसे आप होकर किस देवता और पितरका पूजन करतेहो यह हमनहीं जानते आप अनुग्रह पूर्व्वक समझाइये श्रीभगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् यह कहने के अयो-

ग्य बुद्धिमें गुप्त करनेके योग्य सनातन वार्त्तातुमसरीके भक्तिमानोंसे कहना उचितहै इसको यथा तथ्य तुमसे कहताहूं, जोकि सूक्ष्म कठिनतासे दर्शन होनेवाला द्वैतता रहितगुप्त और चेष्टाके बिना अचल सनातन इन्द्रियों के विषय और तत्त्वोंसे भी पृथक् है, वहीजीवोंका अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ कहा जाताहै और तीनोंगुणोंसे रहित पुरीरूप शरीरोंमें शयनकरनेवाला कल्पित हुआ, और हेब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ उसीपुरुषसे तीनोंगुणों का रखनेवाला अव्यक्तवा व्यक्तउत्पन्न हुआ, वहअबिनाशिनीशक्ति रूपप्रकृति है वहीअव्यक्त वा व्यक्त भावमें नियत होतीहै, उसीको हमदोनों ईश्वरजीवका उत्पत्ति स्थानजानों और जो यहकार्य्य कारणका आत्मा है उसी कोहमदोनों पूजते हैं और वही देवपितृकर्मों में देवता और पितृरूप कल्पना कियाजाता है, उससेबड़ा कोई पितादेवता और ब्राह्मण नहीं हैं वहहमारा आत्माजाननेके योग्य है इसीहेतु से हम उसको पूजते हैं, हेब्रह्मन् वही संसार की उत्पत्ति पालन रूपमर्य्यादाको स्थापित करताहै और देवपितृ सम्बन्धी कर्मसबकोअवश्य करना चाहिये यह भी उसीका उपदेशहै, ब्रह्मा, शिव, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य्य, चन्द्रमा, कर्दम और जो क्रोध विक्रीत नामसे इक्कीस प्रसिद्धहैं वह प्रजापति कहे जाते हैं, जिस देवता की सनातन मर्य्यादा को पूजते हुए वह उत्तम ब्राह्मण उसके देव पितृकर्म को सदैव मुख्यता से जानकर आत्मासे प्राप्त भोगोंको उसीसे प्राप्त करते हैं. जो कोईपुरुष स्वर्ग में नियतहैं उनकोभी शरीरधारी नमस्कार करते हैं परन्तु वह सब उसकी कृपा से उसके दिये हुए फलवाली गतिको पाते हैं, जो पुरुष सत्रह गुणोंसे और कर्मोंसे रहित पन्द्रह कलाओंके त्यागनेवाले हैं वहनिश्चयकरके मुक्तरूप हैं, हेब्रह्मन् मुक्त लोगोंकी लयरूपागति क्षेत्रज्ञ है वही चिदात्मा मायासे सगुण रूप और बास्तवमें निर्गुणकहा जाताहै, वहयोग और ज्ञान से दृष्ट आता है हमदोनों उसीसे प्रकट हुए ऐसे जानकर उस सनातन आत्मा को हम पूजतेहैं सब वेद आश्रम और नाना प्रकार के मतों में नियत होकर मनुष्य भक्तिसे उस आत्माको अच्छी रीतिसे पूजते हैं और वहभी उन को शीघ्रही गति देताहै जो पुरुष संसार में उससे मिलेहुए एक निश्चय में नियतहैं उनमें यही विशेषताहै, कि इसमें प्रविष्ट होते हैं हेनारदजी भक्ति और प्रेम से यहगुप्त उपदेश हमने तुमसे कहा और हेब्रह्मर्षि आपनेभी बड़ी भक्ति से इसको सुना ४५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेएकोनषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः १५९ ॥

# एकसौसाठका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर इस प्रकार पुरुषोत्तम नारायणजी के समझायेहुए नारदजीने लोकोंका हितकारी प्रश्नफिर उन नारायण जीसे पूछाकि अपने आप उत्पन्न होनेवाले आपने धर्म देवता के घरमें जिस प्रयो· जनके लिये चार रूपोंसे अवतार लियाहै उसको आपसाधन कीजिये और मैं अब लोकोंके हितके अर्थ आपकी श्वेत द्वीपमें वर्त्तमान प्रथममूर्त्तिके दर्शनों कोजाऊंगा उसके दर्शनमें मैं अपने अधिकारको वर्णन करताहूं कि एक तो मैं सदैव गुरूका पूजन करताहूं प्रथम मैंने किसीकी गुप्तवार्त्ता प्रकट नहींकी और सब वेदभी अच्छेप्रकारसे पढ़े और मिथ्या रहित होकर तपस्याकोभी किया, शास्त्रके अनुसार हाथपैर उदर शिश्न यहचारों मेरे रक्षितहैं और सदैव शत्रु मित्रको समान जानताहूं और सदैव उस आदिदेव ज्योतिस्वरूपकी शरणमें रहताहूं और सदैव अनन्य भक्ति भावसे पूजन आदि करताहूं, इनमुख्यगुणों से शुद्धहोकर भी मैं उसअनन्त ईश्वरको कैसे न देखूंगा सनातनधर्मकी रक्षा करनेवाले नारायणजीने अपनी बुद्धि और अनुग्रहों से नारदजीकी पूजा करके यहवचन कहा कि अब पधारो यह सुनकर वह ब्रह्माजीके पुत्र नारद जी उस पूर्ण ऋषिको पूज और उनसे बिदाहो उत्तम योगमें संयुक्तहोकर आ- काशको उछले और क्षणमें मेरुपर्व्वत पर जा पहुंचे और उसके शिखरपर एकान्त स्थानको पाकर एक मुहूर्त्ततक विश्राम युक्तहुए, फिर उत्तर पश्चिम के कोणोंकी ओर देखतेहुए नारदजी अद्भुत रूपवाले उस देशमें पहुंचे जो कि क्षीरसमुद्र से उत्तर दिशामें श्वेतद्वीप नामसे प्रसिद्ध बड़ा विस्तारवान् द्वीपहै, पण्डितोंने इसद्वीपको मेरु पहाड़के मूलसे बत्तीस हजार योजन ऊंचा कहाहै वहांपर जोपुरुष रहतेहैं वह इन्द्रियोंसे पृथक् शब्दादि भोगोंसे रहित चेष्टारहित सौगन्धिनाम परमात्माका ध्यान करनेवाले शुद्ध सतोगण प्रधान श्वेतरूप सर्वपाप रहित तेजस्वी होनेसे पापात्माको दृष्ट न आनेवाले बज्रके समान अस्ति औरशरीरवाले मानापमान रहित दिव्य अंगरूप युक्त योग प्रभावसे उत्पन्न पराक्रमी जिनके छत्र के समान शिर और बादलके समा- न शब्द शरीरमें पतले और काष्ठके समान चारभुजाधारी अनेक रेखाओं समेत उत्तम चरणहैं और हे राजा छयासठ दांतयुक्त संसारके भक्षण करनेको वर्षोंकी व्यतीतताके समान समर्थश्वेत आठ दाढ़वाले अर्थात् आठों दिशाओं के समान देश और कालको मुखमें धारण करनेवाले विश्वको और महा- कालको अपनी रसनासे चाटनेवाले हैं, कारण यह है कि जिससे सब सृष्टि उत्पन्न हुई और सबका ईश्वर है उस देवताको उन्होंने अपने ध्यानके बलसे

अपने हृदय में धारण कियाहै चारोंवेद और सब धर्म देवता ऋषि गन्धर्वादिक जिसने बिना उपायके उत्पन्न कियेहैं युधिष्ठिर बोले कि हे पितामह वह इन्द्री भोजन चेष्टा आदिसे रहितहोकर सौगन्धिनाम परमात्माको ध्यान में दर्शन करनेवाले पुरुष किसप्रकारसे उत्पन्नहुए और कौनसी उनकी उत्तमगतिहै, हे भरतर्षभ इसलोकमें जोजीवनमुक्त होते हैं उन लोगोंका यह लक्षण है और वही श्वेतद्वीप निवासी सगुण उपासकोंका लक्षणहै, इसी हेतु से इसमेरे संदेह को निवृत्तकरो क्योंकि मुझको अद्भुत बातोंके देखनेका बड़ा उत्साह है और आप सब कथाओंमें कुशलहैं और आपकी शरणहैं, भीष्मजी बोले कि मैंने यह बड़ी कथा पिताके सन्मुख सुनीथी वह तुमसे कहने के योग्य है क्योंकि वह सब कथाओंका सारहै, कि उपरिचर नाम एकराजा संपूर्ण पृथ्वीका स्वामी हुआ वह नारायण हरिकाभक्त और इन्द्रका सखाकरके प्रसिद्धथा, वह धर्म और भक्तिमें कुशल सदैव पिताकी सेवामें सावधानथा उसने पूर्व्व समयमें श्रीनारायणजीके बरसे सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको भोगा, और पंच रात्रिनाम वैष्णवोंकी बुद्धिमें नियतहोकर प्रातःकाल सूर्य्यके मुखसे प्रकटहोनेवाले देवेश का पूजन किया फिर उसपूजनसे बचीहुई सामिग्रीसे पितामहादिकोंको तृप्त किया और पितरोंके शेषबचेहुए अन्नसे ब्राह्मणों औरआश्रितोंको बिभागदेकर शेषबचेहुए अन्नका भोजन करनेवाला सत्यतासे न्यायकरने में प्रवृत्त जीव-मात्रमें हिंसासे रहितथा,२० उसभक्तने शुद्धमन से देवदेव दुष्टनिकन्दन आदि अन्तरहित अबिनाशी सबके स्वामी भगवान्का पूजन किया, उसनारायणके भक्तदुष्टोंके पीड़ा करनेवाले राजाको इन्द्रने अपने हाथसे एक शैयासन दिया, वा अपनाराज्य धन स्त्री सवारीआदि जो समान सुखकेहैं इनसबको नारायण हीकाहै ऐसासंकल्प सदैव रखताथा हेराजा उससावधान राजाने बैष्णव बुद्धिमें नियतहोकर यज्ञसंबंधीकाम्य और नैमित्तिक उत्तमकर्म्मोंको किया उसमहात्मा के घरमें पंचरात्र शास्त्रके जानने वाले मुख्य ब्राह्मण उस प्रधान भोजन को खातेथे जो भगवत् का प्रसाद कहाजाताथा, धर्मसे उस शत्रुहंता राजाके आज्ञावर्त्ती लोग कभी मिथ्या भाषी नहींहुए और उसका चित्तभी कभीदोष युक्त नहीं हुआ, उसने अपने शरीरसे थोड़ा भीपाप नहींकिया और जो वह सात ऋषिचित्र शिखण्डी नामसे प्रसिद्धथे उन्होंने एकमत होकर जो उत्तम शास्त्रवर्णनकिया वहउसमहामेरु पर्व्वतपर चारोंवेदों के समान लोकका उत्तम धर्मरूप सातमुखों से वर्णन हुआ उनऋषियोंकेनाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्ति, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी वशिष्ठजी यहीसातों चित्र शिखण्डी कहातेहैं यहसब प्रकृतिहैं और स्वायंभुवमनु आठवीं प्रकृतिहै यहलोक इन्हींसे धारणकिया जाताहै और इन्हींसे शास्त्र उत्पन्न हुआ, उनएकमत जितेन्द्री

संयममें प्रीतिमान तीनोंकाल के जाननेवाले सत्यधर्म में नियत होकर मनुजीने यह कल्याण रूपब्रह्म है उत्तममतहै इस प्रकारमनसे लोकोंको बिचार करफिर शास्त्रकोबनाया, उस शास्त्रमें धर्म अर्थकाम और सच्चीमोक्ष कोभी वर्णनकिया और नाना प्रकारकी वह मर्य्यादें जो स्वर्ग और पृथ्वीपर श्रेष्ठ गिनी जाती हैं उनकोभी वर्णनकिया, वहसब ऋषियों के दिव्यसात हजार वर्षतक हरिनारायणको तपस्या से आराधन करके नियत हुए, तबनारायण जीकी आज्ञासे देवी सरस्वतीजी लोकोंके हित करने को उनऋषियोंमें प्रविष्ट हुई तदनन्तर प्रथम उत्पत्तिमें उत्पन्न होनेवाली सरस्वती उनतपस्वी ब्राह्मणोंके कारणसे सिद्धार्थ और हेतुओंमें अच्छे प्रकारसे वर्त्तमानहुई, आदिमें ऋषियों की ओरसे प्राण व और स्वरयुक्त वहशास्त्र भगवान् विष्णुजीके स्थानमें सुना गया, तदनन्तर षड़ैश्वर्य्य के स्वामी वर्णन से बाहर देहमें वर्त्तमान दृष्टिसे गुप्त प्रसन्न मूर्त्ति परमेश्वरने उन सब ऋषियों से यहबचन कहा कि तुमने जो यह एकलाख उत्तम श्लोक बनाये जिससे कि सब लोक तन्त्र धर्म अर्थात् संसारका धर्मप्रबन्ध जारीहोताहै, और इसीसे यहशास्त्र प्रवृत्ति निवृत्तिमार्गमें ऋग् यजु साम अथर्वण इनचारों वेदोंकी ऋचाओंसे सेवित वा संयुक्तहोगा, हेब्राह्मणों जिसप्रकार वहक्रोधसे प्रकटहोनेवाले रुद्रदेवता ब्रह्मअनुग्रहसे प्रमाण कियेगयेहैं और तुमप्रकृतिरूप ब्राह्मण, सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी, जल, अग्नि सर्वनक्षत्रगण और भूतगण इत्यादि अपने २ अधिकारोंपर वर्त्तमान रहते हैं और जैसे वह सब ब्रह्मवादी प्रमाणहैं इसी प्रकार यहआपका उत्तम शास्त्रभी मेरे उपदेशसे प्रमाणहोगा आप स्वायंभूमनुजी इस शास्त्रसे धर्मोंको कहेंगे, और जब शुक्र और बृहस्पतिजी उत्पन्नहोंगे तब वह भी तुम्हारे इस शास्त्रसे धर्मोंको कहेंगे, स्वायंभूमनुके सब धर्म और शुक्र वा बृहस्पतिजी के बनाये हुए शास्त्र लोकों में जारीहोने पर राजा बसु तुम्हारे बनायेहुए शास्त्रको बृहस्पतिजी से पावेगा हे उत्तमब्राह्मण लोगो इसको यथार्थही जानो, और वह राजा साधुओंकासेवी मेरा भक्त होगा वह उसशास्त्रसे लोकोंमें सब क्रियाओं को करेगा, यह तुम्हारा शास्त्र सब शास्त्रों में उत्तम है और सब अर्थ धर्मादि युक्त श्रेष्ठ रहस्यहै तुम इसकेजारी करनेसे सन्तानयुक्त होगे और महाराजा बसु लक्ष्मीमान होगा, उस राजा के परमपदहोनेपर यह सनातन शास्त्र गुप्त होजायगा यह सब वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा, वह अदृष्ट पुरुषोत्तम यह वचन कहकर और उन सब ऋषियोंको विदाकरके किसीदिशाको चलदिये, तदनन्तर सब लोकोंका हित बिचारनेवाले लोकके पितररूप ऋषियोंने उस धर्मके उत्पत्तिस्थान सनातन शास्त्रको जारी किया, प्रथम कल्पित सतयुग में अंगिरावंशी बृहस्पतिजी के उत्पन्न होनेपर अंग और उपानिषदों समेतशास्त्र

को उसमें नियतकरके, सबलोकोंके धारण करनेवाले और अशेषसंसारको कर्मों में प्रवृत्तकरनेवाले तपनिष्ठबहुसबऋषिलोग अपने अभीष्टदेशंकोगये ५५ ॥

इतिश्री महाभारते शान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः १६० ॥

# एकसौ इकसठका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर महाकल्प के अन्त में बृहस्पतिजी के उत्पन्न होनेपर सब देवता उस देवताओं के पुरोहित बृहस्पतिजी के जन्म से बड़े प्रसन्नहुए, हे राजा बृहद्ब्रह्म महत्त्व जिसमें यह सबशब्द संयुक्तहों उसके पूरे अर्थ के कहनेवाले इत्यादि गुणों से संयुक्त बृहस्पतिजी हुए और प्रथम उनका शिष्य राजा उपरिचर वसु होताभया उसने चित्र शिखण्डी नाम ऋषियों के बनाये हुए शास्त्र को गुरू से अच्छे प्रकार पढ़ा, उस महात्मा ने प्रथम तो दिव्यबुद्धिसे पृथ्वी के जीवों का पालन ऐसा किया जैसाकि स्वर्ग का इन्द्र करता है फिर उस यशस्वी ने अश्वमेध नाम भारी यज्ञकिया उसमें उपाध्याय बृहस्पतिजी होतेहुए और प्रजापतिजी के तीन पुत्र एकत द्वित त्रितनाम तीनों महर्षि यज्ञमें सदस्य हुए और धनुपाख्य, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, मेधातिथि, तांड्य, शान्त, वेदशिरा, कपिल जो कि शालिहोत्र का पिता कहाजाता है, अद्य, कट, तैत्तिरि, वैशंपायन के बड़े भाई कण्व, देवहोत्र यह सोलह महान् ऋषि भी उस यज्ञमें वर्त्तमान थे उसबृहत् यज्ञमें और सामान तो सब इकट्ठा हुआ परन्तु उसमें पशुका नाश नहीं हुआ इन सब सामग्रियों समेत वह राजा यज्ञशाला में नियत हुआ, जो कि हिंसा रहित पवित्र अक्षुद्र निराकांची कर्म में प्रशंसनीयथा इस निमित्त यज्ञमें बनके फल मूलों से विभाग विचार किये गये, तदनन्तर वह षडैश्वर्य्य का स्वामी देवताओं का देवता पुरातन पुरुषोत्तम ईश्वर इसपर प्रसन्न हुआ और अदृश्य होकर भी इसको साक्षात् दर्शन दिया और आप अपने पुरोडास नाम भाग को सूंघकर लेलिया अर्थात् अश्वमेध यज्ञसे अपना भागलेलिया, तदनंतर क्रोधित होकर बृहस्पतिजी ने शुच नाम पात्रको उठाकर उससे आकाशको ताड़न करके बड़े अश्रुपातकर उस उपरिचर राजा से कहा कि मेरेसन्मुख से मेरेदेखते हुए यह भाग उठायागया है इससे देवतासे निस्सन्देह लेना योग्य है युधिष्ठिर बोले कि यहां उठाये हुए यज्ञ भाग नेत्रों के आगे देवताओं ने अंगीकार किये परंतु उस हरिने सबको दर्शन क्यों नहीं दिया, भीष्मजी बोले कि यह दशा देखकर उस महाराजा वसुने और सब सदस्यों ने उसउठे हुए बृहस्पतिजीको बहुत प्रसन्न किया, भ्रांति रहित उनलोगों ने उनसे कहा कि आपको क्रोधकरना योग्य नहीं है सतयुगमें यह धर्म नहीं है जो आपने

क्रोधकिया, हे बृहस्पतिजी यह देवता क्रोध से रहित है जिसका यह भाग उठायागया है वह देवता हमसे और तुम से अदृष्ट है, जो इसकी प्रसन्नता करताहै उसीको यह दर्शन देता है तदनन्तर एकत, द्वित त्रित और चित्र शिखण्डी नाम ऋषियों ने यह कहा कि हम ब्रह्माजी के मानसी पुत्र कहाते हैं एक समय हम अपने कल्याण के निमित्त उत्तर दिशाको गये और हजारों वर्षतक उत्तम तपस्या करके सावधानी से काष्ठके समान एक चरण से खड़े रहे वह देश क्षीर सागर के तटपर सुमेरु पर्वतके उत्तर में है जहांपर कि हम ने इस मनोरथसे उग्रतप किया था कि हम उस ज्योतिरूप वरदाता देव देव श्रेष्ठ नारायण सनातनरूपको किसी प्रकारसे देखें तदनन्तर इस व्रत की समाप्ति में अवभृथस्नान होनेपर आकाश से यह गंभीर वाणी हुई कि हे ब्राह्मण लोगो तुमने शुद्ध अन्तरात्मा से अच्छा तप किया, तुम जानने की इच्छा करनेवाले भक्तहो उस प्रभुको कैसे देखोगे क्षीरसागर के उत्तरकी ओर महाप्रकाशवान् श्वेत द्वीप है वहां नारायण को श्रेष्ठतम जाननेवाले चन्द्रमा के समान तेजस्वी एकमें निश्चय भक्ति रखनेवाले मनुष्य हैं वह भक्तलोग पुरुषोत्तम को पूजते हैं, वह इंद्रियों से रहित भोजन और चेष्टासे रहित परमात्मा को ध्यान करनेवाले भक्त उस हजारों किरण युक्त सनातन देवता में प्रवेश करते हैं वह श्वेतद्वीप निवासी पुरुष एक निश्चय रखने-वाले हैं हे मुनियो तुम वहीं जाओ उस स्थान में मेराआत्मा प्रकाशवान्है, इसआकाशवाणी को सुनकर हमसब उसबताये हुये मार्गकेद्वारा उस देशमें पहुंचे और उसके देखने की इच्छाकी तबवह हमको दिखाई देकर गुप्त होगया उसके तेजसे नेत्रोंकी ज्योति नष्ट होजानेसे हम सबने उस पुरुषको नहींदेखा तदनन्तर देवता की कृपासे हमारा यह विज्ञान उत्पन्न हुआ कि तपस्या न करनेवाले पुरुषको निश्चय करके दर्शन होना असम्भव है, फिर हम सबने सौवर्ष तक तात्कालिक नाम तपस्याको करके शुभ लोगों को देखा वह पुरुष श्वेतवर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित सब लक्षणयुक्त सदैव हाथजोड़े गायत्री वा प्रणवका जप करनेवाले पूर्वोत्तर कोण में मुख कियेहुये वर्त्तमान थे वह महात्मा मानसी जपको करतेहैं उसी चित्तकी एकाग्रता से ईश्वर प्रसन्न होते हैं हे मुनि श्रेष्ठ युगके अन्तमें जैसी कि सूर्य्यकी किरणें होतीहैं वैसाही प्रकाश प्रत्येक मानसी भक्त का था तब हमने जाना कि यह द्वीप इनके रहने का स्थान है उनमें कोई न्यूनाधिक नहीं था सब बराबर के तेजस्वी थे; हेबृहस्पति जो इसके पीछे हमने फिर भी अकस्मात एकहीवार प्रकट होनेवाले हजार सूर्य्य के प्रकाशको देखा फिर वह मनुष्य हाथ जोड़ेहुये प्रसन्न चित्त नमस्कारकरके शीघ्रही सन्मुखको दौड़े और उन्होंके बोलने की ध्वनिको सुना फिर उन म-

नुष्योंने उस देवताकी बलिक्रियाकी, फिरउसके तेजसे अकस्मात बेहोश अंधे के समान महानिर्बल से होकर हम लोगों ने वहां कुछ भी नहीं देखा उनके मुख से निकला हुआ एक यह शब्द हमने सुना कि हे पुंडरीकाक्ष आपने सबको बिजय किया है हे बिश्वभावन आपको नमस्कार है हे सबकी आदि इन्द्रियों के स्वामी महापुरुष तुमको नमस्कारहै शिक्षा और हाथकी चेष्टायुक्त यह शब्द हमने सुना, इसी अन्तर में सब सुगंधियों के बहानेवाले बायु ने उत्तम पुष्पोंको और सब औषधियोंको इकट्ठा किया तब पांचों कालके जानने वाले उत्तम भक्तियुक्त एक निश्चयवाले लोगोंने मन बाणी और कर्म से हरि का पूजन किया जैसेही उन्होंने मंत्र बचनों से ध्यान किया वैसेही वह निस्सन्देह साक्षात्कार हुआ परन्तु उसकी मायासे मोहित हमलोगों ने दर्शन नहीं पाया, हे अंगिरा बंशियों में उत्तम बृहस्पतिजी बायु के बंद होनेपर और बलिके भेट करने पर हमलोग चिन्तासे व्याकुलहोगये, उनशुद्ध उत्पत्तिवाले हजारों पुरुषों के मध्य में किसी ने हमको मन और नेत्रों से भी पूजन नहीं किया अर्थात् देखा भी नहीं, उन सुखरूप एकभाव युक्त ब्रह्मभावका अनुष्ठान करनेवालों ने हमको मनसे भी नहीं देखा तदनन्तर वहां पर स्वर्ग में नियत देहके बिना किसी पुरुषने तपसे पीड़ामान और थकेहुये हमलोगों से यह बचन कहा कि यह दीखनेवाले श्वेतबरण पुरुष सब इन्द्रियों से रहित हैं इन देखनेवाले उत्तम पुरुषोंसे वह देवेश्वर देखनेके योग्यहै और इन्हीं को दर्शन देताहै ५१ हे मुनियो तुम जैसे आयेहो वैसेही शीघ्रतासे चले जाओ उस देवताका दर्शन अभक्त लोगोंसे करना असंभवहै अर्थात् भक्त लोगोंके सिवाय वह किसी को दर्शन नहीं देताहै वह षड़ैश्वर्य युक्त प्रकाश मंडलसे बड़ी कठिनतासे दर्शन होनेवाला काल पुरुष एक निश्चय करनेवाले भक्तों से बहुत काल में दर्शन किया जाताहै हेब्राह्मणो तुम बहुत कर्मोंको करो अबसे लेकर वैवश्वत मन्वन्तर में सतयुगके अन्तहोने और त्रेतायुगके वर्त्तमान होनेपर, तुम देवताओं के प्रयोजन सिद्ध करनेको मेरे साथी सहायता करनेवाले होगे तदनन्तर उस अपूर्व अमृतरूप बचनको सुनकर उसीकी कृपासे शीघ्रही हम सब अपने मनभावने देशको पहुंचे, इसप्रकार बड़ेतप और हव्य कव्यके द्वारा भी उस देवताको हमने नहीं देखा तो तुम उसके दर्शन कैसे करसक्तेहो वह नारायण बड़ाप्रत्यक्ष संसारका स्वामी हव्यकव्यका भोक्ता आदि अन्त रहित दृष्टिसे गुप्त देवता दानव आदि से पूजित है इसप्रकार द्वित त्रितऋषिके अभीष्ट एकतऋषिके बचनोंसे और सदस्योंसे समझायेहुये बुद्धिमान बृहस्पति जी ने उस यज्ञको समाप्त किया और देवताको अच्छी रीति से पूजा, और यज्ञपूर्ण करनेवाले राजा बसुने भी प्रजाका पालन किया तिस पीछे ब्राह्मणों

के शाप से स्वर्ग से गिरकर पृथ्वी पर आया, हे राजाओं में श्रेष्ठ सत्य धर्म में नियत और पृथ्वी के भीतर वर्त्तमानभी सदैव धर्म वत्सल उस राजा ने, नारायण का भक्त होकर नारायणही के नामका जप किया और उसी की कृपा से वह राजा फिर स्वर्ग को गया और बिना रोकके पृथ्वी तलसे ब्रह्मलोक को गया और बहुत शीघ्र उस संसार बंधन से छूटनेवाली गतिको पाया ६३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्व्वणिमोक्षधर्म्मेउत्तरार्द्धेएकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १६१ ॥

# एकसौबासठका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि महाराजावसुतो बड़ा भगवतभक्त था वह किस कारण स्वर्गसे गिरा और पृथ्वीमें आया, भीष्मजी बोले कि हेभरतर्षभ इस स्थानपर एक इतिहास को कहताहूं जिसमें ऋषियों का और देवताओंका सम्बाद है, देवताओंने उत्तम ब्राह्मणों से यह कहा कि अज अर्थात् बकरेसे यज्ञोंमें हवन करना चाहिये उस बकरेकोभी अज जानना योग्यहै दूसरा पशु न समझना यह मर्य्यादा है, ऋषियोंने उत्तरदिया कि यज्ञोंमें बीजों के द्वारा हवन करना चाहिये यह वेदकी श्रुतिहै क्योंकि सब बीजोंका अजनाम है इस कारण तुम बकरेके मारने के योग्यनहीं हो, हे देवतालोगो यह धर्म सत्पुरुषों का नहीं है जिसमें कि पशु माराजाय यही श्रेष्ठयज्ञहै पशुको क्योंमारें, भीष्मजी बोले कि देवताओंके साथमें उनऋषियोंकी इसप्रकारकी बार्त्ता होनेपर मार्गमें मिलनेवाले राजाओं में श्रेष्ठ महाराजा बसुभी दैवयोग से उस देशमें प्राप्तहुए वह राजा संपूर्ण सेना और सवारियों समेत श्रीमान अन्तरिक्ष में चलताथा वह ऋषि और देवता उस अन्तरिक्ष गामी राजा बसुको अकस्मात् आतादेखकर बोलउठे कि यहराजा हमारे तुम्हारे सन्देहोंको निवृत्त करेगा क्योंकि यह यज्ञ करनेवाला दानपति महाश्रेष्ठ सब जीवोंकी वृद्धिको अच्छा जाननेवाला है यहमहाराजा कभी अन्यथा नहीं बोलेगा इस प्रकारसे इन देवता और ऋषियोंने सम्मत करके अकस्मात उसके समीप जाकर यह प्रश्नकिया कि हेराजा यज्ञ पशुसे करना योग्य है वा औषधियों से उचित है हमारे इस सन्देह को आप निवृत्त कीजिये हमदोनों समूहोंने आपहीको प्रमाण मानाहै तब राजा बसुने हाथजोड़कर उनसे पूछा कि हे उत्तम ब्राह्मण लोगो आपमेंसे किसकी कौन इच्छा है यह सत्य २ कहो, ऋषिबोले हे राजा हमारा यहपक्ष है कि धानोंसे यज्ञकरना योग्यहै और देवताओं का अभीष्टपक्ष पशुहै यह हमको समझाइये, भीष्मजीबोले कि देवताओंका सम्मत जानकर उनकापक्ष धारण करके राजाने ऋषियों से कहा कि बकरेसे यज्ञ करना योग्यहै, तदनन्तर वह सूर्य्य के समान तेजस्वी ऋषिलोग महाक्रोधयुक्त हुए और देवताओं के पक्ष

धारण करने वाले बिमान में बैठेहुए राजावसु से यहवचनकहा कि जिसहेतुसे तुमने देवताओं का पक्ष अंगीकार कियाहै इसपापसे तुमस्वर्ग से गिरो और हे राजा अबसे लेकर तुम्हारा आकाशका चलनाभी नष्टहुआ, हमारे शापसे तू पृथ्वीको चीरकर प्रवेश करेगा इसवाक्यके कहतेही तत्क्षण राजाउपरिचर पृथ्वी के छिद्रमें औंधा मुखहोकर बर्त्तमान हुआ परन्तु श्रीनारायणजी की आज्ञासे उसकी स्मृति बनीरही,तब सावधान देवताओंने राजावसुके शापके दूरकरनेका एक साथही बिचार किया कि निश्चय करके राजाका ऐसाकहना यथार्थ था १८ इस महात्मा राजाने हमारे कारण से शापपाया इस हेतु से हमसब लोगोंको साथहोकर उसका अभीष्ट करना चाहिये,उस समय अत्यन्त प्रसन्न चित्त देवताओंने शीघ्रही बुद्धिसे निश्चय करके राजा उपरिचर से कहा कि देव ब्राह्मणों के रक्षक तुमदेवताके भक्तहो और बिष्णुजी देवता और असुर दोनोंके गुरुहैं वह प्रसन्न चित्त तुम्हारी प्रीतिसे तुमको शापसे निवृत्त करें निश्चय करके महात्मा ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा करनी योग्यहै हे उत्तम राजा इन ब्राह्मणों के तपसे अवश्य फल प्रकट होनेके योग्य है, हे राजा जिसहेतु आप अकस्मात स्वर्गसे पृथ्वीपर गिरे इससे हमको भी तुम्हारा कुछ उपकार करना उचितहै हे निष्पाप जबतक तुम शाप दोषसे पृथ्वी के छिद्रमें प्रवेश करके शापकी मुद्दतको ब्यतीत करोगे तबतक अपने मनोरथको भी सिद्ध करोगे अर्थात् यज्ञोंके बीचमें सावधान ब्राह्मणों से अच्छेप्रकारहोमी हुई बसोर्द्धाराको हमारीकृपासे पाओगे तुमको ग्लानि स्पर्शनहीं करेगी,हेराजेन्द्र बसोर्द्धाराके भोजन करनेसे पृथ्वीके छिद्र में तुमको भूख प्यास बाधा नहीं करेगी और तेजकी बृद्धिहोगी और हमारे वरसे प्रसन्न होकर वह देवता तुमको ब्रह्म लोकमें पहुँचावेगा इसप्रकार वर देकर वह सब देवता अपने भवन को गये और तपोधन ऋषिलोग भी चलेगये तदनन्तर हे भरतबंशी उस राजा बसुने विष्णुजीका पूजन किया, और नारायणके मुखसे प्रकटहोनेवाले जपकेयोग्य मंत्रको सदैव जपतारहा, हे युधिष्ठिर वहां भी पृथ्वीके छिद्रमें बर्त्तमान होकर राजा ने पांचयज्ञों से पांच समयपर देवताओं के स्वामी हरिका पूजन किया तब उसकी भक्तिसे भगवान नारायणजी प्रसन्नहुये ३० जो कि अनन्यभक्त और सत्पुरुषथा इसकारण विष्णु भगवान उसपर प्रसन्नहुए और महातीव्रगामी पक्षियोंके राजा अपने बाहन गरुड़जीसे कहा कि हे महाभाग गरुड़ तुम मेरेकहने से देखो कि सम्पूर्ण पृथ्वी का राजा धर्मात्मा प्रशंसा के योग्य ब्रतका करनेवाला राजा बसु ब्राह्मणों के क्रोध से पृथ्वीतल में पहुँचा है वह ऋषि तो प्रतिष्ठा दियेगये अब हे खगेश तुम मेरी आज्ञा से पृथ्वी के छिद्र में गप्त राजाको जाकर यहां लेआकर उस पृथ्वीतलमें विचरनेवाले उत्तम राजा

को शीघ्रही आकाशचारी करो बिलम्ब मतकरो यह सुनतेही वायुके समान शीघ्रगामी गरुड़जी अपने पंखों को फैलाकर पृथ्वी के छिद्र में जहां राजा वसु बर्त्तमानथे वहांपर पहुँचे और अकस्मात् उसको उठाकर शीघ्रही आकाश को लेउड़े और वहां जाकर इसको छोड़दिया इसीसे उस राजाका नाम फिर उपरिचर होगया अर्थात् आकाशचारी होगया फिर कुछ काल पीछे वह उत्तम राजा सदेह ब्रह्मलोक को गया, हे कुन्तीपुत्र इसप्रकारसे उस राजा ने भी दोषी वचनों से उन महात्मा ब्राह्मणों के शापसे और देवताकी आज्ञा से अधम और उत्तम दोनों गतियों को पाया, उस राजाने केवल सर्व्वव्यापी पापोंके दूर करनेवाले ईश्वरकाही सेवन और पूजन कियाथा इसी कारण से वह शीघ्रही शापसे मुक्त होकर ब्रह्मलोक को गया, भीष्मजी बोले कि यह वृत्तान्त मूल समेत तुझसे कहा अब मनुजी के पुत्र जैसे ऐश्वर्य्यमान हुए और जैसे वह नारद ऋषि श्वेतद्वीपको गये वह सब वृत्तान्त तुझ से कहता हूं तू एकाग्रमन होकर सुन ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्व्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे द्विषष्ट्युपरिशततमोऽध्यायः १६२ ॥

# एकसौ तरेसठ का अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि भगवान् नारदऋषिने श्वेतद्वीपको प्राप्तहोकर उन शुक्ल वरण और चन्द्रमाकी समान प्रकाशमान पुरुषोंको देखा और बड़ी भक्ति से दण्डवत करके पूजन किया फिर उनलोगों ने भी नारदजी का मनसे पूजन किया और अपने जपमें प्रवृत्त प्राजापत्यादि व्रत कियेहुए दर्शनकी इच्छा करके नियतहुएथे तब नारदजीने भी एकाग्रमन ऊंची भुजा और सावधान होकर उस विश्वरूप निर्गुण सगुण के निमित्त स्तोत्रका पाठ किया, ॥

स्तोत्र ॥

नारद उवाच ॥ नमस्ते देव देवेश १ निष्क्रिय २ निर्गुण ३ लोकसाक्षिन ४ क्षेत्रज्ञ ५ पुरुषोत्तम ६ अनन्त ७ पुरुष ८ महापुरुष ९ पुरुषोत्तम१० त्रिगुण११ प्रधान १२ अमृत १३ अमृताक्ष १४ अनन्ताख्य १५ व्योम १६ सनातन १७ सदसद्व्यक्ताव्यक्त १८ ऋतधामन् १९ आदिदेव २० वसुप्रद २१ प्रजापते २२ सुप्रजापते २३ वनस्पते २४ महाप्रजापते २५ ऊर्जस्पते २६ वाचस्पते २७ जगत्पते २८ मनस्पते २९ दिवस्पते ३० मरुत्पते ३१ सलिलपते ३२ पृथिवीपते ३३ दिक्पते ३४ पूर्वनिवास ३५ गुह्य३६ ब्रह्मपुरोहित ३७ ब्रह्मकायिक३८ महाराजिक ३९ चातुर्य्यमहाराजिक ४० आभासुर ४१ महाभासुर ४२ सप्तमहाभाग ४३ याम्य ४४ महायाम्य४५ संज्ञासंज्ञा ४६ तुषित४७ महातुषित ४८ प्रमर्दन४९ परिनिर्मित५० अपरिनिर्मित ५१ वशवर्त्तिन् ५२ अपरिनिंदित ५३

अपरिमित ५४ वशावर्त्तिन् ५५ अवशवर्त्तिन् ५६ यज्ञ ५७ महायज्ञ ५८ यज्ञसम्भव ५९ यज्ञयोने ६० यज्ञगर्भ ६१ यज्ञहृदय ६२ यज्ञस्तुत ६३ यज्ञभाग ६४ पंचयज्ञ ६५ पंचकालकर्तृपते ६६ पंचरात्रिक ६७ वैकुण्ठ ६८ अपराजित ६९ मानसिक ७० नामनामिक ७१ परस्वामिन् ७२ सुस्नात ७३ हंस ७४ परमहंस ७५ महाहंस ७६ परमयाज्ञिक ७७ सांख्ययोग ७८ सांख्यमूर्त्ते ७९ अमृतेशय ८० हिरण्येशय ८१ देवेशय ८२ कुशेशय ८३ ब्रह्मेशय ८४ पद्मेशय ८५ विश्वेश्वर ८६ विष्वक्सेन ८७ त्वंजगदन्वयः ८८ त्वंजगदाकृतिः ८९ तवाग्निरास्यं ९० वड़वामुखोग्निः ९१ त्वमाहुतिः ९२ सारथिः ९३ त्वंवषट्कारः ९४ त्वंतपः ९५ त्वंमनः ९६ त्वंचन्द्रमाः ९७ त्वं चक्षुराज्यं ९८ त्वं सूर्य्यः ९९ त्वं दिशांगजः १०० त्वं दिग्भानो १०१ विदिग्भानो १०२ हयशिरः १०३ प्रथमत्रिसौपर्णः १०४ वर्णधरः १०५ पंचाग्ने १०६ त्रिणाचिकेत १०७ षडंगनिधान १०८ प्राग्ज्योतिष १०९ ज्येष्ठसामग ११० सामिकव्रतधर १११ अथर्वशिराः ११२ पंचमहाकल्प ११३ फेनपाचार्य्य ११४ बालखिल्य ११५ वैखानस ११६ अभग्नयोग ११७ अभग्नपरिसंख्यान ११८ युगादे ११९ युगमध्य १२० युगनिधन १२१ आखण्डल १२२ प्राचीनगर्भ १२३ कौशिक १२४ पुरुष्टुत १२५ पुरहूत १२६ विश्वकृत १२७ विश्वरूप १२८ अनन्तगते १२९ अनन्तभोग १३० अनन्त १३१ अनादे १३२ अमध्य १३३ अव्यक्तमध्य १३४ अव्यक्तनिधन १३५ व्रतावास १३६ समुद्राधिवास १३७ यशोवास १३८ तपोवास १३९ दमावास १४० लक्ष्म्यावास १४१ विद्यावास १४२ कीर्त्यावास १४३ श्रीवास १४४ सर्वावास १४५ वासुदेव १४६ सर्वेछन्द १४७ हरिहय १४८ हरिमेध १४९ महायज्ञभागहर १५० वरप्रदसुखप्रद १५१ धनप्रद १५२ हरिमेध १५३ यम १५४ नियम १५५ महानियम १५६ कृच्छ्र १५७ अतिकृच्छ्र १५८ महाकृच्छ्र १५९ सर्वकृच्छ्र १६० नियमधर १६१ निवृत्तभ्रम १६२ प्रवचनगत पृश्निगर्भप्रवृत्त १६३ प्रवृत्तवेदक्रिय १६४ अज १६५ सर्वगते १६६ सर्वदर्शिन् १६७ अग्राह्य १६८ अचल १६९ महाविभूते १७० माहात्म्यशरीर १७१ पवित्र १७२ महापवित्र १७३ हिरण्मय १७४ बृहत् १७५ अप्रतर्क्य १७६ अविज्ञेय १७७ ब्रह्माग्र्य १७८ प्रजासर्गकर १७९ प्रजानिधनकर १८० महामायाधर १८१ चित्रशिखंडिन् १८२ वरप्रद १८३ पुरोडासभागहर १८४ गताध्वर १८५ छिन्नतृष्ण १८६ छिन्नसंशय १८७ सर्वतोवृत्त १८८ निवृत्तरूप, १८९ ब्राह्मणरूप, १९० ब्राह्मणप्रिय, १९१ विश्वमूर्त्ते १९२ महामूर्त्ते १९३ बांधव १९४ भक्तवत्सल १९५ ब्रह्मण्य १९६ वेदभक्तो हंत्वांदिदृक्षुरेकान्त दर्शनाय नमोनमः १९७ इतिश्री महापुरुषःस्तवः समाप्तः ॥

इतिश्री महाभारते शांतिपर्वणि मोक्षधर्मे उत्तरार्द्धे महापुरुषःस्तवर्णनोनाम त्रिनवत्युपरि शततमोऽध्यायः १९३ ॥

# एकसौचौसठका अध्याय॥

भीष्मउवाच॥ एवंस्तुतः सभगवान्गुह्यैस्तथ्यैश्चनामभिः तंमुनिंदर्श यामासनारदं विश्वरूपधृक्, १ किंचिच्चन्द्राद्विशुद्धात्मा किञ्चिच्चन्द्राद्विशेषवान् कृशानुवर्णःकिंचिच्चकिंचिद्धिष्ण्याकृतिः प्रभुः २ शुकःपत्रनिभः किंचित्किंचित् स्फटिकसंनिभः नीलांजनचयप्रख्योजातरूपप्रभःक्वचित् ३ प्रवालांकुरवर्णश्च श्वेतवर्णस्तथाक्वचित् क्वचित्सुवर्णवर्णाभो वैदूर्यसदृशः क्वचित् ४नीलवैदूर्यसदृश इन्द्रनीलनिभः क्वचित् मयूरग्रीववर्णाभोमुक्ताहारनिभः क्वचित् ५ एतान्वहुविधान्वर्णान्रूपैर्विभ्रन्सनातनः सहस्रनयनः श्रीमांच्छतशीर्षःसहस्रपात् ६ सहस्रोदरबाहुश्च अव्यक्तइतिचक्वचित् ॐकारमुद्गिरन्वक्रात् सावित्रीचतदन्वयां, ७ शेषेभ्यश्चैववक्रेभ्यश्चतुर्वेदान्गिरन्वहून् आरण्यकंजगौदेवो हरिर्नारायणोवशी ८ वेदिंकमंडलुंशुभ्रान्मणीनुपानहौकुशान्अजिनंदण्डकाष्ठंच ज्वलितंचहुताशनं ९ धारयामासदेवेशोहस्तैर्यज्ञपतिस्तदातंप्रसन्नंप्रसन्नात्मा नारदोमुनिसत्तमः वाग्यतःप्रणतोभूत्वा ववंदेपरमेश्वरं १० तमुवाचनतंमूर्ध्ना देवानामादिरव्यय ११ श्रीभगवानुवाच॥ एकतश्चाद्वितश्चैव त्रितश्चैवमहर्षयः इमंदेशमनुप्राप्ता ममदर्शन लालसाः १२ नचमांतेददृशिरे नचद्रक्ष्यतिकश्चन ऋतेह्येकान्तिकश्रेष्ठा त्वंचैवैकान्तिकोत्तमः १३ ममैतास्तनवःश्रेष्ठा जाताधर्मगृहेद्विजतांस्त्वं भजस्वसततं साधयस्वयथागतं १४ वृणीष्वचवरंविप्र मत्तस्त्वंयदिहेच्छसि प्रसन्नोहंतवाद्ये हविश्वमूर्त्तिरिहाव्ययः १५ नारदउवाच॥ अद्यमेतपसोदेव यमस्यनियमस्यच सद्यःफलमवाप्तंवै दृष्टोयद्भगवान्मया १६ वरएपमयात्यंतं दृष्टस्त्वंयत्सनातनः भगवन्विश्वदृक्सिंहः सर्वमूर्तिर्महान्प्रभुः १७ भीष्मउवाच॥ एवंसदर्शयित्वातुनारदंपरमेष्ठिनं उवाचवचनंभूयो गच्छनारदमाचिरं १८ इमेह्यनिंद्रियाहारामद्भक्ताश्चन्द्रवर्चसः एकाग्राश्चिंतयेयुर्मांनैषांविघ्नोभवेदिति १९ सिद्धाह्येतेमहाभागाःपुराह्येकांतिनोभवन् तमोरजोभिर्निर्मुक्ता मांप्रवेक्ष्यत्यसंशयं २० नदृश्यश्चक्षुषायोसौनस्पृश्यःस्पर्शनेनच नघ्रेयश्चैवगन्धेनरसेनच विवर्जितः २१ सत्वंरजस्तमश्चैनगुणास्तंभजन्तिवै यश्चसर्वगतःसाक्षीलोकस्यात्मेतिकथ्यते २२ भूतग्रामशरीरेषुनश्यत्सुनविनश्यति अजोनित्यःशाश्वतश्चनिर्गुणोनिष्कलस्तथा २३ द्विर्द्वादशेभ्यस्तत्त्वेभ्यःख्यातोयःपंचविंशकःपुरुषोनिष्क्रियश्चैवज्ञानदृश्यश्चकथ्यते २४ यंप्रविश्यभवंतीहमुक्तावैद्विजसत्तमाः सवासुदेवोविज्ञेयःपरमात्मासनातनः २५ पश्यदेवस्यमाहात्म्यं महिमानंचनारदशुभाशुभैःकर्मभिर्योनलिप्यतिकदाचन २६ एतांगुणांस्तुक्षेत्रज्ञोभुंक्तेनैभिःसभुज्यते निर्गुणोगुणभुक्चैवगुणस्रष्टागुणाधिकः २७ जगत्प्रतिष्ठादेवर्षे

पृथिव्यप्सुप्रलीयते ज्योतिष्यापःप्रलीयंते ज्योतिर्वायौप्रलीयते २८ खेवायुः प्रलयंयातिमनस्याकाशमेवच मनोहिपरमंभूतंतदव्यक्तेप्रलीयते २९ अव्यक्तंपुरुषेब्रह्मन्निष्क्रियेसंप्रलीयते नास्तितस्मात्परतरःपुरुषाद्वैसनातनात् ३० नित्यंहि नास्तिजगतीभूतंस्थावरजंगमं ऋतेतमेकंपुरुषंवासुदेवंसनातनं ३१ सर्वभूतात्मभूतोहिवासुदेवोमहाबलःपृथिवीवायुराकाशमापोज्योतिश्चपंचमं ३२ तेसमेतामहात्मानःशरीरमितिसंज्ञितं तदाविशतियोब्रह्म नदृश्योलघुविक्रमःउत्पन्नएवभवतिशरीरंचेष्टयन्प्रभुः ३३ नविनाधातुसंघातंशरीरंभवतिक्वचित्नचजीवंविना ब्रह्मन् वायवश्चेष्टयंत्युत ३४ सजीवःपरिसंख्यातःशेषःसंकर्षणःप्रभुः तस्मात्सनत्कुमारत्वं योलभेत्स्वेनकर्मणा ३५ यस्मिंश्चसर्वभूतानि प्रलयंयान्तिसंक्षयेनमसःसर्वभूतानांप्रद्युम्नःपरिपठ्यते ३६ तस्मात्प्रसूतोयः कर्त्ताकारणंकार्य्यमेवच तस्मात्सर्वंसंभवतिजगत्स्थावरजंगमं सोनिरुद्धःसईशानोव्यक्तःसर्वसुकर्मसु ३७ योवासुदेवोभगवान् क्षेत्रज्ञोनिर्गुणात्मकः ज्ञेयःसएवराजेन्द्रजीवःसंकर्षणःप्रभुः ३८ संकर्षणाच्चप्रद्युम्नोमनोभूतःसउच्यते प्रद्युम्नाद्योनिरुद्धस्तुसोहंकारः सईश्वरः ३९ मतःसर्वंसंभवतिजगत्स्थावरजंगमं अक्षरंचक्षरंचैवसच्चासच्चैवनारद ४० मांप्रविश्यभवंतीहमुक्ताभक्तास्तुयेमम अहंहिपुरुषोज्ञेयोनिष्क्रयःपंचविंशकः निर्गुणोनिष्कलश्चैव निर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रहः ४१ एतत्त्वयानविज्ञेयंरूपवानितिदृश्यते इच्छन्मुहुर्तान्निश्येयमीशोहंजगतोगुरुः ४२ मायाह्येषामयासृष्टायन्मांपश्यसिनारद सर्वभूतगुणैर्युक्तंनैवंत्वंज्ञातुमर्हसि ४३ मयैतत्कथितंसम्यक्तवमूर्तिचतुष्टयंअहंहिजीवसंज्ञातोमयिजीवःसमाहितः ४४ नैवंतेबुद्धिरत्राभूत्दृष्टजीवोमयेतिवै अहंसर्वत्रगोब्रह्मन्भूतग्रामान्तरात्मकः ४५ भूतग्रामशरीरेषुनश्यत्सुननशाम्यहं सिद्धाहितेमहाभागानराह्येकान्तिनोभवन् ४६ तमोरजोभ्यांनिर्मुक्ताः प्रवेक्ष्यन्तिचमांमुने हिरण्यगर्भोलोकादिश्चतुर्वक्त्रोनिरुक्तगः ४७ ब्रह्मासनातनोदेवोममबहूर्थचिन्तकः ललाटाच्चैवमेरुद्रोदेवःक्रोधाद्विनिःसृतः ४८ पश्यैकादशमेरुद्रान् दक्षिणंपार्श्वमास्थितान् द्वादशैवतथादित्यान्वामपार्श्वेसमास्थितान् ४९ अग्रतश्चैवमेपश्यवसूनष्टौसुरोत्तमान् नासत्यंचैवदस्रं च भिषजौपश्यपृष्ठतः ५० सर्वान्प्रजापतीन्पश्य पश्यसप्तऋषीस्तथा वेदान्यज्ञांश्चशतशः पश्यामृतमथौषधीः ५१ तपांसिनियमांश्चैव यमानपिपृथग्विधान् तथाष्टगुणमैश्वर्य्यं मैकस्थंपश्यमूर्त्तिमत् ५२ श्रियंलक्ष्मींच कीर्तिंच पृथिवींचककुद्मिनीं वेदानांमातरंपश्य मत्स्थांदेवींसरस्वतीम् ५३ ध्रुवंचज्योतिषांश्रेष्ठं पश्यनारदखेचरं अंभोधरान्समुद्रांश्चसरांसिसरितस्तथा ५४ मूर्त्तिमतः पितृगणांश्चतुः पश्यसिसत्तम त्रींश्चैवेमांगुणान्पश्यमत्स्थान्मूर्तिविवर्जितान् देवकार्यादपिमुने पितृकार्य्यं विशिष्यते देवानांचपितॄणांचपिताह्येकोहमादितः ५६ अहंहयशिराभूत्वा समुद्रेपश्चिमोत्तरे पिबामिसुहु

तंहव्यं कव्यंचश्रद्धयान्वितम् ५७ मयासृष्टःपुराब्रह्मा मांयज्ञमयजत्स्वयम् ततस्त
स्मिन्वरान्प्रीतोदत्तवानस्म्यनुत्तमान् ५८ मत्पुत्रत्वंचकल्पादौ लोकाध्यक्षत्वमेव
च अहंकारकृतंचैवनामपर्यायवाचकम् ५९ त्वयाकृतंचमर्यादांनातिक्रम्यतिक
श्चन त्वंचैववरदोब्रह्मन् वरेप्सूनांभविष्यसि ६० सुरासुरगणानांचऋषीणांचतपो
धन पितॄणांचमहाभाग सततंसंशितव्रत विविधानांचभूतानां त्वमुपास्योभवि
ष्यसि प्रादुर्भावगतश्चाहं सुरकार्येषुनित्यदा अनुशास्यस्त्वयाब्रह्मन् नियोज्य
श्चसुतोयथा ६१ एतांश्चान्यांश्चरुचिरान् ब्रह्मणेमिततेजसे अहंदत्त्वावरान्प्रीतो
निवृत्तिपरमोभवम् ६२ निर्वाणंसर्वधर्माणां निवृत्तिःपरमास्मृता तस्मान्निवृत्ति
मापन्नश्चरेत्सर्वांगनिर्वृतः ६३ विद्यासहायवन्तंच आदित्यस्थंसमाहितम् कपिलं
प्राहुराचार्याः सांख्यनिश्चितनिश्चयाः ६४ हिरण्यगर्भोभगवानेषश्छन्दसि
सुष्टुतः सोहंयोगरतिर्ब्रह्मन्योगशास्त्रेषुशब्दितः ६५ एषोहंव्यक्तिमागत्य ति
ष्ठामिदिविशाश्वतः ततोयुगसहस्रान्ते संहरिष्येजगत्पुनः ६६ कृत्वात्मस्थानि
भूतानि स्थावराणिचराणिच एकाकीविद्ययासार्द्धं विहरिष्येजगत्पुनः ६७
ततोभूयोजगत्सर्वं करिष्यामीहविद्यया अस्मिन्मूर्तिश्चतुर्थीया सासृजच्छेष
मव्ययम् ६८ सहिसंकर्षणःप्रोक्तः प्रद्युम्नंसोप्यजीजनत् प्रद्युम्नादनिरुद्धोहंसर्गो
ममपुनःपुनः ६९ अनिरुद्धात्तथाब्रह्मातन्नाभिकमलोद्भवः ब्रह्मणःसर्वभूतानि
चराणिस्थावराणि च ७० एतांसृष्टिंविजानीहि कल्पादिषुपुनःपुनः यथासूर्य्य
स्यगगनादुदयास्तमनेइह ७१ नष्टेपुनर्बलात्काल आनयत्यमितद्युतिः तथाब
लादहंपृथ्वीं सर्वभूतहितायवै ७२ सत्त्वैराक्रान्तसर्वांगो नष्टांसागरमेखलाम् आ
नयिष्यामिस्वस्थानं वाराहंरूपमास्थितः ७३ हिरण्याक्षंवधिष्यामि दैत्येयंबल
गर्वितम् नारसिंहंपुनःकृत्वा हिरण्यकशिपुंपुनः ७४ सुरकार्य्येहनिष्यामि यज्ञ
घ्नंदितिनंदनम् विरोचनस्यबलवान् बलिपुत्रोमहासुरः ७५ अवध्यःसर्वलो
कानां सदेवासुररक्षसाम् भविष्यतिसशक्रञ्चस्वराज्यच्च्यावयिष्यति ७६ त्रै
लोक्येपहृतेतेन विमुखेचशचीपतौ आदित्यांद्वादशादित्यःसम्भविष्यामिकश्य
पात् ७७ ततोराज्यंप्रदास्यामि शक्रायामिततेजसे देवतास्थापयिष्यामि स्वेस्वे
स्थानेषुनारद ७८ बलिंचैवकरिष्यामि पातालतलवासिनम् दानवंचबलिश्रेष्ठ
मवध्यंसर्वदेवतैः ७९ त्रेतायुगेभविष्यामि रामोभृगुकुलोद्वहः क्षत्रंचोत्सादयि
ष्यामि समृद्धबलवाहनम् ८० सन्ध्यांशेसमनुप्राप्ते त्रेतायांद्वापरस्यच अहंदाश
रथीरामो भविष्यामिजगत्पतिः ८१ त्रितोपघाताद्वैरूप्यमेकतोथद्वितस्तथा
प्राप्स्येतेवानरत्वंहिप्रजापतिसुतावृषी ८२ तयोर्येत्वन्वयेजाताभविष्यंतिवनौक
सः महाबलामहावीर्य्याःशक्रतुल्यपराक्रमाः ८३ तेसहायाभविष्यंति सुरकार्य्ये
ममद्विज ततोरक्षपतिंघोरं पुलस्त्यकुलपांसनम् ८४ हरिष्येरावणंरौद्रंसगणंलो
ककंटकम् द्वापरस्यकलेश्चैवसंधौपर्य्यवसानिके ८५ प्रादुर्भावःकंसहेतोर्मथुरा

याभविष्यति तत्राहंदानवान्हत्वा सुबहून्देवकंटकान् ८६ कुशस्थलींकरिष्यामिनिवेशंद्वारकांपुरीम् वसानस्तत्रवैपुण्यामदितेर्विप्रियंकरम् ८७ हनिष्येनरकंभौमं मुरुम्पीठंचदानवम् प्राग्ज्योतिषंपुरंरम्यंनानाधनसमन्वितम्८८कुशस्थलींनयिष्यामि हत्वावैदानवोत्तमम् महेश्वरमहासेनौ बाणप्रियहितैषिणौ ८९ पराज्येष्याम्यथोद्युक्तौ देवौलोकनमस्कृतौ ततःसुतंबलेर्जित्वा बाणंबाहुसहस्त्रिणम् ९० विनाशयिष्यामिततः सर्वान्सौभनिवासिनः यःकालयवनख्यातो गर्गतेजोभिसंवृतः ९१ भविष्यतिवधस्तस्य मतएवद्विजोत्तम जरासन्धश्च बलवान् सर्वराजविरोधनः ९२ भविष्यत्यसुरस्फीतो भूमिपालोगिरिव्रजे मम बुद्धिपरिस्पंदाद्वधस्तस्यभविष्यति ९३ शिशुपालंवधिष्यामियज्ञेधर्मसुतस्यवैसमागतेषुबलिषु पृथिव्यांसर्वराजसु ९४ वासविःसुसहायोवै ममत्वेकोभविष्यति युधिष्ठिरंस्थापयिष्ये स्वराज्येभ्रातृभिःसह ९५ एवंलोकावदिष्यन्ति नरनारायणावृषी उद्युक्तौदहतःक्षत्रं लोककार्य्यार्थमीश्वरौ ९६ कृत्वाभारावतरणं वसुधायायथेप्सितम् सर्वसात्वतमुख्यानां द्वारकायाश्चसत्तम ९७ करिष्येप्रलयंघोरमात्मज्ञानाभिसंवृतम् कर्माण्यपरिमेयानि चतुर्मूर्त्तिधरोम्यहम् ९८ कृत्वालोकांगमिष्यामि स्वानहंब्रह्मसत्कृतान् हंसःकूर्मश्चमत्स्यश्च प्रादुर्भावाद्विजोत्तम ९९ वाराहोनारसिंहश्चवामनोरामएवच रामोदाशरथिश्चैव सात्वतःकल्किरेवच १०० यदावेदश्रुतिर्नष्टा मयाप्रत्याहृतापुनः सवेदाः सश्रुतीकाश्च कृतापूर्वंकृतेयुगे १ अतिक्रान्तापुराणेषु श्रुतास्तेयदिवाक्वचित् अतिक्रान्ताश्चबहवः प्रादुर्भावाममोत्तमाः २ लोककार्य्याणिकृत्वाच पुनः स्वांप्रकृतिंगताः नह्येतद्ब्रह्मणाप्राप्तमीदृशंममदर्शनम् ३ यत्त्वंयाप्राप्तमद्येह एकान्तगतिबुद्धिना एतत्तेसर्वमाख्यातं ब्रह्मन्भक्तिमतोमया पुराणंचभविष्यंच सरहस्यंचसत्तम ४ भीष्मउवाच ॥ एवंसभगवान्देवो विश्वमूर्त्तिधरोऽव्ययः एतावदुक्त्वावचनं तत्रैवान्तर्दधेपुनः ५ नारदोपिमहातेजाः प्राप्यानुग्रहमीप्सितम्नरनारायणौद्रष्टुंवदर्य्याश्रममाद्रवत् ६ इदंमहोपनिषदंचतुर्वेदसमन्वितम् सांख्ययोगकृतंतेन पञ्चरात्रानुशब्दितम्७युधिष्ठिर उवाच॥ एतदाश्चर्य्यभूतंहि माहात्म्यंतस्यधीमतः किंवैब्रह्मानजानीते यतःशुश्रावनारदात् ८ पितामहोपिभगवांस्तस्माद्देवादनन्तरः कथंसनविजानीयात्प्रभावममितौजसः ९ भीष्म उवाच ॥ महाकल्पसहस्राणि महाकल्पशतानिच समतीतानि राजेन्द्र सर्गाश्चप्रलयाश्चह १० सर्गस्यादौस्मृतोब्रह्मा प्रजासर्गकरःप्रभुः जानातिदेवप्रवरं भूयाश्चातोऽधिकंनृप ११ परमात्मानमीशानमात्मनःप्रभवन्तथा येत्वन्येब्रह्मसदने सिद्धसंघाःसमागताः १२ तेभ्यस्तच्छ्रावयामास पुराणंवेदसम्मितम् तेषांसकाशात्सूर्य्यस्तु श्रुत्वावैभावितात्मना १३ आत्मानुगामिनांराजन् श्रावयामासवैततः षट्षष्टिर्हिसहस्राणि ऋषीणांभावितात्मनाम् १४ सूर्य

स्यतपतोलोकान्निर्मितार्थपुरःसराः तेषामकथयत्सूर्यः सर्वेषांभावितात्मनाम् १५ सूर्यानुगामिभिस्तात ऋषिभिस्तैर्महात्मभिः मेरौसमागतादेवाः श्राविताश्चेद मुत्तम १६ देवानान्तुसकाशाद्वै ततःश्रुत्वासितोद्विजः श्रावयामासराजेन्द्र पि तॄणांमुनिसत्तम १७ ममचापिपितातात कथयामासशान्तनुः ततोमयापिश्रु त्वात्र कीर्त्तितंतवभारत १८ सुरैर्वामुनिभिर्वापि पुराणंयैरिदंश्रुतम् सर्वेतेपरमा त्मानं पूजयन्तेसमन्ततः १९ इदमाख्यानमार्ष्येयं पारंपर्यागतंनृप नवासुदेव भक्ताय त्वयादेयंकथञ्चन २० मत्तोन्यानिचतेराजन्नुपाख्यानिशतानिवै या निश्रुतानिसर्वाणि तेषांसारोयमुद्धृतः २१ सुरासुरैर्यथाराजन्निर्मथ्यामृतमुद्धृतम् एवमेतत्पुराविप्रैः कथामृतमिहोद्धृतम् २२ यश्चेदंपठतेनित्यं यश्चेदंशृणुयान्नरः एकान्तभावोपगत एकान्तेषुसमाहितः२३ प्राप्यश्वेतंमहाद्वीपं भूत्वाचंद्रप्रभोनरः ससहस्रार्चिषंदेवं प्रविशेन्नात्रसंशयः२४ मुच्येदार्त्तस्तथारोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम् जिज्ञासुर्लभतेकामान्भक्तोभक्तगतिंव्रजेत् २५ त्वयापिसततंराजन्नभ्य र्च्यःपुरुषोत्तमः सहिमातापिताचैव कृत्स्नस्यजगतोगुरुः २६ ब्रह्मण्यदेवोभग वान् प्रीयतांतेसनातनः युधिष्ठिरमहाबाहो महाबुद्धिर्जनार्द्दनः २७ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुत्वैतदाख्यानवरं धर्मराञ्जनमेजय भ्रातरश्चास्यतेसर्वे नारायणप राभवन् २८ जितंभगवतातेन पुरुषेणेतिभारत नित्यंजाप्यपराभूत्वा सरस्वति मुदीरयन् २९ योह्यस्माकंगुरुःश्रेष्ठः कृष्णद्वैपायनोमुनिः जगौपरमकंजप्यं ना रायणमुदीरयन् ३० गत्वान्तरिक्षात्सततं क्षीरोदममृताशयम् पूजयित्वाचदेवे शं पुनरायात्स्वमाश्रमम् ३१ भीष्म उवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं नारदोक्तंमये रितम् पारंपर्यागतंह्येतत्पित्रामेकथितम्पुरा ३२ सूत उवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्या तं वैशम्पायनकीर्त्तितम् जनमेजयेनतच्छ्रुत्वा कृतंसम्यग्यथाविधि ३३ यूयंहि तप्ततपसः सर्वेचचरितव्रताः सर्ववेदविदोमुख्याः नैमिषारण्यवासिनः ३४ शौ नकस्यमहासत्रे प्राप्ताःसर्वेद्विजोत्तमाः यजध्वंसुहुतैर्यज्ञैः शाश्वतंपरमेश्वरम् पारंपर्यागतंह्येतत्पित्रामेकथितंपुरा १३५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे शतोपरिचतुःषष्टितमोऽध्यायः १६४ ॥

## एकसौपैंसठका अध्याय ॥

इस अध्याय का टीका अर्थात् अर्थ लिखते हैं ॥

इसप्रकार गुप्त और सच्चे नामों से स्तुति कियेहुये बहुरूपी भगवान् ईश्वर ने उन नारदजी को दर्शन दिया १ चन्द्रमा से भी स्वच्छ वा विशेष और अग्निसे भी उत्तमवर्ण कुछ स्थानकीसी आकृति कुछ तोतेके परोंकी समान कुछ स्फटिक और धवलागिरिके समान कहीं सुवर्ण समान प्रकाशकहीं वैदूर्य मणिके कहीं नीलवैदूर्यके समान कहीं इन्द्रनीलमणिके समान कहीं मोरकी

गर्दनके समान कहीं मुक्ताहारधारीके समान इत्यादि अनेकप्रकारके रूप युक्त हजार शिर चरण और नेत्रों से शोभित हजारों भुजा उदर आदिको धारण किये कहीं अव्यक्तरूप से ॐकार और उसके अंगरूप गायत्री के मुखसे उच्चारण करते और शेष मुखों से चारों वेद और अनेक शास्त्रों को कहते हुए उस सर्वैश्वर्य्यमान जगत् के स्वामी ने आरण्यक उपनिषद्को वर्णन किया फिर उस देव देव यज्ञपति ने हाथ में दण्डकमण्डलु देह में मृगचर्म चरणों में पादुका अग्नि स्वरूप तेजवान्रूप को धारण किया ऐसा रूपको देखके ब्राह्मणों में उत्तम नारदजी ने बड़ी प्रसन्न बुद्धि और शांतताको धारणकर नम्रता पूर्व्वक उस अपूर्व्व मूर्त्तिधारी को दण्डवत् किया तब उसमहात्मा जगदीशने प्रसन्न होकर उसशिरझुकाये हुए नारदसे कहा कि हे नारद मेरे दर्शनों की इच्छासे एकत द्वित त्रित महर्षिलोग इस देशमें आये उनको मेरा दर्शन नहीं हुआ क्योंकि एकमेंही निश्चय करनेवाले अर्थात् अनन्य भक्तों के सिवाय किसी को मेरा दर्शन नहीं होता है सो तुम भी अनन्यभक्तहो हे नारद यह मेरेउत्तम अंग धर्म देवता के घरमें उत्पन्न हुए तुम उन्हीं अंगों का ध्यान करके मुझको भजो जिससे कि मेरी प्राप्तिहोय हे ब्रह्मर्षि नारद मैं तुम पर प्रसन्नहूं जो इच्छाहो सो बरमांगो नारदजी बोले कि हे देवेश्वर मैंने आपके दर्शन पाकर सब तप यज्ञों का फल पाया यही मुझको बड़ा बरहै जो संसार के उत्पत्ति पालन और नाश करनेवाले का दर्शनपाया, भीष्मजी बोले कि इसप्रकार ब्रह्ममें लय होनेवाले नारदजी को दर्शन देकर फिर यह बचन बोले कि हे नारद शीघ्रही जाओ बिलम्ब मतकरो, यह मेरेभक्त अनिच्छा पूर्व्वक भोजन करनेवाले चंद्रमाके समान प्रकाशमान एकाग्र चित्त होकर मेरा ध्यान करते हैं उनको कभी विघ्न नहीं होता है यह महाभाग शुद्ध अन्तःकरण हैं यह सब पूर्व समय में अनन्यभक्त थे यह निस्सन्देह तीनों गुणों से पृथक् होकर मुझ में प्रवेश करेंगे, अब प्रवेश करने के योग्य आत्म स्वरूप को कहताहूं जो कि इन्द्रियों के विषयसे परे गुणातीत सर्बब्यापी साक्षी लोकका आत्मा कहाजाता है वह अज अविनाशी सदैव रूपान्तर रहित निर्गुण कलारूप उपाधियों से पृथक्है, जो पुरुष चौबीस तत्त्वों से पृथक् पचीसवां प्रसिद्ध है वही सूक्ष्म निर्म्मल बुद्धि से दृष्ट होता है, संसार में उत्तम ब्राह्मण जिसमें प्रवेश करके मुक्तहोते हैं वह वासुदेव सर्वब्यापी परमात्मा सनातन जानने के योग्य है हे नारदजी देवताके माहात्म्य और उसकी महिमा को देखकर जो पुरुष अच्छे बुरे कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता है और मन से जानता है कि क्षेत्रज्ञही भोगता है वा नहीं भोगता है निर्गुण गुणों को पैदा करता भोक्ताहुआ भी गुणों से जुदाहै, हे देवर्षि जगत्की प्रतिष्ठा यहहै

कि पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाशमें, आकाश मन में, और मन अव्यक्त में लय होता है, वह अव्यक्त अकर्त्ता पुरुषमें लय होता है उस सनातन पुरुष से उत्तम कोई नहीं है, उस अकेले सनातन पुरुष वासुदेव के सिवाय यह जड़चैतन्य जगत् नाशवान्है वही वासुदेव सबजीवों के आत्मा हैं यह पांचों तत्त्व इकट्ठे होकर देहरूप होते हैं तब वह ब्रह्मरूप उसमें प्रवेश करता है वह दृष्टिसे अगोचर महा बलवान् है वही देहको चेष्टा देता है तब संसार कहाजाता है बिना तत्त्वों के देहनहीं होता और बिना जीव के देह में वायु चेष्टा नहीं होती है वह प्रभु, जीव, शेष, संकर्षण, विश्व-धारक इन नामों से और अपने ध्यान पूजन आदि कर्मों के द्वारा सनत्कुमार भावको प्राप्त होता है अर्थात् जीवन्मुक्ति को पाता है, इस प्रकार अविद्या उपाधिवाले जीवको साबित करके उसी से प्रद्युम्न नाम मनकी उत्पत्ति को वर्णन करते हैं कि महाप्रलय में जिसके भीतर सब जीवमात्र लय होजाते हैं वह प्रद्युम्न नाम मन कहाता है जिस मनसे सब जीवों की उत्पत्ति है, उस संकर्षण से जो उत्पन्न हुआ वह कर्त्ता, क्रिया और कारण रूप है उसी से सब जड़चैतन्य जगत् उत्पन्न होता है वही प्रद्युम्न अनिरुद्ध नाम अहंकार होता है वह स्वामी है और सब कर्मों में प्रकट है, इसप्रकार प्रद्युम्न आदि के कर्त्ता रूप त्वं पदार्थ जीव को कहकर ऊपर लिखेहुए तत्पदार्थ से इसकी एकांगी गतिको कहते हैं हे राजेन्द्र जो निर्गुण क्षेत्रज्ञ भगवान् वासुदेव है वही प्रभु संकर्षण नाम जीव है, संकर्षण से उत्पन्न होनेवाला प्रद्युम्न नाम मन वही वासुदेव कहाजाता है और प्रद्युम्नसे जो अनिरुद्ध नाम अहंकार उत्पन्न हुआ वह भी वही ईश्वर है, यह सब चराचर जगत् मुझसेही उत्पन्न होता है हेना रदजी अक्षरजीव और क्षर महत्तत्वादिक जो कि सत् असत् रूप हैं वह उ-त्पन्न होते हैं ४० यहां जो मेरेभक्तहैं वह अपने को मुझ में प्रवेश करके मुक्त होते हैं मैंहीं चिन्मात्र निष्क्रिय कूटस्थ पच्चीसवां पुरुष जानने के योग्यहूं और उपाधि रहितनिर्गुण सुखदुःखादि और वासनाआदिपरिग्रहसे जुदाहूं तुझ विश्वरूप का उपाधि से पृथक् होना कैसे होसक्ता है यह शंका करके कहतेहैं यह बात तुमको न जानना चाहिये कि यह रूप युक्त दृष्ट आताहै मैं इच्छा करतेही एकमूहूर्त में निराकारहोजाऊं मैं हीं जगत्का ईश्वर और गुरूभी हो-जाताहूं अर्थात् उत्पत्ति नाश केवल मेरी इच्छा है, हेनारद मैंने यह मायाकी है जो तुम मुझको देखतेहो तुम इसप्रकारसे मुझको सबभूतोंके गुणोंसेसंयुक्त मतजानो तात्पर्य यहहै कि मैं निर्गुण निराकारहूं मैंने यह चारोंमूर्त्ति तुम से अच्छेप्रकार वर्णनकरीं मैंहीं जीवभावसे जानागयाहूं और वह जीव मुझमेंही अच्छेप्रकारसे नियत है, यहां तूऐसा मतसमझ कि मैंने उपाधियुक्त समष्टि

जीव देखा हे ब्रह्मन् मैं सब जगह बर्त्तमान सबजीवोंमें आत्मारूपहूं जीवसमू
होंके शरीरनाश होनेपर मैं नाश नहीं होताहूं वे महाभाग अनन्यभक्त पुरुष
सिद्ध हैं और तमोगुण रजोगुणसे पृथक् मुझमें ही प्रवेश करेंगे अर्थात् मुझ
सेही एकत्वताको प्राप्तकरेंगे संसार का प्रथम चतुर्मुख वेदांगनिर्गत नामको
जाननेवाला हिरण्यगर्भ सनातन देवता ब्रह्मा मेरे अनेक अर्थोंका विचारने
वालाहै और क्रोधकेकारण मेरेललाटसे रुद्र उत्पन्नहुए, और मेरे दक्षिणभा-
गसे ग्यारहरुद्र और बामभागसे बारह सूर्य्य और अग्रभागमें अष्टवसु और
पीछेकेभागमें अश्विनीकुमार दोनों देववैद्य उत्पन्न देखोजिसप्रकार सबप्रजा-
पति, ऋषि, वेद, यज्ञ, अमृत, औषध, तप, नियम, हैं उसीप्रकार मुझअकेले
में नियत आठप्रकारके ऐश्वर्य्यको देखो, श्रीलक्ष्मी, कीर्त्ति, पृथ्वी, ककुद्मनि
वेदमाता सरस्वतीकी भी मुझमें नियतदेखो बादल, समुद्र, नदी, सरोवरमूर्त्ति
मान चारोंपितरोंको और तीनोंगुणोंको भी मुझीमें देखो हे मुनिदेव कर्मसे
पितृकर्मबड़ाहै मैं अकेलाही देवपितरदोनों का पिताहूं मैंहीं बड़वानल समुद्र
की अग्नि होकर श्रद्धापूर्वक होमेहुए हव्यकव्यको भोजनकरताहूं, पूर्वसमय
में मुझसे पैदाहुए ब्रह्माने मुझी यज्ञरूपको पूजाथा जिसकेकारण प्रसन्न हो,
कर मैंने बहुतसेबर उसको दिये, कल्पकी आदिमें मेरापुत्रत्वभावलेकर लोकों-
के क्रमपूर्वक राज्य और अध्यक्षताको अहंकार प्राप्तहोगा तब तुम्हारी कीहुई
मर्यादाओंको कोई उल्लंघन नहीं करेगा और तुम जीवोंके बांछित बस्तुओं
के बरदाता होगे, हे तपोधन महाभाग तुम्हीं महातेजस्वी ब्रह्माहोकर सबदेव
पितृ ऋषि गन्धर्व आदि अनेक प्रकारके जीवोंके उपासना योग्यहोगे और
हे ब्रह्मन् देवकार्य्योंमें अवतारलेनेवाला मैं सदैव तुमसे पुत्रकेसमान उपदेश
और आज्ञालेनेकेयोग्य होऊंगा ६१ फिरमैं प्रसन्नहोकर इनबरोंके सिवायअन्य
बहुत उत्तम २ बर ब्रह्माको देकर निवृत्ति धर्मपरायण होऊंगा, सब धर्मोंसे जो
पृथक्ता है उसकोही उत्तम निबृत्ति कहते हैं इसीहेतु से सबअंगों से नि-
बृत्त धर्मयुक्तहोकर विचरे, सांख्य शास्त्रका निश्चय रखनेवाले आचार्य्यों ने
कपिलजीको सावधान विद्या सम्पन्न और सूर्य्यमें नियतहोना बर्णनकियाहै,
यह भगवान् हिरण्यगर्भबेद में स्तुतिकियाहुआहै हेब्रह्मन्वही मैं योग शास्त्रों
के मध्यमें योगमें प्रीतिमान बर्णन किया गयाहूं, मैंहीं सनातन सगुण रूप
होकर सर्गमें नियत होताहूं फिर मैंहीं हजार युगोंके अन्तहोनेपर संसारको
अपनेमें लय करलेताहूं,सब स्थावर जंगम जीवोंको अपनी आत्मामें नियत
करके अकेलामैंहीं विद्यानाम मायासे युक्तहोकर जगत्को नाशकरताहूं फिर
मैंहीं जगत्को उत्पन्नकरताहूं मेरीजो चौथीमूर्त्ति है उसने अबिनाशी शेषजी
को उत्पन्न किया वहीशेष संकर्षण जीवकहाजाता है उसने प्रद्युम्ननाम मन

को उत्पन्न किया और प्रद्युम्न से अनिरुद्धरूप अहंकार उत्पन्न हुआ और बारंबार मेराही प्रत्यक्ष होताहै, इसीप्रकार अनिरुद्धसे ब्रह्मा उत्पन्नहुए उसकी उत्पत्ति नाभिकमलसे है और ब्रह्माजी से सब स्थावर जंगम जीव उत्पन्नहुए, बारंबार कल्पोंकी आदि में यह सब सृष्टिका होना ऐसा जानो, जैसे कि इस लोकमें आकाश से सूर्य्य का उदय और अस्त होता है, गुप्तहोने पर बड़ा तेजस्वी काल उसको फिर लेआताहै इसीप्रकार मैंभी सबजीवों के उपकारके लिये बाराहरूपको धारण करके बड़े बलसे,इससागररूप मेखलाधारी जीवोंके भारसे आक्रान्त सबअंगों समेत इसपृथ्वीको गुप्तहोजानेपर अर्थात् हिरण्याक्ष के हरलाने पर पाताल से ऊपरको लाऊंगा फिर नृसिंह रूपहोकर हिरण्यकशिपु दैत्यको बड़े बलसे नखोंके द्वारा बिदीर्ण करके मारूंगा तदनन्तर बिरोचनका पुत्र महा पराक्रमी महा असुर राजाबलि सब लोकोंका और देवअसुर राक्षसों का बिरोधी होगा और इन्द्रको अपने इंद्रासनसे नीचे उतारेगा उसके हाथसे तीनोंलोकों की बिजय होनेपर और इंद्रके पीठफेरने पर कश्यपजी से अदिति मातामें मैंहीं बारहवां सूर्य्य उत्पन्न होऊंगा, हे नारद फिर महातेजस्वी इंद्रको उसका राज्यदूंगा और देवताओंको नये सिरेसे फिर अपने २ स्थानों पर नियत करूंगा, सब देवताओं के बिरोधी पराक्रमियोंमें श्रेष्ठ दानवोत्तम राजा बलिको पाताल में स्थित करूंगा, त्रेतायुग में भृगु बंशका रक्षा करनेवाला परशुराम अवतारभी मैंहीं होऊंगा और बड़े २ क्षत्री राजाओंको सेना समेत मारूंगा, ८० त्रेता युगमें द्वापरके सन्ध्यांश होने पर मैं जगतका स्वामी दशरथ का पुत्र रामचन्द्र नाम मर्य्यादा पुरुषोत्तम अवतार धारण करूंगा, प्रजापतिके पुत्र एकत द्वितनामऋषि अपने त्रितनाम भाईके शापसे बिपरीतरूप अर्थात् बानरकेरूपोंको धारण करेंगे, उन दोनोंके वंशमें जो बड़े पराक्रमी बानर इन्द्रके बलके समान प्रचण्ड पराक्रमी होंगे वही बानर देवताओंके कार्य्य में मेरी सहायता करेंगे फिर उस राक्षसों के स्वामी घोर रूप पुलस्तिके कुलको दोष लगानेवाले भयानक रूपसंसारके कंटक रावणको उस की सन्तान समेत मारूंगा,और द्वापर कलियुगकी सन्धिके अन्तमें कंसादिकोंके मारनेको मेरा कृष्ण नाम अवतार मथुरामें होगा वहां भी देवताओंके कंटक रूपबहुतसे दानवोंको मारकर,कुशस्थली द्वारकापुरीको अपनानिवास स्थान बनाऊंगा उसपुरी में निवासी होकर अदिति माताके अप्रियकारी नरकासुर भौमासुर, मुरु और पीठ नाम दानवोंको मारकर नानाप्रकार के धनरत्नादि संपन्न क्रीड़ाके योग्य प्राग्ज्योतिषनाम रमणीक पुरको द्वारका में लाऊंगा फिरबाणासुर के हितैषीलोकपूज्य युद्धकांक्षी महेश्वरजीको सेना समेत बिजय करूंगा। तदनन्तर हजार भुजाधारी राजाबलिके पुत्र बाणासुरको बिजयकरके

उसशौभ निवासीको मारूंगा जो कि गर्गऋषि के तेजसे संयुक्त कालयवननाम से प्रसिद्धहोगा उसका बध मेरे हाथसे होगा हेब्रह्मन् बड़ाबली सबराजाओंका विरोधी असुरों से बुद्धियुक्त जरासन्ध गिरिब्रज में राजा होगा उसका भी मरना मेरेही बुद्धिकी प्रेरणासे होगा,पृथ्वीके जितने पराक्रमी राजा हैं उन सबके इकट्ठे होनेपर धर्मके पुत्र राजायुधिष्ठिरके यज्ञमें शिशुपालको मारूंगा और इन्द्रका पुत्रकेवल एकअर्जुनही मेरासाथी और सहायकरहेगा युधिष्ठिरको उसकेभाइयों समेत उसके राज्यपर नियत करूंगा लोकमें यही प्रसिद्धी होगी कि देवताओं के कार्य के लिये आप श्रीनरनारायणऋषि युद्धकरके क्षत्रियों के समूहों को मारेंगे,इच्छानुसार पृथ्वीकेभारको उतारकर सब यादव लोगोंका औरद्वारकाका घोरनाश करूंगा फिरचारमूर्त्ति रखनेवाला मैं अनेक कर्मोंको करके आत्मज्ञान में प्रवृत्तहोके अपने लोकोंको जाऊंगा हे उत्तम ब्राह्मण मेरे अवतारों के हंस, कूर्म,मत्स्य,बाराह, नृसिंह, बामन, परशुराम, दशरथात्मज श्रीरामचन्द्र, कृष्ण और कलकी यहनाम हैं, फिरमैं गुप्तहोनेवाले बेद श्रुतिको फेरकर जबलाया तब सतयुग में सब प्राणी बेद और श्रुतिसे संयुक्त कियेगये तुमनेभीपुराणों में सुनाहोगा कि मेरे बहुतसे उत्तम २ अवतार पूर्वकाल में होचुकेहैं,लोकके कार्य्यों को करके फिरअपने मूलमें प्रवेशकिया मेरायह इसप्रकारका दर्शनब्रह्माजी को भीकभीनहींहुआ अबजोयहां तुमएकनिश्चयवाले बुद्धिके स्वामीसे यहमैंने अपना गुप्त वृत्तान्त जिसको कि कोईनहीं जानताहै तुमभक्तिमान से बर्णन किया, भीष्मजी बोलेकि इसप्रकार वहबिश्वमूर्तिधारी अबिनाशी भगवान देवता यहसब बचनकहकर उसीस्थान में अंतर्धान होगये फिर महातेजस्वी नारदऋषिभी अभीष्ट मनोरथोंको पाकर नरनारायण जीके दर्शन करनेको बदरिकाश्रमकोगये, उननारायणऋषि ने सांख्ययोग औरचारोंबेदोंसे संयुक्त पंचरात्रनाम महाउपनिषदबनाया , हेतात फिर नारदजीने श्रीनारायणजीके मुखसे निकलेहुये शास्त्रोंमें जैसेसुना और समझाथा सबब्रह्मलोक में जाकर सुनाया, युधिष्ठिरबोलेकि इन बुद्धिमाननारायणजी का यहमाहात्म्य अपूर्बहै इसको क्या ब्रह्माजी नहीं जानतेथे जो नारदसेसुना,ब्रह्माजीभी उसी से एक तारखते हैं वह उसबड़े तेजस्वीके प्रभावको क्योंनहीं जानतेथे, भीष्मजीबोले हेराजेन्द्र हजारों महाकल्प और उत्पत्तिनाश ब्यतीतहुए और संसारकी आदि उत्पत्ति में प्रभुब्रह्माजी संसार के स्वामी कहेगये हैं इससे वह इस नारदजीसे अधिकदेवसृष्टिको जानतेहैं, और उसी प्रकार से परमेश्वरको अपना उत्पत्ति स्थानजानतेहैं, परन्तु ब्रह्मलोकमें जो दूसरे सिद्धोंके समूह इकट्ठे हुए उनसब के सुनाने को यह श्रेष्ठपुराण के समानवर्णनकिया हे राजाइसके पीछे इन सिद्धों के मुख से सूर्य्यदेवताने सुनकर अपने पीछे चलने वाले ऋषियों को

सुनाया जिनकी कि संख्याछयासठ सहस्र है और सूर्य्य के आगे पीछेस्तुति करते चलते हैं और उन आगे पीछे चलनेवाले ऋषियोंनेभी सुमेरु पर्व्वतपर इकट्ठेहोनेवाले देवताओंको यह उत्तम शास्त्र सुनाया, और देवताओंसे सुन- कर असित नामऋषिने अपने पितरोंको सुनाया, हे भरतवंशी बेटा मेरे पिता शंतनुनेभीमुझसे कहाइसीसे मैंनेभी तुझ से वर्णनकिया, जिनदेवता मुनि- योंने यह पुराण सुनायाहै वह सबभी सबप्रकारसे चारों ओर आत्माको पूजते हैं हे राजा यह ऋषिसम्बन्धी आख्यान क्रमसे परम्परा पूर्व्वक बहुत काल से प्राप्त है जो वासुदेव जी का भक्तनहीं है उस को तुम किसीदशामें भी देनेको योग्य नहींहो, हे राजा तुमने सैकड़ों अन्य आख्यान जो मुझ से सुने उन सबका यह सारभूत है, जैसे देवता असुरोंने समुद्रको मथकर अमृतको निका- लाहै उसीप्रकार पूर्वकाल में वेदपाठी ब्राह्मणोंने यह कथारूपी अमृत निकाला है अनन्य भक्तिका प्राप्तकरनेवाला और एकान्तमें सावधान होकर जो पुरुष इसको पढ़ताहै वासुनताहै, वहमनुष्य श्वेतद्वीपमें प्राप्तहोकर चन्द्रमाके समान प्रकाशमान होकर सहस्र रश्मिवाले सूर्य्यदेवता के भीतर वर्त्तमान अन्तर्य्यामी महातेजमें निस्सन्देह नियत होजाताहै, इसीप्रकार जो रोगी इसकथाको प्रा- रंभसे मनलगाकर सुनेगा उसका भारीभी रोग निवृत्तहोगा औरजो जिस बातकीकामनाकरे वहकामना उसको प्राप्तहोगी और भक्तपुरुष महाभक्तों की गति को पाता है, हेराजाउस पुरुषोत्तम का पूजन तुमकोभी करना उचित है वहीसंपूर्ण संसारकामाता पिता और गुरुहै, हे महाबाहु युधिष्ठिर वह महाज्ञानी दुष्टोंका नाशकर्त्ता षड़ैश्वर्य्याधिपति वेदब्राह्मणोंकीरक्षा करनेवाला भक्तोंका सनातन देवतातेरे ऊपरप्रसन्नहो, वैशंपायनबोले कि हे जनमेजयवह धर्मराज युधिष्ठिर और उसके वह सबभाई इस उत्तमआख्यानको सुनकर श्रीनारायण जीके भक्तहोगये, हेभरतवंशी सरस्वतीको उच्चारण करते हुये उसभगवान् पुरुष नरनारायणने सदैव जपमें प्रवृत्त होकर सबको बिजयकिया, और हमारे श्रेष्ठ गुरु श्रीबेदव्यासजीने भी नारायण जीको स्मरणकरतेहुए सुख से उसी उत्तममंत्रकाजप किया, औरअन्तरिक्षमार्गके द्वारा अमृत के उत्पत्ति स्थान क्षीरसागरपर पहुंचकर देवेश्वरकी पूजाकरके फिर अपने आश्रम में निवास किया, भीष्मजी बोले कि यह नारदजीका कहाहुआ और मेरा वर्णनकिया हुआ आख्यान सबतैंने सुना यहपरम्परासे एकसे एकको मिलताहुआ चला आताहै और पूर्वमें मेरेपिताने मुझ से वर्णनकिया, सूतजीबोले कि यह वैशं- पायनजीका कहाहुआ सबआख्यान मैंने तुमसेकहा उसको सुनकर जनमेजय ने अपनी बुद्धिके अनुसार अच्छीरीतिसे अभ्यासकिया हे नैमिषारण्यबासियो तुमसब तप और नियमके करनेवाले बेदज्ञोंमें उत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण शौनकऋषि

के महायज्ञमें वर्त्तमानहो तुम सब अच्छे हवन पूर्व्वक उत्तम यज्ञों में सनातन परमेश्वरका पूजनकरो १३५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिपंचषष्ठितमोऽध्यायः १६५ ॥

# एकसौछयासठका अध्याय ॥

शौनकजी बोले कि वह षड़ैश्वर्य्यवान् ईश्वर यज्ञोंमें किसरीतिसे प्रथमभाग अर्थात् उत्तम भागके भागीहुए और यज्ञधारी होकर सदैव वेद वेदांगके कैसे जाननेवालेहुए वहभगवत् स्वरूपप्रभु शान्त और निवृत्तिधर्ममें नियतहै उसी भगवान् प्रभुने निवृत्तिधर्मको धारणकिया और सब देवता किस प्रकार प्रवृत्ति धर्मोंमेंभाग पानेवाले कियेगये और निवृत्ति धर्मवाले पुरुष किसरीतिसे निवृत्ति धर्मवाले हुए, हेसूतजी इस हमारे गुप्त और प्राचीन सन्देह को निवारण करिये क्योंकि आपहीसे नारायणकी हितकारी कथाओंको हमने सुनाहै, यहसुनकर सूतपुत्रने उत्तर दिया कि हेशौनक राजाजनमेजयने व्यासजीके शिष्य बैशंपायनजीसे जोपूछाहै उसप्राचीन वृत्तान्तको मैं तुमसे कहताहूंकिबड़ेज्ञानीजनमेजयने इस जीवधारियोंके अन्तरात्म नारायणजीके माहात्म्यको सुनकर बैशंपायनजीसेपूछा, कि यहसब ब्रह्माआदि सबदेवता मनुष्य असुरोंसमेत सफल कर्मोंमें प्रवृत्त संसारदृष्टआताहै और हेब्रह्मन् आपने मोक्षको निर्वाण और परमानन्द रूपकहा इसलोकमें जोपुरुष पुण्य पापसे रहित होकर मुक्तहोते हैं, वहसूर्य्यके अन्तर्य्यामी अनन्त चैतन्यरूपमें प्रवेश करते हैं यह हमने सुनाहै इससे यह सनातनमोक्षधर्म दुःखसेकरनेके योग्यहै, सबदेवता जिस मोक्षधर्मको त्यागकर हव्यकव्यके भोक्ताहुए क्या यहब्रह्मा, रुद्र और बलिका मारनेवाला इन्द्र,सूर्य्य, चन्द्रमा,वायु, अग्नि, वरुण, आकाश, पृथ्वी और जोशेषदेवताहैं वहसब अपने नियत नाशआदिको नहीं जानतेहैं इसकारण वह अचलअविनाशी न्यूनतारहित उत्तममोक्षमार्गमें नहीं नियतहोतेहैं और उसीनाशवान् प्रवृत्ति मार्गमें वर्त्तमानहैं और कालके व्यतीत होनेपर क्रियावान् पुरुषोंमें यह बड़ा दोषहै हे ब्रह्मन् इससन्देहरूपी हृदयके बाणको इतिहासों के द्वारा निकालो मुझ को अपूर्ववार्तोंके देखनेकी बड़ीउत्कंठाहै, हे ब्राह्मण देवता यज्ञोंमें भागलेनेवाले कैसेकहेगये औ कैसे पूजेजातेहैं हे ब्रह्मन् जोदेवता यज्ञोंमें भाग को लेतेहैं वह पूजित देवता आप अपनेयज्ञोंमें किसको भागदेतेहैं, बैशंपायन बोले कि हे राजा बड़ाआश्चर्य्यकारी आपने प्रश्नकिया यहप्रश्न उसमनुष्यसे जिसने तपस्या नहींकीहै और बेदकोभी नहीं जानताहै अथवा पुराणकोभी सुना वा पढ़ानहीं है शीघ्रकहना असंभव है अच्छा जैसे कि पहले गुरूजीसे मैंने पूछाहै उस के अनुसार तुमसे कहताहूं मेरेगुरू बेदोंके बिस्तार करनेवाले

द्वीपनिवासी कृष्णनामव्यास महर्षि हैं और सुमन्त, जैमिनि सुव्रतपैल, और चौथामें पांचवें शुकदेवजी इनपांचोंशान्तचित्त क्रोधरहित जितेन्द्री शिष्योंको इकट्ठे होनेपर उन्होंने वेदोंको पढ़ाया इनमेंपांचवां महाभारतहै, पर्व्वतोंमें श्रेष्ठ क्रीड़ायोग्य सिद्ध चारणआदिसेव्याप्त सुमेरुके किसीभागमें उनवेदपढ़नेवाले शिष्योंने किसीसमय सन्देहकिया और व्यासजीने इसीतुम्हारे प्रश्नको उन से कहा और मैंने भी सुना उसीको हे भरतवंशी अबमैं तुमसे कहताहूं, सबअज्ञात दोषोंके दूरकरनेवाले पराशरजीके पुत्र व्यासऋषिने शिष्योंके बचनोंको सुनकर यह बचन कहा कि हे उत्तम शिष्यलोगो मैंने भूतभविष्य वर्तमान इन तीनों कालों के जाननेके निमित्तही बड़ीतपस्या कीथी क्षीरसागरके समीप शान्तचित्त तपपरायण मुझत्रिकालज्ञ होनेवालेके मनोरथ को श्रीनारायण जीने अपनी कृपासे पूर्णकिया अर्थात् वहज्ञान मुझको उत्पन्न होगया उसको न्याय के अनुसार यथार्थ तुमसेकहताहूं तुमचित्त लगाकर सुनो,, २७ मैंने कल्पके प्रारंभमें ज्ञानरूप दृष्टिसे जैसा वृत्तान्तदेखाहै और सांख्यवायोग जाननेवाले पुरुषों ने जिसको परमात्माबर्णनकिया है वह अपने कर्मसे महापुरुष नामकहलाताहै उससे अव्यक्त हुआ जिसको ज्ञानी प्रधानकहते हैं, संसारकी उत्पत्तिके निमित्त अपनी इच्छासे अव्यक्तईश्वर व्यक्तरूपहुआ वहलोकों में महान् आत्माअनिरुद्ध कहाजाताहै, जिसने अपने प्रकटहोनेके पीछे ब्रह्माको उत्पन्न किया वह अहंकार नाम प्रसिद्ध हुआ वह सब तेजों का रूपहै पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश यह पंचमहाभूत पांच रीति के द्वारा अहंकार से उत्पन्नहैं महाभूतोंको उत्पन्न करके गुणों को उत्पन्न किया और पंचमहाभूतों से सब देह उत्पन्नहुये उनको सुनो, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, महात्मा वशिष्ठ, स्वायम्भुवमनु यह आठ प्रकृति अर्थात् उत्पत्तिस्थान जानने के योग्यहैं इन्हींमें लोक नियतहैं लोकों के पितामह ब्रह्माजीने उन वेदवेदांग यज्ञ और यज्ञों के अंगों से संयुक्त ऋषियोंको लोकसिद्धी के लिये उत्पन्न किया उन आठों प्रकृतियोंसे यह विश्वरूप संसार उत्पन्न हुआ,, फिर क्रोधरूप रुद्र पुरुष उत्पन्नहुए उन्होंने आप जिन देशों को उत्पन्न किया वह ग्यारहरुद्र रूपान्तर करनेवाले पुरुष कहेगये वह रुद्र प्रकृति, और सब देवर्षिलोग लोक की सिद्धि के निमित्त उत्पन्न हुये और ब्रह्माजी के पास नियत होकरबोले २८ कि हे भगवन् अनेकरूपधारी पितामह आपने हमको उत्पन्न कियाहै इससे जो जिस अधिकारकी योग्यता रखताहै उसको उस अधिकार पर नियत करना योग्यहै आपने जो संसार के कामों का विचार करनेवाला पद हमको दिया है वह उस अहंकारकर्त्ता से कैसे रक्षा कियाजायगा,, जो अधिकार के कामों का विचार करनेवालाहै उसके पराक्रम उत्पन्न करनेवाले

कर्मको बताओ यह बात सुनकर उस बड़े देवता ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि हे देवताओ तुमने मुझको खूब जताया तुम्हारा कल्याणहो मुझको भी यही चिन्ता हुईथी जो तुम चाहते हो सम्पूर्ण त्रिलोकी का दृढ़ बीजरूप परिग्रह किसप्रकार करने के योग्य है और हमारे तुम्हारे शरीरका बल किस रीति से नाश न हो, यहां से हम सब उस लोकसाक्षी गुप्तपुरुष के धामको चलें वह हमारे हित की बात कहैगा, तदनन्तर लोक के हितकारी वह ऋषि देवता ब्रह्माजी समेत क्षीरसागर के उत्तरीय तटपरगये, और सब ब्रह्माजी के बनाये हुए वेदसे कल्पित तपों में प्रवृत्तहुए वह तपचर्या महानियम नाम बड़े भारी दुःखोंसे भी असह्यहै, कि जिनकी दृष्टि और भुजा ऊपर को थीं और एकाग्र चित्तथा इस स्वरूपसे सब एक चरणसे नियत होकर काष्ठके समान दृढ़होके सावधान हुए उन्होंने दिव्य हजारवर्ष घोर तपस्याको करके उस मधुरबाणी को सुना जो कि वेद वेदांगसे शोभितथी, श्री भगवान् बोले कि हे ब्रह्मा समेत सबदेवता और तपोधन ऋषिलोगो मैं तुम सबकी कुशल क्षेम पूछकर इस उत्तम वचनको सुनाताहूं, मैंने तुम्हारे प्रयोजन को जाना वह लोकका बड़ा हितकारी है प्रवृत्तियुक्त तुम्हारे बल की वृद्धि करनेवाला कर्म्म तुमको करना उचितहै हे देवताओ तुमने मेरेआराधनकी इच्छासे अच्छा तप किया हे बुद्धिमानों तुम इस तप के उत्तमफल को पाओगे यह ब्रह्मा लोकों का बड़ा मान्य और पितामहहै हे देवताओ तुम बड़ी सावधानी से मेरा पूजन करो तुम सब यज्ञों में मेरे भागोंको सदैव कल्पना किया करो मैं भी तुम्हारे अधिकारके समान सबका कल्याण करूंगा, वैशम्पायन बोले कि सब देव ऋषियों ने उस परमपुरुष के इन वचनोंको सुनकर वेदोक्तरीतियों से बुद्धिके अनुसार विष्णु यज्ञ की रचनाकी उस यज्ञ में आप ब्रह्माजी ने सदैव के लिये सबका भाग नियत किया, देवता और देवर्षियों ने अपने२ भागको कल्पना किया वह देवता आदि सब सतयुग का धर्म रखनेवाले थे और उनके भाग बड़े ऊँचेथे उनको सूर्यकासा वर्ण महावरदायी सर्वगामी तेजमय पुरुष कहतेहैं, तदनन्तर उस अदेहरूप आकाशमें नियत महावरदायी ईश्वरने उनसब नियत देवताओंसे यह वचन कहा किजिसने जो विभाग विचार कियाहै वह वैसेही मुझको प्राप्त होगा मैं बहुत प्रसन्नहूं अब प्रवृत्ति लक्षणवाले फल को कहताहूं, हे देवताओ मेरी प्रसन्नतासे उत्पन्न होनेवाला यह तुम्हारा लक्षणहै कि उत्तम पूरी दक्षिणावाले यज्ञोंसे आप पूजन करनेवाले तुम सबहरएक यज्ञ में प्रवृत्ति फलके भोगनेवाले होजाओ जो मनुष्य अन्यलोकों में भी यज्ञोंसे पूजनकरेंगे वह मनुष्य वेद कल्पित तुम्हारे भी भागोंको विचारकरेंगे उसमहायज्ञमें जिसने मेरेभागको जिसरीति से बिचार कियाहै वह उसीप्रकार वेद सूत्रमें यज्ञभागके

योग्यकियाहुआ यज्ञभाग और फलके योग्य तुम देवता लोगोंको पोषणकरो, लोकमें सब बातों के विचारनेवाले और प्रवृत्तिफल मे सत्कारपानेवाले तुम सब देवता अपने २ अधिकारके अनुसार जिन २ कर्मोंको करोगे उनसे बल-वान् होनेवाले तुम सब अन्य लोकोंको भी धारण करोगे सब यज्ञोंमें मनुष्योंके पूजन आदिसे ध्यान कियेहुए तुमसब फिर मुझको ध्यानकरो तुम्हारी ओरसे यह मेरीही भक्तिहै इस आशय से औषधियों समेत सब वेद और यज्ञ उत्पन्न कियेगये हैं, इन वेदादिकों का पृथ्वीपर अच्छे प्रकार से प्रचार और अभ्यास होनेसे देवता तृप्तहोतेहैं यह तुम्हारी उत्पत्ति जो कि प्रवृत्ति गुणसे कल्पितहै वह मैंनेही तबतक के लिये कीहै जबतक कि कल्पना का अन्तहो हे ईश्वरो तुम अपने अधिकार के अनुसार लोकोंका हित विचार करो ६८ मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्ति, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ यह सातों ऋषिहैं मैंने उनको मनसे उत्पन्न कियाहै, यह महावेदज्ञ वेदके आचार्य्य विचारकिये गये हैं और प्रवृत्ति धर्ममें युक्त होनेसे वही लोग प्रजापति भावमें भी कल्पना किये हैं, यह क्रियावानों का मार्ग प्रत्यक्षरूप और सनातनहै इससृष्टिका उत्पन्न करने वाला प्रभु अनिरुद्ध नामसे प्रसिद्धहै यहरजोगुण प्रधान पुरुषोंका प्रवृत्तिमार्ग वर्णन किया, अब सतोगुण प्रधान पुरुषों के निवृत्त मार्गको कहते हैं--सन, सनत, सुजात, (सनकसनन्दन) सनत्कुमार, कपिल, और सातवें सनातन, यहसातों ऋषि ब्रह्माजी के मानसी पुत्रहैं और आपसे आप विज्ञान प्राप्त करनेवाले निवृत्ति धर्म्ममें नियत हुए, यह सबयोग और सांख्यके उत्तमज्ञाता धर्मशास्त्रोंके आचार्य्य और मोक्षधर्मके जारी करनेवाले हैं, इनके मार्ग और अधिकार का विभाग कहांसेहै इसको कहतेहैं—जिससे कि अव्यक्त के तीन गुण रखनेवाला महा अहंकार प्रथम उत्पन्न हुआ उसमेभी जो परेहै उसको क्षेत्रज्ञ नामसे कल्पित कियाहै, सो हमयह जो निवृत्ति मार्ग है वह आवा-गमन रखनेवाले क्रियावान पुरुषोंको कठिनतासे प्राप्तहोताहै, जोजीव जिस२ कर्ममें जिसरीति से प्रवृत्ति वा निवृत्ति धर्ममें नियत कियागयाहै वह उस २ के बड़े फलको पाताहै यहब्रह्मा लोकोंका गुरू संसार आदिका उत्पन्न करने वाला प्रभुहै, माता पिताहै और मेरा उपदेश कियाहुआ तुम्हारा पितामहहै और जीवधारियों को वरका देनेवालाहोगा, इनके पुत्र रुद्रजी जो ललाट से उत्पन्न हुए वह ब्रह्माजीके उपदेशसे सब जीवोंके धारण करनेवाले होंगे तुम अपने २ अधिकारों को प्राप्त करके बुद्धिके अनुसार विचारकर सबलोकों में धर्मक्रियाओंको शीघ्रजारी करो विलम्ब मतकरो, जीवोंकी कर्मगतियों का उपदेश करो हे देवताओ यहां मनुष्योंकी आयुर्दा पूर्णहोती है, क्योंकि यह सतयुग नाम उत्तम समय जारीहुआ इसयुगमें यज्ञपशु नहीं मारे जायँगे और

इसमें सबधर्म्म चारों चरणयुक्तहोंगे इसके पीछे त्रेतायुग नाम आवेगा इसमें तीन चरण धर्मके रहेंगे, और संस्कार कियेहुए पशु यज्ञोंमें मारेजायँगे उसमें धर्मका चौथाचरण नहीं होगा तिसके पीछेद्वापर नामयुग होगा उसमें धर्मके दोही चरणहोंगे उसके पीछे चौथा कलियुग नाम समयहोगा उसमें एकचरणही धर्मका रहैगा अर्थात् जहां तहां कोई कहीं धर्मको करेगा इस प्रकार से कहनेवाले गुरुसे देवता और देव ऋषियोंने सुनकर कहा कि जब धर्म एक चरण होकर जहांतहांही होगा तबहम लोगों को किसप्रकार से कर्मकरना उचित होगा उसको आपकहिये श्रीभगवान्बोले कि हेउत्तम देवताओ जिस स्थान पर वेद यज्ञ तपसत्य शान्त चित्तता और अहिंसा आदि धर्म बर्त्तमान हों वहां बिचरो वहीदेश तुम्हारे सेवन करने के योग्य है अधर्म तुमको कभी स्पर्श न करेगा, व्यासजी बोले कि भगवान् से शिक्षा किये हुए वह सब देवता और ऋषियों के समूह भगवान् को नमस्कार करके अपनी रुचिके देशोंको गये, देवता आदि के चलेजाने पर अकेले ब्रह्माजी उस अनिरुद्ध देह में नियत होकर भगवत् के दर्शनकी अभिलाषा से वहीं स्थिर रहे, तब भगवान्ने हयग्रीव रूप धारण कर कुण्डल और कमण्डलु हाथ में लिये उन ब्रह्माजीके सन्मुखआकर चारोंवेदोंको अंगों समेत बर्णन किया, व्यास जी बोले कि इसके पीछे संसारके स्वामी ब्रह्माजी उसमहातेजस्वी नारायण को घोड़ेके स्वरूप में देखकर लोकोंके हितकी इच्छासे उस बरदायीको नमस्कारकर हाथ जोड़के उसके आगे नियतहुए तब उसदेवताने उनसे स्नेह पूर्ब्बक मिलकर यहबचन कहा तुम अपनी बुद्धि के अनुसार लोक के कामों की सब दशाओंको बिचारो तुमहीं सबजीवोंके धाता अर्थात् पालनेवाले प्रभु और गुरुहो मैं तुम्हारे सुपुर्द पृथ्वीकाभार रखकर शीघ्रही शान्तताको प्राप्त होजाऊंगा, जब देवताओंका कोई कार्य्य तुम्हारी सामर्थ्यसे बाहरहोगा तब आत्मज्ञानका उपदेश करनेवाला मैं अवतार धारण करूंगा, ऐसा कह वह हयग्रीवरूप नारायण उसीस्थानमें अन्तर्द्धान होगये और उनसे उपदेशपाये हुए ब्रह्माजीभी शीघ्र अपने लोकको गये, हे महाभाग इसप्रकारसे यहकमल नाभ सनातन देवता सदैव यज्ञोंका धारण करनेवाला यज्ञोंमें उत्तमभाग का लेनेवाला हुआ, और अविनाशी धर्मधारी पुरुषोंकी निवृत्ति धर्मनाम गति को प्राप्तहुआ और अपूर्व संसारको उत्पन्न करके प्रवृत्ति धर्मोंको बिचारनेलगा, वही आदि मध्य अन्तहै वहीप्रजापालक और ध्यानके योग्यहै वहीकर्त्ता वही क्रिया और उसीने युगों के अन्त में सबको अपने में लयकरके शयन किया और फिर उसी युगकी आदिमें जगनेवालेने संसारको प्रकटकिया उसमहात्मा निर्गुण देवताके अर्थ नमस्कारकरो और उस अजन्मा विश्वरूप सब देवोंके

धाम स्वरूपको नमस्कारकरो, महाभूतोंके स्वामी रुद्रों के अधिपति द्वादश सूर्य्योंके प्रकाशक वसुओंके और अश्विनीकुमारोंके, मरुद्गणों के वेद यज्ञ और वेदांगोंके स्वामीको भी प्रणाम करो, समुद्रमें स्थित हररूप मुञ्जकेशि शांत स्वरूप सब जीवोंको मोक्षधर्मके उपदेश करनेवाले तप तेज यश बचन सरिता कपर्दी बराह एक शृंग विवस्वत अश्वशिर चतुर्मूर्त्तिधारी गुह्य ज्ञान दृश्य अक्षर क्षर सर्वत्र गति अव्यय न्यूनाधिक रहित इनरूपों से आनन्द पूर्वक विचरनेवाले को नमस्कारकरो, यह परब्रह्म विज्ञान नेत्रों से जानने के योग्यहै, मैंने भी पूर्व समय में इसीप्रकार ज्ञानदृष्टिसे उसको देखाथा और मैंने तुम लोगोंसे मूल समेत यथातथ्य वर्णन किया है शिष्यलोगो मेरे बचनोंको मानकर उसी हरिका सेवनकरो उसीको वेदोंके शब्दोंसे गाओ और बुद्धिके अनुसार पूजनकरो, वैशम्पायन बोले कि हम सब शिष्य और उनके पुत्र महा तेजस्वी शुकदेवजी उन बुद्धिमान् वेदव्यासजीसे उपदेश किये गये, हे राजा उन हमारे उपाध्यायजीने हमलोगों समेत चारोंवेदोंकी ऋचाओंसे उसईश्वर की स्तुतिको किया यह जो तुमने पूंछा सो सबवर्णनकिया, यह सब पूर्वकाल में गुरु व्यासजीनेही हमसे कहाहै, जो सावधान बुद्धिमान् पुरुष भगवान्‌को श्रद्धा पूर्वक नमस्कार करके सदैव इसउपाख्यानको सुनै वा सुनावैगा, वह नीरोग बुद्धिमान् पराक्रमी होगा और रोगी रोगसे निवृत्त होजायगा और बद्ध मनुष्य बंधनसे छूटताहै, इच्छावान् मनोरथोंको और आयुर्दा चाहनेवाले दीर्घायुको और ब्राह्मण सब वेदोंका प्राप्त करनेवाला होताहै क्षत्री विजयको वैश्य वहुत लाभको शूद्र सुखको अपुत्री पुत्रको कन्या सुन्दर पतिको पातीहै गर्भवती स्त्री आनन्दसे निवृत्तहोवे और पुत्रको उत्पन्नकरै बंध्या प्रसव पावे पुत्र पौत्र धन संयुक्तहोय और जो मनुष्य मार्ग में इसको पढ़ै वह आनन्दसे मार्ग व्यतीत करे, जो जिस कामनाको चाहै वह अवश्य उसमनोरथको पाता है, इसप्रकारसे उसमहात्मा पुरुषोत्तमके इसबचनको जो अच्छेप्रकारसे निश्चय कियाहुआ था राजासे महर्षिने विस्तार पूर्वक वर्णन किया इसदेवता और ऋषियोंके समाजको सुनकर भक्तलोग आनन्दको पाते हैं १२१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मे उत्तरार्द्धेशतोपरिषट्षष्टितमोऽध्यायः १६६ ॥

# एकसौ सरसठका अध्याय ॥

राजा जनमेजय ने प्रश्न किया कि हे भगवन् व्यासजी ने शिष्यों समेत जिन नानाप्रकारके नामों से इन मधुसूदन जी की स्तुतिकरी उसका मुख्य हेतु क्याहै इसको आप कृपाकरके मुझे समझाइये जिससे कि मैं प्रजापतियों के स्वामी हरिकी कथाको सुनकर अपने पापों से ऐसे शुद्ध होजाऊं जैसे कि

शरदऋतु का चन्द्रमा निर्मल होता है, वैशम्पायन बोले कि हे राजा उस प्रसन्न भगवान् ने अपने नामों के सर्वज्ञता आदि गुण और संसारकी उत्पत्ति का क्रम और मूल कारण श्रीकृष्णरूप होकर अर्जुनसे कहा है और शत्रुहंता अर्जुन ने उन महात्मा श्रीकृष्णजी के कहेहुए नामों का मूल हेतु उन्हीं से पूंछा था कि हे षड़ैश्वर्य्यमान त्रिकालज्ञ सबके स्वामी सर्व तेजोमय जगन्नाथ सबके अभय देनेवाले देव देवेश्वर आप के जिन नामों को महर्षियों ने वर्णन किया है और जो वेद पुराणों में गुप्त हैं उनसबके मूल हेतुको आप से सुना चाहताहूं हे प्रभु केशवजी आपके सिवाय आपके नामों के मूल हेतुको दूसरा नहीं वर्णन करसक्ता है श्रीभगवान् बोले कि हे अर्जुन ऋक् यजु साम अथर्वण यह चारों वेद पुराण और उपनिषद्, ज्योतिष सांख्य योग शास्त्र और अन्य वैद्यक आदि शास्त्रों में भी मेरेबहुत से नाम ऋषियों ने वर्णन किये हैं उनमें कोई नाम तो गुण संयुक्त और कोई कर्म से उत्पन्न हैं उनको तुम सावधानी से सुनो हे तात पूर्वसमय में तुम्हीं हमारे अर्द्धांग कहे जातेथे उस महातेजस्वी जीवमात्रों के परमात्मा यशस्वी निर्गुण सगुणरूप विश्व रूप नारायण के अर्थ नमस्कार है जिसकी प्रसन्नतासे ब्रह्मा क्रोध से रुद्र उत्पन्न हुए और सब जड़ चैतन्यों का उत्पत्ति स्थानहै हे सतोगुणियों में श्रेष्ठ वह जो प्रकाश आदि अठारह गुणों की धारण करनेवाली मेरी परा प्रकृति स्वर्ग पृथ्वी रूप लोकोंको योगसे धारण करनेवाली है वह कर्म फल रूप बाधा से रहित चिन्मात्र रूप अबिनाशी अजया नाम लोकोंकी आत्मारूप है उसी प्रकृति से उत्पत्ति नाशकी सब विपरीत दशा प्राप्त होती हैं तप यज्ञ और यज्ञकर्ता पुराण पुरुष बिराट् लोकों का उत्पत्ति और लय स्थान इन नामों से नामी अनिरुद्ध कहाजाता है हे कमल लोचन अर्जुन ब्रह्माजी की रात्रि के अन्त होनेपर उस बड़े तेजस्वी अनिरुद्ध की इच्छासे कमल उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुये यह ब्रह्मा उसीकी प्रसन्नता से उत्पन्न हुआ है इसी प्रकार उस देवता के क्रोध होनेपर ललाटसे सायंकालके समय संसार के नाशकर्ता रुद्रनाम पुत्र उत्पन्न हुए यह दोनों देवता प्रसन्नता और क्रोध से उत्पन्न होते हैं और उसकी आज्ञा से यह दोनों संसारकी उत्पत्ति और नाश के करनेवाले हैं यहां वह दोनों कारण रूप होकर सब जीवों के वर देनेवाले हैं, हे अर्जुन गंगाजल से पूर्णजटा मुण्डधारी श्मशानबासी उग्रव्रत परायण महायोगी रुद्रजी बड़े भयानक रूप, दक्ष प्रजापति के यज्ञ के विध्वंसी और भगनाम देवता की आंख निकालनेवाले हर एक युग में नारायण रूप समझने के योग्य हैं उस देवदेवेश्वर महेश्वरजी के पूजित होने से प्रभु नारायण देवहीकी पूजा समझीजाती है इससे इनकी पूजा सदैव अच्छे प्रकार

यज्ञमें भाग रोकनेके लिये भी इन्द्रने वज्रको उठायाथा तब इन्द्रकी दोनोंभुजा च्यवनऋषि ने बांधदीन्हीं अर्थात् भुजा जड़रूप होकर हिलने झुलनेसे बन्द करदीं दक्षप्रजापतिने अपने यज्ञ विध्वंस होने के कारण क्रोधहोकर अपने तपमें संयुक्त होकर नेत्रका दूसरा रूप रुद्रजीके मस्तकपर उत्पन्न किया त्रिपुरासुरके मारने को महादेवजी के दीक्षित होने पर शुक्रजीने शिरकी जटा उखाड़कर शिवजीपर प्रयोग किया उससेसर्प प्रकटहुए उन सर्पोंसे रुद्रजी के पीड़ित कण्ठमें नील वर्णता होगई प्रथम स्वायंभूमन्वन्तर में भी नारायणजी के हाथपकड़ने से शिवजीके कण्ठ में नीलता आगई थी क्षीर सागर की समीपता प्राप्त करनेवाले अंगिरा बंशी बृहस्पतिजी के स्नान करने की दशा में जलने स्वच्छता को नहींपाया इससे बृहस्पतिजी ने जलोंके ऊपर क्रोध किया कि जो तुममेरे स्नान से मैले हुए और स्वच्छ नहीं हुए इसकारण आज से तुम मगरमच्छकछुए आदि अनेक जलजीवोंसे भ्रष्टहोगे तभी से जलकी नदीआदि जलजीवों से व्याप्तहुई हैं त्वष्टाका बेटा बिश्वरूप देवताओं का पुरोहितहुआ वहअसुरोंका मित्रहोकर प्रत्यक्षमें तो देवताओंका भाग दिखाताथा परन्तु गुप्तअसुरोंकोही भागदेता रहताथा तदनन्तर असुरोंने हिरण्यकश्यपको अपना अग्रगामी बनाकर बिश्वरूपकीमाता अपनी बहनकोवरदेने की इच्छाकी और कहाकि हेबहन यहतेरा बेटा बिश्वरूपजोत्वष्टासेउत्पन्नहै तीन शिर धारी देवताओंका पुरोहितहै इसने प्रत्यक्षमें तो देवताओंको भागदिया और गुप्त हमकोदिया इसहेतुसे देवता वृद्धिपातेहैं और हमारा बिगाड़ होताहै तुम उसको समझादो किऐसान करे हमकोही चाहै तदनन्तर उसकी माताने नन्दनबन में वर्त्तमान अपने पुत्रसे कहा कि हे पुत्रतुम अन्य लोगोंके पक्षको क्योंवृद्धि करतेहो और मामाकेपक्षको घटातेहो तुमको ऐसा कर्मकरना उचित नहीं है तबउस बिश्वरूपने माताके बचनको उल्लंघनके अयोग्य समझकर उसका अच्छी रीतिसे पूजनकरके हिरण्यकश्यपके पास यात्राकरी तब हिरण्यकश्यपने ब्रह्माजीके पुत्र बशिष्ठ जीसे शापपाया कि जो तुमने दूसरा होताबुलाया इसकारण तुम्हारा यज्ञ पूर्ण न होगा और प्रकट होनेवाले अद्भुत शरीर धारीके हाथसे मारेजाओगे उनके शापदेनेसे उसीरीतिसे हिरण्यकश्यप मारागया तदनन्तर माताकापक्ष बढ़ानेवाले बिश्वरूपने बड़ातपकिया इन्द्रने उसका ब्रत खंडितकरनेके लिये बहुतसी शोभायमानअप्सराओंको उसके पासनियतकिया उनकोदेखकर उसकाचित्त महाब्याकुल और चलायमानहुआ और शीघ्रही उनअप्सराओंके ऊपरआसक्त होगया उसको आसक्त जानकर अप्सराओंने कहा किहमजहां सेआई हैं वहींजातीहैं तब बिश्वरूपने उनसेकहाकि कहां जाओगी बैठो हमारे साथ आनन्दकरो तब अप्सराओं ने कहा

कि हम देवताओंकी स्त्री अप्सराहैं हमने पूर्वसमयमें वरदाता और अनेक-रूप से प्रकटहोनेवाले इन्द्र देवताकोही अपनापतिबनाया है तब विश्वरूपने कहा कि इन्द्र समेत सब देवताओंका अभी नाश होजायगा यह कहकर म-न्त्रों को जपा उन मन्त्रों के प्रभावसे तीन शिर रखने वाला विश्वरूप ऐसा बढ़ा कि जिसने अपने एक मुखसे तो अच्छे २ क्रियावान् पुण्यकर्मी ब्राह्मणों के श्रेष्ठरीति से होमेहुए अमृत को भोजनकिया दूसरे मुख से अन्नको और तीसरे मुखसे इन्द्रसमेत सब देवताओंको तिसपीछे इन्द्रनेउसकोऐसा देखकर देवताओं समेत क्षीणताको पाया फिर वह इन्द्रादि सबदेवता ब्रह्माजीके पास गये और कहा कि हे ब्रह्माजी सबयज्ञोंमें अच्छीरीतिसे होमाहुआ हव्य अमृत विश्वरूप भोजनकरताहै हम भागोंसे रहित हुए असुरोंकापक्ष वृद्धिको पाता है और हमारेपक्षकी हानिहोतीहै इससे आप बड़ीशीघ्रतासे हमारा कल्याण करो तब ब्रह्माजीने उनको उत्तरादिया कि दधीचिनाम भार्गवऋषितपस्याकरते हैं उनको प्रसन्नकरके उनसे यहबरदान मांगो कि आप अपने अस्थिहमको दें यहकामकरके उनके हाड़ोंका वज्रबनाओ यह सुनकर सब देवता वहांगये जहां भगवान् दधीचिऋषि तपकररहेथे इन्द्रसमेत देवताओंने उनके सन्मुखजाकर प्रार्थनाकरी कि हेभगवन् आपका तप मंगलदायक और निर्विघ्नहो दधीचिने कहा तुम सबआनन्दसे आयेहो हमतुम्हारा क्यासत्कारकरें जो आपलोग कहो वही मैं करूं उन्होंने अपना मनोरथ कहा कि आपसंसारके आनन्दके लिये अपना शरीर त्यागकरदीजिये तब तो हर्ष शोकरहित प्रसन्नहोकर महायोगी दधीचिजीने आत्माको परमात्मामें धारणकरके देहको त्याग किया परमात्मा में उसके लयहोजाने पर धातानाम देवताने उनके हाड़ोंको लेकर बज्रबनाया और उसवज्रमें विष्णु प्रवेशकरगये उसी बज्रसे इन्द्रने विश्वरूपनाम त्रिशिरा को मारडाला और उसके शिरको काटा तदनन्तर त्वष्टासे उत्पन्न मिथुनी से प्रकटहुए अपने शत्रु वृत्रासुरको भी इन्द्रने मारडाला उस ब्रह्महत्याके दोप्रकार होनेपर इन्द्रने भयकेमारे इन्द्रासनको त्यागकर मानसरोवरके शीतलजल से उत्पन्न अत्यन्त शीतल स्पर्शवाली कमलनी में जाकर विश्राम किया वहां योगबलसे अणुमात्र अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्मरूप होकर मृणालकी गांठमें प्रवेश किया ब्रह्महत्याके भयसे तीनों लोकके नाथ इन्द्रके गुप्तहोनेपर फिर संसार अनाथहोगया और देवताओंमें रजोगुण तमोगुणकी वृद्धिहुई मंत्र गुप्तहोगये और ब्रह्मर्षियोंके सन्मुख राक्षस प्रकटहुए वेद ब्राह्मणरूप ब्रह्मका विनाशहुआ इन्द्रसेरहित निर्बल संसार होगया तिस पीछे देवता और ऋषियोंने आयुके पुत्र हंसको देवताओंके राज्यपर अभिषेक करके बैठाया जब हंसने ललाटपर प्रकाशवान् सब तेजों की हरनेवाली पांचसौ ज्योतियों से स्वर्गकी रक्षाकरी

तबसंसार यथावस्थित हुआ और सबस्थिरचित्त होकर प्रसन्नहुए इसके पीछे हंसने कहा कि शची के सिवाय इन्द्रका भोगा हुआ सब सामान मेरे सन्मुख आवे ऐसा कहकर वह शचीके सन्मुख गया और उससे कहा कि हे सुन्दरी मैं देवताओंका इन्द्रहूं तुम मुझको सेवनकरो शचीने उसको उत्तरदिया कि तुम स्वभावसेही धर्म शील और चंद्रवंशीहो अन्यकी स्त्रीसे संभोग करने के योग्य नहींहो फिर हंसने उससे कहा कि मैं इन्द्रासन पर बैठाहूं और मैंहीं इन्द्रके राज्य और रत्नोंका हरनेवालाहूं इसमें कोई अधर्म की बात नहींहै और तुम इन्द्रकी उपभोगहो उसने फिर उत्तरदिया कि मेरा कोई व्रत अभी पूरा नहीं हुआहै उस अवभृथस्नान अर्थात् पूरेव्रतहोनेपर तेरेपासआऊंगी फिरकुछ दिनके लिये शची के ऐसे वचन सुनकर चलागया तदनन्तर दुःख शोक से पीड़ित अपने पति के दर्शनकी इच्छा करती हुई हंसके भयसे भयातुर शची बृहस्पतिजी के पास गई बृहस्पतिजी ने उसको अत्यन्त भयभीत और व्याकुल देखकर अपने ध्यानसे शचीको पतिके कार्यमें प्रवृत्त जानकर यह कहा कि तुम इस व्रत और तप से साक्षात् वरदाता देवी सरस्वती का आवाहन करो तब वह तुझको इन्द्रका दर्शन करावेगी यहसुनकर बड़े नियममें प्रवृत्त होकर शची ने अपने शुद्धमंत्रों से उस वरदाता सरस्वतीका आवाहन किया और साक्षात् सरस्वतीजी शची के पास आई और कहा कि मैं आईहूं जो तू चाहै वह मैं तेरा मनोरथ पूराकरूं तब शची ने मस्तक से प्रणाम करके भगवती से कहा कि हे देवि तुम मुझको मेरेपति का दर्शन कराओ आप सती और पूजितहो यह सुनतेही सरस्वती उसको मानसरोवरपरलेगई वहां कमल की मृणाल की गांठ में बैठेहुए इन्द्रका दर्शन कराया फिर इन्द्रने उस अपनी स्त्री को दुर्बल और महादुःखी देखकर चिन्ता की कि यह मेरा दुःख वर्त्तमान हुआ यहस्त्री मुझ गुप्तको तलाश करतीहुई मेरे सन्मुख पीड़ामान होकर आई है इन्द्रने शचीसे कहा कि तू कैसे अपनाबर्त्ताव करती है उसने उत्तर दिया कि हंस मुझको अपनीस्त्री बनानेको बुलाताहै और मैंने उसका समय भी नियत करदियाहै इन्द्रने कहा कि जाओ तुमहंससे यह कहो कि तुमबहुत उत्तम ऋषियोंसे उठाईहुई सवारीपर सवारहोकर मुझको विवाहो इन्द्रकी बहुतसी अनेक सवारियां हैं और मैं उन सबपर चढ़ीहुई फिरीहूं इसके सिवाय उनमें से तुम कोई सवारी मतलाओ इस प्रकार इन्द्रकी शिक्षापाकर वहबड़ी प्रसन्नता से चलीगई फिर इन्द्रभी अपने कमल मृणालकी गांठमें प्रविष्ट हुआ फिर हंसने सन्मुख आईहुई इन्द्राणीको देखकर कहा कि तुम्हारा वादापूराहुआ शचीने उससे वही कहा जैसे कि इंद्रने समझाय दियाथा तब महर्षियोंकी सवारी में सवार होकर हंसशची के पासगया तदनन्तर मैत्रावरुणके पुत्र घट से उत्पन्न

होनेवाले ऋषियों में श्रेष्ठ अगस्तिजी ने उनमहर्षियों को हंसकी सवारी में धिक्कार युक्त हंस के चरणों से स्पर्शवान् देखकर हंससे कहा हे अयोग्य कर्मी पापी पृथ्वी पर गिरो और तबतक सर्पयोनि में रहो जबतक पृथ्वी और पर्वत नियतरहैं उस महर्षिके इस बचन के कहतेही वह हंस उससवारी से गिर कर पृथ्वी पर सर्प योनिमें आकर प्रवृत्त हुआ इसके पीछे फिर तीनों लोक इन्द्र से रहित होकर अनाथ होगये तिसपीछे देवता और ऋषिलोग इन्द्रके निमित्त भगवान् विष्णुजी के धाम को गये और प्रार्थनाकरी कि हे भगवन् ब्रह्महत्या के भयसे इन्द्रकी रक्षा करिये यह सुनकर विष्णुजी ने उनसे कहा कि इन्द्र अश्वमेधनाम विष्णुयज्ञको करके अपने स्थानको पावेगा तिसपीछे जब देवता और ऋषियों ने इन्द्रको नहीं देखा तब शचीसे कहा कि हेसुन्दरी तुम जाकर इन्द्रको लाओ तब वह फिर उसी मानसरोवर पर गई और इन्द्र उस सरोवरसे निकलकर बृहस्पतिजी के सन्मुख आया बृहस्पतिजी ने इन्द्रके निमित्त अश्वमेध नाम महायज्ञ को किया और श्यामकर्ण नाम पवित्र घोड़े को छोड़कर और उसको सवारी बिचार करके बृहस्पतिजी ने मरुद्गणों के स्वामी इन्द्रको अपनेअधिकार स्थानको पहुंचाया तदनन्तर देवता ऋषियोंसे स्तुतिमान स्वर्गमें बर्त्तमान इन्द्र अपने पापसेनिवृत्तहुआ और ब्रह्महत्याकोस्त्री, अग्नि, औषधी औरगौ इनचारोंस्थानोंमें बिभागकिया इसीप्रकार ब्राह्मणों के तेजऔरप्रतापसे वृद्धिमान इन्द्र अपने शत्रुओंके मरनेकेपीछे अपने स्थानपर पहुंचायागया, पूर्व समयमें आकाशगंगा पर बर्त्तमान भरद्वाजमहर्षि ने स्नान किया तब तीनचरण चलनेवाले त्रिबिक्रम बिष्णुजी उनसे मिले और विष्णुजी की छातीमें उनहाथमें जल धारणकियेहुये भरद्वाजने प्रहाराकिया और वहछाती पर चिह्न नियतहुआ और भृगुजीने अग्निको शापदिया कि तुम सर्वभक्षी होजाओ सो अग्नि देवता सब भक्षी होगये--अदितिमाताने देवताओंके भोजनको ऐसे बनाया कि वह उसको खाकर असुरोंको मारें और वहां ब्रतचर्य्या के समाप्त होनेपर बुधदेवताआये और उन्होंने अदितिसेकहा कि भिक्षादो तब अदिति ने यहसमझकर कि प्रथम देवताओं को भोजन करना चाहिये दूसरे को नहीं योग्य है ऐसा समझकर भिक्षा नहींदी तब भिक्षानदेने से क्रोधरूप ब्रह्मरूप बुधने अदितिको शापदिया कि बिवस्वानके दूसरे जन्ममें अंड-नामजन्म लेनेवाले की माता अदिति केउदर में पीड़ाहोगी यहबचन कहा फिर वहमार्त्तण्ड बिवस्वान श्राद्धदेवता होतेहुये और दक्षकी जो साठबेटियां हुईं उनमें से तेरह बेटी तो कश्यपजी को, दश धर्मको, दशमनुको और सत्ताईस चन्द्रमा को दीं उन सत्ताईस नक्षत्र नाम कन्याओं में चन्द्रमाकी प्रीति केवल एक रोहिणी में अधिकहुई तब उन शेष नक्षत्र नाम कन्याओं ने ईर्षा

से सबको करना योग्य है, हे पाण्डवनन्दन मैंहीं सब लोकों का आत्माहूं इसीकारण प्रारम्भ में अपने आत्मारूप शिवजी का पूजन करता हूं जो मैं सबके ईश्वर बरदाता शिवजी का पूजन नहीं करूं तो फिर कोई आत्मा को पूजन नहीं करे मुझ शुद्ध अन्तष्करण का यहमत है कि यह लोक मेरीजारी करी हुई प्रमाणीक मर्य्यादाओं पर अच्छे प्रकारसे कर्म करनेवाला होता है और प्रमाणीकही पूजनके योग्य हैं इसहेतुसे मैं उनको पूजताहूं, जो उन शिवजी को जानता है वह मुझको भी जानता है और जो उनके सन्मुखहै वही मेरे भी सन्मुख है शिव और नारायण दोनों एकही आत्मा हैं केवल रूपमें दो हैं परन्तु वास्तव में एकही हैं हे अर्जुन वह शिवजी लोकों में बिचरते हैं और सब कर्मों में प्रत्यक्ष रूप से नियत हैं हे पाण्डव मेरे बरदेने के योग्य कोई नहीं है, मैंने इस प्रकार विचारकर पुत्र के निमित्त आत्मा के द्वाराउस आत्मारूप पुराणपुरुष ईश्वर शिवजीका आराधन किया, विष्णु अपनी आत्माके सिवाय किसीको नमस्कार नहीं करते इसकारण से रुद्रजीका स्मरणकरताहूं, ऋषियों समेत सब ब्रह्मारुद्र देवता इस देवदेवनारायण हरिको पूजन करतेहैं हे अर्जुन सब वर्त्तमान भविष्यत देवताओं में श्रेष्ठ तम विष्णुजी सदैव सेवा करनेके योग्य हैं, इसमे हे कुन्तीनन्दन तुमहव्यदेने वाले विष्णुजी को नमस्कार करो इसी प्रकार शरणदाता बरदाता और हव्य कव्य भोजन करनेवाले को सेवनकरो, चारप्रकार के मेरे भक्तहोते हैं उनमें भी अनन्यभक्त महाउत्तम हैं अर्थात् आत्माकेही उपासकहैं, उन अनिच्छावान् भक्तोंको मैंही गतिहूं इनके विशेष जो बाकीके तीन प्रकारके भक्तहैं वह कर्मफलके चाहने वालेहैं, वह विनाशवान् धर्म वालेहैं और ज्ञानी उत्तमफल का पानेवाला है ब्रह्मामहादेव और जो अन्यदेवताहैं उनके सेवन करनेवाले ज्ञानीपुरुष मुझकोही प्राप्त होतेहैं हे अर्जुन भक्तिके विषयमें यह मुख्यता तुम से वर्णन की, हे कुन्तीनन्दन तुम और हम नरनारायण कहाते हैं हम दोनों पृथ्वी के भार उतारने को मनुष्य शरीरमें प्रविष्ट हैं हे अर्जुन मैं अध्यात्म को जानताहूं और जोहूं और जिससे प्रकटहूं उसको भी जानताहूं और निवृत्ति प्रवृत्ति लक्षणवाले धर्मकोभी जानताहूं और मैंही सनातन अकेला जीवात्मा का भी उत्पत्ति स्थान कहाताहूं अर्थात् मुझ बिम्बरूप में प्रतिबिम्ब रूप जीवकल्पितहोते हैं और मुख्यता का ज्ञान होनेपर केवल बिम्बही शेष रहजाता है दूसरे जीवात्मासे संबंध रखनेवाले शरीर नारायणनाम हैं क्योंकि शरीर जीवात्मासे मिलेहुएहैं वह मोक्षसेपहले उपाधि दशामें मेरा निवास स्थानहै इसीहेतुसे मेरा नारायण नामहै, जैसे सूर्य्य उदयहोकर अपनी किरणोंसे सब को प्रकाशित करताहै उसीप्रकार मैंभी अपने प्रकाशसे इस संसार को व्याप्त

करताहूं और सब जीवोंका निवास स्थानहूं इस हेतुसे मेरा बासुदेव नामहै, सबजीवोंका लयस्थानहूं और मुझीसे सब प्रकट होतेहैं आकाश स्वर्ग और पृथ्वी सबव्यास है प्रकाशभी मेरा अधिकहै और जीवमात्र अपने शरीर त्यागने के समय जिस ब्रह्मको स्मरण करतेहैं वहभी मैंहीहूं इस अर्थ परम्परा से मेरानाम बिष्णुहै, सबमन शुद्ध और शान्तचित्तसे मेरीही इच्छा करतेहैं और दमदामनामस्वर्ग, अन्तरिक्ष, और पृथ्वी मेरेही उदरमेंहैं इस हेतुसे मेरादामोदरनामहै, अन्न, वेद, जल, अमृत, यहसब पृष्णिनाम कहेजाते हैं सो सबमेरे गर्भस्थान हैं इसहेतुसे मेरानाम पृष्णिगर्भ है, ऋषियोंने इच्छाओं में प्रवृत्त कियेहुए त्रितऋषिको जतलाकर ऐसा मुझसे कहा कि हे पृष्णिगर्भ एकत और द्वितके हाथसे गिराये हुए त्रित ऋषिकी रक्षाकरो, तदनन्तर वह ब्रह्माजीकापुत्र प्राचीन और ऋषियों में श्रेष्ठत्रित पृष्णिगर्भका जयकरनेसे इच्छा से निवृत्तहुआ, लोकोंको तप्त वा प्रकाशमान करनेवाले सूर्य्य अग्निचन्द्रमा की जो किरणें प्रकाश करती हैं वह मेरेकेश अर्थात् बाल कहेजातेहैं इसी कारण सर्वज्ञ पुरुष मुझको केशवनाम से पुकारते हैं महात्मा उतथ्य ऋषिने अपनी स्त्री में गर्भस्थापन किया और दैवयोगसे उतथ्य ऋषिके कहीं चले जाने पर बृहस्पतिजीने उसमहात्माकी स्त्रीको एकान्त में पाकर बिषय की बासनाकी उस समय हे अर्जुन स्त्रीके गर्भमें से उतथ्य के पंचभूतात्मक पुत्र ने बृहस्पतिजीसे यहकहा कि हे वरदाता मैं प्रथम आगयाहूं तुममेरीमाताको दुःखदेनेके योग्य नहींहो बृहस्पतिजीने यह सुनकर क्रोधमें होकर उसको शापदिया कि मेरे विषयकरने को जो तुमनेरोका है इसहेतुसे तुमनिस्सन्देह अंधे उत्पन्न होगे तब उनके शापसे वह जन्मांध होगये इसीसे वह ऋषि दीर्घतमानामसे प्रसिद्ध हुए और सनातन ऋषि से उसने अंग और उपअंगों समेत चारों वेदोंको पढ़ा और शुद्ध अन्तःकरणसे मेरे इस गुप्त केशव नाम को रीतिपूर्व्वक बारम्बार जपाइसजपके प्रतापसे वह दृष्टियुक्तहोगये और इसी हेतुसे उनका नामगौतम हुआ हे अर्जुन इसप्रकारसे यह मेरा केशवनाम सब देवता और ऋषियोंकोबरकादेनेवालाहै, चन्द्रमासमेत अग्निने एकही उत्पत्ति स्थानको प्राप्तकियाइसीहेतुसेयहजड़चैतन्यरूप जगत् अग्निसोमरूपहै, यहभी वृत्तान्त प्राचीन सिद्ध होताहै कि अग्नि और चन्द्रमा एकस्थानमेंही उत्पन्न होनेवाले हैं और अग्निको आगे रखनेवाले हैं और एकही स्थानसे उत्पन्न होने के कारण परस्पर पूजित होकर लोकोंको धारण करतेहैं ५७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिसप्तषष्टितमोऽध्यायः १६७ ॥

# एकसौअरसठका अध्याय॥

अर्जुन बोले कि हे मधुसूदनजी पूर्व समय में अग्नि और चन्द्रमा किस प्रकारसे एकही योनिमें प्राप्त हुए इस मेरेसन्देहको निवृत्तकरो, श्रीभगवान् बोले हे पाण्डुनन्दन अर्जुन बहुतश्रेष्ठ है मैं अपने तेज से प्रकट होनेवाले प्राचीन वृत्तान्त को तुम से कहताहूं तुम एकाग्र मनसे सुनो, युगों की हज़ार चौकड़ियों के अन्त में प्रलयकाल के वर्त्तमान होने और सब स्थावर जंगम जीवोंके अव्यक्त में लय होनेपर, और वायु अग्नि पृथ्वी से रहित महाअन्धकार युक्त लोकके एकरस ब्रह्मरूप होनेपर और उस एकरस अद्वैतब्रह्मको अपनी महिमा में नियत होनेपर दिन, रात्रि, प्रधान आकाश परिमाणु आदि और सबल मायाके वर्त्तमान होनेपर, नारायण के गुण ऐश्वर्य्य आदिकी रक्षा से पुरीरूप देहों में शयन करनेवाले अविनाशी हरि उस अन्धकार के भीतर से प्रकटहुए यद्यपि वास्तवमें अविनाशी अजर इच्छासे रहित अग्राह्य गुप्त सत्यवक्ता व्यवहारोंसे जुदे हिंसा से रहित चिन्तामणिके समान भावरूप नानाप्रकारकी निजवृत्तियों से युक्त द्वेषता रहित जरामृत्यु बिनारूपरहित सब का स्वामी और सनातन वेद प्रमाण है तौभी उस समय सब सतसत् रात्रि दिन इत्यादि कोई भी न था केवल अन्धकार रूप विश्वथा वही विश्वरूप परमेश्वरकी रात्रिथी उस अन्धकारसे प्रकटहोनेवाले ब्रह्मयोनि पुरुषोत्तम सगुण ब्रह्मके प्रकट होनेपर संसारके उत्पन्न करनेकी इच्छा करनेवाले उसपुरुषने अपने नेत्रोंसे अग्नि और चन्द्रमाको उत्पन्न किया उससे भूत सर्ग के उत्पन्न होनेपर संसारी परम्परा में से ब्राह्मणों का बंश क्षत्रियों के बंशके पास नियत हुआ जो चन्द्रमा है वही ब्रह्महै जो ब्रह्म है वही ब्राह्मण है जो अग्नि है वही क्षत्रियों का बंश है और क्षत्रियोंके बंशसे ब्राह्मणों का बंश बड़ा बलवान्है कारण यह है कि यह गुण लोकके दृष्टि गोचर है कि प्रथम ब्राह्मणोंसे उत्तम कोई नहीं हुआ इसका हेतु यह है कि जो ब्राह्मणों के मुखमें हवन करता है वह प्रत्यक्ष प्रकाशित अग्निमेंहवन करताहै इसहेतुसे मैं कहता हूं कि ब्राह्मण से भूतसर्ग उत्पन्न किया गयाहै और हवनोंकोही प्रतिष्ठा करके तीनोंलोक धारण कियेजातेहैं और मंत्रवादी भी ब्राह्मण के माहात्म्यको प्रकट करता है कि हे अग्नि तुम देवता मनुष्य और संसारके हितकारीहो क्योंकि तुम यज्ञों के होताहो तात्पर्य्य यह है कि अग्निका होता ब्राह्मण अग्नि से भी अधिक है वेदभी इसकी गवाई देताहै हे अग्नि तुम यज्ञों को और विश्वेश्वरआदि देवताओंके होताओं के होताहो अथवा विश्वेश्वर आदि देवताओं से संबंध रखनेवाले यज्ञों के होताहो और तुम देवता मनुष्यों केही हेतु से संसार के

हितकारी हो, और अग्निही यज्ञों का होता अर्थात् ऋत्विजहै और कर्त्तारूप यजमानभी वही है और वही अग्नि ब्राह्मणहै, बिना मंत्रों के हवन नहीं है और बिना पुरुष के तप नहीं होता है हव्यही मंत्रों की पूरी पूजा है इसी कारण तुम देवता मनुष्य और ऋषियों के होताहो यह वचन योग्य है कि जो पुरुष मनुष्यों में हवनका अधिकार रखनेवाले हैं वह ब्राह्मणकेही याजन को कहते हैं क्षत्री और वैश्यके याजनको नहीं कहते इस कारण अग्नि रूप ब्राह्मण यज्ञों को धारण करते हैं अर्थात् क्षत्री और वैश्यभी विना ब्राह्मणकी सहायताके यज्ञ नहीं करसक्ते उन यज्ञों से देवताओंकी तृप्तिहोती है और देवता सब पृथ्वी के जीवों का पोषण करते हैं और सत् पथ नाम वचनका अर्थ है कि वह देवताओं की तृप्ति ब्राह्मण के मुख में होती है अर्थात् अग्नि में हवन करनेसे ब्राह्मण तृप्त नहीं होताहै और ब्राह्मणके मुखमें हवन करने से अग्निआदि देवता ब्राह्मणके मुख में प्रवेश करकेउसको धारण करतेहुए उसकी तृप्ति से आप भी तृप्त होजाते हैं, वह ज्ञानी देदीप्य अग्नि में हवन करता है जो कि ब्राह्मण के मुख में आहुतिको होमना है, इस प्रकार होने पर भी अग्निरूप ज्ञानी ब्राह्मण अग्नि को पूजते हैं क्योंकि सर्वव्यापी अग्नि सब जीवधारियोंमें प्रवेश करके प्राणों को धारण करता है इस स्थान पर सनत्कुमारजी के कहे हुए श्लोक भी प्रमाण होते हैं सबके आदि रूप ब्रह्माजीने प्रथम इस विश्वको पैदाकिया जो कि उनके सिवाय दूसरेकी सृष्टि नहीं है ब्राह्मण योनिमें जन्म लेनेवाले देवता वेद घोषके द्वारा स्वर्गको जाते हैं ब्राह्मणों के जो बुद्धि, वचन, कर्म, श्रद्धा, और तपहैं वह पृथ्वी और स्वर्ग को ऐसे धारण करते हैं जैसे कि दही दूध आदिको छींका धारण करता है, सत्यतासे अधिक कोई धर्म नहीं है माताकी समान कोई गुरू नहीं है और इस लोक परलोक दोनोंमें ब्राह्मणों से श्रेष्ठकोई नहीं है,जिनराजाओं के देश में ब्राह्मणोंकी जीविका नहीं है और बैल वा अन्य सवारी उनके चढ़ने को नहीं हैं और दानके निमित्त उनका बुलाना नहीं होताहै वह राजा चोररूप विनाशको पाते हैं, वेद पुराण इतिहास आदि के प्रमाण से नारायणजी के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण सबके आत्मा सबके पैदा करनेवाले और सब भावर खनेवाले हैं उसदेवताओंके देवता वरदाता नारायण जीकी मौन दशामें सब से प्रथम ब्राह्मण उत्पन्नहुये उन ब्राह्मणों से अन्य सब वर्ण उत्पन्न हुये इस प्रकार से ब्राह्मणलोग देवता और असुरों से श्रेष्ठहैं जो कि मुझ निज ब्रह्म स्वरूपसे पूर्व समय में उत्पन्न किये गये देवता असुर ब्रह्मर्षिआदि अधिकार पर नियत और पीड़ामान किये गये इन्द्रने अहल्या से विषय करनेके कारण अंडकोशोंको कटवाकर मेढ़के अंडकोशों को पाया और अश्विनीकुमार के

करके अपने पिता से यह वृत्तांत कहा कि हे पिता हमसब समान रूप गुण वाली कन्याओं में से चंद्रमा केवल एक रोहिणी परही स्नेह करता है यह सुनकर दक्ष ने क्रोध होकर कहा कि जो तुमको नहीं चाहता है तो उसके शरीर में यक्ष्मानामरोग उत्पन्नहोगा इसी दक्षके शापसे चंद्रमामें यक्ष्मारोग पैदाहुआ यक्ष्मारोग से भराहुआ वह पीड़ित चंद्रमा दक्ष के पास गया दक्ष ने कहा कि तुम सबसे समान बर्ताव नहीं करते हो फिर वहां ऋषियों ने चंद्रमा से कहा कि तुम यक्ष्मारोग से नष्टहोते हो इससे पश्चिमकी ओर समुद्र के तटपर हिरण्य सरोवर नाम तीर्थ है उस में स्नान करो यह सुनकर चंद्रमा वहांगया और हिरण्य सरोवर तीर्थपर पहुंचकर अभिषेक पूर्वक स्नान करके पापसे छूटा और जब चंद्रमा उसपर प्रकाशितहुआ तबसे उसतीर्थका नाम प्रभासनाम प्रसिद्ध हुआ चंद्रमा अबभी उसके शान्त से अमावास्याके दिन अन्तर्द्धान होजाताहै और पूर्णमासी में प्रकट होकरभी मेघलेखासे आच्छादितशरीर दृष्टपड़ता है मेघकी समान वर्ण पानेसे उसका चंद्र लक्षण निर्मलहै स्थूलाशिरा महर्षिने सुमेरुपर्वतके पूर्व्वोत्तरकोणमें तपस्याकी तब उसकेशरीर को सुगन्धित मन्दचलनेवाली पवित्रवायुनेस्पर्शकिया इससेवहबहुत तृप्तहुए औरवायुकेबेगसे हिलायेहुये वृक्षोंने अपनेपुष्पों कीशोभा ऋषिको दिखाईतब उसने उनको शापदिया कि तुमसदैव फूलदेनेवाले नहींहोगे—पूर्व्व समय में नारायणजी संसारके आनन्दके लिये बड़वामुखनाम महर्षिहोगये थे उन्होंने मेरु पर्व्वतपर तपकरते हुएसमुद्रको बुलाया और समुद्रउनके बुलानेसे नहीं आयातब उन्होंने महाक्रोधयुक्तहोकर अपने संतप्तशरीर से समुद्रको अचल करदिया पसीने के समान जलको लवण सा करदिया और कहा कि पीनेके अयोग्यहोगा फिर बड़वानल अग्निसे सोखा हुआ तेरा जल मीठा होगा वह जल अब तक भी समीप रहनेवाली बड़वानल अग्निसे सोखाजाताहै रुद्रजी ने हिमालय पर्व्वतकी पुत्री कन्या रूप उमाकोचाहा और भृगुमहर्षिने भी हिमालयसे मिलकर कहा कि यह कन्या मुझेदो तब हिमालयने उनसेकहा कि रुद्रजीको इसका बर बिचार कियागया है फिरभृगुजीने उससेकहा कि मैं कन्याकांक्षी हूं और तैंने हमको निषेधकिया इसकारणसे तुमरत्नों के निवास स्थान रूपनहींहोगे वह ऋषिका बचन अबतक नियतहै ब्राह्मणोंका ऐसा २ माहात्म्यहै क्षत्रियोंके बंशभी ब्राह्मणोंकेही आशीर्बाद से सदैव और न्यूनाधिक रहित स्त्रीरूप पृथ्वीको पाकर भोगकरतेहैं, जोयह अग्निषोमीय नाम तेजब्राह्मण और क्षत्रियोंमें नियतहै उसीतेज से संसार धारण कियाजाता है इसीहेतुसे जगत् भी अग्निषोमीय कहाताहै सूर्य और चंद्रमा दोनों मेरे नेत्र कहेजातेहैं और उनकी किरणें मेरे बालहैं वह दोनों सूर्य्य चंद्रमा संसार को

जगाकर प्रसन्नकरतेहैं और संसार पृथक् २ उठताहै उनकेजतलाने और तप्त करनेसे संसार में आनन्दहोताहै हे पाण्डुनन्दन अग्निषोम के इनकर्मों सेमैं भी संसारका वरदाता ईश्वर और हृषीकेशहूं अर्थात् अग्नि और चन्द्रमा की किरणेंजिसके बालहोंउसीको हृषीकेशकहतेहैं, ६५ मैं आवागमनके संबंध से यज्ञोंमें भागकोलेताहूं और श्रेष्ठ वर्णमेरा हरित है इसीसे मेरानाम हरिविख्यात है, मैं बाधासे रहितजीवोंका आधार कहाताहूं इसीसे मुझेब्राह्मण लोग अमृतविचारते हैं और रतधामा कहतेहैं, पूर्वसमयमें मैंने रसातलमें गुप्त पृथ्वीको पाया इसी हेतुसे मुझे देवताओं के वचनोंसे गोविन्द नामसे वर्णनकरतेहैं और जोकलासे खालीब्रह्माण्डका बनानेवालाहूं इसी से शिपिविष्टमेरानामहै बड़े सावधान यास्क नामऋषि ने बहुतसे यज्ञों में मुझ को शिपिविष्ट नामसे वर्णनकिया इसीसे मैं इसगुप्तनाम का धारण करनेवाला हूं बड़े बुद्धिमान् यास्क ऋषिने शिपिविष्टनामसे मेरीस्तुतिको करके मेरीकृपासे पातालमें गुप्त हुएवेदको पाया, मैंने कभी न जन्मलियाहै न लूंगा और सबजीवोंका क्षेत्रज्ञ हूं इसीसे अज कहलाताहूं मैंने पूथमकभी स्वभाव के विरुद्ध किसीसे कठोर वचन नहीं कहे वह मेरी बाणीसरस्वती सत्यअविनाशी और वेदसे उत्पन्न है, हे कुन्तीनन्दन मैंने नाभिसे उत्पन्न होनेवाले बूह्मलोकमें पृथ्वी जलअग्नि रूपसत् और वायु आकाश रूप असत् अपनी आत्मामें पूवेशित किया इस कारण मुझको ऋषियोंने सत्यनामसे प्रसिद्ध कियाहै,मैं प्रथम शुद्ध सतोगुण से कभीनहीं गिरा उसी शुद्धसतोगुणको मेरी सृष्टि जानो हे अर्जुन जन्म में मेरी इच्छा शुद्धसतोगुणी और प्राचीन है मैं अनिच्छावान् सतोगुणी कर्मी निष्पाप ब्रह्मज्ञानियोंको ब्रह्मज्ञानसे दृष्टआताहूं इसहेतुसे मेरासात्वत नाम है अर्थात् पंचरात्रि आदिसे उत्पन्न होनेवालेज्ञानसे दर्शन देताहूं और हेअर्जुन लोहेकाकालरूप महलहोकर पृथ्वीको विजयकरताहूं उसीसे मेराशरीर कृष्ण है इस हेतुसे कृष्ण नामसे पुकाराजाताहूं मैंने इस पृथ्वीको जलोंसे संयुक्त किया आकाशको बायुसे वायुको अग्निसे संयुक्त कियाहै इस कारणसे मेरा नाम बैकुंठहै अर्थात् व नामवायु व अग्नि और मेघरूपजलका है और कुपृथ्वी और ठः आकाशको कहतेहैं इन सबशब्दोंसे मिलकर वैकुण्ठ शब्दबना है इस्से जो मह पुरुष इनसबको परस्परमें मिलाता है उसीको बैकुण्ठ बर्णन करतेहैं ७८ यहउत्तम धर्मनिर्वाण और परब्रह्मरूप कहाजाताहै मैं प्रथम,जिस बुद्धिके कारण कहींसे नहींगिरा इसीकर्मसे मेरा नाम अच्युतबोलते हैं, पृथ्वी और आकाश दोनों विश्वतो मुखहैं प्रसिद्ध हैं इनका साधारण अर्थ मेरा अधोक्षज होताहै अर्थात् अधनाम पृथ्वीकाहै क्षोनाम आकाशका है जो इनदोनोंको विजयकरता है उसका नामअधोक्षजहै, बेदज्ञलोगोंका यहबचन

है वह वेदशब्दार्थको विचारनेवाले पुरुष यज्ञशालाके मुख्यस्थानपर मुझको अधोक्षज नामसे गानकरतेहैं, अर्थात् ( अ ) काअर्थयह है कि जिसमेंसदैव लयहो और ( धोक्ष ) का अर्थ यह है कि जिस्से सबका पोषणहो और (ज) का अर्थयह है कि जिस्से सबकी उत्पत्तिहो यह अधोक्षजशब्दके अक्षरोंका अर्थहै इनको इकट्ठाकरके एक शब्दबनाकर महर्षियोंनेगाया है कभी प्रभु-नारायण के सिवाय दूसरा अधोक्षजनहीं होसक्ता है इसलोकमें मुझ अग्नि स्वरूपकी ज्वालाको घृतपदार्थ वृद्धिकाकरने वालाहै और जीवोंके भी प्राणों का धारण करनेवाला है इसहेतुसे सावधान वेदज्ञलोगोंने मुझ को घृताची नामसे प्रसिद्ध कियाहै, और जो कर्मोंसे उत्पन्न हुई तीनधातु बात पित्त कफ हैं इसका नामसंघातहै इन्हींतीनोंसे जीवमात्रधारण किये जातेहैं और इन्हीं के विनाशवान् होनेसे जीवोंका विनाशहोता है इस हेतुसे वैद्यलोग मुझको त्रिधात्वरूप वर्णन करते हैं हे भरतवंशी धर्मलोकों में भगवान् का नाम वृष नामसे प्रसिद्ध है नैष्ठिक पदों के अर्थमें मेरा वृषनाम उत्तमहै वृष, कपि,वराह, यहीश्रेष्ठ धर्म कहाजाताहै इसीहेतुसे कश्यप प्रजापतिने मुझको ( वृषाकपि ) वर्णन किया है, देवता और असुर कभी मेरे आदि मध्य अन्तको नहीं कह तेहैं इसहेतुसे आदि अन्त से रहित प्रजाका स्वामी लोकसाक्षी ( विभु ) नामसे प्रसिद्धमैंहीहूं, हे अर्जुनमैं इसलोकमें पवित्र और संशयात्मक वचनों को सुनताहूं और पापोंको नहीं सुनताहूं इस हेतुसे ( शुचिश्रवा ) नामसे प्रसिद्ध हूं, पूर्व समयमें मैंने आनन्द बढ़ानेवाला और एक सींग रखनेवाला वराहरूप होकर पृथ्वी को पाताल से ऊपर को उठाया इससे मुझको एकशृंग नामसे वर्णन करते हैं, और उसी वराहरूपमें नियत होकर मैं तीन ऊंचेकंधे आदि रखनेवाला हुआ तब शरीर के मापसे ( त्रिककुद ) यहमेरा नामहुआ वेदान्त विचार करनेवालोंने मुझको ( विरंचि ) वर्णन किया अर्थात् जो सब तत्त्वोंको अपने में लय करता है उसको विरंचि कहतेहैं वह प्रजापति मैंहीहूं जो परमात्माके द्वारा सबलोकोंका उत्पन्न करनेवालाहै, निश्चयको निश्चय करनेवाले सांख्यशास्त्रके आचार्योंने मुझीको कपिलनामसे कहाहै वही कपिल विद्यासंयुक्त सनातन पीतवर्ण सूर्य्य में नियतहैं, जो तेजस्वी वेदोंसे स्तुति कियाहुआहिरण्यगर्भ योगीलोगोंसे सदैव पूजाकियाजाताहै औरपृथ्वी में चतुर्मुख नामसे प्रसिद्धहै वहभी मैंहीहूं, जो वेदज्ञ पुरुषहैं वह मुझकोइकीस सहस्र संख्या युक्त ऋग्वेद और सहस्र शाखायुक्त सामवेद वर्णन करते हैं, वेदपाठी ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् में मुझको गाते हैं वह मेरेभक्त बहुत दुर्लभ हैं जिस यजुर्वेद में एकसौ एकशाखाहैं वह वेद और यजुर्वेदोक्त कर्म मैंहीहूं जोकि अध्वर्यु से संबंध युक्तहै, इसी प्रकार अथर्वण वेद जाननेवाले

ब्राह्मण मुझको अथर्वण वेद कल्पना करते हैं वह वेद पांच कल्प और कृत्याओं से संयुक्त है और जो कुछ शाखाओंके भेद हैं और शाखाओं में जो गीत स्वर वर्णोंसे अच्छी रीतिपूर्वक उच्चारण किये जाते हैं उन सबको मेराही बनायाहुआ जानो, हे अर्जुन जो वह अश्वशिरनाम बरदाता अवतार ब्रह्माजीको दर्शन देताहै वह मैंही संसार के उत्तरभाग में क्रम और अक्षरके विभागका जाननेवाला हूं १०० मेरेही कृपासे महात्मा पांचाल मुनि ने बामदेव ऋषिके उपदेश कियेहुये मार्गके द्वारा उस सनातनब्रह्मसे क्रमको पाया, और वाभ्रव्यगोत्री मुनिभी नारायणजीसे बर और उत्तम योगकोपाकर कर्म शास्त्र में सबसे विद्यावान् और शोभायमानहुए, और गालवऋषि कर्म और शिक्षाशास्त्रको निर्माण करके शोभायमानहुए और कण्डरीकवंशी महाप्रतापी राजा ब्रह्मदत्तने जन्म मरण से उत्पन्न दुःखों को बारबार स्मरण करके और सात जन्मोंमें से इस जन्म के उत्तम होने से योगियों के उत्तम ऐश्वर्य्य को प्राप्त किया हे अर्जुन मैं पूर्वकालमें किसी हेतुसे धर्मका पुत्र प्रसिद्धहुआ इसकारणसे मुझको धर्मज नामसे प्रसिद्ध करते हैं, और पूर्वहीकाल में गंधमादन पर्व्वत के ऊपर धर्म्मयान में सवार दोनों नरनारायण ने अविनाशी तपस्याकी, हे भरतवंशी उसी समयमें दक्ष प्रजापतिका यज्ञ हुआ वहां दक्ष ने रुद्रजी का भाग नहीं विचार किया, तिसपीछे रुद्रजी ने दधीचिऋषि के वचन से दक्ष के यज्ञको विध्वंस किया महाक्रोधित होकर बारम्बार त्रिशूल को छोड़ा, वह त्रिशूल दक्षके बड़े विस्तृत यज्ञको भस्मीभूत करके अकस्मात् वदर्य्याश्रम के समीप हम दोनों की ओरको आया, हे अर्जुन वह शूल बड़े बेगसे नारायणकी छातीपर गिरा तब नारायणजी के बाल उस शूल के तेज से भरेहुए मूजवर्ण होकर शोभायमानहुए इस हेतुसे मेरा नाम मुंजकेश भी है महात्माकी हुंकार से घुड़काहुआ और नारायणजी से घायल होकर वह शूल महादेवजीके हाथमें गया तदनन्तर शिवजी उन तप में भरेहुए ऋषियों के सन्मुख दौड़े, तब उस विश्वात्मा नारायण ने इस आकाशमार्ग से आने वाले रुद्रजी के कण्ठ को अपने हाथ से पकड़ा इसी कारण अर्थात् कृष्णवर्ण नारायणजी के स्पर्श करने से शिवजी नीलकण्ठ हुए, तदनन्तर रुद्रजी के नाश करने को नरने एकसींकको उठाया और शीघ्रही मंत्रों से संयुक्त किया तभी वह बड़ा भारी फरसा होगया तब अकस्मात् शिवजी के घुड़केहुए उस फरसे ने पराजय पाई उस फरसेके पराजय होनेसे मेरानाम कण्ठपरशु कहाया गया ( कण्ठपरशु नाम रुद्रजी का भी है कारण यहहै कि नारायण और रुद्र एकही आत्माहैं ) अर्जुनने प्रश्नकिया कि हे दुष्टसंहारी तीनोंलोकोंकी शांति करनेवाले वासुदेवजी इस महायुद्धके होनेपर किसने विजयको पाया इसको

मुझे समझाइये, श्रीभगवान् बोले कि उस युद्ध में उन रुद्र और नारायण को प्रवृत्त होनेपर अकस्मात् सबलोक भयभीत और व्याकुलहुए, यज्ञों में अग्नि ने अच्छी रीतिसे होमेहुए उज्ज्वल हव्यको नहीं ग्रहणकिया और वेद शुद्ध अन्तःकरण ऋषियों की याद से विस्मरणहुए, तब देवताओं में रजोगुण और तमोगुण प्रविष्ट हुआ पृथ्वी कम्पायमान हुई और आकाश भी हलने लगा, सब सूर्य आदि के तेज प्रभा रहित हुए और ब्रह्माजी भी आसन से उठ खड़े हुए, समुद्र सूखने लगे और हिमालय पर्व्वत फटगया, हे पाण्डुनन्दन इसी प्रकार से ऐसे उत्पातों के होने पर महात्मा ऋषियों समेत देवताओं के गण सहित ब्रह्माजी शीघ्रही उस देश में आये जहां युद्ध वर्त्तमान था तब उन वेदज्ञ ब्रह्माजी ने हाथ जोड़कर रुद्रजी से वचन कहा कि हे विश्वेश्वर शस्त्रों को रखकर लोक की वृद्धि के अर्थ लोकों के कल्याण रूप होजाओ, जो अविनाशी और गुप्त लोकों का ईश्वर पालनकर्त्ता उपाधि रहित अकेलाही संसार का स्वामी हर्ष शोक से जुदा है उसको अकर्त्ता जाना इससगुण रूपधारीकी यह शुभमूर्त्ति है जो कि धर्म कुल के प्रकाश करनेवाले नरनारायण नामसे दोनों प्रकटहुए, यह देवताओंमें श्रेष्ठ महाव्रती और तपोमूर्त्ति हैं मैंभी किसी हेतुसे इन्हींकी प्रसन्नतासे उत्पन्नहुआ हूं हे तात सनातन तुमभी पूर्व उत्पत्ति में इन्हींके क्रोधसे उत्पन्नहुएहो हे वर दाता तुम और सब देवता महर्षियों समेत इनको शीघ्र प्रसन्नकरो जिससे कि लोकों की शान्ति होय इसमें बिलम्ब न कीजिये क्रोधाग्निको छोड़तेहुए शिवजीने इसप्रकार ब्रह्माजीके बचन सुनकर प्रभु नारायण देवताको बहुत प्रसन्नकिया और उस श्रेष्ठ बरदाता प्रभु आदि पुरुषके शरणहुए इसके पीछे क्रोध और स्वभावके जीतनेवाले बरदायक देव देव प्रसन्नहुए और स्नेहपूर्व्वक रुद्रजी से मिले फिर ब्रह्मासमेत देवता और ऋषियोंने भी उनका पूजन किया तबउसदेव देव नारायणजीने शिवजीसे यहबचन कहा कि हे शिवजी जो तुमको जानता है वहमुझीको जानताहै और जो तुम्हारा भक्तहै वह मेराभक्त है हमारी तुम्हारी कुछ पृथक्ता नहीं है अर्थात् एकही रूपहैं आपकी बुद्धि कभी विपरीत नहो अब से लेकर यह मेरा श्रीवत्स तुम्हारे शूल से अंकित हुआ और मेरे हाथसे अंकित तुमभी श्रीकण्ठ होगे ३२ श्रीकृष्णजी बोले कि ऐसा कहकर उन दोनों नर नारायण ऋषिने इसप्रकार परस्परमें चिह्न अंकित करके शिवजी से बड़ी प्रीति भावकर देवताओंको बिदाकर सावधान होकर तपस्याको किया हे अर्जुन युद्धमें नारायणजीकी यह बिजय मैंने तुमसे कही है भरतवंशी गुप्त नाम और अनाम जोकि इसलोक में ऋषियों से वर्णन किये गये वह तेरे सन्मुख अच्छी रीतिसे वर्णन किये, हे कुन्तीनन्दन मैं इस रीतिसे इसलोक

ब्रह्मलोक और सनातन गोलोकमें बहुत प्रकारके रूपों से विचरताहूं युद्ध में मेरी रक्षामें होकर तुमनेभी बड़ीभारी विजयको पाया और युद्धके वर्त्तमान होनेपर जो वह पुरुषतेरे आगे चलताथा, उसको गंगाजलसे पूर्ण जटाधारी देवताओंका देवता रुद्र जानो वही रुद्र तेरे सन्मुख मेरे क्रोधसे उत्पन्न काल पुरुषथा जिन शत्रुओंको तैंने मारा है वह पहलेही से उनकालरूप रुद्रजी से मारेगयेथे तुम सावधान होकर उस अप्रमेय प्रभाव युक्त देवदेव उमापति विश्वेश्वर अविनाशी हरको नमस्कारकरो हे अर्जुन उसमेरे क्रोधजन्य तेजका अतुल प्रभावथा उसको तैंने बारम्बार सुनाहै १४० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिअष्टषष्टितमोऽध्यायः १६८ ॥

# एकसौ उनहत्तरका अध्याय ॥

शौनक ऋषि बोले कि हे सूतपुत्र आपने बहुत बड़ा आख्यान वर्णन किया इसको सुनकर हम सब मुनियोंने बड़ा आश्चर्य्य किया, सब आश्रमों में कर्म कर्त्ताहोना, सब तीर्थों में स्नानकरना ऐसा फल देनेवाला नहीं है जैसा कि नारायणजीकी कथासे फल मिलताहै हम इस नारायण जीकी पवित्र और पापमोचनी कथाको आदि से सुनकर निष्पापहुए, सब लोकों में पूज्य श्रीनारायण देवता ब्रह्माको आदि लेकर किसी देवता वा महर्षियोंसे विजय नहीं किये जासक्तेहैं, हे सूतनन्दन नारदजी ने जो उस देवता नारायण हरि को देखा वह निश्चय करके उन्हींकी इच्छाथी, जो नारदजीने उस जगन्नाथ अनिरुद्ध देहमें नियत प्रभुको वहां आकर देखा इसका हेतु आप हमसे वर्णन कीजिये, सूतजी बोले कि हेशौनक राजा जनमेजयने अपने यज्ञ प्रारम्भहोनेके समय अपने पिताके भी प्रपितामह व्यासजीसे पूछा कि श्वेतद्वीपसे लौटकर आने वाले और भगवत् बचन के ध्यान करनेवाले देवऋषि नारद जीने फिर कौनसा कर्म किया, और बदर्य्याश्रममें आकर उननरनारायण ऋषिसे मिल कर कितने समय तक वहां निवास किया और कौन २ कथाको भगवान् से पूछा, एकलाख श्लोक युक्त महाभारथसे बुद्धिरूप मथनी के द्वारा इसज्ञानरूप उत्तम समुद्रको मथकर जैसे दहीसे मक्खन, मलयाचलसे चन्दन और वेदों से आरण्यक उपनिषद् और औषधियोंसे अमृत निकाला जाता है उसीप्रकारसे हेतपोधनजी यह कथारूप अमृत आपने निकालाहै, हे विप्रेन्द्र वह षड़ैश्वर्य्य युक्तदेवता आदि जीवमात्रोंको आत्मारूपसे पोषण करनेवालाहै उननारायण जी का तेज बड़ी कठिनतासे दृष्ट आनेवाला है कल्पके अंतमें ब्रह्माआदि देवता ऋषि गंधर्व और सब जड़ चैतन्य जिसमें प्रवेश करते हैं, मैं मानताहूं कि इस लोक और परलोक दोनोंमें उससे अधिक सबका पवित्रकरनेवाला

कोई नहीं है सब आश्रमोंका वास और तीर्थोंमें स्नान ऐसा फलदायक नहीं है जैसी नारायणजी की कथा फलदायी होती है यहां हम सब पापमोचनी नारायण और विश्वेश्वरजी की इस कथाको प्रारंभ से सुनकर सब दशामें पवित्रहैं उस कथामें मेरे बाबा अर्जुनने जो कर्म किये वह अपूर्व और अद्भुत हैं, १८ वासुदेवजी को साथ रखनेवाले जिस अर्जुनने विजय को पाया मैं जानताहूंकि तीनोंलोकमेंभी उसको दुःप्राप्य वस्तुकोईनहींहै वह तीनों लोकके स्वामी जैसेहैं और जिसप्रकारसे वह अर्जुन के सहायक हुए वह सब मेरे वृद्ध प्रशंसाके योग्यहैं, दुष्टसंहारी श्रीकृष्णजी जिनके हित और कल्याण के निमित्तकर्मकर्त्ता हुए वह लोक पूजित भगवान् तपके द्वाराअच्छी रीतिसे दर्शन देनवाले हैं उन्होंने जिस श्रीवत्स चिह्न से अलंकृत विष्णुजीको अपने नेत्रों से देखा उनसे अधिक प्रशंसाके योग्य ब्रह्माजी के पुत्र श्रीनारदजी हैं, मैं मोक्षके अधिकारसे न गिरनेवाले नारदऋषिको थोड़े तेजवाला नहीं जानता हूं जिसने श्वेतद्वीप में जाकर आप साक्षात् नारायण जीका दर्शन पाया, प्रत्यक्षहै कि देवता की कृपासे उसको वहदर्शन हुआ जो अनिरुद्ध देहमें नियत गुप्तरूपथा हे मुनि फिर नारदजी नरनारायणजी का दर्शन करने के लिये बदर्य्याश्रम में गये इसका क्या कारण है, श्वेतद्वीप से लौटे हुए ब्रह्माके पुत्र नारदजी बदर्य्याश्रम को पाकर उन दोनों नरनारायण ऋषियोंसे मिलकर कितनेसमयतक वहां स्थिररहे और कौन२सी बातें उनसे पूछीं औरवहांसे चलने के समय नरनारायणजीने क्या२नारदजीसे कहा इनसब बातोंकोकृपा करके मुझ से कहिये, वैशंपायन बोले कि उसबड़े तेजस्वी भगवान् व्यासजी को मैं नमस्कार करताहूं जिनकी कृपासे नारायणजीकी इसकथाको कहताहूं, हेराजानारदजी श्वेतद्वीपमें प्राप्तहोके उस अविनाशी हरिका दर्शनकरके लौटे और बड़ी शीघ्रतासे मेरुपर्व्वतपर आये और परमात्मानारायणने जोउनसेकहा था उसबोझेको हृदयमेंधारणकरके जब यहां आये तब उनके चित्तमें यहबड़ा भयउत्पन्न हुआ कि मैं इतनीदूर जाकर फिर यहां आयाहूं फिर मेरुपर्व्वतसे गंधमादन पर्व्वत में आये फिर शीघ्रही आकाश से बड़ेभारी बदर्य्याश्रम के पासगिरे वहां पुराणपुरुष ऋषियों में श्रेष्ठ नर नारायणको देखा, बड़े तपस्वी आत्मनिष्ठ महाव्रती सबलोक के प्यारे होकर सूर्य्य के समान तेजधारी श्रीवत्सचिह्न और जटामंडल युक्त हंसचिह्निनी भुजाओंसे शोभित चक्रों से चिह्नित चरण बड़ावक्षस्स्थललंबी २ चार भुजाधारी साठदांत आठदाढ़रखनेवाले मेघोंकेसमान शब्दायमान सुंदर और बड़ा मुखललाट भृकुटी ठोड़ीनाक आदिसे शोभित उनदोनों देवताओं के शिरच्छत्र के समानथे इसप्रकार के लक्षणों से भरे महापुरुषनाम उनदोनों को देखकर नारदजी दोनों से पूजित

जगत्का स्वामी देवता आठ अंगुल ऊंचीवेदी को पृथ्वीपर बनाकर ऊर्द्ध्वबाहु पूर्वाभिमुख एकचरण से नियत था अंगों से युक्त वेदों को पढ़तेहुए देवता ने महाकष्ट से करने के योग्य तपको तपाहै वहां आप पशुपति शिवजी ब्रह्माजी समेत सब देवता ऋषि महर्षि किन्नर गंधर्व उरग दैत्य दानवराक्षसअप्सराओंसमेत सदैव जिसबुद्धि युक्तहोकर हव्य कव्यको भेटकरते हैं वह सबउस देवताके चरणों के समीप वर्त्तमानथा,व्यभिचार रहित बुद्धिकेस्वामी देवता उस भक्तिसे दियेहुए सबपदार्थों को शिरसे अंगीकार करता है महात्मा ज्ञानी भक्तोंकेसिवाय दूसरा उसका प्यारा तीनोंलोकमें कोई नहीं है इसीहेतुसे वह उनकी भक्तिमें नियत है, उस परमात्मासे बिदाहोकर मैं यहां आयाहूं और जो कि उस आप परमेश्वरने वर्णनकियाहै इससे मैं उसीमें मनको लगाकर सदैव तुम दोनोंके पास निवास करूंगा ६४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिएकोनसप्ततितमोऽध्यायः १६९ ॥

# एकसौ सत्तरका अध्याय ॥

नरनारायण बोले कि तुम प्रशंसाके योग्य और कृपापात्रहौ तुमने साक्षात् प्रभुका दर्शन किया उसको किसी ने किन्तु ब्रह्माजीने भी नहीं देखाहै, हे नारद वह पुरुषोत्तम कठिनतासे दर्शन देनेवाला षड़ैश्वर्य्यका स्वामी और अव्यक्तका उत्पत्ति स्थानहै यहहमारा बचनसत्यही है, लोकमें व्यक्तसे अधिक उसका प्यारा कोई नहीं है हेउत्तम ब्राह्मण इसीहेतुसे उसने आप अपने रूपका दर्शनदिया, उसतपकरनेवाले परमात्माका जोनिवासस्थानहै उसको हमदोनों के सिवाय कोई प्राप्तनहीं करसक्ता है, जो कि उसका प्रकाश हजार सूर्य्य के समानहो इसीकारण उसी बिराजमानही के प्रतापसे इस स्थानका भी वही प्रकाश होताहै, हे ब्राह्मण उस विश्व के स्वामी देवताके देवतासेही शान्ति उत्पन्न होतीहै हे शांतोंमें श्रेष्ठ इसशांति से पृथ्वी संयुक्त होतीहै उस जीवोंके हितकारी देवतासे रसउत्पन्न होताहै उसी से जल संयुक्त होते हैं और नाशको प्राप्तहोतेहैं, उसीसे रूपगुण रखनेवाला तेज होताहै सूर्य्यभी उसीसे युक्तहोकर लोकों में प्रकाश करता है, उसी पुरुषोत्तम देवता से स्पर्श और स्पर्शसे वायु उत्पन्न होकर लोकोंमें चेष्टाकरताहै, सब लोकोंके ईश्वरसे शब्दहुआ शब्द से आकाशहोकर सर्वत्र व्याप्त होताहै, उसीसे मनहुआ जिससे संयुक्तहोकर चन्द्रमा प्रकाशरूप धारण करताहै वह वेदनाम स्थान सब भूतोंका उत्पन्न करनेवाला है जहां ब्रह्मज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले हव्य कव्य के भोक्ता भगवान् बिराजते हैं हे ब्राह्मण श्रेष्ठ लोकमें जोपुरुष शुद्ध और पुण्यसे पृथक् हैं उन चलनेवालोंका मार्ग मंगलोंसे भराहुआ है १२ सबलोकों में अन्धकारका दूर

होकर प्रसन्न हुए मार्गकी कुशल क्षेमादिक पूछकर मनके आनंद को पूछा, उनदोनों पुरुषोत्तमों को देखकर नारदजीके अंतःकरण में यह विचार उत्पन्न हुआकि उसश्वेतद्वीपीय भगवत्की सभा में वर्त्तमान सब जीवों से पूज्य जो पुरुष मैंने देखे वैसेही यह दोनों ऋषिमनको प्यारे मालूम होतेहैं वह नारद जी मनसे अच्छी तरह ऐसाविचार के प्रदक्षिणा कर सुंदर उत्तम कुशासनपर बैठगये, तिसपीछेतपयश और तेजों के निवासस्थान वाह्याभ्यंतर से शुद्ध चित्त सावधान दोनों ऋषियों ने पूर्वाह्न कालकी संध्या आदि क्रिया क-रके पाद्य अर्घ्य से नारदजी का पूजन किया जब संध्या पूजन आरती आदि कर्मों से निवृत्त होकर अपने २ आसनोंपर वह दोनों नरनारायण जी बैठगये और उनके बैठनेसे वह देशचारों ओरसे ऐसा शोभायमान हुआ जैसे कि घृतसे होमीहुई अग्निके तेजसे यज्ञ की शोभा होजातीहै तब नारा यणजी ने नारदजी से यह वचन कहा कि हे नारदजी आपने हम दोनों के उत्पत्ति स्थान सबसे श्रेष्ठ परमात्मा भगवान् को भी श्वेतद्वीप में जाकर देखा है ४५ नारदजी बोले कि मैंने वह विश्वरूपधारी अविनाशी श्रीमान् पुरुष देखाहै उस देवतामें सब ब्रह्मर्षियों समेत देवता नियत थें अब भी तुम दोनों सनातनपुरुषों को देखताहुआ भी मैं उनको देखता हूं वह गुप्त रूप धारी हरि जिन २ लक्षणों से युक्तहै वैसेही लक्षण तुम दोनों प्रत्यक्षरूप धारियों में भी मुझे दिखाईदेते हैं वहां उस देवता में तुम दोनों को भी उसके पार्श्व भागमें देखा है, अब मैं परमात्मा से बिदा होकर यहां आयाहूं प्रत्यक्ष है कि तीनों लोक में तुम दोनों धर्मपुत्रके सिवाय तेज यश और लक्ष्मी में उसके समान दूसरा कोई नहीं है उसने क्षेत्रज्ञ सम्बन्धी सम्पूर्ण धर्म्म मुझ से वर्णन किये और अपने वह अवतार भी कहे जो यहां होनेवाले हैं वहां जो सतोगुण प्र-धान श्वेत पुरुष पांचों इन्द्रियों से रहित थे वह सब उस पुरुषोत्तम के ज्ञानी भक्त हैं वह सदैव उस देवता को पूजते हैं और वह भी उन्हीं के साथ क्रीड़ा करता है, वह भगवान् परमात्मा भक्तों का प्यारा और ब्रह्मण्य देवहै वह ऐसा भगवद्भक्तों का प्रियतम सदैव उनसे पूजित और क्रीड़ायुक्त है, वही सर्व्व-व्यापी विश्व का स्वामी माधव भक्तवत्सल कार्य कारण रूप है और बड़े तेज बल का धारण करनेवाला है और बड़ा यशस्वी तप युक्त आत्मा को धारण करके उत्पत्ति कारण और आज्ञाप्रधान तत्वरूपहै वहश्वेतद्वीपसे भी अतिउ-त्तमहै वह अपने प्रकाशही से तेजरूप प्रसिद्ध है उसशुद्धआत्मा से तीनों लोकमें वह शांति नियतहुईहै कि मैंभी इस शुभबुद्धि से नैष्ठिकव्रत में नियत हुआहूं वहां न तो सूर्य्यउदय होता है न चंद्रमा प्रकाश करताहै और दुःख से करनेके योग्य तपमें देवेश्वर के नियत होनेपर वायु भी नहीं चलती है वह

भी उत्पन्न किया मैं पहले कल्पित होनेवाला पुत्र उसके संकल्पसे मिलाहुआ हूं, हे साधो मैं तान्त्रिक पूजनादिकोंमें पितरोंको पूजताहूं इसप्रकार से कि वही भगवान् माता पिता रूपहै, इसीरीतिसे वह जगत्पति सदैव पितृ यज्ञोंमें में पूजाजाताहै और दूसरी देवी सरस्वती भी है कि पिताओंने पुत्रोंको पूजा है अर्थात् वेदकी श्रुति जब प्रनष्ट होगई हैं तब पुत्रोंने पिताओं को पढ़ाया इसीकारण उनमन्त्र देनेवाले पुत्रोंने पित्राधिकार पाया,निश्चयहै कि तुम दोनों शुद्ध अन्तःकरणवालों को भी यह वृत्तान्त देवताओं से विदित हुआ होगा कि पिता पुत्रों ने परस्पर में एकने एककी प्रतिष्ठाकी प्रथम पृथ्वी पर कुशाओंको बिछाकर उसपर पितरोंके स्थानमें पिण्डों को धरके पूजनकिया पूर्व्व समय में उन पितरोंने किसी प्रकारसे पिण्डनामको पाया, नरनारायण बोले कि पूर्व्वकाल में गोविन्दजी ने बाराहरूप धारण करके सागररूप मेख-लाधारी इस पृथ्वी को शीघ्रता से ऊपरको उठाया और उसको यथावस्थित स्थानमें नियत करके जलकीचसे भरे संसारके कार्य्य में उद्योग युक्त शरीर वाले प्रभुने मध्याह्नके समय सन्ध्याकाल होनेपर दाढ़ में लगेहुये तीनपि-ण्डों को अकस्मात् बाहर निकालकर पृथ्वीपर कुशाओंको बिछाकर पृथ्वी में उन पिण्डों को स्थापित किया फिर उन पिण्डोंमें अपने स्वरूपको नियतक-रके बुद्धिके अनुसार उसने पितृकर्म किया, प्रभुने अपनी बुद्धिसे तीनोंपिंडों को संकल्प करके अपने शरीरकी ऊष्मा से उत्पन्नहुए घृत और तिलसे युक्त करके पूर्व्वाभिमुखहो पिण्डोंका दान किया,फिर मर्य्यादा नियत करनेकेलिये यह बचन कहा कि मैं संसारका स्वामी होकर आप पितरों के उत्पन्न करनेको प्रवृत्तहुआ हूं मेरे ध्यान करने से पितृकार्य्य की उत्तम रीति प्राप्त होती है, यह पिण्ड डाढ़ोंसे निकले और दक्षिण में पृथ्वीपर नियतहुये हैं इसहेतु से अब यह पितरहैं, यह तीनों पितर रूप रहित हैं और मुझ से मिलेहुए यह सनातन पितर पिण्डरूपधारीहों, इन तीनों पिण्डोंमें नियत मैंहीं पिता, पितामह,प्रपि तामह नामसे जानने के योग्यहूं, मुझसे अधिक कोई नहीं है न कोई दूसरा मुझसे अन्य पूजनके योग्य है, लोकमें मेरा पिताभी कोई नहीं है अर्थात् मैं हीं पितामह ब्रह्माका भी पिता हूं मैंहीं सबका कारण हूं वह देवदेव बाराहजी इतना बचन कहकर और बराह पर्व्वतपर विस्तारयुक्त पिण्डों को दे अपने आत्माका पूजनकरके उसी स्थान में अंतर्द्धान होगये हे ब्राह्मण उसीकी यह मर्यादाहै कि पिण्डनाम पितर सदैव पूजाको प्राप्त करतेहैं जैसा कि बाराहजी का बचन है, जो पुरुष मन वाणी, कर्म से देवता, पितर, गुरू, अतिथि गौ ब्राह्मण और पृथ्वी माताको पूजन करते हैं वह विष्णु भगवानही को पूजते हैं क्योंकि वह षडैश्वर्य्य का स्वामी सब जीवोंके शरीर में वर्त्तमान उनदेवता

करनेवाला सूर्य्यही द्वाररूप कहाजाताहै सूर्य्य से सुखाये हुए सब अंग कभी किसीके दृष्ट न आनेवाले परमाणु रूपहोकर उसदेवतामें प्रवेश करते हैं और उससेभी छूटकर अनिरुद्ध शरीरमें नियत होते हैं, फिर मनरूप होकर उकार अर्थवाले सूत्रात्मा प्रद्युम्न नाम चित्तमें प्रवेश करतेहैं और प्रद्युम्नसे भी निकलकर संकर्षण नाम जीवमें प्रवेश होते हैं, वह सांख्यमतवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण भगवत् भक्तोंके साथ संकर्षण में प्रवेश करते हैं तदनन्तर वह तीनों गुणोंसे रहित उत्तम ब्राह्मण उस क्षेत्रज्ञ निर्गुण परमात्मा में शीघ्रही प्रवेश करते हैं उसको सबका निवासस्थान क्षत्रज्ञ और बासुदेव नाम मुख्यतासे जानो नियम व्रतधारी अच्छे सावधान चित्त जितेन्द्री बिचार रहित भक्तिमें प्रवृत्त पुरुष बासुदेवजी में प्रवेश करतेहैं, हे ब्राह्मणवर्य्य हम दोनों भी धर्म देवताके घरमें उत्पन्न हुए और रमणीक बद्रिकाश्रम में नियत होकर उग्रतप में नियत हुए, उसी देवताके अवतार जो सब देवताओं के प्यारे तीनों लोकमें नियत होंगे उनका कल्याणहो और हे ब्राह्मण पूर्व्व समयमें अपनी बुद्धिसे युक्त और सब कृच्छ्रनाम उत्तम व्रतमें नियत हम दोनोंने तुमको बहुत पूछाथा कि हे तपोधन तुम श्वेतद्वीपमें भगवान् से अपने संकल्पके समान मिले, जो तीनों लोकोंमें जड़ चैतन्यों समेत हम सबको जानते हैं और तीनों काल के शुभाशुभ कोभी अच्छी रीतिसे जानते हैं, वैशम्पायन बोले कि नारदजी उनदोनों के इसबचनको सुनकर उग्रतपमें प्रवृत्त हुए नारायणके चाहनेवाले नारदजी ने हाथ जोड़कर नरनारायणाश्रम में दिव्य हजार बर्षतक नारायण से पाये हुए अनेक मंत्रोंका बुद्धिके अनुसार जपकिया, और उसी देवता को इन दोनों नरनारायण समेत पूजते हुए नियत हुए २७॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिसप्ततितमोऽध्यायः १७०॥

# एकसौइकहत्तरका अध्याय॥

बैशम्पायन बोले कि किसी समयपर ब्रह्माजीके पुत्र नारदजी न्यायके अनुसार देवकर्मको करके पितृकर्म में प्रवृत्त हुए तबधर्मके बड़े बेटे नारायणजीने नारदजीसे यह बचन कहा कि हे द्विजवर्य्य यहां दैव और पितृकर्म के कल्पित होनेपर तुम किसको पूजनकरतेहो, हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ यहकौन कर्म किया जाताहै और इसका फल क्याहै इसको शास्त्रके अनुसार मुझसे बर्णन करो, नारदजी बोले कि प्रथम तुमसे यहबर्णन कियागया है कि दैवकर्म करना चाहिये वह यज्ञपुरुष सनातन परमात्मा देवता उत्तमहै इसीकारण उससे पालन कियाहुआ मैं सदैव उस अविनाशीकी पूजाकरताहूं—पूर्व समय में उसी से पितामह ब्रह्माजीभी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीने प्रसन्नहोकर मेरे पिताको

आदिके भी शरीरमें नियतहै वह हर्ष शोक रहित सब जीवों में समान वृद्धम-हात्मा सबका आत्मा नारायणहै ऐसा शिष्ठलोगोंसे सुनते हैं १८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिएकसप्ततितमोऽध्यायः १७१ ॥

# एकसौ बहत्तरका अध्याय ॥

बैशंपायनबोले कि नारायणजीके कहे हुए इस बचन को सुनकर बड़े देव भक्त नारदजी अनिच्छा भक्तिमें प्रवृत्त हुए, हजार वर्ष तक नरनारायणजी के आश्रम में निवास करके भगवत् आख्यान को सुनकर अविनाशी हरि को दर्शनकर, शीघ्रही हिमालय पर्वत पर गये जहां कि उनका निजआश्रम था और प्रसिद्ध तपयुक्त उन नरनारायणने भी, उसी रमणीक आश्रममें श्रेष्ठ तपको तपा और पांडुके बंश में महाविजय पानेवाले तुमभी अब इस कथा को आदि से सुनकर पवित्रात्मा होगये हे राजेंद्र उनका यहलोक परलोक दोनों नहीं हैं जो पुरुष मन बाणी और कर्म से विष्णुजी से शत्रुता करते हैं ऐसे पुरुषों के पितरलोग भी हजारों वर्षतक नरकमें पड़ते हैं जो पुरुष देवता-ओंमें श्रेष्ठ देवदेव नारायण हरि से बिरोध या अहंकार करे उसको ध्यान से बिचारकरना योग्यहै कि सृष्टिका आत्मा कैसे शत्रुता करने योग्यहै, हे पुरुषो त्तम विष्णुही सबका आत्मा जाननायोग्यहै जोहमारे गुरु व्यासजी हैं,जिन से यह श्रेष्ठ और पूरण इतिहास और माहात्म्य मैंने सुनाहै हेनिष्पापजनमे जय यह मैंने उन्हींकी कृपासे तुमसे वर्णन कियाहै, हेतात नारदजीने साक्षात् नारायणजीसे पाया इसीसे यहबड़ाधर्महै वह धर्म पूर्व्वमें हरिगीताकेमध्य तुम से कहाहै, हेराजा तुम कृष्ण द्वैपायन व्यासजीको भी नारायणही जानो इन के सिवाय दूसरा कौनहै जो महाभारतको बनाता और उनके सिवाय कौन नानाप्रकारके धर्मोंको वर्णन करता तैंने बड़ा संकल्प जैसा किया है उसी के समान तेरायज्ञ वर्त्तमानहो तुम अश्वमेधका संकल्प करनेवाले और मुख्यता से धर्मके सुननेवाले हो सूतजी बोले कि उसउत्तम राजाने इस बड़े आख्यान को सुनकर फिर यज्ञ समाप्ति के लिये सब क्रियाओं को प्रारंभ किया, मैंने जो यह नारायणजी का इतिहास तुम से कहा उसी को पूर्व्व समय में नै-मिषारण्यबासी शौनक आदि ऋषियों में बैठेहुए नारदजी ने बृहस्पति जी से कहा उससमय सब ऋषि पांडव भीष्म और श्रीकृष्णने भी श्रवणकिया वही विश्वंभर धराधारी श्रुति नम्रता बुद्धि शांति के घर यम नियम में पूर्ण देवताओंका हितकारी असुर संहारी तप यश का पात्र मधुकैटभ का मारने वाला धर्मज्ञ सतयुगी पुरुषों को गति और निर्भयता का देनेवाला यज्ञभाग लेनेवाला नारायण हरिमहर्षि व्यासजी समेत तेरीगति और रक्षाका आश्रय

हो, त्रिगुणात्मक निर्गुण चतुर्मूर्त्ति वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्धनामसे प्रसिद्ध इष्टापूर्त्ति के फल और भागका हरनेवाला अजित नारायण श्रेष्ठ कर्मी ऋषियों की कैवल्यादि गतिको सदैव देतारहै, उस लोकसाक्षी अजन्मा सूर्य्यवर्ण लयस्थान पुराण पुरुष को एकाग्रचित्तसे ध्यान और नमस्कारकरो जिसको कि शेष शायी भगवान् वासुदेवजी नमस्कार करतेहैं वही अव्यक्त आदिका उत्पन्नकर्त्ता मोक्षका सूक्ष्मस्थान अचल आवागमन रहित सर्वात्मा रूप है हे उदार वह वासुदेव सनातन सांख्य और योगके ज्ञाता चित्तके निरोधी ध्यान करनेवाले पुरुषोंसे दर्शन के योग्यहैं २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे शतापरिद्विसप्ततितमोऽध्यायः १७२ ॥

# एकसौ तिहत्तरका अध्याय ॥

शौनकऋषिबोले कि उस भगवत् परमात्माका महात्म्य हमने सुना और धर्मके घरमें नारायणजी का जन्म होनाभीसुना, और महा बराहजीके उत्पन्न कियेहुए पिंडोंकी प्राचीन उत्पत्ति भी सुनी और प्रवृत्ति निवृत्ति धर्मोंकी कल्पना जैसे करी उसकोभी आपके मुखसे हमने श्रवणकिया, परंतु हे ब्रह्मन् जो आपने कहा कि हव्य भोगनेवाले विष्णुजीका अवतार अश्वशिर अर्थात् हयग्रीव पूर्व्वोत्तरकोणमें महासमुद्रके समीपहुआथा जिसे परमेष्ठी ब्रह्मा जी ने देखा सो हे परमबुद्धिमान् उसको लोकके स्वामी नारायणने प्रथमही क्यों उत्पन्न किया क्या महा पुरुषोंकारूप और प्रभाव अपूर्व्व होताहै हे मुनि प्रभु ब्रह्माजीने उसदेवदेव अपूर्व्वरूप पवित्रात्मा बड़े तेजस्वी हयग्रीव परमात्मा को देखकर क्या किया ६ हे बुद्धिमान् ब्राह्मण इस हमारे प्राचीन ज्ञानसे विचार किये हुए संदेहको वर्णनकीजिये, हे पवित्रकथा कहनेवाले आपकी कृपा से हम पवित्रहुए हैं, सूतजी बोले कि मैं वेदके समान सबपुराणों को तुमसे वर्णन करताहूं जिसको भगवान् व्यासजीने राजा जन्मेजयके सन्मुख वर्णन किया है, हयग्रीव नाम विष्णुकी मूर्त्तिको सुनकर सन्देह करनेवाले राजाने यह बचन कहा कि हे बड़े धर्मज्ञ ब्रह्माजीने जो उस अश्वशिरधारी देवताके दर्शन किये उस अवतारका कारण मुझसे वर्णन कीजिये, वैशंपायन बोले कि हे राजा निश्चय करके इसलोकमें जो जीवधारी हैं वह सब ईश्वरके संकल्परूप पंचतत्त्वों से मिश्रित हैं, जगत् का उत्पन्न करनेवाला ईश्वर प्रभु विराट् नारायण जीवोंका अंतरात्मा बरदाता सगुण और निर्गुण भी है, हे राजा तत्त्वोंकी महाप्रलयको कहताहूं कि पूर्वसमय में एकसमुद्ररूप जलमें पृथ्वी के लयहोने और जलके अग्निरूप होने और वायु में अग्नि के लीनहोने और आकाश में वायु के लीनहोने और इसीप्रकार मनमें

आकाश महत्तत्त्वों में मन, अव्यक्त में महत्तत्त्व, पुरुष में अव्यक्त और श्री वासुदेवजी में पुरुष के लय होनेपर, सब संसार अंधकार रूप होगया अर्थात् निज विज्ञान गुप्त होगया और कुछ नहीं रहा उस अंधकार से जिसका मूल शुद्ध ब्रह्महै अर्थात् जैसे कि रस्सीमें सर्पकल्पित हुआ उसीप्रकार ब्रह्ममें अंधकार कल्पित है उस अंधकार से जगत्का कारण ब्रह्म उत्पन्न हुआ, वहनाम रूप धारी बिराट् देहमें नियतथा वही अनिरुद्धनामसे प्रसिद्ध हुआ उसी को प्रधान कहते हैं, हे राजा उसीको त्रिगुणात्मक अव्यक्त जानना योग्यहै निर्बिशेष चिन्मात्राकार चित्त वृत्ती से संयुक्त निद्रायोग को प्राप्त देवता विष्वक्सेन प्रभुहरिने निर्बिशेष ब्रह्ममें शयन किया अर्थात् लयताको पाया उसी चैतन्यने जगत् की उत्पत्ति को जो कि अपूर्व अद्भुत गुणोंसे प्रकटहोने वाली है ध्यान किया, जगत्की उत्पत्ति को बिचारते हुए उसदेवताके निजगुणको महत्तत्त्व कहते हैं उस महत्तत्त्व से अहंकार उत्पन्न हुआ, तब वह चतुर्मुख सबलोकों के पितामह ब्रह्माकमललोचन भगवान् हिरण्यगर्भ कमलरूप ब्रह्माण्ड में अनिरुद्धसे उत्पन्न हुए, वह तेजस्वी सनातन ब्रह्मा हजार पत्तेवाले कमल पर बैठे और अद्भुतरूपवाले प्रभुने जलरूप लोकों को देखा, तदनन्तर जीव समूहोंको उत्पन्न करते हुए वह ब्रह्माजी सतोगुण में नियत हुए सूर्य्यकी किरण के समान प्रकाशमान कमलपत्र रूप ब्रह्माण्ड के मुख्य स्थान में नारायणजी से उत्पन्न श्रेष्ठ गुण सम्पन्न दो जलकणथे उस आदि अंत रहित षड़ैश्वर्य्य के स्वामी ब्रह्मभाव से पूर्ण ने उन दोनों जल कणोंको देखा उनमें एकजलकण तो सुंदर प्रभावयुक्त मधुर आम के वर्णकी समानथा तब नारायण की आज्ञा से वह जलकण तामसी मधुनाम दैत्यहोकर उत्पन्न हुआ, दूसराकण कठोर था वह राजसी कण कैटभनाम दैत्यहुआ तमोगुण रजोगुण यह दोनों श्रेष्ठ असुर बड़ेबली गदा हाथ में लिये कमलकी नाल में चलते हुए सन्मुख में दौड़े और कमलपर बैठे बड़े प्रकाशमान आदि में सुंदर रूपधारी चारों वेद के प्रकट करनेवाले ब्रह्माको बैठा देखकर उन स्वरूपवान् असुरों ने वेदों को देखके ब्रह्माजी के देखते हुए अकस्मात् वेदों को पकड़ लिया और दोनोंने वेदों को लेकर उस जल से पूर्ण समुद्र में प्रवेश किया फिर वेदों के हरेजाने पर ब्रह्माजी को मूर्च्छा हुई इसी कारण वेदों से रहित होकर ईश्वरसे यह बचन कहा कि यह वेदही मेरेउत्तम चक्षु हैं वेदही मेरा परमबल परमधाम अर्थात् उत्तम तेजहैं वेदही मेरा परमब्रह्म है यहां वह मेरेसब वेद दानवों ने बल से हरलिये वेदों से रहित होकर मेरेलोक सब अंधकार युक्त होगये मैं बिना वेदों के लोकों की उत्तम सृष्टिको कैसेकरूं वेदों के जाते रहनेसे बड़ा दुःख मुझको प्राप्तहुआ यह शोच मेरेहृदय को पीड़ा देताहै अब शोकसमुद्रमें डूबेहुए मुझ

को कौन यहां से छुटावे और गुप्तहुए वेदोंको लावे, मैं किसका प्याराहूं हे राजेन्द्र इस प्रकारसे कहनेवाले ब्रह्माकी बुद्धि हरिके स्तोत्र वर्णन करने को प्रकटहुई तदनन्तर ब्रह्माजी ने हाथ जोड़कर इस उत्तम स्तोत्रको वर्णन किया, ब्रह्माजी बोले कि हे ब्रह्म हृदय मुझ से प्रथम उत्पन्न होनेवाले लोकके आदि सब भूतों में श्रेष्ठ सांख्य योग के भंडार व्यक्त अव्यक्तके उत्पादक बुद्धिसे परे मोक्षमार्ग में नियत तुम्हारे अर्थ नमस्कार है हे विश्वभोक्ता जीवात्माओं के अंतरात्मा योनिसे उत्पन्न होनेवाले लोक प्रकाशक मैं तुम्ही स्वयंभूसे प्रसन्नता पूर्वक उत्पन्न होनेवालाहूं तुमसेही मेरा प्रथम जन्म ब्राह्मणों से पूजितमानस नाम है और दूसरा जन्म प्राचीन चाक्षुष नाम हुआ और आपही की कृपा से मेरा तीसरा जन्म वाचकनाम हुआ मेराचौथा जन्म श्रवणजनामभी तुम्हीं से हुआ और मानसी मेरा पांचवां नाम जन्मभी तुम्हीं से है छठा जन्म अंडज सातवां पद्मजभी तुमसेही उत्पन्न हुआहै हे त्रिगुणसे रहित प्रभु मैं प्रत्येक उत्पत्ति में आपही का पुत्रहूं, हे कमललोचन मैं शुद्ध सतोगुण से कल्पित आपका प्रथम पुत्रहूं तुम मुझ ब्रह्माके ईश्वर स्वभाव और कर्म बंधनहो, वेद रूप नेत्र रखनेवाला कालका बिजय करनेवाला मैं आपकाही पैदा किया हूं वहमेरे नेत्ररूप वेदहरेगये मैं उनके बिना अंधाहोगयाहूं आप चैतन्य हूजिये, मेरे नेत्रों को दो मैं आपका प्याराहूं और तुम मेरे प्यारेहो इस प्रकार ब्रह्मा से स्तुति किये हुए सर्वव्यापी जगदात्मा स्वयंभू प्रभुजागे और वेद लाने को सन्नद्धहो के वह प्रभु अपने ऐश्वर्य्य प्रयोग से दूसरे शरीरमें प्रवेशकरगये, तब वह प्रभु सुंदर नासिकायुक्त देहधारी चंद्रमाके समान प्रकाशित होकर अश्वका शिर धारण करके प्रस्थान करगये वह रूप वेदों का निवास स्थानथा, नक्षत्र तारागणों समेत स्वर्ग मस्तक और लम्बेबाल सूर्य्यकी किरणों के समान प्रकाशमान हुए आकाश पाताल दोनों कान पृथ्वी ललाट गंगा और सरस्वती और दोनों महा समुद्र भृकुटी और सूर्य्य चंद्रमा दोनों नेत्र संध्या नाक प्रणव संस्कार बिजली जिह्वाहुई और सोमपनाम पितर दांतहुए और गोलोक ब्रह्मलोक उसमहात्माके दोनों होठथे, और गुणयुक्त कालरात्रि उसकी गर्द्दनथी ऐसे नाना अद्भुतस्वरूप रखनेवाले हयग्रीव विश्वेश प्रभु शरीरको धारण करके अन्तर्द्धान होकर जल में प्रवेशकर गये उस जलमें प्रविष्ट योग में नियत प्रभुने शिक्षायुक्त स्वरमें नियत होकर उद्गीत नाम स्वर को उत्पन्न किया वहशिर अत्यन्त स्वच्छ और दूसरा शब्द उत्पन्न करने वाला सबजीवों का गुण और हितकारी हुआ और ऐसाविदितहुआ कि मानो पृथ्वीके भीतरहोताहै तिसपीछे वहदोनों असुरवेदोंको वचन बद्धकर रसातलमें छोड़कर जिधरशब्द होरहाथा उधरको दौड़े हेराजा उसी अं-

तरमें हयग्रीवधारी देवताने रसातलमें जाकर आपसब वेदोंको लेलिया और वहांसे लाकर ब्रह्माजीको देदिये और अपने मुख्यरूपको धारणकरलिया, अर्थात् उस अपने हयग्रीव रूपको पूर्वोत्तर कोण के महासमुद्रमें नियतकरके अपने मुख्यरूपको धारणकिया तदनंतर हयग्रीवभी वेदोंके निवास स्थानहुए, फिरमधुकैटभनाम दोनों असुरोंने वहांकुछभी न देखकर बड़ीशीघ्रता से वहां आकर उसस्थानको भी जहां वेदरक्खेथे खाली देखातबतो महाबली वहदोनों बड़े शीघ्रगामी होकर शीघ्रही फिर समुद्रसे ऊपरउठे तो वहां उसीआदिपुरुष प्रभुको देखा जोकि श्वेतवर्ण शुद्ध चंद्रमाके समान प्रकाशमान अनिरुद्ध देहमें नियत महापराक्रमी निद्राके योगसे मिलाहुआथा और उसशयनपर विराजमानथा जोकि जलोंके ऊपर कल्पित ज्वालाओंकी मालाओं से युक्त शेषनागके फणोंपर बर्तमान अपने शरीरके समान रचाहुआथा, उनदोनों दानवोंने उसशुद्ध सतोगुण युक्त सुंदर प्रभाववाले पुरुषको देखकर बड़ाहास्य किया, रजोगुण तमोगुण से भरेहुए उनदोनोंने कहा कि यह वह श्वेतवर्ण निद्रामें भराहुआ पुरुष सोताहै, इसीने निश्चयकरके वेदोंको रसातलसे हराहै यहकौनहै किसकाहै और शेषकीशय्यापर क्यों सोताहै,ऐसाबचन कहकर उन दोनोंने हरिको जगाया तब पुरुषोत्तमजी उनको युद्धाभिलाषी जानके जागे, और दोनों असुरेंद्रोंको देखकर युद्धमें मनको प्रवृत्तकिया फिरतो उनदोनों से और भगवान्से बड़ायुद्धहुआ, ब्रह्माजीकी रक्षाकरतेहुए मधुसूदनजीने उन रजोगुण तमोगुणसे भरेहुए दोनों असुरोंको मारडाला और वेदोंके लाने और उनके मारने से ब्रह्माजीके शोकको निवृत्तकिया, तदनंतर ईश्वरकी आज्ञासे और वेदोंसे प्रतिष्ठित ब्रह्माजीने सब जड़चैतन्यरूप लोकोंको उत्पन्नकिया, फिर भगवान् प्रभुजीको संसारके उत्पन्न करनेकी बुद्धिको देकर वहीं अंतर्द्धान होगये जहां से उदयहुएथे, इसप्रकारसे महाभाग हरिनेहयग्रीवहोकर अवतार धारण कियाथा यह ईश्वरका रूपबड़ा बरदाता और प्राचीन वर्णनकियाहै, हरिने हयग्रीव शरीर धारणकर दोनों दैत्योंका बधकरके प्रवृत्ति धर्मके लिये फिरउसी रूपको धारणकिया, जो ब्राह्मण इसको सदैव सुनेगा अथवा धारण करेगा वह अपनी पढ़ीहुई बिद्याको कभीन भूलेगा, पांचालने बड़ातपकरके हयग्रीव रूपधारी देवताका आराधन करके देवताकी कृपासे कर्मको प्राप्तकिया, हेराजा यह हयग्रीव अवतारका आख्यानजो कि प्राचीन और वेदकी समान है मैंनेतुमसे वर्णनकिया, जब देवता संसारके प्रबंधकेलिये जिस २ शरीर को धारणकरना चाहताहै तब अपनी आत्माके द्वारा विपरीतरूप करनेवाला होकरउस २ शरीरको धारणकरताहै, यह श्रीमान् वेदोंका वा तपोंका और सांख्य योगोंका भण्डारहै यहीपरब्रह्म हव्य और प्रभुहै, वेद नारायणको सबसे श्रेष्ठ

कहनेवालेहैं यज्ञनारायणरूपहैं तप नारायणको अंत रखनेवालाहै नारायण परमगतिहै, नारायणसत्यरूपहै और सत्यधर्मदोनों नारायणको अन्तरखनेवालेहैं और जिसधर्मसे स्वर्गसे नीचेको आवागवन होताहै उससे कठिनता पूर्व्वकमिलताहै, प्रवृत्ति लक्षणवालाधर्मभी नारायणरूपहै, पृथ्वीमें जो सबसे उत्तमगन्धिहै उसकोभी नारायणरूप कहतेहैं, ८० हे राजा जलोंके गुणरसभी नारायणरूपहैं, अग्निआदिका उत्तमरूप भी नारायण स्वरूपहैं वायुकास्पर्श गुण आकाशका शब्दगुण अव्यक्तके गुणरखनेवालामन और उसीसे प्रकट हुआ तेजस्वी वस्तुओं का निवास स्थानकालभी ईश्वर का रूपहै, कीर्त्ति शोभा लक्ष्मी देवताइत्यादि सबनारायण रूपहैं सांख्यनारायणको सर्वोत्तम वर्णन करता है और योग भी नारायण रूप है जिन्हों का कारण पुरुष प्रधान, स्वभाव, कर्म और दैव है और अधिष्ठान कर्त्ता, जुदे प्रकारका करण और नानाप्रकारकी चेष्टा जिसमें दैवहै और निश्चय करके पांच कारणों से प्रसिद्ध हरिही सब स्थानपर निष्ठाहै अनेक प्रकारके हेतुओंसे तत्त्व जाननेके अभिलाषी पुरुषोंका एकतत्त्व वही प्रभु नारायण हरि है, वही ब्रह्मादिदेवता, महात्मा, ऋषि, सबलोक, सांख्यमतवाले, योगी और आत्मज्ञानी संन्यासियोंके भी मनके भेदको जानते हैं परन्तु वह सब उसकी इच्छाको नहींजानते लोकों में जो कोई पुरुष दैवकर्म पितृकर्म को करते हैं और दीनों को देते हैं अथवा बड़ातप करते हैं उनसबके रक्षा स्थान ईश्वर सम्बन्धी बुद्धि में नियत विष्णुजीही हैं वह सब जीवोंका उत्पत्ति स्थान अथवा सबजीवों में निवास करनेवाला वासुदेव कहाजाता है, यह पुराण पुरुष महाविभूति युक्त प्रसिद्ध गुणातीत महाऋषि नारायण शीघ्रही गुणों से ऐसे मिलजाता है जैसे कि समय ऋतुओं से मिलजाताहै, यहां इस महात्माकी गतिको अथवा अगति कोभी कोई नहीं जानताहै न देखताहै जो ज्ञानस्वरूप महर्षि हैं वही उस गुणातीत पुरुषको सदैव देखतेहैं, ९३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मेउत्तरार्द्धेशतोपरित्रिसप्ततितमोऽध्यायः १७३ ॥

# एकसौ चौहत्तरका अध्याय ॥

राजाजनमेजय बोले कि बड़ा आश्चर्य्यहै कि भगवान् हरि उन अनिच्छावान् सबभक्तोंका पोषण करताहै और बुद्धिसे अर्पणकीहुई पूजाको आपग्रहण करताहै, लोकमें जो पुरुष वासनारहित पुण्य पापसे पृथक् हैं तुमने उन्होंको ज्ञानगौरव सम्प्रदायसे प्राप्तहोनेवाला वर्णनकिया, वह अनिरुद्ध प्रद्युम्न संकर्षणके सिवाय चौथीप्रकृति वासुदेवनाम से पुरुषोत्तमको पाते हैं परन्तु इच्छा रहित भक्तपरमपदको पातेहैं, निश्चयकरके यहएकांत धर्म महाश्रेष्ठ नारायण

का प्याराहै इसमें अनिरुद्धआदि तीनोंगतियोंको न पाकर अविनाशी वासुदेवहरिको प्राप्तकरतेहैं, अच्छीरीतिसे धर्ममें नियत जो ब्राह्मण बुद्धिमें नियत होकर उपनिषदोंसमेत वेदोंको पढ़तेहैं और संन्यासधर्मको भी रखते हैं उनसे भी उत्तमगतिपानेवाले इच्छारहित भक्तोंको मैं जानताहूं यहधर्म किसीदेवता और ऋषिने वर्णनकियाहै जनमेजयबोले कि हे प्रभु अनिच्छावान् पुरुषोंका आदि नियमक्या है और कबसे है इस सन्देहको निवृत्तकीजिये मुझे इसके सुननेकी बड़ीइच्छाहै, वैशंपायन बोले कि युद्धभूमिमें कौरव और पांडवोंकी सेना तैयारहोने और अर्जुनके उदास होनेपर आप भगवान् ने गीताका वर्णनकिया, मैंने प्रथमही अगति अर्थात् ज्ञान धर्मगति उपासना धर्म तुझसे वर्णनकिया यहमार्ग गहन है और अशुद्ध अन्तष्करण पुरुषों की बुद्धि में कठिनता से आताहै, सामवेद तत्त्वमसि महावाक्यके समान है पहले सतयुग में जारीकियाहुआ वह धर्म आपशिवजी और नारदजीसे धारण कियाजाता है हे महाराजऋषियोंके मध्यमें श्रीकृष्णजी और भीष्मजीकी विद्यमानता में महाभाग नारदजी से अर्जुन ने इसी विषय में पूछाथा, हे राजेन्द्र नारदजीने इसको जिसरीतिसे वर्णनकिया और मेरेगुरुने भी जैसे यह धर्म मुझसे कहा उसको मैं तुमसे कहताहूं, हे पृथ्वीपाल जब नारायणजीके मुखसे प्रकटहोनेवाले ब्रह्माका मानसी जन्महुआ तब आपनारायणजीने, उसीधर्मसे देवकर्म और पितृकर्मकोकिया फिरफेनपनाम ऋषियोंने इसधर्मकोपाया, फेनपाओंसे वैखानसोंने वैखानसोंसे चन्द्रमाने पाया फिरवह गुप्तहोगया, हे अर्जुन जबब्रह्माजीका दूसराजन्म चाक्षुष नामहुआ तब ब्रह्माजीने चन्द्रमासे धर्मकोसुना और ब्रह्माजीने उसधर्मको रुद्रजीको दिया, तिसपीछे सतयुगके बीच योगारूढ़ शिवजीने यह संपूर्ण धर्म बालखिल्य ऋषियों को पढ़ाया फिर उस देवताकी मायासे वह धर्म गुप्तहोगया, हे राजाजब ब्रह्माजीका तीसरा जन्म कल्याण वाचकहुआ तबयहधर्म आप नारायणजीने प्रकटकिया, सुपर्णनाम ऋषिने श्रेष्ठ तपस्या और नियम पूर्वक शान्त वृत्तिहोकर इसधर्म को पुरुषोत्तमजी से पाया, इसकारण सुपर्णऋषिने इस उत्तम धर्मको प्रतिदिन तीनबार पाठकिया उसके प्रभावसे यह व्रत त्रिसुपर्ण नामसे विख्यातहै यह कठिनता से करनेकेयोग्य व्रत त्रिसुपर्ण नामऋग्वेदके पाठमें पढ़ागया सनातनधर्म है तदनन्तर वायुने इसधर्मको किया फिर वायुसे विघसासी सप्तऋषियोंने पाया सप्तऋषियों से महोदधि ऋषिने फिर नारायणजी से नियत कियाहुआ वह धर्म फिर गुप्तहोगया, हे पुरुषोत्तम जबमहात्मा ब्रह्माजीकी उत्पत्ति नारायणजीके कानोंसे हुई उसके विषयमें जो मैं कहताहूं उसको सुनो, संसारकी उत्पत्ति में आसक्त चित्त नारायण हरि ने आप उससंसारकी उत्पत्ति करनेवाले

समर्थ पुरुषको ध्यान किया उसध्यान करतेहुए नारायणजी के कानोंसे सृष्टि के उत्पन्न कर्त्ता ब्रह्मानाम पुरुष बाहरनिकले उनब्रह्माजी से जगत्पति नारायण जीने कहा कि हे सुन्दर व्रतवाले पुत्र तुम मुख और चरणों से सब सृष्टिको उत्पन्नकरो और मैं तेरे कल्याण बल और तेजको भी करूंगा २८ मुझ से सनातन नाम धर्म्मको लेकर उससे मिलेहुए सतयुगको बुद्धिके अनुसार नियत करो, तदनन्तर उन ब्रह्माजी ने नारायण देवताको नमस्कार करके रहस्य संग्रह समेत उत्तम धर्मको प्राप्तकिया, फिर नारायणजीने मुखसें उत्पन्न होनेवाले अमित तेजधारी ब्रह्माको उपदेश करके कहा कि तुम इच्छासे रहित होकर युगधर्मोंके कर्ताहो यहकहकर नारायणजी तो उसतमके पार चलेगये जहां दृष्टिसे गुप्त नारायण परब्रह्म नियतहैं, तदनन्तर उसलोकों के पितामह वरदाता ब्रह्माजीने सब जड़ चैतन्य लोकोंको उत्पन्न किया, सबसे पूर्व्व सतयुग वर्त्तमान हुआ तब सात्विक धर्मलोकोंको व्याप्त करके नियत हुआ उस समय सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी ने उसपूर्व्वधर्म्म से देवेश्वर प्रभु नारायण हरिको पूजन किया, और संसारकी वृद्धिकी इच्छासे धर्म प्रतिष्ठाके निमित्त स्वारोचिष मनुको शिक्षाकरी, तदनन्तर हे राजा सब लोकोंके स्वामी समर्थ सावधान ब्रह्माजीने आपही स्वारोचिष के पुत्र शंखपदनामको पढ़ाया ३७ फिर हे भरतवंशी शंखपदने भी अपने औरसपुत्र दिशापाल और सुवर्णाभको पढ़ाया, फिर त्रेतायुगके वर्त्तमान होनेपर वहधर्म फिर गुप्तहुआ, पूर्व्व समय में ब्रह्माजीके नासत्य नाम जन्म में प्रभु नारायण हरिदेवताने इसधर्मको उपदेश किया, अर्थात् कमललोचन विष्णुजी ने उसधर्मको ब्रह्माजीके सन्मुख वर्णन किया फिर भगवान् सनत्कुमारजीने उसको पढ़ा, फिर सतयुगके प्रारंभ में वीरणनाम प्रजापतिने सनत्कुमारजी से इसधर्म को पढ़ा और बीरणनेभी पढ़कर रैभ्यनाम मनुको दिया उसरैभ्यने अपने पुत्र कुक्षीको जो कि शुद्ध सुन्दर व्रतयुक्त दिशाओंका रक्षक धर्मात्माथा पढ़ाया फिर वही धर्म गुप्तहोगया, जिसका उत्पत्ति स्थान हरि हैं उनब्रह्माजीके अण्डज जन्ममें यह धर्म फिर नारायण जीके मुखसे प्रकटहुआ, और ब्रह्माजीने उसधर्मको प्राप्त किया और बुद्धिके अनुसार काममें लाये और बर्हिपद नाम मुनिको पढ़ाया बर्हिषदने सामवेदके पूर्णज्ञाता ज्येष्ठनाम प्रसिद्ध ब्राह्मणोंको पढ़ाया और ज्येष्ठ ब्राह्मण ने अविकम्पन राजाको दिया क्योंकि हरिसामवेदका व्रत धारणकरनेवाले हैं फिर यह धर्म गुप्तहोगया हे राजा ब्रह्माजीका जो यह पद्मजनाम जन्म है उसमें यह धर्म आप नारायणजी ने नियत किया है, अर्थात् युगके प्रारम्भ में उसलोक धारी शुद्ध ब्रह्माजीके निमित्त कहागया फिर ब्रह्माने दक्ष को दिया दक्षने अपने बड़े धेवते सविताके बड़ेभाई आदित्यको दिया आ-

दित्यने विवस्वानको दिया, फिर त्रेतायुगके प्रारम्भ में विवस्वानने मनुको दिया मनुने संसारके ऐश्वर्य्यादिके लिये इक्ष्वाकुको दिया इक्ष्वाकुसे कहा हुआ धर्मलोकोंको व्याप्तकरके नियतहुआ अन्तको फिर भी वह धर्म नारायणमेंही आवागवन करेगा, हे राजा संन्यासियोंका भी जो धर्महै वह पूर्व्व में भगवद्गीताके मध्यवर्ती मिलाहुआ तुम से कहा इसधर्मको नारदजीने रहस्य संग्रहयुक्त नारायणजीसे प्राप्तकिया था, इसप्रकार यह सनातन आदि धर्म कठिनतासे समझने और करने के योग्य सदैव भगवत् भक्त पुरुषोंसे धारण किया जाता है, वह ईश्वर हरि इस अहिंसाधर्म युक्त श्रेष्ठ आचरित धर्म ज्ञान से प्रसन्न होता है, यह ब्रह्म एक व्यूह विभागवाला कहीं २ द्वैध नाम से भी युक्त है और त्रिव्यूहयुक्त भी प्रसिद्ध है और चार व्यूहवाला दृष्ट आता है, ममता और कला से पृथक् क्षेत्रज्ञ हरिही है और पंचतत्त्वों के गुणोंसे रहित सब जीवोंमें नियत जीवभी हरिहै, हे राजा पांचों इंद्रियों को चेष्टा करानेवाला मन अहंकार समेतहरिहीहै और हरिही लोकप्रवर्त्तक अंतर्य्यामी और बुद्धिमान्है और संसारकी उत्पत्तिका ज्ञाता कर्त्ता अकर्त्ता कार्य्य कारण रूपहै हे अर्जुन यह पुरीरूप शरीरोंमें निवास करनेवाला अविनाशी हरि जैसाचाहताहै वैसीही क्रीड़ा करता है,हेराजेंद्र मैंने गुरुकी कृपासे अनिच्छावान् भक्तोंका धर्म जो कि अज्ञानियों से जानने के अयोग्य है तुमसे वर्णनकिया, हे राजेन्द्र इच्छारहितभक्तपुरुष बहुत कमहोते हैं कदाचित् यह संसार अनिच्छावान् पुरुषोंसे भराहुआ होजाय तोहिंसा रहित आत्मज्ञानी सबजीवों की भलाई में प्रवृत्त भक्तोंसे सतयुग वर्त्तमानहोजाय वह युग फल रहित कर्मोंसे संयुक्त है, हे राजा इस प्रकारसे उसमें २ धर्मज्ञ गुरु ब्राह्मणोत्तम व्यासभगवान्ने इसधर्म को धर्मराजके सन्मुख वर्णन किया और ऋषियोंके सन्मुख श्रीकृष्ण और भीष्मजीके सुनतेहुए भी वर्णनकिया उन व्यासजीके सन्मुख भी पूर्व्व समय में बड़े तपस्वी नारदजीने उसदेवताका वर्णन किया जो कि परमब्रह्म चन्द्रमाके समान उज्ज्वल देदीप्तवर्ण अविनाशी है उसी में वह निराकांक्षी नारायण परायण भक्तलय होते हैं, राजा जनमेजयने प्रश्न किया कि नानाप्रकारके ब्रतमें नियत दूसरे ब्राह्मण इस प्रकार ज्ञानियोंसे सेवित बहुत प्रकारवाले धर्मको क्यों नहीं करते हैं, वैशम्पायन बोले हे भरत वंशी राजा जनमेजय शरीररूप बंधन रखनेवाले जीवोंमें तीनप्रकृति सात्विकी राजसी तामसीनाम उत्पन्न की गई हैं और शरीररूप बंधन रखनेवाले जीवों में सात्विकी पुरुष श्रेष्ठहै वह मोक्षके निमित्त निश्चय किया जाताहै, यहां वह ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ उस पुरीरूप देहोंमें निवास करनेवाले को भी अच्छे प्रकारसे जानताहै और मोक्ष नारायण को प्राप्त करनेवाली है इसीसे

वह ज्ञानी सात्त्विकी कहा जाता है, वह इच्छा रहित भक्ति रखनेवाला सदैव ईश्वर का ध्यान करनेवाला पुरुष उस पुरुषोत्तमको ध्यान करता हुआ अ-भीष्टको प्राप्त करताहै, जो कोई मोक्ष धर्मवाले बुद्धिमान् संन्यासी हैं उन निराकांक्षी पुरुषोंके योग क्षेमको हरिही प्राप्तकराते हैं, जिस जन्मलेनेवाले पुरुषको मधुसूदन जी अपनी कृपादृष्टिसे देखते हैं उसको भी सात्त्विकी जानना योग्य है वह भी मोक्षके योग्यहै, नारायणरूप मोक्षमें इच्छारहित भक्तोंसे सेवन कियाहुआ धर्म सांख्ययोगके समान है, इसकारणसे वहभक्त परमगति को पाते हैं ईश्वरकी कृपासेही ज्ञान उत्पन्न होताहै अपनी इच्छासे नहीं होताहै इसको वर्णन करतेहैं कि नारायणसे देखाहुआ पुरुष ज्ञानीहोता है—अब भक्ति न होनेसे दोषोंको कहते हैं हे राजा इसप्रकार अपनीइच्छासे ज्ञानी होनेवाला पुरुष जन्म नहींधारणकरताहै, राजसी और तामसी स्वभाव दोषों से संयुक्त हैं, रजोगुण तमोगुणसे संयुक्त प्रवृत्ति लक्षणोंसे युक्त जन्म लेनेवाले पुरुषको आप नारायण नहीं देखते हैं अर्थात् प्रवृत्ति मार्गमें ही लगाते हैं, और लोकपितामह ब्रह्माजी इस रजोगुण तमोगुण से मिलेहुए जन्म लेनेवाले पुरुषको देखते हैं अर्थात् प्रवृत्ति मार्गी करते हैं और देवता ऋषि तो अवश्य सतोगुण में नियत हैं परंतु सूक्ष्म सतोगुणसे पृथक् हैं इसी हेतुसे वैकारिक कहेजाते हैं, राजा जनमेजय ने प्रश्नकिया कि अहंकारी जीव किसरीतिसे पुरुषोत्तम को प्राप्त करसक्ता है इसको वर्णन कीजिये और प्रवृत्तिको भी क्रम पूर्वक वर्णन कीजिये, वैशंपायन बोले कि संन्यास धर्ममें नियत पच्चीसवां पुरुष उस पुरुषको प्राप्तकरता है जो कि अत्यंत सूक्ष्मतत्त्वों से युक्त अधिष्ठानरूप अकार उकार मकार इन तीन अक्षरों से संयुक्त अर्थात् उपाधियों को त्यागकर पुरुष उस आदिपुरुषको प्राप्त करता है वह प्रवेश करनेवाला पुरुष अन्य नगरकी समान नहीं है किंतु उपाधि से रहित होना ही इसकीप्राप्ति है ८० इस प्रकारसे आत्मा अनात्मा का विवेकरूप सांख्य और चित्तवृत्ति निरोधरूप योगजीव ब्रह्मकी एकताकोसिद्ध करनेवाला तत्त्व-मसिवाक्य से उत्पन्न होता है और ज्ञानरूप वेदारण्यक और भक्तिमार्ग रूप पंचरात्रि यह सब एक दूसरेके अंगकहे जाते हैं अर्थात् यह सब एकही पुरुष के धर्म हैं पृथक् २ पुरुषोंके नहीं हैं ८१ अनिच्छावान् पुरुषोंका यहधर्म नारा-यणमें निष्ठारखने वाला है हे राजा जैसे समुद्रसे निकलनेवाले जलसमूह फिर उसी में प्रवेश करते हैं, उसीप्रकार यहज्ञानरूप बड़ेजलसमूहरूप फिर नारायण में प्रवेश करते हैं, हे कौरवनंदन यह मैंने सात्त्विक धर्म तुम से वर्णन किया, उसको न्याय के अनुसारकरो जिससे कि समर्थहो इसीप्रकार उन महाभाग नारदजीने मेरे गुरूसे, श्वेत गर्हित आदिकी और संन्यासियोंकी एकांत नाम

अविनाशी गतिको बर्णनकिया और व्यासजीने बड़ी प्रीतिपूर्व्वक बुद्धिमान् युधिष्ठिर के सन्मुख बर्णन किया, गुरूसे उपदेश किया हुआ यह वहीधर्म मैंने तुमसे कहा हे राजाओं में श्रेष्ठ इसप्रकारसे यह धर्म असाधारण है, जैसे कि इसमें तुम मोहित होतेहो उसीप्रकार अन्य पुरुषभी अधिक मोहित होते हैं, हे राजा श्रीकृष्णजीही संसार के पालन कर्त्ता मोहित करनेवाले नाश करने वाले और उत्पत्तिके कारण हैं ८८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे शतोपरिचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः १७४ ॥

# एकसौपचहत्तरका अध्याय॥

राजाजनमेजयने प्रश्नकिया हेब्रह्मऋषि यहसांख्ययोग पंचरात्रिवेद अरण्यकनामज्ञान लोकोंमेंजारी है,हेमुनि यहक्या एकही पुरुषकी निष्ठाहै अथवा पृथक्२ पुरुषोंकी निष्ठाहै आप इनज्ञानियोंकी प्रवृत्तिका क्रमसे वर्णनकीजिये, बैशम्पायनबोले कि पराशरऋषि और सत्यवती माताने द्वीपके मध्यमें अपने योग के द्वारा जिसबहुज्ञ उत्तम बड़ेउदार महर्षिपुत्रको उत्पन्नकिया उस अज्ञान के नाशकरनेवाले व्यासजीको नमस्कारहै,जिनव्यास महर्षिको ऋषियोंके ऐश्वर्ययुक्त वेदोंका बड़ाभण्डार नारायणजीका छठवांअवतार और नारायणही के अंश से उत्पन्न एकपुत्र कहते हैं, महाविभूति और ऐश्वर्य्य युक्त तेजस्वी नारायणजी ने पूर्व्व समय में उस वेदों के बड़े भंडार महात्मा अजन्मा पुराणपुरुष व्यासजीको अपनापुत्र होनेके निमित्त उत्पन्नकिया, जनमेजय ने कहा हे उत्तम ब्राह्मण पूर्वमें आपनेही व्यासजीका जन्म वह वर्णन किया था कि वशिष्ठजी के बेटे शक्ति और शक्तिके बेटे पराशर जी और पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन हैं उनको आप नारायणजी का पुत्र कहतेहो इस कारण से बड़े तेजस्वी व्यासजी का होनेवाला जन्म नारायणजीसे कैसेहुआ इन सबकोआप वर्णन कीजिये, बैशम्पायन बोले कि हे राजा वेदार्थ कहनेके उत्सुक धर्मिष्ठ तपोमूर्त्ति ज्ञाननिष्ठ हिमालयके नीचे विराजमान और महाभारत को बनाकर तपसे थकित बुद्धिमान् गुरूकी सेवामें प्रीतिमान हम सबने उन व्यासजीकी सेवाकरी, सुमंतु जैमिनि, ( बड़ेदृढ़ब्रत पैल ) ( चौथा शिष्य मैं ) और व्यासजीके पुत्र शुकदेवमुनि इनपांचों उत्तम शिष्यों समेत शिवजी शोभायमान होते हैं, अंगों समेत वेद और सबमहाभारत के बारम्बार अर्थ वर्णन करतेहुए व्यासजी ऐसे शोभायमान हुए जैसे कि भूतगणों समेत शिवजी शोभित होते हैं और हम सब शिष्योंने भी एकाग्रमन होकर उन जितेन्द्री व्यासजी को मनसे पूजन किया और किसीकथामें हम सबने उनसे पूछा कि वेदार्थ और महाभारतके अर्थोंको और नारायणजीसे होनेवाले

अपने जन्मको वर्णन कीजिये, उस तत्त्वज्ञानीने प्रथम तो वेदकेअर्थोंको और महाभारतके अर्थोंको कहकर नारायणजीसे होनेवाले इसअपने जन्मको वर्णन करना प्रारम्भ किया, हे ब्राह्मणोत्तम इस ऋषिसंबंधी पूर्व्व समयमें प्रकट होनेवाले उत्तम आख्यानको सुनो मैंने इसको तपके द्वारा जाना है, कमलसे उत्पन्न संसारकी सात्विक उत्पत्ति होनेपर शुभाशुभरहित बड़े तेजस्वी और योगी नारायणजीने अपनी नाभिसे प्रथम तो ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और जब ब्रह्मा प्रकटहुए तब उनसे यह बचनकहा कि तुम समर्थ संसारके स्वामी मेरी नाभि से उत्पन्न हुएहो सो हे ब्रह्माजी तुम नानाप्रकारके स्थावर जंगम जीवों को उत्पन्न करो, इस प्रकारसे कहेहुए चिंता से व्याकुल मनसे विमुख उन ब्रह्माजीने बरदाता ईश्वर हरिको प्रणामकरकेकहा कि हे देवेश्वर तुमको नमस्कार करके कहताहूं कि सृष्टिके उत्पन्न करनेकी मुझमें सामर्थ्यनहीं है मैं अज्ञानीहूं यहब्रह्माजीके बचन सुनकर उस महाज्ञानी देवेश्वर भगवान्ने अन्तर्द्धान होकर बुद्धिदेवीको स्मरणकिया, स्मरण करतेही वह स्वरूपधारी बुद्धिदेवी नारायणजीकेपास आकरप्राप्तहुई तबउसनिस्संग ईश्वरने अपने योगसे उस बुद्धिदेवीको संयुक्तकरके यहबचन कहा, कि संसारकी उत्पत्तिके लिये तुमब्रह्माजीमें प्रवेश करो तदनन्तर ईश्वरकी आज्ञासे वहबुद्धि बड़ीशीघ्रतासे ब्रह्माजीके शरीरमें प्रवेश करगई, उसकेपीछे उसहरिने इसबुद्धि से संयुक्त ब्रह्माजीको फिर दर्शनदिया और यह बचनकहा कि नानाप्रकारके जीवोंको उत्पन्नकरो, तब ब्रह्माजी ईश्वरकी आज्ञाको स्वीकारकरके विचारपूर्व्वक कर्ममें प्रवृत्तहुए औरभगवान् बच्चमाण बातोंको कहकर उसीस्थानमें अन्तर्द्धान होगये, कि ब्रह्माजीतुम उस निवासस्थानको एकमूहूर्त्तमेंही पावोगे और उस स्थानकोपातेही अद्वैतभगवत् भक्तहोगे इस अनन्य भक्तिके होतेहीहेब्रह्माजी तुम्हारी दूसरीबुद्धि फिर प्रकटहोगी उसी बुद्धिके द्वारा सब सृष्टि उत्पन्नहोगी दैत्य दानव गन्धर्व औरराक्षसोंके समूह से यहतपस्विनी पृथ्वी महाव्याकुल हो उन सबके भारसे दब जायगी तब पृथ्वीपर महाबलवान् तपसंयुक्त बहुतसे दैत्य दानव और राक्षसहोंगे और उत्तमबरोंको पावेंगे, बरोंके पानेसेअभिमानी इनसब राक्षस आदि के हाथों से देवता आदि ऋषि मुनि तपोधन लोग अवश्यपीड़ाको पावेंगे तब मैं उस पृथ्वी के भारके उतारने को अवतार धारण करके न्यायके अनुसार धर्मजारी करूंगा, तदनन्तर यह तपस्विनी पृथ्वी पापियों को दण्ड और साधुओं के पोषण करने से प्रजाको धारण करेगी, क्योंकि मुझ पातालबासी शेषनागरूप से यह सूक्ष्म स्थूलरूप चौदह भुवन नाम पृथ्वीधारण कीजाती है और मुझ से धारण किये हुए इस जड़, चैतन्य बिश्वको यह धारण करती है, इसीकारण अवतार लेनेवाला मैं पृथ्वी

की रक्षाकरूंगा, फिर उस भगवान् मधुसूदनजी ने ऐसा विचारकरअवतार लेने के लिये बाराह, नृसिंह, बामन आदि अनेक रूपों को उत्पन्न किया, यहसमझकर कि इनरूपोंकेद्वारा मैं दुष्टराक्षसोंको मारूंगा, तदनन्तर संबोधन पूर्व्वक वार्त्तालापकरतेहुए संसारके स्वामीने, सरस्वतीका उच्चारणकिया उस स्थानपर बचन से प्रकटहोनेवालापुत्र सारस्वत प्रभुउपान्तरात्मानाम उत्पन्न हुआ, वह तीनोंकालका जाननेवाला सत्यबादी दृढ़ब्रतधारीथा, उसको देखकर देवताओंके आदिभूत अविनाशी ईश्वरने उसमाथा नवायेहुए पुरुष से यह बचन कहाकि हे बुद्धिमानोंमेंश्रेष्ठ तुमको वेदाख्यानमें श्रुतियोंका करना योग्य है हे मुनि इसी कारण जैसा मैंने कहा है वैसाही करो, तब स्वायम्भू मन्वन्तर में उसने वेदोंका विभागकिया तिसपीछे भगवान् हरि उसके उस कर्मसे प्रसन्नहुए, और कहा कि हे पुत्र अच्छे तपेहुए तप यम और नियमोंसे तुम हरएक मन्वन्तरमें इस प्रकार वेदोंके जारी करनेवालेहोगे, और सदैव अचल और अजयहोगे, फिर कलियुग बर्त्तमान होनेपर कौरवनाम भरतबंशी महात्मा राजा पृथ्वीपर वर्त्तमानहोंगे और तुझ से उत्पन्न उन भरत बंशियों में नाश करनेवाला परस्पर का विरोध उत्पन्न होगा हे ब्राह्मणोत्तम तुमवहांभी तपसे संयुक्तहोकर वेदोंको बहुतप्रकारका करोगे, कलियुगवर्त्तमान होनेपर कृष्णवर्णहोगा वह नानाप्रकारके धर्मोंका उत्पन्न करनेवाला ज्ञानका उत्पादक और तप से संयुक्त होगा और वैराग्य से जीवनमुक्त होगा, और तेरापुत्र बैराग्यवान् परमात्मा महादेवजीकी कृपासे उत्पन्नहोगा यहमेरावचन सत्यहै, वेदपाठीब्राह्मण जिन बशिष्ठजीको ब्रह्माजी की उत्तमबुद्धिसे संयुक्त और उत्तम तपका भंडार मानसी विख्यात जिसकी किरणें सूर्य से भी अधिक देदीप्यहैं, उसके बंशमें बड़े प्रभाववान वेदों के घर श्रेष्ठ महातपस्वी तपोमूर्त्ति महर्षि पराशरजी उत्पन्नहोंगे वही तुम्हारे पिताहोंगे तुम उस ऋषि से कन्या के बीच कानीनगर्भ नाम पुत्र उत्पन्न होगे और त्रिकालज्ञ होगे पूर्व्व में जो कल्प व्यतीत हुए उन सबको तुम तप युक्त होकर मेरे उपदेश से देखोगे फिर आगे होनेवाले अनेक कल्पोंको भी देखोगे हे मुनिलोकमें मेरे ध्यान से मुझ आदि अन्त रहित चक्रधारीको भी देखोगे इस वचनको सत्यही जानना, हे बुद्धिमान् तेरी बड़ी कीर्त्ति होगी और सूर्य्य का बड़ा बेटा शनैश्चर मनु होगा, हे पुत्र उस मन्वन्तर में मेरी कृपा से तुम निस्सन्देह मनु आदि समूहके पूर्वहीहोगे, संसारमें जो कुछ वर्त्तमानहै वह मेराकर्महै एक अनात्मा दूसरे अनात्मा का ध्यान करताहै, मैं अपनी इच्छा के अनुसार कर्म्म करता हूं, वह परमेश्वर सारस्वत ऋषि उपान्तरात्मानामसे प्रकट होगा ऐसा वचन कहकर बोले कि साधन करो सो मैं उस विष्णु देवताकीकृपासे उपान्तरात्मा

नाम उत्पन्न हुआ फिर हरिकी आज्ञा से जन्म लेनेवाला मैं वशिष्ठजी का कुलनन्दननाम प्रसिद्ध हुआ मैंने नारायणजीकी कृपासे वह अपना पहला जन्म और यहजन्म जो कि नारायणके अंशसे उत्पन्न हुआहै वर्णन किया, हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ शिष्यलोगो मैंने प्राचीन समय में उत्तम समाधि युक्त महाअसह्यतप कियाथा हे पुत्रो मैंने भक्तों की प्रीति से तुम्हारा पूछाहुआ यह प्रथम जन्म और होनेवाला वृत्तान्त तुमसे कहा, वैशम्पायन बोले हे राजा इस मृदुलचित्त अपने गुरू व्यासजी का प्रथम जन्म जो तैंने पूछाथा उसका वर्णन फिर भी सुनो, हे राजऋषि सांख्ययोग, पंचरात्रि, वेद, पाशुपत इत्यादि नानाप्रकारके मतोंको ज्ञान जानो, सांख्यशास्त्रके वर्णन करनेवाले कपिलमुनि हैं वह परमऋषि कहेजाते हैं वही पुरातन हिरण्यगर्भ योग के जाननेवालेहैं दूसरा नहीं है, वह उपान्तरात्मा ऋषि वेदोंके आचार्य कहेजाते हैं यहां कोई पुरुष उस ऋषि को प्राचीनगर्भ भी कहते हैं, ब्रह्माजी के पुत्र उमापति, भूतपति, श्रीकण्ठ सावधान शिवजीने इस पाशुपतज्ञानको वर्णन कियाहै, हे राजा सम्पूर्ण पंचरात्रि के जाननेवाले आप भगवान् नारायण हैं और इन सब ज्ञानियों के मध्य में, शास्त्र और अनुभवके अनुसार प्रभु नारायणही निष्ठारूप दिखाईदेतेहैं अर्थात् नारायणही सबके परमात्माहैं और जो पुरुष तमोगुणी हैं वह इसको अच्छी रीति से नहीं जानते हैं, शास्त्र बनानेवाले ज्ञानी पुरुष उसी नारायणऋषि को निष्ठा कहते हैं, और नारायण के सिवाय दूसरी निष्ठा नहीं है यह मेरा वचन है, सब पुरुषों में निस्सन्देह हरि सदैव निवास करते हैं और सन्देहसे भरेहुए कुतर्कना करनेवाले मनुष्यों में माधवजी निवास नहीं करते हैं, हे राजा जो मनुष्य क्रमानुसार पांच रात्रि के जाननेवाले और अनिच्छा भक्तहैं वहपरमेश्वर हरि में प्रवेशकरते हैं, सांख्य और योग यह दोनों शास्त्र सनातनहैं और सब वेदोंसमेत ऋषियों सेभी प्राचीन विश्वनारायण रूप कहेजाते हैं अर्थात् वह नारायण अद्वितीयहै, सब लोकों में जो कुछ वेदोक्त शुभाशुभकर्म वर्त्तमान होताहै वह सब स्वर्ग अंतरिक्ष पृथ्वी और जल में उसी नारायण ऋषि से उत्पन्न होताहै अर्थात् सबको कर्म में प्रवृत्त करनेवाला अन्तर्यामी वही नारायणहै ७४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिपंचसप्ततितमोऽध्यायः १७५ ॥

# एकसौ छिहत्तरका अध्याय ॥

जनमेजय ने प्रश्न किया कि हे ब्रह्मन् बहुतसे पुरुष हैं अथवा एकही पुरुष है यहां कौन पुरुष उत्तम है और कौन उत्पत्तिस्थान कहाजाताहै, वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय लोकव्यवहार में बहुत पुरुषहैं और सांख्ययोगके

विचार में एकही है उस एक पुरुष को नहीं जानते हैं, जिसप्रकार बहुत से प्रतिबिम्बों का उत्पत्तिस्थान एकही बिम्ब होता है उसीप्रकार हमलोगों का उत्पत्तिस्थान इस पुरीरूप शरीर में निवास करनेवाले गुणों से परे नारायण को वर्णन करताहूं—श्रीगुरू व्यासजी को नमस्कार करके कहताहूं कि उत्तम ऋषि से विचार कियाहुआ यह पुरुष शूक्त सब वेदों में सत्य और पूजन के योग्य प्रसिद्ध हुआ, हे भरतवंशी कपिलादि ऋषियों ने वेदान्त विचार में नियत होकर योग्यायोग्य और विधि निषेध के साथ शास्त्रों को वर्णन किया, व्यास गुरूने जो सूक्ष्मके साथ पुरुषकी एकयता वर्णनकीहै मैं उसको अपने महात्मा गुरू की कृपा से वर्णन करता हूं हे राजा इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिस में ब्रह्माजी और शिवजी के प्रश्नोत्तर हैं, हे राजेन्द्र क्षीर समुद्र में सुवर्ण के समान प्रकाशित वैजयन्त नाम से प्रसिद्ध एक उत्तम पर्वत है वहां वेदान्त गति को विचारते अकेले देवता ब्रह्माजी सदैव बिराट् भवनके समीप उसी बैजयन्त पर्व्वतको सेवन करतेथे, दैवयोगसे वहांपर बुद्धिमान् चतुर्मुख ब्रह्माजीके ललाटसे उत्पन्न पुत्र शिवजीभी आपहुंचे, और प्रसन्नमन होकर शिवजीके सन्मुखहुए और दोनों चरणोंको प्रणाम किया तब अकेले प्रभु ब्रह्मा प्रजापतिने उननमस्कार करते हुए शिवजीको देखकर हाथोंसे ऊपरको उठाया और बहुतकालमें मिले हुए अपनेपुत्र शिवजीसे बोले कि हे महाबाहो तुम आनन्दसे आये और मेरे प्रारब्धसे यहां आयेहो हे पुत्र सदैव तुम्हारे वेदपाठ और तपस्यामें निर्विघ्नता है, तुम सदैव उग्रतप करनेवालेहो इसकारण फिर तुमसे पूछताहूं, शिवजी बोले कि हे भगवन् आपकी कृपासे मेरे वेदपाठ और जप तपकी कुशलता पूर्वक वृद्धिहै और सब जगत् की कुशलहै, बहुत काल हुआ कि मैंने आप भगवान्को विराट् भवनमें देखाथा इसीकारण मैं आपके चरणोंसे सेवित इस पर्व्वतपर आया हूं हे पितामह आपकी मुलाकातहुई मुझकोभी आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा थी और हे तात वह श्रेष्ठ भवन कौनसा है जोक्षुधा तृषा से रहित देवता असुर और तेजस्वी ऋषियोंसे सेवितहै और गंधर्व अप्सराओं से भी शोभितहै अकेले आपने इसउत्तम पर्वतको छोड़कर इसभवनको सेवन किया, ब्रह्माजी बोले इसपर्व्वतोंमें श्रेष्ठ बैजयन्त नाम पर्व्वतको मैं सदैवसेवन करताहूं यहां मैं एकाग्र मनसे विराट् पुरुषका ध्यान करताहूं, रुद्रजी बोले कि हे ब्राह्मण स्वतः उत्पन्न होनेवाले तुमने बहुतसे पुरुषोंको उत्पन्न किया और अब भी करतेहो सो हे ब्रह्मन् वह विराट् पुरुष अकेलाहै सो कौनहै जिसको तुम ध्यान किया करतेहो आप इसमेरे संदेहको दूर करिये मुझे इसके जानने की बड़ी इच्छाहै, ब्रह्माजी बोले हे पुत्र तत्त्वोंसे संघातरूप अनेक पुरुषहैं जो

तुमने अच्छीरीतिसे वर्णन किये इससंघातको उल्लंघन करनेवाला पुरुष इस प्रकारसे दर्शनके योग्य नहींहै उस अकेले पुरुषके अधिष्ठानको मैं तुमसे कहताहूं जैसे कि बहुतसे पुरुषोंका उत्पत्ति स्थान एकही कहाजाताहै, उसीप्रकार ज्ञानीपुरुष निर्गुण होकर उस विश्वरूपपरम सूत्रात्मा वृद्धोंको वृद्ध निर्गुण अनिरुद्ध प्रद्युम्न संकर्षण वासुदेव नाम रखनेवाले सनातन निर्गुण ब्रह्म में प्रवेश करते हैं २७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशततोपरिषट्सप्ततितमोऽध्यायः १७६ ॥

# एकसौ सतहत्तरका अध्याय ॥

ब्रह्माजी बोले हे पुत्र जैसे यहन्यूनता रहित अविनाशी सनातन पुरुष सब स्थानोंमें वर्त्तमान कहाजाताहै और देखाजाताहै वह पुरुषहमसे तुमसे और अन्य पुरुषोंसे जो बुद्धि इन्द्री युक्त वा शमदमादि गुणोंसे रहितहैं दर्शनकरने के अयोग्य है वह विश्वात्मा केवल ज्ञानीसेही देखनेमें आता है, तीनों देहों से पृथक् यह पुरुष सब शरीरोंमें निवास करताहै और शरीरों में बसता हुआ भी कर्मोंमें प्रवृत्त नहीं होताहै, वही मेरा और तेरा अन्तरात्मा है और दूसरे शरीरवान् हैं उनसबका साक्षीहै तौभी वह कहीं किसी से पकड़ने के योग्य नहीं है,--यही विश्वरूपहै इसको कहते हैं--विश्वही उसका मस्तक भुजा चरण नाक आंख आदि हैं वह अपनी इच्छासे कर्म कर्त्ता है सब शरीरों में सुख पूर्वक घूमताहै, सब शरीरक्षेत्रहैं और अच्छे बुरे कर्म बीजरूपहैं वह योगात्मा उनको जानताहै इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाता है, जीवों में किसी से उसकी ऊर्द्ध वा दिव्ययान आदिकी गतिजानी नहीं जासक्तीहै मैं सांख्ययोगसे क्रमपूर्व्वक उसकी गतिको बिचारताहूं परन्तु उसकी उत्तम गतिको नहीं जानताहूं तौभी ज्ञानकेअनुसारसनातन पुरुषको वर्णन करताहूं और एकता औरबुद्धिमत्ताको भी कहताहूं--जो अकेला पुरुषकहा जाताहै वही सनातन अकेला पुरुष महा पुरुष कहलाताहै एकही अग्नि अनेक प्रकारसे वृद्धि पाता है एकही सूर्य्य सर्वत्र प्रकाश करता है तपका उत्पत्तिस्थान एकही है लोकमें एकही वायु अनेकप्रकारसे चलतीहै और जलोंकाभी उत्पत्ति स्थान केवल एकसमुद्रहै और पुरुषभी अकेला निर्गुण और सगुणहै उसीनिर्गुणपुरुषमें सब प्रवेशकरते हैं सब देह इन्द्री अहंकार रूपगुणों को छोड़ शुभाशुभ कर्मों को त्यागकर अविनाशी जीव और प्रधानभोक्ता भोगको त्यागकरके निर्गुण होता है, जो पुरुष गुरू से जताये हुए मनसेपरे परमात्मा को जानकर अर्थात् साक्षात्कार करके सूक्ष्म बिभागरूप अनिरुद्ध प्रद्युम्न,संकर्षण, बासुदेव अथवा अधिदेव बिराट् सूत्रात्मा अंतर्य्यामी शुद्धब्रह्मया अध्यात्म बिश्वतैजस भाग इन सब में क्रम

करनेवाला होता है अर्थात् सूक्ष्म स्थूल लयके क्रमसे सदैव समाधि को अधिष्ठान करताहै वह बड़ा शांतहै और वहीउस शुभपुरुष को प्राप्तकरताहै, इसप्रकारकोई पंडित वा योगी परमात्माको चाहतेहैं, उसस्थानपर जो परमात्मा है वह सदैव निर्गुण कहाताहै वही सबका आत्मापुरुष नारायण जानने के योग्यहै वह कर्मोंके फलसे भी कभी संबंध नहींरखता जैसे कि जलसे कमल का पत्ता स्पर्श नहीं करता, कर्मकर्त्ता दूसरा पुरुष है जो कि मोक्ष बंधनों से संयुक्त होताहै वह तत्त्वोंके समूह लिंगशरीर से संयुक्त होते हैं इस प्रकार वह उपाधि युक्त जीवात्मा कर्मोंके बिभागसे देवमनुष्यादिके रूपोंको प्राप्तकरनेवाला पुरुष क्रम पूर्वक बहुत प्रकारका तुम से कहाहै जो वहपुरुष संपूर्ण लोक मंत्रकाप्रकाशक चैतन्य ज्योतिरूपहै वही जाननेके योग्यउत्तम समझने वालाजीवहै वही सब इन्द्रियों के बिषयों का भोगनेवाला जानने के योग्य हैं हे तात जिसको सगुण निर्गुणऔरप्रधान पुरुषभी कहतेहैं,वहप्रधान पुरुष सदैव रहनेवाला आदि अंतरहित रूपान्तर दशासे हीन और धातासे प्रथम महत्तत्त्वको उत्पन्न करताहै-वेदपाठी ब्राह्मण उसको अहंकार रूप अनिरुद्धकहतेहैं जोकि लोकमें बैदिककर्मोंका अधिष्ठातादेवताहै वही इच्छाकिया जाता है उसीका ध्यान करना उचितहै अच्छे शांतरूप सबमुनि सावकाश के समय कर्मयज्ञ और उस यज्ञभोक्ताको समझते हैं अर्थात् यहकहते हैं कि इस अग्निहोत्रसे वह अनिरुद्धका आत्मा बासुदेव प्रसन्नहो मैं संसार का आदि ईश्वर ब्रह्मा उससे उत्पन्न हुआ और तुम मुझ से प्रकट हुए, हे पुत्र मुझसेही जड़ चैतन्य जगत् और सबवेद रहस्यों समेत प्रकटहुए, चाररूपोंमें बिभाग होनेवाला वह पुरुष क्रीड़ा करता है जैसा चाहताहै वैसाही वह षड़ैश्वर्य्य का स्वामी अपने द्वैत ज्ञानसे सावधान होता है अर्थात् वह बासुदेव उपाधि युक्तहोकर चारप्रकारका होता है और अंत में अपने अखण्ड स्वरूप के ज्ञानसे जीवभाव को त्यागकर बासुदेवही होता है, हे पुत्र यह मैंने तेरे पूछनेसे भक्ति और भक्तिजन्य ज्ञान और ज्ञानसे प्राप्तहोने वाला मोक्ष जो कि सांख्यज्ञान और योगशास्त्र में निश्चय किया गया है मूल समेत बर्णन किया २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिसप्तसप्ततितमोऽध्यायः १७७ ॥

## एकसौअठहत्तरका अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि यद्यपि सुलभा और राजा जनकके संवाद में संन्यास धर्मको उत्तम कहा तथापि सुखसे प्राप्त होनेवाला श्रेष्ठ आश्रम कौनहै और इस ज्ञानकी इच्छासे प्रश्न कियेहुए मोक्षधर्म से संबंध रखनेवाले पितामह

ब्रह्माने जो शिवजीसे वर्णनकिया वह आश्रमियोंके मध्यमें उत्तम धर्म आप कृपाकरके वर्णनकीजिये भीष्मजी बोले कि सब आश्रमियोंमें वह धर्म विचार कियागयाहै जोकि स्वर्ग और मोक्षनाम बड़े फलका देनेवाला है इसलोक में यज्ञदान आदि बहुतसेद्वार रखनेवाले धर्मके कर्मनिष्फल नहीं हैं हे भरतर्षभ जो पुरुष जिस २ आश्रम धर्म में पूरे निश्चयको पाता है वह उसी को जानता है दूसरे को नहीं जानताहै, इसदशा में न्याय पूर्व्वक धन प्राप्त करनेवाले गृहस्थाश्रम की उत्तमता सिद्ध करने को उंछवृत्तीवाले ब्राह्मण का इतिहास प्रारंभ करते हैं, हे नरोत्तम पूर्व्वसमय में श्रीनारद महर्षि से इन्द्र के सन्मुख वर्णन कीहुई यह कथा मैं तुम से कहताहूं, कि तीनों लोकोंका अभीष्ट सिद्ध करनेवाले वायु के समान बेरोक शुद्ध नारदजी क्रम पूर्वक लोकों में भ्रमण करते थे, वहनारदजी घूमतेहुएकभी इन्द्रलोककोगये और वहां इन्द्रने उनकी उत्तम प्रतिष्ठा करके श्रेष्ठआसनपर बिराजमान किया और यह पूछा कि हे निष्पाप महर्षि आपने कोई अद्भुतताभी देखी है,आप नाना प्रकारके अद्भुत कौतूहलों को देखतेहुए तीनों लोकों में आनन्दसे विचरते रहते हो ऐसी कोई बात नहीं है जो आपको विदित न हो चाहे आपने सुनाहो वा अनुभव कियाहो अथवा देखाहो मुझको आपके मुख से सुनने की बड़ी अभिलाषा है हे युधिष्ठिर तबतो नारदजी ने इस बड़े इतिहास को इन्द्र से वर्णन किया सो जैसे नारदजी ने इन्द्र के पूछने पर कथा को कहा वैसेही तुम्हारे पूछने पर मैं तुम से कहता हूं ११ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्म्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिअष्टसप्ततितमोऽध्यायः १७८॥

## एकसौ उनासीका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे नरोत्तम गंगाजी के दक्षिण तटपर महापद्मनाम उत्तम नगरमें कोई सावधान तपस्वी ब्राह्मण था, जो कि सौम्य और अत्रिगोत्रवाले वेद मार्ग जानने में संशय रहित सदैव धर्मिष्ठक्रोध और इन्द्रीजित तप वेदपाठ अथवा जप में प्रीति करनेवाला सत्यवक्ता सज्जन न्यायसे उपार्जित धन और अपने शील स्वभाव युक्त बहुतसे सजातीय कुटुम्बी लोगों से युक्त ब्रह्मचर्य्य आश्रम के समान प्रसिद्ध बड़ा कुलीन श्रेष्ठवृत्ती में नियत था, वह अपने बहुतसे पुत्रोंको देखकर महाकर्म में नियत कुलधर्मी अपनी धर्मचर्य्या में उपस्थितहुआ, फिर वह ब्राह्मण वेद और शास्त्र के लिखेहुए उत्तम लोगों के अनुभूत तीन प्रकारके धर्मको मनसे विचारकर, सदैव ऐसा दुःख पाताथा कि कैसे मेरा बेड़ापारहो ऐसा कौनसा कर्म और स्थान है जिसका सेवनकरूं किसी बातमें पूरा निश्चय नहीं होता था, एक समय कोई बड़ा सावधान अ-

तिथि ब्राह्मण जोकि उत्तमधर्मका ज्ञाताथा उसदुःखी ब्राह्मण के समीप आया उसने बड़ी भक्तिसे उसका शिष्टाचार किया और उनको प्रसन्नकर आनंद से बैठाकर यह बचन कहा ६२॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिएकोनाशीतितमोऽध्याय. १७९॥

# एकसौ अस्सीका अध्याय॥

ब्राह्मण ने कहा हे निष्पाप मैं तेरेमीठे बचनों से तेरेबशमें हूं तुममेरे मित्र हो अब मैं जो कुछ कहूं उसको सुनो हे वेदपाठियों में उत्तम मैं गृहस्थआश्रम को अपने पुत्र के आधीन करके मोक्षधर्म में प्रवृत्तहोना चाहता हूं और मुझ को वह मार्ग बताइये, मैं अकेलाही आत्माका आलंबनकर आत्मामें नियत होकर संन्यास आश्रमको धारण किया चाहताहूं परंतु इंद्रियों के जालमें फँसे हुए होने से उसको नहीं चाहताहूं जबतक पुत्रके स्नेह कर्म में फँसकर मेरी अवस्था ब्यतीतहो तबतक परलोक संबंधी पाथेय अर्थात् परलोक के मार्गका भोजनादि पदार्थ प्राप्त किया चाहता हूं, इस ब्रह्माण्डके बीच मुझ संसार से पार उतरनेवाले का बिचार हुआ है कि धर्मरूप नौका किस आश्रम में है संसारमें देवताओं को कर्म में प्रवृत्त और पीड़ामान बिचारता सृष्टि में ऐसे फैले हुए रोगों को जोकि यमराजकी पताकाके दण्डरूप हैं देखताहूं और भोजन के समय संन्यासियों को दूसरे के घरमें भिक्षा मांगनेवाला देखकर इस संन्यास धर्म में भी प्रवृत्त नहीं होताहूं हे अतिथि इसी कारण बुद्धिबल में नियत धर्म के द्वारा मुझको धर्म में प्रवृत्तकरो उसज्ञानीअतिथि ने उसधर्मका वर्णन करनेवाले ब्राह्मण के बचनको सुनकर बड़ी मधुरतासे इस स्वच्छ बचन को कहा कि इसस्थानपर मैं भी मोहको पाताहूं मेराभी यही मनोरथ है कि अनेक द्वारयुक्त स्वर्ग होनेपरपूरे निश्चयको नहींपाताहूं कोईमोक्षकी प्रशंसा करते हैं कोईयज्ञके फलको उत्तम कहते हैं कोई बानप्रस्थ धर्म में कोई गृहस्थाश्रम में नियत हैं कोई राजधर्म संबंधी धर्मको कोई आत्मफल संबंधी धर्मको कोई गुरुधर्म संबंधी कर्मको कोई शांतचित्तीयधर्मको और कोई मातापिताको सेवन करतेहुए स्वर्गकोगये कोई हिंसारहित सत्यताके द्वारा स्वर्गको गये,कोई युद्धमें लड़कर मरनेवाले स्वर्गकोगये कोई पुरुष उंछवृत्तीसे शुद्ध कोईपुरुष स्वर्ग मार्गमें प्रवृत्त कोई वेदपाठी वेदब्रतमें नियतबुद्धिमान् तृप्त आत्मा जितेंद्री उत्तम पुरुष स्वर्ग को गये शुद्धस्वभाव शुद्ध अन्तःकरण प्रतिष्ठावान् सत्यवादी और ऐसे भी मनुष्य जो कुटिल पुरुषों के हाथसे मारेगये स्वर्ग में आनन्द करतेहैं इसप्रकार बहुत प्रकार के लोकों और धर्मके बड़े २ द्वारोंसे मेरीभी बुद्धि ऐसी ब्याकुल हुई है जैसे बायुमे बादल अस्तब्यस्त होजाते हैं १६॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिअशीतितमोऽध्यायः १८०॥

# एकसौ इक्यासी का अध्याय ॥

अतिथिने कहा कि हे ब्राह्मण जैसा मेरेगुरूने उपदेश किया है वैसाही मैं तुमसे वर्णन करताहूं प्रथम अर्थ तत्त्वको कहता हूं उत्पत्तिके समय में जिस नैमिषारण्य क्षेत्रके गोमती के तटपर धर्मचक्र वर्त्तमानहुआ वहां नागाह्वय नाम एक नगरथा जहां राजाओं में श्रेष्ठ मान्धाताने यज्ञकरके इन्द्रको बिजय किया अथवा स्वाधीन कियाथा वहांपर पद्मनाभ नागनाम से प्रसिद्ध महाभाग धर्मात्मा सर्प निवास करता है हे विप्रेन्द्र कर्म उपासना ज्ञान इन तीन प्रकारके ज्ञान में प्रवृत्तहोकर वह सर्प मनबाणी कर्म से सबजीवों को प्रसन्न करता है और साम दाम दण्ड भेद इन चारप्रकारके नीति बिचार से अर्थ के मूलको जानकर कुटिलता रहित सत्यताको प्रतिपालन करता है अर्थातसत्य बक्ताको अभय और दुष्टको दण्ड देताहै तुम उसके समीप जाकर अपनेप्रयोजनका प्रश्न बुद्धिके अनुसार उससे कहनेको योग्यहो वह सत्यबक्ताधर्मात्मा अतिथियोंका पूजन करनेवाला नागबुद्धि और शास्त्र में कुशल सर्वज्ञ और अनेक गुणोंसे पूर्ण है और स्वभावसे सदैव जलके समान निर्मल अहर्निश जपमें प्रवृत्त तप और शान्ति से शोभित श्रेष्ठ आचरणवान् ईश्वरका पूजन करनेवाला महादानी सन्तोषरूपी उत्तम ब्रतमें नियत सत्यवक्ता किसीके गुण में दोष न लगानेवाला जितेन्द्री और प्रसन्न चित्त है, देवता पितृ आदि से शेष अन्नादि भोजनका करनेवाला सबसे प्रियभाषी उपकार और सत्यता संयुक्त दूसरे के शुभाशुभ कर्मोंका जाननेवाला शत्रुतारहित दूसरेके अभीष्टमें प्रवृत्त गंगाजलके समान शुद्ध कुलवालाहै ११ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिएकाशीतितमोऽध्यायः १८१ ॥

# एकसौ बयासीका अध्याय ॥

ब्राह्मणबोला कि मैंने आपसे दूसरे का निश्चय और दृढ़ता करानेवाला बचन सुना यह ऐसा है जैसे कि किसी भारधरेहुये मनुष्यका भार उतारलेना और मार्ग में किसी थकेहुए का सोरहना अथवा थकेहुए को आसन देना प्यासेको जल और भूखेको अन्नका देना होता है, समयपर भूखे अतिथिको मनमाना भोजन मिलना और जैसा वृद्धपुरुषकापुत्र प्रसन्नताका देनेवाला होताहै अथवा जैसे मन से बिचार कियेहुए की प्रीति और मित्रका दर्शन आनन्ददायक होताहै उसीप्रकार आपने जो बचन कहे वहमुझको अत्यंत प्रसन्नताके देनेवाले हैं, अब तुमने बिज्ञान बचन से जो यह उपदेश मुझको किया उसको मैं आकाश में दृष्टि करनेवाले के समान देखता और शोचता

हूं हे साधो आप आनन्द पूर्वक निवास करके प्रातःकाल जानेका बिचार करियेगा आजकी रात्रि मेरेसाथ में सुखपूर्वक निवासकरो और जैसी आपने आज्ञाकी है वैसाही मैं करूंगा इससमय सूर्यनारायण अस्तंगत होनेवाले हैं, भीष्मजी बोले हे शत्रुहंता तब वह अतिथि उसके शिष्टाचार को पाकर रात्रि भर उसीके समीपरहा और आनन्द से चौथे धर्मका वर्णन करतेहुए दोनों ने जब वह रात्रि व्यतीतकी तब प्रातःकाल होतेही ब्राह्मणने उस अतिथिको अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूजा तदनन्तर वह कर्म का निश्चय करनेवाला अपने भाई बेटेस्त्री आदिसे पूछकर शुभकर्म में निश्चय करनेवाला ब्राह्मण अतिथि के बतायेहुये उस सर्पराज के स्थानको चला ११ ॥

इतिश्री.महाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिद्वयशीतितमोऽध्यायः १८२ ॥

# एकसौ तिरासीका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि वह ब्राह्मण अपने स्थान से चलकर मार्ग के अनेक विचित्र बन पर्व्वत तीर्थ नदी सरोवरोंको देखताहुआ चला २ किसी मुनिके पास पहुँचा तो उस ब्राह्मणने उस अतिथिके बताये हुए नागके स्थानको उस मुनिसे पूछातो वह इसके बचनको सुनतेही चल दिया, उसअर्थके जाननेवाले ब्राह्मणने नागके स्थानपर पहुंचकर हे अमुकनाग ऐसा सुन्दर बचन कहा कि मैं अमुक ब्राह्मणहूं इसके इस बचनको सुनतेही धर्मचारिणी पतिव्रता नागपत्नीने आकर उसब्राह्मणको दर्शन दिया और सुन्दर व्रतमें प्रवृत्त उसनागकी पत्नीने बुद्धिकेअनुसार धर्म्म पूर्व्वक उसब्राह्मणका सत्कार पूर्व्वक पूजन किया और कुशल मंगल पूछकर बोली कि क्या आज्ञा है, ब्राह्मणने कहा कि मैं तेरे इस स्वच्छ पवित्र सुन्दर वचनों से ही आनन्द युक्त होकर उस उत्तम नाग देवता का दर्शन करना चाहताहूं यही मेरा प्रथम उत्तम कार्य्य है इसीमें मेरेमनकी परम इच्छाहै इसीप्रयोजनसे मैं सर्पराजके आश्रम को आया हूं, नागकी भार्य्या बोली हे ब्राह्मण वह मेरा पति चारमहीने से सूर्य्य देवता का रथ धारण करनेको गयाहै सो तुमको निस्सन्देह पन्द्रह दिन पीछे दर्शन देगा मैंने अपने पतिके परदेश जानेका यह कारण तुमसे बर्णन किया इसके सिवाय जो आपकी आज्ञा सेवाहो उसको हमसे कहिये वही हमकरें, ब्राह्मणने कहा हे साध्वी देवी मैं उसीसे मिलनेको आयाहूं और उस नागराज की बाटदेखता हुआ इस महाबन में निवास करूंगा तुम मेरी यह प्रार्थना नागराज से कहने के योग्यहो कि मेरे संग स्नेहकरें, मैंभी सामान्य आहार करनेवाला उसके आने के समयतक गोमती के सुन्दर पुलिनमें उसकी बाट देखूंगा, तदनन्तर वह वेद पाठियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण बारबार उसनाग

पत्नीको बिश्वास देकर उक्तनदी के पुलिन अर्थात् रेतके टीलेपर गया १२ ॥
इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरित्र्यशीतितमोऽध्यायः १८३ ॥

# एकसौचौरासीका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि हे नरोत्तम तब वह सर्पिणी उसतपस्वी ब्राह्मणके निराहार निवासकरने से महादुःखित हुई और उस नागके भाई बन्धु बेटे आदिभी सब इकट्ठे होकर उस ब्राह्मण के पासगये और उस नदी के रेतमें निराहार निवास करते हुए जपमें प्रवृत्त उस ब्राह्मणको बैठाहुआ देखा,अतिथि पूजनमें कुशल सर्पराज के सब भाईबंधु वहां उस ब्राह्मण का बारंबार पूजन करके यह शुभ बचन बोले कि हे तपोधन यहां तुमको आये हुए छःदिन ब्यतीतहोगये हे धर्मबत्सल तुम अपने भोजनके विषयमें कुछ नहीं कहतेहो तुम हमारेपास आयेहो और हम आपके सन्मुख बर्त्तमान हैं और हमको आपका अतिथि पूजन करना उचित है क्योंकि हमसब कुटुम्बी हैं, हे द्विजन्माओं में श्रेष्ठ-ब्राह्मण तुम आहारके निमित्त मूल फल पत्र दूध अन्नआदि भोजन करने को योग्यहो, हे वनमें निवासी आहार त्यागनेवाले आपके कारण धर्मसुनने के हेतुसे यह सब बालक और वृद्ध पीड़ापारहेहैं, हमारे इसकुलमें कोईभी गृहस्थी ब्रह्महत्या करनेवाला मिथ्यावादी नहीं है और देवता अतिथि बांधवोंसे पहले भोजन करनेवाला भी कोई नहीं है, ब्राह्मण बोला कि मैंने तुम्हारे कहने से यह आहार का वचन किया कि नागके आनेमें आठदिन बाक़ी हैं, जो आठ रात्रिके ब्यतीत होनेपर वह सर्प नहीं आवेगा तब आहारकरलूंगा यहउसीके निमित्त मेराव्रतहै,शोच न करनाचाहिये जैसे आयेहो वैसेहीचलेजाओ उसके निमित्त इस मेरे व्रतको तुम खंडित करने के योग्य नहींहो, हे नरोत्तम तब उस ब्राह्मणकी आज्ञापाकर अपने मनोरथ प्राप्त किये बिना वह सब सर्प अपने २ घरको आये १३ ॥
इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिचतुरशीतितमोऽध्यायः १८४॥

# एकसौपचासीका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि इसके अनन्तर बहुत तिथियुक्त समयके व्यतीत होने पर उस काम से निवृत्त हो सूर्य्य देवताकी आज्ञालेकर वह सर्प अपने स्थान पर आया, तब उसकी स्त्री चरण प्रक्षालनादि सेवा गुणयुक्त होकर उसके पास गई सर्प ने भी उस शुद्ध साध्वी स्त्री का बड़ा सत्कार करके पूछा, कि हे कल्याणिनि पूर्व कही हुई युक्ति संयुक्त बुद्धि से देवता अतिथि आदि के पूजन में नियत हो क्योंकि वह कर्म तेरे योग्य है, हे सुन्दरी तुम स्त्री बुद्धि से प्रयोजन की सिद्धि करनेवाली होकर आलस्य से मेरे बियोग में

धर्म मर्य्यादासे पृथक्तो नहीं होगई, नागपत्नीबोली कि शिष्योंका धर्म गुरूकी सेवाहै ब्राह्मणोंका धर्म वेदका पढ़नाहै नौकरोंका धर्मस्वामीकी आज्ञाका करनाहै राजाका धर्म प्रजाका पालनाहै, इसलोकमें सबजीवोंकी रक्षाकरना क्षत्रीका धर्म कहाजाताहै वैश्योंका धर्मअतिथि पूजन और यज्ञस्मृति है अर्थात् गौसेवाआदिहै शूद्रोंकाकर्म ब्राह्मण क्षत्री वैश्यकीसेवाहै हेनागेन्द्र गृहस्थीकाधर्म सबजीवोंकी वृद्धिको चाहनाहै, गृहस्थीको योग्यहै कि सामान्य भोजन करना और सदैव बुद्धिके अनुसार व्रतकरना मुख्यकर वहधर्म जो इन्द्रियोंके संबंधसे होताहै और यह समझना कि यहांमैं किसका हूं कहांसे आया और मेराकौनहै इसप्रकार सदैव मोक्षआश्रमके बीचबड़ेकाममें श्रेष्ठ बुद्धिका लगानेवालाहोवै और भार्य्याका उत्तम धर्मपतिव्रत कहाजाताहै हे नागेन्द्र मैं तेरे उपदेशसे उसको मुख्यता समेत जानतीहूं सोमैंधर्म को अच्छे प्रकार जानतीहुई तुझधर्म्मात्माके नियतहोते उत्तम मार्गको त्यागकर कैसे कुमार्गमें चलूंगी, हेमहाभाग देवताओंकी धर्मचर्य्या नाशनहीं होतीहै मैं आलस्यरहित होकर अतिथियोंके पूजन में सदैव प्रवृत्तहूं अब यहां आनेवाले ब्राह्मणको पन्द्रहदिन हुए उसने अपना प्रयोजन मुझसेनहीं प्रकटकिया और तेरे दर्शनको चाहताहै, तेरे दर्शनका अभिलाषी तीव्रव्रतधारी वह ब्राह्मण गोमतीके पुलिनमें वेदपाठ कररहाहै, हे नागेन्द्र मुझको उस ब्राह्मणने बड़ी सत्यतासे उपदेश कियाहै कि वहसर्प जबआवै तबमेरे समीप उसको भेजना उचितहै, हे महाज्ञानी सर्प तुमको इसबचनके सुनतेही वहां जाकर उसको दर्शनदेना अवश्यहै १६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिपंचाशीतितमोऽध्यायः १८५ ॥

# एकसौछियासीका अध्याय ॥

नाग बोला हेपवित्र स्त्री तुम उसको ब्राह्मणरूपसे कौन जानतीहो केवल मनुष्य ब्राह्मण जानतीहो वा देवता समझतीहो हे यशस्विनी वहकौन मनुष्य मेरे दर्शनका अभिलाषी और समर्थहै और देखनेपर कौनसी आज्ञाके साथ वचनको कहेगा २ हे भामिनी निश्चय करके देवता असुर और देवऋषियों में नागलोग बड़ेपराक्रमी दिव्यगंध धारण करनेवाले और वेगवान् होतेहैं और बन्दनाके योग्यहोकर बरकोभी देनेवालेहैं और हमभी उनके समान अथवा उनके अनुगामीहैं वहनाग मुख्यकरके मनुष्योंको नहीं दर्शन देसक्ते यह मेरामतहै, नागभार्य्या बोली हे वायुभक्षी महाक्रोधी मैं सत्यतासे जानती हूं कि देवता नहीं है इसके विषयमें इसप्रकार जानतीहूं कि वह भक्तपुरुष है और अपने निजकामका चाहनेवाला तेरे दर्शनको इस प्रकारसे चाहनेवाला

है जैसे कि स्वातिके जलका प्यासा पपीहा वर्षनेवाले बादलकी बाटको देखे, वह तेरे दर्शनके कियेबिना किसी दुःखरूप विघ्नको नहीं मानताहै उत्तम कुलमें जन्म लेनेवाला कोई अन्यसर्पभी किसी अतिथिको त्यागकरके अपने घरमें नहींबैठरहताहै सोतुम देहजन्य क्रोधको त्यागकरके उसके देखने को योग्यहो अब उसके अभीष्ट नष्टकरनेसे तुम अपनेको नष्टमतकरो, राजा अथवा राजकुमार आशावान् अपने आश्रितोंके अश्रुपातन पोंछकर भ्रूणहत्या को प्राप्तहोता है मौनतासे ज्ञानकी प्राप्ति है और दानसे बड़ी शुभ कीर्त्ति होती है और सत्य बोलने से वाणी प्रसन्नहोती है और परलोक में प्रतिष्ठा होतीहै, भूमि दान करनेसे आश्रमके समान गतिको प्राप्तकरताहै और न्याय से धनसंचय करके उसके फलको भोगताहै, सबके अंगीकृत पक्षपात रहित अपनेहित करनेवाले धर्म को करके कोई भी नरकको नहीं जाताहै यहबातें धर्म की जानी हुई हैं, नाग बोला अहंकारादिक से मेरा क्रोध नहीं है मेरे उत्पत्ति दोषसे मुझको बड़ा क्रोधहै हे साध्वि तुमने अपने वचनरूप अग्नि से उस मेरे क्रोधको भस्म करदिया जो संकल्पसे उत्पन्नहुआथा, हे साध्वी मैं क्रोधसे अधिक कोई बुरादोष नहीं समझताहूं सर्पहीमें विशेष करके वह क्रोधरूप निन्दा होतीहै, इन्द्रसे ईर्षा करनेवाला वह महाप्रतापी रावण क्रोधके वशीभूत होकर रामचन्द्रजीके हाथ से मारागया, राजा कार्त्तिवीर्य्य के पुत्रादिक महलों से बछड़ों को परशुराम करके लेजाना सुनकर अपने क्रोध से व्याकुलहोकर मारेगये इन्द्रकी समानता रखनेवाला महापराक्रमी कार्त्तिवीर्य्य जिसका दूसरानाम सहस्रार्जुन भी है वह भी क्रोधकेही कारण जमदग्निजी के पुत्र परशुरामजी के हाथसे मारागया, मैंने तेरे वचनको सुनकर यह तप और अनेक कल्याणों का नाश करनेवाला क्रोध अपने स्वाधीन किया,हे विशालाक्षी मैं अधिकतर अपनी प्रशंसा करताहूं उसी मुझ अवगुणी सर्प की तुमगुणवान् भार्य्याहो, मैं वहीं जाताहूं जहां वह ब्राह्मण नियतहै और सब प्रकारसे यहीवचन नागिन से कहा कि वह ब्राह्मण अपने मनोरथको प्राप्त करके ही जायगा ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धे शतोपरिषष्ठाधिकाशीतितमोऽध्यायः १८६ ॥

## एकसौ सत्तासीका अध्याय ॥

भीष्मजी बोले कि वह सर्प उसीब्राह्मण को मनसे ध्यान करता हुआ उसके मनोरथको बिचारता अपनी सर्पगतिसे उस ब्राह्मणके पास पहुंचा हे राजा स्वभावसे धर्मवत्सल बुद्धिमान् वह नागेन्द्र उसके समीप पहुँचकर यह मीठे वचन बोला कि हे ब्राह्मण मैं तुमको सन्मुख करके कहताहूं कि तुमको

क्रोध करना योग्य नहीं है यहां किसहेतुसे आये और क्या आपका प्रयोजन है, हे ब्राह्मणोत्तम मैं सन्मुख से समीप होकर प्रीति के साथ तुम से पूछताहूं कि तुम इस एकान्तस्थान में गोमती के रेतपर किसकी उपासना करते हो, ब्राह्मण ने कहा कि पद्मनाभ सर्प के दर्शन करने को यहां मुझे आये हुएको धर्मारण्यनाम उत्तम ब्राह्मण जानो मेरा प्रयोजन उसीसे है, मैंने उसको यहां से सूर्यलोक में जाना सुना है उसी अपने सुजन मित्रकी बाट ऐसे देखरहा हूं जैसे कि खेती करनेवाले पर्जन्य नाम बर्षा के देवता बादल को देखते हैं, योगसंयुक्त सब दोषोंसे रहित होकर मैं उस वेदको पढ़ताहूं जो कि दुःखों का दूरकरनेवाला और कल्याणों से भराहुआ है, नाग बोला कि बड़ा आश्चर्य है कि तुमसाधु और मित्रवत्सल कल्याणरूप चलन रखनेवालेहो हे महाभाग निन्दा से रहित तुम दूसरे को कृपादृष्टि से देखतेहो, हे ब्रह्मर्षि मैं वही नागहूं जैसा कि आप मुझको जानतेहो तुम अपनी इच्छानुसार आज्ञाकरो आपका क्या अभीष्ट करूं हे श्रेष्ठ ब्राह्मण मैंने अपनी स्त्री आदिसे आपका आगमन सुना है इसकारण मैं तुम्हारे दर्शनों को आयाहूं अब आप मुझको मिलेहो अपने मनोरथको सिद्ध करके जाओगे हे विश्वासयोग्य उत्तमब्राह्मण आप अपने अभीष्ट को मुझसे कहने को योग्यहैं वास्तव में हम सब आपके गुणों से बिकेहुएहैं इसहेतुसे कि आप अपने हितको छोड़कर मेरा भी भलाचाहते हैं, ब्राह्मणने कहा हे महाभाग सर्पमैं तेरे दर्शनकी अभिलाषा करके आयाहूं और प्रयोजनका न जाननेवाला मैं किसी अभीष्ट के पूछने को तुम्हारे पास आयाहूं, हे महाभाग ज्ञानी मैं बिषयोंसे रहित आत्मामें नियत होकर जीवोंके लयस्थान ब्रह्मको निश्चय करताहुआभी चलायमान चित्तहूं, तुमअपनेउन उत्तम गुणोंसे प्रकाशमानहो जोकि कीर्तिरूपकिरणोंसेयुक्त चन्द्रमाके समान आत्मा से प्रकाशितहैं, हे सर्प मुझ पूछनेवाले के जोजो प्रश्नहैं उनका तुम उत्तरदो फिरमैं अपने प्रयोजनकोभी कहूंगा आपउनके सुननेके योग्यहैं१६॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिसप्ताधिकाशीतितमोऽध्यायः १८७ ॥

# एकसौ अट्ठासीका अध्याय ॥

ब्राह्मण ने कहा कि आप समय पर सावधानी से सूर्य्य का वह रथ धारण करने को जाते हो जिसमें एकचक्र है आपने जो कुछ वहां आश्चर्य्य नवीन देखाहो उसके कहनेको योग्यहो, नागने कहा कि भगवान् सूर्य्य देवता बड़ेआश्चर्य्यों के निवासस्थान हैं तीनों लोकों के अब अभीष्टतत्त्व उसी से प्रकट होते हैं, अच्छे २ सिद्धमुनि देवता आदि जिसकी हजारों किरणों में आश्रितहोकर ऐसे निवासकरतेहैं जैसे कि इसलोकके पक्षीवृक्षकी शाखा-

ओंपर विश्राम करतेहैं, सूर्य्यमें नियत जिस बड़े भारी तेजसे अति प्रबल वायु निकलकर उसी सूर्य्यकी किरणोंमें नियतहोताहै और आकाशमें जंभाई लेता है तबबड़ा आश्चर्य होताहै, हेब्रह्मऋषि वह सूर्य्यदेवता संसारकी वृद्धिकेलिये उस वायुका रूपांतर करके वर्षाऋतुमें जलको उत्पन्न करताहै इससे अधिक कौनसा आश्चर्य है उसीके मंडलमें उत्तम तेजरूपसे नियत होकर महा प्रकाशमान अंतर्यामी परमात्मा लोकोंको देखताहै यह भी बड़ाआश्चर्य्यहै, जो देवता आठमहीनेतक अपनी पवित्र किरणों से संयुक्त होनेवाले जलको समयपर बर्षताहै इससे अधिक और आश्चर्य क्या है, जिसके प्रकाश समूहमें आप आत्मा नियत है उसीकी कृपासे यहपृथ्वी जड़ चैतन्य समेत सब औषधियों को धारण करती है, हे ब्राह्मण जिस सूर्य देवतामें महाबाहु आदि अंत रहित सनातन देवता पुरुषोत्तम नियत है इससे अधिक आश्चर्य्य क्याहै, यह एकबात आश्चर्य्य का भी आश्चर्य्य है जिसको कि तैंने निर्मल आकाश में सूर्य्यके द्वारादेखाहै उसको मैं तुमसे कहताहूं मध्याह्नके समय संसारमें सूर्यके प्रकाशमान होनेपर एक प्रकाश सूर्य्यके भीतर ऐसा तेजस्वी दिखाईदिया जो अपने तेजके प्रकाशसे सब लोकोंको प्रकाशित करता आकाश को पूर्णकरके सूर्य्यदेवताके सन्मुख जाताथा, जिसप्रकार आहुति संयुक्त अग्निप्रकाशमान होताहै उसी प्रकार अपने तेजकी किरणों से लोकोंको व्याप्त करके बाणीसेपरे दूसरेसूर्य्य रूपके समानथा,उसकेसन्मुख आनेसे सूर्य्य देवताने दोनों हाथदिये फिर उसपूजन के इच्छा करनेवालेने भी अपना दक्षिण हाथ दिया, १५ और आकाशको चीरकर किरणोंके मंडलमें प्रवेश किया और क्षणमात्र में ही वह तेज एकहोगया और सूर्य्य के रूपको प्राप्तकिया फिर दोनों तेजों के मिलजाने पर हमको यह संदेह उत्पन्नहुआ कि इन दोनोंमें वह सूर्य्य कौनसा है जो रथ में नियत होकर वर्त्तमान है हम सबने संदेहमें प्रवृत्त होकर सूर्य्य देवतासेही पूछा कि यह कौनपुरुष है जो आकाशको उल्लंघन करके दूसरे सूर्य्य के समानगया है १८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेशतोपरि अष्टाशीतितमोऽध्यायः १८८ ॥

# एकसौ नवासीका अध्याय ॥

सूर्य्यदेवताने उत्तर दिया कि यह नतो अग्नि देवताहै न कोई असुर गन्धर्व है यह उंछवृत्ती सिद्धमुनि स्वर्गको गया है, यहब्राह्मण मूल फल का आहार करनेवाला सूखेपत्तों का खानेवाला वा पूजन करनेवाला सावधानथा, इस ब्राह्मणने संहिताओंके पाठोंसे शिवजीकी स्तुति की और जिस निमित्त इसनेस्वर्गके द्वारके लिये उद्योग कियाथा उसीके हेतुसे वह स्वर्गकोगया है भुजंग

लोगो यह ब्राह्मण संसारी मनुष्योंसे न मिलनेवाला अनिच्छावान् सदैव उंछ सिलाका भोजन करनेवाला सबजीवोंकी भलाईमें प्रवृत्तथा, देवता असुर गंधर्व पन्नग इत्यादि उनजीवों के ऐश्वर्य्यको प्राप्तनहीं करसक्ते हैं जिन्होंने उत्तम गतिको पायाहै हे ब्राह्मण वहां मैंने इसप्रकारसे आश्चर्य्यको देखा, हे ब्रह्मन् अच्छेशुद्ध इस मनुष्यने चित्तकी इच्छाके अनुसार शुद्धगतिको पाया और सूर्य्यके साथ पृथ्वी पर भ्रमण करताहै, ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्व्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिनवाशीतितमोऽध्यायः १८९ ॥

# एकसौनब्बेका अध्याय ॥

ब्राह्मणने कहा कि हे सर्प बड़ा आश्चर्य्यहै और निस्सन्देह मैं प्रयोजनके अनुसार प्राप्त होनेवाले बचनोंसे बिदित कियागयाहूं, हे साधुरूप सर्प तुम्हारा कल्याणहो आपमुझको अबजानेकी आज्ञादो और आपका कोईकार्य्य मेरे करने के योग्य होयतो मुझेस्मरण करियेगा नागने कहा कि हे ब्राह्मण आप अपने हृदयके कार्य्यको कहेबिना कहांजातेहो जो करनेके योग्यहै और जिसके निमित्त तुमयहां आये हो उसको अवश्यकहो हे सुन्दर व्रतवाले ब्राह्मण उक्त अनुक्त कामके करनेपर तुममुझसे पूछकर और आज्ञालेकर यहांसे जाओगे हेमित्रब्रह्मर्षि जैसे कि कोई मनुष्य वृक्षके फललेनेके निमित्त वृक्षकेनीचे जाकर उसवृक्षको त्यागकर निष्फलजाय उसी प्रकार तुम यहां आकर अपने, अभीष्ट सिद्ध किये बिना मुझे त्यागकर जातेहो यह तुमको योग्य नहीं है, हे निष्पाप ब्राह्मण मैं तुमसे प्रीति करनेवाला हूं और तुमभी मुझपर प्रीति करते हो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है यह सबलोक आपका है आपको मेरी मित्रता करने में क्या संदेहहै, ब्राह्मण ने कहा हे बड़े बुद्धिमान् आत्मज्ञानी सर्प यह इसी प्रकारसे है किसी दशा में भी देवता तुमसे अधिक नहीं हैं अर्थात् तुम देवताओं के समानहो, जो पुरुषोत्तम सूर्य्य के भीतर वर्त्तमानहै वही तुम और हमभीहैं और जोमैंहूं वही आपहो अर्थात् हमतुममें कुछभी अन्तर नहींहै वहआत्माअद्वैतहै जिसमें हमतुम औरसबतत्त्व सदैवलयहोतेहैं हमवही ब्रह्महैं, ब्राह्मणनेकहा हेसर्पराज पुण्यसंचयमें मुझको सन्देहथा सो हेसाधो मैं मोक्षसाधन नामउंछवृत्ती ब्रतको करूंगा, यह मेरापूर्व निश्चयका श्रेष्ठ कारण नियत हुआथा सो पूर्णहुआ तुम्हारा कल्याणहो अबमुझे आपबिदा कीजिये मेरा सब मनोरथ पूर्णहुआ १० ॥

इतिश्रीमहाभारतेशांतिपर्वणिमोक्षधर्म्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिनवतितमोऽध्यायः १९० ॥

# एकसौ इक्यानबेका अध्याय ॥

भीष्मजीबोले कि हेराजातब निश्चय करनेवाला वह ब्राह्मण सर्पकी आज्ञालेकर दीक्षालेनेकी इच्छासे भार्गव च्यवनऋषिके पासगया, और भार्गव जीसे संस्कारयुक्त होकर धर्ममें प्रवृत्तहुआ और इस कथाको भी अपने गुरू च्यवनजीके सन्मुख वर्णनकिया, हेराजा तब भार्गवजीने भी राजा जनककी सभामें महात्मा नारदजी के सन्मुख इसपवित्र कथाको वर्णनकिया, हेराजेन्द्र उननारदजीने इसउत्तम कथाको इन्द्रके पूछनेपर देवसभामें वर्णनकिया, और पूर्व्व समयमें यहशुभकथा इन्द्रनेभी श्रेष्ठ ऋषियोंके सन्मुख वर्णनकी, हेराजा जब परशुरामजीसे मेरायुद्ध बड़ाभयकारी हुआ तब यहकथा बसुओंने मेरेसन्मुख वर्णनकरी हे धर्मध्वज मैंने भी यह धर्मरूप उत्तम कथा मूलसमेत तुमसे वर्णनकरी, हे राजायुधिष्ठिर जो तुममुझसे पूछतेहो वहयहीउत्तम और पवित्र धर्म्म है, जिसको करके वहबीर ब्राह्मण भी इसीब्रतमें धर्म अर्थ कामादिक से निरपेक्षहुआ, और अपने कर्ममें सर्पराजकी आज्ञापाके हिंसाआदि दोषोंसे और शोच आदि दुःखोंसे रहित सहनशील होकर उंछशिलको निर्बाहमात्र भोजन करनेवाला होकर बनमेंजाके पूर्व्वोक्त उत्तम गतिको प्राप्तहुआ ६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेशान्तिपर्वणिमोक्षधर्मेउत्तरार्द्धेशतोपरिएकनवतितमोऽध्यायः १९१ ॥

मुंशी नवलकिशोर ( सी,आई,ई ) के छापेखाने मुक़ाम लखनऊ में छपी
अक्टूबर सन् १८९५ ई० ॥

## भविष्यपुराण ॥

श्रीपंडित दुर्गाप्रसाद जयपुर निवासी कृत भाषा है-इसमें पौराणिक इतिहास, चारोंवर्णोंके धर्म, स्त्रीशिक्षा व परीक्षा,व्रतोंके उद्यापन, शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की उत्पत्ति, होनेवाले राजाओं का राज्य समय, गर्भिणी के धर्म, धेनुदान विधान, जलाशय, देवालय बनाने और वृक्ष लगाने का फल और सब प्रकारके दानों का माहात्म्य आदि वर्णन किये गयेहैं ॥

## शिवपुराण भाषा ॥

इसका पंडित प्यारेलालजी ने उर्दू से हिन्दी भाषा में भाषानुवाद किया है इसमें शिवजी के निर्गुण सगुण स्वरूप का वर्णन, सतीचरित्र, गिरिजा चरित्र, स्कन्दकथा, युद्धखण्ड, काश्युपाख्यान, शतरुद्रिखण्ड, लिंगखण्ड, रुद्राक्ष व भस्ममाहात्म्य, व्रत विधि, भूगोल, खगोल व आदिमें छवों शास्त्रों के मतकी भूमिका भी संयुक्त कीगई है ॥

## स्कन्दपुराणका सेतुमाहात्म्यखण्ड ॥

पंडित दुर्गाप्रसाद जयपुर निवासीका भाषाहै इसमें सेतुबन्धका माहात्म्य वहां के सब तीर्थों का वैभव, महालयश्राद्ध का माहात्म्य, नरकों व रामेश्वर महादेव का वर्णन इत्यादि बहुतसी कथायेंहैं ॥

## ब्रह्मोत्तरखण्ड भाषा ॥

जिसको पंडित दुर्गाप्रसाद जयपुर निवासी ने स्कन्दपुराणान्तर्गत संस्कृत ब्रह्मोत्तरखण्ड से देशभाषा में रचा जिसमें अनेक प्रकार के इतिहास और सम्पूर्ण व्रतों के माहात्म्य आदि वर्णित हैं ॥

## बारहोस्कन्ध श्रीमद्भागवत ॥

इसके भाषा टीका को श्रीअंगदशास्त्री जी ने अक्षर अक्षर के अर्थ को ललित ब्रज बोलीमें रचना कियाहै यह टीका ऐसा मनोहर हुआहै कि जिसकी सहायता से थोड़ा भी जाननेवाला भागवतको अच्छीतरहसे समझ सक्ताहै यह पुस्तक प्रत्येक विद्वान् के पास रहनी चाहिये क्योंकि भागवत बड़ा कठिन पुराण है बिना ऐसे सहज भाषा टीकाके सबको श्लोकार्थ नहीं समझ पड़ता है इसका मूल बीच में और भाषा टीका नीचे ऊपर रखकर अत्यन्त शुद्धतासे पत्रेनुमा छपा है कागज़ हिनाई है और छापा पत्थर है ॥

## बृहन्नारदीयपुराण ॥

पंडित देवीसहाय शर्मा नारनौल निवासीकृत भाषा है- जिसमें श्रीनारद जी और सनत्कुमार सम्वाद द्वारा श्रद्धाभक्ति निरूपण, भगवद्भक्ति माहात्म्य वर्णन उत्तम तीर्थों का निरूपण सगरवंशी सौदास राजा की कथा, श्री गंगाजी की उत्पत्ति, राजा बलिका वृत्तान्त, दान विधि का निरूपण, व्रतों और श्राद्धों का विधान, तिथिनिर्णय, प्रायश्चित्त विधान, यममार्ग का निरूपण, संसारके दुःखों का कथन, मोक्षोपाय वर्णन, वेद माली और तिसके पुत्र यज्ञमाली व सुमाली की कथा और विष्णुजी के चरणोदक का माहात्म्य इत्यादि कथा वर्णित हैं ॥

## सुखसागर ॥

सुखसागरों का तर्जुमा पंजाबके रहनेवाले बाबू मक्खनलालजीने किया है इस सुखसागर में बहुतही मोटेहरूफ़ और अत्यन्तही उम्दा तसवीरें इत्यादि सब सामान है कि जिसकी तारीफ़ नहीं होसक्की देखनेही से हाल मालूम होगा ॥

## गणेशपुराण भाषा ॥

इसको मुंशी नवलकिशोरकी आज्ञानुसार नारनौल निवासी पंडित देवीसहायजी ने संस्कृतसे श्लोक २ का देशभाषा में उल्था कियाहै इस में गणेशजीका सम्पूर्ण चरित्र विस्तारपूर्वक तथा और भी अनेक विषय वर्णितहैं

## श्रीबाराहपुराणपूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध ॥

जिसका जयपुर निवासि पंडित माधवप्रसादजी ने मुंशी नवलकिशोर जी के व्यय से संस्कृतसे देवनागरी में भाषा किया और पंडित दुर्गाप्रसाद और पंडित सरयूप्रसादजीने शुद्ध कियाहै इसमें श्रीभगवान् बाराह नारायण ने धरती से चौबीसहजार श्लोकों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होने के लिये इतिहास संयुक्त कथायें वर्णन की हैं ॥

## गरुड़पुराण ॥

इस में २४ अध्याय प्रेतकल्प के बीच में मूल और नीचे ऊपर भाषा टीका रखकर छापेगये हैं जिसमें सम्पूर्ण प्रेतही का कर्म है और प्रेतही की सम्पूर्ण षोड़शी सापिंडन शांति वृषोत्सर्ग इत्यादि क्रिया भी विस्तार पूर्वक वर्णितहैं॥

# महाभारत भाषा

## अश्वमेध पर्व

जिसमें

श्रीकृष्णचन्द्रके उपदेशसे अर्जुन व भीमसेन व नकुल व सहदेव को चारों दिशाओंमें जाकर सम्पूर्ण राजाओंको युद्धमें पराजय करना और अश्वमेध करनेकेलिये द्रव्यलाना और कृष्णचन्द्र व भीमसेन व अर्जुनको जरासंधके स्थानपर जाकर उससे युद्धदान मांगना और भीमसेनसे नाशहोना पश्चात् राजा युधिष्ठिरको अश्वमेध यज्ञकरना इत्यादि कथायें वर्णित हैं ॥

जिसको

श्रीभार्गववंशावतंस सकलकलाचातुरीधुरीण मुंशी नवल किशोरजी (सी, आई, ई) ने अपने व्ययसे आगरापुर पीपलमण्डी निवासि चौरासियागौड़वंशावतंस पण्डित कालीचरणजी से संस्कृत महाभारतका यथातथ्य पूरे श्लोक श्लोक का भाषानुवाद कराया ॥

दूसरी बार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा मार्च सन् १८९८ ई० ॥



१२ जुज़ ४ वर्क़

इस यन्त्रालय में जितने प्रकार की महाभारतें छपी हैं
उनकी सूची नीचे लिखी है ॥

# महाभारतदर्पण काशीनरेशकृत ॥

जो काशीनरेशकी आज्ञानुसार गोकुलनाथादिक कवीश्वरोंने अनेकप्रकार के ललित छन्दों में अठारहपर्व्व और उन्नीसवें हरिवंश को निर्माण किया यह पुस्तक सर्बपुराण और वेदका सारहै बरन बहुधालोग इस बिचित्र मनोहर पुस्तकको पंचमवेद बताते हैं क्योंकि पुराणान्तर्गत कोई कथा व इतिहास और वेद कथित धर्माचार की कोई बात इससे छूट नहीं गई मानो यह पुस्तक वेदशास्त्र का पूर्णरूपहै अनुमान ६० वर्षके बीते कि कलकत्ते में यह पुस्तक छपीथी उस समय यह पोथी ऐसी अलभ्य होगई थी कि अन्त में मनुष्य ५०) रु० देनेपर राज़ी थे पर नहीं मिलतीथी पहले सन् १८७३ ई० में इस छापेखाने में छपीथी और क़ीमत बहुत सस्ती याने वाजिबी १२) थे जैसा कारख़ानेका दस्तूरहै ॥

अब दूसरीबार डबलपैका बड़े हरफ़ों में छापी गई जिसको अवलोकन करनेवालों ने बहुतही पसन्द कियाहै और सौदागरी के वास्ते इससे भी क़ीमतमें किफ़ायत होसक्की है ॥

इस महाभारतके भाग नीचे लिखे अनुसार अलग २ भी मिलते हैं ॥

पहले भाग में ( १ ) आदिपर्व्व ( २ ) सभापर्व्व ( ३ ) बनपर्व्व ॥

दूसरे भाग में ( ४ ) विराटपर्व्व ( ५ ) उद्योगपर्व्व ( ६ ) भीष्मपर्व्व ( ७ ) द्रोणपर्व्व ॥

तीसरे भागमें ( ८ ) कर्णपर्व्व ( ९ ) शल्यपर्व्व ( १० ) सौसिकपर्व्व ( ११ ) ऐषिक व विशोकपर्व्व ( १२ ) स्त्रीपर्व्व ( १३ ) शान्तिपर्व्व राजधर्म्म, आपद्धर्म्म, मोक्षधर्म्म ॥

चौथेभाग में ( १४ ) शान्तिपर्व्व दानधर्म्म व अश्वमेधपर्व्व ( १५ ) आश्रमवासिकपर्व्व ( १६ ) मौसलपर्व्व ( १७ ) महाप्रस्थानपर्व्व ( १८ ) स्वर्गारोहण व हरिवंशपर्व्व ॥

# अथ महाभारत भाषा अश्वमेधका सूचीपत्र प्रारम्भः ॥

इतिमहाभारत भाषा अश्वमेध का सूचीपत्र समाप्तम् ॥

# महाभारतभाषा अश्वमेधपर्व्व ॥

## मंगलाचरणम् ॥

श्लोक ॥ नव्याम्भोधरवृन्दवन्दितरुचिं पीताम्बरालंकृतम् प्रत्यग्रस्फुटपुण्डरीकनयनंसान्द्रमुदास्पदम् ॥ गोपीचित्तचकोरशीतकिरणं पापाटवीपावकम् स्वाराणमस्तकमाल्यलालितपदं वन्दामहेकेशवम् १ याभातिवीणामिवबादयन्ती महाकवीनांवदनारविन्दे ॥ साशारदाशारदचन्द्रबिम्बा ध्येयप्रभानःप्रतिभांव्यनक्तु २ पांडवानांयशोवर्ष्म यकृष्णमपिनिर्मलम् ॥ व्यधायिभारतं येन तंवन्देबादरायणम् ३ विद्याविदग्रेसरभूपणेन विभूष्यतेभूतलमद्ययेन ॥ तंशारदालब्धवरप्रसादं वन्देगुरुंश्रीसरयूप्रसादम् ४ विप्राग्रणीगोकुलचन्द्रपुत्रः सविज्ञकालीचरणाभिधानः ॥ कथानुगंमंजुलमश्वमेध भाषानुवादंविदधातिसम्यक् ५ ॥

अथ अश्वमेधपर्व्वप्रारम्भः ॥

नारायण को अर्थात् पुरीरूप शरीरोंमें निवास करनेवाले चिदात्माको नरोंमें उत्तम नरको और सरस्वती देवीको अर्थात् तीनोंस्वरूप जीव ईश्वर और ब्रह्म को प्रकट करनेवाली देवीको नमस्कार करके उसके जयनाम महाभारतको अर्थात् वेद और स्मृतियों के सारको कीर्त्तनकरे १ अश्विनीकुमारोंकी प्रशंसाके पीछे अष्टावक्रके आख्यान में वेदान्त विद्याको संक्षेप से वर्णन किया सनतसुजातिमें उसकी टीकाकरी और गीता में उसको पूरा पूरा वर्णन किया मोक्षधर्म में नानाप्रकारके इतिहासोंसे आत्मतत्त्व को वर्णन किया फिर जिज्ञासूके चित्त की पवित्रता के लिये उसपर कृपाकरके जप दानादिक वर्णन किये जहांपर बड़ेभारी लाभ और वैराग्य उदय होनेके निमित्त कौरवोंका नाश वर्णन कियाहै अब इस पर्व में तीन आख्यानोंसे वेदान्त विद्याका वर्णन करतेहैं वह आख्यान यहहैं प्रथम सम्वर्त्तस्मृति दूसरे श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरकी वार्त्तालाप तीसरे श्रीकृष्ण अर्जुनका प्रश्नोत्तर इनमेंसे प्रथम में काशीजीके मध्यमें मरनेकी मुक्ति

प्रकट करेंगे कि ईश्वरके पूजनादि धर्मोंसे धनको पाकर चित्तकी पवित्रताके अर्थ यज्ञकरना चाहिये दूसरे आख्यान में शास्त्रार्थ बर्णन करेंगे और तीसरे में उस की टीका करेंगे इसके पीछे उञ्छवृत्ती उत्तंक आदिक आख्यानों से ज्ञानकी उपकारी गुरुसेवाके माहात्म्य और हिन्सात्मक यज्ञादिकी निन्दा आदिक को बर्णन करेंगे बैशंपायन बोले कि व्याकुल चित्त महाबाहु युधिष्ठिर उस जलदानादिक्रियासे निवृत्तहो राजाधृतराष्ट्रको आगे करके जल से बाहर निकले २ अश्रुपातों से व्याकुल नेत्रवाला बीर युधिष्ठिर निकलकर गंगा के किनारे पर ऐसे गिरपड़ा जैसे कि बधिक के हाथ से घायल होकर हाथी गिरपड़ताहै ३ श्रीकृष्णजीकी प्रेरणा से भीमसेन ने उस पीड़ामान युधिष्ठिर को पकड़ लिया और शत्रुओंकी सेनाके पीड़ा देनेवाले श्रीकृष्णजी ने युधिष्ठिरसे कहा कि तुम इसप्रकार पीड़ा न करो ४ हे राजा सब राजाओंने उस धर्मपुत्र युधिष्ठिर को पीड़ित पृथ्वीपर गिराहुआ बारंबार श्वासोंका लेनेवाला देखा ५ फिर पुत्रों के शोक से पीड़ामान बड़े ज्ञानी बुद्धिरूप नेत्र रखनेवाले राजाधृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से यह बचन कहा ६ कि हे कौरव्य कुन्तीके पुत्र उठो और करनेके योग्य कर्मोंको निस्सन्देह होकर करो तुमने इस पृथ्वीको क्षत्रीधर्मसे बिजय कियाहै ७ हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर तुम भाइयों और सुहृदों समेत इस पृथ्वीकोभोगो मैं तेरे शोचके योग्य किसीबातको नहीं देखताहूं ८ हे महीपति मुझको और गान्धारीको शोचकरना उचितहै क्योंकि जिनके सौ पुत्र ऐसे नाश होगये जैसे कि स्वप्न का पायाहुआ धन नाश होजाता है मैं दुर्बुद्धी उस वृद्धि चाहनेवाले महात्मा बिदुरजीके उन बचनोंको जिनके अर्थ और आशय बहुत बड़ेथे न सुनकर इन दुःखोंकोपारहाहूं ९। १० दिव्यदर्शन धर्मात्मा बिदुरने जो मुझसे कहा था कि तेरा सबकुल दुर्योधनके अपराधसे नाशको प्राप्तहोगा ११ हे सूक्ष्मदर्शी राजा जो तू अपने कुलकी कुशल चाहताहै तो मेरे बचनको कर कि इस दुर्बुद्धी अभागे राजादुर्य्योधनको त्यागकरना योग्यहै १२ कर्ण और शकुनीको तुम कभीभी मतदेखो और इन दुराचारियों के अत्यन्त द्यूत को उनके प्रबादों समेत रोको १३ धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर को राज्याभिषेक कराओ वह जितेन्द्री होकर इस पृथ्वी को पालन करेगा १४ और जो तुम इस कुन्तीके पुत्र राजायुधिष्ठिरको नहीं चाहतेहो तो मेधीभूत होकर तुम आपही राज्यकोलो १५ हे राजा

भाइयों समेत सब बिरादरी के लोग तुझ सब जीवमात्रों में समान कर्म करने वाले के पीछे अपनी अपनी जीविका पूर्व्वक निर्वाह करेंगे १६ हे कुन्तीके पुत्र उस दूरदर्शी बिदुरके बचनोंको तिरस्कार करके मैं पापी दुर्य्योधनकी बुद्धि के अनुसार कर्म करनेवाला हुआ १७ मैंने उस बड़े बिद्वान् दूरदर्शीके बचनों को न सुनकर और बड़े दुःख रूप तुझको पाकर शोकसमुद्र में डूबाहूं १८ हे राजा युधिष्ठिर अब तेरे दोनों पिता माता वृद्धहैं हम दोनों दुखियाओं को देखो और तुमको इस स्थानपर शोच करना न चाहिये १६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिप्रथमोऽध्यायः१ ॥

# दूसरा अध्याय ॥

बैशंपायनबोले कि राजाधृतराष्ट्र से इसप्रकार बैराग्य प्राप्त होनेके सिद्ध करनेकी बातोंको सुनकर वह बुद्धिमान् युधिष्ठिर मौन होगया इसके पीछे केशव जीने उससे कहा १ कि हे राजा मनसे किया अत्यन्त शोकउसके पूर्व्व मरेहुये पितामहादिकों को दुःख देताहै २ इसहेतु से पूर्ण दक्षिणावाले नानाप्रकार के अनेक यज्ञोंसे पूजनकरो और अमृतसे देवताओंको तृप्त करके स्वधासे पितरों को तृप्त करो ३ खानपान की बस्तुओं से अतिथियों को अकिंचन महात्माओं को और अन्यलोगों को अभीष्ट दानों से तृप्त करो तुमने जाननेके योग्यको जाना और करनेके योग्यको भी किया ४ और श्री गंगाजी के पुत्र भीष्मपितामह, ब्यास, नारद और बिदुरजीसे सब राजधर्मोंको भी सुना ५ तुम अज्ञानों की इसरीति पर कर्म करने को योग्य नहींहो अपने बाप दादोंके चलन रीतिपर नियत होकर राजधर्मके भारको अपने ऊपर धारणकरो ६ उत्तम कीर्त्तिसे युक्त क्षत्रियोंके समूह निस्सन्देह स्वर्ग को गये और शूरबीरों में से भी यहां युद्ध में कोई पराङ्मुख नहीं हुये ७ इससे हे महाराज आप शोकको दूरकरो यह ऐसाही होनेवालाथा जो इस युद्धमें मारेगये उनको तुम फिर किसी प्रकार से भी नहीं देखसक्ते ८ महातेजस्वी गोविन्दजी युधिष्ठिरसे इतना कहकर मौन हुये तब उस युधिष्ठिर ने उनसे कहा ६ कि हे गोबिन्दजी मुझ में आपकी जो प्रीति है वह मुझ को ज्ञात है आप प्रीति और शुभचिन्तकता से सदैव मुझपर करुणा पूर्व्वक दया करते हो १० हे श्रीमान् चक्र गदाधारी यादवनन्दन मेरा सब प्रकार

का उत्तम कल्याण आपहीके करनेसे हुआहै और होगा ११ आप अपनी प्रसन्नतासे मुझको तपोवन में जाने की आज्ञा दो क्योंकि मैं पितामह को मारकर शांतिको नहींपाताहूं १२ युद्धोंमें पराङ्मुख न होनेवाले पुरुषोत्तम कर्णको मारकर शान्तिको नहीं देखताहूं हे जनार्दनजी जिसकर्मके द्वारा इन सब पापों से मैं छूटजाऊं १३ उसको कर्मसेहीकरो जिससे कि मेराचित्त पवित्रहोजाय तब महाधर्मज्ञ तेजस्वी बिश्वास देनेवाले व्यासजी ने उस इसप्रकार कहनेवाले १४ राजायुधिष्ठिरसे यह सार्थक और कल्याणकारी बचन कहा कि हे तात तेरी बुद्धि ठीकनहीं है फिर तू अपनी बालकपनेकी बुद्धिसे मोहको पाता है १५ कैसी २ मूर्त्ति और चेष्टावाले हमलोग तुझको बारंबार समझातेहैं वह क्षत्रीधर्म्म भी तुम जानतेहो जिन्हों की जीविका युद्धसे है १६ इसप्रकार के कर्म करनेवाले राजा मानसी शोकों में नहीं फँसते हैं और जैसे प्रकारके सब मोक्षधर्म हैं उन सबप्रकारोंको भी तुमने सुनाहै १७ मैंने तेरी इच्छासे उत्पन्न होनेवाले अनेक सन्देह भी बारम्बार निवृत्तकिये निश्चय करके तू श्रद्धासे रहित दुर्बुद्धी और स्मरण शक्तिसे बिहीनहै १८ हे निष्पाप तू ऐसा मतहो ऐसा अज्ञानी होना तुमको उचित नहींहै सबप्रकारके प्रायश्चित्तोंको भी तुम जानतेहो १६ तुमने सब राजधर्म और दानधर्म सुने हे भरतवंशी सबधर्मोंके ज्ञाता और शास्त्रोंमें कुशल होकर भी तुम अज्ञानसे कैसे मोहित होरहेहो २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिद्वितीयोऽध्यायः २ ॥

# तीसरा अध्याय ॥

ब्यासजी बोले कि हे युधिष्ठिर मैं जानताहूं कि तेरी बुद्धि पूर्ण नहीं है कोई मनुष्य स्वतन्त्र होकर कर्म को नहीं करता है १ ईश्वर की प्रेरणासे यह मनुका पुत्र मनुष्य शुभाशुभकर्मों को करता है इसमें क्या बात है २ हे भरतबंशी जो तुम अपनेको पाप करनेवाला मानते हो इस स्थान में वह रीति सुनो जिस से कि पापसे छूटो ३ हे युधिष्ठिर जो मनुष्य पापोंको करते हैं वह तप यज्ञ और दानोंके द्वारा सदैव उससे छूटतेहैं ४ हे नरोत्तम राजा युधिष्ठिर पाप करनेवाले लोग यज्ञ तप और दानसे पवित्र होते हैं महात्मा देवता और असुर पुण्य के अर्थ यज्ञकर्मों में उपाय करते हैं इसीहेतु से यज्ञही रक्षा का स्थान है ५ । ६ म-

हात्मा देवतालोग यज्ञोंसेही विजयी हुये इसहेतु से यज्ञादिक करनेवाले देवता-ओं ने दानवों को पराजय किया ७ हे भरतबंशी तुम राजसूय, अश्वमेध, सर्व-मेध और नरमेध यज्ञको करो ८ नानाप्रकारकी दक्षिणा रखनेवाले बहुतसी भो-जन की वस्तु और प्रयोजन के धनसे संयुक्त अश्वमेध यज्ञ से ऐसे पूजन करो जैसे कि दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्रजी ने कियाथा ९ और जैसे कि शकुन्तला के पुत्र सम्पूर्ण पृथ्वी के राजा महापराक्रमी तेरे पितामह राजा भरत ने किया था १० युधिष्ठिर ने कहा कि निस्सन्देह अश्वमेध यज्ञ राजाओं को पवित्र कर-ता है परन्तु जो मेरे चित्तका प्रयोजन है उसको आप सुनने को योग्यहो ११ हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ज्ञातिवालों के इस बड़ेभारी विनाशको करके थोड़े दान के भी करनेको समर्थ नहींहूं क्योंकि मेरे पास धन नहीं है १२ और मैं इन अन्त-ज्वरवाले ताड़ित दुःखोंमें बर्त्तमान अनाथ और बालक राजाओं से धन मांगने में उत्साह नहीं करताहूं १३ हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मैं आप इस सम्पूर्ण पृथ्वी के लोगोंका नाश करके शोकसे पूर्ण होकर यज्ञके अर्थ किसप्रकारसे राज्यके अंश को प्राप्त करसक्ताहूं १४ हे श्रेष्ठ मुनि यह पृथ्वी और पृथ्वीभर के सब राजालोग दुर्योधन के अपराधों से हमको अपकीर्त्ति में डालकर नाश होगये १५ दुर्योधन ने राज्यके करोंके लेनेसे सब पृथ्वी को धनसे रहित करदिया और उस दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रके पुत्रका भी धनागार खाली होगया १६ इस यज्ञमें पृथ्वी का दक्षिणा में देना यह प्रथम विधिहै यह बुद्धिमानों से देखीहुईहै शेषरीति बनाईहुई है १७ हे तपोधन मैं उस बनाई रीति को नहीं करना चाहताहूं हे भगवान् आप इस स्थानपर मेरे सलाहकार होनेको योग्यहो राजा युधिष्ठिर के इन बचनोंको सुन-कर व्यासजीने एकमुहूर्त्त बिचारकर यह वचन कहा १८ । १९ हे राजा यह खाली धनागार भी धनसे पूर्ण होगा हिमालय पर्व्वत में नियत धन बर्त्तमान है २० महात्मा मरुत् के यज्ञमें ब्राह्मणों से त्याग कियाहुआ है हे कुन्तीके पुत्र उसको लाओ वही बहुत होगा २१ युधिष्ठिर ने कहा कि हे बक्ताओं में श्रेष्ठ वह धन राजा मरुत्के यज्ञमें कैसे इकट्ठा हुआ था और वह राजा किस समय में हुआ था २२ व्यासजी बोले कि हे राजा जो तुमको सुननेकी इच्छा है तो उस मरुत् का वह वृत्तान्त सुनो कि जिस समय में वह बड़ा पराक्रमी और अति धनाढ्य राजा हुआथा २३ ॥ इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिसंवर्त्तमरुत्तीयेतृतीयोऽध्यायः ३ ॥

# चौथा अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि हे निष्पाप व्यासजी उस धर्मज्ञ राजर्षिमरुत्की कथा को मैं सुना चाहताहूं उसको आप कृपा करके बर्णन कीजिये १ व्यासजी बोले हे तात सत्युगमें दण्डधारी प्रभु मनुजी हुये उनका पुत्र महाबाहु प्रसन्धी नामसे बिख्यात हुआ २ प्रसन्धीका पुत्र क्षुप हुआ क्षुपका पुत्र इक्ष्वाकु हुआ ३ हे राजा उसके बड़े धर्मात्मा सौ पुत्र हुये प्रभु इक्ष्वाकुने उन सबको देशोंका राजा किया ४ उन सबमें बड़ा पुत्र विंशनाम बड़े धनुषधारियों का रूपथा हे भरतबंशी उस विंशका पुत्र कल्याणरूप विविंश हुआ ५ विविंश के पन्द्रह पुत्र हुये वह सब धनुषबिद्या में पराक्रमी वेद ब्राह्मणोंके रक्षक सत्यबक्ता ६ दान धर्ममें प्रवृत्त शांत रूप और सदैव प्रिय मधुरभाषी थे उनका बड़ाभाई खनीनेत्र नामथा उसने उन सबको पीड़ावान् किया ७ पराक्रमी खनीनेत्र अकंटक राज्य को बिजय करके उसकी रक्षामें समर्थ नहीं हुआ और प्रजा ने उससे सुख चैन नहीं पाया ८ हे राजेन्द्र राज्यके अधिकारी नौकरों ने उसको अधिकारसे रहित करके उसके पुत्र सुबर्चस नाम को उस राज्यपर नियत करने को अभिषेक कराया तब सब बहुत प्रसन्नहुये ९ उसने अपने पिताके बिपरीत कर्म और राज्यसे पृथक् होनेको देख-कर बड़ी सावधानी से सबप्रजाके बृद्धिकी इच्छासे राज्यकर्म किया १० वह वेद ब्राह्मणों का रक्षक सत्यबक्ता बाहर भीतरसे पवित्र और बाह्याभ्यन्तरसे जितेन्द्रिय था उस सदैव धर्मके करनेवाले बुद्धिमान् राजा से प्रजा अत्यन्त प्रसन्न हुई ११ उस धर्माभ्यासी राजाका धनागार धनसे रहितहुआ सवारी नहीं रहीं और जिन राजाओं का देश उसके राज्यकी सीमासे मिलाहुआ था उन्हों ने उस धन से रहित धनागारवाले राजाको चारोंओर से पीड़ावान् किया १२ धन घोड़े और सवारियों से रहित और बहुतसे शत्रुओं से पीड़ित उस राजाने राज्यके अधि-कारी सेवकों समेत बड़ी पीड़ाको पाया १३ हे युधिष्ठिर वह शत्रु सेनाके मरने पर भी उसके मारने को समर्थ नहीं हुये क्योंकि वह राजा नेकचलन और सदैव धर्मका करनेवाला था जब इस राजाने अपने पुरके लोगों समेत बड़ी पीड़ाको पाया तब उसने अपनी प्रजासे कर मांगा उससे सेना प्रकट हुई १४ । १५ और उस सेनाके द्वारा सब शत्रुओं को बिजय किया हे राजा इसी हेतुसे वह करंधम

नामसे प्रसिद्ध हुआ १६ उस करंधम का पुत्र त्रेतायुगके प्रारम्भमें हुआ जो इन्द्र के समान धनी और देवताओंसे भी कठिनतासे बिजय करने के योग्य था १७ तब सब राजा उसके आधीन होगये वह अपने पराक्रम और नेकचलन से उन सबका महाराजा होगया १८ वह अविक्षन्नामधर्मात्मा शूरता में इन्द्रके समान हुआ धर्ममें प्रवृत्त यज्ञोंका अभ्यासी धैर्य्यवान् जितेन्द्रिय १६ तेजसे सूर्यके समान क्षमामें पृथ्वीके समान बुद्धिमें बृहस्पतिजी के समान और मनकी स्थिरतामें हिमालयपर्वत के समान था २० उस सम्पूर्ण पृथ्वीके राजाने मन वाणी कर्म और बाह्याभ्यन्तरकी जितेन्द्रियतासे प्रजाके मनको प्रसन्न किया २१ जिस प्रभुने बुद्धि के अनुसार सौ अश्वमेध यज्ञों से पूजन किया और आप महाज्ञानी अंगिरा ऋषिने जिसको यज्ञकराया २२ उसका पुत्र मरुत्नाम धर्मज्ञ कीर्त्तिमान् जो चक्रवर्त्ती राजा था उसने भी अपने गुणोंसे पिताको उल्लंघन किया अर्थात् पिता से भी अधिक हुआ २३ दशहजार हाथी के समान पराक्रमी साक्षात् दूसरे विष्णुके समान था उस पूजनकरने के अभिलाषी धर्म्मात्माने स्वर्णमयी २४ और रजतमयी हजारों पात्र बनवाये और हिमालय पर्वतके उत्तरीयपक्षमें मेरुपर्वतको पाकर २५ जिस स्थानपर कि बहुत बड़ा सुवर्णका बृक्ष है वहां यज्ञकर्म करनेका प्रारम्भ किया इसके अनन्तर कुण्ड, पात्र, पिठर और आसनों को २६ जितने सुवर्ण कर्त्ताओंने बनाया उनकी संख्या असंख्य है उसी के समीप यज्ञवाट अर्थात् यज्ञस्थल हुआ २७ वहां उस सम्पूर्ण संसारके स्वामी धर्मात्माराजा मरुत्ने सब राजाओं समेत विधिपूर्व्वक यज्ञकिया २८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिचतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

# पांचवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरने कहा कि हे बक्काओं में श्रेष्ठ ब्यासजी वह राजा कैसा पराक्रमी हुआ और किसप्रकार बड़ा धनवान्हुआ १ हेभगवन् वह धन अब कहां बर्त्तमानहै और हे तपोधन वह हमको किसप्रकारसे मिलसक्ताहै २ ब्यासजी बोले हेतात दक्षप्रजापति की सन्तान में बहुत से देवता और असुरहुये उन्होंने परस्परमें ईर्षाकरी ३ उसीप्रकार अंगिराऋषिके दोपुत्रहुये जो ब्रतोंमेंसमानथे उनमें एकतो बड़े तेजस्वी बृहस्पतिजी और दूसरे बड़ेतपोधन संवर्त्तथे ४ हे राजा

परस्पर ईर्षा करनेवाले वह दोनों पृथक् २ होगये उन बृहस्पतिजीने संवर्त्त को बारंबार कष्टदिया ५ हे भरतबंशी बड़े भाईसे बारम्बार कष्टपानेवाले संवर्त्तने संसारी पदार्थोंको छोड़ मनसे उदासहो दिगम्बरहोके वनमें बासकरना अंगीकार किया ६ इन्द्रने भी सब असुरों को बिजयकर लोकों में इन्द्रकीपदवी को पाकर फिर ७ अङ्गिराऋषिके बड़े पुत्र वेदपाठियों में श्रेष्ठ बृहस्पतिजी को अपना पुरोहित किया पूर्वसमयमें राजा करन्धम अङ्गिराऋषिका यजमानथा ८ वह राजा लोक में चालचलन और पराक्रम से अनुपम इन्द्रके समान तेजस्वी धर्मात्मा और तेज ब्रत रखनेवालाथा ९ हे राजा जिसकी सवारी बड़े २ योधा और नानाप्रकारके उत्तम मित्र और बहुमूल्यवाले पलँग यह सब १० ध्यान और मुख वायु से उत्पन्न हुये उस राजा ने अपने गुणों से सब राजाओंको अपने स्वाधीन किया ११ और यथेच्छ समयतक जीवता रहकर इसी शरीर समेत स्वर्ग को गया उसका पुत्र ययाति के समान महाधर्मज्ञ १२ उदाक्षिण नाम हुआ उस शत्रुविजयीने पृथ्वीको अपने आधीनकिया वह राजा पराक्रम और गुणों से पिता केही समान हुआ १३ उसका पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी मरुत् नामहुआ चतुस्समुद्रान्त पृथ्वी उसकी आज्ञावर्त्ती हुई १४ हे पांडुनन्दन वह राजासदैव देवराजसे ईर्षा किया करताथा और इन्द्रभी मरुत्के साथ ईर्षा करताथा १५ वह पृथ्वीभरका राजा मरुत् बड़ा पवित्र और गुणवान्था उपाय करनेवाला इन्द्र भी जिसको न मारसका १६ मारने में असमर्थ होकर उस इन्द्रने देवताओं समेत बृहस्पतिजीको बुलाकर यह बचन कहा १७ हे बृहस्पति जी जो मेरा प्रिय चाहतेहो तो तुम किसीदशामेंभी राजामरुत्को श्राद्ध और यज्ञमतकराओ १८ हे बृहस्पतिजी मुझ अकेलेनेही तीनों लोक में देवताओं के इन्द्रपद को पाया और मरुत् केवल पृथ्वी काही राजा है १९ हे ब्राह्मण तुम देवता के राजा अमर्त्य अमरनाम इन्द्रकोयज्ञ कराके निश्शंक होकर मरणधर्म्मवाले मरुत्को कैसे यज्ञ कराते हो २० आपका कल्याण होय आप कैतो मुझी को यजमानबनाओ अथवा राजा मरुत्हीको बनाओ—अथवा मरुत्को त्यागकर मुझीको सुखसे सेवन करो २१ हे कौरव्य इन्द्रके इसबचनको सुनकर बृहस्पतिजीने एकमुहूर्त्त भर विचारांश करके इन्द्रसे कहा २२ कि तुम जीवधारियों के स्वामी हो और सब सृष्टि तुममें नियतहै तुम नमुचि विश्वरूप और बलिको मारनेवालेहो २३ तुम अ-

केले बीरने देवताओंकी श्रेष्ठ लक्ष्मी को प्राप्त किया है बलिके मारनेवाले तुम सदैव पृथ्वीकी सब सृष्टि और स्वर्गका पालन करतेहो २४ हे देवताओंके ईश्वर इन्द्र मैं आपका पुरोहितहोकर किस रीति से मनुष्य मरुत्को यज्ञ कराऊं २५ हे देवेन्द्र तुम निश्चय रक्खो मैं कभी भी मनुष्यके यज्ञ सम्बन्धी स्रुवापात्रको नहीं पकडूंगा २६ चाहैं अग्नि शीतलहोजाय पृथ्वी चलायमान होकर सूर्य्यसे रहित होजाय परन्तु मैं सत्यतासे नहीं हटसक्ता २७ बैशंपायन बोले कि मत्सरता रहित बृहस्पति जी के इस बचन को सुनकर और उनकी बहुत प्रशंसा करके इन्द्र अपने भवन में गया २८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिपंचमोऽध्यायः ५ ॥

# छठवां अध्याय ॥

ब्यासजी बोले कि इस स्थानपर मैं उस प्राचीन इतिहास को भी कहताहूं जिसमें कि बुद्धिमान् मरुत् और बृहस्पतिजी का प्रश्नोत्तर है १ राजा मरुत् ने उस नियमको जो कि देवराजने बृहस्पतिजीके साथ कियाथा सुनकर श्रेष्ठ यज्ञ की तैयारीकरी २ उस बार्त्तालाप में सावधान करन्धम के पौत्र मरुत्ने चित्त से यज्ञका सङ्कल्पकर बृहस्पतिजी के पास जाकर यह बचन कहा हे तपोधन भगवान् बृहस्पतिजी मैंने पूर्व्वसमय में जो आपसे मिलकर आपही के बचनसे यज्ञ करने की इच्छा करी थी ३ । ४ मैं उसको करना चाहताहूं मैंने यज्ञकी सब सामग्री इकट्ठी करली है और हे साधु मैं आपका यजमानहूं इसहेतु से आप मेरी यज्ञशालामें चलो यज्ञ कराओ ५ बृहस्पतिजी बोले हे पृथ्वीपति मैं तुम को यज्ञ कराना नहीं चाहताहूं क्योंकि देवराज इन्द्रने मुझको पुरोहित बनायाहै और मैंने उससे प्रतिज्ञा करली है ६ मरुत्ने कहा कि मैं आपके पिताका क्षेत्रहूं आपकी बड़ी प्रतिष्ठा करताहूं और आपका यजमानहूं जैसा कि मैं आप को चाहताहूं उसीप्रकार आप भी मुझ को चाहौ ७ बृहस्पतिजी बोले कि मैं देवता को यज्ञ कराके मनुष्य को कैसे यज्ञ करासक्ताहूं हे मरुत् तुम जाओ अथवा बैठो ८ मैंतो आपको यज्ञ नहीं कराऊंगा हे महाबाहो आप जिसको चाहौ उसको अपना उपाध्याय बनालो वही तेरे यज्ञको करेगा ९ ब्यासजी बोले कि बृहस्पतिजी के ऐसे २ बचनों को सुनकर वह राजा मरुत् बड़ा लज्जायुक्त हुआ और व्याकुल

चित्त होकर वहां से लौटा दैवयोग से मार्गमें उसने नारदजी को देखा १० उन
के दर्शनकर उनसे बिधिपूर्व्वक मिल हाथ जोड़कर सम्मुख खड़ाहुआ तब ना-
रदजी ने उससे कहा कि ११ हे राजर्षि तू अधिक प्रसन्न नहींहै हे निष्पाप तेरा
कल्याण पूर्व्वक कुशल मंगल है तू कहां गयाथा और किस कारण से तुझको
यह अप्रसन्नता प्राप्तहुई १२ तू मुझसे कहने के योग्य अपने वृत्तान्त को कह हे
श्रेष्ठ मैं सब रीति से तेरे दुःखको दूरकरूंगा १३ नारदजी के इस प्रकारके बचन
को सुनकर राजा मरुत्तने उपाध्यायकी ओरसे सबप्रकार की निराशाको वर्णन
किया १४ और कहा कि मैं यज्ञके अर्थ ऋत्विज देखने के लिये अंगिराबंशी
देवगुरु बृहस्पतिजी के पास गया था उसने मुझको अप्रसन्न करदिया १५ अब
उत्तर पाने से मैं अपना जीवन नहीं चाहताहूं हे नारदजी मुझको गुरूने त्याग-
कर दोषी ठहराया है १६ व्यासजी बोले कि हे महाराज राजा मरुत्के इसप्रकार
बचनों को सुनकर अपने वचनोंही से सजीव करते हुये नारदजी ने उस राजा
मरुत् को उत्तर दिया १७ हे राजा अंगिराका पुत्र धर्मात्मा दिगम्बरधारी संवर्त्त
नाम सृष्टिको मोहित करता सब दिशाओंमें घूमता है १८ जो बृहस्पतिजी तुझ
यजमान को नहीं चाहताहै तो तू उसके पास जा वह बड़ा तेजस्वी प्रसन्नचित्त
संवर्त्त तुझको यज्ञ अच्छे प्रकारसे करावेगा १९ मरुत्ने कहा कि हे बक्ताओं में
श्रेष्ठ नारदजी मैं आपके इसबचनसे सजीव होगया अब आप यह बताइये कि
मैं संवर्त्त को कहां जाकर खोजकरूं २० और उनको मिलकर उन से किसरीति
से वार्त्तालाप करूं ऐसी युक्ति बतलाइये कि जिससे वह भी मुझको नहीं त्याग
दे कदाचित् वह भी मुझको निषेध करदेंगे तो भी मेरा जीवन नहीं होसक्ता २१
नारदजी बोले हे महाराज महेश्वरजीके दर्शनोंका अभिलाषी उन्मत्त रूपधारी
वह संवर्त्त काशीपुरी में सुखपूर्वक घूमता है हे राजा उस काशी के द्वारको पा-
कर कहीं किसी मृतक शरीरको रखदो उसको देखकर जो लौटजाय वही संवर्त्त
है फिर जहां वह पराक्रमी संवर्त्त जाय वहां तुम भी उसके पीछे २ चले जाना
जब तुम उसको किसी एकांत स्थानमें देखो तब हाथ जोड़कर उसकी शरणलो
२२ । २३ । २४ जो कदाचित् वह तुझसे पूछे कि किसने तुमको मुझे बतायाहै
तब तुम कहना कि हे संवर्त्त मुझको नारदजी ने तुमको बताया है २५ कदा-
चित् वह मेरे पीछे चलनेकी इच्छासे तुझको वार्त्तालापमें प्रवृत्तकरे तो तुम नि-

स्सन्देह कहदेना कि नारदजी अग्नि में प्रवेश करगये व्यासजी बोले कि वह राजर्षि ऐसाही करूंगा यह कहता नारद जी का पूजनकर बिदा होकर बाराणसीपुरी को गया २६। २७ वहां पहुंचकर नारदजीके बचनों को स्मरण करते हुये उस बड़े बुद्धिमान् राजाने ऋषिकी आज्ञानुसार पुरी के द्वारपर एक मृतक शरीरको स्थापित किया २८ संवर्त्त ब्राह्मण भी उसी समय उस द्वारपर आया और उस मृतक शरीरको देखकर अकस्मात् लौटा २९ वह राजा मरुत् उस लौटनेवाले को देखकर हाथ जोड़ेहुये प्रार्थना करनेकी इच्छासे उस संवर्त्त के पीछे पीछे चला ३० उस ब्राह्मणने उस राजाको एकान्त स्थान में देखकर धूल कीच रेत और थूकसे लिप्त करदिया ३१ संवर्त्त के इस प्रकार अवज्ञा से दुःखित राजा हाथ जोड़ कर उस ऋषि को प्रसन्न करता हुआ पीछे पीछे चला ३२ फिर वह थकाहुआ संवर्त्त लौटकर एक बड़े सघन वृक्षकी छाया को आश्रय लेकर उसके नीचे बैठगया ३३॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिषष्ठोऽध्यायः ६॥

## सातवां अध्याय॥

संवर्त्तने कहा कि मुझको तैंनेकैसेजाना और मेरेपतेको तुझे किसने बतायाहै जो तू मेरा प्रिय चाहताहै तो इस मुख्य वृत्तान्त को मुझसे कह १ तुझ सत्यवक्ता के सबचित्तके मनोरथ प्राप्तहोंगे और मिथ्या बोलनेवालेका शिर बिदीर्ण होजायगा २ मरुत् बोला कि मार्गमें जातेहुये नारदजीने आपको मुझे बतायाहै आप मेरे गुरू के पुत्रहो इसीहेतुसे तुममें मेरी बड़ी प्रीतिहै ३ संवर्त्त ने कहा कि तुमने यह सत्य कहाहै वह नारदही मुझ कपटरूपधारी को जानते हैं सो तुम उनको बतलाओ कि वह नारदजी अबकहांहैं ४ राजाने कहा कि वह देवर्षियों में श्रेष्ठ नारदजी आप को मुझे बताकर और मुझे बिदाकरके अग्नि में प्रवेश करगये ५ व्यासजी बोले कि संवर्त्तने राजाके इस बचनको सुनकरबड़े आनन्दको पाया और कहा कि मैंभी इसीप्रकार इसके करनेको समर्थहूं ६ हे राजा इस के पीछे बचनों से घुड़ककर उस उन्मत्त ब्राह्मण ने दुखी होकर बारंबार यह बचन कहा ७ कि मुझ उन्मत्त अपने चित्तके अनुसार कर्म करनेवाले और ऐसे रूपवालेसे कैसे यज्ञकराना उचितहै ८ मेराभाई बड़ासमर्थ होकर इन्द्र

से मिला हुआहै और यज्ञ करानेमें बड़ा कर्मकर्त्ता है तुम उससे अपना यज्ञ कराओ ९ जोकि गृहस्थियोंके होमादिक कर्म और सब ग्रह देवता आदिक स्थापननामकर्महैं उनकाज्ञाताहै और मेरा यह शरीर बड़े भाईसे निन्दित होकर पुरोहिताईसे जुदा कियागयाहै १० हे अविक्षत्के पुत्र मैं उस अपने भाईकी आज्ञाके बिना कभी किसीदशामेंभी तुझको यज्ञनहीं करासक्ता वही बृहस्पति मेरा बड़ापूज्यहै ११ सो तुम बृहस्पतिजीके पासजाओ और उससे पूछकरआओ इसके पीछे जो तू यज्ञकराना चाहताहै तो मैं तुझको यज्ञकराऊंगा १२ मरुत् ने कहा कि हे संवर्त्त मैं प्रथम बृहस्पति जी के पासगयाथा उसका बृत्तान्त आप सुनिये कि वह इन्द्रकी प्रसन्नताके निमित्तमुझको यजमान नहीं बनाया चाहते १३ वह कहते हैं कि मैं देवताको यजमान बनाकर फिर मनुष्यको यज्ञनहीं कराऊंगा क्योंकि मुझको इन्द्रने निषेध करदिया है कि मनुष्यको यज्ञ मतकराओ १४ हे वेदपाठी वह देवराज सदैव मुझसे ईर्षा किया करताहै इसी से आप के भाई ने भी उससे प्रतिज्ञाकरलीहै कि मैं मनुष्य को यज्ञ नहीं कराऊंगा १५ हे मुनियों में श्रेष्ठ वह बृहस्पति जी देवराजके पास स्थितहोकर मुझ प्रेम पूर्व्वक पास जानेवालेको यजमान करना नहीं चाहते हैं १६ सो मैं आपके द्वारा अपने संपूर्ण धनसेभी यज्ञकरना चाहताहूं आपही के गुणोंके द्वारा मैं इन्द्रसे भी अधिकहुआ चाहताहूं १७ बिना अपमान करनेके बृहस्पतिजीने मुझ को यही उत्तरदिया है हे ब्रह्मन् इसीहेतुसे उनकेपास जाने को मैं इच्छा पूर्व्वक उत्साह नहींकरता हूं १८ संवर्त्त ऋषिने कहा कि हे राजा जो तुम मेरे सब मनकीइच्छा को करोगे तो तुम जैसाकरना चाहतेहो वह सब निर्विघ्नतासे होगा १९ अब मैं केवल इस एकबात कोही शोचताहूं कि अत्यन्त क्रोधयुक्त बृहस्पति और इन्द्र मुझ याजकके द्वारा यज्ञ करानेवाले तुझको मुझसे विरुद्ध करावेंगे २० इसी में मेरे चित्तकी दृढ़तान्यून होतीहै इससे निश्चय करके मेरे चित्तकी दृढ़ताको तुमकरो नहींतो मैं क्रोधयुक्त होकर बांधवोंसमेत तुझको भस्म करदूंगा २१ मरुतने कहा कि जबतक कि सूर्य्य प्रकाशको करताहै और पर्व्वतभी नियत हैं तब तकमैं लोकों को न पाऊं जो मैं अपने प्यारे मित्रको त्यागकरूं २२ किसी समय में भी श्रेष्ठ शुभ बुद्धिको न पाऊं और विषयों में प्रवृत्तहोजाऊं जो अपने प्रियमित्रको त्यागकरूं २३ संवर्त्त ने कहा हे राजा मरुत् सब कर्मों में तेरी

शुभ बुद्धिहोय इस प्रकारसे यज्ञ कराना मेरे हृदयमें भी बर्त्तमानहै २४ हे राजा मैं तेरे उत्तम धनको अबिनाशी करूंगा जिसके द्वारा तू देवता गन्धर्बों समेत इन्द्रको तिरस्कारकरेगा २५ मेरी बुद्धि और धन अन्य यजमानों में नहीं प्रवृत्त है परन्तु अपने भाई बृहस्पति और इन्द्र इन दोनोंका अप्रिय करूंगा २६ निश्चय करके इन्द्रके साथमें तेरी समानता प्राप्तकराऊंगा और तेराअभीष्ट करूंगा यह तुझसे मैं सत्य २ ही कहताहूं २७॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिसप्तमोऽध्यायः ७॥

# आठवां अध्याय॥

इस अध्यायमें प्रथमश्लोकसे तेंतीसश्लोकतक सुवर्णके इच्छावान् पुरुषका जपके योग्य स्तोत्र है उसका ऋषि संवर्त्तहै हिरण्यबाहु रुद्र देवता है अनुष्टुप् छन्दहै और सौनाम हैं—

## स्तोत्र

संवर्त्तउवाच॥ गिरेर्हिमवतःपृष्ठेमुंजवान्नामपर्वतः। तप्यतेयत्रभगवांस्तपो नित्यमुमापतिः १ वनस्पतीनांमूलेपुशृंगेषुविषमेषुच। गुहासुशैलराजस्यरमतेस्म यथासुखम् २ उमासहायोभगवान्यत्रनित्यंमहेश्वरः। आस्तेशूलीमहातेजाना नाभूतगणावृतः ३ तत्ररुद्राश्चसाध्याश्चविश्वेऽथवसवस्तथा। यमश्चवरुणश्चै वकुबेरश्चसहानुगः ४ भूतानिचपिशाचाश्चनासत्यावश्विनौतथा। गन्धर्वाप्स रसश्चैवयक्षादेवर्पयस्तथा ५ आदित्यामरुतश्चैवयातुधानाश्चसर्वशः। उपास तेमहात्मानंवहुरूपमुमापतिम् ६ रमतेभगवांस्तत्रकुबेरानुचरैःसह। विकृतैर्व्वि कृताकारैःक्रीडद्भिःपृथिवीपते ७ श्रियाज्वलन्दृश्यतेवैबालादित्यसमद्युतिः। नरूपंशक्यतेतस्यसंस्थानंवाकदाचन ८ निर्द्देष्टुंप्राणिभिःकैश्चित्प्राकृतैर्मांसलो चनैः। नोष्णंनशिशिरंतत्रनवायुर्नचभास्करः ९ नजराक्षुत्पिपासेवानमृत्युर्नभ यंनृप। तस्यशैलस्यपार्श्वेषुसर्वेषुजयतांवर १० धातवोजातरूपस्यरश्मयःसवि तुर्यथा। रक्ष्यन्तेतेकुवेरस्यसहायैरुद्यतायुधैः ११ चिकीर्षद्भिःप्रियंराजन्कुबेरस्य महात्मनः। तस्मैभगवतेकृत्वानमःशर्वायवेधसे १२ रुद्रायशशिकंठायपुरुषाय सुवर्चसे। कपर्द्दिनेकरालायहर्यक्ष्णेवरदायच १३ त्र्यक्ष्णेपूष्णोदंतभिदेवामना यशिवायच। याम्यायाव्यक्तरूपायसद्वृत्तेशंकरायच १४ क्षेम्यायहरिकेशायस्था

णवेपुरुषायच । हरिकेशायमुंडायकशायोत्तारणायच १५ भास्करायसुतीर्थाय देवदेवायरंहसे । उष्णीषिणेसुवक्त्रायसहस्राक्षायमीढुषे १६ गिरिशायप्रशांताय यतयेचीरवाससे । विल्वदंडायसिद्धायसर्वदंडधरायच १७ मृगव्याधायमहतेध न्विनेऽथभवायच । वरायसोमवक्त्रायसिद्धमंत्रायचक्षुषे १८ हिरण्यबाहवेराजन्नुग्रा यपतयेदिशाम् । लेलिहानायगोष्ठायसिद्धमंत्रायवृष्णये १९ पशूनांपतयेचैव भूतानांपतयेनमः । वृषायमातृभक्तायसेनान्येमध्यमायच २० स्रुवहस्तायपतयेध न्विनेभार्गवायच । अजायकृष्णनेत्रायविरूपाक्षायचैवहि २१ तीक्ष्णदंष्ट्रायती क्ष्णायवैश्वानरमुखायच । महाद्युतयेऽनंगायशर्वायपतयेदिशाम् २२ विलोहिता यदीप्तायदीप्ताक्षायमहौजसे । वसुरेतःसुवपुषेपृथवेकृत्तिवाससे २३ कपालमालि नेचैवसुवर्णमुकुटायच । महादेवायकृष्णायत्र्यंबकायानघायच २४ क्रोधना यानृशंसायमृदवेबाहुशालिने । दंडिनेतप्ततपसेतथैवाक्रूरकर्मणे २५ सहस्रशि रसेचैवसहस्रचरणायच । नमःस्वधास्वरूपायवहुरूपायदंष्ट्रिणे २६ पिनाकिनं महादेवंमहायोगिनमव्ययम् । त्रिशूलहस्तंवरदंत्र्यंबकंभुवनेश्वरम् २७ त्रिपुर घ्नंत्रिनयनंत्रिलोकेशंमहौजसम् । प्रभवंसर्वभूतानांधारणंधरणीधरम् २८ ईशा नंशंकरंसर्वंशिवंविश्वेश्वरंभवम् । उमापतिंपशुपतिंविश्वरूपंमहेश्वरम् २९ वि रूपाक्षंदशभुजंदिव्यगोवृषभध्वजम् । उग्रंस्थाणुंशिवंरौद्रंशर्वंगौरीशमीश्वरम् ३० शितिकंठमजंशुक्रंपृथुंपृथुहरंवरम् । विश्वरूपंविरूपाक्षंबहुरूपमुमापतिम् ३१ प्रण म्यशिरसादेवमनंगांगहरंहरम् । शरण्यंशरणंयाहिमहादेवंचतुर्मुखम् ३२ एवंकृ त्वानमस्तस्मैमहादेवायरंहसे । महात्मनेक्षितिपतेतत्सुवर्णमवाप्स्यसि ॥ इति सु वर्णपुरुषस्तोत्रं समाप्तम् ॥

अब इसका अर्थ लिखते हैं ॥

संवर्त्त ने कहा कि हिमालय पर्व्वतकी पृष्ठपर मुंजवान् नाम पर्व्वतहै जिस पर भगवान् शिवजी सदैव तपस्या किया करते हैं १ वृक्षोंके मूल गिरिराज के शिखर गुफा और दुर्गम्य स्थानों में सुखपूर्व्वक रहते हैं २ जहां अनेक प्रकारके भूतगणों से युक्त शूलधारी महातपस्वी भगवान् महेश्वरजी उमादेवी समेत स- दैव निवास करते हैं ३ वहां ग्यारह रुद्र साध्य गण बिश्वेदेवा अष्टबसु यमराज वरुण कुबेर अपने साथियों समेत ४ भूत पिशाच अश्विनीकुमार गन्धर्व अ- प्सरा यक्ष देवर्षि ५ द्वादश सूर्य्य उनंचास मरुत् और सब प्रकारके यातुधान

उस भवरूप महात्मा शिवजी की उपासना करते हैं ६ वहां बिकृत बिकृताकार भूतगण भी क्रीड़ा करते हैं उनके साथमें वह सूर्य्य के समान तेजस्वी शिवजी अपनीं शोभासे ही प्रकाशमान दृष्टिगोचरहोतेहैं ७ जिनका रूप और आकार कभी मांस चर्म दृष्टि प्राकृत पुरुषोंसे दृष्टि आना असम्भव है वहां न गरमीहै न सर्दी है न हवाहै न सूर्य्य है ८ न वृद्धावस्था है न क्षुधा है न तृषा है न मृत्यु है और न भय है हे विजय करनेवालों में श्रेष्ठ राजा मरुत् उस शैलके सबपार्श्वों में अर्थात् ओरों में ६ । १० जातरूप सुवर्णकी ऐसी धातु हैं जैसे कि सूर्य की किरणें होती हैं उन धातुओं के रक्षा करनेवाले कुबेर के वह शस्त्रधारी लोग हैं ११ जो कि महात्मा कुबेरजी के प्रिय करने के अभिलाषी हैं हे राजा उस षड़ैश्वर्य्य के स्वामी सृष्टिके पालन और संहार करनेवाले शिवजी को नमस्कार करके रुद्र, नीलकण्ठ, पुरुष, सुवर्चस, कपर्द्दिन, कराल, पिंगल नेत्र, बरदाता, १२ । १३ त्र्यक्ष, पूषादन्तविदारण, बामन, शिव, याम्य, अव्यक्तरूप, सद्वृत्त, शङ्कर १४ क्षेम्य, हरिकेश, स्थाणु, पुरुष, हरिकेश, मुण्ड, कृश, उत्तारण १५ भास्कर सुतीर्थ, देवदेव, रंहस, उष्णीषिण, सुवक्र, सहस्राक्ष, मीढ्ष, गिरिश, शांतरूप, संन्यासी, चीर वस्त्रधारी, विल्वदण्डधारी, सिद्ध, सर्वदण्डधारी १६ । १७ यज्ञरूप मृगव्याध, महत, धन्वी, भव, वर, चन्द्रमुख, सिद्धमन्त्र, चक्षुष १८ हिरण्यबाहु, उग्र, दिशापति, लेलिहान, गोष्ठ, सिद्धमन्त्र, वृष्णी १९ पशुपति और भूतपति को नमस्कार वृष, मातृभक्त सेनानी, मध्यम २० स्रुवहस्त, पति, धनुषधारी, भार्गव, अज, कृष्णनेत्र, बिरूपाक्ष २१ तीक्ष्णदंष्ट्र, तीक्ष्ण, वैश्वानरमुख, महाद्युति, अनङ्ग, शर्व, बिशाम्पति २२ विलोहित, दीप्त, दीप्ताक्ष, महौजस, बसुरेत, सुवपुष, पृथु, कृत्तिबास २३ कपालमाली, सुबर्ण मुकुट, महादेव, कृष्ण, त्र्यंबक, अनघ २४ क्रोधन, अनृशंस, मृदु, बाहुशाली, दण्डी तपस्वी, अक्रूरकर्मा २५ सहस्रशीर्ष, सहस्रपाद, स्वधास्वरूप, बहुरूप नृसिंहरूप २६ के अर्थ नमस्कार करके उस पिनाक धनुषधारी महादेवयोगी, न्यूनतासे रहित त्रिशूलधारी बरदाता त्र्यंबक भुवनेश्वर २७ प्रलयकर्त्ता त्रिपुर त्रिनेत्र सब सृष्टिका ईश्वर महातपस्वी सर्व मात्रका उत्पत्ति स्थान, आश्रयस्थान, पृथ्वी को धारण करनेवाले २८ ईशान, शङ्कर, सर्व, शिव, बिश्वेश्वर, भव, उमापति, पशुपति, विश्वरूप, महेश्वर २९ बिरूपाक्ष, दश भुजाधारी, दिव्य नन्दीश्वरकी ध्वजा रखनेवाले, उग्र,

स्थाणु, शिव, रौद्र, शर्व्व, गौरीश, ईश्वर ३० नीलकण्ठ, अज, शुक्र, पृथु, पृथुहर, वर विश्वरूप, बिरूपाक्ष, भवरूप, उमापति, अनङ्गांगहर अर्थात् कामदेव के शरीर के नाशक ३१ रक्षाश्रय, शरण्यरूप, महादेव और चतुर्म्मुख देवता को शिरके दण्डवत् करके शरणागत होजाय ३२ इसप्रकार उस महादेव रंहस, महात्मा, पृथ्वीपतिके अर्थ नमस्कार करके उस सुबर्णको पावेगा ३३ सुबर्णलानेवाले तेरे मनुष्य वहां जायँ और सुवर्णलावें उस करन्धम के पुत्रने उसके कहे हुये बचनको उसीप्रकार से किया ३४ उसी से यज्ञकी सब बिधि देवताओं के समान करी वहां उत्तम २ कारीगरों ने सब सुबर्ण के पात्र बनाये ३५ बृहस्पति ने राजा मरुत्के उस बड़ेभारी धनको जो कि देवताओं से भी अधिक था देख-सुनकर बड़ा दुःख किया ३६ और महादुःखित होकर उनके मुखकी चेष्टा बिगड़कर बड़ी कृशताको पाया यह शोचकर कि मेराशत्रु संवर्त्त बड़ा धनाढ्य होगा ३७ तब देवराज इन्द्रने बृहस्पति जी की उस दशा को देखकर अत्यन्त दुःख माना उस समय देवताओं समेत इन्द्रने मिलकर यह वचन कहा ३८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअष्टमोऽध्यायः ८ ॥

# नवां अध्याय ॥

इन्द्र बोले कि हे बृहस्पतिजी तुम सुखपूर्व्वक सोतेहो और आप की सेवा करनेवाला चित्तके अनुसार आज्ञाकारी है तुम देवताओं का सुख चाहनेवाले हो हे वेदपाठी देवता तुम्हारा पालन करते हैं १ बृहस्पतिजी ने कहा कि हे देवराज मैं शयनपर सुखसे सोताहूं मेरे सेवा करनेवाले भी मेरी इच्छा के अनुसार कामकरते हैं देवताओंके सुखका चाहने वालाहूं और देवता भी मेरा सदैव पालन करतेहैं २ इन्द्रने कहा कि जब सब सुखबर्त्तमान हैं तो यह चित्तमें खेद और शरीरकी वेदना कैसे है काहेसे आपका पांडुबर्ण और स्वरूप में रूपांतर है हे ब्राह्मण आप अवश्य मुझ से कहो मैं आप के दुःख देनेवाले सब शत्रुओं को मारूँगा ३ बृहस्पतिजी बोले हे इन्द्र राजामरुत् उत्तम दक्षिणावाले बड़ेभारी यज्ञ से पूजन करेगा और संवर्त्त पूजन करावेगा यह मैंने सुना है सो मेरी इच्छा है अर्थात् मैं चाहताहूं कि वह संवर्त्त उसको पूजन न करावे ४ इन्द्र बोले हे बेदपाठी तुम सब अभीष्ट मनोरथोंके प्राप्त करनेवालेहो काहेसे कि आप देवताओं

के मन्त्री और पुरोहित होगये हो आपके जरा मरण दोनों नाशहुये अब संवर्त्त आपका क्या करसकेगा ५ बृहस्पतिजीने कहा कि तुम जहां जहां जिस २ शत्रुको वृद्धियुक्त होता देखतेहो वहां अपने देवताओं समेत तुम उन २ असुरों को पराजय करके उनके साथियोंको भी मारना चाहतेहो क्योंकि शत्रुकी वृद्धि का होना दुःखरूप है ६ हे देवेन्द्र मेरा शत्रु वृद्धिको पाता है उसी के सुनने से मेरी यह रूपान्तर दशा है हे इन्द्र सब उपायों से राजा मरुत् अथवा संवर्त्त को बिजय करो ७ इन्द्र बोले कि हे अग्नि यहां आओ आप राजा मरुत्से कहदो कि आप अपना ऋत्विज बृहस्पतिजी को बनाओ यही बृहस्पति जी तुमको यज्ञ करावेंगे और अमर करदेंगे ८ अग्निने कहा कि हे इन्द्र बहुत अच्छा अब मैं दूत बनकर बृहस्पतिजी को राजा मरुत्का ऋत्विज बनाने को और आपके बचन के सत्य करने को जाताहूं क्योंकि मैं भी बृहस्पतिजी से ही पूजन कराना चाहताहूं ९ व्यासजी बोले कि ऐसा कहकर वह अग्नि देवता बन, बेलि, लता आदिकों का मर्द्दन कर बड़ी इच्छासे हिमालय के समीप घूमतेहुये वायु के समान गर्जना करते लकड़ियों को उल्लंघन करते जलते हुये महात्मा अग्नि चलदिये १० मरुत्ने कहा कि हे संवर्त्तजी अब मैं अपूर्व्वरूपके शरीरधारी आतेहुये अग्नि देवताको देखताहूं हे मुनि आप आसन जल पाद्य और गौको सम्मुख लाओ ११ यह बात सुनकर अग्निने राजा मरुत्से कहा कि हे निष्पाप मैं तेरे इस जलपाद्यादिक को अंगीकार करूंगा परन्तु अभी मैं इन्द्रकी आज्ञा से दूत होकर तेरे पास आयाहूं १२ मरुत्ने कहा कि हे अग्नि देवता वह श्रीमान् देवराज प्रसन्न है हमसे प्रीति करताहै उसके आधीन देवता अच्छी रीति से हैं आप इस सब बृत्तान्त को मुझसे कहो १३ अग्नि बोले हे महाराज इन्द्र बहुत सुखी है वह तुझ से अजर अमर प्रीति को चाहता है सब देवता उसके आधीन होकर आज्ञावर्त्ती हैं हे राजा अब तुम देवराज के सन्देश को मुझ से सुनो १४ हे राजा बृहस्पतिजी के ऋत्विज करने के अर्थ मुझको तेरे पास भेजा है और वही बृहस्पतिजी तुम को यज्ञ करावेंगे और तुझ मरणधर्मवाले को अमर करेंगे १५ मरुत् ने कहा कि यह संवर्त्त ब्राह्मण मुझको यज्ञ करावेंगे उसका भी नमस्कार बृहस्पतिजी को है यह बृहस्पति जी महा इन्द्र को यज्ञ कराकर मनुष्य को यज्ञ कराने से शोभा नहीं पावेंगे १६ अग्नि ने कहा कि निश्चय कर-

के देवलोक में जो बड़े लोक हैं तुम उन लोकों को देवराज इन्द्र की कृपासे पा-
ओगे जो बृहस्पतिजी तुम को यज्ञ करावेंगे तो अवश्य तुम शुभकीर्त्ति से सं-
युक्त होकर स्वर्ग को बिजय करोगे १७ इसी प्रकार जो मनुष्य दिव्य लोक प्र-
जापति के बड़े लोक हैं वह सब और इन के सिवाय देवताओं का सब राज्य
भी तुम बिजय करोगे हेराजा जो बृहस्पतिजी तुमको यज्ञकरावें १८ फिर संवर्त्त
ने कहा हे अग्नि इस रीतिसे फिर आप कभी भी बृहस्पतिजी को मरुत्के ऋ-
त्विज कराने के निमित्त न आना नहीं तो मैं क्रोधरूप होकर तुम को अपने
भयानक नेत्रोंसेही भस्म करदूंगा तुम इस को निश्चयही जानना १९ व्यास
जी बोले कि संवर्त्त के इस बचन के सुनतेही पीपल के बृक्ष के समान पीड़ित
और कम्पायमान और भस्म होने से भयभीत होकर अग्नि सब देवताओं के
पास गये महात्मा इन्द्र ने उस अग्नि को देखकर बृहस्पतिजी के सम्मुख यह
बचन कहा २० कि हे अग्नि जो आप हमारे भेजेहुये यज्ञकरनेके इच्छावान् राजा
मरुत् के पास बृहस्पतिजी के ऋत्विज होनेके निमित्त गयेथे उस राजाने क्या
कहा क्या वह उस बचनको अंगीकार करताहै २१ अग्निने कहा कि राजा म-
रुत् तेरे उस बचन को अंगीकार नहीं करता है उसने बृहस्पतिजीके लिये अं-
जली भेजीहै अर्थात् नमस्कार कियाहै और मुझ समेत उस राजाने बारंबार यह
बचन कहा कि मुझको यज्ञ संवर्त्त करावेगा २२ और उस प्रसन्नचित्तने कहा है
कि जो वह बृहस्पतिजी मुझको मिलकर उन मानस दिव्य और प्रजापतिजी
के भी बड़े लोक दिलानेको कहैं तौ भी मैं नहीं चाहता २३ इन्द्रने कहा कि तुम
फिर जाकर उसराजासे मेरे सार्थक बचनोंको कहो जो आपके समझानेपर भी
वह राजामरुत् मेरे बचनको नहीं करेगा तो फिर उसपर मैं अपने बज्रका प्रहार
करूंगा २४ अग्निने कहा कि हेइन्द्र इन गंधर्व्वराजको दूतबनाकर आप भेजिये
मैं वहां जानेसे भयभीत होताहूं ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्यमें प्रवृत्त क्रोधयुक्त तीव्रक्रोधी
संवर्त्तने मुझसे यहबचन कहाहै २५ कि जो तुम इस प्रकार से किसी दशामेंभी
राजामरुत्के ऋत्विज बनाने को बृहस्पतिके कहनेको आओगे तो मैं अत्यन्त
क्रोधित होकर अपने भयानक नेत्र से तुमको भस्म करदूंगा यह उनका कथन
है २६ इन्द्रने कहा कि हे अग्नि तुमहीं तो सबको भस्मकरनेवाले हो तुम्हारे सि-
वाय और कौन दूसरा भस्म करनेवालाहै सबसंसार तेरे स्पर्शमात्रसेही डरतेहैं हे

अग्नि तुम्हारा कहना श्रद्धा के योग्य नहीं है २७ अग्निने कहा हे देवेन्द्र तुम अपने बल पराक्रमसे स्वर्ग और पृथ्वीको लपेटो पूर्वसमयमें इस वृत्रासुर ने तुझसरीके इन्द्रके स्वर्गको कैसे विजय करलियाथा २८ इन्द्रने कहा हे अग्नि मैं पर्व्वतादि कोभी मक्षिका आदिकके समान छोटा करसक्ताहूं परन्तु शत्रुके अमृतकापान नहीं करूंगा मैं निर्बल पर बज्रका प्रहार नहींकरूंगा कौनसा मनुष्य अपने सुखके लिये मुझपर प्रहार करसक्ता है २९ पृथ्वीपर कार्त्तिकेय नाम असुरों को पृथक् करदूं दानव लोगों को अन्तरिक्ष से दूरकरदूं आकाशके शब्द का नाश करदूं मेरेऊपर प्रहार करनेकी किस मनुष्यकी सामर्थ्य है ३० अग्नि ने कहा जिस स्थानपर कि राजा सर्य्याति को यज्ञ कराते हुये अकेले च्यवन ऋषिने अश्विनीकुमारों के निमित्त अमृतको हाथमें लिया उस समय क्रोधयुक्त ऋषिने प्रथमही तुमको रोकाथा हे महाइन्द्र सर्य्याति के उस यज्ञका स्मरण करो ३१ उस समय हे इन्द्र तुमने अपने भयानक और भयकारी रूप बज्रको लेकर च्यवन ऋषि के ऊपर प्रहार करना चाहाथा तब क्रोधयुक्त वेदपाठी उस च्यवन ऋषिने अपने तपके प्रभावसे बज्रसमेत तेरी भुजाको रोक दियाथा ३२ फिर उस ऋषिने क्रोधसे तेरे शत्रुमदनाम असुर जो कि सबओरसे भयानक रूपथा उस को उत्पन्न किया तुमनेजिस विश्वरूप असुरको देखकर दोनोंनेत्र बन्द करलिये थे ३३ उसबड़े दानवका नीचेका ओष्ठ पृथ्वीपर नियत और ऊपरका ओष्ठ स्वर्ग में बर्त्तमान था उसके हज़ार दाँत सौ योजन लम्बे अत्यन्ततीक्ष्ण महाभयानक रूप थे ३४ और उसकी चार डाढ़ें दोसौ योजन लम्बी गोल मोटी चाँदीके स्तम्भकी सूरतथीं वह अपने भयानक दाँतोंको कटकटाकर अपने शूलको उठाकर मारने की इच्छासे तेरे सम्मुख दौड़ा ३५ तब तुमने उस घोररूप दानवको देखा और सब लोगोंने भी तुझ देखने के योग्य को देखा हे दानवों के नाश करनेवाले इसीहेतु से तुम भयभीततापूर्व्वक हाथ जोड़कर महर्षिकी शरण में गये ३६ ब्राह्मणका बल क्षत्रियके बलसेबड़ाहै ब्राह्मणसे उत्तम और बड़ा दूसरा कोई नहीं है सो हे इन्द्र मैं ब्रह्मतेजको निश्चय और ठीक जानकर संवर्त्त को विजय करना नहीं चाहताहूं ३७॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिसंवर्त्तमरुत्तीयेनवमोऽध्यायः ९॥

---

# दशवां अध्याय ॥

इन्द्र ने कहा कि तुम्हारा कहना यथार्थही है ब्राह्मणका बल बड़ाहै ब्राह्मण से वृद्धतम कोई नहीं है परन्तु मैं राजा मरुत के बल पराक्रम को नहीं सह सक्ता हूं मैं इसपर घोर वज्रका प्रहार करूंगा हे धृतराष्ट्र गन्धर्व तुम हमारे भेजेहुये जाकर संवर्त्तसमेत राजा मरुत से कहो कि हे राजा तुम बृहस्पति को ऋत्विज करो नहीं तो इन्द्र तुम्हारे ऊपर घोर बज्रको छोड़ेगा १। २ व्यास जी बोले कि इसके पीछे धृतराष्ट्र ने जाकर राजा मरुत से यह इन्द्रका बचन कहा ३ कि हे महाराज मैं धृतराष्ट्र नाम गन्धर्व आपसे वार्त्तालाप करनेको आयाहूं हे राजा-ओंमें श्रेष्ठ उस लोकेश्वर महात्मा इन्द्रने जो बचन कहा है उसको मुझसे सुनो ४ अर्थात् इन्द्रने कहाहै कि कैतो तुम बृहस्पतिजी को अपना ऋत्विज बनाओ और जो मेरे इस कहने को न मानेगा तो मैं तुझपर घोर बज्रका प्रहार करूंगा उस ध्यानसे परे कर्म करनेवाले देवराज इन्द्रका यह कहाहुआ वचनहै ५ मरुत ने कहा कि इसबात को तुम इन्द्र बिश्वेदेवा और अश्विनीकुमार भी जानते हो कि इस लोक में मित्रके साथ शत्रुता करने में ब्रह्महत्याके समान ऐसा बड़ापाप है कि जिसका प्रायश्चित्तभी नहीं होसक्ता ६ बृहस्पतिजी उस देवताओंमें और बज्रधारियों में श्रेष्ठ महाइन्द्रको यज्ञ करावें और मुझको संवर्त्तही यज्ञ करावेंगे हे गन्धर्बराज मैं तेरे अथवा उस इन्द्र के वचन को अच्छा नहीं मानताहूं ७ गन्धर्व बोला हे राजाओं में श्रेष्ठ इस समय आकाश में गर्जना करने वाले इन्द्र के भयकारी शब्दों को सुनो वह महाइन्द्र अवश्य तुझपर अपने बज्रका प्रहार करेगा हे राजा अपनी कुशल को विचारो अब यही समय है ८ व्यासजी बोले उस धृतराष्ट्र गन्धर्व के इस प्रकार के बचनों के पीछे मरुतने गर्जतेहुये इन्द्रके शब्दको सुनकर उस धर्मज्ञों में श्रेष्ठ सदैवतपस्वी संवर्त्त से इन्द्रके इसबचनको जाकर कहा ६ अर्थात् मरुत ने संवर्त्त से कहा कि अब बहुत शीघ्रही मैं अपने इस शरीर को डूबाहुआही मानताहूं उस इन्द्रको इतना मार्ग दूर नहीं है इससे हे ऋषि मैं आपसे अपना कल्याण चाहताहूं हे वेदपाठियों में श्रेष्ठ इस हेतुसे आप मुझको निर्भयतादो १० क्योंकि यह बज्रधारी इन्द्र घोर और दिव्यरूपसे दशो दिशाओं को प्रकाशित करताहुआ आता है इस शब्द से ब्राह्मण भय-

भीतहैं ११ संवर्त्त ने कहा हे राजाओं में श्रेष्ठ इन्द्रसे तेरा भय दूर होजाय मैं अभी इस घोर भयको नाशकरदूंगा अर्थात् वहुत शीघ्र स्तंभनी बिद्यासे उसको रोकूंगा तुम विश्वासयुक्त होकर इसके तिरस्कार से मत डरो १२ मैं इसको रोकताहूं तुम इन्द्रसे कभी मतडरो मैंने सब देवताओं के शस्त्रों को निरर्थक अर्थात् बेकाम करदिया १३ वज्र दिशाओं को सेवन करेगा बायु चलेगी और मेघ अन्न होकर बनोंमें वर्षा करेगा और अन्तरिक्ष में जो जलहोगा वह निरर्थक होजायगा जोतुमको बिजली दिखाई पड़े उससे तुम कभी मत भयकरो १४ अग्निदेवता सबओर से तेरी रक्षाकरेंगे और इन्द्र तेरी सब अभिलाषाओं को वर्षावेगा इसी प्रकार जलों से ढकाहुआ महाघोर वज्र मारनेके निमित्त नियत बना रहैगा १५ मरुतने कहा कि यह बड़ा भयकारी बड़ा शब्द सुना जाता है यह बायुसे मिले हुये वज्रका शब्द है मेरा चित्त बारंबार पीड़ापाताहै हे वेदपाठी अभी मेरे चित्तमें विश्वास और दृढ़ता नहीं होतीहै १६ संवर्त्त ने कहा हे महाराज अब बड़े भयानक बज्रसे तेरा भयदूर होय मैं बायुरूप होकर उस वज्रको दूर करताहूं अब तुम अपने भयको त्यागकर दूसरे वरको माँगो और जो तू चाहैगा मैं उसी तेरे अभीष्ट को चित्तसे पूराकरूंगा १७ मरुतने कहा हे वेदपाठी यह इन्द्र शीघ्रतासे साक्षात् मेरेसम्मुख आवे और यज्ञमें हव्यको अङ्गीकारकरे देवतालोगभी अपने अपने स्थानोंपर नियत होकर होमेहुये हव्यको अङ्गीकारकरें १८ संवर्त्तने कहा हेराजा मेरे मन्त्रसे बुलायाहुआ तीक्ष्णवक्ता देवताओंसे स्तूयमान यहइन्द्र हरि जातिवाले घोड़ोंकी सवारीसे इसयज्ञमें आताहै अब तुम इसको मंत्रोंकरके सुस्त शरीर देखोगे १९ इसकेपीछे उस अतुलपराक्रमी राजामरुतके अमृतके पानकरनेका अभिलाषी देवराज घोड़ोंमें उत्तम हरिनाम घोड़ों को रथमें जोतकर देवताओं समेत यज्ञमेंआया २० तब प्रीतिमान राजामरुतने पुरोहित और देवताओंके समूहों समेत आयेहुये इन्द्रकी अभ्युत्थानपूर्व्वक प्रतिष्ठाकरी और शास्त्रकी विधिके अनुसार देवराजका उत्तम पूजनकिया २१ और सबप्रकारसे पूजनकरके मरुतने कहा कि हे इन्द्र आपका आना कल्याणकारीहो हे ज्ञानी आपकी वर्त्तमानतामें यह यज्ञ शोभा पावेगा हेवलि और वृत्रासुरके मारनेवाले मेरे दियेहुये अमृतको आप पानकरो २२ और यहभी कहा कि हेदेवराज आपमुझको अपने कल्याणरूप नेत्रोंसे देखो तुमको नमस्कारहै मैंने यज्ञप्राप्तकिया अब मेराजीवन

सफल है बृहस्पतिजी का छोटा भाई वेदपाठियों में श्रेष्ठ संवर्त्त इस मेरे यज्ञको करता है २३ इन्द्रने कहा हे महाराजमैं तेरे इस गुरूको जो कि तपका धन रखने वाला बड़ा तेजस्वी और बृहस्पतिजी का छोटाभाई है अच्छी रीतिसे जानता हूं मैं उसीके बुलानेसे आयाहूं अब तुझमें मेरी प्रीति है क्रोध दूरहोगया २४ संवर्त्तने कहा हे देवराज जो तुम प्रसन्नहो तो आप यज्ञमें तैयारी कराओ और हे देवताओ तुम सब मिलकर भागोंका बिचारकरो और यह सब संसार इस विषयके प्रयोजन को जानो २५ व्यासजी कहते हैं कि अंगिराबंशी संवर्त्त के इस प्रकारके बचनों को सुनकर इन्द्रने आपही सब देवताओं को आज्ञाकरी कि अपूर्व्वरूप और धनसे वृद्धियुक्त सभा और हज़ारों उत्तम २ स्थानादिक तैयार करो २६ और शीघ्रही गन्धर्व और अप्सराओंके चढ़नेके योग्य स्तम्भवाले ऐसे स्थान बनाओ जिनमें सब अप्सरा नृत्यकरें और यज्ञके वाड़ेको स्वर्गके समान करदो २७ हे महाराज इन्द्रके इस बचनको सुनतेही बड़े प्रसन्नचित्त देवताओं ने उनके कहतेही शीघ्र उनकी आज्ञाको पूराकिया तदनन्तर बड़े प्रसन्न और पूजित इन्द्रने राजा मरुतसे यह बचन कहा २८ कि हे महाराज हम यहां तुझ से मिलकर और जो दूसरे तीसरे वृद्धलोग हैं उन समेत सब प्रीतिमान देवता तेरे हव्यको स्वीकार करें २९ हे राजा लाल और नीलारूप अग्नि और बिश्वेदेवा से सम्बन्ध रखनेवाला यज्ञके निमित्त चलायमान लिंगेन्द्री वाला ब्राह्मणों से आज्ञा दियाहुआ बैल बलिदान करो ३० इसके पीछे हे राजा वह यज्ञ वृद्धियुक्त हुआ जिसमें कि आप देवता लोगोंने भोजनकी बस्तुओं को लिया और जिसमें ब्राह्मणों से पूजित हरिबाहन देवराज इन्द्र सदस्य हुआ ३१ तदनन्तर यज्ञशाला में बर्त्तमान दूसरी प्रज्वलित अग्निके समान अत्यन्त प्रसन्नमन महात्मा संवर्त्तने देवताओंके समूहों को बुलाया और मन्त्रसे हव्यको अग्निमें होमा ३२ इसके पीछे इन्द्र और अन्य २ देवताओंके समूह उत्तम अमृत को खानपान करके राजासे बिदाहो आनन्दपूर्व्वक सब तृप्त और प्रीतिमान होकर सुखसे चलेगये ३३ तब प्रसन्नमन राजा मरुतने प्रत्येक स्थानपर सुवर्ण के ढेर करवाये फिर वह शत्रुहन्ता राजा मरुत ब्राह्मणों के निमित्त बहुत से धनको देताहुआ कुबेर जी के समान शोभायमान हुआ ३४ और नानाप्रकार के धनोंको रक्षाके स्थानों में रखवाकर उत्साह के अनुसार अपने धनागार को

पूर्ण करके अपने गुरुकी आज्ञालेकर अर्थात् गुरू संवर्त्तकी आज्ञानुसार राजा मरुतने वहांसे लौटकर इस सब सागराम्बरा पृथ्वीपर राज्य किया ३५ वह राजा ऐसा गुणवान् हुआ जिसके यज्ञमें वह सुवर्ण प्रकट हुआ हे महाराज उस धन को लेकर तुम बुद्धिसे देवताओं को तृप्त करते हुये पूजन करो ३६ वैशंपायन बोले कि इसके पीछे प्रसन्नमूर्त्ति राजा युधिष्ठिरने व्यासजीके वचनोंको सुनकर उस धनसे यज्ञ करने का विचार किया और मन्त्रियोंसे भी सलाहकरी ३७॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिसंवर्त्तमरुत्तीयेदशमोऽध्यायः १०॥

# ग्यारहवां अध्याय॥

वैशंपायन बोले कि इस प्रकारसे राजाके समझानेपर अपूर्व्वकर्मी महातपस्वी व्यासजी ने जैसे यह वचन कहना चाहा १ इतने में श्रीकृष्णजी ने उस राजा युधिष्ठिरको जिसके कि बांधव और जातिवाले मरगये थे दुःखीमन राहुसे ग्रसे हुये सूर्य्यके स्वरूप अथवा सधूम अग्नि के समान व्याकुलचित्त जानकर उस धर्मपुत्रको विश्वास पूर्व्वक यह वचन कहना प्रारम्भ किया २ कि वृद्धों के हजारों उपदेश और हजारों यज्ञों से भी शोक नहीं निवृत्त होसक्ता केवल ब्रह्मज्ञान से दूर होसक्ता है इस बातके प्रकट करने को वासुदेवजी बोले कि सबप्रकार के कामादिक मृत्युके स्थानहैं अर्थात् संसारमेंही प्रवृत्तकरने अथवा फँसानेवाले हैं और शम दमादिक सत्य बोलना ब्रह्मपद है अर्थात् मुक्तिका देनेवालाहै इतनाही ज्ञानका विषयहै बहुतसी अन्यवार्त्ता वृथाहैं ३।४ तुमने कर्मका अनुष्ठान नहीं किया तुमने शत्रु विजय नहीं किये तुम अपने शरीरके वसनेवाले शत्रुरूप अज्ञानको कैसे नहीं जानतेहो ५ यहां धर्म और ज्ञानके अनुसार मैं तुमसे उस प्रकार को कहताहूं जिस प्रकारसे कि काम क्रोधादिक धर्मवाले जड़ चैतन्य के समूहरूप अहङ्कारसे और अन्तर्वर्त्ती चिदात्मासे युद्ध वर्त्तमान हुआ ६ हे राजा निश्चय करके पूर्व्वसमय में स्थूल शरीररूप वृत्रासुर से व्याप्त हुये सूक्ष्म शरीर को आत्मारूप से अङ्गीकृत देखकर और गन्ध विषय में शरीर के नियत करने पर ७ अनात्मरूप विषय अर्थात् ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ जो कि स्थूल शरीर को आत्मारूप मानने से अनात्मारूप दुर्गन्ध था गन्ध विषयके प्राप्त करनेपर भीतर के चिदात्माने क्रोधकिया ८ इसके अनन्तर महाक्रोधीने वृत्रासुरके ऊपर आगे

के अध्याय के लिखेहुये विवेकरूप बज्रको छोड़ा बड़े उग्र और तेजस्वी बज्र से घायल वह बृत्रासुर अकस्मात् जलरूप दूसरे दिव्य भोगवाले सूक्ष्म शरीरमें प्रवेश करगया अर्थात् उस शरीरको आत्मारूप जाना और उसीसे विषयको प्राप्त किया फिर अभिमानी दिव्य शरीर होने और रसबिषयक दिव्यलोक में ममता करनेपर ६ । १० अत्यन्त क्रोधयुक्त इन्द्रने उसके ऊपर बज्रको छोड़ा उससमय बड़े तेजस्वी बज्रसे घायल वह बृत्रासुर अकस्मात् तैजसरूप ज्योति में प्रवेश करके उसशरीर का अभिमानी हुआ और उसीसे बिषयको प्राप्त किया अर्थात् अपने पहले सूक्ष्म शरीरको प्राप्त किया बृत्रासुर से तैजस शरीरके व्याप्तहोने और रूप बिषयमें ममता होने पर ११ । १२ अत्यन्त क्रोधयुक्त इन्द्रने उसपर बज्रको छोड़ा उस समय उस बड़े उग्र बज्रसे घायल वह बृत्रासुर अकस्मात् समष्टि लिंगशरीर रूप बायुमें प्रवेश करगया अर्थात् शरीरका अभिमानी हुआ और उससे बिषय प्राप्त किया उस समष्टिनाम सूक्ष्म शरीरको आत्मारूप माननें और मानसीरूप स्पर्श बिषयमें ममता होनेपर १३ । १४ अत्यन्त क्रोधयुक्त इन्द्रने उसपर बज्र का प्रहार किया तब उस बड़े तेजस्वी बज्रसे पीड़ित वह बृत्रासुर १५ आकाश अर्थात् अव्याकृत सुषुप्ती नाम अज्ञान की ओर दौड़ा और उससे भी बिषय को प्राप्त किया फिर आकाश के बृत्रासुर रूपहोने और शब्द बिषयमें ममता होने पर १६ अत्यन्त क्रोधयुक्त इन्द्रने उसपर बज्र छोड़ा उससमय बड़ा तेजस्वी बज्र से घायल वह बृत्रासुर १७ अकस्मात् इन्द्रमें प्रवेश करगया अर्थात् चिदात्माके ऐश्वर्य्यका अभिमानी हुआ उस बृत्रासुरके व्याप्त होने से इन्द्रको बड़ामोह उत्पन्न हुआ १८ हे तात बशिष्ठ अर्थात् गुरूने रथान्तर अर्थात् मायारूप रथ से जुदा करनेवाला अहंब्रह्म इस महावाक्य से उसको जगाया अर्थात् द्वैतता दूर करने से उसको निर्भय किया अर्थात् निराकारब्रह्म किया १६ हे भरतबंशियों में श्रेष्ठ इसके पीछे इन्द्र अर्थात् चिदात्मा ने बज्रके द्वारा शरीर में गुप्त होने वाले बृत्रासुर रूप अहङ्कार को मारा यह हमने सुनाहै २० इन्द्र ने इस धर्म की गुप्त वार्त्ता को महर्षियों के मध्यमें बर्णन की और ऋषियों ने मुझ से कही इस को तुम जानो २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिकृष्णधर्मसंवादेएकादशोऽध्यायः ११ ॥

# बारहवां अध्याय ॥

वज्रनाम विवेक प्रकट करनेको वासुदेवजी बोले कि दोप्रकारका रोग उत्पन्न होता है प्रथम शरीर सम्बन्धी दूसरा मानसी उन दोनों की उत्पत्ति परस्परमें है इसी से उनकी एकताका होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् सतोगुणादिसे उत्पन्न लिंगशरीरहै उसके बिना स्थूल शरीरनहींहै और इसशरीरके बिना उनगुणोंकी प्राप्ति नहीं है १ शरीरमें जो रोग उत्पन्न होताहै वह शारीरकरोग कहाता है और जो चित्तमें रोग उत्पन्न होताहै वह मानसीरोग कहाताहै २ हे राजा बात पित्त कफ नाम गुण शरीरसे उत्पन्न हैं जिसके शरीरमें उन तीनों गुणोंकी समता है उसकोही नीरोगता कहतेहैं ३ शीतता उष्णतासे दूरहोतीहै और उष्णता शीततासे निबृत्तहोती है सत्त्व, रज, तम नाम तीनों कारण शरीरके धर्म कहेजाते हैं ४ जो उनगुणों की समताहै तब तो उसको सुखचिह्नवाला कहतेहैं उन्होंमें एक के भी न्यूनाधिकहोनेमें उपाय बतायाजाताहै ५ शोक प्रसन्नतासे दूर होता है और प्रसन्नता शोकसे निबृत्त होजातीहै ६ कोई तो दुःखमें पड़ाहुआ मनुष्य पिछले सुखको और कोई सुखमें पड़ाहुआ पिछले दुःखोंको स्मरण करताहै अर्थात् एकके स्मरण करनेसे दूसरेका नाश होताहै ७ हे कुन्तीनन्दन सो तुम दुःखी नहींहो दुःखका स्मरण न करो न सुखी होकर सुखका स्मरणकरो किन्तु दुःखकी भ्रान्ति से दूसरा जो ब्रह्म है उसीका ध्यानकरो ८ हे राजेन्द्र अथवा तेरी ऐसीही प्रकृति है जिससे आकर्षण किया जाता है तो भी तुम शोकयुक्त होने के योग्य नहीं हो क्योंकि वह शोक निबृत्तहोगया पांडवोंके देखते हुये ९ एकबस्त्रा रजस्वला द्रौपदीको सभामें वर्त्तमान देखकर उसके देखने को योग्यनहींहो नगरसे वनको भेजना मृगचर्म्मादिक धारण करना और जो महाबनों में निवास हुआ उसके स्मरण करने को योग्य नहीं हो १० जटासुरसे महापीड़ा चित्रसेन गन्धर्वसे युद्ध और राजा जयद्रथसे जो दुःखहुये उसके स्मरण करनेको योग्यनहीं हो ११ हे राजा उसीप्रकार अग्निपात चर्य्यामें अर्थात् अज्ञात लाक्षागृहादि निवासमें कीचकने द्रौपदी को चरणों से घायल किया उसकोभी स्मरण करने के योग्य नहींहो १२ हे शत्रुबिजयी भीष्म और द्रोणाचार्य्यके साथ तेरा युद्धहुआ परंतु जिस युद्धमें अहंकारपूर्व्वक लड़ा वही युद्ध तेरे सम्मुख वर्त्तमान नियत

हुआ १३ हे भरतबंशी इसीकारणसे युद्धके अर्थ सम्मुखहोना चाहिये मायारूप चित्तसे परे ब्रह्मको योग और पवित्रकर्मोंसे प्राप्तकरो १४ जिस युद्ध में बाण शूरवीर और बान्धवों से कुछकाम नहीं है केवल अकेले मनहीसे लड़ताहै वह तेरा युद्ध सम्मुख बर्त्तमान हुआ १५ उस युद्धके बिजय न करनेपर किसदशाको पावेगा मायारूप चित्तको जानकर कार्योंसे निवृत्तहोगा अर्थात् कृतकृत्यहोगा १६ जीवों की उत्पत्ति और नाशको मायासे जानकर और इस बुद्धिको निश्चय करके बापदादों के राज्यपर जैसा योग्यहै वैसा राज्य शासनकरो १७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिकृष्णधर्मसंवादेद्वादशोऽध्यायः १२ ॥

# तेरहवां अध्याय ॥

बासुदेवजी बोले कि हे भरतवंशी बाहरी धन अर्थात् राज्यादि को त्यागकर सिद्धि अर्थात् मोक्ष नहीं होतीहै कामादिक धनको त्यागकर सिद्धि प्राप्त होती है अथवा बिवेक रहित केवल बैराग्यवान् होनेसे नहीं होती है १ बाहर के धनसे पृथक् शरीरसम्बन्धी धन में प्रवृत्त चित्त मनुष्यका जो धर्म और सुख होय वह शत्रुओंका होय अर्थात् वह धर्म और वह सुख अधर्म और दुःखके मूलरूप हैं २ दो अक्षर मृत्युके होयँ और तीन अक्षर सनातन ब्रह्मकेहों मम अर्थात् माया के धनादि बस्तुको अपना मानना मृत्यु होतीहै न मम अर्थात् यह मेरा नहींहै यह सनातन ब्रह्म होताहै ३ हे राजा इसीहेतुसे संग असंग नाम मृत्यु और ब्रह्म चित्तमेंही नियतहै वह दोनों दृष्टिसे गुप्त होकर निस्सन्देह जीवोंको लड़वातेहैं ४ हे भरतबंशी जगत्की इस सत्ताका नाश नहींहै यह निश्चयहै तो धर्मयुद्ध में जीवधारियोंके शरीरोंकोभी मारकर अहिंसा कोही पाताहै ५ स्थावर जंगम सृष्टि समेत इस संपूर्ण पृथ्वीको पाकर जिसकी ममता नहीं होय वह पृथ्वी को क्या करेगा ६ अथवा बनमेंनिवास और मूलफलसे निर्बाह करनेवाले जिस मनुष्य की ममता द्रब्योंमें है वह मृत्युके मुखमें बर्त्तमानहै हे भरतबंशी बाह्याभ्यन्तरके शत्रुओं का आत्मा मायारूप देखो ७ अर्थात् ध्यानसे साक्षात्कार करो जो पुरुष उस मायाको नहीं देखता है अर्थात् चिन्मात्र रूपसे नियत होता है वह संसारके बड़े भयसे निवृत्त होताहै ८ लोक में इच्छावान् पुरुष की प्रशंसा नहीं करते हैं यहां कोई काम इच्छा से रहित नहीं है सब अंगोंकी इच्छा मनरूप हैं

अर्थात् मनसे इच्छा इच्छा से काम और काम से दुःख उत्पन्न होता है जिनको कि विचारकर परिडत त्यागताहै अर्थात् अपने मनको रोकताहै ६ बहुत जन्मों के अभ्यास से शुद्धचित्त योगी मोक्षमार्ग को विचारकर इच्छादिकों को त्याग करे १० दान, वेदपाठ, तप, सफलकर्म, वैदिक कर्म्म, व्रत, नियम और यज्ञादिक कर्मोंको ध्यान योगतक जानकर इच्छासे प्रारम्भ करताहै और यह जिस२ को चाहता है वह धर्म नहीं है जो इच्छादिकों को रोकता है वही धर्म्म है और उस मोक्षका बीज है ११ प्राचीन वृत्तान्तों के जाननेवाले मनुष्य इस स्थान पर कामदेव के गायेहुये इन श्लोकों को कहते हैं उन श्लोकोंको मैं तुमसे कहता हूं हे युधिष्ठिर उनको सम्पूर्णतासे सुनो १२ निर्ममता और योगाभ्यासके बिना किसी उपाय करके भी मुझको कोई जीव नहीं मारसक्ता जो मनुष्य जपरूपी शस्त्रमें बल जानकर मेरे मारनेमें उपाय करताहै १३ मैं उसके उस जपरूप शस्त्र में प्रकट होताहूं अर्थात् उससे कहलाताहूं कि मैं सबसे उत्तम जप करनेवालाहूं उस बातसे उसके जपको निष्फल करताहूं जो मनुष्य नानाप्रकार की उत्तम दक्षिणावाले यज्ञों के द्वारा मेरे मारने में उपाय करता है १४ मैं फिर उसके मनरूपी शस्त्रमें प्रकट होताहूं अर्थात् वह शोचताहै कि मैं चेष्टा करनेवाले जीवोंमें धर्मात्माहूं जो मनुष्य वेद वेदांत और सदैव साधुओं के द्वारा मेरे मारने में उपाय करता है १५ मैं उसके चित्तरूपी शस्त्रमें प्रकट होताहूं अर्थात् वह मनुष्य कहताहै कि मैं स्थावर जीवों में जीवात्माहूं जो सत्य पराक्रमी युद्ध और पराक्रम में धैर्ययुक्त होनेसे मेरे मारनेमें उपाय करता है १६ मैं उसका चित्त होताहूं अर्थात् धैर्य के द्वारा सब प्रकारके लोगों के विजय करने को अभिमान करता हूं वह मुझको नहीं जानता है जो व्रत में स्तुतिमात्र मनुष्य तप के द्वारा अर्थात् योगबलसे मेरे मारनेमें उपाय करताहै १७ तब मैं उसके तपमें प्रकट होताहूं अर्थात् आत्मा आदिक ऐश्वर्य्यों में उसकी इच्छा उत्पन्न होती है जो परिडत मनुष्य आत्माको न जानकर मोक्षमार्ग में नियत होकर मेरे मारनें में उपाय करता है १८ उस मोक्षमें प्रवृत्त चित्त मनुष्यको देखकर नाचताहूं और हँसताहूं मैं अकेला सनातन सब जीवमात्रों से अवध्यहूं १९ हे महाराज इसी हेतुसे तुमभी नानाप्रकार की दक्षिणावाले यज्ञोंसे उस कामको धर्म नियत करो वहां पर वह तेरा होगा अर्थात् यज्ञ से चित्तशुद्धी और चित्तशुद्धी के द्वारा ममता से रहित

योगाभ्यास और योगाभ्यास से काम विजय होगा फिर मोक्ष प्राप्तहोगा २० द-क्षिणा रखनेवाले अश्वमेध और पूर्ण दक्षिणावाले वृद्धियुक्त नानाप्रकार के अ-न्य २ यज्ञोंसे विधिके अनुसार पूजन करो २१ मृतकबांधवों को देखकर वारम्वार तुमको दुःख न होय जो इस युद्धभूमिमें मारेगये हैं वह फिर देखनेको असंभव हैं २२ सो तुम वृद्धियुक्त पूर्ण दक्षिणावाले महायज्ञों में पूजनकर लोक में उत्तम कीर्त्तिको प्राप्त करके श्रेष्ठ गतिको पाओगे २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिकृष्णधर्मसंवादेत्रयोदशोऽध्यायः १३ ॥

# चौदहवां अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि जिसके बांधव मारेगये वह राजा युधिष्ठिर इस प्रकार उन तपोधन मुनियों के वहुत प्रकार के वचनों से बिश्वास युक्त हुआ १ आप भगवान् विष्टरश्रव व्यास प्रभु देवस्थान २ नारद, भीमसेन, नकुल, द्रौपदी, स-हदेव, बुद्धिमान् अर्ज्जुन ३ और अन्य अन्य शास्त्रज्ञ पुरुषोत्तम ब्राह्मणों से स-मझाये हुये राजा युधिष्ठिर ने शोकजन्य दुःख और चित्तके विषाद को त्याग किया ४ उस राजा युधिष्ठिर ने बांधवों के प्रीति कर्म्मों को करके देवता और ब्राह्मणों का पूजन कर सागराम्बरा पृथ्वी पर राज्य किया ५ फिर शान्त होकर उस शान्तचित्त राजायुधिष्ठिर ने अपने शुद्ध राज्यको पाकर व्यास नारद और अन्य ऋषियों से कहा ६ कि पूर्व में मुझको आप वृद्ध और श्रेष्ठ मुनिलोगों ने बिश्वास कराया है अब मुझको थोड़ी भी शोकजनित पीड़ा नहीं है मैंने बड़ा धन पाया है उसीसे मैं देवताओं का पूजन करूंगा अब आप को अग्रगामी अर्थात् सम्मुखस्थ करके यज्ञको प्राप्तकरूंगा ७ । ८ हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ पितामह आपकी रक्षामें होकर हम हिमालय पर्व्वतको जायँगे वह देश बड़े बड़े अद्भुत पदार्थों का रखनेवाला सुनाजाता है ९ इसप्रकार भगवान् देवऋषि नारद और देवस्थानसे अपूर्व्व कल्याणरूप वहुत से वचनकहे १० कि बिना प्रारब्ध के कोई मनुष्य भी दुःखको पाकर इसप्रकार के शुभचिन्तक साधुओं के अङ्गीकृत गुरु-ओं को नहीं पाता है ११ राजासे इसप्रकार कहेहुये वह सब देवर्षि राजा युधि-ष्ठिर श्रीकृष्ण और अर्जुन से कहकर सबके देखतेहुये उसी स्थानपर गुप्त होग-ये इसके पीछे वह धर्मपुत्र प्रभुराजा युधिष्ठिर उसी स्थानपर बैठगया १२ । १३

हे कौरवों में श्रेष्ठ तब भीष्मजी के मरने पर इस प्रकार शौच कर्म्म करके और भीष्म कर्ण आदिक कौरवों के कर्म से सम्बन्ध रखनेवाले दान ब्राह्मणों के निमित्त देते उन पाण्डवों का वह बड़ा समय समाप्त नहीं हुआ अर्थात् थोड़ा समय व्यतीत हुआ १४। १५ उस राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्र समेत श्राद्धादि से सम्बन्ध रखनेवाला दान दिया इसके पीछे बहुतसा धन वेदपाठी ब्राह्मणों को देकर धृतराष्ट्र को आगे करके हस्तिनापुर में प्रवेश किया १६ उस धर्म्मात्मा युधिष्ठिरने भाइयों समेत ज्ञानचक्षु रखनेवाले ताऊ राजा धृतराष्ट्र को बिश्वास देकर पृथ्वीपर राज्य किया १७। १८॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिचतुर्द्दशोऽध्यायः १४॥

## पन्द्रहवां अध्याय॥

राजा जनमेजयने पूछा कि हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ पाण्डवोंके विजयी और शान्तचित्त होनेपर बीर वासुदेव और अर्ज्जुनने देशमें क्या किया १ वैशम्पायन बोले कि हे राजा पाण्डव के विजयी और शान्तचित्त होनेपर देशमें अर्ज्जुन और वासुदेवजी प्रसन्नहुये २ उन आह्लाद युक्तों ने ऐसे बिहार किया जैसे कि स्वर्ग्ग में दो देवराज नन्दनवन में अश्विनीकुमार और विचित्र बनमें शिखरधारी पर्वत होते हैं ३ पवित्रतीर्थ पल्वल और नदियोंपर घूमते अत्यन्त प्रसन्न ४ महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन इन्द्रप्रस्थ में रहनेलगे उस सुन्दर सभा में प्रवेश करके देवताओं के समान बिहार किया ५ हे राजा वहां बिहार करतेहुये सदैव प्रत्येक कथा में अपूर्व युद्धके वृत्तान्त और कष्टोंको वर्णन किया ६ प्रसन्न मन महात्मा पुराण ऋषियों में श्रेष्ठ उनदोनों श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनने ऋषि और देवताओं के वंशों का वर्णन किया ७ उस निश्चय चाहनेवाले केशवजी ने अपूर्व्व अर्थपद निश्चयात्मक और अपूर्व्व चित्तरोचक कथाओं को अर्ज्जुन के सम्मुख वर्णनकिया ८ शूरवंशी श्रीकृष्णने हज़ारों बिरादरी वाले और पुत्रों के शोक से दुःखीरूप उस अर्जुन को कथाओंके द्वारा शान्त किया ९ विज्ञान के ज्ञाता महातपस्वी उन श्रीकृष्ण जी ने बुद्धि के अनुसार उस अर्ज़ुन को बिश्वास देकर अपने बोझेको निवृत्त करके विश्रामलिया १० इसके पीछे शुद्ध और मधुरभाषणसे बिश्वास कराते गोबिन्द जी ने कथा के समाप्त होनेपर अ-

र्ज्जुन से यह सहेतुक वचन कहा ११ हे परमतप अर्ज्जुन धर्म्मपुत्र राजा युधि-ष्ठिरने तेरे भुजबल में आश्रित होकर यह सब पृथ्वी बिजयकी १२ हे नरोत्तम वह धर्मराज युधिष्ठिर इन भीमसेन नकुल और सहदेव के प्रभाव से इस शत्रु से रहित पृथ्वी को भोगता है १३ हे धर्म्मज्ञ राजाने धर्म्मपूर्व्वक इस अकण्टक राज्य को प्राप्त किया और वह राजा सुयोधन युद्धमें धर्म से मारागया और १४ अधर्म में प्रवृत्त लोभी सदैव अप्रिय कहनेवाले दुर्बुद्धी धृतराष्ट्र के पुत्र अपने सहायकों समेत गिराये गये १५ हे कौरव अर्जुन धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तुम से रक्षित होकर इन उपद्रवादिकों से रहित सम्पूर्ण पृथ्वीको भोगताहै १६ हे पांडव मैं तेरे साथ बनों में भी रमताहूं और हे शत्रुओं के बिजय करनेवाले जहां पर यह सब इष्टमित्र नातेदार आदिक समेत कुन्ती है वहां मैं कैसे निवास न करूं १७ जहांपर कि धर्मसुत राजा युधिष्ठिरहै बड़ा पराक्रमी भीमसेन है और नकुल सहदेव भी बर्त्तमान हैं वहां मेरी बड़ी प्रीतिहै १८ हे निष्पाप कौरव उसीप्रकार स्वर्ग के समान सुन्दर और पवित्र स्थानवाली सभामें मुझ तेरे साथीका बड़ा समय ब्यतीत हुआ जो कि मैं बसुदेव जी बलदेव जी और अन्य २ श्रेष्ठ वृ-ष्णियों के दर्शनसे रहितहूं १९।२० सो मैं द्वारकापुरी में जाया चाहताहूं हे पुरु-षोत्तम तुमको भी मेरा जाना स्वीकार होय २१ राजा युधिष्ठिरको मैंने जहां त-हां अनेक प्रकारसे समझायाहै और भीष्मजीके शोकस्थानपर भी हमने सम-झाया २२ सबपर प्रतापी और पंडितहोनाभी हमने राजाको सिखाया और उस महात्माने हमारा वह वचन अच्छीरीतिसे स्वीकारकिया २३ धर्म्मज्ञ कृतज्ञ और सत्यवक्ता धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर के चित्तमें धर्म्मकी सत्यता उत्तम बुद्धि और मर्या-दा सदैव नियतहै २४ हे अर्ज्जुन जो तुमको स्वीकारहै तो उस महात्मा राजा से वह वचन कहो जो कि हमारे प्रस्थान करने से सम्बन्ध रखता है २५ हे म-हाबाहु प्राणत्याग दशामें भी उसका अप्रिय नहीं करूंगा फिर द्वारकापुरीजाने में कैसे करूंगा २६ हे कौरव अर्ज्जुन मैं यह सब तेरी प्रीतिके अर्त्थ कहता हूं यह सत्य २ है किसीप्रकारसे भी मिथ्या नहीं है २७ हे अर्ज्जुन यहां मेरे निवा-स करने से बड़ा प्रयोजन प्राप्तहुआ राजा दुर्य्योधन अपनी सब सेना और सा-थी सहायकोंसमेत मारागया २८ हेतात यह सागराम्बरा पृथ्वीपर्व्वत बन और काननों समेत धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरके आधीन होकर आज्ञावर्त्ती है २९ हे अर्जुन

कौरवराजकी वहपृथ्वी बहुत प्रकारके रत्नों से संयुक्तहै उसको धर्म्मज्ञ राजालोग सब प्रकार से रक्षा करें ३० हे भरतवंशी जो कि श्रेष्ठ महात्मा सिद्ध और मुनियों के साथ बैठनेवाला और सदैव बंदीजनोंसे स्तूयमानहै उसराजायुधिष्ठिर से ३१ अब तुम मेरेसाथ चलने के विषयमें जाकर पूछो ३२ हे अर्जुन यह शरीर और जो धन मेरे घरमें है वह मैंने राजायुधिष्ठिर की भेंटकिया यह कौरवोंका स्वामी बड़ा बुद्धिमान् युधिष्ठिर सदैव मेराप्यारा होकर पूजन के योग्यहै ३३ हे राजकुमार मेरे निवास करने में तेरे सिवाय दूसरा कोई और हेतु नहीं है हेअर्जुन तेरे बड़ेभाई श्रेष्ठ चलन युधिष्ठिरके आज्ञावर्त्ती होकर यह पृथ्वी नियतहै ३४ इसप्रकारके महापराक्रमी प्रतापी श्रीकृष्णजी के इन सब बचनों को सुनकर उस अर्जुनने श्रीकृष्णजीका पूजनकरकेबड़े दुःखसे यहबचनकहा कि ऐसाहीहोय ३५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिपंचदशोऽध्यायः १५ ॥

# सोलहवां अध्याय ॥

## अथ ब्राह्मण गीता ॥

जनमेजयने पूछा कि हे ब्राह्मण शत्रुओंको मारकर उस सभामें नियत उन महात्मा केशवजी और अर्जुनकी कौन २ सी कथाहुई १ बैशम्पायन बोले कि उस अर्जुनने निष्कण्टक राज्य को पाकर बड़ी प्रसन्नचित्ततासे श्रीकृष्णजी के साथ उस दिव्य सभा में विहार किया २ हे राजा वह दोनों प्रसन्नचित्त अपने इष्टमित्र भाई बन्धु आदिसे युक्त दैवयोगसे उस स्वर्ग के मुख्य स्थानके समान सभा में पहुंचे ३ इसके अनन्तर प्रसन्नचित्त पाण्डव अर्जुनने उस सभाको देखकर यह बचन कहा ४ कि हे महाबाहु श्रीकृष्णजी युद्ध के बर्त्तमान होने पर जो आपने अपना माहात्म्य और ईश्वररूप मुझ से कहाथा ५ अर्थात् हे केशवजी पूर्व समय में आप भगवान् ने जो वह परमार्थविद्या वर्णन करीथी वह सब मुझ चित्तसे उदासीन को बिसमरण होगई है ६ हे लक्ष्मीपति उन प्रयोजनोंमेंही मेरी बारंबार प्रीति उत्पन्न होती है और आप बहुत थोड़ेही काल पीछे द्वारका को जाओगे ७ बैशंपायन कहते हैं इसप्रकार अर्जुन के बचन को सुनकर महातेजस्वी बक्ताओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी ने उस अर्जुन को स्नेहपूर्व्वक यह उत्तर दिया ८ कि हे अर्ज्जुन मैंने तुमको गुप्तरहस्य सुनाया सनातनपुरुष

जतलाया सुंदररूप धर्म और सब सनातन लोकोंका भी बर्णन किया ६ तुमने अपनी निर्बुद्धिता से जो उसको अपने चित्तमें धारण नहीं किया वह मुझको बहुत बुरा मालूमहुआ अब वह मेरी स्मृति फिर प्रकट नहीं होगी १० हे पांडव अर्जुन निश्चय करके तू श्रद्धा से रहित और दुर्बुद्धी है वह परमार्थ विद्या संपूर्णता पूर्व्वक फिर कहना असंभव है ११ । १२ मुझ योगसे संयुक्त ने वह परब्रह्म बर्णनकियाथा अब उसी प्रयोजनमें मैं उसप्राचीन इतिहासको बर्णन करूंगा १३ जिससे कि तुमबुद्धिमें नियतहोकर श्रेष्ठगतिकोपावोगे हेधर्मधारियों में श्रेष्ठ मेरे सब बर्णनको सुनो १४ हेशत्रुओं के बिजय करनेवाले एक अजेयब्राह्मणस्वर्गलोक और ब्रह्मलोकसेआया उसका हमने पूजनकिया १५ हेभरतर्षभ हमसे मिलकर हमलोगों से जो उस ब्राह्मणने अपनी दिव्यबुद्धि से जो कहाहै उसको तुम किसीप्रकारके संकल्प बिकल्प किये बिनासुनो १६ ब्राह्मणने हे परमात्मा श्रीकृष्ण आपने मोक्षधर्म में आश्रित होकर जीवोंपर करुणा करने के प्रयोजन से जो पूछाहै वह मोहका दूर करनेवाला है १७ हे मधुसूदन उसकोमैं ठीक २ तुमसे कहताहूं हे लक्ष्मीपति तुम सावधान होकर उस कहे हुये को श्रवण करो १८ कि तपसे पूर्ण किसी धर्मज्ञ कश्यपगोत्री ब्राह्मणने दूसरे किसीऐसे अन्यगोत्री ब्राह्मणको पाया जो कि शास्त्रों के गुप्तरहस्यों का जाननेवाला था १९ जन्म मरणके बिषयमें शास्त्रके अनुमान से उत्पन्न ज्ञान और योगजन्य बिज्ञान इनदोनों में कुशललोक के सिद्धांत में सावधान सुख दुःखादिका जाननेवाला २० जन्ममरण के मूल सिद्धांतों का ज्ञाता पापपुण्य के जानने में पण्डित कर्मजन्य जीवों की छोटी बड़ी गतियों का देखनेवाला २१ जीवनमुक्तके समान घूमने वाला सिद्ध,शान्तरूप,श्रेष्ठजितेन्द्रिय, शम दमादि ब्राह्मणों की लक्ष्मी से प्रकाशमान सब का उद्धार करनेवाला २२ अन्तर्द्धान गति का ज्ञाता इसीप्रकार चक्रधारी सिद्धोंकेसाथमें जानेवाला था काश्यपने उसको मूल समेत सुनकर २३ उन सिद्धों समेत एकान्तबासी बार्त्ता करनेवाले बायुके समान असङ्ग ऋषिको दैवयोगसे पाया २४ तब उस बुद्धिमान् बड़े साधु ब्राह्मण तपस्वी सावधान बड़ीभक्तिसे युक्त धर्मके इच्छावान् काश्यपने उसको पाकर न्याय के अनुसार उसके चरणोंको पकड़ा २५ काश्यप उस उत्तम ब्राह्मणको देखकर आश्चर्य्ययुक्त हुआ और उस गुरुरूपको बड़ी सेवासे प्रसन्न किया २६ हेपरंतप

शास्त्र और अनुष्ठानसे संयुक्त वह सब उसका किया हुआ कर्म्म उसने अङ्गीकार किया तब उसने उसको भी प्रीतिपूर्व्वक गुरुवृत्ती से प्रसन्न किया २७ उस प्रसन्न और तृप्त ऋषिने उस शिष्यके अर्थ जो बचन कहा हे श्रीकृष्ण तुम उस उत्तम सिद्धिको मुझसे सुनो २८ सिद्धने कहा कि हे तात इस लोक में मनुष्य नानाप्रकार के कर्म और पवित्र पुण्यों से गतिको और देवलोकमें निवास को पाते हैं २९ परन्तु कहीं भी अत्यन्त सुख नहीं है और न कहीं सदैव के लिये स्थिति है इच्छा और क्रोध से पूर्णलोभसे मोहित होकर पापसेवन से मैंने बारम्बार उत्तम स्थानसे पतनहो महादुःखोंको पाकर शुभाशुभ दुःखरूपी गतियोंको प्राप्त किया बारम्बार जन्म और बारम्बारही मरण हुआ नानाप्रकार के आहारों का भोजन किया नाना देहधारियोंके स्तनों का पान किया ३०। ३१। ३२ अनेक प्रकारके माता पिता देखे और हे निष्पाप मैंने बिचित्र सुखदुःखभी देखे ३३ बहुधा अपने प्यारे लोगों से पृथक्ता और अप्रिय लोगोंके साथ निवास किया दुःख से धनको पाकर भी उस धनका नाश प्राप्त किया ३४ राजासे और ज्ञाति बन्धु आदिक से कठिन अपमान और महा असह्यचित्त और देहकी पीड़ाओं को भी प्राप्त किया ३५ कठिन अपमान असह्य दूसरे का पकड़ना मारा जाना नरक में गिरना और यमलोक में अत्यन्त कठिन पीड़ाओं को प्राप्त किया ३६ मैंने इस लोकमें सदैव जरावस्था रोग और शर्दी गर्मी आदिक योगोंसे उत्पन्न अनेक दुःखोंको भी देखा ३७ फिर कभी दुःखसे कठिन पीड़ित और असंप्रज्ञात समाधिको पाकर ब्रह्मभावमें आश्रित होकर मैंने इस द्वैततासे उत्पन्न लोक तंत्र को वैराग्यके द्वारा चारों ओरसे त्याग किया ३८ फिर मैं लोकमें इस योगमार्ग को जानकर उसमें सदैव अभ्यास करनेवाला हुआ उस अनुष्ठान और चित्त की शुद्धी से मैंने यह सिद्धि प्राप्तकी ३९ मैं अब फिर यहां मोक्षतक नहीं आऊंगा अपनी शुभगतियों को और सृष्टिकी उत्पत्तितक सब संसार के जीवोंको देखताहूं अर्थात् ब्रह्मज्ञान के फल से शुद्धमोक्ष और सर्वज्ञता मुझको प्राप्त है हे ब्राह्मणोत्तम इसप्रकारसे यह उत्तम सिद्धि मैंने प्राप्तकी अब यहां से सत्यलोकको जाऊंगा तब वहां जाकर कैवल्य मोक्षको पाऊंगा जो कि दृष्टिसे गुप्त ब्रह्मलोक है उसमें तुमको सन्देह न करना चाहिये हे परन्तप फिर मैं इस नरलोकमें न आऊंगा ४०।४१।४२ हे स्थानसे रहित महाज्ञानी मैं तुझपर प्रसन्नहूं अब जो तू मांगे

उसको मैं करूंगा अर्थात् जो तेरी इच्छा है उसको कहो अब उसका यह समय बर्त्तमान हुआ है ४३ मैं उस प्रयोजनको अच्छी रीतिसे जानताहूं जिसके निःमित्त तू मेरे पास आयाहै मैं शीघ्रही जाऊंगा इसीहेतुसे तुझको प्रेरणा करताहूं ४४ हे पण्डित मैं आपके चलन से अत्यन्त प्रसन्नहूं तुम ब्रह्मज्ञान को पूछो वह तेरे मनका प्रिय है उसको मैं कहूं ४५ मैं तेरी उस बुद्धिको बड़ी मानता हूं और उसकी अत्यन्त प्रशंसा करताहूं जिसके द्वारा तुमने मुझको जाना हे काश्यप तुम बड़े बुद्धिमान्हो ४६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअनुगीतासुषोडशोऽध्यायः १६ ॥

## सत्रहवां अध्याय ॥

बासुदेवजी बोले कि इसके पीछे काश्यपने उसके चरणों को स्पर्श करके बड़े कठिन २ प्रश्नोंको पूछा और उस धर्मधारियों में श्रेष्ठ सिद्धने उन धर्मों को बर्णन किया १ काश्यपने कहा कि शरीर कैसे गिरता है १ कैसे प्राप्तहोता है २ और किसप्रकार ३ दुःखरूप संसार से पृथक् होकर चारों ओर से मुक्त होताहै २ जीवात्मा ४ प्रकृति अर्थात् मूल अज्ञानको त्यागकरके उससे उत्पन्न स्थूल शरीर को किस रीति से छोड़ता है और शरीर से पृथक् ५ होकर किस प्रकार से ब्रह्मको प्राप्त करता है ३ यह जीवात्मा ६ अपने किये हुये शुभाशुभ कर्म्म को कैसे भोगता है और उस शरीर से जुदे का कर्म्म अर्थात् बीजरूप संसार कहां नियत होता है ४ ब्राह्मणने कहा कि हे श्रीकृष्णजी इस प्रकार से कर्म्म में प्रवृत्त उस सिद्ध ने उन प्रश्नों को क्रमपूर्व्वक बर्णन किया उनको मुझ से सुनो ५ सिद्ध बोला कि इस लोकमें जिस जन्मके मध्यमें आयुर्दा और शुभकीर्त्ति उत्पन्न करनेवाला जिन कर्मोंको करता है उन सब कर्मों का फल समाप्त होनेपर आयुर्दासे नाशयुक्त शरीर वाला मनुष्य विपरीत कर्मको करताहै और नाशके बर्त्तमान होनेपर उसकी बुद्धि विपरीत होजाती है ६। ७ वह ब्रह्मज्ञान से रहित अपनी अवस्था शरीर बल और समय को जानकर भी बहुत काल तक अपने स्वभाव से बिपरीत विषयोंको भोगता है ८ जब यह अत्यन्त दुःखकारी कर्मोंको करताहै तब बहुत खाताहै अथवा कभी नहीं भी खाताहै ९ दूषित भोजन मांस

और पीनेकी वस्तु परस्पर विरुद्ध भोजन शरीरका भारी करनेवाला भोजन और नियत परिमाण से अधिक खाताहै और फिर अच्छे परिपाक होनेपर नहीं खाता है १० कठिन परिश्रम करता है अपने वित्तसे अधिक संभोग करता है और मूत्र विष्ठाके वेगको लोभ करके सदैव रोकताहै ११ रससे संयुक्त भोजनकी वस्तु को खाता हुआ प्रतिदिन शयन करता है फिर कुसमयपर भोजनादि को करने से वह भोजन परिपाक अवस्था में दोषरूप होकर अर्थात् बात पित्त कफ इन तीनोंके दोषोंको करताहै १२ अपने बात पित्तादि के दोषोंसे मरणांतक रोगों को प्राप्तकरताहै और यह भी होताहै कि विरुद्ध रीतिसे ग्रीवा आदिमें फांसी लगाकर मरजाने को निश्चय करता है १३ तब उन सब कारणों से जीवात्माका शरीर और ऊपर लिखे हुये जीवन का नाश होताहै उसको तुम बुद्धि के अनुसार सुनो १४ कठिनबायुसे चलायमान अत्यन्त वृद्धियुक्त ऊष्मा शरीरको व्याप्त करके सब इन्द्रियोंको रोकती है १५ अत्यन्त बलिष्ठ और शरीरमें चारोंओर से बढ़ीहुई ऊष्मा जीवात्मा के मर्मस्थलों को पीड़ित करके तोड़ती है उसको तुम मूल समेत समझो १६ इसके पीछे मर्मस्थलों के टूटने पर वह पीड़ावान् जीवात्मा शीघ्रही शरीर से जुदा होताहै अर्थात् शरीरको त्याग करताहै १७ क्योंकि वह पीड़ाओं से पूर्ण शरीर होताहै हे श्रेष्ठ ब्राह्मण इसको जानो और हेद्विजोत्तम सदैव जन्ममरणसे व्याकुलचित्त सब जीवधारी १८ शरीरोंको त्याग करते देखने में आते हैं फिर गर्भ संक्रमण और पूर्वजन्मके कर्मसे संयुक्त होनेमें मनुष्य १९ उसीप्रकार की पीड़ाको पाताहै टूटेजोड़ और हड्डीवाला वह मनुष्य जलों से बृद्धिको पाताहै २० शरीरमें शीतसे क्रोध मिश्रित और कठिन बायुसे प्रेरित ऊष्मा जैसे जैसे कि पांचोंतत्त्वों में प्रवेश करती है उसकोसुनो २१ जो बायु कि ऊपरकी ओर अपनी गति रखनेवाली पांचोंतत्त्व और प्राण अपानमें नियतहै वह बड़ी कठिनता से जीवात्मा को त्याग करके जाती है २२ इसप्रकार से जब वह शरीरको त्याग करता है और वह शरीर निर्जीव दृष्ट पड़ता है ऊष्मा और श्वासाओं से रहित अशोभित जड़रूप २३ ब्रह्म से बाहिष्कृत वह मनुष्य मृतक कहाताहै यह जीवात्मा जिन शरीर के छिद्रोंसे इन्द्रियों के विषयों को जानताहै उन्हीं से उन भोजनसे प्रकट होनेवाले प्राणोंको भी जानताहै जो जीव उस शरीरमें कर्म करता है वह सनातन है २४। २५ इसीप्रकार किसी किसी स्थानपर

दो नाड़ी के मिलने में जो २ जोड़ होगये उसी उसीको मर्मस्थल जानो इसप्रकारसे हमने शास्त्र में देखा है फिर मर्मस्थलों के टूटनेपर वह प्राण शब्द करता हुआ जीवके हृदय में प्रवेश करके शीघ्रही चित्तको रोकताहै इसीहेतुसे वह चैतन्य जीव कुछ नहीं जानताहै २६। २७ मर्मों के रुकजाने पर मोहसे गुप्तहुआ ज्ञान और निवासस्थान न रखनेवाला वह जीव बायुसे प्रेरित चलायमान किया जाता है २८ इसके पीछे वह बायु उस लम्बी श्वासा लेनेवाले जीवको कठिनतासे सहनेके योग्य बहुत श्वासोंको दिलाकर शरीरसे निकालता शीघ्रही इस अचेत शरीर को कम्पायमान करताहै २९ शरीर से जुदा और अपने कर्मों से युक्त वह जीव चारोंओर को अपने पाप और पुण्यसे संयुक्त होता है ३० बुद्धि के अनुसार शास्त्रको निश्चय करनेवाले ज्ञानी ब्राह्मण अर्थात् अन्य शुभकर्मी मनुष्य लक्षणोंसे उस जीवको जानते हैं ३१ जैसे कि नेत्रयुक्त मनुष्य अँधेरे में बर्त्तमान खद्योत अर्थात् पटबीजनों को जहां तहां देखते हैं उसीप्रकार ज्ञानरूपी नेत्र रखनेवाले ३२ सिद्धलोग अपने दिव्य नेत्रसे उस शरीर से पृथक् गर्भ में आयेहुये जन्म लेनेवाले जीवको देखते हैं ३३ यहां शास्त्र के द्वारा उसके स्थान तीन प्रकारके देखे गये हैं यह पृथ्वी कर्म्मभूमि है जिसमें कि जीव नियत होते हैं ३४ सब शरीरधारी शुभाशुभ कर्म्मों को करके उसके फल को पाते हैं और यहांही अपने कर्म्मों के अनुसार छोटे बड़े भोगों को प्राप्त करके भोगते हैं ३५ यहांही बुरे कर्म्म करनेवाले मनुष्य अपनेही कर्म्म के द्वारा नरक को गये यह दुःखरूप पिछली गति है जिसमें कि मनुष्य पकते हैं ३६ इसी हेतुसे मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है और उस नरकसे आत्माकी रक्षाका करना अवश्य योग्यहै ३७ जीवधारी ऊपर की ओर जाकर जिन स्थानों पर नियतहैं उन स्थानोंको मैं मूल समेत तुमसे कहताहूं ३८ इसके सुनने से नैष्ठिक बुद्धि और कर्म्म की निश्चलताको जानोगे जहां पर चन्द्रमण्डल है और जिस लोकमें सूर्यमण्डल अपने तेजसे प्रकाशमानहै उस स्थान में जो सब नक्षत्ररूप स्थानहैं उन सबको पवित्र कर्मी मनुष्यों के स्थान जानो ३९। ४० वह सब अपने २ कर्म्म फल के समाप्त होनेपर बारंबार गिरते हैं वहां स्वर्ग में भी उत्तम मध्यम और निकृष्ट पद हैं ४१ वहां भी दूसरे की बड़ी प्रकाशमान लक्ष्मी को देखकर सन्तोष नहीं होताहै यह सब गति मैंने तुझसे पृथक् पृथक् बर्णन की ४२ हे ब्राह्मण इसके पीछे मैं गर्भ

की उत्पत्ति का बर्णन करताहूं उसको भी तुम बड़ी सावधानी से सुनो ४३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअनुगीतासुसप्तदशोऽध्यायः १७॥

## अठारहवां अध्याय ॥

दूसरे प्रश्न के उत्तर में ब्राह्मण ने कहा कि यहां इस लोक में शुभाशुभ कर्मोंका नाश नहीं है सब जीव शरीरोंको बारम्बार पाकर फलको पाते हैं १ जैसे कि अच्छा सींचा हुआ वृक्ष बहुत से फलोंको देता है उसीप्रकार पवित्र मनसे कियाहुआ कर्म बड़े फल वाला होताहै २ इसीप्रकार पापचित्तसे कियेहुये कर्म का भी फल पापों से युक्त होताहै आत्मा इस मनको अग्रवर्ती करके कर्म में प्रवृत्त होताहै तात्पर्य यहहै कि मनही प्रधान है कर्म की प्रधानता नहींहै क्योंकि जैसी चित्त की शुद्धि और मलिनता होगी उसीप्रकार थोड़े पुण्य और पाप से भी बड़ा फल होगा ३ इच्छा और अज्ञान से घिराहुआ जीवताहुआ कर्म्म में फँसाहुआ जीवात्मा जैसी रीतिसे गर्भ्भ में प्रवेश करताहै उस प्रश्नके भी उत्तर को श्रवण करो ४ रुधिर से संयुक्त और स्त्रीके गर्भाधानमें वर्तमान वीर्य कर्मजन्य शरीरको उत्पन्न करताहै वह कर्म शुभ और अशुभ जैसा होय ५ अब शरीर प्राप्त करनेवाले जीवात्माके मुख्यरूप को कहते हैं—ब्रह्मज्ञानी अपनी सूक्ष्मता और अव्यक्त भावसे कहीं और का और नहीं होताहै उस सनातन ब्रह्मको जानकर मनोभीष्ट को पाकर असङ्ग होताहै वह ब्रह्म सब जीवों के प्रकट होनेका कारण है उसीसे जीवधारी सजीव रहते हैं ब्रह्मरूप होता हुआ वह जीव उस गर्भ्भ के सब अङ्गों में विभागीपने से प्रवेश करके ६ । ७ उपाधिरूप चित्तसे इन्द्रिय रूपी गोलक में नियत होकर अभिमान को धारण करता है उस धारणा से वह सब उसके अङ्ग बहुत शीघ्र चलायमान होते हैं अर्थात् वह गर्भ्भ चैतन्य होता है ८ सूक्ष्मरूप कैसे शरीरयुक्त होता है दृष्टिसे गुप्त कैसे प्रत्यक्षता को पाता है और असङ्ग कैसे संगी होजाताहै इन तीनों संदेहोंको तीन श्लोकों से दूर करते हैं— जैसे कि थोड़ासा भी सुवर्णका जल ताँबे की मूर्त्ति को स्वर्णमयी करदेताहै उसीप्रकार उस सूक्ष्मजीव का गर्भ्भ में जाना जानो ९ जिस प्रकार दृष्टिसे गुप्त अग्नि लोहमयी पिण्ड में प्रवेश करके उसको अच्छे प्रकार से तपाता है उसी प्रकार तुमभी उस दृष्टिसे गुप्त जीवात्मासे गर्भका चैतन्य होना जानो १० जिस

प्रकार स्थान में प्रकाशित दीपक देदीप्यमान होता है उसीप्रकार सब से पृथक्
जीवात्मा स्थूलादिशरीरोंको प्रकाशित करताहै ११ अब दीपकके समान असङ्ग
जीवात्माके दुःखादि का कारण कहते हैं कि वह जो जो शुभाशुभ कर्म करताहै
उस पूर्व शरीर के कियेहुये कर्म फलों को अवश्य भोगता है आशय यहहै कि
जैसे नियत शरीर न रखनेवाली दीपक की ज्योति अंगुष्ठादि उपाधियोंके का-
रण टेढ़ी सीधी मालूम होती है उसीप्रकार कर्मजन्य दुःखके प्रकट करनेवाले चि-
त्तमें दुःखका अङ्ग प्रकट होताहै वास्तवमें नहीं है १२ जो उस उपभोगसे खाली
होताहै तो फिर दूसरे उपकर्म को तबतक इकट्ठा करता है जबतक कि उस मोक्ष
योगमें नियत धर्मको नहीं जानता है १३ तीसरे प्रश्न का उत्तर इस स्थान पर
उस कर्म को कहताहूं जिस कर्म्म से विपरीत योनियों में भ्रमण करनेवाला वह
जीव सुखी होताहै १४ दान, व्रत, ब्रह्मचर्य, वेदपाठ अथवा उपदेशके समान ज-
प, जितेन्द्रिय, शान्ति, जीवोंपर दयाकरना १५ चित्तकी एकाग्रता, दया,दूसरेके
धनलेनेमें निषेध, पृथ्वी पर चित्तसेभी कभी जीवों के अप्रिय का न करना १६
माता पिताकीसेवा,देवता अतिथियोंका पूजन,गुरु पूजन,करुणा, वाह्याभ्यन्तर
की पवित्रता,सदैव इन्द्रियोंको आधीनरखना १७ शुभकर्मोंमें प्रवृत्ति यह सब स-
त्पुरुषोंके व्रत कहातेहैं इससे वह धर्म प्रकट होताहै जोकि प्राचीन सृष्टियोंकी रक्षा
करताहै १८ इसप्रकार के गुण सदैव सत्पुरुषोंमें देखेहैं वहांभी यह मर्य्याद प्राचीन
कि आचार उस धर्मकोही कहताहैं जिसमें कि शान्त पुरुष नियतहैं १९ उन्हों
वहीकर्म नियत कियाहै जोकि सनातन धर्महैं जो उसको अच्छीरीति से प्राप्त
करताहै वह दुर्गति को नहीं पाताहै २० धर्म मार्गमें क्षीणता पाने वाली सृष्टि इसी
आचारसे सुमार्गमें लाईजातीहै जो योगी है वही मुक्त है क्योंकि वह कर्मकर्त्ता-
ओंसे अधिकहै २१ धर्मसे कर्मकर्त्ता लोगोंका जहां जिसप्रकार से कल्याण होता
है उसीप्रकार संसारसे भी उसका उद्धार बहुत कालमें होगा अर्थात् कर्मकर्त्ता लो-
गोंकी मुक्ति बड़ी विलम्बसे होती है २२ इसीप्रकार जीवात्मा पूर्वजन्मके कियेहुये
कर्मको सदैव प्राप्त करताहै सब हेतु वहहै जिसके कारणसे ब्रह्मरूप होनेवाले जी-
वात्माने यहां आकर जीवरूप को पाया २३ इसके शरीरका होना प्रथम किससे
कल्पना किया गयाहै ऐसा सन्देह जो संसारमें है उसको भी मैं अबवर्णन कर-
ताहूं २४ सब लोक का पितामह मायासबल ब्रह्महै उसका पिता शुद्धब्रह्महै उस-

ने अपने शरीर अर्थात् अव्याकृत आकाश को उत्पन्न करके सूत्र आत्मारूप फिर तीनोंलोकों को और स्थावर जङ्गम जीवोंको उत्पन्न किया २५ इसके पीछे सब सृष्टिमें व्याप्त होनेवाले जीवोंके शरीर प्रकट करनेके कारणरूप अग्नि जल और अन्नादिकों को प्रकट किया उसी शरीररूप प्रकृतिसे यह सब व्याप्तहै उसी को लोकमें उत्तम जानो २६ इस शरीर को जड़ कहते हैं दूसरा जीव ईश्वररूप धारण करनेवाला है उसकोही अविनाशी कहते हैं क्षर अक्षर शुद्ध अर्थात् शरीर प्राण और ब्रह्मके मध्यमें क्षर अक्षर नामयोग सब जीवोंमें पृथक् २ है जोकि मोक्षदशा में रस्सी में कल्पित सर्प के समान नाशको पाता है २७ वेदमें दृष्ट आनेवाले अद्वितीय अद्वैतने सब स्थानपर जंगम जीवोंको उत्पन्न कियाहै अर्थात् वह एक अकेलाही अधिक रूपों से उत्पन्न हुआ २८ इस प्रकारसे एकता को सिद्धकरके ब्रह्मकी रूपान्तर दशा जीव नामकी अल्पकालीनता सिद्धकरते हैं उस शुद्धब्रह्मने उस शरीर धारण करने का समय नियत किया जो कि देवता मनुष्य पशु पक्षी आदि जीवों के शरीरोंमें घूमता हुआ बारम्बार जन्म लेता है २९ जिसप्रकार इस संसारकी अविनाशता में कोई बुद्धिमान् पूर्व्व जन्म का दृष्टात्मा हुआहै उसको मैं वर्णन करताहूं ३० जैसे कि सुख दुःखादिक नाशवान् हैं जो उनको अच्छी रीतिसे देखताहै अथवा अपवित्र वस्तुओं के संग्रहरूप शरीरको और कर्मजन्य नाशको जानताहै ३१ और जोकुछ सुखादिक हैं वह सब दुःखरूप हैं ऐसा जानकर बिचारकरता हुआ ज्ञानी होता है तौ भी यह भयकारी संसार सागर बड़ा दुर्गम होगा ३२ प्रधान पुरुषको जाननेवाला जरा मरण और रोगों से पूर्ण मनुष्य सब चैतन्यवान् शरीरों में एक चैतन्यको देखताहै ३३ उस एकत्व दृष्टिसे सबके लयस्थानरूप ज्योतिस्स्वरूपको निश्चय करताहुआ बैराग्यवान् होताहै हे बड़ेसाधु उसके उपदेश को मैं बड़ी सत्यतासे वर्णन करूंगा ३४ हे वेदपाठी इस सदैव वर्त्तमान न्यूनतासे रहित का जो उत्तम ज्ञानहै उस मेरे कहेहुये को सम्पूर्णतापूर्वक समझो ३५॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअनुगीतासुअष्टादशोऽध्यायः १८॥

## उन्नीसवां अध्याय॥

ब्राह्मण ने कहा कि जो ज्ञानी एक ब्रह्ममें लय और मौन अर्थात् यह सब मैं

हूं यह अभिमान न करनेवाला अथवा इससे प्रकटहूं यह कुछ न बिचारता तीनों शरीरों को क्रमपूर्व्वक परस्पर लय करके ब्रह्मरूप नियत होजाय वह संसार के वन्धन से छूटजाता है १ सवका मित्र सहनशील इन्द्रियों को आधीन रखने वाला जितेन्द्रिय प्रत्यक्षभयको अर्थात् योगसिद्धिको और कर्मसे च्युत और इतने काल पर्यंत भी योग सिद्धि नहीं हुआ इस दुःखका त्याग करनेवाला मनका जीतनेवाला मनुष्य मुक्त होताहै २ जो नियममान पवित्र अहङ्कारादि से रहित मनुष्य सब जीवधारियोंमें आत्माके समान बिचरे वह सवओरसे मुक्तहै ३ जीवन मरण और सुख दुःखादि हानि लाभ और प्रिय अप्रियमें जो समान है वह मुक्त होताहै ४ जो किसी वस्तु की इच्छा नहीं करताहै किसीका अपमान नहीं करता है सुख दुःखादि योगों से रहित और संसार की प्रीतिसे पवित्रचित्तहै वह मुक्त होता है ५ जो शत्रु न रखनेवाला भाई बेटों से जुदा धर्म्म अर्त्थ काम को त्याग करनेवाला अर्थात् केवल मोक्षमार्ग्ग में नियत और अनिच्छावान्है वह मुक्त होताहै ६ अब ज्ञान फलको कहतेहैं जो धर्माधर्मसे रहित पूर्वोपचित कर्म्म का त्यागनेवाला शरीरों का स्वामी, तत्त्वों के नाशमें शान्तचित्त और अद्वैतहै अर्थात् सबका आत्मारूपहै वह मुक्त होताहै ७ जो अनिच्छावान् सन्न्यासी सदैव इसजगतको बिनाशवान् और पीपलके वृक्षके समान जन्ममृत्यु और जरावस्थासे संयुक्त देखे ८ वैराग्यरूप बुद्धि रखनेवाला सदैव आत्मदोषोंका त्यागने वाला है वह पुरुष थोड़ेही कालमें आत्मवन्धन से छूटनेवाला है ९ अर्थात् गंध रस स्पर्श शब्द और परिग्रह से पृथक् अरूप बुद्धिसे परे चिदात्मा को देखकर संसार से छूटता है १० जो पुरुष पञ्चतत्त्वोंके गुणों से रहित अर्त्थात् स्थूल शरीरसे पृथक् अमूर्ति अंर्थात् सूक्ष्म शरीरसे रहित कारण नाम शरीर न रखनेवाला निर्गुण गुणभोक्ता परमात्मा को देखताहै वह मुक्त होताहै ११ अर्थात् शरीर और वुद्धिके द्वारा चित्तके सव सङ्कल्पों को त्याग करके बड़ी सुगमता से ऐसे निर्वाण मोक्षको पाताहै जैसे कि ईंधनसे रहित अग्नि होय १२ सब संस्कारोंसे पृथक् सुख दुःखादि योगों से जुदा स्त्री आदिक परिग्रह न रखनेवाला जो पुरुष तपस्या के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को आत्मा में लय करे वह मुक्तही है १३ तदनन्तर सवसंस्कारोंसे रहित वह पुरुष उससनातन ब्रह्मकोपाताहै जोकि सबसे परे शान्त अचल सदैवरहनेवाला और अविनाशी है १४ इसकेअनन्तर अब उस

योगशास्त्र को वर्णन करताहूं जिससे उत्तम कोई नहीं है उसीके द्वारा योगीजन ध्यान से शुद्ध आनन्दरूप ब्रह्मको देखते हैं १५ मैं उसके उपदेश को ठीक २ कहूंगा उसको तुम चित्त से सुनो जिन उपायों से चित्तको शरीर में अन्तर्म्मुख करता हुआ उस आदि अन्त रहित परमात्मा को देखता है १६ प्रथम इन्द्रियों को अपने अपने बिषयों से हटाकर चित्तको आत्मारूप क्षेत्रज्ञ में धारणकरे अर्थात् प्रथम अपने धर्मके अभ्यासरूप तपको तपकर फिर मोक्ष योगको अभ्यास करे १७ तपस्वी सदैव आत्मा में तन्मय बुद्धिमान् ब्राह्मण आत्माको आत्मामें देखता चित्तसे योगशास्त्र का अभ्यासकरे १८ जो यह साधु आत्माको आत्मामें प्रवेश करनेवाला होताहै तब वह एकान्त अभ्यासी मनुष्य अपनी आत्मामें ही देखताहै १९ नियमवान् सदैव योगमें प्रवृत्तचित्त बुद्धिमान् जितेन्द्रियहोकर जो पुरुष इसरीतिसे परमात्मामें तदाकारहै वह आत्मा ब्रह्माकार बुद्धि से आत्माको देखताहै २० जिसप्रकार कि स्वप्नमें स्थूल शरीरसे पृथक् यह मनुष्य देखकर फिर जाग्रत् अवस्थामें भी देखताहै जैसे कि ऊषाने स्वप्नमें अनिरुद्धको देखाथा उसी प्रकार अच्छायोगी समाधिमें अपने आत्माको विश्वरूप देखकर व्युत्थानदशा में भी विश्वको आत्मारूप देखताहै २१ जैसे कि कोईमनुष्य सींकको मूंजसे खैंचकरदेखे उसीप्रकार योगी भी शरीरसे आत्माको जुदाकरके देखताहै २२ मूंज को शरीरकहा सींकको आत्मारूप कहा यह श्रेष्ठ दृष्टान्त बड़े उत्तमयोगीलोगों से जाना गयाहै २३ जब जीवात्मा अपने आत्मा को परमात्मा में अच्छीरीति से संयुक्त देखता है तब एकता से इस संसारमें उसका कोई ईश्वर नहीं है जो कि तीनों लोकों का भी स्वामी है वह भी नहीं २४ वह योगी अपनी इच्छाके अनुसार देवता गन्धर्व और मनुष्यों के शरीरों को प्राप्त करताहै और जरा मरण दशाओं से पृथक् होकर न शोचताहै न प्रसन्न होताहै २५ वह इन्द्रियों को स्वाधीन रखनेवाला योगी देवताओं के देवभाव को भी प्राप्त करताहै और इस विनाशवान् शरीर को त्याग करके अविनाशी ब्रह्मको पाताहै अर्थात् विदेह कैवल्य तकही ऐश्वर्य है २६ जीवों के नाशवान् होने में उस विदेह मुक्त योगी को भय नहीं उत्पन्न होता है दुःखी जीवों के मध्यमें वह किसी से कष्ट नहीं पाता है २७ अनिच्छावान् शान्तचित्त योगी उन दुःख शोक और भयसे कुमार्गी नहीं होता है जो कि संसार के स्नेह और प्रीति से प्रकट और भयकारी हैं २८ न शस्त्र से

वह मरसक्ताहै और न उसकी मृत्युहोती है यहां लोकमें इससे अधिक सुख कहीं देखने में नहीं आता है २९ वह आत्मा को अच्छीरीति से मिलकर आत्मा में तन्मय होकर नियत होताहै जरा मरण आदि दुःखोंसे रहित वह योगी बड़े आनन्दपूर्व्वक सोताहै ३० वह योगी इस मनुष्य शरीरको त्यागकरके इच्छाके अनुसार देवता और मनुष्यादिकोंके शरीरोंको प्राप्त करताहै परन्तु किसी दशा में भी योगके ऐश्वर्य भोगनेवाले योगीको योगसे अप्रीतिकरना योग्य नहीं है ३१ जब आत्माको परमात्मामें अच्छीरीतिसे तन्मयकरके अपनेकोदेखताहै तब साक्षात् इन्द्र और इन्द्रके पदकी भी इच्छानहीं करते हैं अर्थात् अपूर्णयोगमें ही भोगोंकी इच्छा होती है पूर्णयोगमें नहींहोती है ३२ ब्रह्मप्राप्तिका करनेवाला ध्यान का अभ्यासी पुरुष जिसप्रकार योगको पाताहै और वेदान्त श्रवणकेसाथ उपदेशको युक्तिसेबिचार कर जिस पुर अर्थात् शरीरमें नियतकरे उसकोभी सुनो ३३ उस पुरके भीतरही चित्तको नियत करनाचाहिये बाहर न करनाचाहिये पुरके मध्यमें नियत होता हुआ जिस स्थानपर निवासकरे उस स्थान के बाहर और भीतर चित्त का धारण करना योग्य है ३४ इसका वह चित्त जिस समय चक्र स्थानपर पूर्णब्रह्मको ध्यान करके नियत होताहै उस समयपर पूर्णब्रह्मके सिवाय कुछ नहीं है ३५ मनुष्यों से रहित निश्शब्द बनमें इन्द्रिय समूहों को आधीन करके एकाग्र चित्त करके शरीर के बाहर और भीतर पूर्णब्रह्म को ध्यानकरे ३६ अब इस योगके साधनों को कहते हैं दाँतों से भोजनको बिचारे अर्थात् शुद्ध आहारकरे क्योंकि आहार शुद्धी से चित्तशुद्धी चित्तशुद्धीसे स्मरण और स्मरण से सब सन्देहों की निवृत्ती होती है तालु और जिह्वाको ध्यान करे क्योंकि तालू आधार और जिह्वाधारण होने के योग्य हैं जैसे कि ईश्वरका बचनहै कि मुखमें जो ऊंचागर्त्त है उसमें उलटी जिह्वाको बिचारपूर्व्वक संयुक्तकरे वह खेचरीमुद्राहै और तैत्रेयजीका भी बचन है कि कपालके छिद्रमें उलटी जिह्वाको लगावे और दोनों भ्रुकुटियों के मध्य में अपनी दृष्टि नियतकरे इसको खेचरीमुद्रा कहते हैं जिह्वाके मूलसे नीचेका जो भागहै उसको ग्रीवा कहते हैं और उससे नीचे कण्ठ नालहै उन दोनों से नीचे कण्ठ कूपहै उससे नीचे पुष्पहै उसकोभी ध्यानकरे वहांपर धारणा योगमें निश्चय कराती है और कण्ठ कूप पर धारणा होनेसे क्षुधा तृषादूर होजाती है हृदयके आश्रय स्थान ब्रह्मको और उसीप्रकार

हृदयकी बन्धन रूप उन एकसौ एक नाड़ियों को जो ऊपर के लोकों के जाने के मार्ग हैं ध्यानकरे ३७ हे मधुसूदनजी मेरे इस प्रकारके बचनों को सुनकर उस शिष्यरूप ब्राह्मणने विद्या में निश्चय रखनेवाले सम्बन्ध से प्रयोजन को बर्णन किया अर्थात् फिर इसीकठिन मोक्ष धर्म्म को पूछा ३८ कि श्लोक सैंतीस में पांच प्रयोजन हैं उनमें से श्लोक की आदि के तीन प्रयोजनों को पूछता है कि यह बारम्बार खाने की बस्तु उदर के पक्काशय में कैसे पकती है कैसे रस रूपता को पाती है कैसे रुधिर रूपको प्राप्त करती है ३९ और इसीप्रकार मांस मज्जा नस और हाड़रूपको कैसे पाती है जीवों के यह सब शरीर स्त्री के उदर में किसरीतिसे ४० वृद्धिको पाते हैं और बड़े होनेवालेका बल कैसे बढ़ताहै और रुकेहुये मल मूत्रका पृथक् २ निकलना कैसे होता है ४१ मनुष्य किसप्रकार से श्वासको छोड़ता है अथवा फिर किसरीति से श्वासको आकर्षण करताहै तीसरीबातको योगमें निष्प्रयोजन जानकर उसको न पूछकर चौथेको पूछता है— यह आत्मा शरीरके भीतर किस स्थान में प्रवेश करके नियत होताहै—अब पांचवें को पूछता है कि जो चेष्टावान् जीव शरीर को धारण करता है वह नाड़ी के मार्गों के द्वारा किसप्रकार से सूक्ष्म शरीरको प्राप्त करता है वह नाड़ी मार्ग कैसे रंगवाले हैं और उनमार्गों से कैसे शरीर में प्रवेश करताहै (आशय) इन सब प्रश्नों में से दोप्रश्नों के निश्चय करने के अर्थ ब्राह्मणगीता है दूसरे दोको कहनेवाला गुरु शिष्य का प्रश्नोत्तर है पांचवां जहां तहां सिद्धकिया ४२ । ४३ हे निष्पाप भगवन् इसको यथार्थ कहने को आप योग्य हो हे लक्ष्मीपति शत्रुओं के बिजय करनेवाले महाबाहु श्रीकृष्णजी इसप्रकार उस ब्राह्मण से संयुक्त होकर मैंने ४४ शास्त्रके अनुसार उत्तर दिया कि जैसे घरका स्वामी अपने धनागार में बर्त्तन भाँड़ोंको रखकर फिर उसमें जाकर उन सब अपने पात्रादिकोंका जाननेवाला होताहै ४५ उसीप्रकार योगी अचलेन्द्रियों के द्वारा मनको शरीर में रोककर वहां आत्माको खोजकरे और चारों ओरसे मोह अर्थात् भूलकोत्याग करे ४६ इसरीतिसे सदैव योगका अभ्यास करनेवाला शुद्धचित्त मनुष्य थोड़ेही समयमें उस ब्रह्मको पाता है जिसको कि देखकर प्रधान का जाननेवाला होता है ४७ यह ब्रह्म नेत्रोंसे देखनेमें नहीं आता किसी इन्द्रियसे भी नहीं जाना जाता यह बड़ा श्रेष्ठ आत्मा केवल चित्तरूपी दीपकही से देखने में आता है वह

निराकार होकर भी सब ओर को हाथ पैर नेत्र शिर और मुख रखनेवालाहै ४८
सब ओर को कान रखनेवाला है लोकमें सबको व्याप्त करके नियतहै यह जीव
संप्रज्ञातदशा में शरीर से पृथक् होनेवाले आत्माको देखताहै ४९ तब यह जी-
वात्मा उस सगुणब्रह्म को लयकरके शरीरमें चित्तको रोकता और चित्तसेही हँ-
सता हुआ निर्गुण ब्रह्मको देखता है इस रीतिसे उस ब्रह्मको आश्रय स्थानकर
के फिर अहं ब्रह्मास्मि नाम महावाक्यार्थ में मोक्षको पाताहै ५० हे श्रेष्ठ ब्राह्मण
यह सब मैंने गुप्तरहस्य तुमसे कहा अब मैं तुमसे पूछकर बिदा हुआ चाहता
हूं मैं धारण करूंगा हे ब्राह्मण तुम सुखपूर्व्वक जाओ ५१ हे श्रीकृष्ण जब मैंने
इस प्रकार के बचन कहे तब वह महातपस्वी तेजब्रत शिष्यरूप ब्राह्मण अपनी
इच्छाके अनुसार चलागया ५२ बासुदेवजी बोले कि हे राजा तब वह मोक्षधर्म
में अच्छी रीतिसे आश्रित उत्तम ब्राह्मण मुझसे इस बचनको कहकर उसी स्था-
नपर अन्तर्द्धान होगया ५३ हे अर्ज्जुन क्या तुमने चित्तकी एकाग्रतासे इसको
सुना और तब उस समय रथपर नियत होकर भी तुमने इसीज्ञानको सुनाथा ५४
हे अर्ज्जुन एकाग्रचित्त किये बिना यह ज्ञान ऐसे मनुष्यको अच्छीरीतिसे नहीं
आसक्ता जो कि अन्तःकरणसे म्लानहै और जिसने बिद्याकी संप्रदायको नहीं
जाना है ५५ हे भरतबंशियोंमें श्रेष्ठ यह देवताओंका गुप्तसे गुप्त ज्ञान मैंने तुम
से कहा हे अर्ज्जुन यह ज्ञान कभी किसी मनुष्यने नहीं सुनाहै ५६ हे निष्पाप
तेरे सिवाय दूसरा मनुष्य इसके सुननेको योग्य नहीं है अब यह ज्ञान बिना ए-
काग्रचित्त किये जानने के योग्य नहीं है ५७ हे कुन्ती के पुत्र यज्ञादिक कर्म्म
करने वाले मनुष्यों से देवलोक पूर्ण होरहा है यह मनुष्य शरीरसे छूटना देव-
ताओं को प्रिय नहीं है ५८ हे अर्ज्जुन वह गति सबसे परे है जिसको कि स-
नातनब्रह्म कहते हैं शरीर त्यागने के पीछे जिसमें प्रवेश करके अबिनाशीपने
को पाता है और सदैव आनन्दरूप रहता है ५९ जो स्त्री बैश्य और शूद्र पाप
योनी होते हैं वह भी इस आत्मदर्शन नाम धर्म्म में नियत होकर मोक्षको पाते
हैं ६० हे अर्ज्जुन फिर बहुत शास्त्र जाननेवाले अपने धर्म्ममें तत्पर सदैव ब्रह्म-
लोकको चाहनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग क्यों नहीं पावेंगे ६१ यह सहेतुक
ज्ञान का उपदेश किया और उसके साधनमें जो उपाय हैं और जो सिद्धि फल
मोक्ष और दुःख का निर्णय है वह भी बर्णन किया ६२ हे भरतर्षभ इससे बढ़कर

और परे कोई सुखनहींहै हे पाण्डव जो बुद्धिमान् श्रद्धावान् समर्थ मनुष्य इस लोक के धनादिक सुखों को असाररूप तृण के समान त्यागकर देताहै वह इन शम दमादि उपायों से परमगति को पाता है ६३ । ६४ इतनाही कहना उचित है इससे अधिक कुछनहीं है हे अर्जुन सदैव योगमें प्रवृत्तचित्त मनुष्यका योग छः महीने में सिद्ध होता है ६५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअनुगीतायामेकोनविंशोऽध्यायः १९ ॥

## बीसवां अध्याय ॥

वासुदेवजी बोले कि मैं वैश्वानर रूप होकर प्राण अपान को साथ लेकर चार प्रकारके भोजनोंको पचाताहूं इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले उस प्राचीन इतिहास को भी कहताहूं हे भरतर्षभ अर्जुन जिसमें कि स्त्री और पुरुष का प्रश्नोत्तरहै १ किसी ब्राह्मणीस्त्री ने ज्ञान विज्ञानमें पूर्ण एकान्त में बैठेहुये अपने पति ब्राह्मण को देखकर यह बचन कहा २ कि अग्निहोत्रादिक त्याग करने वाले निर्द्दयी मेरी अनन्यगतिसे अज्ञान तुझ पति के पास शरणागत होनेवाली मैं किसलोक को जाऊंगी ३ भार्य्या अपने पति के कर्म से प्राप्त होनेवाले लोकों को पाती हैं यह हमने सुना है मैं वहां तुझ पति को पाकर कौनसी गति को पाऊंगी ४ इसप्रकार के भार्य्या के बचनों को सुनकर उस शान्तात्मा हँसतेहुये ब्राह्मणने उत्तरदिया कि हे निष्पाप सुभगे मैं इस तेरे बचनकी निन्दा नहीं करताहूं ५ जो यह सत्यकर्म्म प्रत्यक्ष दृष्टि के आगे नियत दीक्षा व्रतादिक वर्त्तमान है उसको कर्मकर्त्ता लोग कर्म्म अकर्म्म निश्चय करते हैं ६ ज्ञान से रहित मनुष्य कर्म्म के द्वारा मोहको पाते हैं इस लोकमें एक घड़ी भर भी कर्म के बिना मोक्ष आश्रम सन्न्यास प्राप्त नहीं होते हैं ७ जीवधारियोंमें शुभाशुभ कर्म मन और बाणीसे जन्म स्थिति नाश और योनियों के बहुत प्रकारसे वर्त्तमान होतेहैं ८ सामान रखनेवाले सोमयज्ञादिक कर्ममार्ग राक्षसों से भ्रष्ट और नाश होनेपर उनसे प्रीति को हटाकर मैंने दोनों भ्रुकुटियोंके मध्यमें नियत अव्यक्त नाम स्थानको देखा ९ जहांपर वह अद्वैत ब्रह्महै और जहांपर इड़ा पिङ्गला नाम नाड़ीहैं बुद्धि को प्रेरणा करनेवाला वायु जीवोंको धारण करताहुआ सदैव जिस स्थानपर चेष्टा करताहै १० ब्रह्म आदिक योगी जिस स्थानपर जिस अवि-

नाशी ब्रह्मकी उपासना करतेहैं ११ वह अविनाशी ब्रह्म घ्राणेन्द्रिय से सूंघने के योग्यनहीं जिह्वासे स्वादुलेने के योग्यनहीं स्पर्श इन्द्रियसे छूने में नहीं आता केवल मनसेही जानाजाताहै १२ जो नेत्रोंसे दृष्टिमें नहीं आता बुद्धिसे भी परे है रूप रस गन्ध स्पर्श और शब्दनाम लक्षणोंसे रहितहै १३ यहसृष्टि जिससे प्रकटहोती है और जिसमें निवासकरती है प्राण अपान समान व्यान उदान १४ यहपांचों जिससे प्रकटहोतेहैं और उसीमें प्रवेश करजातेहैं अर्थात् उनका प्रकट होना और कर्म में प्रवृत्तहोना यह तो उत्पत्तिहै और उसमें प्रवेश होजाना ही प्रलयहै प्राण और अपान यहदोनों समान और व्यानके मध्य में चेष्टा करने वालेहैं समान नाभिमण्डलमें नियतहै व्यान सब शरीरमें व्यापकहै १५ दोनों भ्रुकुटियों में अपान और प्राणके रुकजानेपर समान और व्यानभी रुकजातेहैं परन्तु सब जोड़ों में नियत उदान उन प्राण और अपानके मध्यमेंव्याप्त होकर नियतहै इसी हेतुसे यह प्राण और अपान सोनेवाले मनुष्यको त्यागनहीं करते हैं १६ प्राणोंके चलायमान होनेको उदान कहते हैं अर्थात् जीवात्माओं के उपाधिरूप सब प्राणएकही उदानमें नियतहैं इसीहेतुसे ब्रह्मवादी पुरुष प्राणों के विजयी तपको अथवा तप के विचारने को मुझमेंही निष्ठा पानेवाला निश्चय करतेहैं १७ मुझशब्दके अर्थरूप वैश्वानर नाम अग्निको दिखातेहैं परस्पर भोजनरूप और शरीरमें भ्रमण करनेवाले उनसब प्राणोंके मध्य में अर्थात् नाभिमंडल में वैश्वानर नाम अग्नि सातरूपसे क्रीड़ा करता है १८ प्राण जिह्वा चक्षु त्वक् श्रोत्र यहपांचों इन्द्रियां और मन बुद्धि उसवैश्वानर नाम अग्निकी जिह्वा हैं १९ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध और मानने जाननेके योग्य प्रत्येक दोदो स्पर्शवाले समेतमुझ वैश्वानररूप अग्नि की समिध हैं २० शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध मानना जानना नाम सातों विषयकेस्वादु लेनेवाले यहसातो श्रेष्ठऋत्विज् होतेहैं २१ हेसुभगे तुमसदैव इन सातोंको शब्द स्पर्श रस रूप गन्धको मानने और जाननेमेंदेखो २२ घ्राणेन्द्रिय आदिके अभिमानी देवतारूप सातअग्नियों में गन्धादिक सातोंविषयोंके होमनेवाले पुरुषअभिमानी होते हैं और ज्ञानी उन अभिमानोंको अपनेसे जुदामानकर उनब्रह्म से उत्पन्न होनेवाली अग्नियों में आगेके श्लोकमें लिखेहुये पृथ्वी आदिकको उत्पन्नकरतेहैं २३ पृथ्वी आकाश जल अग्नि मनबुद्धि यह सातों संघात रूप प्रत्यक्ष स्थान रूप चैतन्य कहेजा-

ते हैं २४ हव्यरूपसे सब विषय उस गन्धादिककी ज्ञान रखवाली वृत्ती में प्रवेश करतेहैं अर्थात् जो स्वप्नावस्थामें रूपादिक वासना रूपसे नियत होते हैं वह जाग्रत् अवस्थामें फिरप्रकट होतेहैं २५ वहसब उस सृष्टि के स्वामी सब के आवागमन के आश्रय रूपमेंही लयहोतेहैं इसीसे गन्ध उत्पन्न होताहै उसीसे रसरूप स्पर्श और शब्द प्रकट होताहै उसीमें संशयात्मक चित्तभी उत्पन्न होताहै २६ २७ उसीसे निश्चयात्मिका बुद्धि उत्पन्न होती है इस उत्पत्तिको सातप्रकार का जानो २८ इसीमार्ग से प्राचीन ऋषियोंने घ्राणादिक इन्द्रियोंका रूपवेदसे जानाहै मान अर्थात् परिमाणमेय अर्थात् परिमाणके योग्य माता अर्थात् संख्या करनेवाला इनतीनोंसेपूर्ण जो ब्रह्महै उसके आह्वानों से पूर्णतीनों लोक अपने ज्योतिरूप आत्मासेपूर्ण होते हैं अर्थात् यहसब सृष्टिब्रह्मदृष्टिसेही प्रकटहै २९॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांविंशतितमोऽध्यायः २० ॥

# इक्कीसवां अध्याय ॥

ऊपर कहाहै कि मैं द्रष्टा आदिक हूं यह अभिमान रखनेवाला उन इन्द्रियों को कल्पना करके फिर उनको तृप्त करताहै अब कहते हैं कि प्राणोंसे देवता और देवताओंसे लोक प्रकटहुये अर्थात् इन्द्रियांही अपने कल्पित देवताओंके द्वारा कल्पित लोकों को तृप्त करती हैं इस बचनसे भूतात्मामें कल्पना नहीं है किन्तु जड़में है इसके निश्चय करने को ब्राह्मण ने कहा कि ईश्वर की दृष्टि से सम्बन्ध रखनेवाली इस उत्पत्ति के विषय में इस प्राचीन इतिहास को भी कहताहूं अब दश होताओं का जैसा विधान होता है उसको समझो १ हे तेजस्विनी श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नाक, दोनोंचरण, दोनों हाथ, लिङ्ग, गुदा यह दशों इन्द्रियां दश होता हैं २ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वचन, कर्म्मगति, वीर्य्य मूत्र और बिष्ठा का त्यागना यही दश हव्य हैं ३ दिशा, वायु, सूर्य्य, चन्द्रमा पृथ्वी, अग्नि, विष्णु, इन्द्र, प्रजापति, मित्र यह दश अग्नि हैं ४ हे तेजस्विनी दशों इन्द्रियां होता हैं दश हव्य हैं और विषय नाम समिध दशों अग्नियों में होमी जाती हैं ५ चित्तनाम श्रव और अग्नि दक्षिणारूप धन जिनको कि हवन करने के पीछे त्यागकरते हैं इसीप्रकार इन्द्रियोंको भी उनके विषयों समेत आत्मामें लय करके मनकी उत्पत्तिके कारणरूप पापपुण्यको भी त्यागकरे इस

के पीछे जो शेष रहता है अब उसको कहते हैं वह ज्ञानस्वरूप है जोकि असङ्ग और अन्तवाला है ज्ञान से पृथक् यह चित्तादिक सब समानही जगत् नाम से प्रसिद्ध हुआ यही ज्ञानहै ६ सब जानने के योग्य चित्तही है उसका प्रकाशक ज्ञान केवल साक्षी है क्योंकि बीर्य्य से उत्पन्न होनेवाले स्थूल शरीरका अभिमानी जीवात्मा सूक्ष्मशरीरोंका भी अभिमानी होताहै अभिमान जुदा नहीं है ७ शरीरका अभिमानी जीवात्माहै और उसगृहपतिका निवासस्थान हृदयहै उस हृदयसेही दूसरा मन प्रकटहोताहै और वही मनमुखहै जिसमें हव्य अर्थात् अग्नि जल अन्न डाला जाताहै आशय यहहै कि चित्त अन्नरूप है प्राण जलरूपहै बचन अग्निरूपहै क्योंकि हव्यका तेज जठराग्निको पाकर शीघ्रही बचन रूप से विपरीत दशा करताहै ८ उससे वेद प्रकट हुआ उसके पीछे पृथ्वी सम्बन्धी चित्त उत्पन्न हुआ इसीहेतुसे चित्तरूप सूत्रात्मा वेदके बचनों को बिचारता है तब प्राण नाम बायु जो कि पीत नीलादि वर्णसे पृथक् प्रकट होताहै वह चित्त का अथवा चित्त प्राणका कर्त्ता आगे पीछे होता है अर्थात् मनके रुकने पर प्राण और प्राणके रुकने पर मनभी रुकजाताहै ९ ब्राह्मणी बोली किस कारण प्रथम बचन प्रकट हुआ और किसहेतुसे मन उत्पन्न हुआ जब कि मनसे बिचाराहुआ बचन प्रकट होताहै १० किस प्रमाण से प्राण मनके आश्रय है सुषुप्ति अवस्था में वृद्धप्राण ने विषयों को क्यों नहीं प्राप्त किया और उस दशामें इस की ज्ञानशक्ति को कौन दूर करताहै ११ ब्राह्मण बोला कि सुषुप्ति अवस्थामें अपान प्राणका स्वामी होकर उसको अपने आधीन करताहै इसीहेतुसे प्राण सुषुप्ति अवस्थामें चित्तके लय होनेपर आप लय नहींहोता परन्तु अपानको अपनी स्वाधीनतामें करके समाधि अवस्थामें मनके लय होने में आपभी लय हो जाताहै उस प्राण नाम गतिको मनकी गति कहते हैं अर्थात् वही बाहर जाने का साधन है इसी हेतुसे चित्त वेदको बिचारता है १२ तुम जिस मनके कारण रूप वचनको मुझसे पूंछती हो इसहेतुसे उन दोनोंके परस्पर प्रश्नोत्तरोंको तुझ से कहताहूं १३ दोनों बाणी और मनने जीवात्माके पास जाकर पूंछा कि हे प्रभु हम दोनों में जो श्रेष्ठ होय उसको आप कहिये और हमारे चित्तके सन्देहको दूर करो १४ तब जीवात्मा ने कहा कि मन श्रेष्ठ है फिर सरस्वतीरूप बाणीने कहा मैं तेरी कामधुक्हूं १५ तब मनरूप ब्राह्मणने कहा कि स्थावर अर्थात् बाह्येन्द्रिय

से जानने के योग्य प्रत्यक्ष सृष्टि जङ्गम अर्थात् इन्द्रियोंसेपरे स्वर्गादिक इनदोनों को मेरामन जानो प्रत्यक्ष सृष्टि मेरी दृष्टिके सम्मुखहै और स्वर्गादिक तेरा मुख्कहै १६ जो मंत्र वर्ण स्वर उन स्वर्गादिक स्थानोंकोप्राप्तकरे उसको मन्त्रादिकसे जाननेवाला मन जंगमनाम कहा जाताहै इस हेतुसे बचनभीवृद्ध अर्थात् श्रेष्ठहुआ १७ हे शोभायमान जिस कारणसे तू अपने आप सम्मुख आकर अपने पक्षको दृढ़ करती है इसीहेतुसे अन्तर्मुख श्वासको पाकर तुझ सरस्वतीसे कहताहूं हेमहाभाग यह देवी सरस्वती उन प्राण अपानके मध्यमें जो कि मनकी मुख्य वृत्ति हैं सदैव नियत रहती हैं बिना प्राणोंके चलायमानभी अपने प्रकट होने में असमर्थ सरस्वती ब्रह्माजी के पासगई और कहा कि हे भगवन् आप प्रसन्न हूजिये १८।१६ इसके पीछे वाणीकी वृद्धि करताहुआ प्राण प्रकट हुआ इसहेतुसे बचन प्राणकी आकर्षणताकोपाकर कभी वार्त्तालाप नहीं करताहै २० वह बचनरूप वाणी सदैव दो नामोंसे वर्त्तमान होतीहै प्रथम घोपणी अर्थात् शब्दायमान दूसरी अघोपा अर्थात् शब्दरहित इन दोनोंके मध्यमें घोपणी से अघोपा श्रेष्ठहै क्यों कि घोषणी प्राणोंकी वृद्धि चाहती है और हंस मन्त्ररूप अघोपा सब दशाओंमें वर्त्तमानहै इसहेतुसे वह श्रेष्ठहै २१ उत्तम रससे स्तूयमान बचनरूप गौ मनोरथों को देती है यह ब्रह्मवादिनी अर्थात् उपनिषद् वचनरूप उस नित्य सिद्ध मोक्षको देती है अर्थात् बचनरूप गौ के यह चार स्तन हैं स्वाहाकार, स्वधाकार, नहुतकार, वषट्कार २२ हे पवित्र मुसकानवाली दिव्य वचनरूप गौ इन दो प्रभावों से युक्त है दिव्य अर्थात् देवताओं का आह्वान् अदिव्य अर्थात् व्यवहारादिक इन दोनों चलायमान और सूक्ष्म वचन और चित्तके अन्तर को देखो २३ ब्राह्मणी बोली कि तव बचनोंके उत्पन्न होनेपर वार्त्तालाप करनेकी इच्छासे चलायमान देवी सरस्वतीने प्रथम किस तत्त्वको अधिकतम आश्रय स्थानकिया २४ ब्राह्मणने कहा कि जो वचन शरीरमें प्राणसे प्रकट होतेहैं वह प्राणसे चलायमान होकर नाभिके स्थानपर अपानसे एकता प्राप्त करते हैं फिर उदानके स्थान पर आकर उससे भी एकता करके शरीरको छोड़कर व्यानरूपसे सब आकाश को व्याप्त करते हैं २५ इसके पीछे फिर पूर्व के समान समान में नियत होते हैं इस प्रकार से बचनों ने अपने प्रथम प्रकट होने की रीति को बर्णन किया इसी हेतु से चित्त स्थावर रूप होनेसे श्रेष्ठहै उसी प्रकार बचन भी जङ्गम रूप होनेसे श्रेष्ठहै २६॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतासुएकविंशोऽध्यायः २१॥

# बाईसवां अध्याय॥

ब्राह्मण ने कहा कि हे सुभद्रे इस चित्त और बचन के विषय में इस प्राचीन इतिहासको भी बर्णन करताहूं इस में सात होताओं का जैसा विधान है उसको सुनो १ नाक आंख जिह्वा चर्म्म कान मन बुद्धि यह सातों पृथक् पृथक् स्थित होकर होताहैं २ वह सब सूक्ष्म स्थान पर नियत परस्पर में एक एकको नहीं देखते हैं हे सुन्दरि तुम इन सात होताओं को स्वभावसे जानो ३ ब्राह्मणी बोली हे भगवन् वह सूक्ष्म स्थानमें नियत होकर परस्पर में क्यों नहीं देखते हैं उनका स्वभाव कैसाहै हे प्रभु उसको मुझसे कहो ४ ब्राह्मणने कहा कि गुणोंकी बिज्ञता अबिज्ञता,विज्ञान, अबिज्ञान यह चारों गुणहैं वह सातों होता किसी समय परभी एक दूसरे के गुणों को नहीं जानते हैं ५ जिह्वा नेत्र कान बचन मन बुद्धि यह गन्धोंको नहीं प्राप्त करते परन्तु घ्राणेन्द्रिय गन्धोंको प्राप्त करती है ६ नाक आंख कान बचन मन बुद्धि रसोंको प्राप्त नहीं करते हैं परन्तु जिह्वा उनको प्राप्त करती है ७ नाक जिह्वा कान बचन मन बुद्धि रूपोंको प्राप्त नहीं करते हैं परन्तु आंख उनको प्राप्त करतीहै ८ नाक जिह्वा कान नेत्र बुद्धि मन यह सब स्पर्श गुणको नहीं प्राप्त करते परन्तु त्वगिन्द्रिय उनको प्राप्त करती है ९ नाक जिह्वा आंख त्वक् मन बुद्धि यह सब शब्दों को नहीं प्राप्त करते हैं परन्तु कान उनको प्राप्त करता है १० नाक जिह्वा आंख त्वचा कान बुद्धि यह सब संशय को नहीं प्राप्त करते केवल मनही उसको प्राप्त करता है ११ नाक जिह्वा आंख त्वचा कान मन यह सब निष्ठा को प्राप्त नहीं करते हैं उसको केवल बुद्धिही प्राप्त करती है १२ हे तेजस्विनी इस स्थान पर इस प्राचीन इतिहास को भी कहता हूं जिसमें कि मन और इन्द्रियों का प्रश्नोत्तर है १३ मनने कहा कि मेरे बिना घ्राण इन्द्रिय नहीं सूंघती है जिह्वा रसको नहीं पासक्ती है नेत्ररूपको नहीं देखते त्वक् इन्द्रिय स्पर्शको नहीं जानती १४ और कान भी मुझसे पृथक् होकर किसी दशामें शब्द को नहीं जानता है मैं सब जीवों के मध्य में श्रेष्ठतम और प्राचीन हूं मुझ से पृथक् होकर इन्द्रियां ऐसे प्रकाशित नहीं होतीं जैसे कि उजड़ेहुये स्थान बिना ज्वलित अग्नि १५। १६ मनसे रहित इन्द्रियां आर्द्र और शुष्क काष्ठ के समान होती हैं सब जीवमात्र मेरे बिना उपाय करनेवाली इन्द्रियों के द्वारा बिषयों

को प्राप्त नहीं करते हैं १७ इन्द्रियां बोलीं कि यह इसीप्रकार सत्य होय जैसे कि आप इसको मानते हैं जो आप हमारे बिना हमारे विषयादिक भोगों को भोगते हैं १८ जो हमारे लय होजानेपर प्राणोंकी तृप्ति और स्थिति है और आप भोगों को भोगते हैं उसदशामें जैसा आपमानते हैं वह सत्यहै १९ जो हमारे लय अथवा विषयोंमें नियत होनेपर आप संकल्पमात्रसे भोगोंको यथेच्छ भोगते हैं २० और जो हमारे विषयों में सदैव सिद्धि मानतेहो उसदशामें घ्राणेन्द्रिय से रूपको और नेत्रसे रसको प्राप्तकरो २१ कानसे गन्धोंको जिह्वासे स्पर्शोंको त्वचासे शब्दोंको और बुद्धि से स्पर्शको प्राप्तकरो २२ बलवान् लोग नियम से रहित हैं निर्बलही लोगोंके नियम हैं तुम अनुपम भोगोंको प्राप्तकरो उच्छिष्ट भोजन करने के योग्य नहीं है २३ जैसे कि शिष्य वेद प्राप्त करनेके मनोरथसे गुरूके पास जाता है और उस गुरूसे वेदको पढ़कर वेदार्थ को विचारता है २४ उसी प्रकार स्वप्न और जाग्रत् अवस्थामें हमारे दिखाये हुये व्यतीत अथवा आगे होनेवाले विषयोंको अपना मानतेहो २५ छोटे चित्तवाले जीवोंके बेमनहोने में हमारे निमित्त कर्म करने पर प्राणकी स्थितिदिखाई देतीहै २६ बहुत से संकल्पों को मनसे करके और स्वप्नको देखकर तृषासे दुःखी मनुष्य विषयोंकी ओरको दौड़ताहै बाह्येन्द्रियरूप द्वारोंसे रहित स्थान अर्थात् हार्दाकाश अथवा सुषुप्त्यवस्था अथवा मोक्षमें प्रवेश करके फिर व्युत्थान दशामें विषय वासनासे बँधेहुये संकल्पसे उत्पन्नहुये विषयों को भोगकर मनके नाश के समय सुषुप्तिदशा अथवा संप्रज्ञात दशामें ऐसे शान्तिको पाताहै जैसे कि लकड़ियों के भस्महोजाने पर अग्नि शान्तहोजाता है २७। २८ चाहै हमारा संग अपने विषयों में होय चाहै परस्पर विषयों की प्राप्ति न होय परन्तु हमारे बिना तुम प्राप्त नहीं होसक्ते केवल इतनाही है कि बिना तेरे किसी प्रकारकी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होसक्ती यह आहार शुद्धीसे संबंध रखनेवाला प्रश्नसमाप्त हुआ २९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांद्वाविंशोऽध्यायः २२ ॥

## तेईसवां अध्याय ॥

अब तालु और जिह्वासे संबन्ध रखने वाला दूसरा प्रश्न दो अध्यायों में वर्णन करतेहैं छांदोग्य उपनिषद्में पुराणाग्निहोत्र विद्यामें प्राण अपान व्यान

उदान समान इन पांचोवायुओंको अधिलोक और स्वर्ग पृथ्वीदिशा आकाश इनको बिजली रूप कहाहै इनमें से प्राण अपान परस्पर एक दूसरे के आधीन हैं क्योंकि पूरक रेचकसे अपानक्रिया रुकजाती है और रेचक अपान में प्राण गति रुकजाती है मूल बिन्दु से एक होनेवाले पहले दोनों की गति ऊपर को होजाती है वह दोनों उदान के आधीन हैं जिस प्रकार पर्जन्य के द्वारा यज्ञ परस्पर रक्षाश्रित स्वर्ग और पृथ्वी दोनों आकाशके आश्रित हैं उसी प्रकारसे नाभिस्थान पर वर्त्तमान समान उस व्यानके स्वाधीन है जो कि सब अंगों में व्याप्त है व्यान भी सब योगों में व्याप्त उदान से ही प्रेरणापूर्व्वक चलायमान किया जाताहै उसके व्याप्त होनेसे उदानभी चेष्टाकरता है इसीप्रकार बिजली दिशाओं में और दिशा आकाश में आश्रित हैं सब प्राण उदान के स्वाधीन में हैं जब उदान नाक और दोनों भृकुटियों में रुकजाता है तब उस स्थान के नियत ब्रह्म में स्वर्ग पृथ्वी आदि के साथ आकाश रुक जाता है इसप्रकार उस दशामें सबप्रपञ्चके लयहोजानेसे योगी कृतकृत्य होजाताहै ऐसा होनेपर तीन भावना होती हैं प्रथम प्राणाग्निहोत्र करनेसे तीनोंलोक तृप्तहोते हैं और इसीसे चित्त शुद्ध होता है इनके दोषों से लिप्त नहीं होताहै दूसरे चञ्चल चित्तको खेचरी मुद्रा और हठयोगसे रोकना चाहिये तीसरे सब प्रपञ्चकी लयता यह तीनों अधिकारके विचारसे हैं इसके प्रकटकरनेको ब्राह्मणने कहा कि इस चित्तके नाश करने को इस प्राचीन इतिहास को वर्णन करताहूं हे भाग्यवान् इस में पांच होताओंका जैसा विधानहै उसको श्रवणकरो १ प्राण अपान उदान समान और व्यान इन पांच होताओं को ज्ञानी लोग परम जानते हैं २ ब्राह्मणी बोली कि स्वभाव से सात होता हैं यह मेरा मुख्य मतहै जैसे कि पांच होताहैं और जैसा उनका परमभावहै उसको वर्णनकरो ३ ब्राह्मणने कहा कि प्राणसे पोषण किया हुआ अपान नाम प्रकट होता है अपान से पोषित व्यान वर्त्तमान होता है ४ व्यान से पोषित उदान नाम वर्त्तमान होता है उदान से पोषण कियाहुआ समान नाम प्रकट होताहै ५ पूर्व्वसमय में उन प्राणोंने प्रथम उत्पन्न होनेवाले ब्रह्माजी से पूछा कि हम सब में जो बड़ा है उसको आप कहिये वही हमारा उत्तम और श्रेष्ठ होगा ६ ब्रह्माजी ने कहा कि जीवोंके शरीरों में जिसके लय होनेपर सब प्राण लय होजाते हैं और जिसके चेष्टावान् होनेसे सब प्राण चलायमान

होकर चेष्टा करते हैं वही श्रेष्ठ है अब आप की जहां इच्छा है वहां जाइये ७ अब इसको सिद्ध करते हैं कि प्राणों में से एक प्राण के भी अत्यन्त नाश होने पर दूसरे प्राणोंका भी नाश होजाता है प्राण बोला कि जीवों के शरीरों में मेरे लय होनेपर सब प्राण लयताको पाते हैं और मेरे चलायमान होनेपर फिर चेष्टा करने लगते हैं मैं उत्तमहूं मुझ लयहुयेको देखो ८ ब्राह्मणबोला इसके पीछे प्राण लय हुआ और फिर चेष्टा करनेवालाहुआ फिर समान और उदानने यह वचन कहा कि ९ यहां हम जिस रीतिसे सबको व्यासकरके नियतहैं उसप्रकार तू नहीं है हेप्राण तू हमसे उत्तम नहीं है केवल अपानही तेरे आधीनहै प्राण चेष्टाकरने लगा तब अपान ने उस से कहा १० कि सब जीवोंके शरीरों में मेरे लय होनेपर सब प्राण लयको प्राप्त होते हैं और फिर जब मैं चेष्टा करने लगताहूं तब वहभी चेष्टा करते हैं मैं सबसे उत्तम हूं मेरे लय को देखो ११ ब्राह्मण बोला कि इसके पीछे व्यान और उदानने उस वार्त्तालाप करनेवाले अपानसे कहा कि हेअपान तुम श्रेष्ठ नहींहो केवल प्राणही तेरेआधीनहै १२ अपान चेष्टा करनेवाला हुआ तब व्यानने उससे कहा कि मैं जिसकारणसे सबमें श्रेष्ठहूं उसकोसुनो १३ जीवों के शरीरों में मेरे लय होनेपर सब प्राण लय होजाते हैं और मेरे चेष्टा करनेपर फिर चेष्टा करने लगते हैं मैं उत्तमहूं मेरे लयहोने को देखो १४ ब्राह्मण ने कहा यह कहकर व्यान लय होगया और फिर चेष्टा करने लगा प्राण अपान उदान और समानने उससे कहा १५ कि हे व्यान तू हमसे श्रेष्ठ नहीं है समानही तेरे आधीनहै फिर व्यान चेष्टा करनेलगा तब समानने कहा सुनो मैं इस कारण से सबमें श्रेष्ठहूं १६ जीवोंके शरीरों में मेरे लयहोनेपर सबप्राण लयहोते हैं औरमेरे चेष्टावान् होनेपर वह सब भी चेष्टा करने वाले होते हैं मैं श्रेष्ठहूं मुझ लय होने वालेको देखो १७ इसके पीछे समान चेष्टा करनेलगा और उदानने उससे कहा कि सुनो मैं इस कारण से सबमें श्रेष्ठ हूं १८ प्राणियोंके शरीरों में मेरे लय होनेपर सब प्राण लयताको पाते हैं और मेरे चेष्टावान् होने पर वह भी चेष्टाकरने लगते हैं मैं सबसे श्रेष्ठहूं मेरी लयकोदेखो १९ तब उदान लयहोकर फिर चेष्टाकरनेलगा इसके पीछे प्राण अपान समान और व्यानने उससे कहा कि हेउदान तूश्रेष्ठ नहीं है केवल व्यान ही तेरे आधीनहै २० इसके पीछे प्रजापति ब्रह्माजी ने उन एकत्र नियत प्राणोंसे कहा कि तुम सब श्रेष्ठहो अथवा अस्वतंत्र होने से

श्रेष्ठ नहींहो और सब परस्पर धर्म रखने वाले हो २१ तुमसब अपने २ विषय में उत्तमहो और सब परस्पर सम्बन्ध रूप धर्म रखने वाले हो प्रजापति ब्रह्माजी ने उन एकत्र नियत होनेवाले प्राणोंसे यह कहा २२ कि एकही प्राण नियत और चेष्टा करनेवाला है वही अपने मुख्य गुण से पञ्चप्राणरूप होताहै इसी प्रकार मेरा एक आत्मा बहुतरूप से भोगता और भोगरूपको प्राप्त करता है २३ तुम परस्पर प्रीतिमान् होकर अन्योन्य मित्र हो तुम्हारा कल्याण हो तुम आनन्द और कुशल से जाओ और परस्पर पोषण करो २४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतासुत्रयोविंशतितमोऽध्यायः २३ ॥

# चौबीसवां अध्याय ॥

ब्राह्मण ने कहा कि इस स्थानपर उस प्राचीन इतिहासको भी कहताहूं जिसमें कि नारद और देवमत ऋषिका संवाद है १ एक आत्माको अध्यारूपावाद से बहुत्वरूप कहनेके लिये देवमतने कहा कि समष्टि व्यष्टि शरीरके स्वामी जन्म लेनेवाले जीवधारी के प्राण अपान समान व्यान अथवा उदानमेंसे आदि कौन उत्पन्न होता है २ नारदजी बोले कि जिस कारणसे यह जीव उत्पन्न कियाजाताहै उस कारण से दूसरा भी आदिकारणरूप से उसको प्राप्त होताहै प्राणको द्वन्द्व जानना योग्य है और जो तिर्य्यग्योनि मनुष्यादिक उन्नत देवता आदिक और नीचे पशु आदिक हैं इन सब का रूपभी जानने के योग्य है ३ देवमत ने पूछा कि यहजीव किससे उत्पन्न कियाजाताहै और कौन दूसरा कारण रूपसे उसको प्राप्त होताहै द्वन्द्वप्राण और दूसरे जो तिर्य्यग् ऊंचा नीचा है उस सबको मुझसे कहो ४ नारदजी बोले कि जिस आनन्दरूप ब्रह्मसे सबजीवधारी उत्पन्न होते हैं उसके आनन्दका भाग सङ्कल्प के द्वारा जीवरूप से प्रकट होताहै और वेदमन्त्ररूप शब्दसे भी वहतत्त्वोंकी उत्पत्ति जो कि प्रलयकी अग्नि में भस्म होगई थी वह ऐसे उत्पन्न होती है जैसे तक्षक से काटा हुआ बट का वृक्ष काश्यपके मन्त्रसे प्रकट हुआ था और रसरूप बिषय बासना से भी उत्पत्ति होती है ५ शुक्र अर्थात् दृष्टि से गुप्त प्रारब्ध और श्रोणित अर्थात् रागादिक इन दोनोंके मिलने से प्रथम लिंग शरीररूप प्राण उत्पत्तिके करनेको कर्म करता है उसीप्रकार प्राणसे जन्मादिक के द्वारा उस विपरीत दशाओंसे संयुक्त

बासनारूपी कर्मसे उत्पन्न शरीरमें अपान उत्पन्न होता है ६ फिर उस जन्म में प्राप्त होनेवाले प्रारब्ध और बासना से भी उत्पन्न होता है यह उदानका रूप अर्थात् ब्रह्मका रूप आरोपित नामहै क्योंकि वह आनन्द स्वरूप कारण रूप ब्रह्म कार्य्य के मध्यमें आनन्द को ब्याप्त करके नियत है ७ इच्छासे अज्ञान उत्पन्न होताहै और इच्छाहीसे रजोगुण उत्पन्न होता है प्रारब्ध और रागादिक समान व्यानसे अर्थात् सम्बन्धवान् विद्युत् और श्रोत्र इन्द्रियसे उत्पन्न हुआहै ८ प्राण अपान अर्थात् इच्छा और प्रीतियुक्तता यह द्वन्द्व है अर्थात् जोड़ा है जीवात्मा की उपाधि प्राण अपान है वहअवाक् और ऊपरको जाते हैं और व्यान समान अर्थात् देखा हुआ और सुनाहुआ यह दोनों ऊर्ध्व गतिसे रहित द्वन्द्वरूप कहे जाते हैं यहदोनों ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं कराते हैं ९ अग्नि अर्थात् परमात्माही सब देवता रूप है यह वेदकी आज्ञा है जो ब्रह्मज्ञानी है उसका परमज्ञान उसी वृत्ति से युक्त होकर उसी वेदसे उत्पन्न होताहै १० जैसे कि धुआं और भस्म अग्निरूपसे बाहर हैं उसीप्रकार लयक्षेप के कारण रजोगुण तमोगुण भी चैतन्यरूप से बाहर हैं जिस अग्निमें हव्य डाला जाता है उसीसे सब उत्पन्न होता है ११ जीव ब्रह्मकी ऐक्यता करनेवाला जो योग है उसके ज्ञातालोगों ने उसको जाना है कि समान व्याननाम सब देखा और सुनाहुआ बुद्धि सत्त्वसे उत्पन्न होता है प्राण और अपान यह आज्यभाग अर्थात् घृतके भाग हैं इन दोनों को होम करने से उनके मध्यमें उदाननाम परब्रह्म प्रकाशमान होताहै वही इसहोमे हुये सब दृश्यपदार्थों को भोजन करता है १२ इस उदान के परमरूपको ब्रह्मज्ञानी लोगोंने जाना है अब जो द्वन्द्वसे पृथक्है उसको मुझसे श्रवण करो १३ यह दिनरात्रि अर्थात् विद्या अविद्या वा जाग्रत् और स्वप्नावस्था अथवा उत्पत्ति और नाश द्वन्द्वहैं उनके मध्यमें कार्य्य कारणको अपनेमें लयकरनेवाला शुद्ध ब्रह्म है उस अधिकतर चेष्टा देनेवाले ब्रह्म का आनन्दरूप ब्रह्मज्ञानी लोगों ने जाना है १४ । १५ उन से बढ़कर ब्रह्म संकल्प के द्वारा समान व्यान अर्थात् कार्य्य कारणरूप होता है उसीकारण से यह कर्म्म विस्तृत किया जाता है तात्पर्य्य यहहै कि संकल्प रोकना चाहिये फिर तीसरारूप ब्रह्मसमान अर्थात् अपलक्षण से ऐसे निश्चय कियाजाता है जैसे कि वृक्षकी डाली पर चन्द्रमा होता है व्यान समान सनातन ब्रह्म इनतीनों का समुदाय त्रिशान्ति नाम अर्थ रख-

नेवाला है क्योंकि ब्रह्म शान्ति रूप है इस शुद्धब्रह्म के आनन्दरूप को ब्रह्मज्ञानियों ने जाना है १६ । १७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांचतुर्विंशोऽध्यायः २४ ॥

## पच्चीसवां अध्याय ॥

इसरीति से सदुपदेश से अद्वैतब्रह्मको कहकर सिद्धकरनेकी उत्तमता वर्णन करने को ब्राह्मणने कहा कि इस स्थानपर मैं एकचातुरहोत्र विधान नाम इतिहासको कहता हूं जिस में अपूर्व रीति से ब्रह्मका जतलाना है १ उस सब ज्ञात और अज्ञात की रीति अनुष्ठान विधि के अनुसार उपदेश किया जाता है हे कल्याणिनि मेरे कहे हुये इस अपूर्व्व और गुप्तरहस्य को सुनो २ हे शुद्धभाव करण, कर्म, कर्त्ता और मोक्ष यह चारों होता हैं इन्हींसे यह सब जगत् व्याप्तहै घ्राणादिक इंद्रियों के जो हेतु हैं उन के सब साधनों को संपूर्णता से सुनो ३ घ्राण जिह्वा चक्षु त्वक् श्रोत्र मन बुद्धि यहसातों अविद्यासे उत्पन्नहैं अर्थात् जैसे रस्सी में अविद्या सर्प की समान कल्पित है उसीप्रकार उसका दृश्य पदार्थ भी देखने के समय प्रकट होने वाला है ४ गंध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, मानना, जानना यहसातों कर्म्म से उत्पन्न हैं अर्थात् सब स्थूलकर्मजन्य फलहैं ५ सूंघने वाला खानेवाला द्रष्टा वक्ता सुनने वाला माननेवाला जानने वाला यह सातों कर्त्तापनेके हेतु हैं अर्थात् कर्त्ताही भोक्तारूप खाने पीनेवाला आदिक होता है ६ यह घ्राणादिक जो कि सूंघने आदिक विषय रखनेवाले और उन्होंके साधक हैं वह अपने शुभाशुभ गन्धादिक गुणोंको भोगतेहैं यह घ्राणादिक सातों मोक्षके हेतु हैं अर्थात् सुनने सूंघने देखने बोलने आदिके अभिमानका त्याग करनाही मोक्षहै और मैं गुणों से पृथक् और असंख्यहूं ७ पूर्ण बुद्धिमान् ब्रह्मज्ञानियों की खानेआदि की प्रशंसा नहीं है क्योंकि घ्राणादिक इन्द्रियोंका स्थान विधि के अनुसार अविद्या आदिक है वही देवतारूप घ्राणादिक सदैव हव्यको भोगते हैं आत्मा नहीं भोगता है ८ अज्ञानीलोग रूप रस आदिक भोजनकी वस्तुको भोजन करता अर्थात् भोक्तापनेका अभिमान करता भोगमें ममता करता है केवल अपने ही निमित्त अन्नको पकाताहुआ ममता से युक्त होता है और फिर नाश को पाता है ९ जो वस्तु खाने के योग्य नहीं है वह और मद्य-

पानादिक उसको नाश करते हैं वह अकेला भोजन करताहुआ अन्नको नाश करताहै और अन्न उसको मारताहै तब वह अन्नको मारकर फिर आप माराजाताहै १० जो ब्रह्मज्ञानी इस सब प्रपंचरूप अन्नको अपनेमें लयकरता ईश्वर होता फिर उसको उत्पन्न करता है उस भोजनसे कुछ अल्प पापभी उत्पन्न नहीं होता ११ अब अन्न शब्द के अर्थ को वर्णन करते हैं जो मनसे जाना जाता है जो वाणी से कहा जाता है जो कानसे सुना जाता है जो नेत्र से देखने में आता है १२ जो त्वचा से स्पर्श होता है जो घ्राण से सूंघा जाता है यह सब हवन के योग्य पदार्थ हैं जब कि मन समेत छओं इन्द्रियों को स्वाधीन करताहै १३ होम का अधिष्ठान मेरा कारण ब्रह्मरूप गुणवान् अग्नि जीवात्मा के भीतर क्रीड़ा करता है १४ मेरा योगरूप वह यज्ञ जारीहुआ जिसमें ज्ञानही गुणहै और उस गुण से उस ज्ञान यज्ञकी प्रकटताहै प्राण स्तोत्रहै अपान शस्त्रहै और सर्व त्याग ही दक्षिणाहै १५ अहंकार मन बुद्धि यह तीनों ब्रह्मरूप होता अध्वर्य्यु और उद्गाताहैं उपदेश करनेवाले का जो सत्य वचनहै वह शस्त्रहै और कैवल्यमोक्ष उसकी दक्षिणा है १६ पूर्व समयमें वेद अथवा आत्मारूप नारायणको जानने वाले पुरुषोंने नारायणकी प्राप्तिके अर्थ जो इन्द्रियों को आधीन किया वह उस यज्ञमें ऋचाओं को वर्णन करते हैं १७ वहां आत्मलाभसे प्रसन्न ज्ञानी सामवेद की ऋचाओं को गाते हैं उन ऋचाओं में उपमा कही हैं हे भीरु स्त्री उस सबके आत्मा और देवता नारायण को जानो १८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांपंचविंशोऽध्यायः २५ ॥

## छब्बीसवां अध्याय ॥

नारायण स्वरूप वर्णन करनेके अर्थ ब्राह्मणने कहा कि जो हृदयमें शयन करनेवाला है वही अन्तर्यामी प्रधान स्वामी है दूसरा नहीं है मैं उसकी कृपासे बचन कहताहूं और जैसे कि निचाई से जल छोड़ाजाता है इसी प्रकार उसका प्रेरणा किया हुआ मैं उस प्रकार कर्मकर्त्ता होताहूं जैसे कि उससे आज्ञप्त हुआ हूं १ एकही गुरुहै उससे अन्य दूसरा नहीं है जो कि हृदयमें शयन करनेवाला है उसी की कृपा से मैं कहताहूं कि बान्धव रखनेवाले और बान्धवरूप ईश्वर से आज्ञा पानेवाले सातऋषि स्वर्गमें प्रकाशमान हैं २ एकही श्रोता है उसका दू-

सरा नहीं है जो कि हृदयमें शयन करनेवालाहै मैं उसकी कृपासे कहताहूं इन्द्रने उस गुरूके पास निवासकरके सब लोकोंमें अमरपदवीको पाया ३ वही अकेला द्वेष्टाहै अर्थात् शत्रुता करनेवालाहै उससे दूसरा नहीं जो कि हृदयमें शयन करनेवालाहै मैं उसकी कृपासे कहताहूं उस गुरूसे उपदेश पानेवाले सर्पोंने संसार में विरुद्धता को पाया ४ मार्ग दिखानेवाले एक गुरूके होनेपर शिष्योंकी बुद्धि का जो विपर्य्यय है उसमें मैं इस प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें ब्रह्माजी के पास देवता ऋषि और सर्पोंकी शिक्षा पानाहै ५ समीप बैठेहुये देवता ऋषि नाग और असुरोंने ब्रह्माजीसे पूछा कि हे ब्रह्माजी आप हमारा कल्याण वर्णन कीजिये ६ भगवान् ब्रह्माजीने ॐ इस एक अक्षर ब्रह्मकोही उन प्रश्नकर्त्ताओं का कल्याणकारी कहा उन्हों ने उसको सुनकर बहुत मार्गों को प्राप्त किया ७ अपने उपदेशके निमित्त अर्थ को विचारनेवाले उन सर्पोंका चित्त प्रथमही काटनेमें प्रवृत्तहुआ अर्थात् ॐ शब्दके कहनेमें मुखके खोलने और बन्द करने को देखकर उस स्वभावको प्राप्तकिया ८ और ओष्ठोंकी चेष्टापर दृष्टि करनेवाले असुरोंका चित्त दम्भ में प्रवृत्त हुआ जो कि उनके स्वभाव से उत्पन्न है देवताओं ने दान को निश्चय किया महर्षियोंने दम अर्थात् इन्द्रियोंकी निंदाको स्वीकार किया ९ उन सब देवता ऋषि दानव और सर्पोंने एक मार्ग्ग दिखानेवाले को पाकर एकही शब्दके श्रवण करनेवालों ने उस एक शब्द को बहुत प्रकार का निश्चय किया १० इसी हेतुसे आपही अपना गुरूहै इसका वर्णन करते हैं यह गुरूके कहेहुयेको सुनताहै और यथातथ्य याद करताहै इसके पीछे वह पृच्छक अपने शिष्यों को उपदेश करताहै उसके सिवाय दूसरा कोई गुरू नहीं वर्त्तमान है ११ इसके पीछे उसकी आज्ञासे कर्म्म जारी होता है बुद्धिमान् श्रोता विरुद्ध कर्त्ता और गुरू सब हृदय से प्रकट हैं १२ इस संसार में पापकर्मकर्त्ता पापचारी होता है १३ जब इन्द्रियोंके सुखमें प्रवृत्त होताहै तब इच्छापूर्वक कामचारी होता है जो इन्द्रियों के जीतने में प्रवृत्त है वह सदैव ब्रह्मचारी है १४ व्रत और कर्मों से रहित केवल ब्रह्म में नियत और लोक में ब्रह्मरूप घूमता यह पुरुष ब्रह्मचारी होता है १५ उसकी समिध अर्थात् हवन की लकड़ी ब्रह्मही है अग्नि भी ब्रह्महै जल भी ब्रह्मसे प्रकट है और गुरू भी ब्रह्म है क्योंकि वह ब्रह्ममें समाधि करने वाला है १६ ज्ञानियों ने इस ऐसे सूक्ष्म ज्ञान को ब्रह्मचर्य्य जाना है तत्त्वदर्शी

गुरू से आज्ञा पाये हुये महात्माओं ने उसको जानकर प्राप्त किया है १७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांषड्विंशोऽध्यायः २६ ॥

# सत्ताईसवां अध्याय ॥

जब कि आत्मा पापकर्मका अभ्यासी है फिर ब्रह्मचर्य से क्या लाभ है इस शंकाको करके आत्मा के असङ्ग सिद्ध करने को बनअध्याय का प्रारम्भ करते हैं ब्राह्मणने कहा कि जिस संसारमार्ग में सङ्कल्पही डांस, मच्छर हैं सुख दुःख यह दोनों शर्दी और धूपहैं अपराध और भूल अंधकार है लोभ और रोग सर्प बिच्छूआदिक जीव हैं १ जो अधिकतर बन्धन में डालनेवाला अकेले से उल्लंघन करने के योग्य इच्छा और क्रोध से रुकनेवाला दुर्गम्य संसारमार्ग है उस को व्यतीत करके मैंने महावन अर्थात् सगुणब्रह्म में प्रवेश किया है २ ब्राह्मणी बोली हे महाज्ञानी वह बन कहां है उसमें कौनसे वृक्ष नदी और पर्व्वत हैं और कौनसे मार्ग में है ३ ब्राह्मणने कहा उस ब्रह्मसे पृथक् कोई दूसरा न प्रकाश है न सुख है अर्थात् सत्ता और सुख सब सृष्टिभरे में ब्रह्मही है जो कदाचित् कहो कि आकाशादिक इससे जुदे नहीं हैं यह भी नहीं होसक्ता क्योंकि ब्रह्म और जगत्के समान मृत्तिका और घट नहीं है किन्तु सीपमें चांदीके समान भ्रान्ति है इसके सिवाय कुछ दुःख भी नहीं है ४ न उससे कोई लघु है न वृद्धतर है न उससे सूक्ष्मतरहै और न उसके समान कोई दूसरा सुखहै ५ ब्राह्मण उसमें प्रवेश करके न शोचतेहैं न प्रसन्न होतेहैं न किसी से भयकरते न उनसे कोई भयकरताहै ६ उस बनमें रात्रिरूप सात बड़ेवृक्ष महत्तत्त्वअहंकार और पंचतन्मात्रा हैंउन के कारण प्रकट होनेवाले यज्ञादिक सात फलहैं उनके उत्पत्ति के हेतु रूप सात अतिथि यज्ञ क्रियादिक हैं उसके उत्पत्तिके हेतु सात आश्रमकर्त्ता कर्मादिक हैं उसके उत्पत्ति स्थान रागादिक सात समाधि हैं उन्होंका मूल दीक्षाहै यह सातों बन रूपहैं ७ उस बनमें मन वृक्ष बीज रङ्गदार द्रव्य शब्दादिक पांचों विषय फूल और उनसे उत्पन्न प्रीति आदिक फलों को उत्पन्न करते उस बनको व्याप्त करके नियत हैं ८ वहां नेत्रादिक वृक्ष श्वेत पीतादिक रङ्गों से शोभित सुख दुःखादिके विभाग से दो रङ्ग के फूल और फलों को उत्पन्न करते उस बन को व्याप्त करके नियत हैं ९ और यज्ञादिक वृक्ष सुगन्धित रङ्गदार स्वर्गादिक फूल फलों को उ-

त्पन्न करते उस बनको व्याप्त करके नियत हैं १० और ध्यानादिक सुगन्धित वृक्ष केवल सुखरूप फूल फलोंको उत्पन्न करते उस बनको व्याप्त करके नियत हैं ११ मन बुद्धिरूपी दो बड़े वृक्ष उन बहुतसे फूल फलोंको जिनका स्वरूप प्रकट नहीं और ज्ञानियोंके मनोरथमात्र हैं पैदाकरते उस बनको व्याप्त करके नियत हैं १२ इस महाबन में एक आत्माही अग्नि है मन और बुद्धि स्रुक, स्रुव, नाममात्रके स्थानापन्न हैं ब्रह्मज्ञानी होता है पांचो इन्द्रियां समिध हैं उन्हों के होम करने से सात मोक्ष प्रकट होती हैं मुक्त पुरुषों की वह दीक्षा सफल होती हैं वह फिर शरीरको नहीं प्राप्त कराती हैं क्योंकि वह अनुपम और अद्भुतहैं परन्तु देवता आदिकही उनको प्राप्त करनेवाले हैं ईश्वरवादी कर्त्ता नहीं करसक्ते जैसे कि वेद में लिखा है कि उस महात्माके शुभकर्मों को उसके मित्र और पापकर्मों को उसके शत्रुलोग प्राप्त करते हैं वह पुण्य पापसे पृथक् होकर मोक्षको पाता है १३ वहां वहां महर्षि अर्थात् इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता अतिथि नाम पूजनको स्वीकार करते हैं उन पूजित देवताओं के लयादिक होनेपर उनसे दूसरा अद्वितीय बन प्रकाशित होताहै १४ जो वृक्ष शान्तिनाम छायासे युक्त मोक्षनाम फल और तृप्तिनाम जल रखनेवाला शास्त्र गुरु उपदेशमें आश्रितहै और सूर्य्य आत्माहै १५ जो सन्त उस वृक्षको प्राप्त करते हैं फिर उनको किसीप्रकारका भय नहींहै क्योंकि ऊपर बाईं और तिरछी ओर उसका अन्त नहीं पायाजाता है अर्थात् सबको चिन्मात्ररूप देखता हुआ निर्भय होताहै क्योंकि द्वैतभावही भयका कारणहै १६ अब जीवन्मुक्तके ऐश्वर्य्य को कहते हैं वहां सात स्त्री अर्थात् मन बुद्धि और इन्द्रियों की वह वृत्तियां निवास करती हैं जो कि सङ्कल्प सिद्ध हैं और ज्ञानीको अपना आज्ञावर्त्ती न करने से लज्जित हैं चैतन्य ज्योति रूपमें और सृष्टिके निमित्त विषयसे उत्पन्न सब सुगन्धियों को भोगते हैं यहांपर सत्य और मिथ्या का जो अन्तर है वही ज्ञानी और अज्ञानीका अन्तर कहा है १७ उस यज्ञकर्त्ता में वषट् आदिक इन्द्रियरूप सातऋषि लय होते हैं और फिर उसीसे प्रकट होते हैं १८ यश, तेज, ऐश्वर्य्य, विजय, सिद्धि, कान्ति, ज्ञान यह सातों नक्षत्र क्षेत्रज्ञ नाम सूर्य्य के साथी और आज्ञावर्त्ती हैं १९ उस यती में पर्व्वत नदी और ब्रह्म से प्रकट जल को बहानेवाली नदियां सूक्ष्मरूप से नियत हैं २० जिस में योग यज्ञका विस्तार है उस अत्यन्त अज्ञान हार्दाकाश में नदियों का सङ्गम है उस

मार्ग्ग से वह योगी जोकि अपनी आत्मा में तृप्त हैं साक्षात् ब्रह्माजी के पास जातेहैं २१ वह लोक के जीतनेवाले सुन्दर ब्रती तपसे पापोंके भस्म करनेवाले ज्ञानी आत्मा को आत्मामें प्रवेश करके ब्रह्मकी उपासना करतेहैं २२ ब्रह्मज्ञानी पुरुष बाह्य इन्द्रियोंके जीतनेकीही प्रशंसा करतेहैं क्योंकि उसमें आकांक्षी होकर भिन्नबुद्धि चिदात्माके समान ऐश्वर्य्यवान् होताहै २३ ब्रह्मज्ञानियोंने इसप्रकारके इस पवित्र वनको जानाहै इसको शास्त्रसे जानकर ब्रह्मरूप क्षेत्रज्ञके द्वारा शम दमादि कर्म्मों को करतेहैं २४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिब्राह्मणगीतायांसप्तविंशोऽध्यायः २७ ॥

## अट्ठाईसवाँ अध्याय ॥

ब्राह्मणने कहा मैं गन्धोंको नहीं सूंघता रसोंको नहीं चाटता रूपको नहीं देखता स्पर्शको नहीं करता नानाप्रकारके शब्दोंको नहीं सुनता और कुछ सङ्कल्पभी नहीं करताहूं तात्पर्य यहहै कि जैसे किसान जब अपने खेतकी स्वत्वता को छोड़देताहै तब उसकी वृद्धि और हानिसे उसको प्रसन्नता और शोक नहीं होताहै उसीप्रकार जो एकान्तमें आत्माका दर्शन करनेवालाहै उसका अनुराग विषयोंसे नहीं होता १ बुद्धिआदिकका स्वभाव प्यारे विषयों को चाहताहै और अप्रिय विषयोंसे घृणा करताहै इच्छा और अनिच्छाके अप्रकट होनेके स्वभाव हीसे प्राण और अपान जीवोंके शरीरों में प्रवेश करके भोजनादिक करतेहैं मैं नहीं करताहूं २ उस बाह्य इच्छासे जो दूसरी वासनारूप इन्द्रियां हैं और उनमें से जो अधिष्ठानमें वर्त्तमानभावहैं उनसेभी दूसरे भूतात्माको योगीलोग शरीर में देखें उस भूतात्मामें नियत होताहुआ मैं किसी दशामेंभी इच्छा क्रोध जरावस्था और मृत्यु के पास नहीं बैठताहूं मुझ सब इच्छाओंसे रहित अप्रियमें दोष न लगानेवालेकी लिप्तता बुद्धिआदिकके स्वभावसे ऐसे नहीं होतीहै जैसे कि कमलोंपर जलकणकी लिप्तता नहीं होती ३।४ इस अविनाशी ब्रह्मज्ञानीके सत्यसङ्कल्प होनेमें और कर्म करनेकी दशामें प्रत्यक्ष संसारका भोगजाल जोकि इन्द्रिय मन और बुद्धिका स्वभावहै ऐसे उस ज्ञानीमें संयुक्त नहीं होताहै जैसे कि आकाशमें सूर्यकी किरणोंका जाल संयुक्त नहीं होताहै ५ आत्माके असङ्ग होनेमें इस प्राचीन इतिहासको कहताहूं जिसमें अध्वर्य्यु ब्राह्मण और संन्यासी का प्रश्नोत्तरहै हे यशस्विनि उसको सुनो ६ यज्ञकर्म्म में प्रोक्षण कियेहुये पशु

को देखकर निन्दा करते बैठे हुये संन्यासीने उस अध्वर्य्यसे यह वचन कहा कि यह हत्याहै ७ अध्वर्यने उसको उत्तर दिया कि इस बकरेका नाश नहीं होताहै यह जीव कल्याणयुक्त होगा क्योंकि यह श्रुति ऐसीही है अर्थात् श्रुतिमें लिखा है कि जो पशु विधिके अनुसार यज्ञ में देवताओंकी भेंट कियाजाताहै वह स्वर्ग को जाताहै ८ इसके शरीरमें जो पृथ्वीका भागहै वह पृथ्वीमें मिलजायगा जो जलका भाग है वह जल में मिलेगा ९ इसकी चक्षुरिन्द्रिय सूर्य्यमें श्रोत्रइन्द्रिय दिशामें और प्राण आकाशमें लय होकर मुझ शास्त्ररीतिके कर्मकर्ता को कोई प्रकारका दोष नहीं है १० संन्यासी बोला जो प्राणके पृथक् होनेमें बकरेका कल्याण देखताहै तब यज्ञ बकरेही के निमित्त जारी है आपका कौन प्रयोजनहै ११ इस पशुकेही भाई माता पिता और मित्र तेरे कर्म्मको स्वीकार करेंगे मुख्यकर इस नाथवान्को उनसे कहकर सलाह करो १२ कदाचित् वह इसप्रकार स्वीकार करें आप उनके देखनेको योग्यहो उन्होंके विचारको सुनकर विचार करना सम्भवहै १३ तुमने इस बकरेके चक्षुरादिक प्राणभी उनके उत्पत्तिस्थान सूर्यादिकों में प्रविष्ट किये तो अब केवल एक निश्चेष्ट शरीरही शेष रहगया १४ काष्ठादिकके समान जड़रूप शरीरसे हिंसा प्राप्त करनेके इच्छावान् मनुष्योंका इंधन पशु नाम है १५ सब धर्मोंमें अहिंसा श्रेष्ठहै यह वृद्धोंकी आज्ञा है जो हिंसासे रहित कर्म होय उसको करना योग्यहै यह हम जानते हैं १६ जोकि यह हिंसा जाननेके योग्यहै इसीहेतुसे आपको कहताहूं कि करने के योग्य कर्म्म में दोष लगाना सम्भव है १७ सब जीवों की हिंसा न करना सदैव हम को स्वीकृत है जिसका कि फल प्रत्यक्ष है उसका अभ्यास करते हैं और जिसका फल अदृष्ट है उस कर्म को नहीं करते १८ अध्वर्य बोला कि आप पृथ्वी के गन्ध गुण को भोगते हो जल रूप रसको पान करते हो प्रकाशमान शरीरी के रूप को देखते हो बायु से उत्पन्न गुण को स्पर्श करते हो १९ आकाशजन्य शब्दों को सुनते हो चित्त से विचारते हो यह सब प्राणों की प्रत्यक्षता है यहभी मानतेहो २० आप हिंसाके त्यागनेवाले हो परन्तु हिंसाही में कर्म कररहे हो क्योंकि विना हिंसाके चेष्टा नहीं है हे ब्राह्मण तुम हिंसा को कैसे मानते हो २१ संन्यासी ने कहा कि आत्मा का यह प्रत्यक्ष अक्षर और क्षरनाम दो भेदों का है उसमें अक्षर चिदात्मा सत्रूप है और क्षर तीनोंकाल में भी मिथ्यारूप कहाजाता

है २२ जो गुणनाम माया के साथ नियत प्राण अपान और मन सत्भाव रूप में अर्थात् भ्रान्तिसे युक्त सत् ही व्यवहाररूप है जो इन प्राणादिकों से छूटे सुख दुःखादिक योगों से पृथक् अनिच्छावान् २३ सब जीवधारियों में समदर्शी ममता से रहित मनका जीतनेवाला होकर चारोंओरसे मुक्त है उसको भय कहीं भी वर्त्तमान नहीं है २४ अध्वर्य बोला कि हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ इस लोकमें सत्पुरुषों के साथ निवास करना उचित है आपके सिद्धान्त को सुनकर मेरी बुद्धि प्रकाश करती है २५ हे भगवन् मैं आपकी बुद्धि से संयुक्त होकर कहताहूं हे ब्राह्मण मुझ वेदमन्त्र के अनुसार व्रत करनेवाले का अपराध नहीं है २६ ब्राह्मण बोला कि इस के पीछे वह संन्यासी इस वेदयुक्ति से मौन होगया और मोहसे रहित अध्वर्य्यभी अपनेबड़े यज्ञकर्म में प्रवृत्तहुआ २७ इसप्रकार ब्रह्मज्ञानियों ने इस रीतिकी अत्यन्त सूक्ष्मता को जाना है और अर्थदर्शी क्षेत्रज्ञ के द्वारा उसको जानकर शमदमादिक गुणों के करने वाले होते हैं २८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायामष्टाविंशोऽध्यायः २८ ॥

## उन्तीसवां अध्याय ॥

इन्द्रियों का जीतनाही बड़ी शूरता है उस के प्रकट करने को ब्राह्मणने कहा कि इसस्थानपर इस प्राचीन इतिहास को कहता हूं हे भवानी जिसमें राजा सहस्राबाहु और समुद्र का संबाद है १ सहस्रभुजाधारी कार्त्तवीर्य्यार्जुन नाम एक राजाहुआ जिसने धनुष से चतुस्समुद्रान्त पृथ्वी को विजयकरलिया था २ किसीसमय समुद्र के समीप घूमते उस बल से अहंकारी राजा ने सैकड़ों बाणों से समुद्र को ढकदिया तब हाथजोड़ नमस्कार करके समुद्र ने उस से कहा कि हे बीर अब बाणों को मत छोड़ो जो तेरा अभीष्ट होय उस को मैं करूं ३ । ४ हे राजाओं में श्रेष्ठ तेरे छोड़े हुये बड़े बाणों से मुझ में निवास करने वाले जीव मरते हैं हे समर्थ उन निरपराधियों को निर्भयकरो ५ कार्त्तवीर्य्यार्जुन ने कहा जो किसी स्थानपर कोई धनुषधारी युद्धमें मेरेसमान बर्त्तमानहोय तो उसको मुझसे बर्णनकर जो कि युद्ध में मेरे सम्मुख होय ६ समुद्रबोला हे राजा जो तुमने जमदग्नि महर्षि सुने हैं उसका पुत्र तेरा आतिथ्य विधिपूर्व्वक करने को समर्थ और योग्य है ७ फिर बड़ा क्रोधयुक्त वह राजा वहां से चलदिया उसने उनके

आश्रम को पाकर परशुरामजीको देखा ८ तब उसने बान्धवोंसमेत परशुरामजी के अप्रियकर्म किये अर्थात् महात्मा परशुरामजी के दुःखों को उत्पन्न किया ९ हे कमललोचने तब उस बड़े तेजस्वी परशुरामजी का तेज शत्रुकी सेनाओं को भस्मकरता देदीप्य अग्नि के समान हुआ १० और उन परशुरामजी ने फरसालेकर अकस्मात् उस सहस्रभुजाधारी राजाकी भुजाओं को ऐसा काटा जैसे कि बहुतसी शाखा रखने वाले वृक्षको काटते हैं ११ उस मृतक और गिरे हुये को देखकर इकट्ठे होनेवाले सब बान्धव खड्ग और शक्तियोंको लेकर चारों ओरसे भार्गवजी की ओर दौड़े १२ तब धनुष को लेकर रथपर सवार बाणों की वर्षा करते परशुरामजी ने भी राजाओं की सेनाओं को मारा १३ तदनन्तर परशुरामजी के भयसे पीड़ावान् होकर कुछेक क्षत्रियधर्म को त्याग पर्व्वतों के बड़े दुर्गम्य स्थानों में ऐसे छिपगये जैसे सिंह से पीड़ावान् मृग छिप जाते हैं १४ उन राजाओं और ब्राह्मणों के न देखने से प्रजा लोगोंने शूद्रभावको पाया १५ इस प्रकार की विपरीतकर्मता से उन द्रविड़ भीर पुंड्रदेशी क्षत्रियों ने शवरों के साथ शूद्रभाव को पाया १६ फिर क्षत्रियाओंके विधवा होनेपर ब्राह्मणों से मिले झुले क्षत्रियों को परशुरामजी ने मारा १७ इक्कीसवें युद्धके अन्त होनेपर बड़ी मधुर आकाशवाणीने जिसको कि सबलोग सुनतेथे परशुरामजी से यह वचन कहा १८ हे राम हे राम तुम कर्मको त्याग करो हे तात इन क्षत्रियजातोंको बारम्बार प्राणों से पृथक् करके आप किसगुण को देखते हो १९ हे महाभाग इस प्रकारसे ऋचीक आदिक पितामहाओंने उन महात्मा परशुरामजी से यह कहा कि हिंसा को त्यागो २० अपने पिताके मरण को न सहकर परशुरामजीने उन ऋषियों से कहा कि यहां आप मुझको निषेध करनेको योग्य नहींहो २१ पितर बोले कि हे विजय करनेवालों में श्रेष्ठ तुम क्षत्रियों के मारने को योग्य नहींहो तुझ सत्पुरुष ब्राह्मण से यहां राजाओं का मारना उचित नहीं है २२॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः २९॥

## तीसवां अध्याय॥

पितृ बोले हे ब्राह्मणोत्तम इस हिंसाके निषेध में एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं उसको सुनकर तुमको वैसाही करना उचित है १ अलर्क नाम राजर्षि

बड़ातपस्वी धर्मज्ञ सत्यवक्ता महा बुद्धिमान् और दृढ़व्रतवाला हुआ २ उसने धनुष से इस पृथ्वी को चारोंसमुद्र तक विजयकर अत्यन्त कठिन कर्म करके मन को बिचारमें नियतकिया ३ हे बुद्धिमान् बड़े २ शत्रुविजय आदिक रूप धर्मोंको करके वृक्ष के मूलपर नियत उस राजाकी चिन्ता ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ हुई ४ अलर्क बोला कि मेरा अन्तःकरण संबंधी बल उत्पन्न हुआ निश्चय चित्तको जीतकर मेरी विजय है बाहर के शत्रुओं के सिवाय अपनी इन्द्रियरूप शत्रुओं से घिरा हुआ मैं उन बाणों को चलाऊंगा ५ जिनको कि सब जीव चाहते हैं यह कर्म चपलता से है मैं तीक्ष्णनोकवाले बाणों को चित्तपर छोडूंगा अर्थात् हठयोग और वायु निरोधसे विजय करूंगा ६ चित्तने कहा कि हे अलर्क यह बाण किसीदशामेंभी मुझको विजय नहीं करसक्के किन्तु तेरेही मर्मस्थलों को छेदेंगे तब तुम मर्म्मस्थलों से विदीर्ण होकर मरजाओगे अर्थात् हठयोग में मृत्यु अवश्य होती है ७ अब तुम दूसरे बाणोंको विचारो जिनसे कि तुम मुझको मारोगे राजा ने उसके बचन को सुनकर और बड़े विचार पूर्व्वक उससे फिर यह बचन कहा ८ कि अनेक गन्धियों को सूंघकर उनमेंही लोभ करते हैं इस हेतुसे मैं घ्राणइन्द्रिय पर अपने तीक्ष्ण बाण मारूंगा ९ तब घ्राणइन्द्रिय बोली हेअलर्क यह बाण किसीदशामेंभी मुझको विजय नहीं करसक्के तेरेही मर्मस्थलों को तोड़ेंगे फिर मर्मों से घायल होकर तू मरजायगा १० अन्य बाणों को बिचारो जिससे कि मुझको तुम मारोगे राजाने उसको सुन बिचार पूर्व्वक फिर यह वचन कहा ११ आप उत्तम स्वादुयुक्त रसोंको खाकर उनमें लोभ होता है इस हेतुसे मैं जिह्वाग्रवर्त्ती रसनाइन्द्रिय पर अपने तीक्ष्णबाण छोडूंगा १२ रसनाने कहा हे अलर्क यह बाण किसीप्रकार से मुझको विजय नहीं करसक्के तेरेही मर्मों को काटेंगे और मर्मोंसे विदीर्ण होकर तू मरजायगा १३ दूसरे बाणोंका विचारकरो जिनसे कि मुझको मारोगे उसने उसकोसुन और विचार करके फिर वचन कहा १४ त्वक्इन्द्रिय अनेक प्रकारके स्पर्शों को स्पर्श करके उनमेंही लोभ करती है इस हेतुसे नाना प्रकार के बाणों से अपनी त्वक्इन्द्रिय को छेदूंगा १५ त्वक्इन्द्रिय ने कहा हे अलर्क यह बाण किसी दशामें मुझ को विजय नहीं करसक्के तेरेही मर्मों को काटेंगे तब मर्मों से भिदाहोकर मरजायगा १६ दूसरे बाणों को बिचारो जिनसे कि मुझको मारोगे उसने उसको भी सुनकर बिचार पूर्व्वक फिर वचन कहा १७

कि नाना प्रकारके शब्दों को सुनकर उनमेंही लोभ करती है इस हेतुसे श्रोत्रइन्द्रिय पर अपने बाणों को छोड़ूंगा १८ श्रोत्रइन्द्रिय ने कहा कि यह बाण किसी दशामें भी मुझको विजय नहीं करसक्ते तेरेही मर्मों को काटेंगे जिस से तू मरजायगा १९ इससे तुम दूसरे बाणों को बिचारो जिनसे कि मुझको मारोगे फिर उसने उसको भी सुनकर बिचार करके वचन कहा कि यह चक्षुरिन्द्रिय २० बहुत से रूपोंको देखकर उनमें ही लोभ करती है इस हेतु से अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मैं चक्षुरिन्द्रियको मारूंगा २१ चक्षुरिन्द्रिय बोली हेअलर्क यह बाण मुझको किसीप्रकार से नहीं मारसक्ते तेरेही मर्मों को काटेंगे उन कटेमर्मों से तू मरजायगा २२ अन्यबाणोंको बिचारो जिनसे कि तू मुझको मारसके उसने उसको सुन विचारपूर्वक फिर वचन कहा २३ यह बहुतप्रकारकी निष्ठा बुद्धिसे निश्चय कीजाती है इसहेतुसे मैं तीक्ष्ण बाणों को बुद्धिपर छोड़ूंगा २४ बुद्धि ने कहा हे अलर्क यह बाण किसी दशामेंभी मुझको विजय नहीं करसक्ते तेरेही मर्मों को काटेंगे जिनके विदीर्ण होनेसे तू मरजायगा दूसरे बाणों को बिचारो जिनसे कि तू मुझको मारसके २५ ब्राह्मणने कहा इसके पीछे अलर्क ने वहां दुःखसे करनेके योग्य घोर बिचारमें नियत होकर इन सातोंपर चलाने के लिये किसी बाणकोभी ऐसा नहीं पाया जो कि सामर्थ्यमें सबसे श्रेष्ठहो २६ उस सावधानचित्त समर्थने बारंबार विचार किया उस द्विजन्मा बुद्धिमानों में श्रेष्ठ अलर्कने बहुतकालतक बिचारकर २७ राजयोग से परमकल्याण को नहीं पाया तब वह निश्चेष्ट अपने मनको स्वरूपमात्र निष्ठावाला करके योगमें नियत हुआ २८ पराक्रमीने एकही बाणसे शीघ्रता पूर्वक इन्द्रियोंको मारा और योग से परब्रह्ममें प्रवेशकरके परमसिद्धिको पाया २९ उस आश्चर्ययुक्त राजऋषिने इस श्लोकको गाया कि बड़े कष्टका स्थान है कि जिसप्रकार हमने सब बाह्यकर्म किया ३० संसारी भोगोंकी इच्छासे युक्त मैंने प्रथम राज्यके पीछेसे जाना कि योगसे बढ़कर कोई सुख नहीं है ३१ पितृ बोले हे परशुराम इसको तुमभी जानो और क्षत्रियोंको मतमारो घोर तपस्यामें नियत होजाओ इसके पीछे कल्याणको पाओगे ३२ पितामहाओंके इसप्रकारके बचनोंको सुनकर वह महाबाहु परशुरामजी घोरतपमें नियतहुये और महादुष्प्राप्य सिद्धिको पाया ३३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांत्रिंशोऽध्यायः ३० ॥

# इकतीसवां अध्याय॥

अब हृदयवन्धन नाम तीन गुण जो कि मोक्षाभिलाषी पुरुषों को त्यागकरने के योग्यहैं उनको प्रकट करनेके लिये ब्राह्मणने कहा कि इसलोकमें तीन बड़े शत्रु हैं वह गुणरूप वृत्तिभेदसे नव प्रकार के कहेहैं—प्रहर्ष अर्थात् आगे प्राप्त होनेवाले प्रिय में सुखप्रीति अर्थात् प्राप्त हुये प्रियका सुख आनन्द अर्थात् प्रिय के भोगका सुख यह तीनों सात्त्विक गुणहैं १ लोभ, क्रोध, शत्रुता अथवा ईर्षा यह तीनों राजसी गुण कहेजाते हैं परिश्रम अथवा शोक, आलस्य, मोह यह तीनों तामसीगुण हैं २ धैर्यता, निरालस्य, शान्तचित्तता, इन्द्रियोंका जीतना मनुष्यको उचित है कि शमादिक नाम बाणों के समूहों से इनसवको काटकर दूसरों के विजयकरने में उत्साह करताहै ३ पूर्वकल्पके ज्ञातालोग इस स्थानपर उन श्लोकों को कहतेहैं जो कि पूर्वसमयमें शान्तरूप होनेवाले राजा अम्बरीष ने गायेहैं ४ रागादिक दोषोंके प्रकट होने और शम दमादिगुणोंके विदित हो जानेपर बड़े कीर्तिमान अम्बरीषने स्वाराज्य नाम परमानन्दको प्राप्तकिया अपने दोषोंको आधीनकर गुणोंका अभ्यासकरके बड़ी सिद्धिको पाया और इन श्लोकोंको कहा ५।६ वहुतसे दोष विजय किये सब शत्रुओंको मारा परन्तु जो एक बड़ा दोष मारने के योग्यथा वह मैंने नहीं मारा ७ जो यह कर्म्म में प्रवृत्त जीवात्मा निर्लोभताको नहीं प्राप्तकरताहै और और लोभसे पीड़ित होकर इस लोकमें दौड़ता हुआ बुरे कर्मोंको नहीं जानता है ८ जिस हेतुसे इसलोक में प्रवृत्त मनुष्य न करने के योग्य कर्मको भी करताहै उस तीक्ष्ण खड्गोंसे मार डालनेवाले लोभको मारो ९ लोभसेही इच्छा उत्पन्न होतीहै उससे शोच होताहै वह इच्छावान् वहुतसे राजसीगुणोंको पाताहै उनके मिलनेपर वहुत तामसीगुणोंको प्राप्तकरताहै १० उनगुणोंसे संयुक्त शरीररूप वन्धन रखनेवाला वह मनुष्य बारंबार जन्म लेता है और कर्म करताहै फिर मृत्युके समयपर जीवात्मासे पृथक् गिरेहुये शरीरवाला वह मनुष्य जन्मकी आदि से मृत्युको प्राप्तकरता है ११ इस हेतुसे इस लोभको अच्छी रीतिसे विचार कर धैर्य्य से आत्मामें रोककर स्वाराज्य नाम परमानन्द को चाहै इसलोकमें यही राज्य है दूसरा राज्य नहीं है आत्माही ठीक २ राजा जाना गया है १२ अकेले लोभ को मारनेवाले कीर्त्तिमान्

राजा अम्बरीष ने ब्रह्मानन्द को प्रत्यक्ष कर के इन श्लोकों को गाया है १३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतासुएकत्रिंशोऽध्यायः ३१ ॥

# बत्तीसवां अध्याय ॥

ब्राह्मणने कहा हे भावनी मारनेके योग्य लोभ के विषयमें इस प्राचीन इतिहासको भी कहते हैं जिसमें राजा जनक और ब्राह्मणका संवादहै १ राजा जनकने किसी अपराधी ब्राह्मणको उसके अपराध की पवित्रता के निमित्त आज्ञादी कि मेरे देशमें निवास न करना चाहिये २ इसरीतिसे कहे हुये ब्राह्मण ने उस श्रेष्ठ राजाको उत्तरदिया कि हे राजा विषयरूपी देश वा शब्दादिक ममता और बन्धनके स्थानको वहांतक बर्णन करो जहांतक तेरी आज्ञा के आधीनहै ३ हे समर्थ सो मैं दूसरे राजाके देशादिक विषयमें निवासी होना चाहताहूं हे राजा शास्त्रके अनुसार तेरी आज्ञाका प्रतिपालन करना चाहताहूं ४ तब यशस्वी ब्राह्मण से इस रीतिपर कहेहुये राजाने वारंबार उष्णश्वास लेकर कुछ उत्तर नहीं दिया उस शोचते बैठे हुये महातपस्वी राजा को अकस्मात् ऐसे मूर्च्छा आगई जैसे कि सूर्य्यमें राहु आजाताहै ५। ६ फिर मूर्च्छाके दूर होजाने पर राजाने एक मुहूर्त्तमेंही उस ब्राह्मण को विश्वास करके यह वचन कहा ७ कि मैं बाप दादों के राज्यमें देशके आज्ञावर्त्ती होनेपर भी संपूर्ण पृथ्वीको खोजता विषयरूपी बन्धन में करनेवाले ममताके स्थानको नहीं पाताहूं ८ जब मैंने पृथ्वी के विषयमें विषयको नहीं पाया तब मिथिलापुरी में खोजा जब उसमेंभी विषयको नहींपाया तब मैंने शरीरके सुखादिक रूप प्रजामें विचारसे खोजा ९ जब मैंने उसमेंभी विषयको नहीं पाया तब मुझको मूर्च्छा प्राप्तहुई फिर मेरी मूर्च्छाके अन्त होनेमें बुद्धि उत्पन्न हुई १० तब मैं विषयको नहीं मानताहूं अर्थात् जैसे कि रक्त पीतादिक उपाधिमें वर्त्तमान स्फटिक बास्तव में रंगसे रहित है इसीप्रकार आत्मा विषयोंसे सम्बन्ध नहीं रखता अथवा सब विषय मेरा है यह चिदाभास समेत अहंकार भी मेरा स्वरूप नहींहै अथवा सब पृथ्वी मेरा स्वरूपहै क्योंकि मुझ आत्मासे जुदा कुछ नहींहै ११ और जिसप्रकार मेरी है उसीप्रकार दूसरेकी है हे ब्राह्मण श्रेष्ठ मैं इसको मानताहूं जबतक आपकी प्रसन्नता होय तबतक निवास करो और भोग करो १२ ब्राह्मणने कहा कि बाप दादों के राज्यमें देशके आज्ञावर्त्ती होनेपर

तुमने किसबुद्धि में नियत होकर ममताको त्यागकिया उसको कहिये १३ और किस बुद्धिमें आश्रित होकर सब विषय तेराही है जिसहेतुसे विषयको प्राप्तनहीं करताहै और विषय तेराहै उसकोभी कहो १४ जनक बोले यहां धनाढ्यता और दरिद्रिता आदिक सबदशा बिनाशवान् हैं इसी हेतुसे मैंने सब कर्मोंमें ममताको नहीं प्राप्तकिया जिससे यह बातहो कि यह मेराहै १५ यह किसकाहै और धन किसका है अर्थात् किसीका नहीं है यह वेदका वचन है मैंने बुद्धिसे उसको नहीं पाया जिसमें कि बुद्धिसे यहमेरी ममता होय १६ मैंने इस बुद्धिमें आश्रित होकर ममता को त्यागा है सुनो जिस बुद्धिको जानकर सर्वत्र मेरा विषय है १७ घ्राणेन्द्रियमें वर्त्तमान गन्धोंको अपने अर्थ नहीं चाहताहूं इसीहेतुसे मेरी विजय कीहुई पृथ्वी सदैव मेरी आधीनता में नियत है अर्थात् मैं उनके आधीन नहीं हूं १८ मुखमें वर्त्तमान रसोंकोभी अपने निमित्त नहीं चाहता इसीहेतुसे मुझ से विजय कियाहुआ जल सदैव मेरी आधीनता में नियत है १९ मैं रूप और चक्षुकी ज्योति को अपने लिये नहीं चाहता हूं इसीहेतु से मुझ से विजय कीहुई ज्योति सदैव मेरी आधीनता में वर्त्तमान है २० जो स्पर्श करनेवाली त्वगिन्द्रिय जिसमें वर्त्तमान हैं मैं उनको अपने निमित्त नहीं चाहता इस हेतुसे मुझ से विजय कीहुई वायु सदैव मेरे आधीन नियत है २१ मैं श्रोत्रइन्द्रिय के वर्त्तमान शब्दादिकों को अपने लिये नहीं चाहताहूं इस हेतुसे मुझसे विजय किये हुये शब्द सदैव मेरे आधीन वर्त्तमान हैं २२ मैं सदैव मनके सङ्कल्पको अपने निमित्त नहीं चाहता इस कारण विजय किया हुआ मन सदैव मेरे आधीन वर्त्तमान है २३ देवता पितृ भूत और अतिथियोंके अर्थ चाहताहूं और सब कर्मों के प्रारम्भ इसी निमित्त होते हैं २४ इसके अनन्तर ब्राह्मणने हँसकर राजाजनक से कहा यहां अब तुम अपनी परीक्षाके लिये आये हुये मुझ धर्मको जानो २५ तुम्हीं एक अकेले इस चक्र अर्थात् ममतासे रहित ज्ञानरूप प्रवृत्ति के जारी करनेवाले हो जो कि ब्रह्ममें लय होनेका कारण न रखनेवाला सीमा के अन्तपर पहुँचनेवाला है और जिसकी नेमि सतोगुण है २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांद्वात्रिंशोऽध्यायः ३२ ॥

---

# तेंतीसवां अध्याय ॥

ब्रह्मविद्या समाप्तहुई साधनों समेत जीवन्मुक्त की दशा कहने को ब्राह्मणने कहा हे भीरु मैं लोकमें इसरीति से नहीं बिचरताहूं जैसे कि तुम अपनी वृत्ति से निन्दाके निमित्त मुझको सङ्गी कहतेहो मैं वेदपाठीहूं मुक्तहूं वनचारी हूं और व्रत करनेवाला गृहस्थीहूं १ हे सुन्दरमुखी मैं वैसा नहींहूं जैसा कि तुम मुझको देखतीहो यह सब प्रत्यक्ष जो कुछ ब्रह्माण्डमें है मुझसे व्याप्त है अर्थात् मैं सब का आत्माहूं २ लोकमें जो स्थावर जंगम जीवहैं उनका लय करनेवाला मुझको ऐसा जानो जैसे कि लकड़ियोंका लय करनेवाला अग्नि होताहै ३ उसीप्रकार यह बुद्धि जानती है कि सब पृथ्वी और स्वर्गमें भी मेरा राज्य है और बुद्धिही मेराधन है ४ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणोंका ज्ञानरूप मार्ग्ग एकहै जिससे कि गृहस्थ वनवास ब्रह्मचर्य्य और संन्यास आश्रमों में लोग चलते हैं ५ बहुत प्रकारके दृढ़ चिह्नों से एकही बुद्धि उपासना कीजाती है बहुत प्रकारके चिह्न रखनेवाले जिन आश्रमों की बुद्धि विजय कीहुई बाह्येन्द्रिय रूप है वह अद्वैत ब्रह्मभाव को ऐसे पाते हैं जैसे कि नदियां समुद्र को पाती हैं यह मार्ग बुद्धि से मिलता है शरीर से नहीं प्राप्त होता ६ । ७ सब कर्म्म आदि अन्त रखनेवाले हैं शरीर कर्म्मों से बँधा हुआ है ८ हे सुभगे इसीसे अनात्म लोकसे उत्पन्न तेरा भय नहीं है मुझ से एकता प्राप्त करने में प्रवृत्त तुम मेरी आत्मा को प्राप्त होगी ९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३ ॥

# चौंतीसवां अध्याय ॥

ब्राह्मणी बोली कि यह बहुत थोड़ा किन्तु संक्षेप ज्ञान निर्बुद्धी और म्लान अन्तःकरण वालों से जानना सम्भव नहीं है मेराज्ञान नाशवान् हुआ १ अब उस उपायको मुझसे कहो जिससे कि यह बुद्धि प्राप्त कीजाती है और उस हेतु को भी मैं तुमसे जानना चाहती हूं जिससे कि यह बुद्धि वर्त्तमान होती है २ ब्राह्मणने कहा हेब्राह्मणी बुद्धिको अरणीकाष्ठ जानो और उसका गुरू ऊपरका अरणीकाष्ठहै तब मनन आदिक विचार और वेदांतका श्रवण दोनों इसको म-

थते हैं उससे ज्ञानाग्निकी उत्पत्ति होती है ३ ब्राह्मणी बोली यह जो जीवात्मा नामहै वह असङ्ग ब्रह्मका स्वरूपहै वह कहां अर्थात् नहीं होसक्ता क्योंकि जिस से उसका स्वरूप जानना सम्भवहो उसका स्वरूप कहां देखागया अर्थात् कहीं नहीं देखागया ४ ब्राह्मणने उत्तर दिया कि जो यह क्षेत्रज्ञ कहाहै वह चिह्न से रहित है क्योंकि निर्गुण है इसके सगुण होनेका कारण दिखाई नहीं पड़ता है अर्थात् भ्रान्तिरूप है सच्चा नहीं है मैं अव उस उपाय को कहताहूं जिससे कि वह जानाजाय अथवा बिना चित्तशुद्धि और भ्रान्ति के दूर न होने से न जानाजाय ५ वेदान्त शास्त्रादिकों का श्रवणरूप पूर्ण उपाय देखा जैसे कि पुष्पके भीतर नियतहुये भ्रमरोंको सुगन्ध दृष्ट पड़ती है उसीप्रकार आत्मा भी समाधि शास्त्रादिकों से दिखाई देता है कर्म से पवित्र जो बुद्धिहै वही पूरा उपायहै उस बुद्धिके न होनेसे अज्ञानी पुरुष उसज्ञानके चिह्नोंमें नियत आत्माको संगी मानते हैं ६ यह कर्त्तव्य है यह अकर्त्तव्य है यह बात मोक्षके धनी में उपदेश नहीं कीजातीहै क्योंकि यह ब्रह्मज्ञान उस त्याग और स्वीकारसे रहित सच्चिदानन्द से सम्बन्ध रखनेवाला है जिस बात के धनीमें द्रष्टा और श्रोता मनुष्यकी बुद्धि प्रकट होती है तात्पर्य्य यह है कि उस स्थानपर शुद्धब्रह्मके सिवाय कुछ बाकी नहीं रहता ७ जहांतक सम्भव होयँ उतनेही अंशों को कल्पना करे जोकि अव्यक्त अर्त्थात् अविद्याआदिक माया शब्दादिक व्यक्तरूप और वृत्तिभेदसे सैकड़ों और हजारों हैं तात्पर्य्य यह है कि वह सव मनही के विचार हैं सत्य नहीं हैं ८ वह सव नानाप्रकार के अर्त्थोंसे युक्त और प्रत्यक्षताके कारण रखनेवाले हैं शम दमादिगुणों के अभ्यास होनेपर अधिकारी पुरुष वह वस्तु होगा जिस से कि कोई दूसरा वर्त्तमान न होय तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्मप्राप्ति उसप्रकार की है जैसे कि याद से भूलीहुई कण्ठगत मालाका स्मरण आवे ९ श्रीभगवान् बोले कि इसके पीछे परमात्मामें जीवात्माके लय होने पर उस ब्राह्मणीकी ब्रह्माकार बुद्धि उत्पन्नहोगई क्षेत्रकेही ज्ञान से क्षेत्रज्ञ से भी बड़ा अर्त्थात् ब्रह्म प्रकट होता है आशय यह है कि जीवात्माही उपाधि के लय होजाने से ब्रह्मरूप है १० अर्ज्जुन ने पूछा हे श्री कृष्ण जी वह ब्राह्मणी कहां है और वह श्रेष्ठ ब्राह्मण कहांहै जिन्होंने कि यहसिद्धि प्राप्तकी हेअविनाशी उन दोनोंका वृत्तान्त मुझ से कहिये ११ श्रीभगवान् बोले कि हेअर्ज्जुन मेरे चित्तकोही ब्राह्मण जानो और

मेरी बुद्धिको ब्राह्मणी जानो और जिसको क्षेत्रज्ञ वर्णन किया है वह मैंहूं १२॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४॥

## पैंतीसवां अध्याय॥

ब्रह्मरूप मन और बुद्धिसे ब्रह्म जानाजाताहै उनदोनोंका साक्षी चैतन्यात्मा है वहांपर प्रपंच और साक्षी दोहुये वह दोनों ब्रह्महैं अथवा उनदोनोंमें जो ब्रह्म है उसके पूछनेको अर्जुनने प्रश्न किया कि जो सबसे परे ब्रह्म जाननेके योग्य है उसको मुझसे कहनेको आप योग्यहैं आपकी कृपासे मेरी बुद्धि उस प्रपंचसे रहित होकर ब्रह्ममें रमतीहै १। २ वासुदेवजी बोले इसस्थानपर उस प्राचीन इति हासको कहताहूं जिसमें मोक्षसम्बन्धी शिष्य गुरूका संवादहै शास्त्रोंको स्मरण रखनेवाले बुद्धिके स्वामी शिष्यने किसी बैठेहुये बड़े व्रतनिष्ठ प्रशंसनीय आ-चार्य्य ब्राह्मणसे पूछा कि हे शत्रुओंके विजय करनेवाले कल्याण क्याहै ३ मैं मोक्षाभिलाषी होकर भगवान्की शरणमें आयाहूं हे वेदपाठी शिरके बल आप से प्रार्थना करताहूं कि जो मैं पूछूं उसको आप मुझसे वर्णन कीजिये ४ हे अ-र्जुन तब उस गुरूने इसप्रकारसे प्रार्थनाकरनेवाले शिष्यसे कहा हे ब्राह्मण जिस जिसमें तुझको संशयहै वह सब तुझसे कहूंगा ५ हे कौरवों में श्रेष्ठ बड़े बुद्धि-मान् अर्जुन गुरूसे इसप्रकार आज्ञप्त गुरूके प्यारे शिष्यने हाथ जोड़कर जो २ प्रश्न किये उनको तुम मुझसे सुनो ६ शिष्यने कहा कि मैं कहांसे आया तुम कहांसे प्रकटहुये इन दोनोंसे परे जो अविनाशी ब्रह्म है उसको कहिये आका-शादिक तत्त्व और पंचभूतात्मक सृष्टि जो कि स्थावर और जङ्गम नामसे प्रसिद्ध है कहांसे उत्पन्नहुये ७ वह दोनों प्रकारके जीव किससे जीवते रहतेहैं उनसे परे और उनके लयका स्थान कौनहै सच्चेफलवाला कौनसा कर्महै कायिक वाचिक मानसिकनाम तप क्याहै और सत्पुरुषोंसे कहेहुये सत्त्वादिगुण कैसे स्वरूपवाले हैं ८ हे भगवन् कल्याणमार्ग कौनसे हैं सुख क्याहै पाप क्याहै हे श्रेष्ठव्रत इन प्रश्नोंको यथार्थतापूर्वक ९ मूलसमेत आप मुझसे कहने को योग्य हैं हे ब्रह्म-ऋषि आपके सिवाय कोई इन प्रश्नोंके कहनेको योग्य नहीं है १० हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ मुझको बड़ा शोचहै इससे अवश्य कहो आप सबलोगोंमें मोक्ष धर्म और अर्थमें पूर्ण कहेजातेहो ११ आपके सिवाय सब सन्देहों का निवृत्त करनेवाला

कोई बर्त्तमान नहीं है और हम संसारसे भयभीत और मोक्षके अभिलाषी हैं १२ बासुदेवजी बोले हे कौरवों के कुलमें श्रेष्ठ शत्रुविजयी अर्ज्जुन उस बुद्धिमान् व्रतधारी गुरूने उस शरणागत की बुद्धि के अनुसार गुणवान् शान्तरूप अपने अभीष्ट कर्म्म में प्रवृत्त छायारूप इन्द्रियों के जीतनेवाले यती ब्रह्मचारी के अर्थ उन सब प्रश्नोंको अच्छी रीतिसे वर्णन किया १३ । १४ गुरू बोले कि यह सब तेरे प्रश्न वेदविद्या में आश्रित होकर उत्तम ऋषियों से अभ्यास कियेहुये ब्रह्माजी के वर्णन कियेहुये हैं और जिसमें ब्रह्मज्ञान रूप अर्थका बिचार है १५ परब्रह्म से सम्बन्ध रखनेवाला ज्ञान श्रेष्ठ है संन्यास नाम तप उत्तम है जो पुरुष अपने पूर्ण निश्चयके द्वारा उस पीड़ा आदिक से रहित ज्ञानतत्त्व को जानता है और जो संपरिज्ञात दशामें सब जीवों में नियत आत्मा को जानता है वह सब मनोरथों को सिद्ध करता है १६ जो ज्ञानी संपरिज्ञात दशा में जड़ चैतन्य को एकत्त्वभाव त्वं पदार्थ ज्ञानमें पृथक्ता को देखताहै इसीप्रकार जीव ईश्वरकी एकता कोभी देखता है और व्यवहारमें उन दोनोंके बहुतसे भेदों को देखताहै वह दुःखसे छूटता है १७ जो किसीप्रकार कीभी इच्छा नहीं करता है अर्थात् ममतासे रहित है निरभिमानी अर्थात् अहङ्कार से रहित है वह इसीलोकमें नियत ब्रह्मभावके योग्य है अर्थात् जीवन्मुक्त है १८ माया और सत्वादिक गुणोंके मूल का ज्ञाननेवाला सब जीवोंके उत्पत्ति कारण से विदित अहङ्कार ममतासे रहित पुरुष निस्संदेह मुक्त होताहै १९ जिस बड़े वृक्षका उत्पन्न होना अज्ञाननाम बीज सेहै महत्तत्त्वरूप बुद्धिही उसकी शाखाहै महाअहङ्कार उसके पत्र समूहहैं इन्द्रिय रूप अंकुर जिसके छिद्रोंमें हैं २० आकाशादिक महाभूत उसकी निविड़ता स्थूल सृष्टिरूप उसकी छोटी छोटी शाखाहैं सङ्कल्परूपी सदैव रहनेवाले पत्ते और फूलों का रखनेवाला और सुखादिक कर्म फल रखनेवालाहै यह वृक्ष सदैव उत्तमफलों का उदय करनेवालाहै २१ इसके विशेष जीवात्मासे लेकर सब दृश्य पदार्थोंका बीज सनातनब्रह्म है इसको मूल समेत जानकर और ज्ञानरूपी उत्तम खड्गसे मायारूपी वृक्षको काटकर अविनाशताको प्राप्तकरके जन्म और मृत्युको त्याग करताहै तात्पर्य यहहै कि ज्ञान खड्गकीओर दृष्टि करके सब तत्त्वादिक अज्ञान की प्रकटतासे उत्पन्न हैं २२ जिसमें भूत बर्त्तमान और भविष्यत् आदिक और धर्म अर्थ कामादिकका निश्चयहै और सिद्धोंके समूहोंसे जानागया उस सना-

तन २३ और उत्तम ज्ञानके लय स्थानरूप ब्रह्मको अब तुझसे कहताहूं हे महा-भागिनी इस लोकमें ज्ञानी पुरुष जिस बुद्धिसे मुक्तहोतेहैं २४ पूर्व्वसमयमें सब कर्मगतिरूप मार्गोंमें वारम्वार चलकर अपने कर्मोंसे थकेहुये परस्पर ब्रह्मज्ञानके अभिलाषी इन सन्तानवाले भरद्धाज गौतम भार्गव वशिष्ठ कश्यप विश्वामित्र और अत्रि इन सबऋषियोंने इकट्ठेहोकर २५। २६ वृद्ध अङ्गिराऋषिको अग्रवर्ती करके ब्रह्मलोकमें उस पाप रहित ब्रह्माजीको देखा २७ नम्रतायुक्त महर्षियोंने उस सुखपूर्वक बैठेहुये महात्माको दण्डवत् करके इस परमकल्याणको पूछा २८ कि कैसे शुभकर्म्म करे कैसे पापसे निवृत्तहोय हमारे कल्याणमार्ग कौनसेहैं कौनसा सत्यकर्महै और कौनसा पापकर्महै २९ उत्तरायण दक्षिणायन दोनों कर्म मार्गों को कौन प्राप्तकरताहै प्रलय मोक्ष और जीवोंका जन्म मरण किस रीतिसे होता है ३० उत्तम मुनियोंके ऐसे वचन सुनकर उन ब्रह्माजी ने जो उत्तर दिया उस सबको मैं शास्त्रके अनुसार तुझसे कहताहूं हे शिष्य श्रवण करो ३१ ब्रह्माजी बोले कि तीनों कालमें जो रूपान्तर दशासे रहितहै उस ब्रह्मसे अव्यक्तभूतादिक आकाशादि, स्थावर, जरायुजादिक चार उत्पन्नहुये और कर्मसे प्राणी जीवते हैं अपने उत्पत्तिस्थान ब्रह्मको उल्लङ्घनकर अर्थात् धर्मसे च्युतहोकर विक्षेपदशामें अपने कर्मपर कर्मकर्त्ता होतेहैं हे सुन्दर व्रतवाले ऋषियो इसको यथार्थही जानो ३२ वह निर्गुण ब्रह्म जब गुणसे युक्त होताहै तब निश्चयकरके पांच लक्षणवाला है ३३ ब्रह्म सत्यरूप तप सत्यरूप और प्रजापति अर्थात् जीवात्मा सत्यरूप हैं सत्यब्रह्मसे पञ्चभूत उत्पन्नहुये यह जगत्भी सत्यरूपहै ३४ इसीहेतुसे सदैवयोग में नियत क्रोध दुःखसे रहित नियमवान् धर्मसेतु वेदपाठी ब्राह्मणभी सत्यप्रधान होतेहैं ३५ मैं परस्परीय ज्योतिसे धर्मपर नियत विद्यावान् धर्म मर्यादा जारी करनेवाले जगत्के पिता उन सनातन ब्राह्मणोंको वर्णन करताहूं ३६ ज्ञानियों ने सदैव एक धर्मको चार चरण रखनेवाला कहाहै धर्म अर्थ काम मोक्षके देनेवाले विद्याको चारों वर्णआश्रमोंके विषयमें पृथक् पृथक् वर्णनकरताहूं ३७ हे ऋषियो मैं कुशल मङ्गल उत्पन्नकरनेवाले कल्याणरूप मार्गको तुमसे कहताहूं निश्चय करके वह पूर्वसमयमें ब्रह्मज्ञानके निमित्त ज्ञानियोंसे प्राप्त कियागया है ३८ हे भाग्यवान् बोलनेवाले ऋषियो अब यहां मुझसे उस मार्गको सम्पूर्णता समेत जानो और उसके द्वारा दुर्ज्ञेय सबसे परे बड़े लयस्थानब्रह्मको जानो ३९ ब्रह्मचर्य

नाम आश्रमको ब्रह्ममें लय होनेकी पहलीरीति कही गृहस्थाश्रम दूसरा है उसके पीछे बाणप्रस्थआश्रमहै ४० उससे परे संन्यासआश्रमको परमपदजाननायोग्यहै अग्नि आकाश सूर्य्य वायु इन्द्र और प्रजापति यह तबतकही दृष्टिगोचर होते हैं जबतक कि संन्यासके साथ ब्रह्मज्ञानको प्राप्त नहीं करताहै और फिर उनको नहीं देखताहै ४१ उसके उपायको वर्णन करताहूं प्रथमही उसको समझो बन में रहनेवाले फल मूल और वायुके भोजन करनेवाले मुनि ४२ रूप तीनों द्विजका बाणप्रस्थ धर्म दिखाई देताहै और वह गृहस्थाश्रम सबवर्णोंका धर्मरूप कहाजाता है ४३ जो श्रद्धा अर्थात् आस्तिक्य बुद्धिहै वहीधर्मको जतलानेवाली है पण्डित लोग उसीको धर्म्म कहते हैं इसप्रकार देवयानमार्ग मिलने के उपाय तुमसे कहे जो कि सत्पुरुष पण्डितोंसे अभ्यास कियेहुयेहैं और वह पण्डित कर्मोंके द्वारा धर्मके सेतुरूपहैं ४४ जो व्रतमें प्रशंसनीय मनुष्य इनधर्मोंमेंसे एक धर्म्मको अभ्यासकरताहै वह समयपर अर्थात् क्रमपूर्वक मनकी पवित्रतासे सदैव जीवधारियोंकी उत्पत्ति और नाशको जानताहै ४५ इसकारण युक्तिसे उनतत्त्वोंको पूरा पूरा वर्णनकरताहूं जो कि सब बुद्धियोंमें नियत और भागीहोकर बर्त्तमानहैं ४६ अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चभूत, दशो इन्द्रिय, मन ४७ पञ्चतत्त्वों के शब्दादिक विषय यह चौबीस तत्त्वोंकी उत्पत्ति और पुरुष समेत तत्त्वोंकी संख्या वर्णनकरी ४८ जो मनुष्य सब तत्त्वोंकी उत्पत्ति और लयकोजानता है वह पण्डित सब तत्त्वोंमें मोहको नहीं प्राप्त होताहै ४९ जो पुरुष सब गुणतत्त्व और अखिल देवताओंको ठीक ठीक जानताहै वह पापसे रहितसंसारबन्धनसे छूटकर सर्वात्मा रूप होनेसे सब निर्मल लोकोंको भोगताहै ५० ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांगुरुशिष्यसंवादेपंचत्रिंशोऽध्यायः ३५ ॥

## छत्तीसवां अध्याय ॥

तत्त्वोंकी व्याख्या करने को ब्रह्माजी बोले कि वह तीनों गुणोंका समूह गुप्त अव्यक्त सबमें ब्यापक अविनाशी और निश्चलहै उसको शरीररूपी पुर जानो उसके नौ द्वार हैं पांचोंइन्द्री मन बुद्धि प्राण और अहंकार और जिसमें पांच तत्त्व हैं १ विषय भोगबासनासे जीवको चलायमान करनेवाली ग्यारहइन्द्री जिसमें हैं और मनसे प्रकट होनेवाले विषय जिसमें नियत हैं और उसकी बुद्धि

स्वामिनी है वह शरीर रूपी पुरी ब्रह्मरूप है जो ग्यारहवां मनहै वही सबका रूप है २ उस मनमें तीन नदियां हैं प्रथम कठिन नाम हिंसासे रहित धर्म रूप नदी दूसरी कृष्ण नाम हिंसाप्रधान नदी तीसरी शुक्लकृष्ण नाम हिंसासे युक्त प्रवृत्ति प्रधाननदी यह तीनों नदियां वारंवार वृद्धि पाती हैं त्रिगुणरूप संस्कार स्वरूप तीननाड़ियां हैं यह नदियां उनसे जारीहोती हैं ३ अव्यक्तके अंगरूप सत्व रज तम हैं इन्हींको गुण कहते हैं वह सब परस्पर मिले हैं अर्थात् स्त्री पुरुषके समान एक सृष्टिको उत्पन्न करते हैं और बीजअंकुरके समान परस्पर जीवते रहनेवाले हैं ४ परस्पर आश्रयस्थान रूप स्वामी सेवकके समान परस्पर वर्तनेवाले और परस्पर एक एकमें मिलेहुये हैं और पंचतत्त्वतीनों गुणों के रूपहैं ५ सतोगुण तमोगुण का जीतनेवाला है रजोगुण तमोगुणका जीतनेवाला और सतोगुण रजोगुण का विजय करनेवाला होताहै तमोगुण सतोगुणका जीतनेवाला है ६ जिस स्थानपर तमोगुण दूरहोता है वहां रजोगुण वर्त्तमान होताहै और जहांपर रजोगुण दूरहोताहै वहांसतोगुण वर्त्तमान होताहै ७ तमोगुणको रात्रिरूपजाने जो पापकर्मों में प्रवृत्तहैं उन्होंके तीनोंगुण मोहनाम और धर्मनाम लक्षण रखने वाले हैं ८ सब जीवों में प्रवृत्त दृष्ट आनेवाले रजोगुण की उत्पत्ति के चिह्नको स्वभाव रूप और विरोधी करनेवाला कहते हैं ९ सब जीवोंमें जो प्रकाश श्रद्धा और धर्म ज्ञानादिकों में सावधानी है यही सतोगुणका रूपहै और धर्मज्ञानादिकोंमें सावधानी साधुओंकी स्वीकृत है १० इन गुणोंसे सृष्टिके गुणजो कहे हैं वह व्योरे समेतहैं और सहेतुक वर्णन कियेजाते हैं उनको मूलसमेत जानों ११ पूर्ण मोह, अज्ञान, त्यागके योग्य को न त्यागना कर्मोंका बिचार न करना शयन, अहंकार,भय,लोभ,शोक अपने कर्म में दोषलगाना १२ भूलजाना,संशय,नास्तिकता, दुराचार,योग्या योग्यमें बिवेक न होना,सब इंद्रियोंसे अन्धापन होना बुरेगुण, हिंसा, अपवित्रता आदिकमें रहना १३ कामकी अपूर्णता में पूर्णता मानना, अज्ञानको ज्ञान जानना, मित्रताकात्याग,धर्ममें अप्रवृत्तिता, अश्रद्धा, अज्ञानता १४ कुटिलता, अचेतता, पापकर्म,बिस्मरणता,आलस्यादिक, देवता आदिकों में भक्तिका न होना, अजितेन्द्री, तुच्छ कर्ममेंप्रीति १५ यह सब गुण और चलन तामसी हैं इस लोकमें जो दूसरे भाव नियतहुये हैं वह सब तामस गुण जहां तहां नियम से प्रत्यक्षमें नियत होते हैं १६ सदैव देवता और ब्राह्मणों

की निन्दासे युक्त निन्दा वचन कहना त्यागकरनेके योग्य गुणोंको न त्यागना मोह, क्रोध, अशान्ती १७ जीवोंपर इर्षा यह सब तामसी चलन कहे जाते हैं जो कि प्रारंभ कर्म निरर्थकहैं और निष्फलदानहैं १८ जो निरर्थक भोजनहैं इस को तामसी चलन कहते हैं कठोर बचनादिक अशान्ती ईर्षा अहंकार १६ अश्रद्धा यह भी तामस गुण कहे जाते हैं इस लोकमें जो कोई मनुष्य इस प्रकार के पापकर्म करनेवाले २० मर्यादा से रहित हैं वह सब तामसी हैं अब इन पाप करनेवालोंकी निश्चित योनियोंको बर्णन करताहूं अर्थात् नरक में जानेके निमित्त नीचे और तिरछेनरकों में जानेवाले स्थावर, पशु, सवारी के पशु, कच्चे मांसभक्षी, सर्पादिक, कृमि, कीट, विहंग, अंडजजीव, सब प्रकारके पशु २१।२२ उन्मत्त,बधिर,मूक और जो २ अन्य पाप योगी हैं अज्ञानमें डूबे दुराचारी अपने कर्मोंका चिह्न रखनेवाले २३ जिनके चित्तका प्रवाह अधोगतिके योग्यहै यह तामसी मनुष्य तमोगुणमें डूबेहुयेहैं २४ अब इसके पीछे इनकी रीतें प्रताप और पुण्यके उदयको बर्णन करताहूं जैसे कि वह पवित्रकर्मी होकर शुभकर्मियों के लोकोंको प्राप्तकरते हैं २५ जो जीव स्थावर शरीर वृक्षादिक और तिरछे चलनेवाले पशुपक्षी आदिक योनियों में नियत हैं वह अग्निहोत्रादिक के निमित्त अपने धर्ममें प्रवृत्त शुभचिन्तक ब्राह्मणों के हाथसे घायल होकर २६। २७ संस्कार से ऊपरके लोकोंमें जाते हैं फिर वहांसे क्षीणपुण्य होकर च्युतहोके ब्राह्मणादिक बर्णोंको प्राप्त करके उपाय करनेवाले होकर स्वर्ग में देवताओंकी सालोक्यताको प्राप्तकरते हैं यह वेदकी श्रुतिहै २८ जो स्थावर जीव पशुपक्षी ऊपर लिखीहुई रीतियोंसे अपने कर्मोंमें सावधान होते हैं वह इसलोक में न परावृत्ती नाम धर्मवाले मनुष्य होतेहैं २६ पाप योनिमें वर्त्तमान चांडाल और गूंगेमनुष्य और दूसरे वर्णों को भी क्रमपूर्वक प्राप्तकरते हैं ३० शूद्रबर्ण को उल्लंघन कर वैश्यादिक की योनिप्राप्त होने में जो दूसरे तामसगुणहैं वह तामसीइन्द्रीमें प्रवेश करके बर्त्तमान होते हैं ३१ स्त्री आदिक अभीष्ट वस्तुओं में जो स्नेहहै वह महामोहनाम कहाजाताहै सुखके चाहनेवाले ऋषि मुनि और देवता इसमें मोहको पातेहैं ३२ तम, मोह, महामोह, क्रोध नाम तामिश्र, मरणनाम अन्धतामिश्र है परन्तु तामिश्र क्रोध कहाजाता है अर्थात् तामिश्र और अन्धतामिश्र यह दोनों द्वेष और अभिनिवेष नाम कहेजाते हैं ३३ हे ब्राह्मणो यह सब बर्ण गुण योनि

तत्त्वसे तमोगुणही हैं जोकि बुद्धिके अनुसारमैंने तुमसे कहा कौन इसको अच्छी रीतिसे जानताहै और कौन इसको अच्छे प्रकारसे देखताहै जो पुरुष अतत्त्व में तत्त्वको देखता है वही तमोगुण का लक्षण है ३४ । ३५ तमके गुण बहुत प्रकार के वर्णन किये और वह उत्पादक और उत्पाद्यरूप तम भी ठीक कहा जो मनुष्य इन गुणोंको जानताहै वह सब तामसी गुणोंसे छूटजाताहै ३६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिगुरुशिष्यसंवादेषट्त्रिंशोऽध्यायः ३६ ॥

# सैंतीसवां अध्याय ॥

ब्रह्माजी बोले हे महाभाग ऋषियो जैसा कि रजोगुण है उसको भी मैं यथार्थतासे कहताहूं तुम राजसी चलन को समझो १ सन्ताप, रूप, परिश्रम, सुख, दुख, शीत, उष्ण, ऐश्वर्य्य, विग्रह, सन्धि, हेतुबाद, रति, क्षमा २ बल, शूरता, मद, रोष, व्यायाम, कलह, ईर्षा, ईप्सा, पिशुनता, युद्ध, ममता, शरीरादिक का पालन ३ मरण और बन्धनका दुःख मोलबेच, काटो छेदो घायलकरो इस प्रकार दूसरे के मर्मस्थलों को काटना ४ कठोर वचन, धिक्कार देकर बोलना, गालीदेना, पराये छिद्रका कहना, लोक चिन्ता की चिन्ता, मत्सरता, परिपालन, मृषाबाद, मृषादान, विकल्प, निन्दायुक्त दुर्वाद, प्रशंसा प्रताप, परिधर्षण अर्थात् दूसरे को विजयकरना ५ । ६ परिचर्य्या अनुशुश्रूषा, सेवा, तृष्णा, व्यपाश्रय अर्थात् व्यवहारमें सावधानी नीति शास्त्र, प्रमाद, परिवाद, परिग्रह ७ लोकमें जो संस्कार मनुष्यस्त्री अन्यजीव द्रव्य और रक्षकों में वर्त्तमान होते हैं ८ पश्चात्ताप, अविश्वस्थता, व्रत, नियम, आशीर्वादात्मक कर्म नानाप्रकारके कर्म, बापी, कूपादिकों का बनवाना ९ स्वाहाकार, नमस्कार, स्वधाकार, बषट्कार, याजन, अध्यापन, यज्ञकरना कराना वेदका पढ़ना पढ़ाना १० दानदेना दानलेना प्रायश्चित्त, मङ्गलकर्म, यह मेराहै यह मेराहो गुणसे उत्पन्न प्रीति ११ शत्रुता, माया अर्थात् छल निकृति अर्थात् फरेब, अहङ्कार, चोरी, हिंसा, निन्दा, अपने इष्टमित्रोंकी व्याकुलता से चित्तमें जलन जागरण १२ पाखण्ड, गर्व, प्रीति, भक्ति, स्नेह, प्रमोद द्यूत जन बाद और जो स्त्री संबंधी नातेदारी हैं १३ और जो कोई नृत्य गान और बाजोंकी सङ्गति हैं हे ब्राह्मणलोगो यह सब गुण राजसी कहेजाते हैं धर्म्म अर्थ काम त्रिवर्ग पृथ्वीपर प्रकट भूत भविष्य वर्त्तमान को उत्पन्न

करनेवाले और सदैव उनमें प्रीति करनेवाले हैं १४ । १५ काम ब्रत अर्थात् अ-
य्याश मनुष्य सब इच्छाओं की वृद्धि से प्रसन्न होते हैं यह रजोगुणी मनुष्य
स्वर्गसे नीचे पृथ्वीपर निवास करनेवाले हैं १६ वह बारम्बार जन्मलेनेवाले लोग
इस लोकमें आनन्द करते हैं और इस जन्म और दूसरे जन्म की कुशलता को
चाहते हैं १७ दान करते हैं दान लेते हैं तर्पण करते नित्य नियम करते और
हवन करते हैं १८ रजोगुणके अनेक प्रकारके गुण तुमसेकहे और उस गुणकी
रीतियां भी यथार्थ वर्णनकरीं जो मनुष्य इन गुणों को जानताहै वह सदैव सब
राजसी गुणों से छूटजाता है १९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिगुरुशिष्यसंवादेसप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७ ॥

# अड़तीसवां अध्याय ॥

ब्रह्माजीबोले कि इसके पीछे अब मैं तीसरे उत्तम गुणको वर्णन करताहूं जो-
कि सब जीवोंका हितकारी निर्द्दोष और लोक में सत्पुरुषोंका धर्महै १ आनन्द,
प्रीति, उद्रेक अर्थात् प्रतापका उदय सब प्राणीमात्रों से हितकरना,सुख,उदारता,
निर्भयता, सन्तोष, श्रद्धा २ क्षमा, धैर्य, अहिंसा, सबमें एकभावहोना सत्यता
सत्य बोलना क्रोध न करना दूसरेको दोष न लगाना बाह्याभ्यन्तर की पवित्रता
सावधानी पराक्रम ३ यह गुण सतोगुण कहलाते हैं जो ज्ञान चलन सेवा और
प्रीति निरर्थक हैं उनको जानकर जो योग धर्मपर चलताहै वह आत्मा में अ-
विनाशीपने को पाताहै ४ ममता, अहंकार और आशा से रहित सबओर से
समदर्शी और अनिच्छावान् हो यह सत्पुरुषोंका सनातन धर्महै ५ बिश्वास,
लज्जा, क्षमा,त्याग, बाह्याभ्यन्तर की पवित्रता,निरालस्यता,दया,बिमोह न होना
जीवोंपर दयाकरना किसीकी निन्दा न करना ६ पुत्रादिके जन्मसे उत्पन्न सुख,
सन्तोष, प्रसन्नमुख रहना, नम्रता, मधुरप्रियभाषी मुक्तिके उपायमें पवित्रता, सु-
बुद्धिता, जीवन्मुक्ति ७ उदासीनहोना, ब्रह्मचर्य, सर्वत्याग, ममता और इच्छा
न होना धर्ममें पूर्णता ८ और उस मोक्षमार्ग्गमें दानयज्ञ वेदपाठ ब्रत दानलेना
धर्म और तपको निरर्थक न जानना ९ इसलोकमें सतोगुणमें आश्रितवेद और
सगुणब्रह्ममें नेष्ठामान जो कोई ब्राह्मण ऐसा चलनरखनेवाले हैं वही पण्डित
और साधुदर्शी हैं १० वह शोक रहित पण्डित मनुष्य सब राजसी तामसी कर्म

रूप वा पापोंको त्याग करके स्वर्गको प्राप्तहोकर फिर योगवल से वहुतप्रकारके शरीरोंको उत्पन्न करते हैं ११ जो ईशित्व अर्थात् सवपर शासन वशित्व अर्थात् सबका अधिकारी और मनसे लघुत्व अर्थात् सूक्ष्मता उत्पन्न अथवा प्राप्तकरते हैं वह स्वर्गवासी देवताओंके समान हैं १२ यह ऊपरके लोकों में जानेवाले वैकारिक नाम देवता कहेजाते हैं भोगजन्य संस्कारके द्वारा फिर भोग के लिये अपनी प्रकृतिको विपर्ययकरनेवाले स्वर्गमें वर्त्तमान वह योगी १३ जो २ चाहते हैं वह सव अपने आप प्राप्तहोतेहैं और दूसरेके भी अभीष्टको देतेहैं हे ऋषियो यह सात्त्विकी चलन मैंने तुमसे कहा १४ मुख्य करके सात्त्विकी गुण वर्णन किये और गुणों का ठीक ठीक चलन भी कहा जो मनुष्य इन गुणों को जानता है वह सदैव गुणोंको भोगताहै और गुणोंमें आशक्त नहीं होता १५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिगुरुशिष्यसंवादेअष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८ ॥

# उन्तालीसवां अध्याय ॥

ब्रह्माजीवोले कि सव गुण पृथक् २ वर्णन करने असंभव हैं क्योंकि रजोगुण सतोगुण तमोगुण यह तीनोंसंयुक्त दिखाई पड़ते हैं अर्थात् यह जो कहाजाता है कि यह सतोगुणहै यह रजोगुणहै यह तमोगुण है यह बात उनकी प्रधानता से है १ वह सव परस्पर प्रीतिकरते हैं परस्पर अभीष्ट प्राप्तकरनेवाले परस्पर आश्रित और परस्पर सहायता करनेवाले हैं २ जितना सतोगुण है उतनाही रजोगुण वर्त्तमान होताहै अर्थात् अधिकता प्राप्त करनेवाला तमोगुण वृद्धिमान् सतोगुणको विजय करताहै इस हेतुसे निस्सन्देह उनकी वरावरी होजाती है यहां जितना सतोगुण और तमोगुण है उतनाही रजोगुण कहा जाता है अर्थात् वह रजोगुण उन दोनोंको विजय करके वरावरी प्राप्तकरताहै ३ वह इकट्ठे रहनेवाले तीनों गुण मिलकर साथही व्यवहार करतेहैं साथ रहनेवाले यह सब हेतुसे और विना हेतुसे विरुद्ध कर्मकरते हैं ४ अधिकता न रखनेवाले परस्पर सहायक सव गुणों का वह रूप न्यूनाधिकता से रहित अर्थात् समान कहाजाता है ५ जिसमें तमोगुण अधिक है वह तिरछे चलनेवाले जीवों के शरीर में वर्त्तमान हुये उस शरीरमें रजोगुण थोड़ासा और सतोगुण वहुतही कम जानना चाहिये ६ जिस जीव में रजोगुण अधिकहै वह मनुष्य शरीर को प्राप्त करनेवाला होता है उस

शरीरमें तमोगुण कम और सतोगुण बहुत कम जानो ७ जब सतोगुण अधिक है तब वह ऊपरके लोकमें नियत होनेवालाहै उस शरीरमें तमोगुण कम और रजोगुण बहुतही कम जानना चाहिये ८ सतोगुण इन्द्रियों का उत्पत्तिस्थान और इन्द्रियोंके द्वारा उनके विषयोंको प्रकटकरनेवाला होकर अहङ्कारसे सम्बन्ध रखनेवाला है सतोगुण से अधिक कोई दूसरा धर्म नहीं कहाजाता है ६ सतोगुणमें नियत होकर जीवधारी ऊपरके लोकों को जाते हैं रजोगुणी नरलोक में नियत होते हैं छोटे गुणसे युक्त तामसी मनुष्य अधोगतिको पाते हैं १० शूद्रमें तमोगुण क्षत्रियमें रजोगुण और ब्राह्मणमें उत्तम सतोगुणहै इसरीति से तीनों गुण और तीनों वर्णों में वर्त्तमान होते हैं वह साथ विचरनेवाले सतोगुण रजोगुण और तमोगुण दूरसेही दिखाई पड़ते हैं उनको पृथक् पृथक् नहीं सुनते हैं क्योंकि तमोगुणी शूद्र में भी रजोगुण और सतोगुण दिखाई देते हैं ११। १२ उदयहुये सूर्य को देखकर चौरादिकों को भय होताहै और गरमी से दुःख पानेवाले विदेशी सन्तप्त होते हैं १३ सूर्य्य सतोगुण है जो कि समान बुद्धि में अधिक है और चौरादिक तमोगुणहै विदेशियों का दुःख रजोगुण का धर्म्म कहा जाता है १४ सतोगुण रूप सूर्य्य वह गुण रखताहै जिससे कि विषयों का और शास्त्र का प्रकाश होता है सन्ताप रजका गुण है पर्व्वों में तमोगुण इस सतोगुणरूपी सूर्य्य का ग्रहण जानना योग्य है १५ इस प्रकार तीनोंगुण सब जीवधारियों में क्रमपूर्व्वक नियत होते हैं और जहां तहां उसी २ प्रकारसे पृथक् होते हैं १६ स्थावर जीवों के मध्यमें तमोगुण की आधिक्यता दिखाई देती है रजोगुणी ऐसे विपरीत दशा करते हैं जैसेकि दूधसे दही और सात्विकगुण घृतरूप है क्योंकि प्रकाश की वृद्धि का कारण है १७ दिन तीनप्रकारका जानना चाहिये और इसीप्रकार रात्रि महीना पक्ष वर्ष ऋतु और सन्धि यह तीन २ प्रकार की कही जाती हैं १८ दान तीनप्रकारके दिये जाते हैं तीनप्रकारका यज्ञ जारी होताहै लोक तीनप्रकारके हैं देवता विद्या और गतिभी तीन २ प्रकारकी हैं १६ भूत वर्त्तमान भविष्य धर्म अर्थ काम प्राण अपान उदान यह भी तीनों गुणके रूपहैं २० वह जहां तहां उस २ प्रकार से वर्त्तमान होते हैं इस लोकमें जो कुछ है वह सब यह तीनों गुणहीहैं सत्त्व रज तम अव्यक्त रूप तीनोंगुण सदैव वर्त्तमान होते हैं यह गुणोंकी उत्पत्ति प्राचीन है२१। २२ तम, अव्यक्त, शिव, धाम,

रज, सनातनयोनि, प्रकृति, बिकार, प्रलयप्रधान, जन्म, मरण, २३ सत्, अ-सत्, यह सब तीनगुण रखनेवाला अव्यक्त कहा जो कि न्यूनाधिकता से रहित निष्कम्प अचेष्ट और अविनाशी है अर्थात् वह अव्यक्त रस्सीमें सर्पके समान कल्पित है सत्य पदार्थ नहीं है क्योंकि न्यूनाधिकता आदिक सत्य पदार्थों में होते हैं २४ ब्रह्मविद्याके बिचार करनेवाले मनुष्यों को यह नाम जाननेके योग्य है २५ जो पुरुष अव्यक्तके इन गुणोंके नाम और शुद्धब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाले सब गुणों को मुख्यता से जानता है वह विभागके मूलको जाननेवाला शरीर से छूटकर उपाधि से पृथक् पुरुष सब गुणों से छूटजाता है २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिगुरुशिष्यसंवादेएकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९ ॥

# चालीसवां अध्याय ॥

ब्रह्माजी बोले कि अव्यक्तसे महत्तत्त्व उत्पन्नहुआ जो कि सब सृष्टिके गुणों का आदि महान् आत्मा महामतिनाम और आदि में प्रकाश होनेवाला कहा जाता है १ महान् आत्मा, मति, विष्णु, जिष्णु पराक्रमी, शम्भु, बुद्धि, ज्ञान-प्राप्ति प्रसिद्धी धैर्य्यसम्वर्त्ती २ इन पर्य्यायबाचक शब्दों से वह महान् आत्मा कहाजाता है ज्ञानी ब्राह्मण उसको जानकर मोह को नहीं पाता है आशय यह है कि विष्णु और शम्भु दोनों देवता महत्तत्त्वरूप वर्णन किये इसीसे दोनों एक हैं ३ वह सब ओरको हाथ पांव आंख शिर मुख और कान रखनेवाला लोकमें सबको व्याप्त करके नियत है ४ वह बड़े प्रभाववाला पुरुष सबके हृदयमें नियत है अणिमा लघिमा और प्राप्तिनाम विभूति वही अविनाशी ज्योति रूप ईश्वर है ५ लोक में जो बुद्धिमान् सद्भावमें प्रवृत्त ध्यान में मग्न सदैव योगी सत्यस-ङ्कल्प और इन्द्रियों के जीतनेवाले हैं ६ और जो कोई ज्ञानी निर्लोभ क्रोध के जीतनेवाले शुद्धचित्त पण्डित ममता और अहङ्कार से पृथक् ७ और विमुक्त हैं वह सब महत्तत्त्व को प्राप्त होते हैं जो कि महानात्मा की पवित्र और उत्तम गति को जानते हैं ८ अहङ्कार से पञ्चतत्त्व उत्पन्नहुये पृथ्वी अप तेज वायु आ-काश ९ सब प्रकट होनेवाले उन पांचों तत्त्वों में प्रवेश करते हैं और वह पञ्च-तत्त्व शब्द पुरुष रूप रस गन्धकी क्रियाओं में लय होते हैं १० हे पण्डित लोगो प्रलयके समय पञ्चतत्त्व की प्रलय वर्त्तमान होनेपर सब जीवमात्रों को बड़ाभय

उत्पन्न होताहै ११ परन्तु जो ज्ञानी है वह सब लोकोंमें मोहको नहीं पाताहै उ-त्पत्तिकी आदिमें विष्णु भगवान् अपने आप प्रकट होते हैं १२ इस रीतिसे जो पुरुष उस वेदरूप गुफामें शयन करनेवाले सबसेपरे प्राचीन प्रभु शरीरों में नि-वासी विश्वरूप सुवर्ण वर्ण बुद्धिमानों की परमगति को जानता है वह बुद्धि-मान् बुद्धिको उल्लङ्घन करके नियत होता है १३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिगुरुशिष्यसंवादेचत्वारिंशोऽध्यायः ४० ॥

## एकतालीसवां अध्याय ॥

कार्य्य कारणकी एकता सिद्धकरनेको ब्रह्माजीबोले कि प्रथमही जो महत्तत्त्व उत्पन्नहुआ वही अहंकार कहाजाता है मैंहूं इसशब्द से प्रकटहुआ वह दूसरा प्रत्यक्ष कहाजाताहै १ पंचतत्त्वों की आदि वह अहंकार विकारक नाम महत्तत्त्व से उत्पन्नकहा उसीका नाम रजोगुणहै. वह प्रवृत्तिरूप तेजकी रूपान्तर दशाहै तेजसे चेतना धातु और चेतना धातुसे प्रजाओंकी उत्पत्ति होती है इसी हेतुसे यह प्रजापतिहै २ वह ईश्वर संसारके सब पदार्थों समेत देवताओंका और मन का उत्पन्न करनेवालाहै वह मैं सबमें वर्त्तमानहूं इसप्रकार अभिमान करनेवाला वह अहंकार नाम कहाजाता है ३ जो अध्यात्मज्ञानसे तृप्त पवित्रात्मा वेदपाठ और यज्ञसे शुद्ध मुनियोंका यह सनातन लोकहै अर्थात् आवागमन का स्थान है आशय यहहै कि इसको समष्टिरूप अनरुद्धभी कहतेहैं ४ तीनों गुणोंकेरूप अहंकारसे शब्दादिक विषयोंको भोगकरनेके इच्छावान् पुरुषका वह आदितत्त्व तामसी अहंकार आकाशादिक को उत्पन्न करताहै इस हेतुसे वह पंचतत्त्वोंका उत्पन्न करनेवाला है सब इन्द्रियों को उत्पन्न करके उनसे देखने और स्पर्शादिक क्रिया करनेवाला है और इस सबको चेष्टादेता है कर्मेन्द्रिय और पंचप्राणों को उत्पन्न करके इनसे सब भोक्ताओं को प्रसन्न करताहै ५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिगुरुशिष्यसंवादेएकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१ ॥

## बयालीसवां अध्याय ॥

ब्रह्माजी बोले कि तामसी अहंकारसे यह पंचभूत उत्पन्नहुये पृथ्वी अप तेज वायु आकाश १ उन पंचतत्त्वों में जो स्पर्श रूप रस गन्धकी क्रियाहैं उनमें सब सृष्टि भरके जीव अचेत होते हैं २ हे पंडित लोगो महाभूतोंके बिनाशके समय

स्थूल शरीर रूप पञ्चतत्त्व के प्रलय वर्त्तमान होने पर सब जीवों को बड़ाभय उत्पन्न होताहै ३ जो २ भूत जिस २ से उत्पन्न होताहै वह उसी २ में लय होजाता है फिर वह क्रमसे उत्पन्न होतेहैं परन्तु क्रमपूर्व्वक लयनहीं होतेहैं ४ इसी हेतुसे जिस पुरुषने योग सामर्थ्यसे स्थूलपंच महाभूतों को सूक्ष्म महाभूतोंमें लय किया है तब सूक्ष्म शरीर होने के कारण वह अपनी स्मरणशक्तिसे प्रशंसनीय योगीभी नाशको नहीं पाते हैं ५ शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध और उनको प्राप्तकरनेवाली क्रिया यह सब नित्य मनके अविनाशी होतेहैं अथवा हार्द्दाकाश नाम सगुण ब्रह्मरूपसे अविनाशी होतेहैं और स्थूलरूप बिनाशवान् होते हैं ६ अब बिनाशवानोंके लक्षण बर्णन करते हैं लाभकी इच्छासे जो कर्म सफल हैं उससे प्रकट मुख्यतासे रहित रस्सीके सर्पके समान तुच्छ पदार्थ मांस रुधिरके समूह परस्पर के मांससे जीवते रहनेवाले ७ स्थूल शरीर रोगादिकों में फँसे हुये बाह्य साधनों से जीवन करतेहैं ८ प्राण अपान उदान समान और ब्यान यह पंचप्राण मनबाणी और बुद्धिके साथ अन्तरात्मा अर्त्थात् चैतन्यछाया से युक्त अहंकार नाम जीव में नियमपूर्व्वक बँधेहुये हैं इनआठों का इकट्ठाहोना जगत् है अर्थात् यहसब मोक्षतक नियत हैं ९ स्पर्श, त्वक्, श्रोत्र, घ्राण, रसना, बाणी यहसब जिसके आधीन हैं और जिसका मन अत्यन्त पवित्रहै और डामाडोल नहीं है १० यह आठोंगुण सदैव जिसको जलाते हैं वह उस शुद्धब्रह्मको पाता है जिससे अधिकतम दूसरा बर्त्तमान नहीं है ११ हे ब्राह्मण लोगो जिन सब इन्द्रियों को ग्यारह कहाहै वह सब अहंकारसे उत्पन्न हुई हैं उनको अब कहताहूं १२ श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, घ्राण, रसना, दोनों हाथ, दोनों चरण, लिंग, गुदा और दशवीं बाणी है १३ यह इन्द्रियों का समूह है इनका ग्यारहवां मनहै प्रथम उस इन्द्रियोंके समूहको विजयकरे उससे ब्रह्म प्रकाशकरताहै १४ पांचज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय बर्णनकरीं श्रोत्रादिक पांचों ज्ञानेन्द्रियों का मुख्यतापूर्व्वक बुद्धिसे संयुक्त वर्णन किया १५ जो दूसरी कर्मेन्द्रियां हैं इन दोनोंमें मनको संयुक्त जानना चाहिये बुद्धि बारहवींहुई १६ यह ग्यारहवों इन्द्रियों को क्रमपूर्व्वक आत्मामें वर्णन किया पण्डित इनको जानकर कृतकृत्य होते हैं १७ सब इन्द्रियां नानाप्रकारकी हैं प्रथम तत्त्व आकाश है उसमें श्रोत्र अध्यात्म कहाजाताहै १८ इसीप्रकार शब्द अधिभूत है उसमें दिशा अधिदैव है दूसरा तत्त्व वायु है उसमें त्वक्

अध्यात्म प्रसिद्धहै १६ स्पर्श अधिभूतहै बिजली उसमें अधिदेव है तीसरा तत्त्व अग्निहै उसमें चक्षु अध्यात्म कहाजाताहै २० रूप अधिभूतहै उसमें सूर्य अधिदैवहै चौथा तत्त्व जल जानना चाहिये जिह्वा अध्यात्म कहीजाती है २१ उसमें रस अधिभूतहै उसमें चन्द्रमा अधिदैवहै पांचवां तत्त्व पृथ्वी है घ्राणइन्द्रिय अध्यात्म कहीजातीहै २२ गन्ध अधिभूतहै हवा उसमें अधिदैवहै इन पांचों तत्त्व और अध्यात्म अधिभूत अधिदैव इन तीनोंमें जो बुद्धिहै वह वर्णन करी २३ इसके पीछे सब कर्मेन्द्रियोंको जो कि नानाप्रकारकी हैं वर्णन करताहूं तत्त्वदर्शी ब्राह्मणोंने दोनों चरणोंको अध्यात्म कहा २४ चलना अधिभूतहै विष्णु उसमें अधिदैव हैं अधोगति रखनेवाली अपान नाम वायुइन्द्रिय अध्यात्म कहीजाती है २५ फोकका निकालना अधिभूतहै मत्सर उसमें अधिदैवहै सबजीवोंकी उत्पत्तिका कारण उपस्थइन्द्रिय अध्यात्म कहीजाती है २६ वीर्य अधिभूतहै प्रजापति अधिदैवहै योगी मनुष्योंने दोनों हाथोंको अध्यात्म कहा कर्म्म अधिभूत है २७ इन्द्र उसमें अधिदैवहै इसलोकमें सम्पूर्ण विश्वकी देवी प्रथम वाणी अध्यात्म कहीजातीहै २८ कहनेके योग्य वाणी अधिभूतहै अग्नि इसमें अधिदैव है पञ्चभूतोंसे उत्पन्न जीवोंको कर्ममें प्रवृत्त करनेवाला मन अध्यात्म कहा २९ सङ्कल्प अधिभूत है चन्द्रमा अधिदैवहै उसीप्रकार सब संस्कारोंका उत्पन्न करने वाला अहङ्कार अध्यात्महै ३० अभिमान अधिभूतहै रुद्र उसमें अधिदैवहै छहों इन्द्रियोंकी बिचारनेवाली जो बुद्धिहै उसको अध्यात्म कहा ३१ चित्तमें बिचार करना अधिभूत है ब्रह्मा इसमें अधिदैव है जीवोंके निवासस्थान तीन हैं चौथा विदित नहीं होता ३२ स्थल जल आकाश जन्मभी चार प्रकारका है अण्डे से उत्पन्न पृथ्वी से प्रकट पसीनेसे पैदा और जरायुज ३३ यह चार प्रकारकी उत्पत्ति जीव समूहोंकी देखनेमें आती है इसी प्रकारजो छोटे २ जीव आकाशचारी हैं ३४ उनको और सब सर्पादिकके प्रकारको अंडेसे उत्पन्न जानो पसीने से उत्पन्न जीवधारी क्रमसे कीटादिक कहे ३५ यह द्वितीयं जन्मनिकृष्टतर कहाजाताहै कोई अपने नियत समयपर पृथ्वी को फाड़कर उत्पन्न होते हैं ३६ हे ऋषियो उन जानदारों को उद्भिज कहा जीव द्विपाद बहुपाद रखने वाले और तिरछे चलने वाले हैं ३७ जो कि जरायुज और विकृत नाम भी कहे जाते हैं हे बड़े साधु ब्राह्मणो ब्रह्मकी ऐक्यताका स्थान जो सनातन ब्राह्मण जन्म है वह दो प्रकार

का है प्रथम तो मातापितासे दूसरा संस्कारसे ३८ उसमें करने के योग्य कर्म्म यह है तप पुत्र कर्म्म नानाप्रकारका कर्म्म पूजन दान जो यज्ञमें होता है जानना चाहिये यह ज्ञानियों की नीति है ३९ द्विजन्माका वेदपाठ वा जप पवित्र है यह वृद्धोंका उपदेश है हे ऋषियो जो इसको बुद्धिके अनुसार जानताहै वह योगी होताहै और वह सब पापोंसे मुक्तहै इसको निश्चय जानो पहिला तत्त्व आकाश है श्रोत्र अध्यात्म कहाजाता है ४० । ४१ शब्द अधिभूत है इसमें दिशा अधिदैव है दूसरातत्त्व वायुहै उसमें त्वक् इन्द्रिय अध्यात्म प्रसिद्धहै ४२ स्पर्श अधिभूत है उसमें बिजली अधिदैव है तीसरा तत्त्व अग्नि है उसमें चक्षुरिन्द्रिय अध्यात्म कही जाती है ४३ रूप अधिभूत है सूर्य्य उसमें अधिदैव है चौथा तत्त्व जल जानना चाहिये जिह्वा अध्यात्म कहीजाती है ४४ चन्द्रमा को अधिभूत जानना चाहिये जल उसमें अधिदैव है मैंने यह अध्यात्म विधि ठीक २ तुमसे कही ४५ हे धर्मज्ञ ऋषियो यहां इसका ज्ञान ज्ञानी लोगों को प्राप्तहुआ इन्द्रियां इन्द्रियों के विषय, पंचतत्त्व इन सब को एक निश्चय करके मनके साथ धारण करे अर्थात् केवल मनसेही नियत होय ४६ इस मन में सब इन्द्रिय आदि के नाश होनेपर और फिर उसमनके भी लय होनेपर निर्बिकल्प सुखका अनुभव करनेवाले पुरुषको संसारी सुख अर्थात् पुत्र और स्त्री आदिके मिलने का आनन्द प्यारा नहीं लगता है वह सुख उन ज्ञानियों का अंगीकृतहै जिनकी बुद्धि आत्मअनुभव से संयुक्त है ४७ उसके पीछे मनको सूक्ष्म करने वाली निवृत्ति रूप वाणी को वर्णन करताहूं जो कि मनकी इच्छा और दृढ़ योग से सब ब्राह्मण आदिक जीवों में अभ्यास करने के योग्य है ४८ जिसमें शूरता आदिक गुण अहङ्कारके कारण होने से निर्गुण हैं और वह अभिमानादिक से रहितहै और जिसमें एकान्त निवासिता है और भेद से रहित है और जिसमें ब्राह्मण ज्ञाति प्रधान है इसरीति को सब सुखोंका निवास स्थान कहा ४९ जैसे कि कछुआ सब अङ्गों को समेट लेता है उसी प्रकार जो ज्ञानी अपनी इच्छादिकों को सब प्रकारसे रोककर रजोगुणसे रहित सब ओरसे मुक्तहै वह मनुष्य सदैव सुखी है ५० इच्छादिकों को आत्मा में लय करके अनिच्छावान् सावधान सब जीवों का शुभचिन्तक मित्र मनुष्य ब्रह्मभावके योग्य होता है ५१ इन्द्रियों के विषयाभिलाषी सब इन्द्रियोंके रोकने और सब ब्रह्माण्ड त्याग करनेसे मुनिकी बिज्ञान

रूप अग्नि अच्छी वृद्धिको पाती है ५२ जैसे कि ईंधन से वृद्धि पानेवाली अग्नि अच्छी ज्योति रखनेवाली होकर प्रकाश करती है उसीप्रकार इन्द्रियोंके रोकनेसे महानात्मा प्रकाश करताहै ५३ निर्मल चित्त योगी जब सम्परिज्ञातदशा में अपने हृदयके मध्य जीवोंको देखता है तब वह स्वयंज्योतिरूप होताहै और हार्द्दाकाशसे परमज्योतिको प्राप्त करता है ५४ जिस कालचक्रमें रूप अग्नि है रुधिरादिक जलहै स्पर्श वायुहै पृथ्वी घोर कीचहै श्रोत्र आकाशहै ५५ वह रोग शोकसे पूर्ण पंचेन्द्रियरूप नदियोंसे संयुक्त है पांचों तत्त्वोंसे युक्तहै दो कान दो आंख दो नाक मुख दो नीचेके छिद्र यह नव द्वार रखनेवालाहै जीव ईश्वरनाम जिसके दो देवताहैं ५६ रजोगुणसे युक्त है अमङ्गलरूप होनेसे देखने के योग्य नहीं तीन गुण रखनेवालाहै अर्थात् दृष्टि करतेही देखनेवालोंके सुख दुःख और मूलको उत्पन्न करनेवालाहै त्रिधातुका रखनेवाला है भोजन की बस्तु आदिक अभ्याससे रमनेवाला जड़रूप शरीरके समान रूपहै ५७ जो कि कष्टसे नियत होनेवाला और इस सब लोक के मध्य बुद्धिमें आश्रित है इसलोकमें बाल्यावस्थादिक समयसे संयुक्त यह कालचक्र वर्त्तमान होता है ५८ यह बड़े समुद्र के समान भयका उत्पन्न करनेवाला अथाह मोह नामहै देवताओं समेत इसजगत् को जानकर त्याग और लयादिक करे ५९ शरीर त्याग करनेवाला मनुष्य इन्द्रियोंके जीतनेसे इन कठिन त्याग इच्छा क्रोध भय लोभ शत्रुता और मिथ्यापनेको त्याग करता है ६० यह तीनों गुण और पंचतत्त्वलोकमें जिसके विजय कियेहुये हार्द्दाकाश में उसका अपार ब्रह्मलोक दिखाई देताहै ६१ पंचेन्द्रियरूप बड़ा किनारा और मनकी तीव्रताके समान बड़ा जल और मोहरूप ह्रद रखने वाली नदी को पार होकर दोनों इच्छा और क्रोध को विजय करे ६२ फिर सब दोषोंसे निवृत्त वह योगी मनको हृदयकमलमें धारणकर शरीरमें आत्माको देखता उस ब्रह्मको देखताहै ६३ सब जीवमात्रोंमें ब्रह्मको देखनेवाला एकरूप अर्थात् तत्पदार्थका साक्षात्कार भूरूप विश्वरूपसे जहां तहां रूपान्तर दशा करने वाला वह योगी आत्मा में आत्माको जानता है ६४ निश्चय करके वह बहुत रूपोंको देखताहै अर्थात् आत्मरूप से उनमें ऐसे नियत होता है जैसे कि एक दीपक से सैकड़ों दीपक प्रकाशित होयँ वही योगी विष्णु है वही सूर्य्य, वरुण अग्नि और प्रजापतिहै ६५ वही धाता है वही विधाता है वही प्रभुहै और वही

सब ओरको मुख रखनेवाला है वही सब जीवों का हृदय वही महानात्मा और प्रकाश करताहै ब्राह्मण देवता असुर यक्ष पिशाच पितृ गरुड़आदिक राक्षसगण भूतगण और सब महर्षि सदैव उसकी स्तुति करते हैं ६६ । ६७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिगुरुशिष्यसंवादेद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२ ॥

# तैंतालीसवां अध्याय ॥

इस सबकेस्वामी योगीका ऐश्वर्य्य प्रकट करनेको ब्रह्माजीने विभूतियोंको बर्णन किया मनुष्यों का राजा क्षत्रियहै जोकि रजोगुण प्रधान है सवारीके जीवों का राजा हाथी बनबासी जीवोंका सिंह सब १ सब पशुका राजाअवि बिलेशय जीवोंका सर्प गौओंका बैल और स्त्रियोंका स्वामी पुरुषहै २ बट, जामन, पीपल शाल्मली, शिंशप, मेषशृंग, कीचकनाम बांस अर्थात् जो बायुसे शब्दकरते हैं ३ यह सब निस्सन्देह इस लोकमें वृक्षोंके राजाहैं हिमवान्, पारिपात्र, सह्य, बिन्ध्य त्रिकूटाचल, श्वेत, नील, भास, कोष्टवान्, गुरुस्कंध, महेन्द्र, माल्यवान् ४ । ५ यह सब पहाड़ बहुत पर्वत समूहोंके राजा हैं सूर्य्यग्रहोंका चन्द्रमा नक्षत्रोंका राजाहै ६ पितरोंका राजा यमराजहै नदियों का स्वामी सागरहै जलोंका राजा बरुणहै मरुद्गणों का राजा इन्द्रकहाजाता है ७ उष्ण किरण वालोंका राजा सूर्य है नक्षत्रोंका राजा चन्द्रमाकहाजाता है अग्नितत्त्वोंका राजाहै ब्राह्मणोंका राजा बृहस्पतिहै ८ चन्द्रमा औषधियों का राजा है पराक्रमियों का राजा बिष्णुहै रूपों का राजा त्वष्टाहै पशुओं के ईश्वर शिव हैं ९ दीक्षित पशुओं का राजा यज्ञहै १० देवताओंका राजा इन्द्रहै दिशाओंका राजा उत्तर दिशाहै प्रतापवान् चन्द्रमा ब्राह्मणोंका राजा है सब रत्नोंका स्वामी कुबेरहै इन्द्र देवताओं का स्वामी है यह जीवधारी मात्रों का स्वामी प्रजापति सब प्रजाओं का राजाहै ब्रह्मारूप में सब जीवोंका बड़ाराजाहूं मुझसे और बिष्णुसे अधिक कोई नहीं है ११ । १२ ब्रह्मरूप बिष्णु सब सृष्टिभरेके राजाधिराजहैं उस पैदाकरनेवाले स्वयंसिद्ध हरिको सबका ईश्वरजानो १३ वही नर, किन्नर, यक्ष, गन्धर्ब्ब, उरग, राक्षस, देवता, नाग और सबका ईश्वर है १४ आकांक्षी लोग जिनकी यादकरते हैं उनसब स्त्रियोंकी स्वामिनी महेश्वरी महादेवी पार्वतीजी कहीजाती हैं १५ उमादेवी को स्त्रियोंमें उत्तम और शुभजानो प्रीति और आनन्दके मध्यमें जो सुख प्रीति अहंकार और

धनकी प्राप्तिसे युक्तहै वही बड़ा है स्त्रियों में अप्सरा श्रेष्ठ हैं १६ राजालोग धर्मके अभिलाषी हैं ब्राह्मणधर्मके सेतुहैं इसी हेतुसे राजा ब्राह्मणोंकी रक्षामें अनेक उपायकरे १७ साधु मनुष्य जिन राजाओं के देशमें कष्टपाते हैं वह अपने सब गुणोंसे रहित मरकर नरकगामी होते हैं १८ साधु लोग जिन राजाओं के देश में चारोंओर से रक्षितहैं वह राजा इसलोक में आनन्द करतेहैं और परलोक में सुखको पाते हैं १६ महात्मा योगीज्ञानी इस प्रकार से विश्वके ऐश्वर्य्य को पाते हैं हे ऋषियो तुम इसको निश्चयही जानो अब इसके पीछे नियम संयुक्त धर्म लक्षणको वर्णन करताहूं २० अहिंसा धर्म सर्वोत्तम है हिंसा अधर्मका चिह्नहै देवता प्रकाशका चिह्न रखनेवाले हैं मनुष्य कर्म चिह्न रखनेवाले हैं २१ आकाश और वायुशब्द स्पर्श लक्षण रखनेवाले हैं ज्योति लक्षणरूप है जलका लक्षण रस है २२ सबजीवों को धारण करनेवाली पृथ्वी गन्धरूप लक्षण रखनेवाली है स्वरव्यंजन के संस्कारसे युक्त वाणी शब्दरूप लक्षण रखनेवालीहै अर्थात् दूसरे की विद्या शब्दसेही जानी जाती है २३ मनका लक्षण चिन्ताहै चिन्ताका लक्षण बुद्धि है क्योंकि मनसे शोचे हुये अभीष्टों को बुद्धि से निश्चय करताहै २४ निस्सन्देह बुद्धि निश्चय से दिखाई देती है मनका लक्षण ध्यान है पुरुषका लक्षण अव्यक्तहै २५ कर्म प्रवृत्ति लक्षणवाले हैं ज्ञान संन्यासका लक्षण है इसलिये बुद्धिमान् इसलोक में ज्ञानको मुख्यकरके संन्यास लेवे २६ सन्मान व असन्मानता आदिक योगोंसे रहित तमोगुण जरामरणसे पृथक् ज्ञानसे युक्त संन्यासी परब्रह्मको पाताहै और उसमें प्रवेश करता है २७ मैंने तत्त्व और इन्द्रियोंका धर्म लक्षण और संयोग बुद्धिके अनुसार तुमसे कहा अब इसके पीछे विषयों की प्राप्तहोने वाली रीतोंको अच्छी रीति से कहताहूं २८ पृथ्वी से सम्बन्ध रखनेवाली गन्धनाम वस्तु घ्राणेन्द्रियसे प्राप्त कीजाती है उसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय में नियतवायु गन्धज्ञान में सहायक होती है २६ जलों का जो सार रस है वह सदैव जिह्वा से प्राप्त कियाजाताहै उसीप्रकार जिह्वापर नियत चन्द्रमा ज्ञानमें सहायता करता है ३० अग्निका जो गुण रूपनाम है वह चक्षुरिन्द्रिय से प्राप्त किया जाता है तब चक्षुमें नियत सूर्य्य रूप ज्ञानमें सहायता देताहै ३१ वायुका जो गुण स्पर्श है वह सदैव त्वगिन्द्रिय से जानाजाताहै जो वायु जिसमें सदैव स्पर्शेन्द्रिय वर्त्तमानहै वह स्पर्श करने में सहायक होता है ३२ आकाशका गुण

शब्दहै वह वायुके सम्पर्कसे प्राप्त होताहै श्रोत्रमें नियत होकर उसमें सब दिशा सहायकहैं ३३ मनका गुण चिन्ता है वह बुद्धिसे प्राप्त होता है हृदय में नियत चिन्ता धातु ज्ञान मनमें सहायता करता है ३४ बुद्धि निश्चय स्वरूप से प्राप्त होती है उसीप्रकार महान् शुद्ध सतोगुणरूप स्वरूपसे प्राप्त होता है निश्चयकर के उन बुद्धि और महत्तत्त्व का प्राप्त करना यद्यपि प्रकट है परन्तु अव्यक्तही है क्योंकि वह निस्संदेह इन्द्रियोंसे रहितहै ३५ इन्द्रियोंसे रहित और अपनेही तेजसे प्रकाशित उन दोनोंका जो प्राप्तकरनेवाला है उसको कहते हैं वह निर्गुणरूप जीवात्मा सदैव बुद्ध्यादिक के विषयसे रहितहै इसहेतुसे वह चिह्न रहित आत्मा केवल ज्ञानरूप लक्षण रखनेवाला है ३६ साक्षी में उस शरीररूप चिह्नमें स्थित सृष्टिके कारण उत्पत्ति और नाश पकड़नेमें न आनेवाले अव्यक्तको सदैव देखताहूं जानताहूं और सुनताहूं ३७ पुरुष अर्थात् आत्मा उस अव्यक्तको जानताहै इसहेतुसे क्षेत्रज्ञज्ञाताहै वह क्षेत्रज्ञगुणोंके विशेषण अर्थात् प्रकाश प्रवृत्ति और मोहादिकको और चरित्रको चारों ओरसे देखताहै ३८ वारंवार विपरीतरूप करने वाले गुणोंने निर्व्विकार आत्मा को नहीं जाना किन्तु आत्माही उस उत्पत्ति स्थिति और लय में विपरीत दशामें लगानेवाली मायाको प्रकट करता है ३९ कोई आत्माको नहीं जानताहै क्षेत्रज्ञही जानताहै वह गुण भोग पदार्थों से परे और वृद्धतमहै ४० इसहेतुसे धर्मज्ञ दोष और गुणोंसे पृथक् आत्मा इस लोकमें बुद्धि और गुणोंको त्यागकरके परमात्मामें प्रवेश करता है ४१ वह क्षेत्रज्ञ सुख दुःखादि योगोंसे रहित नमस्कार और स्वाहाकारसे रहित निश्चेष्ट और स्थान से रहित श्रेष्ठतर और सबका स्वामी है ४२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिगुरुशिष्यसंवादेत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३ ॥

# चवालीसवां अध्याय ॥

वर्णनसे पूर्व आत्मस्वरूप मोक्ष मिथ्या वस्तु कर्मसे प्राप्तके वर्णन करने को ब्रह्माजी बोले जो आदि मध्य और अन्तसे बन्धन कियेहुये अर्थात् जन्मादिक रखनेवाला बन्धन में नियत नाम और लक्षणसे संयुक्त है उस सबको मुख्यता समेत कहताहूं १ आदि में दिवस फिर रात्रि महीना शुक्लादिक पक्ष श्रवणादि नक्षत्र शिशिरादिक ऋतु वर्णन किये २ गन्धोंकी आदि पृथ्वीहै रसोंका आदि

जल रूपोंका आदि अग्नि और सूर्य और स्पर्शोंका आदि वायु कहाजाताहै ३ शब्दका आदि आकाश है यह पंचभूतों के गुण हैं इसके पीछे जीवों के उत्तम आदि रूपको बर्णन करता हूं सब तेजवान् शरीरों का आदि सूर्य चारों प्रकारों के जीवोंका आदि जठराग्नि कहाताहै सब विद्याओंमें सावित्री और देवताओं में प्रजापति आदिहै ४।५ सब वेदोंका आदि प्रणव है वचनोंका आदि प्राण है इसलोकमें जो मन्त्र जपके योग्यहै वह सब सावित्री कहाजाता है ६ छन्दोंका प्रथम गायत्रीहै सृष्टिका प्रथम उत्पत्ति काल कहाजाता है पशुओं में प्रथम गौ और मनुष्योंमें प्रथम ब्राह्मण है ७ पक्षियोंका प्रथम बाजपक्षी है यज्ञोंका आदि वह होमहै जो कि अग्नि अथवा ब्राह्मणके हाथमें कियागया है हे ऋषिलोगो बिच्छूआदिक विषधरोंमें सर्प सबसे बड़ाहै ८ सब युगोंका आदि सतयुगहै सब रत्नोंका आदि सुवर्णहै औषधियोंका आदि यवान्न है ९ भक्षण और भोजनकी सब वस्तुओंमें अन्न उत्तम कहाजाताहै सब पीनेकी वस्तुओंमें जल श्रेष्ठहै १० मुख्यकर सब स्थावर वस्तुओंमें प्लक्षनाम ब्रह्मक्षेत्र प्रथम और धर्मकी वृद्धि का हेतु कहा है ११ सब रक्षक और स्वामियों का आदि निस्सन्देह मैं ब्रह्माहूं वह बुद्धिके विषयसे परे अपने आप उत्पन्न होनेवाला विष्णु मेरा आदि कहागया १२ सब पर्वतोंमें महामेरु पहाड़ सृष्टिकी आदि कहा दिशा और विदिशाओं में ऊर्ध्वदिशा और पूर्वदिशा प्रथमकहीं १३ उसीप्रकार स्वर्ग पृथ्वी पातालनाम मार्गमें वर्त्तमान गङ्गाजी सब नदियों में प्रथम सृष्टि कही उसीप्रकार सब सरोवर और कूपादिकों में सागर प्रथम सृष्टि है १४ और इन देवता, दानव, भूत पिशाच,उरग,राक्षस,नर,किन्नर और यक्षोंका ईश्वर है १५ वह ब्रह्मरूपविष्णु इस विश्व जगत् का आदि और वृद्धहै इस त्रिलोकी में जिससे परे कोई प्रकट नहीं है सब आश्रमों में गृहस्थाश्रम उत्तम और प्रथम हैं निस्सन्देह लोकों का और सबका आदि अव्यक्तहै और वही अन्तहै १६। १७ दिनोंका अन्त सूर्य्यास्त है रात्रिका अन्त सूर्य्योदयहै सदैव सुखका अन्त दुःखहै और दुःखका अन्त सदैव सुखहै १८ यह सब समुदाय विनाश को अन्तमें रखने वाले हैं और सब उदय क्षीणताको रखने वाले हैं सब योग वियोग को और जीवन मृत्युको अन्त रखने वालाहै १९ सब कर्म्म नाशवान् हैं उत्पन्न होनेवाले का मरना निश्चय है इस लोकमें जड़ चैतन्य जीव सदैव नाशवान् हैं २० जो यज्ञ दान तप वेद पाठ और

नियम हैं नाशको अन्तमें रखनेवाला यह सब समूह ज्ञानके अन्त में वर्त्तमान नहीं रहता है २१ इसी हेतुसे शान्तचित्त जितेन्द्रिय ममता अहंकारादिसे रहित पुरुष शुद्ध ज्ञानके द्वारा सब पापोंसे निवृत्त होताहै २२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिगुरुशिष्यसंवादेचतुरचत्वारिंशोऽध्यायः ४४ ॥

# पैंतालीसवां अध्याय ॥

आगेके दो अध्यायों में ज्ञानके उपाय वर्णन करने के इच्छावान् ब्रह्माजीने अज्ञानियों को कालचक्र अर्थात् शरीरके आधीनमें कहना प्रारम्भ किया जिसमें बुद्धि अंगीकारके योग्यहै मन स्तंभ और इन्द्रिय समूह बन्धनहै और वह पांचों इन्द्रिय परिस्कन्ध और निमेष परिवेशनहै १ वह जरा शोकसे पूर्णरोग और दुःखों की उत्पत्ति का स्थान देश काल से विचरनेवाला दुर्गम्य स्थानपर जाना आदिक और उससे उत्पन्न जो दुःखहै वही जिसमें शब्द का हेतु है २ दिन और रात्रिको चेष्टा देनेवाला शीतोष्णरूप मंडल रखनेवाला सुख दुःख रूप सन्धि और क्षुधातृषा रूप शंकुरखने वाला ३ छाया और धूपरूप विलेख रखनेवाला निमिष उन्मिष नाम समय में व्याकुल होनेवाला दोपयुक्त शोक के अश्रुपातों से युक्त सदैव चलने वाला जड़ ४ महीना और पक्ष आदिक समयसे गिनती में आने वाला प्रत्येक समयपर मनुष्य पशु आदिक का रूपप्राप्त करनेवाला ऊपरनीचे के लोकादिकों में घूमनेवालाहै तमोगुणसे जो कर्म ज्ञानकी रुकावट है वही जिसमें पापकामूल है और सतोगुण तमोगुणसे संयुक्त रजोगुणकी तीव्रता जिसके मध्यमें निषिद्ध कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाली है बड़े अहंकार से चैतन्यहै सत्त्वादिक गुणोंसे जिसकी स्थितिहै अभीष्ट लाभके न मिलनेमें जो दुःखहैं वही उसमें रस बन्धन है और जो मृत्युके शोकसे जीवताहै ५ । ६ क्रिया कारणसे संयुक्त रागसे विस्तार युक्त लोभ और इच्छा जिसमें बैठने उठनेके स्थान हैं तीन गुण के रूप होने से अपूर्व्व जो अज्ञानहै वही उसका उत्पादक है ७ भय और मोहसे घिराहुआ जीवों को अचेत करनेवाला बाहर के सुखों के अभ्यास से घूमनेवाला इच्छा और क्रोधसे बँधा हुआ ८ महत्तत्त्व से लेकर स्थूल पिंडतकका रूप किसी स्थानपर एकक्षणभर भी न रुकनेवाला जीवोंकी चेष्टाका कारण सब प्रकट होने वालोंका हेतु संसार है वह मन के समान शीघ्रगामी स्वेच्छाचारी होकर काल

चक्र भ्रमण करता है ९ मान अपमानादिक से संयुक्त विना चैतन्य इस कालचक्र को जाने और देवताओं के साथ इस जगत् को त्याग और लयादिक करे १० जो मनुष्य सदैव कालचक्र की प्रवृत्ति और निवृत्ति के कारण को मुख्यता समेत जानताहै वह इस प्रत्यक्षादि मायामें अचेत नहीं होता है ११ सब संस्कारों से छुटा सुख दुःखादि योगोंसे पृथक् सब पापोंसे मुक्त मनुष्य परमगति को पाताहै १२ गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी यहचारों आश्रम कहे हैं उन सबका मूल गृहस्थ है १३ इस लोक में जो कोई शास्त्र वर्णन किये उस के अन्तपर पहुंचना कल्याणहै यह सनातन कीर्त्तिहै १४ प्रथम संस्कारों से संस्कृत विधि के अनुसार व्रत करनेवाला ब्रह्मज्ञानी मनुष्य जोकि ज्ञाति और गुणों से प्रतिष्ठा युक्त होय ब्रह्मचर्य्य की समाप्ति का स्नानकरे १५ अपनी स्त्री पर प्रवृत्त उत्तम आचार रखनेवाला जितेंद्रिय श्रद्धावान् मनुष्य इसलोकमें सदैव पांचयज्ञोंसे पूजनकरे १६ देवता और अतिथिसे शेष बचेहुये अन्नादिका खानेवाला वेदोक्त कर्ममें प्रवृत्त और सामर्थ्यके अनुसार सुखपूर्वक यज्ञ दानमें प्रवृत्त होवे १७ मुनि और हाथ पांव आंख अंग और वाणीसे चपल न होय यह शिष्यकी रीति और लक्षणहै १८ सदैव यज्ञोपवीती श्वेतपोशाक और पवित्र व्रतवाला इन्द्रियोंमें प्रवृत्त दानका नियम रखनेवाला शिष्य सदैव उत्तम पुरुषोंके पास बैठे १९ लिंग और उदरको वशीभूत करनेवाला सबका मित्र उत्तम पुरुषों के आचारसे युक्त शिष्य बांसका दण्ड और जलसे पूर्ण कमण्डलुको धारणकरे २० वेद पढ़कर पढ़ावे यज्ञ करे और करावे दान देवे और लेवे इन छःप्रकारके कर्मोंको करै २१ नीचे लिखे हुये तीन कर्मोंको ब्राह्मणोंकी आजीविका जानो यज्ञकराना पढ़ाना और शुद्ध मनुष्यसे दान लेना २२ फिर जो शेष बचेहुये तीन कर्म्म अर्थात् दान वेदपाठ और यज्ञ नामहैं वह धर्मसे संयुक्तहैं २३ धर्म्मज्ञ जितेन्द्रिय सबके मित्र क्षमावान् सब जीवोंमें समदर्शीमुनि उन तीनों कर्मों में असावधानीसे भूल न करे २४ इस प्रकार पवित्र व्रतनिष्ठ वेदपाठी गृहस्थी इस सबको अपनी सामर्थ्य के अनुसार करता स्वर्गको विजय करताहै २५ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिगुरुशिष्यसंवादेपंचचत्वारिंशोऽध्यायः ४५ ॥

# छियालीसवाँ अध्याय ॥

ब्रह्माजी बोले कि इसप्रकार प्रथम विधिके अनुसार इस बर्णनकीहुई रीतिसे सामर्थ्यके अनुसार बेद पढ़नेवाला ब्रह्मचारी १ अपने धर्म्म में प्रवृत्त बुद्धिमान् सावधानचित्त सत्यधर्म में प्रवृत्त, पवित्र और गुरूके प्यारे अभीष्टोंमें प्रवृत्तमुनि २ गुरूकी अज्ञालेकर भोजनकी बस्तुओं की निन्दा न करताहुआ भोजनकरे हविष्यनाम भोजन की बस्तुको खाकर भी गुरू के स्थान आसनपर बिहार करने वाला ३ पवित्र और सावधान होकर दोनों समय अग्निहोत्र करनेवाला ब्रह्मचारी बेल और पलाशके दण्डको धारणकरे ४ उस ब्रह्मचारीकी पोशाक बल्कल, सन, कपास और मृगचर्म से बनीहुई सब गेरुआवर्ण रक्त होनी चाहिये ५ मूंज की मेखलाहोय सदैव जटा और जल रखनेवाला वेदपाठ करनेवाला लोभसे रहित यज्ञोपवीत धारी और ब्रतका नियम करनेवाला होय ६ नियमवान् ब्रह्मचारी सदैव प्रीतिपूर्वक पवित्र जलके द्वारा देवताओंका तर्पण करता प्रशंसनीय होताहै ७ इस प्रकार प्रवृत्त जितेन्द्रिय बानप्रस्थ लोकोंको बिजय करताहै और बड़ेस्थान में आश्रित होकर शरीरोंमें प्रवेश नहीं करताहै ८ सब संस्कारोंसे संस्कृत ब्रह्मचारी मुनि ग्रामोंसे निकलकर संन्यासीरूप होकर बनमें निवासकरे ९ मृगचर्म और बल्कलकी पोशाक रखनेवाला प्रातःकाल सायंकाल स्नानकरे सदैव बनबासी होकर फिरग्रामों में नहीं प्रवेशकरे १० वानप्रस्थ फल मूल पत्र और शामाक से निर्बाह करता समयपर अतिथियोंको पूजता उनको निवास स्थान भी देवे ११ आलस्य से रहित वह बानप्रस्थ दीक्षाके अनुसार क्रम पूर्व्वक भोजनकरे चलती हुई बायुजल और सब जंगली फलादिक को काम में लावे १२ वह निरालस्य बानप्रस्थ मूल फलनाम भिक्षाओं से आयेहुये अतिथियोंको पूजे और जो अपने खानेकी बस्तुहोय उसीसे भिक्षादे १३ बाणी का जीतनेवाला, ईर्षासे रहित मन, कल्याण प्राप्त, देवतामें आश्रित वह वानप्रस्थ सदैव देवता और अतिथिके पीछे भोजनकरे १४ जितेन्द्रिय, सबकामित्र, क्षमावान्, वेदपाठ का अभ्यासी सत्यधर्म परायण कश डाढ़ी मूछको रखता हवन करता १५ पवित्र शरीर सदैव सावधान वनवासी इन्द्रियजीतने में कुशल ऐसा बानप्रस्थ स्वर्ग को विजय करताहै १६ गृहस्थी ब्रह्मचारी वानप्रस्थ यह तीनों जो मोक्षमें नियतहोना चाहैं वह उत्तमवृत्ति

में आश्रित होकर १७ सब जीवमात्रोंको निर्भयता देकर संन्याससे सब जीवोंको सुख देनेवाला सर्वमित्र सब इन्द्रियोंका जीतनेवाला मुनि १८ मध्याह्न के समय जबकि सबकेघर निर्धूमहोयँ और मनुष्य भोजन करचुके होयँ उसभिक्षाको करके भोजनकरे जोकि बिना याचना किये अपने आप प्राप्तहो और किसी देवता के नामसे कल्पित नहो १६ वह मोक्षका ज्ञाता टूटे और पड़ेहुये मृत्तिकाके पात्रमें भिक्षाको चाहै मिलनेसे प्रसन्नहोय और न मिलनेसे उदासभी न होय २० अलग होनेका अभिलाषी ब्रह्मसमाधि में नियत संन्यासी लयके समय ब्रह्मको चाहता भिक्षाकरे साधारण लाभको न चाहै और पूजितअन्नको न खाय अर्थात् जिसमें संन्यासीपनेके भोजनकी मुख्यता नहीं है मिलजाय लेलेना वही साधारणहै २१ वह संन्यासी पूजित लाभसे निन्दित होताहै कषैले कडुये जो भोजनहैं उनको खाकर २२ खाता हुआ स्वाद न लेवे और मीठेरसोंकाभी स्वाद न लेवे केवल शरीरके निर्व्वाह और प्राणके योग्य भोजन करे २३ वह मोक्षका जाननेवाला भिक्षा करता जीवों के बिना कष्टकी आजीविका को चाहै इसके सिवाय किसी दशामेंभी अन्यप्रकारके भोजनको न चाहै २४ धर्मको प्रकट नहीं करे और बिमुक्त होनेपर रजोगुणसे रहित होकर बिचरे उजाड़, स्थान, वन, वृक्षकी जड़,नदी २५ अथवा पहाड़की गुफाको अपने निवासके लिये सेवन करे उष्ण ऋतु में एक रात्रि गांवमें निवास करे वर्षाऋतुमें एकही स्थानमें निवास करता रहै २६ सूर्यसे दिखायाहुआ जो मार्ग्ग है उसमें कीटके समान अर्थात् धीरेसे पृथ्वीपर चले और जीवोंकी दयाके विचारसे पृथ्वीको देखकर चले २७ बस्तुओं को संचय अर्थात् इकट्ठा न करे प्रीतिसे जो निवास है उसको त्याग करे वह मोक्षका ज्ञाता सदैव पवित्र जलों से स्नानादिक करे २८ वह पुरुष सदैव कूपादिकों के जलोंसे आचमनादिक करे अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, सत्यवक्ता २६ क्रोध न करना दूसरे के गुणों में दोष न लगाना सदैव जितेन्द्रिय चुगली न करना इन आठों गुणोंसे युक्त और इन्द्रियोंका निग्रह करनेवाला होवे ३० पाप,शठता और कुटिलतासे रहित होकर सदैव आचारवान् और अनिच्छावान् सदैव भोजन के योग्य प्राप्तहुये ग्रासको सेवन करे ३१ केवल शरीर समेत प्राणकी रक्षाके निमित्त भोजन करे धर्मसे प्राप्तहुयेको खाय अपनी इच्छाके समान स्वतन्त्रकर्मी न होवे ३२ किसी दशामेंभी आवश्यक बस्त्र और नियत भोजनसे अधिक न-

लेवे जितना खाय उतनाही लेवे अधिक न ले ३३ किसी दशामें भी किसी से दान लेना वा दूसरेको दान देना आवश्यक नहीं ज्ञानी पुरुष जीवोंकी कंगाली और कष्ट के कारण उनको भाग देकर ३४ दूसरे के धनों को न ले और विना मांगाहुआभी न लेवे किसी विषय को भोगकर फिर उसकी इच्छा न करे ३५ आवश्यकता रखनेवाला उन मिट्टी जल फूल फल पत्र और अन्यप्रकारके भोजनकी वह वस्तु लेवे जिनका कोई रक्षक न होय और यह संन्यासी आदि के निमित्त निषेधहैं ३६ हाथकी शिल्पजीविकासे निर्बाह न करे सुवर्णको न चाहै शत्रुता और शत्रुताका उपदेश यह दोनों न करे भूषणादिक कभी न पहरे३७ जो भोजनकी वस्तु श्रद्धासे पवित्रहैं उनको भोजन करे शकुनोंका बर्णन अर्थात् ज्योतिषशास्त्रकी रीतिसे अच्छी बुरी होनहारके कहनेको त्याग करे स्वधावृत्ति संसारकी वस्तुओंमें असक्त चित्त संन्यासी सबजीवों करके त्यागीहुई वस्तु कोभी त्याग करे ३८ जो कर्म कि फल प्राप्त करनेकी इच्छासे हिंसायुक्तहैं और जो धर्म्मलोक संग्रह हैं उनको न आप करे न दूसरे को करावे ३९ सब मनकी इच्छाओंको त्याग करके चिन्ता और शोचसे रहित होजाय--और सब जड़ चैतन्य जीवेंमें संन्यासीको समदर्शी होना योग्यहै ४० न किसी दूसरेको डरावे न आप किसी से डरे सब जीवधारियों में विश्वास पात्र होय ऐसा मोक्षका ज्ञाता श्रेष्ठ कहाजाताहै ४१ वह कालको चाहनेवाला सावधान संन्यासी अभ्युत्थानका विचार न करे गतवातको न शोचे वर्त्तमानको त्याग करे ४२ नेत्र मन और वाणीसे कहीं किसीको दोष न लगावे प्रत्यक्षमें अथवा परोक्षमें थोड़ाभी बुराकर्म्म न करे ४३ जैसे कि कछुआ शरीरके सब अंगोंको समेट लेता है उसीप्रकार इन्द्रियों को लयकरके इन्द्रिय मन और बुद्धिका नाशकर्त्ता होकर अनिच्छासे सबतत्त्वों का जाननेवाला ४४ सुख दुःखादिक योगों से रहित नमस्कार और स्वाहाकार का त्यागी ममता और अहङ्कार से पृथक् प्राप्त और अभीष्ट रक्षा से जुदा ब्रह्मज्ञानी ४५ अनिच्छावान् गुणोंसे पृथक् जितेन्द्रिय संसारसे प्रीतिका त्यागनेवाला स्थान रहित आत्माका प्यारा तत्त्वज्ञानी निस्संदेह मुक्तहोताहै ४६ जो ज्ञानी उस आत्मा को हाथ पांव पीठ शिर उदर न रखनेवाला गुण और अन्यकर्म से रहित एक निर्मल नियत ४७ गन्ध रस स्पर्श रूप शब्द न रखने ला। लय के योग्य माया रहित निर्म्मांस ४८ चिन्ता न्यूनता से रहित दिव्य

सदैव निर्बिकार रूपान्तरदशारहित और सबजीवों में नियत देखते हैं वह मृतक नहीं हैं अर्थात् जीवन्मुक्तहैं ४६ उस आत्मा में बुद्धि लय होती है न इन्द्रिय न देवता वेद यज्ञ लोक तप और व्रतभी नहीं प्रवेश करते ५० इसमें जो ज्ञानियोंकी प्राप्तिहै उसको चिह्नरहित लयता कहते हैं इसी से उस चिह्नरहित के धर्म्म को जाननेवाला ज्ञानी धर्मतत्त्वको अभ्यास करे ५१ गुप्तधर्म में नियत ज्ञानी गुप्त आचरण करे और धर्म्मको दोष न लगाता वह ज्ञानी अज्ञानीरूपसे बिचरे ५२ जिसप्रकार अन्य मनुष्य सदैव उसको तिरस्कार करते हैं वैसी रीति रखनेवाला जितेन्द्रिय सत्पुरुषों के धर्म्मकी निन्दा न करताहुआ बिचरे ५३ जो ऐसी रीति का करनेवाला है वह उत्तम मुनि कहाता है इन्द्रिय इन्द्रियों के अर्थ पञ्चतत्त्व ५४ मन, बुद्धि, अहङ्कार और अव्यक्त पुरुष इनसबको तत्त्व निश्चयसे अच्छेप्रकार से ठीक जानकर ५५ फिर सब वन्धनोंसे छुटा होकर स्वर्गको पाता है वह तत्त्वज्ञानी आत्मपर्याद में इसप्रकार जानकर ५६ एकान्तवासी होकर ध्यान करे वह सबसे जुदाहै जैसे कि आकाशमें वर्त्तमान वायु होती है उसीप्रकार सब प्रीतियों से पृथक् और किसी स्थानपर नियत न होनेवाला ज्ञानी मुक्त होताहै ५७ जिसके मनोमय आदिक कोश खालीहुये वह भयादिकों से छुटाहोकर परमपद को पाता है ५८॥

श्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतासुगुरुशिष्यसंवादेषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६॥

## सैंतालीसवां अध्याय॥

ब्रह्माजी बोले कि निश्चितदर्शी वृद्धलोगोंने संन्यासको तप कहा ब्रह्मयोनियोंमें नियत ब्राह्मणोंने ब्रह्मज्ञानको श्रेष्ठ जाना १ वह ब्रह्मपाया और बहुत दूर वेदविद्यामें नियत सुख दुःखादियोगोंसे छुटा निर्गुण सदैव वर्त्तमान बुद्धिसे परे गुणयुक्त और सबसे वृद्धतम है २ स्वच्छ मन पवित्र रजोगुणरहित निर्म्मल ज्ञानी लोग ज्ञान और तपके द्वारा उस परब्रह्मको देखते हैं ३ जो मनुष्य सदैव संन्यासमें प्रवृत्त और ब्रह्मज्ञानी हैं वह तपके द्वारा उस कल्याणमार्ग परमेश्वर को प्राप्त होते हैं ४ तपको उत्तम दीपक कहा धर्मपूर्वक आचारसाधकहै ज्ञानको उत्तम जानें संन्यास उत्तम तपहै ५ जो ज्ञानी तत्त्वनिश्चय से उस उपाधियोंसे रहित ज्ञानरूप सबजीवोंमें नियत आत्माको जानताहै वह कृतकर्म्मीहोकर अ-

भीष्टको प्राप्तकरताहै ६ जो ज्ञानी माया ब्रह्मकी एकता और व्यवहारमें वियोग को देखताहै इसीप्रकार जीव ईश्वरकी ऐक्यता और बहुतसे प्रकारोंको जानता है वह दुःखसे छूटता है ७ जो कुछ इच्छा नहीं करताहै और न किसीका अपमान करताहै वह इसीलोक में नियत ब्रह्मभावको प्राप्तहोताहै ८ मायाके गुणों की मुख्यता जाननेवाला सबजीवोंके उत्पत्ति कारणसे विदित ममता अहङ्कार से जुदाहोकर निस्सन्देह मुक्त होताहै ९ जो सुख दुःखादिकयोगों से छुटा नमस्कार और स्वधाकारसे रहितहै वह शान्तिसेही उस ब्रह्मको पाताहै जो कि निर्गुण सदैव सुख दुःखादिकयोगोंसे जुदाहै १० सब गुणरूप और कर्म्म से उत्पन्न शुभाशुभफलको त्याग दोनों सत्य मिथ्याको छोड़कर निस्सन्देह मुक्त होताहै ११ वह बड़ा वृक्ष जिसका अंकुर और मूल अव्यक्तहै महत्तत्त्व जिसकी शाखाहै और महाअहङ्कार पत्रसमूहहैं इन्द्रियरूप अंकुर जिसके छिद्रोंमें हैं १२ पञ्चतत्त्व जिसके सदाफूलहैं और सूक्ष्म महाभूतोंकी उत्पत्ति जिसकी छोटी शाखाहैं सदैव पत्र पुष्प रखनेवाला और शुभाशुभफलका उदय करनेवालाहै १३ सबजीवों का जीवनमूल सनातन वृक्ष है ज्ञानी ब्रह्मज्ञानरूपी खड्गसे इसप्रकारके वृक्ष को काट छेदकर १४ जन्म मृत्यु और जरावस्थाकी उदय करनेवाली स्नेहरूप फांसी को त्यागकर ममता अहङ्कारसे जुदाहोकर मुक्त होताहै इसमें संदेह नहीं है १५ यहजीव ईश्वर नाम दोनों पक्षी प्राचीनरूपमें लय होनेवाले अथवा परस्परमित्र और छायारूप होने से प्रकट हैं इन दोनों से विशेष जो परब्रह्महै वह चेतनावान् कहा जाताहै १६ जिन शरीरादिक उपाधियों से जीव पृथक् २ गिनेजाते हैं उनसे छुटाहुआ जीवात्मा उस पदार्थ बस्तु को जो कि बुद्धि से परे है और क्षेत्ररूप होकर बुद्ध्यादिक को चैतन्य करता है उसे प्राप्त होता है वही क्षेत्रज्ञ सब बुद्धियोंका ज्ञाता और गुणों से जुदाहोकर सब पापों से छूटता है १७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतासुगुरुशिष्यसंवादेसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७ ॥

## अड़तालीसवां अध्याय ॥

इसप्रकार साधनों समेत ब्रह्मविद्या को समाप्त करके शिष्यकी बुद्धिकी परीक्षाके अर्थ मिले हुये वचनों से ब्रह्माजी बोले कि कोई तो इस संसार वृक्ष को ब्रह्मरूप कहते हैं अर्थात् ब्रह्मही जगत् रूपसे रूपान्तर दशा करता है कोई अ-

ब्यक्त ब्रह्म कहते हैं कोई सब उपाधियों से रहित परब्रह्म कहते हैं ( आशय यह है कि जगत् स्वप्नके समान कल्पित है अब सांख्यमत को कहते हैं ) और कोई मानते हैं कि अब यह सब अव्यक्त से प्रकट होनेवाला और उसीमें लय होने वाला है १ जो उपासक अन्तसमयपर एक दम भी ब्रह्मरूप होय वह हार्द्राकाश में ब्रह्मकी उपासना करके ब्रह्मलोकके मार्ग से मोक्षके योग्य होता है २ सिवाय उपासना के जो पलमात्र भी आत्मा को आत्मामें लयकरे तब ब्रह्माकार मनकी स्वच्छता से ज्ञानियों का लयस्थान कैवल्य मोक्ष को पाता है ३ वह बारम्बार प्राणायामों से प्राणरूप इन्द्रिय मन और बुद्धि को रोककर चौबीसवें से परे आत्मा को पाता है वह प्राणायाम यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, बिहार, धारणा, ध्यान, समाधि, त्याग, वैराग्य इन भेदों से दश हैं अथवा मैत्रेय करुणादिक से बारह हैं अथवा पांचयम पांच नियम छः प्राणायामादिक, चार मैत्रीआदिक दो तर्क, वैराग्य इन भेदों से बाईस हैं ४ इसप्रकार शुद्ध सतोगुण रखनेवाला योगी योग सामर्थ्य से जो जो चाहता है उस उस को पाता है जब अव्यक्त को पाकर सतोगुण श्रेष्ठतम होता है तब अविनाशी पनेके योग्य होता है ५ सतोगुण से श्रेष्ठ कोई दूसरा नहीं है यहां उसके जाननेवाले पुरुष उसकी प्रशंसा करते हैं—हम अनुमानसे पुरुषको सतोगुणमें नियत जानते हैं हे ऋषियो पुरुष को दूसरे प्रकारसे पाना संभव नहीं है ६ शान्ति, धैर्य्य, अहिंसा, समता, सत्यता, सत्यबोलना, ज्ञान, तर्क, संन्यास यह सतोगुणी रीति प्रीतिके योग्य की जाती है ७ तार्किक लोग इसी अनुमान से सतोगुण और पुरुष को एकही मानते हैं इसमें बिचार करना नहीं है ८ बुद्धिमान् तार्किक जो ज्ञान में नियत हैं क्षेत्रज्ञ आत्मा और सतोगुण की ऐक्यता कहते हैं परन्तु यह सिद्ध नहीं होता है ६ इसलिये सतोगुण आत्मासे पृथक् है तार्किक पुरुषोंने उसको नहीं विचारा उनकी पृथक्ता और ऐक्यता मुख्यता से जाननी योग्य है ( आशयार्थ ) सतोगुण और पुरुष समुद्र और समुद्र की लहरोंके समान हैं कि दोनों पृथक् विदित होते हैं जैसे कि लहरके गुप्तहोनेपर समुद्र बाक़ी रहता है उसीप्रकार मोक्ष दशामें सतोगुण नियत नहीं रहता १० इस रीतिसे सतोगुण और पुरुषके एक जात होनेपर जड़ और चैतन्यका बिभाग नहीं होता है यह शङ्का करके कहते हैं कि जैसे गूलर और उसके भीतर नियत होनेवाले भुनगों में एकता और पृ-

थक्ता भी दिखाई पड़ती है उसीप्रकार सतोगुण और पुरुष की ऐक्यता और पृथक्ता भी कही जाती है यह ज्ञानियों की युक्ति है दूसरा अर्थ जैसे कि गूलर के फलमें बाहरी बस्तुओंका प्रवेश न होने से भुनगा उसी का अङ्ग और उससे दूसरी जात है इसीप्रकार चैतन्यका बिलास सतोगुण उससे पृथक् होकर जड़-रूप से प्रकट होता है ११ जिस प्रकार जल से दूसरी मछली जलही के मध्यमें होय उसी प्रकार इन दोनों की भी ऐक्यताहै और जैसे कि कमलपत्र पर जल-कणों की स्थिति होती है उसी प्रकार उनका भी योगसम्बन्ध है अर्थात् पुरुष असङ्ग होने से सतोगुण धर्मों से लिप्त नहीं होता है उसकी लिप्तता मानीहुई है १२ गुरूजी बोले कि तब इसप्रकार शिक्षा कियेहुये संदेहमें पूर्ण उत्तम मुनियोंने लोकके पितामह ब्रह्माजी से फिर पूछा १३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांगुरुशिष्यसंवादेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८ ॥

# उनचासवां अध्याय ॥

इसप्रकार सन्दिग्धचित्त मनुष्य प्रथम शास्त्रों में तर्कणा करते हैं उसके प्रकट करनेको ऋषि बोले कि इसलोक में प्रवृत्ति निवृत्त धर्मरूप कर्मोंमेंसे कौनसा कर्म पूरे अभ्यासके योग्य माना है हम नानाप्रकारकी धर्म्मगतियों को एक दूसरेकी खण्डन करनेवाली देखते हैं १ कोई कहते हैं कि शरीरके नाशहोने के पीछेभी आत्माहीहै और कोई कहते हैं कि यह नहीं है कोई सबको संदेहयुक्त कहते हैं कोई कोई सन्देह से रहितभी कहते हैं २ कोई तार्किकआदि कहते हैं कि यह विनाशवान्है अर्थात् उत्पत्ति और नाशसे संयुक्त है कोई मीमांसक कहते हैं कि यह सब नित्यप्रवाहहै और कोई कोई शून्यवादी कहते हैं कि नहीं है और सौगत मतवाले कहते हैं कि है परन्तु एक एक क्षणमें उत्पन्न नियत और नाश होनेवाला है और योगाचार्य्य कहते हैं कि वह एकरूप विज्ञानही दो प्रकार का होगया है कोई इड़लोम मतवाले कहते हैं कि वह मिला और अनमिला है ३ जो शास्त्रज्ञ अपरोक्षज्ञानवाले ब्राह्मण हैं वह मानते हैं कि एक ब्रह्मही है और सगुण उपासक उसको पृथक् कहते हैं और परमाणुबादी कारणों की आधिक्यता वर्णन करते हैं ४ कोई ज्योतिषी दोनों देश और कालको कहते हैं और कोई जटा मृगचर्मधारी वृद्धलोग कहते हैं कि यह सब प्रत्यक्ष संसार तीनोंकाल

मेंभी नहीं है स्वप्नके राज्यकी समान केवल चिदात्माका बिलास है ५ कोई नै-ष्ठिक ब्रह्मचर्य्यको चाहते हैं कोई गृहस्थाश्रमको इच्छा करते हैं हे देवता ब्रह्म-ज्ञानी तत्त्वदर्शी ब्राह्मण इसप्रकार मानते हैं ६ कोई आहारको चाहते हैं कोई भोजनके त्यागनेमें प्रवृत्तहैं कोई कर्मकी प्रशंसा करते हैं कोई संन्यासको अच्छा कहते हैं ७ कोई दोनों देश और कालको कहते हैं कोई कहते हैं यह नहीं है कोई मोक्षकी प्रशंसा करतेहैं कोई पृथक् पृथक् प्रकारके भोगोंको श्रेष्ठ कहतेहैं ८ कोई धनोंको चाहते हैं कोई निर्द्धनताको चाहतेहैं कोई ध्यानादिक साधनोंको करके कहते हैं कि यह नहीं है अर्थात् आत्माके सिवाय सब मिथ्याहै ९ कोई हिंसाके त्यागनेवाले हैं कोई हिंसामें प्रवृत्तहैं कोई पुण्य और शुभकीर्तिमें प्रवृत्त है कोई कहते हैं कि पुण्यादिक नहीं है १० सतभावमें प्रवृत्त हैं कोई सन्देहों में नियतहैं कोई मनुष्य कहते हैं कि दुःखकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्तिके अर्थ ध्यान करना चाहिये कोई अनिच्छा कर्म्मफल को अच्छा कहते हैं ११ कोई ब्राह्मण यज्ञको अच्छा कहते हैं कोई दानकी प्रशंसा करते हैं कोई तपको कोई वेदपाठको अच्छा कहते हैं १२ कोई कहते हैं कि वह ज्ञानस्वरूप संन्यासही से प्राप्तहोताहै और बिभूतचिन्तक लोग कहते हैं कि बहुत साधन करने से ज्ञान प्राप्तहोता है कोई सबको अच्छा कहते हैं कोई उसके विपरीत हैं १३ हे श्रेष्ठ देवता इस रीतिसे धर्म में अनेक प्रकारका ज्ञान विपरीतकर्म्मता होनेपर अत्यंत अज्ञानी हमलोग निश्चयको नहीं पाते हैं यह कल्याणकार्य्यहै इसप्रकार वारं-बार लोग परस्पर विपरीत वार्त्ता करते हैं जो जिस धर्म्ममें प्रवृत्त है वह उसीको अच्छा कहताहै १४।१५ इसीहेतुसे तुमने हमारी बुद्धिको अशिक्षित वर्णनकिया और मन बहुत प्रकारका हुआ हे बड़े साधु देवता हम इसको जानना चाहते हैं कि कल्याण क्याहै १६ इसके अनन्तर जो गुप्त पदार्थ है आप उसके कहने को योग्यहैं सतोगुण और आत्माका संयोगभी किसीहेतुसे है १७ उनब्राह्मणों के ऐसे ऐसे बचनोंको सुनकर उस धर्म्मात्मा बुद्धिमान् संसारके कर्ता भगवान् ब्रह्माजीने इन सबबातोंके ठीक २ उत्तर उन ब्राह्मणोंको दिये १८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतासुगुरुशिष्यसंवादेएकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः४९॥

# पचासवां अध्याय ॥

ब्रह्माजी बोले कि हे बड़े साधुओ बहुत अच्छे प्रश्न तुमने पूछे हैं उनका उत्तर जैसे गुरूने शिष्यको पाकर कहाहै उसको मैं तुमसे कहताहूं १ यहां तुम उस सबको सुनकर अच्छी रीति से धारण करो सब जीवों की हिंसा न करना नाम कर्म कल्याणमाना है २ यह अहिंसा कर्म्म ब्रह्म से मिलानेवाला निर्भय श्रेष्ठ और धर्मरूप लक्षण रखनेवाला है मुख्यता के जाननेवाले वृद्धों ने ज्ञानको ही कल्याण रूप कहा है ३ इसी हेतु से शुद्ध ज्ञान के द्वारा सब पापों से रहित होताहै जो मनुष्य हिंसा में प्रवृत्तहैं और जो नास्तिक चलन रखनेवाले हैं और जो लोभ और मोहसे संयुक्तहैं वह सब नरकगामी हैं ४ जो निरालस्य मनुष्य सफल कर्म करते हैं वह बारंबार जन्म लेनेवाले होकर इसलोकमें आनन्द करते हैं ५ जो श्रद्धावान् पंडित अनिच्छा पूर्व्वक योगयुक्त होकर इच्छासे रहित कर्म करते हैं वह बुद्धिमान् और सदाचारी हैं ६ हे बड़ेसाधु ऋषियो इसकेपीछे सतोगुण और क्षेत्रज्ञकी ऐक्यता और पृथक्ता जैसे प्रकारकी है उसको मैं कहताहूं तुम चित्त लगाकर समझो ७ यहां यह बिषय और बिषयिक नाम संबंध कहा जाता है पुरुष सदैव बिषयी और सतोगुण बिषय है ८ पूर्वकल्पसे वर्णन किया गया है कि सदैव जड़रूप सतोगुण ऐसे अपने को भोजन रूप नहीं जानताहै जैसे कि गूलर भुनगों को अर्थात् सतोगुण गूलर के समान आपको और अपने भोजन करनेवाले को नहीं जानता है और भोक्ता पुरुष भुनगे की समान दोनोंको जानताहै जो इस प्रकार जानताहै वह क्षेत्रज्ञहै ९ सतोगुण सदैव सुख दुःखादिक रूपान्तरदशा से युक्त है और क्षेत्रज्ञ सदैव इनयोगोंसे छुटाहुआ उपाधिसे पृथक् निर्गुण और प्राचीनहै अर्थात् उनका सम्बन्ध मुख्यनहीं है कल्पित है ज्ञानियोंने इसको कहाहै १० वह क्षेत्रज्ञ अपने अधिष्ठान सतोगुण से बराबरी और एक नामता प्राप्त करनेवाला और सर्वत्र नियतहै सदैव सतोगुण को ऐसे भोगताहै जैसे कि जलसे पृथक् कमलका पत्र जलको भोगताहै ११ ज्ञानी सब गुणों से युक्त होकर भी ऐसे लिप्त नहीं होता है जैसे कि कमलपत्र पर नियत चलायमान अंबुकण उससे किंचित्‌भी लिप्त नहीं होते १२ इसीप्रकार पुरुषभी सतोगुणसे निस्सन्देह जुदारहताहै परंतु सतोगुण और पुरुष दोनों मिलकर द्रव

मात्र अर्थात् निश्चयकरके सतोगुण रूपहुये ( तात्पर्य्य ) जैसे कि रस्सी और रस्सीमें नियत सर्पकी भ्रान्ति दोनों सर्पमात्र होते हैं १३ जिस प्रकार द्रव और कर्त्ता हैं उसी प्रकार उन दोनोंका मिलाप है वह तीनों मिलकर द्रवरूप होते हैं फिर द्रवसे पुरुषका बियोग कैसे है उसको कहते हैं जैसे कि कोई बड़ा दीपक लेकर अँधेरे में जाताहै उसीप्रकार सतोगुणरूपी दीपक से ब्रह्म के चाहनेवाले चलते हैं अर्थात् सतोगुण के रूपान्तर ब्रह्मज्ञान से सतोगुण और पुरुषको पृथक् जानते हैं १४ जबतक तेल और बत्ती है तबतक दीपक प्रकाश करताहै उन तेल और बत्तीके समाप्तहोने पर दीपककी ज्योतिगुप्त होजाती है यही सतोगुणका वृत्तान्तहै १५ इस प्रकार सतोगुण प्रकट है और पुरुष गुप्तहै जो कि अभीष्टहै हे ब्राह्मणो इसको जानो अर्थात् समाप्त होनेके पीछे अथवा कर्म के नाश होने में वह सतोगुण आपविजयी होजाताहै और पुरुष समाधि सुषुप्ती और सुखका साक्षी है और तुमसे कहताहूं १६ कि दुर्बुद्धी मनुष्य हजारों दृष्टान्तों सेभी बुद्धिको नहींपाताहै और बुद्धिमान् चौथाई शिक्षासे भी सुखसे बृद्धिपाताहै १७ इसप्रकार उपायसे धर्म का पूरासाधन जानना योग्य है उपाय का ज्ञाता बुद्धिमान् पुरुष असंख्य सुखको पाताहै १८ जैसे कि मार्ग का खर्च न रखनेवाला मनुष्य किसी मार्ग में बड़े कष्टसे जाताहै और वह मार्ग के मध्य में नाशभी होजाता है १९ उसी प्रकार ज्ञान साधनकर्मों में भी जानना योग्यहै फल होताहै और नहीं होता है अर्थात् बहुत पुण्य रखनेवाला पूर्णयोगको पाताहै और थोड़ा पुण्यरखनेवाला योगसे पूर्वही मरजाताहै पुरुषका कल्याण चित्तमेंही है और शुभाशुभ कर्म दृष्टान्त रूपहैं २० जैसे कि न देखे हुये बड़े मार्ग को बिचारकिये पैरों से जाता है वैसाही योग रहितभी होताहै २१ और जिसप्रकार उसी मार्गको शीघ्रगामी और घोड़ोंसे युक्त रथकी सवारीसे जाता हैं उसीप्रकार योगीलोगोंकीभी गतिहै ( अर्थ ) शास्त्ररूपरथसे संसाररूपी मार्ग उल्लङ्घन करना योग्यहै २२ परम्पद्‌रूपी ऊंचे पर्वतपर चढ़कर रथसे दुःख पानेवाले अपूर्णयोगीको देखते शास्त्ररूपी पृथ्वी को नहीं देखते २३ जबतक रथका मार्ग्ग है तबतक वह योगी रथकी सवारी से जाताहै और रथमार्ग के न होनेपर रथको छोड़कर चलता है अत्थात् चित्तकी पवित्रतातक शास्त्रकी आज्ञापर कर्म होताहै परंतु फिर वह तत्त्वको जानता क्रम पूर्वक इन हंस और परमहंस आश्रमको अच्छी रीतिसे जानकर प्राप्तकरताहै २४

इस प्रकार योग में बुद्धिमान् तत्त्वबुद्धी को जाननेवाला योगी जाता है और अच्छेप्रकारसे जानकर एक मार्ग्गसे दूसरे उत्तम मार्गपर चलताहै २५ जैसे कि नौका न रखनेवाला मनुष्य भूलसे बड़े भयकारी समुद्रको भुजाओंसे मँझाताहै वह निस्सन्देह मृत्युको चाहता है २६ और जिसप्रकार भेदों का जाननेवाला योगी श्रेष्ठबल्ली रखनेवाली नौकाके द्वारा आनन्दसे जलमें चलताहै वह शीघ्र ही ह्रदसे पारहोताहै ( तात्पर्य्य ) रथरूपी गुरूके विना मार्ग व्यतीत नहीं होता है २७ वह पार होनेवाला ममतासे रहित योगी नौकाको छोड़कर संसारसागर के अन्त पर जाताहै रथ और पदाती का जैसा वृत्तान्त है वह प्राचीन शास्त्र से मैंने वर्णन किया २८ जैसे कि मोहसे नौकामें डूबताहै उसीप्रकार गुरूआदिककी प्रीतिसे अचेत और ममतासे आधीन होताहुआ उसी संसारसागरमें घूमता है २९ जैसे नौकापर सवारहोकर स्थलपर घूमना असम्भवहै उसीप्रकार रथपर सवारहोकर जलमें चलना नहीं होताहै तात्पर्य्य यहहै कि कर्म्माधिकारीको योग और योगाधिकारीको कर्म करना उचित नहीं ३० इसप्रकार नानाप्रकारका कर्म फल पृथक् पृथक् आश्रममें नियतहै जैसा कर्मका फलहै लोकमें वैसाही प्राप्त होताहै ३१ जो गन्ध रस रूप शब्द स्पर्श न रखनेवाला और जाननेके योग्य है मुनिलोग उसको बुद्धिसे जानते हैं और प्रधान कहते हैं ३२ उस स्थानपर प्रधान अव्यक्तहै अव्यक्तका अव्यक्तसे उत्पन्न महत्तत्त्वहै और प्रधानरूप महत्तत्त्व से उत्पन्न अहङ्कारहै ३३ अहङ्कारसे पञ्चतत्त्वके शब्दादिक विषय प्रकटहुये वही विषय पञ्चतत्त्वोंके पृथक् पृथक् गुण कहेजाते हैं ३४ उसीप्रकार अव्यक्त उत्पाद्य उत्पादकरूपहै ३५ महत्तत्त्वभी उत्पादक उत्पाद्यरूपहै अहङ्कारभी उत्पादक और बारम्बार उत्पाद्यरूपहै यह हमने सुनाहै ३६ पञ्चतत्त्वभी उत्पादक उत्पाद्यरूप हैं पञ्चतत्त्वों के शब्दादिक गुण उत्पादकरूप और उत्पाद्यरूपभी होते हैं उन्होंके भेदोंका कारण चित्तहै ३७ उनमें आकाश एकगुण रखनेवाला वायु दो गुण रखनेवाला कहाजाताहै अग्नि तीन गुण रखनेवाला और जल चारगुण रखने वालाहै ३८ स्थावर जङ्गमजीवोंसे पूर्ण सबजीवोंकी उत्पन्न करनेवाली शुभाशुभ कर्म फलकी दिखानेवाली देवी पृथ्वीको पांचगुण रखनेवाली जानना चाहिये ३९ हे बड़े साधु ऋषियो शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह पांचगुण पृथ्वीके जानने योग्यहैं ४० पृथ्वीका मुख्य गुण गन्धहै वह बहुत प्रकारका कहा उस गन्ध

के बहुतसे गुणों को ब्योरे समेत कहताहूं ४१ इष्ट[1], अनिष्ट[2], मधुर[3], अम्ल[4], कटु[5] निर्हारी[6], संहत[7], स्निग्ध[8], रूक्ष[9], विशद[10] इसप्रकार पृथ्वीकी गन्धको दशप्रकारका जानना चाहिये शब्द स्पर्श रूप रस यह जलके गुणहैं ४२।४३ अब रस ज्ञान को कहताहूं वह रस बहुत प्रकारका कहा है मधुर, अम्ल, कटु, तीक्ष्ण, कषैला नमकीन ४४ इसप्रकार से जलका रसगुण छः प्रकार का है शब्द स्पर्श और रूप यह तीनगुण रखनेवाला अग्नि कहाजाता है ४५ अग्निका मुख्यगुण रूप है वह रूप बहुत प्रकार का कहा है श्वेत, कृष्ण, रक्त, नीला, पीला, अरुण ४६ ह्रस्व, दीर्घ, कृश, स्थूल, चतुरस्र, वृत्तसम इसप्रकार अग्निका रूप बारह प्रकार का कहाताहै ४७ धर्मज्ञ सत्यवक्ता वृद्धब्राह्मणोंसे जाननेके योग्यहै शब्द स्पर्श जानने चाहियें क्योंकि वायुभी दो गुण रखनेवाला है ४८ वायुका मुख्य गुण स्पर्श है वह स्पर्श अनेक प्रकारकाहै रूखा, शीतोष्ण, स्निग्ध, विशद ४९ कठोर, चिकण, श्लक्ष्ण, पिच्छल, दारुण, मृदु इसप्रकार वायुका गुण बारह प्रकार का कहाताहै ५० धर्मज्ञ तत्त्वदर्शी सिद्धब्राह्मणोंसे बुद्धिके अनुसार जानागया ५१ उनमें आकाश एकगुण रखनेवाला है उसको शब्द कहते हैं उस शब्द के बहुत गुणों को ब्योरे समेत कहताहूं ५२ षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम निषाद, धैवत, इष्ट, अनिष्ट, संहतनाम प्रकार रखनेवाला जाननेके योग्यहै ५३ इसप्रकार आकाशसे प्रकट शब्द दशप्रकारका जानना योग्यहै आकाश उत्तम तत्त्व है उससे श्रेष्ठ अहङ्कार है अहङ्कारसे उत्तम बुद्धिहै बुद्धिसे श्रेष्ठ महत्तत्त्व है उससे श्रेष्ठ अव्यक्तहै अव्यक्तसे श्रेष्ठतम पुरुषहै ५४। ५५ जो ज्ञानी भूतोंके परापर का ज्ञाताहै सबकर्म्मोंकी रीतोंका जाननेवाला और सृष्टिभरेका आत्मारूप है वह न्यूनतासे रहित आत्माको प्राप्तहोताहै ५६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिब्राह्मणगीतायांगुरुशिष्यसंवादेपंचाशत्तमोऽध्यायः ५० ॥

## इक्यावनवां अध्याय ॥

ब्रह्माजी बोले कि जिसप्रकार मन पञ्चभूतोंका ईश्वर है और उत्पत्ति वा नाशमें भी मनही जीवधारियों का ऐसे स्वरूप है जिसप्रकार कुण्डलादिकका

---

१ प्रिय २ अप्रिय ३ मीठा ४ आंबिल ५ करुआ ६ हिंग्वादिक ७ चित्रगन्ध ८ चिकना ९ रूखा १० उज्ज्वल ॥

सुवर्ण स्वरूप है १ उसीप्रकार वह मन सदैव बड़े भूतोंकाभी निमित्त कारण है व्यक्तसे उत्पन्न बुद्धि मनका ऐश्वर्य्य कहीजाती है वही मन जीवात्मा कहाता है २ मनही इन्द्रियों को शरीररूपी रथ में ऐसे जोड़ताहै जैसे कि सारथी उत्तम घोड़ोंको जोड़ताहै—और इन्द्रिय मन और बुद्धि सदैव क्षेत्रज्ञमें मिलजाते हैं ३ इन्द्रियनाम घोड़ोंसे युक्त बुद्धिरूप सारथीसे पकड़ाहुआ जो रथ है उसपर शरीराभिमानी जीवात्मा चढ़कर सुखकी इच्छासे चारोंओरको दौड़ताहै(तात्पर्य)जो इन्द्रिय मन और बुद्धिसे बहिर्मुखहैं वह आत्माको जीवनाम से प्रसिद्ध करती हैं और जो अन्तर्मुखहैं वह उसके ब्रह्मभावको प्रकट करते हैं अगले श्लोकमें देखो ४ इन्द्रियरूप घोड़े मनरूप सारथी बुद्धिरूपी चाबुकसे संयुक्त वड़ारथ ब्रह्मरूपहै ५ इसरीतिसे जो योगी सदैव ब्रह्मरूप रथको जानताहै वह ध्यानका अभ्यासी सब सृष्टिमें मोहको नहींपाताहै ६ अव्यक्तसे लेकर शब्दादिक विषयतक और जड़ चैतन्यजीवभी जिसका स्वरूपहै और जिसमें सूर्य्य और चन्द्रमाकी किरणों से दीखताहै और ग्रह नक्षत्रादिसे शोभायमानहै ७ नदी और पर्वतोंके जालों से सबओरको अलंकृत है उसीप्रकार नानाप्रकारका होकर नानाप्रकारके जलों से सदैव अलंकृतहै ८ सबजीवोंके जीवनका कारण और सब प्राणीमात्रोंकी गति है यह प्राचीन ब्रह्म वन कहाताहै उसमें क्षेत्रज्ञ आत्मा बिचरताहै ९ इस लोक में जो स्थावरजङ्गमजीव हैं वह प्रथम लय होते हैं उसके पीछे शब्दादिकगुण लय होते हैं उन गुणोंके पीछे सूक्ष्म महाभूत लय होजाते हैं यह स्थूल सूक्ष्म शरीर रूप दोनों प्रकारके महाभूतोंका लय होकर चिन्मात्ररूप से नियत होता है १० देवता मनुष्य गन्धर्व्व पिशाच अप्सरा राक्षस यह सब स्वभावसे उत्पन्न हुये हैं यज्ञादिकों से और न ब्रह्मादिक सृष्टिकर्ताओं से हुये हैं ११ हे ब्राह्मणो यह सृष्टि का कर्त्ता और मरीच्यादिक ऋषि बारम्बार प्रकट होते हैं वह सब भूत उनहीं पांचोतत्त्वों में नियत समयपर ऐसे लय होजाते हैं जैसे कि समुद्र में तरङ्ग लय होजाती हैं १२ इन सृष्टिकर्ता स्थूल महाभूतोंसे श्रेष्ठ सूक्ष्म महाभूतहैं योगी उन सूक्ष्म महाभूतोंसे छुटेहुयेभी परमगतिको पाते हैं १३ प्रभु ब्रह्माने इस सबको संकल्प रूप मनसेही उत्पन्न किया है उसीप्रकार ऋषियों ने वेदोंको मन इन्द्रियोंका एकत्र होनारूप तपसे ही प्राप्त किया १४ उसीप्रकार फल खानेवाले सिद्ध और संकल्पक्रमद्वारा समाधियुक्त ऋषि तपके द्वारा तीनों लोकोंको देखते हैं १५ औ-

षधी नीरोगता आदिक अनेकप्रकारकी सब विद्या तपसेही सिद्ध होती हैं साधन का मूल तपहै १६ जो दुष्प्राप्य इन्द्रादिकपद हैं और जो वेदादिकहैं जो दुराधर्ष अग्निआदिकहैं और जो महाप्रलयादिकहैं वह सब तपसेही सिद्ध होते हैं तप बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है १७ मद्यपान करनेवाला ब्राह्मण का मारने वाला चोर भ्रूणहत्या करनेवाला गुरु की स्त्री से भोग करनेवाला यह सब अच्छे तपेहुये तपसेही उस पाप से छूटते हैं १८ मनुष्य पितर देवता पशुमृगपक्षी और जो अन्यस्थावर जंगम जीव हैं १९ वह सदैव तपकोही श्रेष्ठ माननेवाले हैं और तपसेही सदैव सिद्ध होते हैं उसीप्रकार बड़ी मायावाले देवता तपके द्वारा स्वर्गको गये २० आलस्य से रहित अहंकार युक्त मनुष्य अपनी इच्छासे कर्म्मोंको करते हैं वह प्रजापति के लोकमें जाते हैं २१ ममता और अहंकार से रहित महात्मा लोग शुद्धध्यान के द्वारा महत्तत्त्व योग से संबन्ध रखनेवाले उत्तम लोकको प्राप्त करते हैं २२ सदैव शुद्ध मन बुद्धिवाले पूर्ण योगी मनुष्य ध्यानयोग को प्राप्त करके उस अखंड आनन्द स्वरूप निराकार ब्रह्ममें प्रवेश करते हैं जिससे सब संसार के सुखों की वृद्धिहै २३ ममता और अहंकार से जुदे मनुष्य पूर्ण ध्यानयोग को न पाकर उस अव्यक्त में अर्थात् प्रकृति माया में प्रवेश करते हैं जोकि महत्तत्त्वादिक तत्त्वों का श्रेष्ठ लोकहै २४ जो अव्यक्त सेही प्रकट हुआ था फिर अव्यक्त रूपको पाया तमोगुण रजोगुण से छूटा सब पापोंसे जुदा मनुष्य शुद्ध सतोगुण में नियतहोकर सबको उत्पन्न करताहै उसको ईश्वरजाने जो उसको जानताहै वह वेदका जाननेवाला है २५ । २६ मनके द्वारा ज्ञानको पाकर सावधान मुनि होताहै जो चित्तहै उसीका रूपहोताहै अर्थात् जिस रूपका ध्यानकरताहै वही होताहै वह शिर प्राचीन और गुप्तहै २७ अव्यक्त से लेकर शब्दादिक तक अविद्याका चिह्न कहा उसी प्रकार गुणों से इस लक्षणको जानो २८ दो अक्षर मृत्युहोते हैं और तीन अक्षर अविनाशी ब्रह्महैं मम अर्थात् मेरा है यह मृत्युहै और न मम अर्थात् मेरा नहीं यह सनातन ब्रह्महै २९ कोई निर्बुद्धी मनुष्य कर्म की प्रशंसा करते हैं जो महात्मा वृद्ध हैं वह कर्मकी प्रशंसा नहीं करते ३० कर्महीं से अर्थात् पञ्चतत्त्व दशों इन्द्रियां और मन इन सोलह वस्तुओं का रखनेवाला शरीर है उसका धारण करनेवाला जीव उत्पन्न होताहै परन्तु ब्रह्मविद्या उससोलह अंगरखनेवाले पुरुषको निगल जाती है वह विद्या उनकी

स्वीकृत हैं जो कि देवता आदिक से शेष बचेहुये अमृतको भोजन पानकरने वाले हैं २१ इसलिये जो कोई दूरदर्शी हैं वह कर्मों में प्रीतिनहीं करते यह पुरुष बिद्यारूपहै कर्म रूप नहीं कहाजाताहै २२ जो इस प्रकार उस बंधनसे जुदा अबिनाशी प्राचीन सदैव रहनेवाले असंग आत्माको जानताहै वह चित्तका जीतने वाला ज्ञानी सदैव जीवन्मुक्त होताहै २३ जो इसप्रकार इस अनुपम अकल्पित प्राचीन अजित बन्धनसे रहित ईश्वर कोभी अपने में लयकरनेवाले परमात्मा को जाने वह उन आगे लिखे हुये कारणों के बन्धनसे रहित अबिनाशी और अचेष्ट होताहै २४ वह मैत्री आदिक सब संस्कारों को दृढ़ करके चित्तको हृदय कमलमें रोककर उस शुभब्रह्म को पाताहै जिससे श्रेष्ठ और वृद्ध कोई वर्त्तमान नहींहै २५ चित्त शुद्धी में शान्ति प्राप्तकरे चित्तकी शुद्धी का चिह्न उस प्रकार का है जैसे कि स्वप्नका देखना होता है (तात्पर्य्य) जैसे कि स्वप्न में शरीर के स्नेह से जुदा होकर निवास है उसीप्रकार जब चित्तयोग्य युक्तिके द्वारा बाहिरी बस्तुओं से रहित अन्तरचारी होता है वह शुद्धता का चिह्न है २६ यह चित्त शुद्धी मुक्त पुरुषों की गति है जो ज्ञानमें निपुण और पूर्ण हैं वह उन भूतभविष्य बर्तमान इन तीनों कालकी बस्तुओंको देखतेहैं जो कि रूपान्तर दशासे उत्पन्न हैं २७ बिरक्त पुरुषों की यह गतिहै यह सनातन धर्म है यह मिलना ब्रह्मज्ञानियोंका है यह रीति निर्दोषहै २८ जो सब जीवों में एकसा भाव रखनेवाला अनिच्छावान् मनोभिलषित को न चाहनेवाला और सर्वत्र समदर्शी है उसको इसगतिका प्राप्तहोना संभवहै २९ हे बड़े साधु ब्रह्मऋषियो मैंने यह सब तुमसे कहा इसपर शीघ्र ध्यानकरो इसीसे सिद्धिको पाओगे ४० गुरूने कहा ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहेहुये उन महात्मा मुनियों ने उसीप्रकार से कर्म किया और उसी से ब्रह्मलोकको पाया ४१ हे पवित्रात्मा भाग्य शील शिष्य तुमभी मुझ से कहे हुये इस ब्रह्माजीके बचनको अच्छी रीतिसे काममें लाओ इसीसे अवश्य सिद्धिको पाओगे ४२ बासुदेवजी बोले कि हे कुन्ती के पुत्र तब गुरूसे इसप्रकार शिक्षापायेहुये उस शिष्यने सब उत्तमधर्मोंका अभ्यास किया उससे उसने मोक्ष को पाया ४३ हे अर्जुन तब उस कृतकृत्य शिष्यने उस लयके स्थान ब्रह्मको प्राप्त किया जिसमें प्राप्त होकर फिर नहीं शोच करताहै ४४ अर्जुनने कहा हे दुष्टसंहारी श्रीकृष्णजी यह ब्राह्मण कौनहै और शिष्य कौनहै हेप्रभु जो यहबात मेरे

श्रवण करनेके योग्यहै तो आप उसको मुझसे कहिये ४५ वासुदेवजी बोले हे महाबाहु अर्जुन क्षेत्रज्ञ होकर मैंहीं गुरूहूं और मेरेही मनको शिष्य जानो मैंने तेरी प्रीतिसे इस गुप्त रहस्यको वर्णन किया ४६ हे सुन्दरव्रतवाले अर्ज्जुन जो सदैव तेरी प्रीति मुझमें है तब तुम इस ब्रह्मज्ञानको सुनकर अच्छी रीतिसे अभ्यासकरो अर्थात् यम नियमोंपर प्रवृत्त होजाओ ४७ हे शत्रुविजयी फिर तुम इस धर्मके अच्छेप्रकार अभ्यास करनेपर सब पापोंसे मुक्तहोकर कैवल्यमोक्षको पाओगे ४८ प्रथम युद्ध के वर्त्तमान होनेके समयपरभी मैंने यही ज्ञान तुझसे कहाथा हे महाबाहु इसीहेतुसे इसमें चित्तको लगाओ ४९ हे भरतर्षभ अर्ज्जुन मैंने बहुत समयसे अपने प्रभु पिताको नहीं देखाहै मैं तेरे सम्मतसे उनको देखना चाहताहूं ५० वैशम्पायन बोले कि इस वचनके कहनेवाले श्रीकृष्णजीको अर्ज्जुनने उत्तर दिया कि हे श्रीकृष्णजी हम अबहीं हस्तिनापुरको चलेंगे ५१ वहां धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर से मिलकर और पूंछकर आप अपनी पुरीमें जाने के योग्यहो ५२ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिअनुगीतासुगुरुशिष्यसंवादेएकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५१ ॥

इतिब्राह्मणगीतासमाप्तम् शुभम्भूयात् ॥

## बाबनवाँ अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले इसके पीछे श्रीकृष्णजीने दारुक सारथीको आज्ञाकरी कि रथ तैयारकरो तब दारुकने दोही घड़ीमें प्रार्थना करी कि रथ तैयार है १ इसीप्रकार पाण्डव अर्जुनने सेनाको आज्ञाकरी कि तैयारहो हम हस्तिनापुरको जायँगे २ हे राजा इसप्रकारसे आज्ञाको पाकर वह सेनाके लोग सब तैयार होगये और बड़े तेजस्वी अर्जुनसे विनय करी कि सेना तैयारहै ३ हे राजा इसके अनन्तर वह प्रसन्नचित्त श्रीकृष्ण और अर्जुन रथमें सवार होकर अपूर्व वार्तालाप करतेहुये चले ४ हे भरतर्षभ महातेजस्वी अर्जुनने इन सवारहुये वासुदेवजी से फिर यह वचन कहा ५ हे श्रीकृष्णजी राजा युधिष्ठिरने आपकी कृपासे विजय पाई शत्रु भी मारेगये अब यह राज्य निष्कण्टक प्राप्तहुआ ६ हे मधुसूदनजी पाण्डव आपसेही सनाथ हैं नौकारूपी आपको पाकर कुरुरूपी सागरसे पारहो गये ७ हे संसार के कर्त्ता जगदात्मा विश्वरूप तुमको नमस्कार है जिसप्रकार

आप सवके अङ्गीकृतहो उसीप्रकार मैंभी आपको जानताहूं ८ हे प्रभु मधुसूदन जी यह जीवात्मा सदैव आपके तेजसे प्रकटहै आपकी उत्पत्ति क्रीड़ा निवास नाशरूपहै और दोनों संसार आपकी मायामें हैं ९ जो यह स्थावर जंगमनाम संसारहै वह सव आपके रूपहैं तुमहीं चारोंप्रकार के सव जीव समूहों को उत्पन्न करतेहो १० हे मधुसूदन तुम पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्गको उत्पन्न करतेहो निर्मल चांदनी आपका ईषद्धास्यहै और सवऋतु इन्द्रियांहैं ११ सदैव चलनेवाला वायु आपका प्राण है और आपका क्रोधही प्राचीन मृत्यु है और प्रसन्नता में लक्ष्मी है हे महाज्ञानी वह लक्ष्मी सदैव आप के पास है १२ हे निष्पाप प्रीति आदिक रति सन्तोषादिक तुष्टि धैर्यादिक धृति क्षमा क्षान्ति ज्ञान स्मरणादिक मति इन्द्रियोंका जीतनाआदिक शान्ति और तुमहीं स्थावर और जंगमहो अर्थात् आपकेही तेजसे प्रकट हैं और युगों के अन्तमें तुमहीं नाश कियेजाते हो अर्थात् उनको अपने रूपमें लय करतेहो १३ आपके गुण चिरकालमेंभी मुझसे कहने असम्भवहैं तुमहीं आत्माहो परमात्माहो हे कमललोचन तुमको नमस्कार १४ हे अजेय आप नारद, देवल, व्यास और भीष्मजीके कहनेसे मुझको विदितहुये १५ सव भूत तुमहीं में प्रविष्ट हैं अकेले तुमहीं सवके ईश्वरहो हे पापों से रहित तुमने अनुग्रहसे युक्त जो यह ज्ञान वर्णन किया १६ हे जनार्दनजी मैं इस सवको अच्छी रीति से अभ्यास करूंगा तुमने हमारे प्रिय करने की इच्छा से यह अत्यन्त अपूर्वकर्म किया १७ जो युद्धमें वह पापी कौरव दुर्योधन मारा गया मैंने तुमसे भस्मकरी हुई वह सेना युद्धमें विजय करी १८ दुर्योधनके युद्ध में आपने वह कर्मकिया जिससे बुद्धिके द्वारा आपके वलसे मैंने विजय पाई १९ आपनेही कर्ण पापी जयद्रथ और भूरिश्रवाके मारनेका उपाय वतलाया २० हे देवकीनन्दन तुझ प्रीतिमान् ने जो मुझसे कहाहै मैं उसको अवश्य करूंगा इसमें मुझको किसी वातका विचार नहीं करनाहै २१ हे धर्मज्ञ निष्पाप मैं धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर को पाकर आपके द्वारका जानेके विषय में प्रार्थना करूंगा २२ हे प्रभु जनार्द्दनजी यह आपका द्वारका का जाना मुझको स्वीकार है आप मेरे मामाजीको शीघ्र देखोगे २३ अजेय वलदेवजीको और उत्तम वृष्णियों को देखोगे इस प्रकारकी वार्त्ता करनेवाले वह दोनों रथमें वैठेहुये हस्तिनापुर पहुंचे २४ और उसी प्रकार से वह दोनों उस नगर में घुसे जोकि अत्यन्त प्र-

सन्न लोगोंसे परिपूर्ण था हे महाराज उन दोनोंने प्रथम इन्द्रभवन के समान धृ-
तराष्ट्र के महल में जाकर २५ राजा धृतराष्ट्र को देखा बड़े बुद्धिमान् बिदुर
राजा युधिष्ठिर २६ अजेय भीमसेन पांडव नकुल सहदेव बैठेहुये धृतराष्ट्र अजेय
युयुत्सु २७ बड़ी बुद्धिमान् गान्धारी कुन्ती तेजस्विनी द्रौपदी और सुभद्रा आ-
दिक उनसब भरतबंशियों की स्त्रियोंको २८ और गान्धारी की दासी स्त्रियोंको
देखा तदनन्तर उन शत्रुबिजयी श्रीकृष्ण और अर्जुन ने राजाधृतराष्ट्र के पा-
सजाकर २९ अपने नामकहकर उसके दोनों चरणोंको पकड़ा दोनों महात्मा-
ओंने गान्धारी कुन्ती धर्मराज युधिष्ठिर ३० और भीमसेन के चरणोंको स्पर्श
किया और बिदुरजी से भी मिलकर कुशल क्षेम पूछी ३१ फिर उन सब समेत
दोनोंने राजाधृतराष्ट्र के पासही अपनी बर्त्तमानता रक्खी इसके पीछे महाराज
बुद्धिमान् युधिष्ठिरने रात्रिके समय उन पांडव ३२ और श्रीकृष्णको निवास स्था-
नपर जानेको बिदाकिया राजाकी आज्ञापाकर वहसब अपने २ निवास स्थानों
को गये ३३ पराक्रमी श्रीकृष्णजी अर्जुन के घरगये वहां न्यायके अनुसार पू-
जित सब अभीष्ट बस्तुओं से तृप्त ३४ बुद्धिमान् श्रीकृष्णजी अर्जुन समेत सोये
प्रातःकाल सन्ध्या आदिक कर्म दिनके प्रथम भागमें करके ३५ पोशाक आदिक
से अलंकृत वह दोनों धर्मराज के भवनमें गये जिसमें कि बड़ेबली धर्मराज अ-
पने मन्त्रियों समेत बैठेथे ३६ उन दोनों महात्माओं ने उस अत्यन्त अलंकृत
भवनमें प्रवेशकरके धर्मराज को ऐसे देखा जैसे कि अश्विनीकुमार देवराजको
देखते हैं ३७ वह श्रीकृष्ण और अर्जुन राजाको पाकर उसकी प्रीति पूर्व्वक आ-
ज्ञाको पाकर आसनों पर बैठगये ३८ फिर उस वक्ताओंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् महा-
राज युधिष्ठिर ने उनदोनों को बार्त्तालाप करने का अभिलाषी देखकर यह बचन
कहा कि तुमदोनों यादव और पांडवको मैं बार्त्तालाप करने का अभिलाषी मा-
नताहूं कहो मैं तुम्हारे सब प्रयोजनों को शीघ्रता से करूंगा बिचार न करो रा-
जाकी इस प्रकार की आज्ञापाकर बार्त्तालाप करने में चतुर अर्जुन ने बड़ी न-
म्रताके साथ समीप आकर धर्म्मराजसे बचन कहा ३९ । ४० । ४१ कि हे राजा
यह प्रतापवान् वासुदेवजी बहुत काल तक यहां स्थितरहे अब आपकी आज्ञा
लेकर अपने पिताको देखना चाहतेहैं ४२ जो आपआज्ञादें तो वह आपकी आ-
ज्ञानुसार द्वारका पुरीको जायँ उनको आप आज्ञादेने को योग्यहो ४३ युधि-

ष्ठिर बोले हे कमललोचन प्रभु मधुसूदनजी आपका कल्याणहोय अबतुम अपने पिताके देखने को द्वारकापुरी अवश्यजाओ ४४ हे महाबाहु केशवजी आपका जाना मुझको स्वीकारहै तुमने मेरे मामा और देवीदेवकी को बहुतकालसे नहीं देखा ४५ हे बड़ाई देनेवाले बुद्धिमान् तुम जाकर मेरे मामा और बलदेवजीसे मिलकर मेरे बचन से उनका यथोचित पूजनकरना ४६ हे महाभाग प्रशंसनीय तुम सदैव पराक्रमियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन अर्जुन नकुल सहदेव और मुझको भी सदैव स्मरण रखना ४७ हे निष्पाप महाबाहु तुम आनर्त्त देशियों को और वृष्णिबंशियों को देखकर फिर मेरे अश्वमेध यज्ञमें आवो ४८ हे यादवजी आप नाना प्रकार के रत्न और धनोंको और अन्य २ अपनी अभीष्ट बस्तुओं को भी लेकर मामाको देखो ४९ हे बीर केशवजी आपकीही कृपा से यह संपूर्ण पृथ्वी हमको प्राप्त हुई है और शत्रु भी मारे गये ५० इसरीतिसे कौरव धर्मराज युधिष्ठिर के कहने पर पुरुषोत्तम वासुदेवजी ने यह वचन कहा ५१ हे महाबाहु अब रत्न सिद्धि धन और सम्पूर्ण पृथ्वी आपहीकीहै हे महाराज मेरे घरमें जो कोई प्रकारका भी धन है उसके तुमहीं सदैव स्वामीहो ५२ तब बहुत श्रेष्ठहै इसप्रकार धर्मपुत्रसे कहेहुये और आशीर्बाद पायेहुये पराक्रमी श्रीकृष्णजीने विधिपूर्व्वक अपनी फूफी को दण्डवत्करी फिर फूफी से आशीर्बाद पायेहुये श्रीकृष्णजीने उनकी परिक्रमाकरी ५३ इसकेपीछे उससे अच्छेप्रकार आशीर्बाद पाकर और विदुरादिक सब कौरवोंसे बिदाहोकर चतुर्भुज श्रीकृष्णजी आप दिव्यरथकी सवारीपर चढ़कर हस्तिनापुर से बाहर निकले ५४ महाबाहु श्रीकृष्णजी युधिष्ठिर और फूफीकी सलाह से अपनी बहिन सुभद्रा को रथमें बैठाकर राज्य के कार्य्य कर्त्ताओं से घिरेहुये नगरसे बाहरनिकले ५५ बानर ध्वजाधारी अर्जुन सात्यकी नकुल सहदेव और बड़ेभारी बुद्धिमान् गजराजके समान पराक्रमी भीमसेन यह सब उन श्रीकृष्णजी के पीछे चले ५६ इसके पीछे पराक्रमी श्रीकृष्णजीने उन सब पांडव और पराक्रमी बिदुरको लौटाकर शीघ्रही दारुक सारथी और सात्यकीसे कहा कि घोड़ोंको चलायमान करो ५७ इसके पीछे शत्रुसमूहों के मारने वाले श्रीकृष्णजी जिनके पीछे सात्यकीथा द्वारकापुरी को ऐसे गये जैसे कि शत्रुओंके समूहोंको मारकर इन्द्र स्वर्गको जाता है ५८ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणि श्रीकृष्णप्रयाणेद्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ५२ ॥

# तिरपनवां अध्याय ॥

विश्वरूप दर्शन विद्याका फलहै गुरुकी सेवा विद्याका साधनहै इस बातके प्रकट करनेको वैशम्पायन बोले कि शत्रुविजयी भरतर्षभ पाण्डव इसप्रकार से जानेवाले श्रीकृष्णजीसे स्नेहपूर्वक मिलकर सब साथियों समेत लौटे १ अर्जुन वारम्बार श्रीकृष्णजीसे मिला और अपनी दृष्टिके अन्ततक उसने उनको देखा२ तदनन्तर अर्ज्जुनने गोविन्दजी में लगीहुई और उनमें प्रविष्टहुई उस अपनी दृष्टिको बड़े दुःखसे लौटाया और अजेय श्रीकृष्णजीने भी इसीप्रकार किया३ उस महात्माके चलेजानेमें जो बहुतसे अपूर्व अद्भुतरूपके चमत्कारहुये उनको मुझसे सुनो ४ कि वायु रथके आगे आगे मार्गको कङ्कड़ धूलिसे रहित विना कण्टक करताहुआ बड़ी तीव्रतासे चला ५ इन्द्रनेभी पवित्र सुगन्धित जल और दिव्य फूलोंको शार्ङ्गधनुर्द्धारी के आगे वरसाया ६ वह महाबाहु रेतलेस्थानकी समान भूमिवाले मार्गमें चले फिर मुनियोंमें श्रेष्ठ बड़े तेजस्वी उत्तङ्क ऋषिको देखा ७ उस कमललोचन तेजस्वी श्रीकृष्णजी ने मुनिको दण्डवत् करके उनसे आशीर्व्वाद लिया और आशिषयुक्तने उनके कुशल क्षेम के समाचार पूछे ८ उससे कुशल क्षेम पूछेहुये उन ब्राह्मणोत्तम उत्तङ्कने उस लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण को पूजकर यह पूछा ९ कि हे श्रीकृष्ण तुमने कौरवोंके और पाण्डवोंके स्थान पर जाकर जैसे उनके भाईपनेकी प्रीतिको दृढ़ किया वह सब मुझसे कहने के योग्यहो १० हे वृष्णियोंमें श्रेष्ठ तुम अपने प्यारे नातेदार वीरोंको सदैव सन्धि में नियत करके लौटकर आये हो ११ हे परन्तप पांचों पाण्डव और धृतराष्ट्रके सवपुत्र तेरे साथ लोकोंमें विहार करेंगे १२ हे केशव तुझ नाथके द्वारा कौरवों के शान्तरूप होनेपर राजालोग अपने देशों में सुखको पावेंगे १३ हे तात जो मेरा विचार सदैव तेरे रूपमेंथा वह तुमने भरतवंशियोंके ऊपर सफल किया१४ श्रीभगवान् बोले मैंने पहले कौरवोंकी सन्धिमें विचारपूर्व्वक उपाय किया जब वह सन्धिमें नियत न होसके १५ फिर उन सबने पुत्र और बान्धवों समेत मृत्यु को पाया बुद्धि और पराक्रम के द्वारा प्रारब्ध उल्लंघन नहीं होसक्ता १६ हे निष्पाप महर्षि फिर यह सब तुमको विदित है कि उन्होंने भीष्म विदुर और मेरे भी कहने को स्वीकार नहीं किया १७ इसी हेतु से वह परस्पर सम्मुख होकर य-

मलोकको गये पांचों पाण्डव जिनके कि शत्रु और पुत्र मारेगये वही शेष रह गये १८ सब धृतराष्ट्र के पुत्र अपने पुत्र और बान्धवों समेत मारेगये श्रीकृष्ण के इस वचन के कहने पर अत्यन्त क्रोधयुक्त और क्रोध से विस्तीर्ण नेत्र उत्तंकने उनसे यह वचन कहा १९ हे श्रीकृष्णजी जिसहेतुसे कि तुझ समर्थ ने अपने प्यारे नातेदार कौरवों में श्रेष्ठ लोगों की रक्षानहीं करी इस हेतुसे मैं तुम को शापदूंगा २० हे मधुसूदन जिस निमित्त तुमने हठ और जबरदस्ती से उनको धिक्कार देकर निषेध नहीं किया उसहेतुसे क्रोधमें भराहुआ मैं तुमको शापदूंगा २१ हे लक्ष्मीपति तुझछलयुक्त कर्मवाले समर्थसे त्यागे हुये वह कौरवोत्तम अत्यन्त नाश होगये २२ वासुदेवजी बोले हे भृगुनन्दन इसको आपमूल समेत मुझसे सुनिये और अनुनयकोभी स्वीकार कीजिये हे भार्गव आपतपस्वी हो २३ अब मुझसे उस ब्रह्मज्ञान को सुनकर शापको त्यागकरोगे मनुष्य थोड़े तपसे मेरे विजयकरने को समर्थ नहीं है २४ हे तपस्वियों में श्रेष्ठ मैं तेरे तपका बिनाशनहीं चाहताहूं क्योंकि तेरातप बड़ा प्रकाशित है तुमने गुरुलोगों को भी प्रसन्न किया २५ हे ब्राह्मणोत्तम तेराब्रह्मचर्य्य मैं लड़कपनकी दशा से जानताहूं इसलिये दुःख से प्राप्त होनेवाले तेरेतपका नाशनहीं चाहताहूं २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिउत्तंकोपाख्यानेत्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ५३ ॥

## चौवनवां अध्याय ॥

उत्तंकने कहा हे दुष्टोंके पीड़ादेने वाले केशव तुम निर्दोष ब्रह्मविद्याको मूल समेत कहो उसको सुनकर तुमको आशीर्वाद दूंगा अथवा शापदूंगा १ वासुदेवजी बोले हे ब्राह्मण तमोगुण रजोगुण और सतोगुण नाम इन तीनोंको मुझीमें आश्रय भूत जानो और इसी प्रकार ग्यारह रुद्र और अष्टवसुओं को भी मुझसे ही प्रकट जानो २ सब जीवधारी मेरे रूपमें नियतहैं और मैंभी सब जीवों में नियत हूं इसमें तुम किसी बात का सन्देह न जानो ३ हे ब्राह्मण इसी प्रकार सब दैत्य यक्ष गन्धर्व राक्षस नाग और अप्सराओं के समूहों को भी मुझसे प्रकट जानो ४ और जिसको अव्यक्त अक्षर सत् व्यक्त क्षर और असत् कहाहै यह सबभी मेरेही स्वरूप हैं ५ हे मुनि आश्रमों में जो चारप्रकारके धर्म जानेगये उनको और सब वेदोक्त कर्मोंको मेरारूप जानो ६ जो शशविषाण के समान

असत् और घटादिके समान सदसत्से परे अव्यक्त है वह तीनों मुझ देवताओं के देवता सनातनसे पृथक् प्रकटनहीं हैं ७ हे भार्गव तुम उनसब वेदोंका जिनका आदिप्रणवहै उनको भी मुझी से जानो यज्ञ में यज्ञस्तंभ सोम, चरु, होम देवताओंकी तृप्ति यह सब भी मुझीको जानो ८ हे भृगुनन्दन होता और हव्य भी मुझीको जानो अध्वर्यु कल्पक और अच्छा संस्कृत हव्यभी मैंहींहूं ९ उद्गाताभी बड़े यज्ञ में गीतों के शब्दोंसे मेरीही प्रशंसा करताहै हे ब्राह्मणवर्य्य जो मंगलवाचक शांति हैं वह प्रायश्चित्तों में १० सदैव मुझसृष्टिके कर्त्ताको स्तुति करते हैं हे श्रेष्ठ ब्राह्मण धर्मपुत्र नाम प्रथम सृष्टिको भी मुझेही जानो ११ हे ब्राह्मण जोकि संकल्पसे उत्पन्न प्यारा और सब जीवोंका कृपारूपहै उस धर्म में नियत और अनियत मनुष्यों के कारण से १२ रक्षा और धर्मकी स्थिति के अर्थ बहुत से अवतार धारण करताहूं १३ हे भार्गव मैं तीनोंलोकों के मध्यमें उन २ रूप और वेशसे प्रकट होताहूं मैंहीं बिष्णुहूं मैंहीं ब्रह्माहूं इन्द्रहूं और उत्पत्ति प्रलयका कारणहूं १४ मैं अबिनाशी सबजीव समूहोंका कर्त्ताहूं और अधर्म में प्रवृत्त होनेवाले सब जीवधारियों का नाशकर्त्ताहूं १५ प्रत्येक युगके अन्तपर सृष्टिके प्रियकी इच्छासे उन २ शरीरोंमें प्रवेशकरके धर्मका सेतु बांधताहूं १६ हे भृगुनंदन जबमैं देवताके शरीर में बर्त्तमान होताहूं तब निस्सन्देह देवता के समान सब कर्मों को करताहूं १७ हे मुनि जबमैं गन्धर्व शरीरमें बर्त्तमान होताहूं तब निश्चय करके गन्धर्व के समान सबकर्म करताहूं १८ जबमैं नागशरीर में बर्त्तमान होताहूं तब नागके समान कर्म करताहूं यक्ष राक्षसके शरीर मेंभी उसीप्रकार कर्मकरताहूं १९ मनुष्य शरीर में वर्त्तमान मुझसे लाचारकी समान प्रार्थना किये गये उन मोहोंसे पूर्ण अचेतोंने मेरे बचनको अंगीकर नहीं किया २० फिर क्रोधयुक्त मैंने बड़ाभारी भयप्रकट करकेभी उनकौरवों को डराया और फिर ऐश्वर्य्यवान् होकर होनहारसे भी वारम्बार बिदित किया २१ अधर्म से युक्त और कालधर्म से घिरे हुये वह सब युद्धमें धर्म्मसे मारेगये और निस्संदेह स्वर्ग को गये २२ और पाण्डवोंने लोकों में कीर्ति और यशको पाया हे द्विजवर्य्य जो तुम मुझसे पूछते हो वह सब मैंने तुमसे कहा २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिउत्तंकोपाख्यानेचतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ५४ ॥

---

# पञ्चपनवां अध्याय॥

उत्तङ्कने कहा हे जनार्दन मैं तुमको संसारका कर्त्ता जानताहूं निश्चयकरके यह आपकी कृपा है इसमें संदेह नहीं है १ हे अविनाशी मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्न और आपके स्वरूपमें नियतहुआ मैंने उस चित्तको शापदेने से लौटाया हे परन्तप इसको आप जानिये २ हे जनार्दन जो मैं तुमसे कुछ अनुग्रहके योग्य समझाजाऊं तो मैं आपके विश्वरूपको देखना चाहताहूं आप अपने उसरूप को दिखाइये ३ वैशम्पायन बोले कि इसके अनन्तर उस प्रसन्न चित्त बुद्धिमान् श्रीकृष्णजीने वह सनातन विष्णुरूप दिखाया जिसको कि अर्जुनने देखाथा४ उसने उस महाबाहु महात्माको विश्वरूप हजार सूर्य्यके समान प्रकाशित अग्नि के समान सब आकाशको ढककर नियत सबओर मुख रखनेवाला देखा उत्तङ्क ब्राह्मणने विष्णुके उस अद्भुत और श्रेष्ठ विष्णुरूपको देखकर और उस परमेश्वरका दर्शनकरके आश्चर्यको पाया ५।६ तब उत्तङ्कने कहा हे सृष्टिके कर्त्ता विश्वात्मा सब जड़ चैतन्यके कारण तुमको नमस्कार है तेरे चरणों से पृथ्वी और शिरसे आकाश व्याप्तहै हे अविनाशी पृथ्वी और आकाशका जो अंतर है वह आपके उदरसे घिराहुआहै भुजाओं से सब दिशा व्याप्तहैं यह सब तुम हींहो ७।८ हे देवता तुम फिर इस अविनाशी और श्रेष्ठरूपको अन्तर्द्धानकरो मैं फिर तुझ अविनाशीको निजरूपसे देखना चाहताहूं ९ वैशम्पायन बोले हे जनमेजय तब प्रसन्नचित्त गोविन्दजी ने उससे कहा कि बरमांगो तब उत्तङ्कने उनसे यह वचन कहा १० हे महातेजस्वी पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी आपका यही वरदान बहुतहै जो आपके इस स्वरूपको देखताहूं ११ फिर श्रीकृष्णजी ने उस से कहा कि तुम इसमें विचार न करो यह अवश्य करना योग्यहै क्योंकि मेरा दर्शन सफलहै निष्फल नहीं है १२ उत्तङ्कने कहा हे प्रभु जो आप इसको मानतेहो कि अवश्यही करनेके योग्यहै तो मैं जलको चाहताहूं अर्थात् इस मरुस्थली नाम भूमि में जहां इच्छाहो वहां जलका मिलना कठिन है १३ इसके पीछे उस ईश्वरने उस तेजको अपनेमें लयकरके उत्तङ्कको उत्तरदिया कि जलकी इच्छा होनेपर मैं ध्यानके योग्यहूं यह कहकर द्वारकाको चलदिये १४ इसके पीछे कभी उत्तंक ऋषितृषित होकर जलकी इच्छा से मरुभूमिमें घूमनेलगे और श्रीकृष्णजी

को स्मरणकिया १५ फिर बुद्धिमान् ने मातंग नाम चांडालको उस मरुभूमि में देखा जोकि नङ्गा और मलिन शरीर कुत्तोंके समूहोंसे व्याप्त १६ भयकारी रूप खड्ग और धनुषबाण धारण कियेथा उसउत्तम ब्राह्मणने उसके चरणोंके नीचे मूत्रसे उत्पन्न बहुत जलको देखा १७ हँसते और स्मरण करते हुये मातंगने उससे कहा हे भार्गव मुझसे जलको लो यह बात उचित है १८ तुझ तृषितको देखकर मुझ को बड़ी करुणा है उसके उस बचनको सुनकर उस मुनिने उसजलको श्रेष्ठ नहीं मानकर अंगीकार नहीं किया १९ और कठोर बचनोंसे उसबरदाता श्रीकृष्णकी निन्दाकरी मातंगने बारंबार उससे कहा कि आप जलपान कीजिये २० उस क्रोधयुक्तनें अन्तरात्मासे तृषित होकरभी पान नहीं किया हे महाराज उस निश्चयसे उसमहात्मासे उत्तर पायाहुआ वह मातंग २१ अपने कुत्तों समेत उसी स्थान में गुप्तहोगया उसको उस प्रकार का देखकर लज्जित चित्त उत्तंकने २२ अपने को उस शत्रुसंहारी श्रीकृष्ण से ठकाहुआ माना फिर उसी मार्ग से शङ्ख चक्र गदाधारी २३ बड़े बुद्धिमान् श्रीकृष्णजीभी आ पहुँचे उत्तङ्कने उनसे कहा कि हे प्रभु पुरुषोत्तम आपको उत्तम ब्राह्मणों के निमित्त मातंग स्रोतसे उत्पन्नहुआ जल देना उचित नहीं है बड़े बुद्धिमान् श्रीकृष्णजीने यह बचन कहनेवाले २४।२५ उस उत्तङ्कको साफ साफ मीठे वचनों से विश्वास कराकर यह कहा कि यहां जैसे रूपसे जलका देना उचित है २६ निश्चयकरके वैसाही जल तुझको दिया तुमने उसको नहीं जाना वज्र हाथमें रखनेवाले प्रभु इन्द्रसे तेरे निमित्त मैंने कहाथा २७ कि उत्तङ्कके निमित्त जल रूप अमृत दो उस देवराजने मुझसे कहा कि मनुष्य अमरपदवीको नहीं पाता है २८ उसको दूसरा बरदीजिये यह वारम्बार कहा हे भृगुनन्दन तब मैंने यही कहा कि उसको अमृतही दो २९ उस देवराजने मुझको प्रसन्नकरके फिर यह कहा हे बड़े बुद्धिमान् जो अवश्यही देनेके योग्यहै तो मैं मातंगरूप ३० होकर महात्मा भार्गवके अर्थ अमृतदूंगा जो वह भार्गव अब इसरीतिसे अमृतको ले लेगा ३१ तो यह अमृत मैं भार्गवके देनेको जाताहूं हे प्रभु जो वह इसको नहीं लेगा तो फिर मैं उसको कभी न दूंगा ३२ वह इन्द्र इसप्रकार नियमकरके उस रूप से तुम्हारे सम्मुख आया और अमृतको देता था परन्तु तुमने निषेध युक्त उत्तर दिया ३३ जो भगवान् इन्द्र चाण्डालरूपथा यही तेरी बड़ी विपरीत बुद्धि

है फिरभी जिसकारण मुझसे तेरा अभीष्ट करना उचित है ३४ इससे मैं तेरी इस कठोर जलकी इच्छाको सफलकरूंगा हे ब्रह्मन् जिन दिनोंमें तेरी जलकी इच्छा होगी ३५ तब इस मरुभूमि में बादल जल से पूर्णहोंगे और हे भृगुनन्दन वह बादल तुझे रसयुक्त जल देंगे ३६ वह उत्तङ्कनाम बादल तेरे नामसे प्रसिद्धीको पावेंगे श्रीकृष्णजीके ऐसे बचनको सुनकर वह ब्राह्मण प्रसन्नहुआ हे भरतर्षभ अबभी उत्तङ्कनाम मेघ मरुभूमि में बर्षा करते हैं ३७॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिउत्तङ्कोपाख्यानेपंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ५५॥

## छप्पनवां अध्याय॥

जनमेजयने पूछाकि बड़े मनवाला उत्तंक किस तपसे संयुक्तथा जोकि बहुत प्रकारके अवतार लेनेवाले विष्णुको भी शाप देने को इच्छावान् हुआ १ बैशंपायन बोले कि उत्तंक बड़े तपसेयुक्तहै वह तेजस्वी गुरुका भक्तहै उसने गुरुके सिवाय किसीको नहीं पूजा २ हे भरतबंशी सब ऋषियों के पुत्रों को यह चित्तसे इच्छाहुई कि हम उत्तंकके समान गुरुभक्ति परायण होकर गुरुवृत्तीको प्राप्तकरें ३ हे जनमेजय तब बहुत शिष्यों के मध्य में उत्तंकपर गौतम ऋषिकी प्रीति और स्नेह अधिकहुआ ४ वह गौतम उसके जितेन्द्रीपन और बाह्याभ्यन्तरकी पवित्रता धैर्य्यकर्म और पूरी सेवासे प्रसन्न हुआ तब ऋषिने हजारोंशिष्योंको अपने २ घरजानेकी आज्ञादी परन्तु बड़ी प्रीतिसे उत्तंक को आज्ञादेना नहीं चाहा ५।६ हे तात क्रम २ से वृद्धावस्था उसकोप्राप्तहुई तब उस गुरुबत्सल मुनिने उसको नहींजाना ७ हे राजेन्द्र इसके अनन्तर किसी समय उत्तंकलकड़ियोंके लानेको गया ८ और बहुत बड़ेभारी लकड़ीके बोझेको लाया हे शत्रुविजयी उसभारसे थकित शरीर होकर उस उत्तङ्कने उसलकड़ीके बोझेको पृथ्वीपर डाला उससमय उसकी जटा जो कि चाँदीके समान श्वेतथी उसलकड़ीके गट्ठेमें लिपटगई ९।१० तब वह लकड़ियों समेत पृथ्वीपर गिरपड़ा हे राजा तब भार से चूर्ण दुर्बलतासे भराहुआ वह ऋषि ११ उस वृद्धावस्थाको देखकर बड़े कष्टित शब्दके समेत रोनेलगा इसके पीछे उसके गुरुकी पुत्री जो कि कमलपत्रके समान मुखरखनेवाली १२ दीर्घनेत्र और धर्म्मके जाननेवालीथी उस शिरसे झुकीहुई ने पिताकी आज्ञा से अश्रुपातों को हाथमें लिया १३ उन अश्रुपातों के जलकणों

से भस्महुये उसके दोनों हाथ पृथ्वीपर गिरपड़े और पृथ्वी भी उन गिरनेवाले अश्रुपातोंके सहनेको समर्थ नहींहुई १४ तब प्रसन्न चित्त गौतमने उत्तङ्कब्राह्मण से कहा हे तात अब यहां किस कारणसे यह तेरा वचन शोकसे पूर्ण है हे ब्रह्म-ऋषि तुम इच्छापूर्वक कहो मैं उसको मूलसमेत सुनना चाहताहूं १५ उत्तंक बोला आपको प्रिय करनेकी इच्छासे आपके स्वरूप में प्रवृत्त चित्त आपके भक्त और आज्ञाकारी १६ मैंने यहवृद्धावस्था नहीं जानी मैंने सुखकोभी नहीं जाना आप-ने मुझ सौवर्पसे निवास करनेवालेको आज्ञा नहींदी १७ मेरे सम्मुख दूसरे शि-क्षापायेहुये सैकड़ों हजारों शिष्योंको आपने आज्ञादीन्हीं १८ गौतमने कहा हे ब्राह्मणोत्तम तेरीप्रीतिसे युक्तमैंने तेरी गुरुसेवाके कारणसे बहुतसा समय व्यतीत होता हुआ नहीं जाना १९ हे भार्गव अब क्या कियाजाय जो घर जानेमें तेरी श्रद्धा है तो तुम आज्ञालेकर अपने घरको जाओ बिलम्ब मतकरो २० उत्तंक ने कहा हे ब्राह्मणश्रेष्ठ मैं किस गुरुदक्षिणाको दूं जो आप आज्ञाकरें मैं उसीको भेट करके आपकी आज्ञा पाकर अपने स्थानको जाऊं गौतमने कहा कि सत्पुरुषोंका वचन है कि गुरुओं का प्रसन्न करनाही दक्षिणाहै हेब्रह्मन् मैं निश्चयकरके तेरी सेवाही से बहुत प्रसन्नहूं २१। २२ हे भार्गव मुझको ऐसा प्रसन्न जानो कि जो तुम सोलहवर्षकी अवस्थाके होकर तरुण होगे २३ हे श्रेष्ठ ब्राह्मण मैं अपनी पु-त्री कन्याका तेरेसाथ बिवाह करूंगा इसके सिवाय दूसरी कोईभी स्त्री तेरेतेजके सेवन करनेको योग्य नहींहै २४ इसके पीछे उत्तंकने तरुणरूप होकर उस यश-वन्ती कन्याको प्राप्त किया फिर गुरुसे आज्ञापायेहुये ने गुरुपत्नी से यह बचन कहा २५ कि आपको कौनसी गुरुदक्षिणादूं जो आपकी इच्छाहोय उसको आ-पमुझे आज्ञाकरें मैं प्राणसे और धनसे आपके मनके अभिलाषित को चाहताहूं २६ इसलोक में जो अत्यन्त अपूर्व बड़ा रत्न दुष्प्राप्यहोय उसको भी मैं तप के द्वारा निस्सन्देह लासक्ताहूं २७ अहल्या बोली हे निष्पाप ब्राह्मण मैं तेरी इस भक्तिसेही अत्यन्त प्रसन्नहूं यही गुरुदक्षिणा बहुतहै हेपुत्रतेरा कल्याण होय तुम अपनी इच्छाके अनुसार जाओ २८ बैशंपायन बोले हेमहाराज उत्तंक ऋषि ने फिर बचन कहा कि हे माता मुझको आज्ञादो मुझेतेरा प्रिय करना अवश्य यो-ग्यहै २९ अहल्या बोली तेरा कल्याण होय जो तू दक्षिणाही दिया चाहता है तो राजा सौदासकी स्त्री जिन दिव्य मणिकुण्डलों को धारण करती है उन को

लाओ उनसे गुरुदक्षिणा देना श्रेष्ठहै ३० हे जनमेजय तब उत्तंकने कहा कि तथास्तु ऐसा प्रणकरके गुरुपत्नी के अभीष्टके अर्थ उन कुंडलों के लानेकोचला ३१ इसके पीछे वह ब्राह्मणोत्तम उत्तंक उस पुरुषाद अर्थात् मनुष्यों के खाने वाले राजा सौदाससे मणि कुंडलकी भिक्षा मांगनेको शीघ्रतासे चला ३२ गौतम ने पत्नी से कहा कि अब उत्तंक दृष्टनहीं पड़ताहै इस प्रकारसे पूछीहुई उस अहल्या ने कुंडलके निमित्त जानेवाले उत्तंक को वर्णन किया फिर उस ऋषिने अपनी स्त्रीको उत्तरदिया कि यह तुमने अच्छा नहीं किया निश्चय करके शाप दिया हुआ वह राजा उस ब्राह्मणको मारेगा ३३ । ३४ अहल्या बोली हे भगवन् मुझ अज्ञात से वह ब्राह्मण आज्ञा दियागया है आपकी कृपासे उसको कुछभी भय न होगा ३५ पत्नी के इस प्रकार के बचन सुनकर गौतम ने अपनी स्त्रीसे कहा कि इसीप्रकार होय उत्तंकने भी निर्जन बनमें उस राजाकोदेखा ३६॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिउत्तंकोपाख्यानेषट्पंचाशत्तमोऽध्यायः५६ ॥

# सत्तावनवां अध्याय ॥

बैशम्पायन बोले उस ब्राह्मणने उसप्रकारके भयकारी दर्शनवाले बड़ी डाढ़ी मूछ रखनेवाले और मनुष्योंके रुधिरसे लिप्त शरीर उस राजाको देखकर १ चित्त में खेद नहीं किया उस बड़े पराक्रमी भयकारी यमराजके समान राजाने उससे कहा २ हे कल्याणरूप ब्राह्मणर्षभ तुम प्रारब्धसे छठवें समय मुझ भोजनके अभिलाषी अन्वेषण करनेवाले के पास आये हो ३ उत्तङ्कने कहा हे राजा गुरुदक्षिणाकेनिमित्त विचरते यहांआयेहुये तुम मुझको जानो ज्ञानियों ने गुरुदक्षिणाकेलिये उपायकरनेवाले शिष्यको नहीं मारनेके योग्य कहा है ४ राजाबोले हे ब्राह्मणोत्तम छठवें समयपर मेरा आहार नियतहै अब मुझसे आप त्यागकरने को असंभवहो ५ उत्तंकने कहा हेमहाराज इसीप्रकारहो मुझसे नियमकर लीजिये मैं गुरुदक्षिणा देकर फिर आप की आधीनता में आऊंगा ६ हे श्रेष्ठ राजा मैंने जो गुरुदक्षिणा देनेकी गुरुसे प्रतिज्ञा करी है हे राजेन्द्र वह तेरे आधीनमें है मैं उसको तुमसे भिक्षा मांगताहूं ७ तुम सदैव रत्नोंको उत्तम ब्राह्मणोंके अर्थ दिया करतेहो हेनरोत्तम तुम पृथ्वीपर पात्ररूप और दाताहो हे श्रेष्ठ राजा मुझको भी दानलेने में पात्र जानो ८ हे शत्रुओं के बिजय करनेवाले राजेन्द्र तेरे दियेहुये

धनको गुरूकी भेंट करके फिर यहां प्रतिज्ञा से तेरे आधीन हूंगा ६ मैं सत्यप्रतिज्ञा करताहूं इसमें किसी प्रकारका मिथ्यापन नहींहै मैंने प्रथम अपनी स्वतंत्र दशा में भी कभी मिथ्या बचन नहीं कहा फिर दूसरी दशामें कैसे कह सक्ताहूं १० सौदासने कहा जो तेरे गुरूका प्रयोजन मेरे आधीनहै वह मुझे अवश्य कर्त्तव्यहै जो तुम मुझसे कहसक्तेहो तो उस सबवृत्तान्तको मुझसे कहो ११ उत्तङ्क ने कहा हे पुरुषोत्तम मैंने आपको सदैव प्रार्थनाके योग्यमानाहै इसीसे मैं आप से मणिकुण्डल भिक्षा मांगनेको आयाहूं १२ सौदासने कहा कि हे ब्रह्मर्षि वह मणिकुण्डल मेरीही स्त्रीके योग्यहैं तुम दूसरे अभीष्टको मांगो हे सुन्दरब्रतऋषि वह मैं तुमको दूंगा १३ उत्तङ्कने कहा हे राजा जो हमारा तुमको प्रमाण है तो बहाना मतकरो और मणिकुण्डल मुझकोदो और सत्यबक्ताहो १४ वैशम्पायन बोले कि इसप्रकारके वचन सुनकर राजानें उस उत्तङ्क से फिर यह बचन कहा कि हे बड़े साधु तुम जाकर मेरे वचनसे देवीसे कहना कि मणिकुण्डल देदे १५ हे ब्राह्मणोत्तम वह देवी मेरे कहेहुये बचनसे आपके कहनेपर पवित्र ब्रतबाली दोनों कुण्डल निस्सन्देह तुमको देगी उत्तङ्कने कहा हे राजा आपकी स्त्रीको मैं कैसे देखसक्ताहूं आपही अपनी स्त्रीके पास क्यों नहीं जाते हो १६।१७ सौदास ने कहा कि अब आप उसको किसी जलके झिरने के पास देखोगे अब छठयें समयपर मैं उसको देख नहीं सक्ता १८ वैशम्पायन बोले कि हे भरतर्षभ इसप्रकारसे उसके बचनको सुनकर वह उत्तङ्क उसके पास गया और उस मदयन्ती रानीको देखकर अपना प्रयोजन उससे प्रकट किया १९ हे जनमेजय उस दीर्घ लोचना मदयन्तीने राजा सौदासके बचनको सुनकर बड़े बुद्धिमान् उत्तंङ्क को उत्तर दिया कि हे निष्पाप ब्राह्मण जो आपने कहा सो सत्य और यथार्थ है आप मिथ्या नहीं कहते हो आप उनकी प्रसन्नताका कोई चिह्न लानेको योग्य हो २०।२१ मेरे यह मणिकुण्डल दिव्यहैं देवता यक्ष और महर्षि बड़े बड़े उपायों से इनके हरनेकी इच्छाकरके अवकाशों को इच्छा किया करतेहैं २२ इन रत्नों को पृथ्वीपर रक्खाहुआ देखकर सर्पहरण करेंगे और निद्रा और मोहके वशीभूत मनुष्यसे देवता चुरालेजाते हैं और उच्छिष्टमें रक्खेहुयेको यक्ष हरलेजाते हैं २३ हे ब्राह्मणोत्तम इन दोनों कुण्डलोंको इनअवकाशोंमें सदैव देवता राक्षस और नाग हरना चाहतेहैं इन कुण्डलोंको सदैव सावधान मनुष्यही धारण करसक्ता

है २४ हे ब्राह्मणर्षभ यह कुण्डल अहर्निश सुवर्ण उगलते हैं और रात्रिके समय ग्रह नक्षत्रादिकोंके प्रकाशों को तिरस्कार करके बर्तमान होते हैं २५ हे भगवन् इनको कर्णभूषणकरके क्षुधा तृषाआदि कभी नहीं होतीहै इनके धारणकरनेवाले को विष और अग्निसे कभी भय नहीं उत्पन्न होताहै २६ जब छोटा मनुष्य इन को धारण करताहै तब यह छोटे होजाते हैं और जब उनके योग्यरूपवाला कोई पुरुष इनको धारण करताहै तब यह उस प्रमाणवाले होजाते हैं २७ यह मेरे कुण्डल इसप्रकारके महापूजित और तीनों लोकोंमें विख्यातहैं इसहेतुसे तुम उन के अङ्गीकार करनेकी अभिज्ञा अर्थात् मंजूरीको लाओ २८ ॥

इतिश्रीमन्महाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिउत्तङ्कोपाख्यानेसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७ ॥

# अट्ठावनवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि उसने राजा के पास जाकर अभिज्ञा चिह्न अर्थात् मंजूरी के निशानको मांगा उस इक्ष्वाकुवंशियों में श्रेष्ठ राजा ने उसको मनही से मंजूरी का चिह्न दिया १ सौदास बोला यह राक्षसयोनि रूपगति कल्याण रूप नहीं है दूसरी गति नहीं होसक्ती अर्थात् राक्षसयोनि से छूटना नहीं हो सक्ता इस मेरे मतको जानकर तुम मणिकुंडलों को देदो २ इसप्रकार कहेहुये उत्तंक ने उस रानी से उसके पति का वचन कहा तब उसने सुन कर वह मणि कुण्डल देदिये ३ उत्तंक ने वह दोनों कुण्डल पाकर फिर राजासे आकर कहा हे राजा यह गुप्त वचन आपका क्या है मैं उसको सुनना चाहताहूं ४ सौदास ने कहा कि क्षत्रिय लोग संसार की उत्पत्ति के प्रारम्भ से ब्राह्मणों को पूजते हैं और ब्राह्मणों से भी बहुत से शापादिक दोष प्रकट होते हैं ५ सो ब्राह्मणों के अर्थ सदैव से झुकेहुये मैंने ब्राह्मणसेही दोषको पाया मदयन्ती को साथ रखने वाला मैं दूसरी गति अर्थात् मुक्तरूप गतिको नहीं देखताहूं ६ हे ब्राह्मणोत्तम मतिमानोंमें श्रेष्ठ स्वर्गद्वारपर जाते अथवा यहां नियत होतेहुये मैं दूसरी बुद्धिको भी देखताहूं ७ मुख्य करके ब्राह्मणों के विरोधी राजालोगों को इस लोकमें नियत रहना अथवा परलोक में सुखसे वृद्धिपाना असंभवहै अर्थात् कहीं आनन्द नहीं पासक्ता ८ इसी हेतुसे यह मैंने अपने बड़े प्रिय कुंडल आपको दिये हैं अब आपने जो प्रतिज्ञा मुझसे करीहै उसको मेरे साथ सफलकरो ९ उत्तंकने कहा

हे राजा यहां मैं उसी प्रकार कर्म करूंगा अर्थात् फिर तेरे आधीन बर्त्तमानहूंगा हे परन्तप कुछ प्रश्न तुझसे पूछने के लिये मैं लौटाहूं १० सौदासने कहा हे ब्राह्मण इच्छापूर्व्वक पूछो मैं तेरे प्रश्नका उत्तर दूंगा अब तेरे सन्देहको मैं निस्सन्देह दूर करूंगा। इसमें किसीप्रकार का बिचार न करूंगा ११ उत्तंकने कहा कि धर्म के पारांगत होनेवालोंने वेदपाठी ब्राह्मण को सत्यवक्ता कहा है और जो मनुष्य अपने मित्रोंका बिरोधी है उसको चोरजानो १२ हे राजा सो अब आपने मेरी मित्रताको प्राप्त किया हे पुरुषोत्तम सो तुम अच्छे लोगोंके अंगीकृत मत को मुझसे कहो १३ अब मैं अभीष्ट सिद्ध करनेवालाहूं और आप मनुष्य भक्षी हैं आपके सम्मुख मेरा आना योग्य है या नहीं १४ सौदासने कहा हे ऋषियों में श्रेष्ठ जो यहां उचितही मत कहना योग्यहै तौ हे द्विजवर्य्य किसी दशामें भी मेरे सम्मुख तुम को न आना चाहिये १५ हे भार्गव इसरीति से मैं तेरे कल्याण को देखताहूं हे ब्राह्मण जो तू आवेगा तो अवश्य निस्सन्देह तेरी मृत्युहोगी १६ वैशंपायन बोले कि तब वह बुद्धिमान् नरोत्तम उत्तंकराजा सौदाससे इसप्रकार उचित शिक्षापायाहुआ उसराजासे पूछकर अहल्याकी ओरकोचला गुरुपत्नीको प्रिय करनेवाला वह ऋषि दोनों दिव्य कुंडलोंको लेकर बड़ी तीव्रतासे गौतम के आश्रमकी ओरकोचला १७।१८ मदयन्तीने जिस २ प्रकार से उन कुंडलों की रक्षाकरनी कहदीथी उसीप्रकारसे उन कुंडलों को मृगचर्म में बांधकर लेचला १९ उस क्षुधायुक्त ब्रह्मऋषिने किसी वनमें फलोंके भारसे संयुक्त बिल्वके वृक्षको देखा और उसपर चढ़ा २० हे शत्रुबिजयी राजा तब उस श्रेष्ठब्राह्मण ने उसवृक्ष की शाखामें उस मृगचर्म से बँधेहुये कुंडलों को लटकाकर बिल्व फलों को गिराया २१ हे प्रभु फिर बिल्व फलोंकी ओर दृष्टि करनेवाले और गिरानेवाले उस ऋषिके वह बिल्वफल मृगचर्मपर गिरे २२ तब जिस मृगचर्ममें वहकुंडल बांधेथे उनकी ग्रन्थीखुलगई २३ और वह मृगचर्म अकस्मात् कुंडलों समेत वृक्षसे खुल कर नीचे पृथ्वीपर गिरा उसबड़े दृढ़ बँधेहुये मृगचर्मके ग्रंथीखुलकर पृथ्वीपर गिरने से २४ वहां किसी ऐरावतवंशी सर्पने उनमणि कुंडलों को देखा तब वह शीघ्रगामी होकर २५ मुखसे कुंडलोंको पकड़कर कुंडलों समेत बामीमें प्रवेशकरगया सर्प से हरण कियेहुये कुंडलों को देखकर २६ वह उत्तंक व्याकुल और अत्यन्त क्रोधितहोकर वृक्षसे गिरा और बड़ी सावधानीसे उसने एक लकड़ीको लेकर २७

पैंतीस दिनतक उस सर्पकी बामीको खोदा उससमय में वह ब्राह्मण क्रोध और अशान्तीपने से महादुःखित था २८ काष्ठयष्टीसे टूटे अंगवाली अत्यन्त व्याकुल पृथ्वी उसके हस्तकी लाघवता और असह्य पराक्रमको न सहकर कंपायमानहुई इसके पीछे निश्चयसे नागलोकका मार्ग करनेकी इच्छा से ब्रह्मऋषिके हाथ से पृथ्वी के खोदने की दशामें २६ महातेजस्वी बज्रधारी इन्द्रहरिजातके अश्वयुक्त रथकी सवारीसे उसदेशमें गये और वहां उस श्रेष्ठ ब्राह्मणको देखा ३० बैशंपायन बोले कि उसके दुःखसे दुःखी उस इन्द्रने ब्राह्मणरूप होकर उस उत्तंकसे यह बचन कहा कि यह तुझसे करना सम्भव नहीं है ३१ क्योंकि यहां से नागलोक हजारों योजन दूर है मैं लकड़ी से इस तेरे काम करने को पूराहोता हुआ नहीं मानताहूं उत्तंक ने कहा कि हे ब्राह्मण जो नागलोक में ३२ मुझे कुण्डल नहीं मिल सक्तेहैं तो हे श्रेष्ठ ब्राह्मण मैं तेरे देखते हुये अपने प्राणोंको त्यागूंगा ३३ बैशंपायन बोले कि जब वह बज्रधारी इन्द्र उसके निश्चय को मिथ्या करने में समर्थ नहीं हुआ तब बज्रास्त्र से दण्डको संयुक्त किया ३४ हे जनमेजय उसके पीछे उस बज्रसे आघातित पृथ्वीमें नागलोकका मार्ग उत्पन्न किया ३५ तब वह उस मार्ग से नागलोकमें पहुंचा और हजारों योजनके बिस्तृत उस नागलोक को देखा ३६ हे महाबाहु जो कि मणि मोतियों से अलंकृत दिव्य सुवर्णके अनेक कोटों से संयुक्त था ३७ और स्फटिक की सीढ़ियों से युक्त बावड़ी वा निर्मल जलरखनेवाली नदियां और नानापक्षियों के समूहों से युक्त वृक्षों को देखा ३८ उस भार्गव ने वहां जाकर उस नागलोक के द्वार को देखा ३६ जो कि पांच योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा था तब उत्तंक नागलोक को देखकर दुःखी हुआ ४० और कुण्डलों के फिर मिलने से निराश हुआ हे कौरव वहां तेज से ज्वलितरूप रक्त नेत्र और मुखयुक्त कृष्ण श्वेत पूंछ रखनेवाले घोड़ने उससे कहा ४१ कि हे वेदपाठी तुम मेरे अपान वायु स्थान को फूंको इसके पीछे तुम कुण्डलों को पाओगे ४२ ऐरावत के पुत्रने तेरे दोनों कुण्डल हरण किये हैं हे पुत्र तुम इस प्रयोजन में किसी प्रकार की निन्दा न करना क्योंकि तुमने गोतम ऋषिके आश्रम में भी इस कर्म्म को किया है ४३ उत्तंक ने कहा कि मैं गुरूके आश्रम में होना आपका कैसे जानूं मैंने प्रथम जो आश्रम में किया है उसको सुनना चाहताहूं ४४ घोड़ा बोला मुझको तुम अपने गुरूका गुरू अग्निदेवता

जानो हे ब्राह्मण तैंने गुरूके निमित्त सदैव मुझको पूजा ४५ हे भृगुनंदन ब्राह्मण मैं तुझ पवित्रात्मासे सदैव विधिपूर्वक पूजागयाहूं इसी हेतुसे तेरा कल्याण करूंगा। शीघ्रता से मेरा कहना करो बिलंब मतकरो ४६ अग्निके उस वचन को सुनकर उत्तंक ने उसी प्रकार से किया और प्रीतिमान् अग्नि देवता भी नागलोकके भस्म करने की इच्छा से प्रचण्डरूप हुये ४७ हे भरतबंशी इसके पीछे उसके फूंकेहुये रोमकूपों से नागलोक में महाभयकारी धुआं उत्पन्न हुआ ४८ और उस बड़े वृद्धियुक्त धुएं से उस नागलोक में कुछ नहीं जाना गया ४९ हे भरतवंशी जनमेजय उस समय ऐरावत के सब गृह में हाहाकार मचा और धुएं से व्याप्त होकर बासुकी आदिक सर्पों के मकान ऐसे गुप्त होगये जैसे कि कुहरे से ढकेहुये बन और पर्वत होते हैं ५० । ५१ धुएं से रक्तनेत्र और तीक्ष्ण अग्नि से संतप्त वह सब नाग महात्मा भार्गवका निश्चय जानने को आये ५२ उस बड़े तेजस्वी महर्षि का निश्चय सुनकर भ्रांतियुक्त नेत्रवाले सब नागोंने विधिपूर्वक उनका पूजन किया ५३ वृद्ध और बालक जिनके अग्रवर्ती थे ऐसे उन सब नागोंने शिरों से दण्डवत्पूर्वक हाथों को जोड़कर कहा कि हे भगवन् आप प्रसन्न हूजिये ५४ उन सब सर्प्पों ने ब्राह्मण को प्रसन्न कर पाद्यार्घदान देकर उन बड़े दिव्य पूजित कुण्डलों को देदिया ५५ इसके पीछे नागों से पूजित वह प्रतापवान् उत्तंक अग्नि को प्रदक्षिण करके गुरू के स्थान को चला ५६ हे निष्पाप राजा जनमेजय उसने शीघ्रही गौतमजी के स्थान पर जाकर वह दिव्य कुण्डल अहल्या को दिये ५७ और गुरूके पास जाकर उस उत्तंक ने बासुकी आदिक सब सर्प्पों के सत्य २ वृत्तान्त को कहा ५८ हे जनमेजय इस प्रकार वह महात्मा तीनों लोकोंको भ्रमणकरके उन मणिकुंडलोंको लाया ५९ हे जनमेजय जिसको तुमने मुझसे पूछाहै वह उत्तंक मुनि ऐसे प्रतापवाला होकर तपसे युक्तहै ६० ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिउत्तंकोपाख्यानेऽष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ५८ ॥

## उन्सठवां अध्याय ॥

जनमेजयने कहा कि हे ब्राह्मणोत्तम महाबाहु यशवान् गोविंदजीने उत्तङ्क को बरदेकर फिर क्या किया १ वैशम्पायनने कहा कि गोविन्दजी उत्तङ्कको वर देकर सात्यकी के साथ शीघ्रगामी बड़े घोड़ोंकी सवारीसे द्वारकाको चले २ और

सरोवर नदी बन और पर्वतोंको व्यतीतकरके सुन्दर द्वारकापुरी को पाया ३ हे महाराज तब रैवतपर्वतका उत्सव वर्तमान होनेपर श्रीकृष्णजी जिनका कि अनुगामी सात्यकीथा वहां जापहुँचे हे पुरुषोत्तम वह पर्वत अनेकप्रकारके अद्भुत रूपोंसे अलंकृत और रत्नरूप बस्तुओंके ढेरोंसे युक्त शोभायमानहुआ ४।५ वह बड़ा पहाड़ सुवर्णकी माला, उत्तम फूल, बस्त्र, कल्पवृक्ष ६ और सुवर्णके दीपक और वृक्षोंसे क्रमपूर्वक शोभितथा गुफा और भिरनाओंके स्थानों में दिवस के समान अथवा सूर्य के समान प्रकाशमानथा ७ घण्टारखनेवाली बिचित्रित पताकाओंसे चारों ओरको शोभायमानथा स्त्री और पुरुषोंके शब्दोंसे शब्दायमान सरोद गानके उत्तम स्थानके समान होगया ८ और ऐसा अत्यन्त देखने के योग्यथा जैसे कि मुनियों के समूहों से युक्त मेरुपर्व्वत होता है हे भरतवंशी मद्यपानके आवेश से मत्त प्रसन्नमूर्ति गानेवाले स्त्री पुरुषों के ९ और गूंजने वाले पर्वतके शब्द स्वर्ग्गको स्पर्श करनेवाले हुये वह पर्वत बाजे आदि कल गानेमें प्रवृत्त मदोन्मत्ततासे अचेत प्रसन्न मनुष्यों के सिंहनाद और परस्परकी आकर्षणतासे पूर्ण हुआ १० उसीप्रकार किलकिला नाम शब्दोंसेभी शब्दायमान होकर चित्तरोचक हुआ और मोल बेचकी बस्तु रखनेवाली और क्रीड़ायोग्य भक्ष्य भोज्य पदार्थोंकी बेचनेवाली हट्टा अर्थात् दूकानों से शोभित और बिहार स्थानवालाथा ११ बस्त्र और मालाओं के समूहों से संयुक्त बीणा बांसुरी मृदंग रखनेवाला सुरामैरेय से युक्त भक्षण और भोजन की बस्तु जो कि सदैव दुःखी अन्धे और दरिद्रियोंको दीजातीथीं उनसे शोभित उस बड़े पर्वतका वह कल्याणरूप उत्सव शोभायमानहुआ १२।१३ हे वीर रैवतक पर्व्वतके उत्सव में वृष्णीवीरोंका वह बिहार पवित्रस्थान रखनेवाला होकर शुभकर्मियोंसे सेवितथा १४ स्थानादिकोंसे युक्त वह पर्वत देवलोक के समान शोभायमान हुआ हे भरतर्षभ उससमय वह गिरिराज श्रीकृष्णजीकी समीपताको पाकर १५ इन्द्रभवन के समान शोभायमान हुआ इसके पीछे अच्छी रीति से पूजितहोकर वह गोविन्दजी शुभभवन में प्रवेशितहुये १६ और सात्यकीभी अपने भवनको गया बहुतकालसे विदेशवासी प्रसन्नचित्त श्रीकृष्णजी ने वहां ऐसे प्रवेशकिया जैसे कि बहुत कठिनकर्म्मोंको करके इन्द्र दानवोंमें प्रवेश करताहै—भोज वृष्णी अन्धकवंशी उन पास आनेवाले महात्मा श्रीकृष्णजीके १७।१८ सम्मुख ऐसे गये

जैसे कि देवतालोग इन्द्रके सम्मुख जाते हैं उस समय उन बुद्धिमान् श्रीकृष्ण जीने उनका यथोचित सत्कार पूजनपूर्वक कुशलमंगल पूछके अप्रसन्न होकर अपने माता पिता को दण्डवत् करी उनसे मिलकर विश्वासयुक्त वह महाबाहु उन सब समीप बैठेहुये वृष्णियोंके मध्यवर्त्तीहुये १६।२० और उन सबने उनको परिधि के समान घेरलिया पिता समेत उस चरण धोनेवाले विश्रान्तरूप महातेजस्वी श्रीकृष्णजीने वहांके सबलोगोंसे उस सब महाभारतके युद्धका वृत्तांत वर्णन किया २१॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिरैवतकवर्णनेएकोनषष्टितमोऽध्यायः५९॥

## साठवां अध्याय॥

वसुदेवजी बोले हे श्रीकृष्ण मैंने सदैव मनुष्योंके मुखसे अत्यंत अपूर्व्व युद्ध को सुनाहै सो वहां उन कौरव और पांडवोंमें कैसे युद्ध हुआ १ हे निष्पाप महाबाहु तुम प्रत्यक्ष में दर्शी और भूतज्ञहो इस हेतुसे मैं पूछताहूं कि जैसे कौरव और पांडवों का युद्धहुआ उसको यथातथ्य वर्णनकरो २ अर्थात् जिस प्रकार महात्मा पांडवों का वह उत्तम युद्ध उन भीष्म कर्ण कृपाचार्य्य द्रोणाचार्य्य और शल्य आदिकके साथमें हुआ ३ और बहुतदेशोंकी सूरत रखनेवाले नानाप्रकार के देशोंके रहनेवाले महाअस्त्रज्ञ अन्य २ क्षत्रियोंके भी साथ जैसे हुआ ४ उस को वर्णनकीजिये—वैशंपायनजी बोले कि माता पितासे इस प्रकार आज्ञप्त श्रीकृष्णजीने जैसे जैसे कि कौरव बीरोंका युद्धमें मरना हुआ वह सब उनके आगे वर्णन किया ५ वासुदेवजी बोले कि महात्मा क्षत्रियों के कर्म अत्यन्त अद्भुत हैं असंख्य होनेसे सैकड़ों वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किये जासक्ते ६ हे देवता के समान तेजस्वी मुझ प्रधानतापूर्व्वक कहनेवाले के मुखसे आप राजा लोगों के कर्मोंको ठीक २ श्रवणकरो ७ ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी कौरव भीष्मजी कौरवेन्द्रोंके ऐसे सेनापति हुये जैसे कि देवताओं का स्वामी इन्द्रहोताहै ८ सात अक्षौहिणी सेनाका स्वामी बुद्धिमान् शिखंडी श्रीमान् अर्जुन से रक्षित होकर पांडवोंका सेनापति हुआ ९ उन महात्मा कौरव और पांडवों का वह महायुद्ध दशदिन तक रोमांचोंका खड़ा करनेवालाहुआ १० इसके पीछे शिखंडीने अर्जुनकी सहायतासे बड़े युद्धमें लड़नेवाले भीष्मको बहुत बाणोंसेमारा ११ इस

के पीछे उस शरशय्या पर वर्त्तमान भीष्मरूप मुनिने दक्षिणायन सूर्य्य को व्यतीत करके उत्तरायण सूर्य्य वर्त्तमान होनेपर अपने शरीरको त्याग किया १२ फिर अस्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ बड़े बीर द्रोणाचार्य्य जी कौरवेन्द्रोंके ऐसे सेनापति हुये जैसे कि दैत्य राजाओंके शुक्रजी सेनापतिथे १३ वह युद्धमें प्रशंसनीय ब्राह्मणोत्तम द्रोणाचार्य्य शेषबची हुई नव अक्षौहिणी सेनासे युक्त कर्ण कृपाचार्य्य आदिक बीरोंसे रक्षितहुये १४ महाअस्त्रज्ञ बुद्धिमान् धृष्टद्युम्न पांडवोंका सेनापतिहुआ वह धृष्टद्युम्न भीमसेनसे ऐसे रक्षितथा जैसे कि मित्रसे रक्षित बरुणहुआ था १५ सेनासे घिरेहुये बड़े साहसी द्रोणाचार्य्यके चाहनेवाले उस धृष्टद्युम्नने अपने पिताकी पराजय आदिको ध्यानकरके युद्धमें बड़ा कर्म किया १६ द्रोणाचार्य्य और धृष्टद्युम्न के उसयुद्ध में बहुधा वह बीर राजा मारेगये जोकि बहुत दिशाओंसे आये थे १७ पांचदिन तक वह बड़ा असह्य कठिन युद्धहुआ फिर थकेहुये द्रोणाचार्य्य धृष्टद्युम्न के आधीन हुये १८ इसके पीछे युद्ध में शेष बचीहुई पांच अक्षौहिणी सेनासे युक्त कर्ण दुर्योधनकी सेनामें सेनापति हुआ १९ पांडवोंकी तीन अक्षौहिणी सेना जिनमें बहुधा बीरमारेगये अर्जुनसे रक्षितहोकर नियतहुई २० इसके पीछे जैसे कि पतंगनाम पक्षी अग्निमें प्रवेश करताहै उसीप्रकार भयकारी कर्ण अर्जुनके सम्मुख होकर दूसरे दिन मारागया २१ कर्ण के मरनेपर अप्रसन्न नाशयुक्त बल पराक्रमवाले कौरवों ने तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ राजा शल्यको अपना सेनापति बनाया २२ जिनकी बहुत सवारी नाश होगई उन अप्रसन्न पाण्डवोंने शेष बचीहुई एक अक्षौहिणी सेनासमेत युधिष्ठिरको सेनापतिकिया २३ तब कौरवराज युधिष्ठिरने उस युद्धमें बड़े कठिन कर्मको करके मध्याह्नके समय राजा शल्यको मारा २४ शल्यके मरनेपर बड़े साहसी और पराक्रमी सहदेवने उस द्यूत खेलनेवाले उपद्रव के मूलरूप शकुनी को मारा २५ शकुनी के मरनेपर महादुःखीचित्त गदा हाथमें लिये राजादुर्य्योधन जिसकी बहुतसी सेना मारीगई थी वहांसे भागगया २६ अत्यन्त क्रोधयुक्त प्रतापवान् भीमसेन उसके पीछे दौड़ा और व्यासह्रद के जल में नियत उस दुर्य्योधनको देखा २७ फिर प्रसन्नचित्त पांचों पाण्डव मरने से शेष बचीहुई सेना के साथ उस ह्रदमें नियत दुर्य्योधन को चारों ओर से घेरकर बैठगये २८ जलको मझाकर बाणी रूपी बाण से अत्यन्त घायल गदा हाथ में रखनेवाला वह दुर्य्योधन शीघ्रही जल

से बाहर निकलकर युद्धके निमित्त सम्मुख नियतहुआ २९ फिर वह राजा दुर्योधन उसबड़े युद्धमें पराक्रम करके राजाओं के देखते हुये भीमसेनके हाथ से मारागया ३० इसके अनन्तर वह पांडवी सेना रात्रिके समय डेरोंमें शयन करनेवाली हुई और पिताके मरनेको न सहनेवाले अश्वत्थामा के हाथसे मारीगई ३१ जिनके पुत्र सेना और शत्रु मारेगये वह पांचो पांडव मेरे और सात्यकी के साथ शेषरहगये ३२ कृतवर्मा और कृपाचार्य्य समेत अश्वत्थामा और कौरव्य युयुत्सु भी पांडवोंके पास शरण लेनेसे मुक्तहुये अर्थात् छोड़दिये गये ३३ साथियों समेत कौरवराज सुयोधन अर्थात् दुर्योधन के मरने पर विदुर और संजय धर्मराजके पास नियत हुये ३४ हे प्रभु इस प्रकार वह महायुद्ध अठारह दिनतक हुआ युद्धोत्सव में मरनेवाले उन राजाओंने स्वर्गको पाया ३५ वैशंपायन बोले हे महाराज तब उस रोमाच खड़ा करनेवाली कथाके सुननेवाले वृष्णी वंशियों के दुःख शोक और पीड़ा उत्पन्न हुई ३६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिवासुदेववाक्येषष्ठितमोऽध्यायः ६० ॥

# इकसठवां अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि पिता के आगे महाभारत के युद्ध को कहते प्रतापवान् बड़े बुद्धिमान् वीर वासुदेवजीने कथाके अन्तपर १ अभिमन्युके मरनेका वृत्तान्त कहना त्याग किया अर्थात् बड़े बुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने यह शोचकर नहीं कहा कि वसुदेवजी के अप्रिय बात को क्यों कहना चाहिये २ क्योंकि वसुदेवजी बड़े नाश युक्त दौहित्रके मरने को सुनकर दुःख और शोक से पीड़ित होंगे इस हेतुसे उनके शोच करने के अर्थ बड़े ज्ञानीने यह शोचा ३ सुभद्राने युद्धमें मरनेवाले पुत्र को जिसको कि श्रीकृष्ण ने नहीं कहा था पूछा कि हे कृष्ण अभिमन्युके मरण को वर्णन करो यह कहकर पृथ्वीपर गिरपड़ी तब वसुदेवजीने पृथ्वीपर गिरीहुई उस सुभद्रा को देखा उसको देखकर वह भी दुःख से मूर्च्छावान् होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ४ । ५ हे महाराज उस दौहित्रके मरनेके दुःख और शोक से घायल उन वसुदेवजी ने श्रीकृष्ण से यह वचन कहा ६ हे शत्रुओं के नाश करनेवाले श्रीकृष्ण निश्चय करके आप इस पृथ्वीपर सत्यवक्ता प्रसिद्धहो जो कि अब मेरे दौहित्रके मरने को नहीं कहते हो ७ हे समर्थ अब अपने भानजे

के मरण का ठीक २ वृत्तान्त मुझसे कहौ वह तेरेसमान नेत्र रखनेवाला युद्धमें कैसे शत्रुओं के हाथ से मारागया ८ हे वृष्णिवंशी असमयपर मनुष्यका मरना कठिन समझा जाता है क्योंकि ऐसे स्थानपर भी मेरा हृदय खण्ड २ नहीं होता हे कमललोचन उस मेरे प्यारे लाल लाल नेत्रवाले ने युद्ध में सुभद्रा माता के और मेरे विषय में तुमसे क्या कहा ९। १० हे गोविन्द वह युद्ध से मुखमोड़कर तो शत्रुओं के हाथ से नहीं मारागया उसने युद्धभूमि में अपना रूपान्तर तो नहीं किया ११ हे कृष्ण बालकपन से मेरे आगे अपनी प्रशंसा करते उस बड़े तेजस्वी समर्थ ने अपनी शिक्षा का वर्णन किया १२ हे केशव वह बालक द्रोणाचार्य्य कर्ण और कृपाचार्य्यादिक से छला और माराहुआ तो पृथ्वीपर नहीं शयन करता है उसको मुझसे कहौ १३ वह मेरा दौहित्र सदैव पराक्रमियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य्य भीष्म और कर्ण से ईर्षा करता था १४ तब अत्यन्त दुखीरूप गोविन्दजीने इस प्रकारके अनेक रूपों से विलाप करनेवाले अत्यन्त दुखित अपने पिता से यह बचन कहा १५ कि उसने युद्धके मुखपर होकर भी अपने रूपान्तर को नहीं किया और पीछे की ओर से घायल भी नहीं हुआ उस पराक्रमीने बड़ा कठोर युद्ध किया १६ लाखों राजाओंके समूहों को मारकर द्रोणाचार्य्य और कर्ण से दुखित होकर दुश्शासनके पुत्रके स्वाधीन हुआ १७ हेप्रभु जो कदाचित वह अकेला किसी एकके्ही साथमें युद्धकर्त्ता होता तो वह युद्ध में वज्रधारी इन्द्रसे भी नहीं मरसक्ता था १८ संसप्तक क्षत्रियों करके अर्जुन को युद्धभूमि से हटालेजाने पर युद्धमें अत्यन्त क्रोधयुक्त द्रोणाचार्य्यादिकों ने उस अभिमन्यु को घेरलिया था १९ हे पिता इसके पीछे वह आपका दौहित्र युद्धमें शत्रुओं का बड़ाभारी विध्वंस करके दुश्शासन के पुत्रके आधीन हुआ २० हे बड़े बुद्धिमान् निस्सन्देह वह अभिमन्यु स्वर्ग को गया आप शोक को दूरकरो बुद्धिमान् लोग दुःख को पाकर पीड़ावान् नहीं होते हैं २१ युद्धमें द्रोण कर्णादिक जिसके सम्मुखहुये वह महाइन्द्र के समान कैसे स्वर्ग को नहीं पावेगा २२ हे अजेय पिताजी आप शोच को त्यागो दुःखके आधीन मतहो उस शत्रुओं के पुरोंके विजयीने शस्त्रों से पवित्रगति को पाया २३ उस वीरके मरनेपर दुःख से पीड़ावान् यह मेरी बहिन सुभद्रा पुत्रको पाकर कुररी पक्षीके समान पुकारने लगी २४ इस दुखीने द्रौपदी को पाकर पूछा कि हे आर्य्या वह सब पुत्र कहां हैं

मैं उनको देखा चाहती हूं उसके वचन को सुनकर कौरवों की वह सब स्त्रियां-बड़े दुखी के समान भुजाओं से उसको पकड़कर पुकारीं २५। २६ उत्तरा से कहा कि हे कल्याणिनि वह तेरापति कहां गया तू शीघ्रही उसके आने को मुझसे कह २७ निश्चय करके उत्तरा मेरे वचन को सुनकर शीघ्रही महल से दौड़ती थी हे उत्तरा तेरा पति किस हेतु से सम्मुख नहीं आता है २८ हे अभिमन्यु तेरे महारथी मामा प्रसन्नहैं सबने तुझ युद्धाभिलाषी और यहां आनेवाले को अपनी क्षेम कुशल कही है २९ हे शत्रुओं के विजय करनेवाले अब पूर्व्व के समान युद्धका वर्णन मुझ से करो अब यहां इस प्रकार विलाप करनेवाली मुझको किस हेतुसे उत्तर नहीं देता है ३० बड़े दुःख से पीड़ित कुन्ती ने इस सुभद्रा के इसप्रकार के और अन्य अन्य प्रकार के विलापों को सुनकर धीरेपने से यह वचन कहा ३१ कि हे सुभद्रा जो बालक युद्ध में वासुदेव सात्यकी और पितासे भी रक्षित कियागया वह काल धर्म्मसे मारागया ३२ हे यादवनन्दिनी यह मनुष्यताका धर्म ऐसाहीहै शोच मतकर तेरे अजेय पुत्रने परमगति को पाया ३३ हे कमलदललोचन रखनेवाली तू महात्मा क्षत्रियों के बड़े ऊंचे कुलमें उत्पन्नहै उस चपलाक्ष पुत्रको मत शोच ३४ हे शुभदर्शन तुम इस गर्भवती उत्तराको देखो यह भाविनी उस अभिमन्युके पुत्रको शीघ्रही उत्पन्नकरेगी ३५ हे यादव कुन्तीने इसप्रकारसे उसको विश्वासदेकर और बड़े शोकको त्याग करके उसके श्राद्धका विचार किया ३६ उस धर्म्मज्ञ ने राजा युधिष्ठिर भीमसेन और अश्विनीकुमारके समान नकुल और सहदेव को बतलाकर बहुत से दान दिये ३७ हे यादवजी इसके पीछे सुभद्राने बहुतसी गौओंका ब्राह्मणोंको दान करके प्रसन्नतापूर्वक उत्तरासे यह वचन कहा कि ३८ हे निर्दोष बिराटपुत्री यहां तुमको अपने पतिका शोक न करना चाहिये हे सुन्दरी गर्भ में नियत अपने पुत्रकी रक्षाकर ३९ हे महातेजस्वी वह कुन्ती इसप्रकार कहकर फिर मौनहोगई मैं उससे पूछकर इस सुभद्राको यहां लायाहूं ४० हे बड़ाई देनेवाले इसप्रकारसे आपके दौहित्र ने मरणको पाया इस बड़े शोकको त्यागकरो और शोचसमुद्र में मत डूबो ४१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिवासुदेववाक्येएकषष्टितमोऽध्यायः ६१ ॥

———o———

# बासठवाँ अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि तब धर्मात्मा बसुदेवजीने पुत्रके इस बचनको सुनकर शोकको त्यागकर उसका उत्तम श्राद्ध किया १ उसीप्रकार बासुदेवजीने सदैव पिताके प्यारे अपने भानजे महात्मा अभिमन्युका श्राद्धादिक कर्मकरके २ साठ लाख ब्राह्मणोंको विधिके अनुसार वह भोजनकरवाये जो कि सबगुणोंसे संयुक्त थे ३ इसके सिवाय महाबाहु श्रीकृष्णजी ने उन भोजन कियेहुये ब्राह्मणों को पोशाकें पहिराकर ब्राह्मणोंके अभीष्टधनोंका प्रबन्धकिया वह कर्म उस प्रसन्नता का करनेवालाहुआ जिसमें लोमहर्षण होताहै ४ तब ब्राह्मणोंने उस सुवर्ण गौ स्थान और पोशाकोंके दानको पाकर आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी वृद्धिहोय५ तब दाशार्ह देशी बासुदेव बलदेव सात्यकी और सत्यकने अभिमन्युका श्राद्ध किया ६ परन्तु वह दुःखसे अत्यन्त पीड़ावान् थे इससे सुखको नहीं पाया उसी प्रकार अभिमन्युसे जुदे होकर वीर पाण्डवोंने हस्तिनापुरमें ७ शान्तिको नहीं पाया हेराजेन्द्र पतिके शोकसे पीड़ावान् उत्तराने बहुत दिनतक ८ नहीं खाया वह बड़ा करुणापूर्व्वक दुःखका स्थानहुआ और उसका उदरवर्ती गर्भभी अविदितसा हुआ ९ इसके पीछे बड़े तेजस्वी ब्यासजी दिव्यनेत्रों से उसको जानकर आये और वहां आकर उस बुद्धिमान्ने कुन्तीसे और उत्तरासे मिलकर यह बचन कहा कि १० तुमको यह शोक दूरकरना चाहिये हे यशस्विनी तेरा पुत्र बड़ा तेजस्वी होगा ११ यह बासुदेवजी के प्रभाव और मेरे बचनसे पाण्डवों के पीछे संसारकी रक्षा और पोषण करेगा १२ हे भरतवंशी उनको प्रसन्न करते अर्जुनको देखकर धर्म्मराज के सुनतेहुये इस बचनको कहा १३ कि तेरा पौत्र भाग्यवान् और बड़ा साहसी होगा और चारों समुद्रतक पृथ्वी को धर्मसे पालेगा १४ हे शत्रुओं के विजयकरनेवाले कौरव्य अर्ज्जुन इसहेतुसे तुम शोकको दूर करो इसमें तेरा कोई बिचार नहींहै यहसत्य सत्यहीहोगा १५ हेकौरवनन्दन पूर्व समय में जो वृष्णीबीर श्रीकृष्णने कहा है वह उसी प्रकारसे होनहार है इस में तेरा बिचार कुछ नहीं चाहिये १६ जो अपने पराक्रमसे बिजयकरके अबिनाशी लोकों को गया वह अभिमन्युभी तुमसे और अन्य सबकौरवोंसे शोचनेके योग्य नहीं है १७ हे महाराज तब धर्मात्मा पितासे इसप्रकार समझाया हुआ अ-

र्जुन शोकको त्यागकर प्रसन्न मुखहुआ १८ हे बड़े बुद्धिमान् धर्मज्ञ जन्मेजय तेरापिताभी उसगर्भ में इच्छानुसार ऐसे वृद्ध हुआ जैसे कि शुक्लपक्षमें चन्द्रमा १६ उसके पीछे ब्यासजीने अश्वमेध यज्ञके निमित्त उस धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको प्रेरणा पूर्व्वक आज्ञादी और वहांहीं अन्तर्द्धान होगये २० हे तात बुद्धिमान् धर्मराजने भी ब्यासजीके उसबचन को सुनकर धनलानेके लिये उस पर्व्वत पर जाने का विचारकिया २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिव्यासउपदेशेद्विषष्टितमोऽध्यायः ६२ ॥

# तिरेसठवां अध्याय ॥

जनमेजयने कहा कि हे ब्राह्मण तब राजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञके विषय में महात्मा ब्यासजीसे कहेहुये इस बचन को सुनकर फिर क्या कहा १ हे ब्राह्मणोत्तम राजामरुतने जो रत्न पृथ्वी में गाड़े उन को किस २ प्रकारसे पाया उसको मुझसे वर्णन करो २ वैशंपायन बोले कि धर्मराज युधिष्ठिरने ब्यासजी का बचनसुनकर और अर्जुन भीमसेन नकुल सहदेव इनसब भाइयोंको बुलाकर यह बचन कहा कि हे बीर लोगो तुमने वह बचन सुनाहै जो कि शुभचिन्तकतासे ३ । ४ कौरवों का भला चाहनेवाले बुद्धिमान् तपोवृद्ध महात्मा भक्तों का सुख चाहनेवाले व्यासजीने कहाहै ५ धर्मके अभ्यासी अपूर्व्वकर्म्मी गुरू ब्यास बुद्धिमान् गोबिंदजी और भीष्मजीसे कहा गया है ६ सो हे महाज्ञानी पांडव लोगो मैं उसको स्मरण करके अच्छे प्रकारसे काममें लायाचाहताहूं वह तीनों कामों में सबका हितकारी है ७ और पुत्र पौत्रादिकों में कल्याण है जिसको कि ब्रह्मबादी कहते हैं हे कौरव यह सब पृथ्वी रत्नोंसे रहितहै ८ हे राजाओ तब व्यासजीने राजा मरुत के धनका वर्णन किया जो यह तुम्हारा बहुत अंगीकृतहै और जो उसको उचित और योग्य मानते हो तो उसीप्रकारहो ९ जैसा कि उपदेश कियागयाहै हे भीम अथवा तुम धर्म से उसको किसप्रकार का मानतेहो हे कौरव्य राजाके इस बचनके कहनेपर १० भीमसेनने हाथजोड़कर उस श्रेष्ठ राजासे यह बचन कहा कि हे महाबाहु यह मुझको स्वीकारहै ११ जो तुमने ब्यासजीके बतायेहुये धन लाने के बिषय में कहाहै हे प्रभु जो यहांराजा मरुत के उसधनको हम प्राप्तकरें १२ तब हमारा अभीष्ट प्राप्तहोय हे महाराज इस में

मेरा यह विचार है कि हमलोग शिवजीको पूजकर उस महात्मा गिरीशके धन को १३ उनकी कृपासे लावें आपका कल्याण होय निश्चयकरके हम उस देवेश्वर और उसके अनुचरों को १४ बुद्धि मन वाणी और कर्म से प्रसन्न करके धनको पावेंगे जो उस धनकी रक्षाकरते हैं वह भयकारी दर्शनवाले किन्नरहैं १५ वह सब किन्नर शिवजी महाराजके प्रसन्न होने पर स्वाधीन होंगे हे भरतबंशी उसभीमसेन के इस शुभ विचार पूर्व्वक वचनको सुनकर १६ धर्मपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्नहुये और अर्जुन आदिक अन्य सब लोगोंने भी इसी बचनको कहा १७ तब सब पांडवोंने रत्नलानेको निश्चय करके उत्तरायण रोहिणी नक्षत्र में रविवारके दिन सेनाको आज्ञादी १८ इसके पीछे पांडवलोगोंने प्रथमही देवताओं में श्रेष्ठ महेश्वर जी को पूजकर ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराके यात्रा करी १९ मोदक तस्मई और मांस पूप आदिक से महात्माको पूज बहुत स्तुति करके अत्यन्त प्रसन्न होकर चले २० वहां अत्यन्त प्रसन्नचित्त उन नगरबासी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने उन यात्रा करनेवाले पांडवों के शुभ मंगल वर्णन किये फिर वह पांडव अग्नि और ब्राह्मणोंको प्रदक्षिणकर शिरोंसे दण्डवत करके चलदिये २१। २२ पुत्रों के शोकसे घायल राजा धृतराष्ट्र और गान्धारी और दीर्घ नेत्रवाली कुन्तीको जतलाकर २३ धृतराष्ट्रके पुत्र कौरव युयुत्सुको बृद्धोंके पास छोड़कर पुरबासी और ज्ञानी ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद युक्त होकर पांडवोंने यात्राकरी २४॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिरत्नार्थयात्रायांत्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३॥

# चौंसठवां अध्याय॥

वैशंपायन बोले कि इसके पीछे बहुत आनन्द से भरे हुये सब मनुष्य और सवारी रखनेवाले वह पाण्डव रथके बड़े शब्दों से पृथ्वी को शब्दायमानकर चलदिये १ सूत मागध और बन्दीजनों की स्तुतियों से स्तूयमान और जिस प्रकार सूर्य्य अपनी किरणों से घिरा हुआ होता है उसी प्रकार अपनी सेनाओं से चारों ओर को व्याप्त होकर पाण्डव लोग चले २ उस समय युधिष्ठिर मस्तक पर श्वेत छत्र धारण किये हुये ऐसा शोभित हुआ जैसे कि पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा शोभित होता है पुरुषोत्तम पाण्डव युधिष्ठिर ने मार्ग में अत्यन्त प्रसन्न चित्त मनुष्यों के विजयके आशीर्वाद न्याय और विधिके अनुसार लिये ३। ४

हे राजा उसी प्रकार जो सेना के लोग राजाके आगे पीछे थे उनका हलहला शब्द आकाश को पूर्ण करके नियत हुआ ५ तव महाराज ने सरोवर नदी वन उपवनों को व्यतीत करके उस पर्व्वत को भी प्राप्त किया ६ हे राजेन्द्र उस देश में जहांपर कि वह उत्तम द्रव्य था वहां राजायुधिष्ठिर ने कल्याणरूप सम धरातल स्थानपर सेनाके लोगों समेत निवास किया हे भरतर्षभों में श्रेष्ठ कौरव ७ वहां तप विद्या से पूर्ण जितेन्द्रिय ब्राह्मणों को और वेद वेदाङ्ग से युक्त धौम्य पुरोहित को आगे करके निवास किया पुरोहित समेत ब्राह्मण और क्षत्रियों ने ८ न्याय के अनुसार शान्ति करके राजा को और उसके प्रधान मन्त्रियों को विधिके अनुसार मध्यवर्त्ती नियत करके ९ छः राजमार्ग और नौखण्ड रखनेवाला सेना का निवासस्थान बनाया फिर उस राजेन्द्र ने विधिपूर्व्वक मतवाले हाथियों का निवासस्थान बनवाकर ब्राह्मणों से यह वचन कहा कि हे उत्तम ब्राह्मण लोगो इस कर्मके विषयमें जैसा आपकी बुद्धिमें शुभ दिन और नक्षत्र ठहरे उसमें १० जैसा आप कहैं वैसाही हमको करना योग्य होगा यहां विचार करनेवाले हम लोगों का समय व्यतीत न होजाय ११ हे ऋषियो इस को ऐसा विचार पूर्व्वक निश्चय करो जिसको बहुत शीघ्र करना योग्य होय धर्म्मराज का प्रिय चाहने वाले प्रसन्न ब्राह्मणों ने पुरोहित समेत राजाके इस वचन को सुनकर यह उत्तर दिया कि १२ अवहीं पवित्र दिन और नक्षत्र है आप अपने अत्युत्तम कर्म में उपायकरें हे राजा अब यहां केवल जलपानही करने से निवासकरें और आप भी इसी प्रकार से स्थितिकरो १३ उन उत्तम ब्राह्मणों के वचन को सुनकर व्रत करनेवाले प्रसन्न चित्त वह पाण्डव रात्रि के समय कुशासनों पर ऐसे नियत हुये जैसे कि यज्ञमें देदीप्त अग्नि १४ । १५ इसके अनन्तर ब्राह्मणों के वाक्यों के सुननेवाले उन महात्माओं की वह रात्रि व्यतीत होगई फिर प्रातःकाल के समय ब्राह्मणों ने राजायुधिष्ठिर से यह वचन कहा १६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिपर्व्वतस्थितिवर्णनेचतुष्षष्टितमोऽध्यायः ६४ ॥

## पैंसठवां अध्याय ॥

ब्राह्मण बोले कि हे राजा प्रथम उन महात्मा शिवजी की भेंट कीजिये भेंट देने के पीछे अपने प्रयोजन में उपायकरें १ युधिष्ठिर ने उन ब्राह्मणों के वचन

को सुनकर शिवजी की भेंट न्याय के अनुसार निवेदन करके अर्पणकरी २ हे राजा फिर वह पुरोहित विधि के अनुसार संस्कार किये हुये घृत से अग्नि को तृप्तकर चरु को मन्त्रसे सिद्धकर चला ३ वहां जाकर उसने मन्त्रसे पवित्र पुष्पों को लेकर मोदक तस्मै और मांसों से बलिप्रदान किया ४ उस वेदपारग पुरोहित ने अपूर्व्व पुष्प और नानाप्रकार के पदार्थों समेत खील से सब स्विष्ठतम करके ५ किंकर लोगों का उत्तम बलिदान किया यक्षराज कुबेर और मणिभद्र के निमित्त बलिदान किया ६ इसी प्रकार अन्ययक्ष और भूतपतियोंके अर्थ कृशरान्न मांस और काले तिलों समेत दानों से बलिदान किया ७ फिर पुरोहित ओदन नाम भोजन की वस्तुओं को शकटों में तैयार करके लाया और राजा ने हजारों गौवें ब्राह्मणों को दान देकर ८ निशाचर भूतों को बलिदिया हे राजा धूप गंधसे पूर्ण और पुष्पोंसेयुक्त ९ वह शिवजीका स्थान अत्यन्त शोभायमान हुआ राजा युधिष्ठिर सब रुद्रगणों समेत शिवजीकी पूजाकरके १० व्यासजीको आगे करके रत्नोंके भण्डार अर्थात् खजानेके पास गया संसारके सब धनके अधिपति कुबेरजी को पूजकर दण्डवत् नमस्कार करके ११ विचित्र, पुष्प, अपूप और कृषरसे शङ्खआदिक सब निधियों समेत निधिपालोंको पूज १२ पवित्र ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचनकराके वह पराक्रमी राजा उनके पुण्याह घोष और अपने तेज समेत नियतहुआ १३ और प्रसन्नहोकर युधिष्ठिर ने उस धनको खुदवाया तब स्रवास्थाली आदिक पात्र लोटा कमण्डलु छोटा कलश नाम कर्कादिक जो कि चित्तरोचक और अनेकप्रकारके थे १४ भृङ्गार अर्थात् सुवर्णकी झारी आदि कराह अर्त्थात् कढ़ाव कलश आदिक बर्द्धमानकान् अर्त्थात् घटादिक बहुत से विचित्र हज़ारों भाजनों को धर्म्मराज युधिष्ठिरने निकलवाया और सन्दूकों में उनको भरवाया १५।१६ और उष्ट्रआदिकोंपर वह बांधाहुआ बोझा दोनों ओर को बराबरहुआ हे राजा वहां राजा युधिष्ठिरके उष्ट्रादि भारबाहक इतनेथे १७ कि छयासठ हजार ऊंट उनसे दूनेघोड़े और ग्यारह लाख हाथी १८ छकड़े रथ और हथिनियां भी उतनीही थीं खिचर और मनुष्यों की संख्या अगणितथी १९ वह धन इतना था जिसको कि युधिष्ठिर ने लिया जिसमें सुवर्ण से भरे हुये आठ हजार ऊंट सोलह हजार छकड़े और चौबीस हजार हाथी थे २० पाण्डव युधिष्ठिर इन सब सवारियों पर धन को भर कर और फिर महादेव जी को पूज कर

हस्तिनापुरकी ओर चला फिर व्यासजी से आज्ञालेकर वह पुरुषोत्तम युधिष्ठिर पुरोहित को आगे करके प्रतिदिन दो कोश चलकर निवासी हुआ २१।२२ हे राजा धनके भारसे महापीड़ित वह बड़ी सेना पाण्डवोंको प्रसन्न करतीहुई बड़ी कठिनता से राजधानी के सम्मुख चली २३ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिधनाहरणपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ६५ ॥

# छासठवाँ अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि उसीसमयपर पराक्रमी बासुदेवजी भी वृष्णियों समेत हस्तिनापुरमें आये १ वह पुरुषोत्तम द्वारका जानेके समय जिसप्रकार राजा युधिष्ठिरसे सलाह करगयेथे उसीसमयपर अश्वमेधके नियमको जानकर २ प्रद्युम्न युयुधान, चारुदेष्ण, साम्ब, गद, कृतवर्मा ३ सारण, वीरनिष्ठ और उल्मुक समेत बलदेवजीको अग्रभागमें करके सुभद्रा समेत ४ द्रौपदी उत्तरा और कुन्तीके दर्शनाभिलाषी और जिनके स्वामीमारेगये उन क्षत्रियाओंको बिश्वास देने के अर्थ आपहुँचे राजा धृतराष्ट्र और बड़े साहसी विदुरजीने उन आयेहुओं को देखकर न्यायके अनुसार लिया ५।६ महातेजस्वी विदुर और युयुत्सु से अच्छे प्रकार पूजित पुरुपोत्तम श्रीकृष्णजी वहां ठहरे ७ हे जनमेजय वहां श्रीकृष्णजीके निवासकरनेपर शत्रुओं के बीरोंको मारनेवाले तेरे पिता परीक्षितने जन्म लिया ८ हे महाराज ब्रह्मअस्त्र से पीड़ावान् वह राजा परीक्षित मृतक और अचेष्ट होकर प्रसन्नता और शोकका बढ़ानेवालाहुआ वहां प्रसन्न मनुष्योंके सिंहनादसे उत्पन्न शब्द सब दिशाओंमें प्रवेशकरके फिर बन्द होगया ९।१० तब इन्द्रिय और मन से महाव्याकुल श्रीकृष्णजी शीघ्रही सात्यकीको साथ लेकर स्त्रियोंके महल में पहुँचे ११ तदनन्तर वहां शीघ्रआनेवाली और बारम्बार बासुदेवजीको पुकारती और दौड़तीहुई अपनी फूफी कुंती को देखा १२ और पीछेकी ओरसे यशवंती द्रौपदी सुभद्रा और बान्धवोंकी स्त्रियोंको करुणापूर्वक बिलाप करताहुआ देखा १३ हे राजेंद्र तब राजा कुन्तभोजकी पुत्री कुंतीने श्रीकृष्णको पाकर उष्ण अश्रुपातोंसे युक्त गद्गदवाणी समेत यह बचन कहा १४ हे महाबाहु बासुदेव तुम से देवकी सुपुत्रवती है तुम्हीं हमारी गति और प्रतिष्ठाहो यह बंश तेरेही स्वाधीनहै १५ हे प्रभु यदुबीर जो यह तेरे भानजेका पुत्र है वह अश्वत्थामाके अस्त्र

से मृतक उत्पन्नहुआ है हे केशव उसको जीवदानदो १६ हे प्रभु यदुनन्दन तुम ने अश्वत्थामाके अस्त्र फेंकनेके समयमें यह प्रतिज्ञाकी है कि मैं मृतक उत्पन्न होनेवाले बालकको सजीव करूंगा १७ हे पुरुषोत्तम सो यह मृतक उत्पन्नहुआ है हे तात इसको देखो हे लक्ष्मीपति तुम इस उत्तरा सुभद्रा द्रौपदी और मुझस-मेत १८ युधिष्ठिर भीमसेन नकुल सहदेव को रक्षा करने को योग्यहो १६ हे श्री कृष्ण पांडवों के और मेरे प्राण इसकेही आधीन हैं इसीप्रकार मेरे सुसर और पांडवों का पिंड इसमें नियतहै २० हे जनार्द्दन तेरा कल्याण होय अबतुम उस अपने समान बल पराक्रमी मृतक हुये प्यारे अभिमन्यु के प्यारे अभीष्ट को उत्पन्न करो २१ हे शत्रुओं के नाशकरनेवाले श्रीकृष्ण यह उत्तरा पूर्वसमय में प्यारसे अभिमन्युके कहेहुये बचनको निस्सन्देह होकर कहतीहै २२ हे श्रीकृष्ण तब निश्चय करके अभिमन्यु ने उत्तरा से कहा था कि हे कल्याणिनि तेरापुत्र मेरेमामाके कुलको जायगा २३ वृष्णी अन्धक कुलोंमें जाकर धनुर्वेद विचित्र अस्त्र और शुद्धनीतिशास्त्र को पढ़ैगा २४ हे तात उस शत्रुओं के मारनेवाले अजेय अभिमन्युने बड़े विश्वास पूर्व्वक कहा है और यह इसीप्रकार है इस में किसी बातका सन्देह नहीं है २५ हे मधुसूदन हमसब तुमको प्रणामकरके प्रा-र्थना करते हैं कि आप इसकुलकी रक्षाके निमित्त उत्तम कल्याण करो २६ बड़े नेत्रवाली कुन्ती श्रीकृष्णसे इसप्रकारकी बातें कहकर और दुःख से पीड़ित अ-न्य २ स्त्रियां भी भुजाओं को उठाकर पृथ्वी पर गिरपड़ीं २७ हे समर्थ महाराज अश्रुओं से ब्याकुल नेत्रवाली उन सब स्त्रियोंने कहा कि वासुदेवजी के भानजे का पुत्र मृतक उत्पन्न हुआ २८ हे भरतवंशी इस बचन के कहनेपर श्रीकृष्णजी ने उस पृथ्वीपर पड़ीहुई कुन्ती को उठाया और बिश्वास दिया २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिपरीक्षितजन्मकथनेपट्षष्ठितमोऽध्यायः ६६ ॥

# सड़सठवाँ अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि तब कुन्तीके उठनेपर सुभद्रा भाईको देखकर दुःखसे पी-ड़ावान् होकर पुकारी और यह बचन बोली कि हे पुंडरीकाक्ष तुम बुद्धिमान् अर्जुन के पुत्रको देखो जोकि कौरवों के नाश होनेपर बिना अवस्थाके नाश होगया १ । २ अश्वत्थामा ने एकसींक भीमसेन के निमित्त उठाई वह उत्तरा

अर्जुन और मुझपर गिरी ३ हे केशव वही सींक मुझ बिदीर्ण चित्तके हृदय में नियत है जोमैं उस अजेय अभिमन्युको उसके पुत्र समेत नहीं देखतीहूं ४ धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर भीमसेन अर्जुन नकुल और सहदेव इस अभिमन्युके मृतक हुये पुत्रको सुनकर क्या कहेंगे हे श्रीकृष्ण पांडवलोगों को अश्वत्थामा ने नाशकरदिया ५। ६ हे यदुनंदन वह अभिमन्यु निस्संदेह पांचों भाइयों का प्यारा था उस को पाण्डव लोग अश्वत्थामा के अस्त्र से बिजय किया हुआ सुनकर क्या कहैंगे ७ हे जनार्द्दन शत्रुओं के बिजय करने वाले श्रीकृष्ण अभिमन्युके मृतक पुत्र उत्पन्नहोनेके सिवाय बढ़कर कौनसा दुःखहोगा ८ हे श्रीकृष्ण सो अब शिरसे झुकी हुई मैं कुन्ती और यह द्रौपदी तुमको प्रसन्न करती हैं हे पुरुपोत्तम इन सब को देखो ९ हे शत्रुओं के मर्द्दन करने वाले लक्ष्मीपति जब अश्वत्थामा पांडवों के गर्भको नाशकरताथा उस समयपर भी निश्चय करके तुम्हीं क्रोधयुक्तने कहाथा कि १० हे ब्रह्मबन्धो नराधम मैं तुझको कामना से रहित करूंगा और अर्जुनके पौत्रको सजीव करूंगा ११ हे अजेय इसबचनको सुनकर तेरे पराक्रमकी जाननेवाली मैं तुझको प्रसन्न करतीहूं अभिमन्युका पुत्र जी उठे १२ हे श्रीकृष्ण जो तुम इस शुभवचनकी प्रतिज्ञा करके सफल नहीं करोगे तो मुझकोभी मरा हुआही जानो हे वीर जो तेरे जीवते हुये यह अभिमन्युका पुत्र नहीं जीवसक्ताहै तो मैं तुझसे कौनसा प्रयोजन चाहूंगी १३ हे अजेय वीर तुम इस अभिमन्युके मृतक पुत्रको जो कि तेरे समान नेत्ररखनेवालाहै ऐसे सजीवकरो जैसे कि इन्द्र बर्षाकरके खेतीको सजीव करता है १४। १५ हे शत्रुंजय केशवजी तुम धर्मात्मा सत्यवक्ता और सत्यपराक्रमीहो तुम अपने शुभ बचनके पूरे सच्चे करनेको योग्यहो तुम जो चाहौ तो इन मरेहुये तीनोंलोकोंको भी जिलासक्ते हो फिर अपने भानजे के प्यारे मरेहुये पुत्रको कैसे न जिलाओगे १६। १७ हे श्रीकृष्ण मैं तेरे प्रभावको जानतीहूं इसहेतुसे मैं प्रार्थना करती हूं कि यह तुम्हारा पांडवोंके ऊपर बड़ा अनुग्रह होगा १८ मैं तेरी छोटी बहिन हूं मृतक पुत्रवालीहूं और तेरेपास शरण में आई हूं हे महाबाहु इसको जानकर करुणा करके दया करने के योग्यहूं १९॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिपरीक्षितजन्मकथनेसप्तषष्टितमोऽध्यायः ६७॥

---

# अड़सठवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले हे राजेन्द्र दुःख से मूर्च्छावान् इस प्रकार से कहेहुये केशी के मारनेवाले श्रीकृष्ण ने उन सब स्त्री पुरुषों को प्रसन्न करते हुये बड़े उच्चस्वर से कहा कि ऐसाही होय १ तब उस प्रभु पुरुषोत्तम ने इस बचन से उन सब को ऐसे प्रसन्न किया जैसे कि धूप से पीड़ावान् मनुष्य को जल देने से प्रसन्न करते हैं २ इसके पीछे वह श्रीकृष्ण शीघ्रही तेरे पिताके उस महल में प्रवेश करगये हे पुरुषोत्तम जो कि श्वेत मालाओं से विधिके अनुसार शोभायमान था ३ हे महाबाहु सब दिशाओं में रक्खे हुये जल से पूर्णघट घृत तिल तन्दुल औ सरसों ४ चारों ओर रक्खे हुये अग्नि और निर्म्मल अस्त्रों से रक्षित और सेवा के निमित्त स्वरूपवान् वृद्ध स्त्रियों से युक्त ५ चारों ओर को बड़े २ विद्वान् वैद्य चिकित्सकों से व्याप्त था हे बुद्धिमान् उस तेजस्वी ने विधि के अनुसार सावधान मनुष्योंसे नियतकी हुई राक्षसों की नाशकरनेवाली सब द्रव्योंको भी देखा ६।७ आपके पिताका जन्म महल उस प्रकारका देखकर श्रीकृष्णजी प्रसन्न हुये और बहुत श्रेष्ठहै बहुतही श्रेष्ठहै यह वचनकहा तब अत्यन्त प्रसन्न मुख श्रीकृष्णके इस प्रकारके कहनेपर ८ द्रौपदी ने शीघ्र जाकर उत्तरा से यह बचन कहा कि हे कल्याणिनि यह प्राचीन ऋषि बुद्धिसे परे स्वरूपवाला अजेय श्रीकृष्ण तेरा सुसर तेरे सम्मुख आताहै देवताके समान श्रीकृष्णजी के दर्शन करनेकी अभिलाषा रखनेवाली वह देवी नेत्रों में अश्रुभरे होने के कारण गुप्त अर्थ वाले बचन और आंशुओं को रोककर वस्त्र से अपने शरीर को ढक मृतक पुत्र को गोदमें रखकर बैठगई उस तपस्विनी ने उस प्रकार दुःखी हृदयके साथ ९ । १० । ११ उन आते हुये गोबिन्दजी को देखकर करुणा पूर्व्वक विलाप किया कि हे दुष्टसंहारी हार्दाकाश निवासी श्रीकृष्णजी तुम इस बालक से रहित अभिमन्यु को और मुझ को सदैव मृतक देखो १२ हे मधुसूदन वीर श्रीकृष्ण मैं तुमको शिरसे प्रणाम पूर्व्वक प्रसन्न करती हूं अश्वत्थामा के अस्त्र से भस्म हुये इस मेरे पुत्र को सजीव करो १३ हे पुण्डरीकाक्ष जो धर्मराज और भीमसेन और आपसे मैंने कोई वचन कहा होय तो हे प्रभु यह वज्र मुझको मारडाले मैंहीं मरजाऊं परन्तु यह बालक ऐसी दशावाला न होय १४ । १५ निर्दय बुद्धिवाला अश्वत्थामा ब्रह्मअस्त्र से

इस गर्भ में वर्त्तमान बालक के मारने से क्या फलपावेगा। १६ हे शत्रुहन्ता गोविन्दजी सो मैं तुमको शिरसे दण्डवत् पूर्व्वक प्रसन्न करके प्रार्थना करतीहूं कि जो यह बालक नहीं जियेगा तो मैं अपने प्राणों को त्यागूंगी १७ हे माधवजी इस बालक में मेरे बहुत मनोरथ थे वह सब अश्वत्थामा ने नाश किये अब मैं जीकर क्या करूंगी १८ हे श्रीकृष्णजी मेरी सलाह थी कि भरीगोद से तुझ जनार्द्दन श्रीकृष्ण को दण्डवत् करूंगी १६ वह भी विपरीत हुआ हे मधुसूदन निश्चय करके वह चपल नेत्रवाला आप का अत्यन्त प्यारा था तुम उसके पुत्र को ब्रह्मअस्त्र से गिरा हुआ देखो २०। २१ यह उस प्रकार का उपकार भूलजाने वाला और निर्द्दय है जैसा कि इसका वह पिताथा जो कि पाण्डवों की लक्ष्मी को त्याग करके यमलोक को गया २२ हे बीर केशवजी युद्धके मुखपर अभिमन्युके मरनेपर मैंने यह प्रतिज्ञाकरी थी कि मैं थोड़ेही कालपीछे तेरे पास आऊंगी २३ हे श्रीकृष्णजी बनको प्यारा जाननेवाली निर्द्दयी मैंने उस कर्म्म को नहीं किया अब वहां जानेवाली मुझ को वह अभिमन्यु क्या कहेगा २४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअष्टषष्टितमोऽध्यायः ६८ ॥

# उनहत्तरवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि वह महादुखी पुत्रकी चाहनेवाली तपस्विनी उत्तरा बिक्षिप्तोंके समान अनेक प्रकारके करुणा बिलाप करके पृथ्वीमें गिरपड़ी १ दुखसे पीड़ावान् कुन्ती और भरतबंशियों की सब स्त्रियां उस मृतक पुत्रवाली पृथ्वीपर पड़ीहुई उत्तरा को देखकर पुकारीं २ हे राजेन्द्र पाण्डवोंका महल दो मुहूर्त्ततक दर्शनके अयोग्य और शोकोंके शब्दोंसे शब्दायमानरहा ३ हे वीर जनमेजय वह उत्तरा पुत्रके शोकसे पीड़ितहोकर दोघड़ीतक अचेतरही फिर उस उत्तराने सचेतहोकर पुत्रको बगलमें लेकर यह बचन कहा ४। ५ कि हे धर्मज्ञके पुत्र तुम अधर्मको नहीं जानतेहो जो श्रीकृष्णको दण्डवत् नहीं करतेहो हे पुत्र तुम जाकर अपने पितासे यह मेरा बचनकहो कि हे बीर किसी दशामें भी बिना समय के जीवोंका मरना असम्भवहै ६। ७ जो मैं अब यहां तुझ पुत्र और अपने पतिसे रहितहोकर अकुशलता और निर्द्धनताको प्राप्तहोकर मरने के योग्यहोकर भी जीवतीहूं ८ हे महाबाहु अथवा धर्मराजसे आज्ञालेकर मैं असह्य बिषको खाऊंगी

वा अग्नि में प्रवेश करूंगी ६ हे तात यह मरना बड़ाही कठिनहै जो मुझ पुत्र और पतिसे रहितका हृदय खण्डखण्ड नहीं होता १० हे तात उठो इस दुःखी पीड़ावान् आपत्तियुक्त शोकसागरमें डूबीहुई परदादीको देखो ११ तपस्विनी आर्या सुभद्रा द्रौपदी और ब्याधासे घायल मृगीके समान मुझ दुःखसे पीड़ावान्को देखो १२ उठो और लोकनाथ आनन्दस्वरूपका मुख जो कि कमलदल के समान चपल नेत्र रखनेवालाहै उसको देखो १३ इसके पीछे सब स्त्रियोंने इसप्रकार बिलापकरनेवाली पृथ्वीपर गिरीहुई उस उत्तराको देखकर फिर उठाया १४ तब राजा बिराटकी पुत्रीने धैर्यसे उठकर हाथजोड़कर श्रीकृष्णजीको पृथ्वीपर पड़कर दंडवत्करी १५ उस पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजीने उसके बड़ेबिलापको सुनकर आचमन करके उस ब्रह्मअस्त्रको दूरकिया १६ उस पवित्रात्मा अबिनाशी श्रीकृष्णने उस के जीवनकी प्रतिज्ञाकरी और सब संसारको सुनाकर कहा कि १७ हे उत्तरा मैं मिथ्या नहीं कहताहूं यह सत्यही होगा मैं इसको सब जीवोंके देखतेहुये सजीव करताहूं १८ मैंने जैसे पूर्व स्वतन्त्र दशाओंमेंभी मिथ्या नहीं कहाहै और कभी युद्ध से मुखभी नहीं मोड़ा है इसीप्रकार यह सजीव होजाय १९ जैसे कि धर्म्म और मुख्यकर ब्राह्मण मेरे प्यारेहैं उसीप्रकार मृतक उत्पन्नहुआ यह अभिमन्यु का पुत्रभी जीउठे २० जैसे कि मैं कभी अर्जुनसे बिरोधता नहीं किया चाहता हूं उस सत्यतासे यह मृतक बालक जीउठे २१ जिसप्रकार सत्यता और धर्म सदैव मुझमें नियतहै उसीप्रकार यह माराहुआ अभिमन्युका बालक पुत्र जीउठे २२ जैसे कि कंस और केशीको मैंने धर्मसे मारा अब उसीसत्यतासे यह बालक भी जीउठे २३ हे भरतर्षभ बासुदेवजीके इस बचनके कहतेही वह बालक चैतन्य होकर धीरे धीरे चेष्टा करने लगा २४॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिपरीक्षित्सञ्जीवनेएकोनसप्ततितमोऽध्यायः ६९॥

## सत्तरवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि हे राजा जब श्रीकृष्णजी ने ब्रह्मअस्त्रको निवृत्त किया तब वह महल तेरे पिताके तेजसे अत्यन्त प्रकाशमानहुआ १ इसके पीछे सब राक्षस उस स्थानको छोड़ छोड़कर नाशवान्होगये और अन्तरिक्षमें यह शब्द

हुआ कि हे केशवजी धन्य है धन्यहै २ तव वह प्रकाशमान अस्त्रभी ब्रह्माजीके पासगया हे राजा फिर तेरे पिता ने प्राणों को प्राप्त किया ३ और वह बालक पराक्रम और प्रसन्नताके समान चेष्टा करनेलगा इसके पीछे वह भरतबंशियोंकी स्त्रियां प्रसन्नहुईं ४ फिर गोविन्दजीकी आज्ञासे ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया फिर उन सब प्रसन्न स्त्रियोंने श्रीकृष्णजी की प्रशंसाकरी ५ जैसे कि नौका को पाकर पार पहुँचनेवाला प्रसन्न होताहै उसीप्रकार भरतवंशियोंकी स्त्रियां कुन्ती द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा ६ और नरोत्तम लोगोंकी अन्य अन्य स्त्रियां प्रसन्न चित्त होगईं वहांपर मल्ल नट ज्योतिपी सौख्य शावक ७ सूत और मागधों के समूहों ने उन श्रीकृष्णजीकी स्तुतिकरी हे भरतबंशियोंमें श्रेष्ठ कौरवोंकी प्रशंसा कीर्ति और आशीर्वादोंसेभी श्रीकृष्णजीको प्रसन्न किया ८ फिर प्रसन्न चित्त उत्तराने अपने पुत्र समेत उठकर समय के अनुसार श्रीकृष्णजीको दण्डवत्करी तब प्रसन्नहोकर श्रीकृष्णजीने बहुतसे रत्न उसको दिये और इसीप्रकार अन्य अन्य यादवों ने भी दिये हे महाराज प्रभु सत्यसङ्कल्प श्रीकृष्णजी ने इस तेरे पिता का नाम नियत किया अर्थात् अभिमन्यु का पुत्र नाशयुक्त कुलमें उत्पन्न हुआ है ९ । १० । ११ इसहेतुसे इसका नाम परीक्षितहो हे राजा फिर वह तेरा पिता समयके अनुसार बड़ाहुआ और सब संसारके चित्तका प्रसन्न करनेवालाहुआ हे वीर भरतवंशी जवतेरा पिता एकमहीने का हुआ १२ । १३ तब पांडव बहुत रत्नों को लेकर आये सब श्रेष्ठ वृष्णी लोग उन समीप आनेवाले पांडवों को सुनकर नगरसे बाहर निकले १४ मनुष्योंने मालाओं के समूह बिचित्र पताका और नाना प्रकार की ध्वजाओंसे हस्तिनापुरको अलंकृत किया पुरवासी और राज्यसेवकों ने अपने २ स्थानों को अच्छे प्रकार से सुशोभित किया फिर बिदुरजीने पांडवोंके प्रिय अभीष्टोंकी इच्छासे देवमन्दिरों में अनेकप्रकारके पूजन करने की आज्ञादी और राजमार्ग पुष्पोंसे अलंकृतहुये वह नगरभी समुद्र की समान शब्दायमान होकर शोभायमानहुआ नाचनेवाले नर्तक और गानेवालोंके शब्दोंसे १५ । १६ । १७ । १८ वह नगर कुबेरभवनों के समान शोभायुक्त हुआ हे राजा स्त्रियों समेत सब बन्दीजनोंसे १९ जहां तहां एकान्त स्थानभी शोभायमानहुये तब चारोंओरको वायुसे कंपायमान पताकाओंने २० उत्तर कौरव और दक्षिण कौरव नाम सूक्ष्म देशोंको दिखलाया उस समय राज्यके प्रबन्धक

लोगों ने मनादी की कि अब सब देशों की बिहारभूमि रत्न और भूषणों से अ-
लंकृत होय २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिके व्वृष्णिपांडवागमनेसप्ततितमोऽध्यायः ७० ॥

# इकहत्तरवां अध्याय ॥

शत्रुबिजयी बासुदेवजी उनसमीप आनेवाले पांडवों को सुनकर प्रधान म-
न्त्री और नातेदारों समेत चले १ वह सब मिलकर दर्शन की इच्छासे न्यायके
अनुसार आगे चलके लेनेको गये हे राजा वह पांडव धर्मके अनुसार वृष्णियों
से मिलकर २ एक साथही हस्तिनापुर में आये उस बड़ी सेनाके रथोंकी नेमि
और घोड़ोंके खुरोंके शब्दोंसे सब पृथ्वी आकाश और स्वर्ग पूर्ण होगये तब वह
प्रसन्नचित्त पांडव प्रधान और मित्रों समेत धनोंको आगे करके अपने पुरमें प्र-
विष्टहुये और न्यायके अनुसार राजा धृतराष्ट्र से मिलकर ३ । ४ । ५ अपना
नाम बर्णन करनेवालों ने उसके दोनोंचरणों को दंडवत्किया हे भरतर्षभ फिर
उनलोगोंने धृतराष्ट्रके पीछे गांधारी ६ और कुन्ती को नमस्कार किया फिर वह
बीर बिदुर और युयुत्सुको पूजकर ७ उनसे पूजित होकर शोभायमान हुये हे
भरतबंशी तब उन बीरोंने तेरे पिताके उस अत्यन्त बिचित्र और बड़ेअद्भुत अ-
नुपम जन्मको सुना और ज्ञानी बासुदेवजीके उस कर्मको सुनकर ८ । ९ पूजन
के योग्य देवकीनन्दन श्रीकृष्णका पूजनकिया फिर थोड़ेदिनोंके पीछे बड़े तेज-
स्वी सत्यवती के पुत्र ब्यासजी १० हस्तिनापुर नगरमें आये तब सब पांडवोंने
वृष्णी और अंधकों समेत न्यायके अनुसार उनका पूजनकिया ११ और बर्त्त-
मानताकरी फिर वहां धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने नाना प्रकार की कथाओं को
अच्छी रीतिसे कहकर १२ ब्यासजी से यह बचन कहा कि हे भगवन् जो यह
रत्न लायेगयेहैं वह सब आपहीकी कृपासे हैं १३ हे मुनि श्रेष्ठ मैं उन रत्नादिकों
को अश्वमेधनाम यज्ञमें ब्ययकिया चाहताहूं और आपसे उसकी आज्ञाचाहता
हूं हम सब आपके और महात्मा श्रीकृष्णजीके आधीन हैं १४ ब्यासजी बोले
कि जो शीघ्र करनाचाहतेहो तो मैं तुमको आज्ञादेताहूं कि करो दक्षिणावाले
अश्वमेध यज्ञसे विधिके अनुसार पूजनकरो १५ हे राजेन्द्र अश्वमेध यज्ञ सब
पापोंका नाशकरनेवाला है तुम उस यज्ञसे पूजन करके निस्सन्देह पापोंसे छूट

जावोगे १६ बैशंपायनबोले कि हे कौरव्य ब्यासजीके इस बचनको सुनकर उस कौरवराज युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ करने का बिचार किया १७ वार्त्तालाप करने में सावधान राजा युधिष्ठिरने वह सब ब्यासजीको जतलाकर और बासुदेवजी से मिलकर यह बचनकहा १८ हे पुरुषोत्तम देवीदेवकी तुमसरीखे शुभकीर्त्तिमान् पुत्रके होनेसे सुपुत्रवती बिख्यातहै हे महाबाहु जो मैं आपसेकहूं हे अबिनाशी इस स्थानपर उस कार्य्य को करो १९ हे यादवनन्दन हम आपके प्रभावसे इकट्ठे भोगोंको भोगते हैं आपकेही पराक्रम और बुद्धिसे यह पृथ्वी बिजयहुई है २० तुम अपनेको दीक्षितकरो आपही हमारे परमगुरूहो हे श्रीकृष्णजी आपके यज्ञ करनेपर मैं पापोंसे मुक्त होजाऊंगा २१ तुम्हीं यज्ञहो अबिनाशीहो सर्वज्ञहो तुम धर्महो प्रजापतिहो और तुम्हीं सबजीवधारियों के लयस्थानहो यह मेरी दृढ़बुद्धि है २२ बासुदेवजी बोले हे शत्रुबिजयी महाबाहु तुम्हीं ऐसा कहने के योग्यहो तुम सबजीवोंकी गतिहो यह मेरी दृढ़बुद्धिहै २३ अब तुम कौरववीरों के धर्मसे बिराजमानहो हे राजा हम तुम्हारे आज्ञाकारी हैं तुम हमारे राजा और परमगुरू हो २४ मेरी आज्ञा से तुम पूजनकरो यह यज्ञ तुमसे प्राप्तहोनेके योग्यहै हे भरतबंशी आप जहां चाहैं तहां हमको कार्य्य में प्रवृत्त करो २५ हे निष्पाप राजा युधिष्ठिर मैं तुझसे सत्य सत्य प्रतिज्ञा करताहूं मैं तेरी सब आज्ञाओं को करूंगा तेरे पूजन करने पर भीमसेन अर्ज्जुन नकुल और सहदेवभी पूजन करनेवाले होयँगे २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिब्यासागमनेएकसप्ततितमोऽध्यायः ७१ ॥

# बहत्तरवाँ अध्याय ॥

बैशम्पायन बोले कि श्रीकृष्ण के इसप्रकारके बचनों को सुनकर धर्म्मपुत्र बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने ब्यासजी को समक्ष में करके यह बचन कहा १ कि जब आप अश्वमेधयज्ञका समय सिद्धान्तसे जानतेहो तब मुझको दीक्षितकरो मेरा यज्ञ आपके आधीनहै २ ब्यासजी बोले कि हे कुन्ती के पुत्र मैं पैल और याज्ञवल्क्य तीनों मिलकर इस सब यज्ञ को करेंगे जैसी जैसी कि बिधि समय के अनुसार है ३ चैत्रकी पूर्णमासी के दिन तेरी दीक्षाहोगी हे पुरुषोत्तम तुम यज्ञ के निमित्त सब सामग्री इकट्ठी करो ४ अश्वविद्याके ज्ञाता सूत और उस बिद्या

के जाननेवाले ब्राह्मणभी तेरी यज्ञसिद्धिके निमित्त उस पवित्र घोड़ेकी परीक्षा करेंगे ५ शास्त्रके अनुसार उस घोड़ेको छोड़कर फिर वह घोड़ा तेरी प्रकाशमान शुभकीर्तिको दिखाता सागराम्बरा पृथ्वीपर घूमेगा ६ वैशम्पायन बोले हे राजेंद्र इसप्रकारके व्यासजीके वचनोंको सुनकर उस पृथ्वीपति युधिष्ठिरने बहुतअच्छा कहकर जैसा जैसा कि ब्रह्मवादी व्यासजीने कहा वह सब किया ७ हे राजा सब सामानभी तैयारहुये तब उस बड़े बुद्धिमान् धर्मपुत्र युधिष्ठिरने सामग्री इकट्ठी करके ८ व्यासजीसे प्रार्थनाकरी फिर महातपस्वी व्यासजीने धर्मपुत्र युधिष्ठिर से कहा ९ कि हे कौरव हम समय और योग के अनुसार तेरे दीक्षित करने में तैयारहैं खड्ग लकड़ी कूर्च अर्थात् आसनके निमित्त पूर्णकुशा और जो अन्य प्रकारकी वस्तुहैं वहभी स्वर्णमयी होनीचाहिये और जो जो सुवर्णकी वस्तुहोयँ उनकोभी तैयारकरवाओ और अब विधिपूर्वक घोड़ाभी पृथ्वीपर छोड़दो१०।११ वह घोड़ा शास्त्र और विधिके अनुसार अच्छी रीति से रक्षितहोकर चलेगा १२ युधिष्ठिर बोले कि हे ब्राह्मण जिसप्रकार यह छोड़ाहुआ घोड़ा इच्छानुसार इस पृथ्वीपर घूमेगा वह तन्त्र बिधान कीजिये १३ हे मुनि पृथ्वीपर घूमनेवाले स्वेच्छाचारी उस घोड़ेकी कौन रक्षा करेगा आप उसके कहनेके योग्यहो १४ वैशम्पायन बोले हे राजेंद्र इसप्रकार युधिष्ठिरके वचनको सुनकर व्यासजी ने उत्तर दिया कि भीमसेनका छोटा भाई सबधनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ १५ विजयका अभ्यासी क्षमावान् बुद्धिमान् जो अर्जुनहै वह इसकी रक्षाकरेगा निवात कवचोंका मारने वाला वह अर्जुन पृथ्वीकेभी बिजयकरनेको समर्थहै १६ उसके पास दिव्यअस्त्र दिव्यकवच दिव्यधनुष् और दिव्यही दो तूणीरहैं वह उसके पीछे जायगा १७ हे श्रेष्ठ राजा वही धर्म अर्थ में कुशल सब विद्याओंमेंभी पण्डित अर्जुन शास्त्र की रीतिके अनुसार तेरे घोड़ेको घुमावेगा १८ वह श्यामकमललोचन महाबाहु राजपुत्र अभिमन्युका पिता अर्जुन इसकी रक्षाकरेगा १९ हे राजा तेजस्वी और बड़े पराक्रमी भीमसेन और नकुल देशकी रक्षामें समर्थ हैं २० हे कौरव बुद्धिमान् बड़ा शुभ कीर्तिमान् सहदेव सबघरके कामोंका प्रबन्धकरेगा २१ इसप्रकार कहेहुये युधिष्ठिर ने सब बातोंको न्याय के अनुसार किया और अर्ज्जुनकोभी घोड़ेकी रक्षाके निमित्त शिक्षाकरी २२ युधिष्ठिर बोले हे वीर अर्जुन यहांआओ इस घोड़ेकी रक्षाकरो क्योंकि सिवाय तुम्हारे दूसरा कोई मनुष्य घोड़ेकी रक्षाके

योग्य नहीं है २३ हे पापोंसे रहित महाबाहु जो राजा तेरे सम्मुखहोयँगे उनके साथ में जैसे प्रकारसे युद्ध न होय वही कामकरना चाहिये २४ हे महाबाहु आप को सबराजाओंसे यह कहनाभी योग्यहै कि यह मेरा यज्ञ सबप्रकार राजाओंसे ही है इस निमित्त समयपर आइये २५ वैशम्पायन बोले कि उस धर्मात्माने इस प्रकार अर्जुनसे कहकर भीमसेन और नकुलको नगर की रक्षापर नियत किया २६ तब युधिष्ठिर ने राजा धृतराष्ट्रसे पूछकर युद्ध करनेवालोंके अधिपतिं सहदेव को घरके कार्य्योंके प्रबन्धकरने में नियत किया २७ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिद्विसप्ततितमोऽध्यायः ७२ ॥

# तिहत्तरवाँ अध्याय ॥

वैशंपायन बोले इसके अनन्तर दीक्षा वर्त्तमान होनेके समय उन बड़े ऋत्विजों ने विधि के अनुसार राजाको अश्वमेध यज्ञके निमित्त दीक्षित किया १ वह महातेजस्वी धर्म्मराज पांडवनन्दन युधिष्ठिर दीक्षित होके और पशु बन्धादिक धर्मों को करके ऋत्विजों समेत शोभायमान हुआ २ आप बड़े तेजस्वी ब्रह्मवादी व्यासजी ने अश्वमेध के लिये शास्त्रकी विधिसे घोड़ेको छोड़ा ३ हे राजा तब वह सुवर्ण की माला और कंठा रखनेवाला दीक्षित धर्म्मराज युधिष्ठिर देदीप्य अग्निके समान शोभायमान हुआ ४ फिर वह काला मृगचर्म पट बस्त्र से अलंकृत दंड हाथमें लिये तेजस्वी धर्मपुत्र ऐसे शोभित हुआ जैसे कि यज्ञमें प्रजापति शोभित हुयेथे ५ हे राजा उसी प्रकार एकसी पोशाक रखनेवाले इसके सब ऋत्विज् और अर्जुन भी देदीप्य अग्निके समान शोभायमान हुआ ६ हे भरतबंशी वह श्वेत घोड़े रखनेवाला अर्जुन उस श्यामकर्ण घोड़के पीछे चला ७ हे राजा प्रसन्नतायुक्त गोधांगुलित्र अर्थात् हस्तत्राणसे हाथोंको शोभित करनेवाला अर्जुन गांडीव धनुष्को टंकारता उस घोड़े के पीछे चला ८ । ९ तब उस कौरवोत्तम चलनेवाले अर्जुनके देखनेके अभिलाषी नगरके बाल वृद्ध युवा सब स्त्री पुरुष वहां आये १० उस घोड़ेको और उसके पीछे चलनेवाले अर्जुन के देखने के अभिलाषी लोगोंके परस्पर मर्दनसे ऊष्मा उत्पन्नहुई ११ हे महाराज इसके पीछे कुन्तीपुत्र अर्जुनके देखने वाले मनुष्यों के यह शब्द दिशा और आकाशको व्याप्त करके प्रकटहुए १२ कि यह तेजस्वी घोड़ा जाताहै १३ जिस

के पीछे २ महाबाहु अर्जुन धनुष्को स्पर्श करता हुआ जाताहै यह कहकर आशीर्वाद देनेलगे कि हे भरतबंशी तेरा कल्याण होय तुम कुशलपूर्व्वक जाओ और फिर आनन्द पूर्व्वक आओ इस प्रकार कहनेवाले उन मनुष्योंकी वार्त्ताओं को बड़े बुद्धिमान् अर्जुनने सुना १४ । १५ हे महाराज फिर दूसरे मनुष्योंने यह वचन कहा कि यह धनुष् जो दृष्ट पड़ताहै इस धनुष्को हमने किसी युद्धमें भी नहीं देखा १६ यह गांडीवधनुष् भयकारी शब्दोंका रखनेवाला प्रसिद्ध है निर्भयता पूर्व्वक मार्गमें कुशलसे जाओ विघ्न कोई मतहो १७ इस तेरे लौटने को देखेंगे निश्चय करके तू मंगलपूर्व्वक फिर आवेगा बड़े बुद्धिमान् भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुनने मनुष्योंके और स्त्रियोंके ऐसे२ अनेक आशीर्वादात्मक वचनों को सुना याज्ञवल्क्यका शिष्य जो कि यज्ञकर्म में सावधान १८।१६ और वेदमें पूर्णथा वह शान्तिके निमित्त अर्जुनके साथचला हे राजा बहुत से वेदके पारगामी ब्राह्मण और क्षत्रियलोग उस महात्माके पीछेचले २० अर्थात् वह सब धर्मराजकी आज्ञासे विधिपूर्व्वक साथचले हे महाराज यह घोड़ा पांडवोंके अस्त्रों के तेजसे बिजयकिया हुआ पृथ्वीपर किसी देशमें चला २१ हे वीर वहां अर्जुन के जो युद्धहुये उन विचित्र और बड़े युद्धों को तुमसे कहताहूं २२ अर्थात् हे राजा उस घोड़े ने पृथ्वी की परिक्रमा इस क्रमसे प्रारंभकरी कि प्रथम उत्तरकी ओर चला २३ वहां वह श्रेष्ठ घोड़ा राजाओंके देशोंको मर्दन करताहुआ धीरे२ चला तब महारथी अर्जुनभी उसके पीछे चला २४ हे महाराज वहां वह असंख्यक्षत्रिय जिनके बांधव पूर्व्वयुद्धमें मारेगये थे युद्ध करने लगे २५ किरात यवन आदिक बहुत धनुषधारी और अनेक प्रकारके अन्य २ म्लेच्छ जो कि पूर्व युद्धमें विजय कियेगये थे २६ और युद्ध दुर्मद अत्यन्त प्रसन्न चित्त सवारी रखने वाले बहुतसे आर्य राजालोग भी पाण्डव अर्जुनके सम्मुख आये २७ हे राजा इस प्रकार जहां तहां अर्जुन का युद्ध बहुत देश के राजाओं से हुआ २८ हे निष्पाप राजा जनमेजय अर्जुनके जो युद्ध दोनों ओर से बड़े प्रबल और अपूर्व्व हुये उनको मैं तुमसे कहताहूं २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअश्वानुसारेत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ७३ ॥

# चौहत्तरवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि महारथी प्रसिद्धपराक्रमी पाण्डवों के हाथसे जो त्रिगर्तदेशी मारेगये उनके पुत्र और पौत्रोंसेभी अर्ज्जुनका युद्धहुआ १ उन वीरों ने देशकी हद्दपर आनेवाले यज्ञके उत्तम घोड़ेको जानकर कवचधारी शस्त्रयुक्त होकर चारोंओरसे घेरलिया २ हे राजा उन तूणीरबांधनेवाले रथ सवारोंने अच्छे अलंकृत घोड़ों के द्वारा घोड़ेको घेरकर पकड़ना प्रारम्भ किया ३ हे शत्रुओं के विजयकर्ता इसके पीछे वहां अर्जुनने उन्होंके कर्मकरनेकी इच्छाको विचारकर मधुरवाणी के साथ उन वीरोंको निषेधकिया ४ परन्तु तमोगुण रजोगुणसे आच्छादित बुद्धिवाले उन सबने उसकी शिक्षाको तिरस्कार करके उसको बाणोंसे घायल किया तब अर्जुन ने उनको रोंका ५ हे भरतवंशी फिर हँसतेहुये अर्जुन ने उनसे कहा कि हे धर्मके न जाननेवालो लौटजाओ जीवनही अच्छाहै क्योंकि मुझको चलते समय धर्मराज ने निषेध करदिया है कि हे अर्जुन जिनके बान्धव मारे गये हैं उन राजाओं को तू मतमारियो ६ । ७ इसीसे उस अर्जुन ने बुद्धिमान् धर्मराजके वचनको स्मरण करके उनसे कहा कि लौटो परन्तु वह नहीं लौटे ८ इसके पीछे युद्धमें अर्जुन अपने बाणजालों के द्वारा त्रिगर्त्त के सूर्य्यवर्मा नामराजाको विजय करके हँसनेलगा ९ फिर वह त्रिगर्त्तदेशी रथ और रथकी नेमियोंके शब्दों से दिशाओं को शब्दायमान करते अर्ज्जुनके सम्मुख दौड़े १० इसके पीछे अस्त्रकी तीव्रता दिखाते हुये सूर्यवर्म्मा ने टेढ़े पर्ववाले सौ बाण अर्ज्जुनपर छोड़े ११ इसीप्रकार जो दूसरे धनुर्द्धारी उनके पीछेकी ओर थे उनलोगोंने भी अर्ज्जुनके मारनेकी इच्छासे बाणोंकी वर्षाकरी १२ हे राजा फिर पाण्डव अर्ज्जुनने धनुषकी प्रत्यञ्चा से छोड़ेहुये बहुतसे बाणों से उनके बहुत बाणों को काटा तब वह पृथ्वीपर गिरपड़े १३ फिर उनका छोटा भाई युवावस्था तेजस्वी केतुवर्मा नाम अपने भाईके अर्थ उस कीर्त्तिमान् अर्जुनसे लड़नेलगा १४ युद्धमें सम्मुख आनेवाले उस केतुवर्माको देखकर शत्रुहन्ता अर्जुनने तीक्ष्ण बाणोंसे घायल किया १५ केतुवर्मा के घायल होनेपर महारथी धृतवर्माने रथकी सवारीसे शीघ्र सम्मुख आकर बहुतसे बाणोंसे अर्ज्जुनको ढकदिया १६ महातेजस्वी पराक्रमी अर्जुन उस बालक धृतवर्माकी तीव्रताको देखकर अत्यन्तप्रसन्न

हुआ १७ तब अर्ज्जुनने उसको बाणलेता और चढ़ाताहुआ नहीं देखा किन्तु बाणोंको छोड़ताही देखा १८ युद्धमें अत्यन्त प्रसन्नहोकर अर्जुनने दोमुहूर्ततक मनसे उस धृतवर्माकी प्रशंसाकरी १९ फिर मन्द मुसकान करते कौरववीर महाबाहु अर्ज्जुनने पतङ्ग के समान उस क्रोधयुक्त बालकको प्रीतिपूर्व्वक प्राणों से रहित नहीं किया २० तब उसप्रकार बड़े तेजस्वी अर्जुनसे रक्षित धृतवर्मा ने प्रकाशित बाणको अर्जुनपर छोड़ा २१ वह अर्ज्जुन शीघ्रही उस बाणसे हाथपर घायलहुआ और गाण्डीवधनुषभी हाथ से छूटकर पृथ्वीपर गिरा २२ हे समर्त्थ भरतवंशी अर्जुनके हाथसे गिरतेहुये धनुषका रूप इन्द्रधनुषके समान हुआ २३ उस बड़े युद्धमें उस बड़े दिव्यधनुषके गिरनेपर धृतवर्मा बड़े शब्दके साथ हँसा २४ तब तो क्रोधसे पीड़ित अर्ज्जुन ने हाथसे रुधिरको पोंछकर उस दिव्यधनुष को लिया और बाणोंकी बर्षा करनेलगा २५ तब उस कर्मकी प्रशंसा करनेवाले नानाप्रकारके जीवधारियों के हलहला शब्द स्वर्गके स्पर्श करनेवाले हुये २६ इसके पीछे त्रिगर्तदेशी शूरबीरोंने उस कालरूप अत्यन्त क्रोधयुक्त अर्ज्जुन को देखकर चारोंओरसे घेरलिया २७ और धृतवर्माकी रक्षाके निमित्त उसके सम्मुख जाकर बाणोंकी बर्षाकरी वहां अर्जुन क्रोधयुक्त हुआ २८ उस समय अर्जुन ने इन्द्रवज्रके समान बहुतसे लोहेके बाणोंसे उनके अठारह शूरबीरों को बड़ी शीघ्रतासे मारा २९ उन छिन्न भिन्नोंको देखकर हँसतेहुये शीघ्रता करनेवाले अर्जुन ने बिषैले सर्पोंकी सूरत बाणोंसे मारा ३० हे राजा अर्जुनके बाणोंसे पीड़ामान टूटे चित्त वह सब त्रिगर्त्तदेशी दिशाओं को भागे ३१ और शपथ खानेवाले क्षत्रियोंके मारनेवाले उस पुरुषोत्तम अर्जुनसे कहा कि हम सब तेरे आज्ञाकारी हैं और तेरी आधीनतामें नियतहैं ३२ हे कौरवनन्दन अर्जुन हम झुकेहुये नियत आज्ञाकारियोंको आज्ञादो हम तेरे सब अभीष्टोंको करेंगे ३३ तब अर्जुनने उनके इस बचनको सुनकर उनसे कहा कि हे राजालोगो तुम अपने जीवनकी रक्षाकरो और मेरी आज्ञाको स्वीकार करो ३४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिअश्वानुसारेचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ७४ ॥

# पचहत्तरवां अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि इसके पीछे वह उत्तम घोड़ा प्राग्ज्योतिष देश में पहुंच

कर घूमा वहां भगदत्तका पुत्र जोकि युद्ध में बड़ासाहसी था नगरसे बाहर निकला १ हे भरतबंशी वहराजा बज्रदत्तदेशकी सीमापर बर्त्तमान घोड़ेको देखकर युद्ध करनेलगा २ और नगरसेबाहर निकलकर आतेहुये घोड़ेको लेकर नगरकी ओरको चला तब कौरवों में श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुन उसको देखकर गांडीव धनुष को टंकारता शीघ्रही उसके सम्मुख गया ३। ४ फिर गांडीव धनुष से छूटेहुये बाणोंसे मोहित वह बीर राजा उस घोड़ेको छोड़कर अर्जुनके सम्मुख ५ नगर में प्रवेशकर अपने कवच को धारण करके बड़े हाथीपर चढ़कर निकला ६ वह महारथी मस्तक पर पांडुरबर्ण छत्रको धारण किये चलायमान श्वेत चमरसे शोभायमानथा ७ फिर उसने पांडवोंके महारथी अर्जुन को पाकर लड़कपन और अज्ञानतासे उसे युद्धमें बुलाया ८ उस क्रोधयुक्त राजाने गंडस्थलसे मद झाड़ने वाले पर्बताकार हाथीको अर्जुनके ऊपरपेला ९ वह बड़े बादल के समान मद झाड़नेवाला शत्रुके हाथियों का रोकनेवाला शास्त्रके अनुसार तैयार युद्ध में दुर्म्मद और स्वाधीनता में न होनेवाला था १० तब उस राजा के अंकुशसे चलायमान वह बड़ा पराक्रमी हाथी बादल की समान उड़ताहुआ दिखाई पड़ा ११ हे भरतबंशी राजा जनमेजय उस पृथ्वीपर नियत क्रोधयुक्त अर्जुन ने उस आते हुये हाथीको देखकर उस गजारूढ़से युद्धकिया १२ तब क्रोधयुक्त बज्रदत्त ने टीड़ियोंके समान शीघ्रगामी अग्निके समान तोमरों को शीघ्र अर्जुन पर छोड़ा १३ तब अर्जुनने गांडीव से उत्पन्न आकाशगामी बाणोंसे आकाशहीमें उन अपने पास न आनेवाले बाणोंको दो दो तीन २ खंडकरदिये उस भगदत्त के लड़केने उस प्रकार काटेहुये उन तोमरोंको देखकर शीघ्रही पारहोनेवाले बाणोंको अर्जुनपर चलाया १४। १५ तदनन्तर अत्यंत क्रोधयुक्त अर्जुनने शीघ्रही सुबर्णपुंख सीधे चलनेवाले बाणोंको उस बज्रदत्त पर चलाया १६ उस बड़े युद्ध में बाणोंसे घायल और अत्यन्त घातित वह महातेजस्वी बज्रदत्त पृथ्वीपर गिरपड़ा परन्तु स्मरणशक्ति और चित्तकी सचेतताने उसको त्याग नहीं किया १७ इसके पीछे उस सावधान विजयाभिलाषी राजाने उस श्रेष्ठतम हाथीको युद्ध में फिर अर्जुनपर भेजा १८ इसके पीछे अत्यन्त क्रोधयुक्त अर्जुन ने अग्निके समान बिषैले सर्पोंकी समान बाणोंको उसपर चलाया १९ तब उससे घायल वह बड़ाहाथी रुधिर को गिराता ऐसे शोभायमान हुआ जैसे कि जल रखनेवाला

गेरूकापर्वत धातुओंसे युक्त बहुतसे झिरनोंको गिराताहुआ शोभितहोताहै २०॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिअश्वानुसारेपंचसप्ततितमोऽध्यायः ७५॥

# छिहत्तरवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले हे भरतर्षभ इस प्रकार से अर्ज्जुनका वह युद्ध राजा वज्रदत्तके साथ तीन दिनतक ऐसा हुआ जैसे कि इन्द्र का और वृत्रासुर का युद्ध हुआ था १ फिर चौथे दिन बड़ा पराक्रमी वज्रदत्त बड़े शब्द से हँसा और यह बचन बोला कि २ हे अर्जुन ठहरो मुझसे जीवता नहीं छूटेगा मैं तुझको मारकर विधिके अनुसार पिताका तर्पण करूंगा ३ तेरे पिताका मित्र मेरा पिता भगदत्त तेरे हाथसे मारा गया इस वृद्ध व्यवहारके द्वारा तुम मुझ बालकसे युद्ध करो ४ हे कौरव अत्यन्त क्रोधयुक्त राजा वज्रदत्तने इस प्रकार से कहकर हाथी को अर्जुनके ऊपर भेजा ५ बुद्धिमान् वज्रदत्त का भेजा हुआ गजराज आकाश को उछलता अर्जुन की ओर को दौड़ा ६ उस गजराज ने सूंड़ से छोड़े हुये जलकणों से अर्जुन को ऐसे भिगोया जैसे कि बादल नीलपर्वत को भिगोता है ७ उस राजाका भेजा हुआ बादल की समान अत्यन्त गर्जता हुआ वह हाथी मुख के बड़े शब्द को करके अर्जुनके सम्मुख दौड़ा ८ हे राजा वज्रदत्तके प्रेरित नाचते हुये उस गजराज ने शीघ्रही कौरवों के महारथी को पाया ९ वह शत्रुओं का मारनेवाला पराक्रमी अर्जुन उस आते हुये वज्रदत्तके हाथी को देखकर अपने गांडीव के आश्रित होकर कम्पायमान नहीं हुआ १० हे भरतवंशी राजा जनमेजय वह पाण्डव अर्जुन अपने विघ्नकर्त्ता और प्राचीन शत्रुता को स्मरण करके उस पर अत्यन्त क्रोधयुक्त हुआ ११ इसके पीछे क्रोधभरे अर्ज्जुन ने बाणजालों से उस हाथी को ऐसे रोका जैसे कि समुद्र को मर्यादा रोकती है १२ अर्ज्जुन से रोका हुआ वह हाथियों में श्रेष्ठतम शोभायमान हाथी बाणों से विदीर्ण अङ्ग ऐसे नियत हुआ जैसे कि शलाका में पिरोया हुआ स्वावित नाम मृगहोताहै १३ फिर क्रोधसे मूर्च्छावान् राजा वज्रदत्तने उस रोके हुये हाथी को देखकर अर्जुन पर तीक्ष्ण बाणोंको छोड़ा १४ महाबाहु अर्जुनने भी शत्रुओंके नाश करनेवाले बाणोंसे उन बाणोंको हटाया वह आश्चर्य्यसा हुआ १५ इसके पीछे अत्यन्त क्रोधयुक्त प्राग्ज्योतिषके राजाने पहाड़के समान हाथीको भेजा १६

इन्द्रके पुत्र पराक्रमी अर्जुन ने उस आते हुये हाथी को देखकर अग्निके समान नाराच नाम बाणों को हाथी पर छोड़ा १७ हे राजा उससे मर्मस्थलों पर घायल होकर वह हाथी अकस्मात् पृथ्वीपर ऐसा गिरपड़ा जैसे कि बज्र से टूटा पर्व्वत गिरताहै १८ अर्जुनके हाथों से घायल वह हाथी गिरता हुआ ऐसे शोभायमान हुआ जैसे कि बज्र से पीड़ावान् पृथ्वीपर गिरता हुआ बड़ा पर्वत होता है १९ बजूदत्तके उस हाथी के गिरने पर अर्जुनने उस पृथ्वीपर वर्त्तमान राजा से कहा कि डरना न चाहिये २० महातेजस्वी युधिष्ठिरने मुझ चलनेवाले से कहाहै कि हे अर्जुन तुमको किसी दशामें भी राजा लोगों को मारना उचित नहीं है २१ हे नरोत्तम अर्जुन युद्ध में शूरवीर लोगों को भी तुझको मारना योग्य नहीं है इतनेही कर्म से यह सब होताहै २२ सब राजाओं को उनके मित्र बांधवों समेत समझाना चाहिये कि युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ आपलोगों से सुशोभित होय २३ हे राजा भाई के इस वचन को सुनकर मैं तुझको नहीं मारताहूं उठ तुझको भय नहीं है कुशलपूर्वक जाओ २४ हे महाराज चैत्र महीने की पूर्णमासी को युधिष्ठिर का यज्ञ होगा उस समय आप लोगों को आना योग्य है २५ तब अर्जुन से पराजित होकर अर्जुन के इस वचन को सुनकर राजा वज्रदत्त ने कहा कि ऐसाही होगा २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअश्वानुसारेवज्रदत्तपराजयेषट्सप्ततितमोऽध्यायः ७६ ॥

# सतहत्तरवां अध्याय ॥

वैशम्पायन वोले हे महाराज इसके पीछे अर्जुनका युद्ध उन सिंधदेशियोंके साथ हुआ जो कि मरने से शेष वचे और मरनेवालों के सैकड़ों नातेदार थे १ यह राजालोग अर्जुन को देशमें प्रवेशित हुआ सुनकर उसको न सहकर उसके सम्मुखगये २ उनविषके समान राजाओंने देशकी सीमापर उस घोड़ेको पकड़ कर भीमसेन के छोटे भाई अर्जुन से भय नहीं किया ३ उन्होंने यज्ञके घोड़े के पास पदाती नियत हुये धनुषधारी अर्जुन को पाया ४ प्रथम युद्ध में पराजित बिजयके अभिलाषी वड़े पराक्रमी उनराजाओं ने उस नरोत्तम अर्जुनको चारोंओरसे घेरलिया ५ तव अपने नाम गोत्र और नाना प्रकारके अपने कर्म्मों को वर्णन करते उन राजाओंने बाणोंकी बर्षा से अर्जुन को ढकदिया ६ हाथि-

योंके रोकनेवाले बाणसमूहों को फैलाते युद्धमें बिजय चाहते उनलोगोंने अर्जुन को चारोंओरसे घेरलिया ७ उनसब रथसवार बीरोंने युद्धमें उस असह्यकर्मी अर्जुन को बिचारकर उस पदातीसेही युद्ध किया ८ उन्होंने उस निवात कवचोंके संसप्तकोंके और जयद्रथके नाशकर्त्ता बीर अर्जुनको घायलकिया फिर हज़ाररथ और दशहज़ार घोड़ोंसे उस अर्जुनको घेरकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुये ९।१० हे कौरव युद्धमें सिन्धके राजाजयद्रथके उसमारनेको स्मरणकरते उनसबवीरोंने ११ बादलकी बर्षाके समान बाणोंकी बर्षा करी उन बाणोंसे ढकाहुआ अर्जुन ऐसे शोभायमानहुआ जैसे कि बादल के मध्य में सूर्य्य शोभितहोताहै १२ हे भरतबंशी बाणोंसे ढकाहुआ वह अर्जुन ऐसा दिखाई दिया जैसे कि पिंजरेमें घूमने वाला पक्षी होताहै १३ फिर बाणोंसे अर्जुनके पीड़ावान् होनेपर सब त्रिलोकी हाहाकाररूपहुई सूर्य्य की प्रभा जाती रही १४ इसके अनन्तर रोमाञ्चका खड़ा करनेवाला बायु चला और एकही समयमें राहुने सूर्य और चन्द्रमाको ग्रसा१५ हे राजा उल्का सूर्यको घायलकरके चारोंओरको फैलगई इसीहेतुसे कैलासनाम बड़ा पर्व्वत कम्पायमान हुआ १६ भयभीत और दुःख शोक से युक्त सप्तऋषि और देवऋषियोंने भी अत्यन्त उष्णश्वासाओंको छोड़ा १७ तदनन्तर उल्का चन्द्रमण्डलको चीरकर आकाश से गिरी और सब दिशाभी बिपरीतरूप और सधूमहोगई १८ धुंधले और अरुण बर्णवाले इन्द्रधनुष और बिजलीसे युक्त बादलोंने आकाश को व्याप्त करके मांस और रुधिरको बरसाया १९ हे भरतर्षभ उस बाणोंकी बर्षासे बीर अर्जुनके ढकजानेपर ऐसा बृत्तान्त हुआ यहबड़ा आश्चर्य्यसा हुआ २० उस बाणजाल से सबओरको ढकजानेवाले उस अर्जुनके मोहसे गांडीव धनुष गिरपड़ा और हाथसे हस्तत्राणभी गिरपड़ा २१ तब सिंधुदेशियों ने शीघ्रही उस मोहयुक्त अचेत महारथी पर बाणजालों को छोड़ा २२ इसके पीछे चित्त से भयभीत देवता अर्जुन को अचेत जानकर उसकी शान्ति करनेवाले हुये २३ फिर सब देवऋषि सप्तऋषि और महर्षियों ने बुद्धिमान् अर्जुन की पूर्ण बिजयका जप किया २४ हे राजा फिर देवताओं से अर्जुन का तेज प्रकाशमान होने पर वह महा अस्त्रज्ञ बुद्धिमान् अर्जुन युद्धभूमि में पर्व्वत के समान खड़ाहुआ २५ और शीघ्रही अपने धनुष को खैंचा उसका बड़ाभारी शब्द बारम्बार यन्त्रके समान हुआ २६ फिर उस समर्थ अर्जुनने धनुषसे बाणों

की वर्षाको शत्रुओंके ऊपर ऐसे बरसाया जैसे कि इन्द्र जलकी बर्षा को करता है२७इसके पीछे वह सब सिन्धुदेशी शूरवीर अपने अपने राजाओं समेत बाणों से ढकेहुये ऐसे दिखाई नहीं दिये जैसे कि टीड़ियों से युक्त वृक्ष अदृष्ट होते हैं सबलोग भयसे पीड़ितहोकर भागे बहुतसे शोकसे दुःखीलोगोंने नेत्रोंसे अश्रुपात किया और शोकभी किया २८। २९ हे नरोत्तम राजा जनमेजय वह पराक्रमी अर्जुन अलातचक्र के समान उन सब सिन्धुदेशियों के चारोंओरको घूमा और सबको बाणजालोंसे ढकदिया ३० उस शत्रुहन्ता अर्जुनने बज्रधारी इन्द्रके समान उस बाणजालको जोकि इन्द्रजालके समानथा सब दिशाओंमें फैलाया ३१ वह कौरव्य अर्जुन उस मेघजालरूपी सेनाको बाणोंसे चीरकर ऐसे शोभायमान हुआ जैसे कि शीतऋतुमें कुहरको काटकर सूर्य शोभित होताहै ३२॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिअश्वानुसारेसैन्धवयुद्धेसप्तसप्ततितमोऽध्यायः७७॥

# अठहत्तरवाँ अध्याय॥

बैशम्पायन बोले कि इसके अनन्तर युद्ध में निर्भय गांडीवधनुषधारी शूर अर्ज्जुन युद्ध के लिये सम्मुख नियत हिमालय पर्व्वतके समान शोभायमान हुआ १ हे भरतवंशी वह सिन्धुदेशी शूरवीर फिर भी नियत हुये और बड़े क्रोधित होकर बाणों की वर्षा को छोड़ा २ महाबाहु अर्जुनने हँसकर उन फिर सम्मुख होनेवाले मरण की इच्छावाले शूरबीरों से मधुर भाषण से यह बचन कहा कि बड़ी सामर्थ्य से युद्ध करो मेरे विजय करने में उपाय करो ३ सब कर्मों को करो तुमको बड़ाभय उत्पन्न हुआ है मैं इस बाणबन्धन को हटाकर सबसे युद्ध करूंगा ४ युद्धमें प्रवृत्त होकर नियत होजाओ मैं तुम्हारे अभिमानों को दूर करूंगा तब कौरव अर्जुन क्रोध से इतना कहकर उस बड़ेभाई के बचन को स्मरण करके कि हे तात विजयाभिलाषी क्षत्रिय युद्धमें न मारने चाहिये ५।६ और महात्मा धर्मराज ने यह भी समझाया है कि विजय करना चाहिये तब उस पुरुषोत्तम अर्जुन ने यह विचार किया कि मुझसे महाराज युधिष्ठिर ने ऐसा कहा है कि राजा लोगों को न मारना चाहिये धर्मराज का यह शुभ बचन कैसे मिथ्याहोगा ७।८ राजालोग न मारेजायें और राजा युधिष्ठिर की आज्ञा मानी जाय तब उस धर्मज्ञ पुरुषोत्तम अर्जुनने ऐसा बिचारकर उन युद्धमें दुर्म्मद सि-

न्धुदेशियों से यह वचन कहा कि मैं तुम्हारी वृद्धि को कहताहूं कि मैं तुम सब नियतों को नहीं मारूंगा ६ । १० युद्धमें पराजित होकर जो पुरुष कहैगा कि मैं तेराहूं उसको नहीं मारूंगा इस मेरे बचन को सुनकर अपनी कुशल बिचारो ११ उसके विपरीतकर्मी होने पर तुम आपत्ति में फँसकर मुझसे पीड़ित होगे उन वीरों से ऐसा कहकर अत्यन्त क्रोधयुक्त कौरवोत्तम अर्जुन १२ उन अत्यन्त क्रोधभरे विजय के अभिलाषी सिन्धुदेशियों के साथ युद्ध करनेलगा हे राजा तब सिन्धुदेशियों ने टेढ़े पर्व्ववाले एक लाख बाण अर्जुनपर छोड़े उस अर्जुन ने धनुष से निकलनेवाले निर्दयी बिषैले सर्प्प की समान बाणों को १३ । १४ अपने तीक्ष्ण बाणों से मध्यही में काटा उन तेजधार बाणों को शीघ्र काटकर १५ युद्धमें प्रत्येक को तीक्ष्ण बाणों से छेदा इसके पीछे सिन्धुदेशी राजाओं ने मरेहुये जयद्रथ को स्मरण करके फिर प्रास और शक्तियों को अर्जुनपर फेंका १६ महाबली अर्जुनने उन सबके सङ्कल्पों को निष्फल किया १७ तब पाण्डव उन सबको मध्यमेंही काटकर गर्जा उसीप्रकार उन विजयाभिलाषी आते हुये शूर-बीरोंके शिरों को भी टेढ़े पर्ववाले भल्लों से गिराया फिर भी उन भागते सम्मुख दौड़ते १८ । १९ और लौटते शूरबीरों के शब्दपूर्ण समुद्रके समान हुये तब बड़े तेजस्वी अर्जुन से घायल उन लोगोंने पराक्रम और प्रसन्नताके समान अर्जुन से युद्ध किया फिर वह लोग युद्धभूमिमें अर्जुनके टेढ़े पर्ववाले बाणोंसे २०।२१ बहुधा मरे अचेत म्लान सवारी और सेनावाले हुये तब धृतराष्ट्र की दुःशला नाम पुत्री उन सब को परिश्रम से पीड़ावान् जानकर २२ अपने पौत्र सुरतके पुत्र वीर बालक को लेकर रथकी सवारी से चली २३ और सब जीवोंकी शान्ति के अर्थ पाण्डव अर्जुन के पासगई और अर्ज्जुन के पास जाकर बड़े शब्द से रोनेलगी प्रभु अर्ज्जुन ने भी उसको देखकर धनुष को रखदिया और धनुष को छोड़कर विधि के अनुसार अपनी बहिन से कहा २४ । २५ कि क्या करूं तब उसने उत्तरदिया कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन तेरे भानजे का यह पुत्र बालक २६ तुझको नमस्कार करता है हे पुरुषोत्तम तुम इसको देखो तब इस प्रकार कहेहुये अर्जुन ने उसके पिताका वृत्तान्त पूछा २७ कि वह कहां है फिर दुःशलाने कहा कि पिताके शोकसे दुःखी और अचेतता से पीड़ावान् इसका पिता २८ वीर जैसे कि मृत्यु वशहुआ उसको तुम मुझसे सुनो हे निष्पाप वह प्रथम

युद्ध में तेरे हाथ से माराहुआ अपने पिता को सुनकर २६ और तुझको यज्ञके घोड़े के पीछे आया हुआ सुनकर पिता के शोकरूपी रोग से पीड़ित होकर उसने अपने प्राणों को त्याग किया ३० हे निष्पाप अर्ज्जुन आया इस प्रकार तेरे नाम को सुनतेहीं अचेतता से पीड़ावान् मेरा पुत्र पृथ्वीपर गिरा और मरा ३१ हे प्रभु वहां उस गिरेहुये को देखकर और उसके पुत्र को लेकर अब शरण की इच्छा से तेरे पास आईहूं ३२ उस धृतराष्ट्र की पुत्री ने इस प्रकारके बचनों को कहकर पीड़ित शब्दों को किया और महादुःखीने उस नीचाशिर करनेवाले अर्जुनसे यह बचन कहा ३३ हे धर्मज्ञ अर्जुन अपनी बहिन और भानजेके पुत्र को देखो और करुणा करनेके योग्यहो ३४ उस दुर्योधन और अभागे जयद्रथ को विस्मरण करके दयाकरो जैसे कि अभिमन्युका पुत्र शत्रुओं के बीरों का नाश करनेवाला परीक्षित उत्पन्न हुआहै ३५ उसीप्रकार सुरसासे यह मेरा पौत्र बीर उत्पन्न हुआहै हे नरोत्तम मैं उसको लेकर सब शूरबीरोंकी शान्तिके लिये तेरे पास आई हूं ३६ इस मेरे बचन को सुन हे महाबाहु उस अभागेका यह पौत्र आयाहै ३७ इस हेतुसे तुम इस बालकपर कृपा करनेको योग्यहो हे शत्रुओंके बिजय करनेवाले यह बालक शान्तिके लिये शिरसे प्रसन्न करके ३८ तुम से प्रार्थना करताहै कि हे महाबाहु अर्ज्जुन शान्तिको प्राप्त होजाओ हे धर्मज्ञ अर्ज्जुन इस मृतक बान्धववाले अज्ञान बालकके ऊपर ३९ कृपाकरो क्रोधके वशीभूत मतहो इसके उसनीच निर्दयीबड़े अपराधी पितामहको बिस्मरण करके ४० कृपा करनेके योग्यहो इस प्रकार दुःशलाके करुणा बिलाप करनेपर ४१ दुःखशोक से पीड़ावान् क्षत्रियधर्म की निन्दा करतेहुये अर्ज्जुन ने राजा धृतराष्ट्र और देवीगान्धारी को स्मरणकरके यह कहा कि ४२ मैंने जिस क्षत्रियधर्मके कारण से सब बांधव यमलोक में पहुंचाये उसको धिक्कारहोय इस प्रकारके अनेक विश्वासित बचन कहकर अर्जुन ने कृपाकरी ४३ और बहुत प्रसन्नतासे उससे मिलकर उसको घरमें भेजदिया ४४ शुभमुखी दुःशलाभी उनशूरबीरों को युद्ध से हटाकर और अच्छी रीतिसे पूजकर घरको गई ४५ वह अर्जुन इस प्रकारसे उन सिन्धुदेशी बीरों को बिजय करके उस स्वेच्छानुसार बिचरते और दौड़ने वाले घोड़ेके पीछेदौड़ा ४६ इसके अनन्तर वह बीर बिधिके अनुसार उस घोड़े के पीछे ऐसे चला जैसे कि पिनाकधनुषधारी देवता आकाशमें मृगरूपी यज्ञके

पीछे चलेथे ४७ वह घोड़ा अर्जुनके कर्मकी वृद्धि करता इच्छा और अभीष्ट के अनुसार क्रमपूर्व्वक उन २ देशों में घूमा हे पुरुषोत्तम वह इस प्रकार से घूमता हुआ घोड़ा अर्जुन समेत राजा मणिपुरके देशमें आया ४८। ४९॥

इतिश्रीमन्महाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअश्वानुसारेसैंधवपराजयोनामाष्ट सप्ततितमोऽध्यायः ७८॥

# उन्नासीवां अध्याय॥

वैशंपायन बोले कि राजा बभ्रुवाहन आयेहुये पिताको सुनकर बड़ी नम्रता पूर्व्वक नगरसे निकला जिसके अग्रवर्ती ब्राह्मणलोग और धनथा क्षत्रियधर्मको स्मरण करते उस बुद्धिमान् अर्जुनने इस प्रकारसे आयेहुये राजा बभ्रुबाहनको प्रसन्न नहीं किया १। २ उस क्रोधयुक्त धर्मात्मा अर्जुनने कहा कि यह तेराकर्म अयोग्य नहीं है परन्तु क्षत्रियधर्मसे रहितहै ३ हे पुत्र युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञके रक्षाकरनेवाले और देशकी सीमापर मुझ आनेवाले से युद्ध क्योंनहीं किया ४ तुझ दुर्बुद्धी क्षत्रियधर्मसे रहित को धिक्कार है जो युद्ध के निमित्त सन्नद्ध मुझ आने वाले को सामधर्म सेही लिया हे दुर्बुद्धी नीच मनुष्य जो शस्त्र से रहित मैं तुझ से मिलता तो यह तेरा कर्म योग्यथा पति से कहेहुये उस बचन को जानकर सर्प की पुत्री ५। ६। ७ उलूपी उस बचन को न सहती पृथ्वी को चीरकर पास आई और हे राजा वहां आकर उसने नीचाशिर कियेहुये बिचार करते हुये अपने पुत्रको युद्धाभिलाषी अपने पिता से बारंबार धिक्कारयुक्त देखा इसके पीछे उस प्रसन्नाङ्ग सर्पकी पुत्री उलूपी ने उस धर्ममें सावधान अपने पुत्र से यह धर्मरूप बचन कहा कि हे पुत्र तुम मुझ सर्पकी पुत्री उलूपी को अपनी माता जानो ८। ९। १० पिता का कहनाकरो तेरा बड़ा धर्महोगा तू इस युद्ध-दुर्मद अपने पिता अर्जुन से युद्धकर ११ यह इसी रीति से तुझपर निस्सन्देह प्रसन्नहोगा हे भरतर्षभ इसप्रकार मातासे दुर्मन्त्रित महातेजस्वी राजा बभ्रुवाहन ने १२ युद्ध के निमित्त बिचार किया सुवर्ण का कवच और सूर्य्य की समान प्रकाशमान शिरस्त्राण को शरीर में शोभित करके सैकड़ों उत्तम तूणीरों से युक्त उस उत्तम रथपर चढ़ा जोकि सब युद्धके सामानों से युक्त और मनके समान शीघ्रगामी घोड़ोंसे युक्त १३। १४ चक्रादिक सामानों समेत शोभायमान

होकर सुवर्ण के भूषणों से अलंकृत था वह राजा बभ्रुवाहन अत्यन्त पूजित सुवर्ण की सिंह ध्वजा को ऊंचा करके १५ और अर्ज्जुन को शत्रुमानकर यात्रा करनेवाला हुआ इसके पीछे उस बीरने समीप आकर अर्ज्जुन से रक्षित उस यज्ञके घोड़े को १६ उन मनुष्यों से पकड़वाया जोकि अश्वशिक्षा में कुशल थे उस प्रसन्नचित्त पृथ्वीपर नियत अर्जुनने पकड़ेहुये घोड़ेको देखकर १७ युद्ध में रथारूढ़ अपने पुत्रको रोका वहां उस बीर राजाने उस बीर अर्जुनके तीक्ष्ण और बिषैले सर्पके समान बाणोंके समूहोंसे पीड़ितकिया उन प्रीतिमान् दोनों पिता पुत्रोंका बड़ा युद्ध बहुत बढ़कर देवासुरोंके युद्धके समानहुआ उस हँसते हुये बभ्रुवाहनने नरोत्तम अर्ज्जुनको टेढ़े पर्ववाले बाणसे जत्रुस्थानपर घायल किया वह बाण पुङ्ख समेत उसके जत्रुस्थान में ऐसे समागया जैसे कि बामी में सर्प समाजाताहै १८।१९।२०।२१ वह अर्जुनको घायल करके पृथ्वीमें प्रवेश करगया उसके बाणसे अत्यन्त पीड़ावान् बुद्धिमान् अर्जुन उत्तम धनुषका सहारा लेकर हार्दाकाशनिवासी ईश्वर में प्रवेशहोकर मृतकके समान होगया २२ फिर उस महाप्रतापी इन्द्रके पुत्र पुरुषोत्तम अर्जुनने सचेतताको पाकर पुत्रकी प्रशंसा करके यह बचन कहा हे चित्राङ्गदाके पुत्र महाबाहु प्यारे पुत्र धन्यहै धन्यहै तेरे कुलके समान कर्मको देखकर मैं प्रसन्नहूं २३।२४ अब मैं तुझपर बाणों को छोड़ताहूं हे पुत्र युद्धमें नियत होजाओ वह शत्रुओंका नाशकरनेवाला इसप्रकार से कहकर नाराचोंकी वर्षाकरनेलगा २५ उस राजाने गाण्डीव धनुषसे छोड़ेहुये वज्र बिजलीके समान प्रकाशित सब नाराचोंको अपने भल्लोंसे टुकड़े टुकड़ेकर दिया २६ अर्जुनने दिव्यबाणोंसे उसकी ध्वजाको जोकि स्वर्णमयी और सुवर्ण के तालवृक्षके समानथी रथसे काटकर गिरादिया २७ हे शत्रुओंके जीतनेवाले राजा जनमेजय हँसतेहुये अर्जुनने उसके वह घोड़े जोकि बड़े ऊंचे और शीघ्रगामीथे उनको निर्ज्जीव किया २८ उस अत्यन्त क्रोधयुक्त राजाने रथसे उतर कर पदाती होकर अपने पिता अर्ज्जुनसे युद्ध किया २९ उस वज्रधारी के पुत्र पाण्डवों में श्रेष्ठ पुत्रके पराक्रमसे प्रसन्न अर्जुनने अपने पुत्रको अत्यन्त पीड़ावान् किया ३० पिताको बिमुख मानतेहुये उस पराक्रमी बभ्रुवाहनने बिषैले सर्प की समान बाणोंसे पिताको फिर पीड़ावान् किया ३१ इसके पीछे उस बभ्रुवाहन ने बालकपनसे सुन्दरपुङ्खवाले तीक्ष्णबाणों के द्वारा अर्जुनको हृदयपर कठिन

घायल किया ३२ हे राजा वह अत्यन्त पीड़ा उत्पन्न करनेवाला बाण मर्मस्थल को काटकर अर्जुनके शरीरमें प्रवेशकरगया उस पुत्रपर अत्यन्त क्रोधयुक्त वह कौरवनन्दन ३३ अर्ज्जुन मोहसे पीड़ावान् अचेतहोकर पृथ्वीपर गिरपड़ा फिर उस कौरवों के धुरन्धरबीरके गिरनेपर ३४ उस चित्राङ्गदाके पुत्रने भी अचेतता को पाया, अर्थात् युद्ध में परिश्रमकरके और पिता को मृतक हुआ देखकर ३५ पहलेही अर्जुनके बाणसमूहों से अत्यन्त घायल वह राजाभी युद्ध में पृथ्वी का सहारा लेकर गिरपड़ा ३६ पतिको मृतक और पुत्रको पृथ्वीपर गिराहुआ देखकर बड़ी शीघ्रता से चित्राङ्गदा युद्धभूमि में आई ३७ शोक से अत्यन्त दुःखी रुदनकरती अत्यन्त कम्पायमान बभ्रुवाहनकी माताने मृतक पतिको देखा ३८॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिअश्वानुसारेअर्जुनपराजयेएकोनाशीतितमोऽध्यायः ७९॥

# अस्सीवाँ अध्याय॥

बैशम्पायन बोले कि इसके अनन्तर वह कमललोचनाभी बहुत प्रकारका बिलापकरके दुःखसे पीड़ित और अचेतहोकर पृथ्वीपर गिरपड़ी १ उस दिव्यरूप रखनेवाली देवीने सचेतताको पाकर उस सर्पकी पुत्री उलूपीसे यह बचनकहा २ कि हे उलूपी तेरे कारण मेरे पुत्रके बाणसे युद्ध में मृतक शयन करनेवाले मेरे पतिकोदेख ३ निश्चयकरके तू धर्म्मज्ञों में श्रेष्ठहोकर पतिब्रताहै जो तेरे कारणसे युद्ध में मराहुआ यह तेरा पति पृथ्वीपर गिराहुआहै ४ अब जो तेरी बुद्धिसे यह अर्जुन यद्यपि अपराधीभीहै तौभी इसको क्षमाकर और इसको सजीवकर ५ हे श्रेष्ठ शुभ स्त्री निश्चयकरके तुम धर्म्मकी जाननेवाली और तीनों लोकों में प्रसिद्धहो जो पुत्रके हाथसे पतिको मरवाकर शोच नहीं करतीहो ६ हे सर्पनन्दिनी मैं अपने मरेहुये पुत्रको नहीं शोचतीहूं मैं पतिहीको शोचतीहूं जिसका कि यह अतिथि किया गयाहै ७ तब उस यशवन्ती ने सर्पकी पुत्रीसे इसप्रकार कहकर पतिके पास जाकर यह कहा ८ कि हे प्यारे उठो तुम युधिष्ठिर के और मेरे प्रियहो हे महाबाहु यह तेरा घोड़ा मैंने छोड़दिया है ९ हे प्रभु निश्चयकरके तुम को इस धर्मराज के यज्ञके घोड़े के पीछे चलना उचित है सो तुम इस पृथ्वीपर क्योंसोतेहो १० हे कौरवनन्दन मेरे और कौरवों के प्राण तेरे आधीन हैं सो दूसरेके प्राणदाता होकर तुमने किस हेतुसे अपने प्राणोंको त्यागकिया ११ फिर

चित्राङ्गदाने उलूपी से कहा कि हे उलूपी इस पृथ्वीपर पड़ेहुये पति को देखो इस पुत्रको उत्साह देकर और पतिको मरवाकर शोच नहीं करती है १२ चाहे मृत्यु बश होकर यह बालक पृथ्वीपर शयनकरे परंतु यह रक्तनेत्र रखनेवाला विजयी अर्जुन जीउठे १३ हे सौभाग्यवती मनुष्यों की बहुतसी स्त्रियोंका होना पाप नहीं है परंतु यह दोष स्त्रियोंका होताहै तेरी बुद्धि ऐसी मतहोय १४ ईश्वरने इस मित्रताको प्राचीन और अविनाशी किया है तुम मित्रताको अच्छेप्रकारसे जानो तेरे मिलाप सत्यहोयँ १५ जो तू अब इस मेरे पति को पुत्र से मरवाकर मुझको जीवता नहीं दिखावेगी तो मैं अब अपने जीवनको त्यागकरूंगी १६ हे देवी सो मैं अपने पुत्र और पति से रहित दुःखसे संयुक्त होकर यहांहीं तेरे देखते शरीर त्यागनेकी इच्छासे अपना खाना पीना त्याग करूंगी १७ हे राजा वह चित्रांगदा अपनी सौत उलूपीको इसप्रकारकी बातें कहकर शरीर त्यागनेकी इच्छा से आसनपर बिराजमान होकर मौनहोगई १८ वैशम्पायन बोले कि इसके अनन्तर वह दुःखी पुत्रकी इच्छावान् बैराग्यवान् चित्रांगदा बहुत बिलापकरके पति के चरणोंको पकड़कर श्वासलेतीहुई बैठगई १९ इसके पीछे उस राजा बभ्रुवाहन ने चेतको पाकर और युद्धभूमि में अपनी माताको देखकर कहा २० कि इससे अधिक कौनसा दुःखहै जो सुखसे बृद्धिमान् मेरी माता पृथ्वीपर गिरेहुये मृतक बीर पतिके पास शयन करतीहै २१ और युद्धमें मेरे हाथसे मृतक इस शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ युद्ध में शत्रुओं के नाशकरनेवाले अर्जुनको देखती है हाय मरना बड़ा कठिनहै २२ आश्चर्य्यकी बातहै कि इस महाबाहु मरेहुये अपने पति को देखनेवाली इस देवीका हृदय बड़ा कठोर और दृढ़ है जो नहीं फटताहै २३ काल के बिना मनुष्यका मरना कठिन मानताहूं जिस स्थानपर कि मेरी माता और मैं जीवनसे पृथक् नहीं होते हाय हाय इस मरेहुये कौरवबीर अर्जुनके स्वर्णमयी कवचको धिक्कारहै कि मुझ पुत्रके हाथसे मराहुआ पृथ्वीपर दीखताहै २४। २५ हे ब्राह्मणलोगो मुझ पुत्र से मारेहुये और बीरशय्यापर शयन करनेवाले मेरे बीर पिताको पृथ्वीपर देखो हे ब्राह्मणवर्य्यलोगो उपदेशकरो अब यहां मुझ निर्दयी पापी और युद्धभूमिमें पिता के मारनेवालेका क्या प्रायश्चित्तहै २६। २७ हे द्विजवर्यो अर्जुनके और घोड़े के पीछे चलनेवाले जो लोग मरने से बच रहेहैं वह युद्धेच्छाकी शान्ति करते हैं जो यह युद्ध में मेरे हाथसे मारागया २८ अब पिता

को मारकर इस अपने पिताका शिर कपाल धारणकरनेवाले और उस चर्म से युक्त शरीर मुझ निर्दयी के बारह वर्ष कठिनता से कटनेवाले हैं क्योंकि अपने पिताको मारकर हत्यारेपने के सिवाय अब मेरा दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है २९। ३० हे सर्प्पराजकी पुत्री मेरे हाथ से मरेहुये अपने पति को देखो अब मैंने युद्ध में अर्ज्जुन को मारकर तेरा अभीष्ट किया है ३१ सो मैं अब पितृलोक को जाऊंगा हे मंगलरूप मैं आत्मासे आत्माके धारणकरनेको समर्थ नहींहूं ३२ हे देवी माता सो तुम अर्जुन के और मेरे मरने से प्रसन्नहो मैं सत्यता से आत्मा की शपथ खाताहूं ३३ हे महाराज इसके पीछे दुःख शोकसे पीड़ित उस राजा ने यह कहकर आचमनकरके कष्ट से यह वचन कहा ३४ हे सर्प्पिणीमाता सब स्थावर जंगमजीवों समेत तुम मेरे सत्य सत्य बचनों को सुनो जो कदाचित् मेरा नरोत्तम पिता अर्जुन नहीं उठता है तो मैं इसी युद्धभूमि में अपने शरीर को सुखाऊंगा ३५। ३६ पिताको मारकर मेरा किसी प्रकार से प्रायश्चित्त नहीं होसक्ता निश्चय करके गुरू के मारने से पीड़ावान् मैं शरीर को त्याग करूं-गा ३७ बीर क्षत्रिय को मारकर सौ गोदानकरके पाप से निवृत्त होता है परन्तु इसप्रकार पिता को मारकर मेरा प्रायश्चित बड़ाघोर है ३८ यह मेरा पिता पां-डव अर्जुन अनुपम महातेजस्वी और धर्मात्मा है उस मुझ अपराधी का प्राय-श्चित्त कैसे होसक्ता है ३९ हे राजा जनमेजय अर्जुन का वह बड़ापुत्र राजा बभ्रुवाहन इसप्रकार कहकर आचमन करके मौनहुआ और शरीरत्यागपर्यंत के लिये खानपान त्याग बैठा ४० वैशंपायन बोले तब पुत्रत्वभाव के शोकसे पूर्ण शत्रुओंका विजय करनेवाला राजा बभ्रुबाहन और उसकी माताके भोजनपान त्यागनेपर ४१ उलूपीने सजीवन मणिको स्मरण किया तब सर्पोंके जीवन का हेतु वहमणि वर्त्तमान हुई ४२ हे कौरव सर्पराजकी पुत्री उस उलूपीने उस म-णिकोलेकर सेनाके लोगोंके चित्तोंका प्रसन्न करनेवाला यह वचन कहा ४३ हे पुत्र उठ शोचमतकर यह अर्जुन तुमने विजय नहीं किया यह मनुष्य तो क्या इन्द्रादिक देवताओं से भी अजेय है ४४ अब मैंने तेरे यशवान् पुरुषोत्तमपिता के प्रिय करने के निमित्त यह मोहिनीनाम माया दिखलाई है ४५ हे राजा युद्ध-भूमिमें युद्ध करनेवाले तुझ पुत्रकी परीक्षा लेना चाहता यह शत्रुओं का मर्दन करनेवालावीर कौरव अर्जुन यहां आया है ४६ हे पुत्र इसलिये मैंने तुझको

युद्ध के लिये प्रेरणाकरीथी हे समर्थ पुत्र तू अपने थोड़े से पापको मत ध्यानकर ४७ हे पुत्र यह महात्मा ऋषि प्राचीन होकर सदैव नियत और अविनाशी है इन्द्रभी युद्ध में इसके विजय करनेको समर्थ नहीं है ४८ हे राजा मैंने यह दिव्य मणि मँगाई है जो कि सदैव मरे हुये सर्पराजों को सजीव करती है ४९ हे समर्थ तुम इसको अपने पिता की छातीपर नियतकरो तब तुम अपने पिता पांडव अर्जुन को जीवताहुआ देखोगे ५० तब इस प्रकार आज्ञप्त हुये उस बड़ेतेजस्वी निष्पापराजाने पितात्वभावकी प्रीतिसे उस मणिको अर्जुन की छातीपर नियत किया ५१ उसमणिके रखने से सजीव होनेवाला वह स्वच्छ रक्तनेत्र रखने वाला प्रभु वीर अर्जुन बड़ी बिलम्बतक शयन करनेवाले के समान उठबैठा ५२ बभ्रुबाहन ने उस उठे हुये सचेत सावधान महात्मा प्राणधारी अपने पिता को देखकर दण्डवत् करी ५३ हे समर्थ फिर उस समर्थ शोभायमान के उठनेपर इन्द्रने पवित्र और दिव्यपुष्पों को बरसाया ५४ बादल के समान शब्दायमान बिना बजाये दुन्दुभियां बजनेलगीं और आकाशमें बहुतभारी धन्य २ काशब्द हुआ ५५ स्थिर स्वभाववाले महाबाहु अर्जुनने उठकर बभ्रुबाहन से मिलकर मस्तक पर सूंघा ५६ और कुछ दूर इसकी माता को शोक के पंजेमें फँसी हुई उलूपीके साथ नियत देखा फिर अर्जुनने पूछा ५७ कि हे शत्रुओं के नाशकरनेवाले यह युद्धभूमि आनन्द शोक और आश्चर्य्य युक्त होने वाली दिखाई देती है यह क्याबात है जो तुम जानतेहो तो मुझसे वर्णन करो ५८ तेरी माता किस निमित्त इस युद्धभूमि में आई और सर्पराजकी पुत्री उलूपी यहां क्यों आई ५९ मैं जानताहूं कि तुमने मेरे कहने से यह युद्धकिया है स्त्रियों के आने का कारण जानना चाहताहूं ६० तब इस प्रकार की अर्जुनकी बातों को सुनकर बुद्धिमान् राजा बभ्रुबाहन ने शिरसे प्रसन्न करके अर्जुनसे कहा कि इस बातको आप उलूपीसे पूछिये ६१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअश्वानुसंरेअर्जुनप्रत्युज्जीवनेअशीतितमोऽध्यायः ८० ॥

# इक्यासीवां अध्याय ॥

अर्जुन बोले कि हे कौरवीय कुलकी प्रसन्न करनेवाली उलूपी युद्धभूमि में तेरे और राजा बभ्रुबाहन की माता के आनेका क्या प्रयोजन है १ हे चपला

पाङ्गी सर्प की पुत्री क्या तुम इस राजा के कुशलकी चाहनेवालीहो अथवा मेरे शुभको चाहती हो २ हे प्रियदर्शन सुन्दरी क्या मैंने वा इस वभ्रुवाहनने अज्ञानतासे तेरा कोई अप्रिय कर्म किया है ३ अथवा तेरी सौत चित्रवाहन की पुत्री राजपुत्री सुन्दरी चित्राङ्गदा तेरा कोई अपराध तो नहीं करती है ४ हँसती हुई सर्पराज की कन्या ने उसको उत्तर दिया कि न तो तुमने मेरा अपराध किया और न बभ्रुबाहन मेरा कोई अपराध करताहै ५ उसीप्रकार इसकी यहमाता भी जो कि दासीके समान नियतहै मेरा किसीप्रकारभी अपराध नहीं करतीहै अब जैसे कि यह सब कर्म मैंने किया है उसको सुनो ६ हे समर्थ अर्जुन तुमको मुझपर क्रोध न करना चाहिये मैं तुमको शिरसे प्रसन्न करतीहूं मैंने आपके अभीष्टके निमित्त यह सब कर्म कियाथा ७ हे महाबाहु अर्जुन अब जो मूलहेतुहै उसको यथार्थतापूर्व्वक ब्यौरे समेत सुनो हे स्वामी जो तुमने महाभारतके युद्धमें राजा भीष्मको अधर्म्मसे मारा ८ उसका यह प्रायश्चित्त कियाहै हे बीर तुमने सम्मुख लड़नेवाला भीष्मपितामह नहीं मारा ९ तुमने शिखण्डीके पक्षमें होकर उससे युद्ध में प्रवृत्तहुये भीष्मको मारा है जो तुम उसका प्रायश्चित्त किये विना इस जीवनको त्याग करोगे १० तो उस पापकर्म्मसे अवश्य नरकमें गिरोगे इसलिये यह प्रायश्चित्त विचारकियाहै जिसको कि तुमने अपने पुत्रसे प्राप्त कियाहै ११ हे बड़े बुद्धिमान् संसारके पोषण पालन करनेवाले अर्जुन पूर्वसमयमें गंगाजी के तटपर बसुओं ने शाप दियाथा उसको मैंने वसुओं से सुनाथा और उन्होंने कहाथा अर्थात् हे राजा भीष्मके मरनेपर बसुदेवताओं ने गंगाके तटपर आकर १२ स्नानपूर्वक महानदी श्रीगंगाजी से मिलकर उसके सम्मत से यह भयकारी वचन कहाथा कि १३ हे भाविनी अर्ज्जुनसे युद्ध न करता दूसरे के सम्मुख यह शान्तनुका पुत्र भीष्म अर्जुनके हाथसे मारागया है इसकारण अब हम १४ इस बहानेसे अर्जुनको शाप देते हैं तब उस गंगादेवीने कहा कि ऐसाही होय तब मैं अपने स्थान में प्रवेशकरके और पिता से कहकर व्याकुलचित्तहुई १५ मेरे पिताने भी उसको सुनकर बड़ी व्याकुलताको पाया मेरे पिताने बसुओंके पास जाकर तेरे निमित्त १६ वारम्बार प्रसन्नकरके उनसे प्रार्थनाकरी तब उन्होंने यह वचन कहा कि हे महाभाग उस अर्जुनका तरुण पुत्र मणिपुरका राजा है १७ वह युद्धभूमि में नियतहोकर बाणोंसे इसको पृथ्वीपर गिरावेगा हे नागेन्द्र ऐसा

होनेसे वह शापसे निवृत्तहोगा १८ फिर वह बसुदेवताओं से बिदाहोकर आया और यह सब वृत्तान्त उसने मुझ से कहा उसको सुनकर मैंने तुमको उस शाप से निवृत्त कियाहै १९ देवराजभी तुझको युद्धोंमें पराजय नहीं करसक्ता है पुत्र आत्मारूपहै इसीहेतुसे उससे पराजयहुआहै २० हे प्रभु मेरा दोष नहींहै अथवा आप किसप्रकारसे मानते हैं यह बात सुनकर प्रसन्नचित्त अर्जुनने कहा २१ कि हे देवी यह सब जो तुमने कियाहै वह सब मेरा प्रियकरहै तब उस अर्जुनने यह कहकर चित्राङ्गदा और उलूपी के सुनतेहुये राजा बभ्रुवाहन से यह बचन कहा कि हे राजा चैत्र महीनेकी पूर्णमासीको युधिष्ठिरका अश्वमेधहोगा २२ हे पुत्र तुम अपनी दोनों माता और मन्त्रियों समेत वहां जाना अर्जुनकी इस आज्ञा को सुनकर नेत्रों में जल भरकर राजा बभ्रुवाहन ने पितासे यह बचन कहा २३ कि हे धर्मज्ञ मैं आपकी आज्ञासे अश्वमेधनाम महायज्ञमें जाऊंगा और ब्राह्मणों का परोसनेवाला बनूंगा २४ हे धर्म्मज्ञ तुम मेरे अनुग्रह के लिये अपनी दोनों भार्याओं समेत अपने नगरमें प्रवेशकरियो इसमें आप किसी बातका बिचार न करें २५ हे बिजयशालियों में श्रेष्ठ प्रभु यहां अपने भवन में एक रात्रि सुखसे निवासकरके फिर घोड़ेकी अनुगामिता करनेको योग्यहो २६ तब पुत्रके इसप्रकार के बचन सुनकर मन्दमुसुकान करते बानरध्वजाधारी अर्जुनने राजा बभ्रुवाहन को उत्तर दिया २७ हे महाबाहु तुझे बिदितहै कि जैसे मैं यज्ञके निमित्त दीक्षित कियागयाहूं हे आयतनेत्रपुत्र तबतक तेरे नगरमें प्रवेश नहीं करूंगा २८ हे नरोत्तम यह यज्ञका घोड़ा अपनी इच्छा के अनुसार चलता है तेरा कल्याणहोय मेरा निवास संभव नहीं है अब जाऊंगा २९ फिर उससे श्रेष्ठ विधिपूर्वक पूजित और दोनों स्त्रियोंसे बिदाहोकर वह भरतर्षभ इन्द्रका पुत्र चलदिया ३० ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिअश्वानुसारेएकाशीतितमोऽध्यायः ८१ ॥

## बयासीवाँ अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले हेराजा वह घोड़ा समुद्रपर्यंत इस पृथ्वीपर घूमकर उसओर को लौटा जिधर की ओर हस्तिनापुरथा १ फिर घोड़े के पीछे चलताहुआ अर्जुनभी लौटा तब ईश्वरकी इच्छा से राजगृह नामीनगर को पाया २ हेप्रभु क्षत्री धर्ममें नियत उसवीर सहदेव के पुत्र ने उस समीप नियतहुये अर्जुनको देखकर

युद्ध के निमित्त बुलाया इस के पीछे रथ धनुष बाण और हस्तत्राणधारी वह प-
दाती राजा मेघसिन्ध नगर से बाहर निकलकर उस अर्जुनके सम्मुखगया ३।४
हे महाराज महातेजस्वी मेघसिन्धने अर्जुनको पाकर लड़कपन और अज्ञानता
से यह कहा ५ कि हे भरतबंशी यह स्त्रियोंके मध्य में नियत करके क्या घुमाया
जाताहै मैं इस घोड़ेको हरूंगा तुम इसके छुटानेमें उपायकरो ६ जो तुम युद्ध में
मेरे वृद्धोंसे शिक्षा पानेवाले नहींहुयेहो तो मैं तेरा आतिथ्यकरूंगा तू प्रहारकर
और मैं भी प्रहार करताहूं ७ इसप्रकारके बचन सुनकर हंसते हुये अर्जुनने उस
को उत्तरदिया कि बिघ्नकर्त्तालोग मुझसे हटाने के योग्य होते हैं मेरा यहनियत
ब्रत है ८ हे राजा निश्चय करके मेरे बड़े भाईने भी उसको जाना है सामर्थ्य के
अनुसार प्रहारकर अभीमेरा क्रोधबर्त्तमान नहीं है ९ इसप्रकार कहते हुये हजारों
बाणछोड़ते राजा मगध ने प्रथम अर्जुनपर ऐसे प्रहारकिया जैसे कि हजारनेत्र
रखनेवालाइन्द्र जलकी बर्षाको छोड़ताहै १० हे भरतर्षभ इस के पीछे शूर अर्जुन
ने गांडीव धनुषके चलाये हुये बाणोंसे शत्रु के बाणसमूहों को निष्फल किया
११ उस बानर ध्वजाधारी ने उसके बाणों को निष्फल करके सर्पों के समान प्र-
काशमान मुखवाले बाणोंको छोड़ा १२ ध्वजा, पताका, रथकादण्ड, यन्त्र, घोड़े
और अन्य अन्य रथके अंगोंपर बाणोंको छोड़ा परन्तु राजामगध और सारथी
पर नहीं छोड़े सब्यसाची अर्जुनसे भी रक्षितशरीर और अपने पराक्रमको मा-
नते उस राजामगधने बाणोंको छोड़ा १३। १४ इस के पीछे राजामगध से अ-
त्यन्त घायल अर्जुन ऐसे शोभायमान हुआ जैसे कि बसन्तऋतु में फूलाहुआ
पलाशवृक्ष होता है १५ हे जनमेजय उस बिना घायल हुये राजामगधने अर्जुन
पर प्रहार किया इसी हेतु से वह राजा उसलोकबीर अर्जुनके सम्मुख नियतरहा
१६ फिर अत्यन्त क्रोधयुक्त अर्जुनने बड़े क्लिष्ट धनुष को खैंचकर घोड़ों को नि-
र्जीवकरके सारथी का शिरकाटा १७ और उसके बड़े अपूर्व धनुषको भी क्षुरनाम
बाणसे काटा और इसके हस्तत्राण और पताका समेत ध्वजाकोभी गिराया १८
घोड़े धनुष और सारथी से रहित व्याकुलचित्त तीव्रता से युक्त वह राजा गदा
को लेकर अर्जुन के सम्मुख दौड़ा तब अर्जुनने उसशीघ्रतासे आनेवाले राजा
की स्वर्णमयी गदाके उन बहुत बाणोंसे अनेक खण्ड करदिये जो कि गृद्धपक्ष
से संयुक्तथी १९। २० जिसके मणिबंधन खुलगये वह खंडित गदा पृथ्वीपर ऐसे

गिरपड़ीं जैसे कि कांचली से रहित सर्पिणी गिरती है बानरध्वजाधारी अर्जुनने उसरथ धनुष और गदासे रहित राजा से मधुर भाषणकेसाथ यह वचन कहा कि २१। २२ हे राजा यह क्षत्रीधर्म दिखलाया यही बहुतहै हे पुत्र जावो युद्धमें तुझ बालकका यही कर्म बहुत है २३ हे राजा युधिष्ठिरकी यह आज्ञाहै कि राजालोगों को न मारना चाहिये इसीहेतुसे अपराधी होकर भी तुम इसबड़े युद्ध में जीवते हो २४ तब राजा मगधने अपने को निषेध किया हुआ मानकर हाथ जोड़कर उसके पास आकर उसकी प्रतिष्ठा करी और कहा आपका कहना सत्य है २५ आपका भलाहोय मैं तुम से पराजितहूं मैं तुम से अब लड़ने को उत्साह नहीं करता हूं अब आप की जो आज्ञा होय सो कहिये और उसको कियाहुआ ही जानों २६ अर्जुन ने उसको विश्वास देखकर फिर यह बचन कहा कि चैत्रकी पूर्णमासीको हमारे राजाके यज्ञमें आपको आनायोग्य है २७ इसप्रकार आज्ञा पाकर उस हंसदेवके पुत्रने बहुत अच्छा कहकर अंगीकार किया और घोड़े समेत शूरबीर अर्जुनको बिधि पूर्वक पूजनकिया २८ इस के पीछे वह घोड़ा फिर अपनी इच्छा के अनुसार चला फिर वह समुद्र के किनारे पर बंग, पौण्ड्र और कौशल देशों में गया २९ अर्जुन ने जहां तहां गांडीव धनुषसे म्लेच्छोंकी बहुत सेनाओंको विजय किया ३० ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिअश्वानुसारेमागधपराजयेद्व्यशीतितमोऽध्यायः ८२ ॥

# तिरासीवां अध्याय ॥

बैशम्पायन बोले हे राजा राजामगध से पूजित पाण्डव अर्ज्जुन ने दक्षिण दिशामें नियत होकर उस घोड़ेको चलाया १ इसके पीछे उस स्वेच्छाचारी घोड़े ने घूमकर चन्देरीदेशियों की शुक्तिनाम सुन्दरपुरी को पाया २ तब वहां वह बड़ा पराक्रमी अर्जुन उस शिशुपालके पुत्र शरभ से युद्धकेद्वारा पूजित हुआ ३ हे राजा तव वह पूजित श्रेष्ठघोड़ा काशी, अङ्ग, कौशल, किरात और तङ्गण देशों को गया ४ वह कुन्तीका पुत्र अर्जुन न्यायके अनुसार पूजालेकर दशार्णदेशों को गया ५ वहां पराक्रमी शत्रुओंका पराजय करनेवाला चित्रांगद नाम राजाथा उसके साथ उस अर्जुनका युद्ध अत्यन्त भयकारी हुआ ६ पुरुषोत्तम अर्जुन उसको भी आधीन करके निषादोंके राजा एकलव्य नाम राजाके देशोंमें गया ७

तब एक लव्य के पुत्रने युद्ध के साथ उसको लिया वहां उसने निषादों के साथ युद्ध किया वह युद्ध भी रोमहर्षण करनेवाला था ८ इसके पीछे युद्धों में अजेय निर्भय अर्जुनने यज्ञके विघ्नके लिये सम्मुख आनेवाले उस निषाद को युद्ध में विजय किया ९ हे राजा वह इन्द्रका पुत्र उस निषादके पुत्र को विजय कर और उससे पूजित होकर दक्षिणी समुद्र को गया १० वहां भी अर्जुनका युद्ध द्रविड़, अन्ध्र, माहिषक, कोल्लगिरि निवासियों के साथ हुआ ११ अर्ज्जुन साधारणता से उनको भी विजय करके आधीन न होनेवाले घोड़े के साथ सुराष्ट्र देशों के सम्मुख गया १२ गोकर्ण को पाकर प्रभासक्षेत्र को भी गया इसके पीछे युधिष्ठिर के उस शोभायमान यज्ञके घोड़ेने वृष्णी बीरों से रक्षित सुन्दर द्वारका को पाया यादवोंके बालक उस श्रेष्ठ घोड़ेको पकड़कर चलेगये १३।१४ हे राजा तब राजा उग्रसेनने उनको निषेध किया तब वृष्णी और अन्धकबंशियोंके स्वामी उग्रसेन ने १५ अर्जुनके मामा बसुदेवजी समेत पुरसे बाहर निकलकर दोनों विधि पूर्वक अर्जुन से मिलकर १६ बड़ी पूजासमेत अर्जुन के सम्मुख नियतहुये फिर उनसे भी बिदा होकर अर्जुन उधर को चला जिधर घोड़ा गया १७ फिर वह अलंकृत घोड़ा क्रम पूर्वक पश्चिम देशों को चला फिर पञ्चनद अर्थात् पंजाब देश में गया १८ हे कौरव तब वह घोड़ा वहां से भी चलकर इच्छाके अनुसार गान्धार देश को गया जिसका कि अनुगामी अर्जुन था फिर प्राचीन शत्रुताके समान कर्मकर्त्ता गान्धार देशके राजा शकुनी के पुत्रके साथ युद्ध हुआ वह युद्ध भी भयका उत्पन्न करनेवाला था १९ । २० ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिअश्वानुसारेत्र्यशीतितमोऽध्यायः ८३ ॥

# चौरासीवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले कि गान्धार देशियोंका महारथी शकुनीका पुत्र बीर घोड़े हाथी और रथ से संयुक्त पताका ध्वजा ध्वजाकी माला रखनेवाली बड़ी सेनासे व्याप्त अर्जुन के सम्मुख चला राजा शकुनी के मरण को न सहते १ । २ धनुष पकड़नेवाले वह शूरबीर सब मिलकर अर्जुनके सम्मुख गये उस अजेय धर्म्मात्मा अर्जुनने उनसे युधिष्ठिर का बचन कहा परन्तु उन्होंने अपने कुशल रहने का युधिष्ठिर का बचन स्वीकार नहीं किया मधुर वाणी के साथ अर्जुन से रुके

हुये क्रोधयुक्त वह लोग ३। ४ घोड़े को घेरकर चले इसी हेतु से अर्ज्जुन क्रोध युक्त हुआ तदनन्तर पाण्डव अर्जुनने साधारण रीतिके द्वारा धनुषसे छोड़े हुये प्रकाशमान नोकवाले क्षुरनाम बाणोंसे उन्होंके शिरोंको काटा हे महाराज बाणों की बर्षासे अत्यन्त पीड़ावान् और अर्जुनके हाथसे घायल वह सेनाके लोग भयभीतहोकर घोड़ेको छोड़कर लौटे उन गान्धारियोंसे रुकेहुये तेजस्वी अर्जुनने भी ५। ६। ७ नाम लेलेकर उन सबके शिरोंको गिराया युद्धभूमिमें चारोंओरसे गान्धारियोंके मारे जानेसे उस शकुनी के बेटे ने अर्जुनको रोका अर्जुनने उस युद्ध करनेवाले क्षत्रीधर्म्म में नियत राजा से कहा ८। ९ कि राजा युधिष्ठिर की आज्ञासे मैं किसी राजाको मारना नहीं चाहता हे बीर तुम युद्धको त्यागो अब तेरी पराजय न होय तब इसप्रकार शिक्षित होकर भी अज्ञानतासे कर्म करनेवाले उस राजाने उस बचनकोभी तिरस्कारकरके इन्द्रके समानकर्मी अर्जुनको बाणोंसे ढकदिया १०। ११ बड़े बुद्धिमान् अर्जुनने अर्द्धचन्द्रनाम बाणसे उसके शिरस्त्राण को ऐसे गिराया जैसे कि जयद्रथका शिर गिरायाथा १२ उन सब गान्धारियोंने उस कर्मको देखकर आश्चर्य किया और यह जाना कि उस इच्छावान् अर्जुन ने राजाको नहीं मारा १३ भागनेमें प्रवृत्त चित्त गान्धारदेशी राजाका पुत्र नीच मृगोंके समान भयभीत होकर सेनाके लोगों समेत चलदिया १४ वहां अर्जुनने टेढ़ेपर्व्ववाले बाणोंसे शीघ्रही उन चारों ओर घूमनेवालों के शिरोंको काटा १५ कितनेही मनुष्योंने अर्जुनके हाथसे चलायमान गाण्डीव धनुषसे छोड़ेहुये बड़े बाणोंसे काटीहुई बड़ी भुजाको नहीं जाना १६ जिसके मनुष्य हाथी घोड़े भ्रांति से युक्तथे वह भागीहुई सेना गिरी और बहुतसी सेना मृतक और आपत्तियुक्त होकर लौटी १७ उस उत्तमकर्म्मी वीरके आगे गिरेहुये शत्रुओं में से कोई शत्रु ऐसा नहीं दिखाई दिया जोकि उस अर्जुनको सहसके १८ इसके पीछे गान्धार के राजाकी माता जिसके अग्रगामी वृद्धमंत्रीथे उत्तम अर्थको आगे करके नगर के बाहर निकली १९ उसने सावधान और युद्ध में दुर्मद पुत्रको रोका और उस अर्जुनको जिसके आगे सब कर्म साधारणहैं प्रसन्न किया २० प्रभु अर्जुनने उस को पूजकर कृपाकरी और शकुनी के पुत्रकोभी विश्वासकराके यह बचन कहा २१ हे महाबाहु मेरा अभीष्ट नहींथा जो तुमने सम्मुख लड़नेका बिचारकिया हे नाशकरनेवाले निष्पाप तुम मेरे भाईहो २२ हे राजा मैंने गान्धारी माताको स्म-

रणकरके धृतराष्ट्र के हेतु से तुमको नहीं मारा इसीकारणसे तुम जीवते हो तेरे साथीही मारेगये २३ ऐसी दशावाला तू मतहो अपने चित्त से शत्रुता दूरकरो तेरी बुद्धि ऐसी मतहो तुम चैत्र महीनेकी पौर्णमासी को हमारे राजाके अश्व-मेधयज्ञ में जाना २४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिअश्वानुसारेचतुरशीतितमोऽध्यायः ८४ ॥

# पचासीवाँ अध्याय ॥

बैशम्पायन बोले कि ऐसा बचन अर्जुन कहकर स्वेच्छाचारी घोड़े के पीछे चला फिर घोड़ा हस्तिनापुरकी ओर लौटा १ युधिष्ठिर ने दूतके द्वारा उस लौटे हुये अर्जुनको सुना वह अर्जुनको कुशल मङ्गलपूर्व्वक सुनकर प्रसन्नहुआ २ तब युधिष्ठिर गान्धार और अन्य अन्य देशों में अर्जुनके उस कर्म को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नहुआ ३ हे कौरव उसीसमयपर धर्म्मधारियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी धर्मराज युधिष्ठिर ने माघके शुभपक्षकी द्वादशी और पुष्य नक्षत्रको पाकर ४ भीमसेन नकुल सहदेव इन सब भाइयोंको बुलाकर उस महावक्ताने उस प्रहार-कर्ताओंमें श्रेष्ठ भीमसेनको समयपर सावधानकरके यह बचन कहा कि ५।६ हे भीमसेन यह तेरा छोटा भाई अर्जुन घोड़े के साथ ऐसे आताहै जैसे कि अर्जुन के साथी दूतोंने मुझसे कहाहै ७ यह समय सम्मुख आया और घोड़ा आताहै हे भीमसेन यह माघकी पौर्णमासी है आजसे एक महीना शेषरहाहै ८ इसहेतुसे वेदमें पूर्णज्ञानी पण्डित ब्राह्मणजायँ और अश्वमेधकी सिद्धि के निमित्त यज्ञ करने के योग्य देशको देखें ९ इसप्रकारसे आज्ञा दियेहुये उस भीमसेनने राजा की आज्ञाको किया और आयेहुये अर्ज्जुन को सुनकर प्रसन्नहुआ १० इसके पीछे वह भीमसेन यज्ञकर्म्मों में कुशल और सावधान ब्राह्मणों को आगे करके पूर्ण बुद्धिमान् कारीगरोंको साथमें लेकर यात्राका करनेवाला हुआ ११ भीम-सेनने विधिके अनुसार उस यज्ञभूमिको नपवाया जोकि बहुतसे स्थानों से युक्त और शोभायमानथी और जिसमें बाजारके मार्ग वर्त्तमानथे उस भूमिको विधि पूर्वक सैकड़ों मन्दिरोंसे युक्त उत्तम मणियोंसे जटित सुवर्ण और मणियोंसे अ-लंकृत करवाया १२ सुवर्ण से खचित स्तम्भ और बड़े तोरणको अर्थात् स्तम्भके ऊपर सिंहाकार काष्ठको बनवाया और यज्ञके स्थानोंपर शुद्धसुवर्णको जड़वा

कर १३।१४ फिर धर्मात्माने नानाप्रकारके देशोंसे आनेवाले राजाओं के निवास स्थानोंको जहां तहां बिधिपूर्वक बनवाया १५ अर्थात् उसकुन्तीकेपुत्रने नानादेशों से आनेवाले ब्राह्मणोंके स्थानोंको विधिपूर्वक वनवाया वह अनेक प्रकारके थे १६ हे महाबाहु यह सब स्थान तैयार करवाके राजाकी आज्ञासे दूतोंको समर्थ राजाओंके पासभेजा १७ हेबड़े साधुराजा जनमेजय दूतोंके पहुंचतेही वह राजालोग युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके अर्थ उसके अभीष्ट प्रियरत्न स्त्री घोड़े और धनुष आदिक शस्त्रोंको लेकर आये १८ उन सुन्दर निवासस्थानों में प्रवेशकरते हुये उन राजाओंके शब्द स्वर्गको ऐसे स्पर्श करनेवाले हुये जैसे कि गर्जतेहुये समुद्रके शब्द स्वर्ग के स्पर्श करनेवाले होतेहैं १९ राजा युधिष्ठिर ने उन आनेवाले राजाओंके निमित्त खाने पीनेकी वस्तु और शय्याआदिक दिव्यपदार्थों की आज्ञादी २० उसभरतर्षभ धर्मराजने घोड़े आदिके लिये नानाप्रकार की शालाओं को जोकि धानतृण और गोरससे युक्तथीं बतलाई २१ इसीप्रकार उस बुद्धिमान् धर्मराज के बड़े यज्ञमें बहुतसे ब्रह्मबादी मुनिलोगोंके समूह आये २२ हे राजा वहांपर जो महाउत्तम ब्राह्मणथे वह अपने शिष्यों समेतआये २३ युधिष्ठिर ने उनको बड़े आदर सत्कारके साथ अभ्युत्थान पूर्व्वक प्रीतिके साथ लिया महातेजस्वी युधिष्ठिर दंभको त्यागकर आपही निवासस्थानों तक उनके साथ गया २४ इसके पीछे कारीगर और जो अन्य २ प्रकार के शिल्प बिद्याके लोग वहां बर्त्तमान थे उन्होंने सब यज्ञ विधिको बनाकर धर्मराजसे निवेदन किया २५ आलस्य से रहित प्रतिष्ठा युक्त राजा युधिष्ठिर उस सबको तैयार सुनकर भाइयों समेत बहुत प्रसन्नचित्त हुआ २६ वैशंपायन बोले कि उस यज्ञके जारी होनेपर वार्त्तालापमें सावधान परस्पर विजयाभिलाषी हेतुबादी ब्राह्मणोंने अर्थात् न्यायशास्त्रवालोंने बहुतसे हेतु बादोंको वर्णन किया २७ हे भरतबंशी सब राजाओंने भीमसेन की रचीहुई उस उत्तम यज्ञबिधिको देखा जोकि देवेन्द्रकी यज्ञके समानथी २८ उन्होंने जहांपर सुवर्ण के तोरणोंको और बहुत से शय्याआसन बिहारोंको जोकि मनुष्यों के समूहोंसे युक्तथे देखा राजाओंने घट, पात्र, कढ़ाव कलश, वर्द्धमानक इत्यादि किसी सामान को भी बिना सुवर्ण का नहीं देखा २९ । ३० शास्त्रके अनुसार उन यज्ञस्तंभों को देखा जोकि काष्ठसे निर्मित सुवर्ण से खचित और अलंकृत बड़े प्रकाशमान विधिपूर्व्वक वनायेथे ३१ हे समर्थ वहां

राजाओंने उनसब विषयोंको भी वर्त्तमान देखा जोकि जल और स्थलमें उत्पन्न होनेवाले थे ३२। ३३ गौ भैंस वृद्धस्त्रियां जल जीव पशु पक्षी जरायुज अंडज स्वेदज और उद्भिज अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न औषधी पर्व्वत और अनूप देशोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंको भी राजाओंने देखा ३४ इस प्रकार राजाओं ने पशु गोधन और धान्यसे प्रसन्नसब यज्ञशालाको देखकर बड़े आश्चर्य्यको पाया ३५ ब्राह्मणों के और वैश्यों के वह निवासस्थान बहुत स्वच्छ खाने पीने की वस्तु और धनोंसे पूर्णथे वहां भोजन करनेवाले वेदपाठी ब्राह्मणोंका एकलक्ष संख्या पूर्ण होनेपर ३६ बादल के समान शब्दायमान दुन्दुभी बारंबार बजाईगई और प्रत्येक दिनके वर्त्तमान होने पर प्रतिक्षण शब्द करनेवाली हुई ३७ बुद्धिमान् धर्मराजका वह यज्ञ इसप्रकार जारी और वर्त्तमान हुआ हे राजा मनुष्यों ने भोजनकी वस्तुओंके ढेर ३८ दही के कुंड और घृतके ह्रददेखे नानादेशों से युक्त सम्पूर्ण जंबूद्वीप ३९ उस राजाके महायज्ञ में एकत्र वर्त्तमान दिखाई पड़ा जहां तहांसे मनुष्योंकी हजारोंजातियों के लोग ४० बहुतसे पात्रोंको लेकर वहांगये उन सब मालाधारी और बहुतस्वच्छ मणि कुंडल रखनेवालोंने ४१ उन सैकड़ों और हजारों ब्राह्मणोंके आगे नानाप्रकारके खाने पीनेके पदार्थों को परोसा जो मनुष्य कि इसकार्य्यपर नियतथे उन्होंने राजाओंके योग्य भोजनों की वस्तुओं को ब्राह्मणों के आगे परोसा ४२॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणियुधिष्ठिरअश्वमेधेपंचाशीतितमोऽध्यायः ८५॥

## छियासीवां अध्याय॥

वैशम्पायन बोले कि राजायुधिष्ठिर ने आयेहुये वेदपाठी ब्राह्मणों को और पृथ्वीपति राजाओं को देखकर भीमसेन से कहा कि जो यह पृथ्वीपति राजा लोग पास आये हैं उन्होंकी पूजाकरना योग्य है क्योंकि सब राजालोग पूजन के योग्य हैं १। २ यशवान् महाराज से आज्ञा दियेहुये उस महातेजस्वी पांडव भीमसेन ने नकुल सहदेव समेत उसी प्रकार से किया ३ इसके पीछे सब जीवधारियों में श्रेष्ठ गोविन्दजी बलदेवजी को आगे करके सात्यकी, प्रद्युम्न, गद निशठ, साम्ब, कृतबर्मा इत्यादिक सब वृष्णियों समेत धर्म्मराज के पास आये ४। ५ महारथी भीमसेन ने उन्हों की भी उत्तम पूजाकरी वह सब रत्नों से पूर्ण

अपने २ निवासस्थानों को गये ६ मधुसूदन श्रीकृष्णजी ने कथाके अन्तपर बहुत से संग्रामों से कर्षित होना अर्जुनका वर्णन किया ७ धर्म्मराज कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने उस इन्द्र के पुत्र अर्जुन से बारंबार पूछा और जगत्पति ने उसको अच्छीरीति से वर्णन किया ८ हे राजा एक द्वारकावासी बड़ा विश्वस्थ मनुष्य आया था जिसने कि वहुत युद्धों से कष्टित उस अर्ज्जुन को देखाथा ६ हे प्रभु उसने महाबाहु अर्जुन को समीपही आनेवाला मुझसे कहाहै इस्से हे युधिष्ठिर तुम अश्वमेध की सिद्धिके लिये करनेके योग्य कर्मों को करो १० इस प्रकार के बचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने उनको उत्तर दिया कि हे लक्ष्मीपति वह अर्जुन प्रारब्धसे कुशलपूर्वक आताहै ११ हे यादवनन्दन पाण्डवी सेनाके स्वामी उस अर्जुनने जो आपके पास समाचार भेजे हैं वह मैं आपसे जानना चाहता हूं १२ तब धर्मराजके इस प्रकार पूछने पर बड़ेबक्ता श्रीकृष्णजीने धर्मराज युधिष्ठिर से यह बचन कहा १३ कि हे महाराज अर्ज्जुन के बचन को स्मरण करते हुये मनुष्य ने यह आनकर कहा कि हे श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर समय पर यह मेरा बचन कहनेके योग्य है १४ हे कौरवोत्तम सब राजालोग आवेंगे उन आनेवाले राजाओं की बड़ीपूजा करनी चाहिये यह हमको उचित है १५ हे बड़ाई देनेवाले उस राजा युधिष्ठिर को इस मेरे बचन से विदित करना योग्य है कि कोई नाश उत्पन्न करनेवाला कर्म्म न होय जो कि राजसूय यज्ञ में राजाओं के मध्य पूजनमें हुआ था १६ राजा उसके करने को योग्यहै आप भी उसको अङ्गीकार करें हे राजा यह प्रजालोग राजाओं की विरुद्धता और शत्रुता को नहीं देखें १७ हे राजायुधिष्ठिर उस मनुष्यने अर्जुन के इस दूसरे बचन को भी कहा है उसको भी मुझसे सुनो १८ कि मेरा प्यारा पुत्र बड़ा तेजस्वी बभ्रुबाहन नाम मणिपुरका राजा भी हमारे यज्ञ में आवेगा १६ आप उसको मेरे अभीष्ट और प्रियके लिये विधिपूर्व्वक पूजन करें हे प्रभु वह सदैव मेराभक्त और प्रीतिमान् है २० धर्मराज युधिष्ठिरने उसके इस बचन को सुनकर उसके इस बचन की प्रशंसा करके यह बचन कहा २१ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणियुधिष्ठिराश्वमेधेपडशीतितमोऽध्यायः ८६ ॥

---

# सत्तासीवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले हे प्रभु श्रीकृष्ण मैंने यह प्रिय बचन सुना जिसके आप कहने को योग्यहो वह पवित्र अमृतरस मेरे चित्त को प्रसन्न करताहै १ हे इन्द्रियों के स्वामी निश्चय करके अर्ज्जुनके बहुत से युद्ध जहां तहां राजाओं के साथ हुये और मैंने भी उनको सुना है २ क्या कारण है कि जो वह अत्यन्तविजयी बुद्धिमान् अर्जुन सदैव सुख से रहित हैं यह बात मेरे मनको खेदित करती है ३ हे जनार्द्दन मैं उस विजयके अभ्यासी अर्जुनको एकान्तमें शोचताहूं वह पांडुनन्दन बारम्बार अत्यन्त दुःखों का पानेवाला है ४ सब शुभ चिह्नों से शोभित उसके शरीरमें कौनसा चिह्न अप्रिय है हे श्रीकृष्णजी जिसके कारणसे कि वह दुःख को भोगता है ५ वह कुन्तीनन्दन बारम्बार दुःख पानेवाला है और मैं उस अर्जुनके अङ्गों में कोई दोषका चिह्न नहीं देखताहूं जो यह बात मेरे सुनने के योग्य होय तो आप उसके कहने को योग्य हैं ६ इस बात को सुनकर इन्द्रियों के स्वामी यादवोंके वृद्धिकर्त्ता विष्णुजीनें बहुत बड़े उत्तरको बिचार करके राजा से यह बचन कहा ७ हे राजा मैं इस पुरुषोत्तम के किसी अङ्ग को मिला हुआ अप्रकट नहीं देखताहूं सिवाय इसके कि इस नरोत्तम के दोनों पिण्डिक नियत संख्यासे अधिकहैं ८ वह पुरुषोत्तम उन दोनों अङ्गों के कारणसे सदैव बिदेशों की यात्रा करताहै इसके सिवाय किसी ऐसे दूसरे चिह्नको नहीं देखताहूं जिससे कि यह दुःखका भागी होय हे प्रभु जनमेजय इसप्रकारके श्रीकृष्णजी के बचन को सुनकर पुरुषोत्तम धर्मराजने उत्तरदिया कि यह इसीप्रकारहै९कृष्णा द्रौपदी ने गुण में दोष लगानेवाले श्रीकृष्णजी को तिरछा देखा केशीदैत्य के नाशक मित्र के मित्र इन्द्रियोंके स्वामी साक्षात् अर्जुनके समान श्रीकृष्णजी ने उसकी उस प्रार्थनाको स्वीकार किया अर्थात् दोष प्रकटकरनेसे मौनता धारणकरलीनी वहांपर कौरव याचक ब्राह्मण और भीमसेनादिक पांडव १०।११ अर्जुनकी उस विचित्र और शुभकथाको सुनकर प्रसन्नहुये अर्ज्जुनकी कथा के बर्णन करतेही समयमें १२ महात्मा अर्जुनकी आज्ञासे दूतआया उस बुद्धिमान्ने समीप आकर युधिष्ठिरको नमस्कारकरके पास आनेवाले नरोत्तम अर्जुनको वर्णनकिया तब उसको सुनकर प्रसन्नताके अश्रुओं से व्याकुल युधिष्ठिरने १३।१४ इस शुभ

वृत्तान्तके बदलेमें उसको बहुतसा धन दिया फिर दूसरे दिन कौरवों के धुरन्धर नरोत्तमके आनेपर बड़ा वृद्धिकारी शब्द हुआ फिर समीप आनेवाले उस अ-र्ज्जुनके घोड़ों की उठाई धूलि ऐसे शोभायमान हुई १५ जैसे कि उच्चैःश्रवा की होती है वहां अर्ज्जुनने मनुष्योंके आनन्ददायक बचनों को सुना १६ कि वह अर्ज्जुन प्रारब्धसे कुशलपूर्व्वक है राजा युधिष्ठिर प्रारब्धी है अर्ज्जुनके सिवाय कौनसा बीर राजाओं को बिजयकर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर १७ इस उत्तम घोड़ेको घुमाकर फिर लौटकर आसक्ताहै जो सगर आदिक महात्मा पूर्व्वसमय में हुये थे १८ हमने कभी उनकाभी ऐसा कर्म्म नहीं सुना अब आगे भविष्यत् कालमें दूसरे राजालोग इस कर्म्मको नहीं करेंगे १९।२० जिसको कि हे कौरव-कुलभूषण तुमने कियाहै धर्मात्मा अर्जुन इस प्रकारसे कहने वाले उन मनुष्यों की वार्त्तालापोंको जो कि कानों को सुख देनेवालीथीं २१। २२ सुनता हुआ यज्ञशालामें पहुंचा तब मन्त्रियों समेत राजा युधिष्ठिर और यदुनन्दन श्रीकृष्ण जी धृतराष्ट्र को आगे करके अगमानी लेनेको गये फिर अर्जुन वहां आकर पिताके और बुद्धिमान् धर्मराजके चरणों को दंडवत्करके २३। २४ और भी-मसेनादिक भाइयोंको अच्छीरीतिसे पूजकर केशवजीसे मिला उन सबसे मिल कर और उनसे पूजितहोकर उस महाबाहुने उनको बिधिपूर्वक पूजकर २५ ऐसे बिश्राम किया जैसे कि पारजानेवाला दूसरे किनारे को पाकर बिश्राम लेता है उसी समय पर वह बुद्धिमान् राजा बभ्रुबाहन २६ दोनों माताओं समेत कौरवों के पास आया वहां उसमहाबाहुने वृद्ध कौरवों को और अन्य राजाओंको बि-धिपूर्वक नमस्कार कर २७ उनसे आशीर्वादलेकर अपनीदादी कुन्ती के महलों में प्रवेशकिया २८॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिबभ्रुवाहनागमनेसप्ताशीतितमोऽध्यायः ८७॥

# अट्ठासीवां अध्याय॥

बैशंपायन बोले कि उस महाबाहुने पांडवोंके महल में प्रवेश करके सुन्दर और मधुर वचनों से दादीको दंडवत्की १ इसके पीछे देवी चित्राङ्गदा और उ-लूपी दोनों नम्रतापूर्वक कुन्ती और द्रौपदी के पासगईं २ सुभद्रादिक जो दूसरी कौरवोंकी स्त्रियांथीं उनके पासभी न्यायके अनुसार गईं हे राजा द्रौपदी सुभद्रा

और जो अन्य २ यादवों की स्त्रियांथीं उन्होंने उनदोनों को नाना प्रकारके रत्न दिये अर्जुन के प्रिय करने की इच्छासे कुन्तीसे पूजित ३ । ४ वह दोनों देवी वहुमूल्य वाले शयन आसनपर बैठगईं वह बड़ातेजस्वी और पूजित बभ्रुवाहन ५ विधिके अनुसार राजाधृतराष्ट्रके सम्मुख नियतहुआ अर्थात् नमस्कारादिक करी फिर महातेजस्वी ने राजा युधिष्ठिर और भीमसेनादिक पांडवों के ६ पास जाकर नम्रतासे दंडवत्की वह उन्हों से प्रेमके साथ प्रेमपूर्वक मिलकर विधिके अनुसार पूजितहुआ ७ उन प्रीतिमान् महारथियोंने उसको वहुतसा धनदिया उसी प्रकार राजाबभ्रुवाहन नम्रताके साथ उस चक्र गदाधारी श्रीकृष्णजीके सम्मुख ८ ऐसे नियत हुआ जैसे कि प्रद्युम्न गोविन्दजीके पास नियत होताहै श्रीकृष्णजीने उसराजाको एक ऐसा रथदिया जोकि बहुमूल्य अथवा वृद्धोंके योग्य बड़ा पूजित ९ सुवर्ण के सामानों से अलंकृत और दिव्य घोड़ों से युक्त होकर अति उत्तमथा धर्मराज भीमसेन और नकुल सहदेवने भी पृथक् २ उसको धन से सत्कार किया १० इसके पीछे वार्त्तालाप करने में सावधान व्यास मुनिने तीसरे दिन युधिष्ठिर से मिलकर यह वचन कहा कि अवसे लेकर पूजनकरो तेरे यज्ञके समयका मुहूर्त्त वर्त्तमान हुआ याजक ब्राह्मण आज्ञा करते हैं ११ । १२ कि हेराजेन्द्र वहुतसे सोमयज्ञोंका समूह अथवा द्रव्यादिकसे संयुक्त यह तेरायज्ञ रचनाको प्राप्तहोय जोकि सुवर्णकी आधिक्यतासे भूसुवर्ण के नामसे विख्यात होय १३ हेमहाराज यहां दक्षिणाको त्रिगुणित करो जिससे कि तेरायज्ञ त्रिगुणताको पावे ब्राह्मणही इसमें कारणहैं हे राजा यहां तुमवहुत दक्षिणावाले तीन अश्वमेधोंको अच्छी रीतिसे प्राप्त करके बिरादरी के मारनेके पापोंको दूरकरोगे १४ । १५ हे कौरवनन्दन जो तुम अश्वमेध के अवभृथ स्नान को प्राप्त करोगे वह वड़ी पवित्रताका करनेवाला और उत्तमहै १६ वड़े बुद्धिमान् व्यासजी से आज्ञप्त वह वड़ातेजस्वी धर्मात्मा युधिष्ठिर अश्वमेधकी प्राप्तिके निमित्त दीक्षित हुआ १७ फिर उस महावाहु राजा ने उस महायज्ञ अश्वमेध को वहुत भोजन की वस्तु समेत वड़ी दक्षिणा रखनेवाला और सव अभीष्ट गुणोंसे संयुक्त किया १८ हे राजा वहां सर्वज्ञ वेदपाठी चारों ओर घूमनेवाले याजक ब्राह्मणोंने वेदोक्त कर्मोंको विधिके अनुसार किया १९ उन्होंका वह कर्म जिसको कि गुरू और साधुओंसे सीखाथा कुछभी नाशमान और वेदके विपरीत नहीं हुआ वड़े उत्तम

ब्राह्मणोंने बड़ी विधिसे योग्य कर्म को किया २० हेराजा उन बड़े साधु ब्राह्मणों ने प्रवर्ग्य नाम धर्मको विधिके अनुसार करके अभिषव को भी किया २१ अर्थात् ( सोमवल्ली को ओखलीमें साफ़ करना ) हेराजा सोमपान करने वालोंमें श्रेष्ठ और शास्त्रके अनुसार कर्म करनेवाले उन ब्राह्मणोंने सोमवल्लीका रस निकाल कर फिर क्रमपूर्व्वक प्रातस्सवनादिक कर्म किया २२ वहां कोई भी मनुष्य दुःखीदरिद्री और निर्बल न था २३ शत्रुओंके नाशकर्त्ता बड़े तेजस्वी भीमसेन ने राजाकी आज्ञासे सदैव याचक लोगों को भोजन दिया संस्तर अर्थात् स्थंडिल रचनामें सावधान याचकों ने प्रतिदिन शास्त्रके अनुसार सब कार्य्य किये २४। २५ यहां उस बुद्धिमान्का कोई सदस्य ऐसा नहीं हुआ जोकि छओं अंगोंका ज्ञाता और वार्त्तालापमें सावधान न होय और जिसका गुरुभी न होय २६ हे भरतर्षभ इसके पीछे स्तंभ खड़ेहोनेके समयपर याजकों ने बिल्व काष्ठके छःस्तंभ खदिर काष्ठके छः स्तंभ और उतनेही यूप पलाश के २७ देवदारुके दो स्तंभ और श्लेष्मान्तक का एक स्तंभ यह सब युधिष्ठिर के यज्ञमें खड़ें किये २८ हे भरतर्षभ उस भीमसेनने धर्मराजकी आज्ञा से दूसरे सुवर्ण स्तंभों को शोभाके अर्थ खड़ाकरवाया २९ हे राजऋषि वह वस्त्रोंसे अलंकृत स्तम्भऐसे शोभायमान हुये जैसे कि सप्तऋषियों समेत देवता महाइन्द्रके आगे पीछे शोभायमान होते हैं ३० चयनके अर्थ सुवर्णकी ईंटेंभी तैयारकीथीं वहां वह चयन ऐसा शोभायमानहुआ जैसा कि दक्षप्रजापति का चयन शोभित हुआ था ३१ उसका वह यज्ञ स्थान चार वेदी रखनेवालाथा और अठारह हाथ विस्तृत त्रिकोण गरुड़रूप स्वर्णमयी पक्ष रखनेवाला बनाथा ३२ इसके पीछे ज्ञानी ब्राह्मणोंने उस २ देवता का नामलेकर शास्त्रकी विधिसे विचार कियेहुये पशु पक्षी भेटकिये ३३ शास्त्रमें पढ़े हुये जो उत्तम पशु पक्षी और जलके जीवहैं उन सबको उस अग्नि चय कर्म में बिचार किया ३४ महात्मा युधिष्ठिरके यज्ञमें स्तंभोंके समीप तीनसौ पशु जिनमें प्रथमरत्न घोड़ा था विचारहुये ३५ साक्षात् देव ऋषियोंसे पूर्ण गन्धर्वों के गीत अप्सरा गणोंके नृत्योंसे युक्त किंपुरुषों समेत किन्नरोंसे शोभित और सिद्ध ब्राह्मणों के निवास स्थानों से चारों ओरको घिराहुआ वह युधिष्ठिर का यज्ञशोभायमान हुआ उस यज्ञशाला में ३६। ३७ व्यासजीके शिष्य सर्वशास्त्रदर्शी यज्ञरचनामें कुशल श्रेष्ठ ब्राह्मण सदैव नियतरहे यहां नारदजी महातेज-

स्वी तुंबुर विश्वावसु चित्रसेन और सरोद में पूर्ण अन्य बहुतसे गन्धर्व नियत थे उन्होंने यज्ञकर्म के अवकाशों के समय में उन ब्राह्मणों को प्रसन्नचित्त किया ३८ । ३९ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिअष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८ ॥

# नवासीवां अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि उत्तम ब्राह्मणोंने विधिके अनुसार दूसरे पशुओं को पकाकर शास्त्रके अनुसार उस घोड़ेका घातकिया १ हेराजा इसके पीछे याजकों ने घोड़ेको शास्त्रकी विधिसे मारकर विधिपूर्वक तीन कलाओं से युक्त उस स्वच्छ चित्तवाली द्रौपदी को वहां बैठाया २ हे भरतर्षभ फिर सावधान ब्राह्मणों ने उस घोड़े की वृपा अर्थात् चर्बीको शास्त्रके अनुसार निकालकर विधिके अनुसार पकाया तब धर्मराज ने अपने सबछोटे भाइयों समेत बपाके उस धुएंकी गन्धिको जोकि सब पापोंके दूरकरने वालीथी शास्त्र के अनुसार सूंघा और हे राजा उस घोड़ेके जो शेष बचेहुये अंगथे ३ । ४ । ५ उनसब अंगों को सब बुद्धिमान् ऋत्विजों ने शास्त्रकी विधि से अग्नि में होमा इन्द्रके समानतेजस्वी राजा युधिष्ठिर के उस यज्ञको इस रीतिसे नियत करके ६ शिष्यों समेत भगवान् व्यासजीने उस राजाको आशीर्वाद किया फिर युधिष्ठिरने विधिके अनुसार ब्राह्मणोंके अर्थ ७ हजार कोटि निष्कदिये और व्यासजीको पृथ्वीदी हे राजा सत्यवतीके पुत्र व्यासजीने पृथ्वी को ८ लेकर उस भरतर्षभ धर्मात्मा युधिष्ठिर से यह वचन कहा कि हे बड़े साधुराजा युधिष्ठिर यह पृथ्वी आपकी होय मैंने त्याग की ९ मुझको इसका मूल्य दीजिये क्योंकि ब्राह्मण धनके अभिलाषी हैं बड़े साहसी बुद्धिमान् युधिष्ठिरने भाइयों समेत महात्मा राजाओं के मध्यमें उन ब्राह्मणोंसे कहा कि महायज्ञ अश्वमेध यज्ञमें पृथ्वीही दक्षिणाकही है १० । ११ यह अर्जुन से विजयकीहुई पृथ्वी मैंने ऋत्विजोंको दानकी है हे उत्तम वेदपाठियो मैं वनमें प्रवेश करूंगा तुम इस पृथ्वी को विभाग करो १२ तुम चातुर्होत्र के प्रमाणसे पृथ्वीके चार विभाग करके बांटलो हे बड़े साधु ब्राह्मण लोगो मैं ब्राह्मणों का धनलेना नहीं चाहताहूं १३ हे वेदपाठियो मेरा और मेरे भाइयोंका यह सदैव चित्तहै उसके उसप्रकार कहनेपर सबभाई और द्रौपदीने कहा कि यह इसी

प्रकारहै वह वचन रोमांचों का खड़ा करनेवाला हुआ हे भरतवंशी फिर पृथ्वी और आकाशके मध्यमें धन्यधन्य शब्दहुआ १४। १५ उसीप्रकार प्रशंसाकरने वाले ब्राह्मणोंके समूहोंके शब्द भी शोभायमान हुये तब व्यास और श्रीकृष्ण जीने फिर युधिष्ठिर को समझाया १६ अर्थात् वेदपाठी ब्राह्मणों के मध्यमें प्रशंसा करते व्यास मुनिने यह वचन कहा कि आपने यह पृथ्वी मुझको दी और मैं इसको लौटाकर तुमको देताहूं १७ इन ब्राह्मणोंके लिये सुवर्णदीजिये पृथ्वी तेरीहोय वीर वासुदेवजीने धर्मराज युधिष्ठिरसे यहकहा १८ कि भगवान् व्यास जीने जैसा कहाहै तुम उसी प्रकार करनेके योग्यहो इसप्रकार आज्ञा दिये हुये उस प्रसन्नचित्त युधिष्ठिरने भाइयों समेत १९ यज्ञकी त्रिगुणित दक्षिणा दी जो कि असंख्यथी इस लोकमें इसको कोई दूसरा राजा नहींकरेगा २० अर्थात् राजा मरुत के पीछे कर्मकर्त्ता युधिष्ठिरने जो किया उसको आगेकोई राजा नहींकरेगा व्यास मुनिने उन रत्नों को लेकर २१ ऋत्विजोंको दिया और उन्होंने चार विभाग किये भाइयों समेत राजा युधिष्ठिर पृथ्वी का मूल्य उस सुवर्णको देकर २२ पापसे मुक्त और स्वर्गका विजय करनेवाला होकर प्रसन्न हुआ इसी प्रकार उन ऋत्विज ब्राह्मणोंने उस असंख्य सुवर्णकेढेरको २३ प्रसन्नता और आनन्द पूर्वक ब्राह्मणों को विभागकिया यज्ञके वाड़ेमें जो कुछ सुवर्ण भूषण २४ तोरण यज्ञस्तंभ, घट और सुवर्णकी ईंटेंथीं उनसबको भी युधिष्ठिरकी आज्ञासे उन सब को विभाग किया २५ ब्राह्मणोंके पीछे क्षत्रियोंने धनकोलिया इसीप्रकार वैश्य और शूद्रों के समूहोंने और अन्य म्लेच्छ जातियोंने भी उस धन को लिया २६ इसके पीछे बुद्धिमान् धर्मराजके उसधनसे तृप्त होकर प्रसन्नतासे सब लोग अपने अपने घरको गये २७ भगवान् व्यासजी ने अपना भाग प्रतिष्ठा पूर्वक कुन्तीको दिया अर्थात् महातेजस्वी व्यासजीने सुवर्णका ढेर उसको दिया २८ उस प्रसन्नचित्त कुन्तीने श्वशुरसे उस प्रीतिके भागको पाकर उस धनसे बहुत वड़े वड़े पुण्यके काम किये २९ राजायुधिष्ठिर भाइयों समेत यज्ञको प्राप्तकरके अवभृथ स्नानमें ऐसा शोभायमान हुआ जैसे कि देवताओंसे सेवित महाइन्द्र शोभितहोता है ३० हे महाराज इकट्ठे होनेवाले राजाओंसे घिरेहुये पांडवलोग ऐसे शोभायमानहुये जैसे कि सब ग्रह नक्षत्रगणों से शोभित होते हैं ३१ फिर राजाओंके निमित्तभी नानाप्रकार के रत्न हाथी घोड़े भूषण स्त्रियाँ वस्त्र और सु-

वर्ण दिया ३२ हे राजा वह पाण्डव युधिष्ठिर राजमण्डल में उस असङ्ख्य धन को देताहुआ कुबेर देवता के समान शोभायमानहुआ ३३ तब उसीप्रकार वीर राजा बभ्रुवाहन को बुलाकर बहुतसा धन देकर घरजाने को बिदा किया ३४ हे भरतर्षभ उस बुद्धिमान् युधिष्ठिरने बहिन की प्रीतिसे उस दुःशलाके पौत्र बालक को उसके राज्यपर नियत किया ३५ उस कौरवराज युधिष्ठिर ने उन सब भाग पानेवाले और पूजित राजाओं को बिदाकिया ३६ हे महाराज उस शत्रुविजयी राजायुधिष्ठिर ने भाइयों समेत उन महात्मा गोबिन्द जी महाबली बलदेव जी और प्रद्युम्नादिक हजारों वृष्णी वीरोंको विधिके अनुसार पूजकर बिदा किया ३७।३८ बुद्धिमान् धर्मराजका वह यज्ञ इसप्रकारके धन रत्नोंके ढेर और भोजनों के बड़े बड़े पर्वताकार ढेरोंका रखनेवालाथा जिसमें सुरा और मैरेयनाम आशवों के सागरथे ३९ हे भरतर्षभ जिस यज्ञमें घृतका कीच रखनेवाला ह्रद और भोजन की वस्तुओंके पर्वतथे और जिसमें रसोंकी कीचहोय ऐसी नदियांथीं ४० मनुष्योंने खाण्डव रागादिक भोजनकी वस्तुओंका तैयारहोना और घात होतेहुये पशुओंका अन्त न जाना ४१ तब आशवोंके मद से उन्मत्तरूप स्त्री पुरुषों की रखनेवाली वह यज्ञशाला मृदंग और शङ्खोंकी ध्वनियों से चित्तरोचक हुई ४२ दान करो और दिनरात बिना रोकटोक श्रेष्ठ अन्नोंको भोजन करो इस शब्दसे युक्त प्रसन्न चित्त हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे पूर्ण बड़े उत्सवरूप उस जिवनार स्थान को नानाप्रकारके देशवासी मनुष्योंने कीर्तन किया ४३ तब वह भरतबंशियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर अभीष्टरत्न और अन्य धनकी धाराओंसे बर्षा करनेवाला होकर पापसे रहित मनोरथोंको सिद्धकरके नगर में प्रवेश करनेवालाहुआ ४४ ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिअश्वमेधसमाप्तोनामएकोननवतितमोऽध्यायः ८९ ॥

## नब्बेका अध्याय ॥

जनमेजय ने पूछा कि मेरे पितामह बुद्धिमान् धर्म्मराज के यज्ञ में जो कुछ अपूर्व और अद्भुत वृत्तान्तहुआ उसको आप मुझ से कहनेको योग्यहैं १ वैशम्पायन बोले हे प्रभु राजेन्द्र उस बड़े अपूर्व वृत्तान्तको सुनो जोकि वहां यज्ञ के अन्तमें हुआ है २ हे भरतबंशियों में बड़े साधु तब ऋषि ज़ातिवाले भाई बन्धु

दुःखी और दरिद्रियों के तृप्त होने और ३ सब दिशाओं में बड़े भारी दान की विख्यात कीर्ति होनेपर धर्मराजके शिरपर पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी ४ उस समय नीलेनेत्र और सुवर्ण अर्द्धाङ्ग रखनेवाले एक नौलेने वज्र और बिजलीके समान एक शब्द किया हे निष्पाप राजा जनमेजय ५ पशु पक्षियोंको भयभीत करते उस बुद्धिमान् नौलेने एकबार अपने शब्दको करके मनुष्यवाणी में कहा ६ हे राजाओ यह तुम्हारा यज्ञ उस ब्राह्मणके एक प्रस्थ परिमाण सक्तुदानके समान नहीं है जोकि कुरुक्षेत्र निवासी उंछवृत्तिहोकर दानका अभ्यासीथा ७ हे राजा उस नौलेके शब्द और बार्त्ताको सुनकर उन सब ब्राह्मणोंने बड़े आश्चर्य को पाया ८ तब उन ब्राह्मणों ने उस नौले से समीप जाकर पूछा कि जिस यज्ञ में साधुलोगोंका मिलाप होताहै उस यज्ञमें तू कहांसे आयाहै ९ तेरा उत्तम पराक्रम क्याहै कौन शास्त्र पढ़ाहै और किस शास्त्रका तुझको ज्ञानहै कौन इष्टदेवहै आप को हम कैसे जाने जो हमारे यज्ञकी निन्दा करतेहो १० सब शास्त्रोंको लोप न करके नानाप्रकारकी यज्ञ विधियों से कर्म कियागयाहै जो शास्त्र और न्यायके अनुसार करना योग्यथा उसको उसीप्रकारसे किया है ११ इसयज्ञमें शास्त्रकी परीक्षा और विधिके अनुसार पूजनके योग्योंका पूजन किया गया और मन्त्रकी आहुतियों से अग्निमें हवन किया और ईर्षा रहित होकर देनेके योग्य दान किया १२ यहां नानाप्रकारके दानों से ब्राह्मण तृप्तहुये क्षत्रिय लोगोंको उत्तम युद्धों से और पितामहादिकों को श्रेष्ठ श्राद्धों से तृप्त किया १३ वैश्य लोग पालन करनेसे और स्त्रियां अपने अभीष्ट पदार्थोंके मिलने से प्रसन्न हुईं इसी प्रकार शूद्र लोग कृपा और पारितोषिकों से और साधारण मनुष्य देने के योग्य शेष बची हुई अभीष्ट बस्तुओं से तृप्तहुये १४ । १५ हमारे राजा की बाह्याभ्यन्तरीय पवित्रतासे बिरादरीवाले और नाते रिश्तेदार प्रसन्नहुये देवता पवित्र हव्यों से और शरणागत लोग रक्षाओं से तृप्तहुये १६ यहां जो तुमने जैसा २ देखा और सुनाहै उसको ब्राह्मणों के मध्य में सत्य २ वर्णनकरो १७ तुम श्रद्धाके अनुसार बचन कहनेवाले और बुद्धिमान् हो और दिव्यरूप धारण करते हो अब तुम ब्राह्मणों से मिले हो इस्से उसके कहने को योग्य हो उन ब्राह्मणों के बचनों को सुनकर और उनके बारम्बार पूछने पर हँसते हुये नौलेने उत्तर दिया हे ब्राह्मण लोगो मैंने अभिमान से यह बचन नहीं कहाहै १८।१९ मैंने जो यह बचन कहा और

तुमने भी सुना है मैं यथार्थ कहता हूं कि यह तुम्हारा यज्ञ उस ब्राह्मण के एक प्रस्थ सत्तू दानकेसमान नहीं है २० हेसाधु ब्राह्मणो अब मुझको यह बात आप लोगों से अवश्यही कहना उचितहै तुम एकाग्रचित्त होकर उस सत्य बचन को मुझसे सुनो २१ मैंने कुरुक्षेत्र निवासी उंछवृत्ती दानके अभ्यासी ब्राह्मणका जो अपूर्व्व और उत्तम बृत्तान्त देखा और समझा २२ और जिस कर्म से उस ब्राह्मणने स्त्री पुत्र और पुत्रकी बधू समेत स्वर्ग को पाया और जिस प्रकार से यह मेरा आधा शरीर सुवर्ण का होगया २३ हे ब्राह्मणो न्यायके अनुसार उस वेद-पाठी ब्राह्मणके उद्योग से बहुत थोड़े से सत्तू दानके उत्तम फलको वर्णन करता हूं २४ किसी समय बहुत से धर्मज्ञ लोगों से युक्त धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में कोई उंछ वृत्ती ब्राह्मण कापोतीवृत्ति रखनेवाला हुआ २५ वह हिंसासे रहित जितेन्द्रिय सु-चाल रखनेवाला धर्मात्मा अपनी स्त्री पुत्र और पुत्रवधू समेत तपस्या में नियत था २६ वह सुन्दरव्रतवाला ब्राह्मण उन सबको साथलेकर छठवें दिन सदैव भो-जन किया करताथा परन्तु कभी २ छठवेंदिन भी उसको भोजन नहीं प्राप्त होता था २७ तब वह ब्राह्मण दूसरे छठवें दिन भोजन करता था हे राजा एक समय बड़ा दुर्भिक्ष होनेपर उस धर्मात्माको २८ उस नियतसमय परभी भोजन नहीं मि-ला तव औषधियोंसे रहित आश्रम होनेपर वहब्राह्मण अकिञ्चन अर्थात् खाली हाथ होगया २९ प्रत्येक समयके वर्त्तमान होनेपर उसको भोजन नहीं मिलता था इस हेतु से वह सब क्षुधा से पीड़ित होकर वहां से चलदिये ३० तव तपस्या में युक्त वह ब्राह्मण शुक्लपक्ष में मध्याह्न के समय अनाज के दानों को इकट्ठा करता हुआ क्षुधासे पीड़ावान् हुआ ३१ क्षुधा और परिश्रमसे युक्त उस ब्राह्मण ने अपनी उंछ को नहीं पाया—अपने बाल बच्चों समेत क्षुधा से महादुःखी प्राण उस उत्तम ब्राह्मणने उससमयको व्यतीत किया फिर छठवें दिनके नियत समय पर एक प्रस्थभर यव उसको प्राप्तहुये ३२। ३३ उन तपस्वियों ने उसी एक प्रस्थ यव का सत्तू बनाया फिर जपादिक नित्य कर्म करनेवाले उन सब तपस्वियों ने विधि पूर्व्वक अग्नि में हवनकर ३४ एक २ ग्रास आपसमें विभागकिया उसी समय भोजन की इच्छा करनेवाला कोई अतिथि ब्राह्मण उन तपस्वियोंके पास आया ३५ वह उस आये हुये अतिथिको देखकर प्रसन्न हुये और उन सबने अतिथि की नमस्कार पूर्वक कुशल क्षेम पूछकर ३६ अत्यन्त पवित्रचित्त जिते-

न्द्रिय श्रद्धा और शान्तिसे युक्त दूसरेके गुणोंमें दोष न लगानेवाले क्रोध और ईर्षासे रहित ३७ अहङ्कार और ममताके विना उन धर्मज्ञ ब्राह्मणोंने अपनेगोत्र को ब्रह्मचर्य्य समेत उसके सम्मुख वर्णनकरके ३८ उसक्षुधासे पीड़ावान् अतिथि को अपनी कुटी में बुलालिया और कहा कि हे निष्पाप प्रभु ब्राह्मण तेराभला होय यह अर्घपाद्यहै और यह आपका कुशासनहै ३९ और नियमसे प्राप्तहुये यहपवित्र सत्तू हैं मेरेदिये हुये इन सत्तुओं को अंगीकारकरो ४० हेराजा इसप्र- कार से कहेहुये उस ब्राह्मणने एककुड़व सत्तूलेकर खाया परन्तु उतने सत्तू से तृप्त नहीं हुआ ४१ उसउंछवृत्ती ब्राह्मणने उस क्षुधायुक्त ब्राह्मणको देखकर आ- हार का विचारांश किया कि यह ब्राह्मण किस रीति से तृप्त होसक्ता है ४२ तब उसकी स्त्रीनें वचन कहा कि मेराभाग दीजिये जिससे कि यह श्रेष्ठब्राह्मणतृप्त होकर जाय ४३ उसबड़े साधु ब्राह्मणने इसप्रकार वार्त्ता करनेवाली उस पतिव्र- ता भार्य्याको क्षुधायुक्त जानकर उसके भागकोदेना अंगीकार नहींकिया इसके पीछे अपने विचारसे उसको क्षुधासे पीड़ित दुर्बल शरीरवृद्ध तपस्विनी दुखिया जानते उस बुद्धिमान् उत्तमवेदपाठी ने ४४। ४५ उसकंपितत्वचा और अस्थि मात्रों से युक्त अपनी भार्य्या से यह वचन कहा कि हे सुन्दरी कीट पतंग और मृगोंकी भी स्त्रियां ४६ रक्षा और पोषणकेयोग्यहैं तुम इसप्रकार कहनेको योग्य नहीं हो स्त्री परपुरुष को सदैव दया करनी योग्यहै वह स्त्री उस पुरुष से रक्षित और पोषित होतीहै ४७ धर्मकार्य्य,काम, अर्थ, वृद्धोंकी सेवा,सन्तान,कुल और अपना वा पितरोंका धर्म स्त्रियोंके आधीनहै जो पुरुष रक्षामें समर्थ नहीं है वह कर्मसे भार्य्या को नहीं जानताहै ४८ और बड़ी अपकीर्ति को प्राप्त करताहै अ- थवा अपनी प्रकाशित शुभकीर्ति को नाश करनेवालाहै और उत्तम लोकोंको नहीं पाता है इस प्रकारकी बातें सुनकर उस स्त्री ने उत्तरदिया कि हे ब्राह्मण हमदोनों के धर्म अर्थ समान हैं ४९ मुझपर प्रसन्न होकर और एकप्रस्थ सत्तू के इस चतुर्थांश को ग्रहण करो हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सत्य, प्रीति, धर्म और पतिव्रत नामगुण से विजय होनेवाला स्वर्ग ५० और पतिका विश्वास यह सब स्त्रियों का अभीष्टहै माता के रुधिर और पिताके वीर्यसे उत्पन्न पति बड़ा देवता है ५१ स्त्रियोंको पतिकी प्रसन्नतासे सुख और प्रीतिपूर्वक स्नेह से पुत्र फल प्राप्तहोताहै तुम पोषण करनेसे मेरे भर्त्ताहो और रक्षाकरनेसे पतिहो ५२ और पुत्रदेनेसे ब-

रदाता हो इसहेतुसे मेरेसत्तू को लीजिये जब कि तुमभी वृद्ध निर्बल क्षुधासेपीड़ा-वान् अत्यन्त पराक्रम हीन ५३ व्रतसे खेदित और कषाङ्गहो उस स्त्री से इसप्रकारके बचनोंको सुनकर उसऋषिने सत्तूलेकर उसअतिथिसे यह बचनकहा ५४ कि हे बड़े साधु ब्राह्मण फिर तुम इन सत्तुओं को लो ब्राह्मणने उनको लेकर और खाकर तृप्तिको नहीं पाया ५५ उंछवृत्ती ब्राह्मण उसको देखकर शोच युक्त हुआ ५६ फिर पुत्रबोला हे बड़े साधु पिता आप इन सत्तुओंको लीजिये और ब्राह्मणको दो मैं इसको शुभकर्म मानताहूं इस हेतुसे इसको करताहूं ५७ मुझको सदैव पूर्ण उपायों के द्वारा आपकी सेवा करनी उचितहै क्योंकि वृद्ध पिता का पालन करना साधुओं का अभीष्टहै ५८ हे ब्रह्मऋषि वृद्धावस्था में जो पालन करताहै यही पुत्रत्वभाव होनेका नियत फलहै और यह सनातन श्रुति तीनोंलोकों में प्रसिद्धहै ५९ केवल प्राणोंकी रक्षाके द्वाराही तुमसे तप करना संभवहै प्राणही परमधर्म है जोकि जीवधारियों के शरीर में नियत है ६० पिताने कहा कि तू हजार बर्षका भी होकर मेरी दृष्टिमें बालकही माना जायगा पिता पुत्रको उत्पन्न करके उस पुत्रके द्वारा कृतकृत्य होजाता है ६१ हे समर्थ बेटा मैं यह जानताहूं कि बालकोंकी क्षुधा बड़ी प्रबलहै मैं वृद्धहूं इससे क्षुधाको सहसक्ता हूं और हेपुत्र तुम बलवान्हो ६२ हेपुत्र वृद्धावस्था और क्षुधा मुझको पीड़ा नहीं देती हैं मैंने बहुत कालतक तपकियाहै इससे मुझको मरनेसे भी भयनहीं है ६३ पुत्रने कहा मैं आपका बेटाहूं बेटा बापकी रक्षा करनेसेही पुत्र कहाताहै वह बेटा अपनाही स्वरूप कहाजाताहै इसी हेतुसे आप अपनीही आत्मासे रक्षाकरो ६४ पिताने कहा हेपुत्र तुम रूप,स्वभाव और जितेन्द्रियपनेसे मेरे समानहो क्योंकि मैंने बहुधा परीक्षा करी है इससे अब तेरे सत्तूलेताहूं ६५ तब उस प्रसन्नचित्त हँसतेहुये उत्तम ब्राह्मणने यह कहकर उन सत्तुओंको लेकर उस ब्राह्मणको दिया ६६ वह उन सत्तुओंको भी खाकर तृप्तनहीं हुआ तब उस उंछवृत्ती धर्मात्मा ब्राह्मणने लज्जाको पाया ६७ फिर वहां पर नियत पतिव्रता अत्यन्त प्रसन्नचित्त पुत्रबधूने ब्राह्मण के प्रियकरने की इच्छा से अपने सत्तू लेकर उस अपने श्वशुरसे यह बचन कहा कि हेवेदपाठी आपकी सन्तानसे मेरी सन्तान होगी तुम इन मेरे सत्तुओं को लेकर अतिथि ब्राह्मणकोदो ६८।६९ निश्चयकरके आपकी कृपा से वह मेरे अविनाशी लोक बर्त्तमान हुये जिनको कि पौत्रके द्वारा पाता

है और जिनमें जाकर फिर मनुष्य शोच नहींकरताहै ७० पुत्र अपने वृद्धपितरों को अनृण करता है यह हम सुनते हैं निश्चय करके पुत्र और पौत्र के द्वारा साधु उत्तम लोकोंकोभोगताहै ७१। ७२ ससुरने कहा हे सुन्दरव्रत आचारवाली मैं तुझको हवा और धूप से शुष्कांग रूपान्तर निर्व्बल और क्षुधा से व्याकुल चित्त देखकर किस प्रकार से धर्म का नाशक होकर सत्तू को लेसक्काहूं हे नेक-चलन कल्याणिनि तुमको ऐसा कहना योग्य नहीं है ७३। ७४ हे शुभबधू मैं तुझ व्रत करनेवाली बाह्याभ्यन्तरीय पवित्रता से युक्त सुन्दर स्वभाववाली और तपसे संयुक्त और दुःखसे निर्वाह करनेवालीको किसप्रकार छठवेंदिन पर भी निराहार देखूंगा ७५ क्षुधासे पीड़ावान् बाला स्त्री तुम मुझसे सदैव रक्षाके योग्यहो तुमबान्धवों को प्रसन्न करनेवाली और व्रत खिन्न चित्तहो ७६ बधूबोली तुममेरे गुरू के भी गुरू देवता के भी देवता और सबसेपरे देवता हो हे प्रभु इसहेतु से तुममेरे सत्तू को लो ७७ यहशरीर प्राण और धर्मगुरूकी ही सेवाके अर्थ है हे वेदपाठी हम आपकी कृपा से शुभलोकों को पावेंगे ७८ हे ब्राह्मण तुमने यह विचार करके कि यह पालन के योग्य दृढ़भक्ति रखनेवाली और परीक्षाके योग्य है परीक्षा लेने के लिये ऐसा कहा है तुमसत्तू लेने के योग्य हो ७९ ससुरबोला तुम पतिव्रता होकर सदैव इस श्रेष्ठ स्वभाव और चलनसे शोभापाती हो जो धर्म व्रत से संयुक्त तुम गुरुवृत्ती को ही विचारती हो इस हेतु से तुम्हारे भी सत्तूलूंगा हे महाभाग धर्मधारियों में श्रेष्ठबधू तुमसमझकर छलकरने केयोग्य नहीं हो यह कहकर उस के सत्तूलेकर ब्राह्मणको दिये ८०। ८१ उस कर्म से वह अतिथि ब्राह्मण उसमहात्मा साधुके ऊपर प्रसन्नहुआ और उस प्रसन्न चित्त बक्ताओंमें श्रेष्ठ नर रूपधारी धर्मने उस उत्तम ब्राह्मण से यहबचन कहा कि हे श्रेष्ठब्राह्मण न्याय से इकट्ठे किये हुये और धर्मसे सामर्थ के अनुसार तेरे दिये हुये सिद्धदान से ८२। ८३ मैं बहुत प्रसन्नहूं आश्चर्य है कि स्वर्ग में स्वर्गबासियों को तेरे दानकी प्रसिद्धी विख्यातकी जाती है ८४ आकाशसे गिरीहुई इसपुष्पोंकी वृष्टिको देखो देव ऋषि देवता गन्धर्व और जो देवताओं के अग्रवर्ती हैं ८५ और देवदूत तेरी प्रशंसा करतेहुये नियतहोकर दानसे आश्चर्ययुक्तहैं और जो ब्रह्मऋषि बिमानोंमें बैठेहुये ब्रह्मलोकचारी हैं ८६ वह तेरे दर्शनके अभिलाषीहैं हे उत्तम ब्राह्मण स्वर्ग लोकको जाओ पितृलोक में बर्त्तमान सब पितरों को तुमने उद्धार किया ८७

और वहुत अगले पित्रों को तुमने अपने ब्रह्मचर्य दान यज्ञ तप और शुद्ध धर्म से बहुत युगोंतक स्वर्गवासी किया इस हेतुसे तुम स्वर्गको जाओ हे सुन्दर व्रत जो तुम बड़ी श्रद्धा से युक्त तपस्या करते हो ८८ । ८९ हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ इसी हेतु से देवताभी तेरे दान से प्रसन्नहुये जिस कारण से कि तुमने दुःख के समय परभी शुद्धचित्तीपने से यह सबदान किया उस कर्म से तुमने स्वर्ग को विजय किया यह क्षुधा बुद्धिको नाशकरती है और धर्म विधि को दूरकरती है ९० । ९१ क्षुधासे युक्त ज्ञानभी धैर्यको त्याग करदेता है जो मनुष्य क्षुधाको जीतता है वह अवश्य स्वर्गको विजय करता है ९२ जब दान में प्रीतिमान होताहै तब धर्म पीड़ा नहीं पाता है तुमने अपने पुत्र और स्त्री की प्रीति को विचार न करके ९३ धर्मही को बड़ाउत्तम जानकर अपनी क्षुधाको ध्याननहीं किया मनुष्यों की धन प्राप्ति बड़ी कठिनहै पात्रको दानदेना उससे बढ़करहै ९४ दानसे उत्तम कालहै उससे बढ़कर श्रद्धाहै और स्वर्गका द्वार अत्यन्तसूक्ष्महै वहमनुष्यों को मोहके कारण दिखाई नहीं पड़ताहै ९५ और स्वर्ग के द्वारकी जोअर्गला है उसका उत्पत्तिस्थान लोभ है वह अर्गला इन्द्रियों के विषयों की प्रीतिसे रक्षित और दुष्प्राप्यहै उसको वहमनुष्य देखते हैं जो कि क्रोध और इन्द्रियोंके जीतने वाले ९६ ब्रह्मज्ञानी और सामर्थ्य के अनुसार दान करनेवाले हैं हजार देनेकी सामर्थ्य रखनेवाला सौदे सौकी सामर्थ्य रखनेवाला दशदेवे ९७ और जो अपनी सामर्थ्यके अनुसार जलदानकरे वह सबएकसेही फलवाले कहेजातेहैं हे वेदपाठी कुछ पास न रखनेवाले रन्तिदेवने पवित्रचित्त से जलदान कियाथा इसी हेतुसे स्वर्गको गया हे तात बड़े फल देनेवाले दानोंसे वह धर्म वैसा प्रसन्न नहीं होता ९८।९९जैसा कि न्यायसे प्राप्त श्रद्धासे पवित्र सूक्ष्म दानोंसे वह धर्म प्रसन्नहोता है राजा नृगने हजारों गोदान ब्राह्मणोंको दिये १०० उसने एक परलोक साधक गौको दानकरके नरकको प्राप्तकिया सुन्दर व्रतवाला उसीनरका पुत्र राजा शैब्य अपने शरीर के मांसके दानसे १०१ शुभकर्मियोंके लोकोंको पाकर स्वर्गमें आनन्द करताहै सत्पुरुषोंकी सामर्थ्यसे अच्छा इकट्ठा कियाहुआ धन १०२ धर्मकी वृद्धिका कारणहै मनुष्यों का ऐश्वर्य कारण नहीं है क्योंकि जैसा न्याय पूर्वक इकट्ठे कियेहुये धनके द्वारा फल मिलताहै वैसा नाना प्रकारके यज्ञोंसे भी नहीं मिलता है क्रोध दानके फलका नाशकरता है लोभसे कोई भी स्वर्ग को नहीं

जाताहै १०३। १०४ न्यायरूप आजीविका रखनेवाला दानका जाननेवाला म-नुष्य तपके द्वारा स्वर्गको भोगताहै यह तेरा कर्म फल बड़ी दक्षिणावाले बहुत से राजसूय और अश्वमेधोंके समान नहींहै किन्तु उनसे भी बहुतबड़ाहै तुमने प्रस्थभर सत्तूके दान से वह अविनाशी ब्रह्मलोक विजयकियाहै जो कि रजोगुणसे रहित है तुम सुखपूर्व्वक ब्रह्मलोक को जाओ हे श्रेष्ठब्राह्मणो तुम सबके लिये श्रेष्ठ और दिव्य बिमान सम्मुख बर्त्तमानहैं १०५। १०६ हे ब्राह्मण मैं धर्महूं मुझ को देखो और इच्छाके अनुसार विमानोंपर चढ़ो तुमने अपने शरीर को उद्धार किया तेरी शुभकीर्त्ति लोकमें नियतहै १०७ तुम अपनी स्त्री पुत्र और पुत्रबधू समेत स्वर्गको जाओ धर्म के इस वचनके कहनेसे वह ब्राह्मण बिमानपर चढ़-कर १०८ स्त्री पुत्र और अपनी पुत्रबधू समेत स्वर्ग को गया तब उस पुत्र स्त्री और पुत्रबधू समेत उस ब्राह्मणके स्वर्ग जानेपर मैं अपने बिलसे बाहर निकला और सत्तूकी सुगन्धि जलकी तरी दिव्य पुष्पों के मर्द्दन और साधुओं के उन सत्तुओंके कणकोंसे और उस ब्राह्मणके तपसे मेरा शिर सुबर्णका हुआ १०६। ११०। १११ हे ब्राह्मणो उस सत्य संकल्प ब्राह्मणके सत्तूदानसे मेरा आधा शरीर सुवर्णका होगया ११२ उस बुद्धिमान्के तपसे इस बड़े फलको देखो हे ब्राह्मण लोगो मैं प्रसन्न चित्त होकर यह इच्छा करके कि मेरा यह शेष बचाहुआ आधा अंगभी सुवर्णका होजाय बारम्बार तपोबन और यज्ञोंमेंजाताहूं उसीप्रकार मैं इस बुद्धिमान् युधिष्ठिर के इस यज्ञको सुनकर ११३। ११४ बड़ी आशासे यहां आया परन्तु मेराशेष आधा अङ्ग सुवर्णका नहीं हुआ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो इस हेतुसे मैंने हँसकर यह बचन नहीं कहाहै ११५ यह यज्ञ किसी दशामें भी उस एक प्रस्थभर सत्तू दानके समान नहीं है क्योंकि उस समय उन प्रस्थभर सत्तूके गुणों से मेरा आधा शरीर सुवर्णका हुआ ११६ इससे मेरे मतसे यह बड़ायज्ञ उस सत्तू दान के समान नहीं है वह नौला उस यज्ञमें उन सब ब्राह्मणों से ऐसे २ बचन कहकर उनकी दृष्टियों से गुप्त होगया और वह ब्राह्मण अपने २ घरों को गये ११७ बै-शम्पायन बोले हे शत्रुओं के पुरोंके विजय करनेवाले राजा जनमेजय उस बड़े महाअश्वमेध यज्ञमें जो अद्भुत वृत्तांत हुआ वह मैंने तुमसे कहा ११८ हेराजा तुमको यज्ञमें किसी प्रकार से भी आश्चर्य्य न करना चाहिये वह हजारों कोटि ऋषि हैं जो तपकेद्वारा स्वर्ग को गये ११६ सब जीव मात्रोंसे शत्रुता न करना

सन्तोष, सुस्वभाव, सत्यकथन, तप, इन्द्रियोंका जीतना, सत्यता और दान यह सब समान हैं १२० ॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिनकुलाख्यानेनवतितमोऽध्यायः ९० ॥

# इक्यानवेका अध्याय ॥

जनमेजयने कहा कि हे प्रभु राजालोग यज्ञमें प्रवृत्त हैं महर्षि तपमें प्रवृत्तहैं वेदपाठी ब्राह्मण शान्ति में नियत हैं और इन्द्रियों का जीतना बाह्याभ्यन्तर से होता है १ इस हेतुसे इस लोकमें यज्ञके फलों के बराबर दूसरी बात नहीं दिखाई देती यह मेरा मतहै और निस्सन्देह इसीप्रकार का है २ हे श्रेष्ठराजा अनेक राजाओं ने बहुत २ से उत्तम यज्ञों से पूजकर इस लोकमें बड़ी २ शुभ कीर्त्तियों को प्राप्त करके शरीर त्यागने के पीछे स्वर्ग्ग को पाया महातेजस्वी सहस्र नेत्रधारी प्रभु देवराज ने बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों से देवताओं के सम्पूर्णराज्य को पाया ३।४ जब भीमसेन समेत अर्जुनको आगे रखनेवाला राजायुधिष्ठिर पराक्रम और ऐश्वर्य्य से देवराज के समान है ५ फिर किस कारण से उस नौलेने महात्मा धर्मराजके उस महाअश्वमेध यज्ञकी निन्दाकरी ६ वैशम्पायन बोले कि हे भरतवंशी राजाजनमेजय यहां अब तुम मुझसे यज्ञकी उत्तमरीति और फलों को यथार्थता से श्रवणकरो ७ पूर्व समय में यज्ञ कर्मके विस्तारपाने और इन्द्रके पूजन करने पर सब महर्षियों ने यज्ञ कर्म्म में प्रवृत्त ऋत्विजों के मध्यमें उसको वर्णन किया है गुणवान् हवन में अग्नि और देवताओं का आह्वानहोने और महर्षियों के नियत होनेपर उस पशुघात क्रियाके समयपर अत्यन्त प्रसन्न श्रेष्ठ वेदज्ञ सुन्दर शब्द अव्यग्र चित्त तेजस्वी उत्तम अध्वर्य्य ब्राह्मणों से पशुओं के पकड़नेपर महर्षिलोग दयासे युक्तहुये ८।९।१०।११ हे महाराज उन तपोधन ऋषियोंने दुखी पशुओं को देखकर इन्द्रसे मिलकर कहा कि यह यज्ञ विधि शुभ नहीं है १२ हे इन्द्र तुझ धर्म के चाहनेवाले का यह बड़ा अज्ञान है यज्ञ में पशु समूहों का माराजाना विधिमें नहीं देखा गया १३ हे प्रभु यह तेरा प्रारम्भ कर्म्म धर्म्मका नाश करनेवाला है क्योंकि हिन्सा धर्म्म नहीं कहाती है इससे यह यज्ञ धर्म्मरूप नहीं है जो चाहता है तो तू अपने यज्ञ को शास्त्रके अनुसारकर १४ हे सहस्राक्ष तीन वर्षके पुराने अन्न से यज्ञकरो शास्त्रके अनुसार होनेवाले यज्ञ से

ंरा बड़ा धर्म्म होगा १५ हे इन्द्र यह बड़ाधर्म्म है और बड़ेगुण वा फलका उदय करनेवालाहै तत्त्वदर्शी ऋषियों से उस बचन को सुनकर इन्द्रने अङ्गीकार नहीं किया और अहङ्कार से मोहके आधीन हुआ हे भरतवंशी इन्द्रयज्ञ में तपस्वियों का वड़ा शास्त्रार्थ इस विषयमें हुआ कि पशुओं से यज्ञ करना चाहिये अथवा यव आदिक अन्नकी वस्तुओं से करना योग्यहै तब वाद करनेसे दुखितरूप उन तत्त्वदर्शी ऋषियोंने १६। १७। १८ इन्द्रसे मिलकर राजाबसुसे पूछा कि हे महा भाग श्रेष्ठ राजा यज्ञोंके विषयमें शास्त्रकी क्या आज्ञाहै और कौन शास्त्रहै उत्तम पशुओं से यज्ञ करना चाहिये वा यव घृतादिक से करना उचित है १९। २० राजा वसुने उनके उस बचन को सुनकर बिना बलाबल बिचारे यह उत्तर दिया कि जो समयपर वर्त्तमान होय उसी से यज्ञ करना चाहिये २१ वह चन्देरीदेशों का ईश्वर प्रभु राजावसु इस प्रकारके विपरीत प्रश्न को कहकर रसातलमें भेजा गया २२ इसहेतुसे प्रभुस्वयंभू ब्रह्माजी के सिवाय किसी अकेले बहुत जानने वाले को सन्देह स्थानमें उत्तर देना न चाहिये २३ क्योंकि पापात्मा बुद्धिवाला मनुष्य जो दान देताहै वह सब वड़े दानभी उसको तिरस्कार करके नाशहोजाते हैं २४ उस अधर्म में प्रवृत्त दुर्बुद्धी अशुद्ध अन्तःकरण हिंसा करनेवाले मनुष्य की अपकीर्त्ति दानसेही दोनों लोकोंमें होतीहै २५ जो धर्म में सन्देह करनेवाला अज्ञान मनुष्य अनीतिसे प्राप्तहुये धनको सदैव यज्ञों में व्यय करताहै वह धर्म के फलको नहीं पाताहै २६ जो पापात्मा नीच पुरुष धर्म के बेचनेवाले हैं और संसार के विश्वासके लिये वेदपाठी ब्राह्मणों के अर्थ दान देते हैं और जो वेद-पाठी पापकर्म से धनको पाकर निर्भय राग और मोह से संयुक्त हैं वह अन्त में नरकको पाते हैं २७। २८ धनके संचयमें प्रवृत्तचित्त मनुष्य भी लोभ और मोह के आधीन होताहै और अपवित्र बुद्धि पापीसे सबजीव भयकरते हैं जो मनुष्य इस प्रकार धनको पाकर मोहसे दानकरे अथवा यज्ञकरे वह पापरूप धनकी आ-मदनीसे परलोक में उसदानादिकके फलको नहीं भोगताहै २९। ३० तपोधन धर्मके अभ्यासी मनुष्य अपनी सामर्थ्यके अनुसार इन मूल फल शाक जला-दिकको पात्रके अर्थ दानदेकर स्वर्ग को जातेहैं ३१ धर्म, महायोग, दान, जी-वोंपरदया, ब्रह्मचर्य्य, सत्यता, दया, धैर्य्य,शान्ति ३२ यह सब उस प्राचीन धर्म्म के मूलरूपही सुनेजाते हैं आगे के समयमें विश्वामित्र आदिक राजा हुये ३३

बिश्वामित्र, असित, राजाजनक, कक्षसेन, अरष्टिसेन, राजा सिन्धुद्वीप इत्या
दिक अनेक राजाओंने परमसिद्धीको पाया राजाओंने और तपोधन ब्राह्मणों
सत्यकर्म और न्यायसे प्राप्तहोनेवाले दानोंसे परम सिद्धिको पाया ३४।३५ जो
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र तप में आश्रित हैं वह दानधर्म की अग्नि से
पवित्र होनेवाले स्वर्गको जाते हैं ३६॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्वणिएकनवतितमोऽध्यायः ९१॥

# बानबेका अध्याय॥

जनमेजय ने प्रश्न किया कि हे भगवन् जोधर्म से प्राप्त होनेवाले धन धान्य
सेही स्वर्ग है तो इससबको आप मुझ से बर्णन कीजिये क्योंकि आप वर्णन क
रनेमें कुशल हैं १ हेब्राह्मण उस उंछवृत्ती ब्राह्मणके सत्तू दानसे जो बड़ाफल उ
त्पन्नहुआ वह आपने मुझ से कहा यह निस्सन्देह सत्यहै २ हे उत्तम ब्राह्मण स
यज्ञों में पूर्ण निश्चय कैसे होता है इसको आप संपूर्णता से कहने के योग्य हैं
३ वैशंपायन बोले हे शत्रुबिजयी महाराज जनमेजय इसस्थानपर मैं इसप्राचीन
इतिहास को कहता हूं जो कि पूर्वसमय में अगस्त्य ऋषि के महायज्ञ में उत्पन्न
हुआ ४ हे महाराज पूर्वसमय में वह महातेजस्वी सब जीवोंकी वृद्धि में प्रवृत्त
अगस्त्यऋषि बारहबर्ष की दीक्षा में नियतहुये ५ महात्मा के उस यज्ञ में वह
लोग होताथे जो कि अग्निरूप मूलफलों का आहार करनेवाले पत्थरपर कूट
कर खानेवाले केवल चन्द्रमा की किरणों के पानकरनेवाले ६ पूछकर लेनेवाले
वैघसिक भोजन के पीछे खानेपीने की बस्तुओं के पात्रोंको खाली करनेवाले
यती और संन्यासी थे वह इस यज्ञ में चारों ओर नियत हुये ७ वह सब प्रत्यक्ष
धर्मवाले क्रोध और इन्द्रियों के जीतनेवाले जितेन्द्रियपनेमें नियत थे सब हिंसा
और छल आदिकसे रहित ८ सदैव पवित्र रीतिमें नियत और इन्द्रियों से भी
अजितथे पूजन करते हुये वह महर्षिलोग उस यज्ञ में नियत हुये ९ भगवान्
ऋषिने उन खाने की बस्तुओंको सामर्थ्य के अनुसार इकट्ठाकिया और जो यो-
ग्य रीतिथी वही उस समय उस महात्माके यज्ञमें हुई १० उसीप्रकार बहुतसे मु-
नियों ने बड़े २ यज्ञ किये हे भरतर्षभ उस समय उस प्रकारका अगस्त्यजी का
यज्ञ वर्त्तमानहोनेपर इन्द्रने वर्षा नहीं की ११ इसीहेतुसे महात्मा अगस्त्य के यज्ञ

कर्मोंके अधकाश में पवित्रात्मा मुनियों की यह बार्त्तालापहुई १२ मत्सरता से रहितहोकर यह यजमान अगस्त्य अन्नको देताहै और परजन्य मेघ बर्षाको नहीं करताहै फिर अन्न कैसे होगा हे ब्राह्मणो मुनिका यहयज्ञ बारहबर्षकाहै १३ देवता इन बारहबर्षोंमें वर्षा नहींकरेगा आप इसको बिचारकर इस बुद्धिमान् महातपस्वी अगस्त्य महर्षिके ऊपर अनुग्रह करने के योग्यहो १४ तब इस बचन के कहने पर उस प्रतापवान् अगस्त्यने १५ शिरसे मुनियोंको प्रसन्नकरके यह बचन कहा कि जो इन्द्र बारहबर्ष तक बर्षा नहीं करेगा १६ तो मैं बड़े ब्रतवाले दूसरे यज्ञोंको ध्येय द्रव्यसेही करूंगा अर्थात् सिद्ध द्रव्यके न होनेपर ध्यानमात्र सेही द्रव्योंको इकट्ठा करूंगा यह बीज मैंने बहुत बर्षोंके लिये जारी कियाहै १७ । १८ । १६ उसको बीजोंसे ही करूंगा इसमें विघ्न नहीं होगा यह मेरायज्ञ किसी दशा में भी निष्फल नहीं होसक्ता २० देवता कैतो बर्षाही करेगा अथवा वह नहीं रहैगा अर्थात् नाशको प्राप्तहोगा २१ अथवा इन्द्र अपनी इच्छासे मेरी प्रार्थनाको नहीं करेगा तब मैं आप इन्द्र होजाऊंगा और सृष्टिका जीवन करूंगा जो जैसे आ- हारवाला उत्पन्न हुआहै उसको वैसाही आहार मिलैगा २२ मैं बारंबार इससे अधिकभी करूंगा अब यहां सुवर्णादिक धनभी बर्त्तमान होयँ २३ तीनोंलोकों में जो पदार्थ हैं वह अपने आप यहां आओ अप्सराओंके दिव्य समूह किन्नरों समेत गंधर्वोंके समूह २४ बिश्वाबसु आदिक जो अन्य २ गन्धर्व हैं वह सबभी मेरे यज्ञमें आकर बर्त्तमान होयँ और उत्तर कौरव देशोंमें जो कुछ धन बर्त्तमान है २५ वहसब अपने आप इस यज्ञमें सम्मुख आकर बर्त्तमान होय स्वर्ग २ की सभा और धर्म यह सब अपने आप बर्त्तमानहोयँ २६ ऐसे कहनेपर उस प्रकाश अग्निके समान चित्तवाले अत्यन्त तेजस्वी अगस्त्य मुनिके तपसे वह सब हुआ २७ इसकेपीछे उनप्रसन्नचित्त मुनियोंने तपके बलको देखा और सब आ- श्चर्य्य युक्त ऋषियों ने बड़े अर्थवाला यह बचन कहा २८ कि हम आपके बचन से प्रसन्न हैं परन्तु आपके तपका नाश नहीं चाहते हम उन यज्ञोंसेही प्रसन्न हैं और न्याय सेही २६ यज्ञ दीक्षा होम और जो दूसरा प्रयोजन ढूंढ़ते हैं उसको चाहते हैं हम न्यायसे भोजन इकट्ठा करनेवाले और अपने कर्मों में प्रवृत्तहैं ३० हम ब्रह्मचर्य्य और न्यायों से वेदों को चाहते हैं और न्यायसेही भविष्य काल को चाहते हम घरसे निकले हैं ३१ और धर्म्म से देखीहुई रीतियों से तप करेंगे

आप का यज्ञ पूर्ण है और आपकी बुद्धि हिंसा से रहित है ३२ हे प्रभु तुम देव यज्ञों में अहिंसा को वर्णनकरो हे उत्तम ब्राह्मण हम उससे प्रसन्न होंगे ३ यज्ञ के समाप्त होने पर हम लोग इस यज्ञशाला से जायँगे इस प्रकार उन ऋषियों के वार्त्तालाप करनेपर बड़े तेजस्वी देवराज ने ३४ उसके तपोबल को देखकर बर्षा करी हे जनमेजय बड़ा पराक्रमी परिजन्य देवता उस यज्ञ के समाप्त होने तक ३५ इच्छा के अनुसार बर्षा करनेवाला हुआ हे राजऋषि आप इंद्र देवता ने बृहस्पति जी को आगे कर के समीप आकर उस अगस्त्य ऋषि को प्रसन्न किया ३६। ३७ इसके पीछे अत्यन्त प्रसन्न अगस्त्यऋषि ने यज्ञके समाप्त होने पर उन महामुनियों को विधि पूर्व्वक पूजन करके बिदा किया ३८ जनमेजयने प्रश्न किया कि इस सुवर्ण के शिरवाले नौलेके रूपमें होकर किस देवताने यह मनुष्य के समान बचन कहा है इसको आप मेरे पूछने से बर्णन कीजिये ३९ बैशम्पायन बोले कि तुमने प्रथम यह बात हमसे न पूछी और न हमने आपसे बर्णन किया यह नौलाहै और जिस रीतिसे उसका मनुष्यताका बचन है उसको आप सुनिये ४० निश्चय करके पूर्व समयमें जमदग्निऋषिने श्राद्धका सङ्कल्प किया होमकी गौ उनके पासआई आपही उसको दुहा और दूध को दृढ़ और नवीन पवित्र पात्रमें रक्खा धर्म्म देवताने क्रोधके रूपसे उस पात्रमें प्रवेश किया ४१। ४२ वह धर्म्म देवता उस श्रेष्ठ ऋषिकी परीक्षा लेनेका अभिलाषी था कि यह अप्रिय करनेपर क्या करैंगे यह बिचारकर उस धर्मने उस दूध को पीलिया ४३ उस मुनिने उस क्रोधको जानकर उसपर क्रोध नहीं किया हे राजा फिर वह क्रोध ब्राह्मण मूर्त्ति में नियत हुआ ४४ उसके विजय होनेपर उस अशान्तचित्त ने उस उत्तम भार्गव से कहा ४५ हे श्रेष्ठ भार्गवलोक में जो यह वार्त्तालाप परस्पर होती है कि भार्गव ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी हैं वह मिथ्या है इसी से मैं आप से पराजय हुआ हूं ४६ अब मैं तुझ शान्तिरूप महात्मा के आधीनहूं हे साधो मैं आपके तपसे डरता हूं हे प्रभु मुझपर कृपाकरो ४७ जमदग्निजी बोले हे क्रोध मैंने नेत्रोंसे तुमको देखा तुम यहां से बिगतज्वर होकर जाओ क्योंकि इस समय तुमने मेरा अपमान नहीं किया मुझको क्रोध नहीं है ४८ मैंने जिनका नाम लेकर इस दूधका सङ्कल्प किया है वह महाभाग पितृ देवताहैं उन्हीं से जाकर समझो ४९ इस प्रकारके बचन सुनकर वह क्रोध महा

।भीत होकर उसी स्थानमें गुप्त होगया और उसने पितरों के शापसे नौलेके
। को पाया ५० उसने शापके दूरहोने के निमित्त पितरों को प्रसन्न किया तब
होंने उससे कहा कि तू धर्म्मकी निन्दा करता हुआ शापसे छूटेगा ५१ उन
तरों के इस वचनके कहने पर यज्ञदेश और धर्मारण्यों में दौड़ते और निन्दा
ते उस नकुलरूप क्रोधने उस यज्ञ को पाया ५२ फिर वह क्रोध एक प्रस्थ प-
ान सत्तू दानकी कथा से धर्मपुत्र की निन्दा करके उस शापसे निवृत्त हुआ
ोंकि युधिष्ठिर भी धर्मथा ५३ इस प्रकार उस महात्माके यज्ञमें यह चमत्कारी
द्भुत बातहुई फिर हमसबलोगोंके देखतेहुये वहनौलाभी अन्तर्द्धान होगया५४॥

इतिश्रीमहाभारतेआश्वमेधिकेपर्व्वणिनकुलोपाख्यानेद्विनवतितमोऽध्यायः ९२ ॥

इति अश्वमेध पर्व्व समाप्तम् ॥

---

मुन्शीनवलकिशोर ( सी, आई, ई ) के छापेखाने में छापागया
मार्च सन् १८९८ ई० ॥

महाभारत काशीनरेश के पर्व्व अलग २ भी मिलते हैं ॥

१ आदिपर्व्व १
२ सभापर्व्व २
३ बनपर्व्व ३
४ विराटपर्व्व ४
५ उद्योगपर्व्व ५
६ भीष्मपर्व्व ६
७ द्रोणपर्व्व ७
८ कर्णपर्व्व ८
६ शल्य ६ गदा व सौप्तिक १० ऐषिक व बिशोक ११ स्त्रीपर्व्व १२
१० शान्तिपर्व्व १३ राजधर्म्म, आपद्धर्म्म, मोक्षधर्म्म, दानधर्म्म
११ अश्वमेध १४ आश्रमवासिक १५ मौसलपर्व्व १६ महाप्रस्थान १७ स्वर्गारोहण १८
१२ हरिवंशपर्व्व १६ ॥

## महाभारत सबलसिंहचौहान कृत ॥

यह पुस्तक ऐसी उत्तम दोहा चौपाइयों में है कि सम्पूर्ण महाभारतकी कथा दोहे चौपाई आदि छन्दोंमें है यह पुस्तक ऐसी सरलहै कि कमपढ़ेहुये मनुष्यों कोभी भलीभांति समझमें आती है इसका आनन्द देखनेही से मालूम होगा ॥

(१) आदि, (२) सभा, (३) बन, (४) विराट, (५) उद्योग, (६) ष्म, (७) द्रोण, (८) कर्ण, (६) शल्य, (१०) गदा, (११) स्त्री, (१२) र्गारोहण, (१३) शान्तिपर्व, (१४) अश्वमेध, (१५) सौप्तिक, (१६) ऐषिक ॥
ये पर्व्व छपचुके हैं बाकी जब और पर्व्व मिलेंगे छापेजावेंगे जिन महाशयों मिलसक्ते हैं कृपाकरके भेजदेवैं तौ छापेजावें ॥

## महाभारत वार्त्तिक भाषानुवाद ॥

जिसका तर्जुमा संस्कृतसे देवनागरी भाषामें होगया है और आदिपर्व्व से हरिवंश पर्यन्त सम्पूर्ण उन्नीसों पर्व्व छपगये हैं ॥

## भगवद्गीता नवलभाष्यका विज्ञापनपत्र ॥
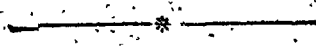
प्रकटहो कि यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगमपुराण स्मृति( इत्यादि सारभूत परमरहस्य गीताशास्त्र का सर्व्व विद्यानिधान सौशील्य यौदार्य्य सत्यसंगर शौर्य्यादि गुणसम्पन्न नरावतार महानुभाव अर्जुनको अधिकारी जानके हृदयजनित मोहनाशार्थ सब प्रकार अपार संसार निस्तार भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचर कराया है वही उक्त भगवद्गीता वज्रवत् वेदान्त योगशास्त्रान्तर्गत जिसको कि अच्छे २ शास्त्रवेत्ता लोग अपनी बुद्धिसे पार न पासके तब मन्दबुद्धि जिनको कि केवल देशभाषाही पठनपाठन करनेकी स मर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्राय को जानसक्ते हैं और यह प्रत्यक्षही है । जबतक किसीपुस्तक अथवा किसी वस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धि न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिलै इस कारण सम्पूर्ण ...ए १ भगवद्भक्त पादाब्ज रसिकजनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्तत धुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्व विद्याबिलासी भगवद्भक्त्यनुरागी श्री ... नवलकिशोरजी ( सी, आई, ई ) ने बहुतसा धनव्ययकर फ़र्रुख़ाबाद नि... पंडित उमादत्तजी से इस मनोरञ्जन वेदवेदान्त शास्त्रोपरि पुस्तक को श्रीशं... राचार्य्य निर्म्मित भाष्यानुसार संस्कृत से सरल देशभाषा में तिलक रचाय ... वलभाष्यआख्यसे प्रभातकालिक कमलसरिस प्रफुल्लित करादियाहै कि ... भाषामात्रके जाननेवाले पुरुषभी जानसक्ते हैं ॥

जब छपनेका समयआया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओं की स... यह विचार हुआ कि इस अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थके भाष्यमें अधिकतर उत्त... उससमय पर होगी कि इस शंकराचार्य्यकृत भाष्य भाषा के साथ इस ग्रन्थ टीकाकारोंकी टीकाभी जितनीमिलें शामिल कीजावें जिसमें उन टीकाकारों अभिप्रायकाभी बोधहोवे इसकारण से श्रीस्वामी शंकराचार्यजी के शंकर... का तिलक व श्रीआनन्दगिरिकृत तिलक अरु श्रीधरस्वामिकृत तिलकभी श्लोकों सहित इस पुस्तकमें उपस्थितहै ॥